



निखिलभुवनपार्व शाश्वतं सुप्रसन्नं त्वतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः ।  
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विज्ञातु हृदयपथे सर्वसाक्षी चिदात्मा ॥

वर्ष  
७४

गोरखपुर, सीर माघ, वि० सं० २०५६, श्रौकषा-सं० ५२२५, जनवरी २००० ई०

संख्या  
१

पूर्ण संख्या ८७८

## गरुडवाहन भगवान् विष्णुसे दर्शनकी प्रार्थना

यस्मादिदं जगदुदेति घतुर्मुखाद्यं यस्मिन्प्रवृत्तितपशेषमशेषमूले ।  
यत्रोपपाति विलयं च समस्तमन्ते दुग्धोद्यतो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥  
चक्रं सहस्रकरच्छात ककारविन्दे गुर्वी गदा दारकाह विधाति यस्य ।  
पक्षीन्पुष्पपरीरोषितपादपयो दुग्धोद्यतो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥  
यस्यार्द्रदृष्टिक्वातस्तु सुराः समृद्धि कोपेक्षणेन दनुजा विलयं व्रजन्ति ।  
भीताह्वरन्ति च यतोऽर्कयमानित्साद्या दुग्धोद्यतो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥

जिन परमात्मासे यह ब्रह्म अदिरूप जगत् प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत्के कारणभूत जिन परमेश्वरमें यह समस्त संसार स्थित है तथा अन्तकालमें यह समस्त जगत् जिनमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें। जिनके करकमलमें सूर्यके समान प्रकाशमान चक्र, भारी गदा और श्रेष्ठ शंख शोभित हो रहा है, जो पक्षिराज (गरुड)-की पीठपर अपने चरणकमल रखे हुए हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें। जिनकी सेहदृष्टिसे देखे जानेके कारण देवता लोग ऐश्वर्य पाते हैं और कोपदृष्टिके द्वारा देखे जानेसे दानव लोग नष्ट हो जाते हैं तथा सूर्य, चम और खागु आदि जिवके भयसे भीत होकर अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें।

## कल्याणकारी संकल्प

यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैवं तद् सुमम्य तथैवेति ।

दूरद्वयं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जो जागते हुए पुरुषका दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुषका वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान साधन है, जो भूत, भविष्य, वर्तमान, संनिकृष्ट और व्यवहित पदार्थोंका एकमात्र ज्ञाता है और जो विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

येन कर्माग्नयपसौ मनीषिणो यद्रे कृष्णानि विदधेभ्यु धीराः ।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान् जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करके यज्ञमें कर्मोंका विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियोंका पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजाके हृदयमें निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

यत्प्रज्ञानमृतं येनो धृतिस्तु यन्ज्योतिराजामृतं प्रजासु ।

यस्मात्प्र ज्ञे किं क्व कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जो विशेष प्रकारके ज्ञानका कारण है, जो सामान्य ज्ञानका कारण है, जो धैर्यरूप है, जो समस्त प्रजाके हृदयमें रहकर उनकी समस्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है, जो स्मृत शरीरकी मृत्यु होनेपर भी अमर रहता है और जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

येनेहं भूतं भुवनं भविष्यन् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।

येन यज्ञस्तापते साहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जिस अमृतस्वरूप मनके द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्यत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं और जिसके द्वारा सात होता-जीवात्ता अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

यस्मिन्नुचः साम यजुश्च यस्मिन् प्रतिष्ठित रक्षणाभक्षिकाराः ।

यस्मिन्निष्ठसत्यं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जिस मनमें रथचक्रकी नाभिमें लगे अनेक समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

सुषारदिरष्टानिव यन्मनुष्याश्चेनीयतेऽभीतुभिर्वीजिन इव ।

इत्प्रतिष्ठं यदजिर् जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

श्रेष्ठ सारथि जैसे घोड़ोंका संचालन और रासके द्वारा घोड़ोंका नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियोंका संचालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो हृदयमें रहता है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

‘ॐ असतो मा सद् गमय’

## गरुडपुराणका माहात्म्य

विद्याकीर्तिप्रभासश्चीजयारोग्यादिकारकम् । यः पठेच्छृणुयाद्वा सर्वं स दिवं व्रजेत् ॥

[ भगवान् हरिने कहा— ] हे रुद्र ! यह गरुडमहापुराण विद्या, यश, सौन्दर्य, लक्ष्मी, विजय और आरोग्यादिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान जाता है और अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहितः ॥

संलिखेत्लेखयेद्वापि धारयेत् पुस्तके ननु । धर्माधीं प्राप्नुयाद्धर्मधर्माधीं चार्धमाप्नुयात् ॥

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणका पाठ करता है, सुनता है अथवा सुनाता है, जो इसको लिखता है, लिखाता है या पुस्तकके ही रूपमें इसे अपने पास रखता है, वह यदि धर्माधी है तो उसे धर्मकी प्राप्ति होती है, यदि वह अर्धका अभिलाषी है तो अर्ध प्राप्त करता है।

गारुडं यस्य हस्ते तु तस्य हस्तगतौ नयः । यः पठेच्छृणुयादेतद्भक्तिं मुक्तिं समाप्नुयात् ॥

जिस मनुष्यके हाथमें यह गरुडमहापुराण विद्यमान है, उसके हाथमें ही नीतियोंका कोश है। जो प्राणी इस पुराणका पाठ करता है या इसको सुनता है, वह भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त कर लेता है।

धर्माधिकाममोक्षांश्च प्राप्नुयाच्छृण्वणादितः । पुत्राधीं लभते पुत्रान् कामाधीं काममाप्नुयात् ॥

इस महापुराणकी पढ़ने एवं सुननेसे मनुष्यके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो जाती है। इस महापुराणका पाठ करके या इसको सुन करके पुत्र चाहनेवाला पुत्र प्राप्त करता है तथा कामनाका इच्छुक अपनी कामना-प्राप्तिमें सफलता प्राप्त कर लेता है।

विद्याधीं लभते विद्यां जयाधीं लभते जयम् । ब्रह्महत्यादिना पापी पापशुद्धिमवाप्नुयात् ॥

विद्याधींको विद्या, विजयीपुको विजय, ब्रह्महत्यादिसे युद्ध पापी अपसे विशुद्धिकी प्राप्ति होता है।

श्रव्यापि लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्यतिम् । श्रेयाधीं लभते श्रेयं भोगाधीं भोगमाप्नुयात् ॥

श्रव्या सती पुत्र, कन्या सजान पति, श्रेयाधीं श्रेय तथा भोग चाहनेवाला भोग प्राप्त करता है।

मङ्गलाधीं मङ्गलानि गुणाधीं गुणमाप्नुयात् । काव्याधीं च कवित्वं च साराधीं सारमाप्नुयात् ॥

मङ्गलकी कामनावाला व्यक्ति अपना मङ्गल, गुणोंका इच्छुक व्यक्ति गुण, काव्य करनेका अभिलाषी मनुष्य कवित्वरत्ति और जीवनका सारवात् चाहनेवाला व्यक्ति सारवात् प्राप्त करता है।

ज्ञानाधीं लभते ज्ञानं सर्वसंसारमर्दनम् । इदं स्वसंघर्षं धन्यं गारुडं गुरुदेवितम् ॥

ज्ञानधीं सम्पूर्ण संसारका मर्दन करनेवाला ज्ञान प्राप्त करता है। [हे रुद्र!] पक्षिवेद गुरुदेवके द्वारा कहा गया यह गरुडमहापुराण धन्य है। यह तो सबका कल्याण करनेवाला है।

नाकाशे घराणं तस्य श्लोकमेकं तु यः पठेत् । श्लोकाधर्पणद्वयस्य दुष्टशत्रुक्षयो भुवम् ॥

जो मनुष्य इस महापुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकाल-मृत्यु नहीं होती। इसके मात्र आधे श्लोकका पाठ करनेसे निश्चित ही दुष्ट शत्रुका भय हो जाता है।

अतो हि गारुडं मुख्यं पुराणं शास्त्रसम्मतम् । गारुडेन समं नास्ति विष्णुधर्मप्रदर्शने ॥

इसलिये यह गरुडपुराण मुख्य और शास्त्रसम्मत पुराण है। विष्णुधर्मके प्रदर्शनमें गरुडपुराणके समान दूसरा कोई भी पुराण नहीं है।

यथा सृष्टाणां प्रवरो जनार्दनो यथायुधानं प्रवरः सुदर्शनम् । तथा पुराणेषु च गारुडं च मुख्यं तदाहुर्हरितत्त्वदर्शने ॥

जैसे देवोंमें जनार्दन श्रेष्ठ हैं और आयुधोंमें सुदर्शन श्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणोंमें यह गरुडपुराण हरिके तत्त्वनिरूपणमें मुख्य कहा गया है।

गारुडाख्यपुराणो तु प्रतिपाद्यो हरिः स्मृतः । अतो हरिर्नमस्कारो गम्यो योग्यो हरिः स्मृतः ॥

इस गरुडपुराणमें हरि ही प्रतिपाद्य हैं, इसलिये हरि को नमस्कार करने योग्य है, हरि ही शरण्य हैं और वे हरि ही सब प्रकारसे सेवा करने योग्य हैं।

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् । भुव्यतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि ॥

यश्चेदं शृणुयान्मर्त्या यश्चापि परिकीर्तयेत् । विहाय यातनां घोरान् भूतपापों दिवं व्रजेत् ॥

यह गरुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये। जो मनुष्य इस महापुराणकी सुनता या इसका पाठ करता है, वह निष्पाप होकर यमराजकी भयंकर यातनाओंको तोड़कर स्वर्गको प्राप्त करता है।

## गरुडपुराण—सिंहावलोकन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनर-नारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणकी चर्चा करने चाहिये।

पुराण वाङ्मयमें गरुडपुराणका महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मप्रभु साक्षात् भगवान् विष्णुने ब्रह्मादि देवताओंसहित देवदेवेश्वर भगवान् रुद्रदेवको सभी शास्त्रोंमें सारभूत तथा महान् अर्थ बतानेवाले इस 'गरुडमहापुराण' को सुनाया था।

एक बार तीर्थयात्राके प्रसंगमें सर्वशास्त्रपरगत ज्ञानाविष्ट महात्मा सूतजी नैमिषारण्यमें पधारे, वहाँ शौनकादि ऋषि-मुनियोंने उनकी पूजा की और जिज्ञासरूपमें कुछ प्रश्न भी किये। प्रश्नोंके समाधानमें सूतजीने गरुडमहापुराणकी कथा उन ऋषि-महर्षियोंको सुनायी। सूतजीने यह कथा भगवान् व्यासजीसे सुनी थी, व्यासजीको यह कथा पितामह ब्रह्मासे प्राप्त हुई। वास्तवमें मूलरूपसे इस महापुराणको गरुडजीने कश्यप ऋषिको सुनाया था।

प्राचीनकालमें पृथ्वीपर पक्षिराज गरुडने तपस्याके द्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना की, जिससे संतुष्ट होकर प्रभुने अभीष्ट वर माँगनेके लिये कहा। गरुडने भगवान्से निवेदन किया कि नागोंने मेरी माता विनताको दासी बना लिया है। हे देव! आप प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान प्रदान करें कि मैं उनको जीतकर अमृत प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकूँ और माँको नागोंकी माता कडूकी दासतासे मुक्त करा सकूँ। मैं आपका वाहन बनूँ और नागोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ हो सकूँ तथा जिस प्रकार पुराणसंहिताका रचनाकार हो सकूँ, वैसा ही करनेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीहरिने पक्षिराज गरुडको ये अभीष्ट वरदान प्रदान किये तथा कहा कि आप अत्यन्त शक्तिसम्पन्न होकर मेरे वाहन बनेंगे। विषोंके विनाशकी शक्ति भी आपको प्राप्त होगी, मेरी कृपासे आप मेरे ही माहात्म्यको कहनेवाली पुराणसंहिताका प्रणयन करेंगे। मेरा जैसा स्वरूप कहा गया है, वैसा ही आपमें भी प्रकट होगा। आपके द्वारा प्रणीत यह पुराणसंहिता, आपके 'गरुड' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होगी।

'हे विनतासुत! जिस प्रकार देवदेवोंके मध्यमें मैं ऐश्वर्य

और श्रीरूपमें विख्यात हूँ, उसी प्रकार हे गरुड! सभी पुराणोंमें यह गरुडमहापुराण भी ख्याति अर्जित करेगा। जैसे विश्वमें मेरा कीर्तन होता है, वैसे ही गरुड नामसे आपको भी संकीर्तन होगा। हे पक्षिश्रेष्ठ! आप मेरा ध्यान करके उस पुराणका प्रणयन करें'—

यच्चाहं देवदेवानां श्रीः ख्यातो विनतासुत।

तथा ख्यातिं पुराणेषु गरुडं गरुडैष्यति॥

यच्चाहं कीर्तनीयोऽद्य तथा त्वं गरुडात्मना।

सं ख्यात्वा पक्षिमुखेह पुराणं गद गरुडम्॥

(१। २। ५६-५७)

भगवान्के द्वारा यह वरदान दिये जानेके बाद, इसी सम्बन्धमें कश्यप ऋषिके द्वारा पूछे जानेपर गरुडने इसी पुराणको उन्हें सुनाया। कश्यपने इस गरुडमहापुराणका श्रवण करके 'गरुडो विद्या' के बलसे एक जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था। गरुडने स्वयं भी इसी विद्याके द्वारा अनेक प्राणियोंको जीवित किया था।

इस गरुडमहापुराणके प्रारम्भमें सर्ग-वर्णन किया गया है। तदनन्तर देवार्चनकी विधियाँ प्रस्तुत की गयी हैं, 'विष्णुपञ्जरस्तोत्र' कहा गया है, जो जीवोंके लिये अत्यन्त कल्याणकारी है। इसके बाद भोग और मोक्षको प्रदान करनेवाले ध्यानयोगका वर्णन हुआ है—

'मैं जगत्का साक्षी, जगत्का नियन्ता और परमानन्दस्वरूप हूँ। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन सभी अवस्थाओंमें जगत्का साक्षी होते हुए भी मैं इन अवस्थाओंसे रहित हूँ, मैं ही तुरीय ब्रह्म और विधाता हूँ। मैं दृक्स्वरूप अर्थात् समस्त प्रपञ्चका द्रष्टा, दृश्य एवं दृष्टि हूँ। मैं ही निर्गुण, मुक्त, बुद्ध, शुद्ध-प्रबुद्ध, अजर, सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप एवं शिवस्वरूप परमात्मा हूँ।' इस प्रकार जो विद्वान् इन परमपद परमेश्वरका ध्यान करते हैं, वे निश्चय ही ईश्वरका साक्य प्राप्त कर लेते हैं। यह स्वयं श्रीहरि भूतभावन भगवान् शङ्करसे कहते हैं कि हे सुव्रत शङ्कर! आपसे ही इस ध्यानयोगकी चर्चा मैंने की है। जो व्यक्ति सदैव इस ध्यानयोगका पाठ (मनन-चिन्तन) करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीरुद्र पूछते हैं—हे प्रभो! मनुष्य किस मन्त्रका जप करके इस अथाह संसार-सागरसे पार हो सकता



है? इसपर श्रीहरिने उत्तर दिया कि परब्रह्म परमात्मा, नित्य परमेश्वर भगवान् विष्णुकी सहस्रनामसे स्तुति करनेपर मनुष्य भवसागरको पार कर सकता है। इस क्रममें समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाले 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' को भगवान्ने उन्हें सुनाया। यह विष्णुसहस्रनाम इस पुराणमें प्रस्तुत है, जो अन्य विष्णुसहस्रनामोंसे भिन्न है।

भगवान् विष्णुकी आराधनाके बाद भगवान् सूर्यकी पूजाका भी वर्णन मिलता है। तदनन्तर जीवोंका उद्धार करनेवाली पुण्यप्रदायिनी सर्वदेवमय मृत्युञ्जयपूजाका निरूपण हुआ है तथा मृत्युञ्जयजपकी महिमा भी प्रस्तुत की गयी है। यह मन्त्र मृत्यु और दरिद्रताका मर्दन करनेवाला है तथा शिव, विष्णु, सूर्य आदि सभी देवोंका कारणभूत है 'ॐ जुं सः'—यह महामन्त्र 'अमृतेश' के नामसे कहा जाता है। इस मन्त्रका जप करनेसे प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता और मृत्युरहित हो जाता है। अर्थात् मृत्युके समान होनेवाले उसके कष्ट दूर हो जाते हैं।

भगवान् मृत्युञ्जय श्वेतकमलके ऊपर बैठे हुए वरदहस्त तथा अभयमुद्रा धारण किये रहते हैं। तात्पर्य यह है कि उनके एक हाथमें अभयमुद्रा है और एक हाथमें वरदमुद्रा। दो हाथोंमें अमृतकलश है। इस रूपमें अमृतेशका ध्यान करनेके साथ ही भगवान्के वायाङ्गमें स्थित अमृतधाषिणी अमृतादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। देवीके दायें हाथमें कलश और बायें हाथमें कमल मुशोभित रहता है।

इस महापुराणमें प्राणेश्वरी विद्याका निरूपण हुआ है। सर्पोंके विष हरनेके उपाय तथा दुष्ट उपद्रवोंको दूर करनेके मन्त्र दिये गये हैं। पञ्चवक्त्रपूजन, शिवाचन-विधि, भगवती त्रिपुरा तथा गणेश आदि देवोंकी पूजाविधि प्रस्तुत की गयी है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली श्रीगोपासकी तथा भगवान् श्रीधरविष्णुकी पूजाका वर्णन भी किया गया है। इसके साथ ही श्रीधरविष्णुका ध्यान तथा उनकी स्तुति प्रस्तुत की गयी है। पञ्चतत्त्वाचन-विधि, सुदर्शनचक्र-पूजाविधि, भगवान् हयग्रीवके पूजनकी विधि, देवी दुर्गाका स्वरूप, सूर्यध्यान तथा माहेश्वरीपूजन-विधि प्रस्तुत की गयी है।

तदनन्तर ब्रह्ममूर्तिके ध्यानका निरूपण किया गया है। 'हृदयकमलकी कर्णिकाके मध्य विराजमान रहनेवाले, शंख, चक्र, गदा और कमलसे सुशोभित तथा श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, वनमाला एवं लक्ष्मीसे विभूषित नित्य-

जुद्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न, सत्य, परमानन्दस्वरूप, आत्मस्वरूप, परब्रह्म तथा परमज्योति स्वरूप हैं, ऐसे वे परमेश्वर ध्यानके योग्य हैं तथा पूजनीय हैं।' मैं भी वही हूँ—ऐसा समझना चाहिये।

इस प्रकार आत्मस्वरूप नारायणका यम-नियम इत्यादि योगके साधनोंसे एकाग्रचित होकर जो ध्यान करता है, वह मनोऽभिलषित इच्छाओंको प्राप्तकर देवस्वरूप हो जाता है। यदि निष्काम होकर उन हरिकी मूर्तिका ध्यान और स्तवन करे तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

इसके बाद विविध शालग्राम शिलाओंके लक्षण, वास्तुमण्डल-पूजाकी विधि तथा प्रासाद-लक्षण (वास्तुकी दृष्टिसे) प्रस्तुत किये गये हैं। देवप्रतिष्ठाकी भी सामान्य विधि बतायी गयी है। वर्ण एवं आश्रम-धर्मोंका निरूपण किया गया है। इसके साथ ही सदाचार एवं शौचाचारकी महत्ता बतायी गयी है। वर्णाश्रम-धर्मका निरूपण करते हुए ब्रह्माजीने व्यासजीसे कहा कि परमात्मप्रभु परमेश्वरकी पूजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्मके अनुसार करनी चाहिये। उनके द्वारा पृथक्-पृथक् रूपसे ही उनके धर्मोंका वर्णन किया गया है।

यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और अध्यापन—ये छः कर्म ब्राह्मणके धर्म बताये गये। दान, अध्ययन तथा यज्ञ—ये क्षत्रिय तथा वैश्यके साधारण धर्म हैं। शस्त्रोपजीवी होना तथा प्राणियोंकी रक्षा करना क्षत्रियोंका विशेष धर्म है। पशुपालन, कृषिकर्म तथा व्यापार—ये वैश्यवर्णकी वृत्ति कही गयी है। द्विजशिक्षा सेवा शूद्रका कर्तव्य माना गया है। शिल्पकारी उनकी आजीविका कही गयी है।

इसी प्रकार आश्रम-धर्मका भी वर्णन हुआ है। भिक्षाचरण, गुरुशुश्रूषा, स्वाध्याय तथा अग्निकार्य—ये ब्रह्मचारियोंके धर्म बताये गये हैं।

अग्निहोत्र-धर्मका पालन तथा कहे गये अपने विहित कर्मोंके अनुसार जीविकोपार्जन, पर्वरात्रिको छोड़कर अन्य रात्रियोंमें धर्मपत्नीका सहवास, देवता, पितर तथा अतिथिगणोंकी विधिवत् पूजामें संलग्न रहना और श्रुतियों एवं स्मृतियोंमें कहे गये धर्मोंके अनुसार अर्घोपार्जन करना—ये गृहस्थोंके धर्म कहे गये हैं। इसके साथ ही संस्कारोंका भी वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्तके संस्कार बताये गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालकोंके

\*\*\*\*\*

लिये उपनयन-संस्कारकी अनिवार्यताका दिग्दर्शन कराया गया है।

गृहस्थाश्रमके धर्ममें स्त्रियोंके कर्तव्यका भी विवेचन हुआ है। स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये, यही उनका परम धर्म है। जिस घरमें पति-पत्नीके मध्य किसी प्रकारका विरोध नहीं होता, उस घरमें धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी अभिवृद्धि होती है। जो स्त्री पतिकी मृत्युके पश्चात् अथवा उसके जीवित रहते हुए अन्य पुरुषका आश्रय नहीं लेती, वह इस लोकमें यत्न प्राप्त करती है और अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे परलोकमें जाकर पारलौकिक साहचर्यमें आनन्द प्राप्त करती है।

अग्निहोत्रका पालन, पृथ्वीपर तपन, भृगुधर्मका धारण, वनमें निवास, दूध, मूल, फल तथा निवारका भक्षण, निषिद्ध कर्मका परित्याग, त्रिकाल-संध्या, ब्राह्मचर्यका पालन और देवता तथा अतिथिकी पूजा—यह पापप्रस्थीका धर्म है।

सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग, भिक्षासे प्राप्त अन्नका भोजन, युद्धकी छायामें निवास, अपरिग्रह, अद्रोह, सभी प्राणियोंमें समानभाव, प्रिय तथा अप्रियकी प्राप्तिमें एवं सुख और दुःखमें समान स्थिति, शरीरकी बाह्य और अन्तरिक शुद्धता, वाणीमें संयम, परमात्माका ध्यान, सभी इन्द्रियोंका निग्रह, धारणा तथा ध्यानमें तत्परता और भाव-शुद्धि—ये सभी परिव्राजक या संन्यासीके धर्म कहे गये हैं।

'इसके साथ ही अहिंसा, प्रिय और सत्य तपन, पवित्रता, क्षमा तथा दया—सभी आश्रमों और वर्णोंका सामान्य धर्म कहा गया है—'

अहिंसा मुनता वाणी सत्यश्रीचे क्षमा दया।

वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते॥

( १. २२३. २२ )

सदाचार और शौचाचारका निरूपण करते हुए सूतजी शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)—का भली प्रकारसे अध्ययन करके श्रुति-प्रतिपादित धर्मका पालन करना चाहिये, क्योंकि श्रुति ही सब कर्मोंका मूल है। श्रुतिमें कहा गया धर्म परम धर्म है। स्मृति और शास्त्रसे प्रतिपादित धर्म अपर धर्म है। यदि उपलब्ध श्रुतियोंमें कोई कर्म ज्ञात नहीं हो रहा है तो उसको स्मृतिशास्त्रके अनुसार जानकर करना चाहिये। क्योंकि स्मृतिशास्त्र भी श्रुतिमूलक होनेके कारण ही मर्मके बोधमें प्रमाण माने जाते हैं। कर्ममार्गका दर्शन करानेके लिये श्रुति

और स्मृति ये नेत्रस्वरूप हैं। यदि इन दोनोंसे दिशा-निर्देश नहीं मिल पाता है तो सदाचार (शिष्टाचार)—धर्मका पालन करना चाहिये। इस प्रकार श्रुति, स्मृति और शिष्टाचारसे प्राप्त धर्म—ये तीन प्रकारके सनातन धर्म हैं।

सत्य, दान, दया, निलोभता, विद्या, यज्ञ, पूजा और इन्द्रिय-दमन—ये आठ शिष्टाचारके पवित्र लक्षण कहे गये हैं। यहाँ प्रातःकाल जगनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक पालन करने योग्य गृहस्थके धर्मका वर्णन भी हुआ है। गृहस्थको ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्याग करके धर्म और अर्थका भलीभाँति चिन्तन करना चाहिये। शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर दन्तधावन, स्नान करके समाहितचित्त होकर संध्योपासन, तर्पण, देवार्चन आदि नित्यक्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। शौचादि क्रियाओंकी शुद्धिका विस्तृत वर्णन यहाँ हुआ है।

शुद्धि दो प्रकारकी है—पहली बाह्य तथा दूसरी आभ्यन्तरिक। मिट्टी तथा जलसे की जानेवाली बाह्य शुद्धि और भावोंकी शुद्धि ही आभ्यन्तरिक शुद्धि मानी गयी है। आचमनकी शुद्धिका प्रमुख अङ्ग माना गया है।

दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारका हित सम्पादन होनेके कारण प्रातःकालके स्नानकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। शरीर अत्यन्त मलिन है। उसमें स्थित नव छिद्रोंसे सदैव मल निकलता ही रहता है। अतः प्रातःकालका स्नान शरीरकी शुद्धिका हेतु, मनको प्रसन्न रखनेवाला तथा रूप और सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला है। यह शोक और दुःखका विनाशक है। गङ्गास्नानकी विशेष महिमा है। गङ्गास्नानसे सर्वविध पापोंका नाश होता है।

सास्रोजमें तीन करोड़ मंदेह नामक राक्षस माने गये हैं। वे दुरात्मा राक्षस सदैव प्रातःकाल उदित हो रहे सूर्यदेवकी छा जानेकी इच्छा करते हैं। अतः सूर्योदयसे पूर्व स्नान करके संध्योपासनकर्म नहीं करना सूर्यदेवका ही घातक है। जो लोग यथाविधि स्नानकर यथाधिकार संध्योपासन करते हैं, वे मन्त्रसे पवित्र किये गये अनलरूपी अर्घ्य (जल)—से उन मंदेह नामक राक्षसोंको जला देते हैं। दिन और रातका जो संधिकाल है, वही संध्याकाल (४८ मिनट) होता है। यह संध्याकाल सूर्योदयसे पूर्व दो घड़ीपर्यन्त रहता है, जो उपासक प्रातःकाल नित्य 'गायत्रीमन्त्र'का जप करता है, वह कमलपत्रकी भाँति पापसे संलिप्त नहीं होता।

इस संसारमें आठ मङ्गल हैं—ब्राह्मण, गौ, अग्नि,

हिरण्य (सोना), घृत, सूर्य, जल और राजा। सदैव इनका दर्शन और पूजन करना चाहिये तथा यथासाध्य अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये।

‘माता, पिता, गुरु, भ्राता, प्रजा, दीन, दुःखी, अश्वितजन, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये पोष्यवर्ग कहे गये हैं। पोष्यवर्गका भरण-पोषण करना स्वर्गका प्रशस्त साधन है। अतः मनुष्यको पोष्यवर्गका पालन-पोषण प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें उसी व्यक्तिका जीवन श्रेष्ठ है, जो बहुतोंके जीवनका साधक बनता है अर्थात् बहुतोंका पालन-पोषण करता है। जो मात्र अपने भरण-पोषणमें लगे रहते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मरे हुएके समान हैं; क्योंकि अपना पेट कुत्ता भी पालता है’—

माता पिता गुरुभ्राता प्रजा दीनाः समाश्रिताः ॥  
अभ्यागतेऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥  
भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥  
भरणं पोष्यवर्गस्य तस्याद् यत्नेन कारयेत् ॥  
स जीवति वाह्येकी बहुभिर्यौपजीव्यति ॥  
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्योदारम्भताः ॥  
स्वकीयोदारपुर्तिष्ठ कुक्कुरस्यापि विद्यते ॥

( १। २१३। ७५—८२ )

व्यवहारमें अर्थका अत्यधिक महत्त्व है। अर्थ उन्हें ही कहते हैं जो हमारे सभी कार्योंकी सम्पन्नतामें अनिवार्य रूपसे उपयोगी हों। इसी दृष्टिसे सभी राजोंकी निधि पृथ्वी, धान्य, पशु, स्त्रियाँ आदि अर्थ माने जाते हैं। इस तरह अर्थका महत्त्व होनेपर भी इसके उपार्जनमें संयम आवश्यक है। शास्त्रसम्मत विधिसे अर्जित धनके लाभांशसे सभी लोगोंको पितृगण, देवगण तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। ये संतुष्ट होकर धनोपार्जनमें अज्ञानवश हुए दोषको निःसंदेह शान्त कर देते हैं।

विद्या, शिल्प, वेतन, सेवा, गोरक्षा, व्यापार, कृषि, वृत्ति, शिक्षा और व्याज—ये दस जीवनयापनके साधन हैं।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मत्तापकर्षण, मार्जन, आचमन और अवगाहन—ये आठ प्रकारके स्नान बताये गये हैं। प्रातःकाल पूजा-पाठ आदि धार्मिक कृत्यके लिये जो स्नान किया जाता है उसीको नित्य स्नान कहा गया है। चाण्डाल, शव, विष्टा तथा रजस्वला आदिके स्पर्शके बाद जो स्नान किया जाता है, वह नैमित्तिक कहलाता है। पुण्य आदि नक्षत्रोंमें जो स्नान किया जाता है, उसे काम्य स्नान कहते हैं।

इन स्नानोंको तोर्यका अभाव होनेपर उष्ण जल अथवा किसी प्रकार प्राप्त कृत्रिम जलसे सम्पन्न कर लेना चाहिये।

भूमिसे निकला जल पवित्र होता है, इस जलकी अपेक्षा पर्वतसे निकलनेवाले झरनेका जल पवित्र होता है। इससे भी बढ़कर पवित्र जल सरोवरका है। उसकी अपेक्षा नदीका जल पवित्र है, नदीके जलसे तीर्थजल श्रेष्ठ है। ‘इन सभी जलोंकी अपेक्षा गङ्गाका जल परम पवित्र है। गङ्गाके श्रेष्ठतम जलसे जीवनवर्धन किये गये पापोंका विनाश तीव्र हो जाता है’—

तीर्थतोयं ततः पुण्यं गङ्गं पुण्यं तु सर्वतः ॥

गङ्गं पयः पुनात्याशु पापमापरणान्तिकम् ॥

( १। २१३। ११७—११८ )

मनुष्य आचार (सदाचार-जीवाचार)—से ही सब कुछ प्राप्त कर लेता है। संध्या, स्नान, जप, होम, देव और अतिथिपूजन—इन षट्कर्मोंकी प्रतिदिन करना कर्तव्य है। पञ्चमहायज्ञोंमें—अध्ययन और अध्यापन ब्राह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देवयज्ञ, बलिबैधदेव भूतयज्ञ तथा अतिथिका पूजन मनुष्ययज्ञ हैं। गृहस्थकी दिनका यथायोग्य पाँच विभाग करके पितृगण, देवगणकी अर्चा और मानवीधित कार्य करना चाहिये। जो मनुष्य अन्नदान करके सर्वप्रथम ब्राह्मणको भोजन कराकर अपने मित्रगणोंके साथ स्वयं भोजन करता है, वह देहत्यागके बाद स्वर्गलोकके सुखका अधिकारी बन जाता है।

अभक्ष्यभक्षण (शास्त्रनिषिद्ध भोजन), चोरी और अगम्यागमन करनेसे व्यक्तिका पतन हो जाता है। सदाचार एवं धर्मका पालन करनेवाला अधिकारी मनुष्य साक्षात् कैशव (विष्णु) ही माना गया है।

कलियुगमें दानधर्मका विशेष महत्त्व है। सत्याग्रमें बढ़ापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्य वस्तु)—का प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है। इस लोकमें यह दान भोग तथा परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक अर्थका उपार्जन करे; क्योंकि न्यायपूर्वक उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है।

जलदानसे शुद्धि, अन्नदानसे अक्षय्य सुख, तिलदानसे अभीष्ट संतान, दीपदानसे उत्तमनेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलषित वस्तु, सुवर्णदानसे दीर्घ आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है। वस्त्र प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अश्वदान करनेसे अश्विनीकुमारके लोककी प्राप्ति होती है। वृषभका दान देनेसे विपुल सम्पत्ति

और गोदानसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

यान और शय्याका दान करनेपर भार्या, भयभोतकी अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्यदानसे शश्वत अविनाशी सुख तथा वेदाध्यापन (वेदके दान)—से ब्रह्मका सांनिध्य-लाभ होता है। गायको घास देनेसे पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईंधनके लिये काष्ठ आदिका दान करनेसे व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंके रोग-शान्तिके लिये औषधि, तेल आदि पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित, सुखी और दीर्घायु हो जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे अपने लिये संसार या धर्म जो वस्तु सर्वाधिक प्रिय है, उस वस्तुका दान गुप्तवान् ब्राह्मणको करना चाहिये।

दानधर्मसे बढ़कर कुछ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है। गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवोंको दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवश दूसरोंको रोकता है, वह पापी तिर्यक् (पक्षी)—की योगिको प्राप्त करता है।

दानधर्मके बाद प्रायश्चित्तका निरूपण किया गया है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, स्पर्शकी चोरी, और गुरुपत्नीगमन—ये चार महापाप कहे गये हैं। इन सभीका साथ करनेवाला पाँचवाँ महापातकी होता है। गोहत्या आदि जो अन्य पाप हैं, वे उपपातकर्म माने गये हैं। इन सभी पापोंका प्रायश्चित्त-विधान यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इसके अनन्तर भारतवर्षका वर्णन, तीर्थोंका वर्णन और उनकी महिमा प्रस्तुत की गयी है। ज्योतिषचक्रमें वर्णित नक्षत्र, उनके देवता एवं कतिपय शुभ-अशुभ योगों तथा मुहूर्तोंका वर्णन, ग्रहदश, यात्रा, शकुन, छींकका फल, ग्रहोंके शुभ एवं अशुभ स्थान तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलका विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। इसी प्रकार लग्न-फल, राशियोंके चर-स्थिर आदि भेद, ग्रहोंका स्वभाव तथा सप्त वारोंमें किये जाने योग्य प्रशस्त कार्यका भी निरूपण किया गया है। सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार स्त्री-पुरुषके शुभाशुभ लक्षण, मस्तक एवं हस्तेखासे आयुका परिज्ञान भी यहाँ कराया गया है। स्वरोदय विज्ञानका निरूपण भी हुआ है। तिथि, नक्षत्र आदि व्रतोंका निरूपण, चातुर्मास्यव्रतका निरूपण, शिवरात्रिव्रत-कथा तथा व्रत-विधान, एकादशी-माहात्म्य आदि प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त सूर्यवंश-चन्द्रवंशका वर्णन, भविष्यके राजवंशका वर्णन

किया गया है। रत्नोंके प्रादुर्भावका आख्यान, वज्र (होरे)—की परीक्षा, गच्छाण, मरकतमणि, इन्द्रनीलमणि, वैदूर्यमणि, पुष्करगमणि, विद्रुममणि, स्फटिक, रुधिराक्षरत्न, पुलक, कर्कतनर्मणि, भीष्मकमणि तथा मुक्ता आदि रत्नोंके विविध भेद, लक्षण और परीक्षण-विधि बताया गयी है।

गङ्गा आदि विविध तीर्थों—प्रयाग, चारणसी, कुरुक्षेत्र, द्वारका, केदार, बदरिकाश्रम, श्वेतद्वीप, मायापुरी (हरिद्वार), नैमिषारण्य, पुष्कर, अयोध्या, चित्रकुट, काशीपुरी, तुंगभद्रा, श्रोतैल, सेतुबन्ध-रमेश्वर, अमरकण्टक, उज्जयिनी, मधुरापुरी आदि स्थानोंको महातीर्थ कहा गया है। इन पवित्र तीर्थस्थलोंमें किया गया स्नान, दान, जप, पूजा, श्राद्ध तथा पिण्डदान आदि अक्षय होता है।

गयातीर्थका माहात्म्य तथा गयाक्षेत्रमें श्राद्धादि करनेका फल सविस्तार समारोहपूर्वक यहाँ प्रस्तुत हुआ है। गय नामक असुरकी उत्कट तपस्यासे संतप्त देवगणोंकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णुकी गदासे वह असुर मारा गया। उस गयासुरके नामपर ही गयातीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यहाँ गदाधर भगवान् विष्णु मुख्यदेवके रूपमें अवस्थित हैं।

गयामें श्राद्ध करनेसे पञ्चमहापापोंकी निवृत्ति तो होती ही है, इसके साथ ही अन्य सम्पूर्ण पापोंका भी विनाश होता है। जिनकी संस्काररहित दशमं मृत्यु हो जाती है अथवा जो मनुष्य पशु या खोरद्वारा मारे जाते हैं। जिनकी मृत्यु सर्पके काटनेसे होती है, वे सभी गदाश्राद्धके पुण्यसे उन्मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं। गयामें पिण्डदान करनेवालेसे पितरोंको परम गति प्राप्त होती है।

गयातीर्थमें पितरोंके लिये पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, सी करोड़ वर्षोंमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। यहाँतक कहा गया है कि गयागमनमात्रसे ही व्यक्ति पितृश्रावसे मुक्त हो जाता है—'गयागमनमात्रेण पितृश्रावमनृणं भवेत्।' कहते हैं गयाक्षेत्रमें भगवान् विष्णु पितृदेवताके रूपमें विराजमान रहते हैं। पुण्डरीकाक्ष उन भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेपर मनुष्य अपने तीनों श्रेणोंसे मुक्त हो जाता है।

गयाक्षेत्रमें कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँपर तीर्थ नहीं है। पाँच कोशके क्षेत्रफलमें स्थित गयाक्षेत्रमें यहाँ-तहाँ भी पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अक्षयफलको प्राप्तकर अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

प्राचीनकालमें रुचि नामक प्रजापति संसारके माया-



मोहको छोड़कर गृहस्थादिक आश्रमोंके नियमोंसे रहित हो इधर-उधर निरहंकार भावसे अकेले हो विचरण करने लगे। यह देखकर उनके पितृजनोंने उन्हें गृहस्थाश्रमको महिमा बताते हुए पाणिग्रहण-संस्कारको स्वर्ण एवं मोक्षप्रदिका हेतु बताया। क्योंकि गृहस्थ समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और याचकोंकी पूजा करके उत्तम लोकको प्राप्त करता है। रुचिने भी पितरोंसे अपनी संकाएँ प्रस्तुत कीं। इसका पितरोंने समुचित उत्तर देते हुए गृहस्थाश्रमके धर्मपालनके लिये रुचिसे आग्रह किया। रुचि भी दुविधामें आ गये और उन्होंने तपस्याद्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया। ब्रह्माके निर्देशसे रुचि रुचिने नदीके एकान्त तटपर पितरोंका तर्पणकर उन्हें संतुष्ट किया और पितरोंको स्तुतियोंसे आराधना की। पितृजनोंने संतुष्ट हो प्रकट होकर रुचिको मनोरमा पत्नी तथा पुत्रादिकी प्राप्ति करनेका वरदान दिया और यह भी कहा कि जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तुतिसे हम पितरोंको संतुष्ट करेंगे, उससे प्रसन्न होकर हम लोग उसे उत्तम भोग, आत्मविषयक उत्तम ज्ञान, अमृत, आरोग्य तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करेंगे। अतः कामनाओंकी पूर्ति चाहनेवाले ब्रह्मास्तुओंको निरन्तर इस स्तोत्रसे पितरोंकी स्तुति करनी चाहिये।

तदनन्तर द्रव्यशुद्धि एवं कर्मविपाक, प्रायश्चित्त-विधान—सांतपन, कृच्छ्र, पराक तथा चान्द्रायणादि व्रतोंके विविध स्वरूपोंको दर्शाया गया है।

इसके साथ ही ऋषि-महर्षि तथा देवताओंद्वारा प्रतिपादित नीतिशास्त्रका विवेचन किया गया है, जो सभीके लिये हितकर तथा पुण्य, आयु एवं स्वर्गादिको प्रदान करनेवाला है।

जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ-चतुष्टयकी सिद्धि चाहता है, उसे सदैव सम्प्रजनोंकी ही संगति करनी चाहिये। दुर्जनोंके साथ रहनेसे इस लोक तथा परलोकमें हित सम्भव नहीं है।

दूसरेकी निन्दा, दूसरेका धनग्रहण, पक्ष्ये स्त्रियोंके साथ परिहास तथा पक्ष्ये घरमें निवास कभी नहीं करना चाहिये।

'मनुष्यको दुर्जनोंके संगका परित्यागकर साधुजनोंकी संगति करनी चाहिये और दिन-रात पुण्यका संचय करते हुए नित्य अपनी अनित्यताकी स्मरण रखना चाहिये'—

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।

कुठ पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यतम्॥

(१।१०८।२६)

'नरकमें निवास करना अच्छा है, किंतु दुश्चरित्रके घरमें वास करना उचित नहीं है। नरकवासके कारण पाप विनष्ट हो जाते हैं, किंतु दुश्चरित्रके घरमें निवास करनेसे पाप विनष्ट नहीं होते'—

यं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे।

नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान् निवर्तते॥

(१।१०९।३)

जो बाल्यावस्थामें विद्याध्ययन नहीं करते हैं, फिर युवावस्थामें कामातुर होकर यौवन तथा धनको नष्ट कर देते हैं, वे वृद्धावस्थामें चिन्तासे जलते हुए शिशिरकालमें कुहासेसे झुलसनेवाले कमलके समान संतप्त जीवन व्यतीत करते हैं।

इसके बाद राजनीतिका वर्णन किया गया है। राजाको सत्यपरायण तथा धर्मपरायण होना चाहिये। जो धार्मिक राजा गौ-ब्राह्मणके हितमें रत रहता है, वही जितेन्द्रिय राजा प्रजाके पालनमें समर्थ हो सकता है। 'जो राजा शास्त्रसम्मत तथा मुक्तिपुक्त सिद्धान्तोंका उल्लंघन करता है, वह निश्चित ही इस लोक तथा परलोक दोनोंमें नष्ट हो जाता है'—

संघयेच्छासक्युक्तानि हेतुयुक्तानि यापि च।

स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च॥

(१।१११।२२)

'सत्यके पालनसे धर्मकी रक्षा होती है, सदा अभ्यास करनेसे विद्याकी रक्षा होती है, मार्जनके द्वारा पात्रकी रक्षा होती है और शीलके द्वारा कुलकी रक्षा होती है'—

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।

मुञ्जया रक्ष्यते पात्रं कुलेन शीलैव रक्ष्यते॥

(१।११३।१०)

'सत्यपालनरूपी शुचिता, मनःशुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, सभी प्राणियोंमें दया और जलसे प्रक्षालन—ये पाँच प्रकारके शौच माने गये हैं। जिसमें सत्यपालनकी शुचिता है, उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। जो मनुष्य सत्य-सम्भाषण ही करता है, वह अधमेधयज्ञ करनेवाले व्यक्तिके बड़कर है'—

सत्यशौचं मनःशौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

सर्वभूते दयाशौचं जलशौचं च पञ्चमम्॥

यस्य सत्यं च शौचं च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः।

सत्यं हि वचनं यस्य सोऽधमेध्यादिशिष्यते॥

(१।११३।३८-३९)

जिस व्यक्तिने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंसे युक्त शब्दका उच्चारण कर लिया है, वह अपने कटिप्रदेशमें परिकर (फेंटा) बाँधकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तैयार रहता है। ऐसा मनुष्य मोक्षका अधिकारी होता है।

इस प्रकार मनुष्यको उन्नतिके पथपर ले जानेवाले नीतिसे युक्त कल्याणकारी वचनोंका संग्रह इस महापुराणमें प्राप्त होता है, जिसे ग्रहणकर मानव शश्वत सुखानुभूतिसे लाभान्वित हो सकता है।

तदनन्तर भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंकी कथा तथा पतिव्रता-माहात्म्यमें ब्राह्मणपत्नी, अनसूया एवं भगवतां सीताके पातिव्रतका आख्यान मिलता है। रामचरितवर्णन (रामायणकथा), हरिश्चन्द्रवर्णन (श्रीकृष्णकथा) तथा महाभारतकी कथा और बुद्ध आदि अवतारोंकी कथाका वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है।

इसके बाद आयुर्वेदका प्रकरण प्रारम्भ होता है। भगवान्‌ धन्वन्तरिप्रोक्त सम्पूर्ण आयुर्वेदको अष्टाङ्ग आयुर्वेद कहा गया है। यह अथर्ववेदका उपवेद है। शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुक—इस प्रकारसे ज्योतिषी तीन प्रकारकी कही गयी हैं।

प्रस्तुत गरुडपुराणमें मुख्यरूपसे निदान-स्थान, चिकित्सा-स्थान, कल्प-स्थान [विषीषधिज्ञान तथा चिकित्सा] और उत्तरतन्त्रमें कौमार्यतन्त्र एवं भूतविद्या आदि विषयोंका ही निरूपण हुआ है। साथ ही गयायुर्वेद, अश्व-चिकित्सा, गज-चिकित्सा आदिका भी संक्षेपमें निर्देश हुआ है।

गरुडपुराणके आयुर्वेद-प्रकरणके प्रथम बीस अध्यायोंमें निदान-स्थानके विषय वर्णित हैं। किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ है, रोगके लक्षण क्या हैं? जिससे रोगका निर्णय हो सके इत्यादि विषय निदान शब्दसे अभिप्रेत हैं। इसमें प्रारम्भमें ज्वर, रक्त, पित्त, श्वास, राजयक्ष्मा, मदात्पय, अर्श, अतिसार, मूत्राघात, प्रमेह, गुल्म, पाण्डु, कुष्ठ, वातदोष आदि रोगोंके उत्पत्तिजनक कारणों तथा उनके लक्षणोंका वर्णन हुआ है। गरुडपुराणका यह वर्णन आचार्य वाग्भट्टके अष्टाङ्गहृदयसे बहुत अंशोंमें साम्य रखता है। इसके बाद लगभग चालीस अध्यायोंमें विभिन्न रोगोंकी चिकित्साहेतु औषधियोंका निरूपण हुआ है। अमुक रोग होनेपर अमुक-अमुक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। इनके निर्माणकी तथा अनुपान आदिकी विधि बतायी गयी है। एक ही रोगके

लिये अनेक औषधिक योगोंको भी बताया गया है।

आयुर्वेदकी औषधियों और वनस्पतियोंका वर्णन जो भगवान्‌ श्रीहरिने शिवजीसे किया था, उसे सुनानेके बाद सूतजीने शौनकादि ऋषियोंको कुमार अर्थात् भगवान्‌ स्कन्दके द्वारा कात्यायनसे कहे गये व्याकरणशास्त्रको सुनाया। यह व्याकरण सिद्ध शब्दोंके ज्ञान एवं बालकोंकी व्युत्पत्ति प्रक्रियाको बढ़ानेमें सहायक है। इसके अनन्तर सूतजीने अल्प बुद्धिवालोंके लिये विशिष्ट बुद्धिकी प्राप्ति-हेतु मात्रा और वर्णके भेदके अनुसार छन्द-विधानको प्रस्तुत किया है।

### कर्मविपाकका वर्णन

जगत्सृष्टि और प्रलय आदिकी चक्रगतिको जाननेवाले विद्वान्‌ यदि आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीन सांसारिक तार्थोंको जानकर ज्ञान और वैराग्यका मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तो आत्यन्तिक लय (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।

सूतजी कर्मविपाकका वर्णन करते हुए कहते हैं—जीव पापकर्म करनेके कारण नरक-लोकमें जाता है और पुण्यकर्मके कारण स्वर्ग। अपने उन पाप-पुण्योंके प्रभावसे नरक तथा स्वर्गमें गया प्राणी पुनः नरक और स्वर्गसे लौटकर स्थिरोंके गर्भमें जाता है। गर्भमें विकसित होता हुआ यह जीव नौ मासतक अधोमुख स्थित रहकर दसवें मासमें जन्म लेता है। यह जीव बाल्यावस्था, कौमार्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है। इसके बाद पुनः यह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह जीव इस संसारचक्रमें बटीपन्त्रके समान घूमता रहता है। जीव नरक-भोग करनेके पश्चात् पापयोनियोंमें जन्म लेता है। यहाँ पापयोनियोंका वर्णन सविस्तार किया गया है—मित्रका अपमान करनेवाला गधेकी योनिमें जन्म लेता है। माता-पिताको कष्ट पहुँचानेवाले प्राणीको कछुवेकी योनिमें जाना पड़ता है। जो मनुष्य अपने स्वामीका विश्वसनीय बनकर उसको छलकर जीवन-यापन करता है वह व्याधोहर्मे कैसे बंदरकी योनिमें जाता है। धरोहर रूपमें अपने पास रखे हुए पतये धनका अपहरण करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है, नरकसे निकलनेके बाद वह कृमियोनिमें जन्म लेता है। जो मनुष्य विश्वासघाती होता है, वह मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है। यज्ञ, दान तथा विवाहादिमें विघ्न डालनेवाले

मनुष्यको कुम्भियोनि प्राप्त होती है।

देवता, पितर और ब्राह्मणोंको बिना भोजन आदि दिये जो मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है, वह नरकको जाता है। वहाँसे मुक्त होकर वह काकपोनिको प्राप्त करता है। कृतघ्न व्यक्ति कृमि, कीट, पतंग तथा बिचूको योनियोंमें प्रमण करता है।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरेकी मर्यादाको नष्ट करना, निष्ठुरता, अत्यन्त युषित व्यवहारमें अभिरुचि, परस्त्रीके साथ सहवास करना, पराये धनका अपहरण करना, अपवित्र रहना, देवोंकी निन्दा, मर्यादाके बन्धनको तोड़कर अशुद्ध व्यवहार करना, कृपणता तथा मनुष्योंका हनन—यह सब नरक भोगकर जन्म लिये हुए मनुष्योंका लक्षण कहा गया है।

प्राणियोंके प्रति दया, सद्भावपूर्ण वार्तालाप, परलोकके लिये सांस्तिक अनुष्ठान, सत्कार्योंका निष्पादन, सत्यधर्मका पालन, दूसरेका हितचिन्तन, मुक्तिकी साधना, वेदोंमें प्रामाण्य-बुद्धि, गुरु-देवर्षि और सिद्धर्षियोंकी सेवा, साधुजनोंद्वारा बताये गये नियमोंका पालन, सक्रियधर्मोंका अनुष्ठान तथा प्राणियोंके साथ मैत्रीभाव—ये स्वर्गसे आवे मनुष्योंके लक्षण हैं।

जो मनुष्य योगशास्त्रद्वारा बताये गये यम-नियम आदि अष्टाङ्गयोगके साधनसे सत् ज्ञानको प्राप्त करता है, वह आत्यन्तिक फल—मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

### महायोगका वर्णन

श्रीसूतजीने यहाँ समस्त अङ्गोंसहित महायोगका वर्णन किया है। यह महायोग मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेका श्रेष्ठतम साधन है।

महामति भगवान् दत्तात्रेयने राजा अलङ्कसे कहा था— हे राजन्! ममता ही दुःखका मूल है और ममताका परित्याग ही दुःखसे निवृत्तिका उपाय है। अहंकार अज्ञानरूपी महातरुका अंकुर है। पापमूलक आपातरमणीय सुख-शान्तिके लिये यह अज्ञानरूपी महातरु पैदा हुआ है। जो लोग ज्ञानरूपी कुल्हाड़ीसे अज्ञानरूप महावृक्षको काट गिराते हैं, वे परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। तदनन्तर ब्रह्मरसको प्राप्त कर उसका भलीभाँति पान करके प्राज्ञपुरुष नित्य सुख एवं परम शान्तिको प्राप्त करते हैं। जो लोग मायापाशसे आवद्ध हैं, वे सभी नित्य-नैमित्तिक हो कार्य करते हैं और उसीमें अन्ततक लगे रहते हैं। इस कारण उन्हें परमात्माका ऐक्य प्राप्त नहीं होता। जो पुनः इस संसारमें जन्म लेते हैं, जो अज्ञानसे मोहित हैं, वे ज्ञानयोग

प्राप्त करके अज्ञानसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद वह जीवमुक्त योगी न कभी मरता है, न दुःखी होता है, न योगी होता है और न संसारके किसी बन्धनसे आवद्ध होता है। न वह पापोंसे मुक्त होता है, न तो उसे नरकयातनाका ही दुःख भोगना पड़ता है और न उसे गर्भवासमें जाना पड़ता है। वह स्वयं अव्यय नारायणस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारकी अनन्य भक्तिसे वह योगी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नारायणको प्राप्त कर लेता है।

ध्यान, पूजा, जप, स्तोत्र, व्रत, यज्ञ और दानके नियमोंका पालन करनेसे मनुष्यके चित्तकी शुद्धि होती है। चित्तशुद्धिसे ज्ञान प्राप्त होता है तथा इससे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति मिलती है।

### भगवद्भक्तिका निरूपण

सूतजी भगवद्भक्तिका निरूपण करते हुए कहते हैं कि प्रभु भक्तिसे जितना संतुष्ट होवे हैं, उतना किसी अन्य साधनसे नहीं। भगवान् हरिकी निरन्तर स्मरण करना मनुष्योंके लिये महान् श्रेयका मूल है। यह पुण्योंकी उत्पत्तिका साधन है और जीवनका मधुर फल है। इसलिये विद्वानोंने प्रभुकी सेवाको भक्तिका बहुत बड़ा साधन कहा है। भगवान् शिलोकीनाथ विष्णुके नाम तथा गुणोंके कीर्तनमें तन्मय होकर जो प्रसन्नताके आँसू बहाते हैं, रोमाञ्चित होकर गद्गद हो उठते हैं, वे ही उनके भक्त हैं। इस संसारमें वही श्रेष्ठ है, वही ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और वही मोक्षको प्राप्त करता है, जो भगवान् हरिकी भक्तिमें तन्मय रहता है। यदि कोई भगवद्भक्त चाण्डाल जातिका है तो वह भी अपनी पवित्र भक्तिकी महिमासे सबको पवित्र कर देता है।

'हे नाथ! आप मुझपर दया करो, मैं आपकी शरणमें हूँ—ऐसा जो प्राणी कहता है, उसको भगवान् हरि अभय कर देते हैं। किसीसे भी उसको भय नहीं होता, यह भगवान्की प्रतिज्ञा है।—

दयां कुत प्रपन्नस्य तवास्मीति च यो वदेत्।

अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरः॥

(१/२२७/११)

जिन मनुष्योंका मन हरिभक्तिमें रमा हुआ है, उनके सभी प्रकारके पापोंका विनाश निश्चित है।

हाथमें पाश लेकर खड़े हुए अपने दूतको देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं कि हे दूत! तুম उन लोगोंको छोड़ देना, जो मधुसूदन विष्णुके भक्त हैं। मैं तो

अन्य दुराचारी पापियोंका स्वामी हैं, भक्तोंके स्वामी स्वयं हरि हैं। श्रीविष्णुने सर्वदा कहा है—यदि दुराचारी मनुष्य भी मुझमें अनन्य भक्ति रखता है तो वह साधु ही है; क्योंकि उसने यह निश्चय कर लिया है कि भगवान्की भक्तिके समान अन्य कुछ भी नहीं है। भगवान् हरिमें जिस मनुष्यकी भक्ति रहती है, उसके लिये धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गका कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि परम सुखरूप मुक्ति उसके हाथमें ही सदा रहती है।

'इस संसाररूपी विषयवृक्षके अमृतके समान दो फल हैं। एक फल है भगवान् केशवकी भक्ति और दूसरा फल है उनके भक्तोंका सत्सङ्ग'—

संसारविषयवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।

कदाचित् केशवे भक्तिस्तद्वैकैर्वा समागमः॥

(१।२२०।३२)

नाम-संकीर्तनकी महिमाका वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं कि मुक्तिके कारणभूत अनादि, अनन्त, अत्र, निष्प, अव्यय और अक्षय भगवान् विष्णुको जो व्यक्ति नमन करता है, वह समस्त संसारके लिये नमस्कारके योग्य हो जाता है।

स्वप्नमें भी भगवान् नारायणका नाम लेनेवाला मनुष्य अपनी अक्षय पापराशिको विनष्ट कर देता है। यदि कोई मनुष्य जाग्रत् अवस्थामें परात्पर प्रभुका नाम लेता है तो फिर उसके विषयमें कहना ही क्या? 'हे कृष्ण! हे अच्युत! हे अनन्त! हे वासुदेव! आपको नमस्कार है।' ऐसा कहकर जो भक्तिभावसे विष्णुको प्रणाम करते हैं, वे घमपुरी नहीं जाते। सूर्यके उदित हो जानेपर जैसे अन्धकार विनष्ट हो जाता है, वैसे ही हरिका नाम-संकीर्तन करनेसे प्राणिपोंके पापसमुद्रका विनाश हो जाता है।

सूतजी कहते हैं कि सभी शास्त्रोंका अवलोकन करके तथा पुनः-पुनः विचार करनेपर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको सदैव नारायणका ध्यान करना चाहिये। इस लोक और परलोकमें प्राणीके लिये जो कुछ दुर्लभ है, जो अपने मनसे भी सोचा नहीं जा सकता, वह बिना मँगि ही ध्यानग्राह करनेसे भगवान् मधुसूदन प्रदान कर देते हैं। पापकर्म करनेवालोंकी शुद्धिका ध्यानके समान अन्य कोई साधन नहीं है। यह ध्यान पुनर्जन्म देनेवाले कारणोंको भस्म करनेवाली योगाग्नि है। भगवान्का भक्त अनासक्त भावसे यदि अपने सभी कर्मोंको विष्णुके चरणोंमें समर्पित करता है तो उसके कर्म साधु हों या असाधु बन्धनकारक नहीं होते।

इसके अनन्तर श्रीसूतजी भगवान् शिवद्वारा कही गयी नारसिंहस्तुति (नृसिंहस्तोत्र)—का वर्णन करते हैं। इसके साथ ही 'कुत्सामृतस्तोत्र' का वर्णन किया गया है, जो देवर्षि नारदके पूछनेपर शिवजीने कहा था। तदनन्तर मार्कण्डेय मुनिके द्वारा कहे गये मृत्युको निवारण करनेवाले 'मृत्यवृक्षस्तोत्र' को कहा गया है। इसके बाद प्राणियोंको सब कुछ प्रदान करनेवाले 'अच्युतस्तोत्र' का वर्णन किया गया है। यह स्तोत्र देवर्षि नारदके पूछनेपर ब्रह्माजीने कहा था। सूतजीने इस स्तोत्रकी अत्यधिक महिमाका वर्णन किया है।

आचारब्रह्मण्डके अन्तमें ब्रह्मज्ञान और षडङ्गयोग, आत्मज्ञान तथा गीतासारका निरूपण किया है।

जीवका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। यह मुक्ति जीवको तभी प्राप्त होती है, जब वह पुरुषष्टक तथा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका परित्याग कर देता है। जीवको मुक्ति प्राप्ति करनेके लिये प्रकृतिसे स्वयंको अलग करना अनिवार्य है। इसके लिये शब्द आदि विषयोंके प्रति अनासक्त होना आवश्यक है।

प्राणापान, जप, प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान—ये छः योगके साधन हैं।

इन्द्रियसंयमसे पापक्षय और पापक्षयसे देवप्रीति सुलभ होती है। देवप्रीति भुक्ति एवं मुक्ति-साधनकी ओर उन्मुख होनेके लिये प्रथम एवं अनिवार्य साधन है।

### आत्मज्ञान

भगवान् नारदजीसे कहते हैं—कर्मोंसे भयबन्धन और ज्ञान होनेसे जीवको संसारसे मुक्ति हो जाती है। इसलिये आत्मज्ञानका आश्रय करना चाहिये। जो आत्मज्ञानसे भिन्न ज्ञान है, उसे अज्ञान कहा जाता है। 'जब हृदयमें स्थित सभी कर्मगण समाप्त हो जाती हैं, तब जीव निस्संदेह जीवनकालमें ही अमृत प्राप्त कर लेता है'—

यदा सर्वं विमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।

तदाऽमृतत्वमाप्नोति जीवनेव न संशयः॥

(१।२३६।१२)

वस्तुमात्रका सार ब्रह्म ही है। तेजोरूप ब्रह्मको एक अखण्ड परम पुण्यरूप समझना चाहिये। जैसे अपनी आत्मा सबको प्रिय है, वैसे ही ब्रह्म सबको प्रिय है; क्योंकि आत्मा ही ब्रह्म है। सभी तत्त्वज्ञ ज्ञानकी सर्वोच्च मानते हैं। इसलिये चित्तका आलम्बन बोधस्वरूप आत्मा ही है। यह आत्मविज्ञान है। यह पूर्ण है। शाश्वत है। जागते-सोते तथा सुषुप्तावस्थामें प्राप्त होनेवाला सुख, पूर्ण सुखरूप



ब्रह्मका ही एक क्षुद्र अंश समझना चाहिये।

हे नारद! मैं अनन्त हूँ, हमारा ज्ञान भी अनन्त है। मैं अपनेमें पूर्ण हूँ। आत्माके द्वारा अनुभूत अन्तःसुख मैं ही हूँ। सारिक, राजस और तामस गुणसे सम्बन्धित भावोंसे मैं नित्य परे रहता हूँ। मैं शुद्ध हूँ। अमृतस्वरूप हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं प्राणियोंके हृदयमें प्रत्यक्षित वह ज्योति हूँ, जो दीपकके समान उनके अज्ञानरूपी अन्धकारको विनष्ट करती रहती है। यही आत्मज्ञानकी स्थिति है।

### गीतासार

गीतासारका वर्णन करते हुए भगवान् नारदजीसे कहते हैं—हे नारद! आत्मकल्याण ही परम कल्याण है। उस आत्मज्ञानसे उत्कृष्ट और कुछ भी नहीं है। आत्मा देहरहित, रूप आदिसे हीन, इन्द्रियोंसे अतीत है। मैं आत्मा हूँ। संसार आदि सम्बन्धके कारण मुझे किसी प्रकारका दुःख नहीं है। जैसे आकाशमें विद्युत् अग्निका प्रकाश होता है, वैसे ही हृदयमें आत्मा (आत्मज्ञान)—के द्वारा आत्मा प्रकाशित होता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ब्रह्महार, ध्यान, धारणा और समाधि—यह अष्टाङ्गयोग मुक्तिके लिये कहा गया है। शरीर, मन और वाणीको सदा सभी प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त रखना चाहिये; क्योंकि 'अहिंसा ही परम धर्म है और उसीसे परम सुख मिलता है'—

'हिंसाविरामको धर्मो हिंसा परमं सुखम्'

(१.२३.१३)

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिये। कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये। प्रिय मिथ्या वचन भी नहीं बोलना चाहिये। चोरीसे या बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है। स्तेय कार्य (चोरी) कभी भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि अस्तेय (चोरी न करना) ही धर्मका साधन है। आपत्तिकालमें भी इच्छापूर्वक द्रव्यका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। यदुच्छालाभ तथा अनायास-प्राप्तसे संतुष्ट होना ही संतोष है। यह संतोष ही सभी प्रकारके सुखका साधन है। मन और इन्द्रियोंको जो एकाग्रता है, वही परम तप है।

कर्म, मन और वाणीसे हरिकी स्तुति, नाम-स्मरण, पूजा आदि कार्य और हरिके प्रति निश्चला भक्तिको ही ईश्वरका चिन्तन कहा जाता है। अपने शरीरगत वायुका नाम प्राण है। उस वायुके निरोधको प्राणायाम कहा जाता है। इन्द्रियों असत् विषयोंमें विचरण करती हैं। उनको विषयोंसे निवृत्त करना चाहिये। मूर्त और अमूर्त ब्रह्मचिन्तनको ध्यान

कहा जाता है। योगारम्भके समय मूर्तिमान् और अमूर्तरूपमें हरिका ध्यान करना चाहिये। तेजोमण्डलके मध्यमें शङ्ख, वक्र, गदा तथा पद्मधारी चतुर्भुज, कौस्तुभचिह्नसे विभूषित, वनमाली, वायुस्वरूप जो ब्रह्म अधिष्ठित है, 'मैं वही हूँ'। इस प्रकार मनका लय करके परमात्मप्रभुको धारण करना ही धारणा है। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' और 'ब्रह्म ही मैं हूँ'—इस प्रकार अहं और ब्रह्म पदार्थका तादात्म्य रूप ही समाधि है।

ब्रह्मगीताका सारतत्त्व वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं—यह सिद्ध है कि परमात्मा है। उसी परमात्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है। जो इस जगत्प्रपञ्चकी भी जन्मदात्री है।

जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थाओंसे परे वह ब्रह्म अपने निर्गुण स्वभावमें ही रहता है। उस क्रियाशील शरीरके सत्य रहने तथा न रहनेकी स्थितिमें भी वह नित्य शुद्ध स्वभाववाला ही है। उसमें कोई विकृति नहीं आती है। मुमुक्षुके अन्तःकरणमें केवल्य अर्थात् उस परमात्माके साक्षात्कारकी अवस्था आ जाती है। अतः मोक्षार्थीको उस स्थितिमें जीवात्माके विषयमें विचारकर उसकी शरीरसे पृथक् समझना चाहिये; क्योंकि आत्मतत्त्वको शरीरसे अतिरिक्त न माननेपर ब्रह्मतत्त्वसे साक्षात्कार करनेमें अनेक बाधाएँ होती हैं। अतः उन बाधाओंको दूर करना अपेक्षित है।

ब्रह्मको नित्य शुद्ध बुद्ध सत्य तथा अद्वैत कहा जाता है। यह आत्मतत्त्व परम ज्योतिःस्वरूप है। यह चिदानन्द है। यह सत्य, ज्ञान और अनन्त है। यही तत्त्वमसि है—ऐसा वेदोंका भी कथन है। 'मैं ब्रह्म हूँ', सांसारिक विषयोंसे जो परे रहता है, मैं वही निर्लिप्त देव हूँ। मैं तो वही अनादि देवदेवेश्वर परब्रह्म ही हूँ, जिसके आदि और अन्तका ज्ञान किसीको भी नहीं है, वही गीताका सार है। इसको सुनकर मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो सकता है। अर्थात् उसे जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

### गरुडपुराणका माहात्म्य

आचारकाण्डके अन्तिम अध्यायमें गरुडपुराणका माहात्म्य वर्णित है। भगवान् श्रीहरि भूतभावन रुद्रसे कहते हैं कि मैंने गरुडपुराणका यह सारभाग आपको सुना दिया, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यह विद्या, यश, सौन्दर्य, लक्ष्मी और आरोग्य आदिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान लेता है और अन्तमें उसका परम कल्याण हो जाता है।

जिस व्यक्तिके घरमें यह महापुराण रहता है, उसको इसी जन्ममें सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

इस महापुराणको पढ़ने एवं सुननेसे मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो

जाती है। जो मनुष्य इस पुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसको अकालमृत्यु नहीं होती है। पक्षिश्रेष्ठ गरुडजीके द्वारा कहा गया यह महापुराण धन्य है। यह सबका कल्याण करनेवाला है।

### धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

धर्मकाण्ड (प्रेतकल्प) —में सर्वप्रथम भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार किया गया है। तदनन्तर देवश्रेष्ठ नैमिषारण्यमें सौनकादि श्रेष्ठ मुनिगण सूतजी महाराजसे प्रश्न करते हैं कि कुछ लोगोंका कहना है कि शरीरधारी जीव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका आश्रय ग्रहण करता है, जबकि दूसरे विद्वानोंका कहना है कि प्राणीको मृत्युके पश्चात् यमराजकी यातनाओंका भोग करनेके बाद दूसरे शरीरको प्राप्ति होती है—इन दोनोंमें क्या सत्य है, यह बतानेकी कृपा करें। सूतजी महाराज प्रश्नको सुनकर प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार कथाका वर्णन करते हैं—

एक बार विनतापुत्र गरुडके हृदयमें इस ब्रह्माण्डके सभी लोकोंको देखनेकी इच्छा हुई। अतः हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्होंने पाताल, पृथ्वी तथा स्वर्ग आदि सभी लोकोंका भ्रमण किया।

पृथ्वीलोकके दुःखसे अल्पतः दुःखित एवं असान्त्वित होकर वे पुनः वैकुण्ठलोक वापस आ गये। वैकुण्ठलोकमें मृत्युलोकके समान रजोगुण तथा तमोगुण आदिकी प्रवृत्ति नहीं है। केवल शुद्ध सत्त्वगुणकी ही प्रवृत्ति है। वहाँ राग-द्वेषादि षड्विकार भी नहीं हैं। किसीका वहाँ विवश नहीं होता। वहाँ भगवान्के मनोहारी सुन्दर पार्षद उपस्थित हैं। गरुडजीने देखा कि हरि शूलपर विराजमान हैं। भगवान् हरिका दर्शन करनेसे विनतासुत गरुडका हृदय आनन्दविभोर हो उठा। आनन्दमग्न होकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम करते हुए कहा—भगवन्! आपकी कृपासे त्रिलोकका परिभ्रमण मैंने कर लिया है। यमलोकको छोड़कर पृथ्वीलोकमें सत्य-लोकतक सब कुछ मैंने देखा जा चुका है। सभी लोकोंकी अपेक्षा पृथ्वीलोक प्राणियोंसे अधिक परिपूर्ण है। सभी योनियोंमें मानवयोनि ही भोग और मोक्षका शुभ आश्रय है। अतः सुकृतियोंके लिये ऐसा लोक न तो अभीतक बना है और न भविष्यमें बनेगा। 'देवता लोग भी इस लोककी प्रशंसामें गीत गाते हुए कहते हैं कि जो लोग पवित्र भारतभूमिमें जन्म लेकर निवास करते हैं, वे धन्य हैं। सुरगण भी स्वर्ग एवं अपवर्गरूप फलकी प्राप्तिके लिये पुनः भारतभूमिमें मनुष्यरूपमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं।—

गच्छन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(१।१।२७)

गरुड पूछते हैं—हे प्रभो! आप यह बतानेकी कृपा करें कि मरणासन्न व्यक्तिको किस कारण पृथ्वीपर सुलाया जाता है? उसके मुखमें पट्टारज क्यों डाला जाता है? उसके नीचे कुत्त और तिल क्यों बिछाये जाते हैं? हे केशव! मृत्युके समय विविध वस्तुओंके दान एवं गौदान, अष्ट महादान किसलिये दिया जाता है? प्राणी कैसे मरता है और मरनेके बाद कहाँ जाता है? उस समय प्राणी आतिवाहिक शरीर कैसे प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र-पौत्र उसे कन्धेपर क्यों ले जाते हैं? शवमें भूतका लेप क्यों किया जाता है? शवके उत्तर दिशामें 'यमसूक्त' का पाठ क्यों होता है? मरे हुए व्यक्तिको पीनेके लिये जल एक ही वस्त्र धारण करके क्यों दिया जाता है? शवका दाह-संस्कार करनेके पश्चात् उस व्यक्तिको अपने परिजनोंके साथ बैठकर भोजन आदि क्यों नहीं करना चाहिये? मृत व्यक्तिके पुत्र दसवें दिनके पहले किसलिये नी पिण्डोंका दान देते हैं? शवका दाह-संस्कार तथा उसके अनन्तर जलतर्पणकी क्रिया क्यों की जाती है? किस विधानसे पितरोंको पिण्डदान देना चाहिये? उस पिण्डको स्वीकार करनेके लिये उनका आवाहन कैसे किया जाता है? दाह-संस्कारके बाद अस्थि-संघन और घट फोड़नेका विधान क्यों है? दसवें दिन सभी परिजनोंके साथ शुद्धिके लिये स्नान तथा पिण्डदान क्यों करना चाहिये? एकादशाहको वृषोत्सर्ग आदिके सहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? तेरहवें दिन पददान आदि क्यों किया जाता है? वर्षपर्यन्त सोलह ब्राह्मण क्यों किये जाते हैं?

हे प्रभो! मनुष्यका यह शरीर अनित्य है और समय आनेपर ही वह मरता है, किन्तु मैं उस छिद्रको नहीं देख पाता हूँ, जिससे जीव निकल जाता है?

प्राणी अपने जीवनकालमें पुण्य और पाप जो भी करता है, नाना प्रकारके दान देता है, वे सब शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं? मरे हुए प्राणीके

लिये सपिण्डीकरण क्यों होता है? इस कृत्यमें प्रेतपिण्डका मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

जो मनुष्य पापी, दुराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद वे किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मघाती, ब्रह्महत्यारा, स्वर्ण आदिकी चोरी करनेवाला, मित्रादिके साथ विश्वासघात करनेवाला है, उस महापातकीका क्या होता है?

हे माधव! यदि शूद्र प्रणव महामन्त्रका जप करता है तथा ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करता है तो मृत्युके बाद उसकी क्या गति होती है?

गरुडजी कहते हैं कि हे विश्वात्मन्! मैंने कौतुहलवश सम्पूर्ण जगत्का भ्रमण किया है, उसमें रहनेवाले लोगोंको मैंने देखा है कि वे सभी दुःखमें ही बूबे रहते हैं। उनके अल्पना कष्टोंको देखकर भेरा अन्तःकरण पीड़ासे भर गया, स्वर्गमें दैत्योंकी शत्रुतासे भय है, पृथ्वीलोकमें मृत्यु और रोगादिसे तथा अभीष्ट वस्तुके वियोगसे लोग दुःखी हैं। पाताललोकमें रहनेवाले प्राणियों (नाग आदि) को मेरे भयसे दुःख बना रहता है। हे प्रभो! आपके इस वैकुण्ठधामके अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकमें ऐसी निर्भयता नहीं दिखायी देती। कालके वशीभूत इस जगत्की स्थिति स्वर्णकी मायाके समान असत्य है। उसमें भी इस भारतवर्षमें रहनेवाले लोग बहुत-से दुःखोंको भोग रहे हैं। मैंने देखा है कि उस देशके मनुष्य राग-द्वेष तथा मोह आदिमें आकण्ठ बूबे हुए हैं। उस देशमें कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेढ़ी दृष्टिवाले हैं, कुछ दुष्ट वाणीवाले हैं, कुछ लूते हैं, कुछ लैंगहे हैं, कुछ काने हैं, कुछ बहरे हैं, कुछ गूँगे हैं, कुछ कोढ़ी हैं, कुछ अधिक रोमवाले हैं, कुछ नाक रोगसे घिरे हैं और कुछ आकाश-कुसुमकी तरह नितान्त मिथ्याभिमानसे चूर हैं। उनके विचित्र दोषोंको तथा उनकी मृत्युको देखकर मेरे मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी है कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षमें यह कैसी विचित्रता है? ऋषियोंसे मैंने पहले ही इस विषयमें सामान्यतः यह सुन रखा है कि जिसकी विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होती हैं, उसकी दुर्गति होती है। फिर भी प्रभो! इसकी विशेष जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा हूँ।

हे उपेन्द्र! मनुष्यकी मृत्युके समय उसके कल्याणके लिये क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये? मृत्यु और श्मशानभूमितक पहुँचनेकी कौन-सी विधि अपेक्षित

है? चित्तमें शवको जलानेकी क्या विधि है? तत्काल अथवा विलम्बसे उस शवको कैसे दूसरी देह प्राप्त होती है? यमलोक (संयमनी नगरी) को जानेवालेके लिये वर्षषण्वत् कौन-सी क्रियाएँ करनी चाहिये? दुर्बुद्धि अर्थात् दुराचारी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसका प्रायश्चित्त क्या है? पञ्चकादिमें मृत्यु होनेपर पञ्चकशान्तिके लिये क्या करना चाहिये? हे देव! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। मैंने आपसे यह सब लोकमञ्जुलकी कामनासे पूछा है, मुझे बतानेकी कृपा करें।

**भरणासन व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म**

**श्रीकृष्णजी गरुडसे कहते हैं—**आपने मनुष्योंके हितमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात पूछी है। जिसको देवतागण, योगीजन नहीं देख सके, जो गुह्यातिगुह्य है, उसे मैं बता रहा हूँ।

पुत्रकी महिमा बताते हुए भगवान् कहते हैं—यदि मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता है तो पुत्र नरकसे उसका उद्धार कर देता है। पुत्र और पौत्रको मरे हुए प्राणीको कन्या देना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना चाहिये।

सबसे पहले गोबरसे भूमिकी लीपना चाहिये। तदनन्तर जलकी रेखासे मण्डल बनाना चाहिये। इसके बाद उस स्थानपर तिल और कुश बिछाकर भरणासन व्यक्तिको कुशासनपर सुला देना चाहिये तथा उसके मुखमें स्वर्ण आदि पञ्चरत्न डालना चाहिये। यह सब कार्य करनेसे वह प्राणी अपने समस्त पापोंको जलाकर पापमुक्त हो जाता है। भूमिपर मण्डल बनानेका अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। भूमिपर बनाये गये ऐसे मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अतः मण्डलका निर्माण अवश्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राणत्याग करनेपर उसे अन्य चोनि नहीं प्राप्त होती, उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। तिल और कुशकी महत्ता बताते हुए भगवान् कहते हैं कि हे गरुड! तिल मेरे पत्नीनेसे उत्पन्न हुए हैं, अतः तिल बहुत ही पवित्र हैं। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। एक ही तिलका दान स्वर्णके बत्तीस सैर तिलके बराबर है। तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता है। कुश मेरे शरीरके रोमोंसे उत्पन्न हुए हैं। कुशके मूलमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु तथा अग्रभागमें शिवको जानना चाहिये। ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गये हैं। इसलिये देवताओंकी तृप्तिके लिये मुख्यरूपसे

कुशको और पितरोंको तृप्तिके लिये तिलकी आवश्यकता होती है। देवताओं और पितरोंकी तृप्ति ही विधकी तृप्तिमें हेतु है। अतः ब्राह्मणों जो विधियाँ बतायी गयी हैं, उन्हींके अनुसार मनुष्यको ब्रह्मा, देवदेवेश्वर तथा पितृजनोंको संतुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी—ये बार-बार प्रयुक्त होनेपर भी बासी नहीं होते।

‘हे पश्विश्रेष्ठ! विष्णु, एकादशीव्रत, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ—ये छः दुर्गम असार-संसारमें लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके साधन हैं’—

विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः ॥

असारे दुर्गसंसारे भद्रपदी मुक्तिदायिनी।

( २।२।२४-२५ )

मृत्युकालमें मरणासनके दोनों हाथोंमें कुश रखना चाहिये। इससे प्राणी विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

लवणरस पितरोंको प्रिय होता है और स्वर्गको प्रदान करता है। यह लवणरस भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इसीलिये अन्नादिके साथ लवणका दान करना चाहिये। इस पृथ्वीपर यदि किसी आतुर व्यक्तिके प्राण न निकलते हों तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिये लवणका दान करना चाहिये।

उसके समीप तुलसीका वृक्ष एवं शलाघामकी शिलाको भी लाकर रखे। तत्पश्चात् यथाविधान विभिन्न मूर्तियोंका फट करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृग्य मुक्तिदायक होती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके शरीरगत विभिन्न स्थानोंमें सोनेकी शलाकाओंको रखनेका विधान है, जिसके अनुसार क्रमशः एक शलाका मुख, एक-एक शलाका नाकके दोनों छिद्र, दो-दो शलाकाएँ नेत्र और कान, एक शलाका लिङ्ग तथा एक शलाका उसके ब्रह्माण्डमें रखनी चाहिये। उसके दोनों हाथ एवं कण्ठभागमें तुलसी रखे। उसके शवको दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके कुंकुम और अक्षतसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पुण्यीकी मालासे विभूषित करके उसे बन्धु-बान्धवों तथा पुत्र एवं पुरवासियोंके साथ अन्य द्वारसे ले जाय। उस समय अपने बान्धवोंके साथ पुत्रको मरे हुए पिताके शवको कन्धेपर रखकर स्वयं ले जाना चाहिये।

शमशान देशमें पहुँचकर पुत्र पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख वहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण करवाये, जो पहलेसे जली न हो। उस चितामें चन्दन, तुलसी और पलाशदिकी

लकड़ीका प्रयोग करना चाहिये।

जब मरणासन व्यक्तिकी इन्द्रियोंका समूह व्याकुल हो उठता है, चेतन शरीर जड़ीभूत हो जाता है, उस समय प्राण शरीरको छोड़कर यमराजके दूतोंके साथ चल देते हैं।

उस समय जो प्राणी दुरात्मा होते हैं, उन्हें यमदूत अपने पातबन्धनोंसे जकड़कर मारते हैं। जो सुकृती हैं, उनको स्वर्गिके पार्यद सुखपूर्वक अपने लोकको ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गमें पापियोंको दुःख झेलते हुए जाना पड़ता है।

यमराज अपने लोकमें शङ्ख, चक्र तथा गदा आदिसे विभूषित चतुर्भुज रूप धारणकर पुण्यकर्म करनेवाले साधु पुरुषोंके साथ मित्रवत् आचरण करते हैं और पापियोंको संनिकट मुलाकर उन्हें अपने दण्डसे तर्जना देते हैं। वे प्रलयकालीन मेघके समान गर्जना करनेवाले हैं। अजन्तगिरिके सदृश उनका कृष्णवर्ण है। तथा एक बहुत बड़े भैसेपर सवार होते हैं। वे महाकोपी एवं अत्यन्त भयंकर हैं। भीषकाय दुराकृति यमराज अपने हाथोंमें लोहेका दण्ड और पात धारण करते हैं। उनके मुख तथा नेत्रोंको देखनेसे ही पापियोंके मनमें भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोंको दिखायी पड़ते हैं, उस समय हाहाकार करता हुआ अङ्गुष्ठमात्रका मृत पुरुष अपने घरकी ओर देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राणीसे मुक्त-शरीर—चेष्टाहीन हो जाता है। उसको देखनेसे मनमें घृणा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरन्त अस्मृश्य तथा दुर्गन्धयुक्त और सभी प्रकारसे निन्दित हो जाता है। यह शरीर अन्तमें कीट, बिछा या राखमें परिवर्तित हो जाता है। हे तात्पर्य! क्षणभरमें विध्वंस होनेवाले इस शरीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत्-शरीरसे होनेवाले वित्तका दान, आदरपूर्वक वाणी, कीर्ति, धर्म, आयु और परोपकार ही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदूत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए डाँटकर यह कहते हैं कि हे दुष्टात्मन्! तू शीघ्र चल। तुझे यमराजके घर जाना है। शीघ्र ही हम सब तुझे ‘कुम्भीपाक’ नामक नरकमें ले चलेंगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और बन्धु-बान्धवोंका रदन सुनकर कैवे स्वर्गमें हा-हा करके विलप्य करता हुआ वह मृतक यमदूतोंके द्वारा यमलोक पहुँचाया जाता है। [ शेष पृष्ठ-संख्या ५१५ से ]



ॐ श्रीपरमात्मने नमः  
श्रीगणेशाय नमः  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

# संक्षिप्त गरुडपुराण

## आचारकाण्ड

### भगवान् विष्णुकी महिमा तथा उनके अवतारोंका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नमो वैव नरोत्तमम्।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुण्यका प्रवचन करना चाहिये।'

जो जन्म और जगत्से रहित कल्याणस्वरूप—अजन्मा तथा अजर हैं, अनन्त एवं ज्ञानस्वरूप हैं, महान् हैं, विस्तृत (मत्सरहित), अनादि एवं प्राज्ञाधीनकारी से हीन हैं, समस्त इन्द्रियोंसे रहित और सभी प्राणियोंमें स्थित हैं, मायासे परे हैं, उन सर्वव्यापक, परम पवित्र, मङ्गलमय, अद्वय भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। मैं घन-वाणी और कर्मसे विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेश तथा देवी सरस्वतीको सर्वदा नमस्कार करता हूँ।'

एक बार सर्वशास्त्रपारङ्गत, पुराणविद्याकुशल, शान्ताचित महात्मा सूतजी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें नैमिषारण्य आये और एक पवित्र आसनपर स्थित होकर भगवान् विष्णुका ध्यान करने लगे। ऐसे उन क्रान्तदर्शी तपस्वीका दर्शन करके नैमिषारण्यवासी शौनकादि मुनियोंने उनकी पूजा की और स्तुति करते हुए उनसे यह निवेदन किया—

ऋषियोंने कहा—हे सूतजी! आप तो सब कुछ जानते हैं, इसलिये हम सब आपसे पूछते हैं कि देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ देव कौन हैं, ईश्वर कौन हैं और कौन पूज्य हैं? ध्यान करनेके योग्य कौन हैं? इस जगत्के सृष्टा, पालनकर्ता और संहर्ता कौन हैं? किनके द्वारा यह (सनातन) धर्म प्रवर्तित हो रहा है और दुष्टोंके विनाशक कौन हैं? उन देवका कैसा स्वरूप है? किस प्रकार इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि हुई है? किन वस्तुओंका पालन करनेसे

वे देव संतुष्ट होते हैं? किस योगके द्वारा उनको प्राप्त किया जा सकता है? उनके कितने अवतार हैं? उनकी वंश-परम्परा कैसी है? वर्षादि भूमिोंके प्रवर्तक एवं रक्षक कौन हैं? हे महामते श्रीभूतजी! इन सबको और अन्य विषयोंको हमें बतायें तथा भगवान् नारायणकी सभी उत्तम कथाओंका वर्णन करें।



सूतजी बोले—हे ऋषियो! मैं उस गरुडमहापुराणका वर्णन करता हूँ, जो सारभूत है और भगवान् विष्णुकी कथाओंसे परिपूर्ण है। प्राचीन कालमें इस पुराणको श्रीगरुडजीने करुण ऋषिको सुनाया था और मैंने इसे व्यासजीसे सुना था। हे ऋषियो! भगवान् नारायण ही सब देवोंमें श्रेष्ठ देव हैं। वे ही परमात्मा एवं परब्रह्म हैं। उन्हींसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारकी क्रियाएँ होती हैं। वे जग-मरणसे रहित हैं। वे भगवान् वासुदेव अजन्मा

1. अजमजरमयन्तं ज्ञाकरूपं महान्तं शिवममलनवादिं पूरुदेहादिहीनम्।  
सकलकारणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिममलनमायं सर्वानं वन्द एकम्॥  
नमस्तस्मिन् हरिं तद् ब्रह्मणं च गणाधिपम्। देवीं सरस्वतीं वैव नरोत्तमकर्मोपः सदा ॥ (१०१-२)

होते हुए भी जगत्की रक्षाके लिये सनत्कुमार आदि अनेक रूपोंमें अवतार ग्रहण करते हैं।

हे ब्रह्मन्! उन भगवान् श्रीहरिने सर्वप्रथम कौमार-सर्गमें (सनत्कुमारदिके रूपमें) अवतार धारण करके कठोर तथा अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया। दूसरे अवतारमें उन्होंने यज्ञेश्वर श्रीहरिने जगत्की स्थितिके लिये (हिरण्यध्वंके द्वारा) रसातलमें ले जायी गयी पृथिवीका उद्धार करते हुए 'वराह'-शरीरको धारण किया। तीसरे ऋषि-सर्गमें देवर्षि (नारद)-के रूपमें अवतरित होकर उन्होंने 'सात्वत तन्त्र' (नारदपाञ्चरात्र)-का विस्तार किया, जिससे निष्काम कर्मका प्रवर्तन हुआ। चौथे 'नारदरायण'-अवतारमें भगवान् श्रीहरिने धर्मकी रक्षाके लिये कठोर तपस्या की और ये देवताओं तथा असुरोंद्वारा पूजित हुए। पाँचवें अवतारमें भगवान् श्रीहरि 'कपिल'-नामसे अवतरित हुए, जो सिद्धोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और जिन्होंने कालके प्रभावसे लुप्त हो चुके सांख्यशास्त्रकी शिक्षा दी। छठे अवतारमें भगवान् नारायणने महर्षि अत्रिजी पत्नी अनसूयाके गर्भसे 'दत्तात्रेय' के रूपमें अवतार ली होकर राजा अलङ्क और प्रह्लाद आदिको आन्वीक्षिकी (ब्रह्म) विद्याका उपदेश दिया। सातवें अवतारमें वीरनारायणने इन्द्रादि देवगणोंके साथ यज्ञका अनुष्ठान किया और इसी स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वे आकृतिके गर्भसे रुचि प्रजापतिके पुत्ररूपमें 'यज्ञदेव' नामसे अवतीर्ण हुए। आठवें अवतारमें वे ही भगवान् विष्णु नाभि एवं मेरुदेवीके पुत्ररूपमें 'ऋषभदेव' नामसे प्रादुर्भूत हुए। इस अवतारमें उन्होंने नारियोंके उस आदर्श मार्ग (गृहस्थाश्रम)-का निदर्शन किया, जो सभी आश्रमोंद्वारा नमस्कृत है। ऋषियोंकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीहरिने नवें अवतारमें पार्थिव शरीर अर्थात् 'पृथु'का रूप धारण किया और (गोरुपा पृथिवीसे) दुग्धरूपमें (अन्नादिक) महोपधियोंका दोहन किया, जिससे प्रजाओंके जीवनकी रक्षा हुई। दसवें अवतारमें 'मत्स्यवतार' ग्रहणकर उन्होंने चाक्षुष मन्वन्तरके ब्याद आनेवाले प्रलयकालमें (निराश्रित) श्वेतवस्त्र मनुको पृथ्वीरूपी नीकामें बैठाकर सुरक्षा प्रदान की। ग्यारहवें अवतारमें देवी और दानवोंने समुद्र-मन्थन किया तो उस समय भगवान् नारायणने 'कूर्म' रूप ग्रहण करके मन्दराचल पर्वतको अपनी पीठपर

धारण किया। उन्होंने बारहवें अवतारमें 'धन्वन्तरि' तथा तेरहवें अवतारमें 'मोहिनी'का रूप ग्रहण किया और इसी स्त्रीरूपमें उन्होंने (अपने सौन्दर्यसे) दैत्योंको मुग्ध करते हुए देवताओंको अमृतपान कराया। चौदहवें अवतारमें भगवान् विष्णुने 'नृसिंह'का रूप धारणकर अपने तेज नखाग्रोंसे पराक्रमी दैत्यराज हिरण्यकशिपुके हृदयको उसी प्रकार विदीर्ण किया, जिस प्रकार चटाई बनानेवाला व्यक्ति तिनकेको चौर डालता है। पंद्रहवें अवतारमें 'वामन'रूप धारणकर वे राजा बलिके यज्ञमें गये और देवीको तीनों लोक प्रदान करनेकी इच्छासे उनसे तीन पग भूमिकी मापना की। सोलहवें (परसुराम नामक) अवतारमें ब्राह्मण्डोद्दो क्षत्रियोंके आत्माचारोंको देखकर उनको क्रोध आ गया और उसी भाववैशम्यमें उन्होंने इक्ष्वाकुस्यार पृथिवीको क्षत्रियोंसे सौंप कर दिया। तदनन्तर सत्रहवें अवतारमें ये पराशरद्वारा सत्यवतीसे (व्यास-नामसे) अवतरित हुए और मनुष्योंकी अल्पज्ञताको जानकर उन्होंने वेदरूपी वृक्षको अनेक शाखाओंमें विभक्त किया। श्रीहरिने देवताओंके कार्योंके करनेकी इच्छासे राजाके रूपमें 'वीराम'-नामसे अद्वारहवाँ अवतार लेकर समुद्रमन्थन आदि अनेक पराक्रमपूर्ण कार्य किया। उनोसवें तथा बीसवें अवतारमें श्रीहरिने वृष्णिवंशमें 'कृष्ण' एवं 'बलराम'का रूप धारण करके पृथ्वीके भारका हरण किया। इक्कीसवें अवतारमें भगवान् कलियुगकी सन्धिमें अन्तमें देवद्रोहियोंको मोहित करनेके लिये कीकट देशमें जिनपुत्र 'बुद्ध' के नामसे अवतीर्ण होंगे और इसके पश्चात् कलियुगकी आठवीं सन्ध्यामें अधिकांश राजवर्गके समाप्त होनेपर वे ही श्रीहरि विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घरमें 'कल्कि' नामसे अवतार ग्रहण करेंगे।

हे द्विजो! (मैंने यहाँपर भगवान् नारायणके कुछ ही अवतारोंकी कथाका वर्णन किया है। सत्य तो यह है कि) सत्त्वगुणके अधिष्ठान भगवान् विष्णुके असंख्य अवतार हैं। मनु, वेदवेत्ता तथा सृष्टिप्रवर्तक सभी ऋषि उन्हीं विष्णुकी विभूतियाँ कही गयी हैं। उन्हीं मनु आदि श्रेष्ठ ऋषियोंसे इस जगत्की सृष्टि आदि होती है, इसीलिये व्रत आदिके द्वारा इनकी पूजा करनी चाहिये। प्राचीन कालमें भगवान् वेदव्यासने इसी 'गुरुडमहापुराण'को मुझे सुनाया था। (अध्याय १)

## गरुडपुराणकी वक्तृ-श्रोतृ-परम्परा, भगवान् विष्णुद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा गरुडजीको पुराणसंहिताके प्रणयनका वरदान

**ऋषियोंने पुनः कहा—**(हे सृज्जी महाराज!) आपको महात्मा व्यासजीने विष्णुकथासे आश्रित इस श्रेष्ठ गरुडमहापुराणको किस प्रकार सुनाया था? वह सब आप हमें विधिवत् सुनानेकी कृपा करें।

**सृज्जी बोले—**एक बार मुनियोंके साथ मैं बदरिकाश्रम गया था। वहाँपर परमेश्वरके ध्यानमें निमग्न भगवान् व्यासका मुझे दर्शन हुआ। उन्हें प्रणाम करके मैं वहाँपर बैठ गया और उन मुनीश्वरसे मैंने पूछा—हे व्यासजी! आप परमेश्वर भगवान् श्रीहरिके स्वरूप और जगत्की सृष्टि आदिको मुझे सुनायें, क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप उन्हीं परम पुरुषका ध्यान कर रहे हैं और उन सर्वज्ञके स्वरूपका परिज्ञान भी आपको है। हे विश्ववृन्द! मैंने व्यासदेवके सामने जब ऐसी जिज्ञासा की तो उन्होंने मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं आप सभीसे कह रहा हूँ, सुनें।

**व्यासजीने कहा—**हे सृज्जी! ब्रह्माजीने जिस प्रकार नारद एवं प्रजापति दक्ष आदिसे तथा मुझसे इस पुराणकी कथा कही थी, उसी प्रकार मैं गरुडमहापुराणको सुनाता हूँ। आप सब (उसे) सुनें।

**सृज्जीने पूछा—**(हे भगवन्!) ब्रह्माजीने देवर्षि नारद और प्रजापति दक्षसहित आपसे किस प्रकारके पवित्र एवं सारतत्त्व बतानेवाले पुराणको कहा था?

**व्यासजीने कहा—**एक बार नारद, दक्ष तथा भृगु आदि ऋषियोंके साथ मैं ब्रह्मलोकमें विद्यमान श्रीब्रह्माजीके पास गया और उन्हें प्रणामकर मैंने प्रार्थना की कि हे ब्रह्मा! आप हमें सारतत्त्व बतानेकी कृपा करें।

**ब्रह्माजी बोले—**यह गरुडमहापुराण अन्य सभी शास्त्रोंका सारभूत है। प्राचीन कालमें भगवान् विष्णुने अन्य देवताओंसहित रुद्रदेव (शिव) और मुझसे जिस प्रकार इसे कहा था, उसी प्रकार मैं भी इसका वर्णन आपसे कर रहा हूँ।

**व्यासजीने कहा—**भगवान् श्रीहरिने अन्य देवोंके साथ रुद्रदेवको किस प्रकारसे सारभूत और महान् अर्थ बतलानेवाले इस गरुडमहापुराणको सुनाया था? हे ब्रह्मन्! उसे आप सुनायें।

**ब्रह्माजी बोले—**एक बार इन्द्रादि देवताओंके साथ मैं कैलासपर्वतपर पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि रुद्रदेव शङ्कर

परम तत्त्वके ध्यानमें निमग्न हैं। मैंने प्रणाम करके उनसे पूछा—हे सदाशिव! आप किस देवका ध्यान कर रहे हैं? मैं तो आपसे अतिरिक्त अन्य किसी देवताको नहीं जानता हूँ। इन सभी देवताओंके साथ उस परम सारतत्त्वको जाननेकी मेरी इच्छा है। अतः आप उसका वर्णन करें।

**श्रीरुद्रजीने ब्रह्माजीसे कहा—**मैं तो सर्वफलदायक, सर्वव्यापी, सर्वरूप, सभी प्राणियोंके हृदयमें अवस्थित परमात्मा तथा सर्वेश्वर उन भगवान् विष्णुका ध्यान करता हूँ। हे पितामह! उन्हीं विष्णुकी आराधना करनेके लिये मैं सरीरमें भस्म तथा सिरपर जटजूट धारण करके व्रताचरणमें निरत रहता हूँ। जो सर्वव्यापक, जयशील, अद्वैत, निराकार एवं पद्मनाभ हैं, जो निर्मल (शुद्ध) तथा पवित्र हंसस्वरूप हैं, मैं उन्हीं परमपद परमेश्वर भगवान् श्रीहरिका ध्यान करता हूँ। इस सारतत्त्व (श्रीविष्णु)के विषयमें उन्हींके पास चलकर हम सभीकी पूछना चाहिये।

जिनमें सम्पूर्ण जगत्का वास है। प्रलयकालमें जिनमें सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हो जाता है, सब प्रकारसे अपनेको उन्हींकी शरणमें करके मैं उन्हींका चिन्तन करता हूँ। जिन सर्वभूतेश्वरमें सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण एक सूत्रमें अवगुम्फित मणियोंके समान विद्यमान रहते हैं, जो हजार नेत्र, हजार चरण, हजार जंघा तथा श्रेष्ठ मुखसे युक्त हैं, जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, गुस्से गुस्मत और पृथ्वीमें पृथ्वतम तथा श्रेष्ठोंमें भी श्रेष्ठतम हैं, जो सत्योंके परम सत्य और सत्यकर्मा कहे गये हैं, जो (पुराणोंमें) पुराणपुरुष और द्विजातियोंमें ब्राह्मण हैं, जो प्रलयकालमें सङ्कल्पण कहलाते हैं; मैं उन्हीं परम उपास्यकी उपासना करता हूँ।

जिन सत्-असत्से परे, अज्ञ (सत्यस्वरूप), एकाक्षर (प्रणवस्वरूप) परब्रह्मकी देव, यक्ष, राक्षस और नागगण अर्चना करते हैं, जिनमें सभी लोक उसी प्रकार स्फुरित होते हैं, जिस प्रकार जलमें छोटी-छोटी मछलियाँ स्फुरित होती हैं, जिनका मुख अग्नि, मस्तक द्युलोक, नाभि आकाश, चरणयुगम पृथ्वी और नेत्र सूर्य तथा चन्द्र हैं; ऐसे उन (विष्णु) देवका मैं ध्यान करता हूँ।

जिनके उदरमें स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल — ये तीनों लोक

=====

विद्यमान हैं। समस्त दिशाएँ जिनको भुजाएँ हैं, पवन जिनका उच्छ्वास है, मेघमालाओंका समूह जिनका केश-पुञ्ज है, नदियाँ जो जिनके सभी अङ्गोंकी सन्धियों हैं और चारों समुद्र जिनकी कुक्षि हैं, जो कालातीत हैं, यह एवं सत्-असत्से परे हैं, जो जगत्के आदि कारण तथा स्वयं अनादि हैं, ऐसे उन नारायणका मैं चिन्तन करता हूँ।

जिनके मनसे चन्द्रमा, नेत्रोंसे सूर्य और मुखसे अग्नि उत्पन्न हैं, जिनके चरणोंसे पृथिवीकी, कानोंसे दिशाओंकी और मस्तकसे स्वर्गकी सृष्टि हुई है, जिन परमेश्वरमे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित प्रवर्तित हुआ है; उन देवकी मैं आराधना करता हूँ। परम सारतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हम सभीको उनकी शरणमें जाना चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी! प्राचीन कालमें रुद्रके द्वारा ऐसा कहे जानेपर श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भगवान् विष्णुकी प्रणाम करके उनकी स्तुतिकर उस परम तत्त्वके सारकी सुननेकी इच्छासे देवगणोंके साथ मैं भी यहींपर स्थित हो गया। तदनन्तर हमारे मध्य अवस्थित रुद्रने उन परम सारतत्त्वस्वरूप विष्णुकी प्रणाम करके (यह) जिज्ञासा करते हुए कहा—हे देवेश्वर! हे हरि! आप हम सबको यह बतायें कि कौन देवाधिदेव हैं और कौन ईश्वर हैं? कौन ध्येय तथा कौन पूज्य हैं? किन वर्तोंसे वे परम तत्त्व संतुष्ट होते हैं? किन धर्मोंके द्वारा, किन नियमोंसे अथवा किस धार्मिक पूजासे और किस आचरणसे वे प्रसन्न होते हैं? उन ईश्वरका वह स्वरूप कैसा है? किन देवोंके द्वारा इस जगत्की सृष्टि हुई है और कौन इस जगत्का पालन करते हैं? वे किन-किन अवतारोंकी धारण करते हैं? प्रलयकालमें यह विश्व किन देवमें लीन होता है? सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश तथा मन्वन्तर किन देवसे प्रवर्तित होते हैं और यह सब (दृश्यमान जगत्) किन देवमें प्रतिष्ठित है? हे हरि! इन सभी विषयोंके साथ अन्य जो भी सारतत्त्व हैं, उन्हें बतायें और इसके साथ ही परमेश्वरके माहात्म्य तथा ध्यानयोगके विषयमें भी बतानेकी कृपा करें।

तदनन्तर भगवान् विष्णुने रुद्रको उस परमेश्वरके माहात्म्य एवं (उसकी प्रातिके साधनभूत) ध्यान और योगादिक नियमों तथा अष्टादश विद्याओंका ज्ञान (इस प्रकारसे) दिया—

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! मैं बताता हूँ, ब्रह्मा और

अन्य देवोंके साथ आप उसका श्रवण करें—

मैं ही सभी देवोंका देव हूँ। मैं ही सभी लोकोंका स्वामी हूँ। देवोंका मैं ही ध्येय, पूज्य और स्तुतियोंसे स्तुति करने योग्य हूँ। हे रुद्र! मैं ही मनुष्योंसे पूजित होकर उन्हें परम गति प्रदान करता हूँ तथा व्रत, नियम और सदाचरणसे संतुष्ट होकर हे शिव! मैं ही इस संसारकी स्थितिका मूल कारण हूँ। मैं ही जगत्की रचना करनेवाला हूँ। हे सङ्कर! मैं ही दुष्टोंका निग्रह और धर्मकी रक्षा करता हूँ। मैं ही मानव आदिके रूपमें अवतीर्ण होकर अखिल भूमण्डलका पालन करता हूँ। मैं ही मन्त्र हूँ। मैं ही मन्त्रका अर्थ हूँ और मैं ही पूजा तथा ध्यानके द्वारा प्राप्त होनेवाला परम तत्त्व हूँ। मैंने ही स्वर्ग आदिकी सृष्टि की है और मैं ही स्वर्गादि भी हूँ। मैं ही योगी, आद्य योग और पुराण हूँ। ज्ञाता, श्रोता तथा मननकर्ता मैं ही हूँ। वक्ता और सम्भाषणका विषय भी मैं ही हूँ। इस जगत्के समस्त पदार्थ मेरे ही स्वरूप हैं और मैं ही सब कुछ हूँ। मैं ही भोग और मोक्षका प्रदायक परम देव हूँ। हे रुद्र! ध्यान, पूजाके उपचार और (सर्वतोभद्र) मण्डल आदि सब कुछ मैं ही हूँ। हे शिव! मैं ही सम्पूर्ण वेद हूँ। मैं ही इतिहासस्वरूप हूँ। मैं ही सर्वज्ञानमय हूँ। मैं ही ब्रह्म और सर्वात्मा हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही सर्वलोकमय हूँ तथा मैं ही सभी देवोंका आत्मस्वरूप हूँ। मैं ही साक्षात् सदाधार हूँ। मैं ही धर्म हूँ। मैं ही वैष्णव हूँ। मैं ही वर्णाश्रम हूँ। मैं ही सभी वर्णों और आश्रमोंका सनातन धर्म हूँ। हे रुद्र! मैं ही चम-नियम और विविध प्रकारका व्रत हूँ। मैं ही सूर्य, चन्द्र एवं मंगल आदि ग्रह हूँ।

प्राचीन कालमें पृथिवीपर पक्षिराज गरुडने तपस्याके द्वारा मेरी ही आराधना की थी। उनकी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैंने उनसे कहा था कि आप मुझसे अभीष्ट वर माँग लें।

उस समय गरुडने कहा—हे हरि! नागोंने मेरी माता विनताको दासी बना लिया है। हे देव! आप प्रसन्न होकर मुझे यह वर प्रदान करें कि मैं उनको जीतकर अमृत प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकूँ और माँकी (नागोंकी माता) कद्रुकी दासतासे मुक्त करा सकूँ, मैं आपका वाहन बन सकूँ, महान् बली, महान् शक्तिशाली, सर्वज्ञ और नागोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ हो सकूँ तथा जिस प्रकार पुराण-संहिताका रचनाकार ही सकूँ वैसे ही करनेकी कृपा करें।

श्रीविष्णु बोले—हे पक्षिराज गरुड! आपने जैसा वर



मौंका है, वैसा ही सब कुछ होगा। आप नागोंकी दासतासे



अपनी माता विनताको मुक्त करवा सकेंगे। सभी देवताओंकी जीतकर अमृत ग्रहण करनेमें आपको सफलता प्राप्त होगी। अत्यन्त शक्तिसम्पन्न होकर आप मेरे चाहन होंगे। विषोंके विनाशकी शक्ति भी आपकी प्राप्त होगी। मेरी कृपासे आप

मेरे ही माहात्म्यको कहनेवाली पुराण-संहिताका प्रणयन करेंगे। मेरा जैसा स्वरूप कहा गया है, वैसा ही आपमें भी प्रकट होगा। आपके द्वारा प्रणीत यह पुराणसंहिता आपके 'गरुड' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होगी।

हे विनतासुत! जिस प्रकार देव-देवोंके मध्य में ऐश्वर्य और श्रीरूपमें विख्यात हैं, उसी प्रकार हे गरुड! सभी पुराणोंमें यह गरुडमहापुराण भी ख्याति अर्जित करेगा। जैसे विश्वमें मेरा कीर्तन होता है, वैसे ही गरुडके नामसे आपका भी संकीर्तन होगा। हे पक्षिश्रेष्ठ! अब आप मेरा ध्यान करके उस पुराणका प्रणयन करें।

हे रुद्र! मेरे द्वारा यह वरदान दिये जानेके बाद इसी सम्बन्धमें कश्यप ऋषिके द्वारा पूछे जानेपर गरुडने इसी पुराणको उन्हें सुनाया। कश्यपने इस गरुडमहापुराणका श्रवण करके गरुडोविद्याके बलसे एक जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था। गरुडने स्वयं (भी) इसी विद्याके द्वारा अनेक प्राणियोंको जीवित किया था। 'यक्षि ओ३ उ स्वाहा' यह जप करने योग्य गरुडी पराविद्या है। हे रुद्र! मेरे स्वरूपसे परिपूर्ण गरुडद्वारा कहे गये इस गरुडमहापुराणको आप सुनें। (अध्याय २)

## गरुडपुराणके प्रतिपाद्य विषयोंका निरूपण

सूतजीने कहा—हे शौनक! जिस गरुडमहापुराणकी ब्रह्मा और शिवने भगवान् विष्णुसे, मुनिवंश व्यासने ब्रह्मासे और मैंने व्याससे सुना था, उसे ही इस नैमिषारण्यमें आप सबको मैं सुना रहा हूँ। इस गरुडमहापुराणके प्रारम्भमें सर्गवर्णन तदनन्तर देवाचन, तीर्थमाहात्म्य, भुवनवृत्तान्त, मन्वन्तर, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, दानधर्म, राजधर्म, व्यवहार, व्रत, वंशानुचरित, निदानपूर्वक अष्टाङ्ग आयुर्वेद, प्रलय, धर्म, काम, अर्थ, उत्तम ज्ञान और भगवान् विष्णुकी मायामय एवं सहज लीलाओंको विस्तारपूर्वक कहा गया है। भगवान् वासुदेवके अनुग्रहसे इस गरुडमहापुराणके उपदेशरूपमें श्रीगरुड सब प्रकारसे अत्यन्त सामर्थ्यवान् हो गये और उसीके प्रभावसे उन्हींके चाहन बनकर वे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयके कारण भी बन गये। देवोंकी जीतकर

(अपनी माताको दासतासे मुक्त करानेके लिये) अमृत प्राप्त करनेमें भी उन्होंने सफलता प्राप्त की।

जिन भगवान् विष्णुके उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विद्यमान है, उनकी क्षुधाको भी उन्होंने (अपनी भक्तिसे) शान्त किया। जिनके दर्शन या स्मरणमात्रसे सर्पोंका विनाश हो जाता है, जिस गरुडमन्त्रके बलसे कश्यप ऋषिने जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था, उन्हीं हरिरूप गरुडने इस गरुडमहापुराणका वर्णन श्रीकश्यपसे किया था।

हे शौनक! यह श्रीमद्गरुडमहापुराण अत्यन्त पवित्र तथा पाठ करनेपर सब कुछ प्रदान करनेवाला है। व्यासजीको नमस्कार करके मैं यथावत् उसे कह रहा हूँ। आप सब उसकी सुनें। (अध्याय ३)

## सृष्टि-वर्णन

रुद्रजी बोले—हे जनार्दन! आप सर्ग, प्रतिसर्ग, यंश, मन्वन्तर एवं यंशानुचरित—इन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! सर्ग आदिके साथ ही पापोंका नाश करनेवाली सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयरूप भगवान् विष्णुकी सनातन क्रीडाका अर्थ मैं वर्णन करूँगा, उसको आप सुनें।

नरनारायण-रूपमें उपास्य वे वासुदेव प्रकाशस्वरूप परमात्मा परब्रह्म और देवाधिदेव हैं तथा इस जगत्की सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयके कर्ता हैं। यह सब जो कुछ दृष्ट-अदृष्ट है, उन भगवान्का ही व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप है। वे ही पुरुष एवं कालरूपमें विद्यमान हैं। जिस प्रकार बालक क्रीडा करता है, उसी प्रकार व्यक्तरूपमें भगवान् विष्णु और अव्यक्तरूपमें काल एवं पुरुष (निराकार ब्रह्म) की क्रीडा होती है। उन्हीं लीलाओंको आप भी सुनें।

उन परमात्मा परमेश्वरका आदि और अन्त नहीं है, वे ही जगत्को धारण करनेवाले अनन्त पुरुषोत्तम हैं। उन्हीं परमेश्वरसे अव्यक्तकी उत्पत्ति होती है और उन्हींसे आत्मा (पुरुष) भी उत्पन्न होता है। उस अव्यक्त प्रकृतिसे बुद्धि, बुद्धिसे मन, मनसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथिवीकी उत्पत्ति हुई है।

हे रुद्र! इसके पश्चात् हिरण्यम् अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डमें वे प्रभु स्वयं प्रविष्ट होकर जगत्की सृष्टिके लिये सर्वप्रथम शरीर धारण करते हैं। तदनन्तर चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें शरीर धारणकर रजोगुणके आश्रयसे उन्हीं देवने इस चराचर विश्वकी सृष्टि की।

देव, असुर एवं मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् उसी अण्डमें विद्यमान है। वे ही परमात्मा स्वयं स्रष्टा (ब्रह्मा)—के रूपमें जगत्को संरचना करते हैं, विष्णुरूपमें जगत्की रक्षा करते हैं और अन्तमें संहर्ता त्रिविके रूपमें वे ही देव संहार करते हैं। इस प्रकार एकमात्र वे ही परमेश्वर ब्रह्माके रूपमें सृष्टि, विष्णुके रूपमें पालन और कल्पावन्तके समय

रुद्रके रूपमें सम्पूर्ण जगत्को विनष्ट करते हैं। सृष्टिके समय वे ही बराहका रूप धारणकर अपने दाँतोंसे जलमग्न पृथिवीका उद्धार करते हैं। हे शङ्कर! संक्षेपमें ही मैं देवादिकी सृष्टिका वर्णन कर रहा हूँ; आप उसको सुनें।

सबसे पहले उन परमेश्वरसे महत्त्वकी सृष्टि होती है। वह महत्त्व उन्हीं ब्रह्मका विकार है। पञ्च तन्मात्राओं (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द)—की उत्पत्तिसे युक्त द्वितीय सर्ग है। उसे भूत-सर्ग कहा जाता है। (इन पञ्च तन्मात्राओंसे पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश-रूपमें महाभूतोंकी सृष्टि होती है।) तीसरा वैकारिक सर्ग है, (इसमें कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियोंकी सृष्टि आती है इसलिये) इसे ऐन्द्रिक भी कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति बुद्धिपूर्वक होती है, यह प्राकृत-सर्ग है। चौथा सर्ग मुख्य-सर्ग है। पर्वत और वृक्षादि स्थावरोंकी मुख्य माना गया है। पाँचवाँ सर्ग तिर्यक्-सर्ग कहा जाता है, इसमें तिर्यक्जोता<sup>१</sup> (पशु-पक्षी आदि) आते हैं। इसके पश्चात् ऊर्ध्वस्रोतो<sup>२</sup>की सृष्टि होती है। इस छठे सर्गको देव-सर्ग भी कहा गया है। तदनन्तर सात्व्यो सर्ग अर्थात्स्रोतोका होता है। यही मानुष-सर्ग है।

आठवाँ अनुग्रह नामक सर्ग है। वह सात्विक और ताम्रमिक गुणोंमें संयुक्त है। इन आठ सर्गोंमें पाँच वैकृत-सर्ग और तीन प्राकृत-सर्ग कहे गये हैं। कौमार नामक सर्ग तर्वाँ सर्ग है। इसमें प्राकृत और वैकृत दोनों सृष्टियाँ विद्यमान रहती हैं।

हे रुद्र! देवोंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी सृष्टि कही गयी है। सृष्टि करते समय ब्रह्मासे (सबसे पहले) मानसपुत्र उत्पन्न हुए। तदनन्तर देव, असुर, पितृ और मनुष्य—इस सर्गचतुष्टयका प्रादुर्भाव हुआ।

इसके बाद जल-सृष्टिकी इच्छासे उन्हींने अपने मनकी सृष्टि-कार्यमें संलग्न किया। सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त होनेपर प्रजापति ब्रह्मासे तमोगुणका प्रादुर्भाव हुआ। अतः सृष्टिकी अभिलाषा रखनेवाले ब्रह्माकी जज्ञासे सर्वप्रथम असुर उत्पन्न हुए। हे शङ्कर! तदनन्तर ब्रह्माने उस तमोगुणसे युक्त शरीरका परित्याग किया तो उस शरीरसे निकली हुई तमोगुणकी मात्राने स्वयं

१. जिसका स्रोत (आहार-संचार) तिर्यक् (वक्र) होता है उन्हीं 'तिर्यक्जोता' कहते हैं, इसलिये पशु-पक्षियोंको तिर्यक्जोता कहा जाता है। इनके द्वारा खाये गये अन्न-जल आदिका इनके उदर (पेट)—में बह (टेढ़ी-तिरछी) गतिसे संचरित होता है।

२. 'ऊर्ध्वस्रोता' शब्द देवताओंका वाचक है, क्योंकि इनका आहार-संचार ऊपरकी ओर होता है।

३. 'अर्धस्रोता' शब्द मनुष्योंका वाचक है, क्योंकि इनका आहार-संचार अर्धांक (नीचेकी ओर) होता है।

रात्रिका रूप धारण कर लिया। उस रात्रिरूप सृष्टिकी देखकर यक्ष और राक्षस बहुत ही प्रसन्न हुए।

हे शिव! उसके बाद सत्त्वगुणकी माझके उत्पन्न होनेपर प्रजापति ब्रह्माके मुखसे देवता उत्पन्न हुए। तदनन्तर जब उन्होंने सत्त्वगुण-समन्वित अपने उस शरीरका परित्याग किया तो उससे दिनका प्रादुर्भाव हुआ, इसीलिये रात्रिमें असुर और दिनमें देवता अधिक शक्तिशाली होते हैं। उसके पश्चात् ब्रह्माके उस सात्त्विक शरीरसे पितृगणोंकी उत्पत्ति हुई।

इसके बाद ब्रह्माके द्वारा उस सात्त्विक शरीरका परित्याग करनेपर संध्याकी उत्पत्ति हुई जो दिन और रात्रिके मध्य अवस्थित रहती है। तदनन्तर ब्रह्माके रजोमय शरीरसे मनुष्योंका प्रादुर्भाव हुआ। जब ब्रह्माने उसका परित्याग किया तो उससे ज्योत्स्ना (प्रभातकाल) उत्पन्न हुई, जो प्राक्सन्ध्याके नामसे जानी जाती है। ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या—ये चारों उस ब्रह्माके ही शरीर हैं।

तत्पश्चात् ब्रह्माके रजोगुणमय शरीरके आग्रहसे बुधा और क्रोधका जन्म हुआ। उसके बाद ब्रह्मसे ही भूख-प्याससे आतुर एवं रक्त-मांस पीने-खानेवाले तक्षकों तथा यक्षोंकी उत्पत्ति हुई। राक्षसोंमें रक्षणके कारण राक्षस<sup>१</sup> कहा गया और भक्षणके कारण यक्षोंकी यक्ष<sup>१</sup>-नामकी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। तदनन्तर ब्रह्माके केजोंमें सर्प उत्पन्न हुए। ब्रह्माके केज उनके सिरसे नीचे गिरकर पुनः उनके सिरपर आरुढ़ हो गये—यही सर्पण है। इसी सर्पण (गतिविरोध) के कारण उन्हें सर्प कहा गया। उसके बाद ब्रह्माके क्रोधसे भूतोंका जन्म हुआ। (इसीलिये इन प्राणिधर्मोंमें

क्रोधकी मात्रा अधिक होती है।) तदनन्तर ब्रह्मसे गन्धर्वोंकी उत्पत्ति हुई। गायन करते हुए इन सभीका जन्म हुआ था, इसलिये इन्हें गन्धर्व और अप्सराकी ख्याति प्राप्त हुई।

उसके बाद प्रजापति ब्रह्माके वक्षःस्थलसे स्वर्ग और सुलोका उत्पन्न हुआ। उनके मुखसे अज, उदर-भागसे तथा पक्ष-भागसे गौ, वैर-भागसे हाथीसहित अध, महिष, ऊँट और भेड़की उत्पत्ति हुई। उनके रोमोंसे फल-फूल एवं औषधियोंका प्रादुर्भाव हुआ।

गौ, अज, पुरुष—ये मेध्य (पवित्र) हैं। घोड़े, खच्चर और गदहे प्राण्य पशु कहे जाते हैं। अब मुझसे वन्य पशुओंको सुनो—इन वन्य जन्तुओंमें पहले क्षापद (हिंसक व्याघ्रादि) पशु, दूसरे दो खुरोंवाले, तीसरे हाथी, चौथे बंदर, पाँचवें पक्षी, छठे कच्छपादि जलचर और सातवें मरीसृप जीव (उत्पन्न हुए) हैं।

उन ब्रह्माके पूर्वादि चारों मुखोंसे प्रकृ, यजुष, साम तथा अथर्व—इन चार वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ। उन्हींके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, ऊरु भागसे वैश्य तथा पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। उसके बाद उन्होंने ब्राह्मणोंके लिये ब्रह्मलोक, क्षत्रियोंके लिये इन्द्रलोक, वैश्योंके लिये वायुलोक और शूद्रोंके लिये गन्धर्वलोकका निर्धारण किया। उन्होंने ही ब्रह्मचारियोंके लिये ब्रह्मलोक, स्वधर्मनिरत गृहस्थाश्रमका पालन करनेवाले लौगीके लिये प्राजापत्यलोक, वानप्रस्थाश्रमियोंके लिये सणर्षिलोक और संन्यासी तथा इच्छानुकूल सदैव विचरण करनेवाले परम तपोनिधियोंके लिये अक्षयलोकका निर्धारण किया। (अध्याय ४)

## मानस-सृष्टि-वर्णन, दक्ष प्रजापतिद्वारा मिथुनधर्मसे सृष्टिका विस्तार

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! प्रजापति ब्रह्माने परलोकमें रहनेवाली मानस-प्रजाओंकी सृष्टिके अनन्तर सृष्टि-विस्तार करनेवाले मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की। उनसे धर्म, रुद्र, मनु, सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार, रुचि, ब्रह्मा, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ और नारदका प्रादुर्भाव हुआ। साथ ही बर्हिषद्, अग्निध्यात, क्रव्यक,

आज्यप, सुकालिन, उपहृत एवं दीप्य नामक (सात पितृगण) उत्पन्न हुए। इन बर्हिषदादि सप्त पितृगणोंमें प्रथम तीन पितृगण अमूर्तरूप और शेष चार मूर्तिमान् हैं।

कमलपोनि ब्रह्माके दक्षिण अँगुठेमें ऐश्वर्यसम्पन्न दक्ष प्रजापति और वाम अँगुठेमें उनकी भार्याका जन्म हुआ। प्रजापतिने अपनी उस पत्नीके गर्भसे अनेक शुभ लक्षणांवाली

१. जिससे सब लोग अपनी रक्षा करें, वह रक्षक है। इसी दृष्टिसे रक्षणका अर्थ है—जिसने अपना रक्षण—बचाव आवश्यक है, वे राक्षस हैं।
२. यक्ष धरके देवता हैं। ये धरके लिये पुत्र होते हैं। भक्षण पूजाका एक भाग है। यक्ष धर प्रदान करनेके लिये धनकी कामना करनेवालोंमें भक्षणकी अपेक्षा रखते हैं, इसी दृष्टिसे भक्षणके आधारपर यक्ष नाम सम्पन्न चाहिये। यक्षका अर्थ पूजा भी हो सकता है। इसके लिये अथर्ववेद (७।६१।८) का सत्यतथ्य भी द्रष्टव्य है।

\*\*\*\*\*

कन्याओंको उत्पन्न किया और उन्हें ब्रह्माके मानस पुत्रोंको समर्पित कर दिया। उन्होंने सती नामक पुत्रीका विवाह रुद्रके साथ किया, उनसे रुद्रके असंख्य महापराक्रमशाली पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई।

दक्षने असाधारण रूपवती सुन्दर लक्षणोंवाली ख्याति नामक पुत्री भृगुको समर्पित की, जिससे भृगुके भ्राता और विधाता नामक दो पुत्र हुए। उसी ख्यातिसे भगवान् नारायणकी जो श्री नामक पत्नी हैं, उनकी भी उत्पत्ति हुई। उन श्रीके गर्भसे हरिने 'बल' और 'उन्माद' नामके दो पुत्रोंको उत्पन्न किया है।

महात्मा मनुके आयति और निरति नामवाली दो कन्याएँ हुईं, जिनका विवाह भृगुपुत्र धाता और विधाताके साथ हुआ। उन दोनोंसे एक-एक पुत्रका जन्म हुआ। आयतिके गर्भसे धाताने प्राण और निरतिके गर्भसे विधाताने 'मूकण्डु' को उत्पन्न किया। इन्हीं मूकण्डुसे महामुनि मार्कण्डेयकी उत्पत्ति हुई।

मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमास नामक एक पुत्रको जन्म दिया। उस महात्मा पौर्णमासके दो पुत्र हुए, जिनका नाम विरजा और सर्वग है।

अङ्गिरासे दक्षकन्या स्मृतिसे अनेक पुत्र और सिनीवाली, कुटु, राका तथा अनुमति नामक चार कन्याओंको जन्म दिया।

अनसूयाने अत्रिसे चन्द्रमा, दुर्वास एवं योगी दत्तात्रेय नामक तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया। पुलस्त्यकी पत्नी प्रीतिसे दशोली नामक पुत्र हुआ। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे कर्मश, अशंखीर तथा सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। क्रतुकी पत्नी सुमतिसे स्याट हजार बालाङ्गिरस्य ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई। ये सभी ऊर्ध्वरीता, अद्भुतपर्व परिमाणवाले तथा देदीप्यमान सूर्यके समान तेजस्वी हैं।

वसिष्ठकी पत्नी ऊर्जासे रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, हरण, अनघ, सुतपा और शुक्र—ये सात पुत्र हुए। ये सभी सप्तर्षि थे।

हे हर! उस दक्ष प्रजापतिने शरीरधारी अग्निको स्वाहा नामक पुत्री प्रदान की थी। उस स्वाहादेवीने अग्निदेवसे पावक, पवमान तथा शुचि<sup>१</sup> नामक ओजस्वी तीन पुत्रोंको प्राप्त किया।

दक्षकन्या स्वधाने पितरोसे मेना तथा चैतरणी नामवाली दो पुत्रियोंको जन्म दिया। ये दोनों कन्याएँ 'ब्रह्मवादिनी' थीं। मेनाका विवाह हिमाचलके साथ हुआ। हिमाचलने मेनासे मेनाक नामक पुत्र उत्पन्न किया था तथा गौरी (पार्वती)—नामसे प्रसिद्ध पुत्रीको उत्पन्न किया, जो पूर्वजन्ममें सती थी।

हे शिव! तदनन्तर भगवान् ब्रह्माने अपने ही समान गुणवाले स्वायम्भुव मनुको जन्म दिया और उन्हें प्रजापालनके कार्योंमें नियुक्त किया। इन्हीं ब्रह्मासे देवी शतरूपाका आविर्भाव हुआ। सर्ववैभवसम्पन्न महाराज स्वायम्भुव मनुने तपस्याके प्रभावसे परम शुद्ध तपस्विनी उस शतरूपा नामक कन्याको पत्नीरूपमें ग्रहण किया, जिससे त्रिप्रव्रत और उतावराद नामक दो पुत्र तथा प्रसूति, आकृति और देवहृति नामकी तीन पुत्रियोंका जन्म हुआ। उनमेंसे मनुने आकृति नामक कन्याका विवाह प्रजापति 'रुचि' के साथ किया। प्रसूति तथा देवहृति क्रमशः दक्ष एवं कर्दममुनिको प्रदान की गयीं।

रुचिसे यज्ञ और दक्षिणाका जन्म हुआ। यज्ञसे दक्षिणाके बराह पुत्र हुए, जो महाबलशाली 'याम' (देवगण विशेष)—के नामसे प्रसिद्ध हैं।

दक्ष प्रजापतिने (प्रसूतिसे) चौबीस श्रेष्ठ कन्याओंकी उत्पत्ति की। उन कन्याओंमें व्रद्धा, लक्ष्मी, भृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, ऋद्धि और कीर्ति नामकी जो तेरह कन्याएँ थीं, उनको पत्नीके रूपमें दक्षिणाके पुत्र धर्मने स्वीकार किया। इसके बाद शेष जो छहति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामक ग्यारह कन्याएँ थीं, उनका विवाह क्रमशः मुनिश्रेष्ठ भृगु, महादेव, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि और पितृगणोंके साथ हुआ।

ब्रह्माने काम, लक्ष्मीने दर्प, धृतिने नियम, तुष्टिने संतोष तथा पुष्टिने लोभकी उत्पन्न किया। मेधासे क्रुतका तथा क्रियासे दण्ड, लय और विनय नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ। बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने व्यवसाय

१. पावक, पवमान और शुचि नामक तीन अग्निर्षी कही गयी हैं। उनसे विष्णु-सम्बन्धी अग्नि की 'पावक' तथा मन्वानसे उत्पन्न अग्नि की 'पवमान' कहा जाता है और जो यह सूर्य नामकता है वही 'शुचि' (नामक) अग्नि कहलाता है—

पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च ते त्रयः। निर्मल्यः पवमानः स्वाद् वैद्युतः पावकः स्मृतः॥

यक्षादी तपते सूर्यः शुचिरग्निस्तस्मात् स्मृतः। [ कुमारव्यास १२। १५-१६ ]



एवं शान्तिने क्षेमको उत्पन्न किया। ऋद्धिसे सुख और कीर्तिसे यश उत्पन्न हुए। ये सभी धर्मके पुत्र हैं। धर्मके पुत्र कामकी पत्नीका नाम रति है, उसके पुत्रको हर्ष कहा गया है।

दक्ष प्रजापतिने किसी समय अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें रुद्र और सतीके अतिरिक्त निर्मन्त्रित दक्षके सभी जामाता अपनी पत्नियोंके साथ उपस्थित हुए। ऐसा देखकर बिना बुलाये ही सती भी उस यज्ञमें जा पहुँचीं, किंतु वहाँ अपने पिता दक्षके द्वारा किये गये

तिरस्कारपूर्ण व्यवहारको देखकर उनसे न रहा गया और उन्होंने वहाँपर अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। वे ही सती पुनः हिमालयसे मेनाके गर्भमें उत्पन्न हुईं और गौरीके नामसे प्रसिद्ध होकर शम्भुकी पत्नी बनीं। तदनन्तर उनसे गणेश और कार्तिकेय हुए। (सतीके देहत्यागसे अत्यन्त क्रुद्ध महातेजस्वी भृङ्गीश्वर पिताकपाणि भगवान् सङ्कल्पने यज्ञका विध्वंस करके उस दक्षको यह शाप दिया कि तुम ध्रुवके वंशमें मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करोगे।) (अध्याय ५)

## ध्रुववंश तथा दक्ष प्रजापतिकी साठ कन्याओंकी सन्ततियोंका वर्णन

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा — उत्तानपादकी सूरधि नामक पत्नीसे उत्तम और सुनीति नामवाली भार्यासे ध्रुव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उनमें ध्रुवने देवर्षि नारदकी कृपासे प्राप्त उपदेशके द्वारा देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी आराधना करके श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया।

ध्रुवके महाबलशाली एवं पराक्रमशील शिशुए नामका पुत्र हुआ। उससे प्राचीनर्षि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे उदारधी नामक पुत्रने जन्म लिया। उसके दिवज्ञाय नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र रिपु हुआ। रिपुसे चाक्षुष नामक पुत्रने जन्म लिया। उसीने चाक्षुष मनुकी ख्याति प्राप्त की थी। उस चाक्षुष मनुसे रुद्र उत्पन्न हुआ। तदनन्तर उसके भी ऐश्वर्यसम्पन्न अङ्ग नामवाला एक पुत्र हुआ। उस पुत्रसे वेण (वेन) ने जन्म लिया, जो नास्तिक एवं धर्मच्युत था। मुनियोंके द्वारा किये गये कुशाघातसे उस अधर्मी वेनकी मृत्यु हुई। उसके बाद पुत्र प्राप्त करनेके लिये तपस्वियोंने उसके ऊरु-भागका मन्थन किया, जिससे एक पुत्र हुआ, जो अत्यन्त छोटा और कृष्णवर्णका था। मुनियोंने उससे कहा 'त्वं निर्घोद' अर्थात् तुम चैतो। इसी शब्दके कथनसे उसको निषाद नामकी प्रसिद्धि प्राप्त हुई और वह विन्ध्याचलमें निवास करनेके लिये चला गया।

तदनन्तर उन मुनियोंने पुनः उस वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया। उस मन्थन-कर्मसे वेनकी विष्णुका मानसरूप धारण करनेवाला पृथु नामका पुत्र हुआ। राजा पृथुने प्रजाकी जीवन-रक्षाके लिये पृथिवीका दोहन किया। उस पृथुराजका अन्तर्धान नामक एक पुत्र था। उससे हविर्धान नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उस हविर्धानका पुत्र प्राचीनर्षि हुआ,

जो पृथिवीका एकच्छत्र सम्राट् था। उसने लवण-समुद्रकी पुत्री सामुद्रिके साथ विवाह किया। उस प्राचीनर्षिसे सामुद्रिके दस पुत्रोंको जन्म दिया। ये सभी प्राचेतस नामवाले धनुर्वेदमें विष्णात हुए। धर्माचरणमें निरत रहते हुए इन लोगोंने दस हजार वर्षोंतक जलमें निम्न होकर अत्यन्त कठिन तपस्या की। (तपस्याके प्रभावसे) प्रजापतिका घट प्राप्त करनेवाले उन तपस्वियोंका विवाह मारिषा नामक कन्यासे हुआ।

शिवके शापसे दस दक्षने इसी मारिषाके गर्भसे पुनः जन्म ग्रहण किया। दक्षने सबसे पहले चार प्रकारकी मानस प्रजाओंको सृष्टि की, किंतु महादेवके शापसे उन मानस संतानोंकी अभिवृद्धि नहीं हुई। अतः उन प्रजापतिने 'स्त्री-पुरुष'के संयोगसे होनेवाली मैथुनी सृष्टिकी इच्छा की।

इसके बाद दक्षने प्रजापति खीरणकी पुत्री असिक्नीके साथ विवाह किया। इस असिक्नीके गर्भसे उन दक्षके हजार पुत्र उत्पन्न हुए। नारदके उपदेशसे वे सभी पृथिवीकी अन्तिम सीमाको जाननेके लिये निकल पड़े, किंतु पुनः वापस नहीं आये।

हे हर! इस प्रकार उन हजार पुत्रोंके गृह ही जानेपर दक्षने पुनः हजार पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी 'सम्प्लाश' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन लोगोंने भी अपने बड़े भाइयोंके मार्गका ही अनुसरण किया। पुत्रोंके ऐसे विनाशको देखकर (क्रुद्ध) दक्षने नारदको शाप दे दिया कि 'तुम्हें भी (पृथ्वीपर) जन्म लेना होगा।' अतः नारद कश्यपमुनिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए।

इसके बाद दक्ष प्रजापतिने असिक्नीसे साठ रूपवती कन्याओंको जन्म दिया, जिनमेंसे उन्होंने दो कन्याओंका

विवाह अङ्गिराके साथ किया। उनके द्वारा दो कन्याएँ कृशाश्व, दस कन्याएँ धर्म, चौदह कन्याएँ कश्यप तथा अट्ठाईस कन्याएँ चन्द्रमाको दो गयीं। हे महादेव! इसके पश्चात् दक्षने मनोरमा, भानुमती, विशाला तथा बहुदा नामक चार कन्याओंका विवाह अरिष्टनेमिके साथ किया।

दक्ष प्रजापतिने कृशाश्वको सुप्रजा और जया नामक कन्याओंको प्रदान किया। अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानुमती, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्व—ये धर्मकी दस पत्नियाँ कही गयी हैं। अब मैं कश्यपको पत्नियोंके नामोंको भी कहता हूँ, उनके नाम हैं—अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, कटु, साध्या, इरा, क्रोधा, विनता, सुरभि और खगा।

हे रुद्र! (धर्मकी पत्नी) विश्वासे विश्वेदेव और साध्यासे साध्यगणोंकी उत्पत्ति हुई है। मरुत्वतीसे मरुत्वान् तथा वसुसे (आठ) वसुगणोंका आविर्भाव हुआ। हे शङ्कर! भानुसे (द्वादश) भानु और मुहूर्तासे मुहूर्तगणोंकी उत्पत्ति हुई। लम्बासे शीघ्र तथा यामीसे नागबीजका जन्म हुआ और सङ्कल्पासे सर्वाश्वक सङ्कल्पका प्रादुर्भाव हुआ।

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये आठ वसु माने गये हैं। आपके येतुष्टि, अम, श्रान्त और ध्वनि नामक चार पुत्र हुए। ध्रुवके पुत्ररूपमें भागवान् कालका जन्म हुआ, जो लोकके मंहारक हैं। सोमसे पुत्ररूपमें भगवान् वर्चा हुए, जिनकी कृपासे ही मनुष्य वर्चस्वी होता है। मनोहरासे धरके दुहिण, हुत हव्यवह, शिशिर, प्राण और रमण नामवासे पुत्र उत्पन्न हुए। अनिलकी पत्नीका नाम शिवा है। अनिल और शिवासे पुलोमज तथा अविज्ञातगति नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। अनल (अग्नि) के पुत्र कुमार हैं, जिनकी उत्पत्ति शरकाननपर हुई थी। कृतिकाओंके पालित पुत्र होनेसे इन्हें कार्तिकेय भी कहा जाता है। इनके शाख, विशाख और त्रैगमेय नामक तीन अन्य छोटे भाई भी हैं।

महर्षि देवलको प्रत्यूष नामक वसुका पुत्र माना गया है। प्रभासवसुसे विश्वज्ञात देवशिल्पी विश्वकर्माका जन्म हुआ। विश्वकर्माके महाबलवान् अवैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा तथा पराक्रमी रुद्र—ये चार पुत्र हुए। त्वष्टाके विश्वरूप नामक एक महातपस्वी पुत्र हुआ। हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली—ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं।

ये तीनों लोकोंके स्वामी हैं।

कश्यपकी पत्नी अदितिसे द्वादश सूर्योंकी उत्पत्ति हुई है। उन्हें विष्णु, शक्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंशुमान् तथा भग कहा गया है। ये ही द्वादश आदित्य कहे जाते हैं।

रोहिणी आदि जो प्रसिद्ध सत्ताईस नक्षत्र हैं, वे सब सोम (चन्द्रमा) की पत्नियाँ हैं। दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा सिंहिका नामकी एक कन्या भी हुई, जिसका विवाह विप्रचित्तिके साथ हुआ। हिरण्यकशिपुके महापराक्रमशाली चार पुत्र हुए। उनके नाम अनुहृद (अनुहृद), हृद (हृद), प्रहृद (प्रहृद) तथा संहृद (संहृद) हैं। उनमें प्रहृद विष्णुपरायण भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हुए। संहृदके आयुष्मान्, शिवि और वायकल नामक तीन पुत्र हुए। प्रहृदके पुत्र विरोचन हुए। विरोचनसे बलिकी उत्पत्ति हुई। हे वृषभध्वज! बलिके ती पुत्र हुए, जिनमें बाण सबसे ज्येष्ठ है।

हिरण्याक्षके सभी पुत्र महाबलवान् थे। उनके नाम उत्तुर, स्रुति, भूतसन्तापन, महानाभ, महाबाहु तथा कलनाभ हैं।

दनुके द्विभर्ता, शङ्कर, अयोमुख, शङ्कुशिरा, कपिल, तन्धर, एकवज्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपर्वा, पुलोमा, महामुर और पराक्रमी विप्रचित्ति नामक पुत्र विख्यात हुए।

स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा थी। इसके अतिरिक्त उसे उपदानवी और हयशिरा नामकी दो अन्य स्त्रेष्ठ कन्याएँ हुईं।

वैश्वानरकी दो पुत्रियाँ थीं। उनका नाम पुलोमा तथा कालका था। उन दोनों परम सौभाग्यशालिनी कन्याओंका विवाह मरीचिके पुत्र कश्यपके साथ हुआ था। उन दोनोंसे स्रष्ट हज्जर स्त्रेष्ठ दानव उत्पन्न हुए। कश्यपके इन पुत्रोंको पीलोम और कालकज्र कहा गया है।

विप्रचित्तिके पुत्रोंका जन्म सिंहिकासे हुआ। उनके नाम व्यंश, शल्य, चलवान्, नभ, महाबल, वातापि, नमुचि, इत्यल, खसुमान्, अंजक, नरक तथा कालनाभ हैं।

प्रहृदके कुलमें निवर्तकजघ्न नामक दैत्योंकी उत्पत्ति हुई। ताम्रसे सत्त्वगुणसम्पन्न छः कन्याओंका जन्म हुआ। उनके नाम शुक्ती, श्येनी, भासी, सुशीवी, शुचि और गृधिका हैं।

शुक्तीसे शुज, उत्तुक एवं उत्तुकिकि प्रतिपक्षी काकादि उत्पन्न हुए। श्येनीसे श्येन (बाज), भासीसे भास, गृधिकासे

गृध्र (गीध), शुचिसे जलचर पक्षिगण तथा सुगीवीसे अश्व, ऊँट और गधोंका जन्म हुआ। इसको ताम्रवंश कहा गया है।

विनताके गर्भसे गरुड और अरुण नामक दो विख्यात पुत्र हुए। सुरसाके गर्भसे अपरिमित तेजसम्पन्न सहस्रों सर्पोंकी उत्पत्ति हुई। कद्रूसे भी अत्यधिक तेजस्वी सहस्रों सर्प हुए। इन सभी सर्पोंमें प्रधान सर्प शेष, वासुकि, तक्षक, शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अक्षतर, एतापत्र, नग, कर्कोटक और धनञ्जय हैं। इस सर्पसमूहको क्रोधसे परिपूर्ण जानें। इन सभीके बड़े-बड़े दंत हैं।

क्रोधाने महाबली पिशाचोंको उत्पन्न किया। सुरभिसे गायों और भैंसोंका जन्म हुआ। इरासे समस्त वृक्ष, लता-वल्ली और तृणोंकी उत्पत्ति हुई।

खगासे यक्ष-राक्षस, भुविसे (मृत्यु-गान करनेवाली) अप्सराएँ तथा अरिष्टासे परम सत्वसम्पन्न गन्धर्व उत्पन्न हुए। दितिसे मरुत् नामक उनचास देवोंका जन्म हुआ।

उन मरुद्गणोंमें एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति, चतुर्ज्योति, एकशुक्र, द्विशुक्र तथा महाबलशाली त्रिशुक्र—इन सातोंका एक गण है। ईदृक्, सद्दृक्, अन्यद्दृक्, प्रतिसद्दृक्, मित, समित, सुमित नामवाले मरुत्तोंका परम शक्तिसम्पन्न दूसरा गण है। ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अतिमित्र, अमित्र तथा दूरमित्र नामक मरुत्तोंका तीसरा अजेय गण है। ऋत, ऋतधर्म, विहर्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण और दुर्मेधा नामवाले मरुत्तोंका चौथा गण है। ईदृश, सद्दृश, एतादृश, मिताशन, एतेन, प्रसद्दृश और सुरत नामक महत्तपस्वी मरुत्तोंका पाँचवाँ गण है। हेतुमान्, प्रसव, सुरभ, नादिरुद्र, ध्वनिर्भास, विक्षिप तथा सह नामवाला मरुत्तोंका छठा गण है। द्युति, वसु, अनाधृष्य, लाभ, काम, जयी विराट् तथा उद्वेषण नामका सातवाँ वायु-गण (स्कन्ध) है।

ये सभी उनचास मरुद्गण भगवान् विष्णुके ही रूप हैं। राजा, दानव, देव, सूर्यादि ग्रह तथा मनु आदि इन्हीं श्रीहरिका पूजन करते हैं। (अध्याय ६)

## देवपूजा-विधान, विष्णुपूजोपयोगी वज्रनाभमण्डल, विष्णुदीक्षा तथा लक्ष्मी-पूजा

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाली सूर्यादि देवोंकी पूजाका मैं वर्णन करता हूँ। हे वृषभध्वज! ग्रहदेवताओंके आसनकी पूजाकर निम्न मन्त्रों—

ॐ नमः सूर्यमूर्तये। ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः। ॐ सोमाय नमः। ॐ मङ्गलाय नमः। ॐ बुधाय नमः। ॐ बृहस्पतये नमः। ॐ शुक्राय नमः। ॐ शनैश्चराय नमः। ॐ राहवे नमः। ॐ केतवे नमः। ॐ तेजश्चक्राय नमः—से आसन, आवाहन, पाद्य, आर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नमस्कार, प्रदक्षिण और विसर्जन आदि उपचारोंको प्रदान करके सूर्यादि ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये।

ॐ ह्रां शिवाय नमः—मन्त्रसे आसनकी पूजाकर ॐ ह्रां शिवमूर्तये शिवाय नमः—मन्त्रसे नमस्कार करे और साधक शिवपूजामें सर्वप्रथम— ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ हूं शिखायै वषट्। ॐ हूं कवचाय हुं। ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ हूं अस्त्राय नमः—इन मन्त्रोंसे षडङ्गन्यास करे। तत्पश्चात्— ॐ ह्रां सद्योजाताय नमः। ॐ ह्रीं कामदेवाय नमः। ॐ हूं अघोराय नमः। ॐ हूं नन्दुरायाय नमः। ॐ ह्रीं

ईशानाय नमः—इन मन्त्रोंसे शिवके पाँचों मुखोंकी नमस्कार करना चाहिये।

इसी प्रकार विष्णुपूजामें ॐ वासुदेवासनाय नमः—मन्त्रसे भगवान् विष्णुके आसनकी पूजा करे और— ॐ वासुदेवमूर्तये नमः। ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः। ॐ आं ॐ नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः। ॐ अं ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः। ॐ अः ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः—इन मन्त्रोंके द्वारा साधक हरिके चतुर्मुखको नमन करे। उसके बाद— ॐ नारायणाय नमः। ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः। ॐ हूं विष्णवे नमः। ॐ ह्रीं नमो भगवते नरसिंहाय नमः। ॐ धूं नमो भगवते वराहाय नमः। ॐ कं दं चं शं वैनतेयाय नमः। ॐ जं छं रं सुदर्शनाय नमः। ॐ रं छं दं फं चं गदायै नमः। ॐ वं लं चं हं पाञ्चजन्याय नमः। ॐ चं हं भं हं क्षिरै नमः। ॐ गं हं चं सं पुष्ट्यै नमः। ॐ धं चं वं सं वनमालायै नमः। ॐ सं दं लं श्रीवत्साय नमः। ॐ ठं चं भं चं कौस्तुभाय नमः। ॐ गुरुभ्यो नमः। ॐ इन्द्रादिभ्यो नमः। ॐ विष्वक्सेनाय नमः—इन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिके अवतारों, आयुधों एवं वाहन आदिको नमस्कार करते हुए उन्हें आसनादि उपचार प्रदान करने चाहिये।

हे वृषभध्वज! भगवान् विष्णुकी शक्ति देवी सरस्वतीको मङ्गलकारिणी पूजामें ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः—इस मन्त्रसे देवी सरस्वतीको नमस्कारकर निम्न मन्त्रोंसे पङ्कज-न्यास करना चाहिये—

ॐ ह्रीं हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे नमः । ॐ ह्रीं शिखायै नमः । ॐ ह्रीं कवचाय नमः । ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय नमः । ॐ ह्रीं अस्त्राय नमः ।

इसी प्रकार श्रद्धा, ऋद्धि, कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा तथा मति—ये जो सरस्वतीदेवीकी आठ शक्तियाँ हैं, इनका पूजन निम्न नाममन्त्रोंसे करे—

ॐ ह्रीं श्रद्धायै नमः । ॐ ह्रीं ऋद्धयै नमः । ॐ ह्रीं कलायै नमः । ॐ ह्रीं मेधायै नमः । ॐ ह्रीं तुष्टयै नमः । ॐ ह्रीं पुष्टयै नमः । ॐ ह्रीं प्रभायै नमः । ॐ ह्रीं मत्तयै नमः ।

[ इन शक्तियोंकी पूजा करनेके पश्चात् ] क्षेत्रपाल, गुरु और परम गुरुका ॐ क्षेत्रपालाय नमः । ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ परमगुरुभ्यो नमः—इन मन्त्रोंसे नमस्कार करना चाहिये ।

तदनन्तर कमलवासिनी सरस्वतीदेवीको आसनादि उपचार प्रदान करने चाहिये । पूजनके अनन्तर सूर्यादि देवताओंके लिये प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंसे उनका पवित्रारोहण करना चाहिये ।

श्रीहरिने कहा—हे शिव! भगवान् विष्णुकी विशेष पूजाके लिये पाँच प्रकारके रंगोंसे बने हुए चूर्णके द्वारा वज्रनाभ-मण्डलका निर्माण करना चाहिये, जो सोलह समान कोष्ठकोंसे संयुक्त हो ।

वज्रनाभ-मण्डल बनाकर सबसे पहले न्यास करे और उसके बाद भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे । हृदयके मध्यमें भगवान् विष्णु, कण्ठमें सङ्कर्षण, सिरपर प्रद्युम्न, शिखा-भागमें अनिरुद्ध, सम्पूर्ण शरीरमें ब्रह्मा तथा दोनों हाथोंमें श्रीधरका न्यास करे । तत्पश्चात् 'अहं विष्णुः' ( मैं ही विष्णु हूँ )—ऐसा ध्यान करते हुए पश्चिमके कर्णिका-भागमें भगवान् श्रीहरिकी स्थापना करे । इसी प्रकार मण्डलके पूर्वमें सङ्कर्षण, दक्षिणमें प्रद्युम्न, पश्चिममें अनिरुद्ध और उत्तरमें ब्रह्मकी स्थापना करे । तदनन्तर ईशानकोणमें श्रीधर तथा पूर्वोद दिशाओंमें इन्द्रादि देवोंकी स्थापना करनी चाहिये । यथा—पूर्व दिशामें ( ॐ इन्द्राय नमः मन्त्रसे ) इन्द्र, अग्नि-कोणमें

( ॐ अग्नये नमः मन्त्रसे ) अग्नि, दक्षिण दिशामें ( ॐ उषास्य नमः मन्त्रसे ) यम, नैऋत्य-कोणमें ( ॐ निऋत्ये नमः मन्त्रसे ) निऋति, पश्चिम दिशामें ( ॐ वरुणाय नमः मन्त्रसे ) वरुण, वायुकोणमें ( ॐ वायवे नमः मन्त्रसे ) वायु, उत्तर दिशामें ( ॐ कुबेराय नमः मन्त्रसे ) कुबेर और ईशानकोणमें ( ॐ ईशानाय नमः मन्त्रसे ) ईशान नामक दिक्पालकी स्थापना करे । उसके बाद उन सभी देवोंकी गन्धादि उपचारोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये । इससे साधक परमपदको प्राप्त हो जाता है ।

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! दीक्षित शिष्यको वस्त्रसे अपने दोनों नेत्र बंद करके अग्निमें देवताके मूलमन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये । हे रुद्र! पुत्र-लाभके लिये द्विगुण ( दो सौ सोलह ), साधन्यसिद्धिके निमित्त त्रिगुण ( तीन सौ चौबीस ) और मोक्ष-प्राप्तिकी कामनासे देशिक ( उपदेश आचार्य )-को चाहिये कि वह चतुर्गुण ( चार सौ बत्तीस ) आहुतियाँ उसी विष्णु-मन्त्रसे प्रदान करे ।

विद्वान् देशिकको सबसे पहले भगवान्का ध्यान करना चाहिये । तदनन्तर वे वायवी कला ( चं बीज-मन्त्र )-से शिष्योंकी स्थिति, आग्नेय कला ( रं बीज-मन्त्रके )-द्वारा उनकी मनस्ताप-वेदना तथा वारुण कला ( वं बीज-मन्त्र )-से हृदयकी स्थिति ( धर्मकी अभिरुचि )-का विचार करे । इसके बाद देशिकको उस परम तेजमें आत्मतेजका निक्षेप करके जीवात्मा और परमात्माके ऐक्य अर्थात् अभेद-ज्ञानका चिन्तन करना चाहिये । तदनन्तर वे आकाश-तत्त्वमें 'ॐकार'का ध्यानकर शरीरमें स्थित अन्य कारणभूत वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी-तत्त्वका चिन्तन करे । इस प्रकार प्रणव ( ॐकार )-मन्त्रका चिन्तन करते हुए प्रत्येक कारणभूत तत्त्वोंपर जो साधक विजय प्राप्त करता है, वह शरीरधारी होनेके कारण उस पञ्चमहाभूतके ज्ञानरूपी शरीरको ग्रहण कर लेता है । अतः हे वृषभध्वज! अपने अन्तःकरणमें उस सूक्ष्म शरीरधारी ( क्षेत्रज्ञ ) ज्ञानको उत्पन्न करके प्रत्येक महाभूतको उसीमें संयुक्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

मण्डलादिके निर्माणमें जो लोग असमर्थ हैं, वे मात्र मानसमण्डलको कल्पना करके भगवान् श्रीहरिका पूजन करें । [ शरीरमें ब्रह्मतीर्थादिकी कल्पना की गयी है ।



अतएव] उसी क्रमसे वह (मानस-मण्डल भी) चार द्वारोंसे युक्त है। हाथको पद्म तथा अँगुलियोंको पद्मपत्र कहा गया है। हथेली उस पद्मकी कर्णिका है और नख उसके केशर हैं, इसलिये साधकको उस हाथरूपी कमलमें सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, अग्नि तथा यमसहित त्रीहरीका ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिये।

उसके बाद वह देशिक सावधान होकर अपने उस हाथको शिष्यके सिरपर रखे, [क्योंकि हाथमें विष्णु विद्यमान रहते हैं, अतः] यह हाथ स्वयं विष्णु-स्वरूप है। उस हाथके स्पर्शमात्रसे शिष्यके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर गुरु शिष्यकी विधिवत् पूजा करे और उस शिष्यका नामकरण करे।

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा—[अब मैं] सिद्धि प्राप्त करनेके लिये स्थण्डिल आदिमें बौ जानेवाली श्रीलक्ष्मीकी पूजाके सम्बन्धमें कह रहा हूँ। सबसे पहले—ॐ श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः—यह कहकर साधक—'श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीः'—इन बीजमन्त्रोंसे क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अङ्गुलीमें इस प्रकारसे षडङ्गन्यास करे—

'ॐ श्रीं हृदयाय नमः। ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ श्रीं शिखायै वषट्। ॐ श्रीं कवचाय हुम्। ॐ श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ श्रीः अस्वाय फट्।'।

साधनारत भक्तको अङ्गन्यास करके आसनसहित श्रीमहालक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद चार प्रकारके वर्णोंसे अनुरजित पद्मार्ध चार द्वार और चौंसठ प्रकोष्ठोंसे युक्त मण्डलके मध्य लक्ष्मी और उनके अङ्गोंका तथा एक कोणमें दुर्गा, गण एवं गुरुका, तदनन्तर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करनेके लिये तत्पर साधक अग्नि आदि कोणोंमें क्षेत्रपाल देवोंको पूजा करके हवन करे। तत्पश्चात् वह—'ॐ धं टं डं हं श्रीमहालक्ष्म्यै नमः'—इस महामन्त्रसे पूर्व उल्लिखित परिवारके सहित श्रीमहालक्ष्मीदेवीका पूजन करे।

तदनन्तर उस साधकको 'ॐ श्रीं सरस्वत्यै नमः।' 'ॐ ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै नमः।' 'ॐ ह्रीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा।' 'ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः'—इन मन्त्रोंको कहकर सरस्वतीको नमस्कार करना चाहिये।

(अध्याय ७—१०)

### नवव्यूहार्चनविधि, पूजानुक्रम-निरूपण

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा—[गरुडने] करण्य ऋषिको जो नवव्यूहकी पूजाका वर्णन सुनाया था, उसको (अब) मैं कह रहा हूँ, आप सुनै।

साधक सबसे पहले [योग-क्रियाके द्वारा] जीवात्माको मस्तक, नाभि और [हृदयरूपी] आकाश नामक तत्त्वमें प्रविष्ट करे। तदनन्तर वह 'रे' (इस अग्निबीज) मन्त्रसे प्राश्नीतिक शरीरका शोधन करे। उसके बाद वह 'वं' (इस वायु) बीजमन्त्रसे उस सम्पूर्ण शरीरके लयकी भावना करे। तत्पश्चात् वह 'त्वं' इस बीजमन्त्रसे चराचर जगत्-(के साथ उस विलीन हुए शरीर)-(के सम्प्लावित होनेकी भावना करे। उसके बाद वह 'वं' इस बीजमन्त्रसे पुनः स्वयंमें अमरत्वकी भावना करे। तदनन्तर [अमृतके] बुदबुदोंके बीच 'मैं' ही पीताम्बरधारी चतुर्भुज भगवान् त्रीहरी

हूँ' ऐसा मानकर अत्यन्तत्वके ध्यानमें निगमन हो जाय।

इसके बाद शरीर तथा हाथमें तीन प्रकारका मन्त्र-न्यास करना चाहिये। पहले द्वादशाक्षर बीजमन्त्रसे, तदनन्तर कहे गये बीजमन्त्रसे न्यास और बादमें षडङ्गन्यास करे। इससे साधक साक्षात् वरायणस्वरूप हो जाता है। साधक दक्षिण अङ्गुलिसे प्रारम्भकर मध्यमा अङ्गुलिपर्यन्त न्यास करे। उसके बाद वह पुनः मध्य अङ्गुलिपर ही दो बीजमन्त्रसे न्यास करके पुनः शरीरके विभिन्न अङ्गोंपर न्यास करे। क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, मुख, नेत्र, उदर और पीठ-भागसे अङ्गन्यास करते हुए दोनों बाहु, दोनों हाथ, दोनों जानु और दोनों पैरोंमें भी न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर अपने दोनों हाथोंको कमलवत् आकृति प्रदान करके उसके मध्य-भागमें दोनों अङ्गुष्ठोंको संनिविष्ट करे।

तत्पश्चात् उसी मुद्राकृतिमें परमतत्त्वस्वरूप, अनामय, सर्वेश्वर भगवान् नारायणका चिन्तन करे।

इसके बाद इन्हीं बीजमन्त्रोंसे क्रमशः तर्जनी आदि अङ्गुलियोंमें न्यास करके यथाक्रम सिर, नेत्र, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, जानुद्वय तथा पादद्वयमें भी न्यास करना चाहिये।

बीजमन्त्रोंसे दोनों हाथोंमें न्यास तथा षडङ्गन्यास करके सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करना चाहिये। वह अङ्गुष्ठसे कनिष्ठा अङ्गुलितक बीच बीजमन्त्रोंसे न्यास करे। उसके बाद हाथके मध्य-भागमें नेत्रके बीजमन्त्रसे न्यास करनेका विधान है। अङ्गन्यासमें भी इसी क्रमसे हृदय-भागमें हृदय, मस्तकमें मस्तक, शिखामें शिखा, दोनों स्तन-प्रदेशमें कवच, नेत्रद्वयमें नेत्र तथा दोनों हाथोंमें अस्त्र-बीजमन्त्रको अवस्थित करना चाहिये।

तदनन्तर उन्हीं बीजमन्त्रोंसे दिशाओंको प्रतिबद्ध करके साधक पूजनकी क्रिया प्रारम्भ करे। सबसे पहले एकाग्रचित्त होकर उसको अपने हृदयमें योगपीठका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद वह आग्नेयादिसे पूर्व दिशाओंमें यथाक्रम धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यको विन्यस्त करके पूर्वादि दिशाओंमें अधर्मादिका न्यास करे। यथा— अग्निर्कोनमें 'ॐ धर्माय नमः', नैऋत्यकोणमें 'ॐ ज्ञानाय नमः', वायुकोनमें 'ॐ वैराग्याय नमः' और ईशानकोणमें 'ॐ ऐश्वर्याय नमः', पूर्व दिशामें 'ॐ अधर्माय नमः', दक्षिण दिशामें 'ॐ अज्ञानाय नमः', पश्चिम दिशामें 'ॐ अवैराग्याय नमः' तथा उत्तर दिशामें 'ॐ अनैश्वर्याय नमः' कहकर न्यास करे।

साधक इस प्रकार इन न्यास-विधियोंमें आच्छादित अपने शरीरको आराध्यका पीठ और स्वयंको उसीका स्वरूप समझकर पूर्वाभिमुख उन्नत अवस्थामें स्थिर होकर अनन्त भगवान् विष्णुको अपनेमें प्रतिष्ठित करे। तदनन्तर ज्ञानरूपी सरोवरमें उत्पन्न ऊपरकी ओर उठी हुई कर्णिकामे युक्त शतपत्रवाले आठों दिशाओंमें प्रसरित श्वेत अष्टदल-कमलका ध्यान करे।

तत्पश्चात् साधकको ऋग्वेदादिके मन्त्रोंसे मृगं, चन्द्र तथा अग्निस्वरूप मण्डलोंका क्रमशः एकके ऊपर एकका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद वह पूर्वादि दिशाओंमें

भगवान् केजवके पास ही अवस्थित विमलादि शक्तियोंको अष्टदल-कमलपर विन्यस्त करके नवीं शक्तिको कर्णिकामें स्थापित करे।

इस प्रकार ध्यान करके उस साधकको योगपीठकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वह पुनः मनसे भगवान् विष्णुका अङ्गुष्ठसहित आवाहनकर [उस योगपीठमें उन्हीं] प्रतिष्ठित करे। तदनन्तर पूर्वादि चारों दिशाओंमें अवस्थित चतुर्दल-कमलपर हृदयादिन्यास करना चाहिये। कमलके मध्यभागमें तथा कोणोंपर अस्त्रमन्त्रका न्यास करे। अर्थात् उसके पूर्व दलमें 'हृदयाय नमः', दक्षिण दलमें 'शिरसे नमः', पश्चिम दलमें 'शिखायै नमः', उत्तर दलमें 'कवचाय नमः', मध्यमें 'नेत्रत्रयाय नमः' तथा कोणमें 'अस्त्राय नमः' कहकर न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् पूर्वादि दिशाओंमें यथाक्रम सङ्कर्षण आदिके बीजमन्त्रोंको विन्यस्त करनेका विधान है। तदनन्तर वह पूर्व और पश्चिम दिशाके द्वारपर 'ॐ वैनतेयाय नमः' कहकर वैनतेयको प्रतिष्ठित करे। उसके बाद दक्षिण द्वारपर 'ॐ सुदर्शनाय नमः', 'ॐ सहस्राय नमः' का उच्चारण करके हजार अरीवाले सुदर्शन चक्रको वह स्थापना करे। तदनन्तर दक्षिण द्वारपर 'ॐ क्षीरै नमः' मन्त्रसे श्रीका न्यास करके उत्तर द्वारपर 'ॐ लक्ष्मी नमः' मन्त्रसे लक्ष्मीको प्रतिष्ठित करे।

साधकको इसके बाद उत्तर दिशामें 'ॐ गदायै नमः' मन्त्रसे गदा, कोणोंमें 'ॐ शङ्खायै नमः' मन्त्रसे शङ्खका न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् उन विष्णुदेवके दोनों और आयुधोंका न्यास करना चाहिये। विद्वान् साधक दक्षिणकी ओर शार्ङ्ग (धनुष) तथा देवके बायीं ओर श्पु (बाणों)-का न्यास करे। इसी प्रकार दोनों भागोंमें खड्ग और चर्मका न्यास करे।

तदनन्तर वह साधक मण्डलके मध्य दिशाभेदके अनुसार पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंको प्रतिष्ठित करे और उनके आयुधोंको भी स्थापित करे। उसके बाद विद्वान् साधकको ऊपरकी ओर 'ॐ ब्रह्मणे नमः' मन्त्रसे ब्रह्मा तथा नीचेकी ओर 'ॐ अनन्ताय नमः' मन्त्रसे अनन्तदेवका न्यास करना चाहिये।

इस प्रकार साधक सभी देवोंका न्यास एवं ध्यान करके उनकी पूजा करे और उनके सामने उनकी ही मुद्राका प्रदर्शन करे। अञ्जलिबद्ध होना प्रथम मुद्रा है। इसके प्रदर्शनसे शीघ्र ही देवसिद्धि हो जाती है। दूसरी यन्दिनी मुद्रा है और तीसरी मुद्रा हृदयसंका है। इस मुद्रामें बायें हाथकी मुट्ठीसे दाहिने हाथके अँगूठेको बाँधकर बायें हाथके अँगूठेको ऊपर उठाये हुए हृदयभागसे संलग्न रखना चाहिये। व्यूह-पूजामें मूर्तिभेदसे इन तीन मुद्राओंको साधारण मुद्रा माना गया है। दोनों हाथोंमें अँगूठेसे कनिष्ठापर्यन्त तीन अँगुलियोंको नवाकर क्रमशः उन्हें मुक्त करनेसे आठ मुद्राएँ बनती हैं।

दोनों हाथोंके अँगूठोंसे अपने-अपने हाथकी मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा अँगुलियोंको नीचेकी ओर झुकाकर जो मुद्रा बनायी जाती है, उसको 'नरसिंह-मुद्रा' कहते हैं। दाहिने हाथके ऊपर बायें हाथको उत्तान स्थितिमें रखकर प्रतिमाके ऊपर भीरे-भीरे घुमानेको 'बाराही मुद्रा' कहते हैं। भगवान् बाराहको सदा ही यह प्रिय है। दोनों मुद्रियोंको उत्तान रखकर क्रमशः एक-एक अँगुली सौंभे खोलते हुए सभीको खोल दे। तदनन्तर उन सभी अँगुलियोंकी पुनः मुट्ठी बाँध ले। यह 'अङ्गमुद्रा' कहलाती है। साधकको इन मुद्राओंका प्रदर्शन क्रमशः दसों दिक्पालोंके लिये करना चाहिये।

भगवान् वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ देव-स्वानके अधिकारी देव हैं। साधकको— 'ॐ अ वासुदेवाय नमः' मन्त्रसे वासुदेव, 'ॐ अ बलाय नमः' मन्त्रसे बलराम, 'ॐ अ प्रद्युम्नाय नमः' मन्त्रसे प्रद्युम्न तथा 'ॐ अ अनिरुद्धाय नमः' मन्त्रसे अनिरुद्धकी पूजा करनी चाहिये।

ॐकार, तत्सत्, हुं, क्षीं तथा भूः—ये पाँच क्रमशः नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह और महावराह भगवान्के बीजमन्त्र हैं, इसलिये साधक— 'ॐ नारायणाय नमः' मन्त्रसे भगवान् नारायण, 'ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः' मन्त्रसे

परमोनि ब्रह्मा, 'ॐ हुं विष्णवे नमः' मन्त्रसे विष्णु, 'ॐ क्षीं नरसिंहाय नमः' मन्त्रसे नरसिंह तथा 'ॐ भूः महावराहाय नमः' मन्त्रसे आदिवराहका पूजन करे।

उपर्युक्त इन नौ देवताओं (वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह तथा महावराह) (नवव्यूह)-का वर्ण क्रमशः श्वेत, अरुण, हरिद्रावत् पीत, नील, श्यामल, लोहित, मेघवत् श्याम, अग्निवत् पीत एवं मधु पिङ्गल है। अर्थात् वासुदेव श्वेत, बलदेव अरुण, प्रद्युम्न हरिद्रावत् पीत, अनिरुद्ध नील, नारायण श्याम, ब्रह्मा रक्षाभ, विष्णु मेघवत् श्याम, नरसिंह अग्निवत् पीत तथा बराहदेव मधु पिङ्गल वर्णको तेजस्वी आभासे सुशोभित रहते हैं।

'( ॐ ) के टं चं जं' बीजमन्त्रसे गरुड, '( ॐ ) जं छं चं' बीजमन्त्रसे सुदर्शन, '( ॐ ) चं छं कं चं' बीजमन्त्रसे गदादेवी, '( ॐ ) चं लं मं क्षं' बीजमन्त्रसे शङ्ख, '( ॐ ) चं छं भं हुं' बीजमन्त्रसे श्रीलक्ष्मी, '( ॐ ) नं जं वं शं' बीजमन्त्रसे पुष्टि, '( ॐ ) चं तं' बीजमन्त्रसे वनमाला, '( ॐ ) दं सं' बीजमन्त्रसे श्रीवत्स और '( ॐ ) छं छं पं चं' बीजमन्त्रसे कौस्तुभमणि युक्त हैं। [इसके अतिरिक्त] मैं स्वयं अनन्त (विष्णु) हूँ। ये सभी उस देवाधिदेव विष्णुके अङ्ग हैं।

गरुड कमलके समान लास, गदा कुण्डलार्ण, पुष्टि शिरीष-पुष्पमण्डके समान आभासे समन्वित तथा लक्ष्मी सुवर्ण-कान्तिसे सुशोभित हैं। शङ्ख पूर्ण चन्द्रकी कान्तिके समान श्वेत और कौस्तुभमणि नवोदित अरुणके सदृश वर्णवाला है। चक्र सदृश सूर्यकी कान्तिके सदृश और श्रीवत्स कुन्द पुष्पके समान श्वेत है। वनमाला पाँच वर्णोंसे युक्त पञ्चवर्णी और अनन्त भगवान् मेघकी भाँति श्याम वर्णका है। जिन अस्त्रोंके रंगोंका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है, वे सभी विद्युत्-कान्तिके समान हैं। (भगवान् विष्णुके इन समस्त अङ्गोंको) 'पुण्डरीकाक्ष' नामक विद्यासे अर्घ्य और पाद्यादि समर्पित करने चाहिये। (अध्याय ११)

## पूजानुक्रम-निरूपण

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! देवके पूजनका जो क्रम है, उसके ज्ञानके लिये पूजाविधिके क्रमको कहा जा रहा है। सर्वप्रथम साधकको 'ॐ नमः' मन्त्रसे परमात्माका स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर वह 'यं रं वं तम्' इन बीजमन्त्रोंके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके 'ॐ नमः' इस मन्त्रसे चतुर्भुज भगवान् विष्णुके रूपमें ही अपनेको मान ले।

तत्पश्चात् करन्यास तथा देहन्यास करे। तदनन्तर हृदयमें योगपीठकी पूजाका विधान है। जिसको इन मन्त्रोंसे करे—

'ॐ अनन्ताय नमः। ॐ धर्माय नमः। ॐ ज्ञानाय नमः। ॐ वैराग्याय नमः। ॐ ऐश्वर्याय नमः। ॐ अधर्माय नमः। ॐ अज्ञानाय नमः। ॐ अवैराग्याय नमः। ॐ अनैश्वर्याय नमः। ॐ पचाय नमः। ॐ अहित्यमण्डलाय नमः। ॐ चन्द्रमण्डलाय नमः। ॐ वह्निमण्डलाय नमः। ॐ विमलायै नमः। ॐ उत्कर्षिण्यै नमः। ॐ ज्ञानायै नमः। ॐ क्रियायै नमः। ॐ योगायै नमः। ॐ प्रहृष्यै नमः। ॐ सत्तायै नमः। ॐ ईशानायै नमः। ॐ सर्वलोमुख्यै नमः। ॐ चाक्षोषाक्षाय होतस्त्राय नमः।'

इसके बाद साधक कर्णिकाके मध्यमें 'अं वासुदेवाय नमः' कहकर भगवान् वासुदेवकी नमस्कार करके निम्न मन्त्रोंसे हृदयादिन्यास करे—

'अं हृदयाय नमः। ईं शिरसे नमः। ऊं शिखायै नमः। ऐं कवचाय नमः। औं नेत्रत्रयाय नमः। अः फट् अस्त्राय नमः।'

तदनन्तर—'अं सङ्कर्षणाय नमः। अं प्रद्युम्नाय नमः। अं अनिरुद्धाय नमः। ॐ अः नारायणाय नमः। ॐ तत्सङ्ग्रहणे नमः। ॐ हुं विष्णवे नमः। क्षौं नरसिंहाय नमः। भूर्वताहाय नमः।'—इन मन्त्रोंसे संकर्षण आदि व्यूहदेवोंको नमस्कार करे।

तत्पश्चात् साधक निम्न मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुके वाहन एवं आयुधादिको नमस्कार करे—

'कं टं जं शं वैनतेयाय (नमः)। जं खं वं सुदर्शनाय (नमः)। खं वं फं वं गदायै (नमः)। वं लं वं क्षं पाङ्कजत्रयाय (नमः)। वं डं वं भं हं श्रियै (नमः)। गं डं वं शं पृथ्वी (नमः)। धं वं वनमालायै (नमः)। दं शं श्रीवत्साय (नमः)। छं डं वं कौस्तुभाय (नमः)। शं शार्ङ्गाय (नमः)। ईं इण्डिध्याय (नमः)। चं चर्मणे (नमः)। खं खड्गाय (नमः)।

तत्पश्चात् इन बीजमन्त्रोंसे इन्द्रादि दिक्पालोंको नमस्कार करना चाहिये—

(ॐ) लं इन्द्राय सुराधिपतये (नमः)। (ॐ) रं अग्नये तेजोऽधिपतये (नमः)। (ॐ) यमाय धर्माधिपतये (नमः)। (ॐ) क्षं नैर्मलाय रक्षोऽधिपतये (नमः)। (ॐ) वं वरुणाय जलाधिपतये (नमः)। (ॐ) यों वायवे प्राणाधिपतये (नमः)। (ॐ) यों धनदाय धन्याधिपतये (नमः)। (ॐ) हां ईशानाय विश्वाधिपतये (नमः)।

इसके बाद क्रमशः पूर्वोक्त इन्द्र आदि दिक्पाल देवताओंके निम्न आयुधोंको प्रणाम करनेका विधान है—

(ॐ) वज्राय (नमः)। (ॐ) शक्रायै (नमः)। (ॐ) दण्डाय (नमः)। (ॐ) खड्गाय (नमः)। (ॐ) पाशाय (नमः)। (ॐ) ध्वजाय (नमः)। (ॐ) गदायै (नमः)। (ॐ) त्रिशूलाय (नमः)।

इसके बाद भगवान् अनन्त तथा ब्रह्मादेवको इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

(ॐ) लं अनन्ताय पातालाधिपतये (नमः)। (ॐ) खं ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये (नमः)।

अब इसके बाद साधक भगवान् वासुदेवकी नमस्कार करनेके लिये द्वादशक्षर-मन्त्रका प्रयोग करे, साथ ही द्वादशक्षर-मन्त्रके बीजमन्त्रों और दशाक्षर-मन्त्रके बीजमन्त्रोंको इस प्रकार नमस्कार करे—

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः।'

ॐ ॐ नमः। ॐ नं नमः। ॐ यों नमः। ॐ ॐ ॐ नमः। ॐ गं नमः। ॐ वं नमः। ॐ हें नमः। ॐ खां नमः। ॐ सुं नमः। ॐ टें नमः। ॐ क्षां नमः। ॐ यं नमः। ॐ ॐ नमः। ॐ नं नमः। ॐ यों नमः। ॐ नां नमः। ॐ रां नमः। ॐ यं नमः। ॐ शां नमः। ॐ वं नमः।

द्वादशक्षर-मन्त्र— ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, दशाक्षर-मन्त्र— ॐ नमो नारायणाय नमः तथा अष्टाक्षर-मन्त्र— ॐ पुरुषोत्तमाय नमः—इन मन्त्रोंका यथाशक्ति जप करके निम्न मन्त्रसे भगवान् पुण्डरीकाक्षको नमस्कार करे—

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।

सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज॥

हे पुण्डरीकाक्ष! (कमलनयन) आपको नमस्कार है। हे विश्वके कारणभूत! आपको मेरा प्रणाम है। हे ब्रह्मण्यदेव! आपको नमस्कार है। हे महापुरुष! हे पूर्वज! आपको मेरा प्रणाम है।



इस प्रकार भगवान् विष्णुकी स्तुति करके साधकको हवन करना चाहिये। तदनन्तर साधक (महापुरुषविद्या नामक) मन्त्रका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करके अर्घ्य प्रदान करे और 'जितं तेन' (यह स्तोत्र ही महापुरुषविद्या है) इसी स्तोत्रसे उन भगवान् नारायणको बारम्बार प्रणाम करना चाहिये।

तत्पश्चात् [अग्निकी स्थापना करके] साधक उस अग्निदेवकी पूजा करनेके बाद हवन करे। अपने (यथाविहित) बीजमन्त्रसे देवाधिदेव भगवान् विष्णु तथा अङ्गमन्त्रोंके द्वारा अच्युतादि आङ्गिक देवताओंको आहुति प्रदान करे। सबसे पहले मन्त्रविद् साधकको कुण्डमें ॐकारके द्वारा [तीन रेखाओंका] उल्लेखन करना चाहिये और उसके बाद यहकुण्डका अभ्युक्षण<sup>१</sup> करना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि धामजपूर्वक हवनकुण्डमें अग्नि स्थापित करके उत्तम फल आदिसे सविधि उसकी पूजा करनी चाहिये।

पहले साङ्गोपाङ्ग देव ब्रह्माका मनसे ध्यानकर मण्डलमें उन सभीको स्थापित करे। तदनन्तर वह साधक वासुदेव-मन्त्रसे एक सौ आठ बार आहुति दे। तत्पश्चात् वह सङ्कर्षण आदि देवोंके बीजमन्त्रसे उन छः देवोंकी भी पूजा करके अङ्ग देवताओंको तीन-तीन और दिक्पालोंको एक-एक आहुति प्रदान करे। उसके बाद हवन पूर्ण होनेपर साधकको पुनः एकत्राघचित स्थित होकर पूर्णाहुति देनी चाहिये।

तदनन्तर वह साधक 'वाणीसे अतीत उस परमात्मा'में अपने आत्माको लीन करे और निम्नलिखित मन्त्रसे

वासुदेव और उन सभी देवोंका विसर्जन करे—

'गच्छ गच्छ परं स्थानं यत्र देवो निरञ्जनः॥

गच्छन्तु देवताः सर्वाः स्वस्थानस्थितिहेतवे।'

'हे देवाधिदेव भगवान् वासुदेव! अब आप उस अपने परम स्थानको प्राप्त करें, जहाँपर निर्मल (प्रकाशस्वरूप) परम ब्रह्माका निवास है। अङ्गदेव, सङ्कर्षणादि और इन्द्रादि दिक्पाल! आप सभी देव अपने-अपने स्थानमें निवास करनेके लिये प्रस्थान करें!'

सुदर्शन, श्रीहरि, अच्युत, त्रिविक्रम, शत्रुघ्न, वासुदेव, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण और पुरुषसे युक्त देवोंका (एक जो समूह है उसे) नवव्यूह माना गया है। इसमें दसवें परम तत्त्वका योग होनेसे यह दशात्मक कहा जाता है। इसी नवव्यूहमें अनिरुद्ध तथा अनन्तका संनिवेश होनेसे यह एकादश व्यूह द्वादशात्मक कहलाता है।

अङ्कित चक्रोंमें उस प्रधान देवकी पूजा करनेपर वह (साधकके) घर आदिकी रक्षा करता है। अतः निम्न मन्त्रोंसे चक्रादिकी पूजा करनी चाहिये—

ॐ चक्राय स्वाहा। ॐ विचक्राय स्वाहा। ॐ सुचक्राय स्वाहा। ॐ महाचक्राय स्वाहा। ॐ असुरान्तकृते हुं फट्। ॐ हुं महारार हुं फट्।

उपर्युक्त मन्त्रोंसे की गयी पूजा द्वारकाचक्रकी पूजा कही जाती है। इस प्रकार सम्पन्न की गयी चक्रकी पूजा 'घरमें' सब प्रकारसे रक्षा करनेवाली तथा भङ्गलदायिनी है। (अध्याय १२)

### विष्णुपञ्चस्तोत्र<sup>२</sup>

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! अब मैं विष्णुपञ्च नामक स्तोत्र कहता हूँ। यह स्तोत्र (बड़ा ही) कल्याणकारी है। उसे सुने—

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णवं पञ्चमे शुभम्।  
नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम्॥  
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।  
यदा कौमोदकीं गृह्य प्रयत्नात् नमोस्तु ते॥  
याभ्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।  
हस्तमादाय सीनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम॥

प्रतीच्यां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।

मुस्तं ज्ञातं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्॥

उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः।

खड्गमादाय चर्माथ अस्त्रजस्वादिकं हरे॥

नमस्ते रक्ष रक्षोऽप्य ऐशान्या शरणं गतः।

पाञ्चजन्यं महाशङ्खमुपोष्यं च पङ्कजम्॥

प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां यज्ञशूकरे।

चन्द्रसूर्यं समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा॥

वैजंत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेसरिन्।

१. 'अभ्युक्षण' जलके द्वारा पवित्र करनेको एक शास्त्रीय विधि है।

२. 'पञ्च'का अर्थ है—पक्षक। यह विष्णुका लीन हो गयेका रक्षक है। इसलिये 'विष्णुपञ्चस्तोत्र' कहा जाता है।

३. कामनपुराण अध्याय १७ के अनुसार 'यज्ञशूकर' पाठ उचित है।

वैजयन्ती सम्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम्॥  
वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते।  
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरिक्षे जगद्देव॥  
मां रक्षस्वाजित सदा नमस्तेऽम्बधराजित।  
विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रमातले॥  
अकूपारं नमस्तुभ्यं महावीर नमोऽस्तु ते।  
करशीर्षाद्यङ्गुलीषु सत्य त्वं बाहुपञ्चरम्॥  
कृत्वा रक्षस्य मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम।  
एतदुक्तं शङ्कराय वैष्णवं पञ्चरं महत्॥  
पुरा रक्षार्थमीशान्याः काल्पायन्या युषध्वज।  
नाशायामास सा येन चापरे भट्टिवासुरम्॥  
दानवं रक्तबीजं च अन्यांश्च सुरकण्ठकात्।  
एतज्जपन्तो भक्त्या शत्रून् विजयते सदा॥

(१२।१-१४)

हे गोविन्द! आपको नमस्कार है। आप सुदर्शनचक्र लेकर पूर्व दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पद्मनाभ! आपको मेरा नमन है। आप अपनी कौमोदकी गदा धारणकर दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पुरुषोत्तम! आपको मेरा प्रणाम है। आप सौनन्द नामक हस्त लेकर पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष! आप शालन नामक मुसल हाथमें लेकर उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करें। हे जगन्नाथ! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे हरे! आपको मेरा नमस्कार है। आप खड्ग, चर्म (दाल) आदि अस्त्र-शस्त्र ग्रहणकर ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। हे

दैत्यविनाशक! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे यज्ञवराह (महावराह)! आप पाञ्चजन्य नामक महाशङ्ख और अनुघोष (अनुबोध) नामक पद्म ग्रहणकर अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी रक्षा करें। हे दिव्य-शरीर भगवान् नृसिंह! आप सूर्यके समान देदीप्यमान और चन्द्रके समान चमत्कृत खड्गको धारणकर वैश्रवत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। हे भगवान् हयग्रीव! आपको प्रणाम है। आप वैजयन्ती माला तथा कण्ठमें सुशोभित होनेवाले श्रोतस नामक आभूषणसे विभूषित होकर वायुकोणमें मेरी रक्षा करें। हे जनार्दन! आप वैनतेय गुरुडपर आरुढ़ होकर अन्तर्निक्षेपमें मेरी रक्षा करें। हे अजित! हे अपराजित! आपको सदैव मेरा प्रणाम है। हे कूर्मराज! आपको नमस्कार है। हे महावीर! आपको नमस्कार है। हे सत्यस्वरूप महाविष्णो! आप अपनी बाहुको पञ्चर (रक्षक)- जैसा स्वीकार करके हाथ, सिर, अङ्गुली आदि समस्त अङ्ग-उपाङ्गसे युक्त मेरी शरीरकी रक्षा करें। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है।

हे युषध्वज! मैंने प्राचीन कालमें सर्वप्रथम भागवती ईशान्ती काल्पायनीकी रक्षाके लिये इस विष्णुपञ्चर नामक स्तोत्रको कहा था। इसी स्तोत्रके प्रभावसे उस काल्पायनीने स्वयंको अमर समझनेवाले भट्टिवासुर, रक्तबीज और देवताओंके लिये कण्ठक बने हुए अन्यान्य दानवीका विनाश किया था। इस विष्णुपञ्चर नामक स्तुतिका जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जप करता है, वह सदा अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेमें सफल होता है। (अध्याय १३)

## ध्यान-योगका वर्णन

श्रीहरिने पुनः कहा—अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले योगको कह रहा हूँ। योगिपैक्य द्वारा ध्यानगम्य जो देव हैं, उन्हें ही ईश्वर कहा जाता है। हे महेश्वर! उनके लिये किये जानेवाले योगको सुन। यह योग समस्त पार्श्वोंका विनाशक है। योगीको आत्मस्वरूप परमात्माकी स्वयंमें इस प्रकार भावना करनी चाहिये—

मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही सभीका ईश्वर हूँ, मैं ही अनन्त हूँ और मैं ही छः ऊर्मियों<sup>१</sup> (शोक, मोह, जरा, मृत्यु, दुःख एवं पिपासा)-से रहित हूँ। मैं ही वासुदेव हूँ, मैं ही जगन्नाथ और ब्रह्मरूप हूँ। मैं ही समस्त प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला आत्मा और सर्वदेहविमुक्त परमात्मा हूँ। मैं ही शरीरधर्मसे रहित, शर<sup>२</sup> (समस्त प्रपञ्च), अक्षर (कूटस्थ चेतन भोक्ता)-से

१. विशालाक्ष— गुरुडवशाविलेप (शब्दकल्पद्रुम)।

२. अकूपार— कूर्मराज (मैट्टिनीकोश)।

३. 'शोकमोही जगामृत्यु क्षुत्पिपासे प्रदूषितः' (शब्दकल्पद्रुम)।

४. 'शरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते' (गीता १५।१७)-के अनुसार समस्त प्रपञ्च शर है। 'अक्षर' का अर्थ कूटस्थ है। श्रीधरसरस्वतीने 'कूटस्थ' का अर्थ चेतन भोक्ता किया है।

अतीत, मनके साथ पाँच इन्द्रियोंमें मूल शक्तिरूपसे स्थित मैं स्वयं अतीन्द्रिय (इन्द्रियोंसे अग्रगण्य) होता हुआ द्रष्टा, श्रोता एवं प्राप्ता (गन्ध ग्रहण करनेवाला) हूँ।

मैं इन्द्रियधर्मसे रहित, जगत्का स्रष्टा, नाम और गोत्रसे शून्य, मननशील सबके मनमें स्थित देवता हूँ, किंतु मुझमें मन नहीं है और न तो उसका धर्म ही है। मैं ही विज्ञान<sup>१</sup> तथा ज्ञानस्वरूप<sup>२</sup> हूँ। मैं ही समस्त ज्ञानका आश्रय, बुद्धिरूप गुह्यमें स्थित प्राणिमात्रका साक्षी (तटस्थ द्रष्टा) तथा सर्वज्ञ और बुद्धिकी अधीनतासे मुक्त हूँ। मैं ही बुद्धिके धर्मोंसे भी शून्य हूँ, मैं ही सर्वस्वरूप, सर्वगतमनस्स्वरूप और प्राणिमात्रके किसी भी प्रकारके बन्धनसे सर्वथा विनिर्मुक्त तथा प्राणधर्म<sup>३</sup> (बुभुक्षा एवं पिपासा) से विमुक्त हूँ। मैं ही प्राणियोंका प्राणस्वरूप हूँ, मैं ही महाज्ञान, भयशून्य तथा अहंकारादिसे

रहित हूँ और अहंकारजन्य विकारोंसे भी मैं रहित हूँ।

मैं जगत्का साक्षी, जगत्का नियन्ता और परमानन्दस्वरूप हूँ। जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति—इन सभी अवस्थाओंमें जगत्का साक्षी होते हुए भी मैं इन अवस्थाओंसे रहित हूँ। मैं ही तुरीय ब्रह्म और विध्वंसा हूँ। मैं ही दृगरूप<sup>४</sup> हूँ। मैं ही निर्गुण, मुक्त, बुद्ध, शुद्ध-प्रबुद्ध, अजर, सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप एवं शिवस्वरूप परमात्मा हूँ।

इस प्रकार जो विद्वान् इन परमपद-परमेश्वरका ध्यान करते हैं, वे निश्चय ही ईश्वरका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं, इसमें संदेह नहीं है। हे सुखत शङ्कर! आपसे ही इस ध्यानयोगकी चर्चा मैंने की है। जो व्यक्ति सदैव इस ध्यानयोगका पाठ (चिन्तन-मनन) करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १४)

## विष्णुसहस्रनाम

**श्रीरुद्रने पूछा—**हे प्रभो! मनुष्य किस मन्त्रका जप करके इस अथाह संसार-सागरसे पार हो सकता है? आप जप करने-योग्य उस श्रेष्ठ मन्त्रको मुझे बतायें।

**श्रीहरिने कहा—**हे रुद्र! परम ब्रह्म, परमात्मा, नित्य, परमेश्वर भगवान् विष्णुकी सहस्रनामसे स्तुति करनेपर मनुष्य भवसागरको पार कर सकता है। हे वृषभध्वज! मैं उस पवित्र, श्रेष्ठतम और जप करने-योग्य (विष्णु) 'सहस्रनाम' को कहता हूँ। वह समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाला स्तोत्र है। आप उसे सावधान होकर सुनें—

ॐ वासुदेवो महाविष्णुर्वाष्पने वासवो वसुः ।  
बालचन्द्रनिभो बालो बलभद्रो बलाधिपः ॥  
बलिबन्धनकृद्बधा वरेण्यो वेदवित् कविः ।  
वेदकर्ता वेदरूपो वेद्यो वेदपरिप्लुतः ॥  
वेदाङ्गवेत्ता वेदेशो बलाधारो बलादर्नः ।  
अविकारो वेशश्च वरुणो वरुणाधिपः ॥  
वीरहा च बृहद्दीरो वन्दितः परमेश्वरः ।  
आत्मा च परमात्मा च प्रत्यगात्मा वियत्परः ॥

पद्मनाभः पद्मनिधिः पद्महस्तो गदाधरः (धराधरः) ।  
परमः परभूतश्च पुरुषोत्तम ईश्वरः ॥  
पद्मजङ्घुः पुण्डरीकः पद्ममालाधरः प्रियः ।  
पद्माक्षः पद्मर्धश्च पर्जन्यः पद्मसंस्थितः ॥  
अपारः परमार्थश्च पटाणां च परः प्रभुः ।  
पण्डितः पण्डितैश्चक्षुश्च पवित्रः पापमर्दकः ॥  
शुद्धः प्रकाशरूपश्च पवित्रः परिरक्षकः ।  
पिपासावर्जितः पाष्टः पुरुषः प्रकृतिस्तथा ॥  
प्रधानं पृथिवीपथं पद्मनाभः प्रियप्रदः (शिवप्रदः) ।  
सर्वेशः सर्वंगः सर्वः सर्ववित् सर्वदः सुरः (परः) ॥  
सर्वस्य जगतो धाम सर्वदर्शी च सर्वभूत ।  
सर्वानुग्रहकृदेवः सर्वभूतहृदि स्थितः ॥  
सर्वपूज्यश्च सर्वोद्यः सर्वदेवनमस्कृतः ।  
सर्वस्य जगतो मूलं सकलतो निष्कलोऽनलः ॥  
सर्वगोप्ता सर्वनिष्ठः सर्वकारणकारणम् ।  
सर्वध्येयः सर्वमित्रः सर्वदेवस्वरूपधृक् ॥  
सर्वाध्यक्षः सुराध्यक्षः सुरासुरनमस्कृतः ।

१. 'विज्ञान'—परमार्थज्ञान। २. 'ज्ञान'—व्यावहारिक ज्ञान। ३. बुभुक्षा य पिपासा य प्राणधर्म—(सन्दकल्पद्रुप)।

४. 'दृगरूप' का तात्पर्य यह है—समस्त प्रपञ्च द्रष्टा, दृश्य एवं दृष्टि—इन तीनोंमें अन्तर्हित है। परमेश्वर विष्णु ही द्रष्टा हैं, वे ही दृश्य हैं, दृष्टि भी वे ही हैं। यह दृष्टि ही 'दृग्' शब्दसे कहो जाती है।

दुष्टानां चासुराणां च सर्वदा घातकोऽन्तकः ॥	महाशान्तो महाभागो मधुसूदन एव च ॥
सत्यपालश्च सन्नाभः सिद्धेशः सिद्धवन्दितः ।	महावीर्यो महाप्राणो मार्कण्डेयविन्दितः ।
सिद्धसाध्यः सिद्धसिद्धः साध्यसिद्धो ( सिद्धसिद्धः ) इति ॥	मायाया मायया बद्धो मायया तु विवर्जितः ॥
शरणं जगत्तत्रैव श्रेयः क्षेमस्तत्रैव च ।	मुनिस्तुतो मुनिर्मित्रो महाना ( रा ) सो महाहनुः ।
शुभकृच्छोभनः सौम्यः सत्यः सत्यपराक्रमः ॥	महाबाहुर्महादान्तो ( महादन्तो ) मरणेन विवर्जितः ॥
सत्यास्थः सत्यसङ्कल्पः सत्यवित् सत्य ( त्र ) दस्तथा ।	महावक्रो महात्मा च महाकायो महोदरः ।
धर्मो धर्मी च कर्मो च सर्वकर्मविवर्जितः ॥	महापादो महाग्रीवो महामानी महामनाः ॥
कर्मकर्ता च कर्मैव क्रिया कार्य तत्रैव च ।	महागतिर्महाकीर्तिर्महाकपो महासुरः ।
श्रीपतिर्नृपतिः श्रीमान् सर्वस्य पतिकर्जितः ॥	मधुश्च माधवश्चैव महादेवो महेश्वरः ॥
सदेवानां पतिश्चैव वृक्षीनां पतिरीदितः ।	मत्सेन्यो मत्सरूपी च मानवीयो मत्सेधरः ( महेश्वरः ) ।
पतिर्हिरण्यगर्भस्य त्रिपुरान्तपतिस्तथा ॥	महाकातो महाभागो महेशोऽतीतमानुषः ॥
पशूनां च पतिः प्रायो वसूनां पतिरेव च ।	मानवश्च <sup>१</sup> मनुश्चैव मानवानां प्रियङ्गुः ।
पतिराखण्डलस्यैव वरुणस्य पतिस्तथा ॥	मृगश्च मृगपृथ्वश्च मृगार्णा च पतिस्तथा ॥
वनस्पतीनां च पतिरनिलस्य पतिस्तथा ।	बुधस्य च पतिश्चैव पतिश्चैव बृहस्पतेः ।
अनलस्य पतिश्चैव यमस्य पतिरेव च ॥	पतिः शनैश्चरस्यैव राहोः केतोः पतिस्तथा ॥
कुबेरस्य पतिश्चैव नक्षत्राणां पतिस्तथा ।	लक्ष्मणो लक्ष्मणश्चैव सम्बीष्टो ललितस्तथा ।
ओषधीनां पतिश्चैव वृक्षाणां च पतिस्तथा ॥	नानालङ्कारसंयुक्तो नानाचन्दनचर्चितः ॥
नागानां पतिरर्कस्य दक्षस्य पतिरेव च ।	नानारसैर्न्यालद्वयो नानाधुष्योपशोभितः ।
सुहृदां च पतिश्चैव नृपाणां च पतिस्तथा ॥	राजो रमापतिश्चैव सभार्यः <sup>२</sup> परमेश्वरः ॥
गन्धर्वाणां पतिश्चैव असूनां पतिरुत्तमः ।	रत्नदो रत्नहतां च रूपी रूपविचर्जितः ।
पर्वतानां पतिश्चैव निम्नगानां पतिस्तथा ॥	महाकपोत्तमश्च सौम्यरूपस्तत्रैव च ॥
सुराणां च पतिः श्रेष्ठः कपिलस्य पतिस्तथा ।	नीलमेघनिभः शुद्धः कालमेघनिभस्तथा ।
लतानां च पतिश्चैव वीरुधां च पतिस्तथा ॥	धूमवर्णः पीतवर्णो नानारूपो ( नानावर्णो ) ह्यवर्णकः ॥
मुनीनां च पतिश्चैव सूर्यस्य पतिरुत्तमः ।	विरूपो रूपदश्चैव शुक्लवर्णस्तत्रैव च ।
पतिश्चन्द्रमसः श्रेष्ठः शुकस्य पतिरेव च ॥	सर्ववर्णो महायोगी यज्ञो ( यान्यो ) यज्ञकुदेव च ॥
ग्रहाणां च पतिश्चैव राक्षसानां पतिस्तथा ।	सुवर्णवर्णवांश्चैव सुवर्णाख्यस्तत्रैव च ।
किन्नराणां पतिश्चैव द्विजाणां पतिरुत्तमः ॥	सुवर्णावयवश्चैव सुवर्णः स्वर्णमेखलः ॥
सरितां च पतिश्चैव समुद्राणां पतिस्तथा ।	सुवर्णस्य द्रवत्वात् सुवर्णैस्तत्रैव ( सुवर्णांस्तत्रैव च ) च ।
सरसां च ( रसानां च ) पतिश्चैव भूतानां च पतिस्तथा ॥	सुवर्णस्य प्रियश्चैव सुवर्णाख्यस्तत्रैव च ॥
वेतालानां पतिश्चैव कृष्णण्डानां पतिस्तथा ।	सुपर्णां च महापर्णां सुपर्णस्य च कारणम् ।
पक्षिणां च पतिः श्रेष्ठः पशूनां पतिरेव च ॥	वैनतेयस्तथादित्य आदिरादिकरः शिवः ॥
महात्मा मङ्गलो मेघो मन्दरो मन्दरेश्वरः ।	कारणं महत्तत्रैव प्रधानस्य च कारणम् ।
मेरुर्माता प्रमाणं च माधवो मत्तवर्जितः ॥	शुद्धीनां कारणं चैव कारणं पन्नसस्तथा ॥
मालाधरो महादेवो महादेवेन पूजितः ।	कारणं चेतसश्चैव अहङ्कारस्य कारणम् ।



भूतानां कारणं तद्वत् कारणं च विभावसोः ॥  
 आकाशकारणं तद्वत् पृथिव्याः कारणं परम् ॥  
 अण्डस्य कारणं चैव प्रकृतेः कारणं तथा ॥  
 देहस्य कारणं चैव यक्षुषश्चैव कारणम् ॥  
 श्रोत्रस्य कारणं तद्वत् कारणं च त्वचस्तथा ॥  
 जिह्वायाः कारणं चैव घ्राणस्यैव च कारणम् ॥  
 हस्तयोः कारणं तद्वत् पादयोः कारणं तथा ॥  
 वाचश्च कारणं तद्वत् पायोश्चैव तु कारणम् ॥  
 इन्द्रस्य कारणं चैव कुबेरस्य च कारणम् ॥  
 यमस्य कारणं चैव ईशानस्य च कारणम् ॥  
 यक्षाणां कारणं चैव राक्षसां कारणं परम् ॥  
 नृपाणां कारणं श्रेष्ठे धर्मस्यैव तु कारणम् ॥  
 जन्तूनां कारणं चैव वसूनां कारणं परम् ॥  
 मनुनां कारणं चैव पक्षिणां कारणं परम् ॥  
 मृगीनां कारणं श्रेष्ठे योगिनां कारणं परम् ॥  
 सिद्धानां कारणं चैव यक्षाणां कारणं परम् ॥  
 कारणं किन्नराणां च गन्धर्वाणां च कारणम् ॥  
 नदानां कारणं चैव नदीनां कारणम् परम् ॥  
 कारणं च समुद्राणां वृक्षाणां कारणं तथा ॥  
 कारणं वीरुधां चैव लोकानां कारणं तथा ॥  
 पातालकारणं चैव देवानां कारणं तथा ॥  
 सर्पाणां कारणं चैव श्रेयसां कारणं तथा ॥  
 पशूनां कारणं चैव सर्वेषां कारणं तथा ॥  
 देहात्मा चेन्द्रियात्मा च आत्मा बुद्धिस्तथैव च ॥  
 मनसश्च तथैवात्मा आत्माहङ्कारचेतसः<sup>१</sup> ॥  
 जाग्रतः स्वपतश्चात्मा महदात्मा परमस्तथा ॥  
 प्रधानस्य परात्मा च आकाशात्मा ह्यर्णो तथा ॥  
 पृथिव्याः परमात्मा च रसस्यात्मा तथैव च ॥  
 गन्धस्य परमात्मा च रूपस्यात्मा परमस्तथा ॥  
 शब्दात्मा चैव वागात्मा स्पर्शात्मा पुरुषस्तथा ॥  
 श्रोत्रात्मा च त्वगात्मा च जिह्वात्मा परमस्तथा ॥  
 घ्राणात्मा चैव हस्तात्मा पादात्मा परमस्तथा ॥  
 उपस्थस्य तथैवात्मा पाण्यात्मा परमस्तथा ॥  
 इन्द्रात्मा चैव अग्रात्मा रुद्रा ( शान्ता ) त्वा च मनोस्तथा ॥  
 दक्षप्रजापतेरात्मा सत्या ( त्वष्टा ) त्वा परमस्तथा ॥

ईशात्मा परमात्मा च रीशात्मा मोक्षविद्यतिः ॥  
 यन्मर्त्याश्च यन्धर्माश्च दूरी भुवनात्कः ( असुखनतकः ) ॥  
 ह्रीप्रवर्तनशीलश्च घटीनां च हिते रतः ॥  
 यतिकपी च योगी च योगिष्येयो हरिः शितिः ॥  
 संविन्देष्टा च कालश्च ऊष्मा वर्षा म ( न ) तिस्तथा ॥  
 संवत्सरो मोक्षकरो मोहप्रध्वंसकस्तथा ॥  
 मोक्षकर्ता च दुष्टानां नाशकश्चो मङ्गलामुखः ॥  
 संवर्तः कालकर्ता च गीतमो भृगुरङ्गिराः ॥  
 अत्रिर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्यः कुत्स एव च ॥  
 वायव्यतथैव देवतश्च व्यासश्चैव पराशरः ॥  
 शर्मदश्चैव गार्ग्यो हवीकेशो बृहच्छ्रवाः ॥  
 केशवः क्लेशहन्ता च सुकर्णः कर्णवर्जितः ॥  
 नारायणो महाभागः घ्राणस्य पतिरेव च ॥  
 अपाणस्य पतिश्चैव व्यानस्य पतिरेव च ॥  
 उदानस्य पतिः श्रेष्ठः समानस्य पतिस्तथा ॥  
 शब्दस्य च पतिः श्रेष्ठः स्पर्शस्य पतिरेव च ॥  
 रूपणां च पतिश्चाद्यः खड्गपाणिर्हलायुधः ॥  
 चक्रपाणिः कुण्डली च श्रीधरस्तथैव च ॥  
 प्रकृतिः कौस्तुभशीवः पीताम्बरधरस्तथा ॥  
 सुमुखो दुर्मुखश्चैव मुखेन तु विवर्जितः ॥  
 अनन्योऽनन्तरूपश्च सुखः सुमन्दरः ॥  
 सुकपोलो विभुर्जिष्णुर्धाजिष्णुश्चेधुषीस्तथा ॥  
 हिरण्यकशिपोर्हन्ता हिरण्यभक्षिमर्दकः ॥  
 विहन्ता मृतपायाश्च भास्करान्निनाशनः ॥  
 केतिलो दत्तवश्चैव मुष्टिकस्य विमर्दकः ॥  
 कंसदानवभेता च चाणूरस्य ( धेनुकस्य ) प्रमर्दकः ॥  
 अरिहस्य विहन्ता च अक्रूरप्रिय एव च ॥  
 अक्रूरः क्रूररूपश्च अक्रूरप्रियवन्दितः ॥  
 भगवा भगवान् भानुस्तथा भागवतः स्वयम् ॥  
 उद्भवश्चोद्भवस्येशो ह्युद्भवेन विचिन्तितः ॥  
 चक्रधृक् चक्रलश्चैव चलाचलविवर्जितः ॥  
 अहङ्कारोपमङ्गितं गगनं पृथिवी जलम् ॥  
 वायुश्चक्षुस्तथा श्रोत्रं जिह्वा च घ्राणमेव च ॥  
 वाक्प्राणिपादजवनः<sup>२</sup> पादुपस्थस्तथैव च ॥  
 गङ्गश्चैव सर्वश्च क्षान्तिदः क्षान्तिकृन्तरः ॥

भक्तप्रियस्तथा भक्ता भक्तिमान् भक्तिवर्धनः ॥	रागेण विगतश्चैव अयेन परिवर्जितः ।
भक्तस्तुतो भक्तपरः कीर्तिदः कीर्तिवर्धनः ।	शोकेन रहितश्चैव वचसा परिवर्जितः ॥
कीर्तिदीप्तिः क्षमाकान्तिर्भक्तश्चैव दयः परः ॥	रजोविवर्जितश्चैव विकारिः चङ्चिभिरैव च ।
दानं दाता च कर्ता च देवदेवप्रियः शुचिः ।	क्रामेन वर्जितश्चैव क्रोधेन परिवर्जितः ॥
शुचिमान् सुखदो मोक्षः कामश्चायः सहस्रपात् ॥	लोभेन विगतश्चैव दम्भेन च विवर्जितः ।
सहस्रशीर्षा वैद्यश्च मोक्षद्वारं तर्क्य च ।	सूक्ष्मश्चैव सुसूक्ष्मश्च स्थूलास्थूलतरस्तथा ॥
प्रजाद्वारं सहस्राक्षः सहस्रकर एव च ॥	विशारदो वलाध्यक्षः सर्वस्य क्षोभकस्तथा ।
शुक्रश्च ( सुभुः ) सुकिरीटी च सुग्रीवः कौस्तुभस्तथा ।	प्रकृतेः क्षोभकश्चैव महतः क्षोभकस्तथा ॥
प्रद्युम्नश्चानिन्दश्च हयग्रीवश्च सूकरः ॥	भूतार्ता क्षोभकश्चैव बुद्धेश्च क्षोभकस्तथा ।
मत्स्यः परशुरामश्च प्रह्लादो बलिनेव च ।	इन्द्रियाणां क्षोभकश्च विषयक्षोभकस्तथा ॥
शरण्यश्चैव गित्यश्च बुद्धो मुक्तः शरीरभृत् ॥	ब्रह्मणः क्षोभकश्चैव रुद्रस्य क्षोभकस्तथा ।
छरदूषणहन्ता च रावणस्य प्रमर्दनः ।	अगम्यश्चभुरादेश्च भोगगम्यस्तथैव च ॥
सीतापतिश्च वरिष्णुभरतश्च तथैव च ॥	त्वष्टा न गम्यः कूर्मश्च जिह्वाऽग्राह्यस्तथैव च ।
कुम्भेनजिनिहन्ता च कुम्भकर्णप्रमर्दनः ।	प्राणैरित्यागम्य एव वायःऽग्राह्यस्तथैव च ॥
गरानाकान्तकश्चैव देवानाकविनाशनः ॥	अगम्यश्चैव पाणिभ्यां पदागम्यस्तथैव च ।
दुष्टासुरनिहन्ता च शम्बरारिस्तथैव च ।	अग्राह्यो मनसश्चैव बुद्ध्याऽग्राह्यो हरिस्तथा ॥
नरकस्य निहन्ता च त्रिशूलस्य विनाशनः ॥	अहं बुद्ध्या तथा ग्राह्यक्षेतसा ग्राह्य एव च ।
यमलार्जुनभेता च तपोहितकरस्तथा ।	गङ्गुपाणिश्चाव्ययश्च गदापाणिस्तथैव च ॥
वाहिर्न चैव वाद्यं च बुद्धश्चैव वरप्रदः ॥	गार्ङ्गपाणिश्च कृष्णश्च ज्ञानमूर्तिः परमपः ।
सारः सारप्रियः सौरः कालहनुनिकुन्तनः ।	तपस्वी ज्ञानगम्यो हि ज्ञानी ज्ञानविदेव च ॥
अगस्यो देवस्तथैव नारदो नारदप्रियः ॥	ज्ञेयश्च ज्ञेयहीनश्च ज्ञप्तिश्चित्तन्यरूपकः ।
प्राणोऽपानस्तथा व्यानो रजः सत्त्वं तमः शरत् ।	भावो भाव्यो भवकरो भावनो भवनाशनः ॥
उदानश्च समानश्च भेषजं च भिषक् तथैव ॥	गोविन्दो गोपतिर्गोपः सर्वगोपीसुखप्रदः ।
कूटस्थः स्वच्छरूपश्च सर्वदेहविवर्जितः ।	गोपालो गोगतिश्चैव गोपतिर्गोधरस्तथा ॥
चक्षुरिन्द्रियहीनश्च वागिन्द्रियविवर्जितः ॥	उपेन्द्रश्च नृसिंहश्च शरीरश्चैव जनार्दनः ।
हस्तेन्द्रियहीनश्च पादाभ्यां च विवर्जितः ।	आरण्यो बुद्धिभानुर्बुद्धदीप्तिस्तथैव च ॥
पायुपस्थविहीनश्च महातापविवर्जितः ॥	दामोदरस्त्रिकालश्च कालज्ञः कालवर्जितः ।
प्रबोधेन विहीनश्च बुद्ध्या चैव विवर्जितः ।	त्रिसन्ध्यो द्वापरं त्रेता प्रजाद्वारं त्रिविक्रमः ॥
चेतसा विगतश्चैव प्राणेन च विवर्जितः ॥	विक्रमो दण्ड ( र ) हस्तश्च ह्येकदण्डी त्रिदण्डधृक् ।
अपानेन विहीनश्च व्यानेन च विवर्जितः ।	सामधेदस्तथोपायः सामरूपी च सामगः ॥
उदानेन विहीनश्च समानेन विवर्जितः ॥	सामवेदो ह्यधर्वश्च सुकृतः सुतरूपणः ।
आकाशेन विहीनश्च वायुना परिवर्जितः ।	अधर्ववेदविच्छेदश्च ह्यधर्वाचार्य एव च ॥
अग्निना च विहीनश्च उदकेन विवर्जितः ॥	ऋषी चैव ऋग्वेद ऋग्वेदेषु प्रतिष्ठितः ।
पृथिव्या च विहीनश्च शब्देन च विवर्जितः ।	यजुर्वेत्ता यजुर्वेदो यजुर्वेदविदेकपात् ॥
स्पर्शेन च विहीनश्च सर्वरूपविवर्जितः ॥	बहुपाञ्च सुपाञ्चैव तथैव च सहस्रपात् ।

चतुष्पाच्च द्विपाक्षैव स्मृतिन्यायो यमो वली ॥  
 संन्यासी चैव संन्यासकृतुराश्रम एव च ।  
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वर्णस्तथैव च ।  
 शीलदः शीलसम्पन्नो दुःशीलपरिवर्जितः ॥  
 मोक्षोऽध्यात्मसमाविष्टः स्तुतिः स्तोत्रं च धृक्कः ।  
 पूज्यो वाक्करुणो चैव वाक्क्यं चैव तु वाचकः ॥  
 वेत्ता व्याकरणं चैव वाक्यं चैव च वाक्यवित् ।  
 वाक्यगम्यस्तीर्थवासी तीर्थस्तीर्थी च तीर्थवित् ॥  
 तीर्थोदिभूतः साङ्गुपश्च निरुक्तं त्वधिदैवतम् ।  
 प्रणवः प्रणवेशश्च प्रणवेन प्रवर्द्धितः ॥  
 प्रणवेन च लक्ष्यो वै गायत्री च गदाधरः ।  
 शालग्रामनिवासी च शालग्रामस्तथैव च ॥  
 जलशायी योगशायी लेपशायी कुशेशयः ।  
 महीभर्ता च कार्यं च कारणं पृथिवीधरः ॥  
 प्रजापतिः शाश्वतश्च काम्यः कामयिता विशदः ।  
 सद्भाद पूषा तथा स्वर्गो रक्षस्वः साराधिर्बलम् ॥  
 धनी धनप्रदो धन्यो पादवाणं हिते रतः ।  
 अर्जुनस्य प्रियश्चैव हर्जुनो भीम एव च ॥  
 पराक्रमो दुर्बिम्बः सर्वशान्भवविशारदः ।  
 सारस्वतो महाभीष्मः पारिजातहरस्तथा ॥  
 अमृतस्य प्रदाता च क्षीरोदः क्षीरमेव च ।  
 इन्द्रात्मजस्तस्य गोप्ता गोवर्धनधरस्तथा ॥  
 कंसस्य नाशनस्तद्वद्धस्तिपो हस्तिनाशनः ।  
 शिषिविष्टः प्रसन्नश्च सर्वलोकार्तिनाशनः ॥  
 मुद्रो मुद्रा करश्चैव सर्वमुद्राधिपतिरितः ।  
 देही देहस्थितश्चैव देहस्य च नियामकः ॥  
 श्रोता श्रोतुनियन्ता च श्रोतव्यः श्रवणं तथा ।  
 त्वक्स्थितश्च स्पर्शयित्वा स्पर्शं च स्पर्शनं तथा ॥  
 रूपद्रष्टा च चक्षुःस्थो नियन्ता चक्षुषस्तथा ।  
 दृश्यं चैव तु जिह्वास्थो रसज्ञश्च नियामकः ॥  
 घ्राणस्थो घ्राणकुद् घ्राता घ्राणेत्रिपनियामकः ।  
 वाक्स्थो वक्ता च वक्तव्यो वक्त्रं वाह्नियामकः ॥  
 प्राणिस्थः शिल्पकुक्षिस्थो हस्तयोश्च नियामकः ।  
 पदव्यश्चैव गन्ता च गन्तव्यं गमनं तथा ॥  
 नियन्ता पादयोश्चैव पादभाक् च विमर्गकृत् ।

विमर्गस्य नियन्ता च ह्युपस्थस्थः सुखं तथा ॥  
 उपस्थस्य नियन्ता च तदानन्दकरश्च ह ।  
 शत्रुघ्नः कार्तवीर्यश्च दत्तात्रेयस्तथैव च ॥  
 अलकंस्य हितश्चैव कार्तवीर्यनिकुतनः ।  
 कात्स्न्येर्मर्माहानेर्मर्षेण मेघपतिस्तथा ॥  
 अन्नप्रदोऽन्नरूपो च ह्यन्नादोऽन्नप्रवर्तकः ।  
 धूमकुन्दमरुपश्च देवकीपुत्र उत्तमः ॥  
 देवक्यानन्दनो नन्दो रोहिण्याः प्रिय एव च ।  
 वसुदेवप्रियश्चैव वसुदेवसुतस्तथा ॥  
 दुन्दुभिर्भासरुपश्च पुण्यहासस्तथैव च ।  
 अहङ्गासप्रियश्चैव सर्वाध्यक्षः क्षरोऽक्षरः ॥  
 अध्वरुश्चैव सत्येशः सत्यायाश्च प्रियो वरः ।  
 रुक्मिण्याश्च पतिश्चैव रुक्मिण्या खल्लभस्तथा ॥  
 गोपीनां वल्लभश्चैव पुण्यश्लोकश्च विभुतः ।  
 कृष्णकपिर्बभौ मुहूर्तो मकुलश्चैव सुधस्तथा ॥  
 राहुः केतुर्गहो राहो गजेन्द्रमुखमेतकः १ ।  
 राहस्य विनिहन्ता च ग्रामणी रक्षकस्तथा ॥  
 किन्नरश्चैव सिद्धश्च छन्दः स्वच्छन्द एव च ।  
 विश्वरूपो विशालाक्षो दैत्यमूदन एव च ॥  
 अनन्तरूपो भूतस्थो देवदानवसंस्थितः ।  
 सुषुप्तिस्थः सुषुप्तिश्च स्थानं स्थानान्त एव च ॥  
 जगत्स्थश्चैव जागर्ता स्थानं जागरितं तथा ।  
 स्वप्नस्थः स्वप्नवित् स्वप्नस्थानं स्वप्नस्तथैव च ॥  
 जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च विहीनो वै चतुर्भुजः ।  
 विज्ञानं वेद्यकरणं च जीवो जीवयिता तथा ॥  
 भुवनधिपतिश्चैव भुवनानां नियामकः ।  
 पातालवासी पातालं सर्वान्तरविनाशनः ॥  
 पराशानन्दरूपी च धर्माणां च प्रवर्तकः ।  
 सुलभो दुर्लभश्चैव प्राणायामपरस्तथा ॥  
 प्र्याहारो धारकश्च प्रत्याहारकरस्तथा ।  
 प्र्या कान्तिस्तथा हृदिः शुद्धः स्फटिकसंनिभः ॥  
 अग्रहश्चैव गौरश्च सर्वः शुचिरभिधुतः ।  
 वषट्कारो वषट् खीषट् स्वधा स्वाहा रतिस्तथा ॥  
 पक्वा नन्दयिता भोक्ता खोद्धा भावयिता तथा ।  
 ज्ञानात्मा चैव देहात्मा भू ( उ ) मा सर्वेश्वरेश्वरः ॥  
 नदी नदी च नदीशो भारतस्तकनाशनः ।

\*\*\*\*\*

चक्रपः श्रीपतिश्चैव नृपाणां चक्रवर्तिनाम् ॥  
 ईशश्च सर्वदेवानां द्वारकासंस्थितस्तथा ।  
 पुष्करः पुष्कराभ्यक्षः पुष्करद्वीप एव च ॥  
 भरतो जनको जन्यः सर्वाकारविवर्जितः ।  
 निराकारो निर्निमित्तो निरातको निराश्रयः ॥  
 इति नामसदृशं ते वृषभध्वज कीर्तितम् ।  
 देवस्य विष्णोर्गौरीस्य सर्वपापविनाशनम् ॥

पठन् द्विजश्च विष्णुत्वं क्षत्रियो जयमान्नुयात् ।  
 वैश्यो धनं सुखं शूद्रो विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥  
 हे वृषभध्वज ! मैंने सर्वपापविनाशक, जगदीश्वर, देवाधिदेव, विष्णुके इस सहस्रनामका जो कीर्तन किया है, इसका पाठ करनेसे ब्राह्मण विष्णुत्व अर्थात् विष्णुस्वरूप, क्षत्रिय विजय, वैश्य धन तथा सुख और शूद्र विष्णुकी भक्ति प्राप्त करता है । (अध्याय १५)

### भगवान् विष्णुका ध्यान एवं सूर्यार्चन-निरूपण

रुद्रने कहा—हे शंख-चक्र और गदाको धारण करनेवाले भगवान् हरि ! आप पुनः देवदेवेश्वर शुद्धरूप परमात्मा विष्णुके ध्यानका वर्णन करें ।

हरिने कहा—हे रुद्र ! संसाररूपी वृक्षका विनाश करनेवाले वे हरि ज्ञानरूप, अनन्त, सर्वव्याप्त, अजन्मा और अम्वय हैं । वे अविनाशी, सर्वप्रगामी, निष्प, महान्, अद्वितीय ब्रह्म हैं । सम्पूर्ण संसारके मूल कारण तथा समस्त चराचरमें गतिमान् परमेश्वर हैं । वे समस्त प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाले तथा सभीके ईश्वर हैं, सम्पूर्ण जगत्का आधार होते हुए भी वे स्वयं निराधार हैं । सभी कारणोंके कारण हैं ।

सांसारिक विषयोंकी आसक्तिसे परे उनकी स्थिति है, वे निर्मुक्त हैं । मुक्त योगियोंके ध्येय हैं । वे स्थूल शरीरसे रहित, नेत्र, पाणि, पाद, पायु, उपस्थादि समस्त इन्द्रियोंसे विहीन हैं । वे हरि मन एवं मनके धर्म सङ्कल्प-विकल्प आदिसे रहित हैं । वे बुद्धि (भौतिक इन्द्रियविशेष)-से रहित, बुद्धि-धर्म-विवर्जित, अहंकारसे शून्य, चित्तसे अग्राह्य, प्राण-अपान-व्यानादि वायुसे रहित हैं ।

हरिने कहा—अब मैं सूर्यको पूजाका पुनः वर्णन करता हूँ, जो प्राचीन कालमें भृगु ऋषिको सुनायी गयी थी ।

'ॐ खखोल्लायाय नमः'—यह भगवान् सूर्यदेवका मूल मन्त्र है, जो साधकको भोग और मोक्ष प्रदान करता है । (निम्न मन्त्रसे अङ्गन्यास करके साधकको सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये ।) यथा—

'ॐ खखोल्लायाय त्रिदशाय नमः ।' 'ॐ विचि ठठ शिरसे नमः ।' 'ॐ ज्ञानिने ठठ लिखायै नमः ।' 'ॐ सहस्ररश्मये ठठ कवचाय नमः ।' 'ॐ सर्वतेजोऽधिपतये ठठ अस्त्राय नमः ।'

'ॐ ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ठठ नमः ।'

सूर्यका यह मन्त्र साधकके समस्त पापोंका विनाश करनेवाला है । इसे अग्नि-प्राकार मन्त्र भी कहते हैं ।

भगवान् सूर्यको प्रसन्न करनेवाला मन्त्र इस प्रकार है, यह सूर्य-गायत्री-मन्त्र कहलाता है—इस मन्त्र-जपके पश्चात् साधकको सूर्य एवं गायत्रीका सकलीकरण करना चाहिये—

'ॐ आदित्याय विद्महे, विश्वभावाय धीमहि, तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ।'

साधकको प्रत्येक दिशा-प्रदिशामें निम्नलिखित दिक्पाल देवोंके लिये प्रणाम निवेदन करना चाहिये—

'ॐ धर्मात्मने नमः' पूर्वमें, 'ॐ वामाय नमः' दक्षिणमें, 'ॐ दण्डनायकाय नमः' पश्चिममें, 'ॐ दैवताय नमः' उत्तरमें, 'ॐ प्रथमविंशत्याय नमः' ईशानमें, 'ॐ दीक्षिताय नमः' अग्निकोणमें, 'ॐ सप्तपाणये नमः' वैश्वत्यकोणमें, 'ॐ भूर्भुवः स्वः नमः' वायुकोणमें ।

हे वृषभध्वज ! साधकको चाहिये कि वह निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे पूर्वादि दिशाओंसे प्रारम्भ करके ईशानकोणतक चन्दादि ग्रहोंकी भी पूजा करे—

'ॐ चन्द्राय नक्षत्राधिपतये नमः ।' 'ॐ अङ्गाराकाय क्षितिमुहय नमः ।' 'ॐ बुधाय सोमसुताय नमः ।' 'ॐ व्यागीश्वराय सर्वविद्याधिपतये नमः ।' 'ॐ शुक्राय महर्षये भृगुसुताय नमः ।' 'ॐ जनेश्वराय सूर्यात्मजाय नमः ।' 'ॐ राहवे नमः ।' 'ॐ केतवे नमः ।'

निम्न तीन मन्त्रोंसे सूर्यदेवको प्रणाम करके उन देवको अर्घ्यादि प्रदान करनेके लिये आवाहित करना चाहिये—

'ॐ अनुकुरायाय नमः ।' 'ॐ प्रमथनाथाय नमः ।' 'ॐ



बुधाय नमः ।'

'ॐ भगवत्प्रतिमितमयुःसमाप्तिन् सकलजगत्पते  
समाधवाहन चतुर्भुज परमसिद्धिदप्र विस्फुलिङ्गपिङ्गल तत्  
एहोहि इदमर्घ्यं मम शिरसि गतं गृह्ण गृह्ण तेजोग्रसम्पन्न अनग्र  
ज्वल ज्वल ठठ नमः ।'

उपर्युक्त मन्त्रसे आवाहित इन अभीष्ट देवका निम्न  
मन्त्रसे विसर्जन करे—

'ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय गच्छ सुखं  
पुनरागमनाय ।'

हे सहस्ररश्मि भगवान् आदित्य! आपके लिये मेरा प्रणाम  
है। हे कृपालु! आप पुनः आगमनके लिये सुखपूर्वक पधारे।

हरिने कहा—हे रुद्र! मैं पुनः सूर्य-पूजाकी विधिका  
वर्णन करूँगा, जिसे मैंने पहले कुबेरसे कहा था।

[सूर्यपूजा प्रारम्भ करनेसे पूर्व] एकाग्रचित्त होकर  
पवित्र स्थानपर कर्णिकायुक्त अष्टदलकमल बनाये। तदनन्तर  
सूर्यदेवका आवाहन करे। तत्पश्चात् भूमिपर निर्मित कमलदलके  
मध्यमें यन्त्ररूपी छछोरेक भगवान् सूर्यकी उनके परिकरोंके  
साथ स्थापना करे तथा उन्हें स्नान कराये।

हे शिव! इसके बाद साधक अग्निकोणमें (अभीष्ट)  
देवके इदयकी स्थापना करे। ईशानकोणमें सिरकी स्थापना  
करके नैऋत्यकोणमें शिखाका विन्यास करे। वह पुनः  
एकाग्रचित्त होकर पूर्व दिशामें उनके धर्म, वायुकोणमें  
उनके नेत्र और पश्चिम दिशामें उनके अस्त्रका विन्यास करे।

इसी प्रकार अष्टदलकमलके ईशानकोणमें चन्द्र, पूर्व  
दिशामें मंगल, अग्निकोणमें बुध, दक्षिण दिशामें बृहस्पति,  
नैऋत्यकोणमें शुक, पश्चिम दिशामें शनि, वायुकोणमें केतु  
एवं उत्तर दिशामें राहुके पूजनका विधान है। अतः  
(साधकको इन सभी ग्रहोंकी पूजा करके) द्वितीय कक्षामें  
साथ ही द्वादश सूर्योंकी पूजा भी करनी चाहिये।

भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता,  
विश्वानु, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु—ये द्वादश सूर्य  
कहे गये हैं।

द्वादश सूर्योंकी पूजा करनेके बाद पूवादि दिशाओंमें  
इन्द्रादि देवोंकी अर्चना करे तथा जया-विजया-जयन्ती एवं  
अपराजित शक्तियोंकी और शेष, वासुकि आदि नागोंकी  
पूजा करे। (अध्याय १६-१७)

## मृत्युञ्जय-मन्त्र-जपकी महिमा

सूतजीने कहा—अब मैं मृत्युञ्जय-पूजाका वर्णन  
करूँगा, जिसकी गरुडने कश्यप ऋषिसे कहा था। वह  
साधकका उद्धार करनेवाली, पुण्यप्रदायिनी एवं सर्वदेवमय  
पूजा है, ऐसा सभीका अभिमत है।

सूतजीने कहा—मृत्युञ्जय-मन्त्र 'ॐ जुं सः' तीन  
अक्षरोंवाला है। पहले ॐकारका उच्चारण करके जुं  
(हुं)-का उच्चारण करे। तदनन्तर विसर्गके साथ 'स'  
(सः)-का उच्चारण करना चाहिये। यह मन्त्र मृत्यु और  
दरिद्रताका मर्दन करनेवाला है तथा शिव, विष्णु, सूर्य,  
आदि सभी देवोंका कारणभूत है। 'ॐ जुं सः' यह महामन्त्र  
अमृतेशके नामसे कहा जाता है। इस मन्त्रका जप करनेसे  
प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और मृत्युरहित हो जाता  
है अर्थात् मृत्युके समान होनेवाले उसके कष्ट दूर हो  
जाते हैं।

इस मन्त्रका सौ बार जप करनेसे वेदाध्ययनजनित  
पुण्यफल तथा यज्ञकृत फल एवं तीर्थ-स्नान-दान-पुण्यादिका  
फल प्राप्त होता है। तीनों संध्याओंमें एक सौ आठ बार इस

मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य मृत्युकी जीत लेता है। कठिन-  
से-कठिन विघ्न-बाधाओंको धार कर जाता है, शत्रुओंपर  
विजय प्राप्त कर लेता है।

भगवान् मृत्युञ्जय श्वेत कमलके ऊपर बैठे हुए वरद-  
हस्त तथा अभय-मुद्रा धारण किये रहते हैं। तात्पर्य यह  
कि उनके एक हाथमें अभय-मुद्रा है और एक हाथमें  
वरद-मुद्रा। दो हाथोंमें अमृत-कलश है। इस रूपमें  
अमृतेशका ध्यान करनेके साथ ही अमृतेश्वर भगवान्के  
वामाङ्गमें रहनेवाली अमृतभाषिणी अमृतादेवीका भी ध्यान  
करना चाहिये। देवीके दायें हाथमें कलश और बायें हाथमें  
कमल सुशोभित रहता है।

हे शिव! यदि एक मासतक अमृतादेवीके साथ  
अमृतेश्वर भगवान्का ध्यान करते हुए मानव 'ॐ जुं सः'  
इस मन्त्रका तीनों सन्ध्याओंमें आठ हजार जप करे तो वह  
जरा, मृत्यु तथा महाव्याधियोंसे मुक्त हो जाता है और  
शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है। यह मन्त्र महान् शान्ति  
प्राप्त करनेवाला है।

अमृतेश्वर भगवान्की पूजामें आवाहन, स्थापन, रोधन (प्रतिष्ठा), संनिधान, निवेशन करनेके बाद पाद्य, आचमन, स्नान, अर्घ्य, माला, अनुलेपन, दीप, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य, पान, आचमन, वीजन (पंखेसे हवन करना), मुद्रा-प्रदर्शन, मन्त्र-जप, ध्यान, दक्षिणा, आहुति, स्तुति, वाद्य और गीत तथा नृत्य, न्यासयोग और प्रदक्षिणा, स्रष्टाङ्ग प्रणति, मन्त्रशय्या, वन्दन आदि उपचारोंको निवेदित करके उनका विसर्जन करना चाहिये।

षडङ्ग प्रकारका पूजन जिसे परमेश परमात्माने अपने मुखसे स्वयं कहा है, वह क्रमसे बतलाया गया है, उसे जो जानता है वही पूजक है। षडङ्ग-पूजा इस प्रकार है—

साधकको प्रारम्भमें अर्घ्य प्रदान करनेके लिये प्रवृत्त पात्रकी पूजा करके अस्त्र अर्थात् षट् मन्त्रसे हस्तताडन (दाहिने हाथके द्वारा बायें हाथपर ध्वनि) करना चाहिये। उसके बाद कवच (हुं) मन्त्रसे शोधनकर अमृतकरणकी क्रियाको पूर्ण करे। तत्पश्चात् आधारशक्ति आदिकी पूजा, प्राणायाम, आसनोपवेशन तथा देहशुद्धि करके भगवान् अमृतेश्वरका ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर अपनी आत्माको देवस्वरूपमें स्वीकारकर अङ्गन्यास, करन्यास करके साधक हृदयकमलमें स्थित ज्योतिर्मय आत्मदेवका पूजन करे।

उसके बाद मूर्तिपर अथवा यज्ञके लिये झनी हुई वेदीपर चित्रित देवके ऊपर सुन्दर पुष्प अर्पित करे। द्वारपर अवस्थित रहनेवाले देवोंका आवाहन और पूजन करनेके लिये पहले आधारशक्तिकी पूजा करे। तदनन्तर देवताकी प्रतिष्ठा करके उनके (देव) परिवारका पूजन करना चाहिये; क्योंकि विद्वानोंने बतलाया है कि मुख्य देवके पूजाके साथ उसके अङ्ग-परिवार आदिकी भी पूजा करनेका विधान है। आयुधों एवं परिवारोंके साथ धर्म आदिकी तथा इन्द्र आदिकी, दुर्गा, वेदों और मुहूर्तोंकी भी मुख्य देवके रूपमें पूजा करनी चाहिये। यह पूजा भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाली है। अतः साधक विद्वानोंको उनकी षडङ्ग-पूजा करनी चाहिये।

देवमण्डलकी पूजा करनेके पूर्व मातृका, गणदेवता, नन्दी और गङ्गाकी पूजा करके देवस्थानके देहली-भागपर महाकाल तथा यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। इस पूजामें 'ॐ अमृतेश्वर धैर्याय नमः।' तथा 'ॐ नमो हं सः सूर्याय नमः' कहना चाहिये। इसी प्रकार प्रारम्भमें प्रणव मन्त्र ॐकारको जोड़कर नामोच्चार करते हुए अन्तमें 'नमः' शब्दका प्रयोग करके शिव, कृष्ण, ब्रह्मा, गण, ऋषिदेवता, सरस्वती और महालक्ष्मी आदिकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १८)

## सर्पोंके विष हरनेके उपाय तथा दुष्ट उपद्रवोंको दूर करनेके मन्त्र (प्राणेश्वरी विद्या)

श्रीमृतजी बोले—हे ऋषियो! अब मैं शिवद्वारा पश्चिराज गरुडको सुनाये गये प्राणेश्वर महामन्त्रका वर्णन करता हूँ, किन्तु उसके पूर्व उन स्थानोंका वर्णन कहूँगा, जहाँ सर्पके काटनेसे प्राणी जीवित नहीं रह सकता।

श्मशान, वल्मीक (बाँस), पर्वत, कुआँ और तृक्षके कोटर—इन स्थानोंमें स्थित सर्पके द्वारा काट लेनेपर यदि उस दौलत-लगे स्थानपर तीन प्रच्छन्न रेखाएँ बन जाती हैं तो वह प्राणी जीवित नहीं रहता है। यन्त्री तिथिमें, कर्क और मेष राशिमें आनेवाले नक्षत्रों तथा मूल, अश्लेषा, मघा आदि क्रूर नक्षत्रोंमें सर्पदंश होनेसे प्राणीका जीवन समाप्त हो जाता है तथा कौल, कटि, गला, सन्धि-स्थान, मस्तक या कनपटीके अस्थिभाग और उदरादिमें काटनेपर प्राणी जीवित नहीं रहता है।

यदि सर्पदंशके समय दण्डी, सस्वधारी, भिक्षु तथा नग प्राणीका दर्शन होता है तो उसे कालका ही दूत समझना चाहिये। हाथ, मुख, गर्दन और पीठमें सर्पके काटनेसे प्राणी जीवित नहीं बचता है।

दिनके प्रथम भागके पूर्व अर्ध यामका भोग सूर्य करता है। उस दिक्कर-भोगके पश्चात् गणनाक्रममें जो ग्रह आते हैं, उन ग्रहोंके द्वारा यथाक्रम शेष यामोंका भोग होता है। इस कालगतिमें प्रत्येक दिन छः परिवर्तनोंके साथ अन्य शेष ग्रहोंका भोग माना गया है। यथा—ज्योतिषियोंने काल-चक्रके आधारपर रात्रिकालमें शेषनाग 'सूर्य', वासुकि नाग 'चन्द्र', तक्षक नाग 'मङ्गल', कर्कोटक नाग 'बुध', पद्म नाग 'गुरु', महापद्म नाग 'शुक्र', शंख नाग 'शनि' और कुलिक नाग 'रहु' को स्वीकार किया।

रात या दिनमें बृहस्पतिका भोगकाल आनेपर सर्प, देवोंका भी अन्न करनेवाला हो जाता है। अतः इस कालमें सर्पद्वारा काटा गया प्राणी बच नहीं सकता है। दिनमें शनि-ग्रहकी वेल्लाके आनेपर राहु अशुभ धर्मसे संयुक्त रहता है। अतः वह अपने यामार्ध भोग और सन्धिकालकी अवस्थितिमें काल-अर्थात् यमराजकी गतिके समान गतिमान् रहता है।

रात्रि और दिनका मान लगभग तीस-तीस घंटोंका होता है। इस मानके अनुसार निर्मित कालचक्रमें चन्द्रमा प्रतिपदा तिथि की पादाङ्गुष्ठ, द्वितीया की पैरसे ऊपर, तृतीया की गुल्फ, चतुर्थी को जानु, पञ्चमी को लिङ्ग, षष्ठी को नाभि, सप्तमी को हृदय, अष्टमी को स्तन, नवमी को कण्ठ, दशमी को नासिका, एकादशी को नेत्र, द्वादशी को कान, त्रयोदशी को भीह, चतुर्दशी को शंख अर्थात् कनपटी तथा पूर्णिमा एवं अमावस्या को मस्तकपर निवास करता है। पुरुषके दक्षिणज्वमें तथा स्त्रीके वामभागमें चन्द्रकी स्थिति होती है। चन्द्रकी स्थिति जिस अङ्गमें होती है, उस अङ्गमें सर्पके डमनेपर प्राणी जीवित बच सकता है। यद्यपि सर्पदंशसे शरीरमें उत्पन्न हुई मूच्छा शीघ्र समाप्त होनेवाली नहीं है, फिर भी शरीर-मर्दनसे वह दूर हो सकती है।

स्फटिकके समान निर्मल 'ॐ हंसः' नामक बीजमन्त्र, साधकका परम मन्त्र है। विषरूपी पापको नष्ट करनेमें समर्थ इस बीज-मन्त्रका प्रयोग सर्पदंशसे मूर्च्छित प्राणीपर करना चाहिये। इसके चार प्रकार हैं। प्रथम मात्रा बीज बिन्दुसे युक्त है। दूसरा पाँच स्वरोंसे संयुक्त है। तीसरा छः स्वरोंवाला और चौथा विसर्गयुक्त है। प्राचीन समयमें पश्चिणज गरुडने तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये 'ॐ कुरु कुले स्वाहा' इस महामन्त्रको आत्मसात् किया था। अतः सर्प एवं सर्पिणियोंके विषको शान्त करनेके लिये इच्छुक व्यक्तिको मुखमें 'ॐ', कण्ठमें 'कुरु', दोनों गुल्फोंमें 'कुले' तथा दोनों पैरोंमें 'स्वाहा' मन्त्रका न्यास करना चाहिये। जिस घरमें उपर्युक्त मन्त्र भली प्रकारसे लिखा रहता है, सर्प उस घरको छोड़कर चले जाते हैं। जो मनुष्य एक हजार बार इस मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित सूत्रको कानपर धारण करता है, उसको सर्प-भय नहीं रहता। जिस घरमें इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित शर्कराखण्ड फेंक दिये जाते हैं, उस घरको भी सर्प छोड़ देते हैं। देवताओं और असुरोंने इस मन्त्रका सात

सात जप करके सिद्धि प्राप्त की थी।

इसी प्रकार एक अष्टदल पत्रका रेखाङ्कनकर उसके प्रत्येक दलपर इस—'ॐ सुवर्णरेखे कुक्कुटविग्रहरूपिणि स्वाहा'—मन्त्रके दो-दो वर्ण लिखे तथा 'ॐ षक्षि स्वाहा'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा स्नान करानेसे विषविह्वल प्राणीका विष दूर हो जाता है।

'ॐ षक्षि स्वाहा' इस मन्त्रके द्वारा अङ्गुष्ठ-भागसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त करन्यास तथा मुख-हृदय-लिङ्ग और पैरोंमें अङ्गन्यास करे तो विषधर नाग ऐसे मनुष्यकी छायाको स्वप्नमें भी लौंघ नहीं सकता। जो मनुष्य इस मन्त्रका एक सात जप करके सिद्धि प्राप्त कर लेता है, वह अपनी दुष्टिमात्रसे व्यथित व्यक्तिके शरीरमें व्याप्त विषको नष्ट कर देता है।

'ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं भि ( भी ) रुण्डायै स्वाहा'—इस मन्त्रका जप सर्पदंशित व्यक्तिके कानमें करनेपर विषका प्रभाव क्षीन हो जाता है।

यदि दोनों पैरोंके अग्रभागमें 'अ अ', गुल्फमें 'इ इ' जानुमें 'उ ऊ', कटिमें 'ए ऐ', नाभिमें 'ओ', हृदयमें 'औ', मुखमें 'अं' तथा मस्तकमें 'अः' वर्णकर स्थापनकर 'ॐ हंसः' बीजमन्त्रके सहित न्यास करके साधक इस बीजमन्त्रका ध्यान-पूजन और जप करे तो वह सर्प-विषको दूर कर सकता है।

'यै ( स्वयं ) गरुड हूँ' यह ध्यान ( भावना ) करके साधकको विष-क्षयनका कार्य करना चाहिये। 'हं' बीजमन्त्रका शरीरमें विन्यास विषादिका हरण करनेवाला कहा गया है। वाम हाथमें 'हंसः' मन्त्रका न्यास करके जो साधक इस मन्त्रका ध्यान-पूजन और जप करता है, वह सर्प-विषको दूर करनेमें समर्थ होता है; क्योंकि यह मन्त्र विषधर नागोंके नासिकाभाग और मुँहको श्वास-तलिकाको भी रोकनेमें पूर्ण समर्थ है। यह मन्त्र शरीरकी त्वचा-मांस आदिमें व्याप्त सर्प-विषको भी विनष्ट कर देता है।

सर्पदंशसे मूर्च्छित प्राणीके शरीरमें 'ॐ हंसः' मन्त्रका न्यास करके भगवान् नीलकण्ठ आदि देवोंका भी ध्यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे यह मन्त्र अपनी वायु शक्तिके द्वारा उस सम्पूर्ण विषका हरण कर लेता है।

प्रत्यङ्गिराकी जड़को चावलके जलके साथ पीसकर पीनेसे विषका प्रभाव दूर हो जाता है। पुनर्नवा, प्रियंगु,





## पञ्चवक्त्र-पूजन तथा शिवार्चन-विधि

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! अब मैं पञ्चमुख शिवकी पूजाका वर्णन करूँगा, जो साधकको भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करती है। साधकको सबसे पहले निम्न मन्त्रसे उन देवका आवाहन करना चाहिये—

‘ॐ भूर्विष्णवे आदिभूताय सर्वाधाराय मूर्तये स्वाहा।’

पुनः ‘ॐ हां सद्योजाताय नमः।’ कहकर साधक सद्योजातका आवाहन करे। इन सद्योजातकी आठ कलाएँ कही गयी हैं। उनका नाम सिद्धि, ऋद्धि, धृति, लक्ष्मी, मेधा, कान्ति, स्वधा और स्थिति है। सद्योजातकी पूजा करनेके पश्चात् ‘ॐ सिद्धये नमः’ इत्यादि मन्त्रोंसे उन सभी आठ कलाओंकी पूजा करनेका विधान है। तदनन्तर ‘ॐ ह्रीं वामदेवाय नमः’ इस मन्त्रसे साधक वामदेवकी पूजा करे। वामदेवकी तरह कलाएँ हैं, जिन्हें रजः, रक्षः, रति, पाल्या, कान्ति, तृष्णा, मति, क्रिया, कामा, बुद्धि, राशि, त्रासनी तथा मोहिनी कला कहा गया है। इन कलाओंके अतिरिक्त मनोन्मनी, अपौरा, मोहा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया तथा भयंकरा नामकी आठ कलाएँ (अधोरकी) हैं।

उक्त समस्त कलाओंका पूजन करनेके बाद साधककी ‘ॐ ह्रीं तत्पुरुषाय नमः’ इस मन्त्रसे तत्पुरुषदेवकी पूजा करनी चाहिये। उनकी निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और सम्पूर्णा—ये पाँच कलाएँ हैं। साधक कलाओंकी पूजा करके ‘ॐ ह्रीं ईशानाय नमः’ इस मन्त्रसे ईशानदेवकी पूजा करे। तत्पश्चात् ईशानदेवकी निष्कला, निरञ्जना, शशिनो, अंगना, मरीचि और ज्वालिनी नामकी जो छः कलाएँ हैं, उनकी पूजा करके पूजन पूर्ण करे।

सूतजीने पुनः कहा—हे ऋषियो! अब मैं शिवकी अर्चनाका वर्णन करूँगा, जो भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करनेवाली है। बारह अंगुलके मापमें बिन्दुद्वारा (किसी पात्रमें) भगवान् शिवकी मूर्ति बनानी चाहिये। उसमें शान्त, सर्वगत और निराकारका चिन्तन करना चाहिये। बिन्दुद्वारा बनायी गयी मूर्तिमें ऊपरकी ओर पाँच बिन्दु लगाने चाहिये, जो शिवका मुख हैं। वह छोटे आकारमें होना चाहिये और नीचेकी ओर मूर्तिके अनुसार बिन्दु लगाकर बड़े-बड़े अङ्ग बनाने चाहिये। मूर्तिके अधोभागमें छठा बिन्दु विसर्गके साथ

होना चाहिये, जो अस्व है। इसके साथ ‘ह्रीं’ लिख देना चाहिये—यह महामन्त्र है और सम्पूर्ण अर्थोंको देनेवाला है। साधक मूर्तिके ऊर्ध्वभागसे लेकर मूर्तिके चरणपर्यन्त अपने दोनों हाथोंसे स्पर्श करे और महामुद्रा दिखाये; इसके बाद सम्पूर्ण अङ्गोंमें न्यास-करन्यास आदि करे।

तदनन्तर वह अस्त्रमन्त्र ‘ॐ फट्’ का उच्चारण करता हुआ दाहिनी हथेलीसे स्पर्श करके शोधन करे। उसके बाद कनिष्ठा अंगुलीसे लेकर महामन्त्रसे ही तर्जनी अंगुलीतक न्यास करना चाहिये।

अब मैं हृदय-कमलकी कर्णिकामें पूजनकी विधि बतलाऊँगा। उसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यादिकी अर्चना करे। सर्वप्रथम आवाहन, स्थापन, पाद्य, अपर्य, आचमन, स्नान अर्पित करे तथा अन्य विविध मानस उपचारोंको करके तदाकार हो जाय। उसके बाद अग्रिमें आहुति देनेकी विधि कह रहा हूँ। साधकको पूजा-स्मरणपर अग्नि प्रज्वलित करनेके लिये ‘ॐ फट्’ अस्त्रमन्त्रसे एक कुण्डका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् ‘ॐ हुं’ इस वाच्यमन्त्रसे उस कुण्डका अभ्युक्षण करके मानसिकरूपसे उसमें शक्तिका विन्यास करे। उसके बाद साधकको हृदय अथवा शक्तिकुण्डमें क्रमशः ज्ञानरूपी तेज तथा अग्रिका विन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्रिके निष्कृति-संस्कारको छोड़कर गर्भाधानादि समस्त संस्कार करनेका विधान है। निष्कृति या मोक्ष-संस्कार आहुतिके पश्चात् किया जाता है। [इसलिये आहुतिके पूर्व उस संस्कारका निषेध है।] समस्त संस्कारोंके बाद साधकको उस प्रज्वलित अग्रिमें समस्त आङ्गिकदेवोंके साथ मानसिकरूपसे शिवको आहुति देनी चाहिये।

तदनन्तर कमलाङ्कित गर्भवाले उस मण्डलमें नीलकण्ठ शिवका पूजन करना चाहिये। इस मण्डलके अग्रिकोणमें अर्धचन्द्राकार कात्याणकारी एक अग्निकुण्ड बनाना चाहिये।

तदनन्तर अग्निदेवताके अस्त्रोंसे युक्त हृदयादिमें न्यास करनेका विधान है। उसके बाद मण्डलके अन्तर्गत बने हुए कमलकी कर्णिकापर सदाशिवकी तथा दिशाओंमें अस्त्रकी पूजा करे।

अब श्रेष्ठ पञ्चतत्त्वोंमें स्थित पृथ्वी, जल आदि तत्त्वोंकी

दीक्षा बतसायी जाती है। इन दोनों शान्तियोंके लिये पृथक्-पृथक् रूपसे सौ-सौ आहुतियाँ पाँच बार देनी चाहिये। तत्पश्चात् साधक पूर्णाहुति देकर प्रसन्नतापूर्वक त्रिशूली भगवान् शिवका ध्यान करे।

उसके बाद प्रायश्चित्त-शुद्धिके लिये आठ बार आहुति देनी चाहिये। यह आहुति अस्व-बीज 'हुं फट्' मन्त्रसे प्रदान करनेका विधान है। इस प्रकार संस्कारसे शुद्ध हुआ वह साधक निःसंदेह शिव-स्वरूप हो जाता है।

शिवकी विशेष पूजामें साधकको चाहिये कि वह प्रथम— 'ॐ ह्रीं आत्मतत्त्वाय स्वाहा', 'ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा' तथा 'ॐ हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा'—ऐसा उच्चारण करके आचमन करे। तत्पश्चात् उसे मानसिक रूपसे कर्णेंद्रियोंका स्पर्श करना चाहिये। उसके बाद भस्म-धारण और तर्पण आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिये। 'ॐ ह्रीं प्रपितामहेभ्यः स्वाधा', 'ॐ ह्रीं मातामहेभ्यः स्वाधा' और 'ॐ ह्रीं नमः सर्वमातुभ्यः स्वाधा' इन मन्त्रोंसे तर्पण करे। इसी रीतिसे पिता, पितामह, प्रमातामह तथा बृहत्प्रमातामह आदिका भी तर्पण करे और फिर प्राणायाम करना चाहिये।

इसके बाद आचमन तथा मार्जन करके साधकको शिवके गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये। वह मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ ह्रीं तन्महेऽराध विष्णवे, वाङ्मनुज्याय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।'।

अर्थात् प्रणवसे युक्त 'ह्रीं' बीजशक्तिके सम्पन्न उन महेश्वरका हम सभी चिन्तन करते हैं। वाणीकी पवित्रताके लिये उनका हम ध्यान करते हैं। वे रुद्र हम सभीको सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रेरणा प्रदान करें।

शिव-गायत्रीमन्त्र-जपके पश्चात् सूर्योपस्थान करके सूर्य-मन्त्रोंसे सूर्यरूप शिवकी पूजा करनी चाहिये। उन मन्त्रोंका स्वरूप इस प्रकार है—

'ॐ ह्रीं ह्रीं हूं ह्रीं ह्रीं हः शिवसूर्याय नमः।' 'ॐ हं खलोल्लास्य सूर्यमूर्तये नमः।' 'ॐ ह्रीं ह्रीं सः सूर्याय नमः।'।

— इस पूजाके बाद क्रमशः नामके आदि और अन्तमें 'ॐ नमः' शब्दका प्रयोग करके दण्डी तथा पिङ्गल आदि भूतनायकोंका स्मरण करे। तदनन्तर अग्नि आदि कोणोंमें 'ॐ विमलायै नमः', 'ॐ ईशानायै नमः'—आदि मन्त्रोंसे

क्रमशः विमला और ईशानादि शक्तियोंकी स्थापना करके पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उपासकको परम सुखकी प्राप्ति होती है। [इन शक्तियोंकी पूजाके लिये पृथक्-पृथक् बीजमन्त्र निर्दिष्ट हैं।] यथा—

'ॐ सं पद्मायै नमः' (अग्रिकोणमें), 'सं दीप्तायै नमः' (नैऋत्यकोणमें), 'ॐ सूक्ष्मायै नमः' (वायव्यकोणमें), 'रं जयायै नमः' (ईशानकोणमें), 'रं भद्रायै नमः' (पूर्व दिशामें), 'सं विभूतायै नमः' (दक्षिण दिशामें), 'सं विमलायै नमः' (पश्चिम दिशामें), 'रं अमोघिकायै नमः', 'रं विद्युतायै नमः' (उत्तर दिशामें) और 'रं सर्वतोमुख्यै नमः' (मण्डलके मध्यमें)। इसके बाद शिवस्वरूप सूर्यप्रतिमाको सूर्यासन प्रदान करके 'ह्रीं हूं (ह्रीं) सः' इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यकी अर्चना करे और फिर विन्न मन्त्रोंसे न्यास करे—

'ॐ आ इन्द्रायै नमः', 'ॐ भूर्भुवः स्वः शिरसे स्वाहा', 'ॐ भूर्भुवः स्वः शिखायै वीषट्', 'ॐ हूं ज्वालिनी नमः', 'ॐ हूं कवचाय हुम्', 'ॐ हूं अम्बाय फट्', 'ॐ हूं फट् रात्र्यै नमः', 'ॐ हूं फट् दीक्षितायै नमः।'।

साधकको अङ्गन्यासके पश्चात् विन्न मन्त्रोंसे सूर्यादि सभी नवग्रहोंकी मानसी पूजा करनी चाहिये—

'ॐ सः सूर्याय नमः, ॐ सौं सोमाय नमः, ॐ मं मंगलाय नमः, ॐ बुं बुधाय नमः, ॐ वुं वृहस्पतये नमः, ॐ धं धर्माय नमः, ॐ शं शनैश्चराय नमः, ॐ रं राह्वये नमः, ॐ कं केतवे नमः, ॐ तेजःक्षण्डाय नमः।'।

इस प्रकार सूर्यदेव आदिकी पूजा करके साधकको आचमन करना चाहिये। उसके बाद वह कनिष्ठिका आदि अंगुलियोंमें करन्यास तथा पुनः विप्राङ्कित मन्त्रोंसे अङ्गन्यास करे—

'ॐ ह्रीं इन्द्रायै नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखायै वीषट्, ॐ हूं कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वीषट्, ॐ हः अम्बाय फट्।'।

तदनन्तर भूतशुद्धि करे तथा पुनः न्यास करे। अर्घ्यस्थापन करके उसी जलसे अपने शरीरका प्रोक्षण करना चाहिये। उसके बाद वह साधक शिवसहित नन्दी आदिकी पूजा करे। 'ॐ ह्रीं शिवायै नमः' मन्त्रसे पदमें स्थित शिवकी पूजा करके नन्दी, महाकाल, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, श्रीवत्स, वास्तुदेवता, ब्रह्मा, गणपति तथा गुरुकी पूजा करे।

तत्पश्चात् साधकको पदके मध्यमें शक्ति एवं अनन्त देवकी पूजा करके पूर्व दिशामें धर्म, दक्षिणमें ज्ञान, पश्चिममें वैराग्य, उत्तरमें ऐश्वर्य, अग्रिकोणमें अधर्म, नैऋत्यमें अज्ञान, वायव्यमें अवैराग्य, ईशानमें अनैश्वर्य, पश्चकी कर्णिकामें वामा और श्येष्ठ उसके बाद पूर्व आदि दिशाओंमें रौद्री, काली, शिवा तथा अमिता आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर साधकको शिवके आगे स्थित पीठके मध्यमें 'ॐ ह्रीं कलविकरिष्ये नमः, ॐ ह्रीं वसविकरिष्ये नमः, ॐ ह्रीं बलप्रमथिन्यै नमः, ॐ सर्वभूतदयन्यै नमः, ॐ मनोन्मन्यै नमः'—इन मन्त्रोंसे कलविकरिणी एवं वलविकरिणी आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। साधक भगवान् शिवके लिये आसन प्रदानकर महामूर्तिकी स्थापना करे। तदनन्तर मूर्तिके मध्यमें शिवको उरिष्ठ करके आवाहन-स्थापन-सन्निधान-सन्निरोध-सकलौकरण आदि मुद्रा दिखाये और अर्घ्य, पाद्य, आचमन, अभ्यङ्ग, उद्धर्तन तथा स्नानीय जल समर्पित करे एवं अरणि-मन्थन करके पून्यदेवको वस्त्र, गन्ध, पुष्प, दीप और नैवेद्यमें चरु समर्पित करे। नैवेद्यके अनन्तर आचमन दे करके मुखशुद्धिके लिये ताम्बूल, करोद्धर्तन, छत्र, चामर, पवित्रक (यज्ञोपवीत) प्रदानकर परमौकरण (अर्चनीय देवमें सर्वोत्कृष्टताका भाव) करे। तदनन्तर साधक आराध्यके साथ तदाकार होकर उनका जप करे तथा विनम्रभावसे स्तुतिकर उन्हें प्रणाम करे। इसी हृदयादिन्यास आदिके साथ पूर्ण की गयी पूजाको 'षडङ्गपूजा' यह नाम दिया गया है।

इस प्रकार शिवपूजन पूर्ण करनेके पश्चात् साधकको अग्नि आदि चतुर्दिक् कोणों, मध्यभाग तथा पूर्वदि दिशाओंमें अग्नि आदि दिग्देवताओं तथा इन्द्रादि दिक्पालोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उसको उन देवोंके मध्य स्थित चण्डेश्वरकी पूजाकर उनके लिये निर्माल्य समर्पित करना चाहिये। उसके बाद वह निम्नाङ्कित स्तुतिसे क्षमापन (क्षमा-याचना) करके उनका विसर्जन करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्त त्वं गुह्याणाम्मकुतं जपम्।  
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थितिः॥  
यत्किञ्चित् कियते कर्म सदा सुकृतदुकृतम्।  
तन्मे शिवपदस्थस्य रुद्र क्षम्य शङ्कर॥  
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत्॥

शिवो जघति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च॥  
यत्कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं सुकृतं तव।  
त्वं ज्ञाता विद्यनेता च नान्यो नाथोऽस्ति मे शिव॥

(२३।२६—२९)

हे प्रभो! आप गुह्य-से-गुह्य तत्त्वोंके संरक्षक हैं। आप मेरे किये हुए जपकी स्वीकार करें। हे देव! मुझे सिद्धि प्राप्त हो। आपकी कृपासे आपमें मेरी निष्ठा बनी रहे। हे रुद्र! हे भगवान् शङ्कर! मेरे द्वारा सर्वदा पाप-पुण्यरूप जो कर्म किया जाता है, उसे आप नष्ट करें। मैं आपके इन कल्याणकारी चरणोंमें पड़ा हूँ। हे शिव! आप अपने भक्तोंको सर्वस्व देनेवाले हैं। आप ही भोक्ता हैं, हे शिव! यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् भी तो आप ही हैं। हे शङ्कर! आपकी विजय हो। सर्वत्र जब शिव ही हैं तो मैं भी वही हूँ। जो कुछ मैंने किया है और जो कुछ भविष्यमें करूँगा, वह सब आपके द्वारा ही किया हुआ है। आप रक्षक हैं। आप विश्वायक हैं। हे शिव! आपके अतिरिक्त मेरा कोई स्वामी नहीं है।

(हरिने पुनः कहा—हे रुद्र।) इसके बाद मैं शिवपूजाकी दूसरी विधि कह रहा हूँ—

इस विधिके अनुसार गर्वत-सरस्वती-नन्दी-महाकाल-गङ्गा-यमुना, अस्त्र तथा वायुपतिदेवकी पूजा मण्डलके द्वारपर करनी चाहिये और साधक पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि सभी दिक्पालोंकी पूजा करे। उसके बाद कारणभूत समस्त तत्त्वोंकी पूजा करे।

उन तत्त्वोंमें 'पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश'—ये पञ्चमहाभूत हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द—ये उनको पाँच तन्मात्राएँ हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके अतिरिक्त मन, बुद्धि, चित और अहंकार—ये अन्तःकरणचतुष्टय हैं। इनसे ऊपर 'पुरुष' की स्थिति है। इन्हीं (पुरुष)-को शिव कहा जाता है।

इन तत्त्वोंके साथ राग (गानशास्त्रीय रागविशेष), बुद्धि, विद्या, कला, काल, नियति, माया, शुद्धविद्या, ईश्वर और सदाशिव जो सबके मूल हैं, उनकी भी पूजा होनी चाहिये। इन समस्त तत्त्वोंमें जो शिव और शक्ति अर्थात् पुरुष एवं प्रकृतिका तत्त्व अनुस्यूत है, उसको जानकर ज्ञानी

साधक जीवन्मुक्त होकर शिवरूप हो जाता है। इन तत्त्वों में जो शिवतत्त्व है, वही विष्णु है, वही ब्रह्मा है और वही ब्रह्मतत्त्व है।

भगवान् सदाशिवका मङ्गलमय ध्यानस्वरूप इस प्रकार है—वे देव पद्मासनपर विराजमान रहते हैं। उनका वर्ण शुक्ल है। सदैव सोलह वर्षकी आयुमें स्थित रहते हैं। वे पंच मुखोंवाले हैं। उनके दसों हाथोंमें क्रमशः दक्षिणभागकी ओर अभयमुद्रा, प्रसादमुद्रा, शक्ति, शूल तथा खट्वाङ्ग और वामभागकी ओर सर्प, अक्षमाला, डमरू, नीलकमल तथा

त्रेह बीजपूरक (विजौरा बीज) स्थित रहता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक तीन शक्तियाँ उनके तीन नेत्र हैं। ऐसे वे देव सर्वदा कल्याणकी भावनामें अवस्थित रहते हैं, इसीलिये इन्हें सदाशिव कहा गया है।<sup>१</sup>

ऐसे मूर्तिमान् देवका चिन्तन करनेवाला साधक सदैव कालभयसे रहित रहता है। इस प्रकार शिवोपासना करनेवाले साधककी न तो अकालमृत्यु होती है और न शीत तथा ऊष्मादि कारणोंसे हो उसकी मृत्यु होती है।

(अध्याय २१—२३)

## भगवती त्रिपुरा तथा गणेश आदि देवोंकी पूजा-विधि

सूतजीने कहा—अब मैं गणेश आदि देवोंकी तथा त्रिपुरादेवीकी पूजाको कहूँगा, जो अपने भक्तोंको सर्वदा अभीष्ट प्रदान करनेवाली तथा श्रेष्ठ है। साधकको सबसे पहले गणपतिदेवके आसन एवं उनके मूर्तस्वरूपका पूजन करके न्यासपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। साधक 'मां' आदि बीजमन्त्रोंसे निम्न रीतिसे हृदयादिन्यास करे—

ॐ मां हृदयाय नमः, ॐ मां शिरसे स्वाहा, ॐ नृ शिखायै वषट्, ॐ मां कवचाय हुम्, ॐ मां नेत्रत्रयाय वीजट्, ॐ गः अस्त्राय फट्।

इस न्यासके पश्चात् साधकको—' ॐ दुर्गायाः पादुकाभ्यां नमः', ' ॐ गुरुपादुकाभ्यां नमः'—मन्त्रसे माता दुर्गा और गुरुकी पादुकाओंको नमस्कार करके देवी त्रिपुराके आसन और मूर्तिको प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् वह (साधक) ' ॐ ह्रीं दुर्गे रक्षिणि'—इस मन्त्रसे हृदयादिन्यास करे और फिर इसी मन्त्रसे 'रुद्रचण्डा, प्रवचदुर्गा, चण्डोष्ठ, चण्डनयिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, चण्डिका तथा दुर्गा'—इन नौ शक्तियोंका पूजन करे। तदनन्तर वज्र, खड्ग आदि मुद्राओंका प्रदर्शनकर उसके अग्रिकोणमें सदाशिव आदि देवोंकी पूजा करे। अतः साधक पहले ' ॐ सदाशिवमहादेवतत्त्व्यासनाय नमः' कहकर प्रणाम करे। तत्पश्चात् ' ॐ ऐं क्लीं ( ह्रीं ) स्त्रीं

त्रिपुराये नमः' यह मन्त्रोच्चार करके हुए उस त्रिपुराशक्तिको नमस्कार करे।

साधक उसके बाद भगवती त्रिपुराके पद्मासन, मूर्ति और हृदयादि अङ्गोंको प्रणाम करे। तत्पश्चात् उस पद्मपीठपर ब्रह्मानी, माहेश्वरी, बीमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और चण्डिका—इन आठ देवियोंकी पूजा करे। इन देवियोंकी पूजाके बाद 'भैरव' नामक देवोंकी पूजाका विधान है। अमिताङ्ग, रुद्र, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीष्म तथा संहार नामवाले—ये आठ भैरव हैं।

भैरव-पूजाके पश्चात् रति, प्रीति, कामदेव, पञ्चबाण, योगिनी, बदक, दुर्गा, विघ्नराज, गुरु और क्षेत्रपाल-देवोंका भी पूजन करे।

साधकको पद्मगर्भ-मण्डल या त्रिकोणपीठ बनाकर उसपर और हृदयमें शुक्ल वर्णवाली, वरदायिनी, अक्षमाला, पुस्तक एवं अभय-मुद्रासे सुशोभित भगवती सरस्वतीका भी ध्यान करना चाहिये। एक लाख मन्त्रका जप और हवन करनेसे भगवती त्रिपुरेश्वरी साधकके लिये सिद्धिदात्री हो जाती है। पूजामें देवोंके आसन तथा पादुकाकी पूजाका भी विधान है। वित्तेष पूजनमें मन्त्रन्यास तथा मण्डलादि-पूजन भी करना चाहिये। (अध्याय २४—२६)

१-बद्धोपासनासीनः सितः पञ्चमुखिकः॥

पञ्चवक्त्रः कराग्रैः स्वर्णशङ्खचक्रैश्च धारयन्। अभयं प्रसादं शक्तिं शूलं खट्वाङ्गमभीधरः॥

दक्षैः करैर्वामकैश्च भुजैर्गं चाक्षयूत्रकम्॥ डमरुके नीलौत्पलं बीजपूरकमुत्तमम्॥ (२३।५४—५६)



## सर्पों एवं अन्य विषैले जीव-जन्तुओंके विषको दूर करनेका मन्त्र

सूतजीने कहा—अब मैं सर्पादि विभिन्न विषैले जीव-जन्तुओंके काटनेसे कष्ट पहुँचानेवाले विषको दूर करनेमें समर्थ मन्त्रको कह रहा हूँ, जो इस प्रकार है—

ॐ कणिधिकीणिक्कवाणी चर्वाणी भूतहाणिणि फणिविधिणि विरथनारायणि उमे दह दह हस्ते चण्डे रौद्रे माहेश्वरी महामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकाणि शुकमुण्डे शत्रुं हन हन सर्वनाशिनि स्वेदय सर्वाङ्गशोणितं त्रिश्रोक्षसि मनसा देवि सम्मोहय सम्मोहय रुद्रस्य हृदये जाता रुद्रस्य हृदये स्थिता। रुद्रो रौद्रेण रूपेण त्वं देवि रक्ष रक्ष मां हूं मां हूं फफफ ठठ स्कन्दमेखलाबालग्रहशत्रुविषहारी ॐ शाले माले हर हर वियोङ्कारहिविषवेगे हां हां शवरी हूं शवरी आकौलवेगेसे सर्वे विषवेधमाले सर्वनागादिविषहरणम्।'

इस मन्त्रका प्रयोग करते समय माहेश्वरी उपादेवीसे प्रार्थना करे कि हे उमे! तुम रुद्रके हृदयमें उत्पन्न हुई हो और उसीमें रहती हो। तुम्हारा रौद्र रूप है। तुम्हें रौद्री भी कहा जाता है। तुम्हारा मुख ज्वालाके समान जाल्म्वल्यमान है तथा तुम्हने अपने कटिप्रदेशमें ध्रुव घण्टिका लगी करधनी पहन रखी है। तुम भूतोंकी शत्रु हो,

सर्पोंके लिये विषरूपिणी हो, तुम्हारा नाम विरथनारायणी है तथा तुम शुकमुण्डा हो और कानोंमें शङ्कु पहनी हुई हो। हे विशाल मुखवाली, भयंकर एवं प्रचण्ड स्वभाववाली चण्डादेवी! हाथोंमें ज्वालन-शक्ति पैदा कर, शत्रुका हनन कर, हनन कर। सब प्रकारके विषोंका नाश करनेवाली हे देवि! मेरे सर्वाङ्गमें फैले हुए विषको प्रभावहीन कर दे। उस विषको तुम देख रही हो। [उस काटनेवाले जन्तुको] सम्मोहित करो, सम्मोहित करो। हे देवि! तुम मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। इस प्रकार प्रार्थना एवं चिन्तन करके 'हूं मां हूं फफफ ठठ' इसका उच्चारण करे तथा 'स्कन्दकी मेखलारूपी बालग्रहों, शत्रुओं और विषोंका हरण करनेवाली हे शाला-माला! नाग प्रकारके विषोंके वेगका हरण कर, हरण कर।' ऐसा उच्चारण करे और 'हां हां शवरी हूं' शवरी कहकर वेगपूर्ण गतिशीलोंमें अतिगतिशील सर्वत्र व्यापिनी मेघमालारूपिणी देवि। मेरे सभी नागादि विषजन्तुओंसे उत्पन्न विषका हरण करो।

[इस प्रकार चिन्तन और प्रार्थना करते हुए रोगीके प्रति स्पर्शादि करते हुए मन्त्रपाठ करे।]

(अध्याय २७)

## श्रीगोपालजीकी पूजा, त्रैलोक्यमोहन-मन्त्र तथा श्रीधर-पूजनविधि

श्रीसूतजीने कहा—हे ऋषियो! मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली श्रीगोपालजी तथा भगवान् श्रीधर विष्णुकी पूजाका वर्णन कर रहा हूँ, इसे सुनो। पूजा प्रारम्भ करनेसे पहले पूजा-मण्डलके द्वारदेशमें गङ्गा और यमुनाके साथ धाता और विधाताकी, श्रीके साथ शङ्ख, पद्मनिधि एवं शार्ङ्गधनुष और शरभकी पूजा करनी चाहिये तथा पूर्व दिशामें भद्र और सुभद्रकी, दक्षिण दिशामें चण्ड और प्रचण्डकी, पश्चिम दिशामें बल और प्रबलकी, उत्तर दिशामें जय और विजयकी तथा चारों दरवाजोंपर श्री, गण, दुर्गा और सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये।

मण्डलके अग्नि आदि कोणोंमें और दिशाओंमें परम भागवत नारद, सिद्ध तथा गुरुका एवं नल-कूबरका पूजन करे। पूर्व दिशामें विष्णु, विष्णुतपा तथा विष्णुसक्तिकी अर्चना करे। इसके बाद विष्णुके परिवारकी अर्चना करे।

मण्डलके मध्यमें शक्तिकी और कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, धर्म, ज्ञान तथा वैराग्यकी अग्नि आदि कोणोंमें पूजा करे। वायव्य-कोणके साथ उत्तर दिशामें प्रकाशात्मक एवं ऐश्वर्यकी पूजा करे। 'गोपीजनबल्लभाय स्वाहा'—यह गोपालमन्त्र है। मण्डलकी पूर्व दिशासे आरम्भ करके क्रमशः आठों दिशाओंमें जाम्बवती और सुशीलाके साथ रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नागजिती, लक्ष्मणा और मिश्रविन्दाकी पूजा करनी चाहिये।

साथ ही श्रीगोपालके शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल, खड्ग, पार, अङ्गुष्ठ, श्रीवत्स, कौस्तुभ, मुकुट, वनमाला, इन्द्रादि ध्वजबाहक दिक्पाल, कुमुदादिगण और विष्णुसेनका पूजन करके श्रीलक्ष्मीसहित कृष्णकी भी अर्चना करनी चाहिये।

गोपीजनवल्लभके मन्त्र जपनेसे तथा उनका ध्यान

करनेसे एवं उनकी (साङ्गोपाङ्ग) पूजा करनेसे साधक सभी कामनाओंको पूर्ण कर लेता है।

त्रैलोक्यमोहन श्रीधरके मन्त्र इस प्रकार हैं—

‘ॐ श्री ( श्रीः ) श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः। क्लीं पुरुषोत्तमाय त्रैलोक्यमोहनाय नमः। ॐ विष्णवे त्रैलोक्यमोहनाय नमः। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः।

—ये मन्त्र समस्त प्रयोजनोंको पूर्ण करनेवाले हैं।

श्रीसूतजी पुनः बोले—अब मैं श्रीधर भगवान् (विष्णु) की मङ्गलमयी पूजाका वर्णन करता हूँ।

साधकको सर्वप्रथम ‘ॐ आं हृदयाय नमः, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रूं शिखायै वषट्, ॐ श्रीं कवचाय हुम्, ॐ श्रीं नेत्रत्रयाय वीषट्, ॐ अः अस्त्राय फट्—इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास और करन्यास करना चाहिये। तदनन्तर भगवान्को शङ्ख, चक्र, गदास्वरूपिणी मुद्रा प्रदर्शितकर शङ्ख, चक्र तथा गदा-पद्मसे सुशोभित आत्मस्वरूप श्रीधर भगवान् पुरुषोत्तमका ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वस्तिक या सर्वतोभद्र-मण्डलमें श्रीधरदेवकी पूजा करनी चाहिये।

सर्वप्रथम शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णुके आसनकी पूजा करनी चाहिये।

‘ॐ श्रीधरासनदेवता आगच्छत’ इस मन्त्रसे आवाहन करके ‘ॐ समस्तपरिवारायाम्युत्तमनाय नमः’, ‘ॐ धात्रे नमः’, ‘ॐ विधात्रे नमः’, ‘ॐ गङ्गायै नमः’, ‘ॐ यमुनायै नमः’, ‘ॐ आधारशक्यै नमः’, ‘ॐ कूर्माय नमः’, ‘ॐ अजनाय नमः’, ‘ॐ पृथिव्यै नमः’, ‘ॐ धर्माय नमः’, ‘ॐ ज्ञानाय नमः’, ‘ॐ वैराग्याय नमः’, ‘ॐ ऐश्वर्याय नमः’, ‘ॐ अधर्माय नमः’, ‘ॐ अज्ञानाय नमः’, ‘ॐ अवैराग्याय नमः’, ‘ॐ अनैश्वर्याय नमः’, ‘ॐ कन्दाय नमः’, ‘ॐ नालाय नमः’, ‘ॐ पद्माय नमः’, ‘ॐ विमलायै नमः’, ‘ॐ उत्कर्षिण्यै नमः’, ‘ॐ ज्ञानायै नमः’, ‘ॐ क्रियायै नमः’, ‘ॐ योगायै नमः’, ‘ॐ ब्रह्मै नमः’, ‘ॐ सत्यायै नमः’, ‘ॐ ईशानायै नमः’, ‘ॐ अनुग्रहायै नमः—इन मन्त्रोंसे श्रीधरके आसनका पूजन करके (हे रुद्र!) पूर्वोक्त धाता, विधाता, गङ्गा आदि देवोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर हरिका आवाहन करके पूजन करे। उसके बाद ‘ॐ ह्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः

आगच्छ।—इस मन्त्रसे श्रीधरदेवका आवाहन तथा पूजन करना चाहिये।

इस पूजाके पश्चात् ‘ॐ श्रियै नमः—इस मन्त्रसे लक्ष्मीका पूजन करना चाहिये। ‘ॐ आं हृदयाय नमः’, ‘ॐ श्रीं शिरसे नमः’, ‘ॐ श्रूं शिखायै नमः’, ‘ॐ श्रीं कवचाय नमः’, ‘ॐ श्रीं नेत्रत्रयाय नमः’, ‘ॐ अः अस्त्राय नमः’, ‘ॐ शङ्खाय नमः’, ‘ॐ पद्माय नमः’, ‘ॐ चक्राय नमः’, ‘ॐ गदायै नमः’, ‘ॐ श्रीवत्साय नमः’, ‘ॐ कौस्तुभाय नमः’, ‘ॐ वनमालायै नमः’, ‘ॐ पीताम्बराय नमः’, ‘ॐ ब्रह्मणे नमः’, ‘ॐ नाराय नमः’, ‘ॐ गुरुभ्यो नमः’, ‘ॐ इन्द्राय नमः’, ‘ॐ अग्नये नमः’, ‘ॐ यमाय नमः’, ‘ॐ विद्मते नमः’, ‘ॐ वरुणाय नमः’, ‘ॐ वायवे नमः’, ‘ॐ सोमाय नमः’, ‘ॐ ईशानाय नमः’, ‘ॐ अजनाय नमः’, ‘ॐ ब्रह्मणे नमः’, ‘ॐ सत्याय नमः’, ‘ॐ रजसे नमः’, ‘ॐ तमसे नमः’, ‘ॐ विश्वामसेनाय नमः—इत्यादि मन्त्रोंसे षडङ्गन्यास, अस्त्र-पूजा तथा उक्त देव-परिवारकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर सपरिहर भगवान् विष्णुका अधिपेक करके वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य निवेदित करके प्रदक्षिणा करे। मूल मन्त्रका जप १०८ बार करे और किया हुआ जप अभीष्ट देव भगवान् श्रीधरको समर्पित कर दे।

तत्पश्चात् विद्वान् साधकको चाहिये कि मुहूर्तपर अपने हृदयदेशमें स्थित विशुद्ध स्फटिक मणिके समान कान्तिमान्, करोड़ों सूर्यके सदृश प्रभावाले, प्रसन्नमुख, सौम्य मुद्रावाले, चमचमाते हुए धवल-मकराकृति-कुण्डलोंसे सुशोभित, सिरपर मुकुटकी धारण किये हुए, सुभलक्षणसम्पन्न अङ्गोंवाले तथा वनमालासे अलंकृत परब्रह्मस्वरूप श्रीधरदेवका ध्यान करे।

उसके बाद इन स्तोत्रोंसे भगवान्की स्तुति करनी चाहिये—

श्रीनिवासाय देवाय नमः श्रीपतये नमः।

श्रीधराय सप्ताङ्गाय श्रीप्रदाय नमो नमः॥

श्रीवत्सभाय शान्ताय श्रीमते च नमो नमः।

श्रीपर्वतनिवासाय नमः श्रेयस्कराय च॥

श्रेयसां पतये चैव ह्याश्रयाय नमो नमः ।

नमः श्रेयःस्वरूपाय श्रीकराय नमो नमः ॥

शरणयाय श्रेययाय नमो भूयो नमो नमः ।

स्तोत्रं कृत्वा नमस्कृत्य देवदेवं विसर्जयेत् ॥

इति रुद्र समाख्याता पूजा विष्णोर्महात्मनः ।

यः करोति महाभक्त्या स याति परमं पदम् ॥

(३०। १५-१९)

हे देव! आप लक्ष्मीनिवास और श्रीपति हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप श्रीधर हैं, शार्ङ्गपाणि हैं एवं साधकको लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप ही श्रीवल्लभ, शान्तिस्वरूप तथा ऐश्वर्यसम्पन्न देव हैं, आपको मेरा प्रणाम है।

आप श्रीपर्वतपर निवास करनेवाले हैं, समस्त मङ्गलोंके स्वामी, सर्वकल्याणकर्ता तथा सर्वमङ्गलाधार हैं, आपको मेरा बार-बार नमस्कार है। आप कल्याण और ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं, आपको मेरा नमन है। आप शरण देनेवाले तथा सर्वश्रेष्ठ हैं, आपको बारम्बार प्रणाम है।

इस प्रकार देवाधिदेव श्रीधर भगवान् विष्णुका स्तवन और नमन करके उनका विसर्जन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक इस पूजाको करनेवाला परमपदको प्राप्त करता है। जो विष्णुपूजाको प्रकाशित करनेवाले इस अध्यायका पाठ करता है, वह इस लोकमें समस्त पापोंसे मुक्त होकर अन्तमें विष्णुके परमपदको प्राप्त करता है।

रुद्रने कहा—हे प्रभो! हे जगत्के स्वामी! पुनः उस प्रकारकी पूजा-विधिको बतानेकी कृपा करें, जिसके द्वारा इस अल्पतः दुस्तर भवसागरको पार किया जा सकता है।

श्रीहरि बोले—हे वृषभध्वज! मैं विष्णुदेवके पूजन-विधानको कह रहा हूँ। हे महाभाग! उस भोग और मोक्षको देनेवाले कल्याणकारी पूजनके विषयमें सुनें।

हे रुद्र! सर्वप्रथम मनुष्यको स्नान करना चाहिये। तदनन्तर संध्यासे निवृत्त होकर यज्ञमण्डपमें प्रवेश करना चाहिये। हाथ-पैरका प्रक्षालनकर विधिवत् आचमन करके न्यासविधिके अनुसार दोनों हाथोंके द्वारा व्यापक रूपमें मूलमन्त्रका करन्यास करना चाहिये। हे रुद्र! उन विष्णु-देवके मूलमन्त्रको कह रहा हूँ, आप सुनें—

‘ॐ श्रीं ह्रीं श्रीधराय विष्णवे नमः ।’

—यह मन्त्र देवाधिदेव परमेश्वर विष्णुका वाचक है। यह समस्त रोगोंको हरण करनेवाला तथा सभी ग्रहोंका क्षमनकर्ता है। यह सर्वपापविनाशक और भुक्ति-मुक्ति प्रदायक है।

साधकको इन मन्त्रोंके द्वारा अङ्गन्यास करना चाहिये—

‘ॐ हां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रीं कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वीषट्, ॐ हः अस्ताय फट् ।’

आत्मसंयमी साधकको चाहिये कि वह अङ्गन्यास करके आभ्यमुद्रा प्रदर्शित करे। तदनन्तर हृदयगुहामें विराजमान शङ्ख-चक्रसे युक्त, कुन्द-पुष्प और चन्द्रमाके समान शुभ कान्तिवाले, शीतल और कौस्तुभमणिसे समन्वित, वनमाला तथा रत्नहार धारण किये हुए परमेश्वर भगवान् विष्णुका ध्यान करे।

तदनन्तर ‘विष्णुमण्डलमें अवस्थित होनेवाले आप सभी देवगणों, पार्षदों तथा शक्तियोंका मैं आवाहन करता हूँ, यहाँपर आप सब पधारे’—ऐसा कहकर—

‘ॐ समस्तपारिवारायाध्याताय नमः, ॐ धात्रे नमः, ॐ विधात्रे नमः, ॐ गङ्गायै नमः, ॐ यमुनायै नमः, ॐ शङ्खविधायै नमः, ॐ पद्मविधायै नमः, ॐ चण्डाय नमः, ॐ चण्डिकाय नमः, ॐ द्वारिधायै नमः, ॐ आधारशक्त्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ श्रियै नमः, ॐ धर्म्याय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ कं कन्दाय नमः, ॐ नं नालाय नमः, ॐ लां पश्याय नमः, ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः, ॐ सौं सौममण्डलाय नमः, ॐ वं वङ्गिमण्डलाय नमः, ॐ विषलायै नमः, ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ प्रज्ञायै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ॐ ईशानायै नमः, ॐ अनुग्रहायै नमः—इन नाममन्त्रोंसे गन्ध-पुष्पादि उपचारोंके द्वारा घाता, विधाता, गङ्गा, यमुना आदि देवताओंका नमस्कारपूर्वक पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर हे रुद्र! सृष्टि तथा संहार करनेवाले, सभी पापोंको दूर करनेवाले परमेश्वर भगवान् विष्णुका मण्डलमें आवाहन करके इस विधिसे उनका पूजन करना चाहिये।

जिस प्रकार सर्वप्रथम अपने शरीरमें न्यास किया जाता है, उसी प्रकार प्रतिमामें भी सर्वप्रथम न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मुद्राका प्रदर्शनकर अर्घ्य-पाद्यादि उपचारोंको अर्पण करना चाहिये। उसके बाद स्नान, वस्त्र, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यरूपमें चरु अर्पित करके उन देवको प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर उनके मन्त्रका जप करके इस जप-पूजनको उन्हें ही समर्पित कर देना चाहिये।

हे वृषभध्वज! उन श्रीधरदेवकी पूजा उनके मूल मन्त्रसे करनी चाहिये। हे त्रिनेत्र! इस समय मैं उन मन्त्रोंको भी कह रहा हूँ, जिनसे न्यास तथा विष्णुके परिवार, दिग्देवता और आयुध आदिकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें आप सुनै—

ॐ हां ह्रस्वाय नमः, ॐ ह्रीं शिरोसे नमः, ॐ हूं शिखायै नमः, ॐ हूं कवचाय नमः, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय नमः, ॐ हः अस्त्राय नमः, ॐ शिरीषे नमः, ॐ जङ्घाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ कौस्तुभाय नमः, ॐ वनघातायै नमः, ॐ वीताम्बराय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ मुस्तत्राय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अक्षुषाय नमः, ॐ शार्ङ्गाय नमः, ॐ शराय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ नारदाय नमः, ॐ पूर्वसिद्धेभ्यो नमः, ॐ भागवतेभ्यो नमः, ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परावगुरुभ्यो नमः, ॐ इन्द्राय सुराधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ अग्नये तेजोऽधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ यमाय प्रेताधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ विष्णवे रक्षोऽधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ वरुणाय जलाधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ वायवे प्राणाधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ सोमाय नक्षत्राधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ ईशानाय विद्याधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ अनन्ताय नागाधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ ब्रह्मणे लोकाधिपतये सखाहनपरिवाराय नमः, ॐ वज्राय हुं फट् नमः, ॐ जक्त्वै हुं फट् नमः, ॐ दण्डाय हुं फट् नमः, ॐ खड्गाय हुं फट् नमः, ॐ पाशाय हुं फट् नमः, ॐ ध्वजाय हुं फट् नमः, ॐ

गदायै हुं फट् नमः, ॐ विशूलाय हुं फट् नमः, ॐ चक्राय हुं फट् नमः, ॐ पद्माय हुं फट् नमः, तथा ॐ वीं विष्वक्सेनाय नमः।

हे महादेव! इस प्रकार इन मन्त्रोंसे अधिकारी मनुष्योंको चाहिये कि वे विष्णुके विभिन्न अङ्गोंकी पूजा करें, तदनन्तर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन करके इस स्तुतिसे उन अविनाशी परमात्म प्रभुका स्तवन करें—

विष्णवे देवदेवाय नमो वै प्रभविष्णवे॥

विष्णवे वासुदेवाय नमः स्थितिकाराय च॥

प्रविष्णवे नमस्तैव नमः प्रलयशायिने॥

देवानां प्रभवे चैव यज्ञानां प्रभवे नमः॥

मुनीनां प्रभवे नित्यं यक्षाणां प्रभविष्णवे॥

विष्णवे सर्वदेवानां सर्वगाय महात्मने॥

ब्रह्मेन्द्रवन्द्याय सर्वेशाय नमो नमः॥

सर्वलोकहितार्थाय लोकाध्यक्षाय वै नमः॥

सर्वगोप्त्रे सर्वकर्त्रे सर्वदुर्हविनाशिने॥

वरप्रदाय ज्ञानाय वरेण्याय नमो नमः॥

शरणाय सुरुपाय धर्मकामार्थदायिने॥

(३१।२४—२९)

देवाधिदेव, तैजोमूर्ति भगवान् विष्णुदेवके लिये नमस्कार है। संसारकी स्थिति (पालन) करनेवाले वासुदेव विष्णुके लिये नमन है। प्रलयके समय संसारको अपने मूल कारण प्रकृतिमें लीन करके आत्मसात्कर शयन करनेवाले विष्णुको प्रणाम है। देवोंके अधिपति तथा यक्षोंके अधिपति विष्णुको नमन है। मुनियों तथा यक्षोंके प्रभु और समस्त देवोंपर विजय प्राप्त करनेवाले, सबमें व्याप्त रहनेवाले, महात्मा, ब्रह्मा, इन्द्र-रुद्रादिके वन्दनीय सर्वेश्वर भगवान् विष्णुके लिये नमस्कार है।

समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले, लोकाध्यक्ष, सर्वगोत्र, सर्वकर्ता तथा समस्त दुष्टोंके विनाशक भगवान् विष्णुके लिये नमन है। वर प्रदान करनेवाले, परम ज्ञान, सर्वश्रेष्ठ, शरणगतकी रक्षा करनेवाले, सुन्दर रूपवाले, धर्म-काम तथा अर्थ—इस त्रिवर्गके प्रदाता भगवान् विष्णुके लिये बार-बार प्रणाम है।

हे शङ्कर! इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप, अव्यय, परात्पर भगवान् विष्णुकी स्तुति करके अपने हृदयमें उनका ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् मूल मन्त्रसे उन विष्णुकी पूजा



करनी चाहिये और मूल मन्त्रका जप करना चाहिये। जो अधिकारी व्यक्ति ऐसा करता है, वह भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है। हे रुद्र! इस प्रकार मैंने आपसे इस रहस्यपूर्ण, परम गुह्य, भुक्ति-मुक्तिप्रद और उत्तम विष्णुकी

पूजाविधिकी कहा है। हे शङ्कर! जो विद्वान् पुरुष इसका पाठ करता है, वह विष्णुभक्त हो जाता है। इसे जो सुनता है अथवा सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय २८—३१)

## पञ्चतत्त्वार्चन-विधि

महेश्वरने कहा—हे शङ्ख-चक्र-गदाधर! आप पञ्चतत्त्वोंकी उस पूजा-विधिकी मुझे बतानेकी कृपा करें, जिसका ज्ञान प्राप्त कर लेनेमात्रसे ही मनुष्य परमपदको प्राप्त कर लेता है।

श्रीहरिने कहा—हे सुखत शिव! मैं आपसे पञ्चतत्त्व-पूजा-विधिकी कह रहा हूँ, यह दिव्य, मङ्गलस्वरूप, कल्याणकारी, रहस्यपूर्ण, श्रेष्ठ तथा अभीष्टोंकी सिद्धि करनेवाली है। हे महादेव! ऐसे उस परम पवित्र कलिदोष-विनाशक पूजन-विधिका आप श्रवण करें।

हे सदाशिव! एक ही परमात्मा जो वासुदेव श्रीहरि हैं, वे ही अविनाशी, शान्त, सनातन, सत्-स्वरूप हैं। वे ध्रुव (नित्य, अचल), शुद्ध, सर्वव्यापी तथा निरञ्जन हैं। वे ही विष्णुदेव अपनी मायाके प्रभावसे पाँच प्रकारसे अवस्थित हैं। वे जगत्का कल्याण करनेवाले हैं। वे ही अद्वितीय विष्णु वासुदेव, संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायणस्वरूपसे पाँच रूपों (तत्त्वों) में स्थित हैं।

हे वृषभध्वज! जनार्दन विष्णुके उक्त पञ्चरूपोंके वाचक मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ अं वासुदेवाय नमः, ॐ अं संकर्षणाय नमः, ॐ अं प्रद्युम्नाय नमः, ॐ अं अनिरुद्धाय नमः, ॐ अं नारायणाय नमः।

—ये पाँच मन्त्र उक्त पाँच देवताओंके वाचक हैं, जो सभी पातक, महापातककिं विनाशक, पुण्यजनक तथा समस्त रोगोंको दूर करनेवाले हैं। अब मैं आपसे मङ्गलमय पञ्चतत्त्वार्चन-विधिकी कह रहा हूँ। हे शिव! उसको जिस विधिसे और जिन मन्त्रोंके द्वारा सम्पन्न करना चाहिये, उसका आप श्रवण करें।

—इन पाँच देवोंकी पूजामें सर्वप्रथम स्नान करके विधिवत् संध्या करनी चाहिये। तदनन्तर हाथ-पैर धोकर पूजा-गृहमें प्रवेश करके विद्वान् साधकको चाहिये कि वह आचमन करके मनोऽनुकूल आसन लगाकर बैठ जाय और—'अं श्रीं रम्'—इन मन्त्रोंसे शोषणादि क्रिया करे।

ये वासुदेव कृष्ण जगत्के स्वामी, पीतवर्णके कौशेय (रेशमी) बालोंसे विभूषित, सहस्रों सूर्यकी किरणोंके समान तेजःस्वरूप तथा देदीप्यमान मकराकृति-कुण्डलोंसे सुशोभित हैं, ऐसे उन भगवान् कृष्णका अपने हृदय-कमलमें ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर भगवान् संकर्षणका ध्यान करे। उसके बाद यथाक्रम प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा श्रीमन्नारायणके स्वरूपका ध्यान करके उन देवाधिदेवसे प्राप्तभूत इन्द्रादि देवोंका ध्यान करके मूल मन्त्रके द्वारा दोनों हाथोंसे व्यापक रूपमें कान्यास करे, तत्पश्चात् अङ्गन्यासके मन्त्रोंसे अङ्गन्यास करे। हे महादेव! सुखत! उन न्यास एवं पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—

'ॐ अं हृदयाय नमः, ॐ ईं शिरसे नमः, ॐ ऊं शिखायै नमः, ॐ ऐं कवचाय नमः, ॐ औं नेत्रत्रयाय नमः, ॐ अः अस्त्राय फट्, ॐ समस्तपरिवारायाश्च्युताय नमः, ॐ धात्रे नमः, ॐ धिधात्रे नमः, ॐ आधारशक्त्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अजन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अनेष्टव्याय नमः, ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः, ॐ सौं सोममण्डलाय नमः, ॐ वं वह्निमण्डलाय नमः, ॐ वं वासुदेवाय पाञ्चदशे शिवाय तेजोरूपाय व्याधिने सर्वदेवाधिदेवाय नमः, ॐ पाञ्चजन्याय नमः, ॐ सुदर्शनाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ पद्याय नमः, ॐ श्रियै नमः, ॐ द्विषै नमः, ॐ पुष्ट्यै नमः, ॐ गीतै नमः, ॐ शक्यै नमः, ॐ द्रोतै नमः, ॐ इन्द्राय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्व्रतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः, ॐ ईशानाय नमः, ॐ अजन्ताय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ विष्वक्सेनाय नमः।'

तत्पश्चात् 'ॐ घराय नमः' ऐसा कहकर स्वस्तिक और सर्वतोभद्रादि मण्डलोंका निर्माण करके उस मण्डलमें इन्हीं मन्त्रोंसे देवोंका पूजन करना चाहिये।

मूल मन्त्रसे पाद्य आदिका निवेदन करके स्नान, वस्त्र,

आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य प्रदान करके नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करना चाहिये। हे शङ्कर! उसके बाद यथाशक्ति मूल मन्त्रका जपकर उसे प्रभुको समर्पित कर दे।

तदनन्तर भगवान् वासुदेवका स्मरणकर इस स्तोत्रका पाठ करे—

ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च॥

प्रद्युम्नायादिदेवायानिरुद्धाय नमो नमः।

नमो नारायणायैव नाराणां पतये नमः॥

नारपुण्याय कीर्त्याय स्तुत्याय वादाय च।

अनादिनिधनायैव पुराणाय नमो नमः॥

सृष्टिसंहारकर्त्रे च ब्रह्मणे पतये नमः।

नमो वै वेदवेदाय शङ्खचक्रधराय च॥

कलिकल्मषहर्त्रे च सुरेशाय नमो नमः।

संसारवृक्षच्छेत्रे च मायाभेत्रे नमो नमः॥

बहुरूपाय तीर्थाय त्रिगुणाद्यागुणाय च।

ब्रह्मविष्णुवीशरूपाय मोक्षदाय नमो नमः॥

मोक्षद्वाराय धर्माय निर्वाणाय नमो नमः।

सर्वकामप्रदायैव परब्रह्मस्वरूपिणे॥

संसारसागरे घोरे निधानं मां समुद्धर।

त्वदन्यो नास्ति देवेश नास्ति पाता जगत्प्रभो॥

त्वामेव सर्वमं विष्णुं गतोऽहं शरणं ततः।

ज्ञानदीपप्रदानेन तपोयुक्तं प्रकाशय॥

(३२।३०—३८)

'हे वासुदेव! हे संकर्षण (वलराम)! आपको नमस्कार है। हे प्रद्युम्न, आदिदेव, अनिरुद्ध! आपके लिये नमस्कार है। हे नारायण! नाराधिपति! आपको नमन है, कौतून करने योग्य, मनुष्योंसे पूजनीय, स्तुति करने योग्य, वर देनेवाले,

आदि तथा अन्तसे रहित सनातन प्रभुको बारम्बार नमस्कार है। सृष्टि और संहारकर्ता, ब्रह्माके भी स्वामी तथा शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। नमस्कार है।'।

कलिकालके दोषोंको नष्ट करनेवाले, देवोंके ईश। आपको बारम्बार प्रणाम है। सम्पूर्ण जगत्-रूपी मूल वृक्षका छेदन करनेवाले, मायाका भेदन करनेवाले, बहुत-से रूपोंको धारण करनेवाले, तीर्थस्वरूप, सत्त्व, रजस् तथा तमोरूप एवं वस्तुतः निर्गुण तथा ब्रह्म, विष्णु और शिव—इन तीन रूपोंमें अवस्थित रहनेवाले मोक्षदायक भगवान् विष्णु परमेश्वरको नमस्कार है। मोक्षके द्वारभूत, धर्मस्वरूप, निर्वाणरूप, समस्त अभीष्टोंको प्रदान करनेवाले परब्रह्मस्वरूप आपके लिये बार-बार नमस्कार है। इस गहन संसारसागरमें मैं डूब रहा हूँ, आप मेरा उद्धार करें। हे देवदेवेश्वर! हे जगत्के स्वामी! आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी रक्षक नहीं है। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले हे भगवान् विष्णु! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे भगवन्! ज्ञानरूपी दोषको प्रज्वलितकर मेरे (अज्ञानरूपी) अन्धकारको दूर करके मुझे प्रकाशित कर दें।

इस प्रकार समस्त कष्टोंको दूर करनेवाले देवेश भगवान् वासुदेवकी स्तुति करके हे नीललोहित शिव! अन्य वैदिक स्तोत्र-पाठोंसे भी स्तुति करके पञ्चतत्त्वोंसे युक्त उन भगवान् विष्णुको अपने हृदयमें ध्यान करे। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये। इस प्रकार हे शङ्कर! सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली वासुदेवकी श्रेष्ठ पूजा कही गयी। इस पूजाके करनेमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

हे रुद्र! जो व्यक्ति इस पञ्चतत्त्वार्चनको पढ़ता है, सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ३२)

## सुदर्शनचक्र-पूजा-विधि

रुद्रने कहा—हे शङ्ख-गदाधर! उस सुदर्शनकी पूजाके विषयमें मुझे बतार्य, जिसे करनेसे ग्रहदोष और रोगादि—सभी कष्ट विनष्ट हो जाते हैं।

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! सुदर्शनचक्रकी पूजा-विधिकी मैं कह रहा हूँ, आप सुनें। सर्वप्रथम स्नान करके हरिका पूजन करे। साधकको चाहिये कि अपने निर्मल एवं शुभ हृदय-कमलमें भगवान् सुदर्शनदेव विष्णुका ध्यान करे। हे महादेव! उसके बाद मण्डलमें शङ्ख, चक्र, गदा

तथा पद्म धारण करनेवाले, सौम्य आकृतिवाले, किरीटी भगवान् विष्णुदेवका आवाहन करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि विविध उपचारोंसे पूजा करे।

पूजाके अन्तमें मूल मन्त्रका १०८ बार जप करे। हे रुद्र! जो इस प्रकार सुदर्शनचक्रका उत्तम पूजन करता है, वह इस लोकमें समस्त रोगोंसे विमुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। मन्त्र-जपके पश्चात् सभी व्याधियोंको विनष्ट करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये—

नमः सुदर्शनार्थैव सहस्रादित्यवर्चसे ॥  
 ज्वालामालाप्रदीप्ताय सहस्राराय चक्षुषे ।  
 सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने ॥  
 सुचक्राय विचक्राय सर्वमन्त्रविभेदिने ।  
 प्रसवित्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वंसिने नमः ॥  
 पालनार्थाय लोकानां दुष्टासुरविनाशिने ।  
 उग्राय चैव सौम्याय चण्डाय च नमो नमः ॥  
 नमश्चक्षुःस्वरूपाय संसारभयभेदिने ।  
 मायापङ्कजभेदे च शिवाय च नमो नमः ॥  
 ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणां पतये नमः ।  
 कालाय मृत्यवे चैव भीमाय च नमो नमः ॥  
 भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोप्त्रे नमो नमः ।  
 विष्णुरूपाय शान्ताय चापुधानां धराय च ॥  
 विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भूयो नमो नमः ।  
 इति स्तोत्रं महत्पुण्यं चक्रस्य तत्र कीर्तितम् ॥  
 पः पठेन् परया भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति ।  
 चक्रपूजाविधिं यश्च पठेद्गृहं जितेन्द्रियः ।  
 स पापं भ्रामसात्कृत्वा विष्णुलोकाय कल्पते ॥

(३३।८-१६)

सहस्रों सूर्यके समान तेजःसम्पन्न सुदर्शनचक्रके लिये नमस्कार है। तेजस्वी किरणोंकी मालाओंसे प्रदीप्त हजारों

अरे (चक्रके अवयव)-वाले, नेत्रस्वरूप, सर्वदुष्टविनाशक तथा सभी प्रकारके पापोंको नष्ट करनेवाले आपको नमन है। सुचक्र तथा विचक्र नामधारी, सम्पूर्ण मन्त्रका भेदन करनेवाले, जगत्को सृष्टि करनेवाले, पालन-पोषण करनेवाले एवं जगत्का संहार करनेवाले हे सुदर्शनचक्र! आपको नमस्कार है। (संसारकी रक्षा करनेके लिये) देवताओंका कल्याण करनेवाले, दुष्ट राक्षसोंका विनाश करनेवाले, दुष्टोंका संहार करनेके लिये उग्र-स्वरूप एवं प्रचण्ड-स्वरूप और सज्जनोंके लिये सौम्य-स्वरूप धारण करनेवाले आपको धारम्भार नमस्कार है। जगत्के लिये नेत्रस्वरूप संसारभयको काटनेवाले मायारूपी पिंजड़ेका भेदन करनेवाले, कल्याणकारी सुदर्शनचक्रको नमस्कार है। ग्रह एवं अतिग्रहस्वरूप, ग्रहपति, वरुणस्वरूप, मृत्युस्वरूप, पापात्माओंके लिये महाभयंकर आपके लिये बार-बार नमन है। भक्तोंपर कृपा करनेवाले, उनके अभिरक्षक, विष्णुस्वरूप, शान्तस्वभाव, समस्त आपुर्णोंकी सत्तिको अपनेमें धारणकर स्थित रहनेवाले विष्णुके सखभूत हे सुदर्शनचक्र! आपके लिये बारम्बार नमस्कार है।

हे शङ्कर! सुदर्शनचक्रके इस महत्पुण्यशाली स्तोत्रका जो मनुष्य परम भावसे पाठ करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ३३)

## भगवान् हयग्रीवके पूजनकी विधि

रुद्रने कहा—हे हृषीकेश! हे गदाधर! आप पुनः देवार्चनविधिको बतायें। आपके द्वारा बार-बार देव-पूजनविधिको सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं हयग्रीव नामके देवके पूजनविधानको कहता हूँ, आप सुनें। उसके करनेसे जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु अत्यन्त संतुष्ट हो जायेंगे।

हे शङ्कर! उस पूजनका मूल मन्त्र हयग्रीवदेवका ही प्राचक है। वह परम पुण्यशाली मन्त्र इस प्रकार है—

‘ॐ सीं क्षीं शिरसे नमः’ यह प्रणव-युक्त मन्त्र सभी प्रकारकी विद्याओंको प्रदान करनेवाला है।

‘ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ क्षीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्षुं शिखायै वषट्, ॐ क्षीं कवचाय हुम्, ॐ क्षीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हः अस्त्राय फट्—इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास और

कान्यास करना चाहिये।

हे शङ्कर! ये हयग्रीव देव शङ्ख, कुन्दपुष्प, चन्द्रके सदृश श्वेतवर्ण, कमलनालतनु और रजतधातुकी कान्तिके समान देहकान्तिको धारण करनेवाले, गीके दुग्धकी भाँति और करोड़ों सूर्यके सदृश प्रतिभासित होनेवाले, शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मको धारण किये हुए चार भुजावाले हैं। वे सर्वव्यापी देवता मुकुट, कुण्डल, वनमालासे सुशोभित, सुदर्शनचक्रसे युक्त, सुन्दर-सुन्दर कपोलोंवाले, पीताम्बरको धारण किये हुए हैं। सभी देवोंसे युक्त उन विराट्देवकी अपनेमें भावना करके अङ्गमन्त्रोंसे तथा मूल मन्त्रसे न्यास करना चाहिये। इसके पश्चात् मूल मन्त्रसे ही शङ्ख, पद्मादिको मङ्गलमयी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। हे शङ्कर! इस प्रकार मुद्राएँ दिखा करके मूल मन्त्रसे विष्णुका ध्यान करके

अर्चा करनी चाहिये।

हे रत्न! इसके बाद हयग्रीवके आसनके संनिकट अवस्थित रहनेवाले जो अन्य देव हैं, उनका आवाहन करना चाहिये। यथा—

‘ॐ हयग्रीवासनस्य आगच्छत च देवताः।’

—इस प्रकार आवाहन करके स्वस्तिक या सर्वतोभद्र-मण्डलके अन्तर्गत उन देवोंका पूजन करके द्वारपर धाता और विधाताकी पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

हे वृषभध्वज! ‘समस्तपरिवाराय अञ्जुताय नमः’—इस मन्त्रसे मण्डलके मध्यमें भगवान् विष्णुका पूजन करके द्वारपर गङ्गा, महादेवी तथा शङ्ख एवं पद्म नामक तिथिकी पूजा करके अग्रभागमें गुरुड तथा मध्यभागमें अधार नामवाली शक्तिकी पूजा करनी चाहिये।

हे महादेव! तदनन्तर कूर्म, अनन्त एवं पृथ्वीका पूजन करे और अग्निकोणमें धर्म, नैर्ऋत्यकोणमें ज्ञान, वायुकोणमें वैराग्य तथा ईशानकोणमें ऐश्वर्यका पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्व दिशामें अधर्म, दक्षिण दिशामें अज्ञान, पश्चिम दिशामें अवैराग्य तथा उत्तर दिशामें अनैश्वर्यका भी पूजन करना चाहिये। इसके बाद मण्डलके मध्यमें सत्त्व, रजस् तथा तमस्—इन तीन गुणोंकी पूजा करके मध्यभागमें ही कन्द, नाल और पद्मकी विधिवत् पूजा करे। तदनन्तर मध्यदेशमें अर्क, सोम और अग्निमण्डलका पूजन करना चाहिये।

हे वृषभध्वज! विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रज्ञा, सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा नामक ये शक्तियाँ हैं। पूर्वादि दिशाओंमें—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तरमें अवस्थित पद्मपत्रोंपर यथाक्रम, ‘ॐ विमलायै नमः’, ‘ॐ उत्कर्षिण्यै नमः’, ‘ॐ ज्ञानायै नमः’, ‘ॐ क्रियायै नमः’, ‘ॐ योगायै नमः’ इत्यादि मन्त्रोंसे विमलादि शक्तियोंका पूजन करना चाहिये। कल्याणकामी व्यक्तिको चाहिये कि वे अनुग्रहा नामक शक्तिकी पूजा पदाकी कर्णिकामें ‘ॐ अनुग्रहायै नमः’ इस मन्त्रसे करें।

इस विधिसे स्नान, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य समर्पण करके देवके आसनका मङ्गलमय पूजन करना चाहिये। इस पूजाके पश्चात् देवाधिदेव भगवान् हयग्रीवदेवका मण्डलमें आवाहन करना चाहिये। आवाहन करके समाहित होकर

उनका न्यास भी करना चाहिये। न्यास करनेके पश्चात् देवों और असुरोंमें नमस्कृत देवाधिदेव परमेश्वर भगवान् हयग्रीवका पुनः ध्यान करना चाहिये और शङ्ख-चक्रादि मङ्गलमयी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। उसके बाद पाद्य, अर्घ्य आचमन तथा स्नान प्रदान करे। हे वृषभध्वज! उन्हें वस्त्र प्रदान करनेके बाद आचमन प्रदानकर उनको सुन्दर यज्ञोपवीत समर्पित करना चाहिये और उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि प्रदान करना चाहिये। अनन्तर मूल मन्त्रसे धैर्यदेवको पाद्यादि प्रदान करते हुए उनका विधिवत् पूजन करना चाहिये।

हे शिव! इसके बाद शुभदायिनी तथा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली परमादेवी लक्ष्मीकी पूजा करे। पूर्व दिशामें ‘ॐ शङ्खाय नमः’ कहकर शङ्खका, दक्षिण दिशामें ‘ॐ पद्माय नमः’ कहकर पद्मका, पश्चिम दिशामें ‘ॐ चक्राय नमः’ से चक्रका तथा उत्तर दिशामें ‘ॐ गदायै नमः’ से गदाका यथाक्रम पूजन करे।

इसी प्रकार पुनः पूर्व दिशामें ‘ॐ खड्गाय नमः’ से खड्ग, दक्षिण दिशामें ‘ॐ मुसलाय नमः’ से मुसल, पश्चिम दिशामें ‘ॐ पाशाय नमः’ से पाश, उत्तर दिशामें ‘ॐ अंकुशाय नमः’ से अंकुश तथा मध्यमें ‘ॐ सशाय धनुषे नमः’ कहकर शरयुक्त धनुषकी पूजा करनी चाहिये।

हे रत्न! पुनः पूर्व आदि चार दिशाओंमें श्रीवत्स, कीर्तुभ, वनमाला और मङ्गलमय पीताम्बरकी पूजा करके पुनः शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् हयग्रीवकी पूजा करे। तदनन्तर ‘ॐ ब्रह्मणे नमः’ से ब्रह्मा, ‘ॐ नाराय नमः’ से नारद, ‘ॐ सिद्धाय नमः’ से सिद्ध, ‘ॐ गुरुभ्यो नमः’ से गुरु, ‘ॐ परगुरुभ्यो नमः’ से परगुरु और ‘ॐ गुरुपादुकाभ्यां नमः’ से गुरुपादुकाकी पूजा करे।

तत्पश्चात् ‘ॐ सवाहनाय सपरिवाराय इन्द्राय नमः’, ‘ॐ सवाहनाय सपरिवाराय अश्वे नमः’, ‘ॐ यमाय नमः’, ‘ॐ विरूपाय नमः’, ‘ॐ वरुणाय नमः’, ‘ॐ वायवे नमः’, ‘ॐ सोमाय नमः’, ‘ॐ ईशानाय नमः’, ‘ॐ अनन्ताय नमः’, ‘ॐ ब्रह्मणे नमः’—इन मन्त्रोंसे पूर्व आदि दिशाओंसे ऊर्ध्वदिशापर्यन्त इन्द्र, अग्नि आदि सभी दिग्-देवताओंकी पूजा करनी चाहिये।



इसके बाद 'ॐ वज्राय नमः', 'ॐ शक्तये नमः', 'ॐ दण्डाय नमः', 'ॐ छद्माय नमः', 'ॐ पाशाय नमः', 'ॐ ध्वजाय नमः', 'ॐ गदायै नमः', 'ॐ त्रिशूलाय नमः', 'ॐ चक्राय नमः', 'ॐ पद्माय नमः'—इन मन्त्रोंसे यज्ञ, शक्ति आदि आयुर्धोकी पूजा करे।

तत्पश्चात् ईशानकोणमें 'ॐ विष्वक्सेनाय नमः' इस मन्त्रसे विष्वक्सेनकी पूजा करे। इसी प्रकार अनन्तकी भी पूजा करे। हे वृषभध्वज! भगवान् हयग्रीवके मूल मन्त्रसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यके द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् उन (देव हयग्रीव) की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे और यथाशक्ति मूल मन्त्रका जपकर उन्हें समर्पित कर दे। तदनन्तर देवेश्वर भगवान् हयग्रीवकी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—

ॐ नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नमः॥

नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादायै नमो नमः॥

नमः ज्ञानाय देवाय त्रिगुणाद्यात्मने नमः॥

सुरासुरविहन्त्रे च सर्वदुष्टविनाशिने।

सर्वलोकाधिपतये ब्रह्मरूपाय वै नमः॥

नमो धरवन्ध्याय शङ्खचक्रधराय च॥

नम आद्याय दान्ताय सर्वमन्त्रहिताय च॥

त्रिगुणाद्यागुणायैव ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे।

कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वनाथ नमो नमः॥

(३४।५०—५४)

'सर्वविद्याधिपति, अक्षर भगवान्को नमस्कार है। विद्यास्वरूप, विद्याप्रदायक उन देवके लिये बार-बार नमन है। शान्तस्वरूप, त्रिगुणात्मक, सुर तथा असुरोंका निग्रह करनेवाले, सभी दुष्टोंका विनाश करनेवाले, सर्वलोकाधिपति ब्रह्मस्वरूप उन देव हयग्रीवके लिये नमस्कार है। महेश्वरके लिये भी वन्दनीय, शङ्ख-चक्रधारी, जगत्के आदि कारण, परम उदार तथा सभी प्राणियोंका हित करनेवाले देवके लिये नमस्कार है। त्रिगुणात्मक, त्रिगुणातीत, ब्रह्म-विष्णुस्वरूप, जगत्की सृष्टिके कर्ता, संहर्ता, देवेश्वर तथा सर्वव्यापक उन भगवान् हयग्रीवको बारम्बार नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके अपने हृदयकमलके मध्य शङ्ख, चक्र और गदाको धारण करनेवाले, करोड़ों सूर्यके समान कान्तिमान्, सर्वाङ्गसुन्दर, अधिनाशी महेश्वरके भी ईश, देवाधिदेव, परमात्मा हयग्रीवका ध्यान करना चाहिये।

हे शङ्कर! इस प्रकार मैंने भगवान् हयग्रीवकी पूजा-विधिका वर्णन किया। परम भक्तिपूर्वक जो इसका पाठ करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। (अध्याय ३४)

## गायत्रीन्यास तथा संध्या-विधि

श्रीहरिने कहा—हे शङ्कर! अब मैं गायत्रीदेवीके [पूजनमें] न्यासादिका वर्णन करूँगा, आप इसका कथन करें। इस (गायत्री-मन्त्र)-के ऋषि विश्वामित्र, देवता सविता, मस्तक ब्रह्मा और शिखा रुद्र हैं। ये विष्णुके हृदयमें रहनेवाले हैं। ये विनियोग-कालमें एकनेत्र हैं। इनका प्रादुर्भाव कल्पलन-गोत्रमें हुआ है, तीनों लोक इनके चरण हैं तथा ये पृथ्वीकी कोखमें स्थित रहती हैं। गायत्रीदेवीके स्वरूपको इस प्रकार जानकर [गायत्री-मन्त्रका] बारह लाख जप करना चाहिये।

इस मन्त्रके त्रिपाद तथा चतुष्पाद अर्थात् तीन चरण तथा चार चरण होते हैं। त्रिपादके प्रत्येक चरणमें आठ

अक्षर तथा चतुष्पादके प्रत्येक चरणमें छः अक्षर होते हैं। जपमें त्रिपाद और पूजनमें चतुष्पाद गायत्रीके मन्त्रका प्रयोग करनेके लिये कहा गया है<sup>१</sup>।

जप, ध्यान, यज्ञादि कृत्य एवं पूजनके कार्योंमें नित्य इस सर्वपापविनाशिनी गायत्रीदेवीका विधिवत् अपने अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये।

पैरके अंगुष्ठ-भागमें, गुल्फके मध्यमें, दोनों जंघाओं, दोनों जानूँओं, ऊरूँ-भाग, गुह्यस्थान, अण्डकोष, नाडी, नाभि, सरीरके उदरभाग, दोनों स्तन, हृदय, कण्ठ, ओष्ठ, मुख, तालु, दोनों स्कन्धप्रदेश, दोनों नेत्र और भीहों तथा

१-जिस गायत्री-मन्त्रका जप किया जाता है, वह त्रिपाद गायत्री कहलाती है। 'सौरजसेऽसावदोम्' यह गायत्रीका चतुर्थ पाद है। इस चतुष्पाद गायत्रीका प्रयोग सूर्योपस्थान, पूजन आदिमें होता है। २-गुल्फ (कैकी मुट्ठी) जीवीकी गँटी। ३-जन्तु (घुटना)। ४-ऊरू-पुट्येके ऊपरका भाग।

मस्तकमें इस (गायत्री)-मन्त्रका न्यास करके क्रमशः— पूर्व, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम दिशामें इनका न्यास करना चाहिये।

हे रुद्र! इन गायत्रीदेवीके मन्त्रके वर्णों (रंगों)-को कह रहा हूँ। क्रमशः इसके (चौबीस) अक्षर इन्द्रनीलमणि, अग्निसदृश, पीत, श्याम, कपिलवर्ण, श्वेत, विद्युत्प्रभ, मौक्तिकवर्ण, कृष्ण, रक्त, श्याम, शुक्ल, पीत, श्वेत, पद्मरागतुल्य, शङ्खवर्ण, पाण्डुर, रक्त, आसवके समान रक्तकृष्णमिश्रित, सूर्यसदृश, सौम्य, श्वेत, शङ्खकी आभाके समान तथा श्वेत हैं।

गायत्रीदेवीके मन्त्रका जप करके मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंका हाथसे स्पर्श करता है और नेत्रोंसे जिनका-जिनका अवलोकन करता है, ये सभी पवित्र हो जाते हैं। गायत्रीसे श्रेष्ठ कोई दूसरा मन्त्र नहीं है, ऐसा समझना चाहिये—

यद्यस्तपुशति इमेन यच्च पश्यति यक्षुषः।

पुनं भवति तत् सर्वं गायत्र्या न परं विदुः॥

(३५।११)

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! अब पापविनाशिनी संध्याकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। उसे आप सुनें। तीन बार प्राणायाम<sup>१</sup> करके संध्या<sup>२</sup>-कालका उपक्रम करें। प्राणायामकी संयतकर प्रणवमन्त्र (ॐकार) तथा सप्त व्याहृतिसे युक्त गायत्री-मन्त्रका (आपो ज्योतीरसोऽमृतं भूधुवः स्वरोम्) इस

गायत्री सिरके साथ तीन बार उच्चारण करनेको प्राणायाम कहते हैं। द्विज प्राणायामोंके द्वारा मानसिक, वाचिक तथा कायिक दोषोंको भस्म कर लेता है। इसीलिये यथाविधि यथानियत सभी कालोंमें प्राणायामपरायण होना चाहिये।

प्रातः 'सूर्यश्च०' इस मन्त्रके द्वारा, मध्याह्नमें 'आपः पुनन्तु०' इस मन्त्रसे तथा सायंकाल 'अग्निश्च वा मनुश्च०' इस मन्त्रके द्वारा यथाविधि आचमन करके प्रणव-मन्त्रसे युक्त 'आर्चै हि०' इस ऋचासे कुशोदकके द्वारा मार्जन करते हुए प्रत्येक पदपर जल सिरपर छिड़के।

रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाले पाप, तमोगुण और अज्ञानजन्य पाप, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिकी स्थितिमें होनेवाले पाप तथा कायिक, वाचिक एवं मानसिक—ये नवों पाप इन तीनोंसे (मार्जन्तुद्वारा) भस्म हो जाते हैं—

रजस्तपःस्वप्नोद्भवान् जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिजान्।

वाहनवःकर्मजान् दोषान् नवैतान् नवभिर्देहि॥

(३६।५)

दाहिने हाथमें जल लेकर उसे 'हुपद्म०' मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रितकर सिरपर छोड़ दे। अधमर्षण<sup>३</sup> मन्त्रकी तीन छः, आठ अथवा बारह आवृत्ति करके अधमर्षण करें।

तत्पश्चात् 'उद्गृह्ये०' तथा 'धिर्धे०'—इन मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करना चाहिये। इसमें दिन तथा रात्रिमें किये गये समस्त पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं।

१-यहाँ संध्याका प्रकार प्राणायामसे प्रारम्भ किया गया है, परंतु प्राणायामसे पूर्व संध्यापासनामें यज्ञाधारण, पवित्रीकरण, शिखावन्धन, भस्मधारण आदि करकेका विधान है। तत्पश्चात् आचमन, मार्जनी, भूमिकोधनके अनन्तर संकल्प करके 'अस्तश्च०' इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। तदनन्तर गायत्री-मन्त्रसे दिप्रक्षण करनेके पश्चात् विनियोगपूर्वक प्राणायाम करनेकी विधि है। पुरी संध्यापासनाविधि जाननेके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित 'विष्णुकर्म-पूजाप्रकाश' ग्रन्थ देखना चाहिये।

२-संध्यासे संध्याकाल लेना है। यह काल प्रातः, साय एवं मध्याह्नमें आता है।

३-सूर्यश्च वा मनुश्च मनुजालयश्च मनुकृतैश्चः पालेभ्यो रक्षन्तम्। यदास्या पाप्यकार्यं मनसा ताका हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिरसा तत्रितद्वलुप्यतु। यत्किञ्च दुरितं यदि इदमहमपोऽमृतयोनीं सूर्यं ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २५)

४-ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वीं पूषा पुनतु माम्। पुनन्तु अन्नमस्योर्जिह्वपूषा पुनतु माम्। ऋद्धिहमभोज्यं च यदा दुक्षरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामपोऽमृतं च त्रिप्रहृष्ट स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २३)

५-ॐ अग्निश्च वा मनुश्च मनुजालयश्च मनुकृतैश्चः पालेभ्यो रक्षन्तम्। यदास्या पाप्यकार्यं मनसा ताका हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिरसा अहस्तापलुप्यतु। यत्किञ्च दुरितं यदि इदमहमपोऽमृतयोनीं सूर्यं ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २४)

६-आपो हि सा मयोभुवन्ता न ऊर्जे दधन्तः। यदे तन्नाम यक्ष्मणे॥ यो चः शिवजयो रसमस्य धावयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाम नो यस्य क्षमाय विनमः। आपो जनयन्तं च नः॥ (यजु० ११।५०—५२)

७-ॐ हुपद्मादिव मुमुषानः शिवः स्वातो मन्त्रदिवः। पूतं पवित्रेनेत्यन्यथापः शुभन्तु मेनसः॥ (यजु० २०।२०)

८-अस्तं च सत्यं चाभ्योद्गातयामोऽध्वजायत। ततो राग्यजायत। ततः समुदो अर्जवः। समुद्रादर्जवादि संवत्सरो अजाया। अहोरात्रिणि विरधदिभ्यम् मिततो वशी। सूर्योदन्दमसीं धात यथापूर्वमकल्पयाम्। दिवं च पृथिवीं कान्तीक्षयामो यवः॥ (ऋग्वेद १०।१९०।१)

९-ॐ उदु त्वं जातयेदसं देवं वहन्ति केतवः। दुरो विक्षाय सूर्यं स्वाहा॥ (यजु० ७३।४२)

१०-ॐ धिर्धं देवानामुदगादनीकं चभुमिजस्य वसन्तस्याग्नेः। अज्ञां द्यामर्धुधिकीं अन्तरिक्षं सूर्यं आप्ता जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥

(यजु० ७३।४२)

प्रातःकालकी संध्या खड़ा होकर तथा मध्याह्न एवं सायंकालकी संध्या बैठकर करनी चाहिये। प्रणव (ॐकार) और महाव्याहृतियाँ अर्थात् 'भूः, भुवः, स्वः' से संयुक्त करके गायत्री-मन्त्रका दस बार जप करनेसे इस जन्मके पाप, सौ बार जप करनेपर पूर्वजन्मके पाप तथा हजार बार गायत्रीका जप करनेसे तीन दुर्गोंके पाप नष्ट हो जाते हैं—

दशभिर्जन्मजितं शतेन तु पुनः कृतम्।

त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम्॥

(३६: १०)

प्रातःकालमें गायत्री रक्तवर्णा, मध्याह्नकालमें सावित्री शुक्लवर्णा और सायंकालमें सरस्वती कृष्णवर्णा कही गयी हैं। गायत्री-मन्त्रकी प्रथम व्याहृति 'भूः'का 'ॐ भूः इदम्य नमः'से इदमर्धे, द्वितीय व्याहृति 'भुवः'का 'ॐ भुवः शिरसे स्वाहा'से शिरमें तथा तृतीय व्याहृति 'स्वः'का 'ॐ स्वः शिखायै वषट्'से शिखामें न्यास करे। गायत्री-मन्त्रके प्रथम पाद (तत्तत्त्रितुर्विषयं) का कवचमें, द्वितीय पाद (भगौ देवस्य धीमहि) का नेत्रोंमें तथा तृतीय पाद ( धियो यो नः प्रचोदयात् ) का अस्त्रमें और चतुर्थ पाद

( परोरजसेऽसावदोम् ) का सर्वाङ्गमें न्यास करे। संध्याओंके समय इस कथित विधिसे न्यास करके वेदमाता गायत्रीका जप करनेवालेका सब प्रकारसे कल्याण होता है। प्राणायामके अनन्तर सभी अङ्गोंमें न्यास करे।

त्रिपदा गायत्री ब्रह्मा-धिष्णु और शिवस्वरूपा है। इसके ऋषि, छन्द और विनियोगको भलीभाँति जानकर जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे साधक सभी पापोंसे विमुक्त होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

'परोरजसेऽसावदोम्' यह गायत्रीका तुरीय पाद कहा जाता है। जो व्यक्ति संध्योपासन नहीं करता है, उसको सूर्यदेव विनष्ट कर देते हैं। तुरीय पादके ऋषि निर्मल तथा छन्द गायत्री एवं देवता परमात्मा हैं।

जो मनुष्य योग और मोक्षको प्रदान करनेवाली परमब्रह्मा देवी गायत्रीका जप करता है, उसके महान्-से-महान् पाप नष्ट हो जाते हैं।

प्रातः, मध्याह्न एवं सायं—इन तीनों संध्याओंमें १००८ या १०८ बार गायत्री-मन्त्रका जप करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मलोक जानेका अधिकारी हो जाता है।

( अध्याय ३५—३७ )

## देवी दुर्गाका स्वरूप, सूर्य-ध्यान तथा माहेश्वरीपूजन-विधि

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! नवमी आदि तिथियोंमें 'ॐ ह्रीं दुर्गे रक्षिणि'—इस मन्त्रसे देवी दुर्गाका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष (अग्रहन)-मासकी तृतीया तिथिसे आरम्भ करके नामक्रमके अनुसार गौरी, काली, उमा, दुर्गा, भद्रा, कान्ति, सरस्वती, मङ्गला, विजया, लक्ष्मी, शिवा और गायत्री-रूपमें उन देवीका पूजन करनेवाले अधिकृत मनुष्यका इष्ट (प्रियजन) या प्रिय वस्तुओं—से विरोग नहीं होता।

दुर्गादेवीके अट्टारह हाथ हैं। उन हाथोंमें खेटक, शण्ट, दर्पण, तर्जनी-मुद्रा, धनुष, ध्वज, डमक, परशु, चक्र, शक्ति, मुद्रा, शूल, कपाल, शरक (बाण), अंकुश, वज्र, चक्र और शलाका—ये सभी सुशोभित रहते हैं। इनसे सुसज्जित उन अष्टादशभुजा देवीका स्मरण करना चाहिये।

अट्टारह भुजावाली या अट्टारह भुजावाली अथवा बारह

भुजावाली या आठ भुजा अथवा चार भुजावाली दुर्गादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। महिषासुरका वध करनेवाली ये देवी सिंहपर विराजमान रहती हैं।

वासुदेवने कहा—हे रुद्र! सूर्यार्चनमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

वे भगवान् सूर्य तेजःस्वरूप, रक्त वर्णवाले, श्वेत पद्मपर विराजमान, एक चक्रवाले रथपर समासीन, दो भुजाओंसे युक्त तथा कमल धारण करनेवाले हैं। इस रूपमें उनका सदैव ध्यान करना चाहिये।

श्रीहरिने पुनः कहा—हे वृषध्वज! [अब] मैं माहेश्वरी-पूजाका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो—पहले स्नान तथा आचमन कर ले। इसके बाद आसनपर बैठकर न्यास करके मण्डलमें महेश्वरकी पूजा करे। हे महेशान! हरकी

१-गायत्री, सावित्री एवं सरस्वती—ये गायत्रीके ही तीन स्वरूप हैं।

२-खेटक—'खेटति धपपुन्यादपति अनेन इति खेटकः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार धप उत्पन्न करनेवाली यहि (दण्ड विशेष)—को खेटक या खेट कहते हैं। यह देवीके हाथमें रहता है—

गहिरुणेण खेट लपपरिमहायकारकः। देवीलम्कस्त्रितो नित्यं मन रक्षां कुरुष्व च॥ (शादीय दुर्गापूजापद्धति, अस्त्र-पूजा-प्रकाश)

पूजा परिवारके साथ करे। हे रुद्र! 'ॐ ह्रीं शिवासनदेवता आगच्छत'—इस मन्त्रसे आसनके देवताओंका आवाहन करे। मण्डलके मुख्य द्वारपर श्रान्, गन्ध आदिद्वारा 'ॐ ह्रीं गणपतये नमः' मन्त्रसे गणपतिकी, 'ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः' मन्त्रसे सरस्वतीकी, 'ॐ ह्रीं नन्दिने नमः' मन्त्रसे नन्दीकी, 'ॐ ह्रीं महाकालाय नमः' मन्त्रसे महाकालकी, 'ॐ ह्रीं गङ्गायै नमः' मन्त्रसे गङ्गाकी, 'ॐ ह्रीं लक्ष्म्यै नमः' मन्त्रसे लक्ष्मीकी, 'ॐ ह्रीं महाकालायै नमः' मन्त्रसे महाकालाकी तथा 'ॐ ह्रीं अस्त्राय नमः' मन्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे।

इसी प्रकार 'ॐ ह्रीं ब्रह्माणे वासवधिपतये नमः' से वासवधिपतिकी, 'ॐ ह्रीं गुरुभ्यो नमः' से गुरुकी, 'ॐ ह्रीं आधारशक्त्यै नमः' से आधारशक्तिकी, 'ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः' से अनन्तकी, 'ॐ ह्रीं धर्माय नमः' से धर्मकी, 'ॐ ह्रीं ज्ञानाय नमः' से ज्ञानकी, 'ॐ ह्रीं वैराग्याय नमः' से वैराग्यकी, 'ॐ ह्रीं ऐश्वर्याय नमः' से ऐश्वर्यकी, 'ॐ ह्रीं अधर्माय नमः' से अधर्मकी, 'ॐ ह्रीं अज्ञानाय नमः' से अज्ञानकी, 'ॐ ह्रीं अवैराग्याय नमः' से अवैराग्यकी, 'ॐ ह्रीं अनैश्वर्याय नमः' से अनैश्वर्यकी, 'ॐ ह्रीं अद्वैतान्ध्याय नमः' से अद्वैतान्धकी, 'ॐ ह्रीं अघश्चन्दाय नमः' से अघश्चन्दकी, 'ॐ ह्रीं पद्माय नमः' से पद्मकी, 'ॐ ह्रीं कर्णिकायै नमः' से कर्णिकाकी, 'ॐ ह्रीं वामायै नमः' से वामाकी, 'ॐ ह्रीं ज्येष्ठायै नमः' से ज्येष्ठाकी, 'ॐ ह्रीं रौद्रायै नमः' से रौद्रीकी, 'ॐ ह्रीं काल्यै नमः' से कालीकी, 'ॐ ह्रीं कलविकरण्यै नमः' से कलविकरणीकी, 'ॐ ह्रीं बलप्रमथिन्यै नमः' से बलप्रमथिनीकी, 'ॐ ह्रीं सर्वभूतदमन्यै नमः' से सर्वभूतदमनीकी, 'ॐ ह्रीं मनोमन्यै नमः' से मनोमनीकी, 'ॐ ह्रीं मण्डलविलयाय नमः' से मण्डलविलयकी, 'ॐ ह्रीं ह्रीं शिवमूर्तये नमः' से शिवमूर्तिकी, 'ॐ ह्रीं विद्याधिपतये नमः' से विद्याधिपतिकी और 'ॐ ह्रीं ह्रीं शिवाय नमः' से शिवकी पूजा करे।

अनन्तर 'ॐ ह्रीं हृदयाय नमः' से हृदयकी, 'ॐ ह्रीं शिरसे नमः' से शिरकी, 'ॐ ह्रीं शिखायै नमः' से शिखाकी, 'ॐ ह्रीं कवचाय नमः' से कवचकी, 'ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय नमः' से नेत्रत्रयकी, 'ॐ ह्रीं अस्त्राय नमः' से अस्त्रकी और 'ॐ ह्रीं सद्योजाताय नमः' से सद्योजातकी पूजा करे।

सद्योजातकी आठ कलारै जाननी चाहिए, जो पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित हैं। उनकी पूजा [गन्ध आदिसे] इस प्रकार करनी चाहिये—'ॐ ह्रीं सिद्ध्यै नमः' से सिद्धिकी, 'ॐ ह्रीं ऋद्ध्यै नमः' से ऋद्धिकी, 'ॐ ह्रीं विद्युतायै नमः' से विद्युताकी, 'ॐ ह्रीं लक्ष्म्यै नमः' से लक्ष्मीकी, 'ॐ ह्रीं बोधायै नमः' से बोधाकी, 'ॐ ह्रीं काल्यै नमः' से कालीकी, 'ॐ ह्रीं स्वधायै नमः' से स्वधाकी और 'ॐ ह्रीं प्रभायै नमः' से प्रभाकी अर्चना करनी चाहिये।

हे वृषभध्वज! वामदेवकी तरह कलारै जाननी चाहिये, इनकी भी पूजा गन्ध-पुष्प आदिसे करनी चाहिये। उनकी पूजामें पहले 'ॐ ह्रीं चापदेवाय नमः' कहकर वामदेवकी पूजा करनेके बाद उनकी कलाओंका पूजन करना चाहिये। जैसे—'ॐ ह्रीं रजसे नमः' से रजसुकी, 'ॐ ह्रीं रक्षायै नमः' से रक्षाकी, 'ॐ ह्रीं रथ्यै नमः' से रथिकी, 'ॐ ह्रीं कन्यायै नमः' से कन्याकी, 'ॐ ह्रीं कामायै नमः' से कामाकी, 'ॐ ह्रीं ज्वन्यै नमः' से ज्वनीकी, 'ॐ ह्रीं क्रियायै नमः' से क्रियाकी, 'ॐ ह्रीं वृद्ध्यै नमः' से वृद्धिकी, 'ॐ ह्रीं कार्यायै नमः' से कार्याकी, 'ॐ ह्रीं रा (धा)-त्र्यै नमः' से रा (धा)-त्रि (त्री)-की, 'ॐ ह्रीं धामण्यै नमः' से धामणीकी, 'ॐ ह्रीं मोहिन्यै नमः' से मोहिनीकी और 'ॐ ह्रीं क्ष (त्र) रायै नमः' से क्ष (त्र)-राकी अर्चना करनी चाहिये।

हे वृषभध्वज! तत्पुरुषकी चार कलारै हैं। पहले 'ॐ ह्रीं तत्पुरुषाय नमः' इस मन्त्रद्वारा तत्पुरुषकी पूजा करे। तदनन्तर 'ॐ ह्रीं निवृत्यै नमः' से निवृत्तिकी, 'ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै नमः' से प्रतिष्ठाकी, 'ॐ ह्रीं विद्यायै नमः' से विद्याकी और 'ॐ ह्रीं ज्ञान्यै नमः' से ज्ञानिकी पूजा करनी चाहिये।

अधोरकी धैर्य-सम्बन्धी छः कलारै जाननी चाहिये। इनकी पूजामें पहले 'ॐ ह्रीं अधोराय नमः' मन्त्रद्वारा अधोरकी पूजा करनेके पश्चात् 'ॐ ह्रीं उमायै नमः' से उमाकी, 'ॐ ह्रीं क्षमायै नमः' से क्षमाकी, 'ॐ ह्रीं निद्रायै नमः' से निद्राकी, 'ॐ ह्रीं व्याध्यै नमः' से व्याधिकी, 'ॐ ह्रीं क्षुधायै नमः' से क्षुधाकी तथा 'ॐ ह्रीं तृष्णायै नमः' से तृष्णाकी पूजा करनी चाहिये।

हे वृषभध्वज! ईशानदेवकी पाँच कलारै हैं, इनकी



पूजामें 'ॐ हां ईशानाय नमः' इस मन्त्रसे ईशानकी पूजा करनेके पश्चात् 'ॐ हां समित्यै नमः' से समितिकी, 'ॐ हां अङ्गदायै नमः' से अङ्गदाकी, 'ॐ हां कृष्णायै नमः' से कृष्णाकी, 'ॐ हां मरीच्यै नमः' से मरीचिकी और 'ॐ हां ज्वालायै नमः' से ज्वालाकी पूजा करे।

तदनन्तर हे शङ्कर! 'ॐ हां शिवपरिवारेभ्यो नमः' से शिवपरिवारका, 'ॐ हां इन्द्राय सुसधिपतये नमः' से सुसधिपति इन्द्रका, 'ॐ हां अग्नये तेजोऽधिपतये नमः' से तेजोऽधिपति अग्निका, 'ॐ हां यमाय प्रेताधिपतये नमः' से प्रेताधिपति यमका, 'ॐ हां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये नमः' से रक्षोऽधिपति निर्ऋतिक, 'ॐ हां वरुणाय जलाधिपतये नमः' से जलाधिपति वरुणका, 'ॐ हां वायवे प्राणाधिपतये नमः' से प्राणाधिपति वायुका, 'ॐ हां सोमाय नेत्राधिपतये नमः' से नेत्राधिपति सोमका, 'ॐ हां ईशानाय सर्वविद्याधिपतये नमः' से सर्वविद्याधिपति ईशानका, 'ॐ हां अनन्ताय नागाधिपतये नमः' से नागाधिपति अनन्तक, 'ॐ हां ब्रह्मणे सर्वलोकधिपतये

नमः' से सर्वलोकधिपति ब्रह्मका और 'ॐ हां धृतिचण्डेश्वराय नमः' से धृतिचण्डेश्वरका आवाहन, स्थापन, संनिधान, संनिरोध तथा सकलीकरण करना चाहिये।

तदनन्तर तत्त्व-न्यास करके मुद्रा दिखानी चाहिये तथा ध्यान करना चाहिये। इसके बाद पाद्य, आचमन, अर्घ्य, पुष्प, अभ्यङ्ग, उद्धर्तन और स्नान तथा सुगन्धानुलेपन, वस्त्र, अलंकार, भोग, अङ्गन्यास, धूप, दीप, नैवेद्य-अर्पण, करोद्धर्तन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, गन्ध एवं ताम्बूल निवेदन करनेके बाद गीत, वाद्य, नृत्यसे महेश्वरको संतुष्टकर छत्र आदि समर्पित करना चाहिये। मुद्राका प्रदर्शन करके आवाहित देवके रूपका ध्यान, जप तथा तटालम्प-भावसे मूलमन्त्रद्वारा जप और पूजाको समर्पित करे।

इस प्रकार विविध कामलाओंकी सिद्धिके लिये विश्वासु गन्धर्व तथा देवी कालरात्रि आदिकी उपासना करनी चाहिये। (अध्याय ३८—४१)

## शिवके पवित्रारोपणकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे महादेव। अमङ्गलका नाश करनेवाले भगवान् शिवके पवित्रारोपणके पूजा-विधानको कह रहा हूँ। यह पूजा आपाङ्क, श्रावण, माघ या भाद्रपद मासमें होती है। पवित्रारोपणकी इस पूजामें पवित्रक (जनेऊ) बनानेके लिये सत्पयुग आदिके भेदसे सूत्र-धारणका नियम है। जैसे—सत्पयुगमें सुवर्णके, त्रेतामें रजतके, द्वापरमें ताम्रके और कलियुगमें कन्याके हाथसे बनाये गये कपासके सूत्र (सूत) को ग्रहण करना चाहिये। सूत्रको लेकर पहले उसे तिगुना करके पुनः उसका तिगुना करना चाहिये। इस प्रकार नवगुणित सूत्रसे पवित्रकका निर्माण करके वामदेवमन्त्रसे उसमें ग्रन्थि देनी चाहिये। तदनन्तर हे शिव! सद्योजातमन्त्रसे उसका प्रक्षालन करके अधोरमन्त्रसे उसका शोधन करना चाहिये। तत्पुरुषमन्त्रसे उसमें बन्धन तथा ईशानमन्त्रसे तन्तुदेवताओंको सुगन्धित धूप दिखाना चाहिये।

तन्तुओंमें क्रमशः—ॐकार, चन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, नाग, शिखिध्वज, सूर्य, विष्णु और शिवका वास है—ये नी

तन्तुके देवता हैं। हे रुद्र! उस पवित्रकमें एक सौ अष्ट या पचास अथवा पच्चीस तन्तु होने चाहिये। ये क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ हैं। पवित्रकमें दस ग्रन्थिका भान है। अतएव प्रत्येक चार अंगुल या दो अंगुल अथवा एक अंगुलका अन्तर देकर एक-एक ग्रन्थिका बन्धन देना चाहिये। हे सदाशिव! उन ग्रन्थियोंके नाम इस प्रकार हैं—प्रकृति, पौरुषी, शीरा, अपराजिता, जया, विजया, रुद्रा, अजिता, मनोन्मसी तथा सर्वमुखी।

हे शिव! ग्रन्थिबन्धनके पश्चात् उस पवित्रकको कुंकुम, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंसे रञ्जित करना चाहिये। उस गन्धानुरञ्जित पवित्रकको देवको समर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि सभी क्रियाओंको करके 'हे देवेश! हे महेश्वर! आप अपने गणोंके साथ यहाँपर आमन्त्रित हैं। प्रातःकाल यहाँपर आपका पूजन करूँगा अतः आप यहाँपर उपस्थित रहें।'—इस प्रकार देवताको निमन्त्रित करे और गीत-वाद्यादिके द्वारा रात्रि-जागरण करे।

प्रातः उन आमन्त्रित पवित्रकोंको भगवान् महेश्वरके पास स्थापित करके चतुर्दशी तिथिमें स्नान करे और सबसे पहले सूर्य तथा रुद्रकी पूजा करे, तदनन्तर ललाटस्थ विश्वरूपका ध्यानकर अपने आत्मस्वरूपकी पूजा करे।

तत्पश्चात् अस्वमन्त्रसे प्रोक्षित और हृदयमन्त्रके द्वारा अर्पित तथा संहितामन्त्रोंसे धूँपित पवित्रकोंको भगवान्को समर्पित करना चाहिये। सबसे पहले शिवतत्त्व और

विद्यातत्त्वकी पूजा करके आत्मतत्त्व और देवतत्त्वका पूजन इन निर्धारित मन्त्रोंसे करे—

‘ॐ ह्रीं ह्रीं शिवतत्त्वाय नमः, ॐ ह्रीं ( ह्रीः ) विद्यातत्त्वाय नमः, ॐ ह्रीं ( ह्रीः ) आत्मतत्त्वाय नमः, ॐ ह्रीं ह्रीं हूं श्रीं सर्वतत्त्वाय नमः।’

भगवान् महेश्वरको पवित्रक विधिपूर्वक निवेदितकर स्वयं भी धारण करना चाहिये। (अध्याय ४२)

### विष्णुके पवित्रारोपणकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! अब मैं आपसे विष्णुके पवित्रारोपणका वर्णन करूँगा, जो भोग तथा मोक्ष दोनोंको देनेवाला है। प्राचीन समयमें ही रई देवासुर-संग्राममें [ अपनी विजय न होते देखकर ] ब्रह्मादि देवगण विष्णुकी शरणमें गये। उन सबकी प्रार्थना सुन करके विष्णुने विजय-प्राप्तिके लिये उन्हें अपने गलेका हार, पवित्र नामक ग्रैवेयक तथा एक ध्वज प्रदान किया और कहा कि इन्हें देखते ही दानव नष्ट हो जायेंगे। तभीसे उन पवित्रकोंकी पूजा आरम्भ हुई।

हे हर! प्रतिपदासे लेकर पौर्णमासीतक जिस देवताकी जो तिथि कही गयी है, उसके अनुसार ही उस तिथिमें उन देवताओंका पवित्रारोपण करना चाहिये। हे शिव! सुक्ल-पक्ष हो अथवा कृष्णपक्ष, द्वादशी तिथिमें विष्णुके लिये पवित्रारोपणका विधान है। ज्येष्ठाष्टम्योग, उत्तरायण, दक्षिणायन, चन्द्र तथा सूर्यग्रहण, विवाहादि मङ्गल एवं वृद्धि-कार्यों तथा गुरुजनके आगमन इत्यादि अवसरोंपर यह पूजा करनी चाहिये। पवित्रकके उद्देश्यसे भी नित्य पूजन हो सकता है; किन्तु वर्षाकालमें इसका पूजन आवश्यक है।

हे रुद्र! इन पवित्रकोंका निर्माण वर्णानुसार होना चाहिये, जैसे—ब्राह्मणोंका पवित्रक कौशेय<sup>१</sup>, कपास, क्षौम<sup>२</sup> अथवा कुशसूत्रसे निर्मित होना चाहिये। क्षत्रियोंका पवित्रक कौशेयसूत्रसे, वैश्योंका क्षौमसूत्र तथा वल्कलसूत्रसे<sup>३</sup> और

शूद्रोंका सनसे बना हुआ पवित्रक प्रशस्त माना गया है। कपास या पद्मज (कमल)-से निर्मित पवित्रक समस्त वर्णोंके लिये प्रशस्त है।

ॐकार, शिव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, शेष, सूर्य, गणेश और विष्णु—इन नौ देवताओंका इस पवित्रकके तन्तुओंमें विधास है।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये पवित्रकके तीन सूत्रोंके देवता हैं। जो उनमें अधिष्ठित रहते हैं। इन सूत्रोंको सुवर्ण, रजत, ताम्र, चाँस या मिट्टीके बने हुए पात्रमें रखना चाहिये। एक सौ आठ तन्तुओंका सूत्र उत्तम, बीवन तन्तुओंका सूत्र मध्यम तथा सचाईस तन्तुओंका पवित्रक कनिष्ठ होता है।

इन पवित्रकोंके प्रत्येक ग्रन्थि-पर्वोंको कुंकुम, हल्दी या चन्दनसे चर्चितकर उपवास रखते हुए उन्हें शास्त्रसम्मत पात्रमें रखकर अधिवासित करे।

पवित्रकको पृथक्-पृथक् अभिमान्त्रित करके उसका सम्यक् दर्शन तथा पुनः पूजन करना चाहिये और यज्ञपूर्वक उसका वस्त्राच्छादन करके उसे मण्डलस्थ देवप्रतिमाके समक्ष यज्ञपूर्वक स्थापित कर देना चाहिये।

ब्रह्मादि अन्य देवोंकी स्थापना करके कलशकी पूजा करे। मण्डलका निर्माण करके वैवेद्य समर्पित करे। पवित्रकको पुनः अधिवासित<sup>४</sup> करके तीन या नौ बार सूत्र धुमाकर वेदोंको वेष्टित करे। तदनन्तर अपनेको तथा

१-कौशेय—विशेष कोड़ेके कोशसे बनेवाला वस्त्र (रेशमी वस्त्र)।

२-क्षौम—तीसो, केलेकी छाल या अन्य लताविशेषसे बने वस्त्र।

३-वल्कल—भोजपत्र नामके वृक्षविशेष अथवा अन्य मृत्तयुक्त छातवाले वृक्षकी छालसे बना वस्त्र (वल्कल वस्त्र)।

४-अधिवासन—संस्कार-विशेष।

कलश, घी, अग्रिकुण्ड, विमान, मण्डप और गृहको सूत्रसे चाहिये—

वेष्टित करके एक सूत्र देवताके मस्तकपर अर्पित करे।

इस प्रकार सम्पूर्ण सामग्री निवेदितकर मङ्गेश्वर विष्णुको पूजा करके इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

आवाहितोऽसि देवेश पूजार्थं परमेश्वर॥

तत्रभातेऽर्चयिष्यामि सामग्र्याः संनिधौ भव॥

(४३।२८-२९)

हे परमेश्वर! देवदेवेश्वर! आप यहाँपर पूजाके लिये आवाहित हैं। इस समस्त सामग्रीसे प्रभतकालमें मैं आपका पूजन करूँगा। आपकी संनिधि यहाँ बनी रहे।

एक रात्रि या तीन रात्रितक पवित्रकको अभिवासित-कर स्वयं रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल भगवान् केसवका पूजन करे और निर्मित पवित्रकको उन देवको अर्पित करे। पवित्रकको धूपसे धूपित करके मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित भी करना चाहिये।

गायत्री-मन्त्रसे पूजित इस पवित्रकके द्वारा देव-पूजन करके उसे मन्त्र पढ़कर देवताके समक्ष स्थापित कर दे—

विशुद्धग्रन्थिकं रम्यं महापातकनाशनम्।

सर्वपापक्षयं देव तत्राग्रे धारयाम्यहम्॥

(४३।३३)

हे देव। यह पवित्रक विशुद्ध रूपसे ग्रन्थित, सुन्दर तथा महापातकोंको नष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण पापोंका क्षय करनेवाला है। इसे मैं आपके समक्ष स्थापित करता हूँ। तदनन्तर इस मन्त्रका पाठकर स्वयं भी धारण करना

पवित्रं वैष्णवं तेजः सर्वपातकनाशनम्॥

धर्मकार्थसिद्ध्यर्थं स्वकण्ठे धारयाम्यहम्।

(४३।३४-३५)

[हे देव!] यह विष्णु-तेजःस्वरूप, सर्वपाप-विनाशक पवित्रक है। मैं धर्म, काम तथा अर्थ—इस त्रिवर्गको सिद्धिके लिये इसे अपने कण्ठमें धारण करता हूँ। अनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि।

तद्वत् पवित्रं तन्नुनां मालां त्वं हृदये धर॥

(४३।४१)

हे देव। आपके हृदयपर जिस प्रकार वनमाला और कौस्तुभ विराजते हैं, उसी प्रकार तन्नुओंकी बनी हुई यह माला और पवित्रक आप अपने हृदयपर धारण करें।

इस प्रकार प्रार्थना करके ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और उन्हें दक्षिणा देकर उसी दिन सायंकाल या दूसरे दिन पुनः उसी प्रकार पूजा सम्पन्न करके निम्न मन्त्र पढ़ते हुए विसर्जन करे—

सांख्यसरीमिमांसां पूज्यां सम्प्राप्य विधिवन्मया।

ब्रज पवित्रकेतानीं विष्णुलोकं विसर्जितः॥

(४३।४३)

हे पवित्रक। मैंने इस सांख्यसरी पूजाको विधिवत् सम्पादित किया है। इस समय मेरे द्वारा विसर्जित आप विष्णुलोकको पधारें। (अध्याय ४३)

## ब्रह्ममूर्तिके ध्यानका निरूपण

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! भगवान्की पवित्रक आदिसे पूजाकर ब्रह्मका ध्यान करके साधक हरि बन जाता है (मेरा स्वरूप हो जाता है)। अब मैं मायाजालको नष्ट करनेवाले ब्रह्मके ध्यानका वर्णन करता हूँ। आप सुनें—

ब्रह्मके ध्यानके लिये प्रवृत्त प्राज्ञ (विशेष साधक) अपनी वाणी एवं मनको नियन्त्रितकर अपनी आत्मामें ही ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका यजन करे और जिस प्राज्ञको यह उत्कट इच्छा हो कि मैं अपनी आत्मामें ब्रह्मका दर्शन (जीव-

ब्रह्मका अभेददर्शन) करूँ, उसे महद्ब्रह्म (प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न परब्रह्म)-में ज्ञानकी भावना (ब्रह्म एवं निर्विषय-नित्य-ज्ञानमें अभेदभाव) करनी चाहिये।

ब्रह्मका ध्यान ही समाधि है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस रूपमें सदा स्वयंकी अवस्थिति ही ब्रह्मका ध्यान है। स्वयंसे अभिन्न ब्रह्म देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण, अहङ्कार, पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश), पञ्चतन्मात्र (गन्धतन्मात्र, रसतन्मात्र, रूपतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र,

एवं शब्दतन्मात्र) विविध गुण, जन्म और भोजन, शयन आदि भोगसे सर्वथा रहित, स्वप्रकाश, निराकार, सदा निरतिशय, नित्य अज्ञानन्दस्वरूप, अनादि, नित्य, बुद्ध, बुद्ध, सर्वतः परिपूर्ण, सत्यस्वरूप, परमसुखस्वरूप, परमपद एवं तुरीय (कूटस्थ निरञ्जन परब्रह्म)-के रूपमें वेदोंमें वर्णित है।

हे वृषभध्वज! अपनी आत्माको रथी और शरीरको रथ समझना चाहिये। बुद्धि उसमें सारथि तथा मन लगाम है। इन्द्रियोंको उस रथमें जुते हुए अश्वके रूपमें स्वीकार किया गया है। ये इन्द्रियाँ ही रूप, रस, गन्ध आदि विषयका अनुभव करती हैं।

इन्द्रिय और मनसे युक्त आत्माको ही मनोपिण्ये<sup>१</sup> भीक्षा कहा है। जो मनुष्य विज्ञानरूपी सारथिसे युक्त है, मनरूपी लगामको अपने वशमें रखता है, वही उस परमपदको प्राप्त करता है, फिर वह उत्पन्न नहीं होता। जो विज्ञानरूपी सारथिसे नियन्त्रित मनरूपी लगामवाला मनुष्य है, वह स्वर्धुनी<sup>२</sup> (अज्ञान)-से पार हो जाता है और वही विष्णुका परमपद है<sup>३</sup>।

इस योगकी परम साधनामें अहिंसादि धर्मोंको वम तथा शौचादिक कर्मोंको नियम कहा गया है। परमादि आसन हैं। प्राण, अपानादिक वायुपर विजय प्राप्त करना

प्राप्तवान है। इन्द्रियोंपर विजय प्रत्याहार और ईश्वरका चिन्तन करना ध्यानावस्था है। मनको नियन्त्रित करना ही धारणा है और ब्रह्ममें मनको केन्द्रित करनेकी जो स्थिति होती है, वह समाधि है। यदि पहले इस योगके द्वारा चञ्चल चित्त स्थिर नहीं होता तो उस मूर्ति (परमेश्वर)-का इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये—

जो हृदयकमलको कर्णिकाके मध्य विराजमान रहनेवाले हैं तथा शङ्ख, चक्र, गदा और कमलसे सुशोभित हैं, जो श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि, वनमाला एवं लक्ष्मीसे विभूषित हैं, जो नित्य-सुद्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न, सत्य, परमानन्दस्वरूप, आत्मस्वरूप, परब्रह्म तथा परम ज्योतिःस्वरूप हैं—ऐसे वे चौबीस स्वरूप (अवतार)-वाले, शालग्रामकी शिलामें विराजमान, द्वारकादि<sup>४</sup> शिलाओंपर अवस्थित रहनेवाले परमेश्वर ध्यानके योग्य हैं और पूजनीय हैं। मैं भी वही हूँ—ऐसा समझना चाहिये।

इस प्रकार आत्मस्वरूप नारायणका यम-नियम इत्यादिक योगके साधनोंसे एकाग्रचित्त होकर जो ध्यान करता है, वह मनोऽभिलषित इच्छाओंको प्राप्तकर वैमानिक<sup>५</sup> देव हो जाता है। यदि निष्काम होकर उन हरिको मूर्तिका ध्यान और स्तवन करे तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है। (अध्याय ४४)



१-शब्दकल्पद्रुमके—'धूयति कम्पयति लङ्'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'धुनी' शब्द कम्पित कर देनेवालेके लिये प्रयुक्त होता है। इसीलिये यहाँ प्रसंगानुसार 'स्वः' शब्दका मोक्ष अर्थ मानकर मोक्षको कम्पित (प्रतिबन्धित) करनेवाले अज्ञानको 'स्वर्धुनी' कह सकते हैं। इस तरह अज्ञानको 'घर' कर लेना ही 'स्वर्धुनी' को 'घर' करना समझना चाहिये।

२-आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं च सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गेहपाः॥

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भीक्षकस्तुर्धुनीर्धिनः॥ यस्तु विज्ञानकालसा बुद्धेन मनसा सदा॥

स तु कल्पदामाप्नोति स हि भूयो न जायते। विज्ञानसारथिर्षतु मनःप्रग्रहवातरः॥

स्वर्धुन्याः परमाप्नोति तदिच्छतेः परमं पदम्। (४४/६-९)

३-शब्दकल्पद्रुमके अनुसार द्वारकामें होनेवाली तथाशिला भी भगवान् विष्णुकी मूर्ति मानी जाती है। इसीलिये जैसे गरुडकी नदीमें होनेवाली चक्रयुक्त शिला (शालग्रामशिला)—में विष्णुका सदा संनिधान है, वैसे ही द्वारकामें शिलामें भी विष्णुका संनिधान है।

४-वैमानिक देव—शब्दकल्पद्रुमके—'विगतं यानम् उपमा यन्त्र'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार निरुपमेयकी विमान कहा जा सकता है। 'विमान एव वैमानिकः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार वैमानिक शब्द भी निरुपमेय (उपमाहित)—का बोधक हो सकता है। इसलिये प्रकृतमें 'वैमानिक देव' का अर्थ निरुपमेय—उपमाहित—सर्वोत्कृष्ट देव महाविष्णु किया जा सकता है।



## विविध शालग्रामशिलाओंके लक्षण

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज ! अब मैं प्रसंगवश शालग्रामका लक्षण कहता हूँ। शालग्रामशिलाओंके स्पर्शमात्रसे करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। केशव, नारायण, गोविन्द तथा मधुसूदन आदि नामोंवाली विभिन्न शालग्रामशिलाएँ होती हैं, जो शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोभित रहती हैं। इन शिलाओंके लक्षण इस प्रकार हैं—

शंख, चक्र, गदा तथा पद्मके चिह्नोंसे सुशोभित शिला 'केशव', पद्म, कौमोदकी' गदा, चक्र तथा शंखके चिह्नोंसे सुशोभित शिला 'नारायण', चक्र शंख, पद्म तथा गदाके चिह्नोंसे विभूषित शिला 'माधव' और गदा, पद्म, शंख तथा चक्रके चिह्नोंसे शोभावमान शिला 'गोविन्द' नामसे जानी जाती है।

पद्म, शंख, चक्र, गदासे युक्त 'विष्णु' नामकी, शंख, पद्म, गदा तथा चक्रसे युक्त 'मधुसूदन' नामकी, गदा, चक्र, शंख, पद्मसे संयुक्त 'त्रिविक्रम' नामकी, चक्र, गदा, पद्म, शंखसे चिह्नित 'वामन' नामकी, चक्र, पद्म, शंख एवं गदासे समन्वित 'श्रीधर' नामकी और पद्म, गदा, शंख, चक्रसे अंकित 'हृषीकेश' नामकी शालग्राम-मूर्ति कही गयी है। इन देवमूर्तियोंको बार-बार नमन है।

पद्म, चक्र, गदा, शंख-चिह्नपूरित शालग्रामशिला 'पद्मनाभ', शंख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त शालग्रामशिला 'दामोदर', चक्र, शंख, गदा तथा पद्मसे संयुक्त शालग्रामशिला 'वासुदेव', शंख, पद्म, चक्र, गदा-चिह्नों समन्वित शालग्रामशिला 'संकर्षण', शंख, गदा, पद्म, चक्रसे सुशोभित शालग्रामशिला 'प्रद्युम्न' तथा गदा, शंख, पद्म और चक्रसे शोभित शालग्रामशिला 'अनिरुद्ध' नामसे अभिहित है। इन्हें बारम्बार प्रणाम है।

पद्म, शंख, गदा, चक्रके चिह्नोंसे विभूषित 'पुरुषोत्तम' नामकी, गदा, शंख, चक्र, पद्म-चिह्नोंसे विभूषित 'अक्षोभज' नामकी, पद्म, गदा, शंख, चक्रसे विभूषित 'नृसिंह' नामकी, पद्म, चक्र, शंख, गदासे अंकित 'अच्युत' नामकी और शंख, चक्र, पद्म, गदासे संयुक्त 'जगदीश'की शालग्राम-मूर्ति है—इन देवनामोंसे अभिहित मूर्तियोंको नमस्कार है।

गदा, चक्र, पद्म, शंखसे अंकित शालग्राम 'उपेन्द्र',

चक्र, पद्म, गदा, शंखसे युक्त शालग्राम 'हरि', गदा, पद्म, चक्र, शंख-चिह्नोंसे शोभित शालग्राम 'श्रीकृष्ण' नामसे प्रसिद्ध हैं और शालग्रामशिलाके द्वारदेशपर चिह्नित दो चक्र धारण करनेवाले, शुक्लवर्णवाले भगवान् वासुदेव हैं। इन सभी रूपों एवं नामोंको धारण करनेवाले हे गदाधर भगवान् विष्णु ! हम सबकी आप रक्षा करें।

दो चक्रोंसे युक्त, रक्त आभावाली और पूर्वभागमें पद्म-चिह्नसे अंकित शालग्रामशिला 'संकर्षण'की मूर्ति होती है, किन्तु छोटे-छोटे चक्रोंवाली तथा पीतवर्णकी होनेपर वह शिला 'प्रद्युम्न' कही जाती है। यदि शालग्रामशिला बड़ी तथा छिद्रसे संयुक्त शिरोभागवाली और वर्तुलाकार हो तो उसे 'अनिरुद्ध' नामक शालग्राम-मूर्ति कहते हैं। जो द्वारमुखपर नीलवर्णकी तीन रेखाओंसे युक्त होती है और जिसका शेष सम्पूर्ण भाग कृष्णवर्णसे सुशोभित रहता है, वह शालग्रामशिला 'नारायण' शिलाके नामसे जानी जाती है।

जिस शिलाके मध्यमें गदाके समान रेखा हो, यथास्थान नाभिचक्र उल्लत हो तथा वक्षःस्थल विस्तृत हो, वह 'नृसिंह' नामवाली शालग्रामशिला है और इन चिह्नोंके साथ ही उसमें तीन बिन्दु अथवा पाँच बिन्दु हों तो वह 'कपिल' नामक शिला है, वह शिला हम सबकी रक्षा करे। उसका पूजन ब्रह्मचारियोंको करना चाहिये। विषम परिमाणवाले दो चक्रोंसे चिह्नित शक्ति-चिह्नसे युक्त शिलाको 'बाराह' शिला कहते हैं। वह हम सबकी रक्षा करे। नीलवर्णवाली, तीन रेखाओंसे युक्त, स्थूल तथा बिन्दुयुक्त शिला 'कर्ममूर्ति' है और वही अगर वर्तुलाकार है तथा उसका पीछेका भाग झुका हुआ हो तो वह शिला 'कृष्ण' कही गयी है, वह हम सबकी रक्षा करे। पाँच रेखावाली शिला 'श्रीधर' नामकी कही जाती है। गदासे अंकित शिला 'वनमाली' है—ये हम सबकी रक्षा करें। गोलाकार तथा छोटी शिला 'वामन' शिला है, चायें भागमें वक्राङ्कित शिला 'सुरेश्वर'की मूर्ति है। विभिन्न रंगोंवाली, अनेक रूपोंवाली, नागके समान फणोंसे युक्त शिला 'अवन्तक' है। स्थूल हो, नीलवर्णकी हो और मध्यमें नीलवर्णका चक्र हो तो वह 'दामोदर'—

शिला है। संकुचित द्वारवाली, रक्तवर्णवाली, लम्बी रेखाओंवाली, छिद्रयुक्त, एक चक्र तथा एक कमलवाली विस्तारण शिला 'ब्रह्मशिला' है, ये सब हम सबकी रक्षा करें। विस्तृत छिद्रवाली तथा स्थूल चक्रवाली शिला 'कृष्णशिला' तथा बिल्वाकार शिला 'विष्णुशिला' है। अंकुशके आकारवाली, पाँच रेखाओंवाली तथा कौस्तुभ-चिह्नसे युक्त शिला 'हयग्रीव' शिला है। एक चक्र तथा एक कमलसे अंकित, मणि तथा रत्नोंकी आभासे युक्त कृष्णवर्णकी शिला 'वैकुण्ठ' शिला और द्वारपर रेखावाली, विस्तृत कमलसदृश शिला 'सत्यशिला' है—ये हम सबकी रक्षा करें। दाहिनी ओर रेखायुक्त, श्यामवर्णसे समन्वित, रामचक्रसे अंकित 'शिविक्रम' नामवाली शिला हम सबकी रक्षा करे। द्वारकामें स्थित, शालग्राममें निवास करनेवाले गदाधारी भगवान्की नमस्कार है। एक द्वारवाली, चार चक्रोंसे युक्त, वनमालामें विभूषित, स्वर्णरेखासमन्वित, गौपदसे सुशोभित तथा कदम्बके पुष्पकी

आकृतिवाली 'लक्ष्मीनारायण' नामवाली शिला हम सबकी रक्षा करे।

एक चक्रवाले शालग्रामकी 'सुदर्शन' कहते हैं, उनके रूपमें ये गदाधारी श्रीविष्णु हम सबकी रक्षा करें। दो चक्र होनेसे शालग्रामशिलाकी 'लक्ष्मीनारायण' संज्ञा होती है। जिसमें तीन चक्र हैं, वह (शिला) 'शिविक्रम'की मूर्ति है, चार चक्रवाली चतुर्भुज, पाँच चक्रवाली 'वासुदेव', छः चक्रवाली शालग्रामशिला 'प्रद्युम्न', सात चक्रवाली शिला 'संकर्षण', आठ चक्रवाली 'पुरुषोत्तम', नव चक्रवाली शिला 'नवभुज', दस चक्रवाली 'दशायतार' तथा ग्यारह चक्रवाली शिला 'अनिरुद्ध' कहलाती है—ये हम सबकी रक्षा करें। बारह चक्रोंमें युक्त शिला 'द्वादशात्म' है। बारहसे अधिक चक्रकी शिला 'अमल' नामवाली है।

जो मनुष्य इस विष्णुमूर्तिमय स्तोत्रका पाठ करता है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ४५)

### वास्तुमण्डल-पूजाविधि

ग्रीहरिने कहा—गृहनिर्माणके प्रारम्भमें जिसके करनेसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। संक्षेपमें उस वास्तुपूजाकी विधि कहता है, यह पूजा ईशानकोणसे प्रारम्भ होकर इन्ध्यासी पदवाले मण्डपके अन्तर्गत पूर्ण की जानी चाहिये।

इस मण्डलके ईशानकोणमें वास्तुदेवताका मस्तक होता है। नैऋत्यकोणमें उनके दोनों पाद तथा अग्नि और वायुकोणमें दोनों हाथ होते हैं। आवास अर्थात् भवन, गृह आदि, नगर, ग्राम, व्यापारिकपथ, प्रसाद, उद्यान, दुर्ग, देवालय तथा मठ आदिके निर्माणमें वास्तुदेवताकी स्थापनापूर्वक पूजा करनी चाहिये। आईस' देवता बाह्यभागमें तथा तेरह देवता अन्तःभागमें अवस्थित रहते हैं।

यथा—ईश, शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध, सूर्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, ग्रहक्षेत्र, यम, गन्धर्व, भृगुराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुण्ड्रन्त, गणाधिप, अमर, श्रेय, पाप, रोग, अहिमुख, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति तथा दिति—ये वास्तुमण्डलके बाह्य देव हैं।

—इन बाह्य देवोंका पूजन करके बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह ईशानादि चारों कोणोंपर स्थित देवताओंकी पूजा करे। यथा—ईशानकोणमें आप (जल), अग्निकोणमें सवित्री, नैऋत्यकोणमें जय और वायुकोणमें रुद्रदेवकी पूजा करे। नवपद परिमाणके मध्यमें ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये और उनके समीप ही अन्य आठ देवताओंका भी पूजन करे। पूर्वोक्त क्रमसे उन पूजनीय देवोंके नाम इस प्रकार हैं—

अवध, सविता, विष्वक्वान, विष्णुधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर और अपवत्स—ये आठ देव हैं, जो ब्रह्माके चारों ओर मण्डलाकार स्थित हैं।

दुर्गनिर्माणमें ईशानकोणसे नैऋत्यकोणपर्यन्त सूत्रद्वारा किया गया रेखाङ्कन वंश कहा जाता है और अग्निकोणसे जब वायुकोणपर्यन्त दूसरी रेखा खींची जाती है तो वह वंश-रेखा, दुर्धर-रेखा कहलाती है। वंश-रेखापर ईशानकोणमें अदिति, दुर्धरयोग विन्दुपर हिमवन्त, नैऋत्यकोण अर्थात् वास्तुमण्डलके अन्तिम नैऋत्य विन्दुपर जयन्तके पूजनका

विधान है। तत्पश्चात् दुर्धर-रेखाके प्रारम्भमें अग्निकोणपर नायिका तथा अन्तिम छोर वायुकोणपर कालिकादेवीकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर शुक्र अर्थात् इन्द्रसे लेकर गन्धर्वपर्यन्त उक्त वास्तुदेवोंकी पूजा करके भवन-निर्माणका कार्य प्रारम्भ करना चाहिये।

वास्तु (भवन)-के सम्मुख-भागमें देवालय, अग्निकोणमें पाकशाला, पूर्व दिशामें यज्ञ-मण्डप, ईशानकोणमें काष्ठ या प्रस्तरसे बनी पट्टिकाओंके द्वारा घिरा हुआ सुगन्धित पदार्थ तथा पुष्पोंको रखनेका स्थान, उत्तर दिशामें भाण्डसागर, वायुकोणमें गोशाला, पश्चिम दिशामें खिड़की तथा जलशय, नैऋत्यकोणमें समिधा, कुश, ईधन तथा अस्त्र-शस्त्रका कक्ष, दक्षिण दिशामें सुन्दर शय्या, आसन, पादुका, जल, अग्नि, दीप और सज्जन भूत्योंसे युक्त अतिथिगृहका निर्माण करना चाहिये।

गृहके बीच समस्त रिक्तभागमें कूप, जलसिंचित कदलीगृह और पाँच प्रकारके पुष्पपादोंको सुनियोजित करे। भवनके बाह्य भागमें चारों ओर पाँच हाथ ऊँची दीवाल बनाकर उन और उपवनमें आच्छादित भगवान् विष्णुका मन्दिर बनाना चाहिये।

इस मन्दिरके निर्माणकार्यके प्रारम्भमें चौसठ पदका वास्तुमण्डल बनाकर वास्तुदेवताकी विधिवत् पूजा करे। उक्त रीतिके अनुसार वास्तुमण्डलके मध्य भागमें चार पदके मण्डलान्तर्गत ग्रहा तथा उनके समीपस्थ प्रत्येक दो पदपर अर्यमादि आठ देवोंकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर कर्णभागपर कार्तिकेय आदिका पूजन करके, दोनों ओर पार्श्व विन्दुओंपर दो-दो पदोंकी दूरीसे स्थित अन्य पार्श्व देवोंका पूजन करे। तत्पश्चात् वास्तुमण्डलके ईशानादि कोणोंपर क्रमशः चरकी, विदारि, पुतना और पापराक्षसी नामक देवशक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद बाह्य भागमें हेतुकादि देवोंका पूजन करे। इनके नाम हेतुक, त्रिपुरान्तक, अग्नि, वैताल, यम, अग्निजिह्वा, कालक, कराल और एकपाद हैं। उनकी पूजा करनेके पश्चात् ईशानकोणमें भीमरूप, पातालमें त्रेतनयक, आकाशमें गन्धमाली तथा उसके बाद क्षेत्रपाल देवोंकी पूजा करनी चाहिये।

यथासाध्य वास्तु संक्रुषित या विस्तृत क्षेत्रफलकी राशिको वसुओंकी संख्या अर्थात् आठसे पहले भाग दे, उसके बचे हुए शेष भागको यम माने। पुनः उक्त वास्तुराशिको आठसे गुणा करे, जो गुणनफल हो उसके अक्ष भाग अर्थात् सत्ताईससे भाग दे, जो शेष हो उसे अक्ष या नक्षत्रराशि कहते हैं और जो भागफल है, वह अव्यय कहलाता है।

उस अक्षराशिको चारसे गुणा करके गुणनफलमें तीसरे भाग दे, जो शेषांश हो उसका नाम स्थिति है। इसी स्थिति अनुसार वास्तुमण्डलका निर्धारण करना चाहिये। ऐसा देवल ऋषिका अभिमत है।

उक्त वास्तुराशिको आठसे गुणा करके जो गुणनफल हो उसे पिण्ड कहते हैं। उस पिण्डको साठसे भाग देना चाहिये, जो शेषांश हो उसके द्वारा गृहस्वामीके जीवन-मरण और परिजनोंके विनाशका निर्धारण होता है।

मनुष्यको चाहिये कि वास्तुमण्डलके मध्यमें ही सदा गृहका निर्माण करे। उसके पृष्ठभागमें न करे। इसी प्रकार वास्तुमण्डलके वामपार्श्वमें भी गृह-निर्माण करना उचित नहीं होता है, क्योंकि वामपार्श्वमें वास्तुदेव सोये रहते हैं। अतः इसमें गृह-निर्माण नहीं करना चाहिये।

सिंह, कन्या तथा तुला राशि रहनेपर उत्तर दिशाके द्वारका शोधन करे और उसी प्रकार वृश्चिकदि अन्य राशियोंके रहनेपर पूर्व-दक्षिण तथा पश्चिम द्वारका शोधन करना चाहिये (क्योंकि भाद्रपद, आश्विन तथा कार्तिकमासमें पूर्व दिशामें मस्तक, उत्तर दिशामें पृष्ठ, दक्षिण दिशामें क्रोड और पश्चिम दिशामें चरण फैलाकर वास्तुनाग सोये रहते हैं। अतः उत्तर दिशाका द्वार इस कालमें प्रशस्त होता है। वृश्चिक, धनु एवं मकर राशि अर्थात् मार्गशीर्ष, पीष और माघमें वास्तुनागका सिर दक्षिण, पृष्ठ पूर्व, क्रोड पश्चिम और पैर उत्तर दिशामें रहता है। जिससे उस समय पूर्व दिशाका द्वार-शोधन उचित है। कुम्भ, मीन और मेष राशि अर्थात् फाल्गुन, चैत्र तथा वैशाखमासमें वास्तुनागका मस्तक पश्चिम, पृष्ठ दक्षिण तथा पैर उत्तर-पूर्व दिशामें रहता है। अतः दक्षिण दिशाके द्वारका शोधन इस कालमें श्रेयस्कर है। इसी प्रकार वृष, मिथुन और कर्कराशि अर्थात् ज्येष्ठ,

आषाढ तथा श्रावणमासमें वास्तुनागका सिर उत्तर, पृष्ठ पश्चिम, क्रोड पूर्व और पैर दक्षिण दिशामें रहता है। उस समय पश्चिम द्वारका शोधन करना उचित होता है।)

वास्तुके विस्तारके अनुसार आधे भागमें द्वारका निर्माण करना चाहिये। इस प्रकार आठ दिशाओंमें आठ द्वार बने गये हैं।

यदि उपर्युक्त शास्त्र-सम्मत विधिसे द्वार-शोधन नहीं

होता है तो हानि होती है।

अतः उपर्युक्त विधिसे प्रासाद या भवनका निर्माण करके उसके पूर्वमें पीपल, दक्षिणमें पाकड़, पश्चिममें बरगद, उत्तरमें गूलर तथा ईशानकोणमें सेमलका वृक्ष लगाना चाहिये, जो घरके लिये शुभ-फलदायी होते हैं। इस प्रकार पूजित वास्तु प्रासाद और घरके विघ्नोंका नाश करनेवाला होता है। (अध्याय ४६)

### प्रासाद-लक्षण

श्रीसूतजीने पुनः कहा—हे शौनक! अब मैं प्रासाद-

निर्माण एवं उसके लक्षणोंके विषयमें कह रहा हूँ। आप सुनै।

सर्वप्रथम कुशल वास्तुविद्की देख-रेखमें चारों दिशाओंमें चौंसठ-चौंसठ पद परिमाणका एक चतुष्कोण भूखण्ड तैयार करना चाहिये। जिसमें अड़तालसीस पद-परिमाण-भूमिमें दीवालका निर्माण करे। साथ ही चारों दिशाओंमें कुल बारह द्वार (वारदरी) बनाये जायें।

प्रासादकी ऊँचाईके परिमाणको अर्थात् पृथ्वीतलपर प्रासादका बनाया गया ऊँचा जो धरातल है, उसको प्रासादिक-जंघा (कुर्सी) कहते हैं। भवनकी यह जंघा मानव जंघाकी अपेक्षा छह गुना अधिक होनी चाहिये। उसके ऊपर निर्मित होनेवाले गर्भभागके विस्तार-परिमाणको शृङ्गांघ्रि कहते हैं। गर्भभागकी पुनः तीन अथवा पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये और शृङ्गांघ्रिके द्वारकी ऊँचाई शिखर भागकी आधी करनी चाहिये। चार शिखर बनाकर उसके तीसरे भागपर वेदि-बन्धन करे। उसके चतुर्थ भागपर पुनः प्रासादके कण्ठ-भागका निर्माण करना चाहिये। अथवा भवनका निर्माण करनेके लिये भूमिखण्डकी समान सोलह भागोंमें विभक्त करके उस सोलहवें भागके चतुर्थ-भागके मध्यमें गर्भगृहका निर्माण करवाये। नवे हुए बारह भागमें भित्ति (दीवाल)-का निर्माण करे। चतुर्थभागकी ऊँचाईके अनुसार ही अन्य भित्तियोंकी ऊँचाईका परिमाण निश्चित करना चाहिये। भित्तिकी ऊँचाईके मानकी अपेक्षा शिखरकी ऊँचाई दो गुनी हो। मन्दिरके चारों ओर बनेवाले प्रदक्षिणा-भागका विस्तार शिखर भागकी ऊँचाईके मानका

चतुर्धा होना चाहिये।

बुद्धिमानोंको चाहिये कि वे उस देवप्रासादमें चारों दिशाओंमें निर्गम (बाहर निकलनेके) द्वार रखें। गर्भगृहकी चतुर्दिक् भित्तियोंमें प्रत्येक भित्तिका पाँच भाग करके उसके मध्यके पाँचवें भागमें द्वार लगाना चाहिये। ऐसा ही गर्भगृहके प्रत्येक द्वारका मान वास्तुविद् विद्वानोंने निर्धारित किया है। गर्भगृहके समान ही उसके अग्रभागमें मुखमण्डप बनाना चाहिये। यह प्रासादका सामान्य लक्षण कहा गया है। अब मैं लिङ्गनिर्माणके परिमाणको कह रहा हूँ।

हे शौनक! लिङ्गके परिमाणके अनुसार उसकी पीठका निर्माण होना चाहिये। पीठभागका दुगुना चारों ओर पीठका गर्भभाग हो। पीठगर्भके अनुसार ही उसकी भित्ति तथा उसके विस्तारके अर्धपरिमाणमें उस लिङ्गपीठका जंघा-भाग निर्मित करे।

हे शौनक! जंघा-भागके परिमाणकी अपेक्षा द्विगुणित ऊँचा शिखर होना चाहिये। पीठ और गर्भभागके मध्य जो परिमाण हो, उस परिमाणके अनुसार शृङ्गांघ्रिभाग निर्मित होता है। द्वारनिर्माणके समय पहले जैसा कहा जा चुका है, शेष कार्य वैसे ही होगा। लिङ्गका परिमाण बताया जा चुका है। अब द्वारका परिमाण कहते हैं। चार हाथ (छः फुट)-का द्वार बनाया जाय, जो वास्तुसे आठवाँ हिस्सा होता है। स्वेच्छानुसार इसका दुगुना विस्तार हो सकता है।

द्वारके सदृश पीठके मध्यभागको छिद्रयुक्त ही रखना चाहिये। पार्श्विक, शेषिक तथा भित्तिद्वार परिमाणके अनुसार ही उसके अर्ध-अर्ध परिमाणकी दूरीपर निर्मित करे। उस



गर्भभागके विस्तारके समान ही मण्डपके जंघाभागका निर्माण करके उस जंघाभागके द्विगुणके परिमाणमें ऊँचे शिखरभागको निर्मित करे। शृङ्गाग्रभागको पहलेकी ही भाँति बनवाकर निर्गम अर्थात् द्वारभागको ऊँचा ही बनावाये—ऐसा मण्डपनिर्माणका मान है। इसके अतिरिक्त शेष प्रासाद-भागके स्वरूपको कह रहा हूँ, सुनै—

प्रासाद-मण्डपके अग्रभागमें त्रेवेद अर्थात् त्रिद्वारीका निर्माण करवाना चाहिये, जिसके क्षेत्रभागमें देवगण विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार प्रासादके मानका अवधारण करके बाह्य भागका निर्माण करे।

इस निर्माणकार्यमें प्रासादके चारों ओर एक पाद परिमाणवाली नेमि या नीयका निर्माण करना चाहिये। वैसे संसारमें गर्भगृहके परिमाणके अनुसार नेमिका मान उसका द्विगुण है। भित्तिकी चौड़ाईसे दो गुणा ऊँचा उसका शिखर-भाग होना चाहिये।

लक्षणों एवं स्वरूपकी भिन्नताके कारण प्रासाद अनेक प्रकारके होते हैं। यथा—वैराज, पुष्पक, कैलास, मालिका (माणिक्य) तथा त्रिविष्टप—ये पाँच प्रकारके प्रासाद हैं। इनमें प्रथम प्रकारका वैराज नामक प्रासाद सब प्रकारसे चौकोर और समतल होता है। द्वितीय प्रकारका पुष्पक प्रासाद आयताकार होता है। तृतीय प्रकारका कैलास नामक प्रासाद वृत्ताकार, चौथा मालिका नामक प्रासाद वृत्तायत और पाँचवाँ त्रिविष्टप नामक प्रासाद अष्टकोणाकार होता है। इस प्रकारसे बने हुए ये प्रासाद बड़े ही मनोहारी होते हैं। इन प्रासादोंसे ही अन्य प्रकारके प्रासादोंका स्वरूप निर्मित हुआ है।

यथा—मेरु, मन्दर, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुक्म, नन्दन, नन्दिबर्धन और श्रीवत्स—ये नौ प्रकारके चौकोर प्रासाद वैराज नामक प्रासाद निर्माणकी कलासे ही उत्पन्न हुए हैं।

वलयभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्ममन्दिर, भवन, उत्तम्भ और शिखिकावेश्म—ये नौ प्रासाद पुष्पक नामक प्रासादकलासे उत्पन्न हुए हैं।

वलय, दुन्दुभि, पय, महापय, मुकुती, उष्णीषी, संख, कलश, गुवायूक्ष तथा अन्य वृत्ताकार प्रासाद कैलास

प्रासादसे निकले हैं। गज, वृषभ, हंस, गरुड, सिंह, सम्मुख, भूमुख, भूधर, श्रीजय तथा पृथिवीधर—इन प्रासादोंका उद्भव 'मालिका' (माणिक्य) नामक वृत्तायत प्रासादसे हुआ है।

खड्ग, चक्र, मुष्टिकवधु, वक्रस्वस्तिक, खड्ग, गदा, श्रीवृक्ष, विजय तथा श्वेत—इन नौ प्रासादोंका प्रादुर्भाव त्रिविष्टप नामक प्रासादसे हुआ है।

इसके अतिरिक्त विकरण, पद्माकर, अर्धचन्द्राकर, चतुष्कोण तथा षोडशकोणीय प्रकारसे भी मण्डपके संस्थानका निर्माण जहाँ-तहाँ किया जा सकता है, जो क्रमशः—राज्य, ऐश्वर्य, आयुवर्धन, पुत्रलाभ और स्वोप्राप्ति करानेवाले होते हैं।

मुख्यद्वारके स्थानमें ही ध्वजा आदि तथा गर्भगृहका निर्माण करना चाहिये। सूत्रके द्वारा सम संख्याओंसे गुणित मण्डपका निर्माण करके उस मण्डपके चतुर्धाश अर्थात् चौथाई परिमाणका एक भद्रगृह निर्मित करावाये। भद्रगृहको समानान्तर वातायन (रोशनदान)—से अथवा वातायनसे रहित बनाना चाहिये। कहीं मण्डपकी दीवालके बराबर अथवा कहीं उससे डेढ़ गुना अथवा कहीं दुगुने मापके मण्डप बनाये जाने चाहिये। प्रासादके लतामण्डपकी भूमि विषम तथा चित्र-विचित्र (रंग-किरंगी) वर्णकी बनानी चाहिये। परिमाण-विरोध रहनेपर उसे विषम रेखाओंसे अलंकृत किया जा सकता है।

प्रासादकी आधारभूमि प्रत्येक दिशाओंमें अवस्थित चार द्वारों और चार मण्डपोंसे सुशोभित होनी चाहिये। जो प्रासाद सौ भृङ्गोंवाला अर्थात् सौ मीनारोंसे युक्त रहता है, उसे मेरु-संज्ञासे अभिहित किया जाता है। यह अन्य प्रासादोंकी अपेक्षा उत्तम कीटिका होता है। इस प्रकारके प्रासादमें प्रत्येक मण्डप तीन-तीन भद्रगृहोंसे अलंकृत होने चाहिये।

निर्माणपद्धति, आकार और परिमाणके वैभिन्न्यके कारण वे प्रासाद भिन्न-भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। जिनमें कुछ प्रासादोंका आधार होता है, किंतु कुछ आधारसे रहित होते हैं। वे प्रासाद अपने छन्दक अर्थात् छत-निर्माणके भेदसे भी भिन्न-भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। रचना-पद्धति तथा नामके भेदसे परस्पर सांकर्यके कारण भी भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रासाद हो जाते हैं।

देवताओंकी विशेषताके कारण बहुत प्रकारके प्रासाद

बताये गये हैं। यद्यपि स्वयंभू (स्वतः प्रादुर्भूत देवमूर्ति) देवताओंके लिये निर्मित होनेवाले प्रासादके निमित्त कोई नियम नहीं है, तथापि देवोंके लिये उक्त मानके अनुसार ही उन प्रासादोंका निर्माण करवाना चाहिये, जो चतुरस्र अर्थात् चौरस भूमिपर समान चार कोनोंसे समन्वित हों। वे प्रासाद चन्द्रशालाओं (बारदरी)-से युक्त तथा भेरीशिखर (नीबतखानों)-से संयुक्त होने चाहिये। उनके सामनेके भागमें वाहनोंके लिये लघु मण्डप भी निर्मित हों।

देवप्रासादके द्वारदेशकी सन्निधिमें नाट्यशाला बनानी

चाहिये। प्रासादके विभिन्न दिशाओंके मुख्य द्वारोंपर अलग-अलग द्वारपाल बनाने चाहिये। उस देवप्रासादसे कुछ दूर देवालयेमें रहनेवाले सेवकवर्गके लिये आवास बनवाना चाहिये।

देवप्रासादकी भूमि फल, पुष्प और जलसे परिपूर्ण होनी चाहिये। ऐसे प्रासादोंमें देवताओंको स्थापित करके उनको अर्घ्यादिक विविध प्रकारके उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। कामुदेव तो सर्वस्य हैं, उनके भवनका निर्माण करनेवाला व्यक्ति सभी फलोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ४७)

## देव-प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि

सूतजीने कहा—अब मैं सभी देवताओंकी प्रतिष्ठा-विधिकी संक्षेपमें कह रहा हूँ। प्रशस्त तिथि-वर्षादिमें प्रतिष्ठा करवानी चाहिये।

सर्वप्रथम अपनी वैदिक शास्त्रमें कहे गये विधानके अनुसार या प्रणव-मन्त्र (ॐकार)-का उच्चारण करके पाँच या उससे अधिक ब्रह्मिजोंके साथ मध्य स्थानमें स्थित आचार्यका वरण करे। तदनन्तर पाद्य, अर्घ्य और मुद्रिका, वस्त्र-गन्ध-माल्य एवं अनुलेपनीय द्रव्योंसे उनका पूजन करे। गुरुकी चाहिये कि ये मन्त्रन्यासपूर्वक प्रतिष्ठाकर्मका समारम्भ करें।

प्रासादके अग्रभागमें दस अथवा बारह हाथका एक वर्गाकार सोलह छान्धोंवाला मण्डप तैयार करके उसमें (पूर्वादिक चारों दिशाओं और ईशानादिक चार विदिशाओंमें एक-एक ध्वजा—इस तरह) कुल आठ ध्वजोंको प्रतिष्ठित करना चाहिये। तदनन्तर मण्डपके मध्यभागमें चार हाथ परिमाणकी एक वेदीका निर्माण कराये। उस वेदीके ऊपरी भागमें नदियोंके संगम-स्थलके किनारेसे लायी गयी बालुका बिछाये। प्रधान कुण्डका निर्माण करवाकर उसके पूर्व दिशामें वर्गाकार, दक्षिणमें धनुषाकार, पश्चिममें वर्तुलाकार और उत्तरमें पद्याकार—इस प्रकार पाँच कुण्डोंका निर्माण करवाना चाहिये अथवा सभी कुण्ड चौकोर रखे जा सकते हैं।

कुण्ड-निर्माणके पश्चात् समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये आचार्य, शान्तिकर्मके लिये विहित विधिसे हवन करे।

कुछ लोग मण्डपके ईशानकोणकी भूमिको गायके गोबर या स्वच्छ मिट्टीसे लीपकर उसमें होम करते हैं।

मण्डपमें सगे तोरणोंके समीप ही पूर्वादिक दिशाओंमें चार द्वारोंका निर्माण करवाना चाहिये। मण्डपके तोरणस्तम्भ न्यग्रोध (बट), उदुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल), किल्व, पलाश, खदिर (खैर) काष्ठसे निर्मित होने चाहिये। प्रत्येक तोरणस्तम्भका परिमाण पाँच हाथ होना चाहिये और प्रत्येक स्तम्भकी वस्त्र-पुष्पादिसे अलंकृत करना चाहिये तथा उसके निचले भागको एक हाथ चापकर पृथ्वीमें गाड़ देना चाहिये। शेष चार हाथ परिमाणका भाग ऊपर रखें। इसी प्रकार उन्हें मण्डपके चारों ओरकी दिशाओंमें स्थापित करवाना चाहिये।

मण्डपके पूर्वी द्वारपर मृगेन्द्र, दक्षिणी द्वारपर हयराज, पश्चिमी द्वारपर गोपति तथा उत्तरी द्वारपर देवशार्दूलका न्यास करे। पहले 'अग्निष्ठीके०' इस मन्त्रसे पूर्व द्वारकी दिशामें मृगेन्द्रका न्यास करे। तदनन्तर 'ईषत्स्वेति च०' इस मन्त्रसे दक्षिण द्वारकी दिशामें हयराजका, 'अम् आयाहि०' इस मन्त्रसे पश्चिम द्वारकी दिशामें गोपतिका और 'ज्ञं नो देवी०' मन्त्रसे उत्तर द्वारकी दिशामें देवशार्दूलका न्यास करना चाहिये।

मण्डपकी पूर्व दिशामें मेघवर्णके समान श्याम, अग्निकोणमें भृशवर्ण, दक्षिण दिशामें कृष्णवर्ण, नैऋत्यकोणमें धूसरवर्ण<sup>१</sup>, पश्चिम दिशामें पाण्डुरवर्ण, वायुकोणमें पीतवर्ण, उत्तर दिशामें रक्तवर्ण, ईशानकोणमें शुक्लवर्ण तथा मण्डपके

१-पीलापनके साथ शुक्लवर्ण पाण्डुरवर्ण है और थोड़ा कम पाण्डुरवर्ण धूसरवर्ण है।

मध्यभागमें अनेक वर्णवाली पतलाकाको स्थापित करे।

'इन्द्रविद्योति०' इस मन्त्रसे पूर्व दिशामें इन्द्र, 'संमुत्ति०' इस मन्त्रसे अग्निकोणमें अग्नि, 'यधोनाग०' इस मन्त्रसे दक्षिणमें यम, 'रक्षोहृणावेति०' मन्त्रसे (नैऋत्यमें निर्ऋति) पश्चिममें वरुण तथा 'ॐ वातेति०' मन्त्रसे वायव्यमें वायुदेवका अभिषेक करके उत्तरमें 'ॐ आप्यायस्वेति०' मन्त्रसे कुबेरकी पूजा करे। 'ॐ तप्तीशान०' इस मन्त्रसे ईशान दिशामें ईशान और मण्डपके मध्यभागमें 'ॐ विष्णोर्लोकेति०' मन्त्रसे विष्णुका पूजन करना चाहिये।

प्रत्येक तोरणके समीप दो-दो कलश स्थापित करनेके पश्चात् वस्त्र तथा उपवस्त्रसे आच्छादित, चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंसे अलङ्कृत, पुष्प, चित्तन एवं अन्यान्य पूज्य-उपचारोंसे सुशोभित दिक्पालोंकी पूजा करनी चाहिये।

'ॐ ब्रातारमिन्द्र०' मन्त्रसे इन्द्र, 'ॐ अग्निर्मूर्धा०' मन्त्रसे अग्नि, 'ॐ अस्मिन्नुद्ग०' मन्त्रसे निर्ऋति, 'ॐ किं शे दधातु०' मन्त्रसे वरुण, 'ॐ आचक्षा०' मन्त्रसे कुबेर, 'ॐ इमा रुद्रेति०' मन्त्रसे रुद्र आदि दिक्पालोंकी पूजा करके विद्वान् आचार्यको चाहिये कि वह वायव्यकोणमें होमद्रव्य एवं अन्य पूजामें प्रयुक्त वस्तुओंको स्थापित करे।

तदनन्तर वह गुरु वहाँ रखी गयी श्वेत शंखादिक शस्त्र-विहित समस्त वस्तुओंपर एक बार हस्तिपात कर ले, ऐसा करनेसे निश्चित द्रव्योंकी शुद्धि हो जाती है।

तत्पश्चात् हृदयादि षडङ्गोंका न्यास व्याहृति और प्रणवमन्त्रसे संयुक्त करके क्रमशः—( ॐ हृदयाय नमः, ॐ भूः शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखायै वषट्, ॐ स्वः कवचाय हुम्, ॐ भूर्भुवः स्वः नेत्रत्रयाय वीषट्, ॐ भूर्भुवः स्वः करतलकरपुष्पाभ्यां फट् मन्त्रका उच्चारण करते हुए) हृदय, मिर, शिखा, कवच, नेत्र, करतल और करपुष्पका स्पर्श करे। तदनन्तर 'ॐ अस्त्राय फट्' मन्त्रसे अस्त्रका न्यास भी करना चाहिये, क्योंकि यह न्यास-कर्म समस्त इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।

अस्त्र-मन्त्रके द्वारा अक्षत और विष्टरको अभिमन्त्रित करके उसी विष्टरके द्वारा यज्ञमण्डपमें एकत्रित समस्त द्रव्योंका स्पर्श करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रसे पवित्र किये गये उन अक्षतोंको अपने चारों ओर बिखेर दे। उसके बाद पूर्व

दिशासे लेकर अग्निकोण, दक्षिण, नैऋत्यकोण, पश्चिम, वायुकोण, उत्तर और ईशानकोणपर्यन्त मण्डपमें अभिमन्त्रित अक्षतोंका निक्षेप करके सम्पूर्ण यज्ञ-मण्डपका लेपन करवाना चाहिये।

तदनन्तर याज्ञिक गुरुको चाहिये कि वह अर्घ्यपात्रमें गन्धादिसे युक्त जलको पूर्णकर मन्त्रसमूहोंसे उसे अभिमन्त्रित करे। उसी अभिमन्त्रित जलसे यज्ञमण्डपका प्रोक्षण करना चाहिये। उसके बाद जिस देवकी प्रतिष्ठा करनी है, उसी देवके नामसे मण्डपके ईशानकोणमें कलश स्थापितकर उसके दक्षिण भागमें अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित वट्ठिनीकी स्थापना करे। उसके बाद कलश, वट्ठिनी, ग्रह और वास्तोष्पति देवकी यथाविहित आसनपर प्रतिष्ठाले साथ पूजा करके आचार्य प्रणव-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर सूत्रसे वेदित, पञ्चरात्रोंसे युक्त दो वस्त्रोंसे आच्छादित सव्य प्रकारकी औषधियों तथा चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंसे अनुलिप्त उस कलशकी पुनः पूजा करे, साथ ही उस कलशमें प्रतिष्ठित देवताकी भी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर उत्तम वस्त्रसे वट्ठिनीको आच्छादित करके उसके साथ कलशको घुमाये। वट्ठिनीकी जलधारासे उस कुम्भकी सिद्धि करके उसके आगे ही वट्ठिनीको स्थापित करे। वट्ठिनीके साथ उस कुम्भका पूजन करके स्थण्डिलमें मूल देवताकी पूजा करे।

उसके बाद वायव्यकोणमें एक घटकी स्थापना करनी चाहिये। उसमें गणपतिका आवाहनकर 'ॐ गणार्वा त्वेति०' मन्त्रसे उनकी पूजा करके ईशानकोणमें दूसरा घट स्थापित करे। उसमें वास्तुदोष-परिहारके लिये 'ॐ वास्तोष्पते०' इस मन्त्रसे वास्तुदेवकी पूजा करनी चाहिये। कुम्भके पूर्वभागमें भूत और गणदेवकी बलि प्रदानकर वेदीका आलम्बन करे। तदनन्तर 'ॐ योगेयोगेति०' मन्त्रसे हरे कुशोंका आस्तरण करे और ऋत्विजोंके साथ आचार्य तथा यज्ञदीक्षित वह श्रेष्ठ यजमान स्नान-पीठपर उस देवमूर्तिको प्रतिष्ठित करे। उस समय विविध वैदिक मन्त्रोच्चारणके साथ जय-जयकारकी मञ्जुल ध्वनि करनी चाहिये।

स्नान करवानेके लिये पीठसहित उस देवमूर्तिको ब्रह्मरथपर बैठाकर ईशानकोणमें अवस्थित मण्डपपीठमें

स्थापित करे। तदनन्तर 'ॐ भद्रं कर्णेति०' मन्त्रसे स्नान कराकर यज्ञीय सूत्र या वल्कल वस्त्रसे पोंछकर मूर्तिको स्वच्छ करके तुर्यादिक वाद्य-यन्त्रोंका वादन करते हुए लक्षणोद्धार (मूर्तिका नामकरण) करे।

उसके बाद कांस्य या ताम्र-पात्रमें स्थित घृत और मधुसे मिश्रित अञ्जनको सोनेकी शलाकासे लेकर उस प्रतिमाकी आँखोंमें अञ्जन करे। अञ्जन लगा देनेके लिये 'ॐ अग्निर्वातीति०' मन्त्रसे देवके नेत्रोंको उद्घाटित करना चाहिये।

अञ्जनादिसे सुशोभित उस देवप्रतिमाका नामकरण स्थापना करनेवाला व्यक्ति करे। तदनन्तर 'ॐ इमं मे गच्छेति०' मन्त्रसे प्रतिमाके नेत्रोंमें शीतल-क्रिया (शीतलीकरण)-का सम्पादनकर 'ॐ अग्निर्मूर्तेति०' मन्त्रसे बाँबी अर्थात् दीमकादिके द्वारा एकत्रित की गयी मिट्टी उस देवमूर्तिको समर्पित करे और बिल्व, गूलर, पीपल, बट, पलाशद्वारा निर्मित पञ्चकषापको लेकर 'ॐ यज्ञायज्ञेति०' मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान कराये। तत्पश्चात् पञ्चगव्यसे स्नान कराकर सहदेवी, बल, शतभुली, शताथरी, धृतकुमारी, गुडूची, सिंही तथा व्याघ्री—इन औषधियोंसे युक्त जलसे 'ॐ या ओषधीति०' मन्त्रद्वारा स्नान कराये। तदनन्तर 'ॐ याः फलिनीति०' मन्त्रके द्वारा फल-स्नान करानेका विधान है।

तत्पश्चात् 'ॐ हुपदादिवेति०' मन्त्रसे विद्वानोंको उद्घाटन-कृत्य करना चाहिये। अनन्तर उत्तर आदि दिशाओंमें क्रमशः चार कलशोंका स्थापन करना चाहिये और उन कलशोंमें विविध रत्न, सप्तधान्य<sup>१</sup> और शतपुष्पिका<sup>२</sup> नामक औषधिका निक्षेप करना चाहिये। इसके अतिरिक्त उन चारों कलशोंमें चारों समुद्र एवं चारों दिशाओंके अधिष्ठाता देवोंका आवाहन करना चाहिये। साथ ही दूध, दही, क्षीरोदक एवं घृतोदकसे चारों कलशोंको पृथक्-पृथक् परिपूर्ण करके 'आप्यवस्य०' इस मन्त्रसे दग्धकुम्भ, 'दधिकाव्यो०' मन्त्रसे दधिकुम्भ, 'या ओषधी०' इस मन्त्रसे क्षीरोदककुम्भ तथा 'नेत्रेति०' मन्त्रसे घृतकुम्भको अभिमन्त्रित करना चाहिये। अभिमन्त्रित इन चारों कलशोंको चार समुद्रोंका प्रतिनिधि समझते हुए इनके द्वारा देवप्रतिमाको स्नान कराना चाहिये।

इस प्रकार स्नान-सम्पन्न उस देवप्रतिमाको सुन्दर वेश-भूषणसे अलंकृत करके गुग्गुलुका धूप प्रदान करे। तत्पश्चात् पुनः कुम्भोंमें पृथ्वीपर विद्यमान सभी तीर्थों, नदियों तथा सागरोंका विन्यास करना चाहिये। उन कुम्भोंको 'ॐ या ओषधीति०' मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उनसे पुनः उस देवप्रतिमाका अभिषेक करे। जो व्यक्ति अभिषेकके अवशिष्ट जलसे स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

समुद्रके प्रतिनिधिरूप उन कुम्भोंसे उस देवमूर्तिका अभिषेक-कृत्य सम्पन्न होनेके पश्चात् अर्घ्य प्रदान करके 'ॐ गन्धाद्वेति०' मन्त्रसे सुगन्धित चन्दनादि पदार्थोंद्वारा अनुलेप करे। साथ ही शास्त्रोंमें विविध वेदमन्त्रोंसे देवमूर्ति-न्यासकी प्रक्रिया भी सम्पन्न करे। तत्पश्चात् 'ॐ इमं वसवेति०' मन्त्रके द्वारा वस्त्रोंसे मूर्तिको आच्छादित करे। उसके बाद 'ॐ कविहाविति०' मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस प्रतिमाको सुन्दर मण्डपमें ला करके 'ॐ शम्भवायेति०' मन्त्रसे शय्यापर स्थापित करे। तदनन्तर 'ॐ विभवायैति०' मन्त्रका उच्चारणकर समस्त पूजाविधिको सब प्रकारसे परिपूर्ण करे। तत्पश्चात् यहाँपर बैठकर परमतत्त्वका ध्यान करते हुए आचार्यको शास्त्रीय विधानके अनुसार मन्त्रन्यास करना चाहिये। मन्त्रन्यासकी प्रक्रिया मन्त्रशास्त्रोंमें बतायी गयी है। इस न्यासके बाद मण्डपमें प्रतिष्ठापित देवप्रतिमाको वस्त्रसे आच्छादित करना चाहिये और उसकी यथाविधि पुनः पूजा भी करनी चाहिये। शास्त्रीय विधिके अनुसार जो देवताको समर्पित करना है, वह उनके पादमूलमें समर्पित कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त देवताके शिरोभागमें दो वस्त्रोंसे वेष्टित, स्वर्णसे युक्त एवं प्रणवसे अंकित कलश स्थापित करना चाहिये।

तदनन्तर कुम्भके सत्रिकट बैठकर आचार्य वेदमन्त्रोच्चारणके साथ अग्निकी स्थापना करे। तदनन्तर पूर्वदिशामें ऋग्वेददेवता ऋग्विक् कुण्डके समीप बैठकर श्रीसूक्त तथा पवमान आदि सूक्तोंका पाठ करे।

कुण्डके दक्षिण दिशामें स्थित अभ्यर्च्य अर्थात् यजुर्वेददेवता आचार्य रुद्रसूक्त तथा पुरुषसूक्तका पारायण करे। कुण्डके पश्चिममें बैठा हुआ उद्गाता सामवेदीय आचार्य वेदव्रत,

१-जी, धान, किल, कैंगनी, मूँग, चन्दा, मौवा—इन धान्योंका समूह सप्तधान्य कहलाता है।

२-शतपुष्पिका सीक या वनसीकको कहते हैं।



वामदेव्य, ज्येष्ठसाम, रथन्तर एवं भेरुण्डसामका पाठ करे। ऐसे ही कुण्डके उत्तरमें स्थित अधर्ववेददेवता अधर्वशिरसु, कुम्भसूक्त, नीलरुद्रसूक्त एवं मैत्रसूक्तका पारायण करे।

तदनन्तर आचार्य अस्त्र-मन्त्रके द्वारा भलीभाँति कुण्डका प्रोक्षण करके स्वसामर्थ्यके अनुसार प्राप्त ताम्र या अन्य किसी धातुसे निर्मित पात्रमें अग्नि ग्रहणकर उस मूर्तिके आगे स्थापित करे। तत्पश्चात् उस अग्निको अस्त्र-मन्त्रसे प्रज्वलित करके कवच-मन्त्रके द्वारा वेष्टित कर देना चाहिये (इसे अग्निका अमृतीकरण-कृत्य कहते हैं)।

इस प्रकार अमृतीकृत अग्निको गुरु वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके पात्रसहित कुण्डके चारों ओर घुमाये और तैष्णवयोगसे उसे प्रज्वलितकर वहाँ कुण्डके मध्य स्थापित करे। अग्निके दक्षिणमें ब्रह्मा और उत्तरमें प्रजाताको स्थापितकर कुण्डकी प्रत्येक दिशाओं एवं विदिशाओंमें कुशाके चिट्ठोंसे परिधिका निर्माण करे।

तदनन्तर गृह ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और इंद्रासनकी पूजा करके दर्भोंके ऊपर अग्निको रखकर दर्भसे ही वेष्टित करके दर्भजलसे ही प्रोक्षण करे, क्योंकि कुशाद्वारा प्रदत्त जलका प्रोक्षण करनेसे बिना मन्त्रके भी रुद्धि हो जाती है और पूर्वाग्र, उत्तराग्र एवं पश्चिमाग्र अखण्डित तथा विन्दुत कुशाओंसे वेष्टित बह्मिर् देवताका सान्निध्य स्वयं ही हो जाता है।

अग्निकी रक्षाके लिये मन्त्रज्ञोंने जो उपर्युक्त नियम कहे हैं, उनके विषयमें कुछ आचार्योंका विचार है कि उन सभी कृत्योंको जातकर्म-संस्कारके पश्चात् करना चाहिये।

अग्निका पवित्रीकरण करके आचार्यको आत्म-संस्कार करना चाहिये। अनन्तर आत्म (घृत)-को आहुतियोग्य बनानेके लिये उसका अवेषण, निरोक्षण, निराजन एवं अभिमन्त्रण करके उसके द्वारा मुख्य हवनके पूर्व करणीय आत्म्यभाग एवं अभिघार<sup>१</sup> नामका कृत्यविशेष सम्पन्न करना चाहिये। तदनन्तर उस आत्मसे चौच-चौच आहुतियाँ देनी चाहिये। उसके बाद गर्भाधान-संस्कारसे लेकर गौदन-संस्कारपर्यन्त अग्निका संस्कार करके आचार्यको अपनी शाखाके अनुसार विहित मन्त्रोंसे अथवा प्रणवसे आहुति प्रदान करनी चाहिये। आचार्य अन्तमें पूर्णाहुति प्रदान करे, क्योंकि पूर्णाहुति देनेसे

यजमानकी अभिलाषा पूर्ण हो जाती है।

इन वेद-विहित नियमोंसे उत्पन्न हुई अग्नि सभी कार्योंमें सिद्धि प्रदान करनेवाली होती है। अतएव पुनः उसकी पूजा करके अन्य सभी कुण्डोंमें उसे प्रतिष्ठित करना चाहिये। वहाँ प्रत्येक आचार्य अपने शाखामन्त्रोंसे इन्द्रादि सभी देवोंको सौ-सौ आहुतियाँ प्रदान करे। सौ आहुतियोंके पश्चात् पूर्णाहुति समर्पित करके सभी देवोंको एक-एक आहुति पुनः प्रदान करनी चाहिये।

होता अपने द्वारा अनुष्ठित आज्याहुतियोंके शेष भागको यथाविधान कालशमें समर्पित करे। इसके बाद आचार्य देवता, मन्त्र एवं अग्निके साथ अपने तादात्म्यकी भावना करते हुए पूर्णाहुति सम्पन्न कराये।

यजमण्डपसे बाहर आकर आचार्य दिक्पालोंको बलि प्रदान करे। इस बलिबृत्यके साथ भूतों, देवताओं और नागोंको बलि देनी चाहिये। तिल और समिधा—यही दो होम-पदार्थ विहित हैं। अज्य तो उन दोनोंका सहयोगी है, क्योंकि घृतके बिना हवनीय द्रव्य अक्षय (परिपूर्ण) नहीं होता।

इस हवनकृत्यमें पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त, ज्येष्ठसाम तथा 'तत्रयामि' इस मन्त्रसे युक्त भारुणहसूक्त, महामन्त्रके रूपमें प्रसिद्ध नीलरुद्रसूक्त एवं अधर्वके कुम्भसूक्तका पारायण यथाक्रम पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम आदि दिशाओंमें आसीन ऋषिजनोंसे करवाना चाहिये। इस हवन-कर्ममें एक-एक सहस्र आहुतिका विधान है और इन आहुतियोंमें वेदोंके आदि मन्त्रों, देवताके नाम-मन्त्रों, अपनी शाखाके विहित मन्त्रों, गायत्री-मन्त्रके साथ यथाविधान व्याहुति एवं प्रणवका प्रयोग करना चाहिये। साथ ही यह भावना करनी चाहिये कि हम इन आहुतियोंको देवताके शिरोभाग, मध्यभाग तथा पादभाग आदिमें समर्पित कर रहे हैं और स्वयंको देवमय समझना चाहिये।

इस प्रकार होम-विधिको सम्पन्न करके देशिक (आचार्य)-को चाहिये कि वह देव-विग्रहमें मन्त्रोंका न्यास करे। यथा—'ॐ अग्निमीळे०' मन्त्रका देवके दोनों चरणोंमें, 'ॐ इष्टेवेति०' मन्त्रका दोनों गुल्फोंमें, 'ॐ अग्न आयाहि०' मन्त्रसे देवकी दोनों जंघाओंमें, 'ॐ शं नो देवी०' मन्त्रका दोनों जानुओंमें, 'ॐ बृहद्वरुणन्तर०' मन्त्रका दोनों ऊरुओंमें

१-अभिघार (आघार) एवं आत्म्यभाग आहुतिविशेषका नाम है। यह कुशकण्डिका नामके विशेष कृत्यके सम्पादन-कालमें मुख्य आहुतियोंके पूर्व अवश्य करणीय है।

न्यास विहित है। देवके उदर भागमें भी इसी प्रकार न्यास करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ दीर्घायुष्टाय०' मन्त्रका देवके हृदयमें, 'ॐ श्रीशुक्ते०' मन्त्रका गलेमें, 'ॐ ज्ञातारमित्र०' मन्त्रका वक्षःस्थलमें, 'ॐ त्र्यम्बक०' मन्त्रका दोनों नेत्रोंमें तथा 'ॐ मूर्द्धा भव०' मन्त्रका मस्तकमें न्यास करके विहित लग्नमुहूर्तमें हवन करे।

इसके पश्चात् 'ॐ उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' मन्त्रसे देवमूर्तिका उत्थापन करके मन्त्रवेत्ता आचार्य 'देवस्य त्वा०' मन्त्रसे मूर्तिका स्पर्श करते हुए वेदोक्त पुण्याहवाचनके साथ देवप्रासादकी प्रदक्षिणा करे। इसके अनन्तर विविध रत्न, विविध धातु, लौहद्रव्य एवं विधानके अनुसार अनेक प्रकारके सिद्धबीजोंके साथ दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रदक्षिणा विहित है। इसके अनन्तर यथास्थान प्रधान देवप्रतिमाकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये।

देवमूर्तिको मन्दिरके मुख्य गर्भभागमें स्थापित नहीं करना चाहिये और न उस गर्भका परिष्ठाण करके अन्यत्र ही उसकी स्थापना होनी चाहिये, अपितु गर्भभागका कुछ मध्यभाग छोड़कर उसे स्थापित करनेसे दोषका परिहार हो जाता है। अतः तिलके कणमात्र परिष्ठाणमें मूर्तिको उभरकी ओर कुछ नका लेना चाहिये।

'ॐ मित्रो भव', 'शिवो भव', 'प्रजापत्यश्च नमो नमः', 'देवस्य त्वा सवितुः०' आदि मन्त्रोंसे गुरु देवमूर्तिका

यथाविधि विन्यास एवं अभिमन्त्रण करे। साथ ही सुप्रतिष्ठित देवप्रतिमाको यथाविधान सम्पातकलशके जलसे ही स्नान कराना चाहिये।

तदनन्तर धूप-दीप, अन्य सुगन्धित पदार्थ तथा नैवेद्यसं उस देवप्रतिमाको विधिवत् पूजा करके अर्घ्य प्रदान करे और प्रणाम निवेदन करके क्षमा-प्रार्थना करे।

उसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार यजमान ऋत्विजोंको पात्र, वस्त्र एवं उपवस्त्र, छत्र, सुन्दर बहुमूल्य अँगूठी तथा दक्षिणा देकर संतुष्ट करे। तदनन्तर सावधान होकर यजमान चतुर्धौ होम करे। सौ आहुतियोंको देकर अन्तमें वह पूर्णाहुति प्रदान करे।

इसके बाद आचार्य मण्डपसे बाहर आकर दिक्पालोंको बलि प्रदान करके पुण्य लेकर 'क्षमस्व' इस वाक्यसे उन देवोंका विसर्जन कर दे।

इस प्रकार यज्ञ पूर्ण होनेके पश्चात् आचार्यको कपिला धेनु, चामर, मुकुट, कुण्डल, छत्र, केयूर, कटिमूत्र, व्यजन (पंखा), वस्त्रादि वस्तुएँ, ग्राम तथा साज-सजावटपूर्ण सुन्दर भयन प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर आचार्य तथा अन्य सहयोगीजनोंके लिये सुन्दर विशाल भोजका आयोजन कराकर सबको संतुष्ट करना चाहिये। ऐसा करनेसे यजमान कृतार्थ हो जाता है और वास्तुदेवकी प्रसन्नतासे उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। (अध्याय ४८)

## वर्ण एवं आश्रमधर्मोंका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी महाराज! स्वायम्भुव मनु आदि शास्त्रकारोंके द्वारा पूज्य तथा सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाले भगवान् हरिकी पूजा ब्राह्मणादि चारों वर्ण अपने-अपने धर्मके अनुसार करते हैं। मैं पृथक्-पृथक् रूपसे उनके धर्मोंको कह रहा हूँ। आप उसे सुनें।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और अध्यापन—ये छः कर्म ब्राह्मणके धर्म हैं। दान, अध्ययन तथा यज्ञ—ये क्षत्रिय एवं वैश्यके साधारण धर्म हैं। इसके अतिरिक्त दण्ड क्षत्रियके लिये और कृषि करना वैश्यके लिये विशेष धर्म स्वीकार किया गया है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों द्विजातियोंको सेवा करना शूद्रोंका धर्म है। शिल्पकारी उनकी आजीविका है।

धर्मानुसार वे पाकयज्ञ-संस्थाका निर्वहन भी कर सकते हैं।

भिक्षाचरण, गुरु-शुश्रूषा, स्वाध्याय, संन्यास तथा अग्नि-कार्य—ये ब्रह्मचारियोंके धर्म हैं।

चारों आश्रमोंके दो भेद माने गये हैं। इसके अनुसार ब्रह्मचारिके उपकुर्वाण तथा नैष्ठिक—ये दो भेद हैं। जो द्विज विधिवत् वेदादिका अध्ययन करके गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट हो जाता है वह उपकुर्वाण है। जो मृत्युपर्यन्त गुरुकुलमें निवास करते हुए वेदाध्ययन करते रहते हैं—ब्रह्मतत्पर होते हैं, उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारिके नामसे जानना चाहिये।

हे द्विजश्रेष्ठ! अग्निकार्य, अतिथिसेवा, यज्ञ-दान और देवाचन—ये सभी गृहस्थोंके संक्षिप्त धर्म हैं। गृहस्थके साधक और उदासीन दो प्रकार हैं। जो गृहस्थ परिवारके

भरण-पोषणमें लगा रहता है, वह साधक है। जो गृहस्थ पितृश्रण, देवश्रण और ऋषिश्रण—इन तीनोंसे मुक्त होकर पत्नी-धनादिका भी त्याग करके एकाकी धर्माचरण करता हुआ विचरण करता रहता है, वह उदासीन गृहस्थ है। उसीको मौक्षिक भी कहते हैं।

भूमिशयन, फल-मूलका आहार, वेदाध्ययन, तप और अपनी सम्पत्तिका यथाधिकार यथोचित विभाग—ये सभी वानप्रस्थके धर्म हैं। जो वानप्रस्थ अपत्यमें तपश्चरण करता है, देवार्चन और उन्हें आहुति प्रदान करता है तथा स्वाध्यायमें सदैव अनुरक्त रहता है, वह वानप्रस्थ तपसोत्तम कहा जाता है। ऐसे ही जो वानप्रस्थ तपके द्वारा सतीरको अत्यन्त क्षीण करके ईश्वरके ध्यानमें सदा निमग्न रहता है, वह वानप्रस्थाश्रममें रहता हुआ भी संन्यासोके रूपमें जाना जाता है।

जो भिक्षु (संन्यासाश्रमी) नित्य योगाभ्यासमें अनुरक्त होकर ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये प्रयासरत एवं चित्तेन्द्रिय बना रहता है, उसको पारमेश्विक संन्यासी कहते हैं। जो सदैव आत्मतत्त्वानुसंधानमें प्रेम रखनेवाले हैं, नित्य तृप्त हैं, जो संयम-नियमसे रहते हैं, ऐसे महामुनि योगी भिक्षु कहे जाते हैं। भिक्षाचरण, वेदाध्ययन, मौनान्वलम्बन, तप, ध्यान, सम्यक् ज्ञान और वैराग्य—ये भिक्षुक (संन्यासाश्रमी)—के सामान्य धर्म माने गये हैं।

पारमेश्विक संन्यासी तीन प्रकारके हैं—ज्ञानसंन्यासी, वेदसंन्यासी एवं कर्मसंन्यासी। योगीके भी तीन प्रकार हैं—जिन्हें भौतिक, (क्षत्र) एवं अन्त्याश्रमी योगी कहते हैं। ये तीनों योगमूर्तिस्वरूप परमात्माका आश्रयकर स्थित रहते हैं। इन योगियोंकी पृथक्-पृथक् ब्रह्मभावनाएँ होती हैं। प्रथम प्रकारकी ब्रह्मभावना भौतिक योगीमें रहती है। दूसरी (मोक्ष) भावना क्षत्र योगीमें रहती है, इसीको अक्षर भावना कहते हैं। तीसरी भावनाको अन्तिम भावना कहते हैं, जो पारमेश्वरी भावनाके नामसे भी जानी जाती है<sup>१</sup>।

मनुष्यको धर्मसे हो मोक्षकी प्राप्ति होती है, अर्थसे काम-पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है। वेदमें प्रवृत्ति और निवृत्तिके भेदसे दो प्रकारके कर्म कहे गये हैं। वेदशास्त्रानुसार अग्नि आदि देव एवं गुरु-विप्रादिको प्रसन्न करनेके लिये जो कर्म विहित हैं, वे प्रवृत्तिकर्म हैं तथा सविधि कर्मानुष्ठानसे चित्तशुद्धिके अनन्तर आत्मज्ञानमात्रमें सदा रत रहना निवृत्तिकर्म है।

क्षमा, दम, दया, दान, निर्लोभता, स्वाध्याय, सरलता, अनसूया, तीर्थंका<sup>२</sup> अनुसरण, सत्य, संतोष, आस्तिक्य, इन्द्रियनिग्रह, देवार्चन—विशेषकर ब्राह्मणोंका पूजन, अहिंसा, त्रिपत्वादित, अरुक्षता और अपैशुन्य (चुगली न करना)—इन सभीको चारों आश्रमोंका सामान्य धर्म स्वीकार किया गया है<sup>३</sup>।

इसके बाद अब मैं चारों वर्णोंको प्राप्त होनेवाले स्थानके विषयमें कह रहा हूँ।

उपर्युक्त वेद-विहित कर्मोंकी करनेवाले ब्राह्मणोंके निमित्त ब्राह्मण्य नामका स्थान है (अर्थात् ब्राह्मण ऐसे धर्मोंका पालन करता हुआ अन्त समयमें ब्राह्मण्य लोक प्राप्त करता है)। युद्धमें न भागनेवाले धर्मरत क्षत्रियोंकी स्वर्गमें इन्द्रका स्थान प्राप्त होता है। सदैव अपने धर्ममें अनुरक्त रहनेवाले वैश्य अन्तमें मरुद् देवके स्थानको प्राप्त करते हैं। ब्राह्मणादि द्विजोंकी सेवामें तत्पर रहनेसे शूद्रोंकी गन्धर्वलोक प्राप्त होता है।

ऊर्ध्वरेतस् ब्रह्मनिष्ठ अद्वासी सहस्र ऋषियोंने तपस्याके द्वारा जिस स्थानको प्राप्त किया था, वही स्थान गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारीको प्राप्त होता है। जो स्थान मरीचि, अत्रि आदि सप्तर्षियोंको प्राप्त है, वह स्थान वानप्रस्थाश्रमी प्राप्त करते हैं। संयमित चित्तवाले, ऊर्ध्वरेतस् संन्यासियोंको वह आनन्दरूप परब्रह्मपद प्राप्त होता है। जहाँसे पुनः आगमनकी सम्भावना नहीं होती। यह परब्रह्मपद ज्योम नामके अक्षरतत्त्वके रूपमें, योगियोंके अमृतस्थानके

१-ब्रह्मभावनाके ये तीन भेद ब्रह्मानुसंधानकी प्रथमिक, माध्यमिक और अन्तिम स्थितिको दृष्टिमें रखकर किये गये हैं।

२-'तीर्थ' शब्द वेदशास्त्रका वाचक है।

३-क्षमा दमो दया दानमलोभा (भो) भ्रमस एव च ॥

आर्जवं अनसूया च तीर्थानुसरणं तथा । सत्यं संतोष आस्तिक्यं तथा चेन्द्रियनिग्रहः ॥

देवताध्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः । अहिंसा त्रिपत्वादित्वमपैशुन्यमरुक्षता ॥

एते आचमिका धर्मशास्त्रान्तर्गते ज्योमन्तः । (४९ । २२-२४)

रूपमें एवं ईश्वरसम्बन्धी परम आनन्दके रूपमें प्रसिद्ध है। इस स्थानको प्राप्त करनेवाला मुक्त आत्मा पुनः संसारमें नहीं आता है। अभी जिस मुक्तात्माको चर्चा की गयी है, उसको प्राप्त होनेवाली मुक्ति अष्टाङ्ग-मार्गाका सम्यक्-ज्ञान रखनेसे प्राप्त होती है। अतः मैं संक्षेपमें उसे भी कह रहा हूँ। आप सुनें।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। प्राणीकी हिंसा न करना अहिंसा है। प्राणियोंके हितमें बोलना सत्य है। दूसरेकी वस्तु अपहरण न करना अस्तेय है। अमैथुनका पालन करना ब्रह्मचर्य है और सब कुछ त्याग देना अपरिग्रह है।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा प्रणिधान—ये पाँच नियम हैं। बाह्य और आन्तरिक रूपसे शौचके दो भेद हैं। इसी प्रकार संतोषको तुष्टि, इन्द्रिय-निग्रहको तप, मन-जपको स्वाध्याय और भगवत्पूजादिको प्रणिधान कहते हैं।

साधकके द्वारा पद्यादि प्रकारसे स्थित होना आसन कहा जाता है। वायुका निरोध करना प्राणायाम है। यह दो प्रकारका होता है। मन्त्रोच्चार करते हुए देवका ध्यान करना सगर्भ-प्राणायाम है। उसके विपरीत (अमन्त्रक, प्राणायाम) अगर्भ-प्राणायाम है। यह दो प्रकारका प्राणायाम प्रकारान्तरसे तीन प्रकारका कहा गया है। यथा—वायु अंदर खींचकर अवस्थित होना पूरक नामक प्राणायाम है। वायुको

रोककर देहेंद्रियोंको स्थिर करना कुम्भक और उस वायुको धीरे-धीरे बाहर निकालना रेचक नामक प्राणायाम है।

बारह मात्रावाला प्राणायाम 'लघु' है। चौबीस मात्राका प्राणायाम 'मध्यम' तथा छत्तीस मात्रावाला प्राणायाम 'उत्तम' है।

अपने-अपने विषयोंसे असम्बद्ध इन्द्रियोंके द्वारा चित्तके स्वरूपमात्रका अनुकरण करना एक विशेष प्रकारका निरोध है और इसी निरोधको प्रत्याहार कहते हैं। ब्रह्मके साथ आत्माका अभेद चिन्तन करना (ब्रह्मकारवृत्तिका अखण्ड प्रवाह) ध्यान है। उस कालमें मनके द्वार धैर्यका अवलम्बन करना (ध्येयमें चित्तकी निश्चलरूपमें स्थिति) धारणा है।

'अहं ब्रह्म' इस प्रकार अभेद ज्ञानके साथ ब्रह्मरूपमें अवस्थित हो समाधि है। मैं आत्मा ही परमात्मा—परब्रह्म हूँ। वह परब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानरूप और अनन्त है। वही ब्रह्म है। उसीको विज्ञान कहते हैं। वही आनन्दस्वरूप है, उसीका 'तत्त्वमसि' इस वृत्तिसे बोध कराया गया है। 'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं अशरीरी, इन्द्रियातीत हूँ, मन, बुद्धि, महत्तत्त्व, अहङ्कारदिसे रहित, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओंसे मुक्त जो ब्रह्मका तेजःस्वरूप है, मैं वही हूँ। नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्दस्वरूप, अद्वय कहा जानेवाला जो वह आदित्य पुरुष है, वही मैं पूर्ण पुरुष हूँ।' इस प्रकार ब्रह्मका ध्यान करता हुआ ब्राह्मण भगवन्मनसे मुक्त हो जाता है। (अध्याय ४९)

## संध्योपासन, तर्पण, देवाराधन आदि नित्य कर्मों तथा आशौचका निरूपण

ब्राह्मजीने कहा—जो मनुष्य प्रतिदिन शास्त्रविहित क्रियाओंको करता है, उसको दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अतः ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर मनुष्यकी धर्म और अर्थका चिन्तन करना चाहिये।

उषःकाल होनेपर विद्वान् व्यक्ति सर्वप्रथम अपने हृदयकमलमें विराजमान आनन्दधन, अजर, अमर, सनातन

पुरुष भगवान् हरिको ध्यान करे। तदनन्तर यथाविधि शौचादि आवश्यक क्रियाओंसे निवृत्त होकर पवित्र नदियोंमें स्नान करे। प्रातःकाल स्नान करनेसे पापकर्म करनेवाले मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये यज्ञपूर्वक प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। प्रातःकालके स्नानकी लौगोंने प्रशंसा की है, क्योंकि यह स्नान लौकिक और पारलौकिक

१-यमाः पञ्च त्वहिंसाश्च अहिंसं प्राण्यहिंसन् ॥

सत्यं भूतहितं वाक्यमस्तेयं स्वाग्रहं वरम्। अमैथुनं ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरीग्रहः ॥

नियमाः पञ्च सत्याग्रहः बाह्याभ्यान्तरं द्विधा। शौचं तुष्टिश्च संतोषस्तपश्चेन्द्रियनिग्रहः ॥

स्वाध्यायः स्वात्मनःक्षणः प्रणिधानं हरेर्बोधिः। (४९। ३०-३३)

२-प्राणवके जपकी प्रक्रियामें 'मात्रा' का विशेष महत्त्व है। उस मात्राके अनुसार बारह बार प्राणव-जपके साथ सम्मेल प्राणायामको 'हृदयगतप्रिक', चौबीस बार प्राणव-जपके साथ सम्मेल प्राणायामको 'कतुर्विहतिगम्यप्रिक' और छत्तीस बार प्राणव-जपके साथ सम्मेल प्राणायामको 'पट्टत्रिंशन्मप्रिक' कहा जाता है। यहाँ प्राणवके स्थानपर बीजमन्त्र भी दिया जा सकता है।



फलोंको प्रदान करनेमें समर्थ होता है।

रात्रिमें सुखपूर्वक सोये हुए व्यक्तिके मुखसे निरन्तर लार आदि अपवित्र मल गिरते रहते हैं। (अतः सम्पूर्ण शरीर अपवित्र हो जाता है।) इसलिये प्रथमतः स्नान करके ही संध्या-वन्दनादिके धार्मिक कृत्य करने चाहिये (बिना प्रातःकाल स्नान-कृत्य किये संध्या-वन्दनादि करना उचित नहीं है)।

प्रातःस्नान करनेसे अलक्ष्मी, कालकर्त्री अर्थात् विघ्न डालनेवाली अनिष्टकारी शक्तियाँ, दुःस्वप्न एवं दुर्विचारसे होनेवाले चिन्तनके पाप भुल जाते हैं, इसमें संशय नहीं। यह स्मरणीय है कि बिना स्नानके किये गये कार्य प्रशस्त नहीं होते। अतएव होम और जपादिके कार्योंमें विशेषरूपसे सबसे पहले विधिवत् स्नान करना चाहिये।

अशुद्ध होनेपर बिना सिरपर जल डाले ही स्नान करनेका विधान है। आई वस्त्रसे भी शरीरको पोंछा जा सकता है। इसको कायिक स्नान कहते हैं।

ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और यौगिक—ये छः प्रकारके स्नान हैं, यथाधिकार मनुष्यको स्नान करना चाहिये। मन्त्रोंसहित कुशके द्वारा जल-विन्दुओंसे मार्जन करना ब्राह्म-स्नान है। सिरसे लेकर पैरतक यथाविधान भस्मके द्वारा अङ्गोंका लेपन आग्नेय-स्नान है। गोधूतिले शरीरको पवित्र करना वायव्य-स्नान कहा गया है। यह उत्तम स्नान माना जाता है। धूपके साथ होनेवाली वृष्टिमें किये गये स्नानको दिव्य-स्नान कहते हैं। जलमें अयग्राहन करना वारुण-स्नान है। योगद्वारा हरिका चिन्तन यौगिक स्नान है। इसीको मानस-आत्मवेदन (ब्रह्माकार अखण्ड चित्सृष्टि) कहते हैं। यह यौगिक स्नान ब्रह्मादियोंके द्वारा सेवित है, इसे ही आत्मतौर्य भी कहते हैं।

(स्नानके पूर्व) दुग्धधारी वृक्षोंसे उत्पन्न काष्ठ, मातली, अपामार्ग, बिल्व अथवा करवीर अर्थात् कनेरकी दातीन लेकर उत्तर या पूर्व दिशाकी ओर पवित्र स्थानमें बैठकर दाँतोंको स्वच्छ करना चाहिये और उसे धोकर उसका

पवित्र स्थानमें त्याग करना चाहिये।

तदनन्तर स्नान करके देवताओं, ऋषियों और पितृगणोंका विधिवत् तर्पण करना चाहिये। यहाँ यथाशास्त्र स्नानका अङ्गभूत आचमन एवं संध्योपासनके अङ्गभूत आचमनक विधान है। संध्योपासनके अङ्गरूपमें ही कुशोदक विन्दुओंसे 'अधो हि ह्र०' आदि वारुणमन्त्र एवं यथाविधान सावित्रीमन्त्रके द्वारा मार्जन करना विहित है। इसी क्रममें अङ्कार और 'भूः भुवः स्वः' इन व्याहृतियोंसे युक्त वेदमाता गायत्रीका जप करके अनन्यभावसे भगवान् सूर्यके प्रति जलाजलि समर्पित करे (सूर्यार्घ्य प्रदान करे)।

इसी क्रममें पूर्वकी ओर अग्रभागवाले कुशोंके आसनपर समाहितचित्तसे बैठकर प्राणायाम करके संध्या-ध्यान करनेका दुर्लभ विधान है। यह जो संध्या है, यही जगत्की सृष्टि करनेवाली है, मायासे भरे है, निष्कला, ऐश्वरी, केवला शक्ति तथा तीन तत्त्वोंसे समुद्भूत है। अतः अधिकारी व्यक्ति (प्रातःकाल) रक्तवर्ण, (मध्याह्नकाल) शुक्लवर्ण एवं (सायंकाल) कृष्णवर्ण गायत्रीका ध्यान करके गायत्रीमन्त्रका जप करे।

द्विजको सदैव पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासन करना चाहिये। संध्या-कृत्यसे रहित ब्राह्मण सदा अपवित्र रहता है, वह सभी कार्योंके लिये अयोग्य होता है। वह जो भी अन्य कोई कार्य करता है, उसका कुछ भी फल उसे प्राप्त नहीं होता। अनन्यचित्त होकर वेदपारङ्गत ब्राह्मणोंने विधिवत् संध्योपासन करके अपने पूर्वजोंके द्वारा प्राप्त उत्तम गतिको प्राप्त किया है। संध्योपासनका त्यागकर जो द्विजोत्तम अन्य किसी धर्म-कार्यके लिये प्रयत्न करता है, उसे दस हजार वर्षोंतक नरक भोग करना पड़ता है। अतः सभी प्रकारका प्रयत्न करके संध्योपासन अवश्य करना चाहिये<sup>१</sup>।

उस संध्योपासनकर्मसे योगमूर्ति परमात्मा भगवान् नारायण पूजित हो जाते हैं। अतः अधिकारीको चाहिये कि वह पवित्र होकर पूर्वाभिमुख बैठ करके नित्य संयत-भावसे एक सहस्र या एक सौ अथवा दस बार गायत्रीका

१-ब्रह्मसूत्रः सक्तं विप्रः संध्योपासनाचरोत्। संध्योहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्थः सर्वकर्मसु॥

यदन्तर्कुरते किञ्चित् तस्य फलभूतमर्थेत्। अनन्यचित्तः सते ब्राह्मण वेदपारताः॥

उपास्य विधिवत्संध्यां प्रातः पूर्वपरां गतिम्। योऽन्यत्र कुरते यत् धर्मकार्यं द्विजोत्तमः॥

विहाय संध्याप्रवर्तिं स याति नरकायुतम्। तस्मात् सर्वप्रवर्तेन संध्योपासनमाचरोत्॥

उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः प्रः। (५०। २१-२५)

सर्वप्रथमं शान्तस्वरूपं भगवान् भास्करं आशु मृष्टिं, स्थितिं और संहार—इन तीनों कारणोंके कारण हैं, आप ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको आत्मनिवेदन करता हूँ, आप ही परब्रह्म हैं, आप ही ज्योतिःस्वरूप, अमृत-स्वरूप, रसरूप तथा अमृतस्वरूप हैं। भूः, भुवः, स्वः—ये तीनों आप ही हैं और आप ही अकाररूप, सर्वस्वरूप रुद्र तथा अविनाशी हैं, आपको नमस्कार है।

जप (अवश्य) करे। गायत्रीका एक सहस्र जप उत्तम, एक सौ जप मध्यम तथा दस बार किया गया जप कनिष्ठ जप कहलाता है।

एकाग्रचित्त होकर उदय होते हुए भगवान् भास्करका उपस्थान करे। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदमें आये हुए विविध सौर मन्त्रोंसे देवाधिदेव महायोगेश्वर भगवान् दिवाकरका उपस्थान करके पृथिवीपर मस्तक टेककर इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

ॐ छात्रोत्काय शान्ताय कारणब्रह्मतये ॥

निवेदयाधि चात्मानं नमस्ते ज्ञानरूपिणे।

त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योती रसोऽमृतम् ॥

भूर्भुवः स्वस्वभ्योद्धारः सर्वो ह्यः सनातनः।

(५०।२८—३०)

शान्तस्वरूप भगवान् भास्कर आशु मृष्टि, स्थिति और संहार—इन तीनों कारणोंके कारण हैं, आप ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको आत्मनिवेदन करता हूँ, आप ही परब्रह्म हैं, आप ही ज्योतिःस्वरूप, अमृत-स्वरूप, रसरूप तथा अमृतस्वरूप हैं। भूः, भुवः, स्वः—ये तीनों आप ही हैं और आप ही अकाररूप, सर्वस्वरूप रुद्र तथा अविनाशी हैं, आपको नमस्कार है।

इस उत्तम आदित्यहृदय-स्तोत्रका जप करके भगवान् दिवाकरकी प्रार्थना और मध्याह्न (तथा सायंकाल)—में नमस्कार करना चाहिये।

इसके पश्चात् घर आ करके ब्राह्मण पुनः विधिवत् आचमन करे।

तदनन्तर उसे अग्निको प्रणवलिप्त करके विधिवत् भगवान् अग्निदेवको आहुति प्रदान करनी चाहिये। मुख्य अधिकारीको अशक्तवस्थामें उसकी आज्ञा प्राप्त करके अस्त्रिक् पुत्र अथवा पत्नी, शिष्य या सहोदर भ्राता भी हवन करे। मन्त्रविहीन एवं विधिकी उपेक्षा करके किया गया कोई भी कर्म इस लोक या परलोकमें फल देनेवाला नहीं होता।

तदनन्तर देवताओंकी नमस्कार करके (अर्घ्य, पाद, चन्दन, सुगन्धित पदार्थका अनुलेपन, वस्त्र तथा नैवेद्यादि) पूजाके उपचारोंकी निवेदनकर गुरुका पूजन करे और उनके हित-साधनमें लग जाय। तत्पश्चात् प्रयत्नपूर्वक यथाशक्ति द्विजको वेदाभ्यास करना चाहिये और उसके बाद इष्ट मन्त्रोंका जप (वेदपारायण) करके शिष्योंके अध्यापन-

कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। वह शिष्योंको वेदार्थ धारण कराये और दत्तचित्त होकर वेदार्थका विचार करे। द्विजोत्तम धर्मशास्त्र आदि विविध शास्त्रोंका अवलोकन करे और वेदादि निगमशास्त्रों (उपनिषदों) तथा व्याकरणदि वेदाङ्गोंका अच्छी प्रकार अवलोकन करे। इसके बाद वह पुनः योग-क्षेमके लिये राजा या श्रीमान्के पास जाय और अपने परिवारके लिये विविध प्रकारके अर्थोंका उपार्जन करे।

इसके पश्चात् मध्याह्न कालके आनेपर स्नान करनेके लिये शुद्ध मिट्टी, पुष्प, अक्षत, तिल, कुश और गोमय (गायके गोबर) आदि पदार्थोंको एकत्र करना चाहिये। उसके बाद नदी, देव, पोखर, तड़ाग या सरोवरमें जाकर स्नान करे। प्रत्येक दिन तड़ाग, सरोवर या नदी आदिसे पाँच मृत्तिकापिण्ड बिना निकाले स्नान करना दोषयुक्त होता है। (अतः पाँच पिण्ड मिट्टी निकाल करके ही स्नान करना चाहिये।) स्नानके समय (स्नानके लिये लायी गयी) मिट्टीके एक भागसे सिर धोना चाहिये, दूसरे भागसे नाभिके ऊपरी भागको और तीसरे भागसे नाभिसे नीचेके भागका तथा मृत्तिकाके छठे भागसे पैरोंका प्रक्षालन करना चाहिये। इन मृत्तिकापिण्डोंको परिमाणमें पके हुए आँवलेके फलके समान होना चाहिये। मृत्तिकाके समान ही गोमय स्नान भी होना चाहिये। तदनन्तर शरीरके अङ्गोंकी विधिवत् धोकर आचमन करके स्नान करना चाहिये।

जलहृदयके तीरपर स्थित होकर ही मृत्तिका, गोमय आदिका अपने अङ्गोंमें लेपन करना चाहिये और इस लेपनके अङ्गभूत स्नानके अनन्तर पुनः वारुण (वरुणदेवताके)—मन्त्रोंसे जलाशयके जलका अभिमन्त्रण करके पुनः जल-स्नान करना चाहिये; क्योंकि जल भगवान् विष्णुका ही रूप है। यह स्नानकी प्रक्रिया प्रणवस्वरूप भगवान् सूर्यका दर्शनकर जलाशयमें तीन बार निमज्जन (डुबकी लगाना)—से पूरी होती है। तदनन्तर स्नानाङ्ग आचमन करके नीचे लिखे मन्त्रसे आचमन करे—

अन्तर्हसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ॥

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आयो ज्योती रसोऽमृतम्।

(५०।४५—४६)

हे जलदेव! आप समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणरूपी गुहामें विश्वरूप करते हैं। आप सर्वत्र मुखवाले हैं। आप ही यज्ञ हैं। आप ही वषट्कार हैं। आप ही ज्योतिःस्वरूप तेज और आप ही अमृतमय रसस्वरूप हैं।

'द्वुपदादिव०' इस मन्त्रका तीन बार उच्चारण अथवा प्रणव एवं व्याहृतिपूर्वसहित सावित्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। विद्वान् अथमर्षण-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर 'ॐ आपो हि ह्य मयोधुवः', 'इदमापः प्रवहति' तथा व्याहृतियोंसे मार्जन करना चाहिये। अनन्तर 'आपो हि ह्य०' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा अभिमन्त्रित जलसे अथमर्षण-मन्त्रका तीन बार जप करते हुए अथमर्षण सम्पन्न करना चाहिये। अथमर्षणके अनन्तर 'द्वुपदादिव०' आदि मन्त्र अथवा गायत्री-मन्त्र या 'तद्विष्णोः परमं पदम्' आदि मन्त्र अथवा प्रणवकी आवृत्ति करनी चाहिये और देवाधिदेव श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये। जिस जलको हाथमें लेकर अथमर्षण-क्रिया एवं मार्जन-क्रिया सम्पन्न की जाती है, उस जलको अपने सिरपर धारण करनेसे सभी प्रकारके पातकोंसे मुक्ति मिलती है। संध्योपासनके अनन्तर आचमन करके सदा परमेश्वरका स्मरण करना चाहिये। पुष्पसे युक्त अञ्जलिकी शिरोभागसे लगाकर सूर्यका उपस्थान करना चाहिये और उपस्थानके बाद अपनी अञ्जलिके पुष्पोंको भगवान् सूर्यके चरणोंमें अर्पित करना चाहिये। उदित होते हुए सूर्यको नहीं देखना चाहिये, अतः विशेष मुद्राद्वारा ही उनका दर्शन करना चाहिये। 'ॐ उदुत्यं०', 'विष्०', 'तच्चक्षु०'—इन मन्त्रोंसे तथा 'ॐ हरसः शुचिषह०' इस मन्त्रसे और सावित्रीके विशेष मन्त्रसे एवं अन्य सूर्यसे सम्बन्धित वैदिक मन्त्रोंसे सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वाग्र कुशाओंके आसनपर बैठकर सूर्यका दर्शन करते हुए समाहितचित्तसे गायत्री-मन्त्र एवं अन्य विहित मन्त्रोंका जप करना चाहिये। मन्त्र-जपके लिये स्मृति, स्नाय अथवा पुत्रजीव (जीवन्तिका) या अब्जाक्षसे निर्मित मालाका प्रयोग करना चाहिये।

यदि आर्द्र वस्त्रोंवाला हो तो जलके मध्य छड़े होकर जप करना चाहिये। अन्यथा (सूखे वस्त्रोंकी स्थितिमें) पवित्र भूमिमें कुशासनपर बैठकर एकाग्रचित्त होकर जप करना चाहिये। जपके पश्चात् प्रदक्षिणाकर भूमिपर दण्डवत् नमस्कार करना चाहिये। तदनन्तर आचमन करके यथाशक्ति अपनी शाखाके अनुसार स्वाध्याय करे। उसके बाद देवों, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। मन्त्रोंके प्रारम्भमें ॐकारका और अन्तमें 'नमः' का प्रयोगकर प्रत्येक देव, ऋषि और पितृका तर्पण कर रहा हूँ—ऐसा कहकर तर्पण करे। देवताओं और मरीच्यादि ब्रह्मणियोंका

तर्पण अक्षत और जलके साथ करना चाहिये। पितृगणों, देवों और मुनियोंके लिये अपने शास्त्रासूत्रके विधानसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। तर्पण जलाञ्जलियोंके द्वारा करे। देवताओंका तर्पण यज्ञोपवीती अर्थात् सव्य होकर देवतीर्थमें करे और निवीती होकर (कण्ठमें यज्ञोपवीत कर) ऋषियोंका ऋषितीर्थसे तथा प्राचीनावीती अर्थात् अपसव्य होकर पितृतीर्थसे पितरोंका तर्पण करे।

तदनन्तर हे हर! स्नानमें प्रयुक्त वस्त्रको निचोड़कर मौन होकर आचमन करके मन्त्रोंसे पुष्प, पत्र तथा जलसे ब्रह्म, शिव, सूर्य एवं मधुसूदन विष्णुदेवका पूजन करे। क्रोधरहित होकर भक्तिपूर्वक अन्य अभीष्ट देवोंकी भी पूजा करनी चाहिये। 'पुरुषसूक्त'के द्वारा पुष्पादि समर्पित करे। जल सर्वमय देव है अर्थात् समस्त देवता जलमें व्याप्त रहते हैं। अतः उस जलमात्रसे भी ये सभी देवता पूजित होते हैं। इस पूजामें पूजकको समाहितचित्त होना चाहिये तथा प्रणवके साथ देवताका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद प्रणाम करते हुए समस्त देवोंको पृथक्-पृथक् पुष्पाञ्जलि समर्पित करे।

देवताओंकी आराधनाके बिना कोई भी वैदिक कर्म पुण्यप्रद नहीं होता है। अतएव समस्त कार्योंके आदि, मध्य और अन्तमें इदमसे भगवान् हरिका ध्यान करना चाहिये। 'ॐ तद्विष्णोः रिति०' मन्त्र तथा पुरुषसूक्तके मन्त्रोंका जप करते हुए उस निर्मल विष्णुके परमतेजके सामने आत्मनिवेदन करे अर्थात् शरणागत हो जाय।

उसके बाद विष्णुमें अनुरक्तचित्त, शान्तस्वभाव वह भक्त 'तद्विष्णोः०' इस मन्त्रसे और 'अप्रेतेसशिराः०' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित पुष्पासनपर विराजमान हरिकी पुनः पूजा करके देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मानुषयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ नामक पञ्चयज्ञोंको करे। तर्पणसे पूर्व ब्रह्मयज्ञ कैसे हो सकता है? अतः मानुषयज्ञ करके स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करना चाहिये।

वैश्वदेव ही देवयज्ञ है। काक आदि प्राणियोंके लिये जो वलि प्रदान की जाती है, वह भूतयज्ञ है। हे द्विजोत्तम! चाण्डाल एवं पतित आदिको घरके बाहर अन्न देना चाहिये और कुत्ता आदि पशुओं तथा पक्षियोंको घरके बाहर भूमिपर अन्न देना चाहिये। पितरोंके उद्देश्यसे प्रतिदिन एक ब्राह्मणको भोजन कराये। पितरोंके निमित्त जो नित्य ब्राह्म

किया जाता है, उसीको पितृयज्ञ कहते हैं। यह उत्तम गति प्रदान करनेवाला है।

अथवा समाहितचित्त होकर यथाशक्ति कुछ कच्चा अन्न निकालकर वैदिक तत्त्ववेत्ता विद्वान् ब्राह्मणको प्रदान करें। प्रतिदिन अतिथि-सत्कार करना चाहिये। घरपर आये हुए शान्तस्वभाव द्विज (ब्राह्मण)-को मन् और वचनसे स्वागतपूर्वक नमस्कार करें तथा उनका अर्चन करें।

एक प्रास परिमाणमात्र अन्नको 'भिक्षा' कहा गया है। उसका जो चार गुना अन्न है उसको 'पुष्कल' तथा उस पुष्कलके चार गुना अन्नको 'हन्तकार भिक्षा' कहते हैं।

गोदोहनमात्र कालतक अतिथिके आगमनको प्रतीक्षा स्वयं करनी चाहिये। आये हुए अभ्यागत (अतिथि)-का सत्कार यथाशक्ति करना चाहिये।

ब्राह्मणों भिक्षुकको विधिवत् भिक्षा देनी चाहिये। लोभसे रहित होकर याचकोंको अन्न प्रदान करें। तत्पश्चात् अपने वस्तुजनोंके साथ पीन होकर अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करें।

हे द्विजश्रेष्ठ! जो देवयज्ञादि पञ्चमयोंको बिना किये भोजन करते हैं, वे मूढात्मा विषह-योनि (चक्षियोंकी योनि)-में जाते हैं। यथाशक्ति प्रतिदिन किये जानेवाले वेदाभ्यासके साथ पञ्चमहायज्ञ एवं देवतार्चन शीघ्र ही सभी पापोंको नाश कर देते हैं। जो मोहवश अथवा आलस्यके कारण बिना देवार्चन किये ही भोजन करता है, उसे नाना प्रकारके कष्टदायक नरकोंमें जाकर सुकरकी योनिमें जन्म

ग्रहण करना पड़ता है।

अब मैं अशीचका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करता हूँ। जो अपवित्र है, वह सदा पातकी है। अपवित्र व्यक्तियोंके संसर्गसे अशीच होता है और उनके संसर्गका परित्याग कर देनेसे शरीर पवित्र हो जाता है। हे द्विजोत्तम! सभी विद्वान् ब्राह्मण दस दिनोंका अशीच मानते हैं। यह अशीच मृत्यु अथवा जन्म दोनोंमें होता है। दाँत निकलनेके पूर्वतक बालकको मृत्यु होनेपर सद्यः स्नान करनेसे अशीचकी निवृत्ति हो जाती है। उसके बाद चूड़ा (मुण्डन)-संस्कारपर्यन्त बालकको मृत्यु होनेपर एक रात्रिका अशीच होता है।

उपनयन-संस्कारके पूर्वतक बालककी मृत्यु होनेपर तीन रात्रियोंका अशीच होता है। उपनयन-संस्कारके बाद किसीका मरण होनेपर यथाविधान दस रात्रिका अशीच ब्राह्मणोंको होता है।

क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें तथा शूद्र एक मासमें शूद्र होता है। क्योंकि इनको यथाक्रम बारह दिनका, पंद्रह दिनका एवं एक मासका अशीच होता है। संन्यासियोंको अशीच नहीं लगता है। गर्भस्त्राव होनेपर गर्भम्रसके अनुसार जितने मासका गर्भ हो, उतनी रात्रिका अशीच होता है। (अर्थात् एक मासका गर्भस्त्राव होनेपर एक रात्रि, दो मासका गर्भस्त्राव होनेपर दो रात्रिका अशीच होता है। इसी क्रममें अन्य मासोंकी गणना करके अशीचकी रात्रियोंका निश्चय करना चाहिये।) (अध्याय ५०)

## दानधर्मका निरूपण एवं विभिन्न देवताओंकी उपासना

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं सर्वोत्तम दानधर्मके विवरणमें कह रहा हूँ—

सत्पात्रमें ऋद्धापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्यवस्तु)-का प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है—ऐसा दानधर्मविद्वजनोंका कहना है। यह दान इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे, क्योंकि न्यायसे उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है।

अध्यापन, याजन तथा प्रतिग्रह—ये तीनों ब्राह्मणोंकी वृत्ति (आजीविका) हैं। उनके लिये कुसीद अर्थात् सूदखोरी,

कृषिकर्म तथा वाणिज्य अथवा क्षत्रियवृत्ति (युद्धादि कृत्य) त्याग्य है। उक्त सद्वृत्तिसे प्राप्त हुआ धन यदि सुयोग्य पात्रोंको दिया जाता है तो उसीको दान कहा जाता है। यह नित्य, नैमित्तिक, काम्य और विमल—चार प्रकारका कहा गया है।

फलकी अभिलाषा न रखकर प्रत्युपकारकी भावनासे रहित होकर ब्राह्मणको प्रतिदिन जो दान दिया जाता है, वह नित्यदान है। अपने पापोंकी शान्तिके लिये विद्वान् ब्राह्मणोंके हाथोंपर जो धन दिया जाता है, सत्पुरुषोंके द्वारा अनुष्ठित ऐसा दान नैमित्तिक दान है। संतान, विजय, ऐश्वर्य और



स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छासे जो दान किया जाता है, उसको धर्मवेत्ता ऋषिगण काम्य दान कहते हैं। ईश्वरकी प्रसन्नताकी प्राप्ति करनेके लिये ब्रह्मवित्-जनोंको सत्ववृत्तिसे युक्त चित्तवाले मनुष्यके द्वारा जो दान दिया जाता है, वह विमल दान है। यह दान कल्याणकारी है।

ईश्वरकी हरी-भरी फसलसे युक्त या यव-गेहूँकी फसलसे सम्पन्न (शस्य-श्यामल) भूमिका दान वेदविद् ब्राह्मणोंको जो देता है, उसका पुनर्वन्म नहीं होता। भूमिदानसे श्रेष्ठ दान न हुआ है और न होगा।

ब्राह्मणको विद्या प्रदान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति प्रतिदिन ब्रह्मचारीको ब्रह्मपूर्वक विद्या प्रदान करता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त होकर ब्रह्मलोकके परमपदको प्राप्त करता है।

वैशाखमासकी पूर्णिमा तिथिको उपवास रखकर जो व्यक्ति धौव या सात ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा करके उन्हें मधु, तिल और घृतसे संतुष्ट करता है तथा उनकी गन्धादिसे भली प्रकार पूजा करके उनसे यह कहलवाता है या स्वयं कहता है—

प्रीयतां धर्मराजेति यथा भवति वर्तते॥

(५१।१३)

(हे धर्मराज! मेरे मनमें जैसा भाव है, उसीके अनुकूल आप प्रसन्न हों।)

—ऐसा कहनेपर उसके जन्मभर किये गये समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं।

जो व्यक्ति स्वर्ण, मधु एवं घीके साथ तिलोंको कृष्ण-मृगचर्ममें रखकर ब्राह्मणको देता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है।

वैशाखमासमें घृत, अन्न और जलका दान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है। अतः उस मासमें धर्मराजको उद्देश्य करके घृत, अन्न और जलका दान ब्राह्मणोंके लिये अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके भयसे मुक्ति हो जाती है। द्वादशी तिथिमें स्वयं उपवास रखकर पापोंका विनाश करनेवाले भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे निश्चित ही मनुष्यके सभी पाप

नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य जिस देवताकी पूजा करनेके लिये इच्छा करता है, उसकी पूजा वह अपने इष्टको प्राप्त करनेके लिये करे और उसको उस देवकी प्रतिमूर्ति मानकर प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें भोजन भी कराये। साथ ही सौभाग्यवती स्त्रियों तथा अन्य देवोंको भी पूजन-भोजनारिके द्वारा संतुष्ट करे।

संतान-प्राप्तिके इच्छुक व्यक्तिको इन्द्रदेवका पूजन करना चाहिये। ब्रह्मवर्चसुकी कामना करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मरूपमें ब्राह्मणोंको स्वीकार करके उनको पूजा करे। आरोग्यकी इच्छावाला मनुष्य सूर्यकी तथा धन चाहनेवाला मनुष्य अग्निको पूजा करे। कार्योंमें सिद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाषा करनेवाला व्यक्ति विनायक (गणेश)-का पूजन करे। भोगकी कामना होनेपर चन्द्रमाकी तथा बल-प्राप्तिकी इच्छा होनेपर वायुकी पूजा करे। संसारसे मुक्त होनेकी अभिलाषा होनेपर प्रयत्नपूर्वक भगवान् हरिको आराधना करना चाहिये। निष्ठातम तथा सकाम सभी मनुष्योंको भगवान् गदाधर हरिको पूजा करनी चाहिये।

जलदानसे सुख, अन्नदानसे अक्षय सुख, तिलदानसे अभीष्ट संतान, दीपदानसे उत्तम नेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलाषित पदार्थ, सुवर्णदानसे दीर्घ आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है।<sup>१</sup>

वस्त्र प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अश्वदान करनेसे अश्वनीकुमारके लोककी प्राप्ति होती है। अनहुह (बैल)-का दान देनेसे विपुल सम्पत्तिका लाभ और गोदानसे सूर्यलोक प्राप्त होता है।

धान और शय्याका दान करनेपर भार्या तथा भयार्त (भयभीत)-को अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्य-दानसे शाश्वत (अविनाशी) सुख तथा वेदके (वेदाध्यापन) दानसे ब्रह्मका सान्निध्य लाभ होता है। वेदविद् ब्राह्मणको ज्ञानोपदेश करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति तथा गायको घास देनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईधन (अग्निको प्रज्वलित करने)-के लिये काष्ठ आदिका दान करनेपर व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंके रोगशान्तिके लिये औषधि, तेल आदि

१-वारिदस्तुविमाशेति सुखमक्षयमजदः। तिलजदः प्रजापितं दीपदहधुस्तमम्॥

भूमिदः सर्वमाशेति दीर्घमायुर्हिरण्यदः। गृहदोऽप्याग्नि वेरन्वति रूपमुत्तमम्॥ (५१।२२-२३)

पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित होकर सुखी और दीर्घायु हो जाता है।

छत्र और जूतेका दान करनेवाला मनुष्य प्रचण्ड भूपके कारण तीक्ष्ण तापवाले तथा तलवारके समान तीक्ष्ण भारवाली नुकीली पतियोंसे परिध्याप्त अग्निप्रवहन नामके नारकीय मार्गोंको पार कर जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे अपने लिये संसार या घरमें जो वस्तु अभीष्टतम है तथा प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् ब्राह्मणको करना चाहिये।<sup>१</sup>

उत्तरायण<sup>२</sup>, दक्षिणायन<sup>३</sup>, महाविषुवत्काल<sup>४</sup>, सूर्य तथा चन्द्रग्रहणमें एवं कर्क-मेघ-मकरादिकी संक्रान्तियोंके आनेपर ब्राह्मणोंको दिया गया दान परलोकमें अक्षय सुख

देनेवाला होता है। इस प्रकारके दानका महत्त्व प्रयागादि तीर्थोंमें बहुत है, गया-क्षेत्रके तीर्थोंमें किया गया दान विशेष महत्त्व रखता है।<sup>५</sup>

दान-धर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है। दान स्वर्ग, आयु तथा ऐश्वर्यको प्राप्त करनेकी इच्छासे और अपने पापोंकी उपशान्तिके लिये भी किया जाता है। गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवोंको दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवश दूसरोंको रोकता है, वह चापी तिर्यक् (पक्षीकी)-योनिको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति दुर्भिक्षकालमें और मरणासन्न ब्राह्मणको अन्नदिका दान नहीं करता है, वह ब्रह्महत्या करनेवालेके समान तथा अति निन्दित है। (अध्याय ५१)

### प्रायश्चित्त-निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्राह्मणों! अब इसके बाद मैं प्रायश्चित्त-विधिको भली प्रकार कह रहा हूँ—

ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला ब्रह्महन्ता, मंदिर-पान करनेमें निरत मद्यपी, चोरी करनेवाला स्तेयी तथा गुस्की पत्नीके साथ गमन करनेवाला गुस्तल्पगामी (गुस्तलीगामी)—ये चार महापातकी हैं। इन सभीका संसर्ग (साध) करनेवाला पाँचवाँ महापातकी है। गोहत्यादि जो अन्य पाप होते हैं—ये उपपातक हैं, ऐसा देवताओंका कहना है।

जिसने ब्रह्महत्या की है, उसे वनमें स्वयं पर्णकुटी बनाकर उसीमें उपवास करते हुए बारह वर्षोंतक रहना चाहिये अथवा पर्वतके उस ऊँचे भागसे गिरकर अपने प्राणोंका परित्याग करना चाहिये, जिस भागसे गिरनेपर कहीं

बोधमें ठकनेकी सम्भावना न हो और मरण निश्चित हो। इसके अतिरिक्त जलती हुई अग्निमें प्रवेशकर प्राण-परित्याग, अग्नध जलमें प्रवेशकर प्राण-परित्याग, ब्राह्मण या गौकी रक्षाके लिये प्राण-परित्याग भी ब्रह्महत्या-दोषके निवारक होते हैं। इतना अवश्य ध्यानमें रखना है कि ब्रह्महत्याके दोष-निवारणके लिये प्राण-परित्यागके जो साधन बताये गये हैं, उनको करनेके पहले पश्चात्तति विद्वान् ब्राह्मणको अन्नदान करना अनिवार्य है।

अश्वमेध-यज्ञके अन्तमें होनेवाले अवधूध-स्नानसे ब्रह्महत्याके पापमें मुक्ति प्राप्त हो जाती है। वेदविद् ब्राह्मणको सर्वस्व दान करनेसे ब्रह्महत्याजनित पापका नाश हो जाता है। सरस्वतीजी, गङ्गा तथा यमुना—इन नदियोंके

१-वासोदधन्द्मसालोक्यमक्षिसालोक्यमधदः। अनकुददः किमं पुत्रं गोदो वधस्य विष्टम् ॥

यानज्यामप्रदो भार्याधैर्धर्ममभयप्रदः। भान्यदः शश्वत् सीरुमं वक्ष्ये ब्रह्म तत्तत्तम् ॥

वेदवित्तु ददप्यज्ञं स्वर्गलोके गहीयते। गन्धं वासप्रदानेन सर्वकर्मैः प्रमुच्यते ॥

इत्यनानां प्रदानेन दीमाग्निर्जायते नरः। औषधं स्नेहमाहृतं रोगितोऽप्रसूतानये ॥

ददाने रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च। अस्मिरज्जनं मार्गं क्षुरधातमचनितम् ॥

तीक्ष्णतपं च तस्मिच्छत्रोपायप्रदो नरः। यद्यदिष्टतमं लोकं पञ्चास्य दत्तं गृहे ॥

तत्तदगुणवतो देवं तदेवाश्रयमिच्छता। अयने विपुवं वीच राहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

संक्रान्त्यादिषु कालेषु दनं भवति पापघ्नम्। (५१। २४-३०)

२-मकर-राशिसे विधुन राशितक सूर्यके रहनेके कालको उत्तरायण कहते हैं। यह माघ माससे आषाढ़ मासतकका काल है।

३-कर्क-राशिसे धनु राशितक सूर्यके रहनेके कालको दक्षिणायन कहते हैं। यह आश्विन माससे वीच मासतकका काल है।

४-जिस मासमें दिन-रात दोनों बराबर होते हैं, वह विषुवत्काल कहा जाता है। यह काल तुला और मेषकी सूर्य-संक्रान्तिकाल होता है।

५-प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायां च विशेषतः ॥ (५१। ३१)

पवित्र संगमपर तीन रात्रियौतक उपवास रख करके प्रतिदिन तीनों कालोंमें स्नान करके भी द्विज ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। सेतुबन्ध रामेश्वरम् (कपालमोचन तीर्थ या वाराणसीके पवित्र तीर्थ) -में स्नान करके ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति हो जाती है।

मद्यपी द्विज अग्निवर्णके सदृश (अन्तःकरणको जला देनेवाली) खोलती हुई मदिग अथवा दूध, घृत या गोमूत्रका पान करके तज्जन्त पापसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला राजाओंके द्वारा दण्डरूपमें मूसलप्रहारसे पापमुक्त हो जाता है अथवा जीर्ण-शीर्ण वस्त्र धारण करके वनमें ब्रह्महत्यानाशक प्रायश्चित्त-व्रतको करनेसे पापमुक्त हो जाता है।

कामसे मोहित ब्राह्मण यदि अपने गुरुको पत्नीके पास जाता है तो उसे इस गुरुपत्नीगमनरूप पापसे मुक्त होनेके लिये जलती हुई—तपती हुई लौह-निर्मित स्त्रीका सर्वाङ्ग आलिङ्गन करना चाहिये। अथवा ब्रह्महत्याके पापसे मुक्तिके लिये जो व्रत विहित है, उस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। चार या पाँच चान्द्रायणव्रत करनेसे भी गुरुपत्नीगमनजनित पापसे मुक्ति हो सकती है।

जो द्विज पतितजनोंका संसर्ग करता है, उसे विभिन्न संसर्गोंसे होनेवाले पापोंको दूर करनेके लिये उन-उन पापोंके निमित्त कहे गये व्रतोंका पालन करना चाहिये। अथवा वह आत्मन्यसे रहित होकर एक संवत्सरपर्यन्त तप्तकृच्छ्रव्रतका अनुपालन करे। विधिवत् किया गया सर्वस्वदान सभी पापोंको दूर करनेवाला होता है। अथवा विधिवत् चान्द्रायणव्रत तथा अतिकृच्छ्रव्रत भी सभी पापोंको दूर करनेवाला होता है।

गया आदि पुण्यक्षेत्रोंकी यात्रा करनेसे भी ऐसे पापोंका विनाश हो जाता है। अमावास्या तिथिमें जो महादेव भगवान् शङ्करकी सप्यक्-रूपसे आराधना करके ब्राह्मणोंको भोजन प्रदान कराता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

जो मनुष्य कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें उपवास रखकर संयतचित्तसे पवित्र नदीमें स्नान करके ॐकारसे युक्त यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल तथा

सर्वभूतक्षय—इन नामोंका उच्चारणकर तिलसे संयुक्त सात जलाकुलियोंसे तर्पण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

इन व्रतोंके पालन करते समय शान्त रहकर तथा मनका निग्रहकर, ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भूमिपर सोना चाहिये और उपवास रखकर ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। (कार्तिक) शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिमें उपवास रखकर सप्तमी तिथिमें सूर्यदेवकी पूजा करनेसे भी सभी प्रकारके पापोंसे मुक्ति हो जाती है।

शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें निराहार रहकर जो द्वादशी तिथिमें जनार्दन भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह समस्त महापापोंसे मुक्त हो जाता है।

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण आदि समयोंमें मन्त्रका जप, तपस्या, तीर्थसेवन, देवार्चन तथा ब्राह्मण-पूजन—ये सभी कृत्य भी महापातकोंको नष्ट करनेवाले होते हैं। समस्त पापोंसे मुक्त मनुष्य भी पुण्य-तीर्थोंमें जाकर नियमपूर्वक अपने प्राणोंका परित्यागकर समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

पतिव्रता चारी पतिके देहावसानके बाद पतिका वियोग असह्य होनेके कारण पति-धर्मके अनुसार पतिके शरीरके साथ शास्त्रीय विधिका पालन करते हुए अग्निमें प्रवेश करती है तो ब्रह्महत्या, कृतघ्नता आदि बड़े-बड़े पातकोंसे दूषित भी अपने पतिका उद्धार कर देती है।

जो स्त्री पतिव्रता है, अपने पतिकी सेवा-शुश्रूषामें दत्तचित्त रहती है, उसको इस लोक तथा परलोकमें कोई पाप नहीं लगता। वह वैसे ही निर्दोष रहती है, जैसे दशरथपुत्र श्रीरामकी पत्नी जगद्विख्यात भगवती सीतादेवी लङ्कामें रहकर भी निर्दोष रहीं तथा (अपने पतिव्रतके प्रभावसे) उन्होंने राक्षसरज रावणपर विजय प्राप्त की।

हे यतव्रत! संयतचित्त होकर विविध शास्त्रीय व्रतका अनुष्ठान करनेवाले! भगवान् विष्णुने मुझसे बहुत पहले ही यह बताया था कि गयामें स्थित फल्गु (नदी) आदि तीर्थोंमें यथाविधि ब्रह्मके साथ स्नान करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सदाचरणका फल भी प्राप्त करता है। (अध्याय ५२)

## नवनिधियोंके लक्षणोंसे युक्त पुरुषके ऐश्वर्य एवं स्वभावका वर्णन

सूतजीने कहा—भगवान् विष्णुसे अष्टनिधियोंके विषयमें सुनकर ब्रह्माजीने उनका वर्णन इस प्रकार किया था कि 'पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द (नन्द), नील और शङ्ख नामकी अष्टनिधियाँ' हैं। नवीं निधि मित्र कहलाती है। अब मैं उनके स्वरूपका वर्णन करता हूँ।

पद्मनिधिके लक्षणोंसे सम्पन्न मनुष्य सार्वभौम और दाक्षिण्य गुणसे सम्पन्न होता है। वह सुवर्ण-चौटी आदि मूल्यवान् धातुओंका संग्रह करके पतियों, देवताओं और यात्रिकोंको दान करता है। महापद्म-चिह्नसे लक्षित व्यक्ति भी अपने संग्रहीत धन आदिका दान धर्मिक जनोंको करता रहता है। पद्म तथा महापद्मनिधिसम्पन्न पुरुष सार्वभौम स्वभाववाले कहे गये हैं।

मकरनिधिके चिह्नसे विद्वित मनुष्य खड्ग, बाण एवं कुन्त (भाला) आदि अस्त्रोंका संग्रह करनेवाला होता है। वह नित्य श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है और राजाओंके साथ उसकी सदैव मित्रता बनी रहती है। द्रव्यादिका आहरण करनेके लिये वह शत्रुओंका विनाश करता है और युद्धके लिये सदा तत्पर रहता है। कच्छपनिधि-लक्षित व्यक्ति तामस गुणवाले होते हैं। कच्छप-चिह्नसे युक्त व्यक्ति किसीपर विश्वास नहीं करता है। वह न अपनी सम्पत्तिको स्वयं उपभोग करता है और न तो उसमेंसे वह किसीको कुछ देता ही है। वह एकान्तमें जाकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिको पृथिवीमें गाड़कर छिपा देता है। उसकी सम्पत्ति एक पीढ़ीतक रहती है।

मुकुन्दनिधिके चिह्नसे अफित पुरुष रजोगुणसम्पन्न होता

है। वह राज्य-संग्रहमें लग्न रहता है, वह भोगोंका उपभोग करते हुए गायक और वेश्य आदिको धन देता है।

नन्दनिधिसे युक्त व्यक्ति राजस और तामस गुणोंवाला होता है। वही कुलका आधार बनता है। वह स्तुति करनेपर प्रसन्न होता है तथा बहुत-सी स्त्रियोंका पति होता है। पूर्वकालके मित्रोंमें उसकी प्रीति शिथिल होती है और वह अन्य नये मित्रोंके साथ प्रेम करने लगता है।

नीलनिधिके चिह्नसे सुशोभित मानव सार्वभौम तेजसे संयुक्त होता है। वह वस्त्र-धान्यादिका संग्रह तथा तडागादिका निर्माण करता है। उसके द्वारा (जनहितमें) आग्रादिके उद्धान भी लगवाये जाते हैं। उसकी सम्पत्ति तीन पीढ़ीतक रहती है।

शङ्खनिधि एक ही पुरुष (पीढ़ी)-के लिये होती है। इससे समन्वित मनुष्य धनादिका स्वयं तो उपभोग करता है, किन्तु उसके परिजन कुत्सित अन्नका भोजन तथा अच्छे न लगनेवाले मैले-कुपेले वस्त्रोंसे जीवनयापन करते हैं। वह स्वयंके भरण-पोषणमें सदैव तत्पर रहता है। यदि वह किसीको कुछ वस्तु देता भी है तो वह व्यर्थकी वस्तु होती है (जिसका कोई उपयोग नहीं होता)।

मित्र (मिली-जुली)-निधिके चिह्नसे युक्त होनेपर मनुष्यके स्वभावमें मिश्रित फल दिखलायी देते हैं।

भगवान् विष्णुने भी निधियोंके ऐसे ही स्वरूपका वर्णन शिव आदि देवोंसे किया था (उसकी मैंने आप सभीको सुना दिया)। अब हरिने भुवनकोशादिका जैसा वर्णन किया था, वैसा ही मैं कह रहा हूँ। (अध्याय ५३)

## भुवनकोशवर्णनमें राजा प्रियव्रतके वंशका निरूपण

श्रीहरिने कहा—राजा प्रियव्रतके अग्नीध, अग्निबाहु, वपुष्मान्, ह्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, शबल, पुत्र और ज्योतिष्मान् नामके दस पुत्र हुए थे।

इन पुत्रोंमेंसे मेधा, अग्निबाहु तथा पुत्र नामक तीन पुत्र योगपरायण (योगी), जातिस्मर (उन्हें पूर्वजन्मका वृत्तान्त विस्मृत नहीं हुआ था) तथा महासीमावशाली थे। इन लोगोंने राज्यके प्रति अपनी कोई अभिरुचि प्रकट नहीं की, अतः राजाने सप्तद्वीपा पृथिवीको अपने अन्य सात पुत्रोंमें

विभक्त कर दिया।

पदास करीड़ योजनमें विस्तृत सम्पूर्ण पृथिवी नदीकी जलराशिमें तैरती हुई नौकाके समान चारों ओर अवस्थित अथाह जलके ऊपर स्थित है।

हे शिव! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शक तथा पुष्कर नामक ये सात द्वीप हैं, जो सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। उन सात समुद्रोंके नाम लवण, इक्षु, सुग, घृत, दधि, दुग्ध और जलके सागररूपमें प्रसिद्ध हैं। हे



वृषभध्वज! ये सभी द्वीप तथा समुद्र उक्त क्रममें एक-दूसरेसे द्विगुण परिमाणमें अवस्थित हैं।

जम्बुद्वीपमें मेरु नामक पर्वत है, जो एक लाख योजनके परिमाणमें फैला हुआ है। इसको ऊँचाई चौदास हजार योजन है। इसका अधोभाग पृथिवीमें सोलह हजार योजन भँसा हुआ है और शिखरदेश बत्तीस हजार योजन विस्तृत है। इसका अधोभाग जो पृथिवीके ऊपर सन्निहित है, वह भी सोलह हजार योजनके विस्तारमें कर्णिकाके रूपमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें हिमालय, हेमकूट तथा निषध, उत्तरमें नील, श्वेत और शृंगी नामक वर्षापर्वत हैं।

हे रुद्र! प्लक्ष आदि द्वीपोंके निवासी मरणदिसे मुक्त हैं। उनमें युग या अवस्थाके आधारपर कोई विषमता नहीं है।

जम्बुद्वीपके राजा आनीधके नौ पुत्र उत्पन्न हुए। उन सभीका नाम क्रमशः—नाभि, किम्बुरुष, हरिवर्ष, इन्द्रवृत्, रम्य, हिरण्यमय, कुरु, भद्राक्ष और केतुमाल या। राजाने

उन सभी पुत्रोंको उनके नामसे ही अभिहित (प्रसिद्ध) एक-एक भूखण्ड प्रदान किया। हे हर! राजा नाभि और उनको पत्नी मेरुदेवीसे ऋषभ नामक पुत्र हुए थे, उनसे भरत नामके पुत्र हुए, जो शालग्रामतीर्थमें स्थित रहकर विभिन्न दलोंके चालनमें ही निरत रहते थे। उन भरतसे सुमति नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र तैजस हुआ।

तैजसके इन्द्रघुम्न, इन्द्रघुम्नसे परमेष्ठी, परमेष्ठीके प्रतीहार तथा प्रतीहारसे प्रतिहर्ता नामक पुत्र कहे गये हैं।

प्रतिहर्ताके पुत्र प्रस्तार, प्रस्तारके पुत्र विभु, विभुके पुत्र नक्त और नक्तके पुत्र गय नामके राजा हुए।

गयका पुत्र नर हुआ। नरसे विराट्, विराट्से महातेजस्वी भीमान्, भीमान्से भीवन नामके पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भीवनके त्वष्टा, त्वष्टाके विरजा, विरजाके रज्ज, रज्जके सतजित् तथा सतजित्के विष्वाङ्ग्योति नामक पुत्र हुआ था। (अध्याय ५४)

## भारतवर्षका वर्णन

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! जम्बुद्वीपके मध्यभागमें इलावृत नामक वर्ष है। उसके पूर्वमें अद्भुत भद्राक्षवर्ष तथा उसके पूर्व-दक्षिण (अग्निकोण)—में हिरण्यान् नामक वर्ष है।

मेरुके दक्षिणभागमें किम्बुरुषवर्ष कहा गया है। उसके दक्षिणभागमें भारतवर्ष कहा गया है। मेरुके दक्षिण-पश्चिममें हरिवर्ष, पश्चिममें केतुमालवर्ष, पश्चिमोत्तरमें रम्यक् और उत्तरमें कुरुवर्ष स्थित हैं, जिनके भू-भाग कल्पवृक्षोंसे आच्छादित हैं।

हे रुद्र! भारतवर्षको छोड़कर अन्य सभी वर्षोंमें सिद्धि स्वभावसे ही प्राप्त हो जाती है। यहाँ इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल और वारुण नामक आठ वर्ष हैं। नवौं वर्ष भारतवर्ष है, जो चतुर्दिक् समुद्रसे घिरा हुआ है।

इस (भारतवर्ष)—के पूर्वमें किरात तथा पश्चिममें यवन देश स्थित हैं। हे रुद्र! दक्षिणमें आन्ध्र, उत्तरमें तुरुष्का आदि देश हैं। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-वर्णके लोग रहते हैं।

यहाँ महेन्द्र, मलय, सहा, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और

पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं। इस वर्षमें वेद, स्मृति, नर्मदा, वरदा, मुरसा, शिवा, तापी, पयोष्णी, सरयू, कावेरी, गोमती, गोदावरी, भीमरशी, कृष्णवेणी, महानदी, केतुमाला, ताम्रपानी, वन्दभागा, सरस्वती, ऋषिकुल्या, कावेरी, मत्तगङ्गा, पर्यस्विनी, विदर्भा, जतद् नामक मङ्गल प्रदान करनेवाली तथा पार्यायनाशिनी नदियाँ हैं, जिनके जलका पान मध्यदेशादिके निवासीजन करते हैं।

पाञ्चाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, पटञ्जर, कुन्त तथा सूरसेन देशके निवासी मध्यदेशीय हैं। पाण्ड्य, सूत, मागध, चेदि, काशेय तथा विदेह पूर्वमें स्थित हैं। कोशल, कलिंग, वंग, पुण्ड्र, अंग और विदर्भ—मूलकजनोंके देश और विन्ध्यपर्वतके अन्तर्गत विद्यमान देश पूर्व तथा दक्षिणके तटवर्ती भूभागमें स्थित हैं। पुलिन्द, अश्मक, जीमूत, नय राष्ट्रमें निवास करनेवाले, कर्णाटक, कम्बोज तथा घण—ये दक्षिणपथ भूभागके निवासी हैं। अम्बष्ठ, द्रविड, लाट, कम्बोज, स्त्रीमुख, शक और आनर्तवासी दक्षिण-पश्चिमके निवासी हैं।

स्वीरान्य, सैन्धव, म्लेच्छ, नास्तिक, यवन, मधुरा तथा निषधके रहनेवाले लोगोंके देश पश्चिमी भूभाग हैं। माण्डव्य,

तुषार, मूलिका, अश्वमुख, खस, महाकेश, महानास देश म्लेच्छ देश हिमाचलके उत्तरतटवर्ती भूभागमें स्थित हैं। त्रिगर्त, उत्तर-पश्चिमभागमें स्थित हैं। नील, कोलात, ब्रह्मपुत्र, सटङ्गुण, अभीषाह और कश्मीर देश लम्बक, स्तननाग, माद, गान्धार, बाह्लिक तथा उत्तर-पूर्व-दिशामें अवस्थित कहे गये हैं। (अध्याय ५५)

## प्लक्ष तथा पुष्कर आदि द्वीपों एवं पाताल आदिका निरूपण

श्रीहरिने कहा—प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र थे। उन सबमें शान्तभव नामक पुत्र ज्येष्ठ था। उससे छोटा शिशिर था। तदनन्तर सुखोदय, नन्द, शिव और क्षेमक हुए। उनका जो सातवाँ भाई था, वह ध्रुव नामसे प्रसिद्ध हुआ—ये सभी प्लक्षद्वीपके राजा बने।

इस द्वीपमें गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमनस और वैभ्राज नामक सात पर्वत हैं। यहाँ अनुतप्ता, शिखी, विपासा, त्रिदिवा, क्रमु, अमृता तथा सुकृता नामकी सात नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं।

वपुष्मान्, शाल्यकद्वीपके स्वामी थे। उस द्वीपमें अवस्थित सात वर्षोंके नामसे ही प्रसिद्ध उनके सात पुत्र थे, जिनके नाम क्षेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सप्रभ हैं।

यहाँ कुमुद, उभत, द्रोण, महिष, बलहक, क्रीड तथा ककुचान् नामक सात पर्वत हैं। योनि, तोषा, विनुष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी और विभूति—ये सात नदियाँ हैं। ये पापोंका प्रशमन करनेवाली हैं।

कुण्डद्वीपमें ज्योतिष्मान्का स्वामित्व था। उनके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे उद्भिद, वेणुमान्, ईरथ, लम्बन, भूति, प्रभकर और कपिल नामसे प्रसिद्ध थे। उन्हींके नामसे इस द्वीपके जो सात वर्ष थे, वे प्रसिद्ध हुए। यहाँ विद्रुम, हेमशैल, द्युमान्, पुष्पवान्, कुशेशप, हरि तथा मन्दराचल नामक सात वर्षपर्वत हैं। यहाँ ध्रुतपापा, शिवा, पवित्रा, सन्मति, विद्युदध, मही और काफा नामकी ये सात नदियाँ हैं, जो सब प्रकारके पापोंको विनष्ट करनेवाली हैं।

हे शिव! क्रीडद्वीपके अधीश्वर महात्मा द्युतिमान्के भी सात पुत्र हुए। कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये उनके नाम हैं।

यहाँ क्रीड, वामन, अन्धकारक, दिवावृत्, महाशैल, दुन्दुभि तथा पुण्डरीकवान् नामके सात वर्षपर्वत हैं। यहाँपर

गौरी, कुमुदती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका—ये सात नदियाँ (प्रवाहित होती रहती) हैं।

शकद्वीपके राजा भव्यके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए। वे जलद, कुमार, सुकुमार, अरुणीबक, कुसुमोद, समोर्दाकि तथा महादुम नामसे ख्याति प्राप्त थे। यहाँ सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ति नामसे प्रसिद्ध सात नदियाँ हैं।

पुष्करद्वीपके स्वामी महाराज लबलके महावीर तथा भातकि नामक दो पुत्र हुए। उन्हींके नामसे यहाँपर दो वर्ष हैं। इन दोनोंके मध्य एक ही मानसोत्तर नामक वर्षपर्वत है। यह पचास सहस्र योजनमें विस्तृत तथा इतना ही ऊँचा है। यह क्षुद्रदिक् विस्तारमें भी उसी परिमाणको प्राप्तकर मण्डलाकार अवस्थित है। इस पुष्करद्वीपको स्वादिष्ट जलवाला समुद्र चारों ओरसे घेरकर स्थित है। उस स्वादिष्ट जलवाले समुद्रके सामने उससे द्विगुण जनजीवनसे रहित स्वर्णमयी भूमिवाली जगत्की स्थिति दिखायी देती है। वहाँपर दस हजार योजनमें फैला हुआ लोकालोक नामक पर्वत है। वह अन्धकारसे आच्छादित है और वह अन्धकार भी अण्डकटाहसे आवृत है।

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! इस भूमिकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन है। इसमें दस-दस सहस्र योजनकी दूरीपर एक-एक पाताललोक स्थित है, जिन्हें अतल, कितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल तथा पाताल कहा जाता है।

इन लोकोंकी भूमि कृष्ण, शुक्ल, अरुण, पीत, शर्करा-सदृश, तैलमयी तथा स्वर्णमयी है। वहाँपर दैत्य तथा नागोंका निवास है। हे रुद्र! दारुण पुष्करद्वीपमें जो नरक स्थिति हैं, उनके विषयमें आप सुनें। वहाँ रौरव, सूकर, रोध, ताल, विशसन, महान्वात, तमकुम्भ, लवण, विमोहित, रुधिर, वीतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, नानाधस (स्तलाधस), दारुण, पूषवह, पाप, वह्निपाल,

अधःशिरा, संदंश, कृष्णसूत्र, तमस्, अवीचि, श्मशान्, अप्रतिष्ठ तथा उष्णवीचि नामक नरक हैं। उनमें विष देनेवाले, शस्त्रसे हत्या करनेवाले तथा अग्निसे जलाकर मारनेवाले पापीजन अपने-अपने पापका फलभोग करते हैं। हे रुद्र! यथाक्रम उनके ऊपर अन्य लोकोंकी स्थिति

है। उन लोकोंको क्रमशः—जल, अग्नि, वायु तथा आकाश घेरे हुए है। इस प्रकार अवस्थित ब्रह्माण्ड प्रधान तत्त्वसे आवेष्टित है। वह ब्रह्माण्ड अन्य ब्रह्माण्डोंकी अपेक्षा दस गुना अधिक है। इसे परिव्याप्तकर स्वयं नारायण अवस्थित रहते हैं। (अध्याय ५६-५७)

## भुवनकोश-वर्णनमें सूर्य तथा चन्द्र आदि नौ ग्रहोंके रथोंका विवरण

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! अब मैं सूर्यादि ग्रहोंकी स्थिति एवं उनके परिमाणसे सम्बन्धित विषयका वर्णन कर रहा हूँ।

सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है। उसका ईषादण्ड अर्थात् जुआ तथा रथके बीचका जो भाग है, वह उस रथ-विस्तारका दुगुण है। उसको धुरी एक करोड़ सत्तावन लाख योजन लम्बी है तथा उसमें चक्र लगा हुआ है। उस चक्रकी (पूर्वाह्न, मध्याह्न तथा अपराह्नरूप) तीन नाभिर्ध्या हैं, (परिवत्सरादिक) पाँच ओर हैं, (वसन्तादि षड्ऋतुरूपाँ) छः नेमिर्ध्या हैं तथा अधश्चक्ररूपवाले संवत्सरसे युक्त उस चक्रमें सम्पूर्ण कालचक्र सन्निहित है। सूर्यके रथकी दूसरी धुरी चालीस हजार योजन लम्बी है।

हे वृषभध्वज! रथके जो पहियोंके अध हैं, वे साढ़े पाँच हजार योजन लम्बे हैं। रथके कहे गये प्रधान दोनों अक्षोंके परिमाणके समान जुएके दोनों अर्द्धोंकी लम्बाई है। सबसे छोटा अक्ष जुएके अर्द्धभाग-परिमाणवाला है, जो रथके ध्रुवाधारपर अवस्थित है। रथके दूसरे अक्षमें चक्र लगा हुआ है, जो मानसोत्तर पर्वतपर स्थित है।

गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पँक्ति नामक—ये सात छन्द ही सूर्यके सात घोड़े कहे गये हैं।

चैत्रमासमें सूर्यके इस रथपर धाता नामक आदित्य, क्रतुस्थला नामकी अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि नाग, रथकृत् ग्रामणी, हेति नामका राक्षस और तुम्बुरु गन्धर्व स्थित रहते हैं। वैशाखमासमें इस रथपर अर्यमा नामवाले आदित्य, पुलह ऋषि, रथीजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छनोर सर्प तथा नारद नामक गन्धर्व आसीन रहते हैं। ज्येष्ठमासमें सूर्यके इस रथमें धित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक नाग, पौरुषेय राक्षस,

मेनका अप्सरा, हाहा नामक गन्धर्व और रथस्वन यक्षका काम रहता है।

आषाढमासमें इस रथके ऊपर वरुण नामसे प्रसिद्ध आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, रम्भा तथा सहजन्वा नामक अप्सरा, हनु गन्धर्व, रथचित्र नामक यक्ष एवं राक्षसगुरु शुक्र निवास करते हैं। श्रावणमासमें इस रथपर इन्द्र नामसे विख्यात आदित्य, विशाखसु गन्धर्व, स्रोत नामक यक्ष, एलापत्र सर्प, अजिना ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्प नामक राक्षसोंका निवास रहता है। भाद्रपदमासमें विवस्वान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण नामक यक्ष, अनुम्लीचा नामक अप्सरा, शंखपाल नामक सर्प तथा व्याघ्र राक्षसका सूर्य-रथमें निवास रहता है।

आश्विनमासमें इस रथपर पूषा नामक आदित्य, सुरुचि नामक गन्धर्व, धाता एवं गीतम ऋषि, धन्वाय नाग, सुमेघ तथा घृताची अप्सराका वास होता है। कार्तिकमासमें पर्जन्य नामके आदित्य, विशाखसु गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, ऐरावत सर्प, विशाखी अप्सरा, सेनजित् यक्ष एवं आप नामक राक्षसका निवास उस रथपर रहता है। मार्गशीर्षमासमें अंशु नामक आदित्य, कश्यप ऋषि, तार्क्ष्य, महापद्म नाग, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस उस रथमें संभरण करते हैं।

पौषमासमें भार्गव नामके आदित्य, क्रतु ऋषि, उर्णापु गन्धर्व, स्मूर्त्वं राक्षस, कर्कोटक नाग, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचिन्ति नामक अप्सरा सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। माघमासमें त्वष्टा नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, ऋताजित् यक्ष और धृतराष्ट्र नामक गन्धर्व सूर्यमण्डलमें रहते हैं। फाल्गुनमासमें विष्णु नामक आदित्य, अधतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्च गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और

\*\*\*\*\*

यज्ञोपेत राक्षसका उस रथमें वास रहता है।

हे ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुकी शक्तिसे तैजोमय बने मुनिगण सूर्यमण्डलके सामने उपस्थित रहकर उनकी स्तुति करते हैं, गन्धर्वजन वसोगान करते हैं। अप्सराएँ नृत्य करती हैं। राक्षस उस रथके पोछे-पीछे चलते हैं। सर्प उस रथको वहन करते हैं और यक्षगण उसको बागदोर सँभालनेका कार्य करते हैं। बाल्यशिरस्य नामक ऋषिगण उस रथको सब ओरसे घेरकर स्थित रहते हैं।

चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंवाला है। उसके छोड़े कुन्द-पुष्पके समान श्वेतवर्णवाले हैं। वे रथके जुएँ बाँधे और दाहिने दोनों ओर जुलकर उसे खींचते हैं। उनकी संख्या दस है।

चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ जल तथा अग्निसे मिश्रित द्रव्यका बना हुआ है। उसमें वायुके समान वेगशाली पिरोंग (भूरे) वर्णके आठ घोड़े जुते रहते हैं।

शुक्रका महान् रथ सैन्यबलसे युक्त, अनुकर्ष (रथको सुदृढ़ बनानेके लिये सम्पन्न रथके नीचे लगा काष्ठविशेष), ऊँचे शिखरवाला, पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाले घोड़ोंसे संपुक्त, उपासद्ग (तरकरा) तथा ऊँची फताकरसे विभूषित है।

भूमिपुत्र मंगलका महान् रथ तपाये गये स्वर्णके सदृश

काष्ठान वर्णवाला है। उसमें आठ घोड़े लगे रहते हैं, जो अग्निसे प्रादुर्भूत हैं तथा पदरागमणिके समान अरुण वर्णके हैं।

आठ पाण्डुर (कुछ पीलापन लिये हुए सफेद) वर्णके घोड़ोंसे युक्त स्वर्णके रथपर विद्यमान बृहस्पति एक-एक राशिमें एक-एक वर्ष स्थित रहते हैं।

शनिका रथ आकाशसे उत्पन्न हुए चितकबरे घोड़ोंसे युक्त है। वे उसमें चढ़कर धीरे-धीरे चलते हैं। उनका मन्दगामी भी नाम है।

स्वर्भातु अर्थात् राहुके [रथमें] आठ घोड़े हैं, जो ध्रुवके सदृश काले हैं। उसका रथ धूसर<sup>१</sup> वर्णका है। हे भूतेश शिव! उन घोड़ोंको एक बार रथमें जोत दिये जानेपर वे निरन्तर चलते रहते हैं। इसी प्रकार केतुके रथमें भी वायुके समान वेगवाले आठ घोड़े हैं। उनके वर्णोंकी आभा पुष्पासमे विकसलनेवाले धूर्णके सदृश तथा लाक्षारसकी भाँति अरुण रंगकी है।

[हे शिव! इस प्रकार सूर्य-चन्द्रादि उपर्युक्त ग्रहोंसे युक्त] द्रोण, नदी, पर्वत, समुद्र आदिसे समन्वित समस्त भुवन-मण्डल भगवान् विष्णुका विराट् शरीर ही है।

(अध्याय ५८)

## ज्योतिषचक्रमें वर्जित नक्षत्र, उनके देवता एवं कतिपय

### शुभ-अशुभ योगों तथा मुहूर्तोंका वर्णन

श्रीसूतजीने कहा—[ऋषियो!] केशवने भगवान् शिवसे पृथिवीका परिमाण बताकर कहा कि हे रुद्र! ज्योतिष-शास्त्रकी गणना चार लाखमें है, पर उनमेंसे मैं अब ज्योतिषचक्र अर्थात् नक्षत्रोंसे युक्त राशिचक्रका संक्षेपसे वर्णन करूँगा, जो सब कुछ देनेवाला है।

श्रीहरिने कहा—हे शिव! कुत्तिका नक्षत्रके देवता अग्नि हैं। रोहिणी नक्षत्रके देवता ब्रह्मा हैं। मृगशिराके चन्द्रमा तथा आद्रकि रुद्र देवता कहे गये हैं। इसी प्रकार पुनर्वसुके आदित्य तथा शिष्य पुष्यके गुरु हैं। आश्लेषा नक्षत्रके सर्प तथा मघा नक्षत्रके देवता पितृगण हैं। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके देवता भाग्य (भाग), उत्तराफाल्गुनीके अर्यमा, हस्तके सविता और चित्राके देवता त्वष्टा हैं। स्वाती नक्षत्रके देवता वायु और विशाखा नक्षत्रके देवता इन्द्राग्नि

हैं। ज्येष्ठा नक्षत्रके देवता मित्र और ज्येष्ठाके शक्र (इन्द्र) देवता कहे गये हैं। नक्षत्रज्ञ विद्वानोंने मूल नक्षत्रका देवता निर्दिष्टितो बताया है। पूर्वाषाढ नक्षत्रके देवता आप तथा उत्तराषाढके विश्वेदेव हैं। अभिजित्के देवता ब्रह्मा और ज्येष्ठाके विष्णु कहे गये हैं। धनिष्ठा नक्षत्रके देवता वसु तथा शतभिषाके वरुण कहे गये हैं। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रके देवता अजयपद, उत्तराभाद्रपदके अतिवृंध्य, रेवतीके पूषा, अश्विनीके अश्विनीकुमार और भरणीके यम देवता कहे गये हैं।

प्रतिपदा तथा नवमी तिथिमें ब्रह्माणी नामकी योगिनी पूर्व दिशामें अवस्थित रहती है। द्वितीया और दशमी तिथिमें माहेश्वरी नामक योगिनी उत्तर दिशामें रहती है। पञ्चमी तथा त्रयोदशी तिथिमें वाराही नामक योगिनी दक्षिण दिशामें स्थित रहती है।

१-घोड़े पाण्डु वर्णको धूसर और कुछ पीलापन लिये सफेद वर्णको पाण्डुरवर्ण कहते हैं।



षष्ठी और चतुर्दशी तिथिमें इंद्राणी नामकी योगिनीका वास पश्चिममें होता है। सप्तमी और पौर्णमासी तिथिमें चामुण्डा नामसे अभिहित योगिनीका निवास वायुगोचर अर्थात् वायव्यकोणमें रहता है। अष्टमी तथा अमावास्यामें महालक्ष्मी नामकी योगिनी ईशानकोणमें रहती है। एकादशी एवं तृतीया तिथिमें वैष्णवी नामकी योगिनी अग्निकोणमें वास करती है। द्वादशी और चतुर्थी तिथिमें कौमारी नामवाली योगिनीका निवास नैऋत्यकोणमें रहता है। योगिनीके सम्मुख रहनेपर यात्रा नहीं करनी चाहिये।

अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र प्रस्थान (यात्रा)-के लिये प्रशस्त कहे गये हैं।

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा—ये पौष नक्षत्र तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, धनिष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र नवीन वस्त्र धारण करनेके लिये श्रेष्ठ हैं।

कृतिका, भरणी, अश्लेषा, मघा, मूल, विशाखा तथा पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ और पूर्वाफाल्गुनी—इन नक्षत्रोंको अधोमुखी कहा गया है। इन अधोमुखी नक्षत्रोंमें वापी, तडाग, सरोवर, कुत्र, भूमि, तृण आदिका खनन, देवालयेके लिये नीकादिके खननका तुभारम्भ, भूमि आदिमें गद्दी हुई धन-सम्पत्तिकी खुदाई, ज्योतिषचक्रका गणनारम्भ और सुवर्ण, रजत, पद्मा तथा अन्य धातुओंको प्राप्ति करनेके लिये भू-खदानोंमें प्रविष्ट होना आदि अन्य अधोमुखी कार्य इन अधोमुखी नक्षत्रोंमें करने चाहिये। रेवती, अश्विनी, चित्रा स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा एवं ज्येष्ठा नक्षत्र पार्श्वमुखी हैं। इन पार्श्वमुखी नक्षत्रोंमें हाथी, जैट, अश्व, बैल तथा भैसेको वस्त्रों करनेका उपाय करना चाहिये। (अर्थात् इनके नाक आदिमें छेद करके छल्ला या रस्सी डालनेका कार्य करना चाहिये।)

छेत्रोंमें बीज बोना, गमनागमन, चक्रयन्त्र (चरखी, चरसा, रहट आदि यन्त्र) अथवा रथ एवं नीकादिका क्रय और निर्माण उक्त पार्श्वमुखी नक्षत्रोंमें करना चाहिये और अन्य पार्श्व कार्योंको भी इन पार्श्व नक्षत्रोंमें करना चाहिये।

रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, शतभिष (वारुण) तथा व्रश्च—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुखी कहे गये हैं। इन नक्षत्रोंमें राज्याभिषेक और

पट्टवस्त्र आदि शुभ कार्य करवाने चाहिये। ऊर्ध्वमुखी अर्थात् अभ्युदय प्रदान करनेवाले अन्य विशिष्ट कार्योंको भी इन नक्षत्रोंमें करना प्रशस्त होता है।

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, अमावास्या तथा पूर्णिमा तिथि अशुभ होती है। इन तिथियोंमें शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तथा बुधवारसे युक्त द्वितीया तिथि शुभ होती है। यदि भूमिपुत्र मंगलसे युक्त तृतीया हो, सनैश्वरको चतुर्थी हो, गुरुवारकी पञ्चमी पड़ रही हो, षष्ठीको मंगल या शुक्रवार हो तो ये तिथियाँ भी शुभ होती हैं। बुधवारको सप्तमी, मंगल तथा रविवारको अष्टमी, सोमवारको नवमी और गुरुवारकी पड़नेवाली दशमी तिथि शुभ होती है। एकादशी तिथिमें गुरु तथा शुक्र होनेपर, बुधवारकी द्वादशी तिथि पड़नेपर, शुक्र तथा मंगलवारकी त्रयोदशी और सनिवारकी चतुर्दशी तिथि शुभ होती है। इसी प्रकार बृहस्पतिकी पूर्णिमा या अमावास्या तिथिका होना भी शुभ होता है।

द्वादशी तिथि रविवार, एकादशी सोमवार, दशमी मंगलवार, नवमी बुधवार, अष्टमी गुरुवार, सप्तमी शुक्रवार और षष्ठी तिथि सनिवारसे दग्ध होती है। ऐसे तिथि-दग्ध-योगमें यात्रादिका सुभारम्भ नहीं करना चाहिये। प्रतिपदा, नवमी, चतुर्दशी और अष्टमी तिथियोंमें यदि बुधवारका संयोग हो तो उस तिथिमें प्रस्थानके विचारका दूरसे ही परित्याग करना चाहिये। मेष और कर्क-संक्रान्तिकी षष्ठी, कन्या और मिथुन-संक्रान्तिकी अष्टमी, वृष तथा कुम्भ-संक्रान्तिकी चतुर्थी, मकर और तुल्य-संक्रान्तिकी द्वादशी, वृश्चिक और सिंह-संक्रान्तिकी दशमी तथा धनु और मीन-संक्रान्तिकी चतुर्दशी—ये दग्ध तिथियाँ हैं। इन तिथियोंमें यात्रादि नहीं करनी चाहिये। ये कहदायक होती हैं।

हे शिव! रविवारको विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठाका योग, सोमवारके दिन पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ तथा व्रश्च नक्षत्रका योग, मंगलवारको धनिष्ठा, शतभिष और पूर्वाभाद्रपदका योग, बुधवारमें रेवती, अश्विनी तथा भरणीका योग, बृहस्पतिवारको रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्राका योग, शुक्रवारमें पुष्य, अश्लेषा एवं मघाका योग, शनिवारको उत्तराफाल्गुनी, हस्त तथा चित्रा नक्षत्रका योग होनेपर औत्पातिक योग होता है। इन योगोंमें गमनादि कार्य करनेसे

उत्पात, मृत्यु और रोगकी उत्पत्ति होती है।

हे रुद्र! रविवारको मूल, सोमवारको ज्वण, मंगलवारको उत्तराभाद्रपद, बुधवारको कृतिका, बृहस्पतिके दिन पुनर्वसु, शुकवारको पूर्वाषाढा, शनिवारको स्वाती नक्षत्र हो तो अमृत योग होता है। ये सभी कार्योंको सिद्ध करनेवाले हैं।

विष्कुम्भ योगकी पाँच घटी, शूल योगकी सात घटी, गण्ड तथा अतिगण्ड योगकी छः-छः घटी, व्याघ्रत और वज्र योगकी नी-नी घटी एवं व्यतीपात, परिध और वैधृति योग—ये मृत्युतुल्य कष्टदायी होते हैं, इनमें सभी कर्मोंका परित्याग करना चाहिये।

रविवारको हस्त, गुरुवारको पुष्य, बुधवारको अनुराधा नक्षत्र—ये शुभ होते हैं। शनिवारको रोहिणी उत्तम और सोमवारको मृगशिरा नक्षत्र शुभ है। उसी प्रकार

शुकवारको रेवती तथा मंगलवारको अश्विनी नक्षत्र शुभ फल देता है। इस प्रकारका योग होनेपर सिद्धि योग बनता है। ये सिद्धि योग सभी प्रकारके दोषोंका विनाश करनेवाले होते हैं।

हे वृषभध्वज! शुकवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मंगलवारको उत्तराषाढा, बुधवारको धनिष्ठा, बृहस्पतिको जतभिष, शुकवारको रोहिणी और शनिवारको रेवती नक्षत्र होनेपर विषययोग होता है।

पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, चित्रा, ज्वण, धनिष्ठा, हस्त, अश्विनी, मृगशिरा एवं जतभिष नक्षत्र होनेपर जातकर्म आदि संस्कार करनेके लिये उत्तम माने गये हैं।

हे शिव! विशाखा, उत्तराषाढा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, मघा, आर्द्रा, भरणी, अश्लेषा और कृतिका नक्षत्रमें यात्रा करनेपर मृत्युका भय रहता है। (अध्याय ५९)

## ग्रहदशा, यात्राशकुन, छींकका फल तथा सूर्यचक्र आदिका निरूपण

श्रीहरिने कहा—[हे शिव! अब मैं ग्रहोंकी महादशाका वर्णन कर रहा हूँ] सूर्यकी दशा छः वर्ष, चन्द्रकी दशा पंद्रह वर्ष, मंगलकी दशा आठ वर्ष, बुधकी दशा सत्रह वर्ष, शनिकी दशा दस वर्ष, बृहस्पतिकी दशा उन्नीस वर्ष, राहुकी दशा बारह वर्ष तथा शुककी दशा इक्कीस वर्ष रहती है।

सूर्यकी दशा दुःख देनेवाली होती है और उद्वेगको पैदा करती है तथा राजाका नाश करती है। चन्द्रकी दशा ऐश्वर्य देनेवाली, सुख पैदा करनेवाली तथा (इष्ट) मनोऽनुकूल अन्न देनेवाली होती है।

मंगलकी दशा दुःख देनेवाली तथा राज्यआदिक विनाश करनेवाली है। बुधकी दशा दिव्य स्त्रीका लाभ, राज्य-प्राप्ति एवं कोषवृद्धि करनेवाली है। शनिकी दशा राज्यका नाश और शत्रु-शान्धियोंको कष्ट-प्रदान करनेवाली है। बृहस्पतिकी दशा राज्य-लाभ और सुख-समृद्धि तथा धर्म देनेवाली है।

राहुकी दशा राज्यका नाश करती है, व्याधियोंकी प्राप्ति कराती है और दुःख पैदा करती है। शुककी दशामें हाथी, घोड़ा, राज्य तथा स्त्रीका लाभ होता है।

मेघ मंगलका, वृष शुकका, मिथुन बुधका और कर्क चन्द्रमाका क्षेत्र कहा गया है। सूर्यका क्षेत्र सिंह एवं बुधका क्षेत्र कन्याराशि है। तुल्यराशि शुकका क्षेत्र है और बृहिक मंगलका क्षेत्र है। बृहस्पतिकी क्षेत्र धनु, शनिकी क्षेत्र मकर एवं कुम्भ और मीन बृहस्पतिकी क्षेत्र कहा गया है।

कर्कशरामें सूर्य आ जानेपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं।

अश्विनी, रेवती, चित्रा, धनिष्ठा—ये नक्षत्र आभूषण धारण करनेमें उत्तम माने गये हैं।

यात्रामें यदि दाहिने हरिण, सौम्य, बन्दर, बिलाव, कुत्ता, सुअर, पक्षी (नोलकण्ठ आदि), नेवला तथा चूहा दिखायी दें तो यात्रा मङ्गलकारी होती है। यात्रामें ब्राह्मणकी कन्याका

१-यहाँपर ग्रहोंकी महादशाओंका जो योग्य समय तथा उनका क्रम दिया गया है, वह महर्षि पराशर आदि द्वारा निर्दिष्ट विंशोत्तरी महादशामें भिन्न है। इसमें केतुकी दशा भी नहीं दिखलाई गयी है। महर्षि पराशरके अनुसार ग्रहोंका क्रम तथा उनकी भोग्यवर्ष-संख्या इस प्रकार है—सूर्यकी महादशा छः वर्ष रहती है, चन्द्रदशा दस वर्ष रहती है। इसी प्रकार मंगल सात वर्ष, राहु अठारह वर्ष, बृहस्पति सोलह वर्ष, शनि उन्नीस वर्ष, बुध सत्रह वर्ष, केतु सात वर्ष तथा शुक बीस वर्षतक भोग करता है। इनका योग एक सौ बीस वर्ष होता है, जो महर्षि पराशरद्वारा मान्य-आयुका परिमाण है, इसीलिये यह विंशोत्तरी महादशा कहलगी है। इसी प्रकार दूसरा अदोत्तरी महादशा क्रम भी है, किन्तु गारुडपुराणमें निर्दिष्ट क्रम तथा दशा-वर्ष सर्वथा भिन्न है।

दर्शन हो जाना मङ्गल होनेका सूचक है तथा शङ्ख और मृदंगकी आवाज सुनना एवं सदायारी श्रीमन्त प्यक्तिका दर्शन हो जाना, वेणु, स्त्री, जलसे भरा कलश दिखायी देना कल्याण-प्राप्तिका सूचक है।

यात्रामें बायीं ओर भृङ्गल, ऊँट और गदहा आदिका दिखायी देना मङ्गलकारो होता है। यात्रामें कपास, ओषधि, तेल, दहकते अंगारे, सर्प, बाल बिछोरे, लाल माता पहने और नान अवस्थामें यदि कोई व्यक्ति दिखायी दे तो अशुभ होता है।

अब मैं हिक्का (छींक)-के शुभ-अशुभ फलोंका वर्णन कर रहा हूँ। पूर्व दिशामें छींक होनेपर बहुत बड़ा फल प्राप्त होता है। अग्निकोणमें छींक होनेपर शोक और संताप तथा दक्षिणमें छींक होनेपर हानि उठानी पड़ती है। नैऋत्यकोणमें छींक होनेपर शोक और संताप तथा पश्चिममें छींक होनेपर मिष्टान्तकी प्राप्ति होती है। वायव्यकोणमें छींक होनेपर धनकी प्राप्ति और उत्तरमें छींक होनेपर कलह होता है। ईशानकोणमें छींक होनेपर मरणके समान कष्ट प्राप्त होना जतलाया गया है।

मनुष्यके आकारमें भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका चित्रण करे। सूर्यकी प्रतिमा बनानेके दिन सूर्य जिस नक्षत्रपर हो, उस नक्षत्रसे तीन नक्षत्र उस प्रतिमाके मस्तकपर अंकित

करे। मुखके मध्यमें अंकित सूर्यनक्षत्रसे आगे तीन नक्षत्र लिखे और उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों कन्धोंपर लिखे। फिर उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों भुजाओंपर लिखे और उससे आगेके एक-एक नक्षत्र दोनों हाथोंपर लिखे। उससे आगे पाँच नक्षत्र हृदय-प्रदेशपर लिखे तथा उससे आगे एक नक्षत्र नाभिमण्डलमें लिखे। उससे आगे गुह्यस्थानमें एक नक्षत्र लिखे। उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों घुटनोंपर लिखे। शेष नक्षत्र सूर्यके चरणोंपर लिखे।

सूर्यचक्रके चरणोंमें जातकका जन्मनक्षत्र पड़ता हो तो जातक अल्पायु होता है। वही नक्षत्र यदि घुटनोंपर पड़ता है तो जातक विदेश यात्रावाला होता है और यदि गुह्यस्थानपर पड़े तो पर-स्त्रीगामी होता है। नाभिर्यानमें पड़नेपर छोटेमें ही प्रसन्न हो जानेवाला होता है। यदि हृदयस्थानमें पड़ता है तो मंदंशर होता है। यदि पाणिस्थानमें पड़ता है तो चोर होता है। वही यदि भुजाओंपर पड़ता है तो उसका कहीं निश्चित स्थान नहीं रहता। यदि कन्धोंपर पड़ जाय तो वह धनपति—कुबेर होता है। यदि मुखपर पड़ जाय तो मिष्टान्न प्राप्त करता रहता है और यदि मस्तकपर जातक-नक्षत्र पड़ जाय तो जातक रेशम-वस्त्रधारी होता है। (अध्याय ६०)

## ग्रहोंके शुभ एवं अशुभ स्थान तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलका संक्षिप्त विवेचन

श्रीहरिने कहा—लग्नसे सप्तम भाव तथा उपचयमें स्थित चन्द्रमा सर्वत्र मङ्गलकारी होता है। शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथि तथा पञ्चम और नवम भावमें स्थित चन्द्रमा गुरुके सदृश पुण्य है।

हे शिव! चन्द्रमाकी बारह अवस्थाएँ हैं। आप उनके विषयमें भी सुनै। अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रोंसे एक-एक अवस्था बनती है। अतः उन अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रोंके क्रमसे 'प्रवासवस्था, दृष्ट्यावस्था, मृतावस्था, जयावस्था, हास्यावस्था, नतावस्था, प्रमोदावस्था, विषादावस्था, भोग्यावस्था, ज्वरावस्था, कम्पावस्था तथा सुखावस्था'—ये चन्द्रकी बारह अवस्थाएँ होती हैं।

इन्हीं अवस्थाओंके क्रममें चन्द्रकी स्थिति होनेपर क्रमशः—प्रवास, हानि, मृत्यु, जय, हास, रति, सुख,

शोक, भोग, ज्वर, कम्प तथा सुख—ये फल प्राप्त होते हैं।

चन्द्रके जन्मलग्नमें होनेपर वृष्टि, द्वितीय भावमें रहनेपर सुख-हानि, तृतीय भावमें रहनेपर राजसम्मान, चतुर्थ भावमें कलह और पञ्चम भावमें रहनेपर स्त्रीका लब्ध होता है। यदि चन्द्र षष्ठ (स्थान) भावमें रहता है तो धन-धान्यकी प्राप्ति, सप्तम भावमें रहनेपर प्रेम तथा सम्मानकी प्राप्ति होती है। चन्द्रमाके अष्टम भाव (स्थान)—में रहनेपर मनुष्यके प्राणोंको संकट बना रहता है। नवम भावमें उसकी स्थिति रहनेपर क्रीडमें धनकी वृद्धि होती है। दशम भावमें चन्द्रके रहनेपर कार्यसिद्धि और एकादश भावमें होनेपर विजय निश्चित है। जब वह द्वादश भावमें रहता है तो जातककी निश्चित ही मृत्यु होती है। इसमें संदेह नहीं है।

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा—इन सात नक्षत्रोंमें पूर्व दिशाकी यात्रा करनी चाहिये। मघा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, चित्रा, स्वाती तथा विशाखा—इन सात नक्षत्रोंमें दक्षिणकी यात्रा करनी चाहिये। अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण और धनिष्ठा—इन सात नक्षत्रोंमें पश्चिमकी यात्रा करनी चाहिये। धनिष्ठा, ज्ञातभिक्ष, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी—इन सात नक्षत्रोंमें उत्तरकी यात्रा प्रशस्त होती है।

अश्विनी, रेवती, चित्रा तथा धनिष्ठा नक्षत्र नवीन अलंकारोंको धारण करनेके लिये श्रेष्ठ हैं। मृगशिरा, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, मूल और हस्त नक्षत्र कन्यादान, यात्रा तथा प्रतिष्ठादि कार्योंमें शुभप्रद होते हैं।

जन्मलग्नमें शुक्र और चन्द्रके रहनेपर शुभ फलकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार ये दोनों ग्रह द्वितीय भावमें रहनेपर भी

शुभ फल प्रदान करते हैं। तृतीय भावमें स्थित चन्द्र, बुध, शुक्र और बृहस्पति, चतुर्थ भावमें मंगल, शनि, चन्द्र, सूर्य और बुध श्रेष्ठ होते हैं। पञ्चम भावमें शुक्र, बृहस्पति, चन्द्रमा और केतुके रहनेपर शुभ होता है। षष्ठ भावमें शनि, सूर्य और मंगल, सप्तम भावमें बृहस्पति तथा चन्द्रमा शुभ हैं। इसी प्रकार अष्टम भावमें बुध और शुक्र तथा नवम भावमें स्थित गुरु शुभ फल देनेवाला है। जन्मके दशम भावमें स्थित सूर्य, शनि एवं चन्द्रमा तथा एकादश भावमें सभी ग्रह शुभ फल देते हैं। ऐसे ही जन्मके द्वादश भावमें स्थित बुध और शुक्र सब प्रकारके सुखोंको प्रदान करते हैं।

सिंहके साथ मकर, कन्याके साथ मेष, तुलाके साथ मीन, कुम्भके साथ कर्क, धनुके साथ वृष और मिथुनके साथ वृश्चिकराशिका योग श्रेष्ठ होता है। यह षडष्टक योग है। यह योग प्रीतिकरक होता है<sup>१</sup>, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय ६१)

## लग्न-फल, राशियोंके चर-स्थिर आदि भेद, ग्रहोंका स्वभाव तथा सात वारोंमें किये जाने योग्य प्रशस्त कार्य

श्रीहरिने कहा—हे शिव! सूर्य उदयकालसे मेघादि राशियोंपर अवस्थित रहते हैं। ये दिनमें क्रमशः छः राशियोंको पारकर रात्रिमें शेष छः राशियोंको पार करते हैं।

मेघलग्नमें कन्याका जन्म होनेपर वह कन्या होती है। वृषलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या कामिनी होती है, मिथुन-लग्नवाली सौभाग्यशालिनी तथा कर्कलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या वेश्या होती है। सिंहलग्नमें जन्म-प्राप्त कन्या अल्पपुत्रवाली, कन्यालग्नवाली रूपसे सम्पन्न, तुलालग्नवाली रूप और ऐश्वर्यसे युक्त तथा वृश्चिकलग्नवाली कर्कश स्वभावकी होती है। धनुलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या सौभाग्यवती तथा मकरलग्नवाली विम्ब पुरुषोंके साथ गमन करनेवाली होती है। कुम्भलग्नमें जन्म-प्राप्त कन्या अल्पपुत्रों तथा मीनलग्नवाली वैराग्ययुक्त होती है<sup>१</sup>।

तुला, कर्क, मेष और मकर—ये चार राशियाँ हैं, इनमें यात्रादि चर कार्य करने चाहिये। सिंह, वृष, कुम्भ और वृश्चिक स्थिर राशि हैं। इनमें स्थिर कार्य करने चाहिये। कन्या, धनु, मीन एवं मिथुनराशि द्विस्वभावकी होती हैं। विद्वान् व्यक्तिको इन राशियोंमें द्विस्वभावसे युक्त कर्म करने चाहिये। यात्रा चरलग्नमें तथा गृह-प्रवेशादिका कार्य स्थिरलग्नमें करना चाहिये। देवताओंकी स्थापना और वैवाहिक संस्कारको द्विस्वभावके लग्नमें करना उच्यम्कर है।

हे वृषभध्वज! प्रतिपदा, पक्षी तथा एकादशी तिथियाँ नन्दा मानी जाती हैं। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियाँ भद्रा कही गयी हैं। तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ जया कही गयी हैं। चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी—ये तीन

१-यहाँ षडष्टक योगकी शुभ बताया गया है, किन्तु मूलजन्मसे वा-कर्कके मेलपर रात्रिमें यह षडष्टक योग अशुभ माना गया है। वर या वधूकी परस्पर जन्म-राशि एक-दूसरेसे छठी या आठवीं होना ही षडष्टक योग है। अर्थात् यदि एककी सिंह राशि हो और दूसरेकी मकरराशि तो ये राशियाँ गणना करनेपर एक-दूसरेसे छठी या आठवीं पड़ेगी, ऐसे ही मेष-कन्या, वृष-तुला, मिथुन-वृश्चिक, कर्क-धनु आदिके विषयमें खगोलशास्त्र चाहिये। प्रायः ऐसेमें विवाहादि नहीं किये जाते। षडष्टकके सम्बन्ध ही द्विदशक योग तथा नवम-पञ्चम योगपर भी विचार किया जाता है।

२-ज्योतिष शास्त्रके अनुसार अन्य सभी योग एवं ग्रह-स्थितियोंके ध्यानमें रखकर ही इस फलपर विचार करना चाहिये। यहाँ दिग्दर्शनमात्र है।



रिक्ता तिथि हैं। ये शुभ कार्यके लिये वर्जित हैं।

सौम्य स्वभाववाला बुध ग्रह चर स्वभाव है। गुरु क्षिप्र, शुक्र मृदु और रवि ध्रुव स्वभावका है। शनि दारुण, मंगल उग्र तथा चन्द्रको समस्वभावका जानना चाहिये।

चर और क्षिप्र स्वभाववाले (अर्थात् बुध एवं बृहस्पति) वारमें यात्रा करनी चाहिये तथा मृदु और ध्रुव स्वभावसे संयुक्त शुक्र अथवा रविवारको गृह-प्रवेशादिका कार्य करना चाहिये। दारुण और उग्र स्वभाववाले शनि तथा मंगलवारको विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषासे क्षत्रियादि वीरोंको युद्धके लिये प्रस्थान करना चाहिये।

राज्याभिषेक और अग्निकार्य सोमवारको प्रशस्त

माना गया है। सोमवारमें लिपार्थका कार्य एवं गृहका शुभारम्भ करना श्रेयस्कर है। मंगलवारको सेनापतिका पद-भार वहन करना, शौर्य, परक्रमका कार्य तथा शस्त्राभ्यासका प्रारम्भ करना शुभ है। बुधके दिन किसी कार्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना, मन्त्रणा करना और यात्रा करना सफलतादायक माना गया है। बृहस्पतिवारको वेदपाठ, देवपूजा, वस्त्र तथा अलंकारादि धारणके कार्य करने चाहिये। शुक्रवारको कन्यादान, गजारोहण तथा स्वीसहवास उचित है। शनिवारको गृहारम्भ, गृहप्रवेश और गजबन्धनके कार्य शुभ माने गये हैं।

(अध्याय ६२)

## सामुद्रिकशास्त्रके अनुसार स्त्री-पुरुषके शुभाशुभ लक्षण, मस्तक एवं हस्तरेखासे आयुका परिज्ञान

श्रीहरिने कहा—हे शिव! अब मैं स्त्री-पुरुषके लक्षणोंका वर्णन संक्षेपमें कर रहा हूँ, आप सुनै।

जिनके हाथ-पैरके तल पसीनेसे रहित हों, कमलके भीतरी भागकी तरह मृदु एवं रक्त हों, अँगुलियाँ सटी हुई हों, नाखून तबिके वर्णके समान थोड़े रक्त हों, पैर सुन्दर गुल्फवाले, नसोंसे रहित और कूर्मके समान उन्नत हों, उन्हें नृपश्रेष्ठ समझना चाहिये।

कृश एवं थोड़ा पीलापन लिये, श्वेत नखवाले, वक्र, तथा नसोंसे भरे हुए और विरल अँगुलियोंसे युक्त तूपांका चरणोंवाले मनुष्य दुःखी एवं दरिद्र होते हैं।

अल्परोमसे युक्त, गलशृण्डके समान सुन्दर जंघा-प्रदेश तथा एक-एक रोमसे भरे हुए रोमकूपोंवाला शरीर राजाओं और महात्माओंका माना गया है। प्रत्येक रोमकूपमें दो-दो रोम होनेपर मनुष्य ओजिष्ठ या पण्डित होता है। तीन-तीन रोमोंसे व्याप्त रोमकूप दरिद्रोंके होते हैं।

मांसरहित, अत्यन्त कृश जानुपुगलवाला मनुष्य रोमी होता है। समान उदरभागसे सुशोभित मनुष्य अतिशय भोगसे समृद्ध और कुम्भके सदृश उन्नत या सर्पके समान उदरभागवाले लोग अत्यन्त दरिद्र होते हैं।

रेखाओंके द्वारा आयुका निर्णय किया जाता है। जिसके ललाटपर समान आकारवाली तीन रेखाएँ स्पष्ट दिखायी देती हैं, वह पुत्रादिसे सम्पन्न रहकर सुखपूर्वक साठ वर्षतक जीवित रहता है। मस्तकपर दो रेखाओंके दृष्टिगोचर होनेपर मनुष्यकी आयु चालीस वर्षकी होती है। एक रेखाके होनेपर उस मनुष्यका जीवन बीस वर्ष मानना चाहिये, किन्तु कर्णपर्यन्त एक रेखाके होनेपर वह शतायु होता है।

ललाटपर जानतक विस्तृत दो रेखाओंके होनेसे मनुष्यकी आयु सत्तर वर्ष तथा वैंसी ही तीन रेखाओंके रहनेपर उसकी आयु साठ वर्ष होती है। ललाटपर रेखाओंकी व्यक्त (प्रकट)-अव्यक्त (अप्रकट) स्थिति होनेपर मनुष्य बीस वर्षकी अल्पायुको ही प्राप्त करता है। रेखाविहीन ललाटके होनेपर मनुष्य चालीस वर्षतक जीवित रहता है। रेखाओंके छिन्न-भिन्न रहनेपर मनुष्यकी अकालमृत्यु होती है।

जिसके मस्तकपर त्रिशूल अथवा फरसेके समान चिह्न दिखायी देता है, वह धन-पुत्रादिसे परिपूर्ण होकर सौ वर्षतक जीवित रहता है।

हे रुद्र! तर्जनी और मध्यमा अंगुलीके मध्यभागतक आयुरेखाके पहुँचनेपर मनुष्य शतायु होता है। अंगुष्ठके

मूलभागसे निकलनेवाली प्रथम रेखा ज्ञानरेखा है। मध्यमा अंगुलीके मूलसे जो रेखा जाती है, वह आयुरेखा है। यह रेखा कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे निकलकर मध्यमाके मूल भागको पार करती है। यदि यह रेखा विच्छिन्न या किसी अन्य रेखासे विभक्त नहीं होती है तो ऐसे व्यक्तिकी आयु सौ वर्ष होती है।

हे रुद्र! जिसके हाथमें यह आयुरेखा स्पष्ट दिखायी देती है। उसकी आयु सौ वर्ष अवश्य होती है, इसमें संदेह नहीं। जो रेखा कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे होकर मध्यमा अंगुलीके मूलतक विस्तारको प्राप्त करती है, वह रेखा मनुष्यको साठ वर्ष आयु प्रदान करनेमें सक्षम होती है। (अध्याय ६३)

## स्त्रियोंके शुभाशुभ लक्षण

श्रीहरिने कहा—जिस कन्याके केश पुँपरासे, मुख मण्डलाकार अर्थात् गोल एवं नाभि दक्षिणावर्त होती है, वह कुलकी वृद्धि करनेवाली होती है। जो स्वर्णसदृश आभूषणवाली होती है, जिसके हाथ लाल कमलके समान सुन्दर होते हैं, वह हजारों स्त्रियोंमें अद्वितीय तथा पतिव्रता होती है।

जो कन्या वक्र केशवाली और गोल नेत्रवासी होती है, वह निश्चित ही दुःख भोगनेवाली होती है तथा उमका पति शीघ्र ही मर जाता है।

पूर्णचन्द्रके सदृश मुखमण्डलसे सुशोभित, कालमूर्त्यके समान लाल-लाल कानिवाली, विशाल नेत्रोंमें युक्त, बिम्बाफलकी भाँति ओष्ठवाली कन्या धिरकालतक सुखका उपभोग करती है। हस्ततलमें बहुत-सी रेखाओंके होनेपर कष्ट तथा आप्त रेखाओंके होनेपर वह धनहीनताका दुःख भोगती है। हाथमें रक्तवर्णकी रेखाओंके होनेसे वह सुखी जीवन व्यतीत करती है, किंतु कृष्णवर्णकी रेखाओंके होनेपर वह दास्यवृत्तिवाली दूतिका जीवन व्यतीत करती है।

अच्छी स्त्री वह है, जो पतिके कार्योंमें मन्त्रीके समान परामर्श देनेवाली होती है। सहयोगमें मित्रके समान कर्तव्य करती है। स्नेहके व्यवहारमें भार्या अथवा माता तथा शयन-कालमें वेश्याके समान सुख प्रदान करती है।

जिस कन्याके हाथमें अंकुश, कुण्डल और चक्रके चिह्न विद्यमान रहते हैं, वह पुत्रसे सम्पन्न होती है और राजाको पतिके रूपमें वरण करती है।

जिस स्त्रीके दोनों पाश्वर्क और स्तन-प्रदेश रोमसमन्वित होते हैं तथा अधरोष्ठ-भाग ऊँचा उठा हुआ होता है, वह

निश्चित ही शीघ्र पतिका नाश करनेवाली होती है। जिसके हाथमें प्राकार और तोरणकी रेखाएँ दिखायी देती हैं, वह दासकुलमें भी उत्पन्न होकर रानीके पदको प्राप्त करती है। जिस कन्याकी नाभि ऊपरकी ओर उठी हुई, मण्डलाकार एवं कपिलवर्णकी रोमावलिसे आवृत रहती है, वह कन्या राजकुलमें उत्पन्न होकर दासीकी वृत्तिसे जीवनयापन करती है।

जिस स्त्रीके चलनेपर दोनों पैरकी अनामिका तथा अंगुष्ठ पृथिवीतलका स्पर्श नहीं करते हैं, वह शीघ्र ही पतिका नाश करती है तथा स्वयं स्वेच्छाचारपूर्वक जीवन बिजानेवाली होती है। जिस स्त्रीके चलनेसे पृथिवीमें कम्पन हो उठता है, वह शीघ्र ही पतिका नाश करके स्वेच्छाचारिणी बन जाती है।

सुन्दर मनोहारी नेत्रोंके होनेसे स्त्री सौभाग्यशालिनी, उज्ज्वल चमकते हुए दाँतोंके होनेपर उत्तम भोजन प्राप्त करनेवाली, शरीरकी तथा सुन्दर एवं कोमल होनेसे उत्तम प्रकारकी शय्या तथा कोमल स्निग्ध चरणोंके होनेपर वह श्रेष्ठ वाहनका सुख प्राप्त करती है।

चिक्ने, ऊँचे उठे हुए ताम्रवर्णके समान लाल-लाल नखोंसे युक्त, मत्स्य, अंकुश, पद्म, चक्र तथा साङ्गल (हल)-चिह्नसे सुशोभित एवं पसीनेसे रहित और कोमल तलवाले स्त्रीके चरण सौभाग्यशाली होते हैं।

सुन्दर रोमविहीन जंघा, गजशुण्डके सदृश ऊरु, पीपलपत्रके समान विशाल उत्तम गुह्यभाग, दक्षिणावर्त गम्भीर नाभि, रोमरहित त्रिवली और हृदयपर सुशोभित रोमरहित स्तन-प्रदेश—ये उत्तम स्त्रीके शुभ लक्षण हैं। (अध्याय ६४)

## स्त्री एवं पुरुषोंके शुभाशुभ लक्षण

श्रीहरिने कहा—अब मैं सामुद्रिकशास्त्रमें कहे गये स्त्री और पुरुषके शुभाशुभ लक्षणोंका वर्णन करता हूँ, जिन्हें जान लेनेसे भूत तथा भविष्यका ज्ञान हो जाता है।

मार्गमें गमन करनेपर विषम रूपसे पहनेवाले, कष्टप्र वर्णसे युक्त विचित्र प्रकारके बने हुए चरण वंशका नाश करते हैं। शङ्खवाकार चरणोंसे युक्त मनुष्य ब्रह्महत्या करता है तथा अगम्या स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी इच्छा रखता है।

विरल रोमभागयुक्त जंघा तथा हाथोंके सूँडके समान सुन्दर ऊरु भागोंवाले अंग राजाके शरीरमें सुशोभित होते हैं।

दरिद्रकी जंघाएँ सियाहीकी जंघाओंके समान होती हैं। कुंचित केशराशिवाले मनुष्यकी मृत्यु विदेशमें होती है।

मांसरहित जानु-प्रदेशवाला व्यक्ति सौभाग्यशाली होता है। अल्प और छोटी-छोटी जानुओंके होनेसे मनुष्य स्त्री-प्रेमी तथा विशाल विकटाकार होनेपर दरिद्र होता है। मांससे भरपूर जानुओंके होनेपर मनुष्यकी सम्पत्ति प्राप्ति होती है। बड़ी जानुओंके होनेपर मनुष्य दीर्घायु होता है।

मांसल स्फिक् (कूल्हा)-प्रदेशवाला व्यक्ति सुखी तथा सिंहके समान स्फिक् होनेपर वह राजपुरुष माना गया है। इसी प्रकार सिंहके सदृश कटिप्रदेशके होनेपर वह राजा होता है, किंतु कपिके समान कटिभागवाला व्यक्ति निर्धन होता है।

समान कक्ष (कौछर)-प्रदेशवाले अत्यधिक भोग-विलासी होते हैं। निम्न कक्षाओंवाले धनहीन तथा उन्नत एवं विषम कक्षाओंवाले कुटिल होते हैं।

मत्स्यके समान उदरवाले प्रचुर धनवान् होते हैं। विस्तीर्ण नाभिप्रदेशसे सुशोभित जन सुखी एवं अत्यधिक गहरी नाभिके होनेपर कष्ट भोगनेवाले होते हैं।

त्रिवलीके मध्यभागमें नाभिके अवस्थित होनेपर प्राणी शूलरोगसे ग्रसित होते हैं। वामावर्त नाभिके होनेपर शक्तिसम्पन्न और दक्षिणावर्त होनेपर मेधावी होते हैं। पार्श्वदेशमें नाभिके विस्तृत होनेसे मनुष्य चिरंजीवी, उन्नत होनेपर ऐश्वर्यशाली, अभ्युदय होनेपर गोधनसे सम्पन्न एवं पराक्रमिकाके सदृश सुन्दर होनेपर वे राजत्वको प्राप्त करते हैं।

उदरभागपर एक बलिके रहनेपर मनुष्य शतयु होता है। दो बलियोंके होनेसे वह ऐश्वर्यका भोग करनेवाला तथा

त्रिवलियोंके होनेपर राजा या आचार्यकी पदवीको प्राप्त करता है। सरल बलियोंवाला मनुष्य सुखी होता है। वक्र बलिवाला व्यक्ति अगम्यागामी होता है।

जिसके दोनों पार्श्वभाग मांसल होते हैं, वह राजा होता है। मृदु, कोमल, सुन्दर और समभागकी हूरियोंपर अवस्थित दक्षिणावर्तीय रोमराशियोंसे सुशोभित व्यक्ति भी राजा होते हैं। यदि उदर-प्रदेशपर इन लक्षणोंके विपरीत रोम-राशियाँ होती हैं तो ऐसे मनुष्य दूत-कर्म करनेवाले, निर्धन तथा सुखसे रहित होते हैं।

समुन्नत, मांसल तथा कम्पनरहित विशाल वक्षःस्थल राजाओंका होता है। अधम जनोका वक्षःस्थल तो गर्दभोंकी रोमराशिके समान, कर्कश तथा रोमावलिवाँसे युक्त स्पष्ट परिशिद्धित होनेवाली नसोंसे व्याप्त रहता है।

समतल वक्षःस्थलवाले मनुष्य धन-सम्पन्न होते हैं। पीन (मांसल) वक्षःस्थलोंसे युक्त प्राणी शक्तिसम्पन्न होता है। विषम वक्षःस्थलके होनेपर मनुष्य निर्धन होता है और उसकी मृत्यु शस्त्राघातसे होती है।

स्कन्ध-प्रदेशके सन्धिस्थान (पखुए)-में विषमता तथा अस्मि-संलग्नताके होनेपर भी मनुष्य निर्धन होते हैं। उन्नत स्कन्ध-प्रदेशके रहनेसे व्यक्ति भोगी, निम्न होनेपर धनहीन तथा स्थूल होनेपर धनी होते हैं।

घिपटाकार कण्ठसे युक्त मनुष्य निर्धन, शुष्क एवं उन्नत शिराओंसे व्याप्त गलेवाला सुखी होता है। माँहपके सदृश घीवावाला खोर तथा मृगके समान कण्ठवाला शस्त्रोंमें पारंगत होता है। शंखके समान घीवावाला मनुष्य राजा और लम्बे कण्ठवाला बहुत भोजन करनेवाला होता है।

रोमरहित एवं मुड़ा हुआ पुष्ट-प्रदेश शुभ तथा उसके विपरीत रहनेपर अशुभ माना गया है।

पीपल-पत्रके सदृश, मुगन्धित तथा मृगके सदृश रोमावलियोंवाली कक्षाएँ उत्तम होती हैं। इसके विपरीत कक्षाओंके जो लक्षण होते हैं, वे निर्धनोंकी दरिद्रताके कारण हैं।

मांसल, स्निग्ध, विशाल, बलिष्ठ, वृत्ताकार तथा जानुपर्यन्त लम्बी सुन्दर भुजाएँ राजाकी होती हैं। प्रचुर रोमावलियोंसे

युक्त छोटे-छोटे हाथ निर्धनके होते हैं। हाथोंकी सुण्डके समान सुन्दर भुजाएँ श्रेष्ठ मानी गयी हैं।

भवनमें वायु-प्रवेशके लिये बने द्वारके समान बनी हुई अंगुलियाँ शुभ होती हैं। मेधावी जनोंकी अंगुलियाँ छोटी होती हैं। चिपटाकार अंगुलियाँ भूष्योंमें पायी जाती हैं। स्थूल अंगुलियोंके होनेपर मनुष्य निर्धन होते हैं। जब मनुष्यकी अंगुलियाँ कृश होती हैं तो वे विनयी होते हैं। बन्दरके सदृश हाथके होनेपर मनुष्य निर्धन और बायके समान हाथ होनेपर बलवान् होते हैं।

करतल भागके निम्न होनेसे मनुष्य पिताके द्वारा संचित धनको नष्ट करनेवाले होते हैं। मणिवन्धके सुगठित, शिष्ट तथा सुगन्धयुक्त होनेपर व्यक्तियोंको राजपदकी प्राप्ति होती है। फटे-फटे कर-भागसे युक्त, शब्द करनेवाले मणिवन्धके रहनेसे मनुष्य धनहीन और नीच प्रकृतिके माने जाते हैं।

संवृत अर्थात् गोलाकार एवं गहरे करतलोंके होनेसे मनुष्योंको धनवान् कहा गया है। उन्नत करतलोंके होनेपर व्यक्ति दानी और विषम भागवाले व्यक्ति कठोर होते हैं। लाक्षारसके समान करतलोंके होनेसे प्राणी राजा होते हैं। पीतवर्णवाले करतलोंमें युक्त व्यक्ति परस्त्रीके साथ रमण करनेवाले होते हैं। जिनके हाथ और तल-प्रदेश रुखे हैं, वे मनुष्य निर्धन होते हैं।

तुष (भूसी)-के समान रंगसे युक्त नखवाले लोग नपुंसक, कुटिल तथा फटे हुए नखवाले धनहीन होते हैं। विवर्ण नखवाले दूसरेके साथ तर्क करनेवाले होते हैं।

ताम्रवर्णके सदृश रक्ताभ नखवाले मनुष्य राजा होते हैं। यव-चिह्नसे युक्त अंगुष्ठवाले व्यक्ति अत्यधिक धन-वैभवसे युक्त होते हैं। अंगुष्ठके मूलभागमें यव-चिह्नके होनेसे व्यक्ति पुत्रवान् होता है। लम्बे पर्वोंसे युक्त अंगुलियोंके होनेपर दीर्घायु तथा पुत्र-पौत्रादिसे परिपूर्ण होता है, किन्तु विरल अंगुलियोंवाला व्यक्ति निर्धन होता है। सघन अंगुलियोंके होनेसे मनुष्य धन-सम्पन्न होता है। मणिवन्धसे निकलकर तीन रेखाएँ जिसके करतल भागको पार कर जाती हैं, वह राजा होता है।

दो मत्स्याङ्कित करतलभागवाला पुरुष यज्ञकर्ता एवं दानी होता है। यज्ञाकार चिह्नवाले करतल धनीजनोंके होते हैं। विद्वान्का करतलभाग मोन-पुच्छके चिह्नसे अङ्कित होता है।

राजाके करतलमें शङ्ख, छत्र, शिविका (डोली), गज और पद्माकार चिह्न रहते हैं। अनुलनीय ऐश्वर्यसम्पन्न राजाके करतलमें कुम्भ, अङ्गुश, पताका तथा मृणालके समान चिह्न रहते हैं। गोधनके स्वामीजनोंके करतलोंमें रस्सीके चिह्न होते हैं। जिसके हाथमें स्वस्तिकका चिह्न होता है, वह सम्राट् होता है। राजाके हाथमें चक्र, कृपाण, तोमर, धनुष और भालेके आकारके चिह्न होते हैं।

आंखलीके चिह्नसे युक्त व्यक्ति यज्ञादिक कर्मकाण्डोंमें निष्कृत होता है। जिनके हाथोंमें वेदिकाकार रेखा होती है, वे अग्निहोत्री होते हैं। वापी, देवकुल्या तथा त्रिकोण रेखाओंके रहनेपर मनुष्य धार्मिक होता है।

अंगुष्ठ-मूलतक रेखाके होनेसे व्यक्ति पुत्रवान् होते हैं। यदि वे रेखाएँ सूक्ष्म होती हैं तो उन्हें कन्याएँ होती हैं। कनिष्ठिकाके मूलसे निकलकर तर्जनीके मूलतक रेखाका विस्तार होनेपर मनुष्य सत्तपु होता है, किन्तु किसी स्थानपर उसके विच्छिन्न होनेपर प्राणीकी वृक्षसे गिरकर मृत्युका भय बना रहता है। बहुत-सी रेखाओंके होनेसे मनुष्य दरिद्र होते हैं। विष्णुक (दुङ्गरी)-के कृश होनेपर भी मनुष्योंको धनहीन समझना चाहिये, किन्तु जिनकी दुङ्गियाँ मांसल होती हैं, वे धन-सम्पदाओंसे परिपूर्ण होते हैं। अरुणाभ, बिम्बाफलके समान सुन्दर अधरोंसे सुतोषित मुख राजाओंका माना गया है; किन्तु जिसके ओष्ठ रुखे, खण्डित, फटे हुए तथा विषम होते हैं, वे निर्धन होते हैं।

स्निग्ध (चिकने), चमकते हुए, सघन एवं सभान भागवाले सुन्दर लक्षण दौंठोंका होना शुभ है। रक्तवर्णकी समतल, चिकनी एवं दीर्घ जिह्वा श्रेष्ठ होती है। राजाओंका मुख कठोर, सम, सौम्य, गोल, मलरहित तथा स्निग्ध होता है। दुःख भोगनेवाले लोगोंमें इन लक्षणोंके विपरीत लक्षण होते हैं। कुत्सित एवं भाग्यहीनोंकी स्त्रीमुखी पुत्र प्राप्त होता है। धनी लोगोंका मुख गोलाकार तथा निर्धनोंका मुख लम्बा होता है। पापकर्माका मुख भयाक्रान्त होता है। भूतोंके मुख चौकोर, पुत्रहीनोंके निम्न एवं कंजूसोंके छोटे मुख होते हैं। भोगीजनोंका मुख सुन्दर, आभामय, मूँछोंसे युक्त, स्निग्ध, शुभ तथा कोमल होता है।

चौर-वृत्तिवाले व्यक्ति निस्तेज, मुरझायी हुई लालवर्णकी दाढ़ी और मूँछोंवाले होते हैं। रक्तवर्णके थोड़े तथा कड़े बालयुक्त दाढ़ीवाले और छोटे-छोटे कानोंवाले मनुष्योंकी



मृत्यु पापकर्म करनेसे होती है। मांसरहित, चिपटे कानोंवाले लोग भोगी और अत्यन्त छोटे-छोटे कानोंसे युक्त मनुष्य कंजूस होते हैं। शङ्खवाकार कानोंके होनेपर मनुष्य राजा होता है तथा रोमरुशसे भरे होनेपर उसे क्षीण आयुकी प्राप्ति होती है। बड़े कानोंवाले धनी अथवा राजा माने जाते हैं। स्निग्ध, विस्तृत, मांसल तथा दीर्घ कानोंवाले राजा होते हैं। निम्न गण्डस्थलवाला भोगी और पूर्ण सुडौल एवं सुन्दर होनेपर मनुष्य मन्त्री होता है।

सुगोकी नासिकाके समान सुन्दर नासिकावाला व्यक्ति सुखी और शुष्क नासिकावाला दीर्घजीवी होता है। नासिकाका अग्रभाग छिन्न तथा कूपके समान नासिकाके होनेपर मनुष्य अगम्या स्त्रीके साथ सहवास करता है। दीर्घ नासिकाके रहनेपर सौभाग्यवान् एवं आर्कुचित अर्थात् टेढ़ी नासिका होनेसे व्यक्ति चौरकार्यमें प्रवृत्त होता है। नासिकाके चिपटी होनेपर मनुष्यकी अकालमृत्यु होती है। भाग्यवान्की नासिका छोटी होती है। चक्रवर्ती सम्राट्की नासिकामें छोटे-छोटे गोल और सीधे छिद्र होते हैं। दक्षिणभागकी ओर नासिकाके वक्र होनेपर मनुष्योंमें क्रूर-स्वभाव होता है।

वक्र उपानाभागोंसे युक्त तथा पद्म-पत्रके समान सुन्दर नेत्र सुखी लोगोंके होते हैं। बिल्लीके सदृश नेत्रोंके होनेपर मनुष्य पापत्मा तथा मधु-पिण्डलवर्णवाले नेत्रोंके होनेपर वह दुरात्मा होता है। केकड़ेके नेत्रोंकी भाँति नेत्र होनेसे व्यक्ति क्रूर और हरितवर्णके नेत्रवाले पापकर्ममें अनुरक्त होते हैं। वक्र नेत्र बलवान् पुरुषोंका लक्षण है। हाथीके समान नेत्रोंवाले मनुष्य सेनानी होते हैं। गम्भीर नेत्रोंवाला पुरुष राजा तथा स्मूल नेत्रोंवाला मन्त्री होता है। नीलकमलके सदृश नेत्रोंके होनेपर व्यक्ति विद्वान् तथा श्यामवर्णके नेत्रवाले सौभाग्यशाली होते हैं। कृष्णवर्णके तारक चिन्दुओंसे युक्त नेत्रोंवाले पुरुषोंमें उत्पादन-क्षमता होती है। मण्डलाकार नेत्रोंके होनेपर व्यक्ति पापी तथा दैन्यभावयुक्त नेत्रवाले मनुष्य दरिद्र होते हैं। सुन्दर एवं विशाल नेत्रोंवाले संसारमें विभिन्न प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हैं। जिनके नेत्र अधिक उन्नत अर्थात् ऊपरकी ओर अधिक उठे होते हैं, वे अल्पायु होते हैं। विशाल और उन्नत नेत्रोंके होनेपर मनुष्य सुखी होते हैं।

विषम भीहोंवाले दरिद्र होते हैं तथा दीर्घ, सघन, एक-

दूसरेसे संयुक्त, बालचन्द्रके सदृश पतले, वक्र एवं उन्नत सुन्दर भीहोंसे सुशोभित प्राणो धन-वैभवसे सम्पन्न होते हैं। मध्यभागमें कटी हुई भीहोंके होनेपर मनुष्य निर्धन तथा झुकी हुई भीहोंके होनेसे अगम्या स्त्रियोंमें रत रहनेवाले और पुत्रसे रहित होते हैं।

उन्नत, विशाल, शङ्खाकार एवं विषम मस्तक होनेपर पुरुषोंमें निर्धनता और अर्द्धचन्द्राकार ललाटके होनेपर वे धनसम्पन्नासे परिपूर्ण रहते हैं। सौपके समान आभावाले तथा विशाल मस्तकवाले आचार्यके पदको सुशोभित करते हैं, जिनके मस्तकोंपर शिराएँ स्पष्ट प्रतीत होती रहती हैं, वे पापकर्ममें लगे रहते हैं। उन्नत शिराओंसे युक्त स्वस्तिकाकार, सुन्दर ललाटके होनेपर मनुष्य धनवान् तथा निम्न ललाटके होनेपर बन्दी बन्धवे जानेयोग्य होते हैं और क्रूर कर्मोंको करते हैं। गोल ललाटवाले कृपण और उन्नत भालवाले राजा होते हैं।

सोर्गोंका अनुरहित, दीनारहित, स्निग्ध रुदन मङ्गलकारी होता है तथा अविरल अनुभारवाला, दैन्यभावको प्रकट करता हुआ रुद्ध रुदन सुखकारी होता है।

कम्पनरहित हँसी श्रेष्ठ होती है। आँख मूँदकर हँसनेवाला व्यक्ति पापी होता है। बार-बार हँसनेवाला दुष्ट होता है और उन्मत्तकी हँसी अनेक प्रकारकी होती है।

सौ वर्षतक जीवन प्राप्त करनेवाले लोगोंके मस्तकपर तीन रेखाएँ होती हैं। मस्तकपर चार रेखाओंके होनेपर मनुष्य राजा होता है और उसकी आयु पंचानव वर्षतक होती है। रेखारहित ललाटवाला व्यक्ति नव्ये वर्ष जीवित रहता है। विच्छिन्न रेखाओंसे व्याप्त मस्तकवाले पुरुष लम्पट होते हैं। मस्तकपर केशपर्यन्त रेखाओंके होनेसे मनुष्यकी आयु अस्सी वर्षकी होती है। पाँच, छः अथवा सात रेखाओंके होनेसे प्राणीकी आयु पचास वर्ष तथा सातसे अधिक रेखाओंके होनेपर चालीस वर्षकी आयु माननी चाहिये। मस्तकपर रेखाओंकी वक्रता एवं भीहपर्यन्त स्थिति होनेसे पुरुष तीस वर्ष तथा बौद्ध और वक्र होनेपर बीस वर्षकी अल्पायुकी प्राप्ति करते हैं। रेखाओंके क्षुद्र होनेपर मनुष्य अल्पायु होता है।

उच्चकार सिरवाले मनुष्य राजा और निम्न सिरवाले धनी होते हैं। चिपटे सिरसे युक्त पुरुषोंके पिताकी मृत्यु शीघ्र होती

है। मण्डलाकार सिर होनेपर व्यक्ति गौ आदि प्राणियोंसे सम्पन्न होते हैं। घटाकार मूर्धाभागे होनेपर मनुष्य अपने अभिरुचि रखनेवाला तथा भनहीन होता है।

काले-काले घुँघराले, सिग्ध, एक छिद्रमें एक-एक उत्पन्न, अभिन्न अग्रभागवाले, अत्यधिक, न छोटे न बड़े, सुन्दर केशोंवाले राजा होते हैं। एक छिद्रमें अनेक बालवाले, विषम, स्थूलाग्र तथा कफिलवर्णके केशोंसे युक्त पुरुष निर्धन होते हैं। अत्यन्त कुटिल, सघन एवं काले बालवाले भी निर्धन होते हैं।

मनुष्यके जो अङ्ग अतिशय रुक्ष, शिराओंसे व्याप्त तथा मांसरहित होते हैं, वे सभी अशुभ हैं। यदि वे अङ्ग इसके विपरीत होते हैं तो उन्हें शुभ मानना चाहिये।

मानव-शरीरमें तीन अङ्ग विशाल और तीन अङ्ग गम्भीर, पाँच अङ्ग दीर्घ तथा सूक्ष्म, छः अङ्ग उन्नत, चार हस्त एवं सात अङ्ग रक्तवर्णके होनेपर वह राजा होता है।

नाभि, स्वर तथा सत्त्व (स्वभाव)<sup>१</sup>—ये तीन गम्भीर होने चाहिये। ललाट, मुख तथा वक्षःस्थल विशाल, नेत्र, कक्षा (कौंछ), नासिका तथा कृकाटिका अर्थात् गरदनका उठा हुआ भाग, सिर और गरदनका जोड़—इन छःको उन्नत होना चाहिये, ऐसा होनेपर मनुष्य राजा होता है। जंघा, ग्रीवा, लिङ्ग तथा पुष्पभाग—ये चार अङ्ग हस्त होने चाहिये। करतल, तालु, अधर और नख—ये चार रक्तवर्ण होने चाहिये। नेत्रान्तभाग चरणतल, जिह्वा और दोनों ओष्ठ—ये पाँच सूक्ष्म होने चाहिये। दाँत, अँगुली, पर्व, नख, केश और त्वचा—ये पाँच अङ्ग दीर्घ होनेपर शुभकारी हैं। दोनों स्तनोंका मध्यभाग, दोनों भुजाएँ, दाँत, नेत्र और नासिकाका भी दीर्घ होना शुभ है।

इस प्रकार मनुष्योंका लक्षण कहकर अब स्त्रियोंका लक्षण कह रहा हैं।

रानीके दोनों चरण सिग्ध, समान पदतलवाले, ताम्रवर्णकी आभासे सुशोभित नखोंसे युक्त, सघन अँगुलियोंवाले तथा उन्नत अग्रभागवाले होते हैं। ऐसी स्त्रीको प्राप्तकर मनुष्य राजा बन जाता है।

गूढ गुल्फ-प्रदेशसे युक्त पद्मपत्रके समान चरणतल शुभ होते हैं। जिसके चरणतलोंमें पसीना नहीं छूटता है और वे कोमल होते हैं, उनमें मत्स्य, अंकुश, ध्वज, वक्र, पद्म तथा हलका चिह्न हो तो वह रानी होती है। इन लक्षणोंसे रहित चरणवाली स्त्री दासी होती है। स्त्रियोंकी रोमरहित, सुन्दर, शिराविहीन, गोल-गोल जंघाएँ शुभ हैं। सन्धिस्थान तथा दोनों जानु समान होने चाहिये, ऐसा शुभ होता है। गरुडगुण्डके सदृश, रोमरहित तथा समान भागवाले दोनों ऊरु श्रेष्ठ माने जाते हैं।

विस्तीर्ण, मांसल, गम्भीर, विशाल तथा दक्षिणावर्त नाभि तथा मध्यभागमें शिवालियाँ श्रेष्ठ होती हैं। स्त्रियोंके रोमरहित, विशाल, धरे हुए, सघन एवं समान भागवाले कटोर स्तन-प्रदेश शुभ हैं। रोमरहित, शङ्खके आकारवाली सुन्दर ग्रीवा प्रशस्त होती है। अरुणाभ अम्भरोष्ठवाला तथा चर्तुलाकार मांसल भरा हुआ मुख श्रेष्ठ होता है। कुन्द-पुष्पके समान दन्तपंक्ति तथा कोयलकी भाँति वाणी शुभ होती है, जो सदैव दक्षिण भावसे परिपूर्ण रहती है, उसमें लटका नहीं होती, अर्थात् इसीके समान मधुर शब्दोंका प्रयोग करके वह दूसरोंकी सुख प्रदान करती है, वही स्त्री श्रेष्ठ होती है। स्त्रियोंकी नासिका और नासिका-छिद्र समान होना मनोहर और मङ्गलदायी होता है।

स्त्रियोंके नीलकमलके समान नेत्र अच्छे होते हैं। बालचन्द्रके सदृश भीहोंका होना शुभ है, किन्तु उनका मोटा होना अच्छा नहीं है। उनका मस्तक अर्द्धचन्द्रके समान सुन्दर, समतल तथा रोमविहीन होना शुभ है।

सुन्दर, समान, मांसल एवं कोमल कान श्रेष्ठ होते हैं। स्त्रियोंके चिकने, नीलवर्णवाले, मृदु और घुँघराले केश प्रशस्त माने गये हैं। उनका सम आकारवाला सिर शुभ होता है। चरणतल अध्वज करतलमें अध्व, हस्ति, श्री, वृक्ष, यूप, वाण, यव, तोमर, ध्वज, चामर, माला, पर्वत, कुण्डल, वेदी, शङ्ख, छत्र, पद्म, स्वास्तिक, रथ तथा अङ्कुर आदि चिह्नवाली स्त्रियाँ राजवत्स्तथा होती हैं।

स्त्रियोंके मांसल मणिबन्धवाले तथा कमलदलके समान

हाथोंको शुभ माना जाता है। स्त्रियोंके करतलोंका न तो अधिक निम्न और न अधिक उन्नत होना अच्छा होता है। शुभ रेखाओंसे व्याप्त करतलवाली स्त्रियाँ आजीवन सधवा रहकर विभिन्न प्रकारके सुखोंका उपभोग करती हैं। हाथमें जो रेखा मणिकन्धसे निकलकर मध्यमा अँगुलीतक जाती है, वह ऊर्ध्वरेखा कही जाती है। ऐसी रेखा यदि स्त्री या पुरुषके करतल अथवा चरतलमें अवस्थित रहती है तो वे स्त्री या पुरुष राज्य अथवा अन्य प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हैं।

कनिष्ठिका अँगुलीके मूलसे निकलकर तर्जनी और मध्यमा अँगुलियोंके मध्यभागतक रेखाके पहुँचनेपर स्त्री या

पुरुषकी आयु सौ वर्षकी होती है। यदि इन अँगुलियोंके बीचतक आनेवाली रेखाका परिमाण उसकी अपेक्षा कम हो तो उसी अनुपातमें मनुष्यकी आयु भी कम होती है।

अङ्गुष्ठमूलक रेखाओंके रहनेपर स्त्री या पुरुष बहुत-से पुत्रों या कन्याओंवाले होते हैं। स्थान-स्थानपर आयुरेखाके छिन्न-भिन्न होनेसे मनुष्यकी आयु अल्प हो जाती है। यदि वह रेखा दीर्घ एवं अविच्छिन्न हो तो उस पुरुष अथवा स्त्रीको दीर्घायु माना जाता है। स्त्रियोंके विषयमें कहे गये थे सभी लक्षण शुभ हैं। इनके विपरीत लक्षणोंके होनेपर उन्हें अशुभ मानना चाहिये। (अध्याय ६५)

## चक्राङ्कित शालग्रामशिलाओंके विविध नाम, तीर्थमाहात्म्य तथा साठ संवत्सरोंके नाम

श्रीहरिने कहा—हे शिव! चक्राङ्कित शालग्राम-शिलाकी पूजा सब प्रकारके कल्याण-मङ्गल प्रदान करती है।

प्रथम शालग्राम-शिलाका नाम सुदर्शन है। (इसमें एक चक्रका चिह्न अङ्कित होता है।) दूसरी शिलाका नाम लक्ष्मीनारायण है। (इसमें दो चक्रोंके चिह्न होते हैं।) तीन चक्रोंवाली शिलाको अच्युत तथा चार चक्रोंवाली शिलाको चतुर्भुज कहा जाता है। इस प्रकार चक्रसमन्वित अन्य शालग्राम-शिलाओंको क्रमशः—वासुदेव, प्रद्युम्न, संकर्यण तथा पुरुषोत्तमके नामसे अभिहित किया गया है। नौ चक्रोंवाली शिलाको नवख्यूह और दस चक्रोंवाली शिलाको दशात्मक कहते हैं। एकादश चक्रोंसे युक्त शिलाको अनिरुद्ध एवं द्वादश चक्रोंसे समन्वित शिलाका नाम द्वादशात्मक है। उसके ऊपर चक्रोंकी चाहे जितनी संख्या हो, उनसे लक्षित शिलापूतिका नाम भगवान् अनन्त कहा गया है। जो शिलापूति सबसे सुन्दर हो, उसका पूजन करना चाहिये, ऐसी सुदर्शन मूर्तियों पूजित होनेपर सभी कामनाओंको पूर्ण करती हैं।

जहाँ शालग्राम और द्वारका-शिला रहती हैं और इन दोनों शिलाओंका जहाँ संगम है, वहाँ मुक्ति रहती है, इसमें संशय नहीं है—

शालग्रामशिला यत्र देवी द्वारवतीभवः।

उभयोः संगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः॥

(६६।५)

हे संकर। शालग्राम, द्वारका, नैमिष, पुष्कर, गया, वाराणसी, प्रयाग, कुश्कोष्ठ, सुकरक्षेत्र, गङ्गा, नर्मदा, चन्द्रभागा, सरस्वती, पुरुषोत्तमक्षेत्र तथा महाकालक्षेत्र अधिष्ठान उज्जयिनी—ये सभी तीर्थ सब प्रकारके पापोंका विनाश करनेवाले एवं भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं।<sup>१</sup>

प्रभव, विषय, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, विष्णु, चित्रभानु, स्वभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्यथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकार, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वासु, पराभव, प्लवंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिधावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, नल, पिंगल, काल, सिद्धार्थ, रौद्रि, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरेश्वरी, रक्षाक्ष, क्रोधन एवं अक्षय—ये साठ संवत्सर अपने नामके अनुसार शुभ और अशुभ फल प्रदान करनेवाले हैं। (अध्याय ६६)

१. शालग्रामो द्वारका च नैमिष पुष्कर गया। वाराणसी प्रयाग कुश्कोष्ठ च सुकरम्॥

गङ्गा च नर्मदा चैव चन्द्रभागा सरस्वती। पुरुषोत्तमो महाकालस्तौर्ध्वोत्तमि सङ्करम्॥

सर्वपापहराण्येव भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै। (६६।६-८)

## स्वरोदय-विज्ञान

स्वरके उदयसे कार्योके शुभ और अशुभका ज्ञान होता है। शरीरमें बहुत प्रकारकी नाडियोंका विस्तार है। नाभि-प्रदेशके नीचे जो कन्दस्थान अर्थात् मूलाधार है, वहींसे उन नाडियोंका अद्भुत होकर सम्पूर्ण शरीरमें विस्तार होता है। महत्तर हजार नाडियाँ नाभिके मध्यमें चक्राकार अवस्थित रहती हैं। उन नाडियोंमें वामा, दक्षिणा और मध्यमा नामक तीन श्रेष्ठ नाडियाँ हैं। (उन्हींको क्रमशः—इडा, पिंगला और सुषुम्णा कहा जाता है।) इनमें वामा सोमात्मिका, दक्षिणा सूर्यके समान तथा मध्यमा नाडी अग्निके समान फलदायिनी एवं कालरूपिणी है।

वामा नाडी अमृतरूपा है, वह जगत्को आप्लावित करती रहती है। दक्षिणा नाडी अपने रीद्रगुणसे सदैव जगत्का शोषण करती रहती है। जब शरीरमें इन दोनोंका एक साथ प्रवाह होता है, उस समय समस्त कार्योका विनाश करनेवाली मृत्यु आ पहुँचती है।

यात्रादिके लिये प्रस्थानकालमें वामा तथा प्रवेशके अवसरपर दक्षिणा नाडीप्रवाहको शुभ माना गया है। इडा अर्थात् वामाके श्वास-प्रवाह-कालमें ऐसा सौम्य शुभकारी कार्य करना चाहिये, जो चन्द्रके समान जगत्के लिये भी शुभकारी हो तथा पिंगला अर्थात् दक्षिणा नाडीमें प्राणवायुके प्रवाहित होनेके समय सूर्यके समान तेजस्वी कूर कार्य करना चाहिये। यात्रामें, सभी कार्योमें तथा विषको दूर करनेमें इडा नाडीका चलना अच्छा होता है। भोजन, मैथुन, युद्धारम्भमें, पिंगला नाडी सिद्धिदायक होती है। उच्चाटनादि अभिचार कर्मोंमें भी पिंगला नाडीका चलना

उत्तम होता है।

मैथुन, संग्राम और भोजन करते समय राजाओंको पिंगला नाडीके श्वास-प्रवाहपर ध्यान रखना चाहिये। शुभ कार्योके सम्पादनमें, यात्रामें, विद्यापनोदनमें तथा शान्ति एवं मुक्तिकी सिद्धिमें राजाओंको इडा नाडीकी गतिपर विचार करना चाहिये।

पिंगला एवं इडा नामक दोनों नाडियाँ चल रही हों तो कूर तथा सौम्य दोनों प्रकारका कार्य न करे। विद्वान्को यह समय विषके समान मानना चाहिये।

सौम्यारि शुभ कार्योमें, लाभार्थिके कर्मोंमें, विजयके लिये, जीवन्के लिये तथा गमनागमनके लिये वामा नाडी सर्वत्र प्रशस्त मानी जाती है। घात-प्रतिघात, युद्धादिके कूर कार्य, भोजन और स्त्री-सहवासमें दक्षिणा नाडी प्रशस्त होती है। प्रवेश तथा क्षुद्र-कार्योमें भी दक्षिणा नाडी श्रेष्ठ होती है।

शुभ-अशुभ, लाभ-हानि, जय-पराजय तथा जीवन और मृत्युके विषयमें प्रश्न करनेपर यदि प्रश्नकर्ताकी उस समय मध्यमा नाडी चल रही हो तो सिद्धि प्राप्ति नहीं होती और यदि वामा तथा दक्षिणा नाडीके चलते समय प्रश्न हो तो निश्चित ही सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है।

इसी प्रकार प्रश्नकर्ताके स्वरमें उदय तथा प्रश्नकर्ताकी अवस्थिति आदिपर विचार करनेसे भी कार्योकी सिद्धि-असिद्धिका निर्णय तथा शुभ-अशुभ-कालका ज्ञान किया जाता है। इसके लिये स्वरोदय-विज्ञानकी जानकारी अपेक्षित होती है। (अध्याय ६७)

## रत्नोंके प्रादुर्भावका आख्यान तथा वज्र (हीर)-की परीक्षा

सूतजीने कहा—अब मैं रजपरीक्षाका वर्णन करता हूँ। प्राचीनकालमें बल नामक एक असुर था। उसने इन्द्रादि सभी देवोंको पराजित कर दिया था। उसको जोउनेमें देवगण समर्थ नहीं थे। अतः असमर्थ देवोंने एक वज्र करनेका विचार किया और उस असुरके सन्निकट पहुँचकर उससे यज्ञपशु बननेकी अभ्यर्थना की। वचनबद्ध बलासुरने

अपना शरीर उन देवोंको दानमें दे दिया। अतः अपने वाग्बलसे वह पशुवत् मारा गया।

वचनपर अडिग, पशु-शरीरवाले उस असुरने संसारके कल्याणार्थ एवं देवताओंकी हितकामनाके कारण यज्ञमें शरीरका परित्याग किया था, उस विशुद्ध कर्मको करनेसे उसका शरीर भी विशुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न हो उठा था।

१-यहाँ स्वरोदय-विज्ञानका दिग्दर्शनमात्र किया गया है। विस्तृत जानकारी, प्रमाण एवं तथ्यावलीके स्पष्टीकरणके लिये तद्विषयक ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।



अतः उसके शरीरके सभी अङ्ग रत्नोंके बीजके रूपमें परिणत हो गये।

इस प्रकार रत्नोंकी उत्पत्ति होनेपर देवता, यक्ष, सिद्ध तथा नागोंका उस समय बहुत बड़ा उपकार हुआ। जब वे सभी विमानके द्वारा उसके शरीरको आकाशमार्गसे ले जाने लगे तो यात्रावेगके कारण उसका शरीर स्वतः खण्ड-खण्ड होकर पृथिवीपर इधर-उधर गिरने लगा।

बलामुरके शरीरके अङ्ग खण्ड-खण्ड होकर समुद्र, नदी, पर्वत, वन अथवा जहाँ-कहाँ रंचमाच भी गिरे, वहाँ रत्नोंकी खान बन गयी और उन स्थानोंको प्रसिद्धि उन्हीं रत्नोंके नामपर हो गयी। पृथिवीकी उन खानोंमें विविध प्रकारके रत्न उत्पन्न होने लगे; जो रासम, विष्णु, सर्प, व्याधि तथा विविध प्रकारके पापोंको नष्ट करनेमें समर्थ थे।

रत्नोंके विविध प्रकारोंको यज्ञ (होरा), मुक्तार्णव, पराराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्कराग, कर्कतन, पुलक, रुधिर, स्फटिक तथा प्रवालदि कहा गया है। पारदर्शी विद्वज्जनोंने उनका यह नामकरण तथा संग्रह यथायोग्य गुणोंकी दृष्टिमें रखकर किया है।

अतः रत्नपारखी विद्वानोंको सर्वप्रथम रत्नोंके आकार, वर्ण, गुण, दोष, फल, परीक्षा तथा मूल्य आदिका ज्ञान तत्सम्बन्धित सभी शास्त्रोंके द्वारा विधिबद्ध प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि कुत्सित लग्न या अनेक कुयोगोंसे व्यथित अशुभ दिनोंमें जिन रत्नोंकी उत्पत्ति होती है, वे सभी दोषपूर्ण होकर अपनी गुण-क्षमताको नष्ट करते हैं।

ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले राजाको चाहिये कि वह परीक्षासे किये गये अत्यन्त शुद्ध रत्नोंको धारण करे अथवा उनका संग्रह करे।

जो रत्नशास्त्रोंके ज्ञाता, कुराल, रत्नसंग्रही तथा परीक्षण-कार्यमें दक्ष होते हैं, उन्हींको रत्नोंके मूल्य और मात्राको जाननेवाले कहा गया है। यज्ञ (होरा)-को महाप्रभावशाली कहा गया है, इसलिये सर्वप्रथम उसीको परीक्षाको बतायेंगे।

वज्रायुध इन्द्रपर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले उस बल नामक असुरके अस्थिभाग पृथिवीके जिन-जिन

स्थानोंमें गिरे, वे हीरे बनकर उन स्थानोंमें नाना प्रकारकी आकृतियाँ हो गये।

हिमाञ्चल, मार्तण्ड, सौराष्ट्र, पौण्ड्र, कलिंग, कोसल, वेण्वातट तथा सौवीर नामक आठ भूभाग हीरोंके क्षेत्र हैं। हिमालयसे उत्पन्न हीरे ताम्रवर्ण, खेजुकाके तटसे प्राप्त चन्द्रमाके समान श्वेत, सौवीर देशवाले नीलकमल तथा कृष्णपेचके समान, सौराष्ट्रप्रान्तीय ताम्रवर्ण एवं कलिंगदेशीय सोनेके समान आभावाले होते हैं। इसी प्रकार कोसल देशके हीरोंका वर्ण पीत, पुण्ड्रदेशीय श्याम तथा मार्तण्ड-क्षेत्रवाले हलके पीतवर्णके होते हैं।

यदि इस संसारमें कहींपर भी अत्यन्त शुद्ध वर्ण, पार्श्वभागोंमें भली प्रकारसे परिलक्षित होनेवाली रेखा, विन्दु, कालिया, काकपदक<sup>१</sup> और त्रास<sup>२</sup> दोषसे रहित, परमाणुकी भीति अत्यन्त लघु तथा तीक्ष्ण धारसे युक्त जो भी वज्र अर्थात् होरा दिखायी देता है, उसमें निश्चित ही देवताका वास समझना चाहिये।

रंगके अनुसार होराओंमें देवताओंके विग्रहोंका निश्चय किया गया है। वर्णको ध्यानमें रखकर ही हीरोंका विभाजन करना चाहिये। हरित, श्वेत, पीत, पिंगल, श्याम तथा ताम्रवर्णके हीरे स्वभावतः सुन्दर होते हैं। उन हीरोंमें क्रमानुसार विष्णु, यरुण, इन्द्र, अग्नि, यम और मरु-देव प्रतिष्ठित रहते हैं।

ब्राह्मणके लिये शङ्ख, कुमुद अथवा स्फटिकके समान शुभवर्णका होरा प्रशस्त होता है। क्षत्रियके लिये सरा (चन्द्रलाञ्छनके समान वर्णवाला), बभ्रु (पिंगल-भूरे वर्णके धातु विलोचनके समान वर्णवाला), विलोचन<sup>३</sup> (औंखकी तरहके समान वर्णवाला), वैश्यवर्णके निमित्त कान्त (कुंकुम) अथवा कदलीदलके समान आभावाला तथा शूद्रवर्णके लिये धौत (चौदी)-के समान अथवा तलवारके सदृश होरा प्रशस्त है।

विद्वानोंने राजाओंके योग्य दो प्रकारके हीरोंको उत्तम माना है, जो अन्य लोगोंके लिये प्रशस्त नहीं होते हैं। जो हीरा जवावर्ण तथा प्रवालके समान रक्तवर्ण अथवा हल्दी-रसके सदृश पीतवर्णका होता है, वह राजाओंके लिये

१-काकके पदके समान आभारविशेषसे युक्त।

२-त्रास-मणिके दोषविशेषको त्रास कहते हैं।

३-विलोचन (औंख) प्रमंगके अनुमान औंखकी तला।

लाभप्रद है। सभी वर्णोंका स्वामी होनेके कारण अथवा समस्त वर्णोंके गुणोंको अपनेमें समाविष्ट करनेके उद्देश्यसे राजाओंको सभीके कल्याणकी इच्छासे उक्त दो प्रकारके हीरोंको धारण करना चाहिये। ऐसे हीरोंको धारण करनेका अधिकार अन्यके लिये किसी भी प्रकारसे नहीं है।

जिस प्रकार लोकमें निम्न और उच्च वर्णका वर्णसंस्कार दोषाबह एवं दुःखदायी होता है, राजाका वर्णसंस्कार उससे भी अधिक दुःखदायी होता है।

केवल वर्णमात्रको देखकर ही विद्वानोंको राजका संघर्ष नहीं करना चाहिये, क्योंकि जो गुणवान् राजा होता है, वही गुण और सम्पत्तिकी विभूति होता है, इसके विपरीत गुणहीन राजा कष्टका हेतु होता है। जिस हीरेका एक भी भ्रूंग टूटा हुआ अथवा छिन्न-भिन्न दिखायी दे तो गुणवान् होनेपर भी धनार्थी जनोको उसे अपने घरमें नहीं रखना चाहिये।

अग्निके समान स्फुटित, विशीर्ण भ्रूंगभागसे युक्त, मलिन वर्णवाले तथा मध्यमें बिन्दुओंसे चिह्नित हीरेको धारण करनेपर इन्द्र भी श्रीहीन हो जाते हैं। ऐसे हीरेके संग्रह करनेकी लालसा नहीं करनी चाहिये। जिस हीरेका एक भाग अस्त्र-शस्त्रादिसे विदीर्ण कृत-विधत्त शरीरकी आभाको प्राप्त हो तथा वह रक्तवर्णसे चित्रित हो तो वैसा हीरा इच्छा-मृत्युसे सम्पन्न शक्तिशाली व्यक्तिकी भी शीघ्र मृत्युको रोक नहीं सकता है। ऐसे हीरेको धारण नहीं करना चाहिये।

षट्कोण, अष्टकोण, द्वादशकोण, षट्पार्श्व, अष्टपार्श्व, द्वादशपार्श्व, षट्पारा, अष्टपारा, द्वादशपारा, उत्तुंग, सम एवं तीक्ष्ण भाग हीरेके खानिक अर्थात् प्रकृतिगत गुण हैं।

जो हीरा षट्कोण, विशुद्ध, निर्मल, तीक्ष्ण धारवाला लघु, सुन्दर पार्श्वभागसे युक्त और निर्दोष है तथा इन्द्रायुध वज्रके समान स्फुरित अपनी प्रभाको विकीर्ण करनेमें समर्थ हो तो अन्तरिक्ष भागमें स्थित वह हीरा इस पृथिवीलोकमें सुलभ नहीं है।

जो मनुष्य तीक्ष्ण, निर्मल तथा दोषशून्य हीरेको धारण करता है, वह जीवनपर्यन्त प्रतिदिन स्त्री, सम्पत्ति, पुत्र, धन-धान्य और गवादिक पशुओंकी श्रीवृद्धिको प्राप्त करता है। सर्प, विष, व्याधि, अग्नि, जल तथा तस्करादिक भय एवं अभिचार-मन्त्रोंके उच्चाटनादिक प्रयोग उसके

सन्निकट आनेके पूर्व दूरसे ही प्रत्यागमित हो जाते हैं।

यदि हीरा सभी दोषोंसे रहित तथा भारमें बीस तण्डुलके बराबर हो तो मणिशास्त्रके पण्डितोंने उसका मूल्य अन्य हीरेकी अपेक्षा द्विगुण अधिक कहा है। पूर्वोक्त परिमाणमें तीन भाग, अर्द्धभाग, चतुर्धांश, त्रयोदशांश और तीसवाँ अंश, साठवाँ अंश, अस्सीवाँ अंश, शतांश तथा सहस्रांश भाग न्यूनाधिक होनेपर मूल्यका निर्धारण भी उसके समान ही न्यूनाधिक होता है।

आठ गौर सरसंकि दातोंके भारके बराबर एक तण्डुलका भार होता है।

जो हीरा सभी गुणोंसे सम्पन्न होता है और जलमें डालनेपर तैरता है, वह सभी राजोंमें सर्वश्रेष्ठ होता है। उसीको धारण करना उचित है।

जिस हीरेमें अल्पमात्र भी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट दोष होता है तो स्वाभाविक मूल्यकी अपेक्षा उस हीरेकी मनुष्य दशांत कम मूल्यमें ही प्राप्त कर लेता है। जिस हीरेमें छोटे अथवा बड़े अनेक दोष प्रकट रहते हैं, उस हीरेका मूल्य स्वाभाविक मूल्यकी अपेक्षा शतांश ही माना गया है।

अलंकारके रूपमें प्रयुक्त हीरेमें यदि किसी भी प्रकारका दोष परिलक्षित होता है तो अपेक्षाकृत उसका मूल्य बहुत ही कम हो जाता है। यदा-कदा जो हीरा सबसे पहले गुण-सम्पत्तियोंसे परिपुष्ट माना जाता है, वही बादमें दोषयुक्त हो जाता है। राजाको ऐसे दोषपूर्ण हीरेसे बने आभूषणको धारण नहीं करना चाहिये। गुणहीन होनेपर तो मणि भी आभूषणके योग्य नहीं होती है।

पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्रीके लिये सर्वगुण-सम्पन्न होनेपर भी हीरा प्रसस्त नहीं होता है। दीर्घ, चिपटा, ह्रस्व तथा अन्यान्य गुणोंसे रहित हीरेके विषयमें कुछ कहना ही नहीं, वह तो दोषपूर्ण होता ही है।

हीरेके कुशल विशेषज्ञ लीह, पुष्पराग, गोमेद, वैदूर्य, स्फटिक एवं विविध प्रकारके काँचोंसे हीरेके प्रतिरूपोंका निर्माण कर लेते हैं। अतः विद्वानोंको कुशल परीक्षाओंसे उनकी परीक्षा करवा लेनी चाहिये।

क्षार-द्रव्यके द्वारा, उल्लेखन-विधिसे एवं शाण-प्रयोगसे हीरोंका परीक्षण करना चाहिये। पृथिवीमें जितने भी राज हैं

अथवा लौहादिक जितनी अन्य धातुएँ हैं, हीरा उन सबमें चिह्नाङ्कन कर सकता है; किंतु अन्य कोई भी रत्न या धातु हीरेमें चिह्न करनेमें समर्थ नहीं है।

गुरुता समस्त रत्नोंके महत्त्वका कारण है, फिर भी रत्नशास्त्रज्ञ हीरेके विषयमें इस निर्देशके विपरीत ही कहते हैं।

पुष्परागादि जातिविशेषके रत्न दूसरी जातिके रत्नोंको काट सकते हैं, किंतु हीराक एवं कुरुवन्द<sup>१</sup> अपनी ही जातिके रत्नोंको काटनेमें सक्षम होते हैं। हीरेसे हीरा ही काट सकता है, अन्य रत्नोंसे वह हीरा काटा नहीं जा सकता है।

स्वाभाविक हीरेके अतिरिक्त हीराक तथा मुक्तादि जितने प्रकारके रत्न हैं, उनमें किसी भी रत्नोंके प्रभा ऊर्ध्वगामिनी

नहीं होती है। मात्र हीरा ही ऐसा रत्न है, जिसकी प्रभा ऊपरकी ओर जाती है।

यदि हीरा टूटे हुए किनारोंसे दोषयुक्त हो या बिन्दु तथा रेखासे समन्वित हो अथवा विशेष वर्णसे रहित हो तो भी इन्द्रपुष्प-चिह्नसे अङ्कित होनेपर वह मनुष्यको धन-धान्य एवं पुत्रादिसे परिपूर्ण करता है।

जो राजा विद्युत्-तुल्य, समुज्ज्वल एवं चमकते हुए शोभा-सम्पन्न हीरेको धारण करता है, वह अपने पराक्रमसे दूसरेके प्रतापको आक्रान्त करनेमें समर्थ होता है तथा अपने समस्त सामन्तोंको वशमें रखकर वह पृथिवीका उपभोग करता है। (अध्याय ६८)

## मुक्ताके विविध भेद, लक्षण और परीक्षण-विधि

सूतजीने कहा—श्रेष्ठ हाथी, जौमूत (मेघ), बराह, शङ्ख, मत्स्य, सर्प, शुक्ति तथा बौसमें उत्पन्न मुक्ताफलकोंकी संसारमें प्रसिद्धि है; किंतु इनमें शुक्ति (सोप)-में प्रादुर्भूत मुक्ताएँ ही अधिक उपलब्ध हैं।

मुक्ताशास्त्री कहते हैं कि इन मुक्ताओंमें मात्र एक ही ऐसी मुक्ता होती है, जिसकी रत्नपदपर अधिश्रित किया जा सकता है। वह शुक्तिसे उत्पन्न होनेवाली मुक्ता है। यह सूचिकादि वर्णोंसे बंध्य होती है, शेष मुक्ताएँ अवबंध्य हैं।

प्रायः बौस, हाथी, मत्स्य, शङ्ख एवं बराहसे उत्पन्न मुक्ताएँ प्रभाविहीन होती हैं; फिर भी मातृत्विक होनेसे वे प्रशस्त मानी जाती हैं।

रत्ननिर्णायक विद्वानोंने मुक्ताओंके जिन आठ प्रकारोंका वर्णन किया है, उनमें शङ्खसे उत्पन्न और हाथीसे प्राप्त होनेवाली मुक्ताको अधम कहा है।

शङ्खसे उत्पन्न मुक्ता, अपने मूल कारणके मध्यभागमें अवस्थित वर्णके समान वर्णवाली तथा परिमाणमें बृहत्स्तूल फलके सदृश होती है। जो मुक्ता हाथीके कुम्भस्थलसे निकलती है, वह पीतवर्णवाली एवं प्रभाविहीन होती है। जो शङ्खोद्भव मुक्ताएँ हैं, वे शार्ङ्गधनुषके तुल्य वर्णको प्राप्त पीतशङ्खोंके श्रेष्ठ गोत्रमें ही उत्पन्न होती हैं। जो गजमुक्ताएँ हैं, उनका भी जन्म विशुद्ध वंशवाले मदमत्त गजराजोंमें

होता है, उन्हें पीतवर्णप्रभव अर्थात् गजमुक्ता नामसे अधिश्रित किया गया है। इनसे प्राप्त मुक्ता पूर्णतया पीतवर्णसे युक्त एवं प्रभाविहीन होती है।

मत्स्यसे उत्पन्न मुक्ता पाटीन मत्स्यके पीठके समान वर्णवाली, अत्यन्त सुन्दर, वृत्ताकार, लघु एवं अल्पविकसित होती है। यह जलकर प्राणियोंके मुखोंमें प्राप्त होती है, उनमें भी जो मत्स्य अर्थात् समुद्रकी जलराशियोंमें विचरण करते हैं, वे इसके जनक होते हैं।

बराहके दाँतसे उत्पन्न मुक्ता उसके ही दन्ताङ्गुरोंके सदृश वर्णवाली होती है, किंतु ऐसी मुक्ता प्रदान करनेवाले विशिष्ट बराहराज कहीं किसी विशेष भूप्रदेशमें ही पाये जाते हैं।

बौसके पर्वोंसे उत्पन्न मुक्ताएँ खर्षोपल (ओले)-के समान समुज्ज्वल वर्णकी सुन्दर शोभासे सुशोभित रहती हैं। ऐसी मुक्ताओंके जनक बौसोंके वंश दिव्यजनोंके लिये उपभोग्य विशेष स्थानमें अङ्कुरित होते हैं। वे सार्वजनिक स्थानोंमें नहीं पाये जाते।

सर्पमुक्ता मत्स्यमुक्ताके सदृश विशुद्ध तथा वृत्ताकार होती है। स्थान-विशेषके कारण उसकी अत्यन्त उज्ज्वल शोभा होती है। इसकी ज्ञानि शृणुपर चढ़ायी गयी तलवारकी धारके समान अत्यन्त स्वच्छ होती है। सर्पोंके

सिरसे प्राप्त होनेवाली इस मुक्ताको अर्जित करनेवाले मनुष्य अतिशय प्रभासम्पन्न, राज्यलक्ष्मीसे युक्त तथा दुःसाध्य महान् ऐश्वर्यसम्पन्न, तेजस्वी एवं पुण्यवान् होते हैं।

रत्नोंके गुण एवं अवगुणोंको जाननेकी इच्छासे यदि रत्न-विधियोंमें पूर्ण अधिकार रखनेवाले विद्वानोंके द्वारा शुभ मुहूर्तमें प्रयत्नपूर्वक समस्त रत्न-विधिसे सम्पन्न भवनके ऊपर उस मुक्ताको स्थापित करा दिया जाय तो उस समय आकाशमें देव-दुन्दुभियोंकी ध्वनि परिव्याप्त हो उठती है। इन्द्रधनुषकी टंकार, विद्युल्लताओंके संघर्षण एवं सपन पयोधरीकी पारस्परिक टकराहटसे अन्तरिक्ष आच्छादित हो उठता है।

जिसके कोशागारमें यह सर्पमुक्ता रहती है, उसकी मृत्यु सर्प, राक्षस, व्याधि या अन्य आधिभारिक दोषोंके कारण नहीं होती।

मेघसे उत्पन्न होनेवाली मुक्ता पृथ्वीतक आ ही नहीं पाती। देवगण आकाशमें ही उसका हरण कर लेते हैं। उस मेघमुक्ताके तेजकी दिव्य कान्तिसे अनावृत समस्त दिशाएँ आलोकित हो उठती हैं। सूर्यके समान देदीप्यमान उसका परिमण्डल देखनेमें कष्टसाध्य होता है। अग्नि, चन्द्र, नक्षत्र तथा ताराओंके तेजको तिरस्कृत करके जैसे सूर्यके कारण दिन प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार गहन अन्धकारसे भरी हुई रात्रियोंमें भी उस मेघमुक्ताका तेज दिनकी प्रभाके समान ही प्रभाको विकीर्ण करता है। विचित्र रत्नकान्तिको प्राप्त सुन्दर आभूषणको प्रशस्त बनानेके लिये जलराशिवासे चारों समुद्रोंसे इस मुक्ताका जन्म हुआ है। मेघ पूर्ण विश्वास है कि इसका कोई मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह जिसके पास रहती है, वह राजा होता है। उसके राज्यकी सम्पूर्ण भूमि सोनेसे परिपूर्ण होती है। कदाचित् शुभ तथा महान् कर्मविपाकसे यदि कोई दरिद्र भी इस मेघमुक्ताको प्राप्त कर लेता है तो उस व्यक्तिके पास जबतक यह रहती है, तबतक वह शत्रुओंसे रहित सम्पूर्ण पृथिवीका उपभोग करता है।

यह मेघमणि मात्र राजाके लिये ही शुभप्रद है, ऐसा नहीं है, अपितु प्रजाओंके भाग्यसे भी इसका जन्म होता है। यह अपने चारों ओर सहस्र योजनपर्यन्त क्षेत्रमें

अनर्थोंको आने नहीं देती।

दैत्यराज बलामुरके मुखसे विशीर्ष हुई दन्तपंक्ति आकाशमें फैली हुई नक्षत्रमालाके समान प्रतीत होती थी। विचित्र वर्षोंमें भी अपना विशुद्ध स्थान रखनेवाली वह दन्तावलि आकाशसे उस समुद्रकी जलराशियों गिरी, जो पूर्वमाके चन्द्रकी समस्त षोडशकलाओंको तिरस्कृत करनेमें समर्थ महागुणसम्पन्न मणिरत्नका निधान है। समुद्रके जलमें उसे शुक्तिमें स्थान प्राप्त हुआ। अतः वह सामुद्रिक मुक्ताका प्राचीन बीज बन गया, जिससे अन्य मुक्ताओंका उद्भव हुआ। समुद्रके जिस जल-प्रदेशमें सुन्दर रत्न मुक्तामणिके बीज गिरे, उसी प्रदेशमें वे बीज फैलकर शुक्तिधियोंमें स्थित होनेके कारण मुक्तामणि (मोती) हो गये। अतएव सिंहल, पार्लोक, सौराष्ट्र, काश्मिर, पारशव, कुबेर, पाण्ड्य, हाटक और हेमक—ये मुक्ताओंके खजाने हैं।

वर्धन, पारसीक, पाताल, लोकान्तर तथा सिंहलादिकी शुक्ति-मुक्ताएँ प्रमाण, स्थान, गुण और कान्तिकी दृष्टिसे अन्य क्षेत्रोंमें प्राप्त होनेवाली मुक्ताओंकी तुलनामें अत्यधिक होने वर्णकी नहीं होती हैं। अतः विद्वान् व्यक्तिको उनके मूल उत्पत्ति-स्थानकी लेकर चिन्तन नहीं करना चाहिये, बल्कि उनके रूप एवं प्रमाणपर ही विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारकी मुक्तासे सम्बन्धित गुण-अवगुणकी कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। ये सर्वत्र सभ्य प्रकारकी आकृतियोंमें पायी जाती हैं।

शुक्तिसे उत्पन्न एक मुक्ताफलका मूल्य एक हजार तीन सौ पौब मुद्रा होता है। आधे तोले भारवाली मुक्ताका मूल्य उक्त मूल्यकी अपेक्षा २/५ भाग कम होता है। जिस मुक्ताका भार तीन माशा अधिक हो, उसका मूल्य दो हजार मुद्रा कहा गया है।

छाई माशा परिमाणवाली मुक्ताका मूल्य तेरह सौ मुद्रा होता है। जो मुक्ता दो माशा परिमाणकी होती है, उसका मूल्य आठ सौ मुद्रा है। जिसका परिमाण आधा माशा है, उसका मूल्य तीन सौ बीस मुद्रा है। जो मुक्ता भारमें छः गुंजाके बराबर है, पण्डितोंने उसका मूल्य दो सौ मुद्रा स्वीकार किया है। जिसका परिमाण तीन गुंजा है, वह एक सौ मुद्राकी होती है। जो मुक्ता उक्त परिमाणमें सोलहवीं



भाग है, विद्वानोंने उसको दार्दिक कहा है। उसका मूल्य एक सौ दस मुद्रा होता है।

जिस मुक्ताका कथित परिमाणकी तुलनामें भार १/२० भाग होता है, उसको विद्वानोंने भवककी संज्ञा प्रदान की है। यदि वह मुक्ता गुणहीन न हो तो उसका मूल्य सत्तानवे मुद्रा होता है। जो मुक्ता उक्त स्वाभाविक परिमाणमें १/३० भागकी होती है, उसको शिष्य कहा जाता है। उसका मूल्य चालीस मुद्रा होता है। जिसका परिमाण कहे गये परिमाणकी अपेक्षा १/४० चौं अंश हो तो उसका मूल्य तीस मुद्रा है। जो मुक्ता १/५० चौं अंश परिमित होती है, उसे सोम कहा जाता है। उसका मूल्य बीस मुद्रा है। जो मुद्रा १/६० अंशके बराबर होती है, उसको निकरशीर्ष कहा जाता है। वह चौदह मुद्रा मूल्यकी होती है। १/८० तथा १/९० अंश परिमित मुक्ताको कूप्य नामसे अभिहित किया गया है। उनका मूल्य क्रमशः प्यारह और नौ मुद्रा है।

विमुद्धताके लिये मुक्ताओंकी अमपात्र (अर्घात् अल रखनेवाले मटके)-में भरे हुए जम्बीर-रसमें डालकर पकाना चाहिये। तत्पश्चात् उनकी मूल आकृतियोंकी धिसकर धिक्कण एवं समुज्ज्वल आकार प्रदान करके उनमें यथाशीघ्र छेद भी कर देना चाहिये।

सर्वप्रथम पूर्णतया आर्द्र मिट्टीसे लिप्ता मल्लय पुटपाक और फिर बिडाल पुटपाकमें मुक्ताओंका पाचन करे। उसके बाद उन्हें धिक्कण और उज्ज्वल बनानेके लिये उसमेंसे निकालकर दूध अथवा जल या सुधारसमें पकाया जाता है। तदनन्तर स्वच्छ वस्त्रसे धिस-धिसकर उन्हें उज्ज्वल और चमकदार रूप प्रदान किया जाता है। ऐसा करनेसे वह

मौक्तिक अत्यधिक गुणवान् तथा कान्तिसे युक्त हो जाता है। महाप्रभावशाली, सिद्ध एवं संतप्तजनोंके हितमें लगे रहनेवाले, दयावान् आचार्य व्याडिने ऐसा ही कहा है।

रसविशेषमें शोधित वही मुक्ता शरीरका अलङ्कार होता है—जो श्वेत कौचके समान हो, स्वर्ण-जटित हो तथा रत्नशास्त्रके अनुसार सुपरीक्षित होनेके कारण (तार) कष्टका निवारण करनेवाली हो। सिंहल-देशके कुशलजन ऐसा ही (शोधनार्थ कार्य) करते हैं।

यदि किसी मुक्ताके कृत्रिम होनेका संदेह हो तो उसको लवणमिश्रित उष्ण, स्नेह द्रव्यमें एक रात रखकर सूखे वस्त्रमें वेष्टित करके यथायोग्य धान्यके साथ उसका मर्दन करे। ऐसा करनेसे यदि उसमें विवर्ण भाव नहीं आता है तो उसको स्वाभाविक मुक्ता ही मानना चाहिये।

यद्योक्त प्रमाणवाली गुरु, श्वेत, स्निग्ध, स्वच्छ, निर्मल एवं तेजसम्पन्न, सुन्दर एवं वृत्ताकार मुक्ता गुणसम्पन्न मानी गयी है। प्रमाणमें बड़ी-बड़ी, सुन्दर, रश्मि-कान्तिसे परिपूर्ण, श्वेत, सुवृत्ताकार, समान एवं सूक्ष्म छिद्रसे युक्त जो मुक्ता होती है, वह क्रय न करनेवाले व्यक्तिको भी आनन्दित करती है<sup>१</sup>। अतः ऐसी मुक्ताको प्रशस्त मानना चाहिये।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रत्नशास्त्रीय परीक्षा-विधिके अनुसार जिस मुक्तामें सभी गुणोंका उदय हो गया है, यदि वह मुक्ता किसी पुरुषका योग (संयोग) प्राप्त कर लेती है तो वह अपने स्वामीको किसी भी प्रकारके एक भी अनर्थोत्पादक दोषके सम्पर्कमें नहीं आने देती। (अध्याय ६९)

### पञ्चरागके विविध लक्षण एवं उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—भगवान् भास्कर जब महामहिम दैत्यराज बलामुरके उस श्रेष्ठ खबीजरूप शरीरके रक्तको लेकर स्वच्छ नीले आकाश-मार्गसे देवलोकको जा रहे थे; उसी समय निरन्तर देवोंपर विजय प्राप्त करनेसे अहंकारमें भरे हुए लंकाधिपति रावणने आकर बलात् उनकी शत्रुके

समान आधे मार्गमें ही रोक लिया। भयवश सूर्यने बलामुरके खबीजरूपी रक्तको लंका देशकी एक श्रेष्ठ नदीके जलमें छोड़ दिया, जो उस देशकी सुन्दर रमणियोंके कान्तिमय नितम्बोंकी प्रतिच्छायासे झिलमिलाने लगे हुए अग्राधजलसे परिपूर्ण तथा सुपारीकी वृक्ष-पौक्तियोंसे आच्छादित

१-उत्तम मुक्ताका क्रय (मुक्ता विक्रय) करनेसे रुपये मिलते हैं, उससे आनन्दानुभूति होती है। क्रय किये बिना भी अपनी उत्तमताके कारण यथाविधि यदि मुक्ता धारणकी जाए तो वह स्वयं विविध ऐश्वर्य देती ही है। इसलिये आनन्दानुभूति दोनों दशा (क्रय करने, न करने)-में समान है।

अपने दोनों तटोंसे सुशोभित हो रही थी। गङ्गाके समान पवित्र एवं उत्तम फलोंको प्रदान करनेमें सशम उस नदीका नाम रावणगङ्गा प्रसिद्ध हो गया।

बलसुरके रत्नबीजरूपी रक्तके गिरनेसे उस नदीके तटपर उसी समयसे रात्रिमें खराशियाँ स्वयं आकर एकत्र होने लगीं। अतएव नदीका अन्तःभाग एवं बाह्यभाग सैकड़ों स्वर्ण-बाणोंके समान अपनी प्रभाको बिखेरनेमें समर्थ रत्नोंसे प्रतिभासित होने लगा। उस रावणगङ्गाके दोनों तट सदैव रत्नोंकी उज्ज्वल प्रभासे सुशोभित रहते हैं। उसके जलमें उत्पन्न पद्मराग नामक रत्न सौगन्धिक (शापमाल-विकसित होनेवाला श्वेतमाल), कुरुविन्दज (रत्नविशेष) तथा स्फटिक रत्नोंके प्रधान गुणोंको धारण करते हैं। उनका स्वरूप बन्धुकपुष्प, गुआफल, बीरबहुटी कोट तथा जवकुमुम और अष्टक (कुंकुम)-के वर्णोंको कान्तियोंसे सुशोभित रहता है। कुछ पद्मराग दाहिम-बोजकी आभासे सम्पन्न तथा कुछ किंदुक (पलाश)-पुष्पके समान रत्नवर्णकी कान्तिसे युक्त रहते हैं। सिन्दूर, रक्तकमल, नीलौत्पल, कुंकुम और लाक्षारसके समान रंगवाले भी पद्मराग होते हैं। गहरा वर्ण होनेपर भी उन पद्मरागरत्नोंमें स्फुरित शोभासम्पन्न कान्तियाँ सुन्दर आभाको फैलाती रहती हैं।

स्फटिकसे उद्भूत पद्मराग सूर्यकी किरणोंसे सम्पृक्त होकर अपनी रश्मियोंके द्वारा दूर रहते हुए भी पार्श्वभागोंको अनुरजित करते हैं। कुछ रत्न कुसुम्भवर्ण एवं नीलवर्णकी मिश्रित आभासे सम्पन्न रहते हैं तो कुछ रत्नोंका वर्ण नये विकसित कमलके सदृश शोभाको धारण करता है। कुछ रत्न भस्मलक तथा कण्टकारी-पुष्पके समान कान्ति प्राप्त करनेवाले हैं और कुछ रत्न हिंगुल अर्थात् हींग-वृक्षके पुष्पोंकी शोभासे सुशोभित रहते हैं। कतिपय रत्नोंका वर्ण चकोर, पुंस्कोकिल तथा सारस पक्षियोंके नेत्रोंके समान होता है। कुछ रत्न कुमुद-पुष्पके सदृश होते हैं। प्रायः गुण-प्रभाव, शारीरिक कठिन्य एवं गुरुत्वमें स्फटिकोद्भूत पद्मरागमणियाँ समान होती हैं।

सौगन्धिक मणियोंसे प्रादुर्भूत पद्मराग मणिका वर्ण नीले और लाल कमलके समान होता है। कुरुविन्दकसे उत्पन्न पद्मराग मणियोंमें वैसी आभा नहीं होती है, वैसी आभा

स्फटिकसे उद्भूत पद्मराग मणियोंमें रहती है। अधिकांश मणियोंमें प्रभा अन्तर्निहित होती है। फिर भी वे अपनी समस्त पुञ्जीभूत रश्मि-प्रभाओंसे लोगोंपर अपना अत्यधिक प्रभाव डालती हैं।

उस रावणगङ्गामें जो भी कुरुविन्दक रत्न पाये जाते हैं, वे सभी सघन, रक्ताभवर्ण तथा स्फटिक प्रभावले होते हैं। उन रत्नोंकी वर्ण-समानताको प्राप्त करनेवाले अन्य रत्न आभ्यादिक किसी दूसरे देशमें दुर्लभ हैं। उन स्थानोंमें जो भी कुरुविन्दक रत्न प्राप्त होते हैं, उनका मूल्य इस रावणगङ्गा नदीसे प्राप्त रत्नोंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है। उसी प्रकार यहाँपर उत्पन्न स्फटिक मणियोंसे प्रादुर्भूत पद्मरागकी समानतामें तुम्बुरु देशसे प्राप्त होनेवाली मणियोंका भी मूल्य कम ही माना गया है।

वर्णोधिक्य, गुरुता, निगन्धता, समता, निर्मलता, पारदर्शिता, तेजस्विता एवं महता श्रेष्ठ मणियोंका गुण है। जिन मणियोंमें करकटाहट, छिद्र, मल, प्रभाहीनता, पुरुषता तथा वर्ण-विहीनता होती है, वे सभी जातीय गुणोंके रहनेपर प्रशस्त नहीं मानी जातीं।

यदि अज्ञानतावश कोई मनुष्य ऐसी दोषयुक्त मणियोंको धारण कर लेता है तो उनके कुप्रभावसे उत्पन्न शोक, चिन्ता, रोग, मृत्यु तथा धनवशादि आपदाएँ उसको घेर लेती हैं।

पूर्वकथित श्रेष्ठ मणियोंकी तुलनामें अत्यधिक सौन्दर्य-सम्पन्न एवं उनके प्रतिरूप होनेपर भी पाँच जातियोंकी मणियोंको विजातीय माना गया है। जिनका परीक्षण विद्वान् पुरुषको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। कलशपुर, सिंहल, तुम्बुरु, मुकषणि तथा श्रीपूर्वकमें उत्पन्न पद्मरागका रावणगङ्गासे प्राप्त शुभप्रद पद्मराग मणियोंसे सादृश्य होनेपर भी वे विजातीय ही माने गये हैं।

तुषका-सदृश (मलिन वर्णका) होनेसे कलशपुर, अल्प तापवर्णके कारण तुम्बुरु देश, कृष्णवर्णके रहनेसे सिंहल, नीलवर्णके होनेसे मुक्त तथा कान्तिविहीन होनेसे श्रीपूर्वककी मणियोंमें (रावणगङ्गाकी मणियोंकी अपेक्षा) विजातीय रूप होनेसे ही भेद स्पष्ट होता है।

जो पद्मराग ताम्रिका (गुआ)-के वर्णको धारण करता

है, तुप (बहेड़ा)-के समान मध्यमें पूर्णतः युक्त (गोलाकार) होता है तथा स्नेहसे प्रदिग्ध (स्वभावतः स्नेहित) होता है और अत्यन्त भिसनेके कारण कान्तिविहीन हो जाता है, मस्तक-संघर्षण अथवा हाथोंकी अँगुलियोंके स्पर्शसे जिसके पार्श्वभाग काले हो जाते हैं, हाथमें लेकर बार-बार ऊपरकी ओर उछलनेपर जो मणि प्रत्येक बार एक ही वर्णको धारण करती है, वह सभी गुणोंसे युक्त होती है। समान प्रमाण, समान जाति अथवा गुरुत्व धर्मसे दो वस्तुओंमें तुलना होती है। अतः विशेष रत्नाकरसे प्राप्त रत्नोंकी स्वजातिका निर्धारण गुरुत्व और गुण-धर्मके अनुसार विद्वान् व्यक्तिको करना चाहिये। यदि उनमें संदेह उत्पन्न हो जाय तो उनको शङ्कपर चढ़ाकर खरादना चाहिये। वज्र या कुरुविन्दक रत्नको छोड़कर अन्य किसी भी रत्नके द्वारा पचरण एवं इन्द्रनीलमणिमें धिक्-विशेष टंकित नहीं किया जा सकता है।

जातिविशेषमें उत्पन्न सभी मणियाँ विजातीय नहीं होती हैं। उनका वर्ण समान होता है, फिर भी उनके पृथक्करणके लिये उनमें विभिन्न भेद बताये गये हैं। गुणयुक्त मणिके साथ गुणरहित मणिको धारण नहीं करना चाहिये। विद्वान्

पुरुषको कौस्तुभ मणिके साथ विजातीय मणिको धारण नहीं करना चाहिये; क्योंकि अनेक गुणोंसे सम्पन्न मणियोंको एक ही विजातीय मणि नष्ट करनेमें समर्थ होता है।

शत्रुओंके बीच निवास करने तथा प्रमाद-वृत्तिमें आसक्त रहनेपर भी विशुद्ध महागुणसम्पन्न पद्मराग मणिका स्वामी होनेसे किसी भी व्यक्तिको आपदाएँ स्पर्शतक नहीं कर सकती। जो गुणोंसे परिपूर्ण तेजस्वी सुन्दर वर्णवाले पद्मरागमणिको धारण करता है, उसके समीपमें उपस्थित होकर दोष-संसर्गजनित उपद्रव कोई कष्ट देनेमें अपनेको सक्षम नहीं कर पाते हैं।

जिस प्रकार तण्डुल-परिमाणके अनुसार हरिका मूल्य निर्धारित होता है, उसी प्रकार महागुणसम्पन्न पद्मराग मणिके मूल्यका निर्धारण टण्डुलके परिमाणका आकलन करके करना चाहिये।

जो मणि या रत्न उत्तम वर्ण एवं श्रेष्ठ कान्तिवर्णसे सम्पन्न रहते हैं, उन्हींको प्रशस्त माना जाता है। यदि उनमें तनिक भी दोषके कारण भ्रष्टता आ जाती है तो उनका मूल्य घट जाता है। (अध्याय ७०)

## मरकतमणिका लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

सुतजीने कहा—नागराज वासुकि उस असुरपति बलामुरके पित्तको लेकर अत्यन्त वेगसे माने आकाशमार्गको दो भागोंमें विभक्त करते हुए देवलोकको जा रहे थे। उस समय वे अपने ही सिरपर अवस्थित मणिकी प्रभासे देदीप्यमान होनेके कारण आकाशरूपी समुद्रपर बने हुए एक अद्वितीय रजतसेतुके समान सुशोभित हो रहे थे। उसी समय अपने पंख-निपातसे पृथिवी एवं आकाशको आलोकित करते हुए पक्षिराज गरुडने सर्पदेव वासुकिपर प्रहार करनेका प्रयत्न किया।

भयभीत वासुकिने सहसा उस रत्नबीजरूप पित्तको मधुर-सुस्वादु जलसे परिपूर्ण सरिता एवं वृक्षोंसे सुशोभित तथा पुष्पोंकी नव-कलिकाओंकी सान्द्र गन्धसे सुवासित तुरष्कदेशकी एक श्रेष्ठ माणिक्योंसे परिपूर्ण पर्वतकी उत्पत्तिकामें छोड़ दिया। वह पित्त उस पर्वतसे निकलनेवाले जल-

प्रपातके समान ही था। अतः उसीकी जलधाराके साथ बहुत हुआ यह पित्त भगवती महालक्ष्मीके समीपमें स्थित उनके श्रेष्ठ भवन अर्थात् समुद्रको प्राप्त करके उसकी तटवर्ती भूमिके समीप मरकतमणियोंका खजाना बन गया।

पक्षिराज वासुकिने जिस समय उस पित्तका परित्याग किया था, उसी समय गरुडने गिरते हुए उस पित्तका कुछ अंश ग्रहण (पान)-कर लिया। जिससे वे मूर्च्छित हो गये और सहसा उन्होंने अपने दोनों नासाछिद्रोंसे उस पित्तको बाहर कर दिया। उस स्थानपर प्राप्त होनेवाली मरकत-मणियाँ कोमल शुकपक्षीके कण्ठ, शिरीषपुष्प, खद्योतके पृष्ठप्रदेश, हरित तृणक्षेत्र, शीवाल, कल्हारपुष्प, (क्षेतकमल) नयी निकली हुई घास, सर्पभक्षिणी मयूरी तथा हरितपत्रकी कान्तिसे सुशोभित होकर लोगोंको कल्याण देनेवाली होती हैं।

वहाँपर नागभक्षी गरुडके द्वारा पान किया गया जो दैत्याधिपति बलामुरका पित गिरा था, वह स्थान मरकत-मणियोंका आकर अर्थात् खजाना बन गया। वह देश सामान्य जनोंके लिये दुर्लभ और गुणयुक्त हो गया। उस मरकतमणियोंके देशमें जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब विष-व्याधियोंको शान्त करनेवाला कहा गया है। सभी मन्त्रों एवं औषधियोंसे जिस नागके महाविषके उपचारमें सफलता नहीं प्राप्त हो सकती है, उस प्रभावको वहाँपर उत्पन्न वस्तुओंसे शान्त किया जा सकता है।

वहाँ जो मरकतमणियाँ उत्पन्न होती हैं, वे अन्यान्य देशोंकी मणियोंसे उत्तम कही गयी हैं। जो मणि अत्यन्त हरितवर्णवाली, कोमल कान्तिवाली, जटिल, मध्यभागमें सुवर्ण-चूर्णसे परिपूर्ण-सी दिखायी देती है, जो अपने स्थानविशेषके गुणोंसे समन्वित, समान कान्तिवाली, उत्तम तथा सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे अपनी उभाके द्वारा सभी स्थानोंको आलोकित करती है, हरितवर्णकी छोड़कर जिसके मध्यभागमें एक समुज्ज्वल कान्ति विद्यमान रहती है और जो अपनी नवनवोदित प्रभाराशिके नवीन निकले हुए हरित वर्णकी कान्तिको तिरस्कृत करती है तथा जो देखनेमात्रसे ही लोगोंके मनको अत्यधिक आह्लादित करनेमें समर्थ होती है, वह मरकतमणि बहुत गुणवती मानी जाती है। ऐसा रजविष्णु-विशारद विद्वज्जनोंका विचार है।

वर्णकी अत्यधिक व्यापकताके कारण जिस मरकत-मणिके अन्तर्भागकी निर्मल स्वच्छ किरणें परिधानके रूपमें परिलक्षित होती हैं, जिसकी उज्ज्वल कान्ति धनीभूत, रिनन्ध, विशुद्ध, कोमल, मयूरकण्टकी आभके समान शोभाको प्राप्त करती है तथा अपने वर्णकी उज्ज्वल कान्तिकी सान्द्रतासे एकाकार होकर सुशोभित रहती है। ऐसी मरकतमणि भी उसी गुणसम्पन्न मणिकी संज्ञाको प्राप्त करती है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

जो मरकतमणि चित्र वर्णवाली, कठोर, मलिन, रुक्ष, कड़े पत्थरके समान एवं खुरदुरी तथा शिलाजीतके समान

दग्ध होती है, ऐसी मरकतमणि गुणरहित होती है। जो मरकतमणि सन्धि-प्रदेशमें शुष्क हो तथा उससे अन्य रत्नका प्रादुर्भाव होता हो तो कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिके लिये वह रत्न धारण करने अथवा खरीदनेयोग्य नहीं होता है। भल्लातकी (शैलविशेष) और पुत्रिका (शैलविशेष)-वर्ण अथवा उन दोनों वर्णोंका एक ही मणिमें संयोग हो तो उसे भी मरकतमणिका विजातीय लक्षण ही समझना चाहिये। क्षौम-वस्त्रके द्वारा मार्जन करनेपर पुत्रिका लक्षणवाली मरकतमणि अपनी कान्तिका परित्याग कर देती है। जिस प्रकार कौबमें लघुता होती है, उसी प्रकार उसकी लघुताके द्वारा ही उसमें अवस्थित विजातीय भावनाको पहचाना जा सकता है। अनेक प्रकारके रूप या गुण अथवा वर्णके द्वारा मरकत-मणिका अनुगमन करनेवाली मणियाँ भल्लातकीकी लब्ध-ध्वनिसे विपरीत वर्णको प्राप्त हो जाती हैं। जो हॉरि-भोती विजातीय होते हैं, यदि वे किसी रजविधि विशेषके लेप्य पदार्थसे रहित हैं तो उनके वर्णोंकी प्रभा ऊर्ध्वगामिनी होती है।

अनुताके कारण किन्हीं मणियोंमें ऊर्ध्वगामिनी प्रभा दोष सकता है, किंतु तिर्यक् दृष्टिसे उनका अवलोकन करनेसे उनकी यह प्रभा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

स्नान, आचमन, जप तथा रक्षामन्त्रकी क्रियाविधिमें, गौ-सुवर्णका दान देते हुए और अन्यान्य प्रकारकी साधना करते समय, देव, पितृ, अतिथि तथा गुरुकी पूजाके समय, विषसे उत्पन्न विविध दोषोंसे पीड़ित होनेपर, संग्राममें विचरण करते हुए दोषोंसे होन और गुणोंसे युक्त, सोनेके सूत्रमें पिरोये उस मरकतको विद्वानोंके द्वारा धारण किया जाना चाहिये।

सामान्यतः पद्मरागमणिका तौलके अनुसार जो मूल्य होता है, उस मूल्यकी अपेक्षा सर्वगुणसम्पन्न मरकतमणिका मूल्य अधिक होता है। जिस प्रकार दोष रहनेपर पद्मराग-मणियोंका मूल्य न्यून हो जाता है, उसी प्रकार दोषसम्पन्न होनेपर मरकतमणियोंके मूल्यमें अत्यधिक न्यूनता आ जाती है। (अध्याय ७१)



## इन्द्रनीलमणिका लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

**सूतजीने पुनः कहा—**जिस स्थानपर सिंहल देशकी रमणियाँ अपने करपल्लवके अग्रभागसे नवीन लवलो<sup>१</sup> कुसुम तथा प्रवालका चयन कर रही थीं, वहाँपर उस बलासुरके विकसित कमलसदृश शोभासम्पन्न दोनों नेत्र आकर गिर पड़े। समुद्रकी वह कछारभूमि, रत्नके समान चमकनेवाले नेत्रोंकी प्रभातरंगांसे सुशोभित होकर एक विशाल क्षेत्रमें फैली हुई है। वहाँपर विकसित केतकी नामक पुष्पोंके वनोंकी शोभाको फैलानेमें प्रतिक्षण लगी रहनेवाली इन्द्रनीलमणियोंकी एक भूमि है। उस वनस्थलीपर अवस्थित पर्वतकी जो कर्णिकाभूमि है, उसमें प्रादुर्भूत होनेवाली ये भरकतमणियाँ नीलकमलसदृश कृष्ण एवं हलधर बलरामके द्वारा धारण किये जानेवाले पंत और नील वर्णोंकी आभासे सम्पन्न हैं। काले ध्रुवके समान हैं, सार्द्धधनुषसे सुशोभित स्कन्ध-प्रदेतवाले भगवान् विष्णुकी कान्तिसे युक्त हैं तथा भगवान् शिवके कण्ठके समान (नीलवर्ण) और नवीन कषाय पुष्पोंके समान आभावाली हैं।

उन मणियोंमें कोई स्वच्छ तरङ्गायित जलके समान, कोई मयूरके समान, कोई नीलीरसके समान, कोई जल-मुदबुदके समान और कोई मणि मदमस्त कोकिल पक्षीके कण्ठकी प्रभासे आभासित रहती है। उन सभी मणियोंमें एक प्रकारकी ही निर्मलता तथा प्रभारतिकी भास्वरता विद्यमान रहती है, उस पर्वतके रत्नार्भसे प्राप्त होनेवाली मणियोंमें इन्द्रनीलमणि नामके रत्न अत्यधिक गुणशाली होते हैं।

जिन मणियोंमें मिट्टी, पत्थर, छिद्र और करकराहटकी ध्वनि तथा नीलगगनपर आच्छादित सघन मेघच्छायाकी आभा रहती है, वे खर्गदोषसे दूषित माने जाते हैं। किंतु वहाँपर वे ही इन्द्रनीलमणियाँ अत्यधिक उत्पन्न होती हैं, जिनकी प्रशंसा रत्नशास्त्रके सुविज्ञानोंके द्वारा की जाती है।

धारण करनेयोग्य पद्मरागमणिमें जो गुण दिखायी देते हैं; मनुष्य इन्द्रनीलमणिको धारण करके उसमें उन सभी

गुणोंको प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार पद्मरागमणियोंकी तीन जातियाँ हैं, उसी प्रकार सामान्य रूपसे इन्द्रनीलमणियोंमें भी तीन जातियाँ देखी जा सकती हैं। जिन उपायोंके द्वारा पद्मरागमणिका परीक्षण किया जाता है, उन्हीं उपायोंसे इन्द्रनीलमणिका भी परीक्षण होता है।

पद्मरागमणिको उपयोगयोग्य बनानेके लिये जितनी अग्नि<sup>२</sup>के साथ उसका मन्निधान अपेक्षित है, उसकी अपेक्षा अधिक अग्निका सन्निधान इन्द्रनीलमणिके साथ होता चाहिये। तब भी परीक्षण अधिका गुणोंकी अभिवृद्धिके लिये किसी भी प्रकारकी मणिको अग्निमें डालकर संतप्त नहीं करना चाहिये। अज्ञानतावश भी यदि कोई ऐसा करता है तो अग्नि<sup>३</sup>की सम्यक् माचके परिज्ञानसे रहित प्रदाहमें जलजनेके कारण उत्पन्न दोषोंसे प्रदूषित वह मणि ऐसा कृत्य करनेवाले कर्ता एवं कारयित (करवानेवाला) दोनोंके लिये अनिष्टकारी होती है।

काँच, उत्पल, करवीर, स्फटिक एवं वैदूर्य आदि मणियाँ इन्द्रनीलमणिके सदृश होनेपर भी रत्नविशेषज्ञोंके अनुसार विजातीय हो मानी जाती हैं। अतएव इन उक्त सभी मणियोंके मुख्य एवं काठिन्य धर्मकी अवश्य परीक्षा लेनी चाहिये। जिस प्रकार कोई इन्द्रनीलमणि ताम्रवर्णको धारण कर लेती है, उसी प्रकार ताम्रवर्णवाले करवीर तथा उत्पल नामक दोनों मणियोंकी भी रक्षा करनी चाहिये। जिस इन्द्रनीलमणिके मध्य इन्द्रायुधकी प्रभा अवभासित होती रहती है, उस इन्द्रनीलमणिको पृथ्वीपर अत्यन्त दुर्लभ एवं अत्यधिक मूल्यवाली कहा गया है।

सौगुना अधिक परिमाणवाले दूधमें रखनेपर भी जिसकी सान्द्रवर्णकी कान्तिसे वह दूध स्वयं नीलवर्णका हो जाता है, उसीको महानीलमणि कहते हैं।

जिस प्रकार माशादिसे की गयी तैलके द्वारा महागुणशाली पद्मरागमणिका मूल्य निर्धारित किया जाता है, उसी प्रकार सुवर्ण परिमाण (अस्सी रत्ती)-को तैलसे महागुणशाली इन्द्रनीलमणिका मूल्य निर्धारित होता है। (अध्याय ७२)

## वैदूर्यमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं ब्रह्माके द्वारा बतायी हुई तथा व्यासजीद्वारा कही हुई वैदूर्य, पुष्पराग, कर्कतन तथा भीष्मकमणियोंकी परीक्षा-विधिकी पृथक्-पृथक् कहता हूँ।

कल्पान्तकालमें क्षुब्ध अगाध समुद्रकी जलराशिके गम्भीर महानादके समान दिति-पुत्र बलामुद्रके नादसे विभिन्न वर्णोंवाली, अत्यन्त सौन्दर्य-सम्पन्न वैदूर्यमणियोंका बीज उत्पन्न हुआ था।

उत्तुंग शिखरोंवाले विदूर नामक पर्वतके सन्निकट स्थित कामभूतिक सीमासे मिले हुए क्षेत्रमें उस वैदूर्यबीजका अवधान होनेसे एक रत्नगर्भकी उत्पत्ति हुई।

बलामुद्रके नादसे उत्पन्न यह रत्नाकर महागुणसम्पन्न तथा तीनों लोकोंका श्रेष्ठतम आभूषणस्वरूप है। उस रत्नाकरमें दैत्यराजके महानादका अनुकरण करनेवाली, वर्षाकालीन श्रेष्ठ मेघोंकी आभावाली बड़ी ही सुन्दर विविध प्रकारकी मणियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे प्रभाते स्मृतिश्रृङ्गाका समूह निकलता रहता है।

पृथिवीपर पद्मरागमणियोंके जो वर्ण हैं, उन सभी वर्णोंकी शोभाका अनुगमन वैदूर्यमणि करती है। उन मणियोंमें जो मणि मयूरकण्ठके सदृश अथवा बंसपत्रके समान वर्णवाली होती है, उसको श्रेष्ठ माना गया है। जिन मणियोंका वर्ण चषक नामक पक्षीके सदृश होता है, उन वैदूर्यमणियोंको मणिशास्त्रवेत्ताओंने प्रशस्त नहीं कहा है।

गुणयुक्त वैदूर्यमणि अपने स्वामीको परम सौभाग्यसे सम्पन्न बनाती है और दोषयुक्त मणि अपने स्वामीको दोषोंसे संयुक्त कर देती है। अतएव प्रयत्नपूर्वक परीक्षा करनी चाहिये।

वैदूर्यमणिके अतिरिक्त गिरिकौच, शिशुपाल, काँच तथा

स्फटिक—ये चार विजातीय मणियाँ हैं, जो वैदूर्यके समान ही आभा फैलाती हैं। किंतु लेखनकी सामर्थ्यसे रहित होनेके कारण काँच, गुरुत्वभावसे हीन होनेके कारण शिशुपाल, कान्तियुक्त होनेसे गिरिकौच एवं अपने समुज्ज्वल वर्णके कारण स्फटिकमणिसे इस मणिमें भेद होता है। महागुणसम्पन्न इन्द्रनीलमणिका सुवर्ण (अस्सी रत्नी मात्रा) परिमाणके अनुसार जो मूल्य निर्धारित किया गया है, वही मूल्य दो पल भारयुक्त वैदूर्यमणिका कहा गया है।

एक विजातीय मणिमें ये सभी वर्ण समान होते हैं, जो वर्ण मणियोंमें पाये जाते हैं; फिर भी उनमें महान् भेद माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ये विशेष भेदक तत्त्वपर विचार करें। स्नेह, लघुता और मृदुताके द्वारा सजातीय और विजातीय मणियोंके छिद्दोंका भेद सार्वजनीन है।

मणिसोधनमें कुसल या अकुसलजनकोंके द्वारा प्रयुक्त उचित एवं अनुचित उपायोंके कारण भी विभिन्न प्रकारकी मणियोंमें उत्पन्न हुए गुण-दोषके अनुसार उनके मूल्यमें न्यूनताधिक्य हो जाता है।

मणिबन्धक अर्थात् मणिवेत्ताके द्वारा भली प्रकारसे लोभित मणियाँ यदि दोषरहित होती हैं तो उनका सामान्य मूल्यकी अपेक्षा छःगुना अधिक मूल्य होता है। समुद्रके तीरकी समीपमें स्थित आकरसे प्राप्त हुई मणियोंका जो मूल्य होता है, पृथिवीपर सर्वत्र मणियोंका वही मूल्य नहीं रहता।

मनुने सोलह मातेका एक 'सुवर्ण' (भार) बताया है। उसका सातवाँ हिस्सा संज्ञारूप प्राप्त करता है। चार भाशेका एक 'राग', पाँच कृष्णलका एक 'माशा' और एक पलका दशम भाग 'धरज' कहलाता है। इस प्रकार रत्नोंके मूल्य निश्चयके लिये यह मणिविधि कही गयी है। (अध्याय ७३)

## पुष्परागमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुनः कहा—देवशत्रु बलामुद्रके शरीरकी त्वचा हिमालय पर्वतपर गिरी थी, जिनसे महागुणसम्पन्न पुष्परागमणियोंका प्रादुर्भाव हुआ। जो पाषाण पूर्णरीत एवं पाण्डुरवर्णकी सुन्दर आभासे समन्वित रहता है, उसका

नाम 'पद्मराग' है। यदि वह लोहित और पीतवर्णकी आभासे युक्त है तो उसको 'कीकण्ठक' नामसे जानना चाहिये।

जो पाषाण पूर्ण लोहित एवं सामान्य पीतवर्णसे संयुक्त होता है, उसे 'काषायकमणि' कहते हैं। जिस पत्थरका वर्ण

पूर्णरूपसे नीला और शुक्लवर्णसमन्वित तथा स्निग्ध होता है, वह सोमालक गुणयुक्त मणि है। जो पत्थर अत्यन्त लोहित वर्णका होता है, उसीको 'पद्मराग' कहा जाता है। जो पूर्ण नीलवर्णकी सुन्दर आभासे सम्पन्न रहता है, उसे 'इन्द्रनीलमणि' कहते हैं।

मणिस्वास्ववेत्ताओंने वैदूर्यमणिके समान ही पुष्परामणिका मूल्य स्वीकार किया है। इसको धारण करनेसे वही फल प्राप्त होते हैं, जो वैदूर्यमणिके धारणसे होते हैं। नारियोंके द्वारा धारण किये जानेपर वह मणि उन्हें 'पुत्र' प्रदान करती है। (अध्याय ७४)

### कर्कतनमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—पवनदेवने रत्नवीजरूप उस दैत्यराज बलामुरके नखोंको प्रसन्तापूर्वक लेकर कमल-वनप्रान्तमें बिखेर दिया। जाकुद्वारा विकीर्ण उन नखोंसे पृथिवीपर कर्कतन नामक पूज्यतम मणिका जन्म हुआ। उसका वर्ण रक्त, चन्द्र एवं मधुसूदन, ताम्र, पीत, अग्निवत् प्रखलित, समुज्ज्वल, नील तथा श्वेत होता है। रत्न-व्याधि आदि दोषोंके कारण वह कठोर एवं विभिन्न वज्रोंमें भी प्राप्त होती है।

जो कर्कतनमणियाँ स्निग्ध, स्वच्छ, समरंग, अनुरक्षित, पीत, गुरुत्व धर्मसे संयुक्त एवं विचित्र आभासे व्याप्त तथा संताप, व्रण और व्याधि आदि दोषोंसे रहित होती हैं, उन्हें विशुद्ध या परम पवित्र माना जाता है।

स्वर्ण-पत्रमें सम्पुटितकर जब उन मणियोंको अग्निमें शोभित किया जाता है तो वे अत्यधिक देदीप्यमान हो

उठती हैं। ऐसी विशुद्ध कर्कतनमणि रोगका नाश करनेवाली, कलिके दोषोंको नष्ट करनेवाली, कुलकी वृद्धि करनेवाली तथा सुख प्रदान करनेवाली होती है।

जो मनुष्य अपने शरीरको अलंकृत करनेके लिये इस प्रकारके बहुत-से गुणोंवाली कर्कतन नामक मणिको धारण करते हैं, वे पूजित, प्रचुर धनसे परिपूर्ण तथा अनेक वन्धु-बान्धवोंसे सम्पन्न होते हैं और नित्य उज्ज्वल कीर्तिसे सम्पन्न तथा प्रसन्न रहते हैं।

अन्य दूषित कर्कतनमणिको धारण करनेवाले विकृत, व्याकुल, नीलो कान्तिवाले, मलिन छुतिवाले, स्नेहरहित, कतुपित तथा विरूपवान् हो जाते हैं। वे तेज, दीप्ति, कुल, पुष्टि आदिसे विहीन होकर दूषित कर्कतनके सदृश शरीरको धारण करते हैं। (अध्याय ७५)

### भीष्मकमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुनः कहा—उस देवराज बलामुरका वीर्य हिमालय पर्वतके उत्तरी प्रान्तमें गिरा था। अतः वह देश उत्तम भीष्मकमणियोंका रत्नाकर बन गया। वहाँसे प्राप्त होनेवाली भीष्मकमणियाँ शङ्ख एवं पद्मके समान समुज्ज्वल, मध्याह्नकालीन सूर्यको प्रभाके समान शोभावाली तथा वज्रके समान तरुण होती हैं।

जो मनुष्य अपने कण्ठादिक अङ्गोंमें स्वर्णसूत्रमें गुंथी हुई विशुद्ध भीष्मकमणिको धारण करता है, वह सदा सुख-समृद्धि प्रदान करनेवाली सम्पदाओंको प्राप्त करता है। वनोंमें भी ऐसी मणिसे सुशोभित मनुष्यको देखकर समीप आये हुए ह्रीपी, भेड़िया, शरभ, हाथी, सिंह और व्याघ्रादि हिंसक वन्य प्राणी तत्काल भाग जाते हैं। उस मणिको धारण करनेसे किसी भी प्रकारका भय नहीं रह जाता है। लोग भीष्मकमणिके स्वामीका उपहास नहीं कर पाते हैं।

भीष्मकमणिसे संयुक्त अँगूठीको धारण करके जो व्यक्ति अपने पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितरोंको बहुत वर्षोंतकके लिये संतुष्टि प्राप्त हो जाती है। इस रत्नके प्रभावसे सर्प, आखु (चूहा), बिच्छू आदि अण्डज जीवोंके विष स्वयं ज्ञान्त हो जाते हैं। जल, अग्नि, शत्रु और चोरोंके भयंकर भय भी नष्ट हो जाते हैं।

शैवाल एवं मेघकी आभासे युक्त, कठोर, पीत प्रभावाली, मलिन छुति और विकृत वर्णवाली भीष्मकमणिका विद्वान् व्यक्तिको दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। पण्डितोंको देश-कालके परिज्ञानके अनुसार इन मणियोंके मूल्योंका निर्धारण करना चाहिये; क्योंकि दूर देशमें उत्पन्न हुई मणियोंका मूल्य अधिक तथा निकट देशमें उत्पन्न हुई मणियोंका मूल्य उसको अपेक्षा कुछ कम होता है। (अध्याय ७६)

## पुलकमणिके लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—वायुदेवने दानवराज बलामुरके नखसे लेकर भुजापर्यन्त गतिमान् रत्नमयी प्रकाशकी विधिवत् पूजा करके उसको श्रेष्ठ पर्वतों, नदियों तथा उत्तरदेशके अन्य प्रसिद्ध स्थानोंमें स्थापित किया था। अतएव दाज्ञान, वागदर, मेकल, कलिङ्ग आदि देशोंमें उस प्रकाशरूपी बीजसे उत्पन्न पुलकमणियाँ गुज्राफल, अञ्जन, क्षौद्र (मधु) और कमलनालके समान तथा गन्धर्व एवं अग्निदेशमें उत्पन्न हुई मणियाँ केलेके समान कान्तिवाली होती हैं। इन सभी पुलकमणियोंको प्रशस्त माना गया है।

कुछ पुलकमणियोंकी भंगिमा शंख, पद्म, ध्रुव तथा

सूर्यके समान विचित्र होती है। ऐसी परम पवित्र मणियोंको सूत्रोंमें गुँथकर धारण करनेसे सब प्रकारका कल्याण होता है; क्योंकि वे पुलकमणियाँ मातृलिक एवं धन-धान्यादि ऐश्वर्यकी अभिवृद्धि करनेवाली होती हैं।

कौआ, घोड़ा, गधा, सियार, भेड़िया तथा भयंकर रूप धारण करनेवाले और मांस-रुधिरादिसे संलिप्त मुखवाले गृध्रोंके समान वर्णवाली जो पुलकमणियाँ होती हैं, वे मृत्युदायक होती हैं। विद्वान् व्यक्तिको उनका परित्याग करना चाहिये। श्रेष्ठ एक पल प्रमाणवाली पुलकमणिका मूल्य पौंच सौ मुद्रा कहा गया है। (अध्याय ७७)

## रुधिराक्ष रत्न-परीक्षा

सूतजीने कहा—अग्निदेवने दानवराजके अभौष्टरूपको ग्रहणकर कुछ अंश नर्मदा नदीके प्रान्तभागमें तथा कुछ अंश उस देशके निम्न भू-भागोंमें फेंक दिया था। अतः उन स्थानोंपर इन्द्राग्रेष (वीरबहूटी कीट) तथा शुक पक्षीके मुखकी भाँति वर्णवाली एवं प्रकट पीलु फलके समान वर्णवाली रुधिराक्ष मणियाँ प्राप्त होती हैं। इनके अतिरिक्त भी यहाँपर नाना प्रकारकी मणियाँ प्राप्त होती हैं, इनका

आकार एक समान होता है।

जो मणि मध्यभागमें चन्द्रके सदृश पाण्डुर तथा अत्यन्त विमृद्ध वर्णवाली होती है, तुलनामें वह इन्द्रनीलमणिके समान होती है। इसे ऐश्वर्य, धन-धान्य एवं भृत्यादिकी अभिवृद्धि करनेवाली माना गया है। इस मणिका पाक-क्रियासे शोधन होनेपर देववज्रके समान वर्ण होता है। (अध्याय ७८)

## स्फटिक-परीक्षा

सूतजीने कहा—हलधारी बलरामने उस दैत्यराजके मेघाभागको लेकर कावेरी, विन्ध्य, यवन्, चीन तथा नेकल देशके भूभागोंमें प्रयत्नपूर्वक बिखेर था। अतः उन स्थानोंपर अस्फटिकके समान निर्मल तैल-स्फटिक नामक मणि उत्पन्न हुईं। यह मणि मृजाल एवं शंखके सदृश धवल होती है, किन्तु कुछ मणियाँ

उक्त वर्णके अतिरिक्त अन्य वर्णोंकी भी धारण करती हैं।

रत्नोंमें इस मणिके समान अन्य कोई नहीं है, जो पाप-विनाश करनेमें उसके बराबर क्षमता रखती हो। शिल्पकारके द्वारा संस्कारित होनेपर ही स्फटिकके मूल्यका कुछ आकलन किया जा सकता है। (अध्याय ७९)

## विद्रुममणिकी परीक्षा

सूतजीने पुनः कहा—हे शौनक! सेपनागने उस बलामुरके अन्त-भागको ग्रहणकर केरल आदि देशोंमें छोड़ा था, अतएव उन स्थानोंपर महागुणसम्पन्न विद्रुममणियोंका जन्म हुआ। उन विद्रुममणियोंमें जो खरगोशके रक्तके समान लोहित होती हैं अथवा गुज्राफल या जपापुष्पकी आभाकी

धारण करती हैं, उन्हें श्रेष्ठ माना गया है। नील देश, देवक तथा रोमक नामक स्थान इन मणियोंकी जन्मभूमि हैं। उनमें उत्पन्न हुई विद्रुममणि अत्यन्त लाल वर्णकी होती है। अन्य स्थानोंसे प्राप्त होनेवाली मणियाँ प्रशस्त नहीं मानी गयी हैं। शिल्पकारके विशेष योग-कौशलपर ही इनके मूल्यका निर्धारण होता है।



जो विदुषमणि सुन्दर, कोमल, स्निग्ध तथा लाल-लाल धन-धान्य-सम्पन्न बनानेवाली तथा उसके विषादिक दुःखोंको वर्णकी होती है, वह निश्चित ही इस संसारमें मनुष्यको दूर करनेवाली होती है। (अध्याय ८०)

### गङ्गा आदि विविध तीर्थोंकी महिमा

सुतजीने कहा—हे सौनक! अब मैं समस्त तीर्थोंका वर्णन करूँगा। जितने भी तीर्थ हैं, उनमें गङ्गा उत्तमोत्तम तीर्थ है। यद्यपि गङ्गा सर्वत्र सुलभ है, किंतु हरिद्वार, प्रयाग एवं गङ्गासागरके संगम—इन तीन स्थानोंमें वह दुर्लभ है<sup>१</sup>।

प्रयाग परम श्रेष्ठ तीर्थ है, जो मरनेवालेको मुक्ति और भुक्ति दोनों प्रदान करता है। इस महातीर्थमें स्नान करके जो अपने पितरोंके लिये पिण्डदान करते हैं, वे अपने समस्त पापोंका विनाशकर सभी अभीष्टोंकी सिद्धि प्राप्त करते हैं।

वाराणसी परमतीर्थ है। इस तीर्थमें भगवान् विधवाध और केशव सदैव निवास करते हैं। कुरुक्षेत्र भी बहुत बड़ा तीर्थ है। इस तीर्थमें दानादि करनेसे यह भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करानेवाला है। प्रभास श्रेष्ठतम तीर्थ है, जहाँपर भगवान् सोमनाथ विराजमान रहते हैं। द्वारका अत्यन्त सुन्दर नगरी है। यह भुक्ति-भुक्ति दोनोंको प्रदान करनेवाली है। पूर्व दिशामें अवस्थित सरस्वती पुण्यदायिनी तीर्थ है। इसी प्रकार सप्तसारस्वत परमतीर्थ है।

केदारतीर्थ समस्त पापोंका विनाशक है। सम्भलग्राम उत्तम तीर्थ है। खदिरकाश्रम भगवान् नरन्धरायणका महातीर्थ है, जो भुक्तिप्रदायक है।

श्वेतद्वीप, मायापुरी (हरिद्वार), नैमिषारण्य, पुष्कर, अयोध्या, चित्रकूट, गोमती, वैन्यायक, रामगिर्याश्रम, काशीपुरी, तुंगभद्रा, श्रीशैल, सेतुबन्ध-रामेश्वर, कार्तिकेय, भृगुतुंग, कामतीर्थ, अमरकण्ठक, महाकालेश्वरकी निवासभूमि उज्जयिनी, श्रीधर हरिका निवासस्थल कुरुक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, कालसायि, कामद, महाकेशी, कावेरी, चन्द्रभाग, विषाखा, एकाग्र, ब्रह्मेश, देवकोटक, रम्य मयुरापुरी, महानद सोन तथा जम्बूसर नामक स्थानोंको महातीर्थ कहा गया है।

इन तीर्थोंमें सदा सूर्य, शिव, गणपति, महालक्ष्मी एवं भगवान् हरि निवास करते हैं। यहाँ और अन्यान्य पवित्र

स्थानोंमें किया गया स्नान, दान, जप, तप, पूजा, श्राद्ध तथा पिण्डदानादि अक्षय होता है। इसी प्रकार शालग्राम तथा वासुपततीर्थ भी परम पवित्र तीर्थ हैं, जो भक्तोंको सब कुछ प्रदान करते हैं।

कोकामुख, वाराह, भाण्डीर और स्वामि नामक तीर्थ महातीर्थके रूपमें विख्यात हैं। लोहदण्ड नामक तीर्थमें महाविष्णु तथा मन्दारतीर्थमें मधुसूदन निवास करते हैं।

कामरूप महान् तीर्थ है। इस स्थानमें कामाख्यादेवी सदा विराजमान रहती हैं। पुण्ड्रवर्धनतीर्थमें भगवान् कार्तिकेय प्रतिष्ठित रहते हैं। विराज, श्रीपुरुषोत्तम, महेंद्रपर्वत, कावेरी, गोदावरी, पद्मोष्णी, वरदा, विन्ध्य और नर्मदाभेद नामक महातीर्थ समस्त पापोंके विनाशक हैं। गोकर्ण, माहिष्मती, कलिंजर एवं श्रेष्ठ शुक्लतीर्थको महातीर्थ माना गया है। यहाँपर स्नान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस तीर्थमें भगवान् शार्ङ्गधारी हरि निवास करते हैं। भक्तोंको सब कुछ देनेवाले विराज तथा स्वर्णाक्षतीर्थ भी उत्तम तीर्थ हैं।

नन्दितीर्थ भुक्तिदायक और कौटिलीयोंका फल प्रदान करनेवाला है। नासिक, गोवर्धन, कृष्णा, येणी, भीमरथी, गण्डकी, इरावती, विंदुसर एवं विष्णुपादोदक महापुण्यप्रदायक परमतीर्थ हैं।

ब्रह्मध्यान और इन्द्रियनिग्रह महान् तीर्थ हैं, दम तथा भावशुद्धि श्रेष्ठ तीर्थ है। ज्ञानरूपी सरोवर और ध्यानरूपी जलमें, राग-द्वेषादि रूप मत्सका नाश करनेके लिये ऐसे मानस तीर्थमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है।

यह तीर्थ है, यह तीर्थ नहीं है—जो लोग इस प्रकारके भेद-ज्ञानको रखते हैं, उन्हीं लोगोंके लिये तीर्थ-गमन और उसके उत्तम फलका विधान किया गया है, किंतु जो 'सर्वत्र ब्रह्मण्य है' ऐसा स्वीकार करते हैं, उनके लिये कोई भी स्थान अतीर्थ नहीं है। इन सभीमें स्नान, दान, श्राद्ध,

पिण्डदान आदि कर्म करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। समस्त पर्वत, समस्त नदियाँ एवं देवता, ऋषि-मुनि तथा संतों आदिसे सेवित स्थान तीर्थ हो हैं—

इदं तीर्थमिदं नेति ये ज्ञात भेददर्शिनः।

तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलं च यत्॥

सर्वं ब्रह्मोति यो वेत्ति नतीर्थं तस्य किञ्चन।

एतेषु स्नानदानानि श्राद्धं पिण्डमवाक्षयम्॥

सर्वा नद्यः सर्वशैलाः तीर्थं देवादिसेवितम्।

(८१।२५-२७)

श्रीरंगपत्तनम् भगवान् हरिका महान् तीर्थं है। तापती एक श्रेष्ठ महानदी है। सप्तगोदावरी एवं कोणगिरि भी महातीर्थ हैं। कोणगिरितीर्थमें महालक्ष्मी नदीके रूपमें स्वयं विराजमान रहती हैं। सहायपर्वतपर भगवान् देवदेवेश्वर एकबीर तथा महादेवी सुरेश्वरी निवास करती हैं।

गङ्गाद्वार, कुशावर्त, विन्ध्यपर्वत, नीलगिरि और कनखल—इन महातीर्थोंमें जो व्यक्ति स्नान करता है, वह पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता—

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते विन्ध्यके नीलपर्वते॥

स्नात्वा कनखले तीर्थे स भवेन्न पुनर्भवे।

(८१।२९-३०)

सूतजीने (आगे) कहा कि उपर्युक्त वर्णित और अन्य जो अवर्णित तीर्थ हैं, सभी स्नानादिक क्रियाओंको सम्पन्न करनेपर सदैव सब कुछ प्रदान करनेवाले हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरिसे तीर्थोंका माहात्म्य सुनकर ब्रह्मने दक्षप्रजापति आदिके साथ महामुनि व्यासको उनका ब्रवण कराया और पुनः तीर्थोत्तम एवं अक्षय फल देनेवाले तथा ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाले 'गया' नामक तीर्थका वर्णन किया। (अध्याय ८१)

### गया-माहात्म्य तथा गयाक्षेत्रके तीर्थोंमें श्राद्धादि करनेका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी। मैं भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करनेवाले परम सार-स्वरूप उत्तम गया-माहात्म्यको संक्षेपमें कहूँगा, आप सुनें।

पूर्वकालमें गय नामक परम खीरवान् एक असुर हुआ। उसने सभी प्राणियोंको संतप्त करनेवाली महान् दारुण तपस्या की। उसकी तपस्यासे संतप्त देवगण उसके बंधकों इच्छासे भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये। श्रीहरिने उनसे कहा—आप लोगोंका कल्याण होगा, इसका महादेह गिराया जायगा। देवताओंने 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कहा। एक समय शिवजीकी पूजाके लिये क्षीरसमुद्रसे कमल लाकर गय नामका वह बलवान् असुर विष्णुमायासे विमोहित होकर कीकट देशमें ज्ञयन करने लगा और उसी स्थितिमें वह विष्णुकी गदाके द्वारा मारा गया।

भगवान् विष्णु मुक्ति देनेके लिये 'गदाधर'के रूपमें गयामें स्थित हैं। गयासुरके विस्तृत देहमें ब्रह्मा, जनार्दन, शिव तथा प्रपितामह स्थित हैं, विष्णुने वहाँकी मर्यादा स्थापित करते हुए कहा कि इसका देह पुण्यक्षेत्रके रूपमें होगा। यहाँ जो भक्ति, यज्ञ, श्राद्ध, पिण्डदान अथवा स्नानादि करेगा, वह स्वर्ग तथा ब्रह्मलोकमें जायगा, नरकगामी नहीं

होगा। पितामह ब्रह्मने गयातीर्थको श्रेष्ठ जानकर वहाँ यज्ञ किया और ऋत्विक्-रूपमें आवे हुए ब्राह्मणोंकी पूजा की।

ब्रह्मने वहाँ रसवती अर्घ्यात् जलसे परिपूर्ण एक विशाल नदी, काफी, जलशय्य आदि तथा विविध भक्ष्य, भोग्य, फल आदि और कामधेनुकी सृष्टि की। तदनन्तर ब्रह्मने इन सब साधनोंसे सम्पन्न पौष क्रौंशके परिक्षेत्रमें फैले हुए उस गया तीर्थका दान उन ब्राह्मणोंको कर दिया।

ब्राह्मणोंने उस धर्मयज्ञमें दिये गये धनादिक दानको लोभवश ही स्वीकार किया था। अतः उसी कालसे वहाँके ब्राह्मणोंके लिये यह शाप हो गया कि 'तुम्हारे द्वारा अर्जित विद्या और धन तीन पुरुषपर्यन्त अर्थात् तीन पीढ़ियोंतक स्थायी नहीं रहेगा। तुम्हारे इस गया परिक्षेत्रमें प्रवाहित होनेवाली रसवती नदी जल एवं पत्थरोंके पर्वतमात्रके रूपमें ही अवस्थित रहेगी।

संतत ब्राह्मणोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर प्रभु ब्रह्मने अनुग्रह किया और कहा—गयामें जिन पुण्यशाली लोगोंका श्राद्ध होगा, वे ब्रह्मलोकको प्राप्त करेंगे। जो मनुष्य यहाँ आकर आप सभीका पूजन करेंगे, उनके द्वारा मैं भी अपनेकी पूजित स्वीकार करूँगा।

'ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशालामें मृत्यु तथा कुष्ठक्षेत्रमें गयागमनमात्रसे ही व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है—  
निवास—ये चारों मुक्तिके साधन हैं—'

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा।

वासः पुंसं कुष्ठक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा॥

(८२।१५)

हे व्यासजी! सभी समुद्र, नदी, वापी, कूप, तटश्राद्ध जितने भी तीर्थ हैं; वे सब इस गयातीर्थमें स्वयमेव स्नान करनेके लिये आते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

'गयामें श्राद्ध करनेसे ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नीगमन और उक्त संसर्ग-जनित सभी महापातक नष्ट हो जाते हैं—'

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वर्णनाशनः।

पापं तत्संगजं सर्वं गयाश्राद्धाद् विनाश्यति॥

(८३।१३)

जिनकी संस्काररहित दशामें मृत्यु हो जाती है अथवा जो मनुष्य पशु तथा चौरद्वारा मारे जाते हैं या जिनकी मृत्यु सर्पके काटनेसे होती है, वे सभी गया-श्राद्ध-कर्मके पुण्यसे बन्धन-मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं।

'गयातीर्थमें पितरोंके लिये पिण्डदान करनेसे मनुष्यकी जो फल प्राप्त होता है, सी करोड़ वर्षोंमें भी उसका वर्णन भेरेद्वारा नहीं किया जा सकता'।

ब्रह्माजीने पुनः व्यासजीसे कहा—कीकट-देशमें गया पुण्यशाली है। राजगृह, वन तथा विषयचाराण परम पवित्र है एवं नदियोंमें पुनःपुनः नामक नदी ब्रह्म है।

गयातीर्थमें पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तरमें 'मुण्डपुह' नामक तीर्थ है, जिसका मान ढाई कोश विस्तृत कहा गया है। 'गयाक्षेत्रका परिमाण पौच कोश और गयाशिरका परिमाण एक कोश है। वहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको शाश्वत तृप्ति हो जाती है'—

पञ्चकोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः।

तत्र पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती॥

(८३।१४)

विष्णुपर्वतसे लेकर उत्तरमानसतकका भाग गयाका सिर माना गया है। उसीको फल्गुतीर्थ भी कहा जाता है। यहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको परमगति प्राप्त होती है।

गयाक्षेत्रमें भगवान् विष्णु पितृदेवताके रूपमें विराजमान रहते हैं। पुण्डरीकाक्ष उन भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेपर मनुष्य अपने तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। गयातीर्थमें रथमार्ग तथा रुद्रपद आदिमें कालेश्वर भगवान् केदारनाथका दर्शन करनेसे मनुष्य पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है।

यहाँ पितामह ब्रह्माका दर्शन करके वह पापमुक्त और प्रतिपादका दर्शनकर अनामयस्तोककी प्राप्ति करता है। उसी प्रकार गदाधर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करनेसे उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

हे ब्रह्मर्षि! गयातीर्थमें (भीन धारण करके जो) मौनदित्य और महात्मा कनकाकका दर्शन करता है, वह पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है और ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठ करके गायत्रीदेवीका दर्शनकर विधि-विधानसे प्रातःकालीन संध्या सम्पन्न करता है, उसे सभी वेदोंका फल प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति मध्याह्नकालमें सावित्रीदेवीका दर्शन करता है, वह यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो सायंकालमें सरस्वतीदेवीका दर्शन करता है, उसे दानका फल प्राप्त होता है।

यहाँ पर्वतपर विराजमान भगवान् शिवका दर्शन करके मनुष्य अपने पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है। धर्मारण्य और उस पवित्र वनके स्वामी धर्मस्वरूप देवका दर्शन करनेसे समस्त ऋण नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार गृध्रेश्वर महादेवका दर्शन करके कौन ऐसा व्यक्ति है, जो भय-बन्धनसे विमुक्त नहीं हो सकता।

प्राणी धेनुवन (गो-प्रचारतीर्थ) नामक महातीर्थमें धेनुका दर्शन करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोक से जाता है। प्रभास-तीर्थमें प्रभासेश्वर शिवका दर्शन-लभ करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। कोटीश्वर और अश्वमेधका दर्शन करनेपर ऋणका विनाश हो जाता है। स्वर्गद्वारेश्वरका दर्शन करके

मनुष्य भवबन्धनसे विमुक्त हो जाता है।

उसी धर्मारण्यमें अवस्थित गदालोलतीर्थ तथा भगवान् रामेश्वरका दर्शन करके मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है। भगवान् ब्रह्मेश्वरके दर्शनसे ब्रह्महत्याके पापसे विमुक्ति हो जाती है।

मुण्डपूष्ठतीर्थमें महायण्डीका दर्शन करके प्राणी अपनी समस्त इच्छाओंको पूर्ण कर लेता है। फल्गुतीर्थके स्नान फल्गु, चण्डीदेवी, गौरी, मङ्गला, गोमक, गोपति, अङ्गेश्वर, सिद्धेश्वर, गयादित्य, गज तथा मार्कण्डेयेश्वर भगवान्के दर्शनसे व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। फल्गुतीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करता है, वह पितरोंके ऋणसे विमुक्त हो जाता है।

पुण्यकर्म करनेवाले जनोंके लिये क्या इतने कर्मसे पर्याप्त संतोष नहीं होता? (और इन तीर्थोंमें अवस्थित देव-दर्शन तथा स्नान करनेसे मनुष्यके कुलकी) इक्कीस पुरुषपर्यन्त पीढ़ीको ब्रह्मलोकको प्राप्त हो जाती है।

पृथिवीपर जितने भी तीर्थ, समुद्र और सरोवर हैं, वे सभी प्रतिदिन एक बार फल्गुतीर्थ जाते हैं। पृथिवीमें गया पुण्यशाली तीर्थ है। गयामें गयाशिर श्रेष्ठ है और उसमें भी फल्गुतीर्थ उसका मुख्यभाग है—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि ये समुद्राः सर्गासि च।

फल्गुतीर्थं गपिथ्यन्ति वारमेकं दिने दिने॥

पृथिव्यां च गया पुण्या गयायां च गयाशिरः।

श्रेष्ठं तथा फल्गुतीर्थं तन्मुखं च सूरस्य हि॥

(८३।२२-२३)

उदीची, कनका नदी और नाभितीर्थ उसका मध्यभाग है। उसी तीर्थके सन्निकट ब्रह्मसदस्तीर्थ है, जो स्नान करनेसे मनुष्यको ब्रह्मलोक प्रदान करता है। वहाँपर स्थित कूपमें पिण्डदानादि कृत्य करके मनुष्य अपने पितरोंके ऋणसे विमुक्त हो जाता है। अक्षयव्रतमें ब्राह्मकर्म सम्पन्न करके मनुष्य अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है।

हंसतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। कोटितीर्थ, गयालोल, वैतरणी तथा गोमकतीर्थमें पितरोंके लिये ब्राह्म करनेपर मनुष्य अपने इक्कीस पुरुषपर्यन्त (इक्कीस पीढ़ी)—को ब्रह्मलोक ले जाता है। ब्रह्मतीर्थ, रामतीर्थ, अग्नितीर्थ, सोमतीर्थ और रामहृदतीर्थमें

ब्राह्म करनेवाला अपने पितरोंको ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है।

उत्तरमानसतीर्थमें ब्राह्म करनेपर पुनर्जन्म नहीं होता। दक्षिणमानसतीर्थमें ब्राह्म करनेसे ब्राह्म करनेवाले अपने पितरोंको ब्रह्मलोक पहुँचाते हैं। स्वर्गद्वारतीर्थमें ब्राह्म करनेसे भी ब्राह्मकर्ताओंके पितृजन ब्रह्मलोकको जाते हैं। भीष्म-तर्पणका कृत्य जिस स्थानपर हुआ था, उस कूट स्थानपर ब्राह्म करनेसे भी मनुष्य पितृगणोंको भवसागरसे पार उतार देता है। गृध्रेश्वरतीर्थमें ब्राह्म करनेसे ब्राह्मकर्ता अपने पितृऋणसे विमुक्त हो जाते हैं।

धेनुकारण्यमें ब्राह्मकर तिलसे बनी हुई गौका दान करनेवाला व्यक्ति यदि स्नान करके वहाँपर अवस्थित धेनुमूर्तिका दर्शन करता है तो विक्षिप्त हो वह अपने पितृजनोंको ब्रह्मलोक पहुँचाता है।

ऐन्द्रतीर्थ, वासवतीर्थ, रामतीर्थ, वैष्णवतीर्थ तथा महानदीके पवित्र तीर्थपर ब्राह्म करनेवाला मनुष्य पितरोंको ब्रह्मलोक ले जाता है। गायत्रीतीर्थ, सावित्रीतीर्थ, सारस्वतीतीर्थमें स्नान-संध्या तथा तर्पण करके ब्राह्म-क्रिया-सम्पन्न करनेसे ब्राह्मकर्ता एक सौ एक पुरुषपर्यन्त पितरोंकी पीढ़ीको ब्रह्मलोक ले जाते हैं।

संप्रतमनसे पितरोंके प्रति ध्यान लगाकर मनुष्यको ब्रह्मर्षीनामक तीर्थको विधिपूर्वक पार करना चाहिये। वहाँपर पितृगणों एवं देवोंका तर्पण करके मनुष्य पुनः गर्भ-यन्त्रणाके संकटमें नहीं पड़ता है।

काकजङ्घातीर्थमें तर्पण करनेसे पितरोंको अश्वयुति होती है। धर्मारण्य तथा मतङ्गवापीतीर्थमें ब्राह्म करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। धर्मकूप तथा कूपतीर्थमें ब्राह्म करनेपर प्राणी पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। यहाँ ब्राह्मादि कृत्य करके इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः।

यथागत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितॄणां निष्कृतिः कृता॥

(८३।३६)

अर्थात् मैंने द्वारा किये जा रहे ब्राह्मादि कृत्योंके साक्षी यह कि देवता प्रमाण हों और लोकपाल साक्षी हों। इस मतङ्गतीर्थमें आ करके मैंने पितरोंसे ऋण-मुक्तिका कार्य किया है।



रामतीर्थमें स्नान करके प्रभासतीर्थ और प्रेतशिलहतीर्थमें श्राद्ध करनेसे पितृगण निश्चित ही प्रेतभावसे मुक्त हो जाते हैं। (ऐसा करके) वह श्राद्धकर्ता अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार करता है। मुण्डपृष्ठादि तीर्थोंमें भी श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोक ले जाता है।

गयाक्षेत्रमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँपर तीर्थ नहीं है। पाँच कोशके क्षेत्रफलमें स्थित गयाक्षेत्रमें जहाँ-तहाँ भी पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अक्षय फलको प्राप्तकर अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है—

गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।

पञ्चकोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र तु पिण्डदः॥

अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मलोकं गयेत् पितृन्।

(८३।३९-४०)

भगवान् जनार्दनके हाथमें अपने लिये पिण्डदान समर्पित करके यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

एष पिण्डो गया दलस्तत्र हस्ते जनार्दन।

परलोकं गते मोक्षमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥

(८३।४१)

हे जनार्दन! भगवान् विष्णु। मैंने आपके हाथमें यह पिण्ड प्रदान किया है। अतः परलोकमें पहुँचनेपर मुझे मोक्ष प्राप्त हो। ऐसा करनेसे मनुष्य पितृगणोंके साथ स्वयं भी ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

गयाक्षेत्रमें स्थित धर्मपृष्ठ, अहसद, गयातीर्थ तथा अक्षयवट-तीर्थमें पितरोंके लिये जो कुछ किया जाता है, वह असुर्य हो जाता है। धर्माग्न्य, धर्मपृष्ठ, धेनुकारण्य नामक तीर्थोंका दर्शन करनेसे व्यक्ति अपनी बीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है।

महानदीके पश्चिमी भागको ब्रह्माग्न्य कहा जाता है। उसके पूर्वभागमें अहसद, नागादि पर्वत तथा भरताश्रम है। भरताश्रम एवं यतङ्गपर्वतपर मनुष्यको पितरोंके लिये श्राद्ध करना चाहिये।

गयाशीर्षतीर्थसे दक्षिण तथा महानदीतीर्थके पश्चिम घम्पक घन स्थित है, जहाँपर पाण्डुशिला नामक तीर्थ है। ब्रह्मावान् व्यक्तिको उस तीर्थमें तृतीया तिथिको श्राद्ध करना चाहिये। उसी तीर्थके सत्रिकट निक्षिपमण्डल, महाहृद और कौशिकी आश्रम है। इन पवित्र तीर्थोंमें भी श्राद्ध करनेसे

प्राणीको अक्षय-फलकी प्राप्ति होती है।

वैतरणी नदीके उत्तरमें तृतीया नामक एक जलाशय है, वहाँपर क्रौञ्च-पक्षियोंका निवास है। इस तीर्थमें श्राद्ध करनेवाला पितृगणोंको स्वर्ग ले जाता है।

क्रौञ्चपदतीर्थसे उत्तर निक्षिप नामसे प्रसिद्ध एक जलाशय है, वहाँपर एक बार जाने और एक बार पिण्डदान करनेसे मनुष्यको कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है, किंतु जो इस तीर्थमें निरप्य निवास करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है?

महानदीके जलका स्पर्श करके मनुष्यको पितृदेवोंका तर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे अक्षय-लोकोंकी प्राप्ति होती है और उसके कुलका उद्धार हो जाता है।

सावित्रीतीर्थमें (एक बार) संभ्या करनेसे मनुष्यको द्वादशवर्षीय संभ्याका फल प्राप्त हो जाता है।

शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्षमें जो मनुष्य गयातीर्थ जाकर वहाँपर राखिवास करते हैं, निश्चित ही उनके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। इस गयातीर्थमें मुण्डपृष्ठ, अरविन्दपर्वत तथा क्रौञ्चपाद नामक तीर्थोंका दर्शन करके प्राणी समस्त पापोंसे विमुक्त हो जाता है। मकर-संक्रान्ति, चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर गयातीर्थमें जाकर पिण्डदान करना तीनों लोकोंमें दुर्लभ है।

महाहृद, कौशिकी, मूल-क्षेत्र तथा गृध्रकूटपर्वतकी गुफामें श्राद्ध करनेपर महाफलकी प्राप्ति होती है। जहाँ भगवान् महेश्वर शिवकी जटाओंसे निकली हुई गङ्गाकी माहेश्वरी धारा प्रवाहित है, वहाँ श्राद्ध करके मनुष्यको ज्ञानमुक्त होना चाहिये। उसी क्षेत्रमें तीनों लोकोंमें विक्षुत पुण्यतमा विशाला नामक नदीतीर्थ है। वहाँ श्राद्ध करनेसे व्यक्ति अग्निष्टोम नामक यज्ञका फल प्राप्त करता है एवं मृत्युके पश्चात् उसको स्वर्गलोक प्राप्त होता है। श्राद्धकर्ताको उस क्षेत्रमें स्थित मासपद नामसे विख्यात तीर्थके जलमें स्नान करके वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त करना चाहिये।

रविपाद नामक तीर्थमें पिण्डदान करके पतितजनोंको अपना उद्धार करना चाहिये। गयातीर्थमें जाकर जो मनुष्य अन्नदान करते हैं, उन्हींसे पितृगण अपनेको पुत्रवान् मानते हैं। नरकके भयसे डरे हुए पितृजन इसीलिये पुत्र-प्राप्तिकी

अभिलाषा करते हैं कि गयातीर्थमें जो कोई भी मेरा पुत्र जायगा, वह हमारा उद्धार करेगा। इस तीर्थमें पहुँचे हुए अपने पुत्रको देखकर पितृजनोंमें यह उत्सव होता है कि यहाँपर आया हुआ यह मेरा पुत्र अपने पैरोंसे भी इस तीर्थके जलका स्पर्श करके हम सबको निश्चित ही कुछ-न-कुछ प्रदान करेगा—

गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत्।

पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किल दास्यति॥

(८३।६०)

अपने पुत्र अथवा पिण्डदान देनेके अधिकारी अन्य किसी वंशजके द्वारा जब कभी इस गयाक्षेत्रमें स्थित गयाकूप नामक पवित्र तीर्थमें जिसके भी नामसे पिण्डदान दिया जाता है, उसे शाश्वत ब्रह्मर्षि प्राप्त करा देता है—

आत्मजो वा तथान्यो वा गयाकूपे यदा तदा।

यश्चाप्नोति यातयेत् पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम्॥

(८३।६१)

वहाँपर स्थित कोटितीर्थमें जानेसे मनुष्यको पुण्डरीक विष्णुलोक प्राप्त होता है। उस क्षेत्रमें त्रिलोकविभुत वैतरणी नामक नदी है। यह उस गयाक्षेत्रमें पितरोंका उद्धार करनेके लिये अवतारित हुई है।

जो ब्रह्मात्मा व्यक्ति वहाँपर पिण्डदान एवं गोदान करता है, निश्चित ही उसके द्वारा अपने कुलकी इक्कीस पुरुषपर्यन्त पीढ़ियोंका उद्धार होता है, इसमें संदेह नहीं है।

या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विभुता॥

सावतीर्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय हि।

(८३।६२-६३)

यदि मनुष्य किसी समय गयातीर्थकी यात्रा करता है तो वहाँपर उसके द्वारा उन्हीं कुलके ब्राह्मणोंको भोजन करवाना चाहिये, जिनका ब्रह्मर्षि अपने यज्ञमें वरण किया था। उस गयातीर्थमें ब्रह्मपद तथा सोमपान नामक तीर्थ उन्हीं ब्राह्मणोंके स्थान हैं, जिनका निर्माण ब्रह्माजीने किया था। इन ब्रह्माके द्वारा प्रकल्पित तीर्थपुरोहितोंकी पूजा करनेपर पितृगणोंके देवता भी पूजित हो जाते हैं।

उस गयातीर्थमें हव्य-कव्यादि पक्वाजके द्वारा वहाँके

ब्राह्मणोंको विधिवत् संतुष्ट करना चाहिये। गयामें निवास तथा देह-परित्यागकी भी विधि है। उत्तमोत्तम गयाक्षेत्रमें जो वृषोत्सर्ग करता है, उसे एक सौ अग्निष्टोम-यज्ञोंका पुण्य-लाभ होता है, इसमें संदेह नहीं है।

बुद्धिमान् मनुष्यको इस गयाक्षेत्रमें अपने लिये भी विलम्बित पिण्डदान करना चाहिये और अन्य व्यक्तियोंके लिये भी पिण्डदान करना चाहिये<sup>१</sup>।

हे व्यासजी! जतिके जितने भी पितृ, बन्धु-बान्धव एवं सुहृद् जन हों, उन सभीके लिये गयाभूमिमें विधिपूर्वक पिण्डदान किया जा सकता है।

रामतीर्थमें स्नान करके मनुष्य एक सौ गोदानका फल प्राप्त करता है। मतङ्गवापीमें स्नान करके एक सहस्र गायोंके दानका फल प्राप्त होता है। निक्षिरा-संगममें स्नान करके मनुष्य अपने पितृजनोंको ब्रह्मलोक ले जाता है। वसिष्ठाश्रममें स्नान करनेसे वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। महाकौत्तिकोतीर्थमें निवास करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

ब्रह्मसरोवरके निकट संसारको पवित्र करनेवाली प्रसिद्ध अग्निधारा नामक नदी प्रवाहित होती है। उसीको कपिला कहते हैं। इस नदीमें स्नान करके कृतकृत्य हुआ ब्रह्मात्मा व्यक्ति पितरोंके लिये ब्राह्म करके अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

कुमारधारामें ब्राह्म करके मनुष्यको अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करना चाहिये और वहाँपर स्थित कुमारदेवकी प्रणाम-निवेदन करके उसे मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये।

सोमकुण्डतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सोमलोकको जाता है। संवर्तवाची नामक तीर्थमें स्नान करके पिण्डदान करनेवाला प्राणी महासौभाग्यशाली बन जाता है।

प्रेतकुण्डतीर्थमें पिण्डदान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे विमुक्त हो जाता है। देवनदी, लेलिहान, मधन, जानुगर्तक तथा इसी प्रकारके अन्य पवित्र तीर्थोंमें पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने पितृजनोंको तार देता है। गयाक्षेत्रमें वसिष्ठेश्वर आदि देवताओंको प्रणाम करके प्राणी सभी ऋणोंसे विमुक्त हो जाता है। (अध्याय ८२-८३)

## गयाके तीर्थोंका माहात्म्य तथा गयाशीर्षमें पिण्डदानकी महिमामें विशालकी कथा

ब्रह्माजीने कहा—व्यासजी ! गयातीर्थकी यात्राके लिये उद्यत मनुष्यको विधिपूर्वक श्राद्ध करके संन्यासोके वेपने अपने गाँवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर दूसरे गाँवमें वह जाकर श्राद्धसे अवशिष्ट अन्नका भोजन ग्रहण करके प्रतिग्रहसे विवर्जित होकर यात्रा करे।

गयायात्राके लिये मात्र घरसे चलनेवालेके एक-एक कदम पितरोंके स्वर्गारोहणके लिये एक-एक सौदा बनते जाते हैं—

गृहाच्छलितमात्रस्य गयायां गमने प्रति।

स्वर्गारोहणसोपानं पितृणां तु पदे पदे॥

(८४।३)

कुरुक्षेत्र, विशाला (खदरीक्षेत्र), विरजा (जगन्नाथक्षेत्र) तथा गयातीर्थको छोड़कर शेष सभी तीर्थोंमें मुण्डन एवं उपवासका विधान है।

गयातीर्थमें दिन तथा रात (प्रत्येक समय)-में कभी भी श्राद्ध किया जा सकता है। वाराणसी, शोपनद और महानदी पुनःपुनःके तटपर श्राद्ध करके अपने पितृजनोंकी स्वर्गलोकमें ले जाय। मनुष्य उत्तर मानसतीर्थमें जाकर श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करता है। उस तीर्थमें उसे स्नान तथा श्राद्धादि क्रियाओंकी सम्पन्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह दिव्य कामनाओंकी तथा मोक्षको प्राप्त करता है।

दक्षिण मानसतीर्थमें जाकर ब्रह्मावन् पुरुषको भौन धारण करके पिण्डदानादि करना चाहिये, उस तीर्थमें श्राद्धादि करनेसे मनुष्य देव, ऋषि एवं पितृ—इन तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है।

उस गयाक्षेत्रमें सिद्धजनोंके लिये प्रोत्तिकारक, पापियोंके लिये भयोत्पादक, अपनी जिह्वाको लपलपाते हुए महाभयंकर, नष्ट न होनेवाले महासर्पोंसे परिब्याप्त कनकल नामक त्रिलोकविश्रुत महातीर्थ है। उदीचितीर्थमें देवर्षियोंसे सेवित मुण्डपृष्ठ नामसे एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है एवं श्राद्ध करनेपर उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। उस तीर्थमें सूर्यदेवको नमस्कार करके पिण्डदानादि सत्क्रियाओंको अवश्य ही सम्पन्न करना चाहिये।

[ कव्यवाह, सोम, यम, अर्यमा, अग्निध्वात्, बर्हिषद्

और सोमया नामक पितृदेवता हैं। गयाके तीर्थमें श्राद्ध करते समय इन सभी पितृदेवोंकी इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये— ]

कव्यवाहस्तथा सोमो यमश्चैवार्यमा तथा।

अग्निध्वात् बर्हिषद् सोमयाः पितृदेवताः॥

आगच्छन्तु महाभाग युष्माधी रक्षितास्त्विह।

मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः॥

तेषां पिण्डप्रदार्थमागतोऽस्मि गयाधियाम्।

(८४।१२-१४)

हे कव्यवाह ! सोम, यम, अर्यमा, अग्निध्वात्, बर्हिषद्, सोमय (दिव्य) पितृदेवता। आप महाभाग ! यहाँ पधारें। आप सौगोंद्वारा रक्षित हमारे कुलमें उत्पन्न जो सपिण्ड पितर पितृलोकमें चले गये हैं, इन सभी पितृजनोंके लिये पिण्डदान करनेके निमित्त मैं इस गयातीर्थमें आया हूँ।

—ऐसी प्रार्थना करके फल्गुतीर्थमें पिण्डदान करके मनुष्यको पितृमहका दर्शन करना चाहिये। उसके बाद भगवान् गदाधर विष्णुका दर्शन करे। ऐसा करनेसे वह पितृजलसे मुक्त हो जाता है। फल्गुतीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करता है, वह सद्यः अपना तो उद्धार करता ही है, साथ ही वह अपने कुलके दस पूर्व पुरुष एवं दस पश्चाद्वर्ती पुरुषपर्यन्त इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है।

गयातीर्थमें पहुँचे हुए ब्रह्मात्मा व्यक्तिके लिये यह प्रथम दिनकी विधिका वर्णन किया गया है। दूसरे दिन धर्मारण्य एवं मङ्गलवापोंमें जाकर श्राद्ध करनेवाला मनुष्य पिण्डदान आदि करे, धर्मारण्यमें जानेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मतीर्थमें राजसूय-यज्ञ एवं अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर कूप और यूप नामके तीर्थोंके मध्य श्राद्ध एवं पिण्डोदक कृत्य सम्पन्न करना चाहिये। कूपोदकके द्वारा किया गया वह श्राद्धादि कार्य अक्षय होता है। तीसरे दिन ब्रह्मसदतीर्थमें जाकर स्नानकर तर्पण करना चाहिये, तदनन्तर यूप एवं कूपतीर्थके मध्यमें श्राद्ध तथा पिण्डदान करनेका नियम है।

तदनन्तर गोप्रचारतीर्थके समीपमें ब्रह्माके द्वारा कल्पित ब्राह्मणोंके सेवनमात्रसे पितृजन मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

यूपतीर्थकी प्रदक्षिणा करके वाजपेय-पत्रका फल प्राप्त कर लेना चाहिये।

चौथे दिन फल्गुतीर्थमें स्नान करके देवादिकोंका तर्पण करे और उसके बाद गयाशीर्षमें रुद्रपदादि तीर्थोंमें जाकर वह पितरोंके लिये श्राद्ध करे।

तदनन्तर व्यास, देहिमुख, पञ्चाग्नि तथा पदत्रय नामक तीर्थमें पिण्डदान करके सूर्यतीर्थ, सोमतीर्थ एवं कार्तिकेय-तीर्थमें जाकर किये गये श्राद्धका फल अक्षय होता है।

गयातीर्थमें नवदैवत्य और द्वादशदैवत्य नामक श्राद्ध करना चाहिये। अन्यष्टका तिथियोंमें, वृद्धिश्राद्धमें, गयामें और मृत्युतिथिमें माताके लिये पुष्यक रूपसे श्राद्ध करनेका विधान है। अन्यत्र तीर्थोंमें पिताके साथ ही माताका श्राद्ध करना चाहिये<sup>१</sup>। दशाधमेधतीर्थमें स्नान करके पितामहका दर्शनकर यदि मनुष्य रुद्रपादका स्पर्श करता है तो वह पुनः इस लोकमें नहीं आता है।

वित्तपरिपूर्ण समग्र पृथिवीका तीन बार दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल गयाशिरतीर्थमें श्राद्ध करनेपर प्राप्त हो जाता है। इस गयाशिरतीर्थमें तमोपत्र प्रमाणके परावर पिण्डदान करना चाहिये। इससे पितृगण देवत्वको प्राप्त करते हैं। इस कार्यमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है<sup>२</sup>।

भगवान् शिवने मुण्डपृष्ठतीर्थपर अपना चरण रखा था। अतः उस तीर्थमें अल्पमात्र तपस्यासे ही मनुष्य महान् पुण्य प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति गयाशीर्षतीर्थमें तमोपचारके साथ जिन पितरोंको पिण्डदान करता है उससे नरकलोकमें निवास करनेवाले पितृजन स्वर्गलोक एवं स्वर्गमें रहनेवाले पितरोंको मोक्ष प्राप्त हो जाता है—

मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता॥

अल्पेन तपसा तत्र महापुण्यमवाप्नुयात्॥

गयाशीर्षे तु यः पिण्डाग्राप्ता येषां तु निर्वर्षेत्॥

नरकस्था दिवं याति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः॥

(८४। २८—३०)

१- श्राद्धं तु नवदैवत्यं कुप्यद्द्वादशदैवतम्। अन्यष्टकानु वृद्धौ च गयातीर्थं मृत्युवसरे॥

अत्र यानुः पुष्यक श्राद्धमन्यत्र पतिता सह। (८४। २४-२५)

२- अर्चितपूर्णा पृथिवीं दत्त्वा तत्फलमवाप्नुयात्॥

स तत्फलमवाप्नोति कृत्वा श्राद्धं गयाशिरः। तमोपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्यात् गयाशिरः॥

पितरो यान्ति देवत्वं तत्र कार्यं विचारणा। (८४। २६—२८)

३- वदमृतं समासाद्य शक्तेनोष्णीदकेन वा॥ एकस्मिन् भोजिते विप्रः कोटिर्भक्तिं भोजिताः। (८४। ३१-३२)

४- एष्टव्यं बहवः पुत्रा यद्येकीऽपि तर्का व्रजेत्॥ यज्ञेन यक्षन्नेधेन नीलं वा कृष्णमुन्नेत्॥ (८४। ३३-३४)

पाँचवें दिन गदास्तोत्रतीर्थमें स्नान करके अक्षयवटके नीचे पिण्डदान करनेवाला अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता है। अक्षयवटके मूलमें शाक अधवा उष्णोदकसे एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त हो जाता है<sup>३</sup>। अक्षयवटमें श्राद्ध करनेके पश्चात् प्रपितामहका दर्शन करके मनुष्य अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है एवं अपने सौ कुलोंका उद्धार कर देता है।

मनुष्यको बहुत-से पुत्रोंकी कामना करनी चाहिये, क्योंकि उनमेंसे एक भी पुत्र गयातीर्थमें जाय अधवा अधमेध-यज्ञ करे या नीलवृषोत्सर्ग करे<sup>४</sup>।

एक प्रेतने किसी ऋणिकसे कहा—हे ऋणिक! गयाशीर्षतीर्थमें तुम मेरे नामसे पिण्डदान करो, जिससे मैं इस प्रेतघातिसं मुक्त हो जाऊँगा। यह पिण्डदान दाताके लिये भी स्वर्गप्रदान करनेवाला होगा। ऐसा सुनकर उस ऋणिकने गयाशीर्षतीर्थमें उस प्रेतराजके लिये पिण्डदान किया। तदनन्तर अपने छोटे भाइयोंके साथ उसने अपने पितृजनोंको भी पिण्डदान प्रदान किया। ऋणिकके द्वारा वहाँ पिण्डदान करनेसे उस प्रेतराजके साथ उसके सभी पितर मुक्त हो गये और पिण्डदान करनेवाला वह विशाल ऋणिक पुत्रवान् हो गया। मृत्युके पश्चात् उसने विशालामें राजपुत्रके रूपमें जन्म लिया। उसने ब्राह्मणोंसे कहा कि मुझे किस प्रकारके सत्कार्योंको करनेसे पुत्र-प्राप्ति हो सकती है। ब्राह्मणोंने विशाल नामक राजपुत्रसे कहा कि गयातीर्थमें पिण्डदान करनेसे आपकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं।

तदनन्तर विशालने गयाशीर्षतीर्थमें जाकर पिण्डदान किया, जिसके पुण्यसे वह पुत्रवान् हो गया। एक दिन उसने आकाशमें श्वेत, रक्त एवं कृष्णवर्णवाले पुरुषोंको देखा। उन लोगोंको देखकर उसने पूछा कि तुम सब कौन हो? उनमेंसे श्वेतवर्णवाले पुरुषने उस विशालसे कहा कि श्वेतवर्णवाला मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम्हारे द्वारा दिये गये पिण्डदानके पुण्यलाभसे मैंने शुभ इन्द्रलोकको प्राप्त किया



है। हे पुत्र! ये जो रक्तवर्णवाले पुरुष दिखायी दे रहे हैं, मेरे पिता हैं। ये ब्रह्महत्या करनेवाले तथा अन्यान्य महापार्षसे युक्त थे। ये कृष्णवर्णवाले तोरे पितामह हैं। इन्होंने अपने जीवनकालमें अनेक ऋषियोंका वध किया। अतः इन लोगोंको अवीधि नामक नरक प्राप्त हुआ था, किंतु तुम्हारे द्वारा प्रदत्त पिण्डदानसे हम सभी पापविमुक्त हो गये हैं। अब हम लोग उत्तम स्वर्गलोकमें जा रहे हैं।

यह सुनकर कृतकृत्य होकर विशाल नगरोंमें राज्य करके वह विशाल स्वर्गलोकमें चला गया।

[ गयातीर्थमें पिण्डदान करते हुए निम्न मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये— ]

येऽस्मत्कुले तु पितो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥

ये चाप्यकृतवृद्धास्तु ये च गर्भाद्विनिस्सृताः ।

येषां दाहो न क्रिया च येऽग्निदग्धास्तथापरे ॥

भूमौ दलेन तुष्यन्तु तृष्णं यान्तु परां वतिम् ।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥

माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ।

तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च ॥

वृद्धप्रमातामहश्च तथा मातामही परम् ।

प्रमातामही तथा वृद्धप्रमातामहीति वै ॥

अन्येषां चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥

(८४।४३—४८)

इसका भाव यह है कि हमारे कुलमें जो पितर पिण्डदान एवं जल-तर्पण क्रियासे वञ्चित रहे हैं, जो वृद्धाकर्म-संस्कारविहीन हैं, जो गर्भसे निकले हुए हैं (गर्भपातके कारण मृत्युको प्राप्त हुए हैं), जिनका अग्निदाह अथवा अन्य अन्तिम क्रिया-संस्कार नहीं हुआ है, अग्निमें जलकर जिनकी मृत्यु हुई है और जो दूसरे पितृगण हैं, वे भूमिमें मरे द्वारा किये गये इस पिण्डदानसे तृप्त हों और तृप्त होकर परमात्मिकी प्राप्त करें। पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, मातापही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही और अन्य पितृजनोंकी मेरे द्वारा दिया गया यह पिण्ड अक्षय्य होकर उन्हें प्राप्त हो।

(अध्याय ८४)

## गयातीर्थमें पिण्डदानकी महिमा

ब्रह्माजीने कहा—पिण्डदान करनेवालेको चाहिये कि वरुणानदीके अमृतमय जलसे पिण्डदान प्रदान करे।  
यह प्रेतशिलादि तीर्थोंमें स्नान करके 'अस्मत्कुले मृत ये हमारे कुलमें जो मरे हैं, जिनकी सद्गति नहीं हुई है।  
च०' आदि मन्त्रोंसे अपने श्रेष्ठ पितरोंका आवाहनकर इस दर्भपुष्टपर तिलोदकके द्वारा उन सभी पितरोंका

१-अस्मत्कुले मृत ये च ततिर्वैशं न विदते । अग्राहयिमे तान् सखान् दर्भपुष्टे तिलोदकैः ॥

पितृर्वै मृत ये च मातृर्वै च ये मृतः । तेषामुद्गरणाद्यं इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

मातामहकुले ये च ततिर्वैशं न विदते । तेषामुद्गरणाद्यं इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

अज्ञातदन्त ये केचिद्ये च गर्भे प्रसीदितः । तेषामुद्गरणाद्यं इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

वन्धुवर्गश्च ये केचित्तन्मण्डविश्रितः । स्वलोके चारीये वा ततिर्वैशं न विदते ।

तेषामुद्गरणाद्यं इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

उद्धमनमृत ये च निपजम्बूहताश्च ये । आप्योन्मथितो ये च तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ॥

अग्निदाहे मृत ये च सिद्धिष्वाग्रहताश्च ये । दंष्ट्रिभिः क्षुण्णिर्वैशं तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ॥

अग्निदग्धाश्च ये केचित्तन्निदग्धास्तथापरे । विषुज्जीहता ये च तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ॥

तीरे वा नद्यादिस्थे कालसूत्रे च ये मृतः । तेषामुद्गरणाद्यं इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

अमिषप्रक्षणे घोरं कुम्भीपाके च ये मृतः । तेषामुद्गरणाद्यं इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

अन्येषां यातनाभ्यानां प्रेतलोकनिर्वासनम् । तेषामुद्गरणाद्यं इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

पशुपौषि मृत ये च पक्षिबीटमरीमुखः । अथवा वृक्षलोनिस्थास्तथैवः पिण्डं ददाम्यहम् ॥

असंख्ययज्ञनारायणा ये नेत्रा यन्मत्तसने । तेषामुद्गरणाद्यं इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

जात्यन्तरसहस्रेषु धमन्ति स्येन कर्मजाः । मानुष्यं दुर्लभं येषां तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ॥

ये कश्चाऽप्यन्यथा वा येऽन्यत्रस्थे कश्चनः । ते सर्वे हृत्पितृमातु पिण्डदानेन सर्वदा ॥

ये केचित् प्रेतरूपेण वर्तन्ते रिक्तो मम । ते सर्वे हृत्पितृमातु पिण्डदानेन सर्वदा ॥

आवाहन करता हूँ। पितृवंश एवं मातृवंशमें जिन लोगोंकी मृत्यु हुई है, उन लोगोंके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान दे रहा हूँ। मातामह अर्थात् नानाके कुलमें जो लोग मर गये हैं, जिनको कोई सद्गति प्राप्त नहीं हुई है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड दे रहा हूँ। हमारे कुलमें जो दाँत निकलनेके पूर्व ही मृत्युको प्राप्त हो गये और जो कोई गर्भकालमें विनष्ट हो गये हैं, उन लोगोंके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान दे रहा हूँ। बन्धुकुलमें उत्पन्न जो कोई नाम-गोत्रसे रहित हैं, स्वर्गोत्र एवं परगोत्रमें जिनकी कोई गति नहीं रही है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड दे रहा हूँ। उद्धन्धन (फौसीझारा) अथवा विषसे या शस्त्राघातसे जिनकी मृत्यु हुई है, जिन्होंने आत्महत्या की है, उन लोगोंके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ।

जो लोग अग्निमें जलकर मर गये हैं, जिनकी मृत्यु सिंह और व्याघ्रादि हिंसक प्राणियोंके द्वारा हुई है अथवा विशाल दाँतीवाले हाथियों या सींगधारी गशुओंके अघातसे जो मरे हैं, उन सभीके उद्धारके लिये मैं पिण्ड दे रहा हूँ। जिनकी मृत्यु अग्निमें जलकर अथवा बिना अग्निमें जले हो गयी है, जो विद्युत्से या चौरोंके द्वारा मारे गये हैं, उनके लिये मैं पिण्ड दे रहा हूँ। जो गैरक, अन्धतामय तथा कालसूत्र नामक नरकोंमें गये हैं, उन सबके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ। जो असिपत्रवन और घोर-कुम्भीपाक नामक नरकोंमें पड़े हुए हैं, उनके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ। अन्य जो यातना भोग रहे हैं और प्रेतलोकमें निवास कर रहे हैं, उनके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ।

जो पितृगण पशुयोनिमें चले गये हैं अथवा जो पक्षी, कीट-पतंग, सर्प, सरीसृप (छिपकली, गिरगिट, सर्पदि)

हो गये हैं या जो वृक्षयोनिमें अवस्थित हैं, उनके लिये मैं यह पिण्ड दे रहा हूँ। जो यमराजके शासनादेशसे यमगणोंके द्वारा असंख्य यातनाओंके बीच पहुँचाये गये हैं, उन सभीके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ। जो अपने कर्मानुसार हजारों योनिद्वारोंमें घूमते हुए कष्ट भोग रहे हैं, जिनको मानुषयोनि दुर्लभ है, उन सभीके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ।

जो हमारे बान्धव हैं या बान्धव नहीं हैं अथवा जो अन्य जन्मोंमें मेरे बन्धु-बान्धव रहे हैं, वे मेरे द्वारा दिये गये इस पिण्डदानसे सदैव तृप्तिको प्राप्त करें। जो कोई भी पितृजन प्रेतरूपमें अवस्थित हैं, वे सभी इस पिण्डदानसे तृप्ति प्राप्त करें।

जो हमारे पितृकुल, मातृकुल, गुरु, स्वशूर, बान्धव अथवा अन्य सम्बन्धियोंके कुलमें उत्पन्न होकर मृत्युको प्राप्त हुए हैं और जो अन्य बान्धव हैं, जो मेरे कुलमें पुत्र-पत्नीसे रहित होनेके कारण लुप्तपिण्ड हैं, क्रियालोपसे जिनकी दुर्गति हुई है, जो जन्मान्ध या पंगु हैं, जो विरूप हैं अथवा अल्प-गर्भमें ही मृत्युको प्राप्त हुए हैं, जो ज्ञात अथवा अज्ञात हैं, उनके निमित्त मेरे द्वारा दिया गया यह पिण्डदान अक्षय होकर उन्हें प्राप्त हो।

ब्रह्म और ईशान आदि देव! आप सब मेरे इस कार्यमें साक्षी हों। मैंने गयातीर्थमें आ करके पितरोंके उद्धारके लिये यह पिण्डदानादिक कार्य सम्पन्न किया है।

हे देव! भगवान् गदाधर विष्णु! मैं पितृकार्यके लिये इस गयातीर्थमें उपस्थित हुआ हूँ। मेरे द्वारा सम्पन्न किये गये आजके इस पितृकार्यमें आप साक्षी हों। आज मैं (देव-गुरु एवं पितृ) तीनों ऋणोंसे विमुक्त हो गया हूँ। (अध्याय ८५)

ये मे पितृकुले जाताः कुले मातुलयेव च । गुरुधशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥

ये मे कुले सुपिण्डाः पुत्रदानविर्व्रिताः । क्रियालोपहता ये च जल्पन्धाः पञ्चवस्तथा ॥

विरूपा आमनर्षाश्च ज्ञातज्ञातः कुले मया । केषां पिण्डं मया दत्तमक्षयमुपतिष्ठान् ॥

सक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेतानादयस्तथा । मया गम्यं ममास्तव पितृणां निष्कृतिः कृता ॥

आगतोऽहं गम्यं देव पितृकार्यं गदाधर । तन्मे साक्षी भक्तयश्च अनुलोऽहमुपगम्याम् ॥ (८५/२-२२)

## गयाके तीर्थोंकी महिमा तथा आदिगदाधरका माहात्म्य

ब्रह्माजीने कहा—इस गयाक्षेत्रमें जो विख्यात प्रेतशिला है, वह प्रभास, प्रेतकुण्ड एवं गयासुरशीर्ष नामक तीर्थोंमें तीन प्रकारसे अवस्थित है। सर्वदेवमयी इस शिलाको धर्मदेवताके द्वारा ऐश्वर्यके लिये धारण किया गया है। अपने मित्रादिक बन्धु-बान्धवोंमें जिन लोगोंको प्रेतघोनि प्राप्त हो गयी है, उनका उद्धार करनेके लिये यह प्रेतशिला शुभ है। अतएव मुनिजन, नृपगण तथा राजपत्यादि इस प्रेतशिलापर आ करके अपने पितृजनोंके लिये ब्रह्मादिक ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं।

गयासुरके मुण्डके पृष्ठभागमें जो शिला स्थित है, उसका नाम 'मुण्डपृष्ठगिरि' है, इसी कारण यह पर्वत सर्वदेवमय है। इसके पाददेशमें ब्रह्मासरोवरदि अनेक तीर्थ हैं। उन तीर्थोंमें एक अरविन्दवन नामक तीर्थ है। उस वनसे सुशोभित होनेके कारण उसके पर्वतीय प्रान्त-भागको 'अरविन्दगिरि' कहते हैं। वहाँपर ब्रौह्म पक्षियोंके बरग-चिह्न विद्यमान रहते हैं। इसलिये वह पर्वतीय भाग 'ब्रौह्मपाद'के नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्मादि करनेसे वह तीर्थ पितरोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

आदिकालसे ही यहाँपर आदिदेव भगवान् गदाधर विष्णु अव्यक्तरूपमें शिलारूपसे स्थित हैं। इसलिये यह शिला देवमयी कही गयी है। यह शिला गयासुरके सिरको आच्छादित करके वर्तमान समयमें भी अपने गुरुत्व भावके कारण चारों ओरसे अवस्थित है। कालान्तरमें महारुद्रादि देवोंके साथ आदि-अन्तसे रहित हरि आदि गदाधरके रूपमें व्यक्त होकर यहाँ स्थित हो गये हैं।

जिस प्रकार पूर्वकालमें धर्म-संरक्षण एवं अधर्म-विनाशके निमित्त दैत्यों और राक्षसोंका संहार करनेके लिये मत्स्यावतार हुआ। जैसे कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दाशरथी राम, कृष्ण और बुद्ध हुए। तदनन्तर कल्कि अवतार भी हुआ। उसी प्रकार यहाँपर व्यक्ताव्यक्त भगवान् आदि गदाधर प्रकट हुए।

आदिकालमें इसी पवित्र तीर्थपर ब्रह्मादि देवोंने आदिदेव भगवान् गदाधर विष्णुकी पूजा की थी। इसलिये यहाँपर अर्घ्य, पाद्य, पुष्पादिक उपहारोंसे उन भगवान् गदाधरकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य इस तीर्थमें जाकर अन्य

देवताओंके साथ इन आदिदेव भगवान् गदाधरको अर्घ्य-पात्र, पाद्य, गन्ध, पुष्प, धूप, सुन्दर नैवेद्य, विविध प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई मालाएँ, वस्त्र, मुकुट, घण्टा, चामर, दर्पण अलंकार, पिण्ड, अन्न तथा अन्यान्य वस्तुओंको प्रदान करता है, वह जबतक इस पृथिवीपर जीवित रहता है, तबतक धन, धान्य, आयु, आरोग्य, सम्पदाओं, पुत्र-पौत्रादिक संतति, श्रेय, विद्या, अर्थ एवं अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त करता है। भार्याको प्राप्तकर (अन्तमें) स्वर्गका निवासो वन जाता है। तदनन्तर वह पुनः पृथिवीपर जन्म लेकर राज्यसुख प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ कुलीन मनुष्य सत्तत्त्वमय होकर पृष्ठभूमिमें शत्रुओंको पराजित करनेमें समर्थ रहते हुए वध और बन्धनसे विमुक्त होकर मृत्युके पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है।

जो इस गयातीर्थमें अपने पितृजनोंके लिये ब्रह्म तथा पिण्डदानादिक क्रियाओंको सम्पन्न करनेवाले हैं, वे उन पितृगणोंके साथ स्वर्ग भी ब्रह्मलोकगामी होते हैं।

जो व्यक्ति पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाकर भगवान् जगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलभद्रकी पूजा करते हैं, वे लोग ज्ञान, लक्ष्मी तथा पुत्रादिकोंको प्राप्तकर अन्त समयमें भगवान् पुरुषोत्तम विष्णुके सान्निध्यमें चले जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ स्थित भगवान् पुरुषोत्तम जगन्नाथ, सूर्यदेव और गणनायक विष्णेश्वरके समक्ष पितरोंके लिये पिण्डदानादिक कार्य करते हैं, उन लोगोंको वह सम्पूर्ण कृत्य ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

इस क्षेत्रमें विद्यमान कपर्दी भगवान् शिव और गणेशको नमस्कार करके मनुष्य समस्त विघ्नोंसे मुक्त हो जाता है। यहाँपर विराजमान भगवान् कार्तिकेयका पूजनकर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। द्वादशादित्य सूर्यदेवकी सम्पत् अर्चनासे पुरुष सर्वरोग-विमुक्त हो जाता है। भगवान् वैश्वानर अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके पुरुष उत्तम कान्ति प्राप्त करता है। रेवन्त देवकी पूजा करके मनुष्य उत्तम जातिके अश्वोंको प्राप्त करता है। देवराज इन्द्रकी भलीभाँति पूजा करके महान् ऐश्वर्य एवं गौरीदेवीकी पूजा करके सौभाग्यकी प्राप्ति करनी चाहिये। मनुष्य सरस्वतीदेवीकी पूजा करके विद्या, लक्ष्मीकी पूजा करके सम्पत्ति तथा गरुडकी पूजा करके विघ्नोंके समूहोंसे विमुक्त हो जाता है।

क्षेत्रपालदेवकी पूजा करके व्यक्ति ग्रहोंके समूहसे निर्मुक्त हो जाता है। मुण्डपूषकी पूजा करके अपनी सम्पूर्ण अभिलाषाओंकी पूर्ति करनी चाहिये। अष्टनागदेवकी पूजा करके प्राणी सर्पदंशसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मलोकका पुण्य अर्जित करना चाहिये।

भगवान् बलभद्रकी सम्पत् पूजा करके शक्ति और आरोग्य तथा सुभद्रादेवीकी विधिवत् पूजा करके परम सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। भगवान् पुरुषोत्तम जगन्नाथकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति होती है। भगवान् नारायणकी पूजा करके वह मनुष्योंका अधिपति होता है।

नृसिंहदेवके चरणोंका स्पर्श एवं नमन करके मनुष्य संश्रममें विजयी होता है। वराहदेवकी पूजा करके वह पृथिवीका राज्य प्राप्त करता है तथा मालाधर एवं विद्याधरका स्पर्श करके विद्याधरोंके पदको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् आदिगदाधरकी सम्पत् पूजा करके प्राणी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण कर लेता है। भगवान् सोमनाथकी पूजासे शिवलोकको प्राप्त करता है। रुद्रदेवको नमस्कार करके रुद्रलोकमें प्रतिष्ठापित होता है।

रामेश्वर-शिवकी प्रणाम करके मनुष्यकी रानके समान अतिशय प्रिय बनना चाहिये। भगवान् ब्रह्मेश्वरकी पूजा करके ब्रह्मलोक-प्राप्तिकी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। कालेश्वरकी भलीभाँति पूजा करके कालजयी बनना चाहिये। कैटारनाथकी पूजा करके शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनी चाहिये और भगवान् सिद्धेश्वरकी पूजा करके मनुष्यकी ब्रह्मलोक प्राप्त करना चाहिये।

आद्यदेव रुद्र आदिके साथ भगवान् आदिगदाधर विष्णुका दर्शन करके अपने सौ कुलोंका उद्धार कर उन्हें ब्रह्मलोक प्राप्त कराये। आदिगदाधरकी पूजासे धर्मार्थी धर्मको, धनार्थी धनको, कामार्थी कामको तथा मोक्षार्थी मोक्षको प्राप्त करता है। इनकी पूजासे राज्य चाहनेवाला पुरुष राज्य और शान्तिका इच्छुक शान्ति प्राप्त कर लेता है। सब प्रकारकी कामना करनेवाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इन भगवान् आदिगदाधरकी अर्चनासे पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्रीको पुत्र, सौभाग्य चाहनेवालीको सौभाग्य तथा वंशाभिवृद्धिकी इच्छुक स्त्रीको वंशाभिवृद्धिका पुण्य प्राप्त करना चाहिये। मनुष्य श्राद्ध, पिण्डदान, आत्मान और जलदानके द्वारा भगवान् गदाधरदेवकी विधिवत् पूजा करके ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। पृथिवीपर अवस्थित सभी तीर्थोंकी अपेक्षा जिस प्रकार गयापुरी श्रेष्ठ है, उसी प्रकार शिलाके रूपमें विराजमान गदाधर श्रेष्ठ हैं। उनकी मूर्तिका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण शिलाका दर्शन हो जाता है; क्योंकि सब कुछ तो भगवान् गदाधर विष्णु ही हैं—

आदेन पिण्डदानेन अष्टदानेन चारिदः ॥  
ब्रह्मलोकमवाप्नोति सम्पूज्यादिगदाधरम् ।  
पृथिव्यां सर्वतीर्थेष्वपि यथा श्रेष्ठ गयापुरी ॥  
तथा शिलादिरूपेण श्रेष्ठस्त्वैव गदाधरः ।  
तस्मिन् दृष्टे शिला दृष्टा यतः सर्वं गदाधरः ॥

(८६।३८-४०)

(अध्याय ८६)

## चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन तथा अठारह विद्याओंके नाम

श्रीहरीने कहा—हे रुद्र! अब मैं चौदह मनु और उनके पुत्रोंका वर्णन करूँगा। पूर्वकालमें सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुए। उनके अग्नीध आदि अनेक पुत्र थे। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वसिष्ठ—ये इस मन्वन्तरके सात ऋषि (सप्तर्षि) कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें जय, अमित, शुक्र एवं याम नामक (देवताओंके) चारह गण थे, जिनमें चार सौमपायी थे। इसीमें विश्वभुक् और धामदेव इन्द्रपदसे प्रसिद्ध हुए। वाष्कलि नामक दैत्य उनका शत्रु था, वह भगवान् विष्णुके द्वारा चक्रसे मारा गया।

तदनन्तर स्वरोचिष मनुका प्रादुर्भाव हुआ। उनके

चैत्रक, विनत, कर्णान्त, विद्युत्, रवि, बृहद्गुण और नभ नामसे विख्यात महावली मण्डलेश्वर एवं पराक्रमशाली पुत्र हुए थे। ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, ऋषभ, निखल, दत्तोत्ति और अर्वरीवान्—ये सात ऋषि सप्तर्षिरूपमें प्रसिद्ध हुए। इस मन्वन्तरमें द्वादश तुष्टि और पारावतदेवगण हुए। विपक्षित् नामक इन्द्र थे। उनका शत्रु पुरुकृत्सर नामक दैत्य था। मधुसूदन भगवान् विष्णुने हाथीका रूप धारण करके उसे मारा था।

हे रुद्र! स्वरोचिष मनुके पश्चात् औत्तम मनु हुए। इस मनुके अज, परशु, विनोत, सुकेतु, सुमित्र, सुबल,



शुचि, देव, देवायुध, महोत्साह और अजित नामक पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें रथीजा, ऊर्ध्वबाहु, शरण, अनय, मुनि, सुतप और शंकु—ये सप्तर्षि हुए। वसवर्ति, स्वधाम, शिव, सत्य तथा प्रतर्दन नामके पाँच देवगण हुए। इन सभी देवगणोंके प्रत्येक गणमें बारह देवता थे। स्वहानि नामक इन्द्र हुए, जिनका शत्रु प्रलम्बासुर दैत्य था। भगवान् विष्णुने मत्स्यावतार धारण करके उस दैत्यका वध किया।

उस मनुके बाद तामस मनु हुए। उनके जानुजह, निर्भय, नवछाति, नय, विप्रभूत्य, विविक्षिप, दृढेनुधि, प्रस्तलाक्ष, कृतबन्धु, कृत, ज्योतिर्धाम, पृथु, काव्य, चैत्र, चैताग्नि और हेमक नामक पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें सुराग तथा सुधी आदि सात ऋषि कहे गये हैं। इसमें हरि आदि देवताओंके चार गण थे, प्रत्येकमें पचीस देवता हुए। उमी गणमें शिव इन्द्र हुए। उनका शत्रु भीमाय नामक असुर हुआ। भगवान् विष्णुने कूर्मावतार लेकर उसका वध किया।

तदनन्तर दैवत मनुका आविर्भाव हुआ। उनके महाप्राण, साधक, वनबन्धु (वल्लबन्धु), निरमित्र, प्रत्यङ्ग, परहा, शुचि, दुःखत्र और केतुभृग नामक ऋषि कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें वेदशी, वेदबाहु, ऊर्ध्वबाहु, हिरण्यरोम, पर्जन्य, सत्यनेत्र और स्वधाम—ये सात ऋषि हुए। इस मन्वन्तरमें अभूतरजस्, अधमेधस्, वैकुण्ठ तथा अमृत नामक चार देवगण हुए, जिनमें चौदह देव हुए। विभु नामक इन्द्र हुए। उनका शत्रु शान्त नामक दैत्य था। भगवान् विष्णुने हंसरूप धारण करके उसका विनाश किया।

इसके बाद चाक्षुष मनुका प्रादुर्भाव हुआ। इनके ऊरु, पूरु, महाबल, शतघुम्न, तपस्वी, सत्यबाहु, कृति, अग्निष्णु, अतिरात्र, सुघुम्न तथा नर नामक पुत्र हुए। हविष्मान्, उत्तम, स्वधाम, विरज, अभिमान, सहिष्णु तथा मधुश्री नामक—ये सात ऋषि हुए। आर्य, प्रभूत, भाव्य, लेख और पृथुक नामवाले पाँच गणोंमें आठ-आठ देवता कहे गये हैं। इस मन्वन्तरके इन्द्र मनोजव थे, उनका शत्रु महान् भुजाओंवाला महाबली महाकाल कहा गया है। जगदाधार भगवान् विष्णुने अक्षरूप धारण करके उसका वध किया था।

तत्पश्चात् वैवस्वत मनु हुए। इनके इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, पांसु, नभ, नेदिष्ठ, करुष, पृथग्र और सुघुम्न नामक विष्णुपरायण पुत्र हुए। इस मन्वन्तरमें

अत्रि, वसिष्ठ, जमदग्नि, कश्यप, गीतम, भरद्वाज तथा विश्वामित्र नामक सात ऋषि (सप्तर्षि) कहे गये हैं। इसमें उनचास मरुदण, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, साध्यगण आठ वसु, अश्विनीकुमारद्वय, दस विश्वेदेव, दस अग्निसदेव तथा नौ देवगण कहे गये हैं। इस मनुके समयमें तेजस्वी नामक इन्द्र हैं। उनका शत्रु हिरण्याक्ष माना गया है। भगवान् विष्णुने वराह अवतार धारण करके उस दैत्यका विनाश किया था।

अब मैं भविष्यमें होनेवाले सार्वर्षिक मनुके पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। उन मनुके विजय, आर्वावीर, निर्मोह, सायणाक्ष, कृति, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वाच, संगति नामक पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, व्यास, गालव, दीपिमान्, ज्यैष्ठ्यमृग और परशुराम—ये सात ऋषि कहे गये हैं। सुतप, अमृताध तथा मुख्य नामक तीन देवगण हैं, जिनके प्रत्येक गणमें बीस-बीस देव माने गये हैं। विरोचन-पुत्र बलि इन्द्र होंगे, जो वामनरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा याचित तीन पाग भूमिदान देनेसे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रपदको छोड़कर सिद्धि प्राप्त करेंगे।

हे ब्रह्मा! नवें वरुणपुत्र दक्षसार्वर्षिक मनुके पुत्रोंको सुनें। धृतिकेतु, दीपिकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, बृहदगुम्न, श्रवीक तथा बृहदगुण नामके पुत्र हुए। इस मन्वन्तरमें मेघर्षि, ह्युति, सवस, वसु, ज्योतिष्मान् हव्य और कव्य तथा विभु—ये सप्तर्षि हुए। पर, मरीचिगर्भ तथा सुधर्मा—ये तीन देवता हुए। इस मन्वन्तरमें कालकाक्ष नामक देवशत्रु हुआ, जिसका वध पद्मनाभ विष्णुने किया था।

दसवें मनु (धर्म) के पुत्र धर्मसार्वर्षिके पुत्रोंको सुनो—सुक्षेत्र, उतमीजा, भूरिक्षेत्र, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयदध, भूरिघुम्न, सुवर्चा, शान्ति एवं इन्द्र नामक महाप्रतापी पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें अयोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृति, अव्यय, नाभाज, अप्रतिमीजा और सौरभ नामक सप्तर्षि हुए। इसमें देवताओंके प्राण नामके एक सौ गण विद्यमान थे। उन गणोंके इन्द्र महाबलशाली शान्त नामक देवपुरुष थे। उनका शत्रु बलि नामक असुर होगा। भगवान् विष्णु अपनी गदासे उसका वध करेंगे।

हे रुद्र! अब मैं आपके पुत्र एकादश मनु (रुद्रसार्वर्षिक)—की संतानोंका वर्णन करता हूँ। इनके सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरु, गुरु, क्षेत्रवर्ण, दृढेषु, आर्द्रक तथा पुत्र नामक

पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, हविष्य, वरुण, विश्व, विस्तर, विष्णु और अग्निदेव नामक सप्तर्षि कहे गये हैं और इसमें विहङ्गम, कामगम, निर्माण तथा रुचि नामक चार देवगण हुए। एक-एक गणमें तीस-तीस देवता कहे गये हैं। उन समस्त देवगणोंके इन्द्र वृषभ हुए। जिनका शत्रु दशग्रीव नामक राक्षस होगा। लक्ष्मीका रूप धारण करके विष्णु उसका विनाश करेंगे।

इसके पश्चात् दक्षके पुत्र दक्षसावर्णि बारहवें मनु हुए। उनके पुत्रोंका वर्णन सुनें—इन मनुके देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रविन्दु, वीर्यवान्, मित्रवाह, प्रवाह नामक पुत्र हैं। इस मन्वन्तरमें तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, द्युति तथा तपोधन नामसे विख्यात सप्तर्षि हुए। स्वधर्मा, सुतपसा, हरित और रोहित नामक देव सुरगण हैं। उनके प्रत्येक गणोंमें दस-दस देव हुए। हे शिव! इस मन्वन्तरमें अज्ञाधामा नामके इन्द्र होंगे। उनका शत्रु तारकासुर होगा। विष्णु ननुसकस्वरूप धारण करके उसका वध करेंगे।

तदनन्तर रौच्य नामक त्रयोदश मनुके पुत्रोंको मुझसे सुनें। इन मनुके चित्रसेन, विधिन्न, तप, धर्मात्, धृति, सुनेत्र, क्षेत्रवृत्ति तथा सुनय नामक पुत्र कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें धर्म, धृतिमान्, अव्यय, निशारूप, निरुत्सव, विमोह और

तत्त्वदर्शी नामक सप्तर्षि कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें सुरोम, सुधर्म तथा सुकर्म—तीन देवगणोंका उद्भव हुआ। इन सभी गणोंमें तैत्तिरीय-तैत्तिरीय देवगण कहे गये हैं। इन देवगणोंका इन्द्र दिवस्पति और शत्रु त्वष्टिभ नामक दानव था। भगवान् विष्णु मयूरका स्वरूप धारण करके उस दैत्यका वध करेंगे।

हे शिव! अब मेरे पुत्र चौदहवें मनु भीत्यके पुत्रोंका श्रवण करें—इन मनुके ऊरु, गभीर, भृष्ट, तरस्वी, ग्राह, अभिमान्, प्रवीर, जिष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा दुर्लभ नामक पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें अग्नीध्र, अग्निबाहु, मागध, शुचि, अजित, मुक्त और शुक्र—ये सप्तर्षि होंगे। इस मन्वन्तरमें चाक्षुष, कर्मनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिन तथा वचोवृद्ध नामक पाँच देवगणोंके प्रत्येक गणको सात-सात देवगणोंसे समन्वित कहा गया है। इस मन्वन्तरमें शुचि नामसे प्रसिद्ध इन्द्र होंगे तथा महादैत्य उनका शत्रु होगा। स्वयं भगवान् विष्णु ही उस महादानवका वध करेंगे।

उन्हीं भगवान् विष्णुने व्यासरूपमें अवतरित होकर एक ही वेदसंहिताको चतुर्धा विभाजित किया। तदनन्तर अष्टादश पुराणोंका प्रणयन किया। उन्होंने ही चारों वेद, छः वेदाङ्ग और सौमंसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अथर्ववेद, धनुर्वेद और गन्धर्ववेद—इन अष्टादश विद्याओंका विस्तार किया। (अध्याय ८७)

## प्रजापति रुचि और उनके पितरोंका संवाद

सूतजीने कहा—भगवान् हरिने कहा और भगवान् शिवको चौदह मन्वन्तरोंका जो वर्णन सुनाया था, मैंने आपको वह सुना दिया। अब मार्कण्डेयजीने क्रीडुकि मुनिको जो पितृस्तोत्र सुनाया था, वह आप सभीको सुना रहा हूँ। आप सब उसे श्रवण करें।

मार्कण्डेयजीने कहा—प्राचीनकालमें रुचि नामक प्रजापति मायामोहको छोड़कर, निर्भय होकर, स्वल्प शयन करते हुए निरहंकारभावसे इस पृथिवीपर विचरण करने लगे। उन्होंने अग्निहोत्रका परित्याग कर दिया। धर्ममें रहना छोड़ दिया। वे एक बार भोजन करते और गृहस्थादिक आश्रमके नियमोंसे रहित हो संगरहित होकर इधर-उधर अकेले ही विचरण करते थे। उन्हें देखकर उनके पितृजनोंने उनसे कहा—

हे ब्रह्म! तुमने किस कारण दार-परिग्रह (विवाह) नहीं किया। वह दार-परिग्रह स्वर्ग एवं मोक्ष-प्राप्तिका हेतु है। गृहस्थाश्रमके बिना प्राणीको शाश्वत बन्धन होता है; क्योंकि गृहस्थ समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और याचकोंकी पूजा करके उत्तम लोकोंकी प्राप्ति करता है। वह देवताओंको स्वाहा एवं पितरोंको स्वधा शब्दके उच्चारणसे तथा अतिथि एवं भृत्यादि जनोंको अन्न-दानसे संतुष्ट करता है। ऐसा न करके तुम देवऋण और हम सभी पितृजनोंके ऋणसे आवद्ध हो। मनुष्य, ऋषि एवं अन्य प्राणिजनोंके लिये भी तुम प्रतिदिन ऋणी ही हो रहे हो। पुत्रोत्पत्ति, देव-पूजा तथा पितृवर्तण तथा संन्यासग्रहण किये बिना ही तुम कैसे उस स्वर्ग-प्राप्तिको इच्छा कर रहे हो।

हे पुत्र! इस अन्यायसे तुमको मात्र कष्ट ही प्राप्त होगा।

इससे तो मरनेके बाद तुम्हें नरककी प्राप्ति होगी और दूसरे जन्ममें भी क्लेश ही होगा।

**रुचिने पितृजनोंसे कहा—**जीवनमें परिग्रह (ग्रहण करना) अत्यन्त दुःख-भोग, पाप-संग्रह एवं अन्तकालमें अधोगति प्रदान करनेके लिये होता है। ऐसा विचार करके ही मैंने स्त्रीपरिग्रह (विवाह) नहीं किया है। कणमात्र विचार करनेसे ही अपने अन्तःकरणमें विद्यमान संशय—संदेहको दूर करनेका उपाय किया जा सकता है। परिग्रह उस मुक्तिका कारण नहीं हो सकता है। जो नियमपरिग्रह-व्याधि प्रतिदिन विद्याके सद्-ज्ञानोपार्जनरूपी जलद्वारा अपने आत्माको निर्मल करता है, मेरे लिये तो वही श्रेष्ठ है। विद्वानोंने अनेक प्रकारके सांसारिक कर्मरूपी पंकिलविद्धोंका वर्णन किया है। अतएव जितेन्द्रिय पुरुषोंको तत्त्वज्ञानरूपी जलसे आत्माका प्रक्षालन करना चाहिये।

**पितरोंने कहा—**'हे वत्स! जितेन्द्रियजनोंके द्वारा आत्माका प्रक्षालन करना चाहिये'—ऐसा तुम्हारा कहना



उचित ही है, किंतु यह कल्याणका मार्ग नहीं है, जिसके ऊपर तुम चल रहे हो। पञ्चयज्ञ, तप तथा दानके द्वारा अपने अमङ्गलको दूर करते हुए फलप्राप्तिको कामनासे रंजित किये हुए जो शुभ और अशुभ कर्म हैं, वे बन्धनके हेतु नहीं होते और जो पूर्वका कर्म है, वह भोगसे नष्ट होता है।

प्राग्बधका जो पुण्यापुण्य कर्म है, वह सुख-दुःखात्मक भोग भोगनेसे निरन्तर नष्ट होता रहता है। इस प्रकार विद्वज्जनोंके

द्वारा अपने आत्माका प्रक्षालन होता रहता है और कर्मबन्धनसे उसकी रक्षा की जाती है। अपने विवेकसे रक्षित अत्मा पापरूपी पंकसे लिप्त नहीं होता।

**रुचिने कहा—**हे पितामह आदि पितृगण! वेदमें कर्म-मार्गके प्रतिपादनके द्वारा अधिष्ठा—मायाकी परिपुष्टि की गयी है। इसलिये आप सब कैसे मुझे उसी मार्गमें चलनेके लिये प्रवृत्त कर रहे हैं।

**पितरोंने कहा—**'कर्मके द्वारा जो कुछ किया जाता है, वह सब अधिष्ठा है'—ऐसा जो तुम्हारा कहना है, वह असत्य वचन नहीं है; किंतु विद्याकी सम्यक्-प्राप्तिमें भी तो कर्म ही हेतु है। शास्त्र-प्रतिपादित जो विहित कर्म हैं, सज्जन पुरुष उनका उत्प्लेघन नहीं करते। उन्हें उसीसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। विहित कर्मका अनुष्ठान न करना अधोगति-प्रदायक है। हे वत्स! 'मैं अपरिग्रहादिके द्वारा आत्मप्रक्षालन कर रहा हूँ', ऐसा तुम उचित मानते हो, किंतु शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे उत्पन्न पापोंके द्वारा भी तुम स्वयं अपनेको जला रहे हो।

अधिष्ठा भी विषयके समान मनुष्योंका उपकार करनेके लिये ही होती है। जिस प्रकार विषयका यथोचित उपयोग करनेसे प्राणीका कल्याण होता है, उसी प्रकार समुचित रूपसे अधिष्ठारूप विहित कर्मका अनुष्ठान करनेसे कर्ताका हित ही होगा। वह भवबन्धनके लिये नहीं, अपितु मोक्षके लिये है।

हे पुत्र! इस कारण तुम विधिपूर्वक दार-परिग्रह अर्थात् अपना विवाह करो। स्त्रीकित् कर्मोंका सम्यक् रीतिसे अनुष्ठान न करनेसे तुम आजन्म विफलताकी ही प्राप्त करोगे।

**रुचिने कहा—**हे पितृगण! अब तो मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन मुझे अपनी कन्या प्रदान करेगा? वैसे भी मुझ-जैसे अकिञ्चन व्यक्तिके लिये दार-परिग्रह अर्थात् विवाह करना अत्यन्त कष्टसाध्य है।

**पितरोंने कहा—**हे वत्स! यदि तुम हमारे वचनका अनुपालन नहीं करते हो तो निश्चित ही हम सभी पितरोंका पतन होगा और तुम्हारी अधोगति होगी।

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर उस प्रजापति रुचिके सभी पितृगण देखते-हो-देखते वायुवेगके झोंकोंसे झुझे हुए दीपकोंके समान सहसा अदृश्य हो गये। (अध्याय ८८)

## रुचिद्वारा की गयी पितृस्तुति तथा श्राद्धमें इस पितृस्तुतिके पाठका माहात्म्य

पितृजनोंके द्वारा उस प्रकारके वाक्यको सुनकर वे ब्रह्मर्षि रुचि मन-ही-मन अत्यधिक व्याकुल हो उठे और कन्या प्राप्त करनेकी इच्छासे पृथिवीलोकमें विचरने लगे, किंतु उन्हें कोई कन्या प्राप्त न हो सकी। अतएव पितरोंके उक्त वचनरूपी अग्निसे संतप्त हुए वे अतिशय चिन्ताग्रस्त होकर व्यग्र-मनसे इस प्रकार सोचने लगे—

‘मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे पितृगणोंका और मेरा अभ्युदय करनेवाला वह स्त्री-परिग्रह (विवाह-संस्कार) किस प्रकार हो सकेगा?’

इस प्रकार चिन्तन करते हुए उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं कमलपौनि उन ब्रह्माको ही तपस्याके द्वारा प्रसन्न करता हूँ। तदनन्तर महात्मा सोचने लगे दिव्य वर्षातक कठिन तप किया। वे तपस्याके लिये वनमें एक ही स्थानपर चिरकालतक अवस्थित रहे।

तपश्चात् जगत्पितामह ब्रह्मर्षि दर्शन दिया और कहा



१-रुचिकथा

नमस्येऽहं पितॄन् भक्ष्या ये वसन्त्यधिदेवतम् । देवैरपि हि तर्प्यते ये श्राद्धेषु स्वधोक्ताः ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गं ये तर्प्यन्ते पशुपिभिः । श्राद्धैर्वसोधर्मकस्य भुक्तिमुक्तिमयीभुक्तिः ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गं सिद्धाः संतप्यन्ति यान् । श्राद्धेषु दिव्यैः सक्तैरुपहारैरनुभवेः ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् भक्ष्या येऽर्प्यन्ते गुह्यकैरिन्द्रि । तन्मन्त्रेण वाञ्छादिर्होमस्तन्त्रिको पाप्म ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् यक्षैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । श्राद्धेषु श्राद्धकषौहलैकपुष्टिप्रदायिनः ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् विष्टैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । वाय्वाकाशैरुल्लास्य प्रजापत्यप्रदायिनः ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् ये वै तर्प्यन्तेऽग्न्यवांसिभिः । वन्यैः श्राद्धैरुपहारैस्तपोनिर्धूतकल्पैः ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् विष्टैर्निष्ठिकैर्धर्मशक्तिभिः । ये संकटावधिर्निर्व्य संतर्प्यन्ते सन्ततिभिः ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धं यत्नवत्प्राप्तवन्ति यान् । कर्णैरनेषैर्विभिन्नस्तोकद्वयकृतश्राद्धम् ॥

कि मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम अपनी अभिलाषा प्रकट करो। तदनन्तर सम्पूर्ण संसारको गति प्रदान करनेवाले उन आराध्य-देव ब्रह्माको प्रणाम करके सोचने पितृजनोंके कथनानुसार जो-जो उनकी अभिलाषा थी, उनसे निवेदन किया।

इसपर ब्रह्माजीने कहा—हे विप्र! तुम प्रजापति होओगे। तुम्हारे द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि होगी। प्रजारूपी पुर्चोंकी उत्पत्ति करके ही तुम पितृजनोंके लिये श्राद्ध एवं पिण्डदानादिको सम्पन्न करनेके पश्चात् साधिकार उक्त कामनाकी सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। अतः तुम्हारे पितरोंके द्वारा उचित ही कहा गया है कि ‘तुम स्त्री-परिग्रह करो।’ इस अभिलाषाको भलीभाँति ध्यानमें रखते हुए तुम्हें पितरोंकी ही पूजा करनी चाहिये। प्रसन्न होकर वे ही पितृगण तुम्हारी इस कामनाको पूर्ण करेंगे। सम्यक् पूजासे संतुष्ट हुए पितामहादि पितृगण स्त्री-पुत्र आदि क्या नहीं दे सकते।

ब्रह्माजीका इस प्रकारका वचन सुनकर ऋषि रुचिने नदीके एकान्त तटपर पहुँच करके अपने पितरोंका तर्पण-कन उन्हें संतुष्ट किया। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक वे इन स्तुतियोंके द्वारा पितरोंकी आराधना करने लगे—

ऋषि बोले—जो अधिदेवताके रूपमें विद्यमान रहते हैं और जो श्राद्धके अवसरपर देवताओंसे, स्वधद्वारा तृप्त किये जाते हैं, मैं उन पितृगणोंको नमस्कार करता हूँ। स्वर्गमें भी अवस्थित महर्षिगण भुक्ति और मुक्तिकी कामनासे मानसिक श्राद्धके द्वारा जिनकी भक्तिपूर्वक तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ।

स्वर्गमें सिद्धजन श्राद्धके सुअवसरोंपर सभी दिव्य उत्तम उपहारोंके द्वारा जिन पितरोंको भलीभाँति संतुष्ट करते हैं, उन पितरोंको मेरा नमन है। गुह्यकजन स्वर्गमें आत्यन्तिकी श्रेष्ठ ऋद्धिकी कामनासे भक्तिपूर्वक तन्मय-





करते हैं, मैं उन सभीको नमन करता हूँ।

तपके द्वारा निर्धूतकल्मष, संयत आहार करनेवाले अरण्यवासी मुनियोंके द्वारा वनमें उत्पन्न पदार्थोंके माध्यमसे किये गये श्राद्धद्वारा जिन पितरोंको तृप्ति प्रदान की जाती है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। नैत्रिक धर्मचारी, जितेन्द्रिय एवं समाधिस्थ ब्राह्मणोंके द्वारा जो विधिवत् नित्य संतुष्ट किये जाते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। क्षत्रियगण इस लोक तथा स्वर्गलोकका फल प्रदान करनेवाले जिन पितृगणोंको श्राद्धमें प्रदत्त कव्य-पदार्थोंसे संतुष्ट करते हैं, उन सभी पितरोंको मेरा नमन है। स्वकर्मनिरत वैश्यगण पृथ्वीपर सदा जल, पुष्प, भूप तथा अन्नादिके द्वारा जिनकी अर्चना करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करता हूँ। शूद्रगण इस भूतलपर भक्तिपूर्वक श्राद्धमें जिन समस्त लोकको संतुष्ट करते हैं, मैं ऐसे सुकालिन् नामसे विख्यात पितरोंको प्रणाम करता हूँ।

पाताललोकमें रहनेवाले असुरगण अपने दम्भ एवं अहंकारका परित्यागकर श्राद्धमें जिन अमृतपान करनेवाले पितरोंको तृप्ति प्रदान करते हैं, मैं उन सभी पितृजनोंको नमन करता हूँ। रसातलमें अवस्थित नागगण अपनी मनोवाञ्छित कामनाओंको पूर्ण करनेकी अभिलाषाओंसे प्रेरित होकर विधिपूर्वक श्राद्धमें प्रदत्त भोग-पदार्थोंके द्वारा जिन पितृगणोंकी पूजा करते हैं, मैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूँ। रसातलमें स्थित सर्पगण भी विधिवत् मन्त्रोच्चारणके साथ प्रदान किये गये भोग-पदार्थोंसे समन्वित श्राद्धके द्वारा जिन पितृगणोंकी अर्चना करते हैं, मैं उन सभीको प्रणाम करता हूँ। जो दैवलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथिवीलोकमें प्रत्यक्षरूपसे निवास करते हैं, देवताओं तथा दैत्योंके भी जो पूज्य हैं, ऐसे उन पितृजनोंको मैं नमन करता हूँ। वे मेरे द्वारा निवेदित वस्तुओंको प्राप्त करें।

जो परमार्थ अर्थात् दूसरेका हित करनेके लिये पितृयोनिमें रहकर भी अमूर्तरूपसे विमानमें विद्यमान रहते हैं, श्रेष्ठ योगीजन कष्टोंसे मुक्ति प्रदान करनेवाले जिन पितृजनोंकी पूजा अपने निर्मल मनसे करते हैं, मैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूँ। जो स्वर्गमें मूर्तिमान् होकर निवास करते हैं एवं स्वधाभीजी हैं, जो सभी अभिलषित जनोंको उनकी इच्छित कामनाओंका फल प्रदान करनेमें समर्थ हैं और जो निष्काम-जनोंकी मुक्तिके कारण हैं, मैं उन पितरोंको प्रणाम करता हूँ।

जो इच्छुकजनोंके अभीष्टको इसी लोकमें सिद्ध कर देते हैं तथा देवत्व, इन्द्रत्व और उससे भी अधिक श्रेष्ठ पद

अथवा हाथी, घोड़े, रत्न और उत्तम प्रकारके भवन प्रदान करनेमें सक्षम हैं, वे समस्त पितृजन मेरी इस प्रार्थनासे संतुष्ट हों। जो चन्द्ररश्मि, सूर्यमण्डल और स्वच्छ विमानमें सदा निवास करते हैं, वे पितृजन इस पूजामें हमारे द्वारा प्रदत्त अन्न, जल, गन्धादिके द्वारा संतुष्ट हों और शक्तिवान् बनें।

अग्निमें प्रदान की गयी हविष्यकी आहुतिसे जिनें संतुष्टि प्राप्त होती है, जो ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट होकर श्राद्ध-भोजन करते हैं, जो पिण्डदान देनेसे प्रसन्न होते हैं, वे सभी पितृगण हमारी इस पूजामें प्रदान किये गये अन्न-जलसे संतुष्ट हों। जो काले-काले सुन्दर तिलोंद्वारा प्रसन्न होते हैं, जो मङ्गलजनोंके द्वारा श्राद्धमें उस कालमें प्राप्त शाक-पातसे आनन्दित हो उठते हैं, वे पितृजन प्रसन्न हों।

मेरे उन पूज्य पितरोंके जो अतिशय प्रिय समस्त कव्य पदार्थ हैं, उन्हें उन सभी पदार्थोंकी प्राप्ति, इस पूजामें मेरे द्वारा प्रदान किये गये पुष्प, गन्ध, जल तथा पक्वान्न-भोज्य पदार्थोंमें ही हो जाय। इस भूलोकमें प्रतिदिन जो पितृगण ब्रह्मापान् जनोंके द्वारा सम्पन्न की गयी पूजाको स्वीकार करते हैं, जो प्रायेक मासकी अन्तिम तिथि तथा अष्टकाकालमें ब्रह्मापान् जनोंके पूज्य हैं और जिन पितृजनोंकी पूजा वर्षान्त एवं अभ्युदयकालमें होती है, वे सभी मेरे पितृगण इस श्राद्धमें संतुष्टि प्राप्त करें।

कुन्द-पुष्प तथा चन्दके समान स्वच्छ गौर वर्णकी कान्तिकी धारण करनेवाले जो पितृजन ब्राह्मणोंके पूज्य हैं, दौर्दोष्यमान सूर्यके समान वर्णवाले जिन पितरोंका पूजन क्षत्रियजन करते हैं, स्वर्णके समान कान्तिकी धारण किये हुए जो पितृगण वैश्यवर्ण और नीली कान्तिसे सुशोभित जो पितृजन शूद्रवर्णके पूजनीय हैं, वे सभी इस पूजामें मेरे द्वारा निवेदित गन्ध, पुष्प, भूप, जल एवं भोग्यादि-पदार्थ तथा अग्निमें समर्पित आहुतिसे सदाके लिये तृप्ति प्राप्त करें। मैं उन सभी पितरोंको प्रणाम करता हूँ।

श्राद्धादिमें अपनी धुधाको पूर्णरूपसे संतुष्ट करनेके निमित्त जो पितृगण देवताओंके पूर्व ही ब्रह्मापान् व्यक्तियोंके द्वारा अर्पित कव्य-पदार्थोंको ग्रहण कर लेते हैं और संतुष्ट होकर जो अपने स्वजनोंके लिये ऐश्वर्यकी सृष्टि करते हैं, मैं इस श्राद्धमें उन सभी पितरोंको प्रणाम करता हूँ। जो देवताओंके आदिपुरुष एवं देवराज इन्द्रसे भी पूजित हैं, वे राक्षस, भूत, वेताल, असुर तथा उग्र योनिवाले (हिंसक जीव-वस्तुओं)-का विनाश करके अपनी प्रजा (संतति)-की रक्षा करें। मैं उन पितरोंको प्रणाम करता हूँ।

जो अग्निष्वात, बर्हिषद्, आर्यप तथा सोमप नामक पितृगण हैं, वे सभी इस श्राद्धमें मेरे द्वारा संतुष्ट होकर तृप्तिको प्राप्त करें। अग्निष्वात पितर मेरी पूर्व दिशाकी रक्षा करें। बर्हिषद् नामक पितृगण सर्वदा मेरी दक्षिण दिशाकी अभिरक्षा करें। आर्यप पितृजन पश्चिम दिशा तथा सोमप पितृगण उत्तर दिशाकी रक्षा करें। ये समस्त पितृजन राक्षस, भूत, पिशाच एवं असुरगणोंके कारण उत्पन्न दोषोंसे नित्य सब प्रकारसे हमारी रक्षा करें।

विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धान्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति नामक जो पितरोंके नौ गण हैं तथा कल्याण और कल्पद, कल्पकर्ता, कल्पतराश्रय, कल्पताहेतु एवं अनघ नामक जो पितरोंके छः गण कहे गये हैं और चर, खरेण्य, चरद, तुष्टिद, पुष्टिद, विश्वपात एवं धाता नामसे विख्यात—ये सात गण तथा पितृगणोंके पापविनाशक जो महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल नामसे प्रसिद्ध—ये पाँच गण हैं, उन गणोंके ही साथ सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद नामक पितरोंका एक अन्य गण—चतुष्टय कहा गया है। इस प्रकार कुल मिलकर उन पितरोंके एकतीस गण हो जाते हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् परिख्याप्त है। ये सभी पितृजन इस श्राद्धमें मेरे द्वारा प्रदत्त कल्याणसे संतुष्ट हों।

इस प्रकार उस रुचिकी स्तुतिसे पितर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उसी समय सहसा एक दिव्य तेजोराशि उत्पन्न हुई,



जो आकाशमण्डलको अपने तेजसे चतुर्दिक् परिख्याप्त कर रही थी। सम्पूर्ण विश्वको अपने तेजसे भलीभाँति आच्छादित करनेवाली उस तेजोराशिकी देखकर रुचि पृथिवीपर घुटने टेककर पुनः इस स्तुतिका गान करने लगे—

रुचि बोले—‘जो सर्वपुण्य, अमूर्त, देदीप्यमान तेजसे युक्त, ध्यानिर्धेयके हृदयमें विराजमान रहनेवाले एवं दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न पितृजन हैं, उन सभीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो इन्द्रादि देवगण, इक्ष, मरीचि एवं सप्तारिषों तथा अन्य श्रेष्ठजनोंके नायक और सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, उन पितरोंको मैं नमन करता हूँ। जो मनु आदि तथा सूर्य, चन्द्र एवं समुद्रके भी अधिनायक हैं, उन समस्त पितृगणोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जो नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवीके नेता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।

मैं प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण और श्रेष्ठ योगीजनोंको सर्वदा हाथ जोड़कर नमन करता हूँ। मैं सातों लोकमें अवस्थित सप्तगणोंको प्रणाम करता हूँ। स्वयम्भू और योगचक्षुष् ब्रह्माको नमन करता हूँ। जो चन्द्रलोककी भूमिपर अवस्थित रहनेवाले एवं योगमूर्ति-स्वरूप हैं, ऐसे पितरोंको नमस्कार करता हूँ तथा इस जगत्के पितृदेव सोमको भी मैं नमन करता हूँ।

अग्नि ही जिनका रूप है—ऐसे पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। उसी प्रकार जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व अग्नि-सोममय है, ऐसे पितरोंको भी नमस्कार करता हूँ। जो तेजमें विद्यमान रहते हैं, जो चन्द्र-सूर्य और अग्निकी प्रतिमूर्ति हैं, जो जगत्स्वरूप एवं ब्रह्मस्वरूप हैं—ऐसे उन योगपरायण समस्त पितरोंको संयतचित्तसे अवस्थित होकर मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। वे सभी स्वभाभुजी पितृजन प्रसन्न हों।’

मार्कण्डेयजीने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ प्रौढकुम्भिक! रुचिके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये गये तेजःस्वरूप वे सभी पितृगण दसों दिशाओंको प्रतिभासित करते हुए प्रत्यक्ष प्रकट हो गये।

रुचिने जिन पुण्य, गन्ध और अनुलेप पदार्थका उन्हें निवेदन किया था, उन्हींसे विभूषित उन पितरोंको उन्होंने अपने समक्ष उपस्थित देखा।

रुचिने पुनः भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम निवेदन किया और ‘पृथक्-पृथक्-रूपसे आप सभीको नमन है,

नमन है'—ऐसा आदरपूर्वक कहा—

प्रसन्न होकर उन पितृजनों ने उन मुनिश्रेष्ठ रुचिसे 'वर माँगो'—ऐसा कहा। नतमस्तक रुचिने उन पितरोंसे कहा—

रुचिने कहा—हे पितृदेव! ब्रह्मने प्रजाओंकी सृष्टि करनेके लिये मुझे आदेश दिया है। अतः मैं आपसे संतानोत्पादनमें समर्थ, श्रेष्ठ एवं दिव्य पत्नीकी कामना करता हूँ।



पितरोंने कहा—हे मुनिसत्तम! इसी स्थानपर आपको अभी इसी क्षण मनोरमा पत्नीकी प्राप्ति होगी, उससे आपको पुत्र होगा। हे रुचि! वह बुद्धिमान् मन्वन्तराधिप होकर आपके ही रीच्य इस नामसे तीनों लोकोंमें छाति प्राप्त करेगा। उसके भी अतिशय बलवान् महापराक्रमशाली, महात्मा और पृथिवीका पालन करनेवाले बहुत-से पुत्र होंगे। आप भी प्रजापति होकर चार प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करके अधिकार समाप्त होनेपर धर्मके तत्त्वज्ञानको प्राप्तकर सिद्धि प्राप्त करेंगे।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तुतिसे हम सभीको संतुष्ट करेगा, उससे प्रसन्न होकर हम लोग उसे उत्तम भोग, आत्मविषयक उत्तम ध्यान, आयु, आरोग्य तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करेंगे। अतः कामनाओंकी पूर्ति चाहनेवाले ब्रह्मालुओंको निरन्तर इस स्तोत्रसे पितरोंकी स्तुति करनी चाहिये। जो मनुष्य ब्राह्मणमें भोजन कर रहे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके समक्ष भक्तिपूर्वक अत्यन्त प्रिय इस स्तोत्रका पाठ करेगा तो उस स्तवनाको सुननेके प्रेमसे हम सबकी भी वहाँ उपस्थिति रहेगी। हम लोगोंकी उपस्थितिसे वह ब्राह्मण अक्षय होगा, इसमें संदेह नहीं है।

जिस ब्राह्मणमें इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है, उस ब्राह्मणमें हमारी तृप्ति बारह वर्षतकके लिये हो जाती है। हेमन्त-ऋतुमें इस स्तोत्रका पाठ बारह वर्षपर्यन्त हमें संतुष्टि प्रदान करता है। शिशिर-ऋतुमें इस शुभ स्तोत्रका पाठ करनेसे चौबीस वर्षोंतक हमारी तृप्ति रहती है। वसन्त एवं शीष्म-ऋतुमें सम्पूर्ण होनेवाले ब्राह्मण-कर्मके अवसरपर इस स्तोत्रका पाठ हम लोगोंके लिये सोलह वर्षोंतक तृप्ति प्रदान करनेका साधन होता है। हे रुचि! वर्षाकालके दिनोंमें इस स्तोत्र-पाठके साथ किया गया ब्राह्मण हम सभीके लिये अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला होता है। शरत्कालमें सम्पादित ब्राह्मणके अवसरपर पठित यह स्तोत्र हम लोगोंको पंद्रहवर्षोंतक तृप्ति प्रदान करता है।

जिस घरमें लिखकर यह सम्पूर्ण स्तोत्र सदैव रखा रहता है, वहाँ ब्राह्मण करनेपर हमारी उपस्थिति विद्यमान रहती है अर्थात् उस ब्राह्मणमें हम लोग उपस्थित रहते हैं। हे महाभाग! इसलिये ब्राह्मणमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके सामने हम लोगोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले इस स्तोत्रको सुनाना चाहिये<sup>१</sup>। (अध्याय ८९)

१-स्तोत्रेणैव न तत्र ये स्तोत्रमन्त्रेणैव धीमताः । तस्य तुल्यं वर्षं भोगावाप्त्यर्थं ध्यानमुत्तमम् ॥

आयुरारोग्यमर्थं च पुत्रपौत्रादिकं तथा । वाञ्छन्तिः स्तनं स्तब्धः स्तोत्रेणैव न यतः ॥

ब्राह्मणे य इयं धाम्ना त्वामन्त्रेणैव स्तब्धम् । पठिष्यति द्विजान्मन्त्रं भुङ्क्ते पुरतः स्थितः ॥

स्तोत्रं ब्रह्मसंज्ञितं संविधाने ये कृते । अस्माभिर्वाच्यं ब्राह्मणं तद्विष्णुपरायणम् ॥ (८९।७०-७३)

२-यस्मिन् गेहे च लिखितमेतद्विहितं निरपटु । संविधाने कृते ब्राह्मणे तत्रास्माकं भविष्यति ॥

तस्मादेतत्तस्या ब्राह्मणे विज्ञातं भुङ्क्ते पुरः । त्वत्पत्नीयं महाभाग अस्माकं पृथिवीकर्म ॥ (८९।८२-८३)



## प्रम्लोचा नामक अप्सराकी दिव्य कन्या मानिनीसे प्रजापति रुचिका विवाह

मार्कण्डेय मुनिने कहा—पितरोंकी कृपासे उसी समय उस नदीके मध्यसे ही रुचिके समीप प्रम्लोचा नामकी मनको प्रिय लगनेवाली कृशाव्री, सुन्दर श्रेष्ठ



एक अप्सरा प्रकट हुई। उस श्रेष्ठ अप्सराने प्रिय एवं मधुर वाणीमें महात्मा रुचिके कहा—हे तपस्विश्रेष्ठ! मेरी प्रसन्नतासे वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करद्वारा मेरी एक अतिशय सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई है। मैं उस सुन्दर स्वरूपवाली मानिनी नामवाली कन्याको भार्यके रूपमें आपको प्रदान करती हूँ, आप उसे वरण करें, इस कन्यासे अतिशय बुद्धिमान् मनु नामक आपका पुत्र उत्पन्न होगा।

इसपर उस रुचिके 'ऐसा ही होगा।'—इस प्रकार कहा। ऐसा कहनेपर उस नदीके मध्य-जलसे मानिनी नामकी शरीरधारिणी एक दिव्य कन्या निकली।

उस नदीके तटपर मुनिश्रेष्ठ रुचिके अनेक महामुनियोंको बुलाकर विधिपूर्वक कन्याके साथ पाणिग्रहण किया। उस कन्यासे अतिशय पराक्रमी और महाद्युति तथा पिताके नामसे रौप्यके रूपमें विख्यात एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो रौप्य मन्वन्तरका अधिपति हुआ। (अध्याय १०)

## भगवान् विष्णुका अमूर्त ध्यान-स्वरूप

भूतजीने कहा—हे शौनक! स्वायम्भुव मनु आदि मुनिजन व्रत, यम, नियम, पूजा, ध्यान, स्तुति तथा जपमें निरत रहकर भगवान् हरिका ध्यान करते हैं। वे हरि देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित हैं। वे आकाश, तेज, जल, वायु तथा पृथिवी नामक सभी पञ्चभूतोंसे असम्बद्ध हैं तथा उनके धर्मसे भी रहित हैं। वे सभी प्राणियोंके स्वामी, सबको आवृद्धकर नियमन करनेवाले नियन्ता एवं इस जगत्के प्रभु हैं। वे चैतन्यरूप, सबके स्वामी और निराकार हैं। वे सभी आसक्तियोंसे रहित, सभी देवोंसे पूजित तथा मोहेश्वर हैं। वे तेजःस्वरूप तथा तीनों गुणोंसे भिन्न हैं। वे सभी रूपोंसे रहित एवं कर्तृत्वादिके शून्य हैं।

वे वासनाविहीन, शुद्ध, सर्वदोषरहित, पिपासावर्जित तथा शोक-मोहादिके दूर रहते हैं। वे हरि जरा-मरणसे रहित कूटस्थ तथा मोहवर्जित हैं। वे सृष्टि एवं प्रलयसे रहित एवं सत्यस्वरूप हैं, निष्कल परमेश्वर हैं। वे जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति आदि अवस्थाओंसे रहित तथा नामरहित हैं। वे जाग्रत् आदि अवस्थाओंके अध्वक्ष, ज्ञानस्वरूप देवाधिदेव हैं। वे जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें विद्यमान रहनेवाले हैं तथा

नित्य हैं और कार्य-कारणभावसे रहित हैं।

वे सभीके द्वारा देखने योग्य, मूर्तस्वरूप, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम हैं। वे ज्ञानदृष्टिवाले, कर्णेन्द्रियके लिये सुनने योग्य विज्ञान और परमानन्दस्वरूप हैं। वे संसारसे रहित तथा तैजससे भी वर्जित हैं। वे प्रकृत ज्ञानसे अप्राप्य, तुरीयावस्थामें विद्यमान रहनेवाले परमाक्षरस्वरूप ब्रह्म हैं। वे सभीके रक्षक एवं सभीके हन्ता हैं। वे सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप हैं, बुद्धि और धर्मसे रहित हैं। वे हरि निराधार हैं। साक्षात् कल्याणस्वरूप शिव हैं। वे विकारहीन, वेदान्तियोंके द्वारा जानने योग्य, वेदरूप, इन्द्रियातीत, सर्वकल्याणप्रद, परमशुभ, भूतेश्वर, शब्द-रूप-रस-स्पर्श और गन्ध—इन पाँच तन्मात्राओंसे रहित अनादि ब्रह्म हैं। वे योगियोंके द्वारा सम्पुटित ब्रह्मरन्ध्रमें अवस्थित 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसे परिज्ञानमात्र हैं।

हे महादेव! इस प्रकार ज्ञान प्राप्तकर जितेन्द्रिय मनुष्यको उन हरिका ध्यान करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकारसे उन हरिका ध्यान करता है, वह निश्चित ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। (अध्याय ११)

## भगवान् विष्णुका मूर्त ध्यान-स्वरूप

भगवान् हरिका मूर्त ध्यानरूप इस प्रकार है—वे विष्णु करोड़ों सूर्यके समान जयशील, अद्वितीय प्रभासम्पन्न, कुन्दपुष्प एवं गोदुग्ध-सदृश धवल-वर्ण हैं। मोक्ष चाहनेवाले मुनियोंको ऐसे श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल शंख-समन्वित हैं। हजारों सूर्यके समान प्रचण्ड ज्वालाओंकी मालासे आवेष्टित, उग्ररूप, चक्रसे युक्त, शान्तस्वभाव और सुन्दर मुखमण्डलवाले वे विष्णु अपने हाथमें गदा धारण करते हैं।

वे रत्नोंसे देदीप्यमान बहुमूल्य किरीटसे युक्त सर्वत्रगामी देव कमलको धारण करते हैं। वे वनमालाको धारण करनेवाले तथा शुभ हैं, समान स्कन्धोंवाले तथा स्वर्णभूषणको धारण करते हैं, वे शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाले, विमुक्त देहवाले और सुन्दर कान्तिवाले हैं तथा कमलपर विराजमान रहते हैं।

वे स्वर्णमय शरीरवाले विष्णु सुन्दर हार, शुभ अंगद (बाजूबंद), केयूर और वनमालासे अलंकृत हैं। वे वीर्यवान् कौस्तुभमणि धारण करनेवाले हैं एवं लक्ष्मीसे वन्दनीय और नेत्रद्वयसे शोभायमान हैं। वे अग्निमादिक गुणोंसे समन्वित विष्णु जगत्के सृष्टिकर्ता और संहारक हैं।

वे मुनि, देव तथा दानव सभीके लिये ध्यानगम्य, अत्यन्त सुन्दर हैं। वे ब्रह्मादिसे लेकर स्तम्भपर्यन्त समस्त प्राणिवर्गके हृदयमें विराजमान हैं। वे सनातन, अव्यय

सभीके उग्र कृपासु, प्रभु-नारायण, देवाधिदेव तथा चमकते हुए मकरकृत कर्णकुण्डलोंसे सुशोभित हैं। वे दुःखविनाशक, पूजनीय, मङ्गलमय, दुष्टोंके संहारक, सर्वात्मा, सर्वस्वरूप, सर्वत्रगामी और ग्रहदोषोंके निवारक हैं।

वे देदीप्यमान नखोंसे समन्वित तथा सुन्दर-सुन्दर अँगुलियोंसे सम्पन्न, जगत्के शरणस्थल, सभीको सुख देनेवाले सौम्यस्वरूप महेश्वर हैं। वे समस्त अलंकारोंसे अलंकृत, सुन्दर चन्दनसे सीलित, सर्वदेवसमन्वित तथा सभी देवताओंका प्रिय करनेवाले हैं।

वे सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी, सर्वेश्वर एवं सभीकी भावनाओंमें विराजमान रहते हैं। वे सूर्यमण्डलसे अधिष्ठित देव, अग्नि और जलमें भी निवास करते हैं। वे वासुदेव जगत्के धाता और मुमुक्षुओंके ध्यान करने योग्य हैं। हे हर! इस लोकमें प्राणियोंके द्वारा 'मैं ही वासुदेव हूँ', इस प्रकार चिन्तनीय वे हरि आत्मस्वरूप हैं।

जो मनुष्य इस प्रकारके भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, वे परमपति प्राप्त करते हैं। प्राचीन कालमें महर्षि याज्ञवल्क्यने ऐसे स्वरूपवाले उन देवेश्वरका ध्यान किया था, जिसके फलस्वरूप धर्मोपदेशकके कर्तृत्वको प्राप्त करके उन्होंने परमपद प्राप्त किया था। जो मनुष्य इस विष्णु-ध्यान नामक अध्यायका पाठ करता है, उसको भी परमपतिकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ९२)

## वर्णधर्म-निरूपण

श्रीशिवजीने कहा—हे हरे! हे केशिहन्ता! हे माधव! महर्षि याज्ञवल्क्यजीने जिस धर्मका प्रतिपादन किया था, आप मुझको उसे सुनानेकी कृपा करें।

श्रीहरिने कहा—मिथिलापुरीमें विराजमान महर्षि याज्ञवल्क्यजीके पास पहुँचकर ऋषियेनि उनका अभिवादन किया और उनसे सभी वर्णोंके धर्मादिक कर्तव्योंको जाननेकी अपनी इच्छा प्रकट की। तत्पश्चात् वे जितेन्द्रिय महामुनि सर्वप्रथम भगवान् विष्णुका ध्यान करके उन सभी ऋषियोंसे धर्मसम्बन्धित विषयका वर्णन करने लगे।

याज्ञवल्क्यजीने कहा—जिस देशमें कृष्णसार नामक

युग विचारण करते हैं, मैं उस देशके धर्मादिक विषयोंका वर्णन करता हूँ, आप सब सुनें।

पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिषके सहित चार वेद—ये धर्म तथा चौदह विद्याओंके स्थान हैं। मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवत्, सातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, काल्याणन, बृहस्पति, गौतम, शंख-लिखित, हारीत और अत्रिके साथ मैं स्वयं—हम सब भगवान् विष्णुका ध्यान करके धर्मोपदेशक हुए।

धर्मका अर्थ है—पुण्य। पुण्यकी उत्पत्तिके हेतु है—

शास्त्रविहित देशमें, शास्त्रविहित कालमें, शास्त्रविहित उपायसे श्रद्धापूर्वक योग्य पात्र (विद्या एवं तपसे समृद्ध ब्राह्मण)-को दिया गया दान तथा इसके अतिरिक्त अन्य सभी शास्त्रोक्त कर्म। इन्हें अलग-अलग तथा समूहरूपमें धर्म (पुण्य)-का उत्पादक समझना चाहिये। धर्मके उत्पादक इन हेतुओंका मुख्य फल (परम धर्म) योग (चित्तवृत्तिनिरोध)-के द्वारा आत्मदर्शन (आत्माका साक्षात्कार) ही है। इस आत्मदर्शनरूप परम धर्मके लिये देश आदिका कोई नियम नहीं है। चित्तवृत्तिनिरोध (योग) होनेसे यह होता ही है। चित्तवृत्तिनिरोधके लिये विहित उपायोंके अनुष्ठानकी सम्पन्नतामें देश आदिका नियम आवश्यक है। अभी धर्मके उत्पादक जिन हेतुओंका निर्देश किया गया है, उनके बारेमें संदेह होनेपर निर्णय प्राप्त करनेके लिये परिषद् (धर्मसभा)-का सहयोग लेना चाहिये। यह परिषद् वेदों एवं धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता चार ब्राह्मणोंकी अथवा तीन ब्राह्मणोंकी होती है। इस परिषद्का निर्णय धर्मके सम्बन्धमें मान्य होता है। ब्रह्मवेत्ता-वेद एवं धर्मशास्त्रका विज्ञ एक ब्राह्मण भी धर्मके विषयमें

उत्पन्न संदेहका निराकरण कर सकता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। इनमें प्रारम्भके तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। गर्भाधानसे लेकर स्मृत्यनपर्यन्त ऐसे द्विजोंकी समस्त क्रियाएँ मन्त्रोंके द्वारा होती हैं।

गर्भाधान-संस्कार ऋतुकालमें होता है। गर्भस्पन्दन होनेसे पूर्व ही पुंसवन-संस्कार किया जाता है। गर्भाधानके छठे अथवा अठ्ठवें मासमें सोमनोजयन-संस्कार होता है। संतानोत्पत्तिके बाद जातकर्म और ग्यारहवें दिन नामकरण-संस्कार करनेका विधान है। चतुर्थ मासमें निष्क्रमण तथा छठे मासमें अन्नप्राशन-संस्कार करना चाहिये। उसके बाद कुल-परम्पराके अनुसार पृडाकरण नामक संस्कार करनेका विधान है।

इस प्रकार संतानके लिये विहित उक्त संस्कारोंको करनेसे बोज (शुक्र) तथा गर्भ (सोणित)-के कारण उत्पन्न हुए सभी कप ज्ञात हो जाते हैं। स्त्रियोंकी ये सभी क्रियाएँ (संस्कार) अमन्त्रक होती हैं और विवाह-संस्कार समन्त्रक होता है। (अध्याय १३)

## वर्णधर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—गर्भाधारण अथवा जन्म-प्रहणके आठवें वर्षमें ब्राह्मण, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय तथा बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन-संस्कार गुरु करे अथवा कुल-परम्पराके अनुसार करे। गुरु इस उपनयन स्थानको महत्त्वदृष्टिको सहित वेद पढ़ाये और शौचाचारकी शिक्षा प्रदान करे।

द्विजोंको दिन और संध्याकालमें उत्तराभिमुख तथा रात्रिके समय दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका परित्याग करना चाहिये। तदनन्तर मिट्टीसे एवं जलसे<sup>१</sup> मल-मूत्रके गन्ध एवं लेपका निवारण जबतक न हो, तबतक इन्द्रियोंका परिमार्जन करे।

तत्पश्चात् शूद्र स्थानमें जाकर दोनों पैरोंको भलीभाँति धोकर दोनों जानुओंके मध्य अपने हाथोंको अवस्थित करके

उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख बैठे और दाहिने हाथमें स्थित ब्राह्मतीर्थ (अर्थात् अंगुष्ठका मूल स्थान)-से आचमन करे। कनिष्ठा, तर्जनी एवं अंगुष्ठ अंगुलिके मूल स्थान तथा हाथके अग्रभागमें क्रमशः प्रजापतितीर्थ, पितृतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ और देवतीर्थका अधिष्ठान होता है।

कूप एवं तड़ागादिके शूद्र जलसे तीन बार आचमन करके अंगुष्ठमूलसे दो बार ओठोंका मार्जन करना चाहिये। द्विजातिवर्गोंको चाहिये कि वे फेन और बुदबुदोंसे रहित प्रकृतिद्वारा प्रदत्त शूद्र-स्वाभाविक जलसे अपनी इन्द्रियोंका स्पर्श यथाविधि करें। हृदय, कण्ठ एवं तालुतक पहुँचनेवाले जलसे ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य आचमन करके शूद्र होते हैं। स्त्री एवं शूद्रकी तालुतक पहुँचनेवाले शूद्र

१-स्त्रियोंका वह काल-विशेष ऋतुकाल है, जो गर्भ धारणके योग्य अवस्थामें विशेषसे युक्त है। वह विशेष काल रजोदर्शनके दिनसे सोलह अक्षय्यका होता है। इन सोलह अक्षय्योंमें प्रथम चार रात्रियाँ गर्भाधानके लिये विहित हैं; अतः इन चार रात्रियोंके बादकी बारह रात्रियाँ ही गर्भाधानके लिये विहित हैं।

२-कूप आदिसे बाहर निकले गये जलके द्वारा शूद्रोंका विधान है। जलके मध्य शौच आदि क्रिया निषिद्ध है।

जलसे एक बार आचमन करनेसे ही शुद्धि हो जाती है। जिनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, उनके लिये भी इसी प्रकार आचमनकी व्यवस्था है।

प्रातःस्नान, जलदेवता 'ॐ आपो हि ह्य०' आदि मन्त्रोंसे मार्जन, प्राणायाम, सूर्योपस्थान एवं गायत्रीमन्त्रका जप प्रतिदिन अपने अधिकारके अनुसार यथाविधि करना चाहिये।

'ॐ आपो ज्योती०' आदि मन्त्र ही गायत्रीमन्त्रका शिरोभाग हैं। इस शिरोभागसे युक्त प्रतिमहाव्याहृति एक-एक बार प्रणव जोड़कर तीनों महाव्याहृतियोंके साथ गायत्रीमन्त्रका मानस-जप करते हुए मुख एवं नासिकामें संचरणशील वायुका नियमन करना ही प्राणायाम है।

प्राणायाम करनेके पश्चात् तीन बार जल देवताके मन्त्रसे प्रोक्षणकर प्रतिदिन सार्यकाल नक्षत्रदर्शनतक पश्चिममुख बैठकर गायत्रीमन्त्रका जप करे। इसी प्रकार प्रातःकालकी संध्या करके पूर्वमुख होकर गायत्रीमन्त्रका जप करते हुए सूर्यदर्शनके समयतक स्थिर रहे। उन दोनों संध्याओंमें अपने गृहसूत्रके अनुसार अग्निहोत्र करे।

तदनन्तर 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार कहते हुए वृद्धजनों (गुरु आदि बड़े लोगों) की प्रणाम करे। इसके बाद संघर्षी ब्रह्मचारी स्वाध्यायके लिये एकग्रचित होकर गुरुको सेवामें उनके अधीन सदा रहे। तत्पश्चात् गुरुके द्वारा बुलानेपर उनके पास जाकर अध्ययन करे (गुरुको स्वयं अध्यापनके लिये प्रेरित न करे) और भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हो, उसे गुरुके चरणोंमें समर्पित करे। मन, वाणी और शरीरके द्वारा गुरुके हितकारी कार्योंमें सदा संलग्न रहे।

ब्रह्मचारीको दण्ड, मृगचर्म, यज्ञोपवीत और मूँडमेखलका धारण यथाशीघ्र करना चाहिये तथा अपनी जीविकाके लिये अनिन्दित श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भिक्षा ग्रहण करते समय ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य-वर्णके ब्रह्मचारीको क्रमशः आदिमें, मध्यमें तथा अन्तमें 'भवति' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। इसके अनुसार 'भवति

भिक्षां देहि', 'भिक्षां भवति देहि' और 'भिक्षां देहि भवति'— इस प्रकार वाक्यप्रयोग यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ब्रह्मचारीको करना विहित है। इस वाक्यका अर्थ है— आप भिक्षा दें। 'भवति' यह माताओंके लिये सम्बोधन है।

अग्रिकार्य (अग्निहोत्र) करके गुरुकी आज्ञासे विनयपूर्वक आपोऽस्नान<sup>१</sup>—क्रिया करके सम्मानके सहित उस भिक्षासे प्राप्त भोग्यान्नको बिना विन्दा किये ही मीन होकर ग्रहण करना चाहिये। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए आपत्तिरहित कालमें, रोग आदिके अभावमें अनेकका अन्न ग्रहण करे (एक घरका अन्न न ग्रहण करे)। अपने व्रतका संयमपूर्वक पालन करता हुआ ब्राह्मण ब्रह्मचारी श्राद्धमें आदरपूर्वक आहूत होनेपर इच्छानुसार भोजन कर सकता है, किंतु उसे श्राद्धकाल या अन्य अवसरोंमें मधु, मद्य, मांस अथवा उच्छिष्ट अन्न भोजनके रूपमें ग्रहण नहीं करना चाहिये।

जो विधि-विहित क्रियाओंकी सम्पन्न कराके ब्रह्मचारीको वेदकी शिक्षा प्रदान करता है, वही 'गुरु' है। जो केवल यज्ञोपवीत-संस्कार कराके ब्रह्मचारीकी वेदकी शिक्षा देता है, वह 'आचार्य' कहा गया है। जो वेदके एक देशका<sup>२</sup> अध्ययन कराता है, वह 'उपाध्याय' है। जो वरण लेकर यज्ञमानके यज्ञको सम्पन्न करता है, उसे 'ऋत्विक्' कहा जाता है। यथाक्रम ये सभी—गुरु, आचार्य, उपाध्याय और ऋत्विक् ब्रह्मचारीके लिये मान्य हैं, किंतु इन सभीसे माता ब्रेह है।

प्रत्येक वेदके अध्ययनके लिये बारह-बारह वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये। अस्तत्तावस्थामें प्रत्येक वेदके अध्ययनके लिये पाँच-पाँच वर्षतक भी ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया जा सकता है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि वेदाध्ययन पूर्ण होनेतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन होना चाहिये। केशान्त<sup>३</sup>—संस्कार गर्भसे सोलहवें वर्षमें ब्राह्मणका, गर्भसे बाईसवें वर्षमें क्षत्रियका तथा गर्भसे चौबीसवें वर्षमें वैश्यका होना चाहिये।

१-भोजनके पूर्व तथा अन्तमें एक बार जलसे आचमन करना 'आपोऽस्नान-क्रिया' है। इसमें 'अमृतोपस्तरणमसि' इस वाक्यका प्रयोग विहित है।

२-मन्त्र एवं ब्राह्मणरूपमें वेदके दो भाग हैं। इनमेंसे केवल एक भागका अध्यापन अथवा वेदके अङ्गमात्रका अध्यापन वेदके एक देशका अध्यापन है।

३-केशान्त-संस्कारसे ही समु (शरीर) धनधान्यका आरम्भ होता है।



ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णके लिये क्रमशः सोलह, बाईस और चौबीस वर्षतक उपनयनकाल रहता है। इस कालतक उपनयन न होनेपर ये सभी पण्डित हो जाते हैं, सर्वधर्मच्युत हो जाते हैं। उनका किसी भी धर्मकार्यमें अधिकार नहीं रहता। ब्राह्मणस्तोम नामके ऋतुका अनुष्ठान करके ही ये यज्ञोपवीत-संस्कारके लिये योग्य होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य सबसे पहले माताके उदरसे उत्पन्न होते हैं, उसके बाद पुनः भौजोबन्धन अर्थात् यज्ञोपवीत-संस्कारसे उनका द्वितीय जन्म होता है। अतः ये द्विजाति कहलाते हैं।

श्रौत-स्मार्त यज्ञ, तपस्या (चान्द्रायण आदि व्रत) और शुभकर्मों (उपनयन आदि संस्कारों)-का बोधक एकमात्र वेद है। अतः द्विजातियोंके लिये वेद ही परम कल्याणका साधन है। इससे वेदमूलक स्मृतियोंका भी उपयोग स्पष्ट है।

जो द्विज प्रतिदिन ऋग्वेदका अध्ययन करता है, वह देवताओंको मधु एवं दुग्धसे तथा पितरोंको मधु एवं पुतसे प्रतिदिन तृप्त करता है। जो द्विज प्रतिदिन यजुर्वेद, सामवेद

अथवा अथर्ववेदका अध्ययन करता है, वह पुत एवं अमृतसे पितरों तथा देवताओंको प्रतिदिन तृप्त करता है। ऐसे ही जो द्विज प्रतिदिन याज्ञोवाक्य<sup>१</sup>, पुराण, नाराशंसी<sup>२</sup>, गार्धिका<sup>३</sup>, इतिहास<sup>४</sup> तथा विद्याका<sup>५</sup> अध्ययन करता है, वह पितरों एवं देवताओंको मांस (फल), दूध और ओदन (भत)-से प्रतिदिन तृप्त करता है। संतुष्ट ये देवता और पितृजन भी इस स्वाध्यायशील द्विजको समस्त अभीष्ट शुभ फलोंसे संतुष्ट करते हैं। द्विज जिस-जिस यज्ञके प्रतिपादक वेद-भागका अध्ययन करता है, उस-उस यज्ञके फलको प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त भूमिदान, तपस्या और स्वाध्यायके फलका भी भागी होता है।

नैष्ठिक ब्रह्मचारीको अपने आचार्यके सान्निध्यमें रहना चाहिये। आचार्यके अभावमें आचार्यपुत्र और उसके अभावमें आचार्य-पत्नी तथा उसके भी अभावमें वैश्वानर आदिके आश्रयमें (अपनेद्वारा उपास्य आदिकी शरणमें) रहना चाहिये। इस प्रकार अपने देहको क्षीय करता हुआ जितेन्द्रिय द्विज ब्रह्मचारी ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। उसका पुनः जन्म नहीं होता। (अध्याय ९४)

## गृहस्थधर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे यशव्रत मुनियो! आप सभी अब गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन सुनें।

(विद्याध्ययनकी समाप्तिके पश्चात्) गुरुको दक्षिण प्रदान करके उन्हींकी अनुज्ञासे स्नानकर शिष्यको ब्रह्मचर्यव्रतकी समाप्ति करनी चाहिये। तदनन्तर वह सुलक्षणा, अत्यन्त सुन्दर मन्त्रेमा, असपिण्डा, अवस्थामें छोटी, अरोगा, भ्रतुमती, भिन्न प्रवर एवं गोत्रवाली कन्यासे विवाह करे।

सभी असपिण्डा कन्याको विवाहयोग्य बताया गया है। इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि सपिण्डा कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। महर्षि याज्ञवल्क्यने यहाँ सपिण्डाके बारेमें यह बताया है—मातासे लेकर उनके पिता, पितामह आदिकी गणनामें पौत्रार्थ परम्परातक तथा पितासे लेकर उनके पिता, पितामह आदिकी गणनामें सातवों परम्परातक

सपिण्डा समझना चाहिये। इसके मध्यमें आनेवाली कन्या सपिण्डा तथा इसके मध्यमें न आनेवाली कन्या असपिण्डा होगी। इसके अनुसार विवाहके लिये असपिण्डा कन्याका चयन होना चाहिये। ऐसे ही उसी कन्यामें विवाह उचित है, जिसका मातृकुल तथा पितृकुलमें पौत्र-पौत्र परम्परातक सदाचार, अध्ययन एवं पुत्र-पौत्रादिकी समृद्धिकी दृष्टिसे विश्वास हो। ऐसे ही कन्याके लिये समानवर्णमें उत्पन्न श्रोत्रिय एवं विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ होता है। अन्य विद्वानोंने जो यह कहा है कि द्विजातियोंके लिये शूद्रकुलमें उत्पन्न हुई कन्या भी ग्रहण करने योग्य होती है, यह मेरा अभिमत नहीं है, क्योंकि उस कन्यामें उससे विवाह करनेवाला उसका पति ही स्वयं उत्पन्न होता है<sup>६</sup>। तीनों वर्ण तीन, दो, एक इस क्रमसे वर्णोंमें विवाह कर सकते हैं। शूद्र-वर्णको

१-याज्ञोवाक्य—प्रश्नोत्तररूप वेद-वाक्य। २-नाराशंसी—स्मृतिकारक मन्त्र। ३-गार्धिका—यज्ञ-सम्बन्धी इन्द्र आदिकी गार्धारी। ४-इतिहास—महाभारत आदि। ५-विद्या—वाल्मीकी आदि विभिन्न विद्याएँ। ६-‘अत्यन्त ही जायते पुत्रः’ के अनुसार पिता ही पुत्रके रूपमें जन्म लेता है।

अपने ही वर्णसे कन्या प्राप्त करनी चाहिये।

अपने घरपर वरको बुलाकर उसे यथाशक्ति अलंकृत अपनी कन्या प्रदान करना 'ब्राह्मविवाह' है। इस विधिसे विवाहित स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न होनेवाली संतान दोनों कुलोंके इक्कीस पीढ़ियोंको पवित्र करती है। यज्ञदीक्षित श्रुतिक ब्राह्मणको अपनी कन्या देना 'दैवविवाह' है तथा वरसे एक जोड़ा गौ (स्त्री गौ एवं पुरुष गौ) लेकर उसको कन्या प्रदान करना 'आर्षविवाह' कहा जाता है। इस प्रथम (ब्राह्मविवाह) विधिसे विवाहित स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न पुत्र अपनी प्रथमकी सात तथा बादकी सात—इस तरह चौदह पीढ़ियोंको पवित्र करता है। आर्षविधिसे विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन पूर्व तथा तीन बादकी—इस तरह छः पीढ़ियोंको पवित्र करता है।

'तुम इस कन्याके साथ धर्मका आचरण करो'—यह कहकर विवाहकी इच्छा रखनेवाले वरको पिताके द्वारा जब कन्या प्रदान की जाती है, तब ऐसे विवाहको 'काय (प्राजापत्य)-विवाह' कहते हैं। इस विवाह-विधिसे उत्पन्न पुत्र अपनेसहित पूर्वकी छः तथा बादकी छः पीढ़ियों—इस तरह कुल तेरह पीढ़ियोंको पवित्र करता है। कन्याके पिता या बन्धु-बान्धव अथवा कन्याको ही यथाशक्ति धन देकर यदि कोई वर उससे विवाह करता है तो इस विवाहको 'असुरविवाह' और वर एवं कन्याके बीच पहले ही पारस्परिक सहमति हो जानेके बाद जो विवाह होता है, उसको 'गान्धर्वविवाह' कहते हैं। कन्याको इच्छा नहीं है, तब भी बलात् युद्ध आदिके द्वारा अपहृत उस कन्याके साथ विवाह करना 'राक्षसविवाह' है। स्वाप (शपथ) आदि अवस्थामें अपहरणकर उसके साथ जो विवाह किया जाता है, उसको 'पैशाचविवाह' कहते हैं।

इन उपर्युक्त आठ विवाहोंमें प्रथम चार प्रकारके विवाह अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्यविवाह ब्राह्मणवर्णके लिये उपयुक्त हैं। गान्धर्वविवाह तथा राक्षसविवाह क्षत्रिय-वर्णके लिये उचित है। असुरविवाह वैश्यवर्ण और अन्तिम

गर्हित पैशाच नामक विवाह शूद्रवर्णके लिये (उचित) माना गया है।

समान वर्णवाले वर-कन्याके विवाहमें कन्याओंके द्वारा गृहसूत्रकी विधिके अनुसार वरका पाणिग्रहण अर्थात् हाथ पकड़ना चाहिये। क्षत्रियकन्या ब्राह्मणवरसे विवाह करते समय ब्राह्मणवरके दाहिने हाथमें विद्यमान शर (बाण)-के एकदेसको ग्रहण करे। वैश्यकन्या ब्राह्मण अथवा क्षत्रियवरसे विवाह करते समय वरके हाथमें विद्यमान चाबुकके एकदेसको ग्रहण करे। ऐसे ही शूद्रकन्या ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यवरसे विवाह करते समय वरके उत्तरीय वस्त्र (ऊपर ओढ़े हुए चादर)-के किनारेको ग्रहण करे<sup>१</sup>।

पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य<sup>२</sup> (बन्धु-बान्धव) अथवा माता कन्यादान करनेके अधिकारी हैं। पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर कन्यादानके अधिकारी हैं, यदि उन्माद आदि दोषसे ग्रस्त नहीं हैं। यदि कन्यादानका अधिकारी समयपर कन्यादान न करे तो कन्याके श्रुतमती हो जानेपर कन्यादानके अधिकारीको कन्याके प्रति श्रुतकालमें एक-एक भूषणहस्ताका पाप लगता है। कन्यादानके दाताके अभावमें कन्याको स्वयं उपयुक्त वरका चरण कर लेना चाहिये।

कन्या एक बार दी जाती है, इसलिये कन्या एक बार देकर पुनः उसका अपहरण करनेवाला चौरकर्मके समान दण्डका भागी होता है। निर्दुष्ट अर्थात् सीम्य सुशीला पत्नीका परित्याग करनेपर प्रति दण्डनीय है, किंतु अत्यन्त दुष्ट (महापातक आदिसे दुष्ट) पत्नीका उपायान्तरके अभावमें परित्याग किया जा सकता है।

यदि कन्याका किसी वरके साथ विवाह करनेके लिये वाग्दानमात्र किया गया हो, अनन्तर विवाहके पूर्व ही वरका मरण हो गया तो कलियुगसे अन्य युगोंमें ऐसी कन्याको पुत्र प्राप्त करनेका उपाय यह है—ऐसी कन्या पुत्र चाहती है तो उसका देवर अथवा कोई सपिण्ड या कोई सगोत्र बड़ोंकी आज्ञा प्राप्त होनेपर अपने सभी अङ्गोंमें घृतलेप कर

१-कन्याका पिता वरसे गौका जोड़ा मूल्यके रूपमें नहीं लेता। अवश्यकलावल धर्मकार्य (याग आदि) सम्पन्न करनेके लिये होता है। इसीलिये मनुस्मृति (३। २९)-के अनुसार जितनसे धर्मकार्य हो सके, उतना ही (एक ही गौ या गौका जोड़ा) कन्या-पिताको वरसे लेना चाहिये।

२-दूसरे वर्णसे विवाह करनेकी यह व्यवस्था कलियुगके लिये नहीं है।

३-सकुल्य—आठवीं पीढ़ीसे दसवीं पीढ़ीतक 'सकुल्य' कहा जाता है।

ऋतुकालमात्रमें उस कन्याके पास तबतक जा सकता है, जबतक गर्भ-धारण न हो। गर्भ-धारणके बाद यदि वह ऐसी कन्याके पास जाता है तो पतित हो जाता है। इस विधिसे इस कन्यासे उत्पन्न पुत्र जिस वरको कन्याका वाग्दान किया गया था, उसका क्षेत्रज्ञ पुत्र माना जाता है।

जो स्त्री व्यभिचारिणी है, बहुत प्रयत्न करनेपर भी व्यभिचारसे विरत नहीं हो रही है, उसको अपने गृहित जीवनके प्रति वैराग्य उत्पन्न करनेके लिये अपने घरमें ही रखते हुए समस्त अधिकारोंसे अलग कर देना चाहिये तथा उसे मलिनदशामें ही रखकर उतना ही भोजन देना चाहिये, जितनासे उसकी प्राणरक्षामात्र हो सके। साथ ही उसके निन्दनीय कर्मके लिये उसकी भासना करनी चाहिये और भूमिपर ही उसके शयनकी व्यवस्था करनी चाहिये।

स्त्रियोंको विवाहसे पूर्व चन्द्रने शुचिता, गन्धर्वने सुन्दर मधुर वाणी एवं अग्निने सब प्रकारकी पवित्रता प्रदान की है। इसीलिये स्त्रियाँ पवित्र ही होती हैं। अतएव उनके लिये अतप प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है। पर इतनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि स्त्रियोंमें दोषका संक्रमण नहीं होता है। यदि कोई स्त्री केवल मनसे पर पुरुषकी इच्छा करती है तो यह भी एक तरहका व्यभिचार ही है। ऐसे ही अन्य पुरुषसे सम्पर्क करनेका संकल्पमात्र कोई स्त्री कर लेती है तो यह भी किसी रूपमें व्यभिचार ही है। ऐसा व्यभिचार यदि प्रकाशमें नहीं आया है तो इससे उत्पन्न दोषका मार्जन उस स्त्रीके ऋतुकालमें रजोदर्शनसे हो जाता है। यदि पर पुरुष शूद्रके साथ सम्पर्क कर कोई स्त्री गर्भधारण कर लेती है तो इस पापका प्रायश्चित्त उस स्त्रीका त्याग ही है। ऐसे ही गर्भवध, पतिका वध, ब्रह्महत्या आदि महापातकसे ग्रस्त होनेपर तथा शिष्य आदिके साथ गमन करनेवाली स्त्रीका त्याग ही कर देना चाहिये।

मदिरापान करनेवाली, दीर्घ रोगिणी, द्वेष रखनेवाली, वन्ध्या, अर्थकर नष्ट करनेवाली, अप्रियवादिनी (निद्रुभयिणी),

कन्याको ही उत्पन्न करनेवाली एवं पतिका अहित ही करनेवाली भार्याका परित्याग कर दूसरा विवाह किया जा सकता है। प्रथम विवाहिता (परित्याक्ता) स्त्रीका भी दान, मान, सत्कार आदिके द्वारा भरण करना चाहिये, अन्यथा उस स्त्रीके पतिको महापाप होता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि जिस घरमें पति-पत्नीके मध्य किसी भी प्रकारका विरोध नहीं होता, उस घरमें धर्म-अर्थ और काम—इस त्रिवर्गको अभिवृद्धि होती है। अतः प्रथम विवाहिता एवं वर्तमान भार्यामें, अस्वीकृत स्त्री भी पूर्वमें भार्या रही है। इस दृष्टिसे उससे विरोध नहीं ही करना चाहिये। उसे पूर्ण प्रसन्न रखना चाहिये। जो स्त्री पतिकी मृत्युके पश्चात् अथवा उसके जीवित रहते हुए अन्य पुरुषका आश्रय नहीं लेती, वह इस लोकमें यश प्राप्त करती है और अपने पतिव्रत्य-पुण्यके प्रभावसे परलोकमें जाकर पार्वतीके सहचर्यमें आनन्द प्राप्त करती है।

यदि पति अपनी स्त्रीका परित्याग करता है तो उस स्त्रीको भरण-पोषणके लिये अपनी सम्पत्तिका तृतीयांश दे देना चाहिये।

स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये—यही उनका परम धर्म है। स्त्रियोंमें ऋतु अर्थात् रजोदर्शनके प्रथम दिनसे सोलह रात्रितक उनका ऋतुकाल होता है। अतः पुरुषको उक्त सोलह रात्रियोंकी गुप्त रात्रियोंमें अपनी पत्नीके साथ पुत्र-प्राप्तिके लिये संसर्ग करना चाहिये<sup>१</sup>। पत्नीकी तिथियोंमें<sup>२</sup> तथा ऋतुकालकी प्रारम्भिक चार तिथियोंमें सहवास नहीं करना चाहिये। अपनी अपेक्षा क्षाम (दुर्बल) स्त्रीका सहवास पुत्र-प्राप्तिमें सहायक होता है। मघा और मूल नक्षत्रमें सहवास वर्जित है।

इन नियमोंका पालन करके ही अपनी स्त्रीसे सुन्दर, सबल, उत्तम लक्षणोंवाले नौरोग पुत्रको उत्पन्न किया जा सकता है। स्त्रियोंको इन्द्रने जो वर<sup>३</sup> दिया है, उसे ध्यानमें रखते हुए पुरुष यथाकामी (पत्नीकी इच्छानुसार ऋतुकालकी

१-इन नियमोंका पालन करनेवालेको 'ब्रह्मचारी' कहा गया है।

२-पर्व-तिथि चार हैं—अष्टमी, दशुदसी, अमावास्या और पूर्णिमा (मनु० ४। १५६)।

३-एक बार स्त्रियोंने पुरुषकी अपेक्षा आठगुनी अपनी कामभावनासे काय्य होकर इन्द्रदेवकी शरणमें जाकर अपने मनोभावको उनसे स्पष्ट किया। इन्द्रदेवने स्त्रियोंके भावकी जानकारी कर दिया—'यस्मिन् कामविहन्ता पतिरस्ति स्यत्' ('आप लोगोंकी कामभावनाका हनन करनेवाला पुरुष पतिरही होगा')। इसी वरके अनुसार पत्नीकी इच्छाके अनुसार ऋतुकालसे अन्य कालकी अनिष्ट रात्रियोंमें भी पतिगमन अनुज्ञात है।

रात्रियोंसे अतिरिक्त अनिषिद्ध रात्रियोंमें भी अपनी पत्नीके साथ सहवास करनेवाला) भी हो सकता है। पुरुषके यथाकामी होनेमें दो कारण हैं—(१) पुरुषको अपनी पत्नीमें ही रति रखनी चाहिये और (२) स्त्रियोंकी रक्षा करना पुरुषका धर्म है। पति, भ्राता, पिता, पितृव्य, सास, श्वशुर, देवर तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंको स्त्रियोंका आभूषण-वस्त्र एवं भोजनादिके द्वारा पर्याप्त आदर करना चाहिये।

स्त्रीको घरकी सामग्री संयमित रूपमें रखनी चाहिये, कार्यकुशल होना चाहिये, प्रसन्न रहना चाहिये, मितव्ययी (अधिक खर्चीली नहीं) होना चाहिये तथा सर्वदा अपने सास-श्वशुरके चरणोंका वन्दन करना चाहिये।

जो स्त्री प्रोषितपतिका है अर्थात् जिसका पति परदेश चला गया है, उसके लिये किसी प्रकारकी क्रीड़ा (खेल-

तमसा), शरीरकी सजावट सामाजिक उत्सवोंका दर्शन, हास-परिहास तथा दूसरेके घरमें गमन करना वर्जित है।

बाल्यावस्थामें पिता, यौवनकालमें पति, वृद्धावस्थामें पुत्र, पुत्रके अभावमें अन्य सम्बन्धियोंको नारीकी रक्षा करनी चाहिये। दिन हो अथवा रात्रि हो, कभी भी स्त्री अपने पतिके बिना एकान्तमें निवास न करे। पतिको सदैव धर्म-कार्यमें अपनी ज्येष्ठ पत्नीको ही संलग्न करना चाहिये। कनिष्ठा भार्या धर्म-कार्यके लिये उपयुक्त नहीं मानी गयी है। सदाचारिणी स्त्रीके मृत्यु होनेपर पतिको चाहिये कि वह अग्निहोत्रमें प्रयुक्त अग्निसे उसका दाह-संस्कार करे। तदनन्तर अविलम्ब अन्य स्त्रीके साथ पाणिग्रहण करके पुनः अग्निका संचयन करे। पतिहितैषिणी पत्नी इस लोकमें यश अर्जित करके अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ९५)

## वर्णसंकर जातियोंका प्रादुर्भाव, गृहस्थधर्म, वर्णधर्म तथा सैंतीस प्रकारके अनध्याय

याज्ञवल्क्यजीने कहा—अब मैं संकर जातियोंकी उत्पत्ति एवं गृहस्थादिके श्रेष्ठ धर्मोंका वर्णन करता हूँ।

ब्राह्मण पुरुषसे विवाहिता क्षत्रिय कन्यामें मूर्धावसिक, विवाहिता वैश्य कन्यामें अम्बष्ठ और विवाहिता शूद्रांशुधर्म नामक संकरका जन्म होता है<sup>१</sup>। क्षत्रिय पुरुषसे वैश्य कन्यामें माहिष्य तथा शूद्रांशुधर्म नामकी उत्पत्ति होती है। वैश्य पुरुषसे शूद्रवर्णा स्त्रीमें करण नामक संकर जातिकी संतानका जन्म होता है<sup>२</sup>। क्षत्रिय पुरुषसे ब्राह्मण स्त्रीमें सूत, वैश्य पुरुषसे ब्राह्मणीमें वैदेहक तथा शूद्र पुरुषसे ब्राह्मणीमें सर्ववर्णविन्दनीय चाण्डालकी उत्पत्ति होती है। क्षत्रिय स्त्रीमें वैश्यसे मागध और शूद्रसे क्षता नामक संकर संतानका जन्म होता है। इसी प्रकार वैश्य स्त्री शूद्र पुरुषके संसर्गसे आर्योगव<sup>३</sup> नामक वर्णसंकर पुत्रको जन्म देती है। क्षत्रिय पुरुषसे वैश्य कन्यामें उत्पन्न हुए माहिष्य संकरके द्वारा करणी (वैश्यसे शूद्रांशुधर्म) स्त्रीके साथ संसर्ग

होनेपर रघकारका जन्म होता है।

जो उच्चवर्णीय पुरुषसे निम्नवर्णीय स्त्रीमें संतान उत्पन्न होती है, वह अप्रतिलोमज अथवा अनुलोमज संतान है और जो निम्नवर्णीय पुरुषसे उच्चवर्णीय स्त्रीमें संतान जन्म ग्रहण करता है, वह प्रतिलोमज संतान है। प्रतिलोमज असत् है और अनुलोमज सत् है।

जातिका उत्कर्ष सातवें, पौचवें अथवा छठे जन्ममें होता है। यहाँ जाति शब्दसे अभी वर्णित मूर्धावसिक आदि जातियों ली गयी हैं। प्रकृतमें संक्षेपसे यह समझना चाहिये—ब्राह्मणसे शूद्रांशुधर्म उत्पन्न संतान निषाद कहो जाती है। यह संतान यदि कन्या है तो इसे निषादी कहा जाता है। इसका यदि ब्राह्मणसे विवाह हो और उससे उत्पन्न कन्याका पुनः ब्राह्मणसे विवाह हो, आगे उससे भी उत्पन्न कन्याका पुनः ब्राह्मणसे ही विवाह हो—इसी क्रमसे उत्पन्न छठी कन्यासे विवाहित ब्राह्मणके द्वारा उत्पादित सातवीं संतान शुद्ध ब्राह्मणवर्णकी होगी। ऐसे

१-ये अनुलोम संकर कहे जाते हैं।

२-याज्ञवल्क्यस्मृति (४। १२)-के अनुसार क्षत्रियसे शूद्रांशु धर्म नामकी संकर जातिकी संतान उत्पन्न होती है।

३-मूर्धावसिक, अम्बष्ठ, निषाद, माहिष्य, उग एवं करण—ये छः अनुलोमज पुत्र हैं।

४-सूत, वैदेहक, चाण्डाल, मागध, क्षता एवं आर्योगव—ये छः प्रतिलोमज पुत्र हैं।



ही ब्राह्मणसे वैश्य जातीय कन्यामें उत्पन्न अम्बष्ठ जातिकी पाँचवीं कन्याकी छठी संतान शुद्ध ब्राह्मण होगी। मूर्धावसिक्ता कन्याकी भी इसी क्रमसे उत्पन्न चौथी कन्याकी पाँचवीं संतान शुद्ध ब्राह्मण हो होगी। ठीक यही स्थिति उग्रा और माहिष्याकी है। ये दोनों उग्र एवं माहिष्य जातिकी कन्याएँ यदि क्षत्रियसे ही विवाहित होती गयीं तो इनकी छठी और पाँचवीं संतति शुद्ध क्षत्रिय ही होगी। ऐसे ही कारण जातिकी कन्या और वैश्यवर्णके पुरुषसे विवाहित होकर यथाक्रम पाँचवें संतानको शुद्ध वैश्यरूपमें ही उत्पन्न करेगी।

इसके अतिरिक्त यह भी जानने योग्य है कि कर्मका व्यवस्था होनेसे भी जिस वर्णका कर्म किया जा रहा है, वही वर्ण सातवें, छठे तथा पाँचवें जन्मको संतानका हो जाता है। स्पष्टरूपमें इस प्रकार समझा जा सकता है—धर्मशास्त्रके अनुसार ब्राह्मणकी अपनी मुख्यवृत्ति याजन तथा अध्यायन आदिसे जीविका चलानी चाहिये। आपत्कालमें अपनी मुख्यवृत्तिसे जीविका न चल पानेपर क्षत्रियवृत्ति, वैश्यवृत्ति या शूद्रवृत्ति भी ब्राह्मण स्वीकार कर सकता है। यही क्षत्रिय एवं वैश्यके बारेमें भी व्यवस्था है। जब कोई वर्ण अपनी मुख्यवृत्तिका परित्याग कर अन्य द्वितीय, तृतीय वर्णकी वृत्ति स्वीकार करता है तो यह हीनवर्णकी वृत्ति मानी जाती है और यह हीनवर्णकी वृत्ति स्वीकार करना ही 'कर्म-व्यत्यय' है। इस प्रकारके कर्म-व्यत्यय होनेपर आपत्कालके अभावमें भी यदि कोई हीनवर्णकी वृत्तिका परित्याग नहीं करता है तो उसकी सातवीं, छठी, पाँचवीं कुल-परम्परामें उत्पन्न संतति उस हीनवर्णकी ही होगी। जिस हीनवर्णकी वृत्ति स्वीकार कर जीविका निर्वाह किया जा रहा है। दृष्टान्तके रूपमें यह कहा जा सकता है—यदि कोई ब्राह्मण शूद्रवृत्तिसे जीविका चला रहा है और उसका परित्याग बिना किये पुत्र उत्पन्न कर रहा है तथा यह पुत्र भी शूद्रवृत्तिसे अपना जीवन चलाता हुआ अपना पुत्र उत्पन्न कर रहा है एवं यह तीसरा पुत्र भी शूद्र-वृत्तिमें रहकर ही अपना पुत्र उत्पन्न कर रहा है तो ऐसी परम्परामें सातवें जन्ममें शूद्र ही उत्पन्न होगा। वैश्यवृत्तिसे जीविका निर्वाहकी दशामें छठे जन्ममें वैश्य ही उत्पन्न

होगा। क्षत्रियवृत्तिसे जीविका निर्वाहकी स्थितिमें पाँचवें जन्ममें क्षत्रिय ही उत्पन्न होगा। क्षत्रिय भी शूद्रवृत्तिसे जीविका निर्वाह करनेपर छठे वंशमें शूद्रवर्णकी एवं वैश्यवृत्तिसे जीविका निर्वाह करनेपर पाँचवें वंशमें वैश्यवर्णकी संतान उत्पन्न करेगा। ऐसे ही वैश्य भी शूद्रवृत्तिसे जीविका निर्वाह करते हुए अपनी पुत्र-परम्पराके पाँचवें जन्ममें शूद्रको ही उत्पन्न करेगा।

इसी प्रसंगसे यह भी ज्ञातव्य है—तीन प्रकारकी जातियाँ हैं—१-संकर जाति, २-संकीर्ण संकर जाति तथा ३-वर्ण संकीर्ण संकर जाति। संकर जातिके मूर्धावसिक्त अम्बष्ठ आदि छः भेद ऊपर बताये गये हैं। इन्हें अनुलोमज कहा जाता है। ऐसे ही सूत, वैदेहक आदि भी छः संकर जातिके भेद पहले ही कहे जा चुके हैं। ये प्रतिलोमज हैं। संकीर्ण संकर जातिके जो लोग होते हैं, उनका निर्देश पहले रथकारकी उत्पत्ति बताकर किया गया है। अब वर्ण संकीर्ण संकर जातिके लोगोंको इस प्रकार समझनी चाहिये—मूर्धावसिक्ता स्त्रीमें क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रसे जो उत्पादित हैं, ऐसे ही अम्बष्ठ जातिकी स्त्रीमें वैश्य अथवा शूद्रके द्वारा जो उत्पादित हैं और पारशय निषाद जातिकी स्त्रीमें शूद्रके द्वारा जो उत्पादित हैं, वे वर्ण संकीर्ण संकर जातिके होते हैं। इन्हें, अधर प्रतिलोमज कहते हैं। इसी प्रकार मूर्धावसिक्त, अम्बष्ठ एवं पारशय निषाद जातिकी स्त्रियोंमें ब्राह्मणके द्वारा जो उत्पादित हैं, माहिष्य एवं उग्रजातिकी स्त्रियोंमें ब्राह्मण अथवा क्षत्रियसे जो उत्पादित हैं और करणजातिकी स्त्रीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यसे जो उत्पादित हैं, उन्हें उत्तर अनुलोमज कहते हैं। उनमें अधर प्रतिलोमज असत् तथा उत्तर प्रतिलोमज सत् माने जाते हैं।

गृहस्थाश्रमीकी प्रतिदिन विवाहाग्रिमें अथवा सम्पत्ति विभागके समय स्वयं लायी गयी संस्कृत-अग्रिमें स्मार्तकर्म वैश्वदेव आदि सम्पन्न करना चाहिये। श्रौतकर्मानुष्ठान अग्निहोत्र आदि वैतानाग्नि (आहवनीय आदि अग्नियों)-में करना चाहिये। शरीर चिंता (प्रातः-सायं अवश्य करणीय मल-मूत्र विसर्जन)-को शास्त्रीय विधिसे सम्पन्न कर, गन्ध-लेपनिवृत्तिपर्यन्त शुद्धि प्राप्तकर दन्तधावन एवं स्नानकर द्विजकी प्रातःकाल संध्योप्रासन करना चाहिये तथा अनन्तर

अग्निमें हवन (अग्निहोत्र) करके समाहितचित्तसे सूर्यदेवताके मन्त्रोंका<sup>१</sup> जप करना चाहिये। उसके बाद गृहस्थाश्रमी वेदार्थ (निरुक्त व्याकरण आदि) तथा अन्य विविध प्रकारके शास्त्रोंका अध्ययन करे। योगक्षेम आदिकी सिद्धिके लिये उसको ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये।

वह स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा पूजन करे। तदनन्तर उसको वेद, पुराण तथा इतिहासका यथाशक्ति अध्ययन एवं अध्यापिकी विद्याका जप (चिन्तन) करना चाहिये। तत्पश्चात् भूत, पितर, देव, ब्रह्म और मनुष्य जातिके लिये गृहस्थ बलिकर्म<sup>२</sup>, स्वधा, होम, स्वाध्याय तथा अतिथि-सत्कार करे। देवताओंके लिये अग्निमें हवन करना चाहिये। भूतबलि, स्नान (कुत्ता), चाण्डाल एवं काक आदिके लिये पका हुआ अन्न भूमिपर दे। पितृगण एवं मनुष्योंको अन्नके सहित जल भी प्रतिदिन प्रदान करना चाहिये। प्रतिदिन स्वाध्याय करे, केवल अपने लिये अन्नपाक न करे। स्ववासिनी (अपने पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता स्त्री), वृद्ध, गर्भिणी, व्याधिपीडित, कन्या, अतिथि तथा भृत्योंको भोजन प्रदानकर गृहस्थाभिनी और उसका पति शेष बचे हुए अन्नका भोजन करे। अग्निमें पक्षप्राणाहुति देकर अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करना चाहिये।

भोजनके आदि और अन्तमें आपोऽस्नान-विधिसे आचमन करे तथा सम्यक् प्रकारसे पका हुआ, हितकारी, स्वल्प भोजन बालकोंके साथ करना चाहिये।

पात्रादिसे आच्छादित अमृततुल्य भोजन द्विजको करना चाहिये। यथाशक्ति अतिथि एवं अन्य वर्णोंको क्रमशः भोजन देना चाहिये। सायंकाल भी आये हुए अतिथिकी लीटाना नहीं चाहिये। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। सुव्रत! (ब्रह्मचारी एवं संन्यासी) भिक्षुककी सत्कारपूर्वक भिक्षा प्रदान करनी चाहिये। द्वारपर पधारे सभीको भोजन कराना चाहिये। प्रतिवर्ष स्नातक, आचार्य एवं राजाकी पूजा करनी चाहिये। ऐसे ही मित्र, जामाता एवं श्रुतिवक् प्रतिवर्ष पूजनीय हैं। पथिकको अतिथि तथा वेदपारंगतको श्रेष्ठिय कहा जाता है। ब्रह्मलोककी कामना करनेवाले गृहस्थजनके लिये

ये दोनों मान्य हैं।

ससम्मान आमन्त्रणके बिना ब्राह्मणको दूसरेके यहाँ बने हुए पक्वान्नको प्राप्त करनेकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। गृहस्थको खाण्डी, हाथ, पैरकी चञ्चलता एवं अतिभोजन करनेसे बचना चाहिये। संतुष्ट श्रेष्ठिय तथा अतिथिकी विदा करते समय ग्रामकी सोमातक उनका अनुगमन करना चाहिये।

गृहस्थ अपने इष्ट-मित्र एवं बन्धुओंके साथ दिनका शेष भाग व्यतीत करे। तदनन्तर सायंकालीन संध्योपासना करके वह पुनः अग्निहोत्रकर भोजन ग्रहण करे। इसके बाद उसको अपने सुबुद्ध भृत्योंके साथ बैठकर अपने हितका विचार करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्यागकर वह धनादिसे ब्राह्मणको संतुष्ट करे तथा वृद्ध, दुःखी एवं भार होनेवाले पथिकोंको भलीभाँति मार्ग दिखाकर प्रसन्न करे।

यज्ञानुष्ठान, अध्ययन और दान वैश्य तथा क्षत्रियका कर्म माना गया है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये याजन, अध्यापन तथा प्रतिग्रह—ये तीन कर्म अधिक बताये गये हैं।

क्षत्रियका प्रधान कर्म प्रजापालन है। वैश्यवर्णके लिये कुसीद (सूद), कृषि, वाणिज्य और पशुपालन मुख्य कर्म कहा गया है। शूद्रवर्णका प्रधान कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यकी सेवा करना है। द्विजोंको यज्ञादि कर्तव्योंसे प्रमाद नहीं करना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियसंयम, दय, क्षमा, सरलता और दान सभीके लिये धर्मके साधन हैं। अपने वर्णधर्मानुसार जीविकाका आश्रयणकर कुटिल और दुष्टवृत्तिका परित्याग करना चाहिये—

प्रधानं क्षत्रियं कर्म प्रजानां परिपालनम्॥

कुसीदकुषिवाणिज्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम्।

शूद्रस्य द्विजशुभूषा द्विजो यज्ञान् न हापयेत्॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः।

दयः क्षमाशौचं दानं सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

आचरेत् सदृशीं वृत्तिमजिह्वापशठां तथा।

(१६।२७-३०)

जो मनुष्य तीन वर्षसे अधिक कालतकके लिये अन्नका भण्डारण करता है, वह सोमरस पान करनेकी

१- 'उदु त्वं जातवेदसं' आदि।

२- बलिकर्म—भूतयज्ञ, स्वधा—पितृयज्ञ, होम—देवयज्ञ, स्वाध्याय—ब्रह्मयज्ञ, अतिथि-सत्कार—मनुष्य-यज्ञ।

योग्यता रखता है। जिसके पास मात्र एक वर्षभरके लिये ही अन्न रहता है, उसे मुख्यतः सोमयागकी प्राकृष्टिक्रिया<sup>१</sup> करनी चाहिये। द्विजको प्रतिवर्ष सोमयाग, पशुयाग, आश्रायणेष्टि<sup>२</sup> तथा चातुर्मास्ययाग यज्ञपूर्वक करना चाहिये। यदि इन यागोंको करना प्रतिवर्ष असम्भव हो तो इन यागोंके कालमें वैश्वानरी इष्टि ही कर लेनी चाहिये।

मुख्य कल्पके सम्पादनमें असमर्थके लिये जो द्वितीय कल्प विहित है, वह हीन कल्प है। सोमयाग, आश्रायणेष्टि आदि मुख्य कल्प हैं। वैश्वानरी इष्टि हीनकल्प है। यदि मुख्यकल्पके सम्पादनयोग्य द्रव्य है तो हीनकल्पका सम्पादन नहीं करना चाहिये। जितने भी फलप्रद (काम्य) अनुष्ठान हैं। फलकी कामना रहनेपर उन्हींका सम्पादन करना होगा। उनको न कर हीनकल्पका सम्पादन करनेपर फल नहीं प्राप्त हो सकता।

ब्राह्मणकी अपनी जीविकाके लिये उस अर्पतिविद्ध अर्धकी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये जो स्वाध्याय-विरोधी हो। ऐसे जिस-किसी भी व्यक्तिसे अर्ध पानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, जिसका आचरण संदिग्ध हो। विरुद्धवृत्ति (अप्राप्य याजन आदि)-से भी अर्ध-अर्जन नहीं करना चाहिये। ऐसे ही नृत्य, गीत आदि (प्रसंग)-से भी अर्ध-अर्जन नहीं करना चाहिये। जो द्विज यज्ञके लिये दूधसे धनकी याचना करता है, वह मृत्युके पश्चात् चाण्डाल-योनिमें जन्म लेता है। यज्ञके लिये लाये हुए अन्नको जो सम्पूर्णरूपसे यज्ञमें नहीं लगाता, वह कुक्कुर, गृध्र अथवा काकयोनिमें जन्म ग्रहण करता है।

ब्राह्मणको एक कुसूल<sup>३</sup> (कोष्ठक)-भर, एक मुटका-

भर, तीन दिनतकके लिये या एक दिनतकके लिये अन्न संग्रह करना चाहिये। अथवा वह शिलोर्ज्ज्वलवृत्तिसे अपना जीवन-निर्वाह करे। इन वृत्तियोंमें उत्तरोत्तर वृत्ति श्रेष्ठ है।

यदि वह भूखसे पीड़ित है तो उसको राजा, अपने छात्र या यज्ञ करनेवाले यजमानसे ही अन्न-धनकी याचना करनी चाहिये और दाम्भिक, हैतुक, पाँखण्डिक एवं सर्कवृत्तिवालेका सभी लौकिक-शास्त्रीय कर्ममें सर्वथा परित्याग करना चाहिये। वह स्वच्छ श्वेत वस्त्र धारण करे। सिर, दाढ़ी आदिके केश एवं नखोंको यथा-विधान कटवाये रहे। भोजनके साथ भोजन नहीं करना चाहिये। एक वस्त्र धारण कर तथा छोड़े होकर भोजन नहीं करना चाहिये।

कभी भी अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। यज्ञोपवीतधारो ब्राह्मणकी विनीत होना चाहिये। दण्ड और कमण्डलु धारण करना चाहिये। देव आदिको अपने दाहिने करके चलना चाहिये। वह नदी, वृक्षच्छाया, भस्म, गोष्ठ, जल तथा मार्गके मध्यमें मूत्रका परित्याग न करे। अग्नि, सूर्य, गी, चन्द्र, संध्या, जल, स्त्री और द्विजोंके सम्मुख भी मूत्रका त्याग करना वर्जित है। वह अग्नि एवं उदय तथा अस्त हो रहे सूर्यका दर्शन न करे। उसके लिये नष्ट तथा मैथुनासक्त स्त्री, मूत्र और विद्याका दर्शन भी त्याग्य है। पश्चिम सिर करके नहीं सोना चाहिये। धूक, रक्त, विद्या, मूत्र और विषकी जलमें छोड़ना अनुचित है। आगपर पैरोंको सेंकना तथा उसे लाँघना निषिद्ध है।

अञ्जलिद्वारा जल नहीं पीना चाहिये और निद्रा-निमग्न व्यक्तिको जगाना नहीं चाहिये। धूर्त-वक्त्रका साथ नहीं

१-प्राकृष्टिक्रिया—सोमयागके पूर्व कारणीय अग्निहोत्र, दर्शनपूर्वकाल, आश्रायण, चातुर्मास्य आदि।

२-नया सस्य उत्पन्न होनेपर आश्रायणेष्टिका विधान है।

३-कुसूलधान्य बारह दिनोंके लिये अन्न, कुम्भीधान्य छः दिनोंके लिये अन्न।

४-'शिलोर्ज्ज्वलवृत्ति' धारण-घोषणकी एक ब्राह्मण-वृत्ति (साधन) है। 'शिलवृत्ति' उसे कहते हैं, जिसमें ब्राह्मण फसल कट जानेके बाद खेतमें गिरे हुए अन्नकी बल्लरी (बल्ल) को एकत्र करके अपने कुटुम्बका धारण-घोषण करता है। 'उज्ज्वलवृत्ति' उसे कहते हैं, जिसमें अन्नकी बल्लरी छोड़कर एक-एक कणमात्र एकत्र कर उससे अपने कुटुम्बका धारण-घोषण करता है। 'शिल' और 'उज्ज्वल'—यही 'शिलोर्ज्ज्वलवृत्ति' है।

५-दाम्भिक—केवल किसीको प्रसन्न करनेके लिये ही धन्यनुष्ठान।

६-हैतुक—निराधार तर्कोंमें धार्मिक कृत्योंमें संशयकला।

७-पाखण्डिक—वेदशास्त्रोंके विरुद्ध अनेक प्रकारके लुभावने वेशका धारक।

८-वक्त्रवृत्ति—वक्त्रके समान वर्तन (व्यवहार) करनेवाला।

करना चाहिये। रोगी जनोके साथ शयन नहीं करना चाहिये। धर्म-विरुद्ध कर्मोंका परित्याग कर देना चाहिये। चिताग्रिका धुआँ तथा नदीमें तैरना वर्जित है। केशपर, भस्मपर, भूरीपर, प्रज्वलित अग्निके अंगारेपर और कपालपर स्थित नहीं होना चाहिये। किसीसे बछड़ेको दूध पिलाती हुई गायको बताना नहीं चाहिये और किसीके घरमें द्वारके अतिरिक्त अन्य गवाक्षादि मार्गोंसे प्रवेश नहीं करना चाहिये। लोभी तथा शास्त्र-विरुद्ध कर्म करनेवाले राजासे प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिये।

वेद तथा धर्म-शास्त्रादिका अध्ययन करनेवालोंका उपाकर्म-संस्कार श्रवणनक्षत्रसे युक्त श्रावणी पूर्णिमाको होना चाहिये। संस्कार-विहित औषधियों—सामग्रियोंके उपलब्ध रहनेपर यह कार्य श्रावणमासकी हस्तनक्षत्रसे युक्त पञ्चमी-तिथिमें भी सम्पन्न हो सकता है। पौषमासके रोहिणीनक्षत्रमें अथवा अष्टकाके दिन ग्रामसे बाहर जलाशयके पास घंटोका उत्सर्ग-कर्म गृहसूत्रके अनुसार करना चाहिये।

शिष्य, ऋत्विक्, गुरु तथा बन्धु-बान्धवोंको मृत्यु होनेपर तीन दिनका अनध्याय उपाकर्म तथा उत्सर्ग-कर्म करनेपर होता है। ऐसे ही अपनी शाखाके श्रोत्रिय ब्राह्मणकी मृत्यु होनेपर तीन दिनका अनध्याय होता है। संध्याके समय भेष-गर्जन होनेपर, आकाशमें उत्पलकी ध्वनि होनेपर, भूकम्प होनेपर तथा उत्कापात होनेपर अनध्याय रखना चाहिये। वेद और आरण्यकका अध्ययन पूर्ण होनेपर एक दिन एवं एक रात्रि (अहोरात्र)-का अनध्याय होता है।

अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्यग्रहण, ऋतुसंधिकी प्रतिपदमें तथा श्राद्ध-भोजन अथवा श्राद्धका प्रतिग्रह लेनेपर एक दिन और एक रात्रि (अहोरात्र)-का अनध्यायकाल मानना चाहिये। पशु, मेढक, नेवला, कुत्ता, सर्प, बिडाल और सूअरके बीचमें आनेपर तथा हक्रध्वजके अवरोपणका दिन आनेपर एवं उत्सवका दिन होनेपर भी एक ही दिन-रात्रिका अनध्यायकाल होता है।

कुत्ता, सियार, गर्दभ, उलूक, सामवेद तथा बच्चोंके

कोलाहल और पीड़ितजनोंकी दुःखभरी ध्वनि होनेपर, अपवित्र वस्तु, शव, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान और पतित व्यक्तिके सामीप्य होनेपर तत्काल अनध्याय होता है। अपवित्र देशमें, अपवित्रावस्थामें, बार-बार बिजली चमकनेपर, दो प्रहरतक बार-बार भेष-गर्जन होनेपर, भोजन करनेके बाद हाथ गोला रहनेपर, जलके मध्यमें, अर्धरात्रिमें तथा मध्यके दो प्रहरमें और औंधी-तूफानके बीच भी उठने कालतक अध्ययन नहीं होना चाहिये। दिग्दह होनेपर, उत्पात-जैसी धूलिकी वर्षा होनेपर, संध्याकालीन कोहरा होनेपर अथवा चोर, राजा आदिके कारण होनेवाले उपद्रवोंके समयमें तत्काल अनध्याय होता है। स्वयं दौड़ते हुए, अपवित्र मंदिर आदिका गन्ध आनेपर तथा शिष्ट व्यक्तिके घर आ जानेपर अध्ययन करना वर्जित है। गधा, बैट, वाहन (रथ), हाथी, घोड़ा, गीका, वृध और पर्वतारोहणका काल अनध्यायका ही काल होता है। उपर्युक्त सैतीस अनध्यायोंको तात्कालिक अनध्याय माना गया है अर्थात् ये निमित्त जिस समय हों, उस समय अनध्याय समझना चाहिये।

देवताको मूर्ति, ऋत्विक्, स्वातक, आचार्य एवं राजाकी छाया, पर-स्त्रीकी छाया, रक्त, विद्या, मूत्र, धूक और उबटनकी सामग्रीका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। बहुश्रुत ब्राह्मण, सर्प, क्षत्रिय (नृपति)-की अवमानना कदापि न करे। ऐसे ही अपनी भी अवमानना न करे। उच्छिष्ट (जूटन), विद्या, मूत्र और चरण-प्रक्षालित जल दूरसे ही त्यागने योग्य हैं। क्षुति और स्मृतिमें कहे गये सदाचारका पालन करना चाहिये। किसीके गोपनीय रहस्यको प्रकाशित कर उसे कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। किसीकी निन्दा या तानना नहीं करना चाहिये, किंतु पुत्र अथवा शिष्यको दण्ड देना चाहिये। मनुष्यको सर्वदा धर्मका ही आचरण करना चाहिये। धर्मविरुद्ध आचरण उसके लिये त्याज्य है। गृहस्थ व्यक्तिको माता-पिता, अतिथि और धनी पुरुषके साथ विवाद नहीं करना चाहिये।

दूसरेके सरोवरमेंसे पाँच पिण्ड मिट्टी बिना निकाले

१-यह व्यवस्था एकोष्टि कण्डसे अतिरिक्त कण्डके लिये है। एकोष्टि कण्डका भोजन अथवा प्रतिग्रहमें तीन रात्रिका अनध्याय होता है।

(पाञ्चवत्स्य पितृश्राद्ध आचारध्याय श्लोक १४६)

२-दिग्दह—दिशाई यदि जलती हुई प्रतीत होती हो।



उसमें स्नान नहीं करना चाहिये। नदी, झरना, देव-सरोवर और पोखर—तालाबमें स्नान करना चाहिये।

दूसरेकी शय्यापर शयन नहीं करना चाहिये। अनापत्तिकालमें पराग्र भोजन नहीं करना चाहिये। कृपण, बन्दी, चोर, अग्निहोत्र न करनेवाले ब्राह्मण, ब्राह्मणका काम करनेवाले, न्यायालयमें जिसका दोष सिद्ध हो चुका है, सुदखोर, वेश्या, सामुहिक दीक्षा देनेवाला, चिकित्सक, रोगी, क्रोधी, नपुंसक, रंगमंचसे जीविका चलावेवाला, उग्र, निर्दय, पतित, ब्राह्मण, दम्भी, उच्छिष्टभोजी, शस्त्र-विक्रेता, स्त्रीके वेशमें रहनेवाला, ग्राम्य-याजक (ग्रामके देवताओंकी शान्तिके लिये अनुष्ठान करनेवाला), निर्दयी राजा, धोबी, कुतूब, कसबाई, चुगलखोर, झूठ बोलनेवाला, सोम-विक्रेता, बन्दी तथा स्वयंका—इनका अन्न कदापि नहीं खाना चाहिये। बाल तथा कुमि (कौड़े) आदिसे युक्त भोजन एवं मांस नहीं खाना चाहिये।

बासी, उच्छिष्ट, शुक्त (पका हुआ वह अन्न जो अधिक काल बीतनेके कारण विकृत हो गया है), कुतेद्वारा स्पर्श, पतितद्वारा देखा हुआ, रजस्वलासे स्पर्श, संस्पृष्ट तथा पर्यायाग्न-भोजन त्याग्य है। गायसे सूँघा गया, पक्षियोंके द्वारा उच्छिष्ट और जानकर पैरसे छुआ गया अन्न भी त्यागने योग्य होता है। यद्यपि शूद्रका अन्न नहीं लेना चाहिये, तथापि जो शूद्र परम्परासे ही अपने यहाँ सेवक है, गोपालन करनेवाला है,

कुल-परम्परासे ही जो मित्रके समान व्यवहार करनेवाला है, परम्परासे अपने यहाँ हलवाहेका काम करनेवाला है, कुल-परम्परासे जो निर्धारित नाई है—इनके अतिरिक्त वह शूद्र जिसने मन, याणी, शरीर एवं कर्मसे सर्वथा अपनेको समर्पित कर रखा है—ऐसे शूद्रोंका अन्न स्वीकार किया जा सकता है। घी आदि क्षिण्व पदार्थोंसे युक्त अन्न यदि बासी है या बहुत कालसे रखा हुआ है तो भी ग्रहण करने योग्य होता है। किंतु घृत या तेल आदिसे संमिश्रित न होनेपर भी गेहूँ, जौ और गोरससे तैयार किये गये पदार्थ यदि बहुत देरतक रखे गये हैं, तब भी ग्रहण किये जा सकते हैं; यदि विकृत न हुए हों।

देव और अतिथिको बिना समर्पित किया हुआ तिल-तण्डुलमिश्रित पदार्थ, यवागू, खीर, पुआ तथा पुड़ीका भोजन अर्घ्य हो जाता है।

परसाण्ड (प्याज) और लहसुन आदि उग्र पदार्थोंका सेवन करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। जो पुरुष पशु-हत्या करता है, वह पशुके रोम-परिमित कालतक घोर यातनाओंको सहन करते हुए नरकमें बस करता है। अभोग्य पदार्थोंका परित्याग करके अपनी सद्गतिकी भावनासे प्रभुसे क्षमा-याचना और प्रार्थना करता हुआ व्यक्ति भगवान्की प्राप्त करता है। (अध्याय ९६)

## द्रव्यशुद्धि

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे श्रेष्ठ मुनिजनों! अब मैं द्रव्य-शुद्धिका वर्णन कर रहा हूँ। आप सब उसका ज्ञान प्राप्त करें। सोने, चाँदी, अबज (मुक्ताफल, शंख, शुक्ति आदि), शाक, रस्सी तथा बकरे आदिके चमड़ेसे बनाये गये पात्र, होतू, चमस आदि यदि किसी चिकने पदार्थके लेपसे रहित हैं और उच्छिष्ट हाथ आदिसे ही केवल स्पर्श हैं तो इनकी शुद्धि जलसे प्रक्षालनमात्र करनेपर हो जाती है। यज्ञमें प्रयुक्त रुक् एवं सुवाकी शुद्धि उष्ण जलसे तथा धान्यादिका शुद्धीकरण जलके प्रोक्षणसे होता है।

काष्ठ और सींग आदिसे विनिर्मित पात्रादिकी शुद्धि छिलनेसे होती है। मार्जन करनेसे यज्ञका पात्र पवित्र हो जाता है। उष्ण जल और उष्ण गोमूत्रसे धोनेपर ऊनी और रेशमी वस्त्र शुद्ध हो जाते हैं। ब्रह्मचारीके हाथमें विद्यमान भिक्षा-प्राप्त अन्न, बाजारमें विक्रयके लिये रखा अन्न तथा स्वोका मुख पवित्र होता है। मिट्टीका पात्र अग्निमें पुनः पकानेपर शुद्ध होता है, यदि चाण्डाल आदिसे स्पर्श नहीं है। गौके द्वारा सूँघे जानेपर और केश, पक्षिका एवं कौटादिसे दूषित होनेपर अन्नकी शुद्धि यथायोग्य जल, भस्म

१-संस्पृष्ट—'भोजन चचा हुआ है, जो भोजन करना चाहें वह आकर ले लें'। इस प्रकारकी घोषणा करके जो भोजन दिया जाता है, वह 'संस्पृष्ट' कहा जाता है।

२-पर्यायाग्न—किसी दूसरेके उद्वेगसे रखा भोजन यदि बिना उसकी स्वीकृतिसे दूसरेको दिया जाय तो ऐसे अन्नको 'पर्यायाग्न' कहा जाता है।

तथा मिट्टी डालनेसे हो जाती है। भूमिका पवित्रोत्तरण मार्जनादि करनेपर होता है। राँगा, सीसा तथा ताम्रपात्रोंकी शुद्धि क्षार और अम्लमिश्रित जलसे होती है। कांस्य और लौहपात्रोंकी शुद्धि भस्म तथा जलसे मार्जन करनेपर होती है। अज्ञात वस्तुएँ तो सदैव पवित्र ही रहती हैं।

अमेध्य (शरीरसे निकलनेवाले मल, वसा, शुक्र और श्लेष्मा आदि) से लिप्त पात्रोंकी शुद्धि मिट्टी और जलके द्वारा परिमार्जित कर उसमें व्याप्त गन्ध एवं लेपको दूर करनेसे होती है। प्रकृतिद्वारा भूमिमें एकत्र जल, जो गौको संतुष्ट करनेमें पर्याप्त हो, सदैव शुद्ध होता है।

सूर्य-रश्मि, अग्नि, धूलि, वृक्ष-छाया, गौ, अश्व, पृथ्वी, वायु तथा ओसकी बूँदें पवित्र ही होती हैं।

मनुष्यको स्नान करनेके बाद, जल पीनेके बाद, छींक आनेके बाद, शयनोपरान्त, भोजन करनेपर, मार्गमें चलनेपर तथा वस्त्र बदलनेपर पुनः आचमन करना चाहिये।

जम्हाई लेनेपर, निद्रोवन (धूकनेपर), शयन करनेपर, वस्त्र-धारण करनेपर और अशुपात होनेपर—इन पाँच अवस्थाओंमें आचमन नहीं करे, अपितु दक्षिण कानका स्पर्श कर ले। ब्राह्मणके दक्षिण कानपर अग्नि आदि देवता सदैव विराजमान रहते हैं। (अध्याय ९७)

## दान-धर्मकी महिमा

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा—हे श्रद्धिपो! अब मैं दान-धर्मकी महिमाका वर्णन करता हूँ, उसे सुनें।

अन्य वर्णोंकी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी जो सत्किरायावान् (कर्मविह) ब्राह्मण हैं वे श्रेष्ठ हैं। उन कर्मनिष्ठोंमें भी विद्या तथा तपस्यासे युक्त ब्रह्म-तत्त्ववेत्ता श्रेष्ठ तथा सत्पात्र हैं। गृहस्थके द्वारा गौ, भूमि, धान्य तथा सुवर्ण आदिका दान सत्पात्रको उसका पूजन करके दिया जाना चाहिये।

विद्या एवं तपस्यासे हीन ब्राह्मणको प्रतिग्रह (दान) स्वीकार नहीं करना चाहिये। इस प्रकार दान लेनेपर वह प्रदाता और स्वयंकी अधोगामी बना देता है। प्रतिदिन उपयुक्त पात्रको दान देना चाहिये। निमित्त (सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि विशेष अवसर) उपस्थित होनेपर विशेष रूपसे अधिक दान देना चाहिये। किसीके याचना करनेपर भी यथाशक्ति अपनी ब्रद्धाके अनुसार दान देना चाहिये। सुवर्णसे अलंकृत सींगोंवाली, चौड़ीसे मढ़े हुए खुरोंवाली, सुन्दर वस्त्राच्छादित, अधिक दूध देनेवाली, सुशील गौका यथाशक्ति दक्षिणाके साथ दान करना चाहिये और दान देते समय साधर्म्य कांस्यपात्र भी देना चाहिये।

सींगमें दस सौवर्णिक (एक सौ साठ मास) सोना तथा खुरमें सात पल चौड़ी लगाना चाहिये एवं दोहन-पात्र पचास पल काँसेका होना चाहिये।

गौका बछड़ा भी अलंकृत होना चाहिये। गौ रोगरहित तथा सवत्सा होनी चाहिये। यदि बछड़ा न हो तो स्वर्ण या

पिप्पलफलाका बाछा या बाछी बनाकर देना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रदाता बछड़ेके शरीरमें स्थित रोम-संख्याके अनुसार उतने ही वर्षपर्यन्त स्वर्गका उपभोग करता है। यदि गौ कपिला (भूरे रंगकी) होती है तो वह दाताके सात कुलोंका उद्धार कर देती है।

जबतक प्रसव कर रही गौकी योनिमें बछड़ेके दोनों पैरोंसहित मुख दिखायी देता है और जबतक वह गर्भका प्रसव नहीं कर देती है, जबतक गौकी पृथ्वीके समान ही मानना चाहिये।

सामर्थ्यके अभावमें स्वर्णमय सींग आदिसे युक्त गौका दान यदि न किया जा सके तो भी रोगरहित, हृष्ट-पुष्ट, दूध देनेवाली धेनु अथवा दूध न देनेवाली गर्भिणी गौका जो दान करता है, वह स्वर्गलोकमें महिमापण्डित होकर निवास करता है।

धके हुए प्राणीकी आसनादिक दानके द्वारा शकान दूर करना, रोगोंकी सेवा करना, देवपूजन करना, ब्राह्मणका पाद-प्रक्षालन करना तथा ब्राह्मणद्वारा उच्छिष्ट किये गये स्थान और पात्रका मार्जन-कृत्य विधिवत् दिये गये गोदायके समान फलदायक होता है। ब्राह्मणके लिये जो अभीष्ट हो, उसे वह वस्तु प्रदानकर प्रदाताको स्वर्ग-लाभ लेना चाहिये।

भूमि, दीप, अन्न, वस्त्र और घृतके दानसे प्रदत्ता लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है। घर, धान्य, छाता, मांसा, उपयोगी वृक्ष,

यान (सवारी), घृत, जल, शय्या, कुंकुम, चन्दन आदि प्रदान करनेसे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

सत्पात्रको विद्या प्रदान करनेवाला देवदुर्लभ ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। मूल्य लेकर भी वेदोंके अर्थ, यज्ञोंकी विभिन्न विधियोंको सम्पादित करनेवाले तथा शास्त्र और धर्म-शास्त्रोंको लिखनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। वेद-शास्त्र ही संसारके मूल (व्यवस्थापक) हैं। इसी कारण ईश्वरने सबसे पहले इन्हेंकी सृष्टि की। अतः सब प्रकारका सत्पात्र करके वेदोंका अर्थ-संग्रह करना चाहिये अर्थात् वेदोंके तात्पर्यको समझनेके लिये भलीभाँति प्रयास करना चाहिये। जो अधिकारी इतिहास अथवा पुराण लिखकर दान देता है, वह ब्रह्मदानके समान प्राप्त पुण्यका द्विगुणित पुण्य प्राप्त करता है।

द्विजको नास्तिकोंके वचन, कुतर्क तथा प्राकृत और प्लेच्छ-भाषा-भाषित वचन नहीं सुनने चाहिये, क्योंकि ये

शब्द द्विजको अधोगतिमें ले जाते हैं।

दान ग्रहण करनेका सामर्थ्य रहनेपर भी जो लोग दान ग्रहण नहीं करते, वे लोग उन्हीं लोकोंको प्राप्त करते हैं, जो दान-दाताको प्राप्त होते हैं।

कुस, शाक, दूध, गन्ध तथा जल—ये वस्तुएँ बिना माँगे यदि कुलटा, पतित, नपुंसक एवं शत्रुके अतिरिक्त किसी दुष्कृतीके द्वारा भी दी जा रही हैं तो भी इनका प्रत्याख्यान नहीं करना चाहिये। यदि कोई सुकृती इन्हें बिना पाचनके दे रहा है, तब तो इनके प्रत्याख्यानका कोई प्रसंग ही नहीं है। देवता तथा अतिथिकी पूजा करनेके लिये, अपने माता-पिता आदिके भरण-पोषणके लिये तथा अपने जीवनकी रक्षाके लिये पतित आदि अत्यन्त कुत्सितको छोड़कर अन्य सभीसे जितना अत्यावश्यक है, उतना प्रतिग्रह लिया जा सकता है। (अध्याय १८)

## श्राद्धके अवसर तथा अधिकारी; श्राद्धकी संक्षिप्त विधि, महिमा और फल

याज्ञवल्क्यजीने कहा—ऋषिगणो! अब मैं सर्वपाप-विनाशिनी श्राद्ध-विधिका वर्णन करता हूँ।

अमावास्या, अर्हका, वृद्धि (पुत्रजन्म आदि), कृष्णपक्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, द्रव्य (अन्नदि)—साध होना, श्राद्ध-योग्य ब्राह्मणकी प्राप्ति होना, विपुल-संक्रान्ति ( सूर्यके तुला और मेषराशिपर संक्रमण करनेका समय), मकर-संक्रान्ति, व्यतीपात, गजच्छया-योग, चन्द्र-सूर्यग्रहण तथा कर्ताकी श्राद्धके प्रति अभिरुचि होना—ये सब श्राद्धके काल (अवसर) कहे गये हैं।

जो ब्राह्मण युवा (मध्यम वयस्क) होते हुए सभी वेदोंमें अग्रघ (सतत अस्खलित अध्ययनमें समर्थ), श्रोत्रिय, ब्रह्मवित्, मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदके तात्पर्यके वेत्ता, ज्येष्ठ साम नामक साम-विशेषके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ ज्येष्ठ सामके अध्येता, त्रिमधु नामके

ऋग्वेदके एकदेशके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ त्रिमधुके अध्येता तथा ऋक् और यजुके एकदेश त्रिसुपर्णके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ त्रिसुपर्णके अध्येता ब्राह्मण हैं, ये श्राद्धकी सम्पत्ति माने जाते हैं, अर्थात् इन्हें भोजन कराने या दान देनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। ऐसे ही भानज, श्राद्ध-योग्य ब्राह्मणोंके सङ्घनोंसे विहित ऋत्विक्, यजुर्वेदके एकदेश-विशेषके अध्ययनके अङ्ग व्रतके आचरणके साथ उस एकदेशके अध्येता, दौहित्र, शिष्य तथा अन्य सम्बन्धी—बन्धु-बान्धव एवं कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ पैशाचि-विद्याके अध्येता, ब्रह्मचारी, मातृ-पितृभक्त एवं ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति (श्राद्धमें भोजनीय एवं दान देने योग्य) हैं।

जो रोगी (महारोगसे युक्त), अङ्गहीन, अधिकाङ्ग, काण, पौनर्भव (विधवाके पुनर्विवाहके अनन्तर उत्पन्न पुत्र),

१-हेमन्त-ऋतु एवं शिशिर-ऋतुके महीनोंमें आनेवाली कृष्णपक्षकी अर्द्धीमें 'अर्हका' होती है।

२-पैशाचि-सम्बन्ध, आषाढमास, आश्वनीपक्ष, गार्हपत्य और दक्षिणायन—ये चार अग्निर्वा हैं।

३-पौनर्भव—पुनर्भूसे उत्पन्न। पुनर्भू उस स्त्रीको कहते हैं, जो विवाहके पहले किसी दूसरे पुरुषसे विवाहित हो चुकी है अथवा किसी दूसरे पुरुषके संसर्गसे दूषित हो चुकी है।

अवकीर्णी आदि<sup>१</sup> आचारभूत तथा अवैष्णव हैं, वे श्राद्धके योग्य नहीं हैं।

श्राद्धके एक दिन पूर्व ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। निमन्त्रित ब्राह्मणोंको उस दिन संयम रखना चाहिये। श्राद्ध-दिवसके पूर्वाह्नकालमें उपस्थित उन ब्राह्मणोंको आचमन कराकर आसनपर बैठा दे। विश्वेदेव अथवा आभ्युदयिक श्राद्धके लिये दो ब्राह्मण तथा पितृपात्रके स्थानपर यथाशक्ति ब्राह्मणको बैठाना चाहिये अथवा इनमें दो ब्राह्मणोंको विश्वेदेवपात्रके आसनपर पूर्वाभिमुख तथा तीन ब्राह्मणोंको पितृपात्रके आसनपर उत्तराभिमुख अथवा दोनों (देव-पितर)-के लिये एक-एक ब्राह्मण आसनपर बैठाना चाहिये। इसी प्रकार मातृमहादिके श्राद्धमें व्यवस्था करनी चाहिये और मातृमह-श्राद्धमें विश्वेदेव-सम्बन्धी कुत्त अलग-अलग या एक साथ किय जा सकता है।

इसके बाद ब्राह्मणोंकी हस्त-प्रक्षालनके लिये जल (हस्तार्घ्य) और आसनके लिये कुश प्रदानकर उन्हींकी अनुज्ञासे 'विश्वे देवांस०' इस मन्त्रसे विश्वेदेवका आवाहन करके भोजन-पात्रमें यव विकीर्ण करे। तदनन्तर पश्चिममुख अर्घ्यपात्रमें 'शं नो देवी०' इस मन्त्रसे उसमें जल तथा 'यवोऽसि०' मन्त्रद्वारा यव डालकर 'वा दिव्या०' मन्त्रसे ब्राह्मणके हाथमें अर्घ्यौदक प्रदानकर गन्ध, दीपक, माला, हार आदि आभूषण तथा वस्त्र दान करे।

तत्परचात् अपसव्य होकर पितरोंको अप्रदक्षिण (वाम)-क्रमसे स्थान (कुशरूपी आसन) प्रदान करे और (आसनके लिये मोटक रूप) द्विगुणित कुश देकर 'वसानम्बा०' मन्त्रसे उन पितरोंका आवाहन करे। उसके बाद पितृ-स्थानपर विराजमान ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर 'आयन्तु नः पितरः०' इस मन्त्रका जप करे।

पितृकार्यमें यवके स्थानपर तिलोंका प्रयोग करना चाहिये और तिलके साथ उन पितृगणोंको पूर्ववत् अर्घ्यौदिक प्रदान करे। उन अर्घ्यों (अर्घ्यपात्रों)-के संस्कार (ब्राह्मणके हाथमें दिये गये अर्घ्यौदकका नीचे गिरा हुआ जल)-को पितृपात्रमें रखकर और दक्षिणाग्र कुशस्तम्भको भूमिपर रखकर उसके ऊपर 'पितृभ्यः स्थानमसि०' इस मन्त्रके द्वारा

उक्त अर्घ्यपात्र (पितरोंके वामभागमें) भूमिपर उलटकर रख दे। उसके बाद घृत-संमिश्रित अन्नको अग्निमें प्रदान करनेके लिये आचार्यसे श्राद्धकर्ता अग्नौकरणकी आज्ञा प्राप्त करे। जब आचार्य 'ऐसा ही करो' यह कह दें तो उन्हें पितृयज्ञके समान ही उस अग्निमें युक्त घृताक्त हव्यका हवन करके आहुति करनेसे शेष बचे हुए अन्नको समाहित मनसे पितरोंके भोजन-पात्रोंमें रख दे। पितरोंके भोजन-पात्रोंके रूपमें यथाशक्ति चाँदीके पात्रोंका प्रयोग करना चाहिये।

'पृथिवी ते पात्रं०' मन्त्रसे पात्रको अभिमन्त्रित करे। 'इदं विष्णुः' मन्त्रका पाठ करे और ब्राह्मणके अंगुष्ठको पितरोंके लिये परिवेशित अन्नमें प्रवेशित करे। व्याहृतियोंके सहित 'गायत्री' एवं 'मधुवाता०' मन्त्रका जप करके सुखपूर्वक भोजन करे, इस प्रकार ब्राह्मणोंसे निवेदन करे और ब्राह्मण मौन होकर भोजन करे। श्राद्धकर्ता क्रोधदिसे रहित होकर बड़े ही तट्ठा-भावसे उन ब्राह्मणोंको बिना शीघ्रता किये उनका अभीष्ट अन्न तथा हविष्यान्न उन्हें प्रदान करे और ब्राह्मणोंकी वृत्तितक 'पुरुषसूक्त' तथा 'पवमानसूक्त' आदिका जप करावा रहे। उसके बाद पुनः पहलेके समान 'मधुवाता०' मन्त्रका पाठ करे और शेषपात्रको लेकर उन संतुष्ट ब्राह्मणोंके द्वारा 'हम वृत्त हो गये', इस प्रकार कहनेपर उन ब्राह्मणोंकी अनुज्ञासे श्राद्धकर्ता दक्षिणाभिमुख होकर तिलसहित उस शेषपात्रको ब्राह्मणोंके उच्छिष्ट पात्रोंके समीपमें ही भूमिपर जलके साथ रख दे और प्रत्येक ब्राह्मणकी मुख-प्रक्षालनके लिये अलग-अलग जल प्रदान करे।

उच्छिष्टके समीपमें पितर आदिके लिये पिण्डदान करके उसी प्रकार पातामहादिके लिये भी पिण्डदान करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको आचमन कराये। तदनन्तर ब्राह्मणोंके 'स्वस्ति' ऐसा कहनेपर श्राद्धकर्ता 'अक्षयमस्तु' कहकर ब्राह्मणोंके हाथमें जल प्रदानकर यथास्तामर्घ्य दक्षिणा दे और 'स्वधा वाचयिष्ये' ऐसा कहे। 'वाच्यताम्' के द्वारा ब्राह्मण श्राद्धकर्ताको आज्ञा प्रदान करें। उनकी अनुज्ञा प्राप्तकर श्राद्धकर्ता पितृजनोंके लिये 'स्वधा' इस वाक्यका प्रयोग करे। पुनः उन ब्राह्मणोंके द्वारा 'स्वधा' ऐसा कह देनेके परचात् श्राद्धकर्ता पृथ्वीपर जलसिञ्चन करे।

१-अवकीर्णी—ब्राह्मण्यश्रममें रहते हुए जिसका चोरी स्थिति हो गया है।

२-आदिसे कुण्ड, गोलक, कुन्डो एवं काले रौतिलले ब्राह्मण समझे जाने चाहिये। पति जीवित रहते हुए दूसरे पुरुषसे उत्पन्न कुण्ड एवं पतिके निधनके बाद दूसरे पुरुषसे उत्पन्न गोलक होता है।



'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' यह कहकर श्राद्धकर्ता विश्वेदेवोंको जल अर्पितकर उन्हें विसर्जित करे। तदनन्तर पितरोंसे इस प्रकारकी प्रार्थना करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ॥

श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देयं च नोऽस्तिवति ।

(१९। २१-२३)

पितृगण! हमारे यहाँ दाताओं, वेदों और संतानोंकी वृद्धि हो, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, देनेके लिये हमारे पास बहुत सम्पत्ति हो। तदनन्तर 'वाजे वाजे' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए श्राद्धकर्ता प्रसन्नताके साथ यथाक्रम पितरोंका विसर्जन करे। जिस अर्घ्यपात्रमें पहले संस्कार-जल रखा गया था, उस पितृपात्र (अर्घ्यपात्र)-को सीधा कर दे तथा श्राद्धकर्ता उन अन्नान्वित ब्राह्मणोंका प्रदक्षिणाके साथ अनुगमन करते हुए उन्हें विदा करे। इसके पश्चात् श्राद्धसे अवशिष्ट अन्नका भोजन करके उस रात्रिमें सपत्नीक बह्वाचर्यव्रतका पालन करे।

विवाहादिक माङ्गलिक अवसरोंपर पितरोंका गान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये। उनके लिये दधि, कर्कन्धू (बदरी फल)-मिश्रित यवात्रका पिण्डदान करना चाहिये।

एकोद्दिष्ट<sup>१</sup> श्राद्ध विश्वेदेवसे रहित एकत्र और एक पवित्रकसे युक्त होता है। इस श्राद्धमें आवाहन और अर्पण नहीं किया जाता। इस श्राद्धका सम्पूर्ण कृत्य अपसम्ब अर्थात् दक्षिण कन्धेपर यज्ञोपवीत धारण करके करना चाहिये। श्राद्धकर्ता इस श्राद्धमें निमज्जित ब्राह्मणोंसे पवित्र भूमिपर रखे हुए आसनपर 'उपतिष्ठताम्' कहकर बैठनेके लिये निवेदन करे। उसी प्रकार 'अभिरम्यताम्' कहकर विसर्जन करे। ब्राह्मणोंको भी 'अभिरताः स्म' यह वचन कहना चाहिये।

सपिण्डीकरण श्राद्धमें श्राद्धकर्ता तिल एवं गन्धमिश्रित जलसे चार पात्रोंको परिपूर्ण करे। उन पितृपात्रोंमेंसे एक पात्रको अर्घ्य प्रदान करनेके लिये प्रेतपात्रके रूपमें कल्पित करे। तदनन्तर श्राद्धकर्ता प्रेतपात्रमें रखे हुए अर्घ्य-जलके

कुछ भागको पिता आदिके तीन पात्रोंमें मिलाकर पूर्ववत् अर्घ्यादि क्रियाका सम्पादन करे। 'ये समानाः' इन दो मन्त्रोंके द्वारा प्रेतपिण्डको तीन भागोंमें विभक्तकर पितरोंके पिण्डोंमें मिला दे। इसके अनन्तर विहित एकोद्दिष्ट श्राद्ध स्त्री (माता)-का भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरण एक वर्षसे पूर्व होता है, उसके उद्देश्यसे भी एक वर्षपर्यन्त सप्तेन्दक कुम्भ प्रतिदिन, प्रतिमाह यथाशक्ति ब्राह्मणको देना चाहिये। पितरोंको समर्पित पिण्डोंको गौ, अज, ब्राह्मण, अग्नि अथवा जलको अर्पित कर दे।

हविष्यान्न (तिल, व्रीहि, यव आदि)-से श्राद्ध करनेपर पितृगणोंको एक मास तथा पायससे श्राद्ध करनेपर उन्हें एक वर्षपर्यन्त संतुष्टि प्राप्त होती है।

मृत व्यक्तिके लिये कृष्ण चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेपर श्राद्धकर्ताको मृत्युके पश्चात् स्वर्ग तो प्राप्त होता ही है, जीवनकालमें भी उन (श्राद्धकर्ता)-को उत्साह, सौख्य, श्रेष्ठ तथा शक्तिकी प्राप्ति होती है।

जो विधिवत् अपने पितृजनोंके लिये श्राद्ध करता है, वह पुत्र, सर्वजनश्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रमुखता, माङ्गलिक दक्षता, अभीष्ट कामना-पूर्ति, वाञ्छित्यमें लाभ, निरोगता, यश, लोकराहित्य, परम गति, धन, विद्या, वाक्-सिद्धि, पात्र, गौ, अज, आधिक (पेंडू), अन्न और दीर्घायु प्राप्तकर अन्तकालमें मोक्ष-लाभ प्राप्त करता है। कृतिकादिसे भरीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाले व्यक्तिको भी इन सभी सुखोंकी प्राप्ति होती है। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा भवन आदि सुख-साधन स्वयं ही श्राद्धकर्ताको सुलभ होते हैं अर्थात् इस प्रकारका श्राद्धकर्ता भोजन, वस्त्र तथा भवन आदिसे परिपूर्ण रहता है।

पिता-पितामहादि पितर संतुष्ट होकर श्राद्धकर्ताको नित्य आयु, संतति, धन, विद्या, राज्य, सभी प्रकारके सुख, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करते हैं। (अध्याय १९)

## विनायकशान्ति-स्नान

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे ऋषियो! अब आप सभी विनायककी अप्रसन्नतासे ग्रस्त (आविष्ट) पुरुषके लक्षणोंका श्रवण करें।

विनायकसे ग्रस्त व्यक्ति स्वप्नावस्थामें बहुत अधिक श्रान करता है। उसे स्वप्नमें भरे हुए प्राणियोंके सिरोंका दर्शन होता है। वह उद्विग्नमन रहता है। उसके सारे प्रयत्न निष्फल

१-एक व्यक्ति (पिता)-के उद्देश्यसे किया जानेवाला श्राद्ध एकोद्दिष्ट है।

२-ये चार पात्र पितरोंके लिये अलग-अलग विहित हैं। इनके अतिरिक्त विश्वेदेवके दो पात्र तो होते ही हैं।

३-इस एकोद्दिष्टका तात्पर्य यह है कि पार्वण श्राद्धमें माताका श्राद्ध अलगसे करना चाहिये ( या० मिताक्षरा, आ० प्र० अ० श्लोक २५४ )।

\*\*\*\*\*

रहते हैं। बिना कारण उसे पीड़ा होती है। विनायककी अप्रसन्नतासे युक्त होनेपर राजा राज्यसे वञ्चित रहता है, कुमारी पतिसे वञ्चित रहती है तथा गर्भिणी स्त्री पुत्र-लाभसे वञ्चित रहती है। अतएव विनायककी शान्तिके लिये किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहूर्तमें उसे विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। स्नानकी विधि संक्षेपमें इस प्रकार है—भद्रासनपर बिठाकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचनपूर्वक स्नान कराना चाहिये। पीली सरसों पीसकर उसे धृत-मिश्रित करके उबटन बनाये और उस व्यक्तिके सम्पूर्ण शरीरमें मले। फिर उसके मस्तकपर सर्वापधिसहित सब प्रकारके सुगन्धित द्रव्यका लेप करें। सर्वापधियुक्त चार कलशोंके जलसे स्नान कराना चाहिये। सरोवर आदि पाँच स्थानोंकी मिट्टी, गोरोचन, गन्ध और गुग्गुलु—ये चरतुर्द भी उन कलशोंके जलमें छोड़ें।

प्रथम कलशको लेकर आचार्य निम्नलिखित मन्त्रसे उसे स्नान कराये—

महस्वाहा शतधारापुधिभिः पावनं स्मृतम्॥

तेन त्वापधिविद्धायि पावमान्यः पुनन्तु ते।

(१००।६-७)

जो सहस्रों नेत्र (अनेक प्रकारकी शक्तियों)—से युक्त हैं, जिनकी सैकड़ों धाराएँ (प्रवाह) हैं और जिसे महर्षियोंने पवित्र करनेवाला बताया है, उस पवित्र जलसे मैं (विनायकप्रस्त) तुम्हारा (उपद्रवकी शान्तिके लिये) अभिवेक करता हूँ। यह पावन जल तुम्हें पवित्र करे।

द्वितीय कलशके जलसे निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए अभिवेक करे—

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः॥

भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सार्वभौ ददुः।

(१००।७-८)

राजा वरुण तथा भगवान् सूर्य एवं देवगुरु बृहस्पति आपके सौभाग्यकी अभिवृद्धि करें, इसी प्रकार देवराज इन्द्र, वायुदेव तथा सप्तर्षिगण भी आपके सौभाग्यकी अभिवृद्धि करते रहें।

तृतीय कलशके जलसे निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए अभिवेक करे—

यत्ने केशेषु दीर्घायं सीमने यच्च मूर्धनि॥

ललाटे कर्णयोश्चोरायस्तद्वन्तु ते सदा।

(१००।८-९)

तुम्हारे केशोंमें, सीमनमें, मस्तकपर, ललाटमें, कानोंमें और नेत्रोंमें भी जो दुर्भाग्य है, उसे जलदेवता सदाके लिये शान्त करें।

तदनन्तर पहले कहे गये तीनों मन्त्रोंसे चतुर्थ कलशके जलसे स्नान कराये। इसके बाद बाँयें हाथमें कुशा लेकर स्नान किये हुए प्राणीके सिरको कुशासे स्पर्श करते हुए ब्राह्मणको संयमित होकर गूलरकी लकड़ीसे निर्मित सुवाके द्वारा सार्षपतैल (सरसोंका तेल)—से अग्निमें आहुति प्रदान करनी चाहिये। आहुति देनेके लिये ये मन्त्र विहित हैं—  
'मिताय स्वाहा', 'सम्मिताय स्वाहा', 'शालाय स्वाहा', 'कटङ्कटाय स्वाहा', 'कुष्माण्डाय स्वाहा', 'राजपुत्राय स्वाहा' ('स्वाहा' के पूर्व प्रयुक्त सभी नाम विनायकके हैं। या० मि० ग० प्र० अ० श्लोक २८५)।

इसके अनन्तर लौकिक अग्निमें स्थालीपाक-विधिसे बर पकाकर उससे सभी निर्दिष्ट विनायक नामवाले 'स्वाहा' युक्त छः मन्त्रोंसे उसी लौकिक अग्निमें ही हवनकर अवशिष्ट हविकोंके द्वारा इन्द्र, अग्नि, यम आदिको बलि देनी चाहिये। तत्पश्चात् किसी चतुष्पथ (चौराहे)—पर कुशोंका आसन बिछाकर उसमें पुष्प, गन्ध, उष्णदेरककी माला, कच्चे-पक्के चावल, घृतमिश्रित पुलाव, मूली, पृथ्वी, पुआ, दाही, पायस, घृत, मुहपिष्ट, लड्डू तथा इन्धु—इन सभी सामग्रियोंको एकत्र करके रख दें। तदनन्तर विनायकजननी भगवती अम्बिकामय उपस्थान करें और हाथ जोड़कर अर्घ्य प्रदान करें।

पुत्रजन्मकी कामना करनेवाली स्त्रीको दूर्वा और सरसोंके पुष्पोंसे भगवती दुर्गाकी अर्चना करके स्वस्ति-वाचनके साथ इस प्रकार उनकी प्रार्थना करनी चाहिये—

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।

पुत्रादेहि भिर्यं देहि सर्वाङ्काधारश्च देहि मे॥

(१००।१६)

हे भगवति! आप मुझे रूप, यश और ऐश्वर्य प्रदान करें। हे देवि! आप मेरे लिये पुत्र दें, लक्ष्मी दें और मेरी सभी कामनाओंको परिपूर्ण करें।

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन प्रदानकर संबुष्ट करें। अपने गुरुको दो वस्त्र प्रदानकर अन्य ग्रहोंकी पूजा करके सूर्यार्चनमें निरत रहे। इस प्रकार विनायक और ग्रहोंका पूजन करके मनुष्य अपने सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है। (अध्याय १००)

### ग्रहशान्ति-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे मुनियो! लक्ष्मी एवं सुख-शान्तिके इच्छुक तथा ग्रहोंकी दृष्टिसे दुःखित जनोंको ग्रहशान्तिके लिये तत्सम्बन्धित यज्ञ करना चाहिये। विद्वानोंके द्वारा सूर्य, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये नौ ग्रह ब्रह्मण्ड में हैं। इनको अर्वाकिके लिये इनकी मूर्ति क्रमशः इन द्रव्योंसे बनानी चाहिये—ताम्र, स्फटिक, रक्तचन्दन, स्वर्ण, सुवर्ण, रजत, अयस् (लोहा), सीसा तथा कांस्य। अर्थात् सूर्यग्रहके लिये ताम्र भात, चन्द्रके लिये स्फटिक, मंगलके लिये रक्तचन्दन, बुध एवं बृहस्पतिके लिये स्वर्ण, शुक्रके लिये रजत, शनिके लिये लोहा, राहुके लिये सीसा तथा केतुके लिये कांस्य भात प्रशस्त है।

सूर्यका वर्ण लाल, चन्द्रमाका सफेद, मंगलका लाल, बुध तथा बृहस्पतिका पीला, शुक्रका श्वेत, शनि, राहु और केतुका काला वर्ण होता है। इसी वर्णके इनके द्रव्य भी होते हैं। एक घाटेपर वस्त्र बिछाकर ग्रहवर्णोंके अनुसार निर्दिष्ट द्रव्योंके द्वारा विधिपूर्वक उनकी स्थापना तथा पूजा-होम करे। उन्हें सुवर्ण, वस्त्र तथा पुष्प समर्पित करे। उनके लिये गन्ध, बलि, धूप, गुग्गुलु भी देना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रोंके द्वारा प्रत्येक ग्रह-देवताके निमित्त यह पदार्थ अर्पित करना चाहिये।

उसके बाद यथाक्रम 'ॐ आकृष्णो न रजसा०' इस मन्त्रके द्वारा सूर्य, 'ॐ इमं देवा०' मन्त्रसे चन्द्र, 'ॐ

अग्निर्गुणोदिवः ककुत्०' मन्त्रके द्वारा मंगल, 'ॐ उदबुध्यस्व०' मन्त्रसे बुध, 'ॐ बृहस्पते०' इस मन्त्रके द्वारा बृहस्पति, 'ॐ अश्वत्थिर्युतम्०' मन्त्रसे शुक्र, 'ॐ शं नो देवी०' मन्त्रके द्वारा शनि, 'ॐ कषावश्चि०' मन्त्रसे राहु तथा 'ॐ केतुं कुण्वन्०' मन्त्रके द्वारा केतु ग्रहके लिये आहुति देनी चाहिये।

इन ग्रहोंके लिये इसी क्रमसे मन्दार, पलाश, खैर, अपामार्ग (चिचड़ा), पिप्पल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशकी समिधार्थ विहित हैं। इन समिधाओंको भूत, दधि तथा मधुसे मिश्रितकर हवन करना चाहिये। तदनन्तर क्रमानुसार उपर्युक्त मन्त्रोंके द्वारा पदार्थोंकी आहुति प्रदान करे। यथा—सूर्यके लिये गुड़, चन्द्रके लिये भात, मंगलके लिये घण्ट, बुधके लिये साठी चावलकी खीर, बृहस्पतिके लिये दही-भात, शुक्रके लिये घृत, शनिके लिये अपूप (पुआ), राहुके लिये फलका गूदा और केतुके लिये अनेक वर्णके पकाये हुए धान्यकी आहुति देनी चाहिये।

द्विजको चाहिये कि इसी क्रमसे प्रत्येक ग्रहके लिये अन्न भी दानरूपमें दे। तदनन्तर प्रत्येक ग्रहके निमित्त यथाक्रम—धेनु, संख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, कृष्ण गौ, अयस् (शस्त्र आदि) तथा छागकी दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार ग्रहोंकी सदैव पूजा करनेसे मनुष्यको राग्यादि फल प्राप्त होते हैं। (अध्याय १०१)

### वानप्रस्थ-धर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे महर्षियो! अब मैं वानप्रस्थधर्मके धर्मका वर्णन कर रहा हूँ, आप सभी इसका श्रवण करें।

वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट पुरुषको अपनी पत्नीके संरक्षणका भार पुत्रोंके ऊपर छोड़कर अथवा पत्नीके सहित वनमें जाना चाहिये।

वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाला ब्रह्मचर्य-व्रतका निर्वाह करते हुए अपनी श्रौत-अग्नि एवं गृह-अग्निके साथ वनमें जाय। शान्त एवं क्षमावान् रहकर वह अहर्निश देवोपासनामें निमग्न रहे। वह बिना जोती हुई भूमिसे उत्पन्न अन्नके द्वारा अग्निदेव, पितरों, देवताओं, अतिथियों तथा

भूतोंको तृप्त (संतुष्ट) करे। आत्मज्ञानमें तत्पर रहनेवाला वह वानप्रस्थी दाढ़ी, जटा तथा लोमशशिको धारण करे, इन्द्रियोंका दमन करे, त्रिकाल स्नान करे एवं अपनेको प्रतिग्रह अर्थात् दान-ग्रहणसे दूर रखे।

ऐसे व्यक्तिको स्वाध्यायवान्, भगवद्भ्यानपरायण तथा सभी लोगोके हितसाधनमें लगे रहना चाहिये। उसको जीवनयापनके लिये सीमित अर्ध-संग्रह करना चाहिये।

उसके पास जो कुछ शेष सामग्री हो, उसका आश्विन-मासमें परित्यागकर वह व्रतादिके द्वारा ही समय व्यतीत करे। यदि शक्ति हो तो एक मास या एक पक्षका व्रतकर

मास या पक्षके अन्तमें ही भोजन करे। ऐसे ब्रतों अपने दाँतोंको ही उलूखल मानकर उन्हींसे अन्नको तुफसे विहीनकर अपनी प्राण-रक्षाके लिये उपयोगमें लाते हैं।

वानप्रस्थीको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये, भूमिपर सोना चाहिये और वह अपने सभी धार्मिक कृत्योंका सम्पादन यथासम्भव फलसे करे (अन्नसे नहीं)। वह ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्रिके<sup>१</sup> मध्य स्थित रहे, वर्षा-ऋतुमें स्वर्णिङल (खुले

चबूतरे)-पर शयन करे तथा हेमन्त-ऋतुमें आर्द्रवस्त्रोंको धारण करके योगाभ्यासके द्वारा अपने दिन व्यतीत करे।

जो कहींसे उसे पीड़ा पहुँचाये उसके प्रति भी क्रोध न करे और जो अङ्गोंमें चन्दनका अनुलेपन करे उसपर भी प्रसन्न न हो, उन दोनोंके प्रति वह समान भाव रखे। वानप्रस्थियोंमें दुःख और सुख भोगनेकी एक समान ही क्षमता होनी आवश्यक है। (अध्याय १०२)

## संन्यास-धर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा—हे सज्जनपुत्र! अब मैं भिक्षु-धर्म (संन्यास-धर्म)-का वर्णन करूँगा। आप सब उसका ज्ञान प्राप्त करें।

गृहस्थाश्रम एवं वानप्रस्थाश्रममें विहित सभी व्रत इष्टियोंको सम्पन्नकर सर्व वेद सम्बन्धी दक्षिणा जिस इष्टिमें विहित है, उस प्राजापत्य इष्टिको भी सम्पन्न करके अन्तमें वेद-विहित विधानसे समस्त व्रीताग्रियोंको अपनेमें आरोपित करके संन्यास ग्रहण किया जा सकता है। संन्यासीको चाहिये कि वह सभी प्राणियोंका ठिठैपी हो, शान्त हो, त्रिदण्डी हो, (संन्यासीके लिये बौसके बने तीन दण्ड धारण करनेका विधान है।) वह कमण्डलु धारण करे।

सभी प्रकारके सुख-साधनयुक्त भवनोंका परित्यागकर भिक्षार्थी होकर ग्रामका आश्रय ग्रहण करे। प्रमादरहित होकर भिक्षाटन करे और सायंकाल ग्राममें न दिखलायी पड़े। जो ग्राम भिक्षुकोसे<sup>२</sup> रहित हो, वहाँपर वह लोभशून्य होकर प्राणधारणमात्रके लिये भिक्षा माँगे।

यम-नियमका पालन करते हुए योग-सिद्ध होकर संन्यासको एकदण्डी<sup>३</sup> अथवा परमहंस<sup>४</sup> बनना चाहिये। इस प्रकार रहता हुआ संन्यासी शरीरका परित्यागकर इसी लौक्यमें अमरत्व प्राप्त कर लेता है। दान देनेवाला, अतिथिगत आदर करनेवाला, ब्रह्मज्ञ यथाविधि आदर करनेवाला गृहस्थ भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १०३)

## कर्मविपाक-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—पापकर्मसे उत्पन्न होनेवाली नारकीय यातनाओंको भोगनेसे उस पापकर्मका क्षय होता है। शेष बचे हुए पापोंका शमन करनेके निमित्त प्राणी पुनः विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। यथा—

ब्रह्महत्या नरकभोगके पश्चात् श्वान, गर्दभ और ऊँट-योनियोंमें उत्पन्न होता है। भद्रिगपापी व्यक्ति भेड़क और कुआँ होता है। सुवर्णका चोर कुम्भ-कीट तथा गुरुत्वग्नामी घास-फूसीकी योनिमें जन्म लेता है। इन योनियोंमें पाप-शमन होनेके पश्चात् वे ब्रह्महत्यादिके पापी पुनः यथाक्रम

ध्वरोगी, काले दाँतवाले, कुत्तियत नखवाले तथा शिपिविष्टक (कुहुरोगी) होकर जन्म ग्रहण करते हैं अथवा ये सभी दोष उक्त प्राणियोंकी संततिमें प्रकट होते हैं।

अन्नकी चोरी करनेवाला रोगी, वचन देकर उसका पालन न करनेवाला गूँगा, धान्यका अपहरणकर्ता अधिक अङ्गोंवाला, चुगलखोर दुर्गन्धसे युक्त नाकवाला, तेलका चोर तैसपापी अर्थात् तिलचट्टा कीट, अविद्यमान दोषकी सूचना देनेवाला दुर्गन्धयुक्त मुखवाला होता है।

ब्राह्मणके धनका हरण करनेवाला तथा कन्याको

१-चार दिशाओंमें चार अग्नि और ऊपर सूर्य।

२-ज्येष्ठमासकी दृष्टिसे अनेक प्रकारके पापपङ्क्तके साथ भिक्षा माँगनेवाले यहाँ 'भिक्षुक' शब्दसे अभिप्रेत हैं।

३-बौसके बने हुए तीन दण्डोंके विकल्पमें बौसके एक दण्डके धारक भी विधान है। अतः संन्यासी बौसके एक दण्डको भी धारण कर सकता है। ऐसे संन्यासीको 'एकदण्डी' कहते हैं।

४-परमहंस उक्त अवधुतको कहते हैं, जो अपने शरीरकी सत्तासे सर्वथा विनिर्मुक्त हो। ये यथेच्छ स्वस्व-निर्वस्व आदि किसी भी रूपमें रह सकते हैं। इसके लिये कोई बन्धन नहीं होता।



खरोदनेवाला व्यक्ति वनमें राखस तथा बैल होता है। स्वका अपहरणकर्ता हीनजाति और शक-पातका चोर मयूर-योनिमें जन्म लेता है। पुष्पका चोर छलुन्दरी, धान्यापहारी मूषक, फलका चोर वानर, पशुओंका हरण करनेवाला बकरी तथा दूधहर्ता काकयोनिमें उत्पन्न होता है।

मांस, वस्त्र और नमककी चोरी करनेवाले मनुष्य यथाक्रम—गृध्र, श्वेतकुक्षी तथा चीरीकी योनि प्राप्त

करते हैं। उस फलको भोगकर वे तिर्यक्योनिमें उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार भोग भोगनेके पश्चात् ये लक्षणभट्ट पतितजन दूसरे जन्ममें दरिद्र या पुरुषाधम होते हैं। तत्पश्चात् अपने सत्कर्मोंसे निष्कलुष होकर वे योगीके महान् कुलमें जन्म लेते हैं और सुलक्षणोंसे युक्त होते हुए वे धन-धान्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। (अध्याय १०४)

## प्रायश्चित्त-विधान एवं सान्त्वन, कृच्छ्र, पराक तथा चान्द्रायणादि व्रतोंका विविध स्वरूप

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा—हे मुनियो! विहित कर्म न करनेसे, निन्दित (निषिद्ध) कर्मका आचरण करनेसे एवं इन्द्रिय-निग्रह न करनेके कारण मनुष्य अधोगतिको प्राप्त करता है<sup>१</sup>। अतएव आत्मशुद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिये। इस प्रकार प्रायश्चित्त-कर्म करनेसे उसको अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाती है और लोक भी उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक व्यवहार करता है। प्रायश्चित्तसे पापका विनाश भी हो जाता है। प्रायश्चित्त न करनेवाले तथा पश्चात्तापसे रहित पापीजन पापके प्रभावसे महारौरव नरकसे भी महाभयंकर तामिस्र, लोहशंकु, पृथिव्यन्त्र, हंसाध, लोहितोद, संजीवन, नदीपथ, महानिलय, काकोल, अन्धतमिस्र तथा तापन नामक नरकमें जाते हैं।

ब्रह्महत्या, मद्यपी, ब्राह्मणके सुवर्णका<sup>२</sup> चोर, गुरुपक्षीगम्य तथा इनका संसर्ग करनेवाले मनुष्य अपने पापके कारण अवीचि तथा कुम्भीपाक नामक महाभयानक नरकका भोग करते हैं।

गुरु एवं वेदकी विन्दा करना ब्रह्महत्याके समान है। निषिद्ध पदार्थका भक्षण, कुटिलतापूर्वक आचरण और रजस्वला स्त्रीका अधरपान मदिरापान नामक महापातकके सदृश माना जाता है। अश्व तथा रत्नादिका अपहरण, सुवर्ण-चोरीके महापापकी भाँति होता है। मित्रकी पत्नी, अपनी

अपेक्षा उत्तम जातिकी कन्या, चाण्डाली और बहन तथा पुत्रवधूके साथ सहवास करना गुरुपक्षी-गमनके समान महापाप स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार माता-पिताकी बहन, मामी, विभाता, आचार्यपुत्री, आचार्यपत्नी तथा पुत्रीके साथ रमण करनेवाला व्यक्ति भी गुरुपक्षीगामीके समान ही महापातकी होता है।

ऐसा महापापी मनुष्य लिंग-छेदनके पश्चात् वध करनेके योग्य होता है। इस प्रकारके पापमें यदि स्त्री सकाम होकर संश्लेष्य होखी है तो उसके लिये भी इसी प्रकारका प्रायश्चित्त-विधान कहा गया है।

गोहत्या, व्रान्तता (समयपर यज्ञोपवीत-संस्कार न होना अर्थात् सावित्रीव्युत होना), चोरी (ब्राह्मणका सुवर्ण अथवा सुवर्ण-सदृश अन्य द्रव्यका हरण करना), ऋण न लौटाना तथा देव, ऋषि एवं पितृ-ऋणसे मुक्त होना, अधिकारी होते हुए भी अन्यायान न करना, विक्री न करने योग्य लवण आदिका विक्रय करना, परिवेदन<sup>३</sup>, रुपये लेकर अध्ययन करनेवालेसे अध्ययन करना, रुपये लेकर अध्यापन करना, परस्त्रीके<sup>४</sup> साथ सहवास, पारिवित्य<sup>५</sup>, प्रतिषिद्ध सुदसे जीविकाकापन, नमकका उत्पादन, स्त्रीवध, गृहवध, अधीक्षित वैश्य तथा क्षत्रियका वध करना और निन्दित धनसे जीविका चलायना, नास्तिकता, व्रतका लोप, सुत-विक्रय,

१-कैषी आत्मज्वाला कीटविलेप (य० मिताक्षरा, प्रायश्चित्त प्रकरण, स्तोक २१५)

२-विहितस्नाननुष्ठानविन्दितस्य च सेवयात्। अविग्रहाच्चेन्द्रियार्णं परः फलमुच्यते॥ (१०५, १)

३-य० मिताक्षरा प्रा०प्र० स्तोक २२३

४-सहोदर ज्येष्ठ भ्रातृके अविवाहित रहते हुए छोटा भाई यदि विवाह एवं अग्निहोत्र ग्रहण करता है तो वही परिवेदन नामक पाप है।

५-गुरु एवं गुरुके समान क्षेत्रजनोंके अतिरिक्त स्त्री।

६-छोटे भाईके विवाहकर लेनेपर ज्येष्ठके द्वारा विवाह न करनेपर होनेवाला लोप पारिवित्य कहलाता है।

माता-पिता तथा मित्रका परित्याग, तालाब-उद्यानका विक्रय, कन्याको दूषित करना, बड़े भाईकी उपेक्षा करके अग्न्याधान तथा विवाह करनेवालेको यजन करना तथा ऐसे व्यक्तिकी कन्यादान करना, गुरुसे अतिरिक्तके साथ कुटिलता करना, व्रतका लोप, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला, मद्यपान करनेवाली स्त्रीका सम्पर्क, स्वाध्याय, अग्नि, पुत्र तथा चन्मुका परित्याग, असत्-शालकका अध्ययन, भार्य एवं अपना विक्रय—ये सभी निन्दित कर्म उपपातक कहे गये हैं। हे मुनियो! आप अब इनके प्रायश्चित्तका ज्ञान प्राप्त करें—

ब्रह्महत्या करनेपर पापी व्यक्ति शिरःकपाल (खपर-खोपड़ी)—को हाथमें लेकर तथा दूसरा एक शिरःकपाल ध्वजके समान दण्डमें लगाकर चले और भिक्षामार्गसे जीविका-निर्वाह करता हुआ अपने पापकर्मका उद्घोष करते हुए बारह वर्षतक अल्प भोजन कर आत्मशुद्धि करे अथवा जानते हुए इच्छापूर्वक ब्रह्महत्या करनेपर 'लोमभ्यः स्वाहा' इत्यादि मन्त्रके अनुसार लोमसे शरीरके अवयवोंके प्रतिनिधिरूप यथाविहित विभिन्न द्रव्योंकी आहुति देकर अन्तमें अपने शरीरका भी प्रायश्चित्त-विधानमें निर्दिष्ट विधानके अनुसार अग्निमें प्रक्षेप करे। अपने प्राणोंका त्याग करके ब्राह्मणकी रक्षा करनेसे भी ब्रह्महत्याकी शुद्धि हो जाती है।

अत्यधिक कष्ट देनेवाले दुःसह बहुकालव्यापी रोग या अन्य किसी प्रकारके भयरूप आतंकसे ग्रस्त ब्राह्मणकी अथवा मार्गमें पड़ी हुई ऐसी ही गायकी निरोग या निरान्तक करके भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति पायी जा सकती है। यदि कदाचित् प्रमादवश ऐसे ब्राह्मणकी हत्या किसीके द्वारा होती है, जो ब्राह्मणके लिये अपेक्षित गुणोंसे युक्त नहीं है तो इस हत्यासे होनेवाले पापसे मुक्तिके लिये यह प्रायश्चित्त है—वनमें रहकर मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदका तीन बार पारायणकर अथवा सरस्वती (वेदविद्या)—की सेवामें अपना पूर्ण समर्पण करनेके साथ अपना सब कुछ धन (सर्वस्व) योग्य पात्रमें समर्पित करके अपनेकी शुद्ध किया जाय। सोमयाग प्रयोगमें वर्तमान क्षत्रिय और वैश्यका वध करनेपर ब्रह्महत्याके लिये जो प्रायश्चित्त है, उसे करे। गर्भहत्या करनेवाले पापीने जिस वर्णका गर्भ नष्ट किया हो, उसी वर्णके अनुसार उसको उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये। रजस्वला होनेके बाद ऋतुस्नान की हुई स्त्रीकी

हत्या करनेवाला जिस वर्णकी स्त्रीकी हत्या की है, उस वर्णके अनुसार प्रायश्चित्त करे। हत्या करनेके लिये उद्यत होनेपर यदि हत्यारेको उस कृत्यमें सफलता नहीं प्राप्त होती है तो भी वह हत्याके पापसे मुक्त नहीं है, उसको उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये।

सोमयागके लिये दीक्षित ब्राह्मणकी हत्या करनेपर ब्रह्महत्याके लिये विहित प्रायश्चित्तका दुगुण प्रायश्चित्त-व्रत करे। मदिरापान करनेवालेका प्रायश्चित्त, अग्निके समान व्रत मदिरा एवं गोमूत्रका अथवा अग्निके समान लाल-लाल खीलता हुआ गोघृतपान एवं गोदुग्धपान करनेसे होता है और जल समझकर भूलसे मदिरा पी लेनेपर जटाधारण करके मलिन वस्त्र धारणकर अग्निके समान तप्त घृत पीते हुए ब्रह्महत्याके लिये विहित व्रत करे तथा पुनः सवर्णोचित संस्कार करे तब शुद्धि होती है।

घौर्य, विद्या, मूत्रका पान करनेवाली ब्राह्मणी एवं सुरा पीनेवाली ब्राह्मणी घातकी हो जाती है। पतिलोकसे परिभ्रष्ट होकर वह क्रमशः गृधी, सूकरी तथा कुतियाकी योगिनीं जन्म लेती है।

ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाले द्विजको चाहिये कि वह राजाको मूसल समर्पित करके अपने घौर्य-कर्मका उद्घोष करे। तत्पश्चात् उस मूसलके आघातसे वह मृत्युको प्राप्त हो या जीवित दोनों दशामें पवित्र हो जाता है। ऐसा द्विज अपनी तौलके बराबर सुवर्ण देकर भी आत्मशुद्धि कर सकता है।

जो गुरु-पत्नीके साथ सहवास करता है, उसको दहकती हुई लौहमयी स्त्री-प्रतिमाके साथ शयन करके अपने शरीरका परित्याग करना चाहिये अथवा अपना लिंग और अण्डकोश काटकर नैऋत्य दिशामें फेंक देना चाहिये और शरीरपर्यन्त पीछे मुँह करके चलता रहे अथवा वह दुरात्मा तीन वर्ष प्राजापत्य तथा कुच्छव्रतका पालन करे या तीन मासतक चान्द्रायणव्रत एवं वेद-संहिताका पाठ करके भी वह उस पापसे विमुक्त हो सकता है।

गो-वध करनेवाले पापीको पञ्चगव्य पानकर एक मासतक संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिये। वह गोष्ठमें निवास करते हुए गौओंका अनुगमन तथा गौका दान करे।

चान्द्रायणव्रत करनेसे उपपातकोंकी शुद्धि होती है। एक मासतक दुग्ध-पान अथवा पराक नामक व्रत करके

उन उपपातकोंसे शुद्धि प्राप्त की जा सकती है।

क्षत्रिय-वध करनेपर मनुष्यको एक बैल और एक हजार गायोंका दान देना चाहिये अथवा वह तीन वर्षतक ब्रह्महत्याके लिये विहित व्रतका पालन करे। वैश्यका वध करनेवाले मनुष्यको एक वर्षतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त-व्रत अथवा एक सौ गायोंका दान करना चाहिये। शूद्रकी हत्या करनेपर छः मासतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त अथवा दस सवत्सा दूध देनेवाली गायोंका दान दे।<sup>१</sup> अदुष्ट अर्थात् सुशीला सज्जरित्र स्त्रीका वध करनेपर मनुष्यको शूद्र-वध-विहित प्रायश्चित्तव्रतका पालन करना चाहिये।

मार्जार (बिल्ली), गोह, बैखला, साधारण पशु तथा मेढककी हत्या करनेपर पापी व्यक्ति तीन शक्तिरूपक दुग्धपात्रोंके साथ ही पाद कृच्छ्रव्रतका पालन करे। हाथीका वध करनेपर मनुष्यको पाँच नील<sup>२</sup> बैलोंका दान देना चाहिये। गुरु पक्षीकी हत्या करनेपर दो वर्षका बछड़ा तथा त्रैविष पक्षीका वध करनेपर तीन वर्षका बछड़ा दान देना चाहिये। गधा, बकरा और भैंसकी हत्या करनेपर भी एक बैलका दान दे। गृह, गुल्म, लता तथा झाड़ीको काटनेपर सौ बार गायत्री-जप करे।

मधु और मांसका भक्षण करनेपर कृच्छ्रव्रत तथा अन्य शेष क्रतोंका पालन करना चाहिये। यदि गुरुके द्वारा प्रेषित शिष्यकी मृत्यु मार्गमें हो जाती है तो गुरु तीन कृच्छ्र-व्रतका पालन करे, किंतु गुरुके प्रतिकूल कार्य करनेपर शिष्यके द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेसे ही शुद्धि हो जाती है।

शत्रुओंको धान्य आदि तथा प्रीति आदिके द्वारा प्रसन्न करे। यदि किये जा रहे उपकारके बीच ही ब्राह्मणकी मृत्यु हो जाती है तो उपकारी व्यक्तिको पाप नहीं लगता।

जो मनुष्य दूसरेको महापापी तथा उपपातकीका मिथ्या दोष लगाता है, ऐसा मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक केवल जल पीकर रहे और पापमोचनमन्त्रका जप करे।

असत्-प्रतिग्रह लेनेसे जो पाप होता है, उससे मुक्ति

प्राप्त करनेके लिये एक मासपर्यन्त ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए परोव्रत करे। गोष्ठमें निवासकर गायत्री-मन्त्रके जपमें परायण रहे। ऐसा करनेसे मनुष्य पापविमुक्त हो जाता है।

(यथासमय यज्ञोपवीत-संस्कारादिसे वस्त्रित) घाल्यक यजन करानेवाला तीन कृच्छ्रव्रतका आचरण करके अपने उस पापसे मुक्त हो सकता है। ऐसे ही अभिचारक क्रिया करनेवालेके लिये भी यही प्रायश्चित्त है। वेदप्लावी वर्षपर्यन्त जीका भक्षण करे। शरणमें आये हुएका परित्याग करनेवाला भी वर्षपर्यन्त जीका भक्षण करे।

गर्दभधान तथा उट्टपानसे गमन करनेवाला तीन प्राणायाम करे। इसी प्रकार नष्टखान, नष्ट-शयन और दिनमें स्त्रीगमन करनेपर भी तीन प्राणायामसे शुद्धि होती है।

गुरुजनोंको 'तू' कहने तथा 'हूँ' इस प्रकार कहनेसे तथा कष्ट-प्रतिपादमें ब्राह्मणपर विजय प्राप्त करनेसे मनुष्यको जो पाप लगता है, उससे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये पापी मनुष्यको उस गुरु या ब्राह्मणको प्रसन्नकर एक दिनका उपवास करना चाहिये। ब्राह्मणपर प्रहार करनेके लिये उद्यत होनेपर कृच्छ्रव्रत तथा प्रहार कर देनेपर अतिकृच्छ्रव्रतका पालन करना चाहिये।

जिस विन्दित आचरणके लिये प्रायश्चित्त-विधान निर्दिष्ट नहीं है, उसके लिये देश, काल, आयु, शक्ति और पापपर सम्यक् विचार करके ही प्रायश्चित्तका निर्णय करना चाहिये। शास्त्रकारोंने पाप-विमुक्तिका यही समुचित नियम कहा है।

गर्भपात तथा पतिनिन्दा करना स्त्रियोंके पतनके कारण है। ऐसी स्त्रियाँ अपने दोषके अनुसार शास्त्रविहित प्रायश्चित्त नहीं करती हैं तो उनका परित्याग ही उचित है अन्यथा उन्हें अपने घरमें जीवनयापनके लिये आवश्यक सामान देकर रखना चाहिये।

जो पाप विख्यात हो चुका है, उसका प्रायश्चित्त गुरुजनोंके (परिषदके)<sup>३</sup> अभिमतके अनुसार ही करना

१-ये सभी प्रायश्चित्त अज्ञानपूर्वक वधके लिये विहित हैं।

२-नील-धूप एक विशिष्ट लक्षणवाले बैलको कहते हैं।

३-या० स्मृति श्लोक २८८ की मिताश्रय व्याख्याके अनुसार प्रकृतमें विप्लव शब्दके तीन अर्थ हैं—१-जो व्यक्ति वेदकी रक्षा कर सकता है, यदि वह वेदरक्षा नहीं करता तो यह वेदका विप्लव है। २-अनध्ययकालमें वेदका अध्ययन विप्लव है। ३-वेदाध्ययनमें समर्थ अथवा वेदाध्ययन करके उत्कर्ष प्राप्त करनेवाले अधिकारोंको वेदाध्ययनके प्रति अनुत्पन्नित करना विप्लव है। इनमेंसे किसी एक दोषसे युक्त व्यक्ति भी वेदप्लावी कहा जाता है।

४-वेद एवं धर्मके विज्ञता भार ब्राह्मणों अथवा तीन ब्राह्मणों या ब्राह्मण धर्मशास्त्रज्ञ एक ब्राह्मणकी भी परिषद् हो सकती है।

(या० स्मृति; आचाराध्याय श्लोक ९)

\*\*\*\*\*

चाहिये, किंतु जो पाप विख्यात नहीं है, उसका प्रायश्चित्त गुप्तरूपसे करना चाहिये।

गुप्तरूपसे किये जानेवाले कुछ प्रायश्चित्त इस प्रकार समझना चाहिये—ब्रह्महत्या करनेवाला पापी तीन रात्रियोंतक उपवास रखकर विशुद्ध जल (नदी आदिके जलमें निमग्न होकर) के मध्य अर्धमर्षण-मन्त्रका जप करे और दूध देनेवाली गायका दान दे तो वह शुद्ध हो जाता है। किंतु यह प्रायश्चित्त अज्ञानमें होनेवाली ब्रह्महत्याके लिये विहित है। अज्ञानमें होनेवाली ब्रह्महत्याके निमित्त यह प्रायश्चित्त भी किया जा सकता है कि ब्रह्महत्याकर्ता अहोरात्रपर्वत वायुपान करते हुए जलमें रहनेके बाद प्रातःकाल जलसे बाहर आकर 'लोमभ्य स्वाहा' १ इत्यादि आठ मन्त्रोंसे पाँच-पाँच आहुतियाँ यथाविधान अग्निमें दे।

मद्यपी एवं सुवर्णकी चोरी करनेवाले पापीको जलके मध्य स्थित होकर रुद्रदेवके मन्त्रका जप करते हुए तीन दिनका उपवास और कुष्माण्डी ऋचासे घृतकी आहुतियाँ देकर आत्मशुद्धि करनी चाहिये। गुरु-पत्नीके सद्यः सम्पर्क करनेवाला पापी 'सहस्रशीर्षा' २ मन्त्रका जप करके पापसे विमुक्त हो जाता है।

सौ बार प्राणायाम करनेपर मनुष्य सर्वविध पापोंसे मुक्त हो जाता है। अज्ञानवश किये गये पापकी शान्ति त्रैकालिक संध्योपासनासे हो जाती है। ब्राह्मणों के द्वारा एकदश आवृत्ति रुद्रानुवाकोंका जप करवानेसे भी पापका शमन होता है। वेदाभ्यास करनेवाले, शान्तिपरायण और पञ्चपङ्क्तके अनुष्ठानकी पापका स्पर्श तक नहीं होता। वायुमात्रका भक्षण करते हुए पूरे दिन सूर्यदर्शनके साथ एवं पूरी रात्रि जलमें रहकर एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करनेसे ब्रह्महत्यासे होनेवाले पापके अतिरिक्त अन्य समस्त पापोंसे मुक्ति हो जाती है।

ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, भगवद्भ्यास, सत्य, निष्कपटता, अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), माधुर्य और दम—ये दस यम माने गये हैं। स्नान, वीन, उपवास, यज्ञ, स्वाध्याय, इन्द्रियनिग्रह, तपस्या, अक्रोध, गुरुभक्ति और पवित्रता—ये दस नियम कहे जाते हैं।

गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र तथा गोमयको 'पञ्चगव्य'

कहते हैं। इस पञ्चगव्यका कुशोदकके साथ पान कर व्रती दूसरे दिन उपवास करे। इस तरह दो रात्रिका कृच्छ्र-सान्त्वनव्रत होता है। पहले दिन गोदुग्ध, दूसरे दिन गोदधि, तीसरे दिन गोघृत, चौथे दिन गोमूत्र, पाँचवें दिन गोमय, छठे दिन कुशोदक मात्र और सातवें दिन कुछ भी न लेकर शुद्ध उपवास कर जो व्रत पूर्ण किया जाता है, वही महासान्त्वन नामक व्रत कहा जाता है।

पसास, गुलार, कमल, बिल्वपत्र इनमेंसे एक-एकको एक-एक दिन जलमें पकाकर उसी जलको क्रमशः एक-एक दिन पीकर चार दिन रहे एवं पाँचवें दिन कुशोदकमात्र पीकर जिस व्रतका पालन किया जाता है, उसको पर्णकृच्छ्रव्रत कहते हैं। तप्तकृच्छ्रव्रतमें व्रतीको पहले दिन गरम गोदुग्ध, दूसरे दिन गरम घृत, तीसरे दिन गरम जलका प्राशन चौथे दिन उपवास करना चाहिये। यह पवित्र (शुद्ध) करनेवाला महातप्तकृच्छ्रव्रत है।

पहले दिन एकभक्तव्रत (चीबीस घण्टेमें मध्याह्नमें केवल एक बार भोजन करना), दूसरे दिन नक्तव्रत अर्थात् चीबीस घण्टेमें एक बार (रात्रिमें), तीसरे दिन अयाचित (बिना पाचनसे प्राण) अन्नका भोजन करना, चौथे दिन पूर्ण उपवास करनेपर पादकृच्छ्रव्रत होता है। इसी पादकृच्छ्रव्रतकी तीन बार करनेसे प्राजापत्यकृच्छ्रव्रत होता है। प्राजापत्यव्रतके अनुसार भोजन और उपवासका नियम किया जाय परंतु भोजनके रूपमें उतना हो अन्न ग्रहण किया जाय, जितना एक हाथमें आता हो। इस तरह चार दिनका उपवास करनेसे अतिकृच्छ्रव्रत हो जाता है। इक्कीस दिनतक जल या दुधमात्र लेकर अतिकृच्छ्रव्रतका पालन करनेसे वह कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत होता है। बारह दिन पूर्ण उपवास करनेपर एक पराकव्रत होता है।

पहले दिन जिनसे तेल निकाल लिया गया है ऐसे तिल, दूसरे दिन मूँड़, तीसरे दिन मट्ठा, चौथे दिन जल तथा पाँचवें दिन सतुका आहारकर छठे दिन उपवास करना सौम्यकृच्छ्रव्रत कहलाता है। इस सौम्यकृच्छ्रव्रतमें बताये गये पदार्थोंका एक दिनके स्थानपर तीन-तीन दिनतक क्रमशः पंद्रह दिनतक चलनेवाला तुलापुरुषसंज्ञक कृच्छ्रव्रत होता है अर्थात् इस व्रतमें (प्रथम) तीन रात्रियोंतक निःसृत

१-'स्नानं च सत्यं' आदि मन्त्र अर्धमर्षण है।

२-या० स्मृतिमें श्लोक २४७ में इन मन्त्रोंको दिया गया है।



तेलवाले तिल, (द्वितीय) तीन रात्रियौतक मौड़, (तृतीय) तीन रात्रियौतक मट्ठा, (चतुर्थ) तीन रात्रियौतक जल तथा (पञ्चम) तीन रात्रियौतक सत्तूका भोजन करके एक दिनका उपवास करना चाहिये।

शुक्लपक्षमें तिथि-वृद्धि-क्रमसे मयूरके अण्डके समान मात्रावाले एक-एक भोजन-ग्रासका अधिक आहार करते हुए पूर्णिमा तिथिको यह क्रम समाप्त करके पुनः कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक-एक अन्न-ग्रासका भक्षण-क्रमसे घटाते हुए चतुर्दशी तिथिको एक ग्रास भोजन करे एवं अमावास्याको उपवास करे, यह चान्द्रायणव्रत है। चान्द्रायणका अन्य प्रकार यह है—पूरे मासमें दो सौ चालीस

ग्रास मात्र हविष्यान्न ग्रहण किया जाय। इन व्रतोंमें यह आवश्यक है कि प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालीन स्नान करके पवित्र-संज्ञक विशेष मन्त्रोंका जप करे तथा गायत्री-मन्त्रसे पिण्डग्रासको अभिमन्त्रित कर उसे ग्रहण करे।

जिन पापोंका प्रायश्चित्त शास्त्रोंमें नहीं बताया गया है, उन पापोंसे भी शुद्धि चान्द्रायणव्रतसे हो जाती है। किसी पापके निवारणके लिये प्रायश्चित्तरूपमें नहीं, अपितु पुण्य प्राप्त करनेकी दृष्टिसे जो इस चान्द्रायणव्रतका अनुष्ठान करता है, उसको चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार पुण्य प्राप्त करनेके लिये ही जो कृच्छ्रव्रत करता है, वह महान् ऐश्वर्यका लाभ प्राप्त करता है। (अध्याय १०५)

### अशीच तथा आपद्बुति-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे यतिगो! अब मैं मृत्युके पश्चात् होनेवाले मरणाशीचका वर्णन करता हूँ, उसका श्रवण करें।

दो वर्षसे कम आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर उसको मिट्टीमें गाड़ देना चाहिये। उसके लिये जलाञ्जलि न दे<sup>१</sup>। दो वर्षसे अधिक आयुके बालककी मृत्यु होनेपर उसे सभी बन्धुगण मिलकर श्मशानभूमिमें ले जाकर लौकिक अग्निसे 'वमसूक्त' का पाठ करते हुए धितामें जला दें। यज्ञोपवीत होनेके अनन्तर मृत्यु होनेपर सभी क्रियाएँ आहिताग्निके समान करे। मरणतिथिके सातवें दिन अथवा दसवें दिनके पहले अपने कुल एवं गोत्रमें आनेवाले परिजन<sup>२</sup> 'अप नः शोशुचदधम्'<sup>३</sup> मन्त्रसे दक्षिण दिशाकी ओर अभिमुख होकर यथासम्भव घरसे बाहर जलाशयपर जाकर जलाञ्जलि दे। इसी प्रकार मातामह तथा आचार्य-पत्नी आदिकी भी उदकक्रिया करनी चाहिये।

मित्र, विवाहित स्त्री (लड़की, बहन आदि), भागिनेय, श्वशुर और ऋत्विक्का यदि मरण हुआ है तो इनके अभ्युदयके लिये इन्हें सविधि जलाञ्जलि देनी चाहिये और यह जलाञ्जलि इनके नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए एक ही बार देनी चाहिये। पाखण्डों एवं पतितजनोंकी मृत्यु

होनेपर उनकी उदकक्रिया नहीं होती। ब्रह्मचारी, ब्राह्म्य तथा स्वेच्छाचारिणी स्त्रीके लिये भी उदकक्रियाका निषेध है। मद्यपी और आत्महत्या करनेवाले अशीच और उदक-क्रियाके पात्र नहीं होते।

व्यक्तिके निधनपर रोना निषिद्ध है, क्योंकि जीवोंकी स्थिति अनित्य होती है। यथाशक्ति श्मशानभूमिमें दाहादिक क्रिया करके स्वजनोंको घर आना चाहिये। द्वारपर पहुँचकर वे सबसे पहले निम्बकी पत्ती चबाकर, तदनन्तर आचमन करके अग्नि, जल, गोबर और श्वेत सरसोंका स्पर्श कर पत्थरपर पैर रखकर धीरेसे घरमें प्रवेश करें। प्रेतका संस्पर्श करनेपर भी मनुष्यको घरमें प्रविष्ट होनेके पूर्व उक्त विहित-कर्म कर लेना चाहिये। सपिण्डमें आनेवाले जो लोग पुण्यप्राप्त करनेमात्रकी दृष्टिसे प्रेतका अनुगमन अर्थात् उसकी दाह-क्रिया आदिमें सम्मिलित होते हैं और वे यदि तत्काल अपनी शुद्धि चाहते हैं तो दाह-क्रिया सम्पन्न करानेके अनन्तर उन्हें स्नान एवं प्राणायाम कर लेना चाहिये।

उस दिन खरीदे हुए पदार्थोंका भोजन करके सभी परिजनोंको अलग-अलग भूमिपर सोना चाहिये। पिण्डयज्ञके पश्चात् मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे विहित पिण्डदानकी प्रक्रियाके

१-ऐसे शवको गन्ध, घाल, अतुलेपन आदिसे अलंकृत करके श्मशानमें अन्यत्र इन्हींके समूहसे रहित, ग्राम या नगरके बाहरकी भूमिमें गड़वा खोदकर रखना चाहिये। (मनुस्मृति ५।६८-६९)

२-समानगोत्र, समानपिण्ड एवं सम्बन्धोदकवाले लोग।

३-आषोढ १।१७।१-८

४-बिना मौड़ हुए अन्नमात्रका भोजन करना चाहिये।

अनुसार अपसव्य आदिके रूपमें तीन दिनतक विण्डरूप अत्र पृथ्वीपर मौन धारण करते हुए दे। ब्राह्मके लिये अधिकृत व्यक्ति खुले हुए आकाशके नीचे एक शिखा आदिके मिट्टीके पात्रमें जल और दूसरे मिट्टीके पात्रमें दूध उस प्रेतात्माको समर्पित करे। ब्राह्मकर्ताको अशुचि होनेपर भी श्रौत अग्नि एवं स्मार्त अग्निमें किये जानेवाले नित्यकर्म (अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, स्मार्त अग्निमें विहित सार्प-प्रातः होम)-का अनुष्ठान श्रुतिकी आज्ञाके अनुसार करना ही चाहिये।

यदि जन्मके पश्चात् और दौत निकलनेके पूर्व बालककी मृत्यु हो जाती है तो उनके सम्बन्धियोंकी सद्यः शुद्धि हो जाती है। दौत निकलनेके पश्चात् ब्रह्माकरणतक एक अहोरात्रका अशीच होता है और उपनयन-संस्कारके पहले और ब्रह्माकरणके बाद बालककी मृत्यु होनेपर तीन रात्रिके बाद अशीच समाप्त होता है। उपनयन-संस्कारके पश्चात् मृत्यु होनेपर दस रात्रियोंका अशीच होता है। सपिण्डोंके लिये दस रात्रिका एवं समानोदक लोगोंके लिये तीन रात्रिका अशीच होता है।

दो वर्षसे कम आयुवाले पुत्र एवं पुत्रीकी मृत्युपर माता-पिता दोनोंको दस रात्रिका अशीच होता है। यदि इस मरणाशीचके मध्य परिवारमें किसी बालकका जन्म या किसीकी मृत्यु होती है तो प्रथम अशीचके शेष दिनोंके पश्चात् ही शुद्धि हो जाती है।

सपिण्डकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके लिये क्रमशः—दस, बारह, पंद्रह तथा तीस दिनोंका अशीच माना गया है। पाणिग्रहण-संस्कारके पूर्व और वाग्दानके पूर्व तथा ब्रह्माकरणके बाद कन्याकी मृत्यु होनेपर एक अहोरात्रमें ही शुद्धि हो जाती है। या० स्मृति २४वें श्लोककी मिताक्षराके अनुसार दौत निकलनेके पूर्व यदि बालकका मरण हुआ और उसका अग्नि-संस्कार किया गया तो एक दिनमें शुद्धि हो जाती है। गुरु<sup>१</sup> और अन्तेवासी (शिष्य) वेदाङ्गोंका प्रवक्ता, मामा<sup>२</sup>, श्रोत्रिय<sup>३</sup> एवं अनौरस<sup>४</sup> पुत्र, अपनी वह भार्या जो प्रतिलोम संकरसे अतिरिक्त किसी अन्यके आश्रयमें रह रही है, उसके तथा अपने

देशके राजाकी मृत्युपर एक दिनका अशीच होता है। राजा (अभिषिक्त क्षत्रिय आदि राजा), गौ (पशुमात्र), ब्राह्मण (मनुष्यमात्र)-के द्वारा जो आहत होता है, उसके सम्बन्धियोंकी स्नानमात्रसे तत्काल शुद्धि हो जाती है। ऐसे ही जिसने विष या बन्धन आदिके द्वारा बुद्धिपूर्वक आत्मघात कर लिया है, उसके सम्बन्धियोंकी भी तत्काल स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है और समस्त पृथ्वी या पृथ्वीके एक देशके अभिषिक्त अधिपति क्षत्रिय आदिकी मरण या उत्पत्तिनिमित्तक अशीच नहीं होता। सत्री (लगातार अन्नसत्र चलानेवाले), व्रतों (कृच्छ्र, बान्द्रायण आदि व्रतमें प्रवृत्त), ब्रह्मचर्यव्रतमें प्रवृत्त, दाता (वह वानप्रस्थायत्री जो केवल दान ही देता है, प्रतिग्रह कभी भी नहीं करता), ब्रह्मविद् (संन्यासी) किसी भी प्रकारके अशीचसे ग्रस्त नहीं होते। दान (किसीको देनेके लिये पूर्वमें संकल्पित द्रव्य), विवाह (विवाहके निमित्त एकत्रित सामग्री), यज्ञ आदि विशेष कृत्योंके लिये एकत्रित सामग्री, संग्राम (युद्धकाल)-में, देशमें अतिभयंकर या राजभयसे उत्पन्न विप्लवकी दशामें, अतिकष्टकर आपत्तिमें किसी भी प्रकारके अशीचकी निवृत्ति तत्काल ही हो जाती है अर्थात् अशीच नहीं होता।

जो अकार्यकारी अर्थात् निषिद्ध कार्य करनेवाले हैं, उनकी शुद्धि दान देनेसे होती है। ग्रीष्म-व्रत आदिके प्रभावसे जो नदी आपत्त्य जलवाली हो जाती है और उसके किनारे आदि अपवित्र वस्तुओंसे उपहत हो जाते हैं वह नदी जरतके वेगपूर्ण उस प्रवाहसे शुद्ध हो जाती है जो प्रवाह नदीको जलमय बना दे और उसके किनारोंको काट देनेमें समर्थ हो।

आपत्कालमें ब्राह्मणको क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णकी वृत्तिसे जोविकारक निवृत्ति करना चाहिये, किन्तु वैश्यवृत्ति करनेवाले ब्राह्मणके लिये पत्र, सोमलता, क्षौमवस्त्र (सभी वस्त्र), वेष्ट आदिकी लताएँ, औषधि लता, दधि, दुग्ध, घृत, जल, तिल, ओदन, रस, क्षार, मधु, लाक्षा, फकाया हुआ हविष्यान्न, वस्त्र, मणि आदि प्रसक्तमात्र, आसव्य, पुष्प, शङ्ख, मिट्टी, चर्म, पादुका, मृगचर्म, कीर्तय (वस्त्र), लवण, मांस, तिलकुट (पिण्याक), मूल और सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोंका विक्रय वर्जित है।

१-पिता ही यदि गुरु होते हैं तो उनकी मृत्युपर पिताकी मृत्युपर होनेवाला अशीच होगा।

२-यहाँ मामा मात्रकी नहीं लेना है, अपितु मातृ-पितृ एवं पितृ-प्राप्तके जितने भी वन्धु हैं उन सबको लेना है।

३-वेदकी एक साध्यामात्रका अध्याता।

४-औरसके अतिरिक्त क्षेत्रज, दत्तक आदि पुत्र।

ब्राह्मणके द्वारा अपने श्रौत-स्मार्त-यज्ञकी पूर्णताके लिये अपेक्षित धान्य या अन्य किसी अत्यावश्यक औषधि आदिकी व्यवस्थाके लिये अपेक्षित धान्यके बग़ैर तिलका विक्रय करके धान्यका संग्रह किया जा सकता है। किंतु आपत्कालमें भी लवणादिका व्यापार ब्राह्मणके लिये अवश्य वर्जित है। (आपत्तियोगिक कारण नमकादिके अतिरिक्त) ब्राह्मण अन्य जो कुछ होन आवश्यकता करता है, उसमें वह उसी प्रकार निष्कलुष रहता है जैसे सूर्य। आपत्कालमें ब्राह्मण कृषि एवं पशुपालनादि कार्य कर सकता है, किंतु उसके द्वारा अश्वोंका विक्रय त्यज्य है।

यदि किसी कारण ब्राह्मण कृषि आदिसे भी अपने जीवनकी रक्षा न कर सके तो तीन दिन बुधुक्षित हो रहे। तदनन्तर ब्राह्मणके अतिरिक्त और किसीके यहाँसे केवल एक दिनके लिये धान्य प्राप्त करे तथा अब्राह्मणसे प्राप्त इस धान्यका उपभोग करते समय वह प्रकाशित भी करे कि मैं अब्राह्मणसे धान्य लेकर आज जीवन-निर्वाह किया है। ऐसे वृत्तिसंकरसे ग्रस्त ब्राह्मणके वृत्त, कुल, रीति, शास्त्राध्ययन, वेदाध्ययन और तप आदि विशेषताओंको जानकर राजाका यह कर्तव्य होता है कि वह उस ब्राह्मणके लिये धर्मानुकूल जीवन-साधनको व्यवस्था करे। (अध्याय १०६)

## महर्षि पराशरप्रोक्त वर्ण तथा आश्रम-धर्म एवं प्रायश्चित्त-धर्मका निरूपण

सूतजीने कहा—महर्षि पराशरने वेदव्यासजीसे वर्णाश्रमादिके धर्मका वर्णन किया था। [उनका यही कहना है कि] कल्प-कल्पमें उत्पत्ति और विनाशके कारण प्रजाएँ आदि क्षीण होती रहती हैं। कल्पके प्रारम्भमें मन्वादि ऋषि वेदोंका स्मरण करके ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्मोंका पुनः निरूपण करते हैं।

कलियुगमें दान ही धर्म है। कलियुगमें केवल पाप करनेवालेका परित्याग करना चाहिये<sup>१</sup>। कलियुगमें पाप तथा शाप—ये दोनों एक वर्षमें फलीभूत हो जाते हैं।

मनुष्य आचार (सदाचार तथा शौचाचार)—से ही सब कुछ प्राप्त करे। संध्या, स्नान, जप, होम, देव और अतिथिपूजन—इन षट्कर्मोंको प्रतिदिन करना चाहिये। आचारवान् ब्राह्मण तथा संन्यासी इस कलियुगमें दुर्लभ हैं। क्षत्रियको चाहिये कि वह शत्रुसेनाओंको जीतकर पृथिवीका भलीभाँति पालन करे। वैश्य कृषि एवं पशुपालन तथा व्यापारादि करे और शूद्र इन तीन द्विजवर्णोंकी सेवामें अनुरक्त रहे।

व्यक्तिका पतन अभक्ष्य-भक्षण (शास्त्र-निषिद्ध भोजन), चोरी और अगम्यागमन करनेसे हो जाता है। यदि द्विज

कृषिकार्य करता है तो वह धके हुए बैलसे हल न खींचे तथा उसे भार डोनेके कार्यमें नियोजित न करे। स्नान और योगादि कार्योंसे निवृत्त होकर पश्यज करे। मध्याह्नकालमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और कूरकर्मोंकी निन्दा करे।

तिल तथा घृतका विक्रय नहीं करना चाहिये। पञ्चमूनाजनित द्रव्यके निवारणार्थ [चलिवैश्वदेव] होम करे। कुषिकर्ता द्विजद्वारा अपनी उपजका क्रमशः छठा भाग राजा, बीसवाँ भाग देवता और तैंतीसवाँ भाग ब्राह्मणोंको देय है, इससे (कृषिजनित) पाप नहीं लगता। कृषिकार्य करनेवाले क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र यदि खलिहाणमें उक्त निर्धारित भाग राजा आदिको प्रदान नहीं करते हैं तो वे चोरके समान पापके भागी होते हैं।

मृत्युका अशौच होनेपर [सामान्यतः] ब्राह्मण तीन दिनके पक्षात् शुद्ध हो जाता है<sup>२</sup>। इसी प्रकार क्षत्रिय दस दिन, वैश्य बारह दिन और शूद्र एक मासके पक्षात् शुद्ध होता है। ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पंद्रह दिन तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होते हैं। जो सपिण्ड-कुल-परम्परासे प्राप्त होनेवाली धू-सम्पत्ति आदिके हिस्सेदार हैं। और पृथक् आवास बनाकर रहनेवाले बन्धु-बान्धव हैं, उन्हें

१-लघ्वेदेशं कृतयुगे ज्ञेयानां काममुत्पुनैत्। इत्येते कुलमेकं तु कर्त्तव्यं नु कर्त्तव्यं पुनै॥

सत्ययुगमें जिस देशमें पाप होता हो उस देशका, त्रैतयुगमें जिस ग्राममें पाप होता हो उस ग्रामका, द्वापरयुगमें जिस कुलमें पाप होता हो उस कुलका और कलियुगमें केवल पाप करनेवालेका त्याग कर देना चाहिये।

२-स्नाका अर्थ है—पशुके वधका स्थान। यहाँ सूतका अर्थ है—हिंसाका स्थान। गृहस्थके घरमें हिंसाके पाँच स्थान होते हैं—चूल्हा, पेयणी (कुटने-पीसनेका साधन, खल-बट्टा, सिल आदि), मार्गनी (झाड़ू आदि), ऊज्जल, मूसल और जलका कलक—ये ही पाँचमूना हैं।

३-यहाँपर ब्राह्मण आदिकी अशौच-निवृत्तिके लिये दो प्रकारके वर्णन दिये गये हैं। पहलेके अनुसार तीन दिनों तथा दूसरेके अनुसार दस दिनोंमें शुद्ध लिखी है। कलियुगमें दूसरा वर्णन हो जानकर अशौच-निवृत्तिकी व्यवस्था स्पष्टहोनी चाहिये।

जन्म तथा मृत्यु आदिकी विपत्तिमें अशीच होता है। चौथी पीढ़ीतक दस दिन, पाँचवीं पीढ़ीमें छः दिन, छठीं पीढ़ीमें चार दिन, सातवीं पीढ़ीमें तीन दिन मरणाशीच होता है। देशान्तरमें बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नानमात्रसे शुद्धि होती है।

जो बालक जन्म होनेके पश्चात् दौत निकलनेके पूर्व डी मर जाते हैं या जिनकी मृत्यु गर्भसे बाहर होनेके समय हो जाती है, उन सबका अग्नि-संस्कार, पिण्डदान तथा जल-संतर्पण-कार्य नहीं होता है। यदि स्त्रीका गर्भस्त्राव हो जाता है अथवा गर्भपात हो जाता है तो जितने मासका वह गर्भ होता है, उतने दिनतक सूतक मानना चाहिये। जन्मसे लेकर नामकरणतक बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नानमात्रसे शुद्धि होती है। यदि नामकरणके पश्चात् चूड़ाकरण-संस्कारके मध्य बालककी मृत्यु होती है तो एक दिन और एक रात्रिका अशीच होता है। यदि उपनयन-संस्कारके पूर्व बालककी मृत्यु हो जाती है तो तीन रात्रियोंतक और तत्पश्चात् उसकी मृत्यु होनेपर दस रात्रियोंका अशीच होता है।

चार मासतकके गर्भके नष्ट होनेपर गर्भस्त्राव तथा पाँच और छः मासके गर्भके गिरनेको गर्भपात कहा जाता है।

जो ब्रह्मचर्यव्रतके अग्निहोत्रकी दीक्षामें है अथवा अनासक्त-भावसे जीवन व्यतीत करनेवाले हैं, उनके लिये जन्म एवं मृत्युका अशीच नहीं होता। शिल्पकार, कारुकर्म करनेवाला (घटाई बनानेवाला), वैद्य, दास-दासी-भृत्य-अग्निहोत्री तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण और राजा—ये सद्यःजीववाले कहे गये हैं।

जन्मका अशीच होनेपर माता दस दिनमें तथा पिता स्नान करनेके बाद शुद्ध हो जाता है। सूतिका-गृहमें प्रसूता स्त्रीके स्पर्शसे पिताको अशीच हो जाता है। आचमनसे पिता इस अशीचसे शुद्ध हो जाता है।

यदि विवाहोत्सव तथा यज्ञादिक कार्योंके सम्पादन-कालमें ही मृत्यु या जन्मका अशीच हो जाता है तो पूर्वसंकल्पित कार्यसे अन्य कार्यके निषेधका विधान है। अर्थात् पूर्वसंकल्पित कार्यके लिये अशीच नहीं होता।

बादके कार्यमें अशीच होगा।

अनाथ व्यक्तिके शवको वहन करनेपर प्राणायाममात्रसे ही मनुष्यकी शुद्धि हो जाती है, किंतु शूद्रका शव उठानेपर तीन रात्रियोंके पश्चात् शुद्धि होती है।

आत्मघात, विषपान, फाँसी तथा कुमिदंशसे मृत्यु होनेपर उसका संस्कार यथाविधान विशेष प्रायश्चित्तके बिना नहीं होता है। गौके द्वारा आहत होनेसे अथवा कुमिदंशके कारण मरे हुए व्यक्तिका स्पर्श करनेपर कृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है, यह शुद्धि अशीच-निमित्तक है।

जो पत्नी यौवनावस्थामें अपने निर्दुष्ट एवं सच्चरित्रपुत्र पतिका परित्याग कर देती है, वह सात जन्मोंतक स्त्रीयोगिको प्राप्त कर बार-बार विधवा होती है। श्रुतकालमें पत्नीके साथ संसर्ग न करनेके कारण पुरुषको बालहत्याका पाप लगता है। जो स्त्री अन्न-पानादिकी दृष्टिसे भ्रष्ट होती है, वह अगम्या होती है तथा जन्मान्तरमें सूकरयोगि प्राप्त करती है।

औरस और क्षेत्रज पुत्र एक ही पिताके पुत्र होते हैं। अतः ये दोनों पुत्र अपने पिताके लिये पिण्डदान कर सकते हैं।

परिवेत्ता<sup>१</sup> एवं परिवर्ति<sup>२</sup> (बड़े भाईद्वारा अपने विवाहकी अम्बुकीर्ति देनेवाला)—को अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। इसी प्रकार कन्याको भी कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। ऐसी कन्याके दान देनेवालेको अतिकृच्छ्रव्रत तथा विवह-विधि सम्पन्न करनेवालेको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये।

यदि बड़ा भाई कुबड़ा, बीना, नपुंसक, हकलानेवाला, मूर्ख, जन्मान्ध, बहरा तथा गूँगा हो तो छोटे भाईके द्वारा विवाह कर लेनेमें कोई दोष नहीं होता।

जिसे वाग्दानमात्र किया गया है ऐसा भावी पति यदि परदेस चला जाय, मर जाय, संन्यास-धर्मका अवलम्बन कर ले, नपुंसक हो अथवा पतित हो गया हो तो इन पाँच आपदाओंमें वाग्दत्ता कन्या दूसरे पतिका वरण कर सकती है। अपने पतिके साथ सतीधर्मके अनुसार अग्निमें प्रवेश करनेवाली स्त्री शरीरमें स्थित रोमोंकी संख्याके बराबर वशीतक स्वर्गमें निवास करती है।

कुत्ता आदिके काटनेपर मनुष्यको गायत्री-मन्त्रके

१-ज्येष्ठ भ्राताके अविवाहित रहने हुए अपना विवाह कर लेनेवाला छोटा भाई 'परिवेत्ता' कहा जाता है और परिवेत्ताका अविवाहित बड़ा भाई 'परिवर्ति' कहा जाता है।

२-यहाँ उस कन्याको समझना चाहिये, जिसका परिवेत्तासे विवह हुआ है।



जपसे शुद्धि करनी चाहिये। जिसे स्वयं गायत्री-जपका अधिकार नहीं है, उसे ब्राह्मणद्वारा गायत्री-जप कराना चाहिये। चाण्डाल आदिके द्वारा मारा गया अग्निहोत्री ब्राह्मण लौकिक अग्निसे जलाने योग्य होता है। [उस अग्निसे जलाये गये] ब्राह्मणकी अस्थियोंको दूधमें प्रक्षालित करके पुनः विधिपूर्वक अपने अग्निहोत्रशालाकी अग्निसे प्रदग्ध करना चाहिये। यदि मृत्यु प्रवासकालमें होती है तो परिजनको अपने धरपर उस मृत व्यक्तिका कुशसे शरीर बनाकर पुनः अग्निदाह करना चाहिये।

कृष्णमृगचर्मपर छः सौ पलाशपत्रोंको (मृतककी आकृतिके समान) बिछाकर अथवा कुशमय शरीरका निर्माण करके शिशु-भागपर शमी तथा मृगचर्म-भागपर अरणिके काष्ठको स्थापित करे। उसके दायें हाथके स्थानपर कुण्ड (स्थाली) और बायें हाथके स्थानपर उपभृत [यज्ञिपपात्र], पार्श्वभागमें उत्तुखल तथा पीठकी ओर भूसल रखे। तत्पश्चात् उस शवके वक्षःस्थलपर [सोमरस तैयार करनेके लिये प्रयोगमें आनेवाले] पत्थरको रखकर उसके मुखभागमें भूत-तण्डुल और तिल डालन

चाहिये। कानके पास प्रोक्षणीपात्र और नेत्रोंके सैनिकट आन्वस्थाली रखे। कान, नेत्र, मुख तथा नासिका-भागमें स्वर्ण-खण्ड रखनेका विधान है। इस प्रकार अग्निहोत्रके समस्त उपकरणोंके सहित उस अग्निहोत्रीका शवदाह करनेसे वह (मृत अग्निहोत्री) ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इस मन्त्रसे घृतकी एक आहुति देनी चाहिये।

हंस, सारस, क्राँच, चक्रवाक, कुक्कुट, मयूर और मेघका वध करनेवाला मनुष्य एक दिन तथा एक रात्रिके उपवासके पश्चात् पापसे शुद्ध हो जाता है। अन्य सभी पक्षियोंका वध करनेपर एक अहोरात्रमें शुद्धि होती है।

सभी प्रकारके चतुष्टय वशुओंका वध करनेपर जो पाप मनुष्यको लगता है, उसका अवमोचन खड़े होकर एक अहोरात्र उपवास कर [गायत्री] मन्त्रका जप करनेसे होता है।

शूद्रका वध करनेपर कृष्णघृत, वैश्यकी हत्या करनेपर अतिकृष्णघृत, क्षत्रियका वध करनेपर चाईस चान्द्रायणघृत एवं ब्राह्मणकी हत्या करनेपर तीस चान्द्रायणघृत करना चाहिये। (अध्याय १०७)

### बृहस्पतिप्रोक्त नीतिसार

सूतजीने कहा—हे 'ऋषियो! अब मैं 'अर्जुनाय' आदिपर आश्रित नीतिसार कह रहा हूँ, जो राजाओंके साथ ही अन्य सभीके लिये भी हितकर तथा पुण्य, आयु और स्वर्गादिको प्रदान करनेवाला है।

जो मनुष्य [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ-चतुष्टयकी] सिद्धि चाहता है, उसको सदैव सम्बन्धीकी ही संगति करनी चाहिये। दुर्जनोंके साथ रहनेसे इस लोक अथवा परलोकमें हित सम्भव नहीं है—

सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः।

नासद्भिर्निहल्लोकाय परलोकाय वा हितम्॥

(१०८।२)

शूद्रके साथ वार्तालाप और दुष्ट व्यक्तिका दर्शन नहीं करना चाहिये। शत्रुसे सेवित व्यक्तिके साथ प्रेम न करे और मित्रके साथ विरोध न करे। मूर्ख शिष्यको उपदेश देनेसे, दुष्ट स्त्रीका भरण-पोषण करनेसे तथा दुष्टोंका किसी कार्यमें

सहयोग लेनेसे विद्वान् पुरुष भी अन्तमें दुःखी हो जाता है। मूर्ख ब्राह्मण, बुद्ध-पराङ्मुख क्षत्रिय, विवेकरहित वैश्य और अधरसंबुद्ध शूद्रका परित्याग तो दूरसे ही कर देना चाहिये। कालकी प्रवृत्ततासे शत्रुके साथ संधि और मित्रसे विग्रह (शत्रुता) हो जाता है। अतः कार्य-कारण-भावका विचार करके ही परिणतजन अपना समय व्यतीत करते हैं।

समय प्राणियोंका घालन करता है। समय ही उनका संहार करता है। उन सभीके सोनेपर समय (काल) जागता रहता है। अतः समय बड़ा ही दुरतिक्रम है (अर्थात् समयको जीतना बड़ा ही कष्टसाध्य है)। समयपर ही प्राणोंके पराक्रमका क्षरण होता है। समय आनेपर ही प्राणी गर्भमें आता है। समयके आधारपर उसकी सृष्टि होती है और पुनः समय ही उसका संहार भी करता है। काल निश्चित ही नियमसे नित्य सूक्ष्म गतिवाला ही होता है तब भी हमारे अनुभवमें उसकी गति दो प्रकारसे होती है, जिसका अन्तिम परिणाम जगत्का संग्रह ही होता है। यह

१-यथाजाति भरण-पोषणका प्रयत्न करना चाहिये और यदि स्त्रीके दुष्ट स्वभावका भरण-पोषण कदापि असाध्य हो रहा है या पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था उच्छिन्न हो रही है, तब इस व्यवस्थाकी ध्वनमें रहना चाहिये।

गति स्थूल एवं सूक्ष्म-रूपमें दो प्रकारकी होती है।

ऋषियो! बृहस्पतिने इन्दसे इस नीतिसारका वर्णन किया था, जिसके कारण सर्वज्ञ होकर इन्दने दैत्योंका विनाश करके देवलोकका आधिपत्य प्राप्त किया था।

ब्राह्मणकल्प राजर्षियोंको नित्य देवता एवं ब्राह्मण आदिका पूजन करना चाहिये तथा महान् पातकोंको नष्ट करनेवाले अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये।

उत्तम प्रकृतिवाले सज्जनोंकी संगति, विद्वानोंके साथ सत्कथाका श्रवण और लोभरहित मनुष्यके साथ मैत्रीसम्बन्ध स्थापित करनेवाला पुरुष दुःखी नहीं होता<sup>१</sup>।

[दूसरेकी] निन्दा, दूसरेका धन-ग्रहण, परायी स्त्रीके साथ परिहास तथा परये घरमें निवास कभी नहीं करना चाहिये। हितकारी अन्य व्यक्ति भी अपने बन्धु हैं और यदि बन्धु अहितकर हैं तो वह भी अपने लिये अन्य है। शरीरसे ही उत्पन्न हुई व्याधि अहितकर होती है, किंतु धनमें उत्पन्न हुई औषधि उस व्याधिका निराकरण करके मनुष्यका हित-साधन करती है। जो मनुष्य सदैव हितमें तत्पर रहता है, वही बन्धु है। जो भरण-पोषण करता है, वही पिता है। जिस व्यक्तिकमें विश्वास रहता है, वही मित्र है और जहाँपर मनुष्यका जीवन-निर्वाह होता है, वही उसका देस है<sup>२</sup>।

जो आज्ञापालक है, वही वास्तविक भृत्य (सेवक) है; जो बीज अंकुरित होता है, वही बीज है; जो पतिके साथ प्रिय सम्भाषण करती है, वही वास्तविक भार्या है। पितृके जीवनपर्यन्त पिताके भरण-पोषणमें जो पुत्र लगा रहता है, वही वास्तवमें पुत्र है। जो गुणवान् है, उसीका जीवन वास्तवमें सार्थक है। जो धर्ममें प्रवृत्त है, वही जीवित है; जो गुण-धर्मविहीन है, उसका जीवन निष्फल है।

जो भार्या गृहकार्यमें दक्ष है, जो प्रियवादिनी है, जिसके पति ही प्राण हैं और जो पतिपरायणा है वास्तवमें वही भार्या है<sup>३</sup>। जो नित्य ज्ञान करके अपने शरीरको सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोंसे सुवासित करनेवाली है, प्रियवादिनी है, अल्पाहारी है, मित्रभाषिणी है, सदा सब प्रकारके मङ्गलोंमें युक्त है, जो निरन्तर धर्मपरायण है, निरन्तर पतिकी प्रिय है, सदा

सुन्दर मुखवाली है तथा जो ऋतुकालमें ही पतिके सहगमनको इच्छा रखती है, वही भार्या है।

—इन लक्ष्णोंसे समन्वित स्त्री समस्त सौभाग्योंकी अभिवृद्धिकारिणी होती है। जिस मनुष्यकी ऐसी भार्या है वह मनुष्य नहीं देवराज इन्द्र है।

जिस मनुष्यकी भार्या विरूप नेत्रोंवाली, पापिनी, कलहप्रिय और विवादमें बहु-चढ़कर बोलनेवाली है, वह पतिके लिये वास्तवमें वृद्धावस्था ही है, वास्तविक वृद्धावस्था वृद्धावस्था नहीं है। जिसकी भार्या परपुरुषका आश्रय ग्रहण करनेवाली है, दूसरेके घरमें रहनेकी आकांक्षा रखती है, कुकर्ममें संलग्न है तथा निर्लज्ज है, वह (पतिके लिये) साक्षात् वृद्धावस्था-स्वरूप है।

जिस पुरुषकी भार्या गुणोंका महत्त्व समझनेवाली, पतिका अनुगमन करनेवाली और स्वल्पसे भी स्वल्प वस्तुसे संतुष्ट रहनेवाली है; पतिके लिये वही सच्ची प्रियतमा है, सामान्य प्रिया नहीं है।

दुष्ट पत्नी, दुष्ट मित्र तथा प्रत्युत्तर देनेवाला भृत्य और सर्पवृद्ध धरमें निवास साक्षात् मृत्यु ही है।

मनुष्यकी दुर्जनियोंकी संगतिका परित्याग करके साधुजनोंकी संगति करनी चाहिये और दिन-रात्रि पुण्यका संघष करते हुए नित्य अपनी अनित्यताका स्मरण रखना चाहिये—

तत्र दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।

कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥

(१०८।१६)

जो स्त्री सर्पके कण्ठमें रहनेवाले विषके समान है, जो सर्पके फणोंके सदृश भयंकर है, जो रौद्ररसकी साक्षात् मूर्ति है, जो शरीरसे कृष्णवर्णकी है, जो रक्तके सदृश लाल-लाल नेत्रोंके द्वारा दूसरेके हृदयको भयभीत कर देनेवाली है, जो व्याघ्रके समान भयानक है, जो क्रोधवदना एवं प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाकी भाँति धधकनेवाली और काकके समान जिह्वास्तोतुष है, अपने पतिसे प्रेम न रखनेवाली है, प्रतिवचिन्तवाली तथा दूसरेके पुर (घर-नगर) आदिमें जानेवाली अर्थात् परपुरुषकी इच्छा रखनेवाली है, वह स्त्री

१-उत्तमैः सह साङ्गत्वं पण्डितैः सह सत्कथाम् । अनुष्ठीः सह मित्रत्वं कुक्ष्यो नावसीदति ॥ (१०८।१२)

२-परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः । अहितो देहोऽपि व्याधिर्हितमारण्यमीषधम् ॥

३-स बन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोषकः । तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देसो यत्र जीवति ॥ (१०८।१४-१५)

३-सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रियंवदा । सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिप्रसन्नः ॥ (१०८।१८)

कदापि सेव्य नहीं है।

दैवयश कभी अल्प सामर्थ्यवान् व्यक्ति भी शक्तिशाली हो सकता है, कुतन्त्र व्यक्ति भी कभी मुकुत कर सकता है, अग्रिममें कभी शीतलता भी आ सकती है, हिममें उष्णता भी आ सकती है; किंतु वेस्यामें [पुरुषविषयक]

अनुराग नहीं हो सकता।

घरके अंदर भयंकर सर्प देख लिये जानेपर, चिकित्सा होनेपर भी रोग बने ही रहनेपर, बाल्य-युवा आदि अवस्थासे युक्त यह शरीर कालसे आयुक्त है। यह समझनेपर भी कौन ऐसा व्यक्ति है, जो धैर्य धारण कर सकता है? (अध्याय १०८)

### नीतिसार-निरूपण

सूतजीने कहा—आपत्तिकालके लिये धनका संरक्षण करना चाहिये, स्त्रियोंकी रक्षाके लिये धनका उपयोग करना चाहिये एवं अपनी रक्षामें स्त्री एवं धन दोनोंका उपयोग करना चाहिये।

कुलकी रक्षाके लिये एक व्यक्तिका, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलका, जनपदके हितके लिये ग्रामका और अपने वास्तविक कल्याणके लिये पृथिवीका भी परित्याग कर देना चाहिये—

त्वजेदेकं कुलस्यार्थं ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत्।

ग्रामं जनपदस्यार्थं आत्मां पृथिवीं त्यजेत्॥

(१०९।२)

नरकमें निवास करना अच्छा है, किंतु दुश्चरित्र व्यक्तिके घरमें निवास करना उचित नहीं है। नरकवासके कारण पाप विनष्ट हो जाता है, किंतु दुश्चरित्र व्यक्तिके घरमें निवास करनेसे पापकी निवृत्ति नहीं होती। बुद्धिमान् पुरुष एक पौधको स्थिर करके ही दूसरे पौधको आगे बढ़ाता है। इसीलिये अगले स्थानकी परीक्षाके बिना पूर्वस्थानका परित्याग नहीं करना चाहिये।

दुष्टजनोंसे व्याप्त देश, उपद्रवग्रस्त निवासभूमि, कृपण राजा तथा मायावी मित्रका परित्याग कर देना चाहिये।

कंजूसके हाथमें पहुँचे हुए धन, अत्यन्त दुष्ट और आग्रही व्यक्तिके पास संचित ज्ञान, गुण एवं पराक्रमसे रहित रूप तथा आपत्तिकालमें पराङ्मुख मित्रसे मनुष्यको क्या लाभ हो सकता है? जो पदासीन (अधिकारयुक्त) व्यक्ति

है, उसके कभी न देखे गये बहुत-से व्यक्ति भी सहायक हो जाते हैं और सभी व्यक्ति मित्र हो जाते हैं। परंतु जब वही व्यक्ति पदच्युत और अर्धहीन हो जाता है तो उसके असमयमें स्वजन भी शत्रु हो जाते हैं।

आपत्कालमें मित्र, युद्धमें वीर, एकान्त स्थानमें शुचिता, विभक्के क्षीण हो जानेपर पत्नी तथा दुर्भिक्षके समय अतिधिप्रियताकी पहचान होती है—

आपत्सु मित्रं जानीयाव्रणे शूरं रहः शुचिम्।

भार्या च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम्॥

(१०९।८)

पक्षीगण फलरहित वृक्षोंका परित्याग कर देते हैं। सरस पक्षी सूखे हुए सरोवरको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। वेश्याएँ धनसे रहित होनेपर पुरुषको छोड़ देती हैं। मन्त्री भ्रष्ट राजाका त्याग कर देते हैं। भीरु बासी पुष्पको त्यागकर नवविहसित कुसुमपर चले जाते हैं और मृग जले हुए वनका परित्याग कर अन्यत्र आश्रय लेते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वार्थवश ही सभी प्राणी एक-दूसरेसे प्रेम करते हैं। वास्तवमें कौन किसका प्रिय है?

अर्थाप्रदानके द्वारा लोभी मनुष्यको, करबद्ध-प्रणाम निवेदनसे उदारचेता व्यक्तिको, प्रशंसा करनेसे मूर्ख व्यक्तिको और कात्तिक चर्चासे विद्वान् पुरुषको संतुष्ट किया जा सकता है। सद्भाव रखनेसे देवगण, सज्जनबृन्द एवं द्विजाति संतुष्ट होते हैं। इनके अतिरिक्त साधारण लोग खान-पान

१-वरं हि नरके वासी न तु दुश्चरिते गृहे । नरकान् शोचते पापं कुतूहलं निवर्तते ॥

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् । न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायत्नं त्यजेत् ॥ (१०९।३-४)

२-अर्थेन किं कृपणहस्तागतेन केन ज्ञानेन किं बहुशतापहसंकुलेन।

रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन विभवे किं व्यसनकालपराङ्मुखेन॥

अदृष्टपूर्वा बहवः सहायाः सर्वे पदस्यस्य भवन्ति मित्राः।

अर्धविहीनस्य पदच्युतस्य भक्त्यकाली स्वजनेऽपि शत्रुः॥ (१०९।६-७)

३-वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुक्लं सरः सरसा निर्द्वयं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भृष्टं दूषं यजिगः।

पुष्पं पुर्वुक्तिं त्यजन्ति मधुपाः दग्धं वनात्तं मृगाः सर्वैः कार्यवशाज्जने हि रम्ये कस्यास्ति को कल्पवृक्षः॥ (१०९।९)

तथा पण्डितजन मान-सम्मानसे संतुष्ट हो जाते हैं—

तुभ्यमर्घ्यप्रदानेन श्लाघ्यमञ्जलिकर्मणा।

मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च याथातथ्येन पण्डितम्॥

सद्भावेन हि तुभ्यन्ति देवाः सत्पुरुषा द्विजाः।

इतरे खाद्यपात्रेन मानदानेन पण्डिताः॥

(१०९।१०-११)

प्रणिपात-निवेदनसे उत्तम प्रकृतिवाले सज्जन पुरुषको, भेद-नीतिसे भूत तथा अपनी अपेक्षा कम पराक्रमवाले व्यक्तिको थोड़ा-बहुत देकर और अपने समान पराक्रमवालेको अपनी अपेक्षाके अनुकूल धन देकर वशमें किया जा सकता है। जिसका जैसा स्वभाव हो, उसके अनुरूप वैसा ही प्रिय वचन बोलते हुए उसके हृदयमें प्रवेशकर चतुर व्यक्तिको यथाशीघ्र उसे अपना बना लेना चाहिये।

नदी, नख तथा भृंग धारण करनेवाले पशु, हाथमें शस्त्र धारण किये हुए पुरुष, स्त्री और राजपरिवार विश्वास करनेयोग्य नहीं होते। जो मनुष्य बुद्धिमान् है, उसको अपनी धनक्षति, मनस्ताप, धर्ममें हुए दुःखरिच, वज्रता तथा अपमानकी घटनाको दूसरेके समक्ष प्रकाशित नहीं करना चाहिये—

नदीनां च नखीनां च भृङ्गिणां शम्भरपाणिनाम्।

विद्यासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥

अर्धनाशं मनस्तापं गृहे दुःखरितानि च।

वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत्॥

(१०९।१४-१५)

नीच और दुर्जन व्यक्तिका सांनिध्य, अत्यन्त विरह तथा सम्मान, दूसरेके प्रति स्नेह एवं दूसरेके घरमें निवास—ये सभी नारीके उत्तम शीलको नष्ट करनेवाले हैं।

किसके कुलमें दोष नहीं है, रोगसे कौन पीड़ित नहीं है, कौन दुःखी नहीं है और किसकी धन-सम्पत्तिमें सदैव विघटन रही है? इस पृथिवीपर धन प्राप्त कर कौन अहंकारसे भरा नहीं है, किसपर विपत्तिर्षी आयी नहीं हैं, स्त्रियोंके द्वारा किसका मन क्षुब्ध नहीं किया गया है और राजाओंका कौन प्रिय रहा है? कौन कालकवलित नहीं हुआ है, किस याचकका स्वाभिमान नष्ट नहीं हुआ है, कौन दुर्जनके जालमें फँसकर कुशलपूर्वक जीवनयापन कर

सकता है? (अर्थात् कोई नहीं कर सकता।)

जिस मनुष्यके मित्र, स्वजन, बन्धु-बान्धव नहीं हैं, जिसके पास अपनी बुद्धि नहीं है, वह कैसे अपने जीवनमें सफल हो सकता है और जिस कर्मके सम्पन्न होनेपर भी फलका उदय नहीं दीख रहा है, उस कर्मके अनुष्ठानसे क्या लाभ? ऐसे ही जो सम्पत्ति परिणाममें बहुत बड़ा दुःख देनेवाली है, उसका संग्रह कौन बुद्धिमान् व्यक्ति करेगा?

जिस देशमें व्यक्तिको सम्मान न मिले, आदर भी न मिले, अपने बन्धु-बान्धव भी सुलभ न हों और विद्या-लाभकी भी सम्भावना न बनती हो, उस देशका परित्याग कर देना चाहिये।

जिस धनके लिये राजा और चोरसे भय नहीं है, जो धन मरनेपर भी मनुष्यका साथ नहीं छोड़ता, उस धनका उपार्जन करना चाहिये। प्राणोंको भी संकटमें डाल देनेवाले परिक्रमसे जिस धनका अर्जन किया जाता है, उस धनको तो उल्लासिकारी लोग यथोचित विभागके साथ अपने काममें ले लेते हैं; परंतु प्राणोंको संकटमें डालकर धनार्जनके लिये परिश्रम करनेवाला व्यक्ति धनके लक्ष्ममें त्रिन पाशोंको करता है, वे पाप ही उसकी धरोहर बनकर उसकी नरक-यातनाके अथवा कुत्सित योगिके कारण बनते हैं।

संचित किया हुआ तथा बार-बार विचार करके सुरक्षित रखा हुआ, कदर्य (कृपण)—का धन चूहेके द्वारा एकत्रित किये गये धनके तुल्य है। ऐसा धन दुःख देनेके लिये ही होता है। उपार्जनकर्ताको उससे कोई भी सुख प्राप्त नहीं होता। ऐसा व्यक्ति मात्र धनार्जनका कष्ट ही भोगता है।

ऐसे ही व्यक्ति जन्मान्तरमें दरिद्र होनेके कारण नग्न होकर अनेक प्रकारके व्यसनसे व्रस्त हो रुखे स्वभाववाले हो जाते हैं तथा हाथमें छप्पर लेकर घर-घर भीख माँगते हैं और यह लोगोको बताते हैं कि दान न देनेवालेको ऐसा ही फल मिलता है। ऐसे भिक्षुक कुछ दीजिये, कुछ दीजिये—ऐसी बार-बार याचना करते हुए संसारको यह शिक्षा प्रदान करते हैं कि दान न देनेवाले मनुष्यकी यही दशा होती है। आपकी भी मेरी-जैसी दुर्दशा न हो, इसलिए आपको दान देना चाहिये<sup>१</sup>।

१-कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिरा को न पीडितः। केन न व्यसनं प्राणं त्रिषः कस्य निन्तराः॥

कोऽर्थं प्राप्य न गर्वितो भुवि नरः कस्याप्यदो रागताः स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञो त्रिषः।

कः कालस्य न गोचरात्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं को वा दुर्जनकानुगुनचित्तितः क्षेमेण यातः पुमान्॥ (१०९।१७-१८)

२-शिक्षयन्ति च याचन्ते देहीति कृपणा जनाः। अवस्थंयन्तानस्य मा भूदेवं भयान्वपि॥ (१०९।२५)



कृपण अपने द्वारा संचित धन यज्ञोंमें नहीं लगा पाता है और अपने द्वारा मौगकर इकट्ठा किये धनको गुणवानोंको भी नहीं देता है। इस प्रकारका कृपणके द्वारा सुरक्षित धन चोर और राजाके काममें ही आता है। कृपणका धन देखत, ब्राह्मण, बन्धु तथा आत्महितके लिये नहीं होता, वह तो अग्नि, चोर अथवा राजाके लिये होता है। अल्पतः कहसे अर्जित किया गया धन, धर्मका अतिक्रमण करके अर्जित किया गया धन अथवा शत्रुको साष्टाङ्ग प्रणाम करके और उसकी अधीनता स्वीकार करके प्राप्त किया गया धन—इस प्रकारका धन तुझे कभी प्राप्त न हो।

विद्याका अभ्यास न करनेसे वह विनष्ट हो जाती है। शक्ति रहते हुए फटे-पुराने, मैले-कुचैले वस्त्रोंको धारण करनेवाली स्त्रियाँ सौभाग्यकी रक्षा नहीं कर पाती, सुपाण्य भोजनसे रोग नष्ट हो जाता है और चातुर्यपूर्ण नीतिसे शत्रुका विनाश हो जाता है।

चोरका वध ही उसका दण्ड है। दुष्ट मित्रके लिये समुचित दण्ड उसके साथ अल्प जार्जलाप करना है। स्त्रियोंका दण्ड उनसे पृथक् सम्पादन करने तथा ब्राह्मणके लिये दण्ड निमज्जन न देना है।

दुर्जन, शिल्पकार, दास तथा दुष्ट एवं डोलक आदि वाद्य और स्त्री आदि सम्पत्ति अनुशासनसे ही मृदु-स्वभावको प्राप्त करते हैं। ये सत्कारमात्रसे मृदु स्वभाववाले नहीं हो पाते।

कार्यमें संलग्न करनेसे भूख, दुःख होनेपर बन्धु-बान्धव, विपत्तिकालमें मित्र तथा ऐश्वर्यके नष्ट होनेपर स्त्रीके स्वभावकी परीक्षा करनी चाहिये—

जानीयात्प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे।

मित्रमापदि काले च भार्या च विभक्तव्यये॥

(१०९।३२)

पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका आहार दुग्धा, बुद्धि चौगुनी, कार्यकी क्षमता छःगुनी और कामवासना आठगुनी अधिक मानी गयी है। स्वप्नसे निद्राको नहीं जीता जा सकता, कामवासनासे स्त्रीपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती, ईधनसे अग्निको तृप्त नहीं किया जा सकता तथा मद्यसे

प्यास नहीं बुझायी जा सकती। मांसयुक्त शिथिल भोजन, नाना प्रकारकी मदिराओंका पान, सुगन्धित द्रव पदार्थोंका विलेपन, सुन्दर वस्त्र और सुवासित माल्याभरण—ये स्त्रियोंकी कामवासनाकी अभिवृद्धि करते हैं। जैसे लकड़ियोंके अधिक-से-अधिक ढेरको प्राप्त करके भी अग्नि संतुष्ट नहीं होती; नदीसमूहके मिलनेपर भी समुद्र तृष्णाहित होकर संतुष्ट नहीं होता; यमराज सभी प्राणियोंका संहार करके भी आत्मसंतुष्टि प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं; ऐसे ही नारी असंख्य पुरुषोंके साथ सम्पर्क करके भी संतुष्ट नहीं होती।

सिद्ध व्यक्ति (सुशील), अभीष्ट-सिद्धि, प्रियवचन, सुख, पुत्र, जीवन और देवगुरुसे प्राप्त आशीर्वाचनसे मनुष्यकी इच्छाएँ परिपूर्ण नहीं होती, इनके लिये अभिलाषा बढ़ती ही रहती है। धनके संग्रहसे राजा, नदियोंकी जलराशिसे समुद्र, सम्भाषणसे विद्वान् एवं राजदर्शनसे प्रजाके नेत्र संतुष्ट नहीं हो पाते।

अपने विहित कर्म तथा धर्माचरणका पालन करते हुए जीविकोपार्जनमें तत्पर, सदैव शास्त्र-चिन्तनमें रत तथा अपनी स्त्रीमें अनुरक्त, जितेन्द्रिय और अतिविसेवामें निरत वेद पुरुषोंको तो धर्म भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है<sup>१</sup>।

जिस सत्कर्मनिरत पुरुषके पास मनीऽनुकूल, सुन्दर वस्त्राभूषणसे अलंकृत स्त्री है, यदि वह व्यक्ति उसके साथ अपने भवनकी अटारीपर सुखपूर्वक निवास करता है तो उसके लिये यहाँपर स्वर्गका सुख है।

जो स्त्रियाँ स्वभावसे ही धर्म-विरुद्ध आचरण करनेवाली एवं पतिके प्रतिकूल व्यवहार रखनेवाली हैं, वे स्त्रियाँ न धन आदिके दान, न सम्मान, न सरल व्यवहार, न सेवाभाव, न शस्त्र-भय और न शास्त्रोपदेशसे ही अनुकूल की जा सकती हैं, वे तो सदा प्रतिकूल ही रहती हैं<sup>२</sup>।

विद्यार्जन, अर्थ-संग्रह, पर्वतारोहण, अभीष्ट-सिद्धि तथा धर्माचरण—इन पाँचोंको धीरे-धीरे प्राप्त करना चाहिये।

देवपूजादिक कर्म, ब्राह्मणको दान, गुणवती विद्याका संग्रहण तथा सन्मित्र—ये सदा सहायक होते हैं। जिन्होंने कल्पकालसे विद्यार्जन नहीं किया है, जिनके द्वारा युवावस्थामें

१-स्वकर्मधर्माजितजीवितानां शास्त्रेषु द्यौषु सदा रतानाम्।

जितेन्द्रियाणामतिविश्रयाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्॥ (१०९।३३)

२-न दानेन न मानेन नार्जनेन न सेवायाः न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विभक्ताः स्त्रियः॥ (१०९।३५)

धन और स्त्रीकी प्राप्ति नहीं की जा सकती है, वे इस संसारमें शोकके पात्र हैं और मनुष्यरूप धारण करके पशुवत् विचरण करते हुए दुःखसे परिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

विद्याके उपासकको अध्ययन-कालमें भोजनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। विद्यार्थीको विद्यार्जनके लिये गरुडके समान सुदूर देशको यथाशीघ्र पार कर लेना चाहिये।

जो बाल्यावस्थामें विद्याध्ययन नहीं करते हैं और फिर युवावस्थामें कामातुर होकर यौवन तथा धनको नष्ट कर देते हैं, वे वृद्धावस्थामें चिन्तासे जलते हुए शिशिरकालमें कुहरेसे झूलसनेवाले कमलके समान संतप्त जीवन व्यतीत करते हैं।

शुष्क तर्क स्वयंमें अप्रतिष्ठित है, अतः किसी सिद्धान्तकी स्थापना केवल तर्कके द्वारा नहीं हो सकती। कुतियों भी

अनेक प्रकारकी हैं। ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जो भिन्न-भिन्न प्रसंगोंमें विभिन्न सिद्धान्तोंका निर्देश न करे। इसीलिये धर्मका तत्त्व न तर्कोंमें निहित है, न श्रुतियोंमें निहित है, अपितु आत्माकी प्रज्ञामें निहित है। फलतः शिष्ट लोग जिस मार्गका अनुसरण करते हैं, उसी मार्गको अपना धर्म समझना चाहिये।

आकार, संकेत, गति, चेष्टा, वाणी, नेत्र और मुखकी भावभंगिमासे प्राणीके अन्तःकरणमें छिपा हुआ भाव प्रकट होता रहता है<sup>१</sup>। विद्वान् वह है जो दूसरेके द्वारा अकथित विषयको भी जान लेता है। बुद्धि वह है जो दूसरोंके संकेतमात्रसे भी वास्तविकताको समझ ले। कथित शब्दका अर्थ तो पशु भी जान लेते हैं। मनुष्यके दिखाये गये मार्गका अनुसरण तो हाथी और घोड़े भी करते हैं।

(अध्याय १०९)

## नीतिसार

श्रीसूतजीने कहा—जो व्यक्ति सुनिश्चित अर्थका परित्याग कर अनिश्चित पदार्थोंका सेवन करता है, उसका सुनिश्चित अर्थ विनष्ट हो जाता है और अनिश्चित पदार्थ तो नष्ट होता ही है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते।

ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेव च॥

(११०।१)

वावैभवसे रहित व्यक्तिकी विद्या और कार्य पुरुषके हाथमें विद्यमान अस्त्र वैसे ही उन्हें संतुष्टि नहीं प्रदान करते, जैसे अपने अंधे पतिके साथ रहती हुई उसकी स्त्री अपने रूप-लावण्यसे पतिकी संतुष्टि नहीं कर पाती।

सुन्दर भोग्य पदार्थ भी उपलब्ध हो और भोजनकी लालिष भी हो, रूपवती स्त्री भी हो और सहवास करनेकी क्षमता भी हो तथा धन-वैभव भी हो और दान करनेकी सामर्थ्य भी हो—ये अल्प तपके फल नहीं हैं।

वेदोंका फल अग्निहोत्र है, विद्याका फल शील और सदाचार है, स्त्रीका फल रति और पुत्रवान् होना है तथा धनका फल है दान और भोग।

विद्वान् व्यक्तिकी श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न कुरूप कन्याके साथ भी विवाह कर लेना चाहिये, किंतु रूपवती एवं अच्छे लक्षणोंवाली उत्तम कुलसे हीन कन्या उसके लिये कभी भी ग्राह्य नहीं है।

मनुष्यको उस अर्थसे क्या लाभ है, जिस अर्थका साथ अनर्थसे होता है? क्योंकि कोई व्यक्ति सर्पके फणपर विद्यमान मणिको प्राप्त करना नहीं चाहता।

अग्निहोत्रके लिये हविष्यान्न दुष्ट कुलसे भी ग्राह्य है। बालकसे भी सुधाक्षित ग्रहण करना उचित है। अमेध्य अर्थात् अपवित्र स्थानसे स्वर्ण और हीन कुलसे स्त्रीरूपी रत्न भी मनुष्यके लिये संग्राह्य है। विषसे अमृत ग्राह्य है अपवित्र स्थलसे भी स्वर्ण ग्राह्य है तथा नीच व्यक्तिसे श्रेष्ठ विद्या भी ग्रहण करने योग्य है और दुष्कुलसे भी स्त्री-रत्न ग्राह्य है।

राजाके साथ मित्रभाव और सर्पका विषहीन होना सम्भव नहीं है। वह कुल पवित्र नहीं रहता, जिस कुलमें स्त्रियाँ ही उत्पन्न होती हैं। अपने कुलके साथ भगवद्भक्तका सम्पर्क कर देना चाहिये, पुत्रकी विद्याध्ययनमें लगाना

१-तर्कऽप्रतिष्ठा कुतयो विभिन्नाः नासत्पुण्यस्य मतं न धिक्नु।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो देन पाठः स पन्थाः ॥ (१०९।५१)

२-अकारिनिर्गतां चोदयन् भाषितेन च। नेत्रकक्ष्यविशेषात् सन्निवृत्तमर्थं मनः ॥ (१०९।५२)

चाहिये, शत्रुको व्यसनमें जोड़ देना चाहिये तथा जो अपने इष्टपुरुष हैं, उन्हें धर्ममें नियोजित करना चाहिये।

विद्वान् मनुष्यको नीकर और आभूषणोंको यथोचित स्थानपर नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि चूड़ामणि कभी चरणमें सुशोभित नहीं होती है। चूड़ामणि, समुद्र, अग्नि, घण्टा, अखण्ड अम्बर और राजा—ये सिरपर धारण करने योग्य होते हैं अर्थात् आदरणीय हैं। प्रमादवश भी इन्हें चरणमें स्थान नहीं देना चाहिये। मनस्वी व्यक्तिकी पुष्प-स्तवकके समान दो ही स्थितियाँ होती हैं—या तो वह सबके सिरपर ही रहता है अथवा वनमें ही चला जाता है। मणि स्वर्णभूषणमें संनिविष्ट करनेके योग्य होती है। यदि वह मणि लाखसे निर्मित आभूषणमें संनिहित की जाती है तो उस कुसंगतिके कारण वह न स्वयं संशुद्ध होकर विलाप करती है और न सुशोभित ही होती है। अश्व, गज, लौह, काष्ठ, पाषाण, वस्त्र, नारी, पुरुष तथा जल—इनमें परस्पर बहुत बड़ा अन्तर है।

तिरस्कृत होनेपर भी धैर्यसम्पन्न सज्जन व्यक्तिके गुण कभी भी आन्दोलित नहीं होते। दुष्टके द्वारा नीचे कर दी गयी अग्निकी भी शिक्षा कभी नीचे नहीं जाती।

उत्तम जातिका अश्व अपने स्वामीका चाबुक-प्रहार, सिंह हाथीकी गर्जना और वीर पुरुष शत्रुपक्षकी भयंकर गर्जना सहन नहीं कर सकता।

यदि सज्जन मनुष्य दुर्भाग्यवश कदाचित् वैभवाहित हो जाता है तो भी वह न तो दुष्ट जनोंकी सेवा करनेकी अभिलाषा रखता है और न नीच जनोंका सहारा लेता है। भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी सिंह घास नहीं खाता, अपितु हाथियोंके गर्म रक्तका ही पान करता है।

जिस मित्रमें एक बार भी दुष्ट भाव परिलक्षित हो जाता है और पुनः उसीसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करनेकी जो इच्छा करता है, वह मानो अश्वतरी (खच्चरी)—के द्वारा धारण किये गये गर्भके सदृश मृत्पुको ही प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखता है।

शत्रुकी मृदुभाषी संतानोंकी उपेक्षा करना बुद्धिमान् जाना चाहिये। (अध्याय ११०)

जनोंके लिये उचित नहीं है; अर्थात् प्रिय बोलनेवाले शत्रुपुत्रोंसे भी सावधान रहना चाहिये; क्योंकि समय आनेपर वे ही असह्य दुःस्व-प्रदाता एवं विषपात्रके समान भयंकर विपत्ति उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं।

उपकारके द्वारा बशीभूत हुए शत्रुसे अन्य शत्रुको समूल उखाड़ फेंकना चाहिये, क्योंकि पैरमें गड़े हुए कटिको मनुष्य हाथमें लिये हुए कटिसे ही निकालता है।

सज्जन व्यक्तिको अपकारपरायण मनुष्यके नाशकी चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह नदीके तटपर अवस्थित वृक्षोंकी भाँति स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

अर्थका रूप धारण करनेवाले अनर्थ और अनर्थका रूप धारण करनेवाले अर्थ—ये दैवाधीन पुरुषके विनाशके लिये होते हैं। कभी-कभी कार्यकालके भेदसे निष्पाप बुद्धि उत्पन्न हो जाती है; क्योंकि दैवके अनुकूल रहनेपर पुरुषका सर्वत्र कल्याण ही होता है। धनार्जन करते समय, किसी भी प्रकारका प्रयोग करते समय, अपने कार्यको सिद्ध करते समय, भोजनके समय और सांसारिक व्यवहारके समय मनुष्यको लज्जाका परिणाम कर देना चाहिये।

जिस देश, प्रान्त, नगर एवं ग्राममें धनवान्, श्रोत्रिय, राजा, नदी तथा वृक्ष—ये पाँच नहीं रहते हैं, वहाँ बुद्धिमान् व्यक्तिका रहना उचित नहीं है<sup>१</sup>। जहाँ आना-जाना न हो, जहाँ अनुचित आचरणकी रीकनेके लिये भयकी सम्भावना न हो, लज्जा न हो तथा दानकी प्रवृत्ति न हो, वहाँ तो एक भी दिन निवास नहीं करना चाहिये। जिस देश-प्रान्तादिमें दैवज्ञ, वेदज्ञ, राजा, नदी एवं सज्जन व्यक्ति—इन पाँचका निवास नहीं है, वहाँपर निवास नहीं करना चाहिये।

हे शौनक! एक ही व्यक्तिमें सभी ज्ञान प्रतिष्ठित रूपमें नहीं रहते हैं। इसलिये यह सर्वमान्य है कि सभी व्यक्ति सब कुछ नहीं जानते हैं और कहींपर भी सभी सर्वज्ञ नहीं हैं। इस संसारमें न तो कोई सर्वविद् है और न कोई अत्यन्त मूर्ख ही है। उत्तम, मध्यम तथा निम्नस्तरीय ज्ञानसे जो व्यक्ति जितना जानता है, उसे उतनेमें विद्वान् समझा

## राजनीति-निरूपण

**सुतजीने कहा—**राजाको चाहिये कि वह सदैव सबकी भलीभाँति परीक्षा करता रहे। सत्यपरायण तथा धर्मपरायण राजा ही नित्य राज्यका पालन करनेमें समर्थ होता है, उसे चाहिये कि वह शत्रुसेनाओंको जोतकर धर्मपूर्वक पुथिवीका पालन करे।

राजाको जंगलमें मालीके समान पुष्पवृक्षसे पुष्प ग्रहण करना चाहिये, किंतु कोयला बनानेवालेके समान वृक्षका मूलोच्छेद नहीं करना चाहिये। अर्थात् राज्यरूपी वनमें राजाको अपनी प्रजासे कर ग्रहण करते समय मालीके सदृश आचरण करना चाहिये, वृक्ष काटकर कोयला बनानेवाले अंगारकका आचरण उसके लिये सर्वथा त्याग्य है।

जिस प्रकार दूध दुहनेवाले दुग्धका पान करते हैं, किंतु विकृत हो जानेपर उसका उपभोग नहीं करते, उसी प्रकार राजाओंको चाहिये कि वे परराष्ट्रका उपभोग तो करें, किंतु उसको दूषित न करें।<sup>१</sup> जिस प्रकार दुग्ध-प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य गौके स्तनसे दुग्ध तो निकाल लेते हैं, परंतु उसके स्तनको काटते नहीं; इसी प्रकार राजाके द्वारा प्रयुक्त इस विधिसे अर्थात् कर-रूपमें सम्पूर्ण धन ग्रहण करनेसे पीड़ित राष्ट्र अभ्युदयको प्राप्त नहीं करता है। अतएव राजाको सब प्रकारसे पुथिवीका पालन करना चाहिये; क्योंकि ऐसे राजाके पास ही भूमि, कीर्ति, आयु, प्रतिष्ठा और पराक्रम विद्यमान रहते हैं।

नित्य भगवान् विष्णुकी पूजा करके जो धार्मिक राजा गौ-ब्राह्मणके हितमें रत रहता है, वही जितेन्द्रिय राजा प्रजाके पालनमें समर्थ हो सकता है।

ऐश्वर्य अस्थायी होता है। अतः प्राप्त हुए ऐश्वर्य ऐश्वर्यमें आसक्त न होकर राजाको धर्माचरणमें अपनी बुद्धिको लगाना चाहिये। धन-सम्पत्ति आदि तो क्षणभरमें ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि धन आदि अपने अधीन नहीं हैं।<sup>२</sup> मनको रमणीय लगनेवाली स्त्रियाँ सत्य हो सकती हैं, विभूतियाँ (धन-सम्पत्ति) भी सत्य हो सकती हैं, किंतु यह जीवन तो स्त्रीके कटाक्षपातकी भाँति वंचल (असत्य) है। शरीरमें स्थित वृद्धावस्था सिंहनौके समान भयभीत करती

रहती है, रोग शत्रुकी भाँति शरीरमें उत्पन्न होते रहते हैं। आयु फूटे हुए घड़ेसे निकलते हुए जलके सदृश क्षीण होती जाती है, फिर भी इस संसारमें कोई भी मनुष्य आत्महित-चिन्तनमें प्रवृत्त नहीं होता।<sup>३</sup>

हे मनुष्यो! इस क्षणभंगुर जीवनमें आप सब निश्चिन्त क्यों हैं? दूसरेका हित करना ही उचित है, जो बादमें कल्याणकारी है। इस परोपकार-धर्मसे विपरीत कामिनियोंके मन्द-मन्द कटाक्षपातसे कामपीडित आप सबके द्वारा जो आनन्द प्राप्त किया जाता है, क्या उसीमें आप सभीका हित संनिहित है? ऐसे आचरणमें तो कभी भी हित सम्भव नहीं है। अतः इस प्रकारका पाप न करें। आप सभीको सदैव ब्राह्मण, विष्णु और उस परात्पर ब्रह्मका विधिवत् निरन्तर भजन करना चाहिये; क्योंकि जलमें दूबे हुए घटके समान आयु मृत्युके बहाने एक दिनमें ही समाप्त हो सकती है, अथवा वह धीरे-धीरे नष्ट होती जाती है।

जो मनुष्य पराधी स्त्रियोंमें मातृभाव रखता है, जो दूसरेके दृष्टियोंको मिट्टी-पत्थारके डेलैके समान नगण्य समझता है और सभी प्राणियोंमें अपने ही स्वरूपका दर्शन (आत्मदर्शन) करता है, वही विद्वान् है—

मातृवत्परादोषु परद्रव्येषु लोह्वत्॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

(१११।१२)

हे ब्राह्मणो! सत्य तो यही है कि राजागण अपनी आत्माके लिये ही राज्यप्राप्तिकी कामना करते हैं और इसीलिये सभी कार्यमें अपनी वाणीका उत्संघन भी सहन नहीं करते हैं तथा धनका संचय भी इसीके लिये करते हैं, किंतु राजाको भी अपनी रक्षा करके शेष ऋषे हुए धनका उपयोग द्विजस्त्रियोंके भरण-पोषणमें करना चाहिये।

ब्राह्मणोंका मूल मन्त्र ओंकार है। इस ओंकारकी उच्चारणसे राष्ट्रको अभिवृद्धि होती है और योगसे राजा बुद्धिको प्राप्त करते हैं और किसी भी प्रकारकी व्याधियों उसे बाँध नहीं सकती।

१-दोग्धारः शीरभुजाना विकृतं तन्न भुज्जे। पराष्ट्रं महीकलैषौक्यं न च दुष्पेत्॥ (१११।४)

२-ऐश्वर्यमधुवं प्राप्य राजा धर्मे नतिं करोत्। क्षयं विधुको वशमेवावस्थानं धर्मादिकम्॥ (१११।८)

३-सत्यं मनोरमाः कथाः सत्यं रम्यं विभूतयः। किंतु नै वनिताचन्द्रबद्धिलोसं हि जीयिष्युः॥

व्याश्रीव तिष्ठति जगः परितर्जयन्ती रोगाश्च स्रज्ज इव प्रभवन्ति शत्रेः।

आयुः परिसर्जति धिन्मघटादिवज्रम्भो लोको न कायमहितमाचारार्थं कश्चित्॥ (१११।९-१०)



सब प्रकारसे असमर्थ मुनिजन भी द्रव्योपाजन करते हैं, फिर पुत्रवत् प्रजाका पालन करते हुए अर्थका संग्रह करनेवाले राजाके विषयमें क्या कहा जा सकता है? धनसंचय करना तो उसके लिये आवश्यक ही है।

जिसके पास धन है, उसीके मित्र एवं बन्धु-बान्धव हैं। वही इस संसारमें पुरुष है और वही धन-सम्पन्न व्यक्ति विद्वान् है। धनरहित होनेपर मनुष्यको मित्र, पुत्र, स्त्री तथा परिजन छोड़ देते हैं। धनवान् होनेपर पुनः ये सभी उसीका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं; क्योंकि इस संसारमें धन ही पुरुषका बन्धु है—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।

यस्यार्थाः स पुत्रास्तोके यस्यार्थाः स च परिजतः॥

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दासश्च सुहृन्बन्धुश्च।

ते चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ति ह्यथैव हि लोके पुरुषस्य बन्धुः॥

(१११।२७-३८)

जो राजा शास्त्रोंके ज्ञानसे शून्य है, वह वैयोंके रहते हुए भी अन्धोंके समान है; क्योंकि अन्धा व्यक्ति तो अपने गुप्तघरके द्वारा देख सकता है, किन्तु शास्त्र-ज्ञानसे रहित राजा देखनेमें असफल ही रहता है—

अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविपर्यितः।

अन्धः पश्यति चारेण ह्यस्रवद्दीनो न पश्यति॥

(१११।३९)

जिस राजाके पुत्र, भृत्य, मन्त्री एवं पुरोहित तथा इन्द्रिज प्रसूता रहती हैं अर्थात् अपने-अपने कर्तव्यके पालनमें स्ववधान नहीं रहती हैं, उसका राज्य निश्चित हो चिरस्थायी नहीं होता। जिस [ज्ञान-सम्पन्न] व्यक्तिने [बुद्धिमान् तथा आलस्यरहित] पुत्र, भृत्य एवं परिजन—इन तीनोंको योग्यरूपमें प्राप्त किया है, वह राजाओंके सहित चारों समुद्रसे संयुक्त पृथिवीपर विजय प्राप्त कर लेता है।

जो राजा शास्त्रसम्मत और युक्तियुक्त सिद्धान्तोंका उल्लंघन करता है, वह निश्चित ही इस लोक एवं परलोक—दोनोंमें नष्ट हो जाता है<sup>१</sup>।

आपत्कालके आनेपर राजाको दुःखी नहीं होना चाहिये, उसे समबुद्धि, प्रसन्नात्मा तथा सुख-दुःखमें समान रहना

चाहिये। धैर्यवान् मनुष्य कष्ट प्राप्त करके भी दुःखी नहीं होते हैं, क्योंकि राहुके मुखमें प्रविष्ट होकर चन्द्र क्या पुनः उदित नहीं होता?<sup>२</sup> शरीरके लालन-पालनमें अनुरक्त जनोंके प्रति धिक्कार है। धिक्कार है। मनुष्यको धनहीन होनेसे क्षीण हुए शरीरके प्रति भी खेद नहीं करना चाहिये। यह तो सुना ही गया है कि [पतिव्रता] पत्नीसहित पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आदिने आपत्कालके दुःखसे मुक्त होकर पुनः सुख प्राप्त किया था। अतः अनुकूल समयकी प्रतीक्षा धैर्यके साथ करनी चाहिये।

गन्धर्व-विद्या, वाद्य, गणिकगण, धनुर्वेद और अर्धशास्त्रकी रक्षा राजाको करनी चाहिये, क्योंकि ये सभी अपनी-अपनी जगह राहुके लिये उपयोगी हैं। जो राजा भृत्यपर अकारण क्रोध करता है, वह काले भयंकर नागसे छोड़े गये विषसे ग्रस्त उन्मादको प्राप्त करता है।

राजाको कभी भी श्रोत्रियके प्रति, भृत्यके प्रति किंबहुना मानवमात्रके प्रति न कभी चपलदृष्टि रखनी चाहिये और न कभी भी मिथ्या वाक्यका प्रयोग करना चाहिये। जो राजा अपने योग्य भृत्य एवं योग्य स्वजनके बलापर गर्वित होकर शासनकी उपेक्षा करता है और मदान्ध होकर विलासी जीवन व्यतीत करता है, वह अति शीघ्र शत्रुओंमें पराजित हो जाता है।

राजाको क्रोधातुर होकर अहंकारमें भूकुटि देदी नहीं करनी चाहिये। जो राजा दोषरहित भृत्योंपर अधर्मपूर्वक शासन करता है, इस लोकमें उसके सभी विलासपूर्ण सुखोपभोग नष्ट हो जाते हैं। राजाको विलासी वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिये, परंतु धार्मिक राजाके सुखमें प्रवृत्त होनेपर भी उसके शत्रु युद्धमें पराजित हो जाते हैं।

उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम—ये छः प्रकारके जो साहस कहे गये हैं, इनसे समन्वित राजासे देवता भी सशक्त रहते हैं। उद्योग करनेपर यदि व्यक्तिको कार्यमें सफलता प्राप्त नहीं होती है तो उसमें भाग्य ही कारण है, तथापि मनुष्यको सदा पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। प्रयत्नसे विरत नहीं होना चाहिये, क्योंकि इस जन्मका ही पौरुष अगले जन्ममें भाग्य बनता है।<sup>३</sup> (अध्याय १११)

१-लंघयेच्छास्त्रपुक्तानि हेतुपुक्तानि यानि च। स हि कल्पति वै राजा इह लोके परत्र च॥ (१११।२२)

२-धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः। प्रविश्य कष्टं राहोः किं नोदेति पुनः शशी॥ (१११।२४)

३-उद्योगः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः। बहुविधो यस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शंक्ते॥

उद्योगेन कृते कार्ये सिद्धिरस्य न विद्यते। दैवं तस्य प्रमाणं हि कर्तव्यं पौरुषं सदा॥ (१११।३२-३३)

## राजाद्वारा सेवकोंके लिये अपनायी जाने योग्य भृत्यनीतिका निरूपण

श्रीमृतजीने कहा—उत्तम, मध्यम और अधम-भेदसे भृत्योंके तीन प्रकार जानना चाहिये। अतः उनकी योग्यताके अनुसार ही उन्हें विभिन्न कार्योंमें लगाना चाहिये।

सर्वप्रथम भृत्योंकी परीक्षण-विधिको कहा जा रहा है, साथ ही जिस-जिस भृत्यका जो गुण है, उसका भी वर्णन किया जा रहा है।

धर्पण, छेदन, तापन और ताडन—इन चार विधियोंसे जिस प्रकार सुवर्णकी परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार राजाको व्रत, शील, कुल तथा कर्म—इन चार प्रकारोंसे भृत्यको परीक्षा करनी चाहिये।

कुल, शील तथा सदगुणसे सम्पन्न, सत्य-धर्मपरायण, रूपवान् तथा प्रसन्नचित्त मनुष्यको कोषाध्यक्षके पदपर नियुक्त करना चाहिये। द्रव्योंके मूल्य और रूपकी परीक्षा करनेमें कुशल व्यक्तिको रत्न-परीक्षकके पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो सैन्य-शक्तिके बलाबलका परिज्ञान प्राप्त करनेमें निपुण हो, उसीको सेनाध्यक्ष बनाना चाहिये।

जो व्यक्ति संकेतमात्रसे स्वामीके अभिप्रायको समझनेमें समर्थ है, बलवान् तथा सुन्दर स्त्रीरत्ना है, प्रमादहीन एवं जितेन्द्रिय है, उसकी प्रतीहारके पदपर नियुक्त करनेके लिये कहा गया है। जो मेधावी, वाक्पटु, विद्वान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और सभी शास्त्रोंकी सम्यक् आलोचना करनेवाला हो, वही सज्जन व्यक्ति लेखकके पदका अधिकारी है। जो बुद्धिमान्, विवेकशील, दूसरेके चित्तका परिज्ञाता, शूर तथा यथोक्तवादी है, उसे दूतके पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो मनुष्य समस्त स्मृतियों और शास्त्रोंका पण्डित है, जितेन्द्रिय, शीर्ष एवं पराक्रमादि गुणोंसे सम्पन्न है, उसे धर्माध्यक्षके पदपर नियुक्त करना चाहिये।

जिसके पितृ-पितामह आदिकी परम्परामें रसोद्भेदका ही काम होता रहा हो और जो विशेषरूपसे पाकशास्त्रका जाननेवाला, सत्यवादी, पवित्र एवं दक्ष हो, ऐसा पुरुष रसोद्भेदके लिये उचित होता है।

जो आयुर्वेदशास्त्रका सम्यक् ज्ञान रखनेवाला, सौम्य स्वरूपसे सम्पन्न, सभीके लिये देखनेमें प्रिय लगनेवाला, अयु, शील और गुणोंसे सम्पन्न हो, वह वैद्यके पदका अधिकारी होता है। वेद-वेदाङ्गके नित्योक्तोंको जाननेमें समर्थ, जप-होमपरायण, नित्य आशीर्वाद देनेमें तत्पर (अर्थात् राजाकी

मङ्गलकामनामें अहर्निश दत्तचित्त) विद्वान् राजपुरोहितके योग्य होता है।

यदि लेखक, पाठक, गणक, प्रतिरोधक (प्रतीहार) आदि पदाधिकारी कार्य करनेमें आलस्य करते हों तो राजा सदैव उनको उस कार्यसे पृथक् कर दे।

जो दो प्रकारकी बात करता है, उद्देगकर वाणी बोलता है, क्रूरकर्म है तथा अत्यन्त दारुण है, ऐसे दुष्ट व्यक्ति और सर्वका मुख—ये मात्र दूसरेके अपकारके लिये ही होते हैं। विद्यासे मुक्तोन्मत्त होनेपर भी दुर्जन व्यक्तिका परित्याग करना चाहिये, मणिसे अलंकृत सर्प क्या भयंकर नहीं होता?¹

अकारण क्रोध करनेवाले दुष्टसे किस व्यक्तिको भय नहीं रहता? अर्थात् ऐसे दुष्टसे सभी भयभीत रहते हैं; क्योंकि महाभयंकर नागराजका विष तथा दुष्टका कुत्सित बचन दूसरेके लिये असहनीय होता ही है।

राजाको अपने समान धन-वैभवसे सम्पन्न, पौरुष और ज्ञानमें समकक्ष एवं अपने रहस्यको जाननेवाले और उद्योगशील भृत्यको पूर्णरूपसे निष्प्रभावी बना देना चाहिये, अन्यथा राजा निश्चित ही अपने राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है; क्योंकि ऐसा भृत्य राज्यका अपहारक ही होता है।

आरम्भमें जो भृत्य शूरा दिखाये, मधुर और धीमे वाक्य बोले, जितेन्द्रियके रूपमें स्वयंको प्रदर्शित करे और साथ ही पराक्रमशीलता भी प्रदर्शित करे पर बादमें इसके विपरीत आचरण करे, ऐसे भृत्य हितैषी नहीं होते। आलस्यरहित, अच्छी तरहसे संतुष्ट, अनिद्रारोगसे रहित, सदा सज्जन रहनेवाले, सुख-दुःखमें स्थिर-मतिवाले तथा धैर्यसम्पन्न भृत्य इस जगत्में दुर्लभ हैं।² क्षमासे रहित, सत्यविहीन, क्रूरबुद्धि, निन्दक, अहंकारी, कपटी, शठ, लोभी, पौरुषहीन और भयभीत होनेवाला भृत्य राजाके लिये त्वाज्य है। ऐसे व्यक्तिको किसी भी राज्य-कार्यमें नियुक्त नहीं करना चाहिये।

राजाको दुर्ग (किले)-में संधान किये जाने योग्य अस्त्र तथा विविध प्रकारके शस्त्रोंका अच्छी प्रकारसे संग्रह करना चाहिये। ऐसा करनेसे राजा शत्रुको पराजित कर सकता है। परिस्थितिके अनुसार संधिकी अनिवार्यता होनेपर राजाको शत्रुके साथ छः मास-अथवा एक वर्षपर्यन्त ही संधि करनी चाहिये। उसके बाद अपनी संचित

१-दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि स्मृः। मणिरा भूषितः सर्पः किमस्ती न भयङ्करः॥ (११२।१५)

२-निरालस्यः सुसंयुक्तः सुस्वभावाः प्रतिरोधकः। सुखदुःखसन्तः धीरः भृत्यः लोकेषु दुर्लभाः॥ (११२।१९)

सामर्थ्यको देखते हुए शत्रुको पराजित करना चाहिये। जो राजा राज्यकार्यमें मुख्य व्यक्तिको नियोजित करता है, उस राजाको अपयश, धन-विनाश तथा नरकभोग—ये तीन प्राप्त होते हैं।

जो राजा भृत्योंकी सूक्ष्म कार्यप्रणालीके द्वारा जो कुछ

भी सुभाषुष कर्म करता है, उसीके अनुसार ही वह भविष्यमें अभिवृद्धि या ह्रासको प्राप्त करता है। अतः राजाको धर्म-अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गकी साधना एवं गौ-ब्राह्मणकी अभिरक्षाके लिये राज्यकार्यमें सर्वगुणसम्पन्न विद्वान् व्यक्तिको ही नियुक्त करना चाहिये। (अध्याय ११२)

## नीतिसार

श्रीसूतजीने कहा—राजाको राज्यकार्यमें गुणवान् पुरुषकी नियुक्ति और गुणहीनका परित्याग करना चाहिये। विद्वान् व्यक्तिकमें सभी गुण विद्यमान रहते हैं, किंतु मुख्य व्यक्तिकमें तो केवल दोष ही रहते हैं।

निरन्तर सज्जनोंके साथ रहना चाहिये और सज्जनोंकी ही संगति करनी चाहिये। विवाद एवं मैत्री भी सज्जनोंके साथ ही करनी चाहिये। दुर्जनोंके साथ कुछ भी नहीं करना चाहिये। पण्डित, विनीत, धर्मज्ञ एवं सत्यवादी जनोंके साथ बन्धनमें भी रहना श्रेयस्कर है, किंतु दुष्टोंके साथ राज्यका भी उपभोग करना उचित नहीं है—

सद्गिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत संगतिम् ।  
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किंचिदाचरेत् ॥  
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः ।  
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेच्च न तु राज्ये छलीः सह ॥

(११३।२-३)

सभी कार्योंको पूर्ण कर लेना चाहिये। कोई काम अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। इससे सभी प्रकारके अर्थोंकी प्राप्ति हो जाती है।

जिस प्रकार भ्रमर पुष्पके परागको ग्रहण कर लेता है, किंतु पुष्पको नष्ट नहीं करता; जैसे दूध दुहनेवाला व्यक्ति बछड़ेके हितको ध्यानमें रखते हुए दूधको दुहता है, वैसे ही राजाको प्रजाहितका ध्यान रखते हुए प्रजासे करका दोहन करना चाहिये। जिस प्रकार मधुमक्खी एक-एक पुष्पसे मधुको ग्रहण कर उसे एकत्र करती है, उसी प्रकार राजाको भी प्रजासे धन-संग्रह करना चाहिये।<sup>१</sup> जैसे कत्तीक (बाँबी), मधुमक्खीका छला तथा शुक्लपक्षका चन्द्रमा

प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा बढ़ता रहता है, वैसे ही राजाका द्रव्य तथा भिक्षा भी धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा धर्मपूर्वक संग्रह करनेसे बढ़ते रहते हैं।

समुचित रीतिसे अर्जित किये गये धनका भी क्षय होता ही है और ब्रह्मापूर्वक दीयमान दान कोटिगुणित होकर यथासमय मिलता ही है—इस वास्तविकताको ध्यानमें रखते हुए अपना कोई भी दिन दान, अध्ययन या सत्कर्मसे विहीन नहीं होने देना चाहिये।<sup>२</sup> रागी व्यक्तिकसे वनमें भी दोष हो जाते हैं। अतः घरमें मनुष्यके द्वारा किया गया पक्षेन्द्रियोंका निग्रह तप ही है। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर अनिन्दित कर्मोंमें प्रवृत्त हो सम्मार्गकी ओर बढ़ता जाता है, उस विषयवासनाओंसे दूर निवृत्तमार्गवालेके लिये उसका घर ही लपोचन है।<sup>३</sup>

सायके पालनसे धर्मकी रक्षा होती है। सदा अभ्यास करनेसे विद्याकी रक्षा होती है। मार्जवके द्वारा पात्रकी रक्षा होती है और शीलसे कुलकी रक्षा होती है—

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।  
सृजया रक्ष्यते पात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते ॥

(११३।१०)

विन्ध्यटवीमें निवास करना मनुष्यके लिये अच्छा है, बिना भोजन किये ही घर जाना श्रेयस्कर है, सर्पसे परिव्याप भूमिपर सोना तथा कुएँमें गिरकर मृत्युको प्राप्त करना उचित है, जलके आवर्तबुक्त भयंकर भँवरमें डूब मरना श्रेष्ठ है; किंतु अपने ही पक्षके आत्मीय जनसे 'थोड़ा धन मुझे दे दें' इस प्रकार याचना करना अच्छा नहीं है।<sup>४</sup> भाग्यका ह्रास होनेसे मनुष्यकी सम्पदाओंका विनाश होता है, न कि उपभोग

१-मधुहेत्रु दुहेत् सारं कुसुमं च न धातवेत् । कल्पेष्ठी दुहेत् क्षीरं भूमिं वा वैवर्जयेत् ॥

यथा क्रमेण पुष्पेर्ध्वजितुं मधु पट्टयेत् । तथा वित्तमुत्पाद्य राजा कुर्वीत संघसम् ॥ (११३।५-६)

२-अजितस्य शयं दुष्टा सम्प्रदातस्य संघसम् । अजन्तं दिवसं कुपोहनाध्ययनकर्मसु ॥ (११३।८)

३-वनेऽपि दोगः प्रभवति शीलं च नृहेऽपि पक्षेन्द्रियनिग्रहसत्तपः ।

अकुतिले कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तमार्गस्य नृहं लपोचनम् ॥ (११३।९)

४-वरं विन्ध्याटव्यां निवसनमधुजस्य मरणं वा सर्पकोनं जयनस्य कुपे निपतनम् ।

वरं भ्रान्तावर्तं सभयजलमध्ये प्रविशनं न तु म्यौमे पक्षे हि धनस्य देहीति बधनम् ॥ (११३।११)

\*\*\*\*\*

करनेसे। पूर्वजन्ममें यदि पुण्य अर्जित है तो सम्पत्तिका गुरु कभी नहीं हो सकता।

ब्राह्मणोंका आभूषण विद्या, पृथिवीका आभूषण राजा, आकाशका आभूषण चन्द्र एवं समस्त चराचरका आभूषण शील है—

विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्या भूषणं नृपः।

नभसो भूषणं चन्द्रः शीलं सर्वस्य भूषणम्॥

(११३।१३)

इतिहासप्रसिद्ध ये जो भीमसेन, अर्जुन आदि राजपुरुष हैं—ये सभी चन्द्रके समान कान्तिसम्पन्न, पराक्रमशील, सत्यप्रतिज्ञ, सूर्यके सदृश प्रतापशाली और स्वयं विष्णुके अवतारस्वरूप भगवान् कृष्णसे अभिरक्षित थे, फिर भी इन लोगोंको कृपण धृतराष्ट्रकी परवशताके कारण भिक्षाटन करना पड़ा। इस संसारमें कौन ऐसा है, जिसमें ऐसी सामर्थ्य है, जिसको भाग्यके वशीभूत होनेके कारण कर्मरेखा नहीं घुमाती?\*

जिस पूर्वसंघित कर्मके अधीन होकर ब्रह्म कुम्भकारके समान ब्रह्माण्डरूपी इस महाभाग्यके उदरमें चराचर प्राणियोंकी सृष्टिमें नियमतः लगे रहते हैं, जिस कर्मसे अभिभूत होकर विष्णु दशावतारके कालमें परिखात असौमिल महासंकटमें अपनेको डाल देते हैं, जिस कर्मके अनुसार ही सदाशिव रुद्र द्वाभयं कपाल धारणकर भिक्षाटन करते हैं और जिस कर्मसे सूर्य नित्य आकाशमें ही चक्कर काटते हैं—उस कर्मको मैं नमस्कार करता हूँ।†

राजा बलि उत्कृष्ट कोटिके दाता थे और चाकक स्वयं भगवान् विष्णु थे। विशिष्ट ब्राह्मणोंके समक्ष पृथ्वीका दान दिया गया, फिर भी दानका फल बन्धन प्राप्त हुआ। यह सब देखका खेल है, ऐसे इच्छानुसार फल देनेवाले दैवको नमस्कार है।‡

यदि प्राणीकी माता स्वयं लक्ष्मी हों, पिता साक्षात् भगवान् जनार्दन विष्णु हों, उसके बाद भी प्राणीकी यदि

कुबुद्धिमें ही विश्वास है तो उसको दण्ड भोगना ही पड़ेगा।

पूर्वजन्ममें प्राणीने जैसा कर्म किया है, उसी कर्मके अनुसार वह दूसरे जन्ममें फल भोगता है। अतः स्वयमेव प्राणी अपने भोग्य फलका निर्माण करता है, अर्थात् वह कर्मफलका स्वयं ही विधाता है।

हम अपने सुख या दुःखके स्वयं ही हेतु हैं। माताके गर्भाशयमें आकर अपने पूर्वदेहमें किये गये कर्मोंके फल ही हमें भोगने पड़ते हैं। आकाश, समुद्र, पर्वतीय गुफा तथा माताके सिरपर और माताकी गोदमें अवस्थित रहते हुए भी मनुष्य निश्चित ही उन अपने पूर्वसंघित कर्मफलका परिष्पाग करनेमें समर्थ नहीं होता।

जिसका दुर्ग ही त्रिकूट पर्वत था, जिसकी परिखा समुद्र ही था, राक्षसगणसे जो अभिरक्षित था, स्वयं जो परम विशुद्ध आचरण करनेवाला था, जिसको नीतिशास्त्रकी शिक्षा शुकग्राचार्यसे प्राप्त हुई थी, वह रावण भी काल-वश नष्ट हो गया।

जिस आश्रय, जिस समय, जिस दिन, जिस रात्रि, जिस मुहूर्त अथवा जिस क्षण जैसा होना निश्चित है; वह वैसा ही होगा, अन्यथा नहीं हो सकता—

यस्मिन् यद्यपि यत्काले परिहा यच्च वा निशि।

यन्मुहूर्तं क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा॥

(११४।२२)

सभी अन्तरिक्षमें जा सकते हैं या भूगर्भमें प्रवेश कर सकते हैं अथवा दसों दिशाओंको अपने ऊपर धारण कर सकते हैं, किन्तु अप्रदत्त वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

पूर्वजन्ममें अर्जित की गयी विद्या, दिया गया धन तथा सम्पादित कर्म ही दूसरे जन्ममें आगे-आगे मिलते जाते हैं। अर्थात् प्राणीने पूर्वजन्ममें जैसा कर्म किया है, उसको इस जन्ममें वैसा ही प्राप्त होता है।§ इस संसारमें कर्म ही प्रधान है। सुन्दर नक्षत्र था, ग्रहोंका योग था, स्वयं वसिष्ठ मुनिके द्वारा निर्धारित लग्नमें विवाह-संस्कार कराये जानेपर भी

१-एते ते नन्दतुल्याः क्षितिघातितनया भीमसेनार्जुनस्यः नृपः सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केतवेनोपगुहाः।

ते वै दुरप्रहरयाः कृपणतृणाश्च भिक्षयर्थां प्रयताः की वा कस्मिन् समर्थो भवति विधिवतादभ्यासयेत् कर्मरेखा ॥ (११३।१४)

२-ब्रह्मा येन कुलालवनिनियमितो ब्रह्माण्डभाग्योदरे विष्णुर्वेन दशावतारगहने शिपो महासङ्कटे।

रुदो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः सूर्यो भ्रायति नित्यमेव गगने तन्मै नमः कर्मणैः ॥ (११३।१५)

३-दाता बलिर्याचकको मुरारिदानं मही विप्रमुखस्य मध्ये। दाता फलं बन्धनमेव सत्त्वं नभोऽन्तु ते दैव यथेष्टकारिणे ॥ (११३।१६)

४-पुरापीता य या विद्या पुरा दत्तञ्च पठनम्। पुरा कृत्वापि कर्मणि हरेरे थावति भावति ॥ (११३।१८)



ज्ञानकी—सौताको [पूर्वजन्ममें संचित कर्मके अनुसार] दुःख भोगना पड़ा। विशाल जंघाओंवाले श्रीराम, शब्दकी गतिसे चलनेवाले श्रीलक्ष्मण तथा सघन केशवाली शुभलक्षणा श्रीसीताजी—ये भी तीनों जब अपने कर्मके अनुसार दुःखके भाजन हो गये तो सामान्य जनके विषयमें कुछ कहना ही व्यर्थ है। न पिताके कर्मसे पुत्रको सद्गति मिल सकती है और न पुत्रके कर्मसे पिताको सद्गति मिल सकती है। सभी लोग अपने-अपने कर्मसे ही अच्छी गति प्राप्त करते हैं।

पूर्वजन्ममें अर्जित कर्मफलके अनुसार प्रायः शरीरमें शारीरिक और मानसिक रोग उसी प्रकार आकर अपना दुष्प्रभाव प्रकट करते हैं, जिस प्रकार कुशल और धनुर्धरोंके द्वारा छोड़े गये बाण लक्ष्यको जेधकर कट पहुँचाते हैं। बाल-युवा तथा वृद्ध जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें उसी अवस्थाके अनुसार उस फलका भोग करता है। उस पूर्वार्जित फलको न देखनेवाला एवं विदेशमें रहता हुआ भी मनुष्य अपने कर्मकण्ठी जहाजके संश्लिष्ट पवन-वेगके द्वारा उस फलतक पहुँचा दिया जाता है।

मनुष्य अपने प्रारब्धका फल प्राप्त करता है। देवता भी उस फलभोगको रोकनेमें समर्थ नहीं हैं। इसीलिये मैं कर्मफलके विषयमें चिन्ता नहीं करता हूँ और न मुझे आश्चर्य ही है, क्योंकि जो मेरा है, उसे दूसरा कोई नहीं ले सकता—

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो  
देवोऽपि तं वारयितुं न शक्तः।  
अतो न शोचामि न विस्मयो मे  
यदस्मदीयं न तु तत्परेषाम्॥

(११३।३२)

जैसे साँप, हाथी और चूहा—ये शीघ्रतावश क्रमशः कुओं,

अपने वासस्थान तथा विलसक ही भाग सकते हैं, इससे आगे कहाँतक जा सकते हैं? इसी तरह अपने कर्म अथवा भाग्यसे कौन भाग सकता है? सब तो उसीके अधीन हैं।

सद्विद्या देनेसे उसी प्रकार बढ़ती रहती है कम नहीं होती, जिस प्रकार कुएँसे जल ग्रहण कर लेनेपर भी कुएँका जल बढ़ता ही रहता है [घटता नहीं]। जो धन धर्मानुसार अर्जित किया जाता है वही [वास्तविक] धन है। अधर्मसे प्राप्त हुआ धन तो मनुष्यके ऐश्वर्यका नाशक होता है। इस संसारमें धर्मार्थ ही महान् होता है। धनकी अपेक्षा करनेवाले मनुष्यको निश्चित ही श्रेष्ठजनोंके दृष्टान्तोंको स्मरण करके धनोपार्जनमें तत्पर होना चाहिये। अन्धार्थी कृपण व्यक्ति जिन दुःखोंको भोगता है, यदि धर्मार्थी होकर वह उन दुःखोंका चिन्तन करे तो पुनः उसको दुःखका पात्र होना ही न पड़े। सभी प्रकारकी शुचितामें असकी शुचिता ही प्रधान है। जो मनुष्य अन्न और अर्थसे पवित्र है [वही शुचि है]। केवल मिट्टी और जलसे शुचिता नहीं आती।

सत्यपालनमें शुचिता, मनःशुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, सभी प्राणिनोंमें दया और जलसे प्रक्षालन—ये पाँच प्रकारके शौच माने गये हैं। जिसमें सत्यपालनकी शुचिता है, उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। जो मनुष्य सत्य ही सम्भाषण करता है, वह अश्वमेधयज्ञ करनेवाले व्यक्तिसे भी बढ़कर है—

सत्यं शौचं मनःशौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।  
सर्वभूते दया शौचं जलशौचं च पञ्चमम्॥  
यस्य सत्यं हि शौचं च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः।  
सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते॥

(११३।३८-३९)

दृष्ट स्वभावसे अपनी आत्माको दबाकर रखनेवाला

- १-कर्मण्यत्र प्रधातव्यं सम्पत्तये शुभद्वये। यस्मिन्कुतलकऽपि ज्ञानकी दुःखभाजनम्॥  
स्मृतजंघी यदा रामः शब्दगानो च सत्त्वमः। धनकेही यदा सीता वचस्ते दुःखभाजनम्॥  
न पितुः कर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा। स्वयं कुलेन गच्छन्ति स्वयं बद्धाः स्वकर्मणा॥ (११३।२५-२७)
- २-बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम्॥ तस्यै तस्यैवतस्याप्यो भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि॥  
अनीक्षमाणोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानवः। स्वकर्मयोगेनैव नोचते यत्र तत्फलम्॥ (११३।३०-३१)
- ३-येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण गताः त्रियः। धर्मार्थी च यदौचित्यं तत् स्मृत्या ह्यर्थकायम्॥  
अन्धार्थी यानि दुःखानि करोति कृपणो जनः। तान्येव यदि धर्मार्थी न भूयः स्तेऽश्वभाजनम्॥  
सर्वेषामेव शौचानामग्रशौचं विशिष्यते। योऽन्धार्थी शुचिः शौचक मृदा कारिणा शुचिः॥ (११३।३५-३७)

दुराचारी पुरुष हजारों बार भिट्टीके लेप तथा सैकड़ों बार जलके प्रक्षालनसे पवित्र नहीं हो सकता। जिसके हाथ-पैर एवं मन सुसंयत हैं, जिसे अध्यात्म-विद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहन करता है तथा जिसने सत्कीर्ति अर्जित की है, वही तीर्थोंका यथार्थ फल भी भोगता है—

यस्य हस्ती च पादौ च मनोज्ञौ च सुसंयतम्।

विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

(११३:४१)

जो मनुष्य सम्मानसे प्रसन्न नहीं होता, अपमानसे क्रुद्ध नहीं होता एवं क्रोधके आनेपर मुँहसे कठोर वाक्य नहीं निकालता, ऐसे ही मनुष्यको साधुपुरुष समझना चाहिये—

न प्रहृष्यति सम्मानैर्नावप्यनैः प्रकुप्यति।

न क्रुद्धः परमं हृष्यादेतत्कायोऽस्तु त्वञ्जयम्॥

(११३:४२)

विद्वान्, मधुरभाषी भी कोई व्यक्ति यदि दण्डि है तो उसके समयोचित हितकारी वचनको सुनकर भी कोई संतुष्ट नहीं होता है। यदि कोई मनुष्य मन्त्र या बलके प्रभावसे अथवा बुद्धि और पौरुषके बलपर अलभ्य-अदृष्ट वस्तुको प्राप्त नहीं कर पा रहा है तो उस विषयमें मनुष्यको किसी प्रकारका खेद नहीं करना चाहिये।

अयाचित कोई वस्तु मुझे प्राप्त हो और पुनः वह मेरे पाससे चली जाय तो कष्ट होता है, किंतु जो जहाँसे आयी थी वह पुनः वहाँ चली गयी तो उसमें कैसा दुःख? दुःख करनेका कोई औचित्य ही नहीं है। रात्रिमें सदैव एक ही वृक्षपर नाना प्रकारके पक्षियोंका समूह शरण लेता है, किंतु प्रातःकाल होते ही वे सभी भिन्न-भिन्न दिशाओंमें चले जाते हैं। उस आश्रयके विषयमें उन लीनोंको कौन-सा दुःख होता है? इसी दृष्टान्तको ध्यानमें रखकर मनुष्योंको वियोगजन्य दुःखमें खिन्न नहीं होना चाहिये। एक साथ सामूहिक रूपमें चलनेवालोंमें यदि कोई एक त्वरित गतिसे

चल रहा है तो उससे ईर्ष्या क्यों की जाय?

हे शौनक! सभी प्राणियों या पदार्थोंकी उत्पत्तिके पूर्वमें स्थिति नहीं थी और निधनके अन्तमें भी उनकी स्थिति नहीं रहेगी। सभी पदार्थ मध्यमें ही विद्यमान रहते हैं। इसमें दुःख करनेकी क्या बात है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक।

अव्यक्तनिधनान्येष तत्र का परिदेवना॥

(११३:४८)

समय प्राप्त न होनेसे पहले प्राणी सैकड़ों बाण लगनेपर भी नहीं मरता और समयके आ जानेपर कुशकी नौक लग जानेसे भी वह जोरित नहीं रहता।<sup>१</sup> प्राप्त होने योग्य वस्तु ही प्राप्त होती है, गन्तव्य स्थानपर ही व्यक्ति जाता है। अतः प्राणीको जो दुःख-मुख प्राप्त होने योग्य है वही उसको प्राप्त होता है।

मनुष्य प्राप्त होने योग्य अमुक-अमुक वस्तुको ही प्राप्त करता है तो वह अभिलषित वस्तुके लिये नाना प्रकारसे प्रयास करके क्या प्राप्त कर लेगा? उसका तो अपनेकी अभावग्रस्त समग्रका प्रलाप करना व्यर्थ ही है।

जिस प्रकार प्रार्थना आदिके बिना ही यथासमय वृक्षके द्वारा प्राणीको अपने समयपर ही फल-फूलकी प्राप्ति हो जाती है, उसी प्रकार पूर्वजन्मकृत कर्म भी अपने समयके अनुसार यथोचित फल देता है। व्यक्तिमें अवस्थित शील, कुल, विद्या, ज्ञान, गुण तथा कुल-शुद्धि उसको कुछ देनेमें समर्थ नहीं हैं। पूर्वजन्मकृत तपमें प्राप्त हुआ उसका भाग्य ही समयके अनुसार वृक्षकी भाँति उसे फल देता है।<sup>२</sup>

प्राणीकी मृत्यु वहाँ होती है, जहाँ उसका हन्ता विद्यमान रहता है। लक्ष्मी वहीं निवास करती है, जहाँ सम्पत्तियाँ रहती हैं। ऐसे ही अपने कर्मसे प्रेरित होकर प्राणी स्वयं ही उन-उन स्थानोंपर पहुँच जाता है। पूर्वजन्ममें किया गया कर्म कर्तव्य पीछे-पीछे जैसे ही रहता है, जैसे गोष्ठमें

१-नात्राप्तकालो त्रिपले विद्धः शरत्तरपि। कुशज्येन तु संमृष्टः प्रातःकाले न जीवति॥ (११३:४९)

२-आचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च। स्वकालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुनरुक्तम्॥

शीलं कुलं वैश्वं च वैश्वं विद्या ज्ञानं गुणं वैश्वं न बीजशुद्धिः।

भाग्यानि पूर्वं तपसाजितानि काले फलनपस्य एवैव वृक्षः॥ (११३:५१-५२)

हजार गायोंके रहनेपर भी बछड़ा अपनी माताको प्राप्त कर लेता है—

तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः ।

तत्र तत्र स्वयं याति प्रेयमाणः स्वकर्माभिः ॥

भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्तारमनुतिष्ठति ।

यथा धेनुसहस्रेषु बत्सो विन्दति मातरम् ॥

(११३/५३-५४)

हे मूर्ख प्राणी! इस प्रकार जब पूर्वजन्मकृत कर्म कर्तामें ही अवस्थित रहता है तो अपने पुण्यका फल भोगो। तुम क्यों संतप्त हो रहे हो? जैसा पूर्वजन्ममें शुभ अथवा अशुभ कर्म किया गया है, वैसा ही फल जन्मान्तरमें कर्ताका अनुसरण करता है, उसके पीछे-पीछे चलता है।

नीच व्यक्ति दूसरेमें सरसोंके बराबर भी स्थित दोष-छिद्रोंको देखता है, किंतु अपनेमें बेल (फल)-के समान अवस्थित दोषोंको देखते हुए भी नहीं देखता।<sup>१</sup> हे द्विज। राग-द्वेषादिक दोषोंसे मुक्त प्राणियोंको कहींपर भी सुख

नहीं है। मैं भलो प्रकारसे विचार करके यह देखता हूँ कि जहाँ संतोष है, वहाँ सुख है। जहाँ स्नेह है, वहाँ भय है। अतः स्नेह ही दुःखका कारण है। प्राणियोंमें स्नेह उत्पन्न करनेके जो मूल हैं, वे ही दुःखके कारण हैं। अतः उनका परित्याग कर देनेपर अर्थात् उनके प्रति अपनी आसक्तिको समाप्त कर देनेसे प्राणीको महान् सुखकी प्राप्ति होती है।<sup>२</sup> यह शरीर ही दुःख और सुखका घर है। उत्पन्न हुए शरीरके साथ ही वह दुःख-सुख भी उत्पन्न होता है।

पराधीनता ही दुःख है और स्वाधीनता ही सुख है। संक्षेपमें यही सुख-दुःखका लक्षण समझना चाहिये। प्राणीको सुखभोगके पश्चात् दुःख और दुःखके बाद सुखका भोग प्राप्त होता है। इस तरह मनुष्योंके सुख-दुःख चक्रके समान परिवर्तित होते रहते हैं। जो मनुष्य भूतकालिक विषयवस्तुको समाप्त हुआ मान लेता है और भविष्यमें होनेवालेको बहुत दूर समझता है एवं वर्तमानमें अनासक्त-भावसे रहता है, वह किसी भी प्रकारके शोकसे दुःखी नहीं होता।<sup>३</sup> (अध्याय ११३)

## नीतिसार

श्रीसूतजीने पुनः कहा—न कोई किसीका मित्र है और न कोई किसीका शत्रु। कारणविशेषसे ही लोग एक-दूसरेके मित्र और शत्रु होते हैं। यह दो अक्षरोंवाला स्वरूपी 'मित्र' शब्द किसने बनाया? यह दुःख एवं भयसे प्राणियोंका अभिरक्षक है तथा प्राणिमात्रमें प्रेम और विश्वासको उत्पन्न करनेवाला है।

जिस व्यक्तिने एक बार भी 'हरि' इस दो अक्षरसे युक्त शब्दका उच्चारण कर लिया है, वह अपने कटिप्रदेशमें परिकर (कैट्य) बाँधकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तैयार रहता है। अर्थात् ऐसा मनुष्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है—

सकृदुच्चारितं येन हरितित्थक्षरद्वयम् ।

बन्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

(११४/३)

माता, पत्नी, सहोदर बन्धु तथा पुत्रमें पुरुषोंको वैसा विश्वास नहीं होता है, जैसा विश्वास उन्हें स्वाभाविक मित्रमें होता है। यदि मनुष्य किसीके साथ शाश्वत प्रेम करना चाहता है तो उसे उसके साथ द्यूत, अर्ध-व्यवहार (धनका लेन-देन) एवं परोक्षरूपमें उसकी स्त्रीका दर्शन—इन तीन दोषोंका परित्याग कर देना चाहिये। माता, भगिनी अथवा पुत्रीके साथ एकान्तमें एक साथ नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि

१-नीचः सर्वस्यप्राणि परच्छिद्राणि पश्यति । आत्मनो वित्त्वन्मात्राणि परस्परं न पश्यति ॥ (११३/५७)

२-रागद्वेषादिपुत्रानां न सुखं कुत्रचिद्विज । विचार्यं शत्रुं परस्परं तत्सुखं यत्र निर्वृतिः ॥

यत्र स्नेहो भयं तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम् । स्नेहमूलानि दुःखानि क्षीम्यन्त्यप्ये महत्सुखम् ॥ (११३/५८-५९)

३-सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । एतद्विधात् सम्पत्तेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

सुखस्यावन्तं दुःखं दुःखस्यावन्तं सुखम् । सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्तते ॥

यद्गतं तदतिक्रान्तं यदि स्यात् तच्च दूरतः । कर्तानेन कर्तै न स शोकेन चाप्यने ॥ (११३/६१-६३)

इन्द्रियोंका समूह बलवान् होता है, वह विद्वान्को भी [दुराचरणकी ओर] खींच लेता है—

मात्रा स्वस्वा दुहित्रा वा न विविक्षासने वसेत् ।

बलवानिन्द्रियप्राप्तो विद्वानपि कर्षति ॥

(११४।६)

हे शौनक! उपयुक्त अवसर न होनेसे, एकान्त स्थान न होनेसे तथा प्रार्थयिता व्यक्तिके सुलभ न होनेसे ही स्त्रियोंमें सतीत्व पाया जाता है।

जो मधुर पदार्थोंसे खालकको, विनम्रभावसे सज्जन पुरुषको, धनसे स्त्रीको, तपस्यासे देवताको और सद्ब्यवहारसे समस्त लोकको अपने वशमें कर लेता है, वही पण्डित है। जो लोग कपटसे मित्र बनाना चाहते हैं, पापसे धर्म कमाना चाहते हैं, दूसरेको संतप्त करके धन-संग्रह करना चाहते हैं, बिना परिश्रमके ही सुखपूर्वक विद्या-अर्जन करना चाहते हैं और कठोर व्यवहारके द्वारा स्त्रियोंको वशमें रखनेकी अभिलषा रखते हैं, वे पण्डित (कुशल) नहीं हैं।

फलकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य यदि फल-समन्वित वृक्षका ही मूलोच्छेद कर डालता है तो वह दुर्बुद्धि है। उसे फल कभी नहीं प्राप्त हो सकता। अधिश्मनीय व्यक्तिका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। मित्रका भी [अधिक] विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि कदाचित् झूठ होनेपर मित्र भी समस्त गोपनीयताको प्रकट कर सकता है—

न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत् ।

कदाचित् कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥

(११४।१२)

सभी प्राणियोंमें विश्वास करना, सभी प्राणियोंके प्रति सात्त्विक भाव रखना एवं अपने सत्-स्वभावकी रक्षा करना—ये सज्जन पुरुषके लक्षण हैं।

दरिद्रके लिये गोष्टी<sup>१</sup> विषके समान है और बृद्ध व्यक्तिके लिये युवती विषके समान है। भलीभाँति आत्मसात् न की गयी विद्या विष है तथा अजीर्ण-दशामें कृपा गण

भोजन विषके समान (अनिष्टकारी) है। अकुण्ठित व्यक्तिको गायन, नौच व्यक्तिको उच्च आसनकी प्राप्ति, दरिद्रको दान तथा युवकको तरुणी प्रिय होती है।

अधिक मात्रामें जलका पीना, गरिष्ठ भोजन, धातुकी क्षीणता, मल-मूत्रका वेग रोकना, दिनमें सोना एवं रात्रिमें जागरण करना—इन छः कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें रोग निवास करने लगते हैं—

अत्यप्युषानं कठिनाशनं च

धातुक्षयो वेगविधारणं च ।

दिवाशयो जागरणं च रात्री

बहिर्भरणानां निवसन्ति रोगाः ॥

(११४।१८)

प्रातःकालीन भूष, अतिशय मैथुन, श्मशान-धूमका सेवन, अग्निमें हाथ सेंकना और रजस्वला स्त्रीका मुख-दर्शन—ये दीर्घ आयुका विनाश करनेवाले हैं। शुष्क मांस, बृद्धा स्त्री, बालसूर्य, रात्रिमें दहोंका प्रयोग, प्रभातकालमें मैथुन एवं [प्रभातकालीन] विद्या—ये छः सद्यः प्राणविनाशक होते हैं।

तत्काल पकाया गया घृत (ताजा घी), द्राक्षाफल, बाला स्त्री, दुग्ध-सेवन, गरम जल तथा वृक्षोंकी छाया—ये शीघ्र ही प्राण (शक्ति) प्रदान करनेवाले हैं। कुएँका जल और कटवृक्षकी छाया शीतकालमें गरम तथा गर्मीमें शीतल होते हैं। तैलमर्दन और सुन्दर भोजनकी प्राप्ति—ये सद्यः शरीरमें शक्तिका संचार करते हैं, किंतु मार्ग-गमन और मैथुन तथा न्वर—ये सद्यः पुरुषका बल हर लेते हैं।

जो मलिन वस्त्र धारण करता है, दाँतोंकी स्वच्छ नहीं रखता, अधिक भोजन करनेवाला है, कठोर वचन बोलता है, सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय भी सोता है; वह यदि साक्षात् चक्रपाणि विष्णु हो तो उसे भी लक्ष्मी छोड़ देती है।<sup>२</sup>

जो मनुष्य नखसे तृणका छेदन करता है, पृथिवीपर लिखता है, चरणोंका प्रक्षालन नहीं करता, दाँत स्वच्छ नहीं

१-मित्रोंकी आमन्त्रितकर उनके साथ भोजन-जलपानादिकी व्यवस्था वहनकर मनोरंजन करना आदि।

२-कुर्वितनं दन्तमसौपधारिणं बह्वर्जितं निदुरवकाशभाविणम्।

सूर्योदये द्यस्तमयेऽपि शयिनं विमुञ्चति श्रोणि चक्रपाणिम् ॥ (११४।१५)



रखता, मलिन वस्त्र धारण करता है, केश संस्कारविहीन रखता है, प्रातः एवं सायंकालकी संध्याओंमें सोता है, नन शयन करता है, भोजन और परिहास अधिक करता है, अपने अङ्ग और आसनपर बाजा बजाता है तो भगवान् विष्णुके समान होनेपर भी उसे लक्ष्मी त्याग देती हैं। जो पुरुष अपने सिरको जलसे धोकर स्वच्छ रखता है, चरणोंको प्रक्षालित करके मलरहित करता है, वेश्यागमनसे दूर रहता है, अल्पभोजन करता है, नन शयन नहीं करता तथा पर्वरहित दिवसोंमें स्त्री-सहवास करता है तो उसके ये षट्कर्म चिरकालसे विनष्ट हुई उसको लक्ष्मीको पुनः उसके सांनिध्यमें ले आते हैं।

बालसूर्यके तेज, जलप्रीति हुई चिताका धुआँ, वृद्ध स्त्री, बाली दही और झाड़ूकी धूलिका सेवन दीर्घ आयुकी कामना करनेवाले पुरुषको नहीं करना चाहिये।

हाथी, अश्व, रथ, धान्य तथा गौकी धूलि शुभ होती है। किन्तु गधा, ऊँट, बकरी एवं भेड़की धूलिको अशुभ मानना चाहिये। गौकी धूलि, धान्यकी धूलि और पुष्पके अङ्गमें लगी हुई जो धूलि है, वह महान् कल्याणकारी एवं महापातकोंका विनाशक है।<sup>१</sup>

सूप फटकनेसे निकली हुई चाय, नखास (नाखून)-का जल, स्नान किये हुए वस्त्रसे निचोड़ा हुआ जल, केशसे गिरता हुआ जल तथा झाड़ूकी धूलि मनुष्यके पूर्वजन्मके अर्जित पुण्यको भी नष्ट कर देती है। ब्राह्मण तथा अग्निके बीचसे, दो ब्राह्मणके बीचसे, पति-पत्नीके बीचसे, स्वामि-स्वामिनीके बीचसे तथा घोड़ा और साँड़के बीचसे नहीं जाना चाहिये।

स्त्री, राजा, अग्नि, सर्प, स्वाध्याय, शत्रुकी सेवा, भोग और आस्वादमें कौन ऐसा बुद्धिमान होगा जो विश्वास

करेगा?<sup>२</sup> अविश्वसनीयपर विश्वास तथा विश्वस्त प्राणीपर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि विश्वास करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह मनुष्यको समूल नष्ट कर देता है। जो मनुष्य शत्रुके साथ संधि करके आश्रय रहता है, वह निश्चित ही वृक्षकी छायाके अग्रभागपर सोये हुए मनुष्यके समान गिरनेके पश्चात् ही जागता है।<sup>३</sup>

प्राणीको अत्यन्त सरल अथवा अत्यन्त कठोर नहीं होना चाहिये, क्योंकि सरल स्वभावसे सरल और कठोर स्वभावसे कठोर शत्रुको नष्ट किया जा सकता है। अत्यन्त सरल तथा अत्यन्त कोमल नहीं होना चाहिये। सरल अर्थात् सीधे वृक्ष ही काटे जाते हैं, टेढ़े तो यथास्थितमें खड़े रहते हैं। फलसे परिपूर्ण वृक्ष एवं गुणवान् व्यक्ति विनम्र हो जाते हैं, किन्तु सूखे हुए वृक्ष और मूर्ख मनुष्य टूट सकते हैं पर झुक नहीं सकते; अर्थात् वे विनम्रजनन नहीं हो सकते।<sup>४</sup>

जिस प्रकार बिना याचना किये ही दुःख जीवनमें आते हैं और स्वतः चले भी जाते हैं [उसी प्रकार सुखकी भी यही स्थिति है], कामना करनेवाला मनुष्य तो मार्जार (बिल्ली)-की तरह दुःखोंको ही प्राप्त करता है। सज्जन पुरुषके आगे-पीछे सम्पदाएँ सर्वदा धूमती रहती हैं, दुर्जनके लिये इससे विपरीत स्थिति होती है। अतः जैसा अच्छा लगे वैसा करें। सज्जनता और दुर्जनताका आचरण करना मनुष्यपर निर्भर है।

छः कानोंतक पहुँचो हुई गुप्त मन्त्रणा नष्ट हो जाती है। अतः मन्त्रणाको चार कानोंतक ही सीमित रखना चाहिये। दो कानोंतक स्थित मन्त्रणाको तो ब्रह्मा भी जाननेमें समर्थ नहीं है।<sup>५</sup>

उस गायसे क्या लाभ है, जो न दुध देनेवाली है और

१-गर्वा रजो धान्यरजः पुनस्त्र्यङ्गधर्व रजः। एतदञ्च महापातककृतम् ॥ (११४।४२)

२-स्त्रीषु राजाग्निर्गर्भेण स्वाध्याये शत्रुसेवने। भोगास्वादेषु विश्वासः कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ (११४।४६)

३-न विश्वसेदविश्वस्तं विश्वस्तं नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्भवमुत्पन्नं मृतादपि निकृजति ॥

वैरिणा सह संधाय विश्वन्तो यदि विश्वति। न वृक्षान्ते प्रमुक्तो हि पतितः प्रविमुच्यते ॥ (११४।४७-४८)

४-नात्यन्तं मृदुता भार्यं नात्यन्तं क्लृप्तकर्मणा। मृदुदैव मृदुं हन्ति दारुणदैव दारुणम् ॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं नात्यन्तं मृदुता तथा। सरलैस्तत्र छिद्यन्ते कुष्माक्षिहन्ति पादपाः ॥

नमति फलिनो वृक्ष नमति गुणिनो जतः। मुक्कवृक्षश्च मूर्खश्च पितृते न नमति च ॥ (११४।४९-५१)

५-षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रशत्रुःकर्णश्च धार्यते। द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्मन्त्यन्तं न मुच्यते ॥ (११४।५४)

न गर्भिणी है? उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे भी क्या लाभ है, जो न तो विद्वान् है और न धार्मिक? विद्यासम्पन्न एवं बुद्धिमान् तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ एकमात्र सुपुत्रसे भी मनुष्यका कुल वैसे ही सुशोभित हो जाता है, जैसे एक ही चन्द्रमासे आकाश-मण्डल चमकने लगता है। जिस प्रकार एक ही सुपुष्पित और सुगन्धित वृक्षसे सम्पूर्ण घन सुवासित हो जाता है, उसी प्रकार एक ही सुपुत्रसे सम्पूर्ण कुल पवित्र हो जाता है। मनुष्यके लिये गुणवान् एक ही पुत्र अच्छा है, गुणहीन सौ पुत्रोंसे क्या लाभ? चन्द्रमा अकेले ही अन्धकारको नष्ट कर देता है, किंतु हजारों ज्योतिष्पुत्र उस अन्धकारको दूर करनेमें असफल रहते हैं।<sup>१</sup>

मनुष्यको पौष वर्षतक पुत्रका प्यारसे पालन करना चाहिये, दस वर्षतक उसे अनुशासित रखना चाहिये तथा सोलह वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिये।<sup>२</sup>

कुछ व्याघ्र हरिणके समान मुखवाले होते हैं, कुछ हरिण व्याघ्रमुखवाले होते हैं। उनके वास्तविक स्वरूपके परिज्ञानमें पद-पदपर अविश्वास बना ही रहता है। इसलिये बाह्य आकृतिसे प्राणीको अन्तःप्रवृत्तिको नहीं जानना चाहिये।<sup>३</sup>

क्षमाशील व्यक्तियोंमें एक ही दोष है, दूसरा दोष नहीं है। दोष यह है कि जो क्षमाशील होते हैं, मनुष्य उनको अशक्त (असमर्थ) मानता है—

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो बोधपद्यते।

यदेन क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जगः॥

(११४।६२)

प्राणीको यह शास्वमत स्वीकार कर लेना चाहिये कि संसारके समस्त भोग क्षणभंगुर ही हैं, इसीलिये अपनी और आकृष्ट करनेवाले स्निग्ध-सुन्दर सुखोपभोगोंके प्रति विद्वान् पुरुषके विचार स्थिर एवं तटस्थ रहते हैं। उनके मनमें उन

विषय-वासनाओंके लिये आकर्षण नहीं होता।

हे सौनक! बड़ा भाई पिताके समान है। पिताकी मृत्युके पश्चात् वह सभी छोटे भाइयोंका पिता ही है; क्योंकि वह सभीका पालन-पोषण करता है। वह समस्त छोटी-छोटी प्रति एक-समान भाव रखता है। वह समान उपभोग करनेवाले परिजनोंके विषयमें वैसे ही व्यवहार करता है, वैसे अपने पुत्रोंके प्रति उसका व्यवहार होता है। अतः छोटे भाइयोंको बड़े भाईके प्रति पिताके समान आदर-भाव रखना चाहिये।<sup>४</sup>

कम शक्तिशाली वस्तुओंका समुदाय (संगठन) भी अल्पधिक शक्तिसम्पन्न हो जाता है, जैसे तुण्को बटकर बनायी गयी रस्सीसे हाथी भी बाँध लिया जाता है।

जो दूसरेका धन चुराकर दान देता है, वह नरकमें जाता है। जिसका धन है उसीको उस दानका फल प्राप्त होता है। देव-द्रव्य (देवताओंके पूजन आदिमें समर्पित किये जाने योग्य द्रव्यों)—के विनाश करनेसे, ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे एवं ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे मनुष्योंके घंटा नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्महत्या, मद्यपी, चोर तथा व्रतभंग करनेवाले पापियोंके पापका शमन हो सकता है, किंतु सज्जनोंके द्वारा किये गये उपकारके प्रति कुतन्त्रता करनेवाले कुतन्त्र व्यक्तिका निस्तार सम्भव नहीं है।

मनुष्यको भूलकर भी दुष्ट एवं छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि भली प्रकारसे न बुझायी गयी अग्नि भी संसारकी भस्म कर सकती है।

जो नयी अवस्थामें अर्थात् युवावस्थामें शान्त रहता है, वही शान्त-स्वभाव है, ऐसा मेरा विचार है; क्योंकि धातुक्षय आदि सब प्रकारकी शक्तियोंके समाप्त हो जानेपर किसीमें शान्ति नहीं आ जाती? अर्थात् उस अवस्थामें तो सभी शान्त हो जाते हैं—

१-एकेनापि सुपुत्रेण विद्यापुकेन धीमान्। कुलं पुरुषमिदं न चन्द्रेण तारं यथा॥

एकेनापि सुवृक्षेण बुष्पितेन सुगन्धितम्। त्वं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा॥

एको हि गुणवान् पुत्रो निर्गुणेन शक्तेन किम्। चन्द्रे इति तन्मात्रेणैव न च ज्योतिः साक्षरम्॥ (११४।५९-५८)

२-सालयेन् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि तादृयेन्। ज्ञाते तु चोदते सर्वं पुत्रं मित्रवदाचरेन्॥ (११४।५९)

३-केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद्व्याघ्रमुखा मृगाः। तस्मैकमपरीक्षते द्विविधातः परेपदे॥ (११४।६१)

४-ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता भूते पितरि सौनक। सर्वेषां स पिता हि स्यात् सर्वेषामनुपालकः॥

कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्तते। समोपभोगजीवेषु यथैव तनयेषु च॥ (११४।६४-६५)

५-इत जप्योक्तं शनन्ते लिये शस्त्रोंमें प्रायश्चित्तका विधान है, परंतु कुतन्त्रके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

नवे वयसि यः शान्तः स ज्ञान इति मे मतिः ।

धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ॥

(११४/७३)

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! सार्वजनिक मार्गके समान सभी सम्पदाएँ

सर्वमान्य हैं। अतएव 'यह सम्पदा मेरी है', ऐसा मानकर

मनुष्यको इसमें नहीं होना चाहिये। (अध्याय ११४)

## नीतिसार

सूतजीने कहा—मनुष्यको गुणहीन पत्नी, दुष्ट मित्र, दुराचारी राजा, कुपुत्र, गुणहीन कन्या और कुत्सित देशका परित्याग दूसरे ही कर देना चाहिये।

कलियुगमें धर्म समाजसे निकल जाता है, तपमें स्थिरता नहीं रहती, सत्य प्राणियोंके हृदयसे दूर हो जाता है, पृथिवी बन्ध्या होकर फलहीन हो जाती है, मनुष्य कपट-व्यवहार करने लगते हैं, ब्राह्मणोंमें लालच आ जाता है, पुरुषजन स्त्रीके वशीभूत हो जाते हैं, स्त्रियाँ चंचल हो उठती हैं और नीच प्रकृतिके लोग ऊँचे पदोंपर आकाङ्क्ष हो जाते हैं। अतः इस कलिकालमें जीवित रहना निश्चित ही बहुत कष्टसाध्य है। जो प्राणी मर गये हैं, वे ही धन्य हैं। वे लोग धन्य हैं जो राज्यानुशासनसे दूर रहे देश, विनष्ट होते हुए कुल, परासक्त पत्नी तथा दुराचरणमें आसक्त पुत्रको नहीं देखते हैं।

कुपुत्रके होनेपर मनुष्यको सुख-शान्ति नहीं मिलती है। दुराचरिणी पत्नीमें प्रेम कहाँ है? दुर्जन मित्र विश्वासके योग्य नहीं होता है और राज्यके कुशासनमें जीवित रहना सम्भव नहीं है। दूसरेका अन्न, दूसरेका धन, दूसरेकी शय्या, दूसरेकी स्त्रीका सेवन और दूसरेके धर्ममें निवास करना—ये सब कृत्य इन्द्रके भी ऐश्वर्यको समाप्त कर देते हैं।<sup>१</sup>

पापी पुरुषसे वार्तालाप करनेसे, उसके शरीरको स्पर्श करनेसे, संसर्गसे, सहभोजनसे, एक आसनपर बैठनेसे, एक शय्यापर शयन करनेसे एवं एक यानसे गमन करनेपर पापीका पाप दूसरे पुरुषमें संक्रमण कर जाता है। स्त्रियाँ रूपसे नष्ट हो जाती हैं। क्रोधसे तपस्या विनष्ट हो जाती है। दूरतक भ्रमण करनेसे गाँव नष्ट हो जाती हैं और शूद्राजसे श्रेष्ठ ब्राह्मण नष्ट हो जाता है।<sup>२</sup>

पापीके साथ एक आसनपर बैठनेसे, एक शय्यापर लपन करनेसे, पंक्तिमें एक साथ भोजन करनेसे मनुष्यमें पापका संक्रमण बीसे ही होता है जैसे एक चढ़ेका जल दूसरे चढ़ेमें प्रविष्ट हो जाता है।

दुस्त्वारमें बहुत-से दोष हैं और ताड़नामें बहुत-से गुण हैं। अतः शिष्य एवं पुत्रको अनुशासित रखना चाहिये, उन्हें केवल दुस्तर देना उचित नहीं है।

अधिक पैदल चलना प्राणियोंके लिये बुद्धापा है। पर्वतोंका जल उसकी बुद्धावस्था है। सम्भोगकी अप्राप्ति स्त्रियोंके लिये बुद्धावस्था है और सदैव धूपमें रहना वस्त्रोंकी जीर्णता है।

नीच व्यक्ति दूसरेसे कलहकी इच्छा करते हैं। मध्यमार्गी दूसरेसे संधि चाहते हैं तथा उत्तम प्रकृतिके व्यक्ति दूसरेसे सम्मानकी अभिलाषा रखते हैं; क्योंकि महापुरुषोंका धन मान ही है। मान ही अर्थका मूल है। यदि सम्मान है तो धनकी क्या आवश्यकता है? मान और दर्पके नष्ट हो जानेपर धनसे और जीवनसे मनुष्यको क्या लाभ? मान तथा स्वाभिमानके विनष्ट हो जानेके पश्चात् प्राणीको धन एवं आयुसे क्या लेना-देना रह जाता है?

नीच प्रकृतिवाले पुरुष धन चाहते हैं। मध्यम प्रकृतिवाले धन और मानकी अभिरुचि रखते हैं तथा उत्तम प्रकृतिवाले मात्र सम्मानकी इच्छा करते हैं; क्योंकि श्रेष्ठजनोंका मान ही धन है—

अध्या धनमिच्छन्ति धनधानी हि मध्यामाः ।

उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥

(११५/१३)

वनमें भूखे सिंह किसी दूसरेके द्वारा प्राप्त किये गये माँसको देखनेके लिये भी नहीं झुकते हैं। उत्तम कुलमें

१-परात्र च परस्व च परशय्याः परस्मिन् ॥ परस्मैवति कासञ्ज शक्रादपि होषिष्वप् ॥ (११५/१५)

२-स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति। गावो दुराचरणेन शूद्राज्जेन द्विजोत्पन्नः ॥ (११५/१७)

उत्पन्न व्यक्ति धनहीन होनेपर भी नीच कर्म नहीं करते। वनमें सिंहका अभिषेक नहीं होता है और न तो उसका कोई संस्कार ही होता है, किंतु नित्य सम्यक् पुरुषार्थको करनेसे प्राणीमें स्वयं ही सिंहत्वका भाव आ जाता है—

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।

नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मुनेन्दता॥

(११५।१५)

प्रमादी वणिक्, अभिमानी भूत्य, विलासी भिक्षु, निर्धन कामी तथा कटुभाषिणी वेश्या अपने कार्यमें असफल रहते हैं। दरिद्र होकर दाता होना, धनवान् होनेपर कृपण रहना, पुत्रका आज्ञाकारी न होना और दुष्टजनोंकी सेवामें मेलन होना तथा दूसरेका अहित करते हुए मृत्युको प्राप्त हो जाना—ये पाँच कर्म मानवके दुश्चरित हैं। पत्थे विषेण, स्वजनोंके द्वारा अपमान, शेष श्रेण, दुर्जनसेवा तथा दरिद्रताके कारण मित्रोंकी विमुखता—ये पाँच बातें मनुष्यको बिना अग्निके ही जलाती हैं।<sup>१</sup>

मनुष्यको हजारों चिन्ताएँ होती हैं, किंतु उन चिन्ताओंके मध्य चार चिन्ताएँ ऐसी हैं जो तलवारकी धारके समान अल्पन्त तीक्ष्ण हैं, यथा—नीच व्यक्तिसे प्राप्त अपमानकी चिन्ता, भूखसे पीड़ित पत्नीकी चिन्ता, अनुरागहीन भावोंकी चिन्ता तथा कार्यमें स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न अवरोधकी चिन्ता। ये मनुष्यके मर्मस्थलपर तलवारकी धारके समान कष्ट पहुँचाती हैं।

अनुकूल पुत्र, अर्थकरी विद्या, आरोग्य शरीर, सरसंगति तथा मनोऽनुकूल वरावर्तिनी पत्नी—ये पाँच पुरुषके दुःखको समूल नष्ट करनेमें समर्थ हैं।<sup>२</sup>

मृग, हाथी, कीट, भ्रमर और मत्स्य—ये पाँच क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, और रस—इन पाँचों प्रमादी विषयोंमें एक-एकका सेवन करनेपर ही नष्ट हो जाते हैं, परंतु जो मनुष्य पाँचों विषयोंका पाँचों इन्द्रियोंसे सेवन करता है, तो वह क्यों नहीं मारा जायगा—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-

मीना हुताः पञ्चभिरेव पञ्च।

एकः प्रमादी स कथं न घात्यो

यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥

(११५।२१)

क्षीरहीन, रुख स्वभाववाले, गतिहीन, मलिन वस्त्राच्छादित और अनाहृत (बिना बुलाये सभा-उत्सवादिमें उपस्थित होनेवाले)—ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण बृहस्पतिके समान होनेपर भी पूजे नहीं जाते हैं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच जन्मसे ही सुनिश्चित रहते हैं—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।

पञ्चेतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः॥

(११५।२३)

मेघकी छाया, दुष्टका प्रेम, परनारीका साथ, यौवन और धन—ये पाँच अस्थिर हैं। संसारमें प्राणीका जीवन रहना अस्थिर है, उसका धन और यौवन अस्थिर है तथा उसके स्त्री-पुत्र आदि अस्थिर हैं, किंतु उसका धर्म, कीर्ति और दश विरासदायी होता है—

अधच्छाया खले प्रीतिः परनारीषु संगतिः।

पञ्चेते ह्यस्थिरा भावा यौवनापि धनानि च॥

अस्थिरा जीवन्ति त्वेके अस्थिरा धनयौवनम्।

अस्थिरा पुत्रदाराद्यं धर्मः कीर्तिर्विशः स्थिरम्॥

(११५।२५-२६)

सौ वर्षका जीवन भी बहुत कम है, क्योंकि परिमित आयुका आधा भाग रात्रियोंमें ही व्यतीत हो जाता है। शेष बचे हुए समयका आधा भाग व्याधि, दुःख तथा युद्धावस्थामें निष्क्रियताके कारण व्यतीत हो जाता है। मनुष्यकी आयु सौ वर्ष मानी गयी है। आयुका आधा भाग रात्रियोंमें ही समाप्त हो जाता है। उसकी शेष आधी ही आयु बचती है, जिसमेंसे आधेसे कुछ अधिक भाग बाल्यावस्थामें बीत जाता है, कुछ भाग परिजनोंके वियोग, उनकी दुःखदायी मृत्युसे प्राप्त कष्ट तथा राजसेवामें चला जाता है। इसके बाद जो आयुका शेष भाग बचता भी है, वह जलतरंगके समान बंचल होनेके कारण बीचमें ही विनष्ट हो जाता है। अतः लोगोंको मानसे क्या लाभ हो सकता है?

१-दाता दरिद्रः कृपणोऽर्थपुत्रः पुत्रोऽविधेयः कुजनस्य सेवा। पराणकोषे नाम्न मृत्युः प्रजायते दुश्चरितानि पञ्च॥

कान्ताविषयः स्वजनाप्यनं श्रेणस्य शेषः कुजनस्य सेवा। दरिद्रत्वमन्त्राद्विमुक्तः भिक्षु विनर्जिता पञ्च दर्शित लोकाः॥(११५।१७-१८)

२-पश्यथ पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिः। इत्या च धर्मो वलवर्तिनी च दुःखस्य मृतोद्वरणानि पञ्च॥(११५।२०)



मृत्यु दिन-रात वृद्धावस्थाके रूपमें लोकमें विचरण करती रहती है। वह प्राणियोंको वैसे ही अपना शास बनाती है, जैसे सर्प वायुका शास करता है।

चले हुए, रुकते हुए, जागते हुए और सोते हुए भी व्यक्ति यदि सभी प्राणियोंके हितके लिये चेष्टा नहीं करता है तो उसकी समस्त चेष्टा पशुवत् ही है।<sup>१</sup> हित और अहितके विचारसे शून्य बुद्धिवाले, वेद-पुराण तथा शास्त्रोंकी चर्चाके समय अत्यधिक तर्क-वितर्क करनेवाले एवं उदरपूर्तिमात्रमें संतुष्ट-बुद्धिवाले पुरुष और पशुके बीच कौन ऐसा वैशिष्ट्य है जिसके अनुसार उन दोनोंमें अन्तर स्पष्ट किया जा सके?

पराक्रम, तप, दान, विद्या तथा अर्थ-लाभमें जिस मनुष्यकी कीर्ति संसारमें प्रसिद्ध नहीं हुई, वह माताके द्वारा परित्याग किये गये मलके समान ही है। विज्ञान, पराक्रम, यश और अक्षुण्ण सम्मानसे युक्त होकर क्षणमात्र भी जो मनुष्य जीवन धारण करता है, बिना लोग उसीके जीवनको जीवन मानते हैं। वैसे तो कौआ भी बहुत समयतक बलि-भक्षण करते हुए जीवित रहता ही है। धन-मानसे रहित जीवनसे क्या लाभ? भयसे सशक्त मित्रसे क्या हो सकता है? [इसलिये] विषादका परित्यागकर सिंहप्रत अर्थात् पराक्रमका आचरण करना चाहिये। अन्यथा कौआ भी तो बलिका भक्षण करते हुए बहुत समयतक जीवित रहता ही है। जो मनुष्य इस संसारमें अपने प्रति तथा गुरु, नीकर-चाकर और दीन-दुःखीके प्रति दयाभाव नहीं रखता है और मित्रके कार्यमें सहयोग नहीं करता है, मनुष्यलोकमें उसके जीवित रहनेसे क्या लाभ? अरे, कौआ भी बहुत समयतक जीवित रहता है और मनुष्योंके द्वारा दिये गये बलिभागके अन्नको ही जीवनभर खाता है<sup>२</sup>।

धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी क्रियासे रहित जिस मनुष्यके दिन आते हैं और चले जाते हैं, ऐसा व्यक्ति लुहारकी धौकनीके समान ही है, जो कि धास लेते हुए भी जीवित नहीं है।

स्वाधीन रहकर आचरण करनेवाले मनुष्यका जीवन सफल है। पराधीन रहकर जीवन व्यतीत करनेवालेका जीवन तो व्यर्थ है। जो परतन्त्र रहकर जीवन-यापन करते हैं, वे तो जीवित रहते हुए भी मरेके समान हैं।<sup>३</sup>

आकाशमें घिरे हुए बादलोंकी छाया, तिनकेसे आग, नीचकी सेवा, मार्गमें दृष्टिगोचर हुआ जल, वेश्याका प्रेम और दुष्टके अन्तःकरणमें उत्पन्न हुई प्रीति—ये छः जलमें उठने और तत्काल विलुप्त होनेवाले बुलबुलेके सदृश ही क्षणभंगुर होते हैं—

अधच्छाया गुणादग्निनीचसेवा पथी जलम्।

वेरजारागः खले प्रीतिः पडेते बुद्बुदोपमाः॥

(११५।३९)

केवल चाणीके द्वारा किये गये हित-सम्पादनसे मनुष्यको सुख नहीं प्राप्त होता। जीवनका मूल तो मान है। मानके यह हो जानेपर मनुष्यके लिये सुख कहाँ होता है?

निर्बलका बल राजा है, मालकका बल रोना है, मूर्खका बल मौन धारण कर लेना है और खोरका बल असत्य है।<sup>४</sup> मनुष्य जैसे-जैसे शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे उसकी बुद्धि बढ़ती रहती है और विज्ञान प्राप्त करनेमें रुचि होती जाती है। मनुष्य जैसे-जैसे जनकल्याणमें अपनी बुद्धिको संयुक्त करता है, वैसे-वैसे ही वह सर्वत्र सभीका प्रिय पात्र बन जाता है—

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।

तथा तदास्य मेधा स्याद्विज्ञानं चास्य रोचते॥

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम्।

तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लोकसुप्रियः॥

(११५।४२-४३)

लोभ, प्रमाद और विश्वास—इन तीनके कारण व्यक्तिका विनाश होता है। अतएव प्राणीको लोभ, प्रमाद और विश्वास नहीं करना चाहिये। मनुष्यको भयसे उसी समयतक भयभीत रहना चाहिये, जिस समयतक उसका आगमन नहीं हो जाता। लोभ भयके उपस्थित हो जानेपर तो उसे

१-गच्छतस्तुल्यो वापि जाग्रतः स्वपतो न चेत्। सर्वसत्त्वहितार्थं पशोरेव विवेहितम्॥ (११५।३०)

२-यो वाल्मनीह न गुरी न च भूष्यते दीने दयां न कुले न च मित्रकार्ये।

किं तस्य जीवितकालेन मनुष्यलोके काकोऽपि जीवति चिं च बलिं च भुङ्क्ते॥ (११५।३५)

३-स्वाधीनबुलेः सफल्यं न पराधीनवर्तिता। ये पराधीनकर्मात् जीवन्तेऽपि च ते मृताः॥ (११५।३७)

४-अबलस्य बलं राजा बलस्य रीतिं बलम्। बलं मूर्खस्य मौनं हि तस्करस्यावृतं बलम्॥ (११५।४१)

निर्भीक होकर उसका सामना करना चाहिये।<sup>१</sup>

ऋण, अग्नि तथा व्याधिके शेष रहनेपर वे बार-बार बदले जाते हैं। अतः उनका शेष रखना उचित नहीं है—

ऋणशेषं चाग्निशेषं व्याधिष्वेषं तथैव च।

पुनःपुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत्॥

(११५।४६)

परोक्ष-रूपमें कार्यको नष्ट करनेवाले तथा सामने मधुर बोलनेवाले मित्रका, मायावी शत्रुकी भाँति परित्याग कर देना चाहिये—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिकम्।

वर्जयेत् तादृशं मित्रं मायाययमरिं तथा॥

(११५।४८)

दुष्टका साथ करनेसे सज्जन मनुष्य भी विनष्ट हो जाता है, क्योंकि सुन्दर-स्वच्छ पेय जल कीचड़के मिल जानेसे दूषित हो जाता है—

दुर्जवस्य हि संगेन सुजनोऽपि विनश्यति।

प्रसन्नमपि पानीयं कर्दमेः कलुषीकृतम्॥

(११५।४९)

जिस व्यक्तिका धन ब्राह्मणके लिये [सर्पापित] होता है, वही [धनका] सम्पत्क उपभोग करता है। इसलिये सभी प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक द्विजकी पूजा करनी चाहिये। जो द्विजके उपभोगसे बचे हुए पदार्थोंका उपभोग करता है, वही उत्तम भोजन है। जो पाप नहीं करता, वही बुद्धिमान है। जो पीठ-पीछे हित-सम्पादन किया जाता है, वही मित्र-भाव है और जो दिखावटके बिना (दम्भरहित) धर्म किया जाता है, वही वास्तविक धर्माचरण है।<sup>२</sup>

वह सभा सभा नहीं होती, जिसमें बृद्ध जन नहीं होते। वे [बृद्ध] बृद्ध नहीं माने जाते, जो धर्मका उपदेस नहीं देते। वह [धर्म] धर्म नहीं है, जिसमें सत्यका वास नहीं होता। वह [सत्य] सत्य नहीं है, जो कष्टसे अनुप्राणित रहता है—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः

वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।

धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति

नैतत् सत्यं यच्छस्तेनानुविन्द्यम्॥

(११५।५२)

मनुष्योंमें ब्राह्मण, तेजमें आदित्य, शरीरमें सिर और व्रतोंमें सत्य ही श्रेष्ठतम व्रत है।

जहाँ मनको प्रसन्नताकी प्राप्ति हो, वहीं प्राणीका मङ्गल है। दूसरेकी सेवामें समर्पित जीवन ही यथार्थ जीवन है। जो उपार्जित धन स्वजनोंके द्वारा उपभोग्य है, वही धन सार्थक है। युद्धभूमिमें शत्रुके सामने की गयी गर्जना ही वास्तविक गर्जना है। स्त्री वही श्रेष्ठ है, जो मदोन्मत्त नहीं हो। तृष्णारहित व्यक्ति ही सुखी होता है। जिसपर विश्वास किया जाय, वही मित्र है और जो जितेन्द्रिय होता है, वही वास्तविक पुरुष है।

राज्यका ऐश्वर्य कुछ ब्राह्मणके शापसे विनष्ट हो जाता है, ब्राह्मणका तेज पापपाचर करनेसे नष्ट हो जाता है, अशिक्षित गाँवमें निवास करनेसे ब्राह्मणका सदाचार समाप्त हो जाता है और दुष्ट स्त्रियोंके साहचर्यसे कुलका विनाश हो जाता है। सभी संप्रदायोंका अन्त लय है और सभी उत्कर्षोंका अन्त पतन है। संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है।

मनुष्यको राजसे रहित राज्यमें और बहुत राजाओंवाले राज्यमें निवास नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार जहाँ स्त्रीका नेतृत्व हो या बालनेतृत्व हो वहाँ भी निवास करना अच्छा नहीं होता।

कौमार्य-अवस्थामें स्त्रीकी रक्षा पितृ करता है, युवावस्थामें उसकी रक्षाका भार पतिपर होता है, वृद्धावस्थामें उसकी रक्षाका भार पुत्र उत्तरता है। स्त्री स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है।<sup>३</sup>

अर्थके लिये आतुर मनुष्यका न कोई मित्र है और न कोई वन्धु। कामातुर व्यक्तिके लिये न भय है और न लज्जा हो। चिन्तासे ग्रस्त प्राणीके लिये न सुख है और न नींद हो तथा भूखसे पीड़ित मनुष्यके शरीरमें न बल ही रहता है और न तेज ही रह जाता है—

अर्धातुराणां न सुहृन् वन्धुः

कामातुराणां न भयं न लज्जा।

चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा

भुधातुराणां न बलं न तेजः॥

(११५।६०)

दरिद्र तथा दूसरेके द्वारा प्रेषित दूत, पर-नारीमें आसक्त तथा दूसरेके धन-अपहरणमें लगे हुए व्यक्तिको नौद कहाँ

१-तावद्वयस्य भेदध्वं यावद्वचनकालम्। उत्पन्ने तु भवे लोके स्थानेनैव ह्यधीतवत्॥ (११५।४५)

२-तद्वन्ते यद्विजयुक्तशेषं स बुद्धिमान् यो न करोति पापम्। तस्मैहर्षं यत्काले परोक्षे दर्शयित्वा नः क्रियते स धर्मः॥ (११५।५१)

३-पिता रक्षति कौमार्ये भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तु स्मरति काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ (११५।६३)

आती है?¹ जो मनुष्य ऋणरहित और रोगमुक्त होता है, वही सुखपूर्वक निद्राका उपभोग करता है। इनके अतिरिक्त वह व्यक्ति भी निद्राका सुख प्राप्त करनेमें सफल होता है, जो स्त्रियोंके संसर्गसे दूर रहता है।

जलके परिमाणके अनुसार ही कमलनाल भी ऊपरकी ओर उठता जाता है और अपने स्वामीके बलके अनुसार भृत्य भी गर्वोन्मत्त हो जाता है। अपने स्थान जलाशयमें स्थित रहनेपर वरुणदेव एवं सूर्यनारायण कमलके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं, किंतु उस स्थानसे च्युत होनेपर उसी कमलके साथ वे जलासक्त और शोषणका व्यवहार करके कष्ट पहुँचाते हैं। पदासीन रहनेपर जो जिसके भिन्न होते हैं, वे पदसे विमुक्त होनेपर वैसे ही शत्रु हो जाते हैं जैसे जलमें कमलके विद्यमान रहनेपर सूर्यकी प्रीति उसके साथ रहती है, किंतु उस जलसे उसकी तोड़कर स्थलभागमें लानेपर वही सूर्य उसका शोषण करने लगता है।

अपने स्थान या पदपर अवस्थित रहनेपर ही मनुष्यकी पूजा होती है। स्थान और पदसे च्युत होनेपर उसकी उसी प्रकार पूजा नहीं होती, जिस प्रकार शरीरसे पृथक् होनेपर केत, दाँत और नख शोभित नहीं होते—

स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिताः ।

स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केचन दन्त नखा नाः ॥

(११५।७३)

आचारको देखकर कुलका ज्ञान होता है। भाषाकी सुनकर देशका ज्ञान होता है। सम्प्रभसे स्नेह प्रकट होता है और शरीरको देखकर भोजनका ज्ञान (अनुमान) होता है।²

समुद्रमें वर्षा होना व्यर्थ है। तृप्त हुए प्राणीके लिये भोजनका आग्रह व्यर्थ है। समृद्धको दान देना व्यर्थ है तथा नीचके लिये किया गया सुकृत व्यर्थ है। जो प्राणी जिसके हृदयमें अवस्थित है, वह दूरदेशमें रहते हुए भी उसके संनिकट ही विद्यमान रहता है और जो प्राणी हृदयसे ही निकल चुका है, वह समीपमें ही रहते हुए भी दूरदेशमें

निवास करनेवालेके समान है।³

मुखकी विकृति, स्वरभंग, दैन्यभाव, पसीनेसे लक्षपथ शरीर तथा अत्यन्त भयके चिह्न प्राणीमें मृत्युके समय उपस्थित होते हैं, किंतु ये ही चिह्न याचकके जीवित शरीरपर भी दिखायी देते रहते हैं।

कुब्ज होना, कृमिदोषसे पीड़ित रहना, वायुविकारसे ग्रस्त होना, देश, राज्य या गृहसे निष्कासित हो जाना तथा पर्वतके शिखर-भागमें रहना अच्छा है, किंतु याचनाकी वृत्तिको स्वीकार करना उचित नहीं है। संसारके स्वामी होनेपर भी भगवान् विष्णु बलिके यहाँ याचना करके खानन (खीने) हो गये थे। उनसे बढ़कर और कौन ऐसा है, जो याचक होकर लक्ष्मणको प्राप्त नहीं होगा?⁴

वे माता-पिता उस बालकके शत्रु होते हैं, जिन्होंने उसे विद्याभ्यसन नहीं कराया है। सभाके मध्य मूर्ख वैसे ही शोभा प्राप्त करनेमें सफल नहीं होता, जैसे हंस-समुदायके मध्य अगुसा सुशोभित नहीं होता।

विद्या कुसुम व्यक्तिके लिये भी रूप है। विद्या आत्यधिक गुण धन है। विद्या प्राणीको साधुवृत्तिवाला तथा सभी लोगोंका प्रियपात्र बना देती है। वह गुरुओंकी भी गुरु है। विद्या बन्धु-बान्धवोंके कष्टोंको दूर करनेवाली है। विद्या परम देवता है। विद्या राजाओंके मध्य पूजनीय है। अतः विद्यासे विहीन मनुष्य पशुके समान है—

विद्या नाम कुसुमरूपमधिकं विद्यातिगुणं धनं

विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरुणा गुरुः ।

विद्या बन्धुजनार्तिभाजनकरी विद्या परे दीयतं

विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः ॥

(११५।८१)

घर या उसके गुहा स्थानोंपर सुरक्षित रखा हुआ द्रव्य देखा जा सकता है और वह समस्त धन-वैभव चोरोंके द्वारा चुराया भी जा सकता है। किंतु विद्या एक ऐसा धन है, जो दूसरेके द्वारा किसी भी प्रकार अपहृत नहीं किया जा सकता।⁵ (अध्याय ११५)

—

१-कुतो निद्रा दरिद्रस्य परेष्थितस्य च । पराशीघ्रसकम्पे परदण्डास्य च ॥ (११५।६८)

२-आचारः कुलमाद्ययति देशमाद्ययति भाषितम् । सम्प्रभः स्नेहमाद्ययति वपुस्तद्ययति भोजनम् ॥ (११५।७४)

३-दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो वस्तु हृदये स्थितः । हृदयादपि निष्कान्तः समीपस्थोऽपि दूरतः ॥ (११५।७६)

४-जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वापनतां पतः । कोऽन्धोऽभिकसतस्तन कोऽधी यति न तपस्वम् ॥ (११५।७९)

५-गृहे चाप्यन्तरे द्रव्यं लग्नं चैव तु दूरजले । अजेयं हृत्पतिं च विद्या न छिद्यते परैः ॥ (११५।८२)

## तिथि आदि व्रतोंका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! अब मैं व्रतोंका वर्णन करूँगा, जिनको करनेसे प्राणीको भगवान् हरि सब कुछ प्रदान करते हैं। सभी मास, सभी नक्षत्र, सभी तिथि और सभी दिनोंमें हरिका पूजन होता है। एकभक्त<sup>१</sup>, नक्त<sup>२</sup>, उपवास अथवा फलाहारव्रत करनेसे व्रतीको भगवान् हरि धन, धान्य, पुत्र, राज्य और विजय आदि प्रदान करते हैं।

प्रतिपदा तिथिमें वैश्वानर तथा कुबेर पूज्य हैं, ये साधकको अर्थलाभ कराते हैं। प्रतिपदा तिथिमें तथा अश्विनी नक्षत्रमें उपवास करनेवाले साधकके द्वारा पूजित ब्रह्मा उसे लक्ष्मी प्रदान करते हैं।

द्वितीया तिथिमें यमराज एवं भगवान् लक्ष्मीनारायण उस व्रतीको अर्थलाभ कराते हैं। तृतीया तिथिमें गौरी, विष्णुविनायक गणेश तथा शिव—ये तीन देव पूज्य हैं।

चतुर्थीको चतुर्व्यूह भगवान् विष्णु, पञ्चमीको हरि, षष्ठीको कार्तिकेय और रवि तथा सप्तमीको भगवान् भास्करको पूजा करनी चाहिये। ये उपासकको अर्थलाभ कराते हैं।

अष्टमी तिथिमें दुर्गा और नवमी तिथिमें मातृका तथा दशरै पूजित होनेपर अर्थ प्रदान करती हैं। दशमी तिथिमें यमराज और चन्द्र तथा एकादशी तिथिमें ऋषिगणोंकी पूजा करनी चाहिये। द्वादशीको हरि और कामदेव तथा त्रयोदशीको भगवान् शिव पूज्य हैं। चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथियोंमें ब्रह्मा तथा अमावास्यामें पितृगणोंकी पूजा करनेसे वे धन-सम्पत्ति प्रदान करते हैं।

रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये सातों वार, अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र तथा योगोंकी पूजा करनेसे ये सब कुछ प्रदान करते हैं। (अध्याय ११६)

## अनंगत्रयोदशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें अनंगत्रयोदशीव्रत होता है। इस तिथिमें मल्लिका-वृक्षकी दत्तुअन निवेदितकर भन्तुरके पुष्प एवं फलोंसे शिवकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर 'अनङ्गापेति०' इस मन्त्रसे भगवान् शिवको मधुका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। पौषमासमें भगवान् योगेश्वरका बिल्वपत्र, कदम्बके दत्तुअन, चन्दन तथा कुसर आदि नैवेद्यसे पूजन करना चाहिये।

हे मुने! माघमासमें भगवान् नटनागर शिवकी कुन्द-पुष्प तथा मौक्तिक मालासे पूजा करके उन्हें पाकड़वृक्षकी दत्तुअन और पूरिका (पूड़ी)—का नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। फाल्गुनमासमें मरुबक (भंडक) नामक पुष्पोंसे भगवान् वीरेश्वरकी पूजा करनी चाहिये तथा उन्हें लंकरा,

लाक, मीड़ और आम-वृक्षकी दत्तुअन निवेदित करे।

चैत्रमासमें भगवान् सुरूपकी पूजा करनी चाहिये और रात्रिमें उन्हें कर्पूरका प्राशन देना चाहिये। दन्तधावनके लिये वटवृक्षकी दत्तुअन तथा नैवेद्यके विभिन्न शङ्कुली (पूड़ी) प्रदान करे। वैशाखमासमें अशोकवृक्षके पुष्पोंसे भगवान् शिवका दमनक (संहारकारक) स्वरूप पूजनीय होता है। इन महास्वरूपधारी देवकी नैवेद्यमें गुड़ और भात, दन्तधावनके लिये गुलर-वृक्षकी दत्तुअन और प्राशनके लिये जातिफल अर्पित करना चाहिये।

ज्येष्ठमासमें भगवान् प्रद्युम्नका पूजन चन्मक-पुष्पसे करे और बिल्व-वृक्षकी दत्तुअन एवं लवङ्गांश (लौंग फलके टुकड़े)—के नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। आषाढ़मासमें उमाभद्रकी पूजा करनी चाहिये। इसमें अगुस्की गन्ध,

१-दिनार्धसमवेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् । एकपक्षमिति ज्ञेयं रात्रौ तत्र कदाचन ॥

दिनका आधा समय बीत जानेपर २४ घंटोंमें केवल एक बार दिव्यमें किया गया भोजन एकपक्ष होता है।

२-दिवसस्याहमे भगो मन्दीभूते दिव्यकरे । पक्षे तस्य विक्रमीयात्र पक्षे भित्तिभोजनम् ॥

मध्यरात्रिनामके गृहस्थके विधीयते । पक्षेदिनहमे भगो रात्रौ तस्य निषेधनम् ॥

दिनके आठवें भागमें सूर्यप्रभाके पन्ध्र होनेपर किया गया २४ घंटोंमें एक बारका भोजन नक्तव्रत है। गृहस्थके लिये सूर्यास्तके अनन्तर नक्षत्र-दर्शन करके भोजन करना नक्तव्रत है और पति (संन्यासी)—के लिये सूर्यास्तके पूर्व दिनके आठवें भागमें भिक्षा ग्रहण करना नक्तव्रत है।



अपामार्गकी दत्तुअन उन्हें प्रदान की जाती है।

श्रावणमासमें भगवान् शूलपाणि शिवको पूजा होती है। उन्हें करवीर-पुष्प, गन्ध, घृतादिसे युक्त भोजन तथा करवीर-वृक्षकी दत्तुअन निवेदित की जाती है। भाद्रपदमासमें सद्योजात शिवका पूजन बकुल-पुष्प और अपूप (पूर)-के नैवेद्यसे करना चाहिये। आश्विनमासमें चम्पक-पुष्प, स्वर्णकलशके जल और सुवासित मोदकके नैवेद्यसे तथा दमनककी दत्तुअनसे सुराधिप शिवके पूजनका विधान है। कार्तिकमासमें खदिर (कत्वे)-की दत्तुअनसे तथा बैरकी दत्तुअन, मदन-पुष्प, दूध और शाक प्रदान करते हुए वर्षपर्यन्त कमल-पुष्पसे शिवकी पूजा करनी चाहिये। उपर्युक्त विधिसे पूजन करनेके पश्चात् रातिमहित

अर्चन—कामदेवको स्वर्णसे निर्मित मण्डलके अन्तर्गत स्थापित करके उनकी गन्धादिसे पुनः पूजा कर तिल और चावल आदिसे संयुक्त हवन-सामग्रीसे उन्हें दस हजार आहुतियाँ प्रदान करनेका विधान है। उस दिन रात्रिमें जागरण करे तथा गीत-वाद्यादिसे आमोद-प्रमोद करो हुए प्रभातकालमें उन देवकी फिरसे पूजा करके ब्राह्मणको शय्या, पात्र, छत्र, वस्त्र तथा पदत्राणके लिये जूतेका दान देकर भक्तिपूर्वक गौ और ब्राह्मणको भोजन देकर मनुष्यको कृतकृत्य होना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर उद्यापन करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रती लक्ष्मी, पुत्र, आरोग्य, सौभाग्य तथा स्वर्ग प्राप्त करता है।

(अध्याय ११७)

### अखण्डद्वादशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं मोक्ष तथा सन्निप्रद अखण्डद्वादशीव्रतका वर्णन करता हूँ। मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें गौके दूध-दही आदिको भोजनरूपमें स्वीकार करके व्रत करनेवाले उपासकको जगत्के स्वामी भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। चार मासपर्यन्त अर्थात् फाल्गुनमासतक वह व्रती पाँच प्रकारके धान्यसे पूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान दे और भगवान् विष्णुकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

सप्तजन्मभि हे विष्णो यमया हि व्रतं कृतम्।

भगवत्स्वतःप्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥

यथाखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम।

तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै॥

(११८।३-४)

हे विष्णो! सात जन्मोंमें मैंने जो व्रत किये हैं, हे भगवन्! वे आपकी कृपासे इस जन्ममें पूर्ण हों। हे पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आप ही इस सम्पूर्ण अखण्ड ब्रह्माण्डके रूपमें अवस्थित हैं, उसी प्रकार मेरे द्वारा किये गये ये सभी व्रत भी अखण्ड हो जायें।

चैत्रादि (चार) मासमें सगृसे पूर्ण पात्र और श्रावण आदि चार महीनोंमें घृतपूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान देना चाहिये।

इस विधिसे वर्षपर्यन्त द्वादशीव्रतका संकल्प लेकर जो व्रती अपने व्रतकी पूर्ण करता है, वह स्त्री-पुत्रादिसे सम्पन्न होकर अन्तमें स्वर्गलोकका सुखोपभोग करता है।

(अध्याय ११८)

### अगस्त्यार्घ्यव्रत-निरूपण

ब्रह्माजीने पुनः कहा—हे मुने! भुक्ति-भुक्ति प्रदान करनेवाले अगस्त्यार्घ्यव्रतको कहता हूँ। कन्याराशिपर सूर्यकी संक्रान्तिके तीन दिन पहलेसे काश-पुष्पकी बनी हुई अगस्त्यकी मूर्तिका प्रदोषकालमें पूजन करके कुम्भमें अर्घ्य देना चाहिये। (रात्रि) जागरण और उपवास करके दधि-अक्षत और फल-पुष्पसे पूजा करके पाँच वर्णसे युक्त सोने-चाँदीसे समन्वित सप्तधान्यसे भरे पात्रको दही और

चन्दनसे रंजित कर 'अगस्त्यः खनमानः०' इस मन्त्रसे अगस्त्यको अर्घ्य प्रदान करे।

इसके बाद इस मन्त्रसे उन्हें नमस्कार करना चाहिये—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।

मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥

(११९।५)

अर्थात् काश-पुष्पके समान उज्ज्वल, अग्नि और

यायुसे उत्पन्न मिश्रवरुणके पुत्र हे कुम्भयोनि अगस्त्यजी! आपको नमस्कार है।

शूद्र, स्त्री आदि इसी विधिसे अगस्त्यके लिये धान, फल और रस प्रदान करे तथा ब्राह्मणको स्वर्ण और

दक्षिणासे एक घट प्रदान करे। सात ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार वर्षभर अगस्त्यार्घ्य-व्रत करनेवाला सभी प्रकारके श्रेय-प्राप्तिका अधिकारी हो जाता है। (अध्याय ११९)

### रम्भातृतीयाव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं सौभाग्य, लक्ष्मी तथा पुत्रादिसे सम्पन्न करनेवाले 'रम्भातृतीयाव्रत' को कहूँगा। यह व्रत मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको किया जाता है। इस तिथिको उपवास रखकर व्रती कुसोदक हाथमें लेकर बिल्वपत्रसे महागौरीकी पूजा करे। इस पूजनमें कदम्ब (वृक्ष)-को दत्तुअनका प्रयोग करना चाहिये, किंतु पौषमासमें मरुत्यकके पुष्पोंसे पार्वतीके पूजनका विधान है। व्रती इस मासके व्रतमें मात्र कर्पूरका सेवनकर उपवास करता हुआ उन गौरीको कूसर (तिल-बावलका मिश्रण)-का नैवेद्य एवं मल्लिकाओंकी दत्तुअन अर्पित करे।

माघमासमें व्रतके दिन घृतपानकर उपवास करते हुए व्रतीको कल्हार-पुष्प (धेतकमल)-से सुभद्रादेवीकी पूजा करके उन्हें मण्डका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।

फाल्गुनमासमें गोमतीकी पूजाका विधान है। कुन्द-पुष्पसे उनकी पूजा करके उसीकी नासकों दत्तुअनरूपमें उन्हें निवेदित करे और स्वयं जीवा (जीवन्ती)-का भक्षणकर शङ्कुली (पूड़ी)-का नैवेद्य लगावे।

चैत्रमासमें भगवती विशालक्षीको दमनक-पुष्प, तगर<sup>१</sup> काष्ठकी दत्तुअन और कूसराजका नैवेद्य अर्पित करके स्वयं दहीका प्राशन करे। वैशाखमासमें श्रीमुखोदेवीकी पूजा कणिकार (कनैल)-के पुष्प, वटवृक्षकी दत्तुअनसे करनी चाहिये और व्रतीको अशोककलिकाका प्राशन करना चाहिये।

ज्येष्ठमासमें नारायणीदेवीका पूजन शतपत्नी (छितवन)-

के पुष्प एवं दत्तुअनसे होता है। इस पूजामें देवीको खाँड़का नैवेद्य प्रदानकर स्वयं उपासक लींगका भक्षण करे। आषाढ़मासमें माधवीकी पूजा करनी चाहिये। इस मासमें खरी तिलका प्राशन करे और भगवती माधवीकी बिल्वपत्रसे पूजाकर खीर और बटक (भूतपक्व मधुर पिष्टक)-का नैवेद्य अर्पित करे। इस पूजनमें देवीके लिये गूलरकी दत्तुअन प्रदान करनी चाहिये। श्रावणमासमें क्षीरात्र तथा मल्लिकाकी दत्तुअन देकर तगरके फूलसे श्रीदेवीकी पूजा करनी चाहिये।

भाद्रपदमासमें सिंघाड़ेका आहारकर व्रतीको उतमा-देवीके लिये गुड़का नैवेद्य अर्पित करके पद्मपुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये।

आश्विनमासमें राजपुत्रीका पूजन जपा-पुष्पसे करके उन्हें ज्वरेसे सुखसित अन्नका नैवेद्य अर्पितकर रात्रिमें प्राशन करना चाहिये। कार्तिकमासमें पद्मजादेवीका जाति नामक पुष्प एवं कुसराजके नैवेद्यसे पूजन होता है और उपासकको पङ्कगण्यका प्राशन करना चाहिये।

इस प्रकार मार्गशीर्षसे कार्तिकमासतक वर्षकी समाप्तिपर सप्तजीक ब्राह्मणोंको घृतोदन (घृतमें पका तण्डुल) देकर उनका पूजन करना चाहिये। उसके बाद पार्वती और शिवकी गुड़ आदिसे बने नैवेद्य, वस्त्र, छत्र और सुवर्ण आदिसे पूजा करके गीत-वाद्यादिसे रात्रि-जागरण करते हुए प्रातः गौ आदिका दान देना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रतीको सब कुछ प्राप्त हो जाता है। (अध्याय १२०)

१-मण्ड—अन्न, दधि आदिका स्नान।

२-जीवा—शाकविशेष, शंकराके समान मधुर पुष्पवाली लता।

३-तिल, तण्डुल, उड़दके वर्णसे बना क्वणू भी शङ्कुलीका अर्थ है।

४-तगर—पुष्पवृक्ष, झितपुष्प, मदनवृक्ष (तगर)।

## चातुर्मास्यव्रतका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं चातुर्मास्यव्रतको कहता हूँ। आपाढ़ आदि चार मासोंतक एकभक्तव्रत करता हुआ इस व्रतका आरम्भ आपाढ़मासकी एकादशी या पूर्णिमा तिथिमें सब प्रकारसे भगवान् हरिका पूजन करके करे।

व्रतारम्भके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव।

निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव॥

गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णं प्रियायहम्।

तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाजनादिव॥

(१२१।१-३)

हे देव! आपके समक्ष मैंने इस व्रतको ग्रहण किया है। हे केशव! आपके प्रसन्न होनेपर मुझे निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त हो। हे देव! ग्रहण किये गये इस व्रतकी अपूर्णतामें ही यदि मैं मृत्युको प्राप्त हो जाता हूँ तो भी हे जनार्दन! आपकी कृपासे यह मेरा व्रत पूर्ण हो।

इस प्रकार हरिका पूजन करके व्रत, पूजन और जपादिका नियम ग्रहण करना चाहिये। जो हरिके व्रतकी करनेकी इच्छा करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। साधक स्नान करके भगवान् हरिका पूजन कर इस पूजा तथा जपादिकी विहित क्रियाओंकी पूर्तिका संकल्प ले तथा

विष्णुकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला विष्णुके परम पवित्र निर्मल लोकमें चला जाता है।

मधु, मांस, मुरा और तेलका परित्याग करनेवाला जो वेदपारंगत, कृच्छ्रपादव्रती विष्णुभक्त हरिका पूजन करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त हो जाता है। एक रात्रिका उपवास करनेसे वैमानिक (विमानपर चढ़कर भ्रमण करनेवाला) देवता हो जाता है। तीन रात्रिपर्यन्त उपवास कर पष्ठान्न भोजन करनेसे साधकको श्वेतद्वीपकी प्राप्ति होती है। चान्द्रायणव्रत करनेसे तो भगवान् हरिका लोक और मुक्ति बिना मोंगि ही मिल जाती है। प्राजापत्यव्रत करनेसे विष्णुलोक तथा पराकव्रत करनेसे हरिकी प्राप्ति होती है।

इस व्रतमें सत्तु, यवाप्रकी भिक्षा कर, दूध, दही तथा घृतका ग्रसन कर, गोमूत्रपावकका आहार कर, पञ्चगव्यका पान कर अथवा सभी प्रकारके रसोंका परित्याग कर शाक-मूल-फल-दिक्का भक्षण करते हुए जो साधक विष्णुकी भक्ति करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १२१)

## मासोपवासव्रतका निरूपण

ब्रह्माजीने पुनः कहा—अब मैं आपसे मासोपवास नामक उस सर्वोत्तम व्रतका वर्णन करूँगा, जिसका पालन वानप्रस्थ, संन्यासी और नारीको करना चाहिये।

आश्विनमासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें उपवास रखकर तीस दिनपर्यन्त इस व्रतको धारण करनेका विधान है। व्रतारम्भके समय सर्वप्रथम भगवान् विष्णुसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

अद्यप्रभृत्यहं विष्णो मावदुत्थानकं तव।

अर्चये त्वाग्रजंस्तु दिनानि त्रिंशदेव तु॥

कार्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्योः शुक्लधोरहम्।

प्रिये यद्यन्तराते तु व्रतभङ्गो न मे भवेत्॥

(१२२।३-४)

हे विष्णो! आजसे लेकर जबतक आपका शयनोत्थान नहीं हो जाता है, तबतक तीस दिनपर्यन्त बिना भोजन किये

- १- कृच्छ्रपादव्रत—यह तीन दिनका व्रत है। पहले दिन दिनमें एक बार हविष्यान्न ग्रहण, दूसरे दिन अर्वाचिरूपमें हविष्यान्नका एक बार ग्रहण और तीसरे दिन अहोरात्र उपवास। (याज्ञ०स्मृति० प्राय० श्रौत० ३१८)
- २- चान्द्रायणव्रत—यह व्रत अनेक प्रकारका है। मनु० ११।२१४ के अनुसार यह है—त्रिंशदिन तीनों काल स्नान। पूर्णिमासे व्रतका आरम्भ। इस दिन पंद्रह घास हविष्यान्नमात्र ग्रहण। पूर्णिमाके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक-एक घास कम करते हुए अर्थात् १४, १३, १२ इस संख्यामें घास ग्रहण करते हुए कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको एक घास ग्रहण। तदनन्तर अमावास्याकी पूर्ण उपवास। पुनः अमावास्याके बाद शुक्ल प्रतिपदासे एक-एक घास बढ़ाकर १, २, ३ इस क्रममें दूसरी पूर्णिमाकी पंद्रह घास ग्रहण। इस प्रकार एक मासमें यह व्रत पूर्ण होता है।
- ३- प्राजापत्यव्रत—यह व्रत बारह दिनका होता है। प्रथम तीन दिन केवल दिनमें हविष्यान्न-ग्रहण। तदनन्तर तीन दिन बिना मोंगि जो मिल जाय, उतनमात्र एक बार ग्रहण। अन्तिम तीन दिन पूर्णरूपमें उपवास। (मनु० ११।२१२)
- ४- पराकव्रत—इस व्रतमें बारह दिनतक केवल जल ग्रहण करके रहा जाता है। (याज्ञ०स्मृति० प्राय० श्रौत० ३२०, मनु० ११।२१५)

ही मैं आपका पूजन करता रहूँगा। हे विष्णो! यदि मैं आधिन और कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें द्वादशीसे लेकर दूसरी द्वादशी तिथिके मध्य मर जाता हूँ तो मेरा यह व्रत भंग न हो।

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् प्रातः, मध्याह्न तथा संध्याकालमें स्नान करके उपासक गन्धादिसे भगवान् हरिका देवालयमें पूजन करे, किंतु व्रतीको शरीरमें ठबटन तथा सुगन्धित गन्धलेप आदि नहीं करना चाहिये।

द्वादशी तिथिमें भगवान् हरिकी पूजा करके व्रती ब्राह्मणोंको भोजन कराये। एक मासतक हरिका व्रत करनेके पश्चात् व्रती पारणा करे। यदि व्रतधारी इस अवधिके मध्य मूर्च्छित हो जाता है तो उसे दुग्धादिका प्राशन कर लेना चाहिये; क्योंकि दुग्धादिका पान करनेसे व्रत विनष्ट नहीं होता। इस प्रकार मासव्रत करनेसे भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं। (अध्याय १२२)

### भीष्मपञ्चकव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं कार्तिकमासमें होनेवाले व्रतोंको कहूँगा। इस मासमें स्नान करके व्रतीको भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। व्रती एक मासतक एकभक्त-व्रत कर, नक्तव्रत कर, अमाचितव्रत कर, दुग्ध, फल, द्राव्य आदिका आहार कर अथवा उपवास कर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। ऐसा करनेसे यह व्रती सभी पापोंसे मुक्त होकर समस्त कामनाओंके साथ-साथ भगवान् हरिकी प्राप्त कर लेता है।

भगवान् हरिका व्रत करना सदैव श्रेष्ठ है, किंतु सूर्यके दक्षिणायनमें चले जानेपर यह व्रत अधिक प्रशस्त होता है। उसके बाद इस व्रतका काल चातुर्मासमें श्रेष्ठकर है। तदनन्तर इस व्रतका उचित काल कार्तिकमास है। इसके बाद भीष्मपञ्चक इस व्रतके लिये श्रेष्ठ समय है किंतु कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथि इस व्रतके शुभारम्भके लिये सर्वश्रेष्ठ काल होता है। अतः इसी तिथिसे इस व्रतका शुभारम्भ करना चाहिये। उपासक इस दिन प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालीन—इन तीनों मन्त्राओंमें स्नान कर यवादि पदार्थोंसे पितृगण आदिकी नैत्यिक पूजा करनेके पश्चात् भगवान् हरिका पूजन करे। वह मीन होकर घृत, मधु, शर्करादि तथा पञ्चगव्य एवं जलसे हरिकी मूर्तिको स्नान कराये और कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्यसे श्रीहरिके शरीरका अनुलेपन करे।

तदनन्तर व्रतीको घृतसमन्वित गुग्गुलुसे पूर्णिमापर्वत पाँच दिनोंतक श्रीहरिको धूप देना चाहिये और सुन्दर-सुन्दर पक्वान्न तथा मिष्ठानका नैवेद्य अर्पितकर 'ॐ नमो वासुदेवाय' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करना चाहिये।

तत्पश्चात् स्याहायुक अष्टाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो वासुदेवाय) से घृतसहित चायल तथा तिलकी आहुति

प्रदान करनी चाहिये।

व्रती पहले दिन कमलपुष्पसे भगवान् हरिके दोनों चरणोंका पूजन करे। दूसरे दिन बिल्वपत्रसे उनके जानु (जंघा)-प्रदेशकी पूजाकर तीसरे दिन गन्धसे नाभिदेशकी पूजा करे। चौथे दिन बिल्वपत्र तथा जवापुष्पसे उनके सकम्ब-भागका पूजन करके पाँचवें दिन मालतीके पुष्पोंसे उनके शिरोभागका पूजन करना चाहिये। व्रती भूमिपर ही शयन करे और उक्त पाँच दिनोंतक क्रमशः पहले दिन गोमय, दूसरे दिन गोमूत्र, तीसरे दिन दही, चौथे दिन दुग्ध और पाँचवें दिन घृत—इन चारों पदार्थोंसे निर्मित पञ्चगव्यका प्राशन शक्तिमें करे। ऐसा व्रत करनेवाला व्रती भोग और मोक्ष दोनोंका अधिकारी हो जाता है।

कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत हमेशा करना चाहिये। यह व्रत उस समस्त पापसमूहका विनाश करता है, जो प्राणीको नरक देनेवाला है। यह व्रतीको सभी अपीष्ट फल प्रदान करता है और अन्त समयमें उसे विष्णुलोक भी दे देता है।

पहले दिन शुद्ध एकादशी, दूसरे दिन शुद्ध द्वादशी तथा द्वादशीकी निशा (रात्रि)-के अन्तमें अर्थात् तीसरे दिन त्रयोदशी हो तो ऐसी एकादशी तिथिमें सदा श्रीहरिका स्मिन्धान रहता है। यदि दशमी और एकादशी तिथि एक ही दिन होती है तो इसमें असुरोंका निवास रहता है। अतः यह एकादशी व्रतके लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती। एकादशीको उपवासकर द्वादशीमें पारणा करनी चाहिये। सूतक (वंशमें किसीकी उत्पत्ति) और मृतक (वंशमें किसीके मरण)-की स्थितिसे होनेवाले अशीचकालमें भी यह व्रत करना चाहिये।

हे मुने! यदि चतुर्दशी और प्रतिपदा तिथि पूर्व तिथिसे



विद्वद् है तो इन तिथियोंमें भी उपवास करना चाहिये। तृतीयासे युक्त चतुर्थी तिथिको उपवास करे। षष्ठीसे प्रतिपदासे मिश्रित पौर्णमासी और अमावास्या तिथि, असंयुक्त पञ्चमी तिथि और षष्ठीसे युक्त सप्तमी तिथिको तृतीयासे मिश्रित द्वितीया तिथि, चतुर्थीसे संगत तृतीया तिथि, उपवास किया जाना चाहिये। (अध्याय १२३)

### शिवरात्रिव्रतकथा तथा व्रत-विधान

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं शिवरात्रिव्रत और उस कथाका वर्णन करूँगा, जो व्रत करनेवालोंको समस्त अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ है। जैसे पूर्वकालमें पार्वतीने भगवान् महेश्वर शिवसे इस परमवैश्व व्रतको सुननेकी इच्छा की थी और सुना था, वैसे ही आप भी सुनें।

भगवान् महेश्वरने कहा—हे गौरि! माघ और फाल्गुन-मासके मध्यमें जो कृष्ण चतुर्दशी होती है, उस चतुर्दशी तिथिमें उपवास तथा जागरण करनेसे और भगवान् रुद्रकी पूजा करनेसे पूजित रुद्र भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करते हैं। जिस प्रकार द्वादशी तिथिको विष्णुकी पूजा होती है, उसी प्रकार कामनासे युक्त होकर इस चतुर्दशी तिथिमें महादेव हरकी पूजा करनी चाहिये। उपवाससहित विधि-विधानसे पूजित शिव विष्णुके समान भक्तको नरक-भोगसे बचाते हैं। शिवरात्रिव्रतकी कथा इस प्रकार है—

बहुत पहले अर्बुद देशमें एक सुन्दरसेन नामक पाण्डव निषाद राजा रहता था। वह एक बार अपने कुत्तोंको साथ लेकर आखेट करनेके लिये खनमें गया, किन्तु दैववशात् उस पर्वतीय खनप्रान्तमें उसको कोई भी मृगादि जीव आखेटरूपमें प्राप्त नहीं हो सका। भूख-प्याससे पीड़ित वह रात्रिमें जलाशय और तड़ागोंके तटपर अवस्थित वृक्ष-लताओंके शुरुमुटोंमें भटकता हुआ जागता ही रह गया। वहीपर उसे एक शिवलिंगका दर्शन हुआ। अतः उसने अपने शरीरकी रक्षाके लिये एक वृक्षकी शरण ली और निद्राल होकर वहीं गिर गया, किन्तु उसकी जानकारोंके बिना शिवलिंगपर वृक्षके पत्ते गिर पड़े। उसने उन पत्तोंको हटाकर जलसे उस शिवलिंगके ऊपर स्थित धूलिको दूर करनेके लिये शिवलिंगको प्रक्षालित किया। प्रमादवश उसी समय शिवलिंगके पास ही उसके हाथसे एक बाण छूटकर भूमिपर गिर गया। अतः घुटनोंको भूमिपर टेककर एक हाथसे शिवलिंगको स्पर्श करते हुए उसने उस बाणको उठा लिया। इस प्रकार उस व्याधके द्वारा रात्रि-जागरण, शिवलिंगका स्नान, स्पर्श और पूजन भी हो गया।

प्रातःकाल होनेपर वह व्याध अपने घर चला गया और पत्नीके द्वारा दिये गये भोजनको ग्रहणकर क्षुधासे निवृत्त हुआ। यद्योचित समयपर उसकी मृत्यु हुई तो यमराजके दूत उसको पाशमें बाँधकर जब यमलोक ले जाने लगे, तब मेरे गणोंने उन यमदूतोंको युद्धमें जीतकर व्याधको उसके पाशसे मुक्त करा दिया। अतः अपने कुत्तोंके साथ निष्पाप होकर वह व्याध मेरा पार्षद बन गया।

इस प्रकार प्राणीके द्वारा अज्ञानवश अथवा ज्ञानपूर्वक किये गये पुण्य अधप ही होते हैं। उपासकको चाहिये कि त्रयोदशी तिथिमें शिवका पूजन करे तथा व्रतका नियम ग्रहण करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करे—

प्रातर्देव चतुर्दश्यां जागरिष्याम्यहं विशि।

पूजां दानं तपो होमं करिष्याम्यात्मशक्तितः॥

चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शम्भो परोऽहनि।

भोऽस्येह भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेद्धर॥

(१२४।१२-१३)

हे देव। मैं रात्रिभर जागरण करूँगा। प्रातः चतुर्दशी तिथिमें यथासामर्थ्य आपकी पूजा, दान और हवन भी करूँगा। हे शम्भो। चतुर्दशी तिथिमें निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे महादेव। भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये मैं आपकी शरणमें हूँ।

व्रतकी पञ्चमृतसे महादेवको स्नान कराकर 'ॐ नमो नमः शिवाय' इस मन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पृतसमन्वित तिल, तण्डुल एवं वीहिसे निर्मित चरकी आहुति अग्निमें देकर पूर्णाहुति करे। व्रती गीतवाद्यके साथ सत्कथाओंका श्रवण करे। उसके बाद वह अर्धरात्रि, तीसरे प्रहर और चौथे प्रहरमें पुनः उनकी पूजाकर मूलमन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल आ जानेपर उनके सामने इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—

अविज्ञेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मायाचितम्।

क्षमस्व जगतां नाद्य त्रैलोक्याधिपते हर॥

यन्मयाद्य कृतं पुण्यं यद्दुस्त्य निवेदितम्।

त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम्॥  
प्रसन्नो भव मे श्रीमन् गृहे प्रति च गम्यताम्।  
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि च संशयः॥

(१२४। १७-१९)

छत्रादि दे। तदनन्तर वह पुनः इस प्रकार प्रार्थना करे—  
देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक॥  
अथवा अष्टाया दत्तं प्रीयतां तेन मे प्रभुः।

(१२४। २०-२१)

हे देव! हे नाथ! हे त्रैलोक्याधिपति स्वामिन् शिव! आपकी कृपासे मैं व्रतको निर्विघ्न सम्पन्न कर सका हूँ और आपकी यह पूजा भी पूर्ण हो सकी है। आप मुझे क्षमा करें। हे देव! मैंने जो कुछ आज पुण्य किया है, भगवान् रुद्रको जो कुछ निवेदित किया है, वह सब आपकी कृपासे ही हुआ है। आपको ही कृपासे यह व्रत भी आज समाप्त किया जा रहा है। श्रीमन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप अपने लोकको अब प्रस्थान करें। अष्टका दर्शनमात्र प्राप्तकर मैं निस्संदेह पवित्र हो गया हूँ।

व्रती ध्याननिष्ठ ब्राह्मणको भोजनसे संतुष्ट कर वस्त्र-

हे देवादिदेव! समस्त प्राणिजगत्के स्वामिन्, संसारपर कृपा रखनेवाले प्रभो! ब्रह्मापूर्वक मैंने जो कुछ आपको समर्पित किया है, उससे आप प्रसन्न हों।

इस प्रकार क्षमापन-स्तुति करनेके पश्चात् व्रतीको द्वादश-वार्षिक व्रतका संकल्प लेना चाहिये। ऐसा करके व्रती कौटि, लक्ष्मी, पुत्र तथा राज्यादिके सुख-वैभवको प्राप्तकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है। व्रतधारी बारहों मासमें भी इस व्रतके जागरणको पूर्ण करके यदि द्वादश ब्राह्मणोंको भोजन प्रदान करे और दीपदान करे तो उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अध्याय १२४)

### एकादशीमाहात्म्य

पितामहने कहा—मान्धाता नामके एक राजा थे, जिन्होंने एकादशीव्रत करके उसके पुण्यसे पञ्चवती सम्राट्की उपाधि धारण की थी। अतः कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षकी एकादशी तिथिमें मनुष्यको भोजन नहीं करना चाहिये।

गान्धारीने दशमीविद्धा एकादशीका व्रत किया था, जिसके फलस्वरूप उसके सौ पुत्रोंका विनाश उसके जीवनकालमें ही हो गया था। इसलिये दशमोसे युक्त एकादशीका व्रत नहीं करना चाहिये। द्वादशोके साथ एकादशी होनेपर उस एकादशोमें भगवान् हरिको संनिधान रहता है। जिस मास दशमीवैधसे युक्त एकादशी होती है, उसमें असुरोंका संनिधान होता है। जब विभिन्न शास्त्रोंमें कहे गये वाक्योंकी बहुलतासे अज्ञातवश संदेह बढ़ जाता है तो उस परिस्थितिमें द्वादसी तिथिको व्रत करके त्रयोदशी तिथिमें पारणा कर लेनी चाहिये।<sup>१</sup> यदि एकादशी एक

कलामात्र भी कालगणनामें रहती है तो द्वादशी (युक्त एकादशी) तिथिको यह व्रत उपास्य है। यदि एकादशी, द्वादशी और विशेष रूपसे त्रयोदशी तिथि भी एक ही दिन आ जाती है तो इन तीन तिथियोंसे मिश्रित यह तिथि व्रत करने योग्य होती है, क्योंकि यह तिथि माङ्गलिक एवं सभी पापोंका विनाश करनेमें समर्थ होती है।

हे द्विजराज! एकादशी अथवा द्वादशीका व्रत करके तीन तिथियोंसे मिश्रित अर्थात् एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथिसे समन्वित तिथिपर व्रत कर लेना उचित है, किन्तु दशमीवैधसे युक्त एकादशीका व्रत कभी नहीं करना चाहिये।

रातमें जागरण तथा पुराणका श्रवण एवं गदाधर विष्णुकी पूजा करते हुए दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत कर महाराज रुक्माङ्गदने मोक्ष प्राप्त किया था। अन्य एकादशी व्रतकर्ताओंने भी मोक्ष प्राप्त किया है। (अध्याय १२५)

### विष्णुमण्डल-पूजाविधि

ब्रह्माजीने कहा—जिस पूजाको करनेसे लोग परमार्थको प्राप्त हो गये हैं, मैं उसी भुक्ति एवं मुक्ति देनेमें समर्थ श्रेष्ठ

पूजाका विधिवत् वर्णन करूँगा।

व्रतीको सर्वप्रथम एक सामान्य पूजामण्डलका निर्माण

१-यहाँ केवल वैष्णव एकादशीकी चर्चा की गयी है।

कर द्वारदेशसे उसमें पूजा प्रारम्भ करनी चाहिये। मण्डलके द्वारदेशमें धाता, विधाता और महानदी गङ्गा, यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर द्वारदेशपर ही श्री, दण्ड, प्रचण्ड और वास्तुपुरुषकी पूजाकर मध्यभागमें आधारशक्ति, कूर्मदेव एवं अनन्तका पूजन करे। इसके बाद पूजक पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अशैश्वर्यकी पूजा कन्द, नाल, पद्म, कर्णिका तथा केसरादि भागोंपर करे। तदनन्तर सत्य, रजस् और तमस् गुणोंकी पूजा करके उस व्रतीको यथाविहित स्थानपर सूर्यादि ग्रहमण्डलोंकी और विमलादि शक्तियोंकी भी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद मण्डलके कोण-भागमें दुर्गा, गणेश, सरस्वती और क्षेत्रपाल देवोंकी तथा आसन और मूर्तियोंकी

पूजा कर व्रती भगवान् नासुदेव और बलभद्रका स्मरण करता हुआ महात्मा अनिरुद्ध तथा नारायणकी पूजा करे। वह उनके हृदयादि सम्पूर्ण अङ्ग, शंख, चक्र तथा गदादि आयुधकी पूजाकर श्री, पुष्टि, गरुड, गुरु और परम गुरुकी पूजा करे। तदनन्तर उसे इन्द्रादि आठों दिक्पालकी पूजा उनकी ही दिशाओंमें करके अधोभागमें नाग तथा ऊर्ध्वभागमें ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये। आगमशास्त्रमें निर्दिष्ट विधिके अनुसार विष्वक्मेन देवकी पूजा ईशानकोणमें करके उस मण्डलकी पूजाको पूर्ण करना चाहिये।

जो मनुष्य इस विधिके अनुसार एक बार भी भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, उस महात्माका पुनर्जन्म इस संसारमें नहीं होता। पुण्डरीकाक्ष गदाधर भगवान् विष्णु एवं ब्रह्माकी पूजा करनेसे पुनः जन्म नहीं होता। (अध्याय १२६)

### भीमा-एकादशीव्रत एवं माहात्म्य तथा पूजन-विधि

ब्रह्माजीने कहा—प्राचीनकालमें माधवासके शुक्लपक्षमें हस्तनक्षत्रसे मुक्त एक एकादशीका व्रत भीमने किया था। इसलिये इस एकादशीको भीमा-एकादशी कहा जाता है। यह आश्चर्य है कि मात्र इसी एकादशीका व्रत करनेसे भीमसेन पितृव्रणसे मुक्त हो गये थे।

प्राणियोंके पुण्योंकी अभिवृद्धि करनेवाली भीमा-द्वादशी तिथि भीमसेनके नामसे ही प्रसिद्ध भी है। यह तिथि तो बिना हस्तनक्षत्रके संयोगसे ही ब्रह्महत्यादि पापोंका विनाश कर देती है।

यह द्वादशी तिथि महापापोंको तो वैसे ही नष्ट कर देती है, जैसे कुमार्गामी राजासे राज्य, कुपुत्रसे कुल, दुष्टपत्नीसे पति, अधर्मसे धर्म, कुमन्त्रीसे राजा, अज्ञानसे ज्ञान, अशौचसे शौच, अश्रद्धासे श्रद्धा, असत्यसे सत्य, उष्णतासे शीतलता, अनाचारसे सम्पत्ति, कहनेमात्रसे दान, विस्मय करनेसे तप, अशिक्षासे पुत्र, दूर चली जानेसे गौ, क्रोधसे शान्ति, नहीं बढ़ानेसे धन, ज्ञानसे अविद्या और निष्कामतासे फल विनष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार पाप नाशके लिये द्वादशी तिथि शुभ कही गयी है।

ब्रह्महत्या, मुरापान, सुवर्ण-चोरी तथा गुरुपत्नीगमन—ये महापातक मनुष्यमें यदि एक साथ उत्पन्न हो जायें तो इनको त्रिपुष्कर तीर्थ भी नष्ट नहीं कर सकते हैं (किंतु यह द्वादशी उस समस्त पापसमूहको नष्ट कर देती है)

नैमिषक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, कालिन्दी (यमुना), गङ्गा, तथा सभी तीर्थ भी एकादशीके समान नहीं हैं। कोई भी दान, जप, होम या अन्य पुण्य इसके तुल्य नहीं है। यदि एक ओर पृथिवीके दानका सत्कर्म रखकर दूसरी ओर भगवान् हरिकी इस पवित्र एकादशी तिथिकी तुलना की जाय तो भी यही एक महापुण्यशालिनी एकादशी तिथि सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होगी।

इस व्रतमें भगवान् ब्रह्मदेवकी स्वर्णप्रतिमा बनाकर नये ताम्रपात्रमें घटके ऊपर स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणजन समस्त विश्वके बीजभूत विष्णुदेवको उस प्रतिमाको श्वेत वस्त्रसे आच्छादितकर स्वर्णनिर्मित दीपादिक उपचारोंसे प्रपन्नपूर्वक उनकी पूजा करे।

ॐ वसुधाय नमः 'इस मन्त्रसे उन विष्णुके चरणकमलोंकी पूजाकर ॐ क्रीडाकुलये नमः' इस मन्त्रसे उनके कटिप्रदेशका पूजन करे। तदनन्तर ॐ गम्भीरघोषाय नमः 'इस मन्त्रसे उनकी नाभिकी पूजा कर ॐ श्रीवत्सधारिणे नमः' इस मन्त्रसे उनके वक्षःस्थलका पूजन करे। उसके बाद ॐ सहस्रशिरसे नमः 'इस मन्त्रसे उन विष्णुभगवान्की भुजाओंकी पूजा करके भक्तको ॐ सर्वेश्वराय नमः' इस मन्त्रसे उन देवके शीर्षाभागी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर व्रती ॐ स्रष्टात्मने नमः 'इस मन्त्रसे मुखकी और ॐ प्रभवाय नमः' इस मन्त्रसे हरिके सत्ताटभागी

पूजाकर 'ॐ शतमपुत्राय नमः' इस मन्त्रसे उन चक्रधारी हरिकी केशरासिकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजाको समाप्तकर ब्रह्मी रात्रिमें जागरण करते हुए भगवान् हरिके माहात्म्यको प्रतिपादित करनेवाले पुराणकी कथाका श्रवण करे। तदनन्तर प्रातःकाल स्वर्णनिर्मित वरहमहिष सपरिवार भगवान्की उस मूर्तिको अपेक्षा रखनेवाले ब्राह्मणको दे करके पारणा करे।

इस विधि-विधानसे व्रत करनेसे मनुष्य पुनः माताके गर्भसे उत्पन्न होकर स्तनका दूध नहीं पान करता है अर्थात् वह पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यशालिनी एकादशीका व्रत करनेसे प्राणीको पितृ, गुरु एवं देव—इन तीनों श्रेणियोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह व्रत सभी व्रतोंका आदि स्थान है। इस व्रतको करके मनुष्य अपने समस्त मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त करनेमें सफल रहता है। (अध्याय १२७)

## व्रतपरिभाषा तथा व्रतमें पालन करनेयोग्य नियम और अन्य ज्ञातव्य बातें

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! जिन व्रतोंको करनेसे नारायण संतुष्ट होकर सब कुछ प्रदान करते हैं, उन व्रतोंको मैं कहूँगा। शास्त्रके द्वारा वर्णित नियम-पालन व्रत कहलाता है और वही तप है। व्रतोंके कुछ सामान्य नियम इस प्रकार हैं—

व्रतोंको गित्य तीनों संध्याओंमें स्नान करना चाहिये। उसे जितेन्द्रिय होकर भूमिपर शयन करना चाहिये। स्त्री, बृद्ध और पतितजनोके साथ बातचीत करना उसके लिये वर्जित है। वह पवित्र बना रहे और प्रतिदिन हवन करे।

सुकृत करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह नियमोंका पालन करे। (व्रतचरणके पूर्व) क्षीर न कराना चाहें तो दुग्धना व्रत करना चाहिये।

व्रतोंके लिये कांस्यपात्र, उड़द, मसूर, चना, कोटो, दूसरेका अन्न, शाक और मधुका सेवन वर्जित है। पुष्प, अलंकार, नवीन वस्त्र, धूप-गन्धादि लेप, दन्तधावन और अञ्जनका प्रयोग त्याग्य है। पञ्चगव्य पान कर व्रतका आचरण करना चाहिये। एकसे अधिक बार जलपान, ताम्बूल-भक्षण, दिनमें शयन तथा मैथुन करनेसे व्रतभंग हो जाता है।

क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निमें हवन, संतोष और चोरी न करना—ये दस सभी व्रतोंके सामान्य धर्म हैं।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः॥

देवपूजाग्निहवने संतोषोऽस्तेयमेव च॥

सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥

(१२८।८-९)

(चौबीस घण्टेमें केवल एक बार) नक्षत्रदर्शनके समय किया जानेवाला भोजन नक्षत्रत कहा जाता है और जो

रात्रिमें भोजन किया जाता है, वह नक्षत्रत नहीं है। एक पल गोमूत्र, आधे औंठके बराबर गोमय, सात पल गोदुग्ध, तीन पल गोदधि, एक पल गोघृत और एक पल कुशोदक—यह पञ्चगव्यका परिमाण है। गायत्रीमन्त्रसे गोमूत्र, 'गन्धद्वात्र०' इस मन्त्रसे गोमय, 'आध्यायस्व०' मन्त्रसे दूध, 'दधि०' मन्त्रसे दही, 'तेजोऽसि०' मन्त्रसे घृत और 'देवस्य०' इस मन्त्रसे कुशोदकको अभिमन्त्रितकर पञ्चगव्यका निर्माण करना चाहिये।

अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, बृद्धाकरण, उपनयन, विवाहादिक माहृतिक कृत्य और गन्धाभिषेक आदि कर्म मलमासमें नहीं करना चाहिये।

अमावास्यासे अमावास्यातक चान्द्रमास होता है। सूर्योदयसे लेकर दूसरे सूर्योदयतक एक दिन, इस प्रकार तीस दिनका सावनमास होता है। एक राशिसे दूसरे राशिपर सूर्यके संक्रमणकालको सौरमास कहते हैं। नक्षत्र सत्ताईस होते हैं। उनके अनुरोधसे जो मास होता है, उसे नाक्षत्र मास कहते हैं। विवाहकार्यमें सौरमास, यज्ञादिमें सावनमास ग्रहण किया जाता है।

द्वितीयाके साथ तृतीया, चतुर्थीके साथ पञ्चमी, षष्ठीके साथ सप्तमी, अष्टमीके साथ नवमी, एकादशीके साथ द्वादशी, चतुर्दशीके साथ पूर्णिमा तथा प्रतिपदाके साथ अमावास्याका युग्म हो तो ऐसी युग्म-तिथि महाफलदायक होती है। इसके विपरीत यदि युग्म-तिथियाँ हों तो वह महाघोर काल है। वह पूर्वजन्मके किये हुए पुण्यको भी नष्ट कर देता है।

यदि व्रत प्रारम्भ करनेके पश्चात् व्रतकालमें ही स्त्रियोंमें रजोदर्शन हो जाता है तो उससे उनका व्रत नष्ट नहीं होता है। ऐसी स्थितिमें उन्हें चाहिये कि वे दान-पूजा आदि कार्य



किसी अन्यसे सम्पन्न करायें और स्नान, उपवासादि कायिक कार्य स्वयं करें।

यदि क्रोध, प्रमाद अथवा लोभवश किसीका व्रत भंग हो जाता है तो उसको तीन दिनतक उपवास करके

शिरोमुण्डन करा देना चाहिये। शरीरके असमर्थ हो जानेपर व्रतीको अपने पुत्रादिके व्रत कराना चाहिये। यदि व्रतकालमें व्रती मूर्च्छित हो जाता है तो उसे जल आदि पिला देना चाहिये। इससे व्रतभंग नहीं होता। (अध्याय १२८)

## प्रतिपदा, तृतीया, चतुर्थी तथा पञ्चमीमें किये जानेवाले विविध तिथिघ्नत

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! अब मैं प्रतिपदादि तिथियोंके व्रतोंकी विधियोंका वर्णन करूँगा। आप उनका श्रवण करें। प्रतिपदा तिथिके एक विशेष व्रतका नाम शिखिघ्नत है। इस व्रतको करनेसे व्रती वैश्वानर-पद प्राप्त करता है। प्रतिपदा तिथिमें एकभक्तव्रत करके दिनमें एक बार भोजन करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर कपिला गौका दान करे। वैश्रमासके प्रारम्भमें विधिपूर्वक सुन्दर गन्ध, पुष्प, माला आदिसे ब्रह्माकी पूजा और हवन करनेसे सभी अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति होती है। कार्तिकमासमें शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको व्रती पुष्प और उनसे बनी हुई मालाका दान करे। यह क्रम वर्षपर्यन्त चलना चाहिये। ऐसा करनेसे रूपकी इच्छा करनेवाले व्रतीको रूप-सौन्दर्यकी प्राप्ति होती है।

श्रावणमासके कृष्णपक्षकी तृतीया तिथिमें लक्ष्मीके साथ भगवान् श्रीधरविष्णुको सुसज्जित शय्यापर स्थापित कर उनकी पूजा करे और फलकी भेंट चढ़ाये। इसके बाद उस शय्यादिका दान ब्राह्मणको करके व्रती 'श्रीधराय नमः, श्रियै नमः' यह प्रार्थना करे। इसी तृतीया तिथिको उमा-शिव और अग्निकी पूजा करनी चाहिये। व्रती इन सभीको हविष्यान्न, नैवेद्य और दमनक (श्वेत कमल)-का निवेदन करे।

फाल्गुनादिमें तृतीयाका व्रत करनेवाले मनुष्यको नमक नहीं खाना चाहिये। व्रतके समाप्त होनेपर सप्तमीक ब्राह्मणकी पूजा करके अन्न, शय्या, पात्रादि उपस्करोंसे दुग्धधरका दान 'भवानी प्रीयताम्' 'भवानी प्रसन्न हो' ऐसा कहकर करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रतीको अन्त समयमें भवानीका लोक प्राप्त होता है और इस लोकमें श्रेष्ठ सुख तथा सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्षमासकी तृतीया तिथिमें गौरी तथा चतुर्थी आदि तिथियोंमें क्रमशः—काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा तथा नारायणीदेवीकी पूजा करनी चाहिये। इनकी पूजा करनेसे व्रती प्रियजनोसे

होनेवाले वियोगादि कष्टोंसे मुक्त हो जाता है।

माघमासके शुक्लपक्षमें चतुर्थी तिथिको निराहार रहकर व्रत करते हुए व्रती ब्राह्मणको तिलका दानकर स्वयं तिल एवं जलका आहार करे। इस प्रकार प्रतिमास व्रत करते हुए दो वर्ष बीतनेपर इस व्रतको समाप्त कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे जीवनमें किसी प्रकारका विघ्न आदि प्राप्त नहीं होता। चतुर्थी तिथिमें गणोंके अधिनायक गणपतिदेवकी पञ्चाविधि पूजा करनी चाहिये—पूजामें 'ॐ गः स्वाहा' यह प्रणवसे मुक्त मूल मन्त्र है। पूजामें अङ्गन्यास इस प्रकारसे करना चाहिये—

ॐ मूर्तिं मूर्तिं हृदयाय नमः (दाहिने हाथकी पौंछों अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श)। ॐ गां गीं गूं शिरसे स्वाहा (सिरका स्पर्श)। ॐ हुं ह्रीं ह्रीं शिखायै वषट् (शिखाका स्पर्श)। ॐ गूं कण्ठाय चर्मणे हुम् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अँगुलियोंसे दाहिने कंधेका साथ ही स्पर्श)। ॐ गीं नेत्रत्रयाय वीषट् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटेके मध्यभागका स्पर्श)। ॐ गों अम्बाय फट् (यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी सिरके ऊपरसे बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

आवाहनादिमें निम्नाङ्कित मन्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये। यथा—

आगच्छोत्काय गन्धोत्कः पुष्पोत्को धूपकोत्ककः।  
दीपोत्काय महोत्काय बलिश्चाथ विस्र (मा) र्जनम्॥  
हे गन्धोत्क, हे पुष्पोत्क, हे धूपकोत्क अर्थात् हे गन्ध, पुष्प तथा धूपमें तेजःस्वरूप विद्यमान रहनेवाले देव! आप इस रचित पूजामण्डलमें स्थित दीपकमें तेज प्रदान करनेके लिये, महातेज देनेके लिये, बलि और धिसर्जनतक विद्यमान रहनेके लिये यहाँ उपस्थित हों।

आवाहनके पश्चात् गायत्रीमन्त्रसे अंगुष्ठादिका न्यास

करना चाहिये। वह गायत्रीमन्त्र इस प्रकार है—

ॐ महाकर्णाय विष्णवे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।

करन्यासके पश्चात् इसी मन्त्रसे उनका ध्यान करके व्रतीको तिलादिसे उनकी पूजा करके आहुति देनी चाहिये। गणपतिके साथ रहनेवाले गणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। व्रतीको 'ॐ गणाय नमः', 'ॐ गणपतये नमः' तथा 'ॐ कुम्भापण्डित्य नमः' इस प्रकार कहकर उनकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद स्वाहान्त शब्दका प्रयोग कर इन्हीं मन्त्रोंसे आहुति दे। इसी प्रकार अमोघोल्क, एकदन्त, त्रिपुरान्तकरूप, श्यामदन्त, विकरालास्य, आहवेष्ट और पद्मदंष्ट्रा गणोंको भी 'नमः' और अन्तमें 'स्वाहा' शब्दसे यथापेक्षित नमन और आहुति प्रदान करनी चाहिये। उसके बाद व्रती गणदेवके लिये मुद्रा-प्रदर्शन, नृत्य, हस्तताल तथा हार्यभोग प्रदर्शित करे। ऐसा करनेसे उसे सौभाग्यादि फलोंकी प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिमें गणकी पूजा करनी चाहिये। वर्षपर्यन्त ऐसा करनेसे विद्या, लक्ष्मी, कीर्ति, आयु और संतानकी प्राप्ति होती है। सोमवार, चतुर्थी तिथिको उपवास रखकर व्रतीको विधि-विधानसे गणपतिदेवकी पूजा कर उनका जप, हवन और स्मरण करना चाहिये। इस व्रतको करनेसे उसे विद्या, स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होता है। शुक्लपक्षकी चतुर्थीको खांडके लड्डू और मोदकसे विघ्नेश्वरकी पूजा करनेपर व्रतीको समस्त कामनाओंकी सिद्धि तथा सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यदि दमनक (धेतकमल) से इनकी पूजा होती है तो साधकको पुत्रादिकका फल प्राप्त होता है, इसीलिये इस चतुर्थीका नाम दमन है।

'ॐ गणपतये नमः' इस मन्त्रसे गणपतिकी पूजा करनी चाहिये। जिस किसी भी मासमें इन गणपतिदेवकी पूजा करने तथा होम, जप और स्मरण करनेसे व्रतीकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा समस्त विघ्नोंका विनाश हो जाता है। पनुष्यको विभिन्न नामोंका उच्चारण करके भी भगवान् आद्यदेव विनायककी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे

उसको भी सद्गतिकी प्राप्ति होती है। जबतक वह इस लोकमें रहता है, तबतक समस्त सुखोंका उपभोग करता है और अन्त समयमें उसे स्वर्ग और मोक्षकी भी प्राप्ति होती है। विनायकके निम्नलिखित ये बारह नाम हैं—

गणपूज्यो वक्रतुण्ड एकदंष्ट्री त्रियम्बकः।

नीलग्रीवो लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः॥

धूम्रवर्णो भालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः।

गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादशारे यजेद्गणम्॥

(१२९।२५-२६)

गणपूज्य, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, त्रियम्बक (त्र्यम्बक), नीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण, भालचन्द्र, विनायक और हस्तिमुख—इन बारह नामोंसे गणदेवकी पूजा करनी चाहिये।

पृथक्-पृथक् इन नामोंसे जो बुद्धिमान् प्राणी इनकी पूजा करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिकमासके शुक्ल-पक्षकी पञ्चमी तिथिमें वासुकि, तक्षक, कालीय, मणिभद्रक, ऐरावत, भुतराष्ट्र, कर्कोटक तथा धनञ्जय—इन आठ नागोंकी धृतादिसे स्नान कराकर पूजा करनी चाहिये। ये नाग अपने भक्तको आयु-आरोग्य और स्वर्ग प्रदान करते हैं। अनन्त, वासुकि, तंख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, भुतराष्ट्र, संखक, कालीय, तक्षक और पिंगल—इन नागोंकी पूजा श्रावण मासमें करनी चाहिये। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें आठों नागोंकी पूजा करनेसे साधकको मृत्युके पश्चात् स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

श्रावणमासके शुक्लपक्षमें पञ्चमीकी द्वारेके दोनों ओर इन नागोंका चित्र बनाकर पूजन करना चाहिये। इसी दिन अनन्त आदि महानागोंकी पूजा करके नैवेद्यमें दूध तथा घी देना चाहिये, इससे सभी विषदोष दूर हो जाते हैं। नाग अभय वरदान देनेवाले होते हैं और यह पञ्चमी सर्पदंष्ट्री प्राणीकी मुक्ति देनेवाली होती है। इसलिये दंष्ट्रीद्वार पञ्चमी कहलाती है। (अध्याय १२९)

## षष्ठी तथा सप्तमीके विविध व्रत

ब्रह्माजीने कहा—भाद्रपदमासमें भगवान् कार्तिकेयकी पूजा करनी चाहिये। इसमें स्नानादि जो कृत्य किये जाते हैं, वे सभी अक्षय फल प्रदान करनेवाले हो जाते हैं।

व्रती (षष्ठी तिथिको उपवासकर) सप्तमी तिथिको ब्राह्मणभोजन कराकर 'ॐ खलोल्लवाय नमः' इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी पूजा करे और अष्टमी तिथिको मरिचका

भोजनकर पारणा करे। इससे व्रती अन्तमें स्वर्ग प्राप्त करता है। मरिच-प्राशनके कारण इस व्रतका नाम मरिचसप्तमी है। इस व्रतको करनेसे प्रियजनोंसे मिलन होता है, उनसे वियोग नहीं होता। सप्तमी तिथिको संवत्पूर्वक स्नानादि करके सूर्यकी पूजा करे। 'मार्तण्डः प्रीयताम्'— 'सूर्यदेव मुझपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए ब्राह्मणोंके लिये फलोंका दान करे और खजूर, नारियल, बिजौरा नीबू आदि फलोंको प्रदान करे। यह प्रार्थना करे कि हे देव! मेरे सभी अभीष्ट चारों ओरसे सफल हों। फलदान एवं प्राशनके कारण इस सप्तमीका नाम 'फलसप्तमीव्रत' है।

सप्तमीको सूर्यदेवकी पूजा कर यदि ब्राह्मणोंको दक्षिणासहित पायसका भोजन कराया जाय, तदनन्तर व्रती स्वयं पयका पानकर व्रत समाप्त करे तो पुण्य-लाभ होता

है। ओदन, भक्ष्य, चोष्य और लेष्ट्य पदार्थ इस व्रतमें ग्राह्य नहीं है। धन-पुत्रको कामना करनेवाला ओदनका परित्याग कर इस व्रतको करे। इसी वैशिष्ट्यके कारण इसे अनौदक सप्तमी कहा गया है।

विजयकी कामना करनेवालेको वायुमात्र पान कर विजयसप्तमीव्रत करना चाहिये। जो कामेच्छुक है, वे मात्र अर्कका प्राशनकर इस व्रतको करें। इस प्रकार व्रतकर वे कामनर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

इस सप्तमीव्रतमें गेहूँ, उड़द, यव, साटी धान, तिल, कांस्पधत्र, पाषाणपात्र, पिसी हुई वस्तु, मधु, मैथुन, मद्य, मांस, तैल-मर्दन और अन्नन त्याज्य है। जो मनुष्य इनका परित्याग कर व्रत करता है, उसकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसीलिये इसे विजयसप्तमी कहा गया है।

(अध्याय १३०)

### दुर्वाष्टमी तथा श्रीकृष्णाष्टमी-व्रत

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन्! भाद्रपदमासमें तुजलपक्षकी अष्टमी तिथिको दुर्वाष्टमीव्रत होता है। इस दिन उपवास रहकर दुर्वासे गौरी-गणेशकी और शिवकी फल-पुष्प आदिसे पूजा करनी चाहिये। फल, धान्य आदि सभी प्रयोज्य वस्तुओंसे 'शम्भवे नमः, शिवाय नमः' कहकर शिवका पूजन करे। तदनन्तर 'त्वं दुर्वैऽमृतजन्मासि' इस मन्त्रसे दुर्वाकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे यह अष्टमीव्रत विहित ही साधकको सर्वस्व प्रदान कर देता है। इस व्रतमें जो अग्निमें न पकाये गये पदार्थोंका भोजन करता है, वह ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है।

इसी भाद्रपदके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको अर्द्धरात्रिमें रोहिणी नक्षत्रमें भगवान् हरिकी पूजाका विधान है। यह श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत कहलाता है। सप्तमी तिथिसे विद्ध अष्टमी तिथि भी व्रतके योग्य होती है। इस प्रकारके अष्टमीका व्रत करनेसे प्राणीके तीन जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः उपवास रखकर मन्त्रसे भगवान् हरिकी पूजा करके तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करनी चाहिये।

'ॐ योगाय योगपतये योगेश्वराय योगसम्भवाय गोविन्दाय

नमो नमः।' इस मन्त्रसे योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान कर 'ॐ यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।' इस मन्त्रसे उन्हें स्नान कराना चाहिये।

उसके बाद 'ॐ विद्याय विद्येश्वराय विद्यपतये विद्यसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः' इस मन्त्रसे श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात्—'ॐ सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।' इस मन्त्रसे उन्हें जपन कराना चाहिये।

स्मरिण्डल (खेदी)—में चन्द्रमा और रोहिणीके साथ भगवान् कृष्णकी पूजा करे। पुष्प, फल और चन्दनसे युक्त जलको संखमें लेकर अपने दोनों घुटनोंको पृथिवीसे लगाते हुए चन्द्रमाको निम्न मन्त्रद्वारा अर्घ्य प्रदान करे—

ह्रीरोदार्णवसम्भूत

अत्रिनेत्रसमुद्भव ॥

गृहाणार्घ्यं शशाङ्केश रोहिण्या सहितो भव ॥

(१३१।८-९)

हे क्षीरसागरसे उत्पन्न देव! हे अत्रिमुनिके नेत्रसे समुद्भूत! हे चन्द्रदेव! रोहिणीदेवीके साथ मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको आप स्वीकार करें।

तदनन्तर व्रतीको महालक्ष्मी, वसुदेव, नन्द, बलराम

तथा यशोदाको फलयुक्त अर्घ्य प्रदानकर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

अनन्त वामनं श्रीरि वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ॥  
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ॥  
वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ॥  
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गुरुद्वयजम् ॥  
गोविन्दमभ्युतं देवमनन्तमपराजितम् ॥  
अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥  
अनादिनिधनं विष्णुं शिलोकेशं त्रिविक्रमम् ॥  
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥  
पीताम्बरधरं दिव्यं वनमालाविभूषितम् ॥  
श्रीवत्साङ्गं जगद्धाम श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् ॥  
यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीवनम् ॥  
भीमस्य ब्रह्मणो गुप्यै तस्यै ब्रह्मात्मने नमः ॥

(१३१) १७—२६

ये देव जो अनन्त, वामन, श्रीरि, वैकुण्ठनाभ, पुरुषोत्तम, वासुदेव, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वराह, पुण्डरीकाक्ष, नृसिंह, दैत्यसूदन, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गुरुद्वयज, गोविन्द, अभ्युत, अनन्तदेव, अपराजित, अधोक्षज, जगद्बीज, सर्गस्थित्यन्तकारण, अनादिनिधन, विष्णु, शिलोकेश, त्रिविक्रम, नारायण, चतुर्भुज, शङ्खचक्रगदाधर, पीताम्बरधारी, दिव्य, वनमालासे विभूषित, श्रीवत्साङ्ग, जगद्धाम, श्रीपति और श्रीधरदि नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनकी देवकीसे वसुदेवने उत्पन्न किया है, जो पृथिवीपर निवास करनेवाले ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये संसारमें अवतरित होते हैं, उन ब्रह्मरूप भगवान् श्रीकृष्णको मैं नमन करता हूँ।

इस प्रकार भगवान्के नामोंका संकीर्तन करके अपनी

सद्गतिके लिये पुनः यह प्रार्थना करनी चाहिये—

ब्रह्मि मां देवदेवेश हरे संसारसागरात् ॥  
ब्रह्मि मां सर्वपापज दुःखशोकार्णवात् प्रभो ॥  
देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात् ॥  
दुर्वृत्ताम्बायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ॥  
सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्याहि मां शोकसागरात् ॥  
पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्प्रज्ञानसागर ॥  
ब्रह्मि मां देवदेवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता ॥  
स्वजन्यवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥  
जगद्भिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥  
शान्तिस्तु शिवं चास्तु धनविद्यातिरान्यथा ॥

(१३१) १७—२१

हे देवदेवेशर! हे हरे! इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करें। हे सर्वपापहन्ता प्रभो! दुःख तथा शोकसे परिपूर्ण इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करें। हे देवकीनन्दन! हे श्रीपते! हे हरे! इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! जो एक बार भी आपका स्मरण करते हैं, उन सभीको आप दुराचरणके दुःखसे उबार लेते हैं। हे देव! मैं भी वीसा हूँ इस संसारके अत्यन्त दुराचरणमें फँसा हुआ हूँ, आप मेरा भी इस शोकरूपी सागरसे उद्धार करें। हे राजीवलोचन! मैं इस गहन अज्ञानरूपी संसारसागरमें डूबा हुआ हूँ। आप मेरी रक्षा करें। हे देवदेवेश! आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई रक्षक नहीं है। हे स्वजन्मा! वासुदेव! गोद्विजहितकारी! जगत्प्राता! कृष्ण! गोविन्द! आपको बारम्बार नमस्कार है। आपकी कृपासे मुझे शान्ति प्राप्त हो, मेरा कल्याण हो और धन, यश तथा राज्यवैभवका मैं अधिकारी बनूँ। (अध्याय १३१)

## बुधाष्टमीव्रत-कथा

ब्रह्माजीने कहा—जो मनुष्य अष्टमी तिथिको दिनभर व्रत रखकर नक्तव्रतकी विधिसे एक बार भोजन करता है और इस व्रतक्रमकी वर्षपर्यन्त चलाकर व्रतकी समाप्तिपर गोदान करता है, उसे इन्द्रपदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको सद्गतिव्रत कहा गया है। पौषमासकी शुक्लाष्टमी तिथिके व्रतका नाम महारुद्रव्रत है। जब दोनों पक्षकी अष्टमी तिथि बुधवारसे युक्त हो तो नियमपूर्वक बुधाष्टमीव्रत करनेवालेकी सम्पत्ति कभी भी खण्डित नहीं होती। मुक्तिकी इच्छा

रखनेवाला जो मनुष्य दो अंगुलियोंको हटाकर शेष तीन अंगुलियोंसे बाँधी गयी मुट्ठीके द्वारा आठ मुट्ठी चावल लेकर ब्रह्मा-भक्तिपूर्वक भात बनाता है और कुशासे वेष्टित आन्नपत्रके दोनेमें करमूके साग और इमलीके साथ उस भातको इस व्रतकी समाप्तिके बाद ग्रहण करता है और बुधाष्टमीकी कथा सुनता है, उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

बुधाष्टमीको जलाशयमें पञ्चोपचार-विधिसे बुधदेवकी



पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर यथाशक्ति दक्षिणासे युक्त ककड़ी और चावलका दान देना चाहिये। इस देवके पूजनका बीजमन्त्र 'ॐ बुं बुधाय नमः' है। इस देवपूजाके पश्चात् कमलगट्टे आदिकी आहुति देनेके लिये इसी बीजमन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। जलाशयके मध्य जिस पूजा-मण्डलकी कल्पना करे उस मण्डलके मध्य कल्पित पद्मदलके ऊपर धनुष-बाणसे युक्त श्यामवर्णवाले इन देवकी भावना कर उनके अङ्गोंकी पूजा करे।

इस बुधाष्टमीकी कथा बड़ी ही पुण्यदायिनी है। इस व्रतकी कथा व्रत करनेवाले जनोंकी अवश्य सुननी चाहिये। वह कथा इस प्रकार है—

प्राचीनकालमें पाटलिपुत्र नामक नगरमें बौर नामका एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम रम्भा और पुत्रका नाम कौशिक था। उसके विजया नामकी एक पुत्री थी तथा धनपाल नामका एक बैल था। ग्रीष्म-ऋतुमें एक बार कौशिक उस बैलको लेकर गङ्गामें स्नान करते समय जलाशयका करने लगा और उसी समय बौर गौपालकोंने आकर बलात् उस धनपाल नामक बैलका अपहरण कर लिया। कौशिक दुःखी होकर वनमें भ्रमण करने लगा। उसी समय संयोगवश अपनी माताके साथ गङ्गाजल लेनेके लिये विजया वहाँपर आ गयी। कौशिक भूख-प्याससे व्याकुल हो कमलनालको भक्षण करनेकी इच्छासे एक जलाशयके पास जा पहुँचा। जहाँपर दिव्यलोककी कुछ स्त्रियाँ पूजा कर रही थीं। उन्हें देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। अतः विस्मयाभिभूत कौशिकने उन सबके पास जाकर कुछ अन्नके लिये याचना करते हुए कहा— मैं अपनी छोटी बहनके साथ भूखा हूँ, किंतु स्त्रियोंने कहा कि तुमको इस पूजन-सामग्रीमेंसे व्रत करनेके लिये ही कुछ द्रव्य मिल सकता है। तुम भी वहाँपर व्रत करो। तत्पश्चात् कौशिकने वहाँपर धनपाल बैलकी प्रातिके लिये और विजयाने पति-प्रातिके लिये बुधदेवकी व्रत-पूजा की। व्रत-पूजन करनेके पश्चात् स्त्रियोंके द्वारा दोनेमें दिये

गये प्रसादको उन दोनोंने ग्रहण किया। उसके बाद वे स्त्रियाँ वहाँसे चली गयीं। कुछ समयके बाद चौरोंके साथ वहाँपर धनपाल बैल भी दिखायी पड़ गया। चौरोंके द्वारा दिये हुए धनपाल बैलको लेकर प्रदोषकालमें वे दोनों घर वापस चले आये। घरमें दुःखित पिता वीरको प्रणामकर रात्रिमें कौशिक सुखपूर्वक सो गया।

इधर युवा हुई पुत्री विजयाको देखकर वीरको यह चिन्त हो गयी कि मैं इस पुत्रीको किसे दूँ। दुःखित पिताने यमराजको पुत्री देनेका निश्चय किया। दैवयोगसे इसी बीच वीरकी मृत्यु हो गयी। पिताके स्वर्ग चले जानेके बाद कौशिकने राज्य-प्रातिके लिये पुनः बुधाष्टमीका व्रत किया, जिसके फलस्वरूप कौशिकको अयोध्याका विशाल राज्य प्राप्त हुआ। उसने अपनी उस बहन विजयाका विवाह भी पिताके द्वारा कहे गये ऋचनके अनुसार यमराजके साथ ही करनेकी बात मनमें ठान ली थी। उसके प्रभावसे यमराजने वहाँ स्वयं आकर विजयाको पत्नीके रूपमें स्वीकार किया और विजयासे कहा— 'तुम चलकर मेरे घरमें गृहस्थामिनी बनकर रहो।' उसने भी वैसा ही स्वीकार कर लिया और पतिके घर आकर रहने लगी। एक दिन यमने उसे सावधान करते हुए कहा— देवि! ये जो बंद कमरे हैं, इन्हें कभी खोलना नहीं। विजयाने कभी भी बंद कमरेका किंवाद्वारक नहीं खोला और न तो अपने पतिके विरुद्ध कोई आचरण ही किया। वह एक सद्गुणिणीके समान ही उनके साथ रही, किंतु एक दिन विज्ञासावश उसने पतिके न रहनेपर क्रोध खोलनेपर वहाँ अपनी माताको पति यमके ही कहकारी पासमें बैठा हुआ देखा, जिससे वह अत्यंत दुःखित हो उठी। उसी समय कौशिकके द्वारा बताया गये बुद्धि प्रदान करनेवाले बुधाष्टमी-व्रतकी याद उसे हो आयी। अतः उसने पुनः उस व्रतको किया, जिसके फलस्वरूप माता उस यमपाशसे मुक्त हो गयी। तदनन्तर उसने भी उस व्रतका पालन किया और अन्तमें व्रतके पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक प्राप्तकर वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगी। (अध्याय २३२)

### अशोकाष्टमी, महानवमी तथा नवमीके अन्य व्रत और ऋध्येकादशी व्रत-माहात्म्य

ब्रह्माजीने कहा—वैत्रमासमें पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त अशोकमञ्जरीकी आठ कलियोंका पान करते हैं, ये शोकको नहीं प्राप्त होते। अशोककलिकाओंका पान करते

समय यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वामशोक हरामीष्ट मधुमाससमुद्भव ।

पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुत ॥

(१२३।२)

हे शिवप्रिय! वसंतोद्भव! शोकसंतप्त मैं आपका सेवन कर रहा हूँ। हे अशोक! आप मुझे सदैव शोक-विमुक्त रखें।

ब्रह्माजीने पुनः कहा—आश्विनमासमें उत्तराषाढ नक्षत्र तथा शुक्लपक्षकी अष्टमीसे युक्त जो नवमी होती है, उसे महानवमी कहा जाता है। इस तिथिको स्नान-दानादि करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। यदि केवल नवमी हो तो भी दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् शिव आदिने इस व्रतको किया था। यह महाव्रत अत्यधिक पुण्यलाभ देनेवाला है। शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये राजाको यह व्रत करना चाहिये। उसे जप-होमके बाद कुमारियोंको भोजन करना चाहिये।

इस व्रतमें देवीके पूजनादिक कृत्योंमें प्रयुक्त होनेवाला 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' यह मन्त्र है।

व्रतीको चाहिये कि वह अष्टमी तिथिको लकड़ियोंसे देवीके लिये नौ अथवा एक भवन (मण्डप)—का निर्माण करे। उसमें देवीकी सुवर्ण या रजतमूर्ति स्थापित करे। देवीकी पूजा शूल, खड्ग, पुस्तक, पट अथवा मण्डलमें करनी चाहिये। अठारह हाथोंवाली दुर्गादेवी अपनी बायीं ओरके हाथोंमें कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरू और पाश धारण करती हैं। उनके दाहिनी ओरके हाथोंमें शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, शर, चक्र और शलाका नामक आयुध रहते हैं। दुर्गादेवीके अतिरिक्त अन्य देवियोंकी जो प्रतिमाएँ होती हैं, उनके सोलह हाथ माने गये हैं। अञ्जन और डमरू उनके हाथोंमें नहीं रहता।

रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोशा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा तथा अतिचण्डिका—इन आठ देवियोंके अतिरिक्त नवौं देवी उग्रचण्डा हैं। ये उग्रचण्डादेवी अन्य आठ देवियोंके बीच प्रन्वलिता अग्निकी प्रभाके समान सुशोभित होती हैं। रुद्रचण्डाका वर्ण रोचनाके समान, प्रचण्डाका अरुण, चण्डोशाका कृष्ण, चण्डनायिकाका

नील, चण्डाका धूस्र, चण्डवतीका शुक्ल, चण्डरूपाका पीत, अतिचण्डिकाका वर्ण पाण्डुर और उग्रचण्डाका वर्ण अग्निको ज्वालाके समान है। देवी उग्रचण्डा सिंहपर स्थित रहती हैं। इनके आगे हाथमें खड्ग लिये हुए महिषासुर स्थित रहता है। देवी अपने एक हाथसे उस महिषासुरका (मुण्डयुक्त) कच (केश) पकड़े हुई स्थित रहती हैं।

इन भगवती उग्रचण्डाके दशाक्षरी विद्या-मन्त्र ('ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा')—का जप करके मनुष्य किसी भी बाधासे बाधित नहीं होता। पंद्रह अंगुलवाले खड्ग तथा त्रिशूलके साथ ही देवीकी उग्र शक्तियों—पूतना, पापराक्षसी, चरको तथा विदारिकाकी भी नैऋत्य आदि कोणोंमें यथाविधि पूजा करनी चाहिये।

राजाओंको शत्रु आदिपर विजय प्राप्त करनेके लिये विविध मन्त्रोंसे इस महानवमीको देवीकी विशेष पूजा करनी चाहिये। ब्रह्माणी, माहेंसी, बौमारी, वैष्णवी, बाराही आदि मातृकाओंको दूधसे स्नपन आदि कराकर देवीकी रथयात्रा निकालनी चाहिये, इससे उन्हें विजय तथा राज्य आदिकी प्राप्ति होती है।

आश्विनमासकी शुक्ला नवमीको एकभक्तव्रत करते हुए देवी और ब्राह्मणोंकी पूजा करके एक लाख बीजमन्त्रका जप करना चाहिये। इसे वीरनवमीव्रत कहा गया है। चैत्रशुक्ला नवमीको देवीकी पूजा दमनक नामक पुष्पसे करनी चाहिये। ऐसा करनेसे आयु, आरोग्य और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा व्रती शत्रुसे अपराजित रहता है। इसे दमनकनवमीव्रत कहा जाता है। इसी मासकी शुक्ला दशमीको एकभक्तव्रत करके वर्षके अन्तमें दस गीर्वाणोंका दान तथा दिव्यालोंको स्वर्णमेखलाका विवेदन करनेवाला समस्त ब्रह्माण्डका स्वामी हो जाता है। इसका नाम दिग्दशमीव्रत है। एकादशी तिथिको ऋषिपूजा करनेका विधान है। इससे व्रतीका सब प्रकारसे उपकार होता है। वह इस लोकमें धनवान् और पुत्रवान् होकर रहता है और अन्तमें उसे ऋषिलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। चैत्रमासमें दमनक-पुष्प तथा इन्हीं पुष्पोंसे बनी मालाद्वारा मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वसिष्ठ, भृगु और नारद—इन ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १३३—१३५)

### श्रवणद्वादशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं प्राणियोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्रवणद्वादशीव्रतका वर्णन करूँगा। श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशी और द्वादशी तिथि जब एक ही दिन पड़ती हैं तो उसे विजय तिथि कहा जाता है। इस दिन हरिकी पूजा आदि करनेसे प्राप्त पुण्यका फल अक्षय होता है। एकभुक्तव्रत करनेसे अथवा नक्तव्रत करनेसे या अयाचितव्रत करनेसे अथवा उपवास या भिक्षाचार करनेसे इस द्वादशीव्रतका पुण्य शीघ्र नहीं होता है। व्रतीको इस द्वादशोके दिन कांस्यपात्र, मांस, सहद, लोभ, असत्यभाषण, व्यायाम, मैथुन, दिनमें सोना, अन्न, पत्थरपर पिसे हुए द्रव्य तथा मसूरका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

यदि भाद्रपदमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो वह द्वादशी बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। उस दिन उपवास करनेसे महान् फलोंकी प्राप्ति होती है। यदि यह तिथि बुधवारसे भी युक्त हो तो इस दिन नदियोंके संगममें स्नान करनेसे महनीय फल प्राप्त होते हैं। इस दिन रत्न एवं जलसे परिपूर्ण कुम्भमें दो श्वेतवस्त्रोंसे आच्छादित भगवान् वामनकी स्वर्णमयी प्रतिमाका उग्र और जूता-समन्वित पूजन करना चाहिये।

विद्वान्को चाहिये कि 'ॐ नमो वामुदेवाय' इस मन्त्रसे भगवान् वामनके सिरकी पूजा करके, 'ॐ श्रीधराय नमः' मन्त्रसे उनके

मुखमण्डलकी, 'ॐ कृष्णाय नमः' मन्त्रसे उनके कण्ठकी, 'ॐ श्रीपतये नमः' मन्त्रसे उनके वक्षःस्थलकी, 'ॐ सर्वास्वधारिणे नमः' मन्त्रसे उनकी भुजाओंकी, 'ॐ व्यापकाय नमः' मन्त्रसे उनके कुक्षिप्रदेशकी, 'ॐ केशवाय नमः' मन्त्रसे उनके उदरकी, 'ॐ त्रैलोक्यपतये नमः' मन्त्रसे उनके मेढु (गुह्य)-भागकी तथा 'ॐ सर्वभूते नमः' मन्त्रसे उनकी जंघाओंकी और 'ॐ सर्वात्मने नमः' मन्त्रसे उनके पैरोंकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें धृत और पायसका नैवेद्य समर्पित करे। कुम्भ और मोदक दे करके रात्रिमें जागरण करना चाहिये। तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर स्नान और आचमन करे और उनकी पुनः पूजा करके पुष्पाञ्जलिसहित इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ॥

अधीपसंज्ञय कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥

(१३६।११-१२)

हे गोविन्द! ज्ञानस्वरूप! श्रवण नामवाले देव! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप मेरे समस्त पापसमूहोंका विनाश करके मेरे लिये सभी सुखोंकी प्रदान करनेवाले होवें।

प्रार्थनाके बाद 'प्रीयतां देवदेवेश'—ऐसा कहते हुए ब्राह्मणोंको कनशोंका दान दे। इस व्रत-पूजाको नदीतट अथवा अन्य किसी पवित्र स्थानपर करनेसे सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय १३६)

### तिथिव्रत, वारव्रत एवं नक्षत्रादिव्रत-निरूपण और प्रतिपदादि तिथियोंमें पूजनीय देवता

ब्रह्माजीने कहा—कामदेवत्रयोदशी तिथिको श्वेतकमल आदिके पुष्पोंसे रति और प्रीतिसे युक्त मणिविभूषित शोकरहित कामदेवकी पूजा करनी चाहिये, इस व्रतका नाम मदनत्रयोदशी है। जो वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्णपक्षकी चतुर्दशी एवं अष्टमी तिथिमें उपवास करके शिवपूजन करता है, वह मुक्ति प्राप्त करता है। इसे शिवचतुर्दशी तथा शिवाष्टमौव्रत कहा गया है। तीन रात्रियोंतक उपवास रखकर व्रतीको कार्तिकमासमें एक शुभ भवनका दान देना चाहिये। ऐसा करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है, यह कल्याणकारी धामव्रत है। अमावास्या तिथिमें पितरोंको दिया गया जल आदि अक्षय होता है। नक्तव्रत

करके वारोंके नामसे सूर्यादिकी पूजा करके व्रती सभी फलोंकी प्राप्ति करनेका अधिकारी हो जाता है। ये वारव्रत कहलाते हैं।

हे ब्रह्मर्षि! प्रत्येक मासके नामकरणके प्रयोजक वारों नक्षत्रसे युक्त उन-उन महीनोंकी पूर्णिमा तिथि हो तो उन नक्षत्रोंके नामसे मनुष्यको सम्यक्-रूपसे भगवान् अच्युतकी पूजा करनी चाहिये। इस व्रतको कार्तिकमाससे प्रारम्भ करना चाहिये। कृतिका नक्षत्रयुक्त कार्तिकमासमें केशवकी पूजा करनी चाहिये। क्रमशः चार महीनों (कार्तिक, मार्गशीर्ष, पीष तथा माघ)—में धृतका हवनकर तिल-चावल (कूसराव)—को खिचड़ीका भोग निवेदित करना चाहिये।

आपाद आदि चार महीनोंमें पायस निवेदन करके ब्राह्मणोंको पायसका ही भोजन निवेदित करना चाहिये। पञ्चगव्य, जलस्नान और नैवेद्यसे पूजन करना चाहिये। इस प्रकार संवत्सरके अन्तमें विशेषरूपसे भगवान्की पूजा करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे प्रार्थना करनी चाहिये—

नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु  
पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम्।  
ऐश्वर्यविनादिसदाऽक्षयं मे  
तद्यास्तु मे सन्ततिरक्षयैव॥  
यथाच्युत त्वं परतः परमात्  
स ब्रह्मभूतः परतः परमात्।  
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं सदा  
मया कृतं पापहराग्रमेव॥  
अच्युतागन्त गोविन्द प्रसीद यदभीक्षितम्।  
तदक्षयममेयात्वन् कुरुष्व पुरुषोत्तम॥

(गणपु० १३०/१०—१२)

हे अच्युत। आपको बार-बार प्रणाम है। हे देव! मेरे पापोंका विनाश हो और पुण्यकी वृद्धि हो। मेरे ऐश्वर्य और धनादि सदैव अक्षय रहें। मेरी सन्तान-परम्परा अक्षुण्ण हो। हे अच्युत। जिस प्रकार आप परात्पर ब्रह्म हैं, वैसे ही मेरे मनोऽभिलषित फलको अविनाशी बना दें। हे अग्रमेय! सदैव मेरे द्वारा किये जानेवाले पापका विनाश करते रहें।

हे अच्युत! हे अनन्त! हे गोविन्द! आप मुझपर प्रसन्न हों। हे अमेयात्मन्! हे पुरुषोत्तम! जो मेरे लिये अभीष्ट है, आप उसको भी अक्षय बना दें।

यह मास-नक्षत्रव्रत सात वर्षतक करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यको आयु, लक्ष्मी तथा सद्गति प्राप्त होती है। यदि स्वच्छ हृदयसे उपवाससहित एक वर्षपर्यन्त यथाक्रम एकादशी, अष्टमी, चतुर्दशी और सप्तमी तिथियोंमें विष्णु, दुर्गा, शिव और सूर्यकी पूजा हो तो प्राणीको उन देवोंके लोक तो प्राप्त होते ही हैं, सभी निर्मल अभिलाषार्थ भी पूर्ण हो जाती हैं। व्रतकालमें एकभुक्त, नक्त अथवा अयाचित एवं उपवास करते हुए शाकादिके द्वारा इन सभी तिथियोंमें सभी देवताओंकी पूजा करनेसे भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति हो जाती है। प्रतिपदा तिथिमें कुबेर, अग्नि, नासत्य और दस नामक देव पूज्य हैं। द्वितीया तिथिमें लक्ष्मी तथा यमराज, चतुर्थीमें श्रीसर्मान्वित पार्वती और नागगणोंकी पूजा करनी चाहिये। पञ्ची तिथिमें कार्तिकेय तथा सप्तमीमें अर्धदाता सूर्यदेवकी पूजा विहित है। अष्टमी तिथिमें दुर्गा, नवमीमें मातृकाओं एवं तक्षककी पूजाका विधान है। दशमीमें इन्द्र और कुबेर तथा एकादशीमें सप्तर्षियोंकी पूजा करनी चाहिये। द्वादशी तिथिमें हरि, त्रयोदशीमें कामदेव, चतुर्दशीमें महेश्वर शिव, पूर्णिमामें ब्रह्मा तथा अमावास्यामें पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १३७)

### सूर्यवंशवर्णन

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं राजाओंके वंश और उनके चरितका वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम सूर्यवंशका वर्णन सुनें।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्माके अङ्गुष्ठभागसे दक्षका जन्म हुआ। दक्षसे उनकी पुत्री अदितिका प्रादुर्भाव हुआ, जो देवमाता कहलाती हैं। उन्होंने अदितिसे विवस्वान् (सूर्य), विवस्वान्से वैवस्वत मनु हुए और उन मनुसे इक्ष्वाकु, शर्वाति, नृग, धृष्ट, पूषध, नरिष्यन्त, नभग, दिष्ट तथा शशक (करुष) नामक नौ पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। हे रुद्र! मनुकी इला नामकी कन्या थी और सुद्युम्न नामक पुत्र था। इलाके बुधसे राजा पुरूरवा

उत्पन्न हुए। सुद्युम्नसे उत्कल, विन्त तथा गय नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ।

गौवध करनेके कारण मनुका पुत्र पूषध सूत हो गया था। करुष (शशक)—से क्षत्रिय लोगोंकी उत्पत्ति हुई, जो कारुष नामसे विख्यात हुए। मनुके पुत्र दिष्टसे जो नाभाग नामका पुत्र हुआ वह वैश्य हो गया था। उससे एक भलन्दन नामक पुत्र हुआ। भलन्दनसे वत्सप्रीति नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। वत्सप्रीतिसे पांशु और खनित्र—दो पुत्रोंका जन्म हुआ। खनित्रसे भूप, भूपसे क्षुप, क्षुपसे विश और विशसे विविंशकने जन्म लिया।

विविंशकसे खनिनेत्र और खनिनेत्रसे विभूति नामक



पुत्रका जन्म हुआ। विभूतिसे करन्धाम नामक पुत्र हुआ। करन्धमसे अविशित, अविशितसे मरुत् और मरुत्से नरिष्यन्तकी उत्पत्ति मानी जाती है। नरिष्यन्तसे तम, तमसे राजवर्धन, राजवर्धनसे सुभूति, सुभूतिसे नर, नरसे केवल तथा केवलसे धुन्धमान हुआ।

धुन्धमानके वेगवान्, वेगवान्के बुध और बुधके तृणबिन्दु नामक पुत्र हुआ। तृणबिन्दुने अलम्बुष नामकी अप्सरासे इलविला नामकी कन्या तथा विशाल नामक पुत्र उत्पन्न किया। विशालके हेमचन्द्र नामक पुत्र हुआ। हेमचन्द्रसे चन्द्रक, चन्द्रकसे धूम्राश्व, धूम्राश्वसे सृञ्जय, सृञ्जयसे सहदेवकी उत्पत्ति हुई। सहदेवके कृशाश्व नामक पुत्र हुआ। कृशाश्वसे सोमदत्त और सोमदत्तसे जनमेजय हुआ। जनमेजयसे सुमन्ति नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। इन सभी (राजर्षी)-को वैशालिक कहा गया है।

वैवस्वत मनुके पुत्र शर्यातिके सुकन्या नामकी पुत्री हुई, जो च्यवन ऋषिकी भार्य बनी। शर्यातिके अनन्त नामक पुत्र भी था। उससे रेवत नामका पुत्र हुआ। रेवतके भी रेवत नामक पुत्र हुआ। उससे रेवती नामकी कन्या हुई।

वैवस्वत मनुके पुत्र धृष्टके धाट्ट हुआ, जो वैष्णव हो गया था। उन्हीं मनुके पुत्र नभगके नेदिष्ठ नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे अम्बरीष हुआ। अम्बरीषके विरूप, विरूपके पृषदश्च और उसके रथीनर हुआ, जो वासुदेवका भक्त था।

मनुपुत्र इक्ष्वाकुके विकुक्षि, निमि और दण्डक तीन पुत्र हुए। विकुक्षि ५३वीं शतक (खरगोश)-का भक्षण करनेके कारण शशाद नामसे विख्यात हुआ। शशादसे पुरञ्जय और ककुत्स्थ नामक दो पुत्र हुए। इसी ककुत्स्थसे अनेनस् (वेण) तथा अनेनस्से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथुके विश्वरात नामक पुत्र हुआ। विश्वरातसे आर्द्रकी उत्पत्ति हुई। आर्द्रसे युवनाश्व, युवनाश्वके श्रीवत्स, श्रीवत्सके बृहदश्व, बृहदश्वके कुवलाश्व और कुवलाश्वके दृढाश्व हुआ, जिसकी प्रसिद्धि धुन्धुमारके नामसे हुई थी।

दृढाश्वके चन्द्राश्व, कपिलाश्व और हर्यश्व नामक तीन पुत्र थे। हर्यश्वके निकुम्भ, निकुम्भके हिताश्व, हिताश्वके पूजाश्व और उसके युवनाश्व हुआ। युवनाश्वके मान्याता हुए।

मान्याता एवं उनकी पत्नी बिन्दुमतीसे मुचुकुन्द, अम्बरीष तथा पुरुकुत्स नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ। उनकी पचास कन्याएँ भी थीं। जिनका विवाह सौभर मुनिके साथ हुआ था।

अम्बरीषके युवनाश्व तथा युवनाश्वके हरित हुआ। पुरुकुत्सके नर्मदा नामक पत्नीसे त्रसदस्यु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे अनरण्य, अनरण्यसे हर्यश्व, हर्यश्वसे वसुमाना हुआ। उसीका पुत्र त्रिधन्वा था। उसके त्रय्यारुण नामक पुत्र हुआ। त्रय्यारुणके सत्यस्त हुआ, जो त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध है। हरिश्चन्द्र इसीसे उत्पन्न हुए थे। हरिश्चन्द्रके रोहिताश्व और रोहिताश्वके हारीत हुआ। हारीतके चंचु, चंचुके विजय, विजयके रुक्क, रुक्कके वृक, वृकके राजा बाहु और बाहुके पुत्र राजा सगर माने जाते हैं।

हे शिशु! सगरसे सुमन्ति नामक पत्नीके साठ हजार पुत्र हुए। उनकी दूसरी पत्नी कैशिनीसे असमंजस नामक एक पुत्र हुआ। उस असमंजससे अंशुमान् तथा अंशुमान्से दिलीप नामक एक विद्वान् पुत्रने जन्म लिया। दिलीपसे भीरीय हुए, जिनके द्वारा पृथिवीपर गङ्गा लायी गयी है।

भीरीयका पुत्र वृत्त था। वृत्तसे नाभाग हुआ। नाभागसे अम्बरीष, अम्बरीषसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु हुआ। अयुतायुका पुत्र ऋतुपर्ण था, ऋतुपर्णसे सर्वकाम और सर्वकामसे सुदास, सुदाससे सीदास हुआ। जिसका नाम विश्वसह भी माना जाता है। कल्पापपाद उसीका पुत्र है, जो दमयन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। कल्पापपादके अश्वक, अश्वकके मूलक, मूलकके दशरथ हुआ। दशरथके ऐलविल, ऐलविलके विश्वसह, विश्वसहके खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गके दीर्घबाहु, दीर्घबाहुके अज तथा अजके दशरथ हुए। इनके महापराक्रमी चार पुत्र हुए, जो राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामसे प्रसिद्ध हैं।

रामसे कुश और लव, भरतसे तार्क्ष तथा पुष्कर, लक्ष्मणसे चित्राङ्गद एवं चन्द्रकेतु और शत्रुघ्नसे सुबाहु तथा दूरसेन नामक पुत्र हुए। कुशके अतिथि, अतिथिके निषध नामक पुत्र हुआ। निषधके नल तथा नलके नभस नामका पुत्र माना गया है। नभसके पुण्डरीक और पुण्डरीकसे क्षेमधन्वा नामक पुत्रने जन्म लिया। उसका पुत्र देवानीक

था, उससे अहीनक, अहीनकसे रुह तथा रुहसे पारियात्र नामक पुत्रका जन्म हुआ। पारियात्रसे दलको उत्पत्ति हुई और दलसे छल, छलसे उक्थ, उक्थसे वज्रनाभ और वज्रनाभसे गण, गणसे उषिताध, उषिताधसे विश्वसहको उत्पत्ति हुई। हिरण्यनाभ उसीका पुत्र था। उसका पुत्र पुष्पक माना गया है।

पुष्पकसे ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिसे सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णसे परावर्ण हुआ। परावर्णसे शीघ्र और शीघ्रसे मरु हुए। मरुसे सुव्रत और उससे उदावसु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उदावसुसे नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धनसे सुकेतु, सुकेतुसे देवरातकी उत्पत्ति हुई। देवरातका पुत्र बृहदुक्थ था। बृहदुक्थके महावीर्य, महावीर्यके सुभृति, सुभृतिके भृष्टकेतु, भृष्टकेतुके हर्म्यध, हर्म्यधके मरु, मरुके प्रतीन्धक हुआ। प्रतीन्धकसे कृतिरथ और कृतिरथके देवमीड नामक पुत्र हुआ। देवमीडसे विबुध, विबुधसे महाभृति, महाभृतिसे कीर्तिरात तथा कीर्तिरातसे महारोमा नामक पुत्र हुआ।

महारोमाके स्वर्णरोमा हुए। स्वर्णरोमके हस्वरोमा नामका पुत्र था। हस्वरोमाके सीरध्वज हुआ। उसके सीता नामकी एक पुत्री हुई। सीरध्वजके कुराध्वज नामका एक भाई भी

था। सीताके अतिरिक्त सीरध्वजके भानुमान् नामका एक पुत्र भी हुआ। उस भानुमान्से शतघुम्न, शतघुम्नसे शुचि नामक पुत्रको उत्पत्ति हुई। शुचिके ऊर्ज नामक पुत्र था। उस ऊर्जसे सनद्वाज उत्पन्न हुआ। सनद्वाजसे कुलिने जन्म लिया। उस कुलिसे अनञ्जन नामक पुत्र हुआ। अनञ्जनसे कुत्तजित्की उत्पत्ति हुई। उसके भी आधिनेमिक नामका पुत्र था। उसका पुत्र भुतायु हुआ और उस भुतायुसे सुपार्श्व नामक पुत्रने जन्म ग्रहण किया। सुपार्श्वसे सृञ्जय, सृञ्जयसे शेमारि, शेमारिसे अनेन और उस अनेनका पुत्र रामरथ माना गया है।

रामरथका पुत्र सत्यरथ, सत्यरथका पुत्र उपगुरु, उपगुरुका उपगुप्त तथा उपगुप्तका पुत्र स्वागत था। स्वागतसे स्ववरकी उत्पत्ति हुई। सुवर्चा उसीका पुत्र था। सुवर्चासे सुपार्श्व और सुपार्श्वसे सुव्रत, सुव्रतसे जयकी उत्पत्ति हुई। जयसे विजय, विजयसे ब्रह्म, ब्रह्मसे सुनय, सुनयसे वीतहव्य, वीतहव्यसे धृतिष्ठी उत्पत्ति मानी गयी है। धृतिष्ठीके बहुलाध और बहुलाधके कृति नामक पुत्र था। उस कृतिके जनक हुए। उनकके दो वंश कहे गये हैं, जिन्होंने योगमार्गका अनुसरण किया था। (अध्याय १३८)

### चन्द्रवंशवर्णन

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! सूर्यके वंशका वर्णन तो मैंने कर दिया। अब मुझसे चन्द्रवंशका वर्णन आप सुनें।

नारायण (विष्णु)-से ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। ब्रह्मासे अत्रिकी उत्पत्ति हुई। अत्रिसे सोम हुए। उनकी पत्नी तारा थी, जो पहले बृहस्पतिकी भी प्रियतमा थी। ताराने चन्द (सोम)-से बुधको उत्पन्न किया। उसी बुधका पुत्र पुरुरवा हुआ। बुधपुत्र पुरुरवासे उर्वरीके छः पुत्र हुए, जिनके नाम वृतात्मक, विधावसु, शतायु, आयु, भीमान् और अमावसु थे।

अमावसुके भीम, भीमके काञ्चन, काञ्चनसे सुहोत्र और सुहोत्रके जह्नु हुए। जह्नुसे सुमन्तु, सुमन्तुसे उपजापक हुआ। उसका पुत्र बलाकाध था। बलाकाधसे कुश, कुशसे कुराध, कुराध, अमूर्तरथ और वसु नामक चार पुत्र हुए। कुराधसे गाधिका जन्म हुआ। विश्वामित्र उसीके पुत्र

थे। गाधिकी सत्यवती नामकी एक कन्या थी। उसको उन्होंने ब्राह्मण ऋचीकको सौंप दिया। ऋचीकके जमदग्नि नामक पुत्र हुआ। जमदग्निके परशुराम हुए। विश्वामित्रसे देवरात तथा मधुच्छन्दा आदि अनेक पुत्रोंका जन्म हुआ।

बुधके पुत्र आयुसे नहुषकी उत्पत्ति हुई। नहुषके अनेन, राजि, रम्भक तथा क्षत्रवृद्ध नामक चार पुत्र हुए। क्षत्रवृद्धका सुहोत्र नामक पुत्र राजा हुआ। सुहोत्रके काश्य, काश और गुत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गुत्समदसे शौनक तथा काश्यसे दीर्घतमा हुआ। दीर्घतमासे वैद्य धन्वन्तरिका जन्म हुआ। केतुमान् उनकीका पुत्र था। केतुमान्से भीमरथ, भीमरथसे दिवोदास, दिवोदाससे प्रतर्दन हुआ, जो शत्रुजित् नामसे विख्यात हुआ।

ऋतध्वज उसी शत्रुजित्का पुत्र था। ऋतध्वजसे

अलर्क, अलर्कसे सत्रति, सत्रतिसे सुनीत, सुनीतसे सत्यकेतु, सत्यकेतुसे विभु नामक पुत्र हुआ। विभुसे सुविभु, सुविभुसे सुकुमार, सुकुमारसे धृष्टकेतुकी उत्पत्ति हुई। उस धृष्टकेतुका पुत्र वीतिहोत्र था। वीतिहोत्रके भर्ग और भर्गके भूमिक नामका पुत्र हुआ। ये सभी विष्णुधर्मपरायण राजा थे।

नहुषपुत्र राजा या राजिके पाँच सौ पुत्र थे, जिनका संहार इन्दने किया था। नहुषके पुत्र क्षत्रवृद्धसे प्रतिक्षत्र हुए। उसका पुत्र संजय था। संजयके भी विजय हुआ। विजयका पुत्र कृत था। कृतके वृषधन, वृषधनसे सहदेव, सहदेवसे अदीन और अदीनके जयत्सेन हुआ। जयत्सेनसे संकृति और संकृतिसे क्षत्रधर्माकी उत्पत्ति हुई।

नहुषके क्रमशः यति, ययाति, संयाति, अयाति तथा विकृति नामक अन्य पाँच पुत्र थे। ययातिसे देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। राजा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने ययातिसे दुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया।

यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टुमना और रभु नामक तीन पुत्र थे। सहस्रजित्से शतजित्, शतजित्से हय तथा हैहय नामक दो पुत्र हुए। हयसे अनरण्य तथा हैहयसे धर्म हुआ। धर्मका पुत्र धर्मनेत्र हुआ। उस धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति था। कुन्तिसे साहंजि हुआ। साहंजिसे महिष्मान्, महिष्मान्से भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्यसे दुर्दमकी उत्पत्ति हुई। दुर्दमसे धनक, कृतवीर्य, जानकि, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृताञ्ज नामक छः बलवान् पुत्र हुए। कृतवीर्यसे अर्जुन तथा अर्जुनसे शूरसेन नामक पुत्र हुआ। उस पुत्रके अतिरिक्त कृतवीर्यके जयध्वज, मधु, शूर और वृषण नामक चार पुत्र हुए। शूरसेनसहित ये पाँचों पुत्र बड़े ही सुव्रतों थे। जयध्वजसे तालजंघ, तालजंघसे भरत हुआ। कृतवीर्य वृषणका पुत्र मधु था। मधुसे वृष्णि हुआ, जिससे वृष्णिवंशियोंकी उत्पत्ति हुई।

क्रोष्टुके विजज्ञिवान् हुआ। उस विजज्ञिवान्का पुत्र आहि था। आहिसे उशंकु हुआ। उसका पुत्र चित्ररथ था। चित्ररथसे शशबिन्दु हुआ, जिसके एक लाख पत्नियाँ तथा पृथुकीर्ति, पृथुजय, पृथुदान, पृथुश्रवा आदि श्रेष्ठ दस लाख पुत्र थे। पृथुश्रवासे तम, तमसे उशना हुआ। उसका पुत्र शितगु था। तत्पश्चात् उसके श्रीरुक्मकवच हुआ।

श्रीरुक्मकवचसे रुक्म, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित और हरि—ये चार पुत्र हुए। ज्यामघसे विदर्भका जन्म हुआ।

विदर्भकी सैव्य नामकी एक पत्नी थी, उससे विदर्भने क्रथ, कौशिक तथा रोमपाद नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया। रोमपादसे बभ्रु और बभ्रुसे धृति हुआ।

कौशिकके ऋचि नामक पुत्र था। उसीसे वेदि नामका राजा हुआ। इसका पुत्र कुन्ति था। कुन्तिसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ। वृष्णिसे निवृत्ति, निवृत्तिसे दशार्ह, दशार्हसे व्योम और व्योमसे जीमूत नामका पुत्र हुआ। जीमूतसे विकृतिका जन्म हुआ। उस विकृतिका पुत्र भीमरथ था। भीमरथसे मधुरथ और मधुरथसे शकुनि उत्पन्न हुआ। शकुनिका पुत्र करम्भि था। उस करम्भिका पुत्र देवमान् माना जाता है। देवमान् या देवनातसे देवक्षत्र तथा देवक्षत्रसे मधु नामक पुत्र हुआ। मधुसे कुरुवंश, कुरुवंशसे अनु, अनुसे पुरुहोत्र, पुरुहोत्रसे अंशु, अंशुसे सत्यव्रत और उससे सात्वत नामका राजा हुआ।

सात्वतके भजिन्, भजमान्, अन्धक, महाभोज, वृष्णि, दिव्यायन्व तथा देवावृध नामक सात पुत्र हुए। भजमान्से निमि, वृष्णि, अयुताजित्, शतजित्, सहस्राजित्, बभ्रु, देव और बृहस्पति नामके पुत्र हुए। महाभोजसे भोज और उस वृष्णिसे सुमित्र नामक पुत्र हुआ। सुमित्रसे स्वधाजित्, अनमित्र तथा अशिति हुए। अनमित्रका पुत्र निघ्न और निघ्नका पुत्र सत्राजित् हुआ। अनमित्रसे प्रसेन तथा शिबि नामक दो अन्य पुत्र भी हुए थे। शिबिसे सत्यक, सत्यकसे सात्यकि हुआ। सात्यकिके संजय और उस संजयके कुलि हुए। उस कुलिका पुत्र युगन्धर था। इन सभीको शिविवंशी सैव्य कहा गया है।

अनमित्रके ही वंशमें वृष्णि, क्षफल्क तथा चित्रक नामक अन्य तीन पुत्र हुए थे। क्षफल्कने गान्दिनीके गर्भसे अक्रूरको जन्म दिया, जो परम वैष्णव थे। अक्रूरसे उपमदगु हुआ, जिसका पुत्र देवद्योत था। उपमदगुके अतिरिक्त अक्रूरके देवान् और उपदेव नामक दो पुत्र माने गये हैं।

अनमित्र-पुत्र चित्रकके पृथु तथा विपृथु नामक दो पुत्र थे। सात्वतनन्दन अन्धकका पुत्र शुचि माना जाता है। भजमानके कुकुर और कम्बलवर्हिष दो पुत्र हुए। कुकुरसे

धृष्टका जन्म हुआ। उसका पुत्र कापोतरोमक था। उस कापोतरोमकका विलोमा और विलोमासे तुम्बुरुका जन्म हुआ। तुम्बुरुसे दुन्दुभि तथा दुन्दुभिका पुनर्वसु माना जाता है। उस पुनर्वसुका पुत्र आहुक था। आहुकके एक पुत्री हुई, जिसका नाम आहुकी था। आहुकके दो पुत्र हुए जिनका नाम देवक और उग्रसेन था। देवकसे देवकीका जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त देवकके वृकदेव, उपदेव, सहदेव, सुरक्षिता, श्रीदेवी और ज्ञानिदेवी नामकी छः कन्याएँ और भी थीं। इन सातों कन्याओंका विवाह वसुदेवके साथ हुआ था। सहदेवके देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र थे।

आहुकपुत्र उग्रसेनके कंस, सुनाभा तथा वट आदि नामके अनेक पुत्र हुए। अम्भकपुत्र भगवान्से विदूरथ नामका पुत्र हुआ था। विदूरथसे शूर और शूरके तृतीय नामका पुत्र हुआ। शमीसे प्रतिशत्रु, प्रतिशत्रुसे स्वयंभोज, स्वयंभोजसे हृदिक तथा हृदिकसे कृतवर्मा हुए। शूरसे ही देव, शतधनु और देवामीधुषका भी जन्म हुआ था। भारियाके गर्भसे शूरके वसुदेव आदि अन्य दस पुत्र थे। शूरसे पृथा, वृत्तदेवी, वृत्तकीर्ति, वृत्तवका और राजाभिदेव (राजाभिदेवी) नामवाली पाँच पुत्रियाँ भी थीं। शूरने पुत्री पृथाकी कुन्तिराजकी दे दिया था। कुन्तिराजने शूरसे प्राप्त उस कन्याका विवाह पाण्डुसे कर दिया। पाण्डुकी उस पृथा नामकी पत्नीसे धर्म, वायु और इन्द्रादि देवोंके अंशसे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा पाण्डुकी पत्नी माद्रीमें अश्विनीकुमारके अंशसे नकुल तथा सहदेव नामक पुत्र हुए। विवाहके पूर्व ही पृथासे कर्णका जन्म हुआ था।

शूरकी पुत्री वृत्तदेवीके गर्भसे दन्तवक्त्र हुआ, जो अत्यन्त खीर योद्धा था। वृत्तकीर्ति कैकयराजकी ब्याही गयी थी। कैकयराजसे उसके सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र हुए। राजाभिदेवीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका नाम विन्दु और अनुविन्दु था। चेदिराज दमघोषको वृत्तवका ब्याही थी। उससे शिशुपालका जन्म हुआ।

वसुदेवके पौरव, रोहिणी, मदिरा, देवकी, भद्रा आदि जो अन्य स्त्रियाँ हैं, उनमें रोहिणीके गर्भसे बलभद्र हुए। बलभद्रकी पत्नी रेवतीके गर्भसे सारण और शठ आदिका

जन्म हुआ। देवकीके गर्भसे पहले छः पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम कीर्तिमान्, सुषेण, उदार्य, भद्रसेन, व्रजुदास और भद्रदेव हैं। कंसने इन सभी पुत्रोंको मार डाला था। देवकीके सातवें पुत्रके रूपमें बलराम और आठवें कृष्ण थे। कृष्णकी सोलह हजार रानियाँ थीं। रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, चारुहासिनी तथा जाम्बवती आदि आठ प्रधान पत्नियाँ थीं। इनसे उनके बहुत-से पुत्र हुए।

प्रद्युम्न, चारुदेव तथा साम्ब कृष्णके प्रधान पुत्र हैं। प्रद्युम्नकी पत्नी ककुत्स्थिनीके गर्भसे महापराक्रमशाली अनिरुद्धक जन्म हुआ। अनिरुद्धके सुभद्रा नामक पत्नीके गर्भसे वज्र नामके राजा हुए। उनका पुत्र प्रतिघाह था। प्रतिघाहका पुत्र चारु हुआ।

ययाति-पुत्र तुर्वसुके वंशमें वहि नामक पुत्रका जन्म हुआ। वहिसे भर्ग हुआ। भर्गसे भानु, भानुसे कारन्धम तथा कारन्धमसे गस्तुकी उत्पत्ति हुई।

हे रुद्र! अब मुझसे दुष्टवंशका वर्णन सुनें—  
ययातिपुत्र दुष्टका पुत्र सेतु, सेतुका पुत्र आरुद्र था। आरुद्रके गान्धार, गान्धारके धर्म, धर्मके पृत, पृतके दुर्गम, दुर्गमके प्रवेता हुए।

अब आप अनुवंशकी सुनें—अनुका पुत्र सभानर हुआ। सभानरका कालञ्जय, कालञ्जयका सुञ्जय, सुञ्जयका पुरञ्जय, पुरञ्जयका जनमेजय, जनमेजयका पुत्र महाशाल था। इसी महात्मा महाशालका पुत्र उशीनर माना गया है। उशीनरसे राजा शिवि उत्पन्न हुए। शिविके पुत्र वृषदर्भ हुए। वृषदर्भसे महामनोज और महामनोजसे तितिक्षु और तितिक्षुसे रुद्रधका जन्म हुआ। रुद्रधसे हेम तथा हेमसे सुतप हुए। सुतपसे बलि और बलिसे अंग, बंग, कलिंग, आन्ध्र तथा पीण्डू नामके पुत्र हुए। अंगसे अनपान, अनपानसे दिक्विरथ, दिक्विरथसे धर्मरथ हुआ। धर्मरथसे रोमपाद तथा रोमपादसे चतुरंग, चतुरंगसे पृथुलाश्व, पृथुलाश्वसे चम्प, चम्पसे हर्यङ्ग, हर्यङ्गसे भद्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

भद्ररथका पुत्र बृहत्कर्मा था। उसके बृहद्भानु नामक पुत्र हुआ। बृहद्भानुका पुत्र बृहधना और बृहधनाका पुत्र जयद्रथ था। जयद्रथसे विजय और विजयसे धृति हुआ।



धृतिका पुत्र धृतव्रत था। धृतव्रतसे सत्यधर्मा हुआ। सत्यधर्माका पुत्र अधिरथ था। अधिरथके कर्ण और कर्णके वृषसेन नामक पुत्र हुआ।

हरिने पुनः कहा—हे रुद्र! इसके बाद आप पुरुवंशका वर्णन सुनें।

पुरुका पुत्र जनमेजय, जनमेजयका पुत्र नमस्यु था। नमस्युका अभय तथा अभयका सुघु हुआ। सुघुके बहुगति नामक पुत्रका जन्म हुआ। उसका पुत्र संजाति था। संजातिके वत्सजाति और उसके रौद्राश्व हुआ। रौद्राश्वके ब्रह्मेयु, स्थण्डिलेयु, कक्षेयु, कृतेयु, जलेयु और सन्ततियु नामक श्रेष्ठ पुत्र हुए।

ब्रह्मेयुके रतिनार नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र प्रतिरथ था। प्रतिरथका मेधातिथि, मेधातिथिका ऐनिल नामक पुत्र माना जाता है। ऐनिलका पुत्र दुष्यन्त था। शकुन्तलाके गर्भसे दुष्यन्तके भरत नामक पुत्र हुआ। भरतसे वितथ, वितथसे मनु, मनुसे नरका जन्म माना गया है। नरके संकृति और संकृतिके गर्ग हुआ। गर्गसे अमन्यु, अमन्युसे शिनि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई।

मन्युपुत्र महावीरसे उत्स्य, उत्स्यसे त्र्यारुणि, त्र्यारुणिके व्यूहशत्रु, व्यूहशत्रुसे सुहोत्र, सुहोत्रसे हस्ती, अजमीढ तथा द्विमीढ नामक तीन पुत्र हुए। हस्तीका पुत्र पुरुमीढ और अजमीढका काण्व था। काण्वके मेधातिथि हुए। इन्हींमे काण्वायन नामक गोत्र ब्राह्मणोंके हुए और वे काण्वायन कहलाये।

अजमीढसे बृहद्विषु नामक एक अन्य पुत्र भी हुआ था। उस पुत्रके बृहद्वनु हुआ। बृहद्वनुके बृहत्कर्मा तथा बृहत्कर्माके जयद्रथ नामका पुत्र था। जयद्रथसे विश्वजित् और विश्वजित्से सेनजित्, सेनजित्से रत्निराश्व, रत्निराश्वसे पृथुसेन, पृथुसेनसे पार तथा पारसे द्रोण और नृप हुए। नृपका पुत्र सुमर हुआ। पृथुसेनका एक अन्य पुत्र था, जिसका नाम सुकृति कहा गया है। सुकृतिके विभ्राज और विभ्राजके अश्वह नामक पुत्र हुआ। कृतिके गर्भसे उत्कल उस अश्वहके ब्रह्मदत्त नामका पुत्र था। उस पुत्रसे विष्वक्सेनने जन्म लिया।

द्विमीढके यवीनर, यवीनरके धृतिमान्, धृतिमान्के

सत्यधृति नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र हृदनेमि था। हृदनेमिसे सुपार्श्व और सुपार्श्वसे सन्नतिका जन्म हुआ। सन्नतिका पुत्र कृत तथा कृतका पुत्र उग्रायुध था। उग्रायुधसे क्षेम्य नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सुधीर था। सुधीरसे पुरजय, पुरजयसे विदूरथ नामके पुत्रने जन्म लिया।

अजमीढकी नलिनी नामकी एक पत्नी थी। उसके गर्भसे रुक्मा नीलकी उत्पत्ति हुई। नीलसे शान्ति नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र सुशान्ति था। सुशान्तिके पुरु हुआ। पुरुका पुत्र अर्क, अर्कका हर्षश्च, हर्षश्चका मुकुल और मुकुलके कधीर, बृहद्वानु, कम्पिष्ठ, सुजय एवं शरद्वान् नामक पाँच पुत्र हुए। इनमें शरद्वान् परम वैष्णव था। इस शरद्वान्के अहल्या नामकी पत्नीसे दिवोदास नामक पुत्र हुआ। उसके शतानन्द हुए। शतानन्दके सत्यधृति हुआ। सत्यधृतिके उर्वशीसे कृप तथा कृपी नामक दो संतानें हुई। कृपीका विवाह द्रोणाचार्यसे हुआ था। उसी कृपीसे द्रोणाचार्यके अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए।

दिवोदासके मित्रयु और मित्रयुके च्यवन नामका पुत्र था। च्यवनसे सुदास, सुदाससे सीदास नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सहदेव था। सहदेवसे सोमक, सोमकसे जनु (जहु) और पुष्य नामक महान् पुत्र उत्पन्न हुआ। पुष्यसे दुषट, दुषटसे भृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति हुई। भृष्टद्युम्नसे भृष्टकेतु हुआ।

अजमीढके एक श्रक्ष नामका पुत्र था। उस श्रक्षसे संवरण, संवरणसे कुरुका जन्म हुआ। कुरुके सुधनु, परीक्षित् और जहु नामके तीन पुत्र थे। सुधनुसे सुहोत्र तथा सुहोत्रसे च्यवन, च्यवनसे कृतक तथा उपरिधर वसु हुए। वसुके बृहद्रथ, प्रत्यंग और सत्य आदि अनेक पुत्र थे। बृहद्रथसे कुशाग्र, कुशाग्रसे ऋषभ, ऋषभसे पुष्यवान् तथा उस पुष्यवान्से सत्यहित नामका राजा हुआ। सत्यहितसे सुधन्वा, सुधन्वासे जहुकी उत्पत्ति हुई।

बृहद्रथका एक अन्य पुत्र था, जिसका नाम जरासन्ध था। उस जरासन्धसे सहदेव, सहदेवसे सोमापि, सोमापिसे क्षुतवान्, भीमसेन, उग्रसेन, क्षुतसेन तथा जनमेजय हुए। जहुके मुरथ नामक पुत्र था। मुरथके विदूरथ, विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयसेन तथा उस जयसेनसे

अवधीत हुआ। उस अवधीतसे अयुतायु, अयुतायुसे अक्रोधन, अक्रोधनसे अतिथि, अतिथिसे ऋक्ष, ऋक्षसे भीमसेन, भीमसेनसे दिलीप, दिलीपसे प्रतीप, प्रतीपसे देवापि, शन्तनु और बाह्मीक नामके राजा तीन सहोदर भाता हुए।

बाह्मीकसे सोमदत्त हुआ। सोमदत्तसे भूरि और भूरिसे भूरिश्रवाकी उत्पत्ति हुई। इस भूरिश्रवाका पुत्र सत्य था। गङ्गाके गर्भसे शन्तनुके महाप्रतापी धर्मपरायण पुत्र भीष्म हुए। उस शन्तनुकी दूसरी पत्नी सत्यवतीसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक अन्य दो पुत्रोंका जन्म हुआ। विचित्रवीर्यकी दो पत्नियाँ थीं, जिनका अम्बिका तथा अम्बालिका नाम था। व्यासजीने अम्बिकासे धृतराष्ट्रको,

अम्बालिकासे पाण्डुको तथा उनकी दासीसे विदुरजीको पैदा किया।

धृतराष्ट्रने गान्धारीसे दुर्योधनादि सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया। पाण्डुसे युधिष्ठिर आदि पाँच पुत्र हुए। द्रौपदीसे क्रमशः प्रतिविम्ब्य, श्रुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और सुतकर्म नामक पाँच पुत्रोंका जन्म हुआ। यौधेयी, हिडिम्बा, कौश्ली, सुभद्रिका (सुभद्रा), विजया तथा रेणुमती नामकी पत्नियाँ भी थीं। इनके गर्भसे देवक, घटोत्कच, अभिमन्यु, सर्वग, सुहोत्र और निरामित्र नामक पुत्र हुए। अभिमन्युके परीक्षित तथा परीक्षितके जनमेजय नामका पुत्र हुआ। (अध्याय १३९-१४०)

### भविष्यके राजवंशका वर्णन

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! परीक्षितके पुत्र जनमेजयके पश्चात् इस चन्द्रवंशमें शतानीक, अक्षमेधदत्त, अधिसोमक, कृष्ण, अनिरुद्ध, उष्ण, चित्ररथ, शुचिदत्त, वृष्णिमान्, सुवर्ण, सुनीधक, नृचक्षु, मुखाम्बाण, मेधावी, नृपञ्चय, पारिप्लव, सुनय, मेधावी, नृपञ्चय, बृहद्रथ, हरि, किम्ब, शतानीक, सुदानक, उदान, अङ्गिर, दण्डपाणि, निमित्तक, क्षेमक तथा शूद्रक नामक राजा हुए। ये सभी यथाक्रम अपने पूर्ववर्ती राजाके पुत्र थे।

हे रुद्र! अब मैं इक्ष्वाकुवंशीय बृहद्गलके उस वंशका वर्णन करता हूँ, जिसे बृहद्गलवंशीय कहा गया है। यथा—बृहद्गलसे उरुक्षय उसके बाद वत्सव्यूह हुआ। वत्सव्यूहसे सूर्य और उसके पुत्र सहदेव हुए। इसके बाद बृहद्रथ, भानुरथ, प्रतीच्य, प्रतीतक, मनुदेव, सुनक्षत्र, किन्नर और अन्तरिक्षक हुए। तत्पश्चात् सुवर्ण, कृतजित् और धार्मिक बृहद्भ्राज, हुए। तदनन्तर कृतञ्जय, धर्नञ्जय, संजय, शाक्य, शुद्धोदन, बाहुल, सेनजित्, क्षुद्रक, समित्र, कुडव और सुमित्र हुए।

अब मगधवंशीय राजाओंको सुनें—

मगध वंशमें जरासन्ध, सहदेव, सोमापि, क्षुतश्रवा, अयुतायु, निरामित्र, सुक्षत्र, बहुकर्मक, क्षुतञ्जय, सेनजित्,

भूरि, शुचि, क्षेम्ब, सुवत्त, धर्म, श्मश्रुल तथा हृदसेन आदि राजा हुए।

इसो प्रकार आगे सुमति, सुबल, नीत, सरयजित्, विधजित् तथा इषुञ्जय—ये सभी बृहद्रथवंशमें उत्पन्न होनेसे बर्हिद्रथ नामसे जाने जाते हैं। इसके बाद जितने भी राजा होंगे, ये सभी अधार्मिक और शूद्र होंगे।

स्वर्गादि समस्त लोकोंके रचयिता साक्षात् अव्यय भगवान् नारायण हैं। ये ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्ता हैं। नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक भेदसे प्रलय तीन प्रकारका होता है। प्रलयकाल आनेपर पृथिवी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश अहंकारमें, अहंकार बुद्धिमें, बुद्धि जीवमें और वह जीवात्मा अव्यक्त परब्रह्म परमात्मामें विलीन हो जाता है। आत्मा ही परमेश्वर है, वही विष्णु है और वही नारायण है। वही देव एकमात्र नित्य है, अविनाशी है, उसके अतिरिक्त स्वर्गादि समस्त संसार नाशवान् है। इसी नश्वरताके कारण ये सभी राजा मृत्युको प्राप्त हुए हैं। अतः मनुष्यको पापकर्म छोड़कर अविनाशी धर्माचरणमें अनुरक्त रहना चाहिये, जिससे निष्ठाप होकर वह भगवान् हरिको प्राप्त कर सके। (अध्याय १४१)

## भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंकी कथा तथा पतिव्रता-माहात्म्यमें ब्राह्मणपत्नी, अनसूया एवं भगवती सीताके पतिव्रतका आख्यान

**ब्रह्माजीने कहा—**वेद आदि धर्मोंको रक्षके लिये और आसुरी धर्मके विनाशके लिये सर्वशक्तिमान् भगवान् हरिने अवतार धारण किया और इन सूर्य-चन्द्रादिके वंशोंका पालन-पोषण किया। ये अजन्मा हरि ही मत्स्य, कूर्म आदि रूपोंमें अवतरित होते हैं।

मत्स्यका अवतार लेकर भगवान् विष्णुने युद्धकण्टक हयग्रीव नामक दैत्यका विनाश किया और वेदोंको पुनः पृथिवीपर लाकर मनु आदिकी रक्षा की। समुद्र-मन्थनके समय देवोंका हितसाधन करनेके लिये कूर्म (कच्छप)-का अवतार ग्रहण करके उन्होंने मन्दराचलकी धारण किया। क्षीरसागरके मन्थनके समय अमृतसे परिपूर्ण कमण्डलुको लिये हुए धन्वन्तरि वैद्यके रूपमें समुद्रसे वे ही प्रकट हुए। उन्होंने द्वारा सुभ्रतको अष्टाङ्ग आयुर्वेदकी शिक्षा दी गयी थी। उन श्रीहरिने स्त्री (मोहिनी)-का रूप धारण करके देवोंको अमृतका पान कराया।

वराहका अवतार लेकर उन्होंने हिरण्याक्षको मारा। उसके अधिकारसे पृथिवीको छीनकर पुनः स्थापित किया और देवताओंकी रक्षा की। तदनन्तर नरसिंहरूपमें उन्होंने हिरण्यकशिपु तथा अन्य दैत्योंका विनाशकर वैदिकधर्मका पालन किया। तत्पश्चात् इस सम्पूर्ण संसारके स्वामी उन विष्णुने जमदग्निसे परशुरामका अवतार लेकर इक्ष्वाकुस या पृथिवीको क्षत्रियजातिसे रहित किया था।<sup>१</sup> कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य सहस्रार्जुनकी युद्धमें मार करके इन्हीं भगवान् परशुरामने यज्ञानुष्ठानमें उसके सम्पूर्ण राज्यका आधिपत्य महर्षि कश्यपको सौंप दिया और स्वयं महाबाहु (परशुराम) महेन्द्रगिरिपर जाकर तपमें स्थित हो गये।

इसके बाद दुष्टोंका मर्दन करनेवाले भगवान् विष्णु राम आदि चार स्वरूपोंमें राजा दशरथके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। जिनके नाम राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं। रामकी पत्नी जानकी हुई। पिताके वचनको सत्य करनेके लिये तथा माता (कैकेयी)-के हितकी रक्षा करते हुए रामने अयोध्याका राजवैभव त्यागकर शृंगवेरपुर चित्रकूट तथा दण्डकारण्यमें निवास किया। तदनन्तर

वहींपर शूर्पणखाकी नाक कटवाकर उसके भाई खर तथा दूषण नामक दो राक्षसोंको मारा। तत्पश्चात् जानकीका अपहरण करनेवाले दैत्याधिपति रावणका वधकर उसके छोटे भाई विभीषणको लङ्कापुरीमें राक्षसोंके राजाके रूपमें अभिषिक्त किया। उसके बाद अपने मुख्य सहयोगी सुग्रीव तथा हनुमानादिके साथ पुष्पक विमानपर अरुढ़ होकर पतिपरायण सीता एवं लक्ष्मणके साथ वे अपनी पुरी अयोध्या आ गये। यहाँ उन्होंने राज्यसिंहासन प्राप्तकर देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों तथा प्रजाका पालन किया।

उन्होंने धर्मकी भलीभाँति रक्षा की। अश्वमेधादि अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। भगवती सीताने राजा रामके साथ सुखपूर्वक रमण किया। यद्यपि सीता रावणके घरमें रही, फिर भी उन्होंने रावणको अंगीकार नहीं किया और सर्वदा मन, वचन तथा कर्मसे राममें ही अनुरक्त रही। वे सीता तो अनसूयाके समान पतिव्रता थीं।

**ब्रह्माजीने पुनः कहा—**अब मैं पतिव्रता स्त्रीका माहात्म्य कह रहा हूँ, आप सुनें।

पुराने समयमें प्रतिष्ठानपुरमें कौशिक नामका एक कुष्ठरोगी ब्राह्मण रहता था। उस ब्राह्मणकी पत्नी अपने पति-की देवताके समान ही सेवा-शुश्रूषा करती थी। पतिके द्वारा तिरस्कार मिलनेपर भी वह पतिव्रता पतिको देवता-रूप ही मानती थी। एक बार पतिके द्वारा कहे जानेपर वेश्याको शिल्प देनेके लिये अधिकतम धन साथ लेकर वह उन्हें कन्धेपर बैठाकर वेश्याके घर पहुँचाने निकल पड़ी।

मार्गमें माण्डव्य ऋषि थे। यद्यपि वे ऋषि परम तपस्वी महात्मा थे, तथापि उन्हें घोर समझकर राजदण्डके रूपमें लोहेके लम्बे शङ्कुपर बिठा दिया गया था। अतः शरीरके चोचेके छिद्रसे ऊपर सिरके छिद्र ब्रह्मरन्ध्रतक शरीरके भीतर-ही-भीतर लौह शङ्कुके प्रवेशके कारण माण्डव्य ऋषिका असह्य तीव्र वेदनासे ग्रस्त होना स्वाभाविक था। इसीलिये माण्डव्य ऋषि वेदनाके अनुभवसे स्वयंको बचानेकी दृष्टिसे सप्ताधस्थ हो गये थे।

कुष्ठ-व्याधियुक्त ब्राह्मण कौशिककी पतिव्रता पत्नी

१. यहाँ क्षत्रिय जातिसे रहित करनेका तात्पर्य इतना ही है कि श्रीपरशुरामने क्षत्रियोंके दर्पका मर्दन किया और उनकी कर्तव्यविमुखताको नष्ट किया।

रातमें ही अपने पतिकी इच्छाके अनुसार वेश्याके यहाँ जा रही थी, इसलिये अन्धकार रहनेके कारण अपनी पत्नीके कन्धेपर बैठे कौशिकने माण्डव्य ऋषिको नहीं देखा और अपना पाँव स्वभावतः हिलाया-डुलाया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कौशिकके पाँवोंसे माण्डव्य ऋषि आहत हो गये और उनकी समाधि टूट गयी। समाधि-भंग होनेसे उन्हें असह्य वेदना होने लगी। इससे माण्डव्य ऋषिका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। अतः क्रोधवशा उन्होंने शाप देते हुए



कहा—जिसने मेरे ऊपर यह अपना पैर चलाया है, उसकी सूर्योदय होते ही मृत्यु हो जायगी। यह सुनकर उस ब्राह्मण-पत्नीने कहा कि (यदि ऐसी बात है तो) अब सूर्योदय ही नहीं होगा। इसके बाद सूर्योदय न होनेसे बहुत वर्षांतक निरन्तर रात्रि ही छायी रही। जिससे देवता भी भयभीत हो गये।

देवताओंने ब्रह्माको शरण ली। ब्रह्माने उन देवोंसे कहा कि पतिव्रताके इस तेजसे तो तपस्विच्योंके तेजका भी ह्रास हो रहा है। पतिव्रत-धर्मके माहात्म्यसे सूर्यदेव उदित नहीं हो रहे हैं। उनके उदय न होनेसे मानवीं और आप सभीकी यह हानि उठानी पड़ रही है। अतः सूर्योदयकी कामनासे आप सब अत्रिमुनिकी भर्म-पत्नी तपस्विनी पतिपरायणा अनसूयाको प्रसन्न करें। वे ही सूर्योदय कराके पतिव्रता ब्राह्मणोंके पतिको भी जीवित कर सकती हैं। ब्रह्माजीके कथनानुसार अनसूयाकी शरणमें जाकर देवताओंने उनकी प्रार्थना की। देवताओंकी प्रार्थनासे अनसूया प्रसन्न हो गयीं। अपने तपःप्रभावसे सूर्योदय कराके उन्होंने ब्राह्मणोंके पति कौशिकको जीवित कर दिया। इन महातपस्विनी पतिव्रताकी अपेक्षा सीता और अधिक पतिपरायणा थीं। (अध्याय १६२)

### रामचरितवर्णन ( रामायणकी कथा )

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं रामायणका वर्णन करता हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे समस्त पापोंका विनाश हो जाता है।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य, सूर्यसे वैवस्वत मनु हुए। वैवस्वत मनुसे इक्ष्वाकु हुए। इन्हीं इक्ष्वाकुके वंशमें रघुका जन्म हुआ। रघुके पुत्र अजसे दशरथ नामक महाव्रतापी राजाने जन्म लिया। उनके महान् बल और पराक्रमवाले चार पुत्र हुए। कौसल्यासे राम, कैकेयीसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नका जन्म हुआ।

माता-पिताके भक्त श्रीरामने महामुनि विश्वामित्रसे अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा प्राप्तकर ताड़का नामक यक्षिणीका विनाश किया। विश्वामित्रके यज्ञमें बलशाली रामके द्वारा ही सुबाहु नामक राक्षस मारा गया। जनकराजके यज्ञस्थलमें पहुँचकर

उन्होंने जानकीका पाणिग्रहण किया। वीर लक्ष्मणने डर्मिला, भरतने कुशभ्वजकी पुत्री माण्डवी तथा शत्रुघ्नने कीर्तिमतीका पाणिग्रहण किया, ये महाराज कुशभ्वजकी पुत्री थीं।

विवाहके पश्चात् अयोध्यामें जाकर चारों भाई पिताके साथ रहने लगे। भरत और शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित्के यहाँ चले गये। उन दोनोंके निनिहाल जानेके बाद नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथ रामकी राज्य देनेके लिये उद्यत हुए। उसी समय कैकेयीने रामको चौदह वर्ष वनमें रहनेका दशरथजीसे वर माँग लिया। अतः लक्ष्मण और सीतासहित मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम पिताके हितकी रक्षाके लिये राज्यकी नृणवत् त्यागकर शृंगवेरपुर चले गये। वहाँपर रथका भी परित्यागकर वे सभी प्रयाग गये और वहाँसे चित्रकूटमें जाकर रहने लगे।

इधर रामके वियोगसे दुःखित महाराज दशरथ शरीरका





परित्याग कर स्वर्ग पधार गये। मामाके घरसे आकर भरतने पिताका अन्तिम संस्कार किया। तदनन्तर वे दल-बलके साथ रामके पास पहुँचे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे कहा—'हे महामते! आप अयोध्या लौट चले और वहाँका राज्य करें।' रामने राज्यके प्रति अनिच्छा प्रकट कर दी और भरतको अपनी पादुका देकर राज्यकी रक्षाके लिये वापस अयोध्या भेज दिया। भरत वहाँसे लौटकर रामके प्रतिनिधिरूपमें राज्यकार्य देखने लगे। तपस्वी भरतने नन्दिग्राममें ही रहकर राज्यका संचालन किया, वे अयोध्यामें नहीं गये।

राम भी चित्रकूट छोड़कर अश्विमुनिके आश्रममें चले आये। तदनन्तर वहाँ उन्होंने सुतीक्ष्ण और अगस्त्यमुनिके आश्रममें जाकर उन्हें प्रणाम किया और उसके बाद वे दण्डकारण्य चले गये। वहाँ उन सभीका भक्षण करनेके लिये शूर्पणखा नामकी एक राक्षसी आ धमकी। अतः रामचन्द्रने नाक-कान कटवाकर उस राक्षसीको वहाँसे भगा दिया। उसने जाकर खर-दूषण तथा त्रिशिरा नामके राक्षसोंको युद्धके लिये प्रेरित किया। चौदह हजार राक्षसोंकी सेना लेकर उन लोगोंने रामपर आक्रमण कर दिया। रामने अपने बाणोंसे उन राक्षसोंको यमपुर भेज दिया। राक्षसी शूर्पणखासे प्रेरित रावण सीताका हरण करनेके लिये वहाँ त्रिदण्डी संन्यासीका वेश धारणकर मृगरूपधारी मारीचकी अगुवाईमें आ पहुँचा। मृगका चर्म प्राप्त करनेके लिये सीतासे प्रेरित रामने मारीचको मार डाला। मरते समय उसने 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' ऐसा कहा।

इसके बाद सीताकी सुरक्षामें लगे लक्ष्मण भी सीताके कहनेपर वहाँ जा पहुँचे। लक्ष्मणको देखकर रामने कहा—यह निश्चित ही राक्षसी माया है। सीताका हरण अवश्य हो गया होगा। इसी बीच बली रावण अवसर पाकर अङ्गुमें सीताको लेकर, जटायुको क्षत-विक्षतकर लङ्का चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने राक्षसियोंकी निगरानीमें सीताकी अशोक-वृक्षकी छायामें ठहरा दिया।

रामने आकर पर्णशालाकी मूनी देखा। वे अत्यन्त दुःखित हो उठे। उसके बाद वे सीताकी खोजमें निकल पड़े। मार्गमें उन्होंने जटायुका अन्तिम संस्कार किया और

उसोके कहनेसे वे दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। उस दिशामें आगे बढ़नेपर सुग्रीवके साथ रामकी मित्रता हुई। उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणसे सात तालवृक्षोंका भेदन किया तथा वाल्मीकी मारकर किष्किन्धामें रहनेवाले वानरोंके राजाके रूपमें सुग्रीवको अभिषिक्त किया और स्वयं जाकर ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करने लगे।

सुग्रीवने पर्वताकार शरीरवाले उत्साहसे भरे हुए वानरोंको सीताकी खोजमें पूर्वादि दिशाओंमें भेजा। वे सभी वानर जो पूर्व, पश्चिम और उत्तरकी दिशाओंमें गये थे, खाली हाथ वापस लौट आये, किंतु जो लोग दक्षिण दिशामें गये थे उन्होंने वन, पर्वत, द्वीप तथा नदियोंके तटोंको खोज डाला; पर जानकीका कुछ भी पता न चल सका। अन्तमें हताश होकर उन सबने मरनेका निश्चय कर लिया। सम्प्रतिके वचनसे सीताकी जानकारी प्राप्त करके कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने शतयोजन (चार सौ कोस) विस्तृत समुद्रको लांघकर लङ्कामें अलोकवाटिकाके अन्दर रह रही सीताका दर्शन किया, जिनका तिरस्कार राक्षसियों और रावण स्वयं करता था। इन सबके द्वारा बराबर यह कहा जा रहा था कि तुम रावणकी पत्नी बन जाओ, किंतु वे हृदयमें सदैव रामका ही चिन्तन करती थीं।

हनुमान्ने (ऐसी दयनीय स्थितिमें रह रही) सीताको कौमस्त्यनन्दन रामके द्वारा दी गयी अंगूठी देकर अपना परिचय देते हुए कहा कि 'हे मैथिलि! मैं श्रीरामका दूत हूँ। आप अब दुःख न करें। आप मुझे कोई अपना चिह्नविशेष दें, जिससे भगवान् श्रीराम आपकी समझ सकें।' हनुमान्का यह वचन सुनकर सीताने अपना चूड़ामणि उतारकर दे दिया और कहा कि 'हे कपिराज! राम जितना ही शीघ्र हो सके उतना ही शीघ्र मुझको यहाँसे ले चले।' ऐसा आप उनसे कहियेगा। हनुमान्ने कहा कि ऐसा ही होगा। तदनन्तर वे उस दिव्य अशोक वनको विध्वंस करने लगे। उसे विनष्टकर उन्होंने रावणके पुत्र अक्ष तथा अन्य राक्षसोंको मार डाला और स्वयं मेघनादके पाशमें बन्दी भी बन गये। रावणको देखकर हनुमान्ने कहा कि हे रावण! मैं श्रीरामका दूत हनुमान् हूँ। आप रामकी सीता लौट दें। यह सुनकर रावण क्रुद्ध हो उठा। उसने उनकी पूँछमें आग लगा दी।

\*\*\*\*\*

महाबली हनुमान्ने उस जलती हुई पूँछसे लंकाको जला डाला। ये पुनः रामके पास लौट आये और बताया कि मैंने सीता माताको देखा, तदनन्तर हनुमान्जीने सीताद्वारा दिया गया चूड़ामणि उन्हें दे दिया। इसके बाद सुग्रीव, हनुमान्, अंगद तथा लक्ष्मणके साथ राम लङ्कापुरीमें जा पहुँचे। रावणका भाई विभीषण भी रामकी शरणमें आ गया। श्रीरामने उसे लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। रामने नलके द्वारा सैतुका निर्माण कराकर समुद्रको पार किया था। (समुद्रके तटपर) सुबेल पर्वतपर उपस्थित होकर उन्होंने लङ्कापुरीको देखा।

तदनन्तर नील, अंगद, नलादि मुख्य वानरों तथा भृंग्राक्ष, वीरेन्द्र तथा ऋक्षपति जाम्बवान्, मन्द, द्विविद आदि मुख्य वीरोंने लङ्कापुरीको नष्ट कर डाला। विनाश सरीरवाले काले-काले पहाड़के समान राक्षसोंको अपनी वानरी सेनाके साथ राम-लक्ष्मणने मार गिराया। विद्युज्जिह्व, भृंग्राक्ष, देवानाक, नरानाक, महोदर, महापार्श्व, महाबल, अतिपाश, कुम्भ, निकुम्भ, मत्त, मकराक्ष, अकम्प्य, प्रहरत, उन्मत्त, कुम्भकर्ण तथा मैघनादको अस्त्रादिके राम-लक्ष्मणने

काट डाला। तदनन्तर उन महापराक्रमी श्रीरामने बीस भुजाओंके समूहकी छिन्न-भिन्न करके रावणको भी धराशायी कर दिया।

उसके बाद अग्निमें प्रविष्ट होकर अपनी शुद्धताको प्रमाणित की हुई सीताके साथ लक्ष्मण एवं वानरोंसे युक्त राम पुष्पक विमानमें बैठकर अपनी श्रेष्ठतम नगरी अयोध्या लौट आये। वहाँपर राज्य-सिंहासन प्राप्तकर उन्होंने प्रजाका पुत्रवत् पालन करते हुए राज्य किया। दस अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करके रामने गयातीर्थमें पितरोंको विधिवत् पिण्डदान दिया और ब्राह्मणोंको विभिन्न प्रकारका दान देकर कुश और लवको राज्यसिंहासन सौंप दिया।

रामने ग्यारह हजार वर्षतक राज्य किया।<sup>१</sup> शत्रुघ्ने लवण नामक दैत्यका विनाश किया। भरतके द्वारा शैलूष नामक गन्धर्व मारे गये। इसके पश्चात् उन सभीने अगस्त्यादि मुनियोंको प्रणाम करके उनसे राक्षसोंकी उत्पत्तिकी कथा सुनी। तदनन्तर अपने अवतारका प्रयोजन पूर्ण करके भगवान् श्रीराम अयोध्यामें रहनेवाली प्रजाके साथ स्वर्गलोकको चले गये। (अध्याय १४३)

### हरिवंशवर्णन ( श्रीकृष्णकथा )

“ब्रह्माजीने कहा—अब मैं हरिवंशका वर्णन करूँगा, जो भगवान् कृष्णके माहात्म्यसे परिपूर्ण होनेके कारण श्रेष्ठतम है।

पृथिवीपर धर्म आदिकी रक्षा और अधर्मादिके विनाशके लिये वसुदेव तथा देवकीसे कृष्ण और बलरामका प्रादुर्भाव हुआ। जन्मके कुछ ही दिन बाद कृष्णने पूतनाके स्तनोंको हड़तापूर्वक पीकर उसे मृत्युके पास पहुँचा दिया था। तदनन्तर शकट (छकड़े)-का बालक्रीडामें उलटकर सभीको विस्मित करते हुए इन्होंने यमलाजुन-उद्धार, कालियनग-दमन, धेनुकासुर-वध, गोवर्धन-धारण आदि अनेक लौलाएँ कीं और इन्द्रद्वारा पूजित होकर पृथिवीको भारसे विमुक्त किया तथा अर्जुनकी रक्षाके लिये प्रतिज्ञा की।

इनके द्वारा अरिशसुर आदि अनेक बलवान् शत्रु मारे गये। इन्होंने कैशी नामक दैत्यका वध किया तथा गोपीको

संतुष्ट किया। उसके बाद चाणूर और मुष्टिक नामक माल इनके द्वारा ही पराजित हुए। ऊँचे संवत्सर अवस्थित कैसकी वहाँसे नीचे पटककर इन्होंने ही मारा था।

श्रीकृष्णकी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ प्रधान पत्नियाँ थीं। इनके अतिरिक्त महात्मा श्रीकृष्णकी सोलह हजार अन्य स्त्रियाँ थीं। उन स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंकी संख्या सैकड़ों-हजारोंमें थी। रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न उत्पन्न हुए, जिन्होंने शम्भुशसुरका वध किया था। इनके पुत्र अनिरुद्ध हुए, जो कानासुरकी पुत्री उषाके पति थे। अनिरुद्धके विवाहमें कृष्ण और शङ्करका महापर्यंकर युद्ध हुआ और इसी युद्धमें हजार भुजाओंवाले कानासुरकी दो भुजाओंको छोड़कर शेष सभी भुजाएँ कृष्णके द्वारा काट डाली गयीं।

नरकासुरका वध इन्हीं महात्मा श्रीकृष्णने किया था।

नन्दनवनसे बलात् पारिजात-वृक्ष सत्यभामाके लिये ये ही उखाड़कर लाये थे। बल नामक दैत्य, शिशुपाल नामक राजा तथा द्विविद नामक बन्दरका वध इन्हींके द्वारा हुआ था। अनिरुद्धसे वज्र नामका पुत्र हुआ। कृष्णके स्वर्गारोहणके

पश्चात् वही इस वंशका राजा बना था। सान्दीपनि नामक मुनि कृष्णके गुरु थे। कृष्णने ही गुरु सान्दीपनिकी पुत्रप्राप्तिकी अभिलाषाको पूर्ण किया था। मधुरामें उग्रसेन और देवताओंकी रक्षा इन्होंने ही की थी। (अध्याय १४४)

## महाभारतकी कथा एवं बुद्ध आदि अवतारोंकी कथाका वर्णन

**ब्रह्माजीने कहा—**अब मैं महाभारतके युद्धकी कथाका वर्णन करूँगा, जो पृथिवीपर बड़े हुए आप्ताचारके भारको उतारनेके लिये हुआ था, जिसकी योजना युधिष्ठिरादि पाण्डवोंकी रक्षाके लिये तत्पर कृष्णने स्वयं की थी।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मासे अग्नि, अग्निसे सोम, सोमसे बुध हुए। बुधने इल्ल नामक अपनी पत्नीसे पुरुरवाको उत्पन्न किया। पुरुरवासे आयु, आयुसे ययाति और ययातिके वंशमें भरत, कुरु तथा शन्तनु हुए। राजा शन्तनुकी पत्नी गङ्गासे भीष्म हुए। भीष्म सर्वगुणसम्पन्न तथा ब्रह्मविद्याके पारङ्गत विद्वान् थे।

शन्तनुकी सत्यवती नामक एक दूसरी पत्नी थी। उस पत्नीके दो पुत्र हुए, जिनका नाम चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य था। चित्रांगद नामवाले गन्धर्वके द्वारा युद्धमें चित्रांगद मार डाला गया। विचित्रवीर्यका विवाह काशिराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकाके साथ हुआ। विचित्रवीर्य भी निःसन्तान ही मर गये थे। अतः व्याससे उनके दो क्षेत्रज पुत्रों—अम्बिकाके गर्भसे धृतराष्ट्र तथा अम्बालिकाके गर्भसे पाण्डुका जन्म हुआ। उन्हीं व्यासके द्वारा दासीके गर्भसे विदुरका जन्म हुआ। धृतराष्ट्रके गान्धारोसे सौ पराक्रमी पुत्र हुए, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। पाण्डुपत्नी कुन्ती और माद्रीसे पाँच पुत्रोंका जन्म हुआ। युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—ये पाँचों पुत्र बड़े ही बलवान् और पराक्रमशाली थे।

दैववशात् कौरव और पाण्डवोंमें वैरभाव उत्पन्न हो गया। उद्धत स्वभाववाले दुर्योधनद्वारा पाण्डवजन बहुत ही सताये गये। लाक्षागृहमें उन्हें विश्वासघातसे जलाया गया, किंतु वे अपनी बुद्धिमत्तासे बच गये। उसके बाद उन लोगोंने एकचक्रा नामक पुरीमें जाकर एक ब्राह्मणके घरमें

शरण ली। वहाँ रहते हुए उन सभीने वक नामक राक्षसका संहार किया। तदनन्तर पाञ्चाल नगरमें हो रहे द्रौपदीके स्वयंवरको जानकर वे सभी वहाँ पहुँचे। वहाँ अपने पराक्रमका परिचय देकर उन पाण्डवोंने द्रौपदीको पत्नीके रूपमें प्राप्त किया।

इसके बाद द्रोणाचार्य और भीष्मकी अनुमतिसे धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको अपने पास बुला लिया और आधा राज्य उन्हें दे दिया। आधा राज्य प्राप्त करनेके पश्चात् इन्द्रप्रस्थ नामक एक सुन्दर नगरमें रहकर वे राज्य करने लगे। उन तपस्वी पाण्डवोंने वहाँपर एक सभामण्डपका निर्माण करके राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान किया।

तत्पश्चात् मुखरि भगवान् वासुदेवकी अनुमतिसे ही द्वारकापुरीमें जाकर अर्जुनने उनकी बहन सुभद्राका पाणिग्रहण किया। उन्हें अग्निदेवसे नन्दिघोष नामक दिव्य रथ, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध पाण्डवीय नामका श्रेष्ठतम दिव्य धनुष, अत्रिनाशी बाण तथा अभेद्य कवच प्राप्त हुआ। उसी धनुषसे कृष्णके सहचर वीर अर्जुनने अग्निकी छायाडव-वनमें संशुट किया था। दिग्विजयमें देश-देशान्तरके राजाओंकी जीतकर उनसे प्रायः रत्नराशि लाकर उन्होंने अपने नीति-परामर्श ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरको सौंप दी।

भाइयोंके साथ धर्मराज युधिष्ठिर कर्ण, दुःशासन और शकुनिके मदमें स्थित पापी दुर्योधनके द्वारा द्यूतक्रीडाके पायाजालमें जीत लिये गये। उसके बाद बारह वर्षोंतक उन्हें वनमें महान् कष्ट उठाना पड़ा। तदनन्तर भीष्म अग्नि तथा अन्य मुनियोंके साथ द्रौपदीसहित वे पाँचों पाण्डव विराट्-नगर गये और गुप्तरूपसे वहाँ रहने लगे। एक वर्षतक वहाँ रहकर दुर्योधनद्वारा हरण की जाती हुई गायोंका प्रत्याहरण करके अर्थात् वापस लौटाकर वे अपने

राज्यमें जा पहुँचे। सम्मानपूर्वक दुर्योधनसे उन्होंने अपने आधे राज्यके हिस्सेके रूपमें पाँच गाँव माँगे, किंतु दुर्योधनसे वे भी प्राप्त न हो सके। अतः कुरुक्षेत्रके मैदानमें उन वीरोंको युद्ध करना पड़ा। उसमें पाण्डवोंकी और सात दिव्य अश्वहिणी सेना थी और दुर्योधनादि ग्यारह अश्वहिणी सेनासे युक्त थे। यह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान महाभयंकर हुआ था।

सबसे पहले दुर्योधनकी सेनाके सेनापति भीष्म हुए और पाण्डवोंका सेनापति शिखण्डी बना। उन दोनोंके बीचमें शस्त्र-से-शस्त्र तथा बाण-से-बाण भिड़ गये। दस दिनोंतक महाभयंकर युद्ध होता रहा। शिखण्डी और अर्जुनके सैकड़ों बाणोंसे बिंधकर भीष्म धराशायी हो गये, किंतु इच्छामृत्युका वरदान होनेसे भीष्मकी उस समय मृत्यु नहीं हुई। जब सूर्य उतरावणमें आ गये तब धर्म-सम्बन्धित विभिन्न उपदेश देकर उन्होंने अपने पितरोंका तर्पण किया और भगवान् गदाधरका ध्यान करते हुए अन्तमें वे उस परमपदको प्राप्त हुए, जहाँपर आनन्द-ही-आनन्द है और जो निर्मल आत्माओंके लिये मुक्तिका स्थान है।

तदनन्तर सेनापतिके पदपर द्रोणाचार्य आसीन हुए। उनका युद्ध पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्नके साथ हुआ। यह परम दारुण युद्ध पाँच दिनोंतक चलता रहा। जितने भी राजा इस युद्धमें सम्मिलित हुए, वे सभी अर्जुनके द्वारा मारे गये। पुत्रशोकका समाचार सुनकर द्रोणाचार्य उस शोकके सागरमें डूबकर मर गये।

इसके बाद वीर अर्जुनसे लड़नेके लिये कर्ण युद्धभूमिमें आया। दो दिनोंतक महाभयानक युद्ध करके वह भी उनके द्वारा प्रयुक्त अस्त्रोंसे न बच सका। तत्पश्चात् शल्य धर्मराजसे युद्ध करनेके लिये गया। अपराह्नकाल होनेके पूर्व ही धर्मराजके लोक्ष्ण बाणोंसे वह भी मर गया।

तदनन्तर कालातक यमराजके समान क्रुद्ध दुर्योधन गदा लेकर भीमसेनको मारनेके लिये दौड़ा, किंतु

वीर भीमसेनने अपनी गदासे उसे गिरा दिया। उसके बाद द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रात्रिमें सोयी हुई पाण्डवोंकी सेनापर आक्रमण कर दिया। अपने पिताके वधका स्मरण करके उसने बड़ी ही बहादुरीसे बहुतोंको मौतके घाट उतार दिया। धृष्टद्युम्नका वध करके उसने द्रौपदीके पुत्रोंको भी मार डाला। इस प्रकार पुत्रोंका वध होनेसे दुःखित एवं रोती हुई द्रौपदीको देखकर अर्जुनने अश्वत्थामाको परास्तकर ऐहिक तमक अस्त्रसे उसकी शिरोमणिको निकाल लिया।

उसके बाद अत्यन्त शोकमन्तप्त स्त्रीजनोंको आश्वस्त करके धर्मराज युधिष्ठिरने स्नान करके देवता और पितृजनोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् भीष्मके द्वारा दिये गये सदुपदेशोंसे आश्वस्त महात्मा युधिष्ठिर पुनः राज्यकार्यमें लग गये। अधमेध-यज्ञका अनुष्ठान करके उन्होंने भगवान् विष्णुका पूजन किया तथा विधिवत् ब्राह्मणोंको दक्षिणादि देकर संतुष्ट किया। साम्राज्यके पैरसे निकले हुए मूसलके द्वारा पशुवृत्तियोंके विनाशका समाचार सुनकर उन्होंने राज्यसिंहासनपर अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको बैठाकर भीमादि अपने सभी भाइयोंसहित विष्णुसहस्रनामका जप करते हुए स्वयं भी स्वर्गके मार्गका अनुगमन किया।

जसूदेव कृष्ण असुरोंको व्यामोहित करनेके लिये युद्धरूपमें अवतरित हुए। अब वे कल्पित होकर फिर सम्भल ग्राममें अवतार लेंगे और घौहेपर सवार होकर वे संसारके सभी विधर्मियोंका विनाश करेंगे।

अधर्मको दूर करनेके लिये, सत्त्वगुण-प्रधान देवता आदिकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके निमित्त भगवान् विष्णुका समय-समयपर वैसे ही अवतार होता है, जैसे समुद्रमन्थनके समय धन्वन्तरि होकर उन्होंने देवता आदिकी रक्षाके लिये विश्वामित्रके पुत्र महात्मा सुश्रुतको आयुर्वेदका उपदेश किया।

इस तरह महाभारतकी कथा एवं भगवान्के अवतारोंकी कथाका मैंने वर्णन किया, इसे सुनकर मनुष्य स्वर्गको प्राप्त करता है। (अध्याय १४५)



### आयुर्वेद-प्रकरण

[ गरुडपुराणका आयुर्वेद-प्रकरण अत्यन्त महत्त्वका है। इस प्रकरणके प्रथम चोस अध्यायोंमें निदान-स्थानके विषय वर्णित हैं। किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ है और रोगके लक्षण क्या हैं जिससे रोगका निर्वण हो सके इत्यादि विषय 'निदान' शब्दसे अभिप्रेत हैं। इसके बाद लगभग चालीस अध्यायोंमें रोगोंकी निरूपणा-हेतु औषधियोंका निरूपण हुआ है तथा उन औषधियोंके निर्माणकी विधि बतायी गयी है। इस औषधिका यह अनुमान है, किस प्रकार इसका सेवन करना चाहिये आदि बताया गया है। एक ही रोगके लिये अनेक औषधिक योगोंको भी बताया गया है, पर यह सब किसी सुयोग्य वैद्यके परामर्शसे ही करना उचित है।

उपलब्ध गरुडपुराणका पाठ कहीं-कहीं अस्पष्ट तथा छान्दित भी प्रतीत होता है। आयुर्वेदके आर्यग्रन्थोंका आश्रय करके यथासम्भव अर्थ ठीक करनेको चेष्टा की गयी है, पाठकोंको इससे लाभ उठाना चाहिये—सम्पादक]

### निदानका अर्थ तथा रोगोंका सामान्य निदान-निरूपण

**धन्वन्तरिजीने कहा—**हे सुव्रत! प्राचीन कालमें आग्नेय आदि श्रेष्ठ मुनियोंने जिस प्रकार सभी रोगोंका निदान बताया है, वैसे ही मैं तुम्हें सुनाऊँगा। पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुःख, आमय, यक्ष्मा, आतङ्क, गद और आन्वाध—ये पर्यायवाची शब्द हैं।

रोगके ज्ञानके पाँच उपाय हैं—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति। निमित्त, हेतु, आयतन, प्राप्य, उत्थान तथा कारण—इन पर्यायोंसे निदान कहा जाता है अर्थात् निमित्त आदि शब्दोंसे जिस वस्तुका निक्षेप होता है वही निदान है। दोष-विशेषके ज्ञानके बिना ही उत्पन्न होनेवाला रोग जिन लक्षणोंसे जाना जाता है, उसे पूर्वरूप कहते हैं। यह पूर्वरूप सामान्य और विशिष्ट-भेदसे दो प्रकारका होता है। यह उत्पद्यमान रोग जिन लक्षणोंसे जाना जाता है, उन लक्षणोंको अल्पताके कारण थोड़ा व्यक्त होनेसे पूर्वरूप कहा जाता है। वही पूर्वरूप व्यक्त हो जानेपर रूप कहलाता है। संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न और आकृति—ये रूपके पर्यायवाची शब्द हैं। हेतु-विपरीत, व्याधि-विपरीत, हेतु-व्याधि-उभय-विपरीत तथा हेतु-विपरीत अर्धकारी (हेतुके समान प्रतीत होनेपर भी विपरीत क्रिया करनेवाला), व्याधि-विपरीत अर्धकारी और हेतु-व्याधि-उभय-विपरीत अर्धकारी औषध, अन्न तथा विहारके परिणाममें सुखदायक उपयोगको उपशय कहते हैं, इसका नाम सात्त्व्य भी है। उपशयके विपरीत अनुपशय होता है। इसका दूसरा नाम व्याध्यसात्त्व्य भी है। दोष जिस प्रकार (प्राकृत आदि विविध) निदानोंसे दूषित होकर (ऊर्ध्व आदि भिन्न गतियोंके द्वारा शरीरमें) विसर्पण करते हुए (धातु आदिको दूषित कर) रोगको उत्पन्न करता है, उसे सम्प्राप्ति कहा जाता है। उसके पर्यायवाची शब्द हैं—जाति तथा आगति।

संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और व्याधि कालको विशेषताओंके आधारपर उस सम्प्राप्तिके भेद किये जाते हैं।

जैसे इसी शास्त्रमें बताया जायगा कि त्वरके आठ भेद होते हैं (यह संख्यासम्प्राप्ति हुई)। रोगोत्पत्तिमें कारणभूत दोषोंकी अंशोत्कल्पन (न्यूनाधिक्य आदि)—का विवेचन विकल्पसम्प्राप्ति, स्वतन्त्रता और परतन्त्रताद्वारा दोषोंका प्राधान्य या अप्राधान्य-विवेचन प्राधान्यसम्प्राप्ति, हेतु-पूर्वरूप और रूपकी सम्पूर्णता अथवा अल्पताके द्वारा बल या अबलका विवेचन बलसम्प्राप्ति और दोषानुसार रात्रि, दिन, ऋतु एवं भोजन (—के परिपाक)—के अंश (आदि, मध्य और अन्त)—द्वारा रोगकालके ज्ञानको कालसम्प्राप्ति समझना चाहिये।

इस प्रकार निदानके सामान्य अधिधेयों (निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति)—का निरूपण किया गया। सम्प्राप्ति उनका विस्तारसे वर्णन किया जायगा। सभी रोगोंके मूल कारण [शरीरमें स्थित] कुपित दोष ही हैं। किंतु दोष-प्रकोपका भी कारण अनेक प्रकारके अहितकर पदार्थोंका सेवन है। यह अहितसेवन तीन प्रकार (असात्त्व्येन्द्रियार्थसंयोग, प्रज्ञापरान्न तथा परिणाम)—का होता है, इन तीनों योगोंको पहले बताया जा चुका है।

#### वात-प्रकोपका निदान

तिक्त, उष्ण, कटु, कषाय, अम्ल और रुक्ष खाद्यान्नका असंयमित आहार, दीङ्गना, जोरसे खोलना, रात्रि-जागरण तथा उच्च धापण, कार्योंमें विशेष अनुरक्ति, भय, शोक, चिन्ता, व्यायाम एवं मैथुन करनेसे शरीरके अन्तर्गत विद्यमान वायु प्रकुपित हो जाती है। विशेषतः यह वायु-विकार शीघ्र-ऋतुके दिन तथा रात्रिमें भोजन करनेके परचात् पाकके अन्तर्में होता है।

#### पित्त-प्रकोपका निदान

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, स्रवण तथा क्रोधोत्पादक एवं दाहोत्पादक आहार करनेसे पित्त प्रकुपित होता है। पित्तका यह प्रकोप शरद्-ऋतुके मध्याह्न, अर्धरात्रि तथा अन्य दाह उत्पन्न करनेवाले क्षणोंमें विशेषरूपसे होता है।

### कफ-प्रकोपका निदान

मधुर<sup>१</sup>, अम्ल, लवण, स्निग्ध, गुरु, अभिष्यन्दी तथा शीतल भोजनोंके प्रयोगसे, बैठे रहनेसे, निद्रासे, सुख-भोगसे, अजीर्णसे, दिवा-शयनसे, अत्यन्त चलकारक पदार्थोंके प्रयोगसे, वमन आदि न करनेसे, भोजनके परिष्कारके प्रारम्भकालमें, दिनके प्रथम भागमें तथा रात्रिके प्रथम भागमें कफ कुपित होता है और दो-दो दोषोंके प्रकोपक आहार-विहारका सेवन करनेसे दो-दो दोष प्रकुपित होते हैं।

### त्रिदोष-प्रकोपका निदान एवं सब रोगोंकी

#### सामान्य सम्प्राप्ति

त्रिदोषके (वात-पित्त तथा स्लेष्मा—इन सभीके) प्रकुपित तथा मिश्रित स्वभावसे सन्निपातकी उत्पत्ति होती है। संकीर्ण भोजन, अजीर्णतामें भोजन, विषम तथा विरुद्ध भोजन, मद्यपान,

सूखे ताक, कच्ची मूली, पिण्याक (खली), मृत्युवत्तर पूति (सत्तु) तुष्क, कृशा, मांस तथा मात्स्यादिका भक्षण करनेसे, वात-पित्त एवं स्लेष्मोत्पादक विभिन्न पदार्थोंके उपभोगसे, आहार्य अन्नका परिवर्तन, धातुजन्य-दोष, वात-पित्त, स्लेष्माका परस्पर मिलकर उपद्रव करनेसे शरीरमें यह विकार (सन्निपात) उत्पन्न होता है। दूषित कच्चे अन्नका प्रयोग करनेसे, स्लेष्माजनित विकारसे तथा ग्रहोंके प्रभावसे, मिथ्या आहार-व्यवहारके योगसे, पूर्वजन्ममें संचित विभिन्न पापोंके प्रभाववश किये गये दुराचरणसे, स्त्रियोंमें प्रसव-कालकी विषमता तथा मिथ्योपचारसे शरीरमें सन्निपातकी विकृति उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रकुपित वात आदि दोष रोगोंके अधिष्ठानोंमें जानेवाली रसवाहिनियोंके द्वारा शरीरमें पहुँचकर अनेक प्रकारके विकारोंकी उत्पत्ति करते हैं। (अध्याय १४६)

### ज्वर-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुसुत! अब समस्त ज्वरोंकी<sup>१</sup> विशेष जानकारीके लिये मैं ज्वर-निदानकी बताऊँगा।

ज्वर रोगपति, पाप्मा, मृत्युराज, ओजोऽशन (ओजको खा जानेवाला), अन्तक (आयुको समाप्त कर देनेवाला), क्रुद्ध होकर दशके यज्ञको विध्वंस करनेवाले रुद्रके लीखे नयनसे उत्पन्न संताप, मोहमय, संतापात्मा तथा अपचारज (मिथ्या आहार-विहारसे उत्पन्न)—इन विभिन्न नामोंसे नाना प्रकारकी योनियोंमें विद्यमान रहता है।

यह हाथियोंमें पाकल, अश्वोंमें अभिताप, कुत्तोंमें अलर्क, मेथोंमें इन्द्रमद, जलमें नीलिका, औषधियोंमें ज्योति और भूखण्डोंमें ऊषर नामसे रहता है।

#### कफ-ज्वरके लक्षण

कैफसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरमें हृदयमें घबराहट, वमन, खाँसी, शरीरमें ठंडक तथा अङ्गोंमें सूजन हो जाती है। दोषोंके प्रकोप-कालमें ज्वरकी उत्पत्ति होने लगती है। (पर यह पहलेसे जो उत्पन्न हो चुके हैं) बहुत्वपर आ जाते हैं (ग्रन्थकारका अभिप्राय यह है कि चिकित्सक इस स्थितिसे लाभ उठावें)। पहले यह कालपर विचार करें कि

यह वात, पित्त, कफ—इन दोषोंमें किस दोषको प्रकुपित करनेवाला है। इस आधारपर रोगको समझनेमें सुविधा हो सकती है। जिस तरह विशिष्ट कालके द्वारा रोगकी उत्पत्ति या वृद्धि देखकर यह रोग—वात आदि किस दोषसे उत्पन्न हुआ है, यह अनुमान कर लिया जाता है, उसी तरह उपशय (लाभ) और अनुपशय (हानि)—से भी रोगको पहचाना जा सकता है। औषध, अन्न, विहार, देश, काल आदिसे उत्पन्न लाभको उपशय कहते हैं और इन्हीं औषध आदिका उपयोग यदि किसी रोगमें दुःखद हो तो उसे अनुपशय कहते हैं।

अतः किस प्रकारकी औषधि, अन्न आदिके सेवनसे रोगीको लाभ (उपशय) हो रहा है और किस प्रकारकी औषधि आदिसे हानि (अनुपशय) हो रहा है, इसपर विचार करनेसे चिकित्सकको रोग समझनेमें आसानी होती है।

निदान-प्रकरणमें कहे गये (किस औषधि और विहारके सेवनसे) अनुपशय (हानि) होती है और किन पदार्थोंके सेवनसे उपशय (लाभ) होता है, यह देखकर दोषोंका अनुमान किया जा सकता है। अरुचि, अपरिपाक, स्तम्भ, आलस्य, हृदयदाह, विपाक, तन्द्रा, वमन, विमदावनय,

लारका गिरना, मनका भरा होना, भूखका न लगना, मुखकी विषविषाहट, शरीरमें श्वेतता होना, उष्णताका रहना, शरीरका भारी लगना, अधिक पेशाबका होना, शरीरकी जीर्णताका विशेष भान होना तथा शरीरकी कान्तिमें मलिनताका आना—ये सभी आम ज्वरके लक्षण हैं।

भूखका न लगना, शरीरका हल्का हो जाना, यह सामान्य ज्वर है। जब ज्वरमें वात-पित्त तथा कफ—तीनों दोष बराबर बढ़ते रहते हैं तो उसे परिपक्व अछह<sup>१</sup> (निराम) ज्वरका लक्षण माना जाता है। दो दोषोंके लक्षणोंका संसर्ग होनेपर तीन संसर्गज-द्वन्द्वज ज्वर होते हैं।

### वात-पित्त-ज्वरके लक्षण

सिरमें वेदना, मूच्छा, चमन, शरीर-प्रदाह, मोह, कण्ठ और मुखकी शुष्कता, अरुचि, शरीरके पर्व-पर्वमें टूटन, अनिद्रा, पनमें विषम, रोमाञ्च (सिहरन), जम्झाई एवं वात-प्रकोपसे त्वचामें शीतलताकी अनुभूतिका होना—ये सभी लक्षण वात और पित्तकी प्रवृत्तिके कारण उत्पन्न हुए ज्वरसे ग्रसित शरीरमें दिखायी देते हैं।

ज्वर-तापकी अत्यन्त, अरुचि, पर्ववेदना (शरीरके प्रत्येक जोड़में दर्द), सिरपीड़ा, बार-बार घूम्नेकी इच्छा, श्वास-कष्ट और खीसी, चेहरेका रंग उड़ जाना, ठंडक लगना, आँखोंके सामने दिनमें भी अन्धकारका छाया रहना और अनिद्राका होना—ये सभी लक्षण कफ-वातजनित ज्वरकी पहचान कराते हैं।

शरीरमें अनियत शीतलताका अनुभव, सम्पन्न, पसोनेका आना, दाहका होना, प्यासका लगना और खीसीका आना, श्लेष्म एवं पित्तकी प्रवृत्ति, मूच्छा, तन्द्रावस्थामें तथा मुखमें कड़ुवापनका होना—ये सभी लक्षण श्लेष्म-पित्तजन्य ज्वरके रूपका निर्धारण करते हैं।

वात<sup>१</sup>-पित्त और श्लेष्म-प्रवृत्तिजन्य सभी लक्षणोंके एक साथ सर्वज (सत्रिपात) ज्वरका आकलन होता है। ऐसी अवस्थामें बार-बार ये सभी लक्षण प्रकट होते रहते हैं। इस ज्वरकालमें रोगीको ठंडक लगती है, दिनमें महानिद्राकी स्थिति बनी रहती है, रात्रिमें नींद नहीं आती या सदैव निद्रा ही रहती है अथवा निद्रा ही नहीं आती। रोगीको अधिक पसोना छूटता है अथवा पसोना ही नहीं

आता। यह ऐसी अवस्थामें गीत गाता है, नाचता है या हास्यादिकी क्रियाओंको करता है। उसकी सामान्य प्रकृति पूर्ण बदली हुई होती है। नेत्र मलिन एवं आँसुओंसे डबडबाये रहते हैं। आँखोंकी पलकोंके किनारोंपर लाल छाया रहती है और आँखें खुली रहती हैं अथवा मुंदी रहती हैं। शरीरकी पिण्डुली, पार्श्वभाग, सिर, संधि-स्थान तथा हड्डी-हड्डीमें वेदना होती है और बुद्धिमें भ्रम बना रहता है। दोनों कान ध्वनि एवं वेदनासे व्याप्त रहते हैं। ये अत्यधिक ठंडे हो जाते हैं अथवा अत्यधिक गर्म हो जाते हैं। रोगीको बिछा जली हुई—सी प्रतीत होती है अर्थात् कुछ लाल और कृष्ण वर्णके मिश्रित भावोंसे युक्त तथा खुरदरी हो जाती है, उसमें स्निग्धता नहीं रह जाती। सम्पूर्ण शरीर एवं उसके संधि-स्थानोंमें भारीपन तथा स्थिबिलता आ जाती है।

रोगीके मुखसे रक्त-पित्तमिश्रित धूक निकलता है, सिर लुढ़क जाता है, अत्यन्त प्यास लगती है। शरीरके समस्त कोष्ठ-प्रदेशोंका वर्ण श्याम और रक्त हो जाता है। उनपर मण्डलाकार धब्बे दिखायी पड़ने लगते हैं। हृदयमें व्यथा होने लगती है। आँख, कान, नाक, गुदा आदिसे निकलनेवाले मलकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है अथवा अत्यन्त कम हो जाती है। मुखमें स्निग्धता, बलकी क्षीणता, स्वरभंग, ओजस्य तथा प्रलापकी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। दोषपाक अर्थात् वात-पित्त और कफकी वृद्धि शरीरके अंदर-ही-अंदर फैल जाती है, जिससे शरीरकी सामान्य गतिमें अवरोध आ जाता है, कण्ठ धरधराने लगता है। शरीरमें तन्द्राकी अवस्था रहती है और कण्ठसे अशक्त शब्द निकलने लगते हैं। ऐसे लक्षणोंसे युक्त रोग शरीरमें अपना स्थान बना लेता है, उसको बलवीर्य-विनाशक अभिन्यास-सत्रिपात<sup>२</sup> नामक ज्वर कहना चाहिये।

इस सत्रिपातिक ज्वरमें वायु-विकारके कारण कण्ठमें अवरोध उत्पन्न होनेसे पित्त आध्यन्तर-भागमें पीड़ा पहुँचाने लगता है और (विशेष मार्ग) नाक आदिसे सुखपूर्वक बिना प्रयासके ही बाहर निकलने लगता है। उसी पित्त-प्रभावके कारण नेत्र हल्दीके समान पीले पड़ जाते हैं। वात-पित्त तथा कफजन्य दोषके बढ़ जानेपर जब शरीरमें विद्यमान अग्नि-तत्त्व विनष्ट हो जाता है तो उस समय वह अपने

१-निरामज्वरका लक्षण (च०चि०अ० ३)

२-द्वन्द्वज ज्वरका रूप अ०इ०अ० २।२३—२६

३-त्रिदोषज्वरका रूप अ०इ०अ० २।२७—३३

४-वेगसेन अभिन्यास ज्वर-प्रकरण देखें।

सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त रहता है। यह सन्निपात-ज्वर असाध्य है। इसपर बड़ी ही कठिनातासे अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

इस सन्निपातका एक अन्य भी रूप है, जिसमें पित्त पृथक्-भावसे स्थित रहता है। ऐसे ज्वरमें त्वचा और कोष्ठके अंदर दाह होता है अथवा यह स्थिति इस ज्वरोत्पत्तिके पहले भी शरीरमें हो सकती है। उसी प्रकार जब वात और पित्तकी प्रवृत्ति शरीरमें बढ़ने लगती है, उस समय भी यह सन्निपात-ज्वर होता है। उस कालमें शीत और दाहका प्रकोप शरीरपर होता है। उनसे मुक्ति प्राप्त करना प्राणीके लिये अत्यन्त कठिन है। शीतका प्रभाव शरीरपर पहले होनेसे पित्तके कारण मुखसे कफ निकलता है और सूख भी जाता है। पित्तके शान्त होनेपर मूर्च्छा, मद और तृष्णा होती है। अन्तमें क्रमशः रोगीकी तन्द्रा और आलस्य आ जाता है तथा अप्स वमन होता है।

#### आगन्तु-ज्वरका लक्षण

अभिषात, अभिषंग, शाप तथा अभिचार-कर्मसे आनेवाले चार प्रकारके ज्वरको आगन्तु-ज्वर माना गया है। दाह आदिके कारण शरीरमें जब पसीना छूटता है तो उसको अभिघातज्वर कहा जाता है। अधिक परिश्रम करनेसे शरीरमें वायु प्रायः रक्तको प्रदूषित करता हुआ पीड़ा, शोक तथा शरीरके सामान्य वर्णोंको परिवर्तित करनेवाले पीड़ायुक्त ज्वरको उत्पन्न कर देता है।

ग्रह-प्रभाव, औषधि-प्रयोग, विष-पान तथा क्रोध, भय, शोक एवं कामजन्य भी सन्निपात-ज्वर होता है। ग्रहावेशसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसमें रोगी अकस्मात् हँसने और रोने लगता है। औषधि और गन्ध-विशेषके प्रयोगसे आये हुए सन्निपात-ज्वरमें मूर्च्छा, सिरपीड़ा, वमन, कम्प तथा क्षय (शरीर-तैथिल्य)-का प्रभाव रोगीपर रहता है। विष-पानसे मूर्च्छा, अतिसार, पीसापन, दाह और मस्तिष्क-प्रान्तिके लक्षण रोगीमें स्पष्ट होने लगते हैं। क्रोधजन्य सन्निपातमें शरीर काँपने लगता है, मस्तिष्कमें पीड़ा होती है। भय तथा शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है। कामजन्य ज्वरमें भ्रम, अरुचि, दाह, लज्जा, निद्रा, बुद्धि तथा धैर्यका ह्रास हो जाता है।

सन्निपातिक ग्रहावेशादिके कारण उत्पन्न हुए ज्वर और आगन्तुकल्प आदि रूपजन्य ज्वरमें वायुका प्रकोप ही प्रभावी रहता है। कोपजन्य ज्वरके कारण रोगीमें पित्त प्रकुपित हो उठता है। शाप तथा अभिचारकर्मके कारण जो ये दो सन्निपात-ज्वर प्राणीमें आते हैं, ये दोनों अत्यन्त भयंकर होते हैं। इन दोनों ज्वरोंको सहन करना रोगीके लिये अतिशय कठिन है। अभिचारजन्य ज्वर तान्त्रिकोंके द्वारा प्रयुक्त मन्त्रोंसे शरीरमें अज्ञात है। इसमें मन्त्र-प्रभावके कारण उत्पन्न किये गये असंख्य कहोंसे प्राणी संतप्त होता रहता है। इसी अभिचार-मन्त्रके द्वारा इसकी पूर्ववस्थाकी जानकारी करनी चाहिये, तत्पश्चात् शरीरपर विचार करना अपेक्षित है। उसके बाद रोगीमें उठे हुए संतापसे विस्फोट तथा दिग्भ्रमित दाह, मूर्च्छा, चेतना आदिसे ज्वरका परीक्षण करना उचित होता है। अन्यथा उस रोगीमें सर्वप्रथम प्रदाह और मूर्च्छाका प्रकोप होता है। उसके बाद ज्वर प्रतिदिन बढ़ता रहता है।

इस प्रकार संक्षेपमें आठ प्रकारका ज्वर देखा गया, किन्तु यह विभिन्न प्रकारका होता है—यथा—शारीरिक, मानसिक, सौम्य, तीक्ष्ण, अन्तर्बाह्य, प्राकृत, वैकृत, साध्य, असाध्य, सामज्वर और निरामज्वर इसके विविध रूप हैं।

ज्वर होनेपर प्रथम शरीरमें शारीरिक, मनमें मानसिक ज्वर आनेपर पहले मनमें अनन्तर शरीरमें ताप होता है। प्राकृतिक वायुके बाह्य-प्रभावसे नाक-कान तथा मुँह आदिके द्वारा जो वायु ग्रहण की जाती है, उसके कारण कफ मिश्रित होता है, तब शरीरमें शीत बढ़ जाता है। पित्त-मिश्रित शरीर होनेपर शरीरमें दाह होता है। कफ तथा पित्त दोनोंकी मिश्रित-अवस्थामें शीत और दाहका मिश्रित प्रभाव पड़ता है। इसलिये वात-कफ-ज्वर सौम्य तथा वात-पित्त-ज्वर तीक्ष्ण होता है। अन्तराश्रयज्वरमें अन्तर्विकार अधिक होते हैं तथा तीव्र दाह और मल-मूत्रादिका विबन्ध होता है, बहिराश्रयज्वरमें केवल बाहरी ताप होता है। इसमें तीव्र दाह और मल आदिकी विबन्धता नहीं होती, इसलिये बहिराश्रय-ज्वर सुख-साध्य और अन्तराश्रयज्वर दुःसाध्य होता है।

वर्षा, शरद् तथा वसन्त-ऋतुओंमें वात-पित्त और कफके प्रभावसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसे प्राकृत-ज्वर





कहा जाता है (यथा वर्षाकालमें वातिक, शरत्कालमें पित्तिक एवं वसन्तकालमें श्लैष्मिक ज्वरका प्राकृतिक प्रभाव रहता है।), वह साध्य है। इस वैकृत ज्वरका जो विपरीत रूप है, वह दुःसाध्य माना गया है। प्राकृतिक ज्वर प्रायः वायुदोषके कारण होता है, यह भी दुःसाध्य है। वायु वर्षाकालमें दोषयुक्त हो जाती है, उसके प्रभावके कारण पित्त एवं कफसे समन्वित ज्वर प्राणियोंमें होता है। शरत्कालमें पित्त-दोषजन्य ज्वरकी उत्पत्ति होती है। इस कालमें पित्त-दोषका अनुगमन कफ करता रहता है, इसलिये इस कालके ज्वरमें पित्त एवं कफ दोनों मिलकर रोगीको कष्ट देते हैं। इस प्राकृतिक ज्वरसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये भोजन न करनेसे रोगीको किसी अन्य रोगका भय नहीं रहता है। वसन्तकालमें कफ कुपित होकर ज्वर उत्पन्न करता है। उसके पीछे ही वात एवं पित्तके दोष भी लगे रहते हैं। इस ज्वरमें उपवाससे हानि हो सकती है।

यदि रोगी बलवान् हो और ज्वर अल्प दोषसे उत्पन्न हुआ हो तथा कासादि दोष उपद्रवोंसे रहित हो तो सुख-साध्य होता है। जैसे रोगीको जैसा ज्वर अस्वास्थ्य होता है वह पहले बताया गया है। इसका उपद्रव हो जानेपर रोगीमें चिह्निचिदापन, मन्दाग्नि, बहुपूत्रता, अरुचि, अजीर्ण तथा भूख न लगनेके लक्षण उभर आते हैं, गद्दी सामज्वर है।

तेज ज्वर होनेपर अधिक प्यास-प्रलाप, श्वास तथा चक्कर आता है। नाक-कान, मुँह तथा गुदाभागसे मल निकलनेकी गति तेज होती है। उत्कलेश होता है, जिससे रोगीको कष्ट होता है। यह पच्यमान-ज्वरका लक्षण है। सामज्वरसे विपरीत लक्षण होनेपर सात दिनका लांघन करना चाहिये, क्योंकि अष्टवर्षे दिन ज्वर निराम हो जाता है।

मल<sup>१</sup>, काल तथा बलाबलके कारण ज्वर पाँच प्रकारका कहा गया है। यथा—निरन्तर विद्यमान रहनेवाला, सततवाही ज्वर, दूसरे दिनतक रहनेवाला ज्वर, तीसरे और चौथे—चार दिनतक रहनेवाला। विशेषतः ये ज्वर सन्निपातसे ही होते हैं। इस ज्वरमें धातु-मूत्र और विद्यमान शरीरसे बाहर

निकलनेवाले मार्ग मलव्यापी हो जाते हैं। इस समय ये सभी दूषित होकर एक समान ही सम्पूर्ण शरीरको संतप्त करते हैं तथा दूष्य पदार्थों, देश, ऋतु और प्रकृतिद्वारा बढ़कर और बलवान् भारी तथा स्तब्ध होकर रसादिके आश्रित हो जाते हैं तथा प्रतिद्वन्द्वितासे रहित होकर वातादि दोष दुःसह संतत-ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अनल-धर्म—ज्वरकी गर्मी, कभी मल और कभी धातुओंका शीघ्र ही क्षय कर देते हैं।

मल<sup>२</sup> और धातुओंके क्षयके कारणसे रसादि सप्त धातु, मल, मूत्र और तीनों दोष—इन बारह पदार्थोंको ज्वरकी ऊष्मा सर्वाकार निःशेष करके कफकी अधिकतासे उत्पन्न हुआ यह संतत-ज्वर सात, दस या बारह दिनमें या तो रोगीको छोड़ देता है या मार डालता है, यह अग्निवेरुका मत है। इस विषयमें हारीतका यह मत है कि रोगीकी नीरोगता तथा मृत्युके लिये चौदह, अठारह तथा बाईस दिनतक त्रिदोषकी मर्यादा होती है।

धातुजन्य<sup>३</sup> शुद्धता अथवा अशुद्धताके कारण यह संतत-ज्वर प्राणोंके शरीरमें अधिक समयतक भी अवस्थित रह सकता है। दुर्बल तथा व्याधिमुक्त रोगीके मिथ्याहारादि (अपच्य)–सेवनसे शरीरमें प्रविष्ट अल्प दोष भी अन्य दूसरे दोषोंसे शक्ति ग्रहणकर महाबलवान् हो जाते हैं। जिस उपचार या पथ्यके कारण ज्वर बढ़ता और घटता है, उसे प्रत्यन्तीक कहते हैं। यह ज्वर विक्षेप, क्षय तथा वृद्धिसे युक्त रहता है। उपर्युक्त मिथ्याहाराका सेवन करनेवाले मनुष्यके देहमें वातादि दोषोंमेंसे कोई-सा बलवान् दोष अपने प्रकीर्णकालमें संतत आदि ज्वर उत्पन्न करता है। परंतु यह तभी सम्भव है, जब उसे अपने पक्षके किसी रसादि दूष्य पदार्थसे सहायता मिले, सहायता न मिलनेपर वह बलहीन होकर क्षीण हो जाता है।

क्षीण हो रहे दोषसे युक्त ज्वर सूक्ष्म होता है, जो शरीरके अंदर विद्यमान रसादिक<sup>४</sup> सप्त धातुओंमें ही लीन रहता है। रस आदिमें सूक्ष्मभावसे विद्यमान रहनेके कारण

१-अ०ह०नि०अ० २-५, ६-५९, मु०अ०अ० ३९। २-अ०ह०नि०अ० २, चा०चि०अ० ३, ५३-५३। ३-अ०ह०नि०अ० २-६३-६६। चा०चि०अ० ३, मु०अ०अ० ३९। ४-रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्मि, मज्जा तथा शुक्र—ये सप्त धातु शरीरको धारण करते हैं।

वह ज्वर शरीरमें कुशला, विषण्णता और चड़तादिको उत्पन्न कर देता है। रसवाही स्रोतोंके मुख खुले होनेके कारण ज्वरको उत्पन्न करनेवाले दोष उन स्रोतोंमें प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाते हैं। इस कारण संतत-ज्वर निरन्तर रहता है और उक्त हेतुके विपरीत होनेपर सम्पूर्ण स्रोत दूरवर्ती सूक्ष्म मुखवाले होते हैं। इसलिये ज्वरको उत्पन्न करनेवाले दोष विलम्बमें प्रविष्ट होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण देहमें फैलने नहीं पाते, इसलिये विविध कालमें सततादि ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अतः सततादि ज्वर संतत-ज्वरसे विपरीत होता है।

विषम<sup>१</sup> संज्ञक ज्वरका प्रारम्भ, क्रिया और काल विषम होता है तथा यह ज्वर दीर्घ कालानुबन्धी होता है, प्रायः रक्ताश्रित दोष सतत-ज्वरको उत्पन्न करता है। यह ज्वर अहोरात्रमें दो बार होता है अर्थात् दिनमें एक बार, रातमें एक बार अथवा कभी दिनमें दो बार, रातमें दो बार। जब दोष मांसवाही नाड़ियों आश्रित होकर अन्येषु नामक विषम ज्वरको उत्पन्न करता है, तब यह दिन-रातमें एक बार होता है। उसी ज्वरके प्रभावमें जब मांसवाही एवं मेढावाही नाड़ियाँ भी प्रकुपित दोषके संसर्गमें आ जाती हैं, वह लक्षण तृतीयक (तिजरिया) ज्वरके अन्तर्गत मान लिया जाता है।

तृतीयक ज्वर तीन प्रकारका होता है—वात-पित्तधिम्य, कफ-पित्तधिम्य और वात-कफधिम्य। प्रथम दिन पित्त और वायुके प्रकुपित होनेसे ज्वर मस्तकका प्राही हो जाता है। दूसरे दिन कफ तथा पित्तके प्रकोपसे वह रीढ़की हड्डीमें प्रविष्ट हो जाता है और तीसरे दिन वायु एवं कफसे दुषित होनेसे वह ज्वर सम्पूर्ण पीठपर अधिकार कर लेता है। अर्थात् पित्त और वायुके प्रकुपित होनेसे ज्वर-प्रभावके कारण पहले दिन रोगीका मस्तक जलने लगता है और उसमें पीड़ा होती है। दूसरे दिन कफ तथा पित्तके प्रकुपित होनेसे रीढ़की हड्डीमें दर्द होता है, तीसरे दिन वायु एवं कफके दोषजन्य प्रभावके बहनेसे रोगीको ताप तो होता ही है, किंतु उसकी समस्त पीठमें पीड़ा होती है। यह ज्वर एक-एक दिनका अन्तराल छोड़कर शरीरके तीनों भागोंको प्रभावित करता है, इसीलिये इसको 'एकाहान्तर' नामसे

स्वीकार किया गया है।

वात-पित्त और कफजन्य दोषके कारण शरीरके अंदर अधिक बननेवाले मलके द्वारा ज्वर जब मेढा-मज्जा-हड्डी तथा अन्य स्थितियोंमें पहुँच जाता है, तब उसको चतुर्थक ज्वर कहा जाता है। लौकिक भाषामें इसीको लोंग 'चौधिया बुखार' कहते हैं। जब यही ज्वर मज्जाभागमें प्रविष्ट होता है तो यह दूसरे प्रकारका हो जाता है और इसका प्रभाव भी शरीरपर दूसरी रीतिसे पड़ता है।

वाय्वाधिक्यसे सिरमें वेदना होती है। कफाधिक्यसे जंघामें प्रारम्भ होती है। उक्त सिर एवं जंघामें वेदना होकर ही ज्वर चढ़ता है।

तदनन्तर वह अस्थि एवं मज्जामें जाकर अवस्थित होता है। इसी कारण इसको चतुर्थक ज्वरका विपर्यय<sup>२</sup> (दूसरा) रूप माना जाता है। यह ज्वर अपने संतापकालमें एक दिनका अन्तराल करके रोगीपर तीन दिनतक तीन प्रकारसे आक्रमण करता है। यह अस्थि और मज्जा—इन दो धातुओंमें आश्रित होनेके कारण लगातार तीन दिनतक रहकर बीचमें एक दिन छोड़कर आता है और फिर तीन दिन लगातार रहता है। बलाबलके प्रभावसे वात-पित्त तथा कफजन्य दोष अथवा अन्य विकृत चेष्टाओंको जन्म देनेवाले विकारोंको परिपक्व-स्थितिके आ जानेपर रोगीको सात दिनका लंपन करना चाहिये।

इसी तरह जिस-जिस समय रजोगुण एवं तमोगुणके कारण मानस दोष और मानस कार्यका बलाबल होता है, उसी-उसी समयमें यह सततादि ज्वर उत्पन्न होकर चढ़ता-उतरता रहता है।

उस प्रत्येक कालमें रोगीके कर्मका प्रभाव दिखायी देता है। सज्जिपातके द्वारा सम्भूत कारणसे गम्भीर धातुओंमें सम्पाहित दोषोंकी प्रचलता होनेपर यह चतुर्थक ज्वर अत्यन्त कठिन चिकित्साकी अपेक्षा करने लगता है अर्थात् ज्वरका समन, चिकित्सकके लिये दुस्साध्य हो जाता है। दूरतम देश-काल और अवस्थाके अनुसार सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे ज्वरका शरीरमें जो संक्रमण होता है, रक्तादिक मागोंमें जो दोष बहुत समय पहलेसे धीरे-धीरे अल्पमात्रमें प्रभावी होता है, वह सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त नहीं होता (अतएव वह



एक दिन शरीरपर अपना पूर्ण अधिकार कर लेता है) और उसी दोषके कारण वह ज्वर प्राणीमें संतापदिके कष्टोंको उत्पन्न करता है। अतः प्राणीको प्रयत्नपूर्वक मधोपचारसे उस ज्वरका विनाश कर देना चाहिये, अन्यथा वह असाध्य हो जाता है। ज्वरका सामान्य लक्षण तो यही है कि वह शरीरमें तापसे युक्त होकर अनुभूत होता है।

विषमगतिसे प्रारम्भ होनेवाला ज्वर विषम कहा जाता है। यह विषम ज्वर मध्यरात्रिकालतक अपने पूर्ण वेगमें रहता है। उसके बाद उसकी गति और शक्ति दोनों मन्द हो जाती है। उसी कालके अनुसार वह शरीरके रसादिपर अपने दोषका प्रभाव डालता है और धीरे-धीरे निष्प्रभावी होता है। ऐसा प्रकुपित दोष प्राणीको अधिकतम समयतक अस्वस्थ रखता है। जैसे भूमिमें जलसे सिंचित बीज अंकुरणके लिये समयकी प्रतीक्षा नहीं करता, वैसे ही (वात-पित्त तथा कफजन्य) दोषका बीजरूप स्वयंको शरीरमें प्रकट करनेके लिये समयकी प्रतीक्षा नहीं करता। जिस प्रकार विष वेगपूर्वक शरीरके आमाशयमें जाकर बलवान् होकर कुट्ट हो उठता है, उसी प्रकार शरीरमें स्थित दोष भी यथासमय शक्ति-सम्पन्न होकर स्वास्थ्यपर क्रोध करता है। इसी प्रकार सततादि ज्वर भी शरीरमें विषम भावको प्राप्त कर लेते हैं।

अधिक<sup>१</sup> कष्टका होना, शरीरका भारी लगना, दीनता, अङ्ग-भङ्ग (शरीरका टूटना), जैर्भाई, अरुचि, वमन और श्वासका फूलना आदि ये दोष सभी रसगत ज्वर होते हैं। जब ज्वर रक्तगत<sup>२</sup> संक्रित हो जाता है तो उस अवस्थामें रोगीको रक्तका वमन, प्यास, रुक्षता, ऊष्णता, शरीरपर छोटी-छोटी पीड़िकाओं (दानों)-का निकलना, दाह, लालिमा, भ्रम, मद तथा प्रलापका उपद्रव होता है। मांस और मेदामें ज्वरके संक्रित होनेपर तृष्णा, ग्लानि, कान्तिमन्दता, अन्तर्दाह, भ्रम, अन्धकारदर्शन, दुर्गन्ध, गात्रविक्षेपका दोष उत्पन्न हो जाता है। ज्वरके अस्थिगत होनेपर पसीना, अधिक प्यास, वमन, दुर्गन्धिकी प्रतीति, चिड़चिड़ापन, प्रलाप, ग्लानि तथा अरुचि एवं हड्डियोंमें तोड़ने-जैसी पीड़ा होती है। ज्वरके मज्जागत हो जानेपर उक्त दोष तो होते

ही हैं, उसके अतिरिक्त श्वास, अङ्गविक्षेप, अस्पष्ट-ध्वनि, बाह्य शीतलता और हिचकीके दोषकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। शुक्रमें दोषके संक्रित होनेपर रोगीको दिनमें भी अन्धकार दिखायी देता है, शरीरके मर्मोंमें छेदने-जैसी पीड़ा होती है। जननेन्द्रियके स्तब्ध होनेपर निरन्तर उससे वीर्य बहता रहता है। प्रायः ऐसी अवस्थामें शुक्रगत हो जानेपर रोगीकी मृत्यु होती है। वस्तुतः रस, रक्त, मांस, मेद तथा मज्जागत—ये पाँचों ज्वर उदरोत्तर दुस्साध्य होते हैं।

मन्द ज्वर होनेपर सम्पूर्ण शरीर कफद्वारा भारीपनके दोषसे संलिप्त रहता है। रोगी प्रलाप करता है, उसको शीतलताकी अनुभूति होती है तथा उसके सभी अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। जब शरीरमें नित्य ही मन्द ज्वर होता है तो शरीरमें सूखापन रहता है, रोगी शीतलताका अनुभव करता है और शरीरमें दुर्बलता आ जाती है तथा श्लेष्माकी अधिकता हो जाती है।

जिस ज्वरमें शरीर हल्दीके वर्णका हो जाता है और पेटाभ भी पीला हो जाता है, उसको हरिद्रक ज्वर कहा जाता है, यह यमके समान मारनेवाला होता है।

जिसके शरीरमें कफ और वात प्रधान रूपमें रहते हैं तथा पित्तकी कमी होती है, उसमें यह ज्वर दिनमें मन्द वेगसे एवं रात्रिमें तेज हो जाता है तथा इसे रात्रिज्वर कहते हैं।

व्यायामके कारण दिवाकरके शक्ति संचय न करनेसे जब रोगीका शरीर शुष्क हो जाता है तो वातकी अधिकताके कारण रोगीके शरीरमें सदा रातमें ज्वर रहता है, उसे पीर्वरात्रिक ज्वर कहा जाता है।

इस ज्वरमें श्लेष्मा पित्तके नीचे आमाशयमें स्थित रहनेपर आत्मस्थ होकर रोगीका आधा शरीर शीतल और आधा ऊष्ण रहता है। ज्वरके समय रोगीके शरीरमें जब पित्त परिष्कृत रहता है तथा श्लेष्मा अन्तर्गते स्थित रहता है। इसलिये उसका शरीर ऊष्ण और हाथ-पैर ठंडे रहते हैं। रस और रक्तमें आश्रित तथा मांस एवं मेदामें स्थित ज्वर साध्य है। हड्डी और मज्जामें स्थित ज्वर कष्ट-साध्य है। ज्वर जिस-जिस अङ्गमें रहता है, उसे कान्तिहीन कर देता है। इस ज्वरमें रोगी संज्ञाहीन, ज्वरके वेगसे अर्त और

क्रोधयुक्त रहता है। रोगी सदा दोष-समन्वित उष्ण मलका वेगपूर्वक परित्याग करता है।

ज्वरके शान्त होनेपर शरीर लघु (हल्का) हो जाता है, थकान, मोह और संताप दूर हो जाता है, मुखमें छाले पड़

जाते हैं, इन्द्रियोंमें निर्मलता आ जाती है, पौड़ा नहीं रहती, शरीरमें उचित पसोना छूटता है, भूख लगती है, मन स्वस्थ तथा प्रसन्न हो जाता है, अन्न-ग्रहणकी इच्छा होने लगती है तथा सिरमें खुजलाहट होती है। (अध्याय १४७)

### रक्त-पित्त-निदान

धन्यन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब इसके बाद मैं रक्त-पित्तके निदानका विधिवत् वर्णन करता हूँ।

अत्यन्त उष्ण, तिक्त, कटु, अम्ल, नमक आदि जो पेटमें विशेष प्रकारका दाह उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं और कौटो, उदालक आदि गरिष्ठ अन्नसे बने भोजन हैं तथा अन्य पित्तवर्धक शाक-पात हैं, उन सभीका अधिक सेवन करनेसे शरीरमें पूर्वसे स्थित पित्तात्मक द्रव कुपित हो उठता है और परस्परमें मिलकर वह रक्तपर दूषित प्रभाव डालता है। जिससे शरीरका रक्त दूषित हो जाता है, उन्हीं भोज्य एवं पेय पदार्थोंके प्रभावसे पित्त और रक्त एक-सा रूप धारण करके सम्पूर्ण शरीरपर अधिकार कर लेते हैं। संसर्ग-दोषके कारण विकृत हुए रक्त-पित्त-गन्ध-वर्ण तथा दोष-प्रवृत्तिमें एक अनुरूपता होनेपर भी उसको रक्त नामसे ही जाना जाता है। वह दूषित रक्त प्लीहा तथा यकृत भागवाले कोष्ठसे उत्पन्न होता है। इस कारण उसका नाम रक्त-पित्त है।

रक्त-पित्तका दोष निम्नलिखित उपद्रवोंसे जाना जा सकता है। मस्तिष्कमें भारीपन, अरुचि, शीतल पदार्थके सेवनकी इच्छा, कण्ठसे धूम निकलनेका आभास तथा अम्लतायुक्त उकारोंका आना, वमन, वमनमें दुर्गन्ध, खैसी, श्वास, भ्रम, थकान, लोहा, रक्त तथा मछलीकी-सी गन्ध, स्वरमें क्षीणता, नयनादि अङ्गोंमें लाली, हृत्पदीकी तरह पीलापन अथवा हरापन होना, नीले, लाल और पीले रंगमें भेदका न मालूम होना और स्वप्नमें भी लाल रंग दिखायी देना—ये लक्षण रक्त-पित्तरोग होनेवालेमें पाये जाते हैं।

रक्त-पित्त तीन प्रकारका होता है—ऊर्ध्वगामी, अधोगामी और उभयगामी। इनमेंसे ऊर्ध्वगामी रक्त-पित्त दोनों नाकके छिद्रों तथा आँखों, कानों और मुख—इन सात द्वारोंसे निकलता है, अधोगामी कुपित रक्त मूत्रेन्द्रिय, योनि और गुदासे निकलता है और उभयगामी रक्त-पित्त समस्त

रामकूपों एवं पूर्वोक्त दसों द्वारोंसे निकलता है। ऊर्ध्वगामी साध्य रक्त-पित्त-कफकी अधिकतासे निकलता है। इसलिये इसका साधन विरेचन है। पित्तशान्तिकी बहुत-सी औषधियाँ हैं, उनमें सबसे प्रधान विरेचन है तथा रक्त-पित्तका अनुबन्धी कफ होता है और कफकी औषधि भी विरेचन ही है। फान्य आदि कषाय, मधुर रसयुक्त होनेपर भी रोग-नाशक होनेके कारण वातादिके दोषसे रहित कफवाले रोगीके लिये हितकारी होते हैं। ऐसी स्थितिमें कटु, तिक्त और कषाय द्रव्य जो स्वभावसे ही कफका नाश करनेवाले हैं, वे अत्यन्त लाभप्रद होते हैं। अधोगामी रक्त-पित्त-वातसे उत्पन्न होनेके कारण याव्य (साध्य) होता है। इसकी चिकित्सा वमन है। पित्तकी चिकित्सा अल्प होनेके कारण वमनसे कुछ औषधि नहीं है। रक्त-पित्तका अनुबन्धी वात है। इसीलिये वमन वातका शमन नहीं करता। इसलिये रक्त-पित्त दोषमें मधुर कषाय ही हितकारी होता है।

शरीरमें कफ तथा वायुके संसृष्ट होनेपर रक्त-पित्तजनित उभयगामी रक्त-पित्त असाध्य हो जाता है। प्रतिलोम होने और औषधिले असाध्य होनेके कारण यह रोग असह्य होता है। प्रतिलोम होनेके कारण इस दोषका कोई प्रतिकार नहीं है। रक्त-पित्त रोगमें शोध प्रतिलोम (रोगका उल्टा) उपाय ही बतलाया गया है। रोगका इसी तरहसे संशोधन और उपशमन सम्भव है।

वात-पित्त तथा कफ आदि दोषोंके एक-दूसरे दोषमें संसृष्ट हो जानेपर सब प्रकारसे शमन औषधि ही हितकारी होती है। इस रोगसे रक्षा करनेमें शिरवेध परीक्षणविधि ही दिखायी देता है। वस्तुतः ऐसे दोषोंमें होनेवाले उपद्रव विकारको लक्ष्य करके ही शरीरपर प्रभावी होते हैं। अतः रोगीके शरीरमें दृष्टिगत उपद्रवोंसे अन्य विकार न उत्पन्न हों, उसके पूर्व ही उनका शमन तथा परीक्षण करा लेना चाहिये। (अध्याय १४८)



## कास ( खाँसी )-निदान

**धन्वन्तरिजीने कहा—**कास (खाँसी)-रोग यद्यत्तीघ प्राणीपर अपना कुप्रभाव दिखाता है, इसलिये उसी रोगको अब कहा जायगा।

खाँसी वातज, पित्तज, कफज, क्षतज तथा धातु-क्षयज होनेसे पाँच प्रकारकी मानी गयी है। यदि इन पाँचोंके विनाशको उपेक्षा कर दी जाती है तो ये क्षयको उत्पन्न कर देती हैं, यह उत्तरोत्तर बलवान् हो जाती हैं। इसका भावी रूप इस प्रकार होता है—

कासरोग होनेपर कण्ठमें खुजलाहट और अरुचि होता है। कान, मुख तथा कण्ठमें शुष्कता आ जाती है। शरीरमें वायु प्रायः अधोगामी होता है। इस रोगमें ऊर्ध्वगामी होकर वक्षःस्थलमें जा पहुँचता है, वहाँ अभिघात करते हुए वायु कण्ठमें रोगकी सृष्टि करता हुआ मस्तिष्क तथा रक्तवाही आदि शरीरके तेरहों खोतोंमें जाता है। तदनन्तर सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें प्रविष्ट होकर आक्षेप एवं उनको कष्ट पहुँचाता है।

इसका प्रकोप होते ही नेत्रोंमें उत्क्षेप करता हुआ और पीठ तथा हृदय एवं पाश्वीमें पीड़ा उत्पन्न करता हुआ मुखसे निकलता है। बोलनेमें<sup>१</sup> भी रोगीको कष्ट होता है, घूटे हुए काँसेकी ध्वनिके समान मुखसे वाणी निकलती है, हृदयके पार्श्वभाग तथा शिरोभागमें पीड़ा उठती है, मोह और क्षीभ होता है एवं स्वरभंग हो जाता है।

यह रोगीको अत्यन्त तेज पीड़ाके साथ सूखी खाँसी खाँसनेके लिये विवश कर देता है। रोगीको रोमाञ्च हो जाता है। खाँसनेपर चढ़ी ही कठिनातासे अंदरसे सूखा हुआ कफ बाहर निकलता है, जिससे खाँसी कुछ कम हो जाती है।

पित्तजन्य<sup>२</sup> कास होनेसे नेत्र पीले पड़ जाते हैं, मुखमें तीतापन रहता है, ज्वर और भ्रम होता है, रोगी पित्त तथा रक्तसंश्रित वमन करता है, उसे प्यास लगती है, कण्ठसे निकलनेवाली ध्वनि टूटी रहती है, उसको सब ओर धुआँ-ही-धुआँ दिखायी देता है और धूमापित एवं खड़ी ढकार आती है तथा उसमें एक प्रकारका मद छाया रहता है। जब रोगीको खाँसीका वेग आता है तो उसी खाँसीके बीच आँखोंके सामने चमकता हुआ छोटा-छोटा प्रकाशपुञ्ज दिखायी देता है।

कफजन्य कासरोग होनेपर वक्षःस्थलमें सामान्य वेदना होती है, सिरमें भारीपन तथा हृदयमें जकड़न आ जाती है। कण्ठमें किसी द्रव्य पदार्थके लेपका अनुभव होता है। एक प्रकारका मद-जैसा शरीरपर छाया रहता है तथा पीनस, वमन, अरुचि, रोमाञ्च और घने स्निग्ध कफकी प्रवृत्ति होती है।

सुद्धादि अत्यन्त साहसिक विभिन्न कर्मोंको करनेवाले लोगोंने<sup>३</sup> जय शक्तिसे अधिक कर्म किया जाता है तो उससे वक्षःस्थलमें क्षत हो जाता है। पित्तसे अनुगमित होकर वायु बलवान् हो जाता है। तदनन्तर उसके कारण रोगीको खाँसी आने लगती है, जिसके द्वारा मुखसे रक्तसंश्रित कफ अधिक निकलता है। प्रायः यह कफ पीला, पिंगल, शुष्क, प्रथित (लोभद्वेकी भीति) और अत्यन्त दूषित होता है।

इस रोगमें रोगी तण-कण्ठसे कफरूपी मलको बाहर निकालता है, वायुदोषके कारण हृदय फटा-सा प्रतीत होता है और शरीरमें सुइयोंके चुभने-जैसे कष्टकी अनुभूति होती है तथा कष्टकारी शूलके आघातसे मर्मस्थलमें पीड़ा होती है, रोगीके पर्व-पर्वमें दर्द होता है और ज्वर भी रहता है। उसकी सौंस फूलती है। प्यास बढ़ जाती है। उसकी वाणीमें स्वर-भंग होने लगता है तथा शरीरमें चम्यग रहता है।

रोगी<sup>४</sup> इस रोगमें कबूतरके सन्तान कहने लगता है। उसके पार्श्वभागमें शूल उठने लगता है। कफादि विकारोंके कारण उसको वमन होता है। उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है और शरीरका वर्ण कान्तिहीन हो जाता है।

शनयश्मारोग होनेसे रोगीका शरीर क्षीण होने लगता है। उसके पेशाबमें रक्त आता है। सौंस फूलनेसे पीठ और कमरमें पीड़ा होती है। जिनको शास्त्रमें आयु कहा गया है, वे आयुरूपी धातुएँ शरीरमें प्रकुपित होकर दीड़ने लगती हैं। मध्मासे पीड़ित रोगी घरको खाँसी और खंखारसे भर देता है। वह खंखार (पीब)-के समान दुर्गन्धयुक्त तथा हरे और स्याल रंगका होता है। ऐसे रोगीको सोनेमें विशेष कष्ट होता है अर्थात् सुप्तावस्थामें भी रोगीको कष्ट होता रहता है। यह रोग रोगीके हृदयकी गिरते हुएके समान कष्ट देता है। अचानक रोगीमें ठण्ण और शीतल भोजन एवं पेय-पदार्थ

ग्रहण करनेकी इच्छा होने लगती है। वह बहुत खाता है। उसका बल क्षीण होने लगता है। मुखपर स्निग्धता बनी रहती है। उसके नेत्र भी शोभा-सम्पन्न रहते हैं, किंतु रोगके बलवान् होनेके बाद सभी विनाशकारी राजयक्ष्माके लक्षण रोगीके शरीरमें जन्म लेते हैं।

क्षयजन्य<sup>१</sup> कासका रूप ऐसा ही है। इस रोगसे क्षीण हुए शरीरवाले रोगियोंकी मृत्यु निश्चित ही हो जाती है अथवा रोगियोंके बलवान् होनेपर यह रोग घाय्य—साध्य रहता है। क्षतजन्य कासरोग भी उसी प्रकारका होता है। कास जब रोगीपर अपना प्रथम कुप्रभाव दिखाना प्रारम्भ करे, उसी कालमें इसकी चिकित्सा अपेक्षित है।

### श्वासरोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—अब मैं श्वासरोगका निदान कह रहा हूँ।

कासरोगके परिपक्व हो जानेपर उसीसे शरीरमें श्वासरोगकी उत्पत्ति होती है अथवा प्रारम्भकालमें खात-पिष्ट तथा कफजन्य दोषोंके प्रकुपित होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगका प्रादुर्भाव अमातिसार, वमन, विषघन और पण्डुरोग एवं ज्वरसे भी हो जाता है। भूति-ग्रहण, भूप तथा शीत वायुके सेवन करनेसे भी इस रोगका जन्म हो सकता है। मर्मस्थलमें आघात पहुँचनेसे और बर्फीले जलका प्रयोग करनेसे भी शरीरमें इस रोगका प्रकोप हो जाता है।

यह रोग क्षुद्र, तमक, छिन्न, महान् तथा ऊर्ध्व नामसे पाँच प्रकारका माना गया है। कफके द्वारा सामान्य रोगसे शरीरमें अवरोधित गतिवाला सर्वव्यापी वायु प्राणवाही, जलवाही, अन्नवाही तथा रक्त-पितादिवन्त्य स्रोतोंको प्रकुपित करता हुआ जब हृदयमें स्थित हो जाता है, तब वह आमाशयमें श्वासरोगको उत्पन्न करता है।

इस रोगका पूर्वरूप इस प्रकार होता है—रोगीके हृदय और पार्श्व (बगल)-भागमें शूल उठता है, प्राणवायु शरीरमें प्रतिलोम-गतिसे प्रवाहित होने लगती है, रोगीके मुखसे पीड़ाके कारण बराबर आह-आहकी ध्वनि निकलती है, फूटे हुए शङ्खको बजानेसे जैसी ध्वनि

रोगीमें<sup>२</sup> उपचारका सामर्थ्य होनेपर यह रोग साध्य भी है। अतः रोगीको यथासामर्थ्य इस रोगका उपशमन अवश्य करना चाहिये, किंतु उपचार प्रारम्भ करनेके पूर्व उसके वात आदि सभी प्रकारोंपर विचार करके ही पृथक्-पृथक् रूपसे प्रयोज्य औषधि तथा पथ्यापथ्य आहार ग्रहण करना हितकर होता है। वृद्ध प्राणीके शरीरमें जो मिश्रित भावसे वातजादि कासरोग होते हैं, वह घाय्य है। उनकी उपेक्षा करनेसे ख़ाँसी, श्वास, क्षय, वमन तथा स्वरभंगादिक प्रतिश्यायका प्रकोप होता है। इसकी उपेक्षा करनेसे कासरोग असाध्य हो जाता है। इसलिये शीघ्र ही इसका उपचार कर लेना चाहिये। (अध्याय १४९)

प्रकट होता है, वैसी ही ध्वनि रोगीके शरीरकी पीड़ाके कारण होती है।

प्रायः शरीरमें इन लक्षणोंका उद्भव अधिक भोजन करनेसे होता है। अधिक भोजन करनेके दोषसे प्रेरित वायु स्वयं मलसे युक्त क्षुद्र श्वासको प्रेरित करता है अर्थात् अधिक भोजन करनेसे रोगीकी साँस फूलने लगती है और उसे मल-विसर्जन करनेकी इच्छा होती है। ऐसी स्थितिमें कफके अवरोधको पार करके वायु प्रतिलोम-भावसे शिरोभागमें प्रवेश करता है, जिससे वह हृदयमें पहुँचता है और वहाँ आमाशयमें जाकर श्वासरोगको बल देता है।

यह वायु<sup>३</sup>-प्रकोप उस समय सिर, गला और हृदयभागको अपने अधिकारमें लेकर पार्श्वभागोंमें पीड़ा उत्पन्न करता हुआ ख़ाँसी, पुरपुराहट, मूच्छा, अरुचि और पीनस तथा तृषका उपद्रव शरीरमें प्रकट करता है। प्राणोंको संतप्त करनेवाली साँस अत्यन्त वेगसे चलने लगती है। यद्यपि ख़ाँसीके द्वारा कण्ठमें आवे हुए दूषित कफको धुँकनेसे तात्कालिक कुछ शान्ति रोगीको प्राप्त हो जाती है और वह कुछ क्षणके लिये सुखका अनुभव कर सकता है।

श्वासके प्रकोपसे रोगीको प्राणघातक कष्ट होता है। श्वासके प्रकोपसे अत्यन्त कष्ट होनेपर रोगी सो जाता है। यदि बैठ जाता है, तब वह अपनेको कुछ स्वस्थ अनुभव

१-अ०ह०वि०अ० ३, ३६-३७, सु०उ० ५२। २-अ०ह०वि०अ० ३, च०वि०अ० १८, सु०उ० ५२। ३-अ०ह० वि०अ० ४, च०वि०अ० १७, सु०उ०अ० ५१, अमु०वि०वि०दर्श पृष्ठ ४१। ४-च०वि०अ० २१, अ०ह०अ०४-३

\*\*\*\*\*

करता है। इस प्रकुपित रोगके कारण रोगीको कष्टाधिक्यके कारण आँखें ऊपरकी ओर निकलती हुई प्रतीत होती हैं, मस्तकसे पसीना सूटने लगता है और रोगी अत्यन्त कातर हो उठता है। बार-बार श्वास आनेसे रोगीका मुँह सूख जाता है। वह काँपता है और उष्ण आहार या पेय पदार्थके सेवनकी अभिलाषा करता है। मेघ घिरनेपर, वर्षा होनेपर, शीत गिरनेपर एवं पूर्वी हवा चलनेपर तथा कफकारक आहार-विहार करनेपर श्वासका वेग बढ़ जाता है।

यदि बलवान् मनुष्यके शरीरमें तमक नामक श्वासरोग होता है तो वह याप्य—साध्य होता है। प्रथम दृष्ट्या तो चर और मूर्च्छासे युक्त होनेपर रोगीके इस तमक श्वासका उपशमन शीतल द्रव्य पदार्थोंसे ही करना चाहिये। ऐसे रोगके उपभेदमें रोगी खाँसी और श्वासके प्रकोपसे ग्रस्त शरीरसे निर्बल तथा मर्मस्थलकी पीड़ासे अत्यन्त दुःखी रहता है। उसे अधिक पसीना आता है, मूर्च्छा होती है, पीड़ासे वह कराहता रहता है, उसके भ्रूशयमें जलन एवं पेशाब (मूत्र) ठक-ठककर होता है। विध्वंसक प्रकोप होता है। रोगीकी दृष्टि अधोगति रहती है, अधिक कष्ट तथा तापके कारण आँखें अपने स्थानसे निकलती-सी प्रतीत होती हैं, उनमें चिकनापन तथा लालिमा छा जाती है, मुख सूख जाता है। कष्टके कारण रोगी प्रलाप करता है। शरीरका तेज नष्ट होकर धेतना भी नष्ट हो जाती है तथा वह मृत्युकी प्राप्ति हो जाता है।

महोश्वासका रोग-प्रभेद होनेपर रोगी अपने शारीरिक,

मानसिक तथा वाचिक महत्त्वसे रहित हो उठता है। वह दीन व्यक्तिके समान प्रतीत होता है, श्वासमें पीड़ाके कारण आवाज तथा गलेमें घड़घड़ाहट होती है। वह मतवाले सौँड़ेके समान रात-दिन धूलिधूसरित होकर हुँकारके साथ श्वास छोड़ता है तथा ज्ञान-विज्ञानसे रहित हो जाता है। उसके नेत्र और मुखपर भ्रान्तिकी अवस्था आ जाती है। नेत्रोंसे वह किसी वस्तुको सत्यरूपमें जान नहीं पाता। उसकी जिह्वामें छाये गये द्रव्य पदार्थोंके स्वादकी बतानेकी शक्ति नहीं रह जाती। उसके नेत्रोंमें झपकी चढ़ी रहती है। मुखके साथ रोगीका तेज भी निकलता है। उसकी वाणी मुखसे टूटी-फूटी निकलती है। रोगीका कण्ठ सूख जाता है। उसकी चारम्बार सँस फूलती है। उसके कान, गला और सिरमें अत्यन्त पीड़ा होती है। जिस रोगीकी लम्बी-लम्बी ऊर्ध्व गतिवाली सँस निकलती है, वह अपने श्वासको नीचेकी ओर से जानेमें समर्थ नहीं हो पाता।

इस महोश्वासके रोगमें रोगीके मुख और कान कफसे भरे रहते हैं। शरीरका प्रकुपित वायु उसे बहुत ही कष्ट देता है। अब मैं ऊर्ध्व श्वासके भेदकी समीक्षा कर रहा हूँ। इस रोगमें रोगी चारों ओर अपनी दृष्टिको फैकता हुआ भ्रान्ति प्राप्त करता है। मर्म छेदनेकी-सी वेदना होती है और वाणी रुक जाती है। इन तीनों प्रकारके श्वासोंके लक्षण जबतक प्रकट नहीं होते हैं, तभीतक साध्य होते हैं, परंतु लक्षण प्रकट हो जानेपर असाध्य हो जाते हैं और निश्चित ही मृत्युकारक बन जाते हैं। (अध्याय १५०)

## हिक्कारोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं हिक्का (हिचकी)—रोगके निदानको कहूँगा, आप उसे सुनें।

श्वासरोगके जो-जो निदान—पूर्वरूप, संख्या, प्रकृति और आश्रयस्थान कहे गये हैं, वे ही हिक्कारोगके भी होते हैं। यह हिक्का पाँच प्रकारकी होती है—भक्षोद्भवा (अन्नजा), क्षुद्रा, यमला, महती और गम्भीरा। रुख, तीक्ष्ण, खर तथा असात्म्य अन्न अथवा पेय पदार्थोंके सेवनसे प्रकुपित वायु हिक्कारोगको पैदा करती है। इस हिक्कारोगमें रोगी श्वास

लेता हुआ क्षुधानुश्रमो मन्द-मन्द शब्द करता है। अन्न तथा पेय पदार्थके अपुष्किलपूर्वक सेवन करनेसे जो हिक्का (हिचकी) रोगीको आती है, उसे 'अन्नजा हिक्का' कहते हैं। यह हिचकी सात्म्य अन्नपानसे शान्त हो जाती है। अधिक परिश्रम करनेसे शरीरमें प्रकुपित हुआ पवन 'क्षुद्रा हिक्का' की जन्म देता है। वह ग्रीवामूलसे निकलकर मन्द-मन्द गतिसे कण्ठके बाहर आता है। यह रोग अधिक परिश्रम करनेसे बढ़ जाता है, किंतु यथोचित मात्रामें भोजन

कर लेनेपर कुछ शान्त हो जाता है।

जो हिचकी<sup>१</sup> अधिक समयसे एक या दो बार वेगपूर्वक आती है, परिणामतः वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। अपने वेगसे जो रोगीके सिर और ग्रीवाभागको प्रकम्पित कर देती है, उसको 'यमला हिक्का' के नामसे स्वीकार करना चाहिये। इसमें रोगी प्रलाप करता है तथा उसको वमन होता है और उसे अतिसार हो जाता है, कमजोरीसे उसके नेत्र बंद जाते हैं और जम्माई आती है। ऐसी अवस्थावाली हिक्काको वेगवती परिणाम देनेवाली 'यमला हिक्का' कहते हैं।

जिस हिक्कारोगके वेगसे रोगीकी भीह और कानपट्टियोंमें कष्ट होने लगता है, कान तथा नेत्र बंद हो जाते हैं, कानोंसे सुनायी नहीं देता है और आँखोंसे दिखायी नहीं पड़ता है। रोगीके शरीर, बाणी और स्मरणकी शक्तको स्थिथिल करती हुई जो हिक्का अन्तमें उसे संज्ञाशून्य कर देती है, तथा अन्य इन्द्रियोंको दुःखित करती हुई वह उसके मर्मस्थलमें पीड़ा पहुँचाती है तथा रोगीको पीठभागसे झुका देती है एवं शरीरको शुष्क कर देती है, उस हिक्काको 'महती हिक्का' कहा जाता है। यह महामूला, महाराष्ट्रा, महावेग और महाबला होती है।

### राजयक्ष्मा-निदान

**धन्वन्तरिजीने कहा—**अब मैं हिक्कारोगके पश्चात् यक्ष्मारोगके निदानको भलीभाँति कह रहा हूँ।

राजयक्ष्मारोगसे पूर्व प्राणीके शरीरमें अनेक रोग रहते हैं और बादमें अनेक रोग हो जाते हैं। इस रोगको राजयक्ष्मा, क्षय, शोष तथा रोगराज भी कहा जाता है। प्राचीनकालमें नक्षत्र और द्विजोंके राजा चन्द्रमाको यह रोग हुआ था। एक तो यह रोगोंका राजा है और दूसरे इसका नाम यक्ष्मा है। इसलिये इसे 'राजयक्ष्मा' कहा गया है। यह देह और औषधि दोनोंका क्षय कर देता है तथा शरीर और औषधिका विनाश करनेवाले रोगके रूपमें यह उत्पन्न होता है, इसलिये इसका क्षय नाम दिया गया है। यह रसादि धातुओंका शोषण करनेके कारण शोष नामसे भी जाना जाता है। राजाके समान रोगोंका राजा है, जिसके कारण रोगराजके नामसे अभिहित किया गया है।

गम्भीरा नामकी हिक्का पक्काशय, मलाशय अथवा नाभिभागसे अपने पूर्वस्वभावके अनुसार शरीरमें प्रकट होती है तो उस रोगीको जम्माई लेनेके लिये विवश कर देती है। उसके हाथ-पैर आदि सभी अङ्ग फैलने लगते हैं। उस हिक्काके कुप्रभावसे रोगीका सम्पूर्ण शरीर स्थिथिल पड़ जाता है। इसमें गम्भीर शब्द होता है, इसलिये इसका नाम 'गम्भीरा हिक्का' है।

प्रारम्भमें<sup>२</sup> बतायी गयी भक्तोद्भवा (अग्रजा) तथा क्षुद्रा नामक जो दो हिक्काके प्रकार बताये गये हैं, वे साध्य होती हैं। उन दोनोंको छोड़कर शेष अन्य जो यमलादिक तीन हिक्काएँ हैं, वे असाध्य होती हैं। किन्तु चिरकाल (पुरानी) हिचकी, वृद्ध मनुष्यकी हिचकी, अतिस्त्री-सेवीकी हिचकी, व्याधिद्वारा क्षीण देहवालेकी हिचकी, अन्नके अभावसे कृश मनुष्यकी हिचकी—ये सब असाध्य होती हैं। सभी रोग शरीरमें प्राणियोंका विनाश करनेके लिये ही आते हैं। किन्तु वे वैसी शीघ्रता नहीं करते हैं, जैसी शीघ्रता इस हिक्काके यमलादिक भेद करते हैं। हिक्का और क्षय—ये दोनों रोग जैसे हैं, वैसे अन्य कोई रोग नहीं है। ये दोनों तो मृत्युकाल स्वरूप प्राणीके शरीरमें ही अपना डेरा डाल लेते हैं। (अध्याय १५१)

साहसके कार्य मल-मूत्रादिके वेगका बलात् अवरोध, शुक्राशु, शारीरिक स्निग्धताका विनाश तथा संयमित आहार-व्यवहारका परित्याग—ये चार इस यक्ष्मारोगकी उत्पत्तिके कारण हैं। शरीरमें उन्हीं कारणोंसे कुपित हुआ वायु पित्त एवं कफको व्यर्थमें ही कुपित कर देता है। तदनन्तर वह शरीरके संधिस्थानोंमें प्रवेश करके उनकी शिराओंको घोंड़ित करता हुआ रक्त, अन्न, रसवाही आदि सभी स्रोतोंके मुखोंको बंद करता है अथवा उसी प्रकार उन सभीको छोड़कर हृदयभागमें जा पहुँचता है और उसको मध्य, ऊपर, नीचे तथा तिरछे रूपमें व्यथित करता है।

इस रोगके उत्पन्न होनेसे पूर्व रोगीको प्रतिश्याय च्वर, स्त्रर प्रवाह, मुखमाधुर्य, अग्निमन्दता तथा शारीरिक स्थिथिलताका दोष होता है। अन्न और पेय पदार्थके प्रति अनिच्छा तथा पवित्रतामें अपवित्रताकी प्रतीति रोगीको होती है। प्रायः



उसको भोज्य एवं पेय पदार्थोंमें मक्खी, तृण और बाल गिरनेका भान होता है। रोगीका हृदय कफादिसे संश्लिष्ट हो जाता है, उसको वमन होता है। आहार-विहारके प्रति उसकी रुचि नहीं रह जाती है। भोजन करनेपर भी वह अपनेको शक्तिहीन समझता है। उसके हाथ-पैर, जंघा, वक्षःस्थल, मुख, नेत्र तथा कुक्षिभाग सूख जाते हैं। रक्तकी कमीके कारण उसका रंग धेत हो जाता है। उसकी भुजाओंमें विशेष प्रकारकी पीड़ा होती है। उसकी जिह्वामें भी ज्वरादिके कारण उत्पन्न हुए छालोंसे कष्ट रहता है। उसको शरीरके प्रति स्वयं घृणा होती है। उसमें स्त्रोसंसर्ग, मद्य और मांसके प्रति प्रेम तथा घृणा दोनों होने लगते हैं। उसके सिरमें चक्कर आता है। इस रोगके होनेपर रोगीके नाखून, केश तथा अस्थि अपेक्षाकृत पहलेसे अधिक बढ़ते हैं। वह स्वप्नमें अपनी पराजय देखता है।

परांग, कृकल (गिरगिट), साही, बंदर, कुत्ता तथा पक्षियोंसे भयान्त होकर अपनेकी पराजित या गिरता हुआ देखता है। स्वप्नमें अपने शरीरके बाल तथा अस्थिभागकी भस्म होते हुए देखकर वह भयभीत होता है। वह स्वप्नमें ही वृक्षपर चढ़ता है। उसे स्वप्नमें निर्जन ग्राम और देशका दर्शन होता है। जलरहित भूभागको देखनेके कारण उसे स्वप्नमें भय लगता है। उसकी आकाशमें प्रकाशपुञ्ज तथा दावाग्निमें जलते हुए वृक्ष दिखायी पड़ते हैं, जिससे उस रोगीका मन भयसे व्याकुल हो उठता है। ये सब लक्षण रोगप्रभावके कारण ही होते हैं। अतः इसे पूर्वरूप कहते हैं।

इस राजयक्ष्मारोगके कोष्ठगत होनेपर रोगीको पौनस, क्षास, कास, स्वरभंग, सिरपीड़ा, अरुचि, ऊर्ध्वनिःश्वास, शारीरिक शुष्कता, यथजन्य कष्ट तथा वमन होता है। उसके पार्श्वभाग तथा संधिस्थानमें पीड़ा होती है। उसका शरीर ज्वरसे संतप्त रहता है। इस प्रकार इस राजयक्ष्माके ठीक ग्यारह लक्षण रोगीके शरीरमें पाये जाते हैं। उनके उपद्रवसे रोगीके कण्ठमें ऐसी पीड़ा होती है जैसी क्षासप्राणमें विकृति एवं हृदयवेदना होनेपर होती है। उसे जम्बूई आती है, प्रत्येक अङ्गमें दर्द होता है, मुखसे बार-बार धूक निकलता है, मन्दाग्नि हो जाती है तथा मुखसे दुर्गन्ध आने लगती है।

इस राजयक्ष्माके रोगमें वायुप्रकोपके कारण रोगीके शिरोभाग तथा दोनों पार्श्वमें शूल उठता है, जिसके कारण

असह्य पीड़ा होती है। दर्दसे रोगीका अङ्ग-अङ्ग द्रटता रहता है, कण्ठावरोध और स्वरभंग हो जाता है। पित्तदोष होनेसे रोगीको स्कन्ध-प्रदेश, हाथ तथा पैरमें दाह, अतिसार, रक्तसंश्रित वमन, मुखदुर्गन्ध, ज्वर और एक प्रकारका मल रहता है। कफजन्य दोषके कारण रोगीको अरुचि, वमन, खौस, आधे शरीरका भारीपन, तारबाहुल्य, पौनस, क्षास, स्वरभेद और अग्निमान्द्यका प्रकोप होता है। इसी अग्निमान्द्यता एवं शरीरमें शोधको उत्पन्न करनेवाले प्रदूषित कफजन्य दोषोंसे रोगीके रक्तयाही आदि स्रोतोंके मुखोंका अवरोध तथा धातुओंके क्षीण हो जानेपर हृदयमें दाह और अन्य उपद्रव होते हैं।

शरीरके अंदर पक्वालय-भागमें ठीक दोषोंके कारण प्रायः अन्न आम्लिक रससे पकता है, जिसके कारण वह सिद्ध नहीं होता और न तो शारीरिक पुष्टतामें सहयोग करनेकी क्षमता हो अर्जित कर पाता है। रोगीके शरीरका ऐसा आम्लिक रस रक्त और मांसको पुष्ट करनेमें अक्षम होता है। सप्त धातुओंका पोषण न होनेपर रोगी केवल मलके भारसे जीता है।

रोगीमें इन लक्षणोंके कम होनेपर भी अत्यन्त क्षीणता आ सकती है। इस रोगमें छः प्रकारका क्षय होता है। अतः उन सभी प्रकारोंके क्षय होनेपर रोगीके शरीरमें होनेवाले उपद्रवोंको यद्योपचार रोककर यथासम्भव इस रोगको समूल दूर करनेका प्रयास करना चाहिये अन्यथा इस रोगसे जानकी की मृग्य हो निश्चित होती है।

उक्त रोगके दोष पृथक्-पृथक् या समूहवत् शरीरपर प्रकट होते ही रोगीके पेदका क्षय हो जाता है, जिसके कारण उसके स्वरोंमें भेद, क्षीणता, रुक्षता और चञ्चलता आ जाती है। वात-प्रकोप होनेसे रोगीका कण्ठ सफेद रंगका हो जाता है। उसके शरीरकी स्निग्धता तथा उष्णता सम्पन्न हो जाती है। पित्तदोषके कारण रोगीके तालु और कण्ठमें दाह होता है और निरन्तर वह सूखता जाता है। रोगीका मुँह और कण्ठ कफसे संश्लिष्ट रहता है। उसके गलेसे घुरघुराती हुई ध्वनि निकलती है। उस कालमें रोगी स्वयंमें सभी विरुद्ध आचरणोंसे प्रभावित हो उठता है। अतः वह उसकी ओर उन्मुख हो जाता है, जिससे अन्य सभी लक्षणोंकी उत्पत्ति हो जाती है। इससे रोगी मृत्युको ही प्राप

\*\*\*\*\*

होता है। वैसी स्थितिमें रोगीको सब ओर धुँएँ समान ही दिखायी देता है और सभी कफजन्य लक्षण उसमें प्रकट हो उठते हैं।

इस क्षयरोगसे बचना बड़ा ही कष्टसाध्य है। यदि सभी

लक्षणोंसे युक्त होकर यह प्राणीपर आक्रमण करता है तो रोगीको जीवनरक्षा असम्भव हो जाती है। अतः अल्प लक्षणोंके दिखायी देते ही इस रोगको शरीरसे दूर करनेहेतु विधिवत् चिकित्सा करनी चाहिये। (अध्याय १५२)

### अरोचक, वमन आदि रोगोंका निदान

**ध्वन्तरीजीने कहा—**हे सुव्रत! अब मैं आपको अरोचकरोगके निदानके विषयमें बताऊँगा। जब वात-पित्त तथा कफजन्य दोष जिह्वा और हृदय या मनका आश्रय लेते हैं, तब प्राणीके शरीरमें अरोचकरोग उत्पन्न होता है।

यह रोग वातजन्य, पित्तजन्य तथा कफजन्य—इन तीन रूपोंके अतिरिक्त सन्निपातजन्य और मनःसंतापजन्य भी होता है। इस रोगके पाँच प्रकार हैं। यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और मनःसंतापज। वात आदि दोषोंसे होनेवाली अरुचिमें रोगीका मुख क्रमशः वायुमें कसेला, पिछमें तिक्त, कफमें भीड़ा या माधुर्ययुक्त, सन्निपातमें विकृतरस तथा शोक-दुःखादिमें दोषानुसार स्वादवाला<sup>१</sup> हो जाता है। इस रोगमें रोगीको किसी द्रव्य-विशेषका आस्वाद नहीं प्राप्त होता है। शोक, क्रोधादिमें मनकी वैसी स्थिति होती है, उसी प्रकार उसकी भोजनादि ग्रहण करनेकी अभिरुचि होती है। जब मन शोकादिके कारण विव्रण रहता है तो भोजनके प्रति अरुचिके कारण उसे अनादि ग्रहण करनेकी अनिच्छा हो जाती है। इस रोगमें अग्निदुष्ट हो प्रधान कारण है।

**छर्दि<sup>२</sup>** अर्थात् वमनरोग पाँच प्रकारका होता है—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा अनुभिन्न<sup>३</sup> (इच्छाके विपरीत)। दुष्ट पदार्थोंके ग्रहण करनेसे पाँचव्यां छर्दि होती है। सम्पूर्ण प्रकारके वमनरोगमें उदान वायु प्रकुपित होकर सभी प्रकारके अधिकृत दोषोंको उद्दीप्त करता है, जिसके फलस्वरूप क्रमशः शीघ्रतिशीघ्र रोगीको कष्ट होता है, मुख लवणयुक्त रहता है तथा उससे पानी छूटता है और धीरे-धीरे आहार-व्यवहारके प्रति अरुचि हो जाती है। इस रोगमें रोगीको नाभि तथा पृष्ठ-प्रदेशमें वेदना होने लगती है। रोगीके पार्श्वभागमें भी पीड़ा होती है, जिसके कारण पेटमें अवस्थित अन्न ऊपरकी ओर पक्वाशयसे निकलने लगता

है। अर्थात् रोगीको वमनकी इच्छा होती है। अन्ततोगत्वा रोगीके मुँहसे कषाय और फेनयुक्त थोड़ा-थोड़ा करके वमन होता है।

इस वातजन्य वमनरोगमें अत्यन्त कष्टसाध्य पीड़ाके साथ रोगीको तेज दर्द होनेके कारण चिल्लाना पड़ता है। उसको खीँसी आती है, उसके मुखमें शोध होता है और उसकी जानीमें स्वरभंग होने लगता है।

पित्तजन्य वमनरोग होनेपर रोगीको क्षारसे युक्त जलके समान धूस, हरित या पीतवर्णवाले पित्तका वमन होता है अथवा रक्तसे युक्त अम्ल, कटु, तिक्त पित्त उसके मुँहसे निकलता है। उसके शरीरमें तृष्णा, मूर्च्छा, संताप तथा अग्निके समान दाहका प्रकोप होता है।

कफजन्य वमनरोगके होनेसे रोगीमें स्निग्ध, धनीभूत पीत तथा मधु (सहद)-के समान मधुर, श्लेष्म (कफ)-का उदय होता है। यह कफ लवण-रससे भी युक्त हो जाता है। इस कफदोषके कारण उत्पन्न वमनके कष्टसे रोगीको भयवश रोमाञ्च हो जाता है। इस रोगमें रोगीके मुखमें शोध हो जाता है। उसके मुखमें मिटास भरी रहती है, उसके नेत्रोंमें भन्दा छाये रहती है, उसके हृदयमें कष्ट होता है और उसे खीँसी आती है।

सन्निपातिक वमनरोगमें सभी दोषोंके लक्षण दिखायी देते हैं। ऐसी अवस्थामें उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। ऐसे रोगीकी देखना, सुनना आदि कुछ अच्छा नहीं लगता है।

वैतादिके प्रकुपित होनेपर ही उदरभागमें कृमिजन्य और अन्नजन्य वमनरोग भी उत्पन्न होता है। कृमिजन्य छर्दिरोगमें शरीरमें शूल, कम्पन, मिचली तथा हल्लास (हृदयकी धड़कन)-के उपद्रवकी उत्पत्ति विशेष रूपसे हो होती है। (अध्याय १५३)

## हृदय-तृषारोगका निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपसे हृदयरोगका निदान कहूँगा।

हृदयको सामान्यतः सभी रोगोंसे रुग्ण बनानेवाले प्रतीक दोष वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातके साथ कृमिदोष भी है। जिसके कारण हृदयमें वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और कृमिज—ये पाँच प्रकारके रोग माने गये हैं।

वातदोषके कारण वातज हृदयरोगीको अपने हृदयमें तीव्र शूलका अनुभव होता है, सुईके चुभने और फटनेकी-सी पीड़ा होती है। दोषके कुप्रभावसे हृदयमें उठी हुई असह्य वेदनासे व्यथित होकर रोगी रोता रहता है। यह वातज दोष हृदयको विदीर्ण कर देता है। उसके दुष्प्रभावसे शरीरपर शुष्कता छायी रहती है। रोगी दुःख-सुखकी अनुभूतिमें स्तब्ध (अवाक्) बना रहता है। स्वयंमें उसे शून्यताकी अनुभूति होती है। मनमें भयकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अकस्मात् उसमें दीनता, शोक, भय, शब्द-श्रवणमें असहिष्णुता, कम्पन, मोह, श्वसरोध तथा अल्पनिद्राके लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

पित्तदोषसे हृदयरोगीको तृष्णा, धकान, दाह, स्वेद, अम्ल उद्गार, क्लम (धकान), अम्लपित्तात्मक वमन, धूपदर्शन और ज्वर होता है। कफजन्य दोष होनेसे हृदयमें स्तब्धता तथा हृदयके अंदर पत्थरके समान भारीपन हो जाता है। इन दोषोंके अतिरिक्त ऐसे रोगीकी खाँसी, अम्ल, पीड़ा, धूक, निद्रा, आलस्य, अरुचि और ज्वरका भी उपद्रव होता है।

हृदयरोगमें जब उपर्युक्त तीनों दोषोंके लक्षण शरीरमें प्रकट हो उठते हैं तो वह सन्निपातज हृदयरोग हो जाता है। कृमिजन्य हृदयरोगमें रोगीके नेत्रोंका वर्ण काला हो जाता है। उसके नेत्रोंके सामने अन्धकार छाया रहता है। उसको हल्लास, शोथ, खुजलाहट तथा मुँहसे कफ आता है। इस रोगमें रोगीका हृदय ऐसी असह्य पीड़ासे व्यथित होता है, जैसे वह आरेसे चीरा जा रहा हो। यह रोग बड़ा भयंकर और शीघ्र प्राणघातक होता है। इसलिये इस रोगकी शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये।

वात, पित्त, कफ, सन्निपात, रसक्षय तथा बलकी अल्पता और उपसर्ग—इस प्रकार तृषा (तृष्णा या तृषारोग)

छः प्रकारका होता है (उनके नाम हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, बल (रस)-क्षयज तथा उपसर्गज)। इस प्रकारके सब तृषारोगोंका मुख्य कारण तो वात पित्तस्रोत्र दोषमें विद्यमान रहता है। इन दोषोंके द्वारा रोगोंके शरीरकी धातु (शक्ति)—का शोषण होनेसे चक्कर, कम्पन, ताप, हृद्यह, मोह तथा मूर्च्छाका उपद्रव होता है। इस रोगमें जिह्वाके मूलभाग, कण्ठ और तालुमें सञ्चार करनेवाली जलवाही शिराओंको शुष्क बनाकर तृष्णा (प्यास) उत्पन्न होती है।

इस तृषारोगमें मुखशोष, जलसे अतृप्ति, अन्नके प्रति घृणा, स्वरभंग तथा कण्ठ-औष्ठ, तालुकी कर्कशताके कारण जिह्वा निकालनेमें रोगीको कष्ट होता है। वह असह्य वेदनाके कारण प्रत्याप करता है, उसका चित्त स्थिर नहीं रहता तथा मनमें अनेक प्रकारके उद्गार उठते हैं। वायु-प्रकोपके कारण उत्पन्न तृषासे शरीरमें कृशता और दीनता आ जाती है, सिरमें संखोद्रेढ, असह्य पीड़ा और भ्रम उत्पन्न होता है। पित्तदोषके कारण तृषारोगी गन्ध-ज्ञानकी क्षमतासे रहित, श्रवण-शक्तिसे निर्बल, निद्राहीन तथा अन्य शारीरिक क्षमताओंके ह्रासोन्मुख होनेसे बलाहीन हो जाता है। उसको शीतलताका अनुभव होता है और मुखसे अम्लयुक्त फेन निकलता करता है।

पित्तज तृषारोगमें रोगीके मुखमें तिक्तता बनी रहती है और मूर्च्छाका भी प्रकोप होता है। रोगीके नेत्र रक्तवर्णके हो जाते हैं। उसके मुखमें निरन्तर शुष्कता बनी रहती है। शरीरमें दाह रहता है और मुँहसे अत्यन्त धूमायित वायु सृष्टी है।

कफज तृषारोगमें वायु प्रकुपित हो उठती है। उसके कुप्रभावसे अन्तःस्थ स्रोत कफयुक्त हो जाता है और उसके बाद वह उसमें पंकजत् सूख जाता है। उसका कण्ठभाग कटिोंसे चुभते हुएके समान व्यथित होता है। रोगीमें निद्रा छापी रहती है और उसका मुख सदैव मधुर (मीठा) बना रहता है। ऐसा रोगी पेट फूलने, सिरपीड़ा, जडता, शुष्कता, वमन, अरुचि, आलस्य तथा अग्निमान्द्यके दोषसे युक्त होता है।

जिस तृषारोगमें तीनों दोषोंके मिले हुए लक्षण पाये

जाते हैं, वह विदोषसे उत्पन्न होती है। इस रोगमें आँवकी उत्पत्तिके कारण रक्तवाही स्रोतका अवरोध होता है। जिसके कुप्रभावसे वात-पित्तका दोष शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। उससे रोगीके शरीरमें उष्णता बढ़ जाती है, जिसके कारण शीतल जल प्राप्त करनेकी अभिलाषिणी तृष्णाका प्रादुर्भाव होता है अर्थात् रोगी इस कालमें प्याससे बेचैन हो उठता है। उसी उष्णताके कारण शरीरमें प्रविष्ट हुआ जल जब ऊपरी कोष्ठमें जाता है, तब उसे पित्तजा नामक तृष्णाकी उत्पत्ति होती है। अत्यधिक जल पीनेसे जो तृष्णा शान्त नहीं होती, अपितु तीव्रगतिसे बढ़ती ही जाती है, वह शरीरके

स्निग्ध अंशको जला देनेवाली होती है। उसको स्नेहपाकजा अथवा पित्तजा नामकी तृष्णा कहा गया है।

स्निग्ध, कटु, अम्ल तथा लवणरससंश्लिष्ट भोजन करनेसे कफोद्भव तृष्णाका जन्म होता है। जब तृष्णा शरीरके रसको विनष्ट करनेवाले उपर्युक्त लक्षणसे समन्वित हो जाती है, तब वह क्षयात्मिका तृष्णा कहलाती है। जो शोष-मोह-ज्वर आदि अन्य दीर्घकालतक रहनेवाले रोगोंके कारण शरीरमें तीव्र तृष्णा उत्पन्न होती है, उसे उपसर्गात्मिका तृष्णाके नामसे स्वीकार किया गया है।

(आध्याय १५४)

### मदात्यय-निदान

धन्यन्तरिजीने कहा—हे सुकुत! अब मैं प्राचीन मुनिवोंके द्वारा प्रतिपादित मदाधिव्यायके निदानको कहता हूँ।

मद्य, तीक्ष्ण, उष्ण, रुक्ष, सूक्ष्म, अम्ल, ज्ववायी, आशुकारी, लघु, विकारी तथा विषाद होता है। ओज इसके विपरीत होता है अर्थात् ओज मन्द, शीत, मधुर, सान्द्र, स्निग्ध, स्थूल, चिरकारी, गुरु और पिच्छल होता है। तीक्ष्णादि दस गुण मद्यमें होता है और यही गुण विषमें भी होते हैं, जो प्राणियोंके चित्तमें हलचल मचानेवाले तथा प्राणपातक होते हैं। प्रथम मद्यमें मद्य अपने तीक्ष्णादि दस गुणोंसे ओजके मन्दादि दस गुणोंको संक्षुभित करके चित्तमें विकार उत्पन्न कर देता है। दूसरा मद्य प्रमादका स्थान है। इसमें दुष्ट विकल्पोंसे उपहत मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यसे अज्ञान होकर मद्यके द्वितीय वेगकी अधिक सुखकर मानता है। रजोगुणी या तमोगुणी मनुष्य मध्यम और उत्तमकी संधि अर्थात् द्वितीय और तृतीय मद्यकी मध्यावस्थामें पहुँचकर अंकुशरहित मदोन्मत्त निरंकुश हाथीकी तरह कुछ भी नहीं करता। यह मद्यावस्था निन्दनीय मनुष्यों तथा दुःशीलोंकी भूमि अर्थात् एकमात्र मदिरा ही अनेक मुखवाली दुर्गतिकी आचार्य है। मद्यकी तीसरी अवस्थामें पहुँचकर मनुष्य निष्ठेष्ट होता हुआ मीन होकर सोया रहता है। वह पापात्मा मरनेसे भी अधिक बुरी दशामें पहुँच जाता है। मद्यमें आसक्त मनुष्य धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, मान-अपमान, हित-अहित, शोक-मोहकी अनुभूतिसे रहित हो जाता है। वह शोक, मोहादिसे समन्वित रहता है। ऐसा प्राणी उन्माद-धम

और मूर्खतामें सदैव विद्यमान होता है और अन्ततोगत्वा मिर्गीके रोगीके समान भूमिमें गिरकर छटपटाता रहता है। जो व्यक्ति बलवान् है, समुचित भोजन करते हैं या पच्यवस्ति प्रचुरमात्रामें भोजन करके पचा जाते हैं, उनमें मद्य नहीं होता है। यह मदात्ययरोग वात-पित्त तथा कफके प्रकुपित होनेके कारण उत्पन्न हुए अन्य सभी दोषोंसे होता है।

इस प्रकार वातिक, पित्तिक, श्लेष्मिक और सत्रिपातिक नामसे यह मदात्यय चार प्रकारका होता है। मोह, हृदयवेदना, पुरीषभेद, निरन्तर तृषा, कफ, पित्तज्वर, अरुचि, हृदयमें विषमन्धता, अन्धकार, खौसी, श्वास, निद्रा न आना, पसीना, विहम्भता, सूजन, चित्तविभ्रम, स्वप्नदर्शनसे घबड़ाहट, मना करनेपर भी बोलते रहना आदि—ये सब मदात्ययके सामान्य लक्षण हैं।

पित्तदोषके कारण मदात्यय होनेपर प्राणी दाहज्वर, स्वेद, मोह, प्यास, अतिसार और विभ्रमके कारण उपद्रवसे ग्रस्त होता है। श्लेष्मज मदात्ययरोगमें रोगी वमन, इल्लास (शुद्धकन), निद्रा तथा अग्निमान्द्यके कारण उदरकी गुरुताके दोषसे संग्रस्त रहता है। सत्रिपातिक दोषवाले मदात्ययमें पूर्वकथित सभी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह सब जानकर जिस प्राणीकी अभिरुचि सहसा मद्यपानमें हो जाती है तो उसमें ध्वंसक और शोषक—ये वातज व्याधियाँ हो जाती हैं। ये कष्टसाध्य होती हैं और विशेषकर दुर्बल मनुष्यको होती हैं।



ध्वंसकमें कफकी प्रवृत्ति, कण्ठशोथ, अतिनिद्रा, शब्दका न सहना होते हैं, विक्षय (शोषक)-रोगमें चित्तविक्षेप, अङ्गमें पीड़ा, हृदय तथा कण्ठमें रोग, सम्मोह, खौंसो, तृष्णा, वमन तथा ज्वर होते हैं। अतः जो व्यक्ति जितेन्द्रिय हो, वह इन सभी बातोंपर विधिबल पहने विचार करे। तदनन्तर वह मद्यके दोषसे अपनेको दूर कर ले। इसीमें उसका कल्याण है। मद्यसे दूर रहनेवाला शारीरिक तथा दम्भाद आदि मानसिक विकारोंसे कभी कष्ट नहीं पाता है।

रजोगुण, तमोगुणकी प्रधानतावाले मोहजन्य दोष तथा असंयमित आहार करनेवाले प्राणीको मद्य, मूर्च्छा और संन्यास नामक तीन प्रकारके रोग होते हैं। यथा—शरीरमें इनका प्रकोप होनेपर ये तीनों रोग रस, रक्त और चेतनाके ही स्वार्थके विरोध हो जानेसे होते हैं। इनमें मद्यसे मूर्च्छा और मूर्च्छासे संन्यास उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं।

मदात्म्यरोग मद्य, वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातके दोषोंसे तो होता ही है, किंतु रक्त, मद्य और विषके कारण भी यह शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। शरीरमें शक्तिकी अल्पता न होनेके कारण जब शक्ति क्षीण हो जाती है तो प्राणी अपनी शक्तिका आभासमात्र करता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ चञ्चल हो उठती हैं। वह छल-कपटके व्यवहारसे घिरा रहता है।

वातज मद्यसे मनुष्यका शरीर रुधिर-रक्तम और अरुण-वर्णका हो जाता है। पित्तज मद्यसे प्राणी क्रोधी हो उठता है। उसके शरीरका वर्ण लाल और पीला हो जाता है। वह कलहमें अभिरुचि लेता है। कफोत्पादक मदात्म्यमें रोगी जब सोता है तो उसे स्वप्न दिखायी देते हैं। स्वप्नमें असम्बद्ध, अनर्गल प्रलाप करता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ किसी विशेष ध्यानमें एकाग्र होकर अनुरक्त रहती हैं। सभी दोषोंके कारण उत्पन्न होनेवाले सन्निपातजनित मद्यमें प्राणीका वर्ण रक्त हो जाता है और उसके शरीरमें स्वप्न होने लगता है, जिसके कारण उसके अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो जाते हैं।

इस मदात्म्यरोगमें तो प्राणीके शरीरमें पित्तदोष सर्वप्रथम ही प्रकट हो जाता है। उसकी समस्त शारीरिक चेष्टाएँ विकृत हो जाती हैं। उसे तृष्णा, स्वरभंग तथा अज्ञानकी अवस्था प्राप्त होती है। उसको सद्-ज्ञान नहीं रह जाता है।

विषज मद्यमें शरीरमें क्षम्य होता है। वह गहन निद्रामें सोता है और उसको इस मदात्म्यरोगमें अत्यधिक धकानकी अनुभूति होती है।

मनुष्योंको शरीरके अंदर विद्यमान रक्त, मज्जादिमें उभरे हुए वात-पित्त तथा कफजनित दोषोंके लक्षणोंको देखकर यथापेक्षित वातज, पित्तज, कफज या सन्निपातज मदात्म्यका निर्धारण करना चाहिये और उसी रोगके अनुसार चिकित्सा भी करनी चाहिये। यथा—वातज, मदात्म्य (मूर्च्छा) होनेपर सामान्यतः रोगी आकाशको लाल-नीला अथवा काला रंग देखता हुआ अपनेको अन्धकारमें पहुँचा हुआ मूर्च्छित मानता है। शीघ्र मूर्च्छा दूटनेपर वह हृदयकी पीड़ा—क्षम्य तथा भ्रमसे संतपन रहता है।

जो व्यक्ति कालिक मदात्म्यदोषसे ग्रस्त होता है उसे खौंसो आती है और कान्ति पीली एवं लाल रंगकी हो जाती है। वह अधिकतर मूर्च्छामें ही रहता है। पित्तात्मक दोषको सामान्यतः परिणतिमें रोगीको आकाश रक्त अथवा पीतवर्णका प्रतीत होता है और अन्तमें उसे अन्धकार-ही-अन्धकार दिखायी देता है। उस समय उसकी विशेष प्रकारका ज्ञान प्राप्त होता है। उसके शरीरसे पसीना निकलता है। वह शरीरमें उत्पन्न हुए दाह, तृष्णा तथा तापसे पीड़ित हो उठता है। कफसे संश्लिष्ट होनेपर रोगीको एक छिन्न-भिन्न होती हुई नीली-पीली आभा दिखायी देती है। उसके लाल, पीले और नीले नेत्रोंमें व्याकुलता छापी रहती है। कफज मूर्च्छामें रोगी आकाशकी मेघोंसे आच्छन्न देखता हुआ मूर्च्छित हो जाता है। उसे गहन निद्रा आती है, इसलिये उसकी नींद बहुत देरके बाद दूटती है। होशमें आनेपर उसके हृदयमें धड़कन होती है और प्राण सूखते हुए प्रतीत होते हैं। ठक दोषके कारण उत्पन्न हुए भारीपन और आलस्यके वशीभूत हुए अङ्गोंसे उसकी ऐसी अनुभूति होती है, जैसे शरीर राजधर्मसे अनुप्राणित पुरुषों (सिपाहियों) के द्वारा प्रताड़ित किया गया है। इन सभी दोषोंका प्रभाव जब एक साथ शरीरपर पड़ता है तो सन्निपातकी अवस्था आ जाती है। उस कालके मदात्म्यमें प्राणीका सम्पूर्ण शरीर (अपस्मार) निर्गुणिक रोगसे ग्रस्त हुएके समान पृथ्वीपर गिर पड़ता है। अपस्मारमें रोगीकी चेष्टा बीभत्स हो जाती है और इसमें नहीं होती है।

वातादिक दोषोंके वेग समाप्त होनेके कारण उत्पन्न मदात्ययकी मूर्च्छा और अन्य उपद्रवोंसे ग्रस्त प्राणियोंके कष्टोंका उपशमन बिना औषधिक उपचारके ही संयमित रहनेसे स्वयमेव हो जाता है। परंतु संन्यासका रोग औषधके बिना शान्त नहीं होता। इस मदात्ययकालमें वाचिक, शरीरिक तथा मानसिक चेष्टाओंके दबावमें निर्बल प्राणी स्वयं प्राणापात ही करते हैं। जिससे वे मरे हुएके समान काष्ठवत् हो जाते हैं। यदि उनको चिकित्सा शीघ्र नहीं की जाती है तो वे अविलम्ब ही मर जाते हैं।

प्राहादिक हिंसक जलचरोंसे भरे हुए अथाह जलरशियाले समुद्रके समान इस संन्यास मदात्ययरोगके सागरमें डूब रहे प्राणीकी शीघ्र ही रक्षा करनी चाहिये। उसमें मद, मान, रोष, संतोष आदि विभिन्न प्रवृत्तियाँ होती हैं। उन्हें प्रवृत्तियोंके द्वारा वह यहाँ-वहाँसे उचित और अनुचितका विचार करके यथापेक्षित कार्यमें सामान्य विधिका प्रयोग करता है, किंतु अयुक्तिपूर्वक मद्यपानसे प्रभावित दशामें ऐसा सम्भव नहीं है। उसे कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान नष्ट हो जाता है। (अध्याय १५५)

### अर्श (बवासीर)-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुभुत! अब मैं अर्श (बवासीर) नामक रोगके निदानका विषय बताऊँगा।

प्राणियोंके मांसमें जो कीलक सदा उत्पन्न होते हैं, वे कीलक गुदाके द्वारका अवरोध करते हैं, इसलिये उन्हें अर्श कहा जाता है। वात-पित्त तथा कफजन्य दोष शरीरमें स्थित त्वक्, मांस और मेदाकी दूषित करके अपानवायुके मार्गमें अनेक आकृतियोंवाले मांसाकुरोंकी जन्म देता है, उन अंकुरोंकी अर्श माना गया है। जो अर्श शरीरके साथ ही उत्पन्न होता है, उसे 'सहज' और जो जन्म लेनेके बाद उत्पन्न होता है, उसे 'जन्मान्तरोत्थान' कहते हैं। इस दुहिसे अर्शके दो भेद हुए। प्रकारान्तरेसे इसके दो भेद और हैं—एक शुष्क (खादी बवासीर) और दूसरा है स्नावी (खूनी बवासीर)। गुदा नामक स्थानका आश्रय लेकर अवस्थित रहनेवाली शुष्क अग्रभागसे युक्त परस्पर भिन्न नाड़ियोंका स्थान है। गुदाभागका परिमाण साढ़े पाँच अंगुलका होता है। उसीमें नीचेकी ओर साढ़े तीन अंगुलके भागमें ये रोग स्थित रहते हैं। उनमें एक नाड़ी बालोंकी जन्म देनेवाली शक्तिका सञ्चार करती है और एक नाड़ी आँतके मध्यभागसे होकर नीचेकी ओर आती है। यही आमाशयसे निकलनेवाले मलको लाकर गुदामार्गसे बाहर करती है। उसी विसर्जन कार्यके कारण उसे विसर्जनी नाड़ीके नामसे अभिहित किया गया है। उस विसर्जनी नाड़ीके बाह्यभाग अर्थात् गुदाके

मुख- द्वारके बाह्यभागमें एक अंगुलका जो स्थान है, उसीमें इन मांसाकुरोंका जन्म होता है। उसके बाद ढेढ़ अंगुलके परिमाणभागमें गुदीछके परे रोमवती त्वचा है, जिसपर रोम नहीं उत्पन्न होते हैं। वहाँपर सहोत्थ अर्शका कारण विद्यमान रहता है, जो बाल्यकालमें उपपन्न अर्थात् सहोत्थ दोषको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्यसे युक्त हो जाता है।

प्राणियोंमें इस अर्शरोगका बीज तो माता-पिताके कुपण्यसे उत्पन्न होता है। देवताओंके प्रकुपित होनेपर तो यही दूसरे रूपसे सान्निपातिक दोषका भी बीज बन जाता है। प्राणियोंमें इस प्रकारके जो कुल (वंश)-क्रमगत रोग होते हैं, वे सभी असाध्य माने गये हैं। सहजोत्थ अर्श तो विशेषरूपसे देखनेमें दुस्साध्य, अन्तर्मुखी, पाण्डुवर्ण सन्निहित और भयंकर उपद्रव मचानेमें समर्थ होते हैं। शरीरके वात-पित्त तथा सन्निपातदोषके अनुसार इनको वातिक, पित्तिक, स्लेष्मिक, संसर्गज, त्रिदोषज तथा रक्तज रूपमें नियोजित किया जा सकता है। अर्थात् इन सहजोत्थ अर्श दोषके यही छः प्रकार हैं।

इनमेंसे शुष्क अर्श वात और कफसे होते हैं और आर्द्र अर्श रक्त एवं पित्तसे होते हैं। उसके दोषके प्रकोपका कारण तो पहले ही कहा जा चुका है। इसके अतिरिक्त उदरस्थ अग्निमान्द्य तथा मलाधिक्यकी एकत्रित अवस्थामें अतिशय, अत्यल्प तथा असामयिक जलपान, देश-कालादिके

विषरीत कठिन और अल्पाहार ग्रहण करनेके कारण भी यह उत्पन्न होता है। यस्ति, नेत्र, गले और ओष्ठदिके भागोंमें घट्ट—रगड़ (चेटा), अधिक शीतल जलके सम्पर्क तथा बैठकर लगाम आदिसे साधे जानेवाले वाहन (अश्वदि)—की सवारी करनेसे भी इस रोगकी उत्पत्ति होती है। यह रोग हठान् मल-मूत्रादिके वेगको धारण करने और निकालनेसे भी हो सकता है। ज्वरगुल्म, अतिसार, दाहणीरोग, शोथ तथा पाण्डुरोगके प्रभाव एवं दीर्बल्यकारक आहारादिके सेवनसे अन्य उपद्रव और विषम चेष्टाओंसे भी इसका जन्म होता है। स्त्रियोंमें अपक्व-गर्भपात, गर्भवृद्धि तथा तज्जन्य पीडाके कारण इस उपद्रवकी उत्पत्ति होती है।

इन्हीं सब कारणोंसे अपानवायु मलस्थानके भागमें कुपित हो जाता है। तदनन्तर वह गुदाभागका रुद्ध कार्य करनेवाली बलिषोंमें अपना कुप्रभाव छोड़ता हुआ अर्शके उन कीलकोंके रूपमें जन्म लेता है।

इस रोगका पूर्व लक्षण अग्निमान्द्य, विहम्भ, पैरोंमें पीड़ा, पिण्डुलिका कष्ट, भ्रम, शरीरमें शिथिलता, नेत्र, शोथ, मलभेद तथा मलग्रह है। इस रोगमें शरीरके अग्रभागसे निक्षेष्ट वायु नाभिभागसे नीचेकी ओर संवरण करता हुआ पीड़ितकर रक्तसंश्रित होकर बड़ी कठिनाईसे बाहर निकलता है। इस रोगमें अंतर्भागसे अत्यन्त गुहगुह शब्द होता है। क्षारसहित उद्गार, अतिशय मूत्र, आप्पविह्व (मज), घृणा, धूमायित उच्चार, सिर-पीठ, वक्षःस्थलमें पीड़ा, आलस्य तथा धातुक्षरणका उपद्रव होता है। इसमें इन्द्रिय-मुखकी चञ्चलता एवं दुःख होनेके कारण रोगीमें क्रोधकी मात्रा बढ़ जाती है। इस रोगके प्रभावसे रोगीमें विह्व-त्यागकी आशङ्का बनी रहती है। उसके पेटमें संग्रहणी, शोथ, पाण्डु तथा गुल्म नामक रोगोंका भी उपद्रव होता है।

इतना ही नहीं, अर्शरोगके होनेसे प्राणियोंमें ये रोग भली प्रकारसे बढ़ते हो जाते हैं। उन अर्शकीलकोंसे गुदामार्ग अवरुद्ध होनेके कारण अपानवायु भी कूट हो उठता है, जिसके फलस्वरूप वह शरीरकी समस्त इन्द्रियोंमें स्थित अन्य समानादिक भेदवाले वायु-प्रभेदोंको क्षुब्ध एवं विचलित कर देता है। वह वायु मूत्र, मल, पित्त तथा कफ, रस-

रक्तादिको संक्षुब्ध करता हुआ जठराग्निको मन्द बना देता है। उससे प्रायः सभी प्रकारके अर्शरोग<sup>१</sup> उत्पन्न हो जाते हैं।

शरीरमें इन सभी अर्श-भेदोंका प्रकोप होनेपर रोगीके शरीरमें आप्पत दुर्बलता, उत्साहहीनता, दैन्य तथा कान्तिहीनता आ जाती है। वह रोगी साररहित वृक्षके समान सारहीन और छायाहीन हो जाता है। मर्मस्थलको पीड़ित करनेवाले अत्यन्त कष्टसाध्य उक्त रोगोंका उपद्रव हो जानेसे रोगी एक दिन यक्ष्माके रोगसे भी घुस्त हो उठता है। उसके शरीरमें काम, पिपासा, मुखविकृति, श्वास, पीनस, खेद, अङ्ग-भंग, कमजोर, हिचकी, शोथ, ज्वर, नपुंसकता, बधिरता, स्तब्धता तथा शर्करा एवं पथरीरोग हो जाते हैं। वह क्षीणकषय, स्वरभंग, चिन्तागुर, अर्शच, ब्याम्बार धुकनेवाला और अनिच्छित स्वभावका हो जाता है। उसके सभी पर्व तथा अस्थिभागमें पीड़ा होती है। उसका हृदय, नाभि, पायु और वक्षणभाग मूलसे घुस्त हो उठता है। उसके गुदामार्गसे चावलके धोवनके समान द्रव निकलता है, जो वर्णमें बगुलेके उदरभागके समान होता है। यह मल कभी-कभी सूखा हुआ, मोतीके अग्रभागकी कान्तिसे सम्पन्न, पके हुए आमके समान पीठ, हरा, लाल, पाण्डु, हस्तिदया तथा पिच्छिलवर्णका होता है।

यत्न-प्रकोपके कारण रोगीके गुदाभागमें जो मांसांकुर निकलते हैं, उनके बीच भागोंसे अपानवायु अधिक मात्रामें निकलता है, वे सूखे हुए होते हैं, उनमें चिमचिमाहट या चुनचुनाहट होती है, उनका वर्ण गाढ़े अंगारके समान लाल होता है। वे पीड़ाके कारण रोगीको स्तब्ध बना देते हैं, उन सभी अंकुरोंमें विषमता होती है और उनका स्वभाव बड़ा ही कठोर होता है। इतना ही नहीं, उनमें विशेष समानता भी प्राप्त होती है। वे वक्र और तीक्ष्ण तथा फटे हुए मुखवाले होते हैं।

वातजन्य अर्शके सभी मांसांकुरोंकी आकृतियाँ बिम्ब, खजूर, बेर तथा कपासके फलोंकी भाँति होती हैं। कुछ अंकुर कदम्ब-पुष्प और कुछ सरसोंके फूलके समान आभावाले होते हैं।

इस रोगके होनेपर रोगीके सिर, पार्श्व, स्कन्ध, जंघा,

ऊरु और वंक्षणभागमें अधिक पीड़ा होती है। रोगीको हिचकी, उद्गार, विष्टम्भ, हृदयमें पीड़ा तथा अनिच्छाका प्रकोप होता है। उसको खामो आती है, श्वास फूलती है और अग्निमन्दता बढ़ जाती है। उसके कानोंमें ध्वनि गुञ्जरित होता रहता है। उसको सदैव भ्रम बना रहता है।

इस रोगमें गौडदार प्रवाहिकाके लक्षणोंसे युक्त जगदार, पिच्छिलताविशिष्ट बहुत-सा विष्टा थोड़ा-थोड़ा शब्दकर निकलता है। मलत्यागके समय अत्यन्त वेदना और शब्द होता है। रोगीकी त्वचा काली पड़ जाती है। उसके मल-मूत्रमें अवरोध बना रहता है। उसके नेत्र और मुखपर भी रोगका प्रभाव छाया रहता है। उसकी गुल्म, प्लीहा, उदर अष्टीला-सम्बन्धित विकारोंके सहित हृत्तास (दिलमें धड़कन) का भी रोग हो जाता है।

जो पित्त-प्रकोपके बाद अर्श-सम्बन्धी अंकुर निकलते हैं, वे नीलवर्णके समान मुखवाले तथा लाल-पोली और काली आभासे युक्त होते हैं। इन मांसांकुरोंके अग्रभागसे पतला रक्तस्राव होता है। इनका आकार लम्बा कोमल और आर्द्र रहता है। इनकी लम्बी आकृतिमें प्रायः शुक्लजिह्वा, यक्ष्मखण्ड तथा जोंकके मुखकी तरह होती है। इस अर्शरोगमें रोगीके शरीरमें दाह, शुष्कता, ज्वर, स्वेद, तृष्णा, मूत्रार्श, अरुचि एवं मोहका प्रकोप रहता है। उसकी उष्ण-द्रव्ययुक्त, नीलवर्ण, पीत वा रक्तवर्णका मल पड़ता है, जो प्रायः ओँच और धातुसे संश्लिष्ट रहता है। रोगी चक्के समान काटि-भागवाला हो जाता है। उसके शरीरकी त्वचा और नख आदिको कान्ति हरित, पीत तथा हल्दीकी-सी वर्णवाली हो जाती है।

कफजनित विकारके कारण उत्पन्न होनेवाले मांसांकुर पुष्ट मूलभागसे युक्त, सघन, मन्द वेदनाजन्य और श्वेत-वर्णके होते हैं। इनमें स्निग्धता, स्तब्धता और भारीपन होता है। ये मांसांकुर चिकने, नीले तथा कोमल होते हैं और इनमें खुजलाहट होती है। इन्हें धूनेसे सुख मालूम पड़ता है।

ये मांसांकुर बौसके निकले हुए अंकुर, कटइलकी गुठली तथा गीके स्तनोंकी आकृतिमें पाये जाते हैं। इस अर्शसे ग्रस्त प्राणीके ऊरुभागसे ऊपर संधिस्थान, मलद्वार, वस्ति और नाभि-प्रदेशमें ऐसी पीड़ा होती है, जैसे उन स्थानोंको कोई काट-काटकर फेंक रहा हो। रोगी खाँसी, श्वास, हृत्तास, शुष्कता, अरुचि, पीनस, मेहकृच्छ, सिरपीड़ा,

जडत्व, वमन, शीतप्रकोप, श्वासेजन, नपुंसकता, अग्निमान्द्य तथा अतिसार आदिके विकारोंसे युक्त हो जाता है।

ऐसे रोगीको चक्के समान प्रतीत होनेवाले कफके साथ रक्तमिश्रित मल पड़ता है। किंतु रक्तका स्राव नहीं होता और न कष्ट ही होता है। रोगीके चर्म आदि श्वेत तथा स्निग्ध हो जाते हैं।

जिन लोगोंमें इस रोगका त्रिदोषजन्य प्रकोप होता है, उनमें सभी संसृष्ट लक्षणोंका उपद्रव होता है। रक्तधिव्य अर्श होनेसे मांसांकुरके लक्षण पित्तज अर्शके समान ही होते हैं। इसमें रक्तसे भरे हुए बटकी खरोहक सदृश, लाल गुञ्जाफल और मृगिके समान रक्त होते हैं। उन लाल अंकुरोंपर जब गाढ़े मलका दबाव पड़ता है, तब वे अत्यधिक मात्रामें विकृत गाढ़े रक्तका प्रवाह करते हैं। उस समय रोगीको पीड़ा भी अधिक होती है। अधिक मात्रामें रक्तके गिर जानेसे रोगी मेहकृके समान पीला पड़ जाता है। उस दुर्बलतामें उत्पन्न हुए अनेक कष्टोंसे पीड़ित रहता है। वह वर्ण, बल, उदरसाह और ओज सभीसे रहित हो जाता है। उसकी इन्द्रियों करुणित हो जाती हैं। मृग, कोदो, जम्बीर (जोय), ज्वार, करील और चनाका आहार करनेसे उसके गुदाभागमें वायु कुपित हो उठती है और बलपूर्वक यह अधोवर्ती विष्टादिके स्तनोंको अवरुद्ध कर उनके मल-मूत्रादिको मृग्राकर कष्टप्रद बना देती है। उसके कुप्रभावसे रोगीके कोंछ, पाँख, पीठ और हृदयभागमें भयंकर पीड़ा होती है। पेटमें मलके रहनेसे हृदयमें धड़कन होती है, अधिक पीड़ा रहती है, वस्तिभागमें शूल होता है और गण्डस्थलमें सोथ आ जाता है।

शरीरमें जब वायु ऊर्ध्वगम्भी हो जाता है तो उसके कारण रोगीको वमन, अरुचि, ज्वर, हृदयरोग, संग्रहणी, मूत्रदोष, बहरापन, सिरपीड़ा, श्वास, चक्कर, खामो, पीनस, मनोविकार, तृष्णा, श्वास (कास), पित्त, गुल्म तथा उदरदिके रोग होते हैं, वे सभी वातज रोग हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त कठोर और कष्टकारी होता है। वातदोषका यह प्रकोप ही दुर्नामा, मृत्यु तथा उदावर्त अर्थात् वायुगोलाके नामसे स्वीकार किया गया है। इस वातदोषसे पीड़ित कोष्ठ-भागोंमें यह रोग पूर्वोक्त कारणोंके बिना भी उत्पन्न हो जाता है। सहज अर्श, जन्म धारणके पीछे त्रिदोषसे उत्पन्न हुए अर्श और भीतरवाली वल्लिमें उत्पन्न अर्श असाध्य होता है।



परंतु यदि अग्निबल और आयु श्रेष्ठ हो तथा सम्यक् चिकित्सा हो तो असाध्य रोग भी कष्टसाध्य हो जाते हैं।

गुदाभागकी दूसरी बल्लिमें जो अर्शाकुरोंका समूह होता है, यह द्वन्द्वज अर्शाकुरोंका समूह माना जाता है। इसकी तत्काल वर्ष-भीतर ही चिकित्सा अपेक्षित होती है अन्यथा यह भी कष्टसाध्य हो जाता है। गुदाभागकी बाहरी बल्लिमें त्रिदोषजन्य जो अर्शाकुर होते हैं, उनको सामान्य औषधिके उपचारसे दूर किया जा सकता है, किंतु अधिक समय बीत जानेपर ये भी कष्टसाध्य हो जाते हैं।

मेदादि स्थानोंमें इसी प्रकारके अर्श होते हैं। ऐसा हो नाभिदोषके कारण उत्पन्न हुए अर्शाकुरोंका स्वभाव माना गया है। जो अर्शाकुर गण्डस्थल (गुदाके भीतर)-में होते हैं, उनका रूप पिच्छल (फिसलाहटसे युक्त) तथा कोमल होता है। व्यानवायु कफको आन्तरभागमें निकालकर

त्वचाके बाह्य प्रदेशपर अर्शके रूपमें परिवर्तित कर देता है। यह कोमले समान स्थिर तथा खर होता है। उसको विद्वानोंने चर्मकोल (या मस्सा)-के नामसे स्वीकार किया है। वातज दोषके कारण उत्पन्न चर्मकोल (मस्सा) अत्यन्त कठोर सूर्शुकी नोकके समान तीक्ष्ण वेदनावाला और खुरदुरापनयुक्त होता है। पित्तदोषसे उत्पन्न हुआ कोमल कृष्ण, लाल मुखभागवाला माना गया है और जो कफजनित होता है, उसमें स्निग्धता, ग्रथिता तथा त्वचा वर्णता होती है।

बुद्धिमान्<sup>१</sup> व्यक्तिको अर्शरोग होनेपर यथाशीघ्र उसके उपशमनका प्रयत्नपूर्वक प्रयास करना चाहिये। क्योंकि ये ज्ञान नहीं होनेपर शीघ्रातिशीघ्र शरीरके गुह्य-प्रदेश तथा उदरभागमें बद्धगुदोदर आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न कर देते हैं। (अध्याय १५६)

## अतिसार-ग्रहणी-निदान

**धन्वन्तरिजीने कहा—**हे सुभूत! अब मैं आपको अतिसार तथा संग्रहणीरोगके निदानकी बात बताता हूँ।

वात-पित्त-कफ और सन्निपात दोषके कुपित होनेसे ही इन रोगोंकी उत्पत्ति होती है। भय तथा शोकके कारण भी ये प्राणियोंके शरीरमें उत्पन्न हो सकते हैं। अतः वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, भयज तथा शोकजके रूपमें इनके छः भेद हो जाते हैं।

अतिसाररोग अधिक जल पीनेसे होता है। इसके अतिरिक्त सूखे अंकुरित एवं कच्चे अन्न, तेल पदार्थ, यमा (चर्बी) और तिलकुटकी अधिक खानेसे भी यह उत्पन्न हो जाता है। मद्यपान, रुक्साहार, अधिकतम मात्रामें रस और तेलका सेवन तथा उदरजन्य कृमियोंके प्रकोपसे एवं वेगारोधसे शरीरकी वायु प्रकुपित हो उठती है। तदनन्तर वह अपानवायुके रूपमें शरीरके अधोभागमें जाकर उस दोषका विस्तार कर जठराग्नि-शक्तिको ह्रासोन्मुखी बना देता है। उस अग्निकी मन्दताके कारण शरीरमें गन्ध हुआ अन्न-पिण्ड और पहलेसे स्थित पुरीष (मल) भस्म अथवा सूखनेकी अपेक्षा द्रवतादिके दोषमें बदलकर अतिसाररोगके लक्षणको प्रकट करता है। उस रोगसे प्रभावित होनेके

रोगोंके हृदय, गुह्यभाग तथा आमाशयादिमें पीड़ा होती है। शरीरमें अवसाद होता है एवं पुरीषका निरोध और अपच होता है। शरीर पसीनेसे युक्त हो जाता है और कष्टकी उत्पत्ति होती है। वातदोषके कारण शरीर शिथिल पड़ जाता है, पाचनशक्ति सुचारुरूपसे कार्य नहीं करती है तथा शरीरमें विशेष प्रकारका श्वर रहता है। उस दोषके कारण उदरमें कुछ गुह्यगुह्यहट भी बनी रहती है। गुह्य भागसे बार-बार सूखा हुआ फेनसे युक्त स्वच्छ ग्रथित, जलाइन्ध और पिच्छल (कचड़ाहोन) मल कष्टके साथ होता है। इस रोगमें मलद्वार शुष्क एवं विकृत होकर बाहर निकल जाता है, मल निकलनेमें कष्ट होता है। उस कष्टके कारण रोगी लम्बी-लम्बी श्वासें छोड़ता हुआ कौंखता रहता है।

पित्त<sup>२</sup>-दोषसे रोगीको पीत-कृष्ण-हल्दी तथा नवांकुर वृक्ष वर्ण रक्तके सहित अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण दस्त होता है। उसको तुष्ण, मूर्च्छा, स्वेद और दाहका प्रकोप भी होता है। कफजनित अतिसाररोगके होनेपर गुह्यभागमें दाहपाक शूल उठता है और संतापजनित कष्ट होता है। इस रोगमें मल द्रवयुक्त न होकर कठोर, भारी एवं घनीभूत रूपमें गुदाभागसे बाहर निकलता है, वह पिच्छल (कचड़ाहोन) रहता है।

१-मु०नि०अ० ५६, अ०इ०नि०अ० ७

२-च०चि०अ० १५, मु०नि०अ० २, अ०इ०नि०अ० ७

३-च०चि०अ० १९, अ०इ०नि०अ० ८, सु०उ०नि०, अ० ४०

४-मु०उ०अ० ४, अ०इ०नि०अ० ८

\*\*\*\*\*

उसीके अनुसार वह बहुत ही कम या अधिक मात्रामें उदरके अंदर विद्यमान मलस्रोतमें पाया जाता है। मल-निस्सारणके समय कष्टके कारण रोगीको रोमाञ्च, हर्ष मिचली और क्लेशकी अनुभूति होती है। शरीरके अंदर भारीपन रहता है और इसीके कारण वसिष्ठ-प्रदेश, गुदाभाग और उदरमें भी भारीपन बना रहता है। ऐसे रोगीको दस्त होनेके उपरान्त भी दस्तकी अनुभूति बनी रहती है। जब वह वात-पित्त तथा कफजन्य सभी दोषपूर्ण लक्षणोंसे युक्त हो जाता है अर्थात् रोगीके शरीरमें सतिपातजन्य अतिसारका प्रकोप जन्म ग्रहण कर लेता है तो रोगी उस समय उक्त समस्त वातादिक विदोषोंके लक्षणसे समन्वित बन जाता है। भयवश चित्तके विक्षुब्ध होनेपर स्थान-विशेषमें पड़े हुए रोगीके उदरभागका मल द्रवीभूत हो उठता है। तदनन्तर उस द्रवपूर्ण मलको पक्षाशीघ्र वायु गुह्यमार्गसे बाहर निकाल देता है अर्थात् भयवशत् रोगीमें मलोत्सर्गकी इच्छा बलवती हो उठती है और अन्ततोगत्वा उसे पानीके समान मल होता है। वात तथा पित्तदोषसे होनेवाले अतिसाररोगके एक समान ही लक्षण बताये गये हैं, वैसे ही लक्षण शोकज अतिसारमें भी उत्पन्न होते हैं।

संक्षिप्ततः अतिसाररोगके दो प्रकार हैं। उनमें प्रथम साम है और द्वितीय निराम है। साम अतिसाररोगमें मल आँवके सहित होता है, किंतु निराम अतिसारमें आँव दोषरहित मल निकलता है, उनमें एक सरल होता है और दूसरा बिना रक्तका होता है। साम अतिसारमें मल बहुत दुर्गन्धित होता है और जलमें डालनेसे डूब जाता है। रोगीके पेटमें गुड़गुड़ाहट, विष्टम्भ वेदन और मुखप्रमेक होता है। निरामके लक्षण सामसे विपरीत होते हैं, कफजन्य होनेके कारण पक्व होनेपर भी मल जलमें नहीं डूबता है। जो अतिसारमें सावधानी नहीं करता, उसे ग्रहणीरोग हो जाता है।

अग्निमान्दताको बढ़ानेवाले अत्यधिक मात्रामें किये गये दोषपूर्ण आहार-विहारके सेवनसे अतिसाररोगका प्रादुर्भाव होता है। जब रोगीके शरीरसे साम या निराम मल अत्यधिक निकलता है तो उसे अतिसार कहते हैं। मलोत्सर्ग अधिक होनेके कारण इसकी अतिसार संज्ञा है। यह स्वाभाविक आशुकारी है। यही अतिसार जीर्ण होनेपर

संग्रहणीरोग बन जाता है। ग्रहणीरोगमें भुक्त अन्नके अजीर्ण होनेपर कभी आमसहित और कभी सात्र मल निकलता है। अन्नके जीर्ण होनेपर कभी पक्व मल निकलता है, कभी कुछ नहीं निकलता और कभी बार-बार बंधा या डीला दस्त होत है। यह रोग चिरकारी होता है, इसलिये इसे संग्रहणी कहते हैं। संग्रहणी चिरकारी तथा अतिसार आशुकारी होता है।

इस रोगमें एकाएक मलकी प्रवृत्तिका बारम्बार संघात होता है अथवा वह एकाएक रुक-रुककर बाहर निकलता है। ऐसा यह संग्रहणीरोग वात-पित्त तथा कफजन्य दोषसे तो तीन प्रकारका है ही, किंतु सतिपातिक दोषके कारण भी उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह चार प्रकारका हो जाता है। रोगीके शरीरमें शिथिलता, अग्निमान्द, खट्टी डकार, मुखसे लासलाखाव, भूमनिर्गमवत् प्रतीति, तमक, ज्वर, मूर्च्छा, अरुचि, तृष्णा, धकान, भ्रम, अपच, वमन, वजनमें भनभनाहट और अन्नकूजन—ये ग्रहणीके पूर्वलक्षण हैं। वातज ग्रहणीरोगमें तालुशोथ, तिमिररोग, दोनों कानोंमें शब्द, पसरती, करु, संक्षल और ग्रीवामें दर्द, बार-बार विसृष्टिका, सब कुछ भोजनकी इच्छा, क्षुधा, तृष्णा, कैंचीसे कतरनेकी पीड़ा, अपचा, कुछ भोजन करनेसे स्वस्थता, फेनसहित मल—ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। रोगी वातज, इद्रोग, गुल्म, अर्श, प्लीहा और पाण्डुरोगकी शंका करने लगता है। देरमें कष्टके साथ पतला या गाढ़ा थोड़ा कच्चा एवं फेनयुक्त बार-बार मल आता है। गुदामें दर्द और श्वास-खाँसी भी उठने लगती है।

पित्तज ग्रहणीरोगमें रोगी पीला पड़ जाता है। उसे पीला, नीला और पतला दस्त होता है। वह दुर्गन्धित खट्टी डकार, हृदय और कण्ठमें दाह, अरुचि और तृष्णासे पीड़ित रहता है।

पित्तज ग्रहणीके होनेपर रोगीका मल द्रवरूप हो जाता है और कफजन्य ग्रहणीरोग होनेपर रोगीको अन्न कठिनतासे पचता है। उसको छरछराहटभरा वमन होता है। उसे भोजनमें अरुचि होने लगती है। उसके मुखमें दाह होता है। उसको कफयुक्त खाँसी आती है। उसके हृदयसे उबकाई सूटती है और जुकाम हो जाता है। उसका हृदय पीड़ित और उदर भारी-सा प्रतीत होता है। उसपर आलस्य छा



जाता है। उसे मोटी-मोटी डकार और शरीरमें शिथिलता आने लगती है। रोगीको सम्मान या कुछ कम-अधिक मात्रामें कफसे युक्त मल होता है, जो भारी तथा अम्लताके दोषसे संश्लिष्ट रहता है। उस रूपमें प्रायः वैशुन अशक्त एवं रोगीकी शक्तिका अधिक ह्रास होता है। इस रोगमें मलवान् व्यक्ति भी दुर्बल हो जाता है और उसमें रोगके सभी लक्षण दिखायी देने लगते हैं।

शरीरप्रकरणके अङ्ग-विभाग नामक तीसरे अध्यायमें जो विषम, तीक्ष्ण एवं मन्द नामक तीन पित्ताग्नियों कही गयी हैं, वे भी ग्रहणी-दोष ही हैं। केवल समाग्नि

उत्तम स्वास्थ्यकी हेतु है। इस रोगमें भी प्राणीको प्यास लगती है, अधिक मल निकलनेके कारण भूख सताती है, हर क्षण शिथिल होते हुए शरीरके कारण उसके मनमें विकृत चिन्ताएँ भी बढ़ जाती हैं। समस्त रोगोंका यही—मल ही कारण है। इसी मलके शरीरमें रहनेपर प्राणीमें वातव्याधि (बाई), अश्मरी (पथरी), कुष्ठ (कोढ़), मेह, जलोदर, भगंदर, बवासीर और ग्रहणरोग होता है—ये आठों रोग महारोग माने गये हैं, इनका निदान अत्यन्त कठिन है और ये कष्टसाध्य हैं।

(अध्याय १५७)

### मूत्राघात-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब इसके बाद आप मूत्राघातका निदान सुनें।

वस्ति' (पेड़ अर्थात् नाभि-प्रदेशसे नीचे और मूत्र-प्रवाहिकाके ऊपरका भाग), वस्तिशिर (मूत्र-प्रवाही नली), पेड़ (जननेन्द्रिय अर्थात् लिंग), कटी (कुल्हेके भागके गड्ढे), वृषण और पायु (गुदा) नामक शरीरके ये छः अङ्ग विशेष हैं, जो परस्पर एक-दूसरेसे सम्बद्ध और एक ही जगह ग्रथित हैं। इन सभीका आश्रय गुदाभागमें रहनेवाले अस्थि-विशेषके छिद्रसे सम्बद्ध रहता है। पेड़ (वस्ति) अधोमुखी है। इसमें चारों ओरसे सूक्ष्म शिराओंके मुखभागसे होकर रिसाव होता रहता है, इससे वस्ति मूत्रसे भरी रहती है। इन्हीं शिराओंसे वात-पित्तादि दोष भी वस्तिमें प्रविष्ट हो जाते हैं, जिससे मूत्राशयमें बीस प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मर्माश्रित होनेके कारण ये ग्रमेहादि रोग अत्यन्त कष्ट-साध्य हैं, अर्थात् इन रोगोंके होनेसे रोगीको मर्माहत करनेवाली पीड़ा होती है। रोगीके पेड़, वंक्षण और लिंगभागमें भी कष्ट होता है। उस कष्टसे गुप्ताङ्गोंके द्वारा होता हुआ मूत्र अल्पमात्रमें बार-बार निकलता है। वातज्रोगमें प्राणीकी मूत्र कष्टके साथ होता है। पित्तज मूत्राघात होनेपर मूत्र पीला, लाल तथा दाहने युक्त हो जाता है और उसके मूत्राशयमें रुके रहनेपर अत्यन्त पीड़ा होती है। जब यह रोग कफज होता है तो उसके पेड़ और लिंगमें भारोपन तथा शोथ आ जाता है। मूत्र पिच्छल और रुक-रुककर होता है।

रोगीपर सर्व-दोषजन्य मूत्राघात होनेसे सभी लक्षण पाये जाते हैं। जब वातु वस्तिके मुखकी आच्छादित कर कफ, मूत्र और वीर्यको शुष्क कर देता है, उस समय रोगीके शरीरमें अश्मरी (पथरी) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग बड़ा भयंकर होता है। जैसे पायका पित मुखक गोरोखन बन जाता है, वैसे ही यह अश्मरी होती है। प्रायः सभी प्रकारकी पथरियाँ कफाश्रित ही होती हैं। इस रोगका पूर्वलक्षण इस प्रकार है—

इस रोगके होनेमें वस्तिभागमें अवरोध होता है अथवा उसके सन्निकट अन्य किसी भागमें भी हो सकता है। जिस भागमें होता है उस भागके चारों ओर अवयवोंमें अत्यधिक पीड़ा होती है। वस्तिभागमें मूत्रका अवरोध तथा उसकी कुच्छ्रता बनी रहती है। रोगीके मूत्रमें अजामूत्रके समान गन्ध, ज्वर और अरुचि होती है। इस रोगका सामान्य लक्षण तो यह है कि रोगीके नाभि-लिंगमणि और वस्तिके शिरोभागमें कष्ट रहता है। अश्मरीद्वारा मार्गावरोधके कारण वहाँ उस समय पर्याप्त भागमें मूत्र फैल जाता है। वह रुक-रुककर बाहर निकलता है। मूत्र निकलनेपर रोगीको सुखानुभूति होती है। उस मूत्रका वर्ण गोमेद या गोमूत्रके समान झलकता रहता है।

मूत्र-निर्गमनमें ऐसा प्रकोप हो जानेपर रुक, मांस तथा धातु-प्रवाहके मार्गमें कष्ट होता है। वातज्रोगसे व्यथित रोगी अपने दाँतोंको किटकटाता हुआ कौपता है। मूत्रसे

भरे हुए नाभिसे नीचे स्थित वस्तिभागको पकड़कर दबाता हुआ वह कराह उठता है। अपानवायुके सहित मल-पिण्ड उसके गुह्यभागसे निकलता है और बूँद-बूँद करके मूत्र टपका करता है। वातज दोषके कारण शरीरमें उत्पन्न हुई अश्मरीरोगका वर्ण श्याम है। उसमें रुद्धता रहती है। देखनेमें वह कौटोंसे बिंधी हुई-सी प्रतीत होती है।

पित्तज दोषके कारण उत्पन्न इस अश्मरीरोगमें वस्तिभाग जलने लगता है। उसमें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे अंदर-ही-अंदर कुछ पका रहा हो। इस पित्त-दोषजन्य अश्मरीरोगका स्वरूप भस्मातक (भिलावेके बोज)-के समान होता है। इसका वर्ण लाल, पीला अथवा काला होता है।

कफजन्य अश्मरी होनेसे वस्तिभागमें पीड़ा होती है। उस स्थानमें भारीपन तथा शीतलताका अनुभव होता है। इस रोगमें उत्पन्न हुई अश्मरी आकारमें बड़ी, बिकनी, मधु (शहद) अथवा श्लेष्मणी होती है। ये तीनों अश्मरी प्रायः बालकोंमें हुआ करती हैं। आश्रय, मृदुता और उपचयकी अल्पताके कारण बालकोंकी अश्मरी ग्रहण करके सुखपूर्वक निकाली जा सकती है।

शुक्रके वेगको रोकनेसे प्राणोंके शरीरमें शुक्राश्मरी नामक भयंकर रोगकी उत्पत्ति होती है। जब धातु-प्रवाहिका नाड़ीसे गिरा हुआ अथवा कुपित कोपं दोनों अण्डकोशोंके बीच रुक जाता है और लिङ्ग-मार्गसे वह बाहर नहीं निकलता, तब वहाँ स्थित विकृत वायु विधुब्ध होकर उसको सुखा देता है, उसी दोषसे इस शुक्राश्मरीका जन्म होता है। इस रोगमें भी वस्तिभागमें पीड़ा होती है। रोगीको मूत्र निर्गत करनेमें कष्ट होता है। इसका भी वर्ण श्वेत माना गया है। इसके कारण मूत्रावरोध होनेसे तत्सम्बन्धी स्थानोंमें सूजन आ जाती है। अण्डकोष और उपस्थेन्द्रियके बीचमें हाथसे दबाया जाय तो वह घिलीन हो जाती है। इस रोगके हो जानेपर रोगीको पीड़ा होती है, उसके दुःखभावसे प्यर हो जाता है, रोगीको खाँसी आने लगती है। इसी अश्मरीरोगके कारण रोगीके शरीरमें शक्कररोगका विकार भी उत्पन्न हो जाता है। यदि इसकी अनुलोम गति होती है तो यह मूत्रके साथ बाहर निकल जाती है अथवा मूत्रके साथ प्रतिलोम-अवस्थामें अंदर ही रुक जाती है। कुछ हुआ वायु वस्तिभागके मुखको रोककर आमाशयके जलस्रोतसे

नीचे आनेवाले उम मलिन जलको एकत्र कर देता है। इस मूत्रके संचित होनेसे वस्तिभागमें विकारकी उत्पत्ति होती है, रोगीको कष्ट होता है और उस भागमें खुजलाहट होने लगती है।

रोगीके शरीरमें विधुब्ध वह वायु वस्तिभागके मुखको विधिवत् ढककर मूत्रावरोध उत्पन्न करता है तथा वस्तिको अपने स्थानसे हटाता हुआ उल्टा या इधर-उधर करके वस्तिमें विकृति उत्पन्नकर गर्भ-जैसा स्थूल (मोटा) बना देता है एवं उस स्थानको पीड़ित करता है। वहाँ उसके कारण जलन होती है। उसमें स्पन्दन होने लगता है और कुल्होंमें भी पीड़ा प्रारम्भ हो जाती है। रोगीका मूत्र विन्दुवत् टपकता है, वह अपने सही वेगसे नहीं निकलता। वस्तिभागमें पीड़ा बनती रहती है। दबायेपर मूत्र धारा-रूपमें निकलता है। वायुजन्य इस रोगको वातवस्तिके नामसे स्वीकार किया गया है।

वस्तिवस्तिके दो भेद हैं—पहला वस्तिके मुखको रोकनेवाला दुस्तर कहलाता है और दूसरा दुस्तरतर। वस्तिके मुखको ऊपर करनेवाला अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य है, क्योंकि इसमें वायुका विशेष प्रकोप होता है। मलमार्ग तथा वस्तिभागके बीच स्थित वायु अश्लीलाकृति अर्थात् गोलककटी या अंडुलीके समान घनीभूत शकिसाली, मज्जवृत्त ग्रन्थि (गौँठ) उत्पन्न करता है, जिसके कारण इसको वाताश्लेला नामसे अभिहित किया गया है। इस रोगमें वायु रोगीके अपानवायु तथा मल-मूत्रको अवरुद्ध कर देता है। वस्तिभागमें विद्यमान कुपित वायु कुण्डली मारकर तीव्र पीड़ाको जन्म देता है। वहाँ मूत्रको रोककर वह उसमें अत्यधिक स्तम्भनका दोष उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्थामें रोगीको बहुत ही अल्प मात्रामें बार-बार मूत्र होता है तथा ऐसी अवस्थामें रोगी मूत्रको अधिक देरतक रोकनेमें असमर्थ रहता है। ऐसे रोगको वातकुण्डलिका कहते हैं। जब रोगी रुके हुए मूत्रको निकालनेमें पीड़ाका अनुभव करता है तो वह निरुद्ध मूत्र-कृच्छ्ररोग है अथवा मूत्रको अधिक कालतक रोकनेके पश्चात् यदि उसका वेग नहीं आता है या रुक-रुककर आता है और कुछ कष्ट होता है तो उसको मूत्रातीत कहा जाता है।

मूत्रके वेगको रोकनेसे प्रतिहत हुआ मूत्र अथवा वायुसे



पीछेको घुमाया हुआ मूत्र जब नाभिके नीचे उदरमें भर जाता है, तब वह तीव्र वेदना और आध्मान पैदा करता है और मलका संग्रह करता है। इसे मूत्रजठर कहते हैं। मूत्रके दोषसे अथवा कुपित वायुके द्वारा आक्षिप्त हुआ थोड़ा-सा मूत्र वसित, नाल, उपस्थकी मणिमें स्थित होकर थोड़ा-थोड़ा दर्द करता हुआ अथवा बिना दर्दके ही निकलता है, इसे मूत्रोत्सर्ग या मूत्रजठर कहते हैं।

अबाधगतिसे मूत्रोत्सर्ग होना प्राणीके श्रेष्ठ अण्डकोषोंपर निर्भर होता है। एकाएक रुका हुआ मूत्र निकल जानेपर अन्तःकरण और मुख शुष्क हो जाता है। अधिकाधिक या अल्प मात्रामें प्राणीको प्यास लगती है। वसितके आध्मानर भागमें मूत्रावरोधके कारण अश्मरीके सदृश एक द्रव्य पड़ जतये है, जिसको मूत्रग्रन्थि कहते हैं। मूत्र-रोग-ग्रसित रोगीका जब स्त्रीके साथ सहवास होता है तो उस समय वायुके द्वारा ही स्त्रीके गर्भाशयमें शुक्र पहुँच जाता है, किंतु स्थान-विरोधसे निकला हुआ वह शुक्र मूत्र-क्षरण होनेसे पहले अथवा बादमें लिंगसे बाहर आता है। इसका स्वरूप भस्ममिश्रित जलके समान होता है। उसको वैद्यकमें मूत्रशुक्रके नामसे जाना जाता है।

जब रुधिरा और दुर्बलताके कारण वातजन्य दोषसे उदावर्त उपद्रव्य होता है अर्थात् शरीरके अंदर विद्यमान अपानवायु व्यानवायुसे घिर जाता है अर्थात् मलावरोध हो उठता है तो उस कालमें वह मल-मूत्र स्रोतकी संसृष्टिसे

संयुक्त हो जाता है। इसमें मूत्र बूँद-बूँद ही होता है और इस टपकनेवाले मूत्र-बिन्दुओंमें एक दुर्गन्ध-सी रहती है। ऐसे रोगको मूत्रविघातके नामसे स्वीकार किया जाता है।

पित्त, व्यायाम, तीक्ष्ण और अम्लाहार तथा आध्मान (पेट फूलने) अथवा अन्य विकृतिथीके द्वारा शरीरके आभ्यन्तरिक भागमें बढ़ा हुआ पित्त-वायु-विकार वसितभागमें दाह उत्पन्न कर देता है, जिसके कारण रक्तयुक्त मूत्र निकलता है अथवा उष्ण रक्त ही उसकी मूत्र-प्रवाहिकासे बार-बार कष्टपूर्वक गिरता है। इस प्रकारके कष्टको उत्पन्न करनेके कारण लोंगोंने उस रोगको उष्णवातकी संज्ञा दी है।

रुध्नेहार तथा परिश्रम करनेसे श्रान्त रोगीका पित्त और वायु कुपित हो उठता है। वह उसके वसितभागमें मूत्रावरोध, थोड़ा, क्षय और जलन उत्पन्न कर देता है। उस लक्षणसे युक्त मूत्रापात-कष्टको मूत्रक्षय कहा गया है।

यदि कुपित वायुके द्वारा पित्त और कफ अथवा इन दोनोंकी संकुल्य कर दिया जाता है तो उस समय प्राणीको जलन, कष्टसाध्य मूत्र-निर्गमन होता है। उसके मूत्रका वर्ण पीला, रक्त तथा श्वेत हो जाता है और उसमें गाढ़ापन भी आ जाता है। वसितभागमें दाहभरी जलन होती है। जो मूत्र निकलता है, उसका वर्ण सूखे गोरोवन तथा राख-चूर्णके समान होता है। इस रोगको कच्छमूत्रसाद कहते हैं। इस प्रकार विस्तारपूर्वक मूत्रमें होनेवाले रोगोंको भी मैंने बतलाना दिया है। (अध्याय १५८)

### प्रमेहरोग-निदान

धन्यतरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको प्रमेह-रोगीका निदान सुनाऊँगा, उसे सुनें।

प्रमेह बीस प्रकारके होते हैं। उनमें दस प्रमेह कफजन्य, छः प्रमेह पित्तजन्य और चार प्रमेह वातजन्य हैं। इन सभीमें मेद, मूत्र और कफको संसृष्टि होती है।

प्रमेहका सबसे पहला प्रकार हारिद्रमेह है। इस प्रमेहके होनेपर रोगीको कटु, रसमिश्रित मूत्र हल्दीके समान मल-मूत्र होता है। इस प्रमेहका दूसरा प्रकार मंजिष्ठांमेह है। मंजिष्ठांमेहके होनेपर मंजिष्ठ (पवीट)-वर्णके जलके सदृश होता है। इसका तीसरा प्रकार है रक्तमेह। इस रक्तमेहके होनेपर रक्तवर्णकी आभावाला कच्चे मांसको गन्धसे समन्वित

उष्ण तथा लवण-तत्त्व-मिश्रित मूत्र होता है। इसमेहमें चर्बी-मिल्ल हुआ मूत्र अथवा केवल चर्बी ही बार-बार निकलती है। इससेयुक्त मज्जामेही क्वथिक वर्ण और गन्धमें समानता रखनेवाले मज्जा-तत्त्वसे संश्लिष्ट मूत्रत्याग करता है।

जब प्राणी मतवाले हाथीके समान असंयमित वेगसे अधिक समयतक मूत्र निकालता है, जिसके साथ एक चिपचिपा पदार्थ भी आता है और यह यदा-कदा बीच-बीचमें रुक भी जाता है तो उस रोगीको हस्तिमेही मानना चाहिये। हस्तिमेह प्रायः वृद्धावस्थामें होता है। जब व्यक्तिको मधुके समान मूत्र होता है अर्थात् उस मूत्रमें शरीरके अंदर विद्यमान मधुर रसका तत्त्व आने लगता है तो उसे मधुमेहों

\*\*\*\*\*

कहा जाता है। यह दो प्रकारका माना गया है। एक तो धातुके क्षीण होनेपर वायुके कुपित होनेसे तथा दूसरा पितादि दोषसे वायुका मार्ग रुक जानेसे।

इस प्रमेहमें घिरा हुआ रोगी प्रायः अन्य सभी दोषजन्य प्रमेहोंके लक्षणोंसे संयुक्त हो जाता है। ऐसे रोगीमें अन्य दोषोंके लक्षणोंका अगमन कोई कारण नहीं रखता। यह रोग तो अपनी प्रचलताके प्रभावसे उन्हें बिना निमित्तके ही रोगीके शरीरपर प्रकट कर देता है। यह ऐसा प्रमेह है कि क्षणमात्रमें नष्ट हो सकता है और क्षणमात्रमें ही अपने पूर्व बलके साथ उभर सकता है। अतः रोगीको चाहिये कि वह कष्ट उठाकर भी इस वर्गभेदवाले मधुमेहरोगका निदान कर ले। इसकी सामयिक उपेक्षा कर देनेपर प्राणीके शरीरका सब कुछ मधुमेहताको ही प्राप्त कर लेता है अर्थात् शरीरके समस्त स्रोतोंमें इसका विकार पहुँच जाता है और एक दिन मधुमेहके अतिरिक्त कुछ शेष ही नहीं रह जाता तथा उसकी असामयिक मृत्यु हो जाती है। इसका विस्तार हो जानेपर सभी प्रकारके मेहरोगोंमें रोगी प्रायः मधुके समान ही गाढ़ा मूत्र नलीसे निकलता है। शरीरमें जो मधुरता है, वह मधुरता इन सभी प्रमेहोंमें नष्ट होती है, इसलिए इन सभी प्रमेहोंको मधुमेह ही कहा जाता है। इस प्रमेहरोगमें रोगी अपच, अरुचि, वमन, अनिद्रा, खाँसी और पीनसके उपद्रवसे ग्रस्त हो जाता है।

कफजन्य प्रमेहमें वस्ति तथा मूत्रालय-भागमें पौड़ा, हट-पुष्ट शरीरका क्षरण और ज्वरके उपद्रव जन्म लेते हैं। पित्तप्रमेह होनेपर रोगीके शरीरमें दाह, तृष्णा, खट्टो डकार, मूर्च्छा, अतिसार एवं मलभेदका विकार होता है। यत्न प्रमेहमें उदावर्त, कम्पन, इदम्यत्वेदना, बेचैनी, सूख, अनिद्रा, शुष्कता, श्वास तथा खाँसीके विकार पैदा हो जाते हैं।

शराविका, कच्छपिका, ज्वालनी, विवत, अलजी, मसूरिका, सर्पपिका, पुत्रिणी, सविदारिका और विद्वधि नामक दस प्रकारकी फुंसियाँ प्रमेह-रोगोंकी उपेक्षा कर देनेपर उत्पन्न होती हैं।

प्रायः कफजन्य दोषसे संश्लिष्ट होनेके कारण छाया हुआ अथ प्रमेहरोगके रूपमें परिणत हो जाता है। उसका

रस मूत्रके मार्गसे निकल जाता है। मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, भारी, चिकना और शीतल पेय, नया चावल, मदिरा, मिर्च-मसाला, मांस, इक्षुरस, गुड़, गोरसके सेवन, एक स्थान और एक आसनपर स्नान इस मधुमेहरोगके उत्पादक हैं। इस प्रमेहरोगके होनेसे कफ वस्तिभागमें पहुँचकर उसको दूषित कर देता है। तदनन्तर वह स्वेद, मेदा, वसा और मांससे युक्त शरीरको दूषित करके शिथिल बना देता है।

जब कफ पहले क्षीण हो जाता है तो वायु मूत्रके सहित पित्त, रक्त और धातुको वस्तिभागमें लाकर उसका वहींपर विनाश करता है। साध्य-असाध्य प्रतीत होनेवाले जो मेह हैं, वे सभी इसी वायु-विकारसे ही उत्पन्न होते हैं। जब वायु, पित्त और कफकी मात्रा निर्दुष्ट होकर समान रहती है, तब मेह भी समान-भावसे रहता है।

उक्त प्रमेह-भेदोंका सामान्य लक्षण तो प्रचुर मात्रामें विकृत मूत्रका होना है, किंतु शरीरमें उस विकारके संयुक्त होते ही विशेष परिस्थितिमें भी पड़े हुए मनुष्यके लिये अपेक्षित है कि उस दोषका निवारण कर ले। मूत्रके वर्णादिक लक्षणोंके अनुसार इन प्रमेहरोगोंमें भेदकी कल्पना की जाती है। यह मेहरोग दस प्रकारका है। सामान्यतः मूत्र स्वच्छ, अत्यन्त श्वेत, शीतल, गन्धहीन तथा जलके समान होता है, किंतु जो प्राणी उदकमेहसे ग्रसित है, वह कुछ घटमैले और विषाचिपे मूत्रका क्षरण करता है। इक्षुमेह-रोगीके शरीरसे इक्षुरसके समान अत्यन्त मधुर मूत्र निकलता है। सान्द्रमेहसे प्रभावित रोगी कभी रखे हुए जलके समान मूत्र छोड़ता है। सुरामेही रोगीका मूत्रस्त्राव सुरा (मदिरा)-के सदृश होता है, जो ऊपरसे देखनेमें स्वच्छ तथा सान्द्र प्रतीत होता है, किंतु अंदरसे गाढ़ा रहता है। पित्तमेहसे ग्रसित रोगीको प्रायः मूत्रस्त्रावके समय रोमाञ्च हो उठता है। वह तण्डुलमिश्रित जलके समान अत्यन्त श्वेत मूत्रका परिष्ठाण करता है। जो शुक्रमेही है, उसको शुक्रमिश्रित अथवा शुक्रके समान वर्णवाला मूत्र गिरता है। सिकता अर्थात् रेतमेहसे पीड़ित व्यक्तिको रेतके समान ही मूत्र तथा उसके सदृश मल अथवा विकार हो जाता है। शीतमेही

रोगीको प्रायः अधिक मात्रामें मधुर और अल्पतः शीतल मूत्र गिरता है। जो रोगी शनैर्महो विकारसे संतप्त होता है, वह धीरे-धीरे, बार-बार, मन्द-मन्द गतिसे मूत्र-क्षरण किया करता है। लालामेही रोगी लालातनु अर्थात् लारके समान तर बनानेवाले चिपचिपे मूत्रकी धार छोड़ता है। क्षरमेह<sup>१</sup> होनेपर रोगी गन्ध, वर्ण, रस तथा स्पर्शमें समान क्षारपुक्त मूत्र करता है। नीलमेही नीलवर्णके समान और मसो अर्थात् म्याहीके सदृश कृष्णवर्णवाले मूत्रका परित्याग करता है।

संधिस्थान<sup>२</sup>, मर्मस्थल, मांसलभाग तथा कोष्ठ-प्रदेशोंमें जो प्रमेहपिडिका होती है, वह अन्तमें उन्नत, मध्यमें निम्न, आर्द्रतासे रहित और सहन करनेवाली पोड़ासे समन्वित होती है।

जो पिडिका (फुंसी) किन्नारोंपर ऊँची, बीचमें नीची, श्यामवर्ण, क्लेद और वेदनासे युक्त होती है तथा जिम्मेकी शराव (मिट्टीका कसोरा)-के समान स्थिति और आकृति होती है, उसे शराविका कहते हैं। जो पिडिका कछुएके समान होती है और उसमें जलन रहती है, उस पिडिकाको विद्वान् लोग कच्छपिका नामसे स्वीकार करते हैं। बहुत बड़ी नीलवर्णके समान दिखायी देनेवाली पिडिकाको विनताके नामसे माना गया है। शरीरमें जिस पिडिकाके उभर आनेसे त्वचामें जलन होती और रोगी कष्टका अनुभव करता है, उस पिडिकाको ज्वालिनी कहा जाता है। रक्त-क्षेत तथा स्फोटका रूप धारण करनेवाली कठोर पिडिकाका नाम अलजी है। जो पिडिकाएँ मसूरके समान आकृतिवाली हैं, उन्हें मसूरिकाके नामसे जानना चाहिये। जिह्वामें सरसंकि समान छोटे-छोटे उभरे हुए दानोंकी सर्पिका कहा जाता है, जो रोगीको अत्यधिक कष्ट देते हैं। पुत्रिणी नामक पिडिका बड़ी अथवा छोटी होती है। यह अल्पतः सूक्ष्म भी हो सकती है। जो पिडिका विदारीकन्दके समान गोला तथा कठोर होती है, उसका नाम विदारिका है। विद्रुधिके लक्षणोंसे युक्त अर्थात् पीपसे युक्त पिडिकाको विद्रुधिका कहा जाता है।

पुत्रिणी और विदारी नामक प्रमेहजनित पिडिकाएँ

अल्पतः कष्टकारी होती हैं। सद्यः पित्तके प्रकुपित होनेसे मेदको अल्प मात्रामें विकृत करनेवाली अन्य पिडिकाएँ उत्पन्न होती हैं। प्रायः शरीरमें जैसे-जैसे दोषकी अभिवृद्धि होती है, वैसे-ही-वैसे उन सभी पिडिकाओंका आविर्भाव होता है। मेदको विकृत करनेवाली इन पिडिकाओंका जन्म तो बिना प्रमेहके भी हो सकता है। जबतक पिडिका वर्णरहित होती है, तबतक उसके प्रधान लक्षणको निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। जो हल्दीके समान अथवा रक्तवर्ण या प्रारम्भिक स्वरूपका परित्याग करनेवाले रक्त मूत्रका क्षरण करता है, उसको प्रमेहरोगके बिना रक्तपित्तरोग जानना चाहिये। रक्तपित्तरोगके प्रभावसे ही मूत्रका रंग हरिद्रा एवं रक्तवर्णका हो जाता है।

प्रमेहरोगका<sup>३</sup> पूर्वरूपमें स्वेद, अङ्ग-विशेषमें अप्रिय गन्ध और अङ्गोंमें शिथिलता, शय्या, भोजन, निद्रा तथा सुखकी आसक्ति, हृदय, नेत्र, जिह्वा एवं कानोंमें असाधारण या साधारण भारीपन, जलन, घाल और नाखूनोंमें अभिवृद्धि, शीतल पदार्थोंके प्रति प्रेम, कण्ठ तथा तालुमें शोथ, मुखपर माधुर्यभाव और हाथ-पैरमें जलनके लक्षण दिखायी देते हैं। शब्दः इन सभी प्रमेहरोगीके रोगीके द्वारा किये गये मूत्रपर चीटियाँ दौड़ने लगती हैं।

प्रमेहरोगमें पुष्पा, मधुरता तथा विकनाहटका लक्षण तो सामान्य है, किन्तु मधुमेह होनेपर अनेक प्रकारके विकारोंका जन्म हो जाता है। शरीरमें इस रोगके परिख्याप्त होनेपर इसकी उत्पत्तिका कारण कफजन्य मानना चाहिये अथवा सभी दोषोंके क्षीण हो जानेपर यदि प्रमेहका कोई विकार दिखायी देता है तो वह वायुजन्य होता है। प्रमेहके ये सभी प्रकार तो कफ और पित्तसे युक्त होते हैं, यथाक्रम जिनकी उत्पत्ति रति-प्रसंगकी आसक्तिके कारण रोगीके मूत्र-भागमें होती है। जो प्रमेह पित्तदोषके कारण उत्पन्न होते हैं, वे घाव्य हैं। साध्य वही प्रमेय होता है जो अपने सम्पूर्ण लक्षणोंसे समन्वित होकर रोगीके शरीरमें दिखायी नहीं देता। यदि वह सभी लक्षणोंसे पूर्ण हो जाता है तो उसका

निवारण असम्भव हो है। (अध्याय १५९)

## विद्रधि एवं गुल्म-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुव्रत ! अब मैं विद्रधि और गुल्मका निदान कहता हूँ, उसे आप सुनें।

बासी एवं अत्यन्त उष्ण, रुक्ष, शुष्क तथा विदाहकारी भोजन करनेसे, टेढ़ी-मेढ़ी जव्यापर टेढ़ा-मेढ़ा लपन करनेसे तथा रक्तको दूषित करनेवाले विरुद्ध आहार-विहारसे रक्त दूषित होकर बमड़ा (त्वक्), मांस, मेदा, अरिष्ट, स्नायु एवं मज्जाको दूषितकर यह उदरका आश्रयण करता है। दुष्ट रक्त जब उदरका आश्रयण करता है तो अङ्ग-विशेषमें (बाहरकी ओर मुँहवाला अतिशय शूलके साथ और अतिशय पीड़ासे युक्त वृत्ताकार अथवा भीतरकी ओर मुँहवाला आयताकार) जो शोथ उत्पन्न हो जाता है, आयुर्वेदवेत्ता वैद्यगण उसे विद्रधिरोग<sup>१</sup> कहते हैं।

दोषोंके द्वारा (वायु, पित्त आदिके) भिन्न-भिन्न रूपमें या मिश्रितरूपमें रक्त एवं स्वावके तत्तत् अङ्गमें ग्रन्थिके आकारका विद्रधिरोग अतिशय दारुण, गम्भीर और गुल्मको बढ़ानेवाला होता है। वह चल्मीक अर्थात् दीमकके धरके समान सच्छिद्र होता है और सभी छिद्रोंसे सदा रक्त आदि बहता रहता है, इससे ज्वराम्नि मन्द हो जाती है। नाभिवृत्ति, यकृत, प्लीहा, क्लोम (युक्क), कुक्षि, गुद एवं वक्षज आदि स्थानोंमें विद्रधिरोग उत्पन्न होनेपर रोगीका हृदय सदा काँपता रहता है और विद्रधि-स्थानमें तीव्र वेदनाकी अनुभूति होती है।

विद्रधिका शोथ श्यामवर्ण अथवा रक्तवर्णका होता है। इसका ऊपरी भाग उन्नत रहता है। कालान्तरमें पाक हो जानेसे यह विषम आकारका हो जाता है। विद्रधिरोगमें संज्ञा-नाश, भ्रम, अनाह, रक्तस्राव और अव्यक्त शब्द होता है। पित्तज विद्रधि रक्त (साल), ताम्र अथवा कृष्णवर्णका शीघ्रपाकी होता है। इसमें तृषा, दाह, मोह, ज्वर, बेहोशी तथा जलन आदि उपद्रव होते हैं। कफज विद्रधि तेजोसे उभरता है एवं शीघ्र पक जाता है, पीला हो जाता है और खुजलाहटसे युक्त अरुचि, स्तम्भ रहता है। सत्रिपातजन्य विद्रधिमें अधिक क्लेश, शीत, स्तम्भ (जकड़न), जृम्भण (जम्साई), अरुचि, शरीरका भारीपन आदि सभी लक्षण व्यक्त होते हैं। सत्रिपातिक (त्रिदोषजन्य) विद्रधि चिरकालमें उत्पन्न

होता है और उसका पाक शीघ्र नहीं होता।

बाह्य और आभ्यन्तरिक विद्रधिमें मल पतला होता है सत्रिपातक विद्रधि कृष्णवर्ण, स्फोटायुत और श्यामवर्णक होता है। उसमें रोगीको अधिक दाह, विद्रधि-स्थानमें पीड़ा और तीव्र ज्वर हो जाता है।

बाह्य विद्रधि प्रायः पित्तज और रक्तज होती है। गर्भाशयगत रक्तज अन्तर-विद्रधि केवल नारियोंको ही होती है। शस्त्र आदिके अभिघातसे अधिक रक्तके बहनेपर यह रोग उत्पन्न हो जाता है। किसी स्थानके कटनेपर वायुके द्वारा परिचालित रक्त पित्तको प्रेरित करता है, जिससे रक्त-पित्त लक्षणवाला विद्रधिरोग उत्पन्न होता है। यह अत्यन्त उपद्रवकारी होता है। स्थान-भेदसे उपद्रवोंका भेद कहा जाता है। नाभिमें विद्रधिरोग होनेपर उसकी भीकनीकी तरह गति (हिचकी) होती है। वस्ति और मूत्राशय आदिमें विद्रधि होनेपर मूत्र-त्यागमें दुर्गन्ध बहुत तथा क्लेश अधिक होता है। प्लीहा-स्थानमें विद्रधि होनेपर श्वास-प्रश्वासका रोध हो जाता है और अत्यन्त प्यास लगती है। क्लोम-स्थानमें विद्रधि उत्पन्न होनेपर गलेका रोधतृषा होने लगती है। हृदयमें विद्रधि होनेपर सर्वाङ्गमें वेदना होती है। मोह, तमक, श्वास, काससे हृदयकी शून्यताका बोध होता है। कुक्षि और पार्श्विके आभ्यन्तरमें विद्रधि उत्पन्न होनेपर कुक्षिमें अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं तथा ऊरु, संधि, धट्ट, वक्षज, कटि, पीठ, बगल तथा नितम्ब—इन स्थानोंमें विद्रधिके उत्पन्न होनेपर अपानवायु-अवरोध होकर अत्यन्त वेदना होने लगती है। विद्रधिके कच्चे होनेपर, पक जानेपर अथवा सूजनके आधारपर आगेकी स्थितिका निर्देश करना चाहिये। आन्तर विद्रधि यदि नाभिसे ऊपर ऊर्ध्वमुख है तो मषाद एवं रक्तका स्राव मुखसे होता है और नाभिके नीचे होनेपर गुदामार्गसे स्राव होता है तथा नाभिमें होनेपर दोनों ओरसे होता है। उच्च विद्रधिमें दोष क्लेदके समान जानना चाहिये। सत्रिपातज विद्रधि अपने स्थानमें अनेक प्रकारके विवर्तको उत्पन्न कर देता है। नाभि और वस्तिमें स्थित विद्रधि अन्तर्गत या बाह्यगत किसी भी प्रकारका हो, वह निश्चित हो पककर फटता है। उसका परिपाक विद्रधि



बढ़नेपर होता है, यह विद्रधि क्षीण होनेपर भी अनेक प्रकारके उपद्रवको जन्म देती है। दुष्ट स्वभाववाली एवं पापिनी स्त्रीकी गर्भगत संतान यदि नष्ट हो जाती है तो गर्भमें अधिक सूजन उत्पन्न होती है। स्त्रियोंके स्तनमें जो विद्रधि होती है, वह अतिशय दुःखप्रद होती है। यह बाह्य विद्रधिका लक्षण है। कन्याओंकी नाड़ियाँ अतिशय सूक्ष्म होनेके कारण उन्हें यह स्तनविद्रधि रोग नहीं होता है। यह अपानवायुकी गतिरोध होनेपर कुछ वायु सिंगमूलमें सोध उत्पन्न करता है तथा मुष्क एवं वंशजगत फलकोशतक जानेवाली फल्कोटकी शिराओंको पीड़ितकर उसमें वृद्धि करता है। इससे मेदामें दोष उत्पन्न होता है। यह वृद्धिरोग है, जो सात प्रकारका होता है—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मेदज, मूत्रज और आन्त्रज। वातज वृद्धिरोगमें मूत्र वातपूर्ण, कठोर स्पर्शवाला तथा बाह्य और आभ्यन्तरिक एवं रूक्ष वायुके कारण जलन पैदा करनेवाला होता है। पित्तज वृद्धिरोग पके हुए गूलरके फलके समान दाह और उष्मासे युक्त होता है और पक जाता है। कफज वृद्धि कफजन्य होती है, वह तीव्र, गुरु, स्निग्ध और कठोर तथा सूजलीसे युक्त रहती है। इसमें अल्प वेदना होती है। रक्तज वृद्धि, कृष्णवर्ण, स्फोटसे युक्त, पिण्डके समान होती है और उसके वृद्धिका लक्षण पित्तजके समान होता है। मेदज वृद्धि मृदु और तालफलके समान होती है। इसके लक्षण कफजके समान होते हैं। जो मूत्रके वेगको धारण करते हैं, उनकी मूत्रज वृद्धिरोग उत्पन्न होता है। इसमें मूत्रकृच्छ्र हो जाता है। मूत्रज वृद्धिमें अण्डकोष मसकके समान हिलता है। यह वेदनायुक्त और मृदु होता है। इसमें मूत्रकृच्छ्र हो जाता है और अण्डकोषके नीचेके भागमें कंकण-जैसा आकार उत्पन्न हो जाता है। आन्त्रज वृद्धिरोग वायुको कुपित करनेवाले आहारसे और शीतल जलमें स्नान करने तथा मल-मूत्रके वेगको रोकनेसे, अङ्गकी घेष्टाओंसे क्षुब्ध किये जानेपर जब ओजशक्ति क्षुब्ध होकर शरीरको क्षीण कर देती है, तब वायु दूषित होकर रक्तको नोचेंकी ओर ले जाता है। इससे संधि-स्थानमें ग्रन्थिके समान शोथ हो जाता है।

वृद्धिरोगकी उपेक्षा करनेपर गुल्म-वृद्धि, अन्न-वृद्धि, आध्मान आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी अत्यन्त पीड़ित हो जाता है। आभ्यन्तरमें शब्द होने लगा

है और वायु शिरःप्रदेशमें आध्मान हो जाता है। रक्तज गुल्म वृद्धिरोग असाध्य है और इसके लक्षण वातज वृद्धिरोगके समान होते हैं। गुल्म वृद्धिरोग काली-नीली शिराओंके जालसे उसी प्रकार व्याप्त हो जाता है, जैसे कोई झरोखा मकड़ोंके जालसे आवृत हो जाता है। यह गुल्मरोग आठ प्रकारका होता है—वातिक, पित्तिक, श्लेष्मिक, वातपित्तिक, वातश्लेष्मिक, पित्तकफ और (त्रिदोषज) सन्निपातिक। क्षुब्धमन्वन्धित रक्तके दूषित होनेपर आठवाँ (आतवदोषज) गुल्म केवल स्त्रियोंके गर्भाशयमें होता है।

जो मनुष्य ज्वर, मूर्च्छा, अतिसारके द्वारा एवं यमन-विरचनारि पञ्चकर्मके द्वारा दुर्बल हो तथा खातकारक अथवा भोजन करे, जो शीतसे अथवा भूखसे पीड़ित हो और भोजनसे पूर्व खाली पेट अधिक जल पीये अथवा जलमें तीरे एवं देहको क्षुब्ध करनेवाला उपवास करे तथा यमनका वेग न होनेपर भी यमन करनेका प्रयास करे, स्नेहन, स्वेदनके बिना यमन, विरेचन आदि करे अथवा ठीक प्रकारसे शुद्धि कर्मके बिना वात-विद्रधि अथवा सेवन करे या कष्ट देनेवाले सवारीपर चढ़े तो सम्पूर्ण वातादि दोष अलग-अलग या एक साथ मिलकर देहस्रोत (आम पक्वाशय)-में गमन करते हैं और ऊर्ध्व-अधोमार्गको आच्छादित या निरोध करके वायुशूल उत्पन्न करते हैं। ऐसी दशामें छूनेसे अनुभूयमें आनेवाला, गरम, ऊँचा उठा हुआ तथा गाँठ-जैसा गुल्मरोग उत्पन्न हो जाता है।

धतुके क्षीण हो जानेसे कफ, विद्रादिके द्वारा मार्ग अवरुद्ध हो जानेसे वायु कोष्ठमें स्थित हो जाता है और रुधिराके कारण कठोर हो जाता है। यह अपने आश्रय (अथवा पक्वाशय)-में स्वतन्त्र रूपसे दुष्ट हो जाता है और पराश्रय (आमाशय)-में परतन्त्र-भावसे (कफादिके अधीन) दुष्ट हो जाता है। तदनन्तर मल एवं श्लेष्मासे संयुक्त होनेके कारण पिण्ड-जैसा हो जाता है। इसे वातगुल्म कहते हैं। यह वस्ति, नाभि, हृदय और पसलियोंमें उत्पन्न होता है। वातज गुल्मरोगमें सिरमें पीड़ा, ज्वर, प्लीहा, आन्त्रकूजन, सूईके वेधके समान पीड़ा—ये सभी उपद्रव होते हैं और बहुत कष्टसे मूत्र होता है। उक्त रोग वायुचालित होकर शरीर, मुख, पैर, शोथ, अग्निमान्द्य आदि उपद्रवको उत्पन्न करता है। विशेषतः शरीरमें चमड़ा रूक्ष और कृष्णवर्णका

हो जाता है। वायुके चञ्चल होनेके कारण गुल्मरोगका कोई निर्दिष्ट एक स्थान नहीं है। अतः यह अनेक प्रकारकी व्यष्टाई उत्पन्न करता है। वतज गुल्मरोगमें चौंटीके चढ़ने या काटने-जैसा स्फुरण होता है और चुभनेकी तरह व्यथा होती है।

पित्तज गुल्मरोगमें दाह, अम्लोदगार, मूर्च्छा, मलभेद, पसीना, तृष्णा और ज्वर—ये सभी उपद्रव होते हैं। सम्पूर्ण शरीर हल्दीके वर्णका हो जाता है। इस रोगमें शोथ भी हो जाता है और श्लेष्मा घटता-बढ़ता रहता है। गुल्मके स्थानमें जलन-सी प्रतीत होती है।

कफज गुल्मरोगमें स्तैमित्य, अरुचि, सिरमें वेदना और अङ्गोंमें शिथिलता, शीतज्वर, पीनस, आलस्य, इत्यास, चमड़ेका सफेद या काला होना आदि लक्षण होते हैं। कफज गुल्म गम्भीर, कठिन और गर्भस्य बालकके समान भारी होता है। अपने स्थानमें स्थित रहने तथा वहाँसे न चलनेके कारण यह मृत्युकारक होता है।

त्रिदोषजन्य गुल्मरोगमें प्रायः एक-दूसरेके लक्षण घुले-मिले रहते हैं। इसमें तीव्र वेदना और अतिरस दाह होता है। यह अतिशय उन्नत और सघन होकर शीघ्र ही पक्व जाता है, तथा असाध्य है।

रक्तगुल्म स्त्रियोंकी ही होता है। जिस स्त्रीकी श्लुत्कालमें अतिशय वेदना या किसी प्रकारका योनिरोग रहता है अथवा वायुकारक पदार्थोंको सेवन करनेसे वायु कुपित होकर प्रतिमाह व्यवस्थित श्लुत्कालकी योनिमें हो रोक देता है तो वह रुका हुआ रक्त कुक्षिमें जाकर गर्भके चिर्बोंको प्रकट करता है। इस रोगमें इत्यास, गर्भिणी-जैसी इच्छा, स्तनमें दुग्ध-दर्शन, कामाचारिता आदि लक्षण प्रकाशित

होने लगते हैं। क्रमशः वायुके संसर्गसे पित्त योनिमें रक्तका संघर्ष करता है। शोणित जब गर्भाशयका आश्रय करता है, तब वात-पित्तज गुल्मके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह दुष्ट रक्तका आश्रय लेकर गर्भाशयमें अत्यन्त शूल उत्पन्न करता है। योनिमें स्त्राव, दुर्गन्ध, कभी-कभी स्पन्दन और वेदना होती है। कभी-कभी यह गुल्म गर्भ-जैसा हो जाता है।

दुष्ट रक्त एवं दुष्ट आश्रयके कारण यह विद्रधि गुल्म कभी ढेरमें पकता है, कभी नहीं पकता है और कभी जल्दी पक्व जाता है। अतः शीघ्र दाह पैदा करनेवाला होनेके कारण यह विद्रधि गुल्म कहा जाता है। अन्तराश्रय गुल्ममें वसित, कुक्षि, हृदय और प्लीहामें वेदना होती है। ज्वरान्ति और बलका नाश हो जाता है। मल-मूत्रादिका वेग रुद्ध हो जाता है। बाहिराश्रय गुल्ममें इसका उलटा होता है अर्थात् वसित, कुक्षि आदिमें वेदना अधिक नहीं होती, वेगका प्रवर्तन होता है। गुल्म-स्थानमें विषर्णता और बाहरके भागमें अत्यधिक ऊँचपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऊपर-नीचे वायुरोधके कारण तीव्र वेदना और उदरमें आध्मान होता है। इसे अन्नाहरोग कहते हैं। जो घन्थि ऊपर उठी होती है तथा कर्तार अङ्गुलीकी तरह होती है, उसे अङ्गुली विद्रधि कहते हैं। उसको आकृति यदि सम्पन्न बिहोंसे युक्त एवं तिरछी हो तो उसे प्रत्यङ्गुली कहते हैं। पक्वाशयमें उत्पन्न होनेवाला वायु तीव्र वेदनासे युक्त होकर डकारोंकी अधिकता, शौचका विषम्य, भोजनकी अनिच्छा, औतोंका सूजन, आटोप आध्मान, अग्निमान्द्य—ये सब उत्पन्न होनेवाले गुल्मके पूर्व संकेत हैं। (अध्याय १६०)

## उदररोग-निदान

धन्यन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं उदररोगका निदान कहूँगा, सुनो! मन्दाग्नि होनेपर सभी प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं और उदररोग विशेषकर मन्दाग्निसे ही होते हैं।

उदरमें मल संचित होनेपर अजीर्ण आदि भिन्न-भिन्न रोग, ऊर्ध्व और अधोगति वायुके अवरोध होनेसे सभी प्रवाहिणी नाड़ियाँ अकर्मण्य हो जाती हैं। प्राणवायु अपनादि

वायुको दूषितकर उनको मांससंधिमें प्रविष्ट कर देती है। इससे कुक्षिस्थान अवरुद्ध होकर उदररोग उत्पन्न होता है। उदररोग आठ प्रकारके हैं—घातज, पित्तज, कफज, सज्जिघातज, सलिलजन्य, प्लीहाजन्य, बद्धोदर-वृद्धि और क्षतजन्य। उदररोग होनेपर हाथ-पैर तथा पेटमें सूजन आ जाती है। शारीरिक चेष्टा, बल और आहार कम हो जाता है। शरीर दुर्बल हो जाता है और अफरा हो जाता है।

इस रोगसे ग्रस्त व्यक्तिका आकार प्रेतके समान विकृत हो जाता है।

उदररोगका पूर्व लक्षण भूख-नाश, अरुचि, पाकके समय दाह आदि होता है। ऐसा रोगी अपच्यका सेवन करता है। उदररोगसे बलक्षय हो जाता है। अतः रोगीके छोड़ा कार्य करनेपर श्वास-प्रश्वासकी वृद्धि हो जाती है। किसी भी विषयमें उसकी वृद्धि प्रवेश नहीं कर पाती और शोक एवं शोथ आदि हो जाते हैं। उदररोगी थोड़ा खानेपर भी वस्तिसंधिमें निरन्तर पीड़ाका अनुभव करता है। सभी प्रकारके उदररोगमें रोगी वृद्धावस्थाके समान जीर्ण हो जाता है और बलहीन हो जाता है। तन्द्रा, आलस्य, मलवेग, मन्दाग्नि, दाह, सूजन और आध्मान—ये सभी जलोदरके लक्षण हैं। सब प्रकारका जलोदररोग मृत्युकारक है। इसलिये उसके लिये शोक करना व्यर्थ है। उदररोगमें रोगीका उदर गवाक्षकी तरह शिरोजालसे व्याप्त हो जाता है और सदा गुड़गुड़ शब्द होने लगता है।

उदररोगमें वायु नाभि और अंतमें विटम्बता उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है। वायुजन्य उदररोगमें हृदय, नाभि, कटि, पायु, वक्षः—इन सभी स्थानोंमें पीड़ा करके स्वयं वायु शान्त हो जाता है। शब्दके साथ वायु निकलने लगता है एवं अल्प परिमाणमें ही मूत्र होता है। उसकी किसी भी विषयमें चञ्चलता नहीं रहती और मुख सदा उदास रहता है। वातोदरमें हाथ-पैर, मुख और कुक्षिमें शोथ हो जाता है। उदर-पार्श्व तथा कटि और घुट आदि स्थानोंमें पीड़ाका अनुभव होता है और जोड़ोंमें दर्द रहता है। शुष्क कास, शरीरमें पीड़ा, अपोभागमें गुरुता, मलसंग्रह, शरीरमें श्यामवर्णता या अरुणवर्णता आ जाती है एवं मुँहमें बार-बार पानी आता है। पेटमें नीली और काली शिराएँ उभर जाती हैं और व्यथा होती है तथा वषट्पानेपर मजक-जैसा शब्द करता है। उदरमें वेदनाके साथ स्रग्ध वायु चारों तरफ घूमती है। पित्तजनित उदर-रोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमें कटुता, अतिसार, त्वचा, नख आदिपर पीलापन, उदरपर हरापन एवं पीली और ताववर्णकी

शिराएँ अधिकतासे दीखती हैं तथा ऊष्मा और दाह बना रहता है।

कफजनित उदररोगमें शरीरमें अवसाद, शोथ, भारीपन, निद्राधिक्य, अरुचि, श्वास-कास, त्वचा आदिमें श्वेतता, श्लेष्मिणीओंसे व्याप्त उदर, बड़ा एवं धीरेसे वृद्धिको प्राप्त करता है। त्रिदोषको कुपित करनेवाले आहार-विहारसे, अधिक भोजन करनेसे, शरीरको क्षुब्ध करनेसे, गाढ़ी आदिपर यात्रा करनेसे, दौड़ने, कूदने, मैथुन करने, भार ठठाने, चलने तथा ज्वरादिसे दुर्बल व्यक्तियोंके वामपार्श्वमें स्थित प्लीहा अपने स्थानसे च्युत होकर वृद्धिको प्राप्त होने लगता है। प्लीहा पहले कठोर तथा पुनः उन्नत या उठा हुआ होकर उदररोग उत्पन्न करता है और श्वास-कास, मुख-विरसता, अफरा, शूल, पाण्डु, वमन, मूर्च्छा, शरीरवेदना, दाह, विभ्रम आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदरका रंग काला, लाल, विकृत नीला एवं पीला हो जाता है। प्लीहोदरमें भी वात, पित्त और कफका सम्बन्ध रहता है। प्लीहाके समान ही उदरके दक्षिण भागमें स्थित यकृत विकृत होकर भी उदररोग उत्पन्न करता है।

कुपित अफानवायु मल (पुरीष), पित्त एवं कफको अवहट्ट करके उदरमें बद्ध गुदोदर नामक रोग उत्पन्न करता है और ज्वर, कास, श्वास एवं सिर, नाभि, पार्श्व और गुदामें पीड़ा उत्पन्न करता है। उदर स्थिर एवं अचल बना रहता है। उसपर नीली एवं लाल शिराओंका जाल दीखता है और उदरके ऊपरका हिस्सा गायकी पूँछके समान होकर मल संघट्ट होता रहता है।

भोजनमें हड्डी और पाषाण आदि उदरमें जानेसे तथा अत्यधिक खानेसे अंतोंके फटनेपर पककर मवाद एवं मलके साथ जल निकलकर गुदामार्गसे जब बाहर आता है, वह पीला, लाल पुरीष गन्धयुक्त रहता है। अवशिष्ट भाग पेटमें रुककर उदर-वृद्धि करके जलोदररोग होकर बादमें वातादि दोषोंसे पुनः विकृत हो परिक्लावीछिद्रोदर रोग हो जाता है।

स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन करते समय एकाएक

\*\*\*\*\*

ठंडा जल अधिक पान करनेसे मन्दाग्नि रहनेपर या दुर्बलतामें अधिक आम जल पीनेपर वायु एवं कफ कुपित होकर जलवाही स्रोतोंको अवरुद्ध कर उस दूषित जलको बढ़ा देता है और क्लेशम, नलिकासे आकर अवरुद्ध हो उदररोग उत्पन्न कर देता है। तदनन्तर प्यास, गुदासे जलस्राव होता हुआ उदरमें वेदना होती रहती है। पुनः कस-धास एवं अरुचि हो जाती है। उदरपर अनेक रंगकी शिराएँ उभर आती हैं। उदर जलपूर्ण-सा हो जाता है तथा उसमें कम्पन आदि अनेक उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं, इस स्थितिमें उसे डकोदर, उदकोदर या जलोदररोग कहते हैं। उदर-रोगोंकी उपेक्षा करनेसे वातादि दोष अपने स्थानसे विमुख होकर जलको बढ़ाकर उस जलसे शरीरके जोड़ोंके स्रोतोंके मुखोंको गील

या आर्द्र कर देते हैं। अतः शरीरके पसीनेके रुकनेपर सभी स्रोत अवरुद्ध हो जाते हैं। इससे उदर परिपूर्ण होकर उदररोग उत्पन्न होता है। किसी-किसी रोगीके उदरमें अधिक जलके सञ्चित हो जानेपर वह वर्तुलकार हो जाता है, उसको तड़ित करनेपर शब्द नहीं होता। इस रोगमें रोगी क्रमशः दुर्बल हो जाता है। यह रोग भयंकर होता है और नाड़ीको दबानेपर जल आगे बढ़ जाता है। उदररोगमें जब उदरगत शिराएँ अन्तर्हित हो जाती हैं, तब उस रोगको सभी लक्षणोंसे आक्रान्त कहा जाता है। कालोदर, पीतोदर, कफोदर, श्लेष्मोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर और जलोदर—ये क्रमशः कष्टसाध्य होते जाते हैं। एक पक्षके भीतर ही इस रोगमें जल एकत्र होने लगता है। ये सभी उदररोग जन्मसे ही कष्टसाध्य होते हैं। (अध्याय १६१)

### पाण्डु-शोथ-निदान

धन्यन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं पाण्डु और शोथरोगका निदान कहता हूँ, सुनो! पित्त-प्रधान द्रव्योंसे सम्पूर्ण वातादि दोष कुपित करनेवाले हेतुओंसे पित्त एवं मल कुपित होकर पाण्डुरोग उत्पन्न करते हैं। इन तीनों कुपित दोषोंमेंसे बलवान् वायु पित्त हृदयस्थ दस धनियोंका आश्रय लेकर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। वह पित्तका आश्रयणकर श्लेष्मा, चर्म, रक्त, मांस आदिको दूषित कर देता है। इससे दूषित रक्त चमड़े और मांसके बीचमें जाकर चमड़ेको भिन्न-भिन्न रंगका कर देता है। इस रोगमें चमड़ा हरिद्रादि अनेक रंगका हो जाता है, परन्तु इसमें पोले रंगकी अधिकता रहती है। इसीसे इसे पाण्डुरोग कहते हैं। इस रोगमें धातुका गुरुत्व और स्पर्शमें स्थिबलता होती है। अम्लजन्य पाण्डुरोगमें शरीरके सभी प्रकारके गुण नष्ट हो जाते हैं। इससे शरीरका रक्त क्रमशः कम हो जाता है, मेढा और अस्थि निस्सार हो जाते हैं। इस रोगमें सभी अङ्ग निर्बल हो जाते हैं, हृदयमें द्रवता आ जाती है एवं नेत्रोंमें सूजन हो जाती है। मुँहमें लालायुक्त तारकी अधिकता हो जाती है। रोगीको प्यास कम लगती है, ठंडक अच्छी नहीं लगती, रोमाञ्च और मन्दाग्नि हो जाती है एवं शरीरकी

शक्ति घट जाती है तथा ज्वर, धास, कर्णशूल, चक्कर—ये सभी उपद्रव होने लगते हैं।

पाण्डुरोग पाँच प्रकारके हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज एवं मूलिका-भक्षणजन्य। हृदयमें स्पन्दन, चमड़ेकी स्थला, अरुचि, मूत्रकी पीतवर्णता, पसीना और मूत्रका कम होना—ये सभी पाण्डुरोगके पूर्वरूप हैं। वायुजन्य पाण्डुरोगमें तीव्र वेदना, शरीरमें विषचिपाहट आदि लक्षण दिखायी देते हैं।

इस रोगमें शिरा, नख, विष्टा, मूत्र और नेत्र कृष्णवर्ण तथा अरुणवर्णके हो जाते हैं। इससे शोथ, नासिका और मुखमें किरसता, मलशोथ, पांश्वमें वेदना—ये सभी उपद्रव होने लगते हैं। पित्तज पाण्डुरोगमें शिराएँ आदि हरित पित्त-जैसी हो जाती हैं एवं ज्वर, आँखोंके आगे अँधेरा, प्यास, शोथ, मूर्च्छा, दुर्गन्ध, शैत्य-सेवनकी इच्छा, मुखमें कड़वाहट—ये सभी लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। कफज पाण्डुरोगमें हृदयमें आर्द्रता, मलभेद, खट्टी डकार और दाह होता है। तन्द्रा, मुखमें लवण-रसका स्वाद, धास, रोमाञ्च, स्वरभंग, कास, वमन, दुःसहता—ये सभी लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। त्रिदोषज होनेपर इसके लक्षणोंको पहचानना कठिन हो



जाता है और अतिशय असह्य हो जाता है। मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डुरोगमें कसीली मिट्टी वायु, खारी मिट्टी पित्त और भाँटी मिट्टी कफको दूषित करके तथा रस आदिको सुखा करके शिराओंको रक्तसे भर देती है तथा उसे वही रोक देती है और पाण्डुरोग पैदा हो जाता है। पाण्डुरोगके बढ़ जानेपर नाभि, पैर, मुख और मूत्रमार्गमें शोध हो जाता है। क्रमियुक्त तथा रक्तमिश्रित और कफसमन्वित मल निकलने लगता है।

जो पाण्डुरोगी पित्त उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंका सेवन करता है, उसका पित्त-रक्त और मांसका दाह करके कोष्ठ शाखामें मिलकर कामलारोग उत्पन्न करता है। कामलारोगमें रोगीका भूख, नेत्र, त्वक्, मुख और बिछा हल्दीके रंगका हो जाता है। रोगी दाह, अधिपाक और तुषासे पीड़ित होकर मेढ़कके समान पीला और दुर्बल हो जाता है। पाण्डुरोगीको पित्तज शोध होने लगता है। इसकी उपेक्षा करनेपर जो अतिशय शोध बढ़ जाता है, वह बहुत ज्वरेग्रस्त होता है। इस रोगको कुम्भकामला कहा जाता है। पित्त यदि हरित और श्यामवर्णका है तो उससे पाण्डुरोग होता है, उस स्थितिमें वात-पित्तके प्रभावसे चक्कर आना, तुष्ण, निद्राके प्रति अरुचि, थोड़ा-थोड़ा ज्वर, तन्द्रा, अग्निमान्य और अतिशय आलस्य—ये सभी रोगके लक्षण व्यक्त हो जाते हैं। इस रोगको हलीमक नामसे जाना जाता है।

पाण्डुरोगसे उत्पन्न सभी उपद्रवोंमें शोध प्रधान है। इसलिये शोधका वर्णन किया जाता है। वायु कुपित होकर रक्त, पित्त और कफको दूषित करनेके कारण वह त्वक्, शिरा और मांसका आश्रय लेकर ऊँचाई पैदा करता है। सभी शोध त्रिदोषज होते हैं, क्योंकि सृजन वात, पित्त और कफ—इन तीनोंसे होती है। इसलिये जैसे वातिक, पित्तिक, श्लेष्मिक कारण-भेदसे शोध नौ प्रकारका होता है—वातपित्तिक, वातश्लेष्मिक, पित्तकफज, सन्नपित्तिक, अविघातक, विषज और एकाङ्गज। निज और आगन्तुक-

भेदसे यह दो प्रकारका होता है—सर्वाङ्गज और एकाङ्गज। विस्तृत, उन्नत, अग्रभाग गाँठदार होनेसे इसके अवान्तर तीन भेद हैं।

पित्तज शोध पीतवर्ण, कृष्णवर्ण या रक्तवर्णका होता है एवं यह सौषणकारी होता है। यह बहुत जल्दी शान्त नहीं होता। इस शोधके उत्पन्न होनेसे पूर्व शरीरमें दाह उत्पन्न होता है। तुष्णा, दाह, ज्वर, पसीना, भ्रम, ज्वरेद, मद—ये सभी उपद्रव इसमें होने लगते हैं। इस रोगमें रोगीको शीत वस्तुको इच्छा होती है, मलभेद हो जाता है, दुर्गन्धि होती है, स्पर्श नहीं सहा जाता और कोमलता होती है। कफज शोधमें खूबसूती होती है। रोम और चमड़ेमें पीलापन, कठोरता, शीतलता, गुरुता, स्निग्धता, कोमलता, स्मिरता और पीड़ा होती है। इस रोगमें निद्रा, मन्दान्ति, वमन—ये सभी उपद्रव हो जाते हैं।

आघात—अन्न-शस्त्रादिकृत छेदन-भेदनसे क्षत होनेपर अधिघातज शोध होता है। शीतल वायु तथा समुद्रीवायु और भस्मजलक-रसके लग जाने एवं कैलाच इत्यादिके लग जानेसे जो सूजन होती है, वह फैल जाती है। यह अत्यन्त गरम स्थल रंगका और पित्तज शोधके लक्षणोंसे युक्त होती है।

विषधर प्राणीके किसी अङ्गके ऊपरसे चलनेपर अथवा किसी अङ्गमें मूत्र करनेपर और विषहीन प्राणीके भी दाढ़, दाँत एवं नखके द्वारा घात करनेपर उस स्थानमें जो शोध उत्पन्न होता है, वही विषज शोध है। इसके अतिरिक्त विषधर प्राणीके बिछा, मूत्र, शुक्र आदिसे सने हुए वस्तुके सम्पर्कसे, विषवृक्षके वायुके सेवनसे, विषयुक्त वस्तु शरीरपर मलनेसे विषशोधरोग उत्पन्न होता है। विषज शोध कोमल, गतिशील, अवलम्बी, शीघ्र दाह और शूलको उत्पन्न करनेवाला होता है। नये और उपद्रवरहित शोध साध्य होते हैं और पहले कहे हुए असाध्य होते हैं। (अध्याय १६२)

## विसर्परोगका निदान

धन्वन्तरिने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं विसर्पादि रोगोंके मूल कारणोंका वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें।

वात, पित्त, कफ एवं अधिघात नामक दोषोंसे तथा पित्त, रक्त एवं कफके दूषित होनेसे शीथ-सद्गुत विसर्परोग होता है। बाह्य, अन्तः, उभय—ये उसके तीन अधिष्ठान हैं। इनमें अपने-अपने प्रकोपक तथा विदाहकारी कारणोंसे शरीरमें शीघ्र विसर्पण कर बाहर एवं अंदर विकृत करके विसर्परोग शरीरके बाहर तथा अंदर उत्पन्न करते हैं।

आन्तरिक विसर्पसे हृदय आदिमें उपताप होनेके कारण अत्यन्त मोह तथा कर्ण-नासा आदिमें विषटन होता है। प्यासकी अधिकता और मलमूत्रादिमें विषमता होती है। कफजन्म<sup>१</sup> विसर्परोगमें अत्यधिक खुजलाहट होती है। उसमें स्निग्धता बनी रहती है और कफजन्म ज्वरके समान इस रोगमें भी रोगीको कष्ट भोगना पड़ता है।

संनिपातज विसर्प होनेपर रक्त-वातादि सभी दोषोंके लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन सभी प्रकारके विसर्प-भेदोंकी उपेक्षा कर देनेपर वे यथाक्रम अपने-अपने दोषोंके लक्षणोंसे समन्वित होकर फुंसियोंके रूपमें उभर आते हैं। ये जब पक्काकर फूट जाते हैं, तब अपने-अपने लक्षणोंमें उक्त व्रणका रूप धारण कर लेते हैं।

वात-पित्तज विसर्परोगमें रोगीको ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, भ्रम, हड्डी टूटना, अग्निमान्द्य, तमक, श्वास और अरुचिका उपद्रव ग्रस्त कर लेता है। यह रोग प्रज्वलित अग्निके अंगारेके समान रोगीके सम्पूर्ण अङ्गको संतप्त कर देता है। यह विसर्प शरीरके जिन-जिन स्थानोंपर फैलता है, वे स्थान बुझे हुए अंगारेके समान काले, नीले तथा रक्तवर्णके हो जाते हैं। अपने स्फुटित व्रणोंके द्वारा यथाशीघ्र ही अग्निसे दग्ध हुए स्थानके सद्गुत विस्तृत क्षेत्रमें यह फैल जाता है। शीघ्रगामी होनेके कारण विसर्प मर्मस्थलतक पहुँच जाता है। इस रोगमें वायु प्रबल हो जाता है और वह प्रकुपित होकर सम्पूर्ण अङ्गोंको पीड़ित करता है तथा रोगीको चेतनाशून्य कर देता है। उसके प्रभावसे रोगीको निद्रा भी समाप्त हो जाती है। उसको क्षसन-क्रियामें

विकार आ जाता है। ऐसे रोगीको हिचकी भी आने लगती है। इस प्रकारके रोगमें रोगीको ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह पीड़ासे ग्रस्त हो उठता है तो उसको अत्यन्त व्यकुलताकी अनुभूति होती है। भूमि, शय्या तथा आसन आदिपर उठने-बैठने और लेटनेसे उसको तनिक भी शान्ति प्राप्त नहीं होती। इस रोगसे ग्रस्त रोगी उससे विमुक्त होनेके लिये विभिन्न प्रकारको चेष्टा करता है, किंतु उस कष्टसे विमुक्त नहीं हो पाता। ऐसा रोगी मन और शरीर दोनोंसे शिथिल होकर ऐसी गम्भीर मूर्च्छाको प्राप्त कर लेता है, जिससे पुनः चेतनामें उसको लौटना बड़ा ही दुस्साध्य होता है। इन लक्षणोंसे युक्त विसर्पको अग्निविसर्प कहा जाता है।

कफसे अवरोध वायु उस अवरोधक कफका बहुत प्रकारसे भेदन कर देती है, तब ग्रन्थिमाला तैयार हो जाती है अथवा जिस रोगीका रक्त बढ़ जाता है, उसके लवचा, शिथ, स्नायु तथा मांसगत रक्तको दूषित करके वह वायु लम्बी, छल्लेदार, स्पृष्ट और खरदरी ग्रन्थियोंकी रक्तभरी मालाकी सृष्टि करता है। इसके कारण रोगीको तीव्र पीड़ादायक ज्वर होता है। यह रोग होनेपर रोगी श्वास, खाँसी, अतिसार, मुखशीथ, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, वर्णभेद, मूर्च्छा, अङ्गभेद और अग्निमान्द्यके दोषसे भी घिर जाता है। इस प्रकार कफ और वायुके संक्षोभसे उत्पन्न इस रोगको ग्रन्थिविसर्प कहते हैं।

कफ और पित्तके प्रकुपित होनेसे रोगीमें ज्वर, स्ताम्भन, निद्रा, तन्द्रा, शिरोवेदना, विक्षेप, प्रलाप, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य, अस्थिभेद, प्यास, इन्द्रियजनित जड़ता, अर्जिर्निर्गमन तथा रसादिक स्रोतोंका लेप—ये लक्षण दिखायी देते हैं। प्रायः यह दोष आमाशयके एक देशमें होता है और धीरे-धीरे अन्य भागोंमें फैलता जाता है, परंतु इसमें दर्द नहीं होता। यह अत्यन्त पोला, लोहित और पाण्डु रंगकी पिडिकाओंसे भर जाता है। इसके स्वरूपकी कान्ति कृष्ण और मलिन बानी गयी है। यह रोग शोधसे युक्त और भारी होता है। यह स्पर्श करनेमें अधिक ऊष्मासे समन्वित अनुभूत होता है। इसमें पसीने-जैसी चिपचिपाहट होती है।

जब यह पककर फूटता है तो इसमें मांस गल-गलकर नये रूपमें निकलने लगता है। शरीरकी स्नायु तथा शिराएँ स्पष्ट रूपसे दिखायी देने लगती हैं। इस प्रकार सभी लक्षणोंसे युक्त हुआ यह विसर्प रोग अन्ततोगत्या शरीरकी त्वचासे सम्पृक्त हो जाता है, जिसके कारण यह बाह्य भागमें दिखायी देने लगता है। इस रोग-स्थानसे शक्के समान दुर्गन्ध निकलती है। विद्वानोंने इसको कर्दम विसर्प रोगके नामसे अभिहित किया है।

बाह्य आघात आदिके कारण क्षत हुए शरीरसे कुष्ठरोग स्नायु पित्तको रक्तसमन्वित करता हुआ कुष्ठरोगके रोगोंके समान स्फोटजनित विसर्पको जन्म देता है। इसमें शोथ, ज्वर, पीडा,

दाहधिक्य, श्याम और रक्तवर्णताका लक्षण भी दिखायी पड़ता है। पृथक्-पृथक् वात, पित्त तथा कफजनित दोषसे उत्पन्न उक्त तीनों प्रकारका विसर्प रोग साध्य है। इतना ही नहीं, वात-पित्त आदि द्वन्द्वजनित दोषसे समन्वित विसर्प यदि उपद्रवसे रहित हैं तो वे भी यथापेक्षित चिकित्सासे दूर किये जा सकते हैं, किंतु जो विसर्प समस्त दोषोंसे युक्त हो जाते हैं और जिनका आक्रमण रोगीके मर्मस्थलको आहत करनेमें सफल हो जाता है, जिसके दुष्प्रभावसे रोगीके शरीरका स्नायु, शिरा और मांस गल जाता है और जिनसे शक्के समान दुर्गन्ध आने लगती है—वे विसर्प रोग असाध्य हो जाते हैं, उनको चिकित्सा सम्भव नहीं है। (अध्याय १६३)

### कुष्ठरोगका निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुव्रत! मिथ्या एवं विरोधी आहार-विहार करनेसे तथा सज्जनोंकी निन्दा एवं अपमान और वध या हत्या करनेसे, दूसरोंकी धन-सम्पत्तिके हरण एवं पाप-कृत्यासे, पूर्वजन्मकृत पापका उदय होनेसे वातादि दोष कुपित होकर शिराओंमें जाकर त्वचा, लसीका, रक्त एवं मांसको दूषित और अङ्गोंकी क्रिया-हाति करके ये दोष बाहर आकर त्वचापर विविध प्रकारके कुष्ठरोगोंके उत्पन्न करते हैं।

सामयिक उपेक्षा करनेपर यह रोग आध्वन्तरिक समस्त कोष्ठकोंके सहित शरीरमें व्याप्त होकर बाहर और भीतर रहनेवाली सभी धातुओंको गलाकर अपना अधिकार कर लेता है। इस रोगमें पसीनेके जलबिन्दुओंसे युक्त प्राणीके शरीरपर कुछ आर्द्रता होती है। इसमें अत्यन्त कष्टदायक बहुत ही छोटे-छोटे कीड़े होते हैं। इन सभी लक्षणोंसे युक्त यह रोग क्रमशः रोगीके रोम, त्वचा, स्नायु तथा धमनियोंपर आक्रमण करता है।

बाह्य भागमें फैला हुआ कुष्ठरोग प्राणीके उस आक्रान्तित शरीरको भस्मसे आच्छादित हुएके समान रूख बना देता है। वात, पित्त, श्लेष्म, वातपित्त, वातश्लेष्म, पित्तश्लेष्म और संनिपात-दोषजन्य प्रभावसे यह रोग सात प्रकारका होता है।

इन सभी प्रकारके कुष्ठ-भेदोंमें वात-पित्त तथा कफज दोषके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाली विकृति अधिक रहती है।

वात-दोषसे कापाल, पित्त-दोषसे उदुम्बर, कफ-दोषसे मण्डल तथा त्रिचिह्निका नामक कुष्ठ उत्पन्न होता है। वातपित्तज दोषसे क्लृप्त, वातश्लेष्मजन्य दोषसे चर्म, एककुष्ठ, कटिपि, सिध्म, अलसक तथा विपादिका नामक कुष्ठ होते हैं। श्लेष्मपित्तजन्य दोषसे दद्रु, शतरूपी, पुण्डरीक, विस्फोट, चामा और चर्मदल नामक कुष्ठोंकी उत्पत्ति होती है। इन सभी दोषोंकी संनिपात-अवस्था आनेपर १८ प्रकारके कुष्ठ-रोग उत्पन्न होते हैं।

इनमें पूर्वमें कहे—कापाल, उदुम्बर तथा मण्डल—ये तीन और दद्रु, काकण, पुण्डरीक तथा अरिजिह्वा नामक इन सात कुष्ठोंको महा कुष्ठ माना गया है। शेष ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ कहलाते हैं।

कुष्ठरोग होनेके पूर्व रोगीकी त्वचामें अत्यन्त चिकनाहट, रुक्षता, स्पर्शता, स्वेद, अस्वेद, वर्णभेद, दाह, खुजली, स्पृशानुभूतिकी कमी, सुई चुभानेसे होनेवाली पीडाके समान कष्ट, पित्तीका उछलना और अनायास श्रमकी अनुभूति, रोगीके घावोंमें अत्यधिक पीडा, व्रणोंका यथाशीघ्र उद्भव, अधिक समयतक उन व्रणोंका रहना, व्रण-भरावके समय

रुक्षता, सामान्य तथा थोड़ेसे कारणपर रोगीको अत्यधिक क्रोध, रोमाञ्च तथा रक्तका काला होना—ये दोषपूर्ण कुलक्षण दिखायी देते हैं।

कापाल कुष्ठका वर्ण काला और लाल होता है अथवा औंवेमें गकाये गये मिट्टीके खप्परके सदृश वह देखनेमें लगता है। उसमें रुक्षता और कठोरता होती है। इस कुष्ठ-रोगकी आकृति शरीरके अधिक भागमें फैली रहती है। उन स्थानोंमें रहनेवाले रोमसमूह भी दूषित हो जाते हैं। उन दूषित स्थानोंपर सूचिकाभेदनसे होनेवाली पीड़ाके समान अत्यधिक पीड़ा भी होती है। वह कुष्ठ विषम अर्थात् दुःसाध्य माना गया है।

जो कुष्ठरोग उदुम्बर अर्थात् मूलर-फलके समान दिखायी देता हो, उसको औदुम्बर कुष्ठरोग कहना चाहिये। इसकी आकृति वर्तुलाकार होती है। इसमें अत्यधिक गोलपन, दाह और पीड़ा होती है। जिस प्रकार बिना छानी गयी मदिराका वर्ण होता है, जिसमें छोटे-छोटे कोड़े भरे रहते हैं; वैसे ही सामान्य फल हुए उदुम्बरका फल पीत और लाल होता है, उसी रूपमें इस कुष्ठरोगका वर्ण स्वीकार करना चाहिये। इसमें रोगजन्म कृमि रहते हैं, जिसके कारण उस व्रणमें खुजली भी होती है।

जो कुष्ठ स्थिर, गोल, भारी, चिकन, श्वेत या रक्त-वर्णवाला और मलसमन्वित हो, उसके वर्ण परस्पर मिले हों, उसमें अत्यधिक खुजलाहट उत्पन्न करनेवाले कृमि हों, उनसे पीच निकलता रहे तथा वह चिकने, पीत वर्णकी आभासे युक्त मण्डलके समान दिखायी देता हो तो उसको मण्डल कुष्ठरोग कहा गया है।

खुजलाहटसे भरी हुई फुंसियोंवाले भूसर वर्णसे युक्त और श्लथ-समन्वित कुष्ठका नाम विषाधिक कुष्ठ है। जो कुष्ठ कर्कश होता है, जिसके किनारेपर लाल वर्ण और बीचमें काला वर्ण विद्यमान रहता है, जिसकी आकृति कैची और रोछ अर्थात् भालूकी जिह्वाके समान होती है, जिसमें बहुतसे कृमि भी होते हैं; उसको आयुर्वेदमें ऋणजिह्वा या ऋक्षजिह्वा कुष्ठके नामसे अभिहित किया गया है।

हाथीके चमड़ेके समान रोगीका खरखराहट-भरा चमड़ा होनेपर गजचर्मकुष्ठ कहा जाता है। जो कुष्ठ पसीनेसे रहित

मछलीके शल्क (अध्रकवत् चर्म)—के सदृश होता है, उसे एककुष्ठ कहते हैं। जो कुष्ठ रुखा, अग्निके समान वर्णवाला या काला, स्पर्श करनेमें कटकाटी, खुजलाहटसे युक्त तथा कठोर होता है, वह किटिम कुष्ठ माना गया है। सिध्म कुष्ठ अन्तर्भागसे रुख और बाह्यरूपमें स्निग्ध होता है। इसके आन्तरिक भागको रगड़नेसे बालूके कणके समान रज गिरता है। इस रोगके होनेपर शरीरका स्पर्श करनेसे चिकनाहटका अनुभव होता है। इसमें स्वच्छता होती है। इसकी वर्णकृति काले पुष्पके समान दिखायी देती है, यह कुष्ठ प्रायः शरीरके ऊपरी भागमें होता है।

अलसुका (अलसक) कुष्ठमें खुजली और लाल रंगकी पिडिका होती है। विपादिका कुष्ठमें हाथ और पाँव फट जाते हैं, अत्यन्त वेदना और खुजली होती है तथा लाल वर्णकी फुंसियाँ हो जाती हैं। जिस कुष्ठमें दहू या दाद दूबोंके समान बहुत जगहमें फैल जाता हो तथा अलसीके फूलके सदृश कान्ति दिखायी देती हो और ऊँचे-ऊँचे गोल चकते हों, ऐसा खुजलाहटसे परिणामा कुष्ठ दहू या दाद कुष्ठ कहलाता है।

अपने मूलभागमें स्मूल, दाह और वेदनासे समन्वित रक्तसावधानसे प्रचुर व्रणोंसे युक्त कुष्ठरोगका नाम शतारुपी है। इस प्रकारके कुष्ठरोगमें दाह, क्लेद और वेदना होती है। यह प्रायः अस्थिके जोड़ोंमें होता है। जिस कुष्ठमें कुष्ठ-स्थानका मण्डल रक्तसे भरा हुआ तथा पाण्डु वर्णका होता है, उसमें दाह और खुजलाहट-भरी पीड़ा भी होती है, खिले हुए रक्तवर्ण और जलसे संसिक्त पुण्डरीक-दल अर्थात् श्वेत कमलकी पंखुड़ियोंके समान शरीरपर उभरा हुआ और व्रणके किनारे पद्मपत्रकी जल-विन्दुओंसे युक्त घाँसवाले दिखायी देते हैं, उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं। विस्फोटक कुष्ठ पतले चमड़ेसे ढका होता है तथा सफेद और लाल फुंसियोंसे व्याप्त होता है।

पाप्मा नामक कुष्ठ पककर फूटनेवाली छोटी-छोटी असंख्य फुंसियोंसे भरा होता है। इसमें खुजली, मललाव और वेदना होती है। प्रायः इसका वर्ण श्याम और लाल होता है। इसमें रुक्षता होती है। यह रोगीके कूल्हे, चूतड़ और हाथके रोम-छिद्रोंमें होता है। घर्मदल नामक कुष्ठ



फोड़ा-फुंसीके रूपमें उभरकर फफोले पड़कर फूटता है, यह किये गये स्पर्शको सहन करनेमें समर्थ नहीं होता। इसमें खुजलाहट होती है, रक्तस्राव होता है, जलन भी होती है और मांस गलकर गिरता है।

काकण नामक कुष्ठमें अत्यन्त दाह और तीव्र वेदना होती है। गुंजाफलके समान यह पहले लाल और काले अनेक रंगका होता है। अपने-अपने कारणोंसे सब कुष्ठोंके लक्षण इसमें पाये जाते हैं।

दोष<sup>१</sup>-भेदके अनुसार त्रिदोषोंमें जो दोष कुष्ठमें अधिक विहित हो, उसीके लक्षण और कर्मके अनुसार त्रिदोषज कुष्ठका स्वरूप समझना चाहिये। जो कुष्ठ-भेद अपने ही दोषका अनुगमन करता है अर्थात् वह द्वन्द्वज दोष या संनिष्ठाज दोषसे सम्पृक्त नहीं होता तो उसकी चिकित्सा सम्भव है। किन्तु जब वह सभी दोषोंसे परिष्कृत हो जाता है तो उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, वह असाध्य हो जाता है।

उपयुक्त जितने भी कुष्ठ हैं, उनमेंसे जो कुष्ठ अग्नि, मज्जा और शुक्राणुओंमें प्रविष्ट हो गया है, वह कुष्ठ भी असाध्य है। जो कुष्ठ मेदागत है और जो स्नायु, अस्त्रि एवं मांसमें पहुँच गया है, वह अधिक कष्टसाध्य नहीं है। जिस कुष्ठका जन्म कफ और वातके कारण त्वचापर ही होता है, जिसमें विशेष दोष नहीं रहता, वह कष्टसाध्य नहीं होता। सामान्य चिकित्सासे ही उसकी शान्ति हो सकती है।

त्वचाभागपर ऐसे कुष्ठके उभर आनेसे शरीरका वर्ण बदल जाता है, उसमें रुक्षता आ जाती है। तदनन्तर जब वह कुष्ठ रक्त और मांसमें प्रविष्ट हो जाता है तो रोगीके शरीरमें स्वेद, ताप तथा शोथके लक्षण उभर आते हैं। रोगीके हाथ और पैरोंमें फोड़े हो जाते हैं। शरीरके संधि-भागोंमें अधिक पीड़ा होती है। दोषाधिक्य होनेपर वह मेदामें पहुँच जाता है, जिसके कारण उसमें उपद्रव होने लगता है। रोगीकी इन्द्रियोंमें संतापानुत्पत्ति बढ़ जाती है अर्थात् वह चलने-फिरनेमें अशक्त हो जाता है। रोगीके शरीरकी मज्जा और अस्थिमें जब वह कुष्ठ पहुँच जाता है तो उसके नेत्रोंकी ज्योति तथा वाणोंके स्वरोंमें भेद उत्पन्न हो जाता है।

कुष्ठरोगके कृमियोंके द्वारा रोगीके वीर्यमें विकार उत्पन्न हो जानेपर वह दोष स्त्री और संतानके लिये बाधायुक्त हो जाता है। रस-रक्तादि धातुगत कुष्ठोंमें अपने-अपने लक्षणोंके अतिरिक्त यथापूर्व धातुगत कुष्ठोंके लक्षण भी हो जाते हैं।

श्चित्र और कुष्ठ इन दोनों रोगोंकी उत्पत्तिका कारण एक ही है और इनकी चिकित्सा भी एक ही है। इसीको कित्तास तथा दारुण भी कहते हैं। इनमें अन्तर यही है कि कुष्ठ संनिपातिक है और श्चित्र अलग-अलग दोषोंसे उत्पन्न होता है। कुष्ठ साखी है और श्चित्र अपरिखावी। कुष्ठ रसादि सारों धातुओंपर आक्रमण करता है और श्चित्र रक्त, मांस तथा मेद—इन तीन धातुओंका आश्रय ग्रहण करता है।

वातज और आभ्यन्तरिक रुक्षताके कारण उत्पन्न हुआ श्चित्र कुष्ठरोग अरुण वर्णका होता है। जब वह पित्तज दोषके कारण जन्म लेता है तो उसका वर्ण पद्मपत्रके समान या ताम्रवत् होता है। यह दाहयुक्त और रोमविनाशक होता है। कफज दोषके कारण उभरा हुआ श्चित्र श्वेतवर्ण, सघन, भारी और खुजलीसे युक्त होता है।

ये श्चित्र क्रमशः रक्त, मांस और मेदामें पहुँचकर आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् वातज श्चित्र रक्तमें, पित्तज श्चित्र मांसमें तथा कफज श्चित्र मेदामें होता है। अरुण आदि वर्णके आधारपर ही श्चित्रके वातादिक दोष तथा रक्तादि आश्रय—दोनों ही जाने जाते हैं। उत्तरोत्तर इनकी चिकित्सा कष्ट-साध्य होती है अर्थात् यह श्चित्ररोग जितना रक्ताश्रित होता है, तबतक उसकी चिकित्सा सम्भव है। मांसगत होते ही यह कष्टसाध्य हो जाता है और उसके बाद तो जब यह मेदामें पहुँच जाता है, तब अत्यन्त कष्टसाध्य हो जाता है।

जो श्चित्र कृष्ण वर्णवाले रोमोंसे भरा हुआ होता है, उसके दाग एक-दूसरेसे संस्रिष्ट नहीं होते। वह अधिक समयका न होकर नया ही होता है और उसका जन्म अग्निसे जलनेके कारण नहीं हो तो उसे चिकित्सा-साध्य समझना चाहिये। इन लक्षणोंके विपरीत होनेपर इसका उपचार करना चिकित्सकके लिये त्याज्य है, क्योंकि यह असाध्य हो जाता है। रोगीके गुह्यभाग, करतल और ओष्ठ-

प्रदेशमें तो यथाशीघ्र भी उत्पन्न हुआ यह रोग असाध्य बन जाता है। यश प्राप्त करनेके इच्छुक वैद्यको तो कित्तास नामक धित्र-भेदकी चिकित्साको सर्वथा त्याग देना चाहिये, क्योंकि उसका उपचार सम्भव नहीं है।

प्रायः सभी रोग संक्रामक होते हैं। रोगीका स्पर्श

करनेसे, उसके साथ बैठकर भोजन करनेसे, उसके साथ रहनेसे, एक शय्या और आसनपर उसके साथ सोने और बैठनेसे तथा उस रोगीके द्वारा प्रयुक्त वस्त्र, माला एवं अनुलेप-पदार्थका प्रयोग करनेसे दूसरे प्राणीमें रोगोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। (अध्याय १६४)

## कृमि-निदान

आन्तरिकजीने कहा—हे सुकुत! बाह्य और आन्तरिक भेदके कारण कृमियोंके दो प्रकार हैं। उनमें बाह्यगत जो कृमि (कीड़े) होते हैं, उनका जन्म बाहरी मल, कफ, रक्त और विद्यसे होता है। जन्मगत भेदके कारण उनके चार भेद हो जाते हैं, किंतु नाम-भेदसे कृमियोंके बीस प्रकार माने गये हैं। बाह्य कृमि बाह्य मलसे उत्पन्न होते हैं। इनका परिमाण, आकार और त्वणं तिलके समान होता है। इनका निवास प्राणियोंकी केशराशि तथा उनके वस्त्रोंमें होता है। अनेक पौरोकाले उन कृमियोंकी आकृति सूक्ष्म होती है। नामतः उन्हें जू और लोख कहा जाता है। इन दोनों प्रकारवाले कृमियोंके द्वारा प्राणियोंके बाह्य शरीरपर कोष्ठ (चकत्ते), पिडिका (फुंसी), कण्डू (खुजली) तथा गण्ड (गौंड) नामक रोग कहे जाते हैं।

कुष्ठरोगका एक मात्र कारण शरीरके आन्तरिक भागमें उत्पन्न होनेवाला श्लेष्मज कृमि है। यह प्राणीके बाह्य श्लेष्ममें भी उत्पन्न हो सकता है। मधुर अन्न, गुड़, दूध, दही, मछली और नये चावलका भत खानेसे प्राणीके आन्तरिक भागमें कफ उत्पन्न होता है, उसी कफसे उत्पन्न होकर कृमिवर्ग आमाशयमें पहुँच जाता है। उसीमें इस कृमिवर्गकी अभिवृद्धि होती है और उसीसे निकलकर शरीरमें यह सब ओर फैल जाता है। उनमें कुछ चमड़ेकी मोटी तंतुके समान, कुछ केंचुएके सदृश, कुछ धान्याकुरके समान छोटे-बड़े

और कुछ अणुकी भाँति होते हैं। इनका वर्ण श्वेत तथा तर्बि-जैसा होता है। नामतः इन कृमियोंके सात प्रकार हैं—अन्नाद, उदरवेष्ट, हृदयाद, महागुद, च्युरव, दर्भकुसुम और सुगन्ध।

इन कृमियोंके उत्पन्न होनेसे प्राणीके झल्लास, मुखस्वाव (लार), अपच, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, आनाह, कृशता, शोथ तथा पीनस नामक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

रक्तवाही शिराओंमें स्थित रक्तसे उत्पन्न होनेवाले कृमि अणुरूप, पादविहीन, घृताकार और ताम्रवर्णके होते हैं। अपनी सूक्ष्मताके कारण उनमेंसे कुछ कृमि तो दृष्टिगोचर हो नहीं होते। इनके केशाद, रोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस तथा मातर—ये छः भेद हैं। इन सभी कृमियोंका एकमात्र कार्य कुष्ठरोग उत्पन्न करना है।

पक्वशर्षपमें गुदा-भागसे बाहर निकलनेवाले विज्ञाजन्म कृमियोंका उद्भव होता है। वहीँपर बहकर जब ये आमाशयकी ओर उन्मुख होते हैं, तब प्राणियोंके डकार और धासमें विज्ञा-सदृश दुर्गन्ध आती है। ये कृमि लम्बे, गोले, छोटे और मोटे होते हैं। उनका वर्ण श्याम, पीले, श्वेत और कृष्ण होता है। उन कृमियोंके ककैरुक, मकैरुक, सौसुराद, शूलख्य तथा लेलिह—ये पाँच नामभेद हैं। जब ये प्रकुपित हो उठते हैं तो प्राणीके शरीरमें मलभेद, शूल, विष्टम्भ, कृशता, कर्कशता, पाण्डुता, रोमाञ्च, मन्दाग्नि और पाण्डु तथा गुदामें खुजलाहटका दोष उत्पन्न हो जाता है।

(अध्याय १६५)

## वातव्याधि-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको वातव्याधिका निदान सुना रहा हूँ, उसे आप सुनें।

शरीरमें विशेष रूपसे सर्वथा अनर्थ और विघ्नोंका एकमात्र कारण न दिखायी देनेवाला दुष्ट (प्रकुपित) पवन ही है। वह वायु ही विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वरूप, प्रजापति, स्रष्टा, धाता, विभु, विष्णु, संहर्ता, मृत्यु और अन्तक-रूप है। इसलिये उस वायुको सम रखनेके लिये विशेष रूपसे प्रयत्न करना चाहिये।

उस वातवाधित शरीरसे सम्बद्ध, कहे गये दोष-विज्ञानमें कर्म दो प्रकारका माना गया है। उनमें एक है प्राकृत कर्म और दूसरा है वैकृत कर्म। संक्षेपमें प्रतिपादित दोष-भेदोंका विचार करके प्रत्येक कर्मके पाँच-पाँच दोष सिद्ध किये गये हैं। इनमें वैकृत कर्म-दोष प्राकृतकी अपेक्षा शक्तिशाली और गतिमान् होता है। अब यहाँ पञ्चाविभाग लक्षणसहित उसके निदानको कहा जा रहा है।

शरीरकी धातुओंको क्षीण करनेवाले द्रव्य-पदार्थोंके उपभोग तथा आचार-विचारसे क्रुद्ध वायु अत्यधिक समरूपमें प्रवहमान नहीं रहता। वह रस आदिके चारों ओरोंसे प्रवाहित होकर पुनः उनमें तज्ज्वित दोषोंको परिपूर्ण कर देता है। उसके बाद उन दोषपूर्ण ओरोंसे निकलकर वह संक्षुब्ध वायु उसके मुखको विधिवत् आच्छादित करके रोगीके शरीरमें शूल, आनाह, आन्त्रकुञ्जन, मलाखरोध, स्वरभंग, दृष्टिभेद, पीठ तथा कटि-प्रदेशमें पीड़ादायक उपद्रवोंको जन्म देता है। उसीके प्रभावसे रोगीके शरीरमें अन्य ऐसे उपद्रवोंका जन्म होता है, जो कष्टसाध्य हैं।

आमाशयमें वात-दोष होनेपर वमन, श्वास, खाँसी विधूचिका, कण्ठावरोध तथा नाभिके ऊपरके भागमें अनेक व्याधियोंका जन्म होता है। कुपित वायु नेत्र-कान आदि इन्द्रियोंमें विघ्न तथा त्वचा-भागमें प्रविष्ट होकर पककर फूटनेवाले फोड़े और रुक्षताका कारण बन जाती है। रक्तमें वायुके प्रविष्ट होनेसे रोगीको अत्यन्त कष्टदायक पीड़ा होती है, श्वास तथा गलेमें जलन और स्वरभेदका रोग होता है। अंतिके मध्य प्रदूषित वायुके पहुँचनेपर विटम्ब, अर्हचि, कुशता और भ्रमके रोगोंकी उत्पत्ति होती है। मांस और मेदामें प्रकुपित हुआ वायु शरीरमें ग्रन्थि, कर्कशता, भारीपन, लाठी एवं मुष्टि-प्रहारसे होनेवाली पीड़ाके समान पीड़ा

उत्पन्नकर रोगीको अत्यधिक कष्ट देता है। अस्थियोंमें प्रविष्ट हुए संक्षुब्ध वायुसे संक्थि तथा संधि-स्थानोंमें रहनेवाली अस्थियोंके अन्तर्गत तीव्र शूल उठनेसे रोगीको कष्ट होता है।

मज्जागत कुपित वायु रोगीकी अस्थियोंमें क्षरण एवं अनिद्रा उत्पन्न करता है, जिससे रोगीको पीड़ा होती है। शुक्रगत कुपित वायु वीर्य और गर्भका शीघ्र पतन करता है अथवा वह विकृत हो जाता है। शिरागत वायु सिरमें पीड़ा और रिकताका अनुभव कराता है। स्नायु-स्थित क्रुद्ध वायु रोगीके शरीरमें शीघ्र उत्पन्न कर देता है, जिसके कारण उसको अधिक कष्ट होता है।

शरीरके संधि-स्थानोंमें प्रवहमान प्रकुपित वायुके कारण रोगी जलसे परिपूर्ण दृष्टि (गलगण्ड), स्पर्श तथा शुष्कताके उपद्रवसे ग्रस्त हो जाता है। शरीरके समस्त अङ्गोंमें कुपित वायुके प्रविष्ट हो जानेपर पीड़ा, टूटन और स्मुरणका दोष होता है। स्वप्नावस्थामें विचार होनेसे वायु-स्तम्भन, आक्षेपण, संधिभंग तथा कम्पनका दोष प्राणोंके शरीरमें उत्पन्न कर देता है। जब क्रुद्ध वायु शरीरकी सम्पूर्ण धमनियोंमें बारम्बार प्रवाहित होने लगता है तो उस समय शरीरके अङ्ग विक्षिप्त हो उठते हैं। इस व्याधिको आक्षेपण नामसे कहा गया है।

जब नीचेसे तद्विहित वायु कुपित होकर ऊपर चढ़ता है और फिर ऊर्ध्वभागकी ओर प्रवाहित होने लगता है, तब वह रोगीके हृदयको पीड़ितकर सिर और मस्तककी अस्थिमें पीड़ा उत्पन्न कर देता है। वह चारों ओरसे शरीरपर प्रहार करता है, जिससे शरीर विक्षिप्त हो उठता है। वह हनु और मुखकी शक्तिको भी क्षीण करके रोगीको व्याधित करनेका प्रयास करता है। रोगी बड़े ही कष्टसे श्वास लेता और उसका परित्याग करता है। उसके दोनों नेत्र बंद होने लगते हैं। कण्ठसे कबूतरके समान ध्वनि होने लगती है और रोगी ज्ञानभ्रान्त होने लगता है। चिकित्सा-क्षेत्रमें इसका नाम उपतन्त्रक रोग है। हृदयमें स्थित दोषपूर्ण वायुके द्वारा प्रेरित वह रोग जब रोगीकी वाम नासिकाके छिद्रमें जाकर आश्रय लेता है, तब उसके कारण रोगी बार-बार स्वस्थता और बार-बार अस्वस्थताका अनुभव करता है।

अभिघातजन्य वातव्याधि (अपतानक रोग) अत्यन्त दुःशक्तिस्य है।

\*\*\*\*\*

जब कुपित वायु ग्रीवा और पाश्र्वमें स्थित मन्वा नामवाली दोनों शिराओंको जकड़कर और सम्पूर्ण धमनियोंका आश्रय लेकर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाती है, जिससे गर्दन तथा कक्षकी संधियाँ टेढ़ी पड़ जाती हैं और शरीर भीतरकी ओर धनुषकी तरह झुक जाता है, रोगीके नेत्र स्तम्भित हो जाते हैं, वह जँभाई लेने लगता है, दौंतोंको चबाने लगता है, कफयुक्त वमन करता है, दोनों पसलियोंमें वेदना होती है, घापी रुक जाती है तथा हनु, पृष्ठ और मस्तक जकड़ जाते हैं, तब इसको अन्तरायाम वातरोग कहते हैं।

बहिरायाम रोगमें शरीर बाहरकी ओर धनुषके सदृश झुक जाता है। वक्षःस्थल ऊँचा हो जाता है और सिर तथा कंधा पीछेकी ओर झुक जाता है। दौंतों तथा मुखका रंग बदल जाता है, पसीना अधिक आता है, शरीर तिथिल हो जाता है। इस वातव्याधिकी बाह्यायाम या धनुस्तम्भ कहा जाता है।

रोगीके मल, मूत्र और रक्तमें प्रविष्ट हुआ वात-दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर शरीरमें अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न करता है। इस रोगको व्रणायाम कहते हैं। जिस व्रणायाम रोगमें रोगीकी अत्यन्त तृषा हो और उसका शरीर पीला पड़ गया हो, वह असाध्य होनेसे वर्जित है। सभी प्रकारके आक्षेपक रोगोंमें वायुका वेग जान्त हो जानेपर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

जिह्वाकी अल्पधिक रगड़ने और उष्ण भोजन करनेसे हनु अर्धात् ठोड़ीमें स्थित वायु कुपित होकर हनुभागमें स्तम्भन-दोष उत्पन्न करके मुखको खोल देता है अथवा बंद कर देता है। इसीको वातव्याधिमें हनुस्तम्भ-व्याधि कहते हैं। इसके कारण रोगीको खाने-चबाने तथा बोलनेमें अधिक कठिनाई होती है।

कुपित वायु वाग्वाहिनी शिरामें स्थित होकर जिह्वाको स्तम्भित कर देता है। यह जिह्वास्तम्भ नामक वातव्याधिका भेद माना गया है। इसके दुष्प्रभावसे रोगीके मुखमें खाने-पीने तथा बोलने-चालनेकी सामर्थ्य नहीं रह जाती। सिरके द्वारा भार ढोने, अत्यन्त हैसने और बोलने, ऊबड़-खाबड़ स्थानपर सोने तथा कठोर पदार्थोंके चबानेसे वायु विकारयुक्त होकर शरीरमें बढ़ता है और ऊर्ध्वभागमें पहुँचकर आश्रित

हो जाता है। इससे रोगीका मुख टेढ़ा हो जाता है। वह ऊँचे स्वरमें अट्टहास करता है तथा किसी और अपने नेत्रोंको एकटक लगाकर ध्यानमान होकर देखता है। उसके बाद उसी दोषसे रोगीकी वाक्शक्ति तिथिल पड़ जाती है, नेत्रोंमें स्तम्भता छा जाती है, दौंत किटकिटाते हैं, स्वरभंग हो जाता है, बहिरापन तथा अन्धत्वका दोष आ जाता है। इन दोषोंके अतिरिक्त गन्धकी अज्ञानता, स्मृतिध्वंस, भय, क्षास, धूक, पार्श्वभेद, एक नेत्रकी शक्तिका ह्रास, दाढ़के ऊर्ध्वभागमें, शरीरके आधे भागमें या नीचेके भागमें प्रबल वेदना होती है। कुछ लोग इसे अर्दित और कुछ एकाङ्गदोष कहते हैं।

जब प्रकुपित वायु रक्तका आश्रय लेकर मूर्धामें स्थित शिराओंको रुन्ध, शूलयुक्त और कृष्णवर्णका कर देता है, तब उसे तिरोग्रह दोष कहते हैं और यह असाध्य है।

जब प्रकुपित वायु शरीरको अपने अधिकारमें करके उसमें निहित शिराओं तथा स्नायु-तन्त्रिकाओंको अपने अधिकारमें कर लेता है और उनमें अवरोध उत्पन्न करके वह रोगीके शरीरके एक पक्ष अथवा अन्य किसी विशेष भागपर प्रहार करता है, जिससे वह भाग चेतना-शून्य अथवा अकर्मण्य हो जाता है, तब उस दोषको लोग पक्षाघात कहते हैं। कुछ लोगोंने तो उसको एकाङ्ग या अर्धाङ्ग रोग और कुछ अन्य लोगोंने कक्षव्याधिके नामसे स्वीकार किया है। परंतु सम्पूर्ण शरीरमें प्रकुपित वायुका आकष होनेपर सर्वाङ्गरोध (सर्वाङ्ग-पक्षाघात) और जकड़न नामक रोग होता है।

जो पक्षाघातरोग केवल वातके कारण होता है, वह अत्यन्त कष्ट-साध्य है। जब वह वातरोग पित्तादि अन्य दोषोंके संयोगसे होता है, तब कष्ट-साध्य तथा जो वातरोग धातुओंके क्षय हो जानेसे होता है, वह असाध्य होनेसे वर्ज्य है।

कफसे युक्त वात जब आमाशयमें अवरुद्ध हो जाता है, तब उस समय रोगीके शरीरकी वह जकड़ देता है। उसके कारण रोगीका शरीर डंडेके समान सीधा हो जाता है। इसीलिये इसको दण्डापतनक कहा जाता है। यह सम्पूर्ण दोषोंसे समन्वित होनेपर निश्चित ही असाध्य बन जाता है।

स्कन्ध-प्रदेशके मूलभागसे उठा हुआ प्रकुपित वायु



उसकी शिराओंको संकुचित करके वाहुओंकी स्पन्द-शक्तिको नष्ट कर देता है, उसे अवबाहुक रोग कहते हैं। भुजाओंके पृष्ठभागसे होकर प्रत्येक अँगुलीके तलप्रदेशतक जो एक मोटी नड़ी जाती है, उसका नाम कण्डरा है। उसमें कुपित हुआ वात उसके कर्म-सामर्थ्यको समाप्त कर देता है, उसको विपूची कहा जाता है। रोगीके कटिप्रदेशमें रहनेवाला वायु जब जंघाप्रदेशतक जाता है, तो अपनी उस मोटी कण्डरा नड़ीको अक्षिप्त कर देता है अर्थात् उसे जकड़ लेता है, इससे रोगी खड़ (लँगड़ा) हो जाता है। जब दोनों जंघाओंकी नसोंको जकड़कर दोनों पैरोंकी कण्डराएँ अक्षिप्त हो उठती हैं, तब उस रोगको पद्म कहा जाता है। जब रोगी चलनेमें कौपने लगता है और खड़न पक्षीकी भाँति सँगड़ते हुए चलता है, उसके संधि-बन्धन शिथिल पड़ जाते हैं तो उस दोषको कलायखड़ नामक रोग मानना चाहिये।

जीर्ण या अजीर्ण-अवस्थामें शीतल, उष्ण, द्रव-पदार्थ, शुष्क, गुरु, स्निग्ध भोज्य-पदार्थका सेवन, अधिक परिश्रम, संशोभ, शीथिल्य तथा अधिक जागरण करनेसे वात-कफयुक्त मेट अत्यधिक मात्रामें संचित होकर पित्तका पराभव करके शरीरको परिष्काण कर लेता है।

अन्तःस्त्रैष्ण्यके द्वारा जंघाप्रदेशकी हड्डियोंके दोष-समन्वित होनेपर स्तम्भन-रोग उन्हें प्रसित करता है। उस समय शीत-वात-दोषके प्रभावसे जंघाओंकी हड्डी शिथिल पड़

जाती है। उस दोषके प्रभावके कारण रोगीका वह अङ्ग श्यामवर्णका हो जाता है। उसमें जड़ता आ जाती है। रोगी तन्द्रा, मूर्च्छा, अरुचि और ज्वरके उपद्रवोंसे ग्रस्त हो उठता है। इस रोगको ऊरुस्तम्भ कहते हैं। दूसरे लोग इसको बाह्यवात भी कहते हैं।

वायु और रक्त दोनोंके कुपित होनेसे जानुमें (घुटनोंके मध्य) जो शोथ उत्पन्न होता है, वह महाभयंकर पीडादायक रोग है। इसमें शोथ सिधारके सिरके समान स्थूल माना गया है, इसलिये इसको जोष्टुकशीर्षके नामसे कहा जाता है। जब ऊँचे-नीचे पीडादायक विषम स्थानपर पैर रखनेसे अथवा अस्थन्त परिस्रमसे वायु कुपित होकर गुल्फ (टखने)-में आश्रित हो जाता है, तो उसे वातकण्टक रोग कहा जाता है।

जब पार्श्व-भागके सम्मुख अँगुलीकी शिराओंको प्रकुपित वायु पीडा उत्पन्न करते हुए शीर्षोंकी गमनशक्ति नष्ट कर देती है, तब उसे गुंघसी रोग कहते हैं। कफ और वायुके प्रकुपित होनेसे जब दोनों पैर झुनझुनाने लगते हैं और सुन्न भी हो जाते हैं, तब उस दोषको पादहर्ष कहा गया है। पित्त तथा रक्तसे संश्रित वात प्राणीके दोनों पैरोंमें दाह उत्पन्न कर देता है, विशेष रूपसे वैसी अवस्था अधिक चलनेसे ही आती है। वात-दोषमें इस दोषभेदको पाददाह नामसे सम्बोधित किया गया है। (अध्याय १६६)

## वातरक्त-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुव्रत! अब मैं आपसे वातरक्त-निदान बतलाऊँगा, उसे सुनें।

प्रायः स्वास्थ्य-विरुद्ध भोजन तथा क्रोध करनेवाले, दिनमें सोने और रात्रिमें जागरण करनेवाले तथा सुकुमार एवं मिथ्या आहार-विहार करनेवाले, स्थूल शरीरवाले और सुखीजनोंका रक्त वृद्धवत्तसे प्रकुपित हो जाता है। चोट लगनेसे अथवा वमन एवं विरेचन आदिद्वारा शुद्ध न होनेवाले मनुष्योंका रक्त दूषित हो जाता है। वात-दोष पैदा करनेवाले एवं शीतल पदार्थोंके सेवनसे वायु-वृद्धि होती है, वह क्रुद्ध होकर विमार्गामी हो जाता है। इस प्रकारसे प्रवहमान वह वायु रक्त-स्रोतोंसे अवरुद्ध होकर पहले

रक्तको ही दूषित करता है। तदनन्तर मांसादिक अन्य धातुओंको भी दूषित करता है। पहले गुदाभागको पीड़ितकर बादमें यह सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। इस वात-दूषित रक्तको वातरक्त कहा जाता है। विशेष रूपसे यह दोष वमनादि उपद्रवों तथा पौष लटकाकर बैठनेवाली सवारी आदिसे होता है।

कुष्ठरोगके जो पूर्वरूप होते हैं, प्रायः ये ही वातरक्त-रोगके भी होते हैं। इस रोगके होनेपर घुटना, जंघा, ऊरु, कटि, स्कन्ध, हाथ, पैर और संधि-स्थानोंमें खुजली, स्फुरण, सूचिकाभेद, गुरुता और इन्द्रियसुन्नताके दोष होते हैं। ये दोष बार-बार उत्पन्न होकर शान्त हो जाते हैं और पुनः उभर भी जाते हैं।

कभी दोनों पैरोंके मूलभागमें आश्रय लेकर अथवा कभी दोनों हाथोंके मूलमें स्थित होकर, यह कुपित वातरक्त-दोष प्राणीके सम्पूर्ण शरीरको वैसे ही परिव्याप्त कर लेता है, जैसे चूहेका विष कुपित होकर धीरे-धीरे पूरे शरीरमें व्याप्त हो जाता है। यह वातरक्त सर्वप्रथम रोगोंके चर्म-भागपर उत्पन्न होकर मांस-भागमें आश्रय ग्रहण करता है। उसके बाद सभी धातुओंको आश्रय बना लेता है। इसे गम्भीर नामक वातरक्त कहते हैं। उतान वातरोगमें रोगीके कटि आदि स्थानोंका चर्म, ताम्र या श्यामवर्णका हो जाता है। वहाँपर शोध तथा ग्रथित पाक उत्पन्न होता है। यह प्रकुपित वायु रोगीकी हड्डियों और मज्जा-भागमें जाकर वहाँ आश्रय लेकर छेदनेके समान पीड़ा करता हुआ चक्रांक समान घूमता हुआ शरीरके अङ्गोंको टेढ़ा-मेढ़ा कर देता है। तदनन्तर सब ओरसे शरीरमें प्रवहमान यह वायु अन्तमें रोगीको खज्ज अथवा लँगड़ा बना देता है।

शरीरमें वाताधिक्य वातरक्त-रोग होनेपर अत्यधिक शूल, फड़कन तथा टूटन-भरी पीड़ाकी अनुभूति होती है। उभरे हुए शोधमें रुक्षता, कृष्ण या श्यामवर्णता आ जाती है। इसमें शोध कभी बढ़ जाता है और कभी घट जाता है। रोगीकी भ्रमनियों और अँगुलियोंके संधि-स्थानोंमें संकुचन, अङ्गग्रह तथा अत्यन्त वेदनाजन्य कष्ट होता है। इसमें शीतल पदार्थोंसे अरुचि एवं उसके सेवनसे वृद्धि, स्तम्भन, कम्पन और इन्द्रियशून्यताके दोष भी आ जाते हैं।

रक्ताधिक वातरक्त-रोगमें शोध अत्यन्त पीड़ासे युक्त होता है। इसमें सूचिका-भेदजन्य पीड़ा भी होती है। इसका वर्ण तौबेके समान होता है। यह चुनचुन्ना भी रहता है। इसमें ललाई रहती है तथा खुजली और क्लेश होता है। निग्रथ पदार्थ लगानेसे या उसे रुख रखनेसे शान्ति नहीं मिलती।

पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह, सम्मोह, स्वेद, मूर्च्छा, मद, तृष्णा, स्पर्श, असह्यत्व, अत्यधिक पीड़ा, शोध, पककर फूटनेवाला फोड़ा तथा अत्यन्त ऊष्माके लक्षण दिखायी देते हैं।

कफाधिक वातरक्तमें कठोरता, भारोपन, शून्यता, स्निग्धता, शीतलता, खुजली और मन्द पीड़ा होती है। द्रुज्व दोषमें दो तथा त्रिदोषजमें तीनों दोषोंके लक्षण उभरते हैं। इनमें

एक दोषजन्य रोग अपेक्षित चिकित्सासे साध्य है। द्रुज्व दोष नामक वातरक्त-रोग अथक चिकित्सोपचारके द्वारा रोगा जा सकता है। किंतु जो रोग त्रिदोषजन्य है, उसे तो छोड़ देना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये प्रयास करना व्यर्थ है, वह असाध्य होता है। इनमें रक्तपित्तजन्य वातरोग तो बड़ा ही कठिन माना गया है।

प्रकुपित वायु रोगीके शरीरस्थ अङ्ग-विशेषके रक्तको नष्ट करके उसके संधि-स्थानोंमें प्रविष्ट हो जाता है। तदनन्तर परस्पर एक-दूसरेको भली प्रकारसे अवरुद्ध करके तज्जनित वेदनासे वह रोगीके प्राणोंका अपहरण करता है।

प्राण, व्यान, समान, अपान और उदान—इस पञ्चात्मक वायु-समूहके बीच प्राणवायु जब रुक्षता, चञ्चलता, लंघन, अतिशय आहार, अभिघात, मलमूत्रादिक वेगावरोध तथा कृत्रिम वेग-संघालनके प्रयासमें कुपित होकर त्रेत्रादिक इन्द्रियोंमें उपधातु करता है तो उसके कारण पीनस, दाह, तृष्णा, खाँसी और क्षामादिके रोग उत्पन्न होते हैं।

कुपित उदानवायु जघ्नु (टोंढी) और मूढाँमें आश्रय लेकर कण्ठग्रहरोध, मलभेद, कम्पन, अरुचि, पीनस तथा गलगण्डादिक दोषोंको जन्म देता है।

अत्यधिक दूरको यात्रा, स्नान, अतिशय क्रीड़ा, अत्यन्त विषय-भोगकी चेष्टा, स्वास्थ्य-विरुद्ध व्यवहार, रुक्षता, भय, हर्ष तथा विषादके कारण प्राणीके शरीरमें स्थित व्यान नामक वायु दूषित हो उठता है। तदनन्तर वह रोगीके पुंस्त्व (पुरुषत्व), उत्साह और शक्तिका ह्रास कर देता है। उसके चित्तमें शोक तथा विभ्रमकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसे प्वर, सम्पूर्ण शरीरमें सूचिका-भेदके समान वेदना, रोमाञ्च, स्पर्श-शून्यता, कुष्ठ, विसर्प और सभी अङ्गोंमें पीड़ा होती है।

स्वास्थ्य-विरुद्ध अजीर्णकर, शीतल तथा संकीर्ण दोषसे पूर्ण भोजन, असाधारण शयन और जागरण आदिसे समान नामक वायु दूषित हो जाता है। इसके प्रकुपित होनेसे शूल, गुल्म, ग्रहणी आदि सामान्य यकृतजन्य तथा कामाश्रित रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

अत्यन्त रुख तथा भारी अन्नके सेवन, मल-मूत्रका वेग रोकने, अतिशय भार ढोने, वाहनकी अधिक सवारी करने,

मदिरापान, अत्यधिक देरतक खड़े होने तथा अधिक घूमने-फिरनेसे अपानवायु कुपित हो जाता है। वह प्रकुपित वायु प्राणीके शरीरमें पक्वाश्रुपसे आश्रित समस्त रोगोंको उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त रोगीके शरीरमें मूत्र, वीर्य, अर्श तथा मलावरोध आदिसे सम्बन्धित बहुतसे रोग प्रकट हो जाते हैं।

तन्द्रा, स्तिमिता, गुरुता, स्निग्धता, अरुचि, आलस्य, शैत्य, शोथ, अग्निमान्द्य, कटु और रुक्ष पदार्थोंकी अभिलाषा आदि लक्षणोंसे युक्त वायुको साम अर्थात् आम-मदृश कहते हैं। जिसमें तन्द्रा आदिके विपरीत लक्षण होते हैं, वह वायु निराम कहलाता है।

साम-निरामके लक्षण बताकर अस वायुके आवरण और भेदोंका वर्णन किया जाता है। पित्तदोषसे आवृत वात-विकार होनेपर दाह, तृष्णा, शूल, भ्रम और और्ध्वकि आगे अन्धकार छा जाता है। कटु, उष्ण, अम्ल तथा लवणके प्रयोगसे रोगीमें विदाह और शीतकी अभिलाषा बढ़ जाती है। कफवृत्त वात-विकारमें रोगी शीतल, रुक्ष और उष्ण भोजन करनेका इच्छुक होता है। उसको शीतलात, भारीपन, शूल, तृष्णा, अग्निदाह, कटु घृतयुक्तमुख तथा अधिक तृष्णाके दोष घेर लेते हैं। इस कफवृत्त रोगमें अङ्ग-ददं, उबकाई और अरुचि भी होती है।

रक्तावृत वातरोग होनेपर रोगीके चर्म तथा मांसमें दाह और पीड़ा अधिक होती है। रोगीके शरीरमें रताल वर्णका शोथ हो जाता है और मण्डलाकार चकत्ते पड़ जाते हैं। वायुके मांसाश्रित होनेपर शोथ बड़ा कठोर लगता है। उस रोगीको उबकाई आती है और शरीरमें छोटी-छोटी फुंसियाँ निकलने लगती हैं। ऐसे शोथमें रोमाञ्च भी होता है और शरीर चीँटियोंसे व्याप्त हुएके समान प्रतीत होता है। मेदसे आवृत वायु-विकारमें यह शोथ शरीरमें चलायमान, गूदु तथा शीतल होता है और अरुचिकर भी होता है। मेदामे आवृत वात अन्य वातरोगोंकी अपेक्षा अत्यन्त कष्टसाध्य है। इसको आकृषवातके समान समझना चाहिये। इस रोगके होनेपर उत्पन्न हुआ शोथ स्पर्श तथा आच्छादन करनेसे उष्ण तथा आवरण हटा देनेपर शीतल लगने लगता है।

वायुके मज्जावृत शोथ होनेपर उक्त लक्षणके विपरीत

लक्षण दिखायी देते हैं। उसमें फैलाव और कसाव होता है, शूलजनित पीड़ा होती है तथा दोनों हाथोंसे मर्दन करनेपर रोगीको सुख प्राप्त होता है।

शुक्रावृत वात-शोथ होनेपर शुरुमें अधिक वेग नहीं रह जाता। वायुके अत्रसे आवृत होनेपर भोजन करनेपर रोगीके कुक्षिभागमें पीड़ा होती है और भोजनके पक्ष जानेपर पीड़ा शान्त हो जाती है। मूत्रसे वायुके आवृत हो जानेपर मूत्रका निकलना बंद हो जाता है और वस्ति-स्थानमें वेदना होने लगती है। वायुके द्वारा पुरीषके आवृत होनेपर गुच्छभागमें विशेष प्रकारका विबन्ध हो जाता है। ओरसे काटनेपर होनेवाली पीड़ाके समान रोगीको पीड़ा होती है। ऐसे वातरक्त-दोषके आवरण-रोगमें प्थरसे पीड़ित रोगी यथाशीघ्र धराशायी होकर मूर्च्छित हो जाता है। विबन्धद्वारा मल पीड़ित होकर सूखा हुआ बड़ी कठिनतासे और बहुत देरमें निकलता है।

वायुद्वारा सभी धातुओंके आवृत होनेपर रोगीके कटि-प्रदेश, वक्षस्य और पीठमें पीड़ा होती है। क्लिप्त भावको प्राप्त हुआ वायु रोगीके हृदयको पीड़ित करता है। पित्तज दोषसे प्राणवायुके आवृत होनेपर भ्रम, भूच्छा, पीड़ा तथा दाहका उपद्रव रोगीके शरीरमें होता है।

पित्तसे व्यानवायुके आक्रान्त होनेपर पीड़ा, तन्द्रा, स्वरभ्रंश और सम्पूर्ण शरीरमें दाहकी उत्पत्ति होती है। सम्मानवायुके आवृत होनेपर क्रमशः अङ्गवेष्टा, अङ्गभङ्ग, वेदनासहित संताप, तापविनाश, पसीना, रुक्षता और तृष्णाका उपद्रव होता है। अधानवायुके आवृत होनेसे रोगीके शरीरमें दाह होता है और उसके मलका वर्ण हस्दीके समान पीला हो जाता है। स्त्रियोंमें रजवृद्धि (या रोगवृद्धि), ताप, आनाह तथा प्रमेह नामक रोग भी उसके शरीरमें जन्म ग्रहण कर लेते हैं।

श्लेष्मके द्वारा प्राणवायुके आवृत होनेपर नादस्रोतमें अवरोध, खट्कार, स्वेद, श्वास तथा निःश्वास—इनमें विविधता होती है। उदानवायुके कफसे आवृत होनेपर शरीरमें भारीपन, अरुचि, याक्त्रोध, स्वरक्षय, बल और वर्णका नाश होता है। व्यानवायुके कफसे आवृत होनेपर पर्व और अस्थियोंमें जकड़न, सम्पूर्ण शरीरमें भारीपन, अत्यधिक

स्थूलता आ जाती है। समानवायुके कफसे आवृत होनेपर कर्मेन्द्रियोंमें अज्ञानता, शरीरमें पसीनेकी कमी, अग्निमन्दता तथा अपानवायुके कफसे आवृत होनेपर मल-मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति होती है।

इस प्रकार वातरक्त-रोग चारों प्रकारका माना गया है। क्रमशः प्राणादि वायु परस्पर आक्रान्त होनेसे बीस प्रकारके आवरण होते हैं। प्राणवायु जब अपानवायुको आवृत कर लेता है, तब उष्णकृमि, श्वसनरोध, प्रतिश्याय, शिरोघ्न, हृदयरोग और मुखशोष—ये उपद्रव होते हैं। उदानवायुके द्वारा प्राणवायुके आवृत होनेपर रोगीकी शक्तिका विनाश होता है। वैद्यको यथोचित विचार करके ही सभी प्रकारके वात-आवरणोंके भेदोंको जानना चाहिये। सभी वात-दोषोंके स्थानोंकी विवेचना करके उसके दुष्ट कर्मोंकी वृद्धि और हानिपर चिन्तन करके भी आवरणोंका विभाग समझना चाहिये।

प्राणादिक षोडश वायु-समूहोंके (पृथक्-पृथक्) पित्त-दोषजन्य आवरण होते हैं। वातमिश्रित पित्तादिके जिन निवास-स्थानोंकी चर्चा ऊपर की गयी है, वे उन्हीं अपने दोषोंसे मिश्रित हैं। मिश्रित पित्तादिक दोषोंके कारण वे भी अनेक प्रकारके आवरण रोग माने गये हैं। अतः विद्वान् चिकित्सक सचेत होकर अपने लक्षण-ज्ञानके अनुसार उन दोषोंका चिन्तन करे। चिकित्सकके लिये अपेक्षित है कि धीरे-धीरे अपने लक्षणोंके अभ्युदयसे निश्चित एवं दृढ़ हुए उन रोगोंका बार-बार परीक्षण करके ही उपचार करे।

प्राणवायु प्राणीके जीवनका आधार तथा उदानवायु बलका आधार कहा गया है। शरीरमें उन दोनोंके पोषित होनेसे प्राणीके आयु और बल दोनोंकी हानि होती है।

आवृत हुए सभी वायु-दोष अपने-अपने लक्षणोंसे शरीरपर स्पष्ट हो गये हों अथवा स्पष्ट न हुए हों या वे स्थानच्युत होनेके कारण समझमें परे हो रहे हों अथवा उपद्रवविहीन हो गये हों, वे असाध्य ही होते हैं। चिकित्सकके द्वारा किये जानेवाले प्रयाससे भी वे कष्ट-साध्य ही होते हैं।

उपर्युक्त उन आवृत वायु-दोषोंकी उपेक्षा करनेसे प्राणियोंके शरीरमें विद्रधि, प्लीहा, हृद्रोग, गुल्म तथा अग्निमन्दता आदिके उपद्रवोंका आविर्भाव होता है।

हे सुश्रुत! सभी रोगोंके ज्ञान एवं मनुष्यादि समस्त प्राणियोंकी आयुवृद्धिके लिये मैंने आश्रय मुनिद्वारा कथित उनके निदानको भरी प्रकारसे बतला दिया है। अतः उसी प्रकारसे सभी रोगोंका विचार करके चिकित्सकको तत्सम्बन्धित रोगकी चिकित्सा करनी चाहिये।

मधु, घृत और गुड़से संयुक्त त्रिफला (हरीतकी, आमलकी और बहेड़ा)—चूर्ण सभी रोगोंका विनाशक है। त्रिफला-चूर्णको यदि केवल जलके साथ नित्य-प्रातः प्रयोगमें लाया जाय, तब भी वह सभी रोगोंका नाश करनेवाला होता है। शतावरी, गुड़ूची, चित्रक और विडंगके साथ भी प्रयुक्त त्रिफला सभी रोगोंको विनाश कर देती है। शतावरी, गुड़ूची, अग्निमन्थ, विशा, सोंठ, मूसली, बल्ल, पुनर्नका, बृहती, निर्गुण्डी, निम्बपत्र, भृंगराज, औबला तथा वासक अथवा उसके ही रससे सात बार या एक बार भाक्षित त्रिफला सभी रोगोंका निवारक है। पूर्वोक्त कही गयी औषधियोंकी जैसी प्राप्ति हो, उसी प्रकारसे उनके द्वारा वैष्णव चूर्ण, मोदक, बटी, घृत, तेल अथवा क्वाथ भी सर्वरोगहर्ता है। उनकी आयुषांतिक मात्रा एक पल, आधा पल, एक कर्ष अथवा आधा कर्ष रोगीके लिये उपादेय माने गयी है। (अध्याय १६७)

### वैद्यकशास्त्रकी परिभाषा

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! प्राणियोंके जीवनकी रक्षाके कारणस्वरूप, समस्त रोग-विनाशक, सिद्ध, औषधीय योगसारका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें।

वर्षा-ऋतुमें कसैले, कटु, तिक्त और रुक्षादि गुणोंवाले खाद्य-पदार्थोंके सेवनसे, चिंता, मैथुन, व्यायाम, भय, शोक, रात्रि-जागरण करने तथा उच्च स्वरमें बोलनेसे, अधिक

पथ-वहन तथा सामर्थ्यसे अधिक शारीरिक शक्तिका प्रयोग करनेसे एवं भोजनके पाचनकालमें और संध्यासमयमें प्राणियोंके शरीरकी वायु कुपित हो जाती है।

ग्रीष्म और वर्षा-ऋतुके मध्याह्नकालमें उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार, कटु एवं अजीर्ण भोजन, तेज धूप, अग्नि-संताप, मद्यपान तथा क्रोधावैराग्यका अवरोध करनेसे प्राणियोंका



पित्त प्रकुपित होता है। यह दोष ग्रीष्मकालको अर्द्ध रात्रियोंमें भी हो सकता है।

वसन्त-ऋतुमें स्वादिष्ट, अम्ल, लवण, स्निग्ध, भारी और शीतल भोजनका अधिक प्रयोग, नवात्र, चिकने पदार्थ तथा दलदलवाले स्थानोंमें विचरण, मांसादि सेवन, सहस्र व्यायामसे विरक्ति, दिनमें शयन, शय्या और आसनादिक सुखोपभोग प्राप्त करनेसे और भोजनके अन्तमें प्राणियोंका कफ संशुब्ध हो उठता है।

शारीरिक कर्कशता, संकोच, सूचिकाभेद पीड़ा, विष्टम्भ, अनिद्रा, रोमाञ्च, स्तम्भ, शुष्कता, स्वामत्त्व, अङ्ग-विभ्रंश, बलहानि और परिश्रमजन्य धकान आदिके उपद्रव वात-दोषके लक्षण हैं। अतः उन सभी उपद्रवोंसे समन्वित रोगको वातात्मक रोग कहना चाहिये।

दाह, पैरमें जलन, परीना, क्रोध, परिश्रम, कटु, अम्ल, शय-समान दुर्गन्ध, स्वेदग्रहित्य, मूर्च्छा, अत्यन्त तृष्णा, भ्रम, हृत्पीके समान पीला और हरा रंग होना—ऐसे लक्षणोंवाला मनुष्य पित्त-दोषसे समन्वित माना जाता है।

शरीरमें स्निग्धता, माधुर्य, बन्धनके समान पीड़ा होना, निक्षेपता, तृप्ति, संघत, शोथ, शीतलताकी अनुभूति, भारीपन, मलाधिन्य, खुजली और अधिक निद्रा—ये सब लक्षण कफसे उत्पन्न होते हैं।

कारण, लक्षण और संसर्गसे रोगको पहचानना चाहिये। जो रोग वात, पित्तादि दोषोंमेंसे किन्हीं दो दोषोंसे उत्पन्न हो, वह द्विदोषज रोग कहलाता है और जिस रोगमें सभी वात, पित्त तथा कफजन्य दोषोंके लक्षण व्यक्त हों, उसे त्रिलिङ्ग या संनिपातिक रोग कहा जाता है।

प्राणियोंका यह शरीर दोष, धातु तथा मलका आधार कहा जाता है। उन सभीका शरीरमें समत्व भावसे रहना आरोग्य या निरोगता है। उनमें कमी और वृद्धि रोगका कारण है। वसा, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र—ये सात धातुएँ हैं। वात, पित्त तथा कफ—ये तीन दोष हैं और विष्टा तथा मूत्र आदि मल कहे जाते हैं।

वायु शीतल, रुक्ष, लघु, सूक्ष्म, स्वरविहीन, स्थिर तथा बली होता है। पित्त अम्ल (खट्वा), कटु (तीक्ष्ण), उष्ण और पङ्किल रोगोंका कारण है। कफ मधुर, लवण, स्निग्ध,

भारी तथा अधिक चिकना होता है।

वायु शरीरमें गुदाभाग और कटिप्रदेशका आश्रय लेता है। पित्त पक्वाशयमें स्थित रहता है और कफका आश्रय-स्थान आमाशय, कण्ठ तथा मस्तकका संधि-भाग है।

कटु, तिक्त और कसैले पदार्थोंका सेवन करनेसे वायु प्रकुपित होता है। कटु, अम्ल तथा लवण पित्तको स्वादिष्ट, उष्ण और लवण पदार्थ कफको प्रकुपित करते हैं। अतः इन सभीका विपर्यय शरीरमें उन दोषोंकी शान्तिके लिये ही प्रयुक्त होना चाहिये। यथापेक्षित अपने-अपने स्थानपर प्रयुक्त सुखके कारणभूत पदार्थ रोगियोंके रोगका उपशमन करते हैं।

मधुर भोज्य पदार्थ नेत्रशक्ति, रस और धातुके अभिवर्धक हैं। अम्लमिश्रित होनेपर वे ही मन और हृदयकी संतुष्टि, जठराग्निका उदोपन तथा पाचनशक्तिको प्रबल बनाते हैं। तिक्त पदार्थ अग्निके उद्दीपक, ज्वर, तृष्णा-विनाशक, शोधन और शोषण करनेवाले हैं। कषाय पदार्थ पित्तवर्धक, स्तम्भक, कण्ठग्रहादि दोष-विनाशक तथा शरीर-शोषक होते हैं।

जो द्रव्य-पदार्थ प्राणियोंके शरीरमें स्थित रस और शोथको विरोध रूपसे परिपक्व करनेका आधार होता है, वह उदम माना गया है। रस-परिपाकके मध्य स्थायी रूपसे स्थित वह पदार्थ यथाशीघ्र ही अन्य सभी द्रव्योंका भी आश्रय बन जाता है। शीतलता, उष्णता और लवणताके गुणोंको धारण करनेवाला पदार्थ शीघ्र अथवा शक्ति ही है।

रस-परिपाक दो प्रकारका होता है। एक है मधुर और दूसरा है कटु।

वैद्य, औषधि, रोगी तथा परिचारक (रोगीकी सेवा करनेवाला)—की सम्पत्ति—ये चार चिकित्साके अङ्ग हैं। इन चारोंकी उत्तमता होनेपर रोग यथाशीघ्र दूर हो जाता है और इनके विपरीत हो जानेपर तो रोगकी असिद्धि ही होती है।

देह, काल, रोगीकी आयु, शरीरमें अग्निका बलाबल, प्रकृति, त्रिदोषों (कफ-पित्त और वायु)—का साम्य-वैषम्य, रोगीका स्वभाव, औषधि, रोगीके शरीरका सत्व, सहनशक्ति तथा रोगका भूतभूत विवेचन करके ही विद्वान् चिकित्सकोंको चिकित्सा-कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये।



अधिक जलाशय तथा पर्वतोंवाला देश अनूप कहलाता है। यह देश कफ तथा वायुको प्रकुपित करता है। वनाच्छादित अथवा अन्यान्य शिखर तथा शाखाओंवाला देश रक्त-पित्तज दोषोंका जनक है। इन सभी लक्षणोंसे जो देश समन्वित होता है, वह सामान्य देश कहा गया है। मनुष्य सोलह वर्षपर्यन्त बालक, सत्तर वर्षतक मध्यम (युवा एवं प्रौढ़) और सत्तर वर्षके पश्चात् वृद्ध कहा जाता है।

प्रायः कफ, पित्त और वायु जैसा क्रम दिया गया है, वैसे ही शरीरमें ये उद्दीप्त होते हैं। शरीरके शक्तिहीन होनेपर अथवा विशेष वृद्धावस्थाके आ जानेपर रोगी क्षारक्रिया, अग्निचिकित्सा और शल्यकर्म-रहित होता है। कृशकाय रोगीका बृंहण, स्थूल शरीरवाले रोगीका कर्षण और मध्य शरीरवाले रोगीका रक्षण-कार्य करना चाहिये। शरीरके ये ही तीन भेद माने गये हैं। चिकित्सा-कार्यमें इस त्रिविध क्षमताका विवेचन भी अपेक्षित होता है।

स्थिरता, व्यायाम और संतोष-धारण करनेकी प्रवृत्तिसे रोगीके बलको समझना चाहिये। जो मनुष्य विकार-रहित, उत्साह-सम्पन्न तथा महासाहसिक होता है, वह बलवान् माना गया है। जिस प्राणीके खान-पान भी प्रकृतिके विरुद्ध हैं, यदि वे रोगीके शरीरमें आनेवाले कलके मुखकी कल्पनाको साकार करते हैं तो उसको प्रकृतिकी साम्यावस्था कहा जाता है।

कफजन्य पदार्थोंका भक्षण करनेसे गर्भिणी स्त्रीके गर्भसे कफ-रोगसे युक्त संतान ही उत्पन्न होती है। इसी प्रकार वातजनक तथा पित्तोत्पादक पदार्थोंसे भी होता है, किंतु हितैषी भोजन करनेसे समान धातुवाली संतानका जन्म होता है।

कृशकाय, रुक्ष, अल्पकेश, चञ्चलचित्त तथा स्वप्नमें बहुत बोलनेवाला व्यक्ति वात-प्रकृतिवाला होता है। असमयमें ही जिसका बाल सफेद हो गया हो, गौर वर्णवाला, स्वेद एवं क्रोधयुक्त, बुद्धिमान् और स्वप्नमें भी तेज देखनेवाला मनुष्य पित्त-प्रकृतिसे समन्वित कहा गया है। स्थिरचित्त, सूक्ष्मस्वर, प्रसन्न, स्निग्धकेश तथा स्वप्नमें जल और पथ्य देखनेवाला पुरुष कफ-प्रकृतिसे सम्बन्धित होता है। मिश्रित लक्षणोंके होनेपर प्राणीको द्विदोषज तथा त्रिदोषज मानना

चाहिये। प्राणीमें उक्त दोषोंका इतर भाव होनेपर जिस दोषके अधिक लक्षण दिखायी देते हों, उसीके अनुसार उसको प्रकृतिका निर्धारण होता है।

मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम—ये वात-पित्त आदिक चार अवस्थाएँ हैं। कफ, पित्त तथा वायुकी अधिकता और समतासे जठराग्नि भी भिन्न प्रकारकी हो जाती है। शरीरमें सदैव जठराग्निकी समताकी रक्षा करनी चाहिये। विषम स्थिति आनेपर वातनिग्रह करना चाहिये। तीक्ष्णावस्था होनेपर पित्त-दोषका प्रतीकार और मन्दावस्थामें कफका होधन आवश्यक माना गया है।

सभी रोगोंकी उत्पत्तिके कारण अजीर्ण और मन्दाग्नि-दोष हैं। आम, अम्ल, रस तथा विष्टम्भ—ये चार उसके लक्षण हैं। आम-दोष होनेपर विषूँषिका, हृदयरोग और आलस्य आदिके उपद्रव होते हैं। ऐसा विकार होनेपर वच, कटुफल और लवणमिश्रित जलपान कराकर रोगीको बमन कराना चाहिये। अम्ल-दोष होनेपर प्राणीमें शुष्का अभाव, भ्रम, मूर्च्छा और तुष्णा आदिके दोष जन्म लेते हैं। इस अवस्थामें अग्निपर बिना पकाया हुआ शीतल जल, वायुका सेवन रोगीके लिये अपेक्षित है। रस-दोष होनेपर शरीरभंग, शिरोजाल्प तथा भोजनकी अनिच्छा आदिसे सम्बन्धित उपद्रव होते हैं। इस दोषके होनेपर दिनमें निद्रा और उपवासका परित्याग करना चाहिये। विष्टम्भ-दोष होनेपर शूल, गुल्म, अरुचि और मलमूत्रज्वित उपद्रव होते हैं। इस दोषकी वृद्धि होनेपर स्वेदन-क्रिया तथा लवणमिश्रित जलपान करनेका विधान है।

आम, अम्ल और विष्टम्भके लक्षणोंका जन्म क्रमशः—कफ, पित्त तथा वायु-दोषके कारण होता है। विद्वान् व्यक्तिको इन दोषोंके होनेपर हाँग, त्रिकटु (शुण्ठी, पिप्पली और मरिच) एवं सेंधा नमकका लेप उदरभागपर करके उसका निवारण करना चाहिये। दिनमें सोनेसे सभी प्रकारके अजीर्ण रोगोंका विनाश होता है। अहितकर अन्नोंका प्रयोग करनेसे शरीरमें उनके रोग-समूहोंकी उत्पत्ति होती है; अतएव अहितकर अन्नका सदैव परित्याग करना चाहिये।

केवल उष्ण जल अथवा मधु (माक्षिकभस्म)—के साथ

उष्ण जलका पान करनेसे रोगीकी पाचन-क्रिया रुद्ध रहती है। बंसांकुर, दही और मछलीसे प्रायः दूधका विरोध होता है। बिल्व, शोण (श्यानाक), गम्भरी (श्रीपर्णी), पाटल (पाट) और अग्निमान्ध—इन पाँच वृक्षोंके मूल संग्रहकी आयुर्वेदमें 'पञ्चमूल' कहा गया है। ये पञ्चमूल मन्दाग्निको तीव्र करनेवाले, कफ और वातके दोषका विनाश करनेवाले हैं। शालपर्णी (एकाङ्गी नामक औषधि), पुस्तिपर्णी (पेठवन), दो प्रकारकी बृहती (भटकटैया) तथा गौक्षुर (गोखरू)—इन पाँचोंको 'लघुपञ्चमूल' कहा जाता है। यह औषधि वात-पित्त-विनाशक तथा ओजवर्धक है। इन दोनों पञ्चमूलोंका संग्रह होनेपर दशमूल औषधिका निर्माण होता है। यह औषधि सनिपातिक ज्वरका विनाश करनेमें समर्थ होती है। खाँसी, भ्रास, तन्त्रा और पार्श्वमूल-रोगमें यह अधिक लाभकारी होती है। इन सभी औषधियोंको तेल और घृतमें परिपक्व करके केशरोगका निवारण किया जा सकता है।

क्याथरे चीगुना पानी पात्रमें भरकर उसको आगपर पकाना चाहिये। जब वह चतुर्थीत पानी रह जाय, तब उस क्याथके समान मात्रामें स्नेहिल द्रव्य—पदार्थका पाक तैयार करे। यह स्नेहपाक दूधसे भी तैयार किया जाता है। अतः उस क्याथमें दूधकी मात्रा समान होनी चाहिये। कल्क बनानेके लिये स्नेहकी मात्रासे औषधिकी मात्रा चतुर्थीत ही

होती है। पाक समान मात्रामें औषधियोंको लेकर तैयार होता है। वस्ति-पाक और पाय-पाकमें भी जलकी मात्रा और विधि समान ही होती है। अभ्यङ्ग अर्थात् शरीरमें मालिश करनेके लिये तैयार किया गया पाक खर तथा नस्पके लिये मृदु होना अपेक्षित है।

अन्यान्य दौषोंसे सदैव सुरक्षित रखनेके लिये चिन्तनीय स्कूल कर्मेन्द्रियोंके बीच प्राणियों जो प्रकृति अपनी कलवताके साथ विद्यमान रहती है, उसीको आरोग्य कहते हैं। अतः प्राणियोंको आपुष्मान् बने रहनेके लिये तत्सम्बन्धित आचरण करना चाहिये। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियोंके द्वारा स्वास्थ्य-विपरीत पदार्थोंको ग्रहण करता है, वह मृत्युका पात्र बन जाता है। जो चिकित्सक, मित्र और मुख्यके साथ द्वेष करनेवाला तथा शत्रुमेही होता है, जिसके गुल्फ, जानु, ललाट, हनु (ठोड़ी) और गण्डस्थल धृष्ट तथा स्थानच्युत हो जाते हैं, वह व्यक्ति कुछ ही कालमें अपने प्राणोंका परित्याग कर देता है।

जिस रोगी मनुष्यकी बायीं ओँख बंद गयी हो, जिह्वाका वर्ण श्याम पड़ गया हो, नासिका-भाग विकारयुक्त हो गया हो, दोनों ओष्ठ स्थानच्युत और कृष्णवर्णके हो गये हों तथा मुख भी कृष्णवर्णका हो गया हो तो चिकित्सकको चाहिये कि उसका परित्याग कर दे; क्योंकि उसकी मृत्यु सैनिकट ही होती है। (अध्याय १६८)

## पदार्थोंके गुण-दोष और औषधि-सेवनमें अनुपानका महत्त्व

धन्वन्तरिजीने कहा—[हे सुकुत!] अब मैं शरीरके लिये हितकारी एवं अहितकारी ज्ञान प्रदान करनेके निमित्त अनुपान-विधिकी वर्णन करता हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनिये।

लाल साठी चाबैल वात-पित्त एवं कफजन्य त्रिदोषोंका

विनाशक तथा तृष्णा और वेदाको दूर करनेवाला है। महाहासि अत्यन्त शक्तिशाली होता है। कलम अर्थात् अधिक पानीमें होनेवाला जड़हनी चावल कफ तथा पित्तके दोषका शमन करता है। सफेद साठी चाबस्त प्रायः शीतल,

१-आयुर्वेदमें स्नेहपाकके तीन प्रकार बताये गये हैं—घृत, मधुम और खर।

तत्र स्नेहौषधिवैकल्यात्र यत्र भेषजं मृदुः । मधुकाष्ठमिव विस्तर्प्यतेति यत्र भेषजं स मधुमः ।

वृष्णमवसत्रपौष्टिदुर्लभं विप्रवर्णं च यत्र भेषजं स खरः ॥

स्नेहपाकौऽथ कल्के स्वात्मदुर्लभिलेपिनि । न मुह्यत्यङ्गुलिं मधुः शीर्षमायः खरः स्मृतः ॥

जब स्नेहकार्त्तमें प्रयुक्त औषधि पकाले-पकाले यह सिद्ध हो जाय कि यह पक गयी है अर्थात् औषधि कलछोसे लगने लगे तो उसको मृदु-पाक कहते हैं। जब वह कल्क मोमके समान कटुहनीमें फैल जाय और कलछोमें पिपके नहीं, तब वह मधुम-पाक कहा जाता है। जब कल्क कठिन और कुछ चिकना हो जाता है तो उसकी खर-पाक कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लोगोंका विचार है कि जब कल्क अँगुलीपर चिपके और उसमें परमी हो तो वह मृदु-पाक है। जो कल्क अँगुलीपर न चिपके और नम हो, वह मधुम तथा जो कल्क पककर कठिन हो जाय, वह खर होता है।

२-घ०सू०अ० २७, सु०सू०अ० ४६, अ०सं० सू०अ० ७। २२, य०सू०अ० २५

भारी और वात, पित्त एवं कफ—इन तीनों दोषोंको दूर करता है।

श्यामाक अर्थात् सौंख्य शरीरशोधक, रुक्म, वातदोषोत्पादक, कफ तथा पित्तजनित दोषका निवारक है। उसी प्रकार प्रियंगु, नीवार और कोदो नामक अन्न भी शरीरके दोषोंको दूर करते हैं। यव (जौ) शीतल, कफ और पित्तज दोषका अपहारक होता है। गेहूँ शक्तिशाली, शीतल, भारी, मधुर और वातनाशक होता है। मूँग कफ, पित्त तथा रक्तको जीतनेवाला, कषाय, मधुर और लघु होता है। उड़द अत्यन्त शक्तिशाली, ओज-वृद्धि करनेवाला, पित्त-कफ-विनाशक तथा भारी होता है। राजमाष अर्थात् राजमा शुक्रनाशक, पित्तस्लेष्मकारक और वायुरोगका अपहारक है।

कुलधी<sup>१</sup> प्राणीके धास, हिचकी, सुक्रारमरी, हृदयस्थ कफ, गुल्म एवं वात-दोषको दूर करनेमें समर्थ होती है। मकुष्ठक अर्थात् मकुनी रक्त, पित्त तथा प्वरको दूर करनेवाला, शीतल और प्राग्ग है। चना पुरुषत्व, रक्त, कफ और पित्तका अपहर्ता तथा वात-दोषका वर्धक माना जाता है। मसूर मधुर, शीतल, संग्राही और कफ तथा पित्तका निवारक है। मसूर-जैसे ही सभी गुणोंकी अधिकता कलाप (मटर)-में भी होती है—यह अधिक वायुवर्धक होता है। अरहर कफ तथा पित्त-विनाशक और शुक्रवर्धक है। अलसी पित्त-वृद्धिकारक और सरसों कफ तथा वायुके दोषका निवारक है।

तिल<sup>२</sup> क्षार, मधुर और स्निग्ध-गुणसे युक्त होता है। यह बलवर्धक, उष्ण तथा पित्तकारक भी है। अन्य विभिन्न प्रकारके अन्नोंकी जो प्रजातिपाँ हैं, वे बलनाशक, रुक्म और शीतल होती हैं।

चित्रक, इंगुदी (हिंगोट), कमलनाल, पिप्पली, मधु, सहिजन, चव्वाचरण (गजपिप्पली), निर्गुण्डी, तर्कारी (जयन्ती), काशमर्दक और बिल्व—ये कफ-पित्त तथा कृमिनाशक, लघु और जठराग्निको उद्दीप्त करते हैं। खर्चाभू (पुनर्वा) तथा मार्कर (मकरा) वात और कफ-दोषका विनाश करते हैं। एण्ड तिक और रसयुक्त एवं काकमाची (मकोय) त्रिदोषनाशक होता है। चांगेरी कफ और वातविनाशक है। सरसों सभी दोषोंसे युक्त होता है।

सरसोंके समान कुसुम्भ (बैर) भी होता है। राजिका (काला सरसों) वात और पित्तको बढ़ानेवाला है। नाडीच कफ-पित्त-विनाशक तथा चुचु (पालकीकी जातिका एक शाक) मधुर और शीतल होता है। कमल-पत्र सभी दोषोंका हन्ता और त्रिपुट (मटरकी एक जाति) अत्यन्त वातकारक है। वास्तुक अर्थात् बधुआ क्षारयुक्त, अतिशय श्वेच्छकारक और कृमिनाशक होता है। इसमें सभी दोषोंको विनाश करनेकी क्षमता होती है।

तण्डुलीय (चीलाई)-का शाक विषनाशक होता है। पालक तथा अन्य इसी प्रकारके शाकोंमें भी यह गुण रहता है। मूलक (मूली) आम-दोषका उत्पादक तथा वात-कफनाशक है। जब यह शाक अग्निपर पक जाता है तो सभी दोषोंको दूर करनेमें समर्थ तथा हृदय और कण्ठको प्रिय होता है। ककौटक (ककड़ी), बैंगन, परवल और कीला कुह, मेह, खर, श्वास, कास, पित्त तथा कफके नाशक हैं। कुम्हड़ा सर्वदोषविनाशक, वस्तिशोधक और स्वादयुक्त होता है। करिंगा (तरबूज) और अलाबुनी (लौकी) पित्तविनाशनी और वातवर्धनी होती है। जपुप (खीर) तथा डवोरूक (ककड़ी-फूट) वात और कफ बढ़ानेवाली तथा पित्त-दोषको दूर करनेवाली है।

बुधाम्ल (अमलबेत) और जम्बीर (नीबू) कफ तथा वात-दोष-निवारक हैं। दाडिम वात-दोषका नाशक तथा स्वादिष्ट होता है। नारंगोंके फलमें भारीपनका दोष रहता है। केसर और मातुलुंग (बिजौरा नीबू) कफ-वात-विनाशक एवं जठराग्निको प्रदीप्त करते हैं। माष (उड़द) वात और पित्तका नाशक होता है। इसके सेवनसे त्वचाभागमें स्निग्धता आती है और शरीरके अंदर विद्यमान उष्णता तथा वात-दोष विनाश हो जाता है। आंवला बलकारी, मधुर, रोचक और अम्लरससे युक्त होता है। हरीतकी (हरै) भोजनको भली प्रकारसे पचानेवाली, पुण्यदायिनी अमृतके समान तथा कफ और वात-दोषको दूर करनेमें समर्थ एवं विरेचक है। चहेड़ा भी उसी प्रकारका होता है। इसमें वात, पित्त और कफ—इन तीनों दोषोंपर विजय प्राप्त करनेकी क्षमता होती है। तिन्तिडी<sup>३</sup> (इमली)-फल वात तथा कफका विनाशक, अम्लरससे युक्त और विरेचक होता है।

लकुच अर्थात् बड़हल दोषोत्पादक तथा स्वादयुक्त,



बकुल कफ-वात-विनाशक, बीजपूरक (बिजौरा नींबू) गुल्म, वात, कफ, श्वास और कासरोगोंका नाशक है। कपित्थ (कैथ) ग्राह्य तथा सभी दोषोंका हरण करनेवाला होता है। पकनेपर यह भारी एवं विषकी दूर करनेवाला होता है। पकनेके पूर्व अपने बाल्यकालमें यह कफ और पित्तको उत्पन्न करता है। उसके बाद प्रौढ़वयस्सामें यह पित्तवर्धक है।

पका हुआ आम<sup>१</sup> वात-दोषको उत्पन्न करनेवाला तथा मांस, वीर्य, वर्ण और शक्तिको बढ़ानेवाला होता है। जामुन वात, पित्त और कफका विनाशक तथा विष्टम्भ-दोषका उत्पादक होता है। तिन्दुक कफ-वातका नाशक और घोर वात तथा पित्तदोषको दूर करता है। बिल्व विष्टम्भ-दोषमें वात-दोषको बढ़ानेवाला है। प्रियाल (चिरीजी) वातज दोषका नाशक है। राजादन (खिरनी), मोच (केरल), कटहल और नारियल स्वादयुक्त, सिग्ध तथा भारी होते हैं। ये सभी वीर्य और मांसके अभिवर्धक कहे जाते हैं।

द्राक्षा (अंगूर), मधूक (महुआ), खजूर (खजूर) तथा कुंकुम वात और रक्त-दोषको जीतनेवाले होते हैं। मागधी (पिप्पली) माधुर्य-गुणसे युक्त होती है। यह पकनेपर श्वास तथा पित्त-दोषको दूर करनेमें श्रेष्ठ है। आर्द्रक (अदरक) रोचक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक तथा कफ और वात-विनाशक होता है। सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च कफ तथा वात-दोषको जीतनेवाले माने गये हैं। ताल मिर्च शरीरको पौष्टिक तत्व देनेमें असमर्थ होता है, ऐसा वैद्यक-शास्त्रका मत है। हींग गुल्म, शूल तथा मलज्वरोधको दूर करनेवाली और वात तथा कफकी विनाशिनी है।

यमानो, धनिया और अजामूत वात तथा कफज दोषको दूर करनेमें विशेष रूपसे गुणकारी हैं। मेघा नमक नेत्रज्योतिवर्धक, पुष्टिकारक और वात-पित्त तथा कफ—इन तीनों दोषोंका शमन करनेवाला माना गया है। सौवर्चल अर्थात् काला नमक वायु-अवरोधका विनाशक, उष्ण और हृदयशूलका शामक है। बिडंग उष्ण, तीक्ष्ण, शूलनाशक तथा वात-दोषका अपहारक है। रोमक स्वल्प वातवर्धक, स्वादिष्ट, रोचक, गलानेवाला और भारी होता है। इसके

द्वारा हृदय-रोग, पाण्डु और गलेका दोष दूर हो जाता है। दवक्षार अग्निदीपक है। सर्जिक्षार (रेह) पाचक, अग्निदीपक, तीक्ष्ण और विदारक होता है।

वर्षाका जल तीनों दोषोंका नाशक, लघु, स्वादिष्ट विद्यापहारक है। नदीका जल वातवर्धक, रुक्ष, सरस, मधुर और लघु होता है। बापीका जल वात-कफ-विनाशक तथा पोखरका जल वातवर्धक माना गया है। झरनेका जल रविकर, अग्निदीपक, रुक्ष, कफनाशक और लघु होता है। कुएँका जल अग्निदीपक, पित्तवर्धक तथा उद्भिज (पातालतोड़ कुआँ)-का जल पित्तविनाशक है। यह जल दिनमें सूर्य-किरण और रात्रिमें चन्द्र-किरणसे सम्पृक्त होकर सभी दोषोंसे विमुक्त हो जाता है। इसकी तुलना तो आकाशसे गिरनेवाले जलसे ही की जा सकती है।

गरम जल श्वर, श्वास, मेदा-दोष तथा वात और कफ-विनाशक है। जलकी गर्म करके ठंडा करनेके पश्चात् वह प्राणोंके वात-पित्त तथा कफ—इन तीनों दोषोंका विनाश करता है, किंतु बारी हो जानेपर वही जल दोषयुक्त हो जाता है।

गोदुग्ध वात और पित्तका विनाशक, सिग्ध और गुरुधकी रसायन है। घेसका दूध गोदुग्धकी अपेक्षा अत्यधिक भारी, सिग्ध तथा मन्दाग्नि-दोषका उत्पादक होता है। बकरीका दूध रक्तातिसार, कास, श्वास तथा कफका अपहारक है। स्त्रियोंका दूध नेत्रोंकी ज्योतिको तीव्र करनेवाला, जीवनस्वरूप और रक्त-पित्त-विनाशक है।

दही परम गुणकारी होता है। यह वात-दोषको दूर करनेवाला पौष्टिक तथा पित्त एवं कफका वर्धक है। मट्ठा तीनों दोषोंका नाशक और उसकी मही (छाछ) रक्तादिक स्त्रियोंका शोधक होता है। नया निकाला गया नवनीत (मक्खन) ग्रहणी-बवासीर और अर्द्धित रोगजन्य पोड़ाका अपहारक है। दूधके क्लिष्ट (दुग्धविकार विशेष) आदि विकार भारी तथा कुष्ठरोगके कारण हैं। प्राचीन विद्वान् तक्रको ग्रहणी, शोथ, बवासीर, पाण्डुरोग, अतिसार और गुल्मरोगका विनाशक तथा वात-पित्त एवं कफजन्य त्रिदोषका उत्तम शामक मानते हैं।

घृत पीष्टिक, मधुर और वात-पित्त तथा कफका अपहारक होता है। गोघृत बुद्धिवर्धक और नेत्रज्योति-प्रदायक है। अग्निपर तप्त करनेके बाद तो यह तीनों दोषोंको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ हो जाता है। संस्कृत घृतसे अपस्मार-रोगमें होनेवाले उन्माद तथा मूर्च्छाजनित दोष दूर हो जाते हैं। बकरी और भेड़ आदिसे प्राप्त होनेवाला घृत भी गोदुग्धसे तैयार होनेवाले घृतके समान ही गुणकारी होता है। ये घृत कफ तथा वात-विनाशक और मूत्रदोषके अपहर्ता तथा सभी प्रकारके कृमि और विषजनित दोषोंके निवारक हैं।

तिलका तेल बलशाली, केशमें लगाने लायक, वात और कफका विनाशक, पाण्डुरत्व, उदररोग, कुष्ठ, अर्ल, शोथ, गुल्म तथा प्रमेह-रोगका नाशक होता है। सरसोंका तेल कृमि और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला तथा कफ, मेढा और वात-दोषका भी नाशक है। अलसीका तेल नेत्ररोगको हानि पहुँचानेवाला तथा वात और पित्तका विनाशक है। बहेड़ेका तेल कफ-पित्तको दूर करनेवाला, केशवर्धक, त्वक् और कर्णदोषका निवारक होता है। इसे क्रिदोषका शमन करनेवाला, मधुर और वातवर्धक कहा जाता है। इसके प्रयोगसे हिचकी, श्वास, कृमि, छर्दि, मेह, तृष्णा और विष-दोष भी दूर हो जाते हैं।

‘श्वरस’ रक्त और पित्त-दोषनाशक, बलप्रद, पीष्टिक तथा कफवर्धक होता है। इस रसका दूध-मिश्रित बना हुआ सिखरन पित्तवर्धक, उसकी मदिरा तीव्र (उत्तेजक) तथा शर्करा मछलीके अँड़ेके समान श्वेत और हल्की होती है। इसकी ख़ाई पीष्टिक, स्निग्ध, स्वादिष्ट तथा रक्त-पित्त और वात-दोषपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होती है। गुड़ वात-पित्तहर्ता, रुक्ष तथा कफवर्धक होता है। यह पित्त-विनाशक तो है ही, जो गुड़ पुराना हो गया है, वह अधिक प्रशस्त और पथ्य है। इसके सेवनसे रक्तकी शुद्धि हो जाती है। गुड़ और शर्करा दोनों रक्त एवं पित्त-दोषके अपहर्ता, पीष्टिक तथा स्नेहयुक्त होते हैं। इसकी मदिरा सब प्रकारसे पित्त-दोषको उत्पन्न करनेवाली तथा अपनी अम्लताके कारण कफ और वात-दोषको दूर करनेवाली है। सौवीर प्रान्तमें प्राप्त होनेवाली सभी प्रकारकी मदिराएँ रक्त-पित्तकारक

तथा तीक्ष्ण गुणवाली होती हैं।

मौड़ और भूना हुआ चावल पथ्य है, यह अग्निदीपक और पाचक होता है। तक्रके साथ दाडिम, त्रिकटु, गुड़, मधु तथा पिप्पलीके मिश्रणसे तैयार किया गया पेय पदार्थ वात-दोष-विनाशक, लघु और वस्तिभागका शोधक है, किंतु मनुष्यको इस सुन्दर पेयका परित्याग कर देना चाहिये, जो काम, श्वास और नाड़ी-रोगको बल प्रदान करनेवाला है।

पायस अर्थात् खीर कफोत्पादक तथा बलवर्धक होता है। छिचड़ी वातनाशक है। सुधीत अर्थात् दालका सूप स्निग्ध, उष्ण, लघु और रुचिकर होता है। कन्द, मूल और फलसे तैयार किया गया सूप भारी और पाचक माना गया है। कुछ उष्ण सेवन करनेसे वह सूप हल्का हो जाता है और यक्षशीघ्र पच जाता है। शाकको उबालकर उसे निम्बोद्वजा चाहिये। तदनन्तर उसको घृत या तेलसे संस्कारित करके प्रयोग करना हितकारी होता है।

दाडिम तथा औँवलेसे तैयार किया गया सूप हृदयको प्रिय अग्निवर्धक और वात-पित्त-विनाशक होता है। मूलीसे बनाये गये सूपके द्वारा श्वास, कास, प्रतिश्याय तथा कफज दोष दूर हो जाते हैं। यव, कोल और कुलथीका रस सुस्वादु तथा वात-विनाशक होता है। मूँग तथा औँवलेसे तैयार हुआ सूप प्राज्ञ है। यह कफ और पित्तका विनाश करनेवाला है।

गुड़मिश्रित दही वातनाशक होता है। सभी प्रकारके सन्तु, रुक्ष एवं वातवर्धक होते हैं। पूही पीष्टिक और पाचनमें भारी होती है। मांसयुक्त भोजन नूंहण और भक्ष्यपिष्टक (चावल एवं दाल आदिको पोंसकर बनाया पीठा) भारी माना जाता है। तैलमें तलकर तैयार किये गये पिष्टक दृष्टिनाशक हैं। अत्यन्त उष्ण मण्डक पथ्य है। शीतल होनेपर इसे भारी माना जाता है।

उक्त द्रव्य—पदार्थोंके गुणावगुणका विवेचन करके ही मनुष्यको अनुपानकी व्यवस्था करनी चाहिये। अनुपानके साथ औषधका सेवन करनेसे श्रम और तृष्णाका नाश स्वतः ही हो जाता है। यथोचित अन्नपान आदि करनेसे प्राणीमें कोई रोग नहीं होता। वह सभी रोगोंसे विमुक्त हो जाता है।

विष उष्णतारहित तथा मोरके कण्ठके समान नीले

वर्णका होता है। वह प्राणीके नैसर्गिक वर्णको परिवर्तित कर देता है। इसका गन्ध, स्पर्श और रस तीव्र होता है। यह खानेवाले व्यक्तिके मनको व्यथित कर देता है। इसे सूँघनेपर नेत्ररोग उत्पन्न हो जाता है। श्रेष्ठ वैद्योंके द्वारा भी इसका शमन अत्यन्त कठिन है। कम्पन तथा जँभाई आदि इसके लक्षण हैं। (अध्याय १६९)

\*\*\*

## ज्वर, अतिसार आदि रोगोंका उपचार

धन्वन्तरिजीने पुनः कहा—वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, संनिपातज और आगन्तुज-रूपमें आठ प्रकारका ज्वर माना गया है। मुस्त (मोथा), पर्पटक (पित्तपापड़ा), उशीर (खस), चन्दन तथा उदीच्यनाग (सोंठ)-के सहित जलको पकाकर तैयार किया गया शीतल क्वाथ ज्वर-जनित प्यासको शान्तिके लिये देना चाहिये।

नागर, देवदारु, धान्यक, बृहतीद्वय और कण्टकारीका क्वाथ ज्वर-रोगीको सबसे पहले देना चाहिये। अगरवध (अमलतास), अभया (पिप्पलीमूल), मुस्त (मोथा), अतितिका (कुटकी) तथा ग्रन्थिक (हरीतकी)—द्वारा जलमें पकाकर तैयार किया गया क्वाथ उद्देग, शूल और ज्वरमें हितकारी है। मधुकसार (मधु), सेंधा नमक, वच, काली मिर्च और पिप्पली—इन सभीको समान मात्रामें जलके साथ महीन पीसकर कपड़ाछान कर लेना चाहिये। इसका नस्य देनेसे ज्वरके प्रभावसे मुक्तिजत हुआ रोगी होशमें आ जाता है। त्रिवृद्धिशाला (निसोत-इन्द्रायण), त्रिफला, कटुकी और अमलताससे बने हुए क्वाथमें सेंधा नमक डालकर उसको पीनेसे सभी प्रकारका ज्वर विनष्ट होता है। सोंठ, मोथा, रक्तचन्दन, खस तथा धान्यक (धान्या)—से बने क्वाथमें शर्करा और मधु मिलाना चाहिये। इसका पान करनेसे तृतीयक (तिजरिया)—ज्वर विनष्ट हो जाता है।

रविवारको अपामार्ग (चिचड़े)—की जड़ लाल सूत्रसे बाँधकर कमरमें सात बार घुमाकर बाँधनेसे निश्चित ही इस तिजरिया-ज्वरका नाश होता है। 'गङ्गाया उत्तरे कुसे अपुत्रस्तापसे भूतः'—(गङ्गाके उत्तरी तटपर पुत्रविहीन तपस्वी ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी है।) कहकर उसे तिस्रोदक देना चाहिये। ऐसा करनेसे एक आह्निक ज्वर रोगीको छोड़

देता है।

गुहूची (गिलोय)—का क्वाथ और कल्क<sup>१</sup>, त्रिफला तथा वासक (अड़ूसा)—का क्वाथ एवं कल्क, द्राक्षा और बला (वरियारा)—का क्वाथ और कल्कसे सिद्ध घृत सभी प्रकारके ज्वरोंका विनाशक है। औषला, हरीतकी और पिप्पली-पित्तका क्वाथ सभी प्रकारके ज्वरोंको विनष्ट करनेवाला है।

इसके बाद अब मैं ज्वरातिसारनाशक औषधिका वर्णन करता हूँ।

पूश्निपर्णी (पित्तजन लता), बला, बिल्व, सोंठ, कमल, धान्यक, पाट, इन्द्रयव, धुनिम्ब (धिरायता), मुस्त तथा पर्पटकसे बना हुआ क्वाथ आमोतिसार तथा ज्वरको विनष्ट करता है। नागर, अतिविषा (अतसी या अलसी), मुस्त, धुनिम्ब (धिरायता) और अमृतवासकसे बना क्वाथ सभी ज्वर तथा सभी अतिसार-रोगोंका नाशक है। मुस्त, पित्तपापड़ा और सोंठ-मिश्रित दूध भी अतिसार-रोगका विनाश करता है। शालपर्णी, पूश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, बला, गोखरू, बिल्व, पाट, सोंठ तथा धनियाका क्वाथ सभी प्रकारके अतिसार-रोगोंमें हितकारी होता है। बिल्व और आमकी गुठलीके क्वाथका मिश्री तथा मधुके साथ सेवन अतिसारका नाशक है। अतिसारमें कुटज-वृक्षका छाल भी हितकारी होता है। इन्द्रयव, अलसी, सोंठ और पिप्पलीमूलका क्वाथ प्रयोग करनेसे आमशूलसे युक्त सूनी अतिसारमें लाभ होता है।

अब मैं ग्रहणी-रोगको चिकित्सा कह रहा हूँ। ग्रहणी जठराग्निको विनष्ट कर देती है। चित्रक अर्थात् चित्ताके द्वारा बने हुए क्वाथ और कल्कके साथ पका हुआ घृत ग्रहणी-रोगका विनाशक है। यह गुल्म, शोथ, उदर, प्लीहा,

\*\*\*\*\*

शूल तथा अर्शरोगको भी नष्ट कर देता है। इसके सेवनसे पेटकी अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। सौवर्च (काला नमक), सैन्यव (सेंधा नमक), विडंग (लवण-विशेष), उट्टिद (रेह) और समुद्र-फेन—इन पाँचों लवणोंके समान भागमें मिश्रित चूर्णका प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

सस्त्र, शार तथा अग्नि इस त्रिविध चिकित्साके द्वारा अर्श-रोगका विनाश होता है। यदि नया तैयार किया हुआ तक्र हो तो उसको भी अर्श-विनाशक ही मानना चाहिये। पीमें भूनी गुडूची, पिप्पली और हरीतकीका चूर्ण अम्ल तथा लवणके साथ रसोतका चूर्ण खानेसे भी यह रोग दूर हो जाता है। तिल और ईखके रसका प्रयोग करनेसे अर्श तथा कुष्ठ-रोगका विनाश होता है। पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता तथा सोंठ) के साथ काली मिर्च और श्रृषण (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च) का चूर्ण अग्निवर्धक है। सोंठ, गुड़ अथवा सेंधा नमकके साथ हरीतकीका चूर्ण निरन्तर खाना चाहिये; क्योंकि यह अग्निवर्धक होती है। त्रिफला, गिलोय, वासक, चिरायता, नीमकी छाल और नीमकी गिरीका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे कामला तथा पाण्डु-रोग समाप्त हो जाता है। त्रिवृत्, त्रिफला, श्यामा, पिप्पली, शर्करा और मधुमिश्रित बना मोदक संनिपात-ज्वरका विनाशक तथा रक्त-पित्तज्वरको भी नष्ट करता है।

वासक (अडूसा<sup>१</sup>) का रस उदरभागमें पहुँचनेपर जीवनकी आशा बनी रहती है। ऐसी स्थितिमें रक्त और पित्तका क्षय होता है, तब खँसोंके रोगसे व्यथित प्राणी किसलिये दुःखित होता है (अर्थात् वासकके रहते खँसोंके रोगीकी जीवनसे निराश नहीं होना चाहिये)। शर्करासे युक्त जंगली अडूसा और मूद्गीक<sup>२</sup> रसका बना क्वाथ पच्य है। इसको मिश्रीके साथ पान करनेसे कास, निःश्वास और रक्तपित्तज दोष विनष्ट हो जाता है। मिश्री अथवा मधुके साथ अडूसेका रस पान करनेसे रोगी रक्तज दोषपर सफलता प्राप्त कर लेता है। शल्लकी (शलई), घेर, जामुन, प्रियाक, आम, अर्जुन और धव नामक वृक्षको छालका क्वाथ दूध और मधुके साथ पान करनेसे रक्त-

सम्बन्धित रोग दूर हो जाता है। अपने ही रसमें भावित, मूल, फल और पत्रसहित निर्गुण्टीका सिद्ध भूत पान करके क्षय-रोगसे क्षीण हुआ रोगी व्याधिरहित होकर देवताओंके समान कान्तिमान् हो उठता है।

हरीतकी, सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च और गुड़ मिलाकर बनाये गये मोदकको कासनाशक कहा गया है। इसको खानेसे तृष्णा एवं अरुचिका भी नाश होता है। कण्टकारी तथा गुडूचीसे पृथक्-पृथक् निकाले गये तीस-तीस पल रसमें सिद्ध किया गया एक प्रस्य भूत कासरोगका नाश और अग्निका दीपन करता है। कृष्णा (काली पत्तियोंवाली तुलसी), धात्री (औंवाला), श्वेत सोंठका चूर्ण मधुके साथ मिलाकर खाना हिचका (हिचकी)-रोगका विनाशक बन जाता है। जो प्राणी हिचकी और श्वास-रोगके रोगी हैं, उनको विशा अर्थात् सोंठके साथ भागी (भारंगी) का रस गरम जलसे पीना चाहिये।

स्वर्भेद होनेपर मुखमें तिलके तेलमें सिद्ध खदिर (काथं) का रस रखना लाभप्रद होता है अथवा सोंठके साथ हरीतकी और पिप्पलीका चूर्ण इस रोगमें लाभकारी है। मधुके साथ विडंग तथा त्रिफलाका चूर्ण वमन-रोगको दूर करता है। आम और जामुनकी छालका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके वमन नष्ट हो जाते हैं। यह तृष्णाको भी समाप्त कर देता है अथवा इस रोगमें मधुके साथ त्रिफलाचूर्णका ही सेवन करना चाहिये। यह औषधि तो धम और मूर्च्छाको भी दूर कर देती है। गायके दूध, दही, घृत, मूत्र और गोमयसे बना पञ्चगव्य हितकारी होता है। इसका अनुपान अपस्मार (मिरगी) और मलप्रवाहि रोगोंकी नष्ट करता है। कृष्माण्ड (कुम्हड़ा) का रस ब्रह्मघटी तथा घृतके साथ पान करनेसे भी उक्त अपस्मार और मलप्रवाहिके रोग दूर होते हैं। जाखी रस, चवकुष्ठ और शंखपुष्पीके साथ प्रयुक्त पुराना घृत प्राणियोंके लिये सेव्य है, क्योंकि यह उन्माद, ग्रहणी और अपस्मार-रोगोंका विनाशक है।

अक्षगन्ध क्वाथका कल्क बनाकर उसमें चींगुना दूध डालकर पकाना चाहिये। तदनन्तर उस योगमें घृतपाक तैयार करके उसका सेवन करे। यह घृत वातनाशक, बल-

१-वासयां विद्यमानास्त्वशायां जीवितस्य च । रक्तपित्तं ह्यसौ कासो किमर्थमवनीदति ॥

२-मूद्गीक—मुनक्का



मांस-वर्धक और पुत्रोत्पादक होता है। नीली<sup>१</sup> और मुण्डोका चूर्ण मधु एवं घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अथवा छिन्ना (गिलोय)-का क्वाथ पान करनेसे वह अत्यन्त असाध्य वात-रक्तको दूर कर देता है। गुड़के सहित हरीतकी आदि पाँच औषधियोंका सेवन कुष्ठ, अर्त तथा वातरोगका विनाशक है। गुड़चोका रस, कल्क, चूर्ण अथवा क्वाथ वात-रक्त रोगका हन्ता है। गुड़चो लताके क्वाथसे बने कल्कका उपयोग करनेसे कुष्ठ और ज्वररोगका उपशमन होता है। इस कल्कका प्रयोग गोभृत या गोदुग्धके साथ करना चाहिये।

त्रिफला तथा गुग्गुलु वात-रक्त और मूर्च्छाका नाशक है। गोमूत्रके साथ प्रयुक्त गुग्गुलु उरुत्तम्य नामक रोगका शमन करता है। सोंठ और गोखरूका क्वाथ सहमवात तथा शूलरोगका विनाशक है। दशमूल<sup>२</sup>, हरीतकी, एरण्ड, रम्ब, सोंठ और देवदारु नामक औषधियोंसे बना हुआ क्वाथ काली मिर्च एवं गुड़के साथ सेवन करनेपर महाशोथको दूर करता है। कण्टकारी और गुड़चोके पुष्पक-पुष्पक तीस-तीस पल रसको निकालकर उसमें एक प्रस्थ विट्ट किया गया घृत कासरोग-विनाशक तथा जठराग्नि-दीपक होता है। काली तुलसी, आँबला, सफेद सोंठ, काली मिर्च और सेंधा नमकसे बना हुआ क्वाथ एरण्ड-तेलके साथ पान करनेपर वह आमदोष तथा प्रबल वायु-विकारको दूर करता है।

बला, पुनर्वका, एरण्ड, बृहतीद्वय, कण्टकारी और गोखरूका क्वाथ हींग और सेंधा नमक मिलाकर पान करनेसे वातशूल विनष्ट हो जाता है। दाह और शूलरोगकी शान्तिके लिये त्रिफला, निम्ब, मुलेठी, कटुकी तथा अमलतासे बने क्वाथको मधु मिलाकर पान करना चाहिये। जेठो मधुके साथ त्रिफलाका क्वाथ पीनेपर शूलसे होनेवाला दुःख दूर होता है। त्रिफलाचूर्ण गोमूत्र और शुद्ध मण्डूर, मधु तथा घृतके साथ घाटनेपर त्रिदोषजन्य शूलको विनष्ट करता है।

त्रिवृत, काली तुलसी और हरीतकीके चूर्णको क्रमशः दो भाग, चार भाग तथा पाँच भाग गुड़-समन्वित करके उसकी सभान गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे मलकाठिन्य-दोष दूर हो जाता है। हरीतकी, यवक्षार, पिप्पली और

त्रिवृत अर्थात् निसोषका चूर्ण घृतके साथ पान करनेके योग्य है, क्योंकि यह उदावर्त-रोगका विनाश करता है। त्रिवृत, हरीतकी और काली तुलसीकी पत्तीका मिश्रित चूर्ण स्नुहीक्षार अर्थात् सेहूँड़के दूधसे भावित करके उससे बनायी गयी बटीका गोमूत्रके साथ पान करनेसे अनाह-रोग नष्ट हो जाता है। त्र्युषण (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च), त्रिफला (हरीतकी, आँबला तथा बहेड़ा), धनिया, बिडंग, कम्प (गजपिप्पली) तथा चित्रक (चिता) नामक औषधियोंके चूर्णको कल्कसे सिद्ध घृत वातगुल्म-रोगका विनाशक है।

दुग्धमें प्रयुक्त सोंठके चूर्णका अनुपान हृदयगत पीड़ाका नाश करता है। काला नमक तथा उसका आधा भाग हरीतकी-चूर्ण घृतमें मिलाकर पान करनेसे भी यह रोग दूर हो जाता है। कण (पिप्पली), पाषाणभेदी (पथरचट्टा)-के रसमें शिलाजीतका चूर्ण मिलाकर उसको चावलके जल और गुड़के साथ पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोगी रोग-विमुक्त हो जाता है। गिलोय, सोंठ, आँबला, अश्वगन्धा और त्रिकण्टक (गोखरू)-का अनुपान वातरोगी, शूलग्रस्त तथा मूत्रकृच्छ्रके रोगीको करना चाहिये। शर्करा अथवा मिश्रीके साथ समान भागमें प्रयुक्त यवक्षार सभी प्रकारके कृच्छ्ररोगोंका विनाशक है अथवा मधुके साथ निदिग्धिका (इलायची)-का रस पान करनेसे भी सब प्रकारके कृच्छ्ररोग विनष्ट हो जाते हैं।

त्रिफला-कल्कके साथ प्रयोगमें लाये गये सेंधा नमकको भी मूत्रघातका विनाशक माना गया है। मूत्रमें अवरोध होनेपर कर्पूरका चूर्ण लिंगमें प्रविष्ट करना चाहिये। मधुके साथ प्रयुक्त आँबलेका रस सभी प्रकारके मेहरोगोंको विनष्ट करनेवाला है। त्रिफला, देवदारु, दासहल्दी और कमलमूलका क्वाथ भी मधुके साथ पान करनेसे वह प्रमेहरोगको दूर करता है।

शरीरकी पुष्टि चाहनेवाले व्याक्तिको अनिद्रा, मैथुन, व्यायाम तथा चिन्ताका परित्याग कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीर धीरे-धीरे पुष्ट होने लगता है। यव और सौवीं खानेवाला प्राणी स्थूल हो जाता है। मधुके साथ जल पीनेसे भी प्राणीके शरीरमें स्थूलता आ जाती है। उष्ण अन्न अथवा मौड़युक्त चावलका भोजन करनेसे शरीर कृश हो जाता है। गजपिप्पली, जीरा, त्रिकटु, हींग, काला नमक तथा

१-नीली (नील), २-बिल्व, ज्योत्स्ना, राम्भारी, घटाल, तालकारीका, शालपर्णी, पुष्पिनर्णी, बृहतीद्वय, कण्टकारी तथा गोखरू—इन दस पृथक्के मूल दशमूल कहलाते हैं।

औबलाचूर्ण-समन्वित सत्तूको मधुके साथ पान करनेसे मेढा-विकारका नाश और अग्निका उद्दीपन होता है।

चौगुने जल और दोगुने गोमूत्रमें चित्रक नामक औषधिका कल्क पाक करके उसके द्वारा उदररोगीको एक प्रस्थ घृत सिद्ध करना चाहिये। तदनन्तर वह दूधके साथ उस घृतका पान करे। ऐसा करनेसे उसकी जठराग्नि उद्दीप्त हो उठती है। अनुपानमें दूधके साथ क्रमशः एक-एक पिप्पलीकी अभिवृद्धि करते हुए रोगी दस दिनतक उसका सेवन करे, पुनः उसी क्रमसे एक-एक पिप्पलीको घटाते हुए बीसवें दिन मात्र एक पिप्पलीका सेवन करे तो उससे भी उस रोगीकी जठराग्नि प्रबल हो जाती है। पुनर्नवाके क्वाथ एवं कल्कसे सिद्ध किया गया घृत शोध-रोगका विनाश करनेमें समर्थ होता है। शोध-रोगीको गोमूत्र या गोदुग्धके साथ पिप्पली अथवा गुड़के साथ समान भागमें हरीतकी या सोंठका सेवन करना चाहिये।

मनुष्य बला नामक औषधिके रसमें सिद्ध दूधके साथ एरण्ड-तेलका पान करके आध्मान तथा शूलजनित पीड़ासे युक्त अन्त्रवृद्धिके रोगपर विजय प्राप्त कर सकता है। अग्निशोधित अरुचक अर्थात् एरण्ड-तेलसे सिद्ध पथ्या (हरीतकी)-का कल्क, काला नमक एवं सेंधा नमकसे समन्वित होकर, अन्त्रवृद्धिरोगका विनाशक श्रेष्ठतम योग है।

निर्गुण्डोकी<sup>१</sup> जड़का नस्य लेनेसे गण्डमालाका रोग नष्ट हो जाता है। स्नुही (मेहुँड़) तथा गण्डारी (कचनार)-वृक्षकी छालका स्वेद अवृद्ध-रोगके सभी भेदोंको विनाश करनेमें समर्थ होता है। हस्तिकर्ण अर्थात् एरण्ड तथा पलाशपत्रके रसका लेप करनेसे गलगण्ड-रोग नष्ट होता है।

धतूर, एरण्ड, निर्गुण्डो, पुनर्नवा, सहिजन तथा सरसोंका मिश्रित लेप पुष्पे एवं अत्यन्त दुःखदायी स्त्रीपद (पीलपौंव)-रोगको दूर करता है। शोभा (हल्दी), अजूनक (सौंठजना)-वृक्षकी छाल समुद्रफेन तथा हींगका योग विद्रधि नामक रोगका विनाशक है।

मधुके साथ शरपुंखा (शरफोंका) नामक औषधि सभी प्रकारके छर्णोंमें लेप करनेके योग्य होती है अथवा नीमकी पत्तीका लेप भी शोध तथा छर्णोंको सुखा देता है। त्रिफला, खदिर, दारुहल्दी तथा बटवृक्षकी छाल या फलके योगसे बना लेप व्रणशोधक है। यष्टि, मधु (मुलेठी) और घौको गरमकर मधुके साथ व्रणमें लेप करनेसे आगन्तु-व्रण नष्ट हो जाता है।

प्राणीमें पित्त-रक्त-दोषजन्य गरमी होनेपर वैद्यको शीत-क्रिया करनी चाहिये। शरीरके कोष्ठमें रक्त-सञ्चार बाधित होनेपर बौंसके अंकुरकी छाल, एरण्ड-बीज तथा गोखरूका क्वाथ मधु, सेंधा नमक तथा हींग मिलाकर पान करनेसे ठीक हो जाता है। ऐसी विकृति होनेपर उससे मुक्त होनेके लिये यव, काली मिर्च तथा कुलधीके रसका पान अथवा सेंधा नमकके साथ भूना हुआ अन्न या यवागूका पान करना चाहिये।

करुञ्ज अरिष्ट (रीठा) तथा निर्गुण्डोका रस छर्णोंके कौटाणुओंको नष्ट कर देता है। त्रिफलाचूर्णसे युक्त गुग्गुलुवटी विबन्ध-रोगको दूर करती है। यह व्रणशोधक और शोधक है। दूर्धारस या कम्पितक (जपीला) अथवा दारुहल्दीके कल्कसे सिद्ध तेल व्रणमें लगानेकी श्रेष्ठ औषधि है।

(अध्याय १७०)

\*\*\*\*\*

## नाडीव्रण, कुष्ठ आदि रोगोंकी चिकित्सा

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब आप नाडीव्रण आदि दोषोंकी चिकित्साका श्रवण करें।

नाडी (नाड़ी)-को सस्त्रसे भलीभाँति काटकर व्रण-चिकित्साके समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। गुग्गुलु, त्रिफला तथा त्रिकटुको समान भागमें लेकर सिद्ध किये गये घृतसे नाडीमें हुए विकृत व्रण, शूल और भगन्दर नामक रोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। निर्गुण्डोके रससे

सिद्ध तेल नाड़ी-दोष तथा व्रणको दूर करता है। पाप्मा नामक रोगके उपभेदोंमें यह औषधि पान, अजून और नस्य-विधिसे प्रयोगमें लानेपर गुणकारी होती है। तीन भाग गुग्गुलु, पाँच भाग त्रिफला तथा एक भाग काली तुलसीकी पत्तोंसे बनायी गयी गुटिकाएँ शोध, गुल्म, अर्श और भगन्दर-रोगसे ग्रसित नेमियोंके लिये हितकारिणी होती हैं।

उपदंस-रोगमें शिश्नके मध्यमें रक्तकी शुद्धि-हेतु शिरावेध

करे तथा शिशु नष्ट न होवे, अतः उसे पकनेसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करे। गुग्गुलु, खदिर, परवल, नीमका फल और गिलोयका क्वाथ पीनेसे उपदंश-दोष समाप्त हो जाता है। एक कड़ाहमें त्रिफलाको जलाकर स्याही-जैसी राख बनाकर मधुसे प्रयोग करनेपर लाभ होता है। त्रिफला, चिरयता, नीम, कंजा तथा खदिर आदिसे बने कल्क अथवा क्वाथके द्वारा सिद्ध किया गया घृतपाक उपदंशको दूर करता है।

प्राणीको [भगनसे] हताश हुआ जानकर सबसे पहले उसे शीतल जलसे सिंचित करे। तदनन्तर पाकका लेपन तथा कुशकी रस्सीसे भगन-भागपर बन्धन लगावे। ऐसे भगन-रोगीको उड़द, मांस, मटरकी दाल, उगा हुआ अन्न, घृत, दूध तथा सूप देना चाहिये।

रसोन (लहसुन), मधु, नासा (अड़सा) तथा घृतका कल्क बनाकर उसको स्थानसे ज्युत अथवा टूटी हड्डियोंके जोड़पर लगानेसे बहुत ही शीघ्र सफलता प्राप्त होती है। त्रिफला, त्रिकटु (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च)-को समान भागमें पीसकर उनके साथ बराबर मात्रामें मिलाया गया गुग्गुलु टूटे हुए हड्डियोंके संधि-स्थानको भी जोड़ देता है।

सभी प्रकारके कुष्ठरोगोंमें रोगीके लिये वमन, रचन तथा रक्तमोक्षणकी क्रिया लाभकारी है। वच, अड़सा, परवल, नीम तथा बहेड़की छालका क्वाथ मधुके साथ पीनेसे वातरोग नष्ट हो जाता है। इस रोगमें निःस्रोत, दन्तीफल (एरण्ड-बीज) तथा त्रिफलाके योगसे विरेचन-क्रिया भी करनी चाहिये।

काली मिर्चके साथ मन्ःशिल (मैनसिल)-का सिद्ध तेल कुष्ठरोगका विनाशक है। सभी प्रकारके कुष्ठरोगोंमें इस तेलका लेप किया जा सकता है। इस रोगमें पथ्याहार शिव (हरीतकी), पञ्चामृत, गुड़ और भात है। कंजा-एल (सुगन्धित बालुका नामक लता), गजपिप्पली तथा कुष्ठ (कूट)-के रसको गोमूत्रके साथ कुष्ठरोगमें प्रलेप करनेसे लाभ होता है। तेलमें करबोर (कनेर)-के मूलका पाकसिद्ध उबटन भी कुष्ठनाशक है। हल्दी, चन्दन, राम्ना, गुड़ची, एडगज (तगर), अमलतास और करञ्जका लेप कुष्ठविनाशक

श्रेष्ठतम औषधि है। मैनसिल, विडंग, वागुजो (वाकुची), सरसों तथा कंजाको गोमूत्रमें पीसकर तैयार किया गया लेप सूर्यदेवके समान कुष्ठरोगका विनाशी है।

विडंग, एडगज, वच, कुटकी, निशा (दारुहल्दी), समुद्रफेन और सरसोंको गोमूत्र तथा अम्लमें पीसकर तैयार किया गया यह लेप ददु नामक कुष्ठरोगको विनाश करता है। प्रपुलाड (चकवड़)-का बीज, आँवला, सर्जरस (विरोजा या लख), स्नुही (सेहुँड़) और सीवीर (बेर)-का पिसा हुआ लेप सभी प्रकारके ददुरोगोंको दूर करनेवाला श्रेष्ठ औषधि है। कांजीके साथ अमलतासकी पत्तियोंका तैयार लेप ददु, किट्टिम तथा सिध्म (सेहुँवाँ) नामक कुष्ठोंका विनाश करता है। यकुरीकी उष्ण क्वाथ सेवन करके दूध पीनेसे भी कुष्ठरोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। तिल, घृत, त्रिफला, क्षौद्र, ज्योष (त्रिकटु), भिलावा तथा शंकरा—ये सभी सात औषधियाँ समान भागमें मिलाकर सेवन करनेसे पुरुषत्वमें वृद्धि होती है। ये पवित्र और कुष्ठरोग-नाशक हैं।

मधुके सहित विडंग, त्रिफला और काली तुलसीके चूर्णका अवलेह कुष्ठ, कृमि, मेह, नाडीव्रण एवं भगन्दर नामक रोगोंका विनाश करता है। जो मनुष्य कुष्ठरोगी हो, उसे हरीतकी, नीम, कुटकी, आँवला तथा दारुहल्दीका सेवन करना चाहिये। औषधि लेनेके बाद प्रायः एक मासपर्यन्त ऐसा व्यक्ति शीघ्र कुष्ठरोगसे विमुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। उष्ण मक्खन, कुम्भ (गुग्गुलु), मूलक (अदरक), खदिर (कल्पा), अक्ष (बहेड़ा), आँवला तथा चम्पा नामक योगसे भी कुष्ठका विनाश होता है। यह औषधियोंका एक रसायन है।

आँवला, खदिर और यकुरीके क्वाथका पान करके मनुष्य शंख एवं चन्द्रमाके समान श्वेत क्षित्ररोगको शीघ्र ही नष्ट कर देता है, इसमें संदेह नहीं है। भल्लातक (भिल्लावें)-के सिद्ध तेलको एक मासपर्यन्त पानकर प्राणी इस कुष्ठ-रोगपर विजय प्राप्त कर लेता है। जो खदिरमिश्रित जलका यथाविधि सेवन करता है, उसे कुष्ठरोगपर विजय प्राप्त हो जाती है। मलपू अर्थात् कटुमर नामक वृक्षकी छालसे बने

\*\*\*\*\*

क्वाथके द्वारा खींचे गये सोमराजी (वकुची)-के फलोंका चूर्ण प्रतिदिन एक कर्ष मात्र बहेड़े और अर्जुन नामक वृक्षसे बने क्वाथके साथ लेना चाहिये। किंतु नमक खाना इस कालमें निषिद्ध है। इस औषधिके उपचारसे क्षिप्ररोग विनष्ट हो जाता है। रोगीको इस औषधिका पान करते हुए शरीरपर स्थित सफेद चकत्तोंपर अपराजिता (शैफालिका)-की लताका लेप लगाना चाहिये। अदुसा, गुडूची, त्रिफला, परवल, कंजा, नीम, अशन तथा कृष्णवर्णकी घेबलताका क्वाथ एवं कल्क-रूपमें पकाकर उससे जो घृतपाक सिद्ध होता है, उसको 'वज्रक घृत' कहते हैं। इसके सेवनसे रोगी रोग-विमुक्त होकर सौ वर्षोंकी आयु प्राप्त करता है।

दुर्बके रसमें उससे चौगुना तेल पकाकर औषधिरूपमें उसको शरीरमें लगाना चाहिये। इसके मातृशसे कच्छ, विचर्षिका और शामा नामक कुष्ठरोग विनष्ट हो जाते हैं। हुम (पारिजात)-की छाल, मन्दार, कुष्ठ, लवण, गोमूत्र, गम्भारी (श्रीपर्णी) तथा चित्रक (एरंड) नामक औषधियोंका सिद्ध तेल कुष्ठरोगके व्रण-विकारोंको विनष्ट कर देता है।

औबला, निमकीरी, गोमूत्र, अदुसा, गुडूची, पित्तपापड़, चिरायता, नीम, भृंगराज, त्रिफला, कुलयी और मधुका क्वाथ अम्लपित्त-रोगका विनाशक है। त्रिफला, पटोल और कटुकीका क्वाथ शर्करा तथा जेठी मधुके साथ पान करनेपर ज्वर, छर्दि एवं अम्ल-पित्तजनित अन्य विकार नष्ट हो जाते हैं। वासाघृत, तित्तघृत और पिप्पलीघृतका प्रयोग अम्लपित्त-विकारमें करना चाहिये। गुड़ और कुम्हड़ा खानेसे भी लाभ होता है।

मधुके साथ पिप्पली अम्लपित्तका विनाश करती है। हरीतकी, पिप्पली तथा गुड़का बना हुआ मोदक श्लेष्म एवं अग्निमन्दताके दोषको दूर करता है। जीरा और धनियाको समान भागमें पीसकर एक प्रस्थ घृतमें उन दोनोंका विषाक बनाना चाहिये। यह पाक कफ, पित्त, अरुचि, मन्दान्नि तथा वमन नामक दोषोंको दूर करता है।

पिप्पली, गुडूची, चिरायता, अदुसा, कटुकी, पित्तपापड़ा, खैर और लहसुनसे बना क्वाथ विस्फोट (फोड़ा-फुंसी) तथा ज्वररोगका विनाशक है। निसोतके साथ त्रिफलाके

रस-मिश्रित घृतका अनुपान औंठोंकी सफाई और विसर्प नामक रोगकी शान्ति कर देता है। खदिर, त्रिफला (हरड़, औबला, बहेड़ा), कटुकी, परवल, गुडूची और अदुसाके द्वारा बना क्वाथ 'अष्टक क्वाथ'के नामसे प्रसिद्ध है। इससे सेवनसे रोमान्तिक तथा मसूरिका रोग दूर हो जाते हैं।

लहसुनके चूर्णको घिसनेसे कुष्ठ, विसर्प, फोड़ा तथा खुजली आदि चर्मरोगोंका विनाश होता है। इसके द्वारा घिसनेसे शरीरका मस्सा भी नष्ट हो जाता है। चर्मकील, पुराने एवं बड़े हुए मस्मे, तिल तथा अनुपयुक्त बालोंको शस्त्रसे काटकर निकालनेके पश्चात् क्षार अथवा अग्निके द्वारा उक्त रोगके शरीरस्थ भागको दग्ध कर देनेका भी विधान है।

परवल और नीलका लेप जालगर्दभ-रोगको विनष्ट करता है। गुज्जाफल तथा भृंगराजके रससे सिद्ध तेलके द्वारा कण्ठ-विकार, खुजली, अत्यन्त कष्टदायक कुष्ठ और वातसर्पोंका विनाश होता है। धनूर या आमकी गुठली, त्रिफला, नील तथा भृंगराज—इन औषधियोंके योगसे सिद्ध कांडीमुक्त लौहचूर्ण प्राणियोंके पकनेवाले छेत बालोंको काला करनेमें सपर्य है। क्षीरी (खिरनी) और शार्कपर्ण (लोध्र)-का रस दो प्रस्थ तथा मधुका (मुलेटी) एक पल लेकर उसमें एक कुडव अर्थात् चारह पसर सिद्ध किया गया तेलका नस्य भी बालोंको पकने नहीं देता।

मुखमें रोग होनेपर त्रिफला-चूर्णका गण्डूष अर्थात् कुत्ता करना चाहिये। घरका धुआँ, घृत या तिलादिके तेलका दीपक जलानेसे एकत्र धुएँमें यवक्षार, पादा, व्योष (सोंठ, पिप्पली तथा काली मिर्च)-के रसको मिलाकर अञ्जन बनानेका विधान है। इम अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रदोष नहीं होता। यदि तेजोद, त्रिफला, लोध्र और चित्ताका चूर्ण मधुके साथ मुँहमें रखा जाय तो कण्ठ, दाँत और मुँहका रोग दूर हो जाता है। पटोल, नीम, जामुन, मालती तथा आमके नवीन पल्लवोंका क्वाथ मुख धोनेकी श्रेष्ठतम औषधि है।

लहसुन, अदरक, सहिजन, भृंगराज, मूली, रुदन्ती (महामांसी)-का गुनगुना रस कर्ण-रोगको दूर करनेका



उत्तम उपचार है। कानमें अत्यन्त तीव्र पीड़ा, शब्द और मैल निकलनेपर सेंधा नमकके सहित वस्तु अर्थात् बकरेका मूत्र गरम करके उसमें डालना चाहिये। जातिपत्र अर्थात् जावित्रीके रससे सिद्ध तेलपाक पूतिक (दुर्गन्धयुक्त) कानमें डालना चाहिये। सोंठके चूर्णसे सिद्ध गुनगुना सरसोंका तेल कानमें ठठनेवाले शूलका विनाशक है।

पञ्चमूलसिद्ध दूध, चिता और हरीतकी, घृत तथा गुड़ एवं यङ्ग जूसका योग पीनस-रोगकी शान्तिके लिये है। इस रोगमें इन योगोंमेंसे किसी एक योगसिद्ध औषधिका प्रयोग करना चाहिये।

नेत्र-दोष, कुक्षि-विकार, प्रतिश्याय (जुकाम या सर्दी), व्रण तथा ज्वर होनेपर पाँच दिनोंतक संभन करनेका विधान है। ऐसा करनेसे ये पाँचों रोग शान्त हो जाते हैं। आँखलेका रस नेत्रमें डालनेसे विकार दूर हो जाता है अथवा मधु और सेंधा नमकके सहित शोधाञ्जन नामक सहिजन तथा दाहहल्दीका अञ्जन लगानेसे भी लाभ होता है। इन्दी, देबदारु, सेंधा नमक, हरीतकी तथा गैरिक<sup>१</sup> पीसकर उसका लेप नेत्रोंके बाह्य भागमें लगाना चाहिये। यह नेत्ररोग-विनाशक है। घृतमें भुनी हरीतकी, त्रिफला दूधके साथ लेप करनेके पश्चात् गुनगुनी एवं पिसी सोंठ, नीमकी पत्ती, बहेड़ा-सा सेंधा नमक, दूध और त्रिफलाचूर्णको नेत्रोंपर लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे नेत्रोंकी सूजन, खुजलाहट और पीड़ा समाप्त हो जाती है। हरीतकी, बहेड़ा तथा गुड़ूची नामक औषधियोंको क्रमशः—मात्रामें एक भाग, दो भाग और चार भाग लेकर मधु एवं घृतके साथ सिद्ध किया गया लेह या क्वाथ सभी प्रकारके नेत्र-रोगोंका विनाशक है।

घन्दन, त्रिफला, सुपारी तथा फलाशकी जड़को जलमें पीसकर बनायी गयी बत्तीका प्रयोग आँखके सम्पर्क तिमिर-रोगोंको दूर करता है। दहीके साथ अत्यधिक घिसी गयी काली मिर्चका अञ्जन रतींधी नामक रोगको दूर करता है। त्रिफलाके क्वाथ एवं कल्कसे सिद्ध घृतपाकको गुनगुने दूधके साथ सायंकाल पान करनेसे अन्धदर्शन तथा रतींधीका विकार यथाशीघ्र विनष्ट हो जाता है। पिप्पली, त्रिफला,

द्राक्षा, लीहचूर्ण और सेंधा नमकको भृंगराजके रसमें घिसकर बनाया गया घुटिकाञ्जन अन्धता, त्रिदोषजन्य तिमिरता, भुंधलाहट तथा अन्य सभी प्रकारके नेत्र-सम्बन्धित रोगोंका विनाशक है।

त्रिफट्ट, त्रिफला, सेंधा नमक, मैनसिल, रुचक<sup>२</sup>, शंखनाभि (कबूत), जातोपुष्प (मालती), नीम, रसाञ्जन (रसीत) और भृंगराजकी घृत, मधु तथा दुग्धमें पीसकर बनायी गयी बटी समस्त नेत्रविकारोंकी विनाशकारिणी औषधि है।

एरण्डकी जड़को जलाकर कांजोके साथ सिरमें लेप करने अथवा मुचुकुन्द-पुष्पके प्रयोगसे शीघ्र ही सिर-पीड़ा दूर हो जाती है।

सतमूली<sup>३</sup>, एरण्डमूल, चक्रा (कुटकी) तथा व्याघ्री (कण्टकारी)—को एक-एक पल एकत्र करके उनसे सिद्ध क्वाथ, तेलपाकका नस्य वात और श्लेष्मजन्य तिमिर तथा ऊर्ध्वरोगका विनाश करता है अथवा नमक, गुड़ और सोंठ या पिप्पली एवं सेंधा नमकका योग भुजस्तम्भ आदि सभी हरीरके ऊर्ध्वभागवाले रोगोंमें लाभकारी होता है। सूर्यावर्त-रोगमें नस्यकर्मका उपचार प्रशस्त माना गया है। ऐसेमें घृत एवं सेंधा नमकसे युक्त दशमूलके क्वाथका नस्य लेना चाहिये। यह अद्रवभेद, सूर्यावर्त तथा शिरोव्याधिके दुःखोंको दूर करता है।

वातरक्त-दोषसे पीड़ित स्त्रीको दही एवं मधुके साथ काला नमक, जीरा, महुआ और नीलकमल पीसकर पान करना चाहिये। पित्त-विकार होनेपर अड़ूसा अथवा गुड़ूचीका रस लाभकारी है। मधुके साथ जलमें पकाये गये आँखलेके बीजोंका कल्क, अड़ूसा तथा श्वेत दूर्वाका रस अथवा आँखलेके साथ मधु और कपासकी जड़का रस चावलके धोवनमें पीनेसे पाण्डु एवं प्रदर-रोग शान्त हो जाता है।

तण्डुलीयक मूल अर्थात् चौराई तथा रसीतकी पीसकर मधु एवं चावलके धोवनमें पीनेसे सभी प्रकारका रक्तप्रदर-रोग विनष्ट हो जाता है। चावलके जलके साथ पान किया गया कुशका मूल भी रक्तप्रदर-रोगका विनाशक है। (अध्याय १७१)

१-गैरिक (गेह)। २-रुचक (चिजीत नींबू)। ३-सतमूली (सतपत्ती)

## स्त्रियोंके रोगोंकी चिकित्सा, ग्रहदोषके उपाय, ऋतुचर्या तथा पथ्यकारक सर्वाधियाँ

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं स्त्रियोंके रोगोंकी चिकित्साका वर्णन करूँगा। उसे आप सुनें। स्त्रियोंके योनिभागमें होनेवाले रोगोंको दूर करनेके लिये बहुत-से कर्म हैं, किंतु जो कर्म वातदोष-नाशक हैं, उन्हींको प्रशस्त माना जाता है।

वच, उपकुक्षिका (काला जीरा), जलौफल (जपफल), कृष्ण (काली तुलसी), वासक (अड़ुसा), सैन्धव (सैधा नमक), अजमोदा (अजवाइन), यवक्षर, चित्रक तथा शर्कराको पीसकर सभीको मिश्रित करके भीमे धूनकर जल या दुधके साथ सेवन किया जाय तो स्त्रियोंको योनिके पार्श्वभागमें होनेवाला शूल, हृदयरोग, गुल्म और अर्त-विकार दूर हो जाता है। बरकी पथियोंको पीसकर योनिभागमें लेप करनेसे उसकी वेदना शान्त हो जाती है। लोघ और तुम्बीफलका प्रलेप योनिमें दृढ़ एवं संकुचित बनाता है।

पीपल, लट, पाकड़, गूलर और आम—इन पौधोंके फलत्व और मधुयष्टि तथा मालतीपुष्पका अग्नि या सूर्यकी गर्मीमें सिद्ध घृतपाक रक्तप्रदर एवं योनि-दुर्गन्धका विनाशक है। कांजीमें जपापुष्प (अड़हुलके फूल), ज्योतिष्मती-दल, मालकैंगनीकी पत्ती (दूर्वा) और चित्रकको पीसकर शर्कराके साथ पान करनेसे भी योनिरोग दूर हो जाता है।

आँवला, रसीत तथा हरीतकीका चूर्ण जलके साथ पान करनेपर यह स्त्रीके रजोदोषको दूर करता है। ऋतुकालमें लक्ष्मणा (श्वेत कण्टकारी)—की जड़को दुधके साथ पान करने या नस्य लेनेसे स्त्रीको पुत्र उत्पन्न होता है। ढाई सेर दुध और सवा सेर घृतमें सिद्ध अश्वगन्धाका रस सेवन करनेसे भी स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। घृतके साथ व्योष (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च) तथा केसरके चूर्णका सेवन करके तो वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती बन जाती है।

कुश, काश, एरण्ड और गोखरुकी जड़को पीसकर उनके ही द्वारा सिद्ध गोदुध एवं शर्कराका पान करनेसे गर्भिणी स्त्रीके उदरभागमें होनेवाला शूल शान्त हो जाता है। पाठा (पादा), लाङ्गलि (कलियारी), सिंहास्य (कचनार),

मयूर (चिचड़ा) और कुटज (गिरिमल्लिका या कुरैया)—को अलग-अलग पीसकर नाभि, पेड़ तथा योनिभागमें लेप करनेसे स्त्रीको सुखपूर्वक प्रसव होता है। मदार या बकुलकी जड़का लेप प्रसूता स्त्रीके हृदय, मस्तक और वस्ति (पेड़)—भागमें होनेवाली पीड़ाका हरण करता है। ऐसी स्थितिमें स्त्रीको दही अथवा गुनगुने जलमें यवक्षरको मिलाकर पीना चाहिये। दशमूलके क्वाथसे सिद्ध घृतपाक भी प्रसूता स्त्रीकी पीड़ाका विनाशक है। दुग्धके साथ सादी चावलका चूर्ण सेवन करनेसे प्रसूता स्त्रीको दूध होने लगता है। विदारि, कन्द, सतावर तथा कपासके बीजोंका योग भी प्रसूताके दुग्धवृद्धिमें सहायक है। स्तनसोधनके लिये प्रसूता स्त्रियोंको मूँगका जूस पीना चाहिये।

कूट, वष, हरीतकी, ब्राह्मी, ब्राह्मपल्ल, मधु और घृतका योग रंग, आयु तथा सौन्दर्यवर्धक होता है। इन सभी औषधियोंका लेह बालकको चटाना चाहिये। स्तनजन्य दूधका अभाव होनेपर बकरी अथवा गायका दुग्ध बालकके लिये उचित होता है। बच्चेको नाभिमें सूजन आ जानेपर उसको अग्निमें गरम की गयी मिट्टीसे सँकना चाहिये। वमन, खँसी और ज्वर होनेपर मुस्त (नागरमोथा) तथा विष (सोंठ)—के चूर्णको मधु आदिके साथ चटाना या क्वाथ बनाकर पीना चाहिये। नागरमोथा, सोंठ, गूलर, बिल्व और कुटज (कुरैया) नामक औषधियोंका रस अतिसाररोगका विनाश करता है।

व्योष (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च), बिजौरा नीबू तथा मधुके योगसे हिचकी और वमनरोग दूर होते हैं। कुष्ठ (कूट), इन्द्रयव, सरसों, हल्दी तथा दूर्धारससे कुष्ठरोगपर सफलता प्राप्त की जा सकती है।

महामुण्डनिका (महाश्रावणिका) तथा उदीच्य (हीवेर या चोपचीनी)—के क्वाथसे स्नान करनेपर ग्रहका दोष दूर हो जाता है। ग्रहदोष होनेपर शरीरमें सप्तपर्णी, हल्दी और चन्दनका लेप करना चाहिये। संख, कमलगट्टा, रुद्राक्ष, वच तथा लौह आदि धारण करनेसे भी ग्रह-दोष दूर होता है।

बालकोंपर ग्रह-दोषका प्रभाव होनेपर निम्न मन्त्रसे उसकी शान्तिका प्रयास करना चाहिये—'ॐ कं टं गं नं

वैनतेयाय नमः', 'ॐ हौं हां हः'—इस मन्त्रसे मार्जन करने तथा बलि प्रदान करनेसे अरिष्ट ग्रह शान्त हो जाता है। बलि प्रदान करते समय निम्न मन्त्रका उच्चारण करे—

'ॐ ह्रीं बालाग्रहाद् बलिं गृहीत बालं मुञ्चत स्वाहा।'

चावलके धोवनमें शिरीष-वृक्षकी जड़ पीसकर पीनेसे विष-दोष दूर हो जाता है। चावलके हों पानीमें मिलाकर पीसे हुए श्वेत फूलवाले वर्षाभूँ (पुनर्वसु) का रस सर्पदंशके विषको दूर कर देता है।

दही, घृत, चौरई, गृह-धूम, हल्दी, मधु तथा सेंधा नमकको पीसकर पीना विषनाशक है। घृत-मिश्रित मिहोरकी जड़का क्वाथ पीनेसे भी विष-दोष दूर हो जाता है।

जो औषधि बृद्धावस्थाको दूर करनेका सामर्थ्य रखती है, उसको रसायन कहा जाता है। रसायनकी अभिलाषा करनेवाले लोगोंको वर्षा आदि ऋतुओंमें यथाक्रम सेंधा नमक, शर्करा, सोंठ, पिप्पली, मधु तथा गुड़के साथ हरीतकी नामक औषधिका प्रयोग करना चाहिये अर्थात् वर्षाकालमें सेंधा नमक, शरत्कालमें शर्करा, हेमन्तकालमें सोंठ, शिशिरकालमें पिप्पली, वसन्तकालमें मधु तथा ग्रीष्मकालमें गुड़के साथ हरीतकीका सेवन प्राणियोंके लिये रसायनका कार्य करता है।

ज्वरकी समाप्तिपर अथि एक हरीतकी, दो बहेड़ा, चार आँवला, मधु और घृतका सेवन करके सौ वर्षतक जीवित रहता है। दूध तथा घृतके साथ अश्वगन्धा नामक औषधि तो प्राणियोंके शरीरमें होनेवाले सभी रोगोंका विनाश करती है। मण्डूकपर्णी और विदारोकन्दका रस अमृतके समान है। मनुष्य तिल, आँवले और भृंगराजके सेवनसे शतायु बन जाता है। त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, गुड़ूची, शतावरी, विडंग और लीहचूर्ण मधुके साथ मिलाकर खाना सभी रोगोंका विनाशक बन जाता है। त्रिफला,

पिप्पली, सोंठ, गुड़ूची, शतावरी, विडंग तथा भृंगराज आदिका सिद्ध रस भी सभी रोगोंको विनाश करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होता है। एक भाग शतावरी तथा दस भाग दुग्धसे कल्क बनाकर शर्करा, पिप्पली और मधुसे युक्त घृतपाक आपन पौष्टिक होता है।

चिकित्सामें प्रतिमर्ष, अवशीड, नस्य, प्रवपन तथा शिरोविरेचन—ये पाँच कर्म कहे जाते हैं। क्रमशः माघ आदि प्रत्येक दो मासको एक ऋतु होती है। इस प्रकार एक वर्षमें छः ऋतुएँ होती हैं। इन सभी ऋतुओंमें अग्निसेवन, मधु, दूध और दहीके विवर्त आदिका सेवन करना चाहिये। मनुष्यको शिशिर-ऋतुमें स्त्रीके साथ रहना चाहिये। वसन्त-ऋतुमें दिनमें सोना उचित नहीं है। वर्षा-ऋतुमें दिवा-विद्रा तथा शरत्कालमें चन्द्रकिरणोंका सेवन मनुष्यके लिये त्याग्य है।

साटी चावल, भूँगी दाल, वर्षाका जल, क्वाथ और दूध पच्य हैं। नोम, अलसी, कुसुम्भ, सहिजन, सरसों, ज्योतिष्मती तथा मूलीका तेल भी प्राणीके लिये पच्य मान गया है। ये कुमि, कुष्ठ, प्रमेह, वात, श्लेष्मज दोष और भिरमें होनेवाली पीड़ाका नाश करते हैं।

अनार, आँवला, बेर, करीदा, चिरीजी, नीबू, नारंगी, आमड़ा और कपित्थ नामक फल भी पच्य हैं। किंतु ये पित्तवर्धक और अग्निविनाशक हैं तथा इनसे कफजनित दोष होता है। जल, नागरमोथा, इधुरस और कुटज मल-मूत्रके अवरोधको दूर करनेमें समर्थ होते हैं।

धामांगव अर्थात् धिया तराईको सदैव वमनके रोगमें सेवन करना चाहिये। पूषाङ्ककालमें वमन करनेके लिये वधके साथ खैर और इन्द्रयवका सेवन लाभप्रद है। पित्तदोष होनेसे प्राणियोंका अज्रादिक कोष्ठ सबल नहीं रह पाता। इनमें एक प्रकारकी मधुरता रहती है। वात और

१-शिरीषोविषग्रानाम् (चरक सं०)।

२-वर्षाभू या पुनर्वसुका तात्पर्य धमरवरुआ नामकी प्रसिद्ध औषधिसे है। इसका फूल श्वेत होता है। इसकी पत्तियोंकी आकृति पुनर्वसुके समान होती है। इन दोनोंकी पत्तियोंमें अन्तर इतना है कि पुनर्वसुकी पत्तियाँ छोटी और धमरवरुआकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं। वर्षाकालमें पुनर्वसुके समान ही यह औषधि भी अधिक चायी जाती है। मूलतः तो यह पुनर्वसुका एक उपभेद ही है।

३-लाघो पाथो हि शस्त्यां रसादीनां रसायनम्। (सु० सं० सू० अ० १)

४-च० पि० १। ५-शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत् और हेमन्त।

६-कुसुम्भ (बी)।

कफदोषका आश्रय मिलनेसे उसमें दोष अधिक हो आ जाते हैं। वात, पित्त और कफ—इन त्रिदोषोंकी समान स्थिति रहनेपर उन कोष्ठोंकी क्षमता मध्यम रह जाती है। (उस स्थितिमें न तो उनकी कार्य-क्षमतामें शिथिलता रहती है और न उनमें दोषोंकी क्षमताकी अभिवृद्धि। शरीरके अंदर स्थित कोष्ठका कार्य चलता रहता है।) पित्तदोष होनेपर निसोतका सेवन करके विरोचन करना चाहिये। सेंधा नमक, सोंठ, निसोत, हरीतकी तथा विडंगको गोमूत्रसे सिद्धकर शर्करा और मधुके साथ सेवन करनेपर विरोचनमें अधिक लाभ होता है। वातदोषके प्रबल होनेपर उत्पन्न हुए दोषोंमें रोगीको एक भाग एरण्ड तेल और दो भाग त्रिफलका ज्वाथ पान कराकर वमन कराना चाहिये।

छः अंगुल, आठ अंगुल या बारह अंगुल लम्बी बाँस आदिको नेत्रि अर्थात् पिचकारी बनाकर और उस पिचकारीमें ककेंचू (बेर) फलके समान छिद्र करके रोगीको उत्तान सुलाकर वस्ति-क्रिया करनी चाहिये। निरुद्धदान या निरुद्धवास्तके प्रयोगमें भी यही विधि कही गयी है। इन दोनों विधियोंमें औषधियोंकी मात्रा आधा पल, तीन पल तथा छः पल होनी चाहिये। इसी मात्राको क्रमशः लघु, मध्यम तथा उत्तम कहा जाता है। इस वस्ति-विधिमें शतावरी, गुडूची, भुंगराज तथा सिन्धुवार आदिके रसमें भक्षित हरीतकी एक भाग, बहेड़ा दो भाग और औंला चार भाग होना चाहिये। ये औषधियाँ उदररोगकी पीड़ाको समाप्त कर देती हैं। (अध्याय १७२)

\*\*\*\*\*

### मधुर, अम्ल और तिक्त आदि द्रव्योंका वर्ग तथा उनका औषधीय उपयोग

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुकुत! अब मैं रोग-विनाशक मधुर आदि गुणोंसे युक्त द्रव्योंका वर्णन करेगा। साठी चावल, गेहूँ, दूध, घृत, रस, मधु, सिंघाड़ेकी गूदी, जी, कशेरु, फूटनेवाली ककड़ी, गोखरू, गम्भारी, कामलगट्टा, प्राधाफल, खजूर, बला, नारियल, इशु, सतावर, विदारिकन्द, धिरींजी, मुलेठी, तालफल और कुम्हड़ा—यह मधुर द्रव्योंका मुख्य वर्ग है।

इन द्रव्योंका यह वर्ग मूर्च्छा और प्रदाह नामक रोगोंका विनाशक तथा जिह्वादि सभी छः इन्द्रियोंका आह्लादक है। इस वर्गके एक भी पदार्थका अत्यधिक सेवन करनेसे प्राणीके शरीरमें कृमि तथा कफजनित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जब श्वास, खाँसी, मुखव्याधि, माधुर्य-दोष, स्वरघात, अर्बुद, गलगण्ड और श्लीपदका रोग हो तो गुड़से बने लेपादिका प्रयोग करना चाहिये।

अनार, औंला, आम, कपित्थ, करींद, बिजौरा नीचू, आमड़ा, बेर, इमली, दही, मट्ठा, कांजी, बड़हल, अम्लवेत, अम्ल, सेंधा नमक, सोंठ तथा जीराका वर्ग जठराग्निका उद्दीपक और पाचक होता है। यह वर्ग स्वेदकारक, वातवर्धक, कामोद्दीपक, विदाहकारक और अनुलोमी है। इस वर्गमें संनिहित रहनेवाले अम्ल-पदार्थका अत्यधिक सेवन करनेसे दाँत सिहरने लगते हैं, शरीरमें शिथिलता आ जाती है तथा कण्ठ, मुख और हृदयमें दाह होता है।

सैन्धव, सुवर्चल, पक्वशार तथा छज्जी आदि लवण हैं। लवणकी अधिकतासे यह द्रव्य-वर्ग लवण कहलाता है। यह शरीर-शोधक, पाचक, स्वेदकारक, हाथ-पैरमें बेवाई तथा खुजली आदिका विकारोत्पादक है। इनमेंसे एक नमकका सेवन भी मल-मूत्रादिक मार्गोंमें अवरोध तथा अस्थि-पञ्जादिकी शक्तियोंको कोमल कर देता है। लवणजन्य रस शरीरमें खूनलाहट, कोष्ठकोंमें शीथ तथा विवर्णता-जनक है। उसके दुष्प्रभावसे रक्तधातु, पित्तरक्त, क्षामोद्दीपन और इन्द्रियजनित पीड़ाके उपद्रवकी उत्पत्ति भी होती है।

व्योष (सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च), सहिजन, मूली, देवदारु, कुष्ठ (फूट), लहसुन, बकुची, नागरमोथा, गुग्गुलु, सांगुली आदि औषधियोंका वर्ग कटुभा, अग्निदीपक, शरीर-शोधक, कुष्ठ, खुजली, कफ, स्थूलता, आलस्य तथा कृमिदोषका विनाशक एवं शुक्र और मेदका विरोधी है। इस वर्गकी एक भी औषधिका अधिक सेवन करनेसे वह भ्रम एवं विदाह उत्पन्न करता है।

कृतमाल (केवड़ा—सोमालिका), करीर (वंशांकुर), हल्दी, इन्द्रयव, स्वादुकण्टक (भुईकुम्हड़ा), खेतलता, बृहतीद्वय, शंखिनी (चोरपुष्पी), गुडूची, द्रवन्ती (मूसाकर्ण), त्रिवृत् (निसोत), मण्डूकपनी (मंजीठ), कारवेल्ल (कौला), चार्वाकु (बैंगन), करवीर (कनेर), वास (अडूसा), रोहिणी



(कंजा), शंखचूर्ण (शंखपुष्पी), कर्कोट (खेखसी), जयन्तिक (जैजयन्ती), जाती (चमेली), वारुणक (वरुण), निम्ब (नीम), ज्योतिष्मती (मालकैंगनी) और पुनर्नवा नामक ये सभी औषधियाँ तिक्त रसवाली हैं। इनका रस छेदक, रोषक तथा जठराग्निदीपक है। यह शरीरका अन्तर एवं बाह्य-शोधन करती है। इस रसके सेवनसे ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा तथा कण्ठके रोग विनष्ट हो जाते हैं। इस औषधिवर्गमेंसे किसी एक औषधिका अधिक सेवन करनेपर प्राणीमें विषा, मूत्र, स्वेद तथा शरीर-शुष्कताके विकार जन्म लेते हैं। यथोचित सेवन न करनेसे यह रस हनुस्तम्भ, आश्लेषक, पीड़ा, मस्तिष्क-शूल और व्रण आदिके भी उत्पन्नकोंका कारण बन जाता है।

त्रिफला, सल्लकी (चीड़), जामुन, आमड़ा, बरगद, तिल्लुक (तैलू), वकुल (मूलमिस्री), शाल, पालङ्गु (फालकी), मुद्गा (मूँग) और चिल्लक (बधुआ)-का रस कषाय, घ्राही, रोपी, स्तम्भन, स्वेदन तथा शरीर-शोषक होता है। इनमेंसे किसी एकका अत्यधिक सेवन करनेपर वह हृदयमें पीड़ा, मुखशोष-ज्वर, आध्मान तथा स्तम्भादिक रोगोंका कारण भी हो जाता है।

हल्दी, कुष्ठ, सेंधा नमक, मेघभृंगि (मेढामिङ्गी), कला, अतिवला, कच्छुरा (शूकशिम्बी), सल्लकी (चीड़), पाटा (पाड़ा), पुनर्नवा, शतावरी, अग्निमन्य (गर्निपाटी), ब्रह्मदण्डी, श्वदंष्ट्रा (गोखरू), एरण्ड, यव (जी), कोल (बेर) और कुलत्थ (कुलधी) आदि विशेष औषधियोंका पुष्क-पुष्क रस एवं दशमूलका क्वाथ पान करनेवाला मनुष्य अपने शरीरमें उत्पन्न होनेवाले वातज एवं पित्तज विकारोंको विनष्ट करनेमें सफल रहता है।

शतावरी, विदारी, बालक (मोथा), उशीर (खस), चन्दन, दूर्वा, वट, पिप्पली, बेर, सल्लकी, केला, नीलकमल, लालकमल, गुलर, पटोल (परवल), हल्दी, गुड़ तथा कुष्ठ—इन औषधियोंका वर्ग कफ-विनाशक है।

शतपुष्पी (सोआ), जाती (चमेली), व्योष (सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च), आरवध (अमलतास), लाङ्गुली (कलियारी) और घृत-तेल्लादिसे सिद्ध होनेवाले अन्य स्नेहपाकोंमें प्रशस्त माना गया है। बुद्धि, स्मृति, मेद तथा

अग्निवृद्धिके अभिलाषी जनोंके लिये घृत लाभप्रद है। पैतृक विकार होनेपर मात्र घृत और वात-विकार होनेपर उसको सेंधादि नमकके साथ सेवन करना चाहिये। कफकी अत्यधिक विकृति होनेपर रोगीको पिप्पली, सोंठ, काली मिर्च और यवक्षार मिलाकर दिया गया घृत श्रेयस्कर होता है। यह घृत रन्विदोष, नाड़ी-विकार, कृमि, श्लेष्म, मेदा तथा वात-रोगसे युक्त रोगियोंको भी देना चाहिये।

तैल-पदार्थोंका सेवन शरीरको हल्का और कठोर बनानेके लिये करना चाहिये। यह कठोर कोष्ठकोंवाले प्राणियोंके लिये लाभकारी होता है तथा वायु, धूप, जल, भार, मैद्युन और व्यायामके कारण क्षीण हुई धातुओंसे युक्त जनोंके लिये उचित है। शरीरकी रुक्षता, कष्ट, वृद्धावस्था, जठराग्निदीपन तथा वातदोषसे घिरे हुए प्राणियोंको स्नेहयुक्त औषधि एवं क्वाथोंका प्रयोग करना चाहिये।

इसके बाद जब प्राणीके सिरमें रोग हो गया हो तो चिकित्सा-शास्त्रके नियमानुसार सिरकी अपेक्षित शिराओंके समूहको गर्म करके प्राणीको धीरे-धीरे सिरका मर्दन करना चाहिये। स्नेह, क्वाथ और खटिका आदिके रूपमें प्रयुक्त औषधियोंकी उत्तम, मध्यम तथा अधम—ये तीन मात्राएँ मानी गयी हैं, जिनमें उत्तम मात्रा एक पल अर्थात् आठ तोला (१६ ग्राम), मध्यम मात्रा तीन अक्ष अर्थात् छः तोला (७२ ग्राम) और अधम मात्रा अर्ध पल अर्थात् चार तोला (४८ ग्राम) होती है। घृतपाक-सेवनमें गुणगुना तथा तैलपाक-सेवनमें शीतल जलका प्रयोग होना चाहिये। स्नेह (सहरई) पित्तविकार तथा तृष्णाजन्य दोषमें मनुष्यको गुणगुना जल पीना चाहिये।

शरीरमें जठराग्निके प्रबल होनेपर प्राणीको वातानुलोम, स्निग्धभाव होनेपर जठराग्निका दीपन, रुक्षभाववाली स्थितिके होनेपर स्नेहन तथा अत्यधिक स्निग्धताके होनेपर रुक्षता उत्पन्न करनेका प्रयास करना चाहिये। सौर्वा, कोदो आदि रुक्ष अन्न, तक्र, तिलकुट तथा सत्तूके अनपेक्षित प्रयोगसे वात तथा कफ-रोगमें अथवा वात-रोगमें स्वेदन-क्रिया करनी चाहिये। किंतु अत्यन्त स्थूल, रुक्ष, दुर्बल और मूर्च्छित व्यक्तिमें यह स्वेदन-क्रिया नहीं करनी चाहिये।

(अध्याय १७३)

## ब्राह्मीघृत आदि स्नेहपाकोंकी निर्माण-विधि तथा विविध रोगोंमें उनका उपचार

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत। अब मैं रोगोंको दूर करनेवाले घृत और तैलादि पदार्थोंके विषयमें बताऊँगा, उसे आप सुनें।

शंखपुष्पी, वच, सोमा, ब्राह्मी, ब्रह्मसुवर्चला, अभया (हरीतकी), गुडूची (गिलोय), अटरुषक (अडूसा) तथा वागुजी (बकुची) नामक इन औषधियोंके रसको एक-एक अक्ष अर्थात् दो-दो तोला लेकर उनसे एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर घृतका पाक सिद्ध करना चाहिये। उसमें एक प्रस्थ कण्टकारीका रस, एक ही प्रस्थ दूधका मिश्रण भी करना चाहिये। इस घृतपाकका नाम ब्राह्मीघृत है। यह स्मरण और मेधा-शक्तिका अधिवर्धक होता है।

त्रिफला, चित्रक, बला, निर्गुण्डी (सिन्धुवार), नीम, वासक (अडूसा), पुनर्नवा, गुडूची, बृहती और शतावरी नामक इन औषधियोंके रससे सिद्ध घृतपाक सभी रोगोंका विनाशक है।

खलाके रससे बने हुए बलायमें आधा आड़क अर्थात् दो सेर तिलका तेल पकाना चाहिये। इस बलायपाकके साथ मुलेठी, मजीठ, चन्दन, नीलकमल, लालकमल, छोटी इलायची, पिप्पली, कुष्ठ, दारचीनी, बड़ी एला (कपिलचको छाल), अगरू, केसर, अश्वगन्धा तथा जीवनीका कल्क और एक आड़क अर्थात् चार सेर दूध मिलाना चाहिये। इस पाकको अग्निकी धीमी आँचमें सिद्ध करके एक रजत-पात्रमें रखना चाहिये। यह तैलपाक समस्त वात तथा धातुरोगोंका नाशक है। इस तैलपाकके सेवनसे कफजन्य क्षयरोग भी विनष्ट हो जाता है। इसका नाम राजवल्लभ है।

एक प्रस्थ शतावरीका रस, एक प्रस्थ दूध, एक-एक कर्ष शतपुष्पी, देवदारु, जटामांसी, शिलाजीत, बला, चन्दन, तगर, कुष्ठ, मैनसिल और मालकैंगनी नामक औषधियोंका रस लेकर एक प्रस्थ घृतको अग्निपर सिद्ध करना चाहिये। इस घृतपाकके प्रयोगसे प्राणियोंका लैंगद्वापन, बौनापन, लुंजता, बधिरता, व्यंगदोष और कुष्ठरोग विनष्ट हो जाता है। वायुदोषके कारण जिनका शरीर दुर्बल हो गया है, जो मैथुनमें अशक्त हैं, वृद्धावस्थाके कारण जो जर्जर शरीरवाले हो गये हैं, आध्मान नामक रोगके कुप्रभावसे जिनके मुख शुष्क हो गये हैं, उनके उन सभी विकारोंका यह घृत-

पदार्थ विनाशक है। जिन प्राणियोंके चर्म, शिरा और स्नायु-तन्त्रिकाओंमें विकृत वायु-समूह प्रविष्ट होकर रोगका रूप धारण कर चुका है, वह सब इस सिद्ध तैलके सेवनसे नाश हो जाता है। इस तैलका नाम नारायणतैल है। इस रोगविनाशक तैलकी सिद्धिका विधान स्वयं भगवान् विष्णुने बताया था, इसीलिये इस सिद्ध तैलका नाम उन्हींके नामपर रखा है। इन्हीं औषधियोंसे पृथक्-पृथक् अथवा मिश्रण-रूपमें घृत एवं तैलपाक बनाना चाहिये।

शतावरी, गुडूची, चित्रक, बिजौरा नीबूका रस अथवा कण्टकारीके रसादिसे समन्वित निर्गुण्डीका रस या पुनर्नवा और चमेली अथवा त्रिफलाके साथ अडूसा या ब्राह्मी, एरण्ड, भृंगराज, कुष्ठ, मूलली, दशमूल और खदिरकी धिसकर बनायी गयी बट्टी, बटिका, मोदक या चूर्ण सभी रोगोंको दूर करनेवाला है। घृत, मधु, जल, सर्करा, गुड़, नमक तथा सोंठ, काली मिर्च अथवा पिप्पलीके साथ सेवन करनेसे सभी रोगोंमें यथोचित लाभ होता है। इन औषधियोंका योग सर्व-रोगविनाशक है।

चित्रक, मन्दार और विसोत अथवा अजवाइन तथा कनेर या सुधा (गुडूची), बाला (चमेली), गणिका (गनिकरी), सप्तपर्णी (छितावन), सुवर्धिका (पित्तपापड़ा) और ज्योतिष्मती (मालकैंगनी) नामकी औषधियोंको एकत्र करके विद्वान्को उनका तैल पाक सिद्ध करना चाहिये। इस योगसे सिद्ध तैलका प्रयोग भगदर-रोगमें करना चाहिये। शोथन, रोषण तथा सर्ववर्णकारक चित्रकादिक जो महतेल हैं, वे सभी प्रकारके रोगोंका निवारण करते हैं।

अजमोदा, सिन्दूर, हरताल, हल्दी, दारुहल्दी, यवक्षार, छज्जी, समुद्रफेन, अदरक, सरसद्ब, इन्द्रायण, अपामार्ग, केला तथा तिन्दुकको समान भागमें लेकर सरसोंका तैल चकरीके मूत्र तथा गोदुग्धको मिलाकर मन्द-मन्द अग्निकी आँचपर पाक करना चाहिये। इस सिद्ध तैल पाकका नाम अजमोदादि-तैल है। यह गण्डमाला नामक रोगको दूर करता है। विद्वान् व्यक्तिको सबसे पहले इस गण्डमाला नामक रोगमें होनेवाली फुंसियोंको पकाना चाहिये। तदनन्तर उनका शोधन करके इसी अजमोदादि तैलसे घावोंको भरते हुए उसमें कोमलता लानेका प्रयास करे। (अध्याय १७४)

## ज्वर-चिकित्सा

**श्रीहरिने कहा—**हे शंकर! सभी ज्वरोंमें सबसे पहला कार्य लंघन है। उसके बाद क्वाथ, उदकपान तथा वातशून्य स्थानका सेवन करना चाहिये।

हे ईश्वर! अग्निसे तथा स्वेदनकी क्रियाओंको करनेसे सभी ज्वर विनष्ट हो जाते हैं। गुडूची और मोथेका क्वाथ वातज्वर-विनाशक है। दुरालभा<sup>१</sup> अर्थात् धमासा नामक औषधिके घृतका पान करनेसे पित्त-ज्वर दूर होता है। सोंठ, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, बालक (होवेर) खस और चन्दनके क्वाथसे सिद्ध, पित्त-ज्वरका विनाश करता है। दुरालभा तथा सोंठसे सिद्ध घृत-मिश्रित क्वाथ कफ-ज्वरका नाशक है। बालक, सोंठ और पित्तपापड़ामें सभी ज्वर विनष्ट हो जाते हैं। विरायता, परजड़, गुडूची, सोंठ, नागरमोथाके क्वाथसे पित्त-ज्वर दूर होता है। होवेर, खस, पाठा, कण्टकारी और नागरमोथाका क्वाथ ज्वरका विनाश करता है। देवदारुकी छालका क्वाथ भी लाभदायक है।

हे शंकर! मधुसहित धनिया, नीम, नागरमोथा, परवलकी पत्ती, गुडूची और त्रिफलाका क्वाथ समस्त ज्वरोंका विनाशक है। इसके सेवनसे रोगीको क्षुधा बढ़ने लगती है एवं वायु-विकार दूर हो जाता है।

हरीतकी, पिप्पली, आंवला, चित्रक, धनिया, खस तथा पित्तपापड़ाका घूर्ण और क्वाथ दोनों ज्वरनाशक हैं। मधुके साथ आंवला, गुडूची तथा चन्दनका सेवन सभी ज्वर-रोगीको दूर करनेवाला है।

अब आप सत्रिपातज ज्वरके विनाशक औषधियोंको सुनें।

हल्दी, नीम, त्रिफला, नागरमोथा, देवदारु, अदरक चन्दन, परवलकी पत्तीका क्वाथ पीनेसे त्रिदोषजन्य अर्थात् सत्रिपातज ज्वर दूर हो जाता है।

कण्टकारी, सोंठ, गुडूची, कमल तथा नागबल्ल नामक औषधियोंके योगसे बने चूर्णका सेवन करके रोगी श्वास और खाँसी आदिसे विमुक्त हो जाता है। कफ-वातज ज्वरसे ग्रस्त रोगीको प्यास लगनेपर गर्म जल देना चाहिये। सोंठ, पित्तपापड़ा, खस, नागरमोथा तथा चन्दनसे सिद्ध क्वाथ शीतल जलके साथ देना चाहिये। यह तृष्णा, बमन, (पित्त) ज्वर और दाहमें ग्रस्त रोगीके लिये हितकारी है। क्लृप्त आदि पट्टमूलका क्वाथ वातज ज्वरमें लाभ करता है। पिप्पलीमूल, गुडूची और सोंठका योग पाचक है। वात-ज्वर होनेपर इसका क्वाथ देना चाहिये। यह परम शान्ति देनेवाला है। मधुके सहित पित्तपापड़ा एवं नीमका क्वाथ पित्तज ज्वरका विनाश करता है।

समुचित उपचार करनेपर भी यदि रोगीकी चेतना नहीं लौटती तो उस रोगीके दोनों पैरों के तलुओंमें अथवा मस्तक-भागमें लोहेके गर्म शलाकासे दग्ध (गर्म) करना चाहिये। विरायता, पाड़ा, पित्तपापड़ा, विशाला (इन्द्रायण), त्रिफला तथा निसोठका क्वाथ दूधके साथ घाड़ा है। यह मलवरोधक भेदन करनेवाला एवं समस्त ज्वरोंका विनाशक है। (अध्याय १७५)

## पलितकेश तथा कर्णशूलके उपचार

**श्रीभगवान्ने कहा—**हाथी-दाँतका भस्म एवं बकरीके दूधमें मिश्रित रसाञ्जन (रसौत)-का लेप सिरपर करनेसे खल्व्याट अर्थात् गंजे प्राणीके सिरमें सात रात्रियोंके बीतते-ही-बीतते सुन्दर बाल उग आते हैं। चार भाग भृंगराजससे सिद्ध गुंजाफलके घूर्णयुक्त विलका तेल केशराशिका अभिवृद्धिकारक होता है।

इलायची, जटामांसी, मुरा (शल्लकी), शिव (काला धतूरा), गुंजा (घुँघची)-को समभागमें लेकर उनसे बनाया गया लेप सिरमें लगानेसे इन्द्रलुप्त नामक रोग दूर हो जाता है। आमकी गुठलियोंके घूर्णका लेप करनेसे केश सूक्ष्म अर्थात् पतले हो जाते हैं। करंज, आंवला, इलायची और ताहका लेप बालोंको लालिमाका विनाशक है।

आमके गुठलीकी मज्जा तथा औवलाके चूर्णका सिरमें लेप करनेसे केशराशि जड़से मजबूत, सपन, लम्बी, चिकनी तथा टूट-टूटकर न झरनेवाली हो जाती है।

विडंग और गन्धक अथवा चार गुने गोमूत्रसे युक्त मैनसिलके चूर्णसे सिद्ध तैलपाक उत्तम माना गया है। सिरमें इन तैलोंका लेप करनेसे चूँ और लोख समाप्त हो जाते हैं।

हे वृषभध्वज! शंखभस्म और सीसक घिसकर सिरमें लगानेसे केश चिकने और अत्यन्त काले हो जाते हैं। भृंगराज, लौहचूर्ण, त्रिफला, बिजौरा नीबू, नीली, कनेर और गुड़को समान भागमें लेकर अग्निपर सिद्ध किया गया पाक एक महीषधि है। इसके लेपसे पक रहे बालोंको पुनः काला किया जा सकता है। आमकी गुठलियोंकी गूदी, त्रिफला, नीली, भृंगराज, शोधित पुराना लौहचूर्ण तथा कांजीका सिद्ध योग भी बालोंको काला करता है।

चक्रमर्दक (चक्रवड्)-का बीज एवं कुष्ठ एरण्डमूल तथा अत्यन्त खट्टे कांजीके साथ पीसकर लेप करनेसे

मस्तकका रोग दूर हो जाता है।

सेंधा नमक, वच, होंग, कुष्ठ, नागकेशर, शतपुष्पा (सीफ) तथा देवदारु नामक औषधियोंसे शोधित चार गुने गायके गोबरसे निकाले गये रससे युक्त तिलके तेलको एक कण मात्र भी कानमें डालकर अत्यन्त प्रबल कर्णशूलको विनष्ट किया जा सकता है। हे शिव! भेंड़का मूत्र और सेंधा नमक कानमें डालनेसे पृथिका-दोष अर्थात् बहनेवाला दुर्गन्धपूर्ण घानो और कुमिस्रावादिका विकार विनष्ट हो जाता है। मालती नामक पुष्पकी पत्तियोंका रस या गोमूत्र कानोंमें डालनेसे उनमेंसे बहनेवाला मवाद नष्ट हो जाता है।

कुष्ठ, उद्धर, काली मिर्च, तगर, मधु, पिप्पली, अपामार्ग, अश्वगन्धा, बृहती, श्वेत सरसों, यष, तिल और सेंधा नमकका उबटन कल्याणकारी होता है। भल्लातक, बृहती एवं अवारका छिलका तथा कटु तैलके लेपसे या इस उबटनके प्रयोगसे लिंग, बाहु, स्तन और ब्रह्मणशक्तिकी वृद्धि होती है। (अध्याय १७६)

\*\*\*

## नेत्र, नाक, मुख, गला, अनिद्रा तथा पादरोग और शस्त्राघातादिजनित रोगोंकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे शंकर! मधुके सहित शोभनक वृक्षकी पत्तियोंका रस आँखोंमें डालनेसे निश्चित ही नेत्रका रोग नष्ट हो जाता है। तिल और चमेलीके अस्सी-अस्सी फूल, नीम, औवला, सोंठ, पीपल तथा चौलाईके शाककी चाबलके जलमें पीसकर उनकी बटी बनानी चाहिये। तदनन्तर छायामें सुखाकर मधुके साथ उसका नेत्रोंमें अंजन करना लाभकारी है। ऐसा करनेसे तिमिरादिक रोग नष्ट हो जाते हैं। बहेड़ेके गुठलीकी गूदी, शंखनाभि, मैनसिल, नीमकी पत्ती एवं काली मिर्चको बकरीके मूत्रमें घिसकर अंजन बनाना चाहिये। इस प्रकारका सिद्ध अंजन नेत्रोंमें होनेवाले पुण्य-दोष अर्थात् फुल्ला, रतींधी, तिमिर-विकार तथा पटलरोगको नष्ट कर देता है।

शंखभस्म चार भाग, मैनसिल दो भाग एवं सेंधा नमक एक भाग जलमें पीसकर बनायी और छायामें सुखायी गयी बटीका नेत्रोंमें अंजन करनेसे तिमिर, पटल तथा सूजन नष्ट

हो जाता है। यह नेत्ररोगोंकी महीषधि है। त्रिकटु, त्रिफला, कंजाके फल, सेंधा नमक और दोनों रजनी, हल्दी, दारहल्दीको भृंगराजके रसमें पीसकर उसका नेत्रोंमें अंजन देनेसे तिमिरादिक सभी रोग दूर हो जाते हैं। जंगली अड़ुसाकी जड़को कांजीमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रशूल नष्ट होता है। तक्र अर्थात् मट्टेके साथ बेरकी जड़को पीसकर पीनेसे भी नेत्रोंकी पीड़ा दूर होती है। सेंधा नमक, कड़ुआ तेल, अपामार्गकी जड़, दूध और कांजीको ताम्रपात्रमें घिसकर उसका नेत्रोंमें अंजन करनेसे पिंजट अर्थात् कीचड़ निकलना बंद हो जाता है।

बित्थ और नील-वृक्षकी जड़ पीसकर बनाये गये अंजनको नेत्रोंमें लगाने मात्रसे तिमिरादिक रोग निश्चित ही नष्ट हो जाते हैं। पिप्पली, तगर, हल्दी, औवला, वच और खट्टिद्वारा बनायी गयी बटीका अंजन लगानेसे नेत्ररोग नष्ट होता है। जो मनुष्य नित्य प्रातः मुँहमें जल भरकर जलका



ही छीटा देकर नेत्रोंको धोता है, वह नेत्रोंके सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है।

श्वेत एरण्डकी जड़ एवं पत्तियोंके रससे सिद्ध बकरीके दूधके उष्णपाकके सैंकसे आँखोंका वात-विकार दूर हो जाता है। चन्दन, सेंधा नमक, पुराने पलाशका पत्र और हरीतकी पटल, कुसुम, नीलीका अंजन चक्रिका (चक्राचींभी) नामक नेत्ररोगोंका विनाशक है।

बकरीके मूत्रमें घिसी गयी गुंजाकी जड़का अंजन तिमिररोगको दूर करता है। हे रुद्र! चाँदी, तँबे तथा सोनेकी शलाकाको हाथपर धिसकर नेत्रोंमें उसका लगाया गया उषटन कामला नामक रोगका निवारक है। धोषाफल अर्थात् सौंफको सूँघने और सेवन करनेसे पीलिया नामक रोगका विनाश होता है।

दूर्वा, अनारपुष्प, लोघ्र और हरीतकीका रस नासाश तथा वातरक्तके दोषको दूर करता है। हे वृषध्वज! हे नीललोहित! जाङ्गलिक-मूल अर्थात् केव्वाँचकी जड़को भली प्रकारसे पीसकर उसका नम्य लेनेसे नासाश-रोग नष्ट हो जाता है। हे रुद्र! गोघृत, सर्जरस (रस), धनिया, सेंधा नमक, भतूर तथा गैरिकसे सिद्ध सिक्ख अर्थात् मोम तेलमें मिलाकर ओठोंपर लगानेसे ओठोंके घाव तथा ओठ फटनेका रोग दूर हो जाता है। चबाकर सेवन की जानेवाली चमेलीकी पत्तियोंका रस भी मुखरोग-विनाशक है।

केसरके बीजोंको खानेसे हिलनेवाले दाँत दृढ़ हो जाते हैं। मुष्टक (मोथा), कुष्ठ, इलायची, मुलेठी, वालक और धनियाको चबानेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। कषाय द्रव्य या त्रिकटु अथवा तेलयुक्त त्रिक्त शकके नित्य भक्षणसे भी मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। इससे सभी प्रकारके दाँतोंसे सम्बन्धित घाव भी नष्ट हो जाते हैं। हे शिव! तेलमें सिद्ध कांजीका कुत्ला करनेसे अथवा उसको मुखमें रखनेसे ताम्बूलके साथ खाये गये चूनेके प्रभावसे हुए घाव या अन्य व्याधियोंका विनाश हो जाता है।

सोंठको चबानेसे जिस प्रकार प्राणी कफके रोगसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार विजीर नौबूके बीज, इलायची, मुलेठी, पिप्पली और चमेलीकी पत्तियोंका चूर्ण (जहदमें) चाटनेसे भी कफ-विकारसे मुक्ति मिल जाती है।

सेफालिका (सिन्धुवार) तथा जटामांसीका चूर्ण चबानेसे गलशुण्डि अर्थात् तालुभागकी शोथका विनाश होता है।

गुंजा अर्थात् धुँधचीकी जड़को चबानेसे दाँतमें लगे हुए कोढ़ोंका विनाश होता है। हे शिव! मधुसहित काकजंघ (धुँधची), स्नुही (सेँहुड़) और नीलका क्वाथ, दन्ताक्रान्त (दन्ताघात) तथा दाँतके कोट-रोगोंका विनाशक है।

कर्कटपाद (कमलकी जड़)-से सिद्ध भूतपाकका मंजन करनेसे दाँतोंकी कटकटाहट दूर हो जाती है। हे शिव! कर्कटपादका दूधके साथ लेप करनेसे भी इस रोगका विनाश हो जाता है। ज्योतिष्मती (मालकैंगनी)-के फलोंकी जलमें पीसकर उसके द्वारा तीन सप्ताहतक कुत्ला करनेसे भी इस रोगमें लाभ होता है। विदारीकन्द और हरीतकीके चूर्णका मंजन करनेसे दाँतोंका कालापन विनष्ट होता है।

लोघ्र, कुंकुम, मजीठ, अगर, लालचन्दन, यष, घावल तथा मुलेठीकी जलमें पीसकर तैयार किया गया मुखलेप स्त्रियोंके मुखकी शोभा-सम्पन्न बनाता है। दो प्रस्थ बकरीका दूध, एक प्रस्थ तिलका तेल, एक-एक कर्ष रक्तचन्दन, मंजिष्ठ, स्नाधा-रस, मधुयष्टी और कुंकुमसे सिद्ध लेपनाक एक सप्ताहके अन्तर्गत ही मुखकी शोभाको बढ़ा देता है।

सोंठ, पिप्पली-चूर्ण, गुहूची और कण्टकारीके क्वाथका फण करनेसे जठरग्नि तीव्र हो जाती है। हे महादेव! कंजा, पित्तपापदा, बृहती (भटकटेया), अदरक, हरीतकी तथा गोखरूके द्वारा सिद्ध क्वाथ पीनेसे घकान दूर हो जाती है एवं दाह, पित्त-ज्वर, शारीरिक शुष्कता और मूर्च्छा-दोष भी विनष्ट हो जाते हैं।

मधु, घृत, पिप्पली-चूर्ण एवं दूधसे युक्त क्वाथका पान हृदयरोग, खौंसी तथा विषमज्वरका विनाशक होता है।

हे वृषध्वज! सामान्यतः क्वाथ तथा औषधियोंकी अनुपान-मात्रा आधा कर्ष अर्थात् एक तोला है। विशेष रूपसे रोगीकी आयुके अनुसार उसके परिमाणपर विचार करना चाहिये।

गौके गोबरसे रस निकालकर दूधके साथ पान करनेसे विषमज्वर दूर हो जाता है। काकजंघा (धुँधची)-का रस

भी इस ज्वरका नाशक है। सोंठके चूर्णसे घृत बकरीके दूधका क्वाथ विषम ज्वरको दूर कर देता है।

मुलेठी, खस, सेंधा नमक तथा भटकटैयाका फल पीसकर उसका नस्य देनेसे पुरुषकी नोंद आने लगती है। हे शिव! काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर मधुका नस्य लेनेसे भी प्राणीको नोंद आ जाती है। काकजंघा (कालाद्रिखा)-की जड़ मस्तकपर लेप करके भी निद्राको लाया जा सकता है। कांजी तथा धूना नामक वृक्षके गोंदसे सिद्ध तैलपाकको शीतल जलमें मिलाकर सिरपर लेप करनेसे सिर-संताप दूर हो जाता है। यह रक्तदोषज ज्वर और दाहसे उत्पन्न होनेवाले संतापको भी दूर करता है।

शिलाज्वीत, शैबाल, मन्धा (मेथी), सोंठ, पाषाणभेदी (पधरचट्टा), सहिजन, गोखरू, बरुण और सौभञ्जनकी जड़—इन सबकी एकत्र करके बनाया गया जल या क्वाथ हाँग तथा यवक्षारके सहित पान करनेसे वातरोगका विनाश होता है।

हे शिव! पिप्पली, पिप्पलीमूल तथा भिलावेका जल या क्वाथ भली प्रकारसे शूलरोगको दूर करनेका लेहतम योग है।

अधगन्धा तथा मूलीके रससे शोधित वामीकी जो मिट्टी होती है, उसको रगड़नेसे दाद और ऊरुस्तम्भ नामक रोग शान्त हो जाते हैं।

बृहतीमूल अर्थात् भटकटैयाकी जड़को पानीमें पीसकर पीनेसे संघातवात नष्ट होता है। अदरक और तगरकी जड़को पीसकर मट्टेके साथ पीनेसे शिंशिली अर्थात् हुंनकाईका रोग वैसे ही नष्ट होता है, जैसे बज्रके प्रभावसे वृक्ष धरास्थयी हो जाता है।

अस्थिसंहारक हरजोड़ अर्थात् ग्रन्थिमान् नामक लताकी जड़को भातके साथ खानेसे अथवा जटामांसीके रसके साथ पान करनेसे वातरोग तथा अस्थिभंगके दोष विनष्ट हो जाते हैं। बकरीके दूध और घृत-मिश्रित सत्तूका लेप दोनों पैरके तलुओंमें करनेसे जलन समाप्त हो जाती है। मधु, घृत, मोम, गुड़, गैरिक, गुग्गुलु और शलका रस पैरोंमें लेप करनेसे उनका फटना तथा जलना बंद हो जाता है।

हे वृषध्वज! सरसोंके तेलकी पैरोंमें लेपकर निर्धूम

अग्निमें जो मनुष्य सेंकता है, उसका पंकित—मिट्टी खाया हुआ अर्थात् कोचड़में अधिक देरतक रहनेसे दूषित हुआ या उसके समान अन्य किसी कारणसे विकृत हुआ पैर खुजलाहट आदि विकारोंसे रहित हो जाता है।

सर्जरस, मोम, जीरा और हरीतकीसे शोधित घृतपाकका अभ्यङ्ग करनेसे अग्निमें जलनेसे उत्पन्न हुई पीड़ा शान्त हो जाती है। तिलका तेल अग्निमें जलाकर भस्म किये गये द्रवको प्रचुर मात्रामें बार-बार मिलाकर लेप करनेसे अग्निमें जलनेके कारण उत्पन्न हुए घाव ठीक हो जाते हैं। घैसके दूधका यक्खन, अग्निमें भूने गये तिलका चूर्ण और भिलावाका रस मिलाकर तैयार किया गया लेप घावको ठीक करता है। इसका नस्य एवं लेप करनेसे हृदय-शूल भी शान्त हो जाता है।

हे हर! दण्ड-प्रहार आदिके कारण शरीरमें उत्पन्न घाव कर्पूर और गोघृत परस्पर मिलाकर भरनेसे ठीक हो जाता है। हे शिव! शस्त्रोंके प्रहारसे होनेवाले घावपर इस औषधिका प्रयोग करके उसे स्वच्छ सफेद कपड़ेसे बाँध देना चाहिये। हे वृषध्वज! इस प्रकारके घाव जब पक्क रहे हों या उनमें पीड़ा होती हो तो उन्हें हाथका स्पर्श देना (सहस्राना) चाहिये। अतपकी जड़का रस और घृत भरनेसे भी शस्त्राघातका घाव भर जाता है। शरपुंछा (शरफोंका), लज्जालुका (लाजवन्ती) और पाठा (पाड़ा) नामक औषधियोंकी जड़को जलमें पीसकर उसका लेप लगानेसे भी शस्त्राघातजनित व्रण ठीक हो जाता है। काकजंघाकी जड़को पीसकर शस्त्राघातके घावमें भरनेसे वह घाव तीन रात्रियोंके भीतरे ही सूख जाता है। रोहितक नामक या रोहड़ाकी जड़का लेप भी व्रणको नष्ट कर देता है।

लाठी आदिके प्रहारसे उत्पन्न होनेवाली पीड़ा जल एवं तिलके तेलमें सिद्ध अपामार्गकी जड़का लेप लगानेसे तथा आगपर सेंकनेसे शान्त हो जाती है।

हे शंकर! हरीतकी, सोंठ और सेंधा नमक पीसकर जलके साथ खानेसे अजीर्ण रोगका विनाश होता है।

निम्बमूल अर्थात् नीमकी जड़को कमरमें बाँधनेपर नेत्रोंकी पीड़ा दूर हो जाती है। शण (पटसन)-की जड़

और पानका भस्म इन्द्रियजन्य विकारका विनाशक है। यवादिक अन्न, हल्दी, सफेद सरसोंकी जड़ और बिजौरा नीबूके बीज समान भागमें पीसकर इनका ठबटन बनाना चाहिये। सात दिनोंतक शरीरमें इसका प्रयोग करनेसे रंग गोरा हो जाता है।

क्षेत अपराजिताकी पत्ती तथा नीमकी पत्तीका रस निकालकर उसका नस्य देनेसे डाकिनी आदि माताओं और ब्रह्मराक्षसोंकी छायासे मुक्ति हो जाती है। हे वृषभ्वज! मधुसार अर्थात् मुलेठीकी जड़का नस्य देनेसे भी उनकी छाया दूर हो जाती है।

हे रुद्र! पिप्पली, लौहचूर्ण, सोंठ, औषला, सेंधा नमक, मधु तथा शर्कराका समान योग गूलरके फलके बराबरकी मात्रामें एक सप्ताहपर्यन्त सेवन करनेसे पुरुष बलवान् हो जाता है। यदि वह सदैव इसका सेवन करे तो दो सौ वर्षतक जीवित रहता है।

भल्लूकीके दूधसे भावित रोहित मछलीके मांसद्वारा सिद्ध तैलपाकका अभ्यङ्ग करनेसे शरीरमें स्थित समस्त

रोग दूर हो जाते हैं।

चन्दनके जलका नस्य लेनेसे शरीरके गिरे हुए रोम पुनः निकल आते हैं।

हस्त नक्षत्रमें लाङ्गलिकाकन्द अर्थात् कलियारी या जलपिप्पलीकी जड़को लेकर जो व्यक्ति उसका ले शरीरमें लगाता है, वह बुद्धीशुद्धि के दर्पको नष्ट कर देता है अर्थात् शरीरमें बूढ़ावस्थाका प्रभाव नहीं पड़ता।

पुष्प नक्षत्रमें सुदर्शना (चक्रांगी या वृषकर्णी) नामक लताकी जड़को लाकर घरके मध्य डाल देनेसे सर्प घरसे भाग जाते हैं। हे शिव! रविवारकी लायी गयी मन्दारवृक्ष तथा अग्निज्वालिता (जलपिप्पली)—की जड़को पीसकर बनायी गयी बटी, सरसोंके तेलसे जलानेपर मार्गमें दश-प्रहार करनेवाले सर्पका विनाश करती है।

विष्यता (केतकी) और अर्जुनके पुष्प, भिलावा, शिरोध, लाक्षारस, राल, विड और गुग्गुलु—इन सभीके द्वारा बना भूप मन्त्रियों तथा मन्त्रियोंका नाश करता है।

(अध्याय १७७)

~~~~~

## गर्भ-सम्बन्धी रोग, दन्त तथा कर्णशूल एवं रोमशमन आदिका उपचार

भीरुरिने कहा—हे शिव! मुलेठी तथा कण्टकारी नामक औषधियोंको समभागमें लेकर गोदुग्धमें पाक तैयार करके दूधका चौथा भाग रोष रहनेपर उस पाककी गरम जलके साथ पान करनेपर स्त्रीकी गर्भ रुक जाता है। बिजौरा नीबूके बीजोंकी दूधके साथ भावित करके उसका पान करनेसे स्त्रीकी गर्भ रुकता है। पुत्र प्राप्ति करनेकी इच्छाके स्त्रियोंकी बिजौरा नीबूके बीज तथा एरण्ड-वृक्षकी जड़की पीके साथ संयोजित करके उसका सेवन करना चाहिये। अश्वगन्धाके क्वाथका दूध एवं पीके साथ सेवन पुत्रकारक है। पलाशके बीजोंकी मधुके साथ पीसकर पान करनेसे रजस्वला स्त्री मासिक धर्म तथा गर्भधारणसे रहित हो जाती है।

हरिताल, यवक्षार, पत्राङ्ग (तेजपत्ता), लाल चन्दन, जातिफल (जायफल), हींग तथा लाक्षारसका पाक तैयार करके उसे दाँतोंमें भलीभाँति लगाना चाहिये। किंतु उससे पहले हरीतकीके क्वाथसे दाँतोंको साफ कर ले। ऐसा करनेसे मनुष्यके लाल पड़ गये दाँत भी सफेद हो जाते हैं।

मन्द-मन्द औषधपर मूलीके रसको पकाकर उसको कावमें डालनेसे कर्णसाव अर्थात् कानका बहना बंद हो जाता है। अर्कके पत्तोंको लेकर मन्द-मन्द औषधपर गरम कर ले। तदनन्तर उसका रस निचोड़कर कानमें डाले तो कर्णशूल विनष्ट हो जाता है।

श्रियंगु, मुलेठी, औषला, कमल, मंजीठ, लोध, लाक्षारस और कपित्थ-रससे बने तैलपाकसे स्त्रियोंका योनि-दोष दूर हो जाता है। सूखी मूली तथा सोंठका क्षार और हींग से इस रोगके लिये महोषधि है। सोया (वनसीफ), वचा (वच), कूट, हल्दी, सहिजन, रसाङ्गण, कांता नमक, यवक्षार, सर्जक (तालवृक्षका रस), सेंधा नमक, पिप्पली, बिटंग तथा मोघा—इन सभी औषधियोंको समान भागमें लेकर उनसे चार गुना मधु, बिजौरा नीबू और केलाका रस एकत्र करे। तदनन्तर इन सभी औषधियोंको एकमें मिलाकर उनसे तिलके तेलकी सिद्धि करे। इस प्रकार तैयार किये गये पाकके प्रयोगसे निश्चित ही स्त्रियोंका स्त्रावादिक रोग दूर हो जाता है, इसमें संदेह नहीं।

सरसोंका तेल कानमें डालनेसे उसके अंदर उत्पन्न हुए

कृमि नष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र! हल्दी, नीमकी पत्तियाँ, पिप्पली, काली मिर्च, विडंगभद्र, मोथा और सोंठ—इन सात औषधियोंको गोमूत्रके साथ पीसकर बटी बना लेना चाहिये। इसकी एक बटी अजीर्ण और दो बटी विषूचिका (हैजा) नामक रोगको दूर करती है। मधुके साथ इसको घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे पटोल अर्थात् परवलेके समान आयी हुई सूजन दूर हो जाती है। गोमूत्रके साथ प्रयुक्त होनेपर अर्युद (कैंसर) नामक रोगका नाश करती है। यह शंकरा बटी नेत्रोंके सभी रोग दूर करती है।

बच, जटामांसी, बिल्व, तगर, पचकेसर, नागकेसर और श्रियंगुको समान भागमें लेकर उनका चूर्ण बना लेना चाहिये। इस चूर्णका भूप लेनेसे मनुष्य रूप-सौन्दर्यसे समन्वित हो जाता है।

अर्जुन-वृक्षके फूल, धिलावा, विडंग, बला, रात, सौखीर और सरसोंके योगसे तैयार भूप सर्प, जुर्द, मक्खी तथा मच्छरोंको विनष्ट करता है।

**श्रीहरिने पुनः कहा—**हे शिव! ताम्बूल, घृत, मधु तथा नमकको गोदुग्धके साथ ताप्रापात्रमें पिसकर मिट्ट किया गया अञ्जन नेत्रपौड़ाकी दूर करनेका उत्तम योग है। खाँसी, श्वास तथा हिचकीका विकार होनेपर इरीतकी, बघ, कूट, त्रिकटु अर्थात् विशा, उपकल्पा, मरिच, हींग और

मैनसिल-चूर्णको मधु तथा घृतमें मिलाकर चाटना चाहिये।

पिप्पली और त्रिकलाके चूर्णको मधुके साथ चाटनेसे भयंकर पीनस, खाँसी और श्वासके विकार नष्ट हो जाते हैं। हे वृषध्वज! मूलसहित चित्रक तथा पिप्पलीके चूर्णको मधुमें मिलाकर चाटना चाहिये। यह श्वास, खाँसी और हिचकीको नष्ट कर देता है।

चावलके जलमें समान भागमें पिसा हुआ नीलकमल, शर्करा, मधु तथा रक्तकमलका योग रक्तविकारको शान्त करता है।

सोंठ, शर्करा और मधु मिलाकर बनायी गयी गुटिका खानेमात्रसे मनुष्यका स्वर कोपलके समान हो जाता है।

हरिताल, शंखचूर्ण, केलेके पत्तेका भस्म—इनका उबटन लगानेसे बाल गिर जाते हैं। लवण, हरिताल, लौकी और लाक्षारससे युक्त उबटन भी रोम गिरानेका उत्तम योग है। सुध, हरिताल, शंखभस्म तथा मैनसिलको सेंधा नमक एवं बकरेके मूत्रमें मिलाकर पीसकर और उसी क्षण उससे उबटन करनेसे रोम गिर जाते हैं। यह उत्तम औषधि है।

शंख, आँवलेकी पत्तियाँ और धातकीके पुष्पोंका दूधके साथ पीसकर उसे डेढ़ सप्ताहतक मुखमें रखनेसे दाँत विकने, सफेद तथा स्वच्छ और कान्तिसे युक्त हो जाते हैं। (अध्याय १७८—१८१)

## भोज्य पदार्थोंका विहित सेवनकाल, बल-बुद्धिवर्धक औषधियाँ तथा विषदोषशमनके उपाय

**श्रीहरिने कहा—**हे रुद्र! प्रायः शरद, ग्रीष्म और वसन्त-ऋतुमें दहीका उपभोग विन्दवीय है तथा हेमन्त, शिशिर एवं वर्षा-ऋतुमें दही प्रशस्त होता है—

शरद्वर्षीयवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्।

हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शम्भते॥

(१८२।१)

भोजन करनेके पश्चात् नवनीत (मक्खन)—के साथ शर्कराका पान करना बुद्धिकारक होता है। हे शिव! यदि पुरुष एक पल पुराना गुड़ प्रतिदिन (भोजन करनेके पश्चात्) खाता रहे तो वह बलवान् होकर अनेक स्त्रियोंसे सम्पर्क करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेता है।

कुष्ठ (कूट)—को भलीभाँति चूर्ण करके घृत और मधुके साथ सोनेके समय खानेसे बलीपलित दूर हो जाता

है। अलसी, उडुद, गेहूँ तथा पिप्पलीका चूर्ण घृतके साथ शरीरमें लगानेसे मनुष्य कामदेवके सदृश सौन्दर्यसम्पन्न हो जाता है।

बघ, तिल, अश्वगन्धा, मूसली, सरला (काली तुलसी) और गुड़को परस्पर मिलाकर बनायी गयी बटी खानेसे मनुष्य तरुण तथा बलवान् हो जाता है। हींग, काला तमक और सोंठका काढ़ा बनाकर पीनेसे परिणाम नामक शूल और अजीर्ण रोग विनष्ट हो जाता है। धातकी (धक्का फूल) तथा सोमराजी (औषधि) गोदुग्धके साथ पीसकर पान करनेसे दुर्बल मनुष्य भी मोटा हो जाता है। शक्ति चाहनेवाले प्राणीको शर्करा तथा मधुके साथ मक्खन खाना चाहिये। क्षयरोगसे पीड़ित व्यक्तिको दुग्धपान पुष्ट तथा बुद्धिको अत्यधिक प्रखर बना सकता है। गोदुग्धके



साथ पान किया गया कुलीरका चूर्ण क्षयरोगको विनष्ट करता है।

भिलावा, बिडंग, यवक्षार, सेंधा नमक, मैनासिल तथा शंखचूर्णको तेलमें पकाकर अनपेक्षित रोमसमूहोंको इटानेके लिये उसका प्रयोग करना चाहिये।

मुण्डीत्वक् (गोरखमुण्डी), वध, मोथा, काली मिर्च तथा तगरको एक साथ चबाकर मनुष्य तत्काल ही जिह्वसे अग्निको चाट सकता है। गोरोषन, भृंगराजका चूर्ण एवं घृत समान मात्रामें मिलाकर जलस्तम्भन किया जा सकता है।

हे महेश्वर! यष्टि-मधु (मुलेटी) एक फल, उष्ण जलके साथ पान करनेसे विशम्भिका तथा हृदयशूल नामक रोग नष्ट हो जाता है।

हे रुद्र! 'ॐ हूं जः' यह मन्त्र सभी प्रकारके बिच्छुओंका विष नष्ट करता है। पिप्पली, मक्खन, भृंगवेर, सेंधा नमक, कालीमिर्च, दही और कूटका नम्र लेने तथा उसका पान

करनेपर वह बिषदोषको दूर करता है। हे शिव! त्रिफला, अदरक, कूट और चन्दनको घृतमें मिलाकर पान करने और लेप करनेसे बिच्छूका विष विनष्ट होता है। हे वृषभध्वज! सेंधा नमक और त्रिकटुके चूर्णको दही, मधु तथा घृतमें मिलाकर लेप करनेसे यह बिच्छूके विषको दूर कर देता है।

हे रुद्र! ब्रह्मदण्डी और तिलका क्वाथ बनाकर उसके साथ त्रिकटु (सोंठ, पिप्पली तथा काली मिर्च) का चूर्ण पान करना चाहिये। वह सभी प्रकारके गुल्म एवं ऋतुकालीन अवरुद्ध रक्त-विकारका विनाशक है। मधु मिलाकर दूधका पान करनेसे रक्तस्त्रावके विकारको दूर किया जा सकता है। जंगली अड़ूसेकी जड़को पीसकर प्रसवकालमें स्त्रीके नाभि एवं गुह्यभागमें लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है।

हे वृषभध्वज! खावलके पानीमें शर्करा और मधु मिलाकर पान करनेसे रक्तातिसार नामक रोग ज्ञान्त हो जाता है। (अध्याय १८२)



## ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य, छर्दि तथा अर्श आदि रोगोंका उपचार

श्रीहरिने कहा—हे चन्द्रचूड! काली मिर्च, भृंगवेर और कुटजकी छालका पान करनेसे ग्रहणीरोग नष्ट होता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल, काली मिर्च, तगर, वध, देवदारुका रस और पाठाको दूधके साथ पीसकर सेवन करनेसे निश्चित ही अतिसाररोग विनष्ट हो जाता है।

काली मिर्च तथा तिलके पुष्पोंका अञ्जन कामलारोगका विनाशक है। हरीतकी और गुड़की बराबर मात्रामें मधुके साथ मिलाकर खाना चाहिये। हे रुद्र! निस्सर्देह यह विरेचनकारी होता है। त्रिफला, विप्रक, विप्र, कटुकरोहिणीका योग ऊरुस्तम्भ रोगका अपहारक है और यह विरेचनकी भी उत्तम औषधि है। हरीतकी, भृंगवेर, देवदारु, चन्दन, अपामार्ग (चिचड़ा)-की जड़को बकरीके दूधमें पकाकर पान करके ऊरुस्तम्भका विनाश किया जा सकता है अथवा जयन्ती (विष्णुकान्ता)-की जड़का क्वाथ पीनेसे भी यह रोग सात दिनमें दूर हो जाता है।

अनन्ता (धमासा) और भृंगवेरका समान भागमें चूर्ण बनाकर बराबर मात्रामें ही गुग्गुल और गुड़ मिला ले, तदनन्तर उसकी गोलीयों बनाकर सेवन करनेसे स्नायुगत त्रायुविकार तथा अग्निमान्द्य रोग विनष्ट हो जाता है।

पुष्य नक्षत्रमें डंठल एवं पतियों-सहित शंखपुष्पीको स० ग० पु० अ० १०—

उखाड़कर बकरीके दूधके साथ पीनेसे अपस्मार (मिर्गी)-का रोग दूर होता है। समभागमें अधगन्धा तथा हरीतकीके चूर्णको जलके साथ पीनेसे निश्चित ही रक्त-पित्त-विकारका विनाश होता है। हरीतकी और कूटका चूर्ण बनाकर उसको मुखमें रखना चाहिये। पश्चात् शीतल जल पीनेसे सभी प्रकारके छर्दि रोग अर्थात् वमन दूर हो जाते हैं। गुडूची, पचकारिष्ठ और नीम, धनिया तथा रक्तचन्दन नामक औषधियोंका योग पित्तश्लेष्मक ज्वर, छर्दि, दाह और तृष्णाके विकारका विनाशक एवं अग्निवर्धक है, किंतु इन औषधियोंका प्रयोग 'ॐ हूं नमः' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रण करनेके पश्चात् करना चाहिये—

ॐ जम्भिनी स्तम्भिनी मोहय सर्वव्याधीन् मे वज्रेण ठः ठः सर्वव्याधीन् मे वज्रेण फट्॥ (१८३। १२)

उपयुक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित शंखपुष्पीको कानमें बाँधनेसे ज्वरको दूर किया जा सकता है। हे रुद्र! इसी मन्त्रसे १०८ बार जप करके अभिमन्त्रित शंखपुष्पीको रोगीके हाथमें रखकर वैद्य उसके नाखूनोंका स्पर्श करे तो शीघ्रिया ज्वर अथवा अन्य सभी प्रकारके ज्वर विनष्ट हो जाते हैं।

जामुनका फल, हल्दी तथा सौंपकी केंचुलका धूप

सभी प्रकारके ज्वरोंका विनाशक है। यह भूप तो चौथिया जाता है।  
ज्वरका भी विनाश कर देता है।

करवीर (कनेर), भृंगराज, नमक, कूट और कर्कट (ककड़ा सींगी) नामक औषधियोंको समान भागमें लेकर चौगुने गोमूत्रके साथ तैलपाक सिद्ध करना चाहिये। इस तैलका अभ्यङ्ग पामा, विचरिका तथा कुष्ठरोगके रोगोंको दूर कर देता है।

हे रुद्र! पिप्पली और मधुका सेवन करने एवं मधुर भोजन करने तथा सूरजके सेवनसे प्लीहा रोग विनष्ट हो

जाता है।  
गोमूत्रके साथ पिप्पली और हल्दीका चूर्ण मिलाकर उसको गुदद्वारमें डालनेसे अर्श रोग दूर किया जा सकता है।

बकरीका दूध और अदरकका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे प्लीहा आदि रोग विनष्ट हो जाते हैं। सेंधा नमक, बिडंग, सोमलता, सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, विष और नीमको पत्तीको गोमूत्रके साथ पीस लेना चाहिये। इसका लेप करनेसे कुष्ठरोगका विनाश होता है। (अध्याय २८३)

## सिध्म, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, अजीर्ण तथा गण्डमाला आदि रोगोंकी औषधियाँ

श्रीहरिने कहा—[हे चन्द्रचूड] हल्दी और केलेके क्षारका लेप सिध्मरोगका विनाशक है। एक भाग कूट तथा दो भाग हरीतकीका चूर्ण उष्ण जलके साथ पान करनेसे कसरका शूल रोग दूर हो जाता है। हरीतकी, शर्करा और पिप्पलीका चूर्ण नवनीतके साथ सेवन करनेसे वह अर्श-रोगका विनाश करता है। जंगली अदुसेके पत्तीको घीमें मन्द-मन्द आँवपर पकाकर उसका लेप करना अर्शरोग दूर करनेकी श्रेष्ठतम औषधि है।

गुग्गुल और त्रिफलाका चूर्ण पानकर भगंदर रोगको विनष्ट किया जा सकता है। जीरा, अदरक, दही तथा चावलके मीड़को अग्निमें पकाकर नमकके साथ सेवन करना चाहिये। इससे मूत्रकृच्छ्र नामक रोग दूर होता है। यवक्षार तथा शर्करा भी मूत्रकृच्छ्र-रोगको दूर करता है।

तिलके तेलमें यवको जलाकर उसकी कजली बनानी चाहिये। उसके बाद तिलके ही तेलमें उसको मिलाकर अग्निमें जले हुए स्थानपर लेप करनेसे लाभ होता है। धीके सहित साजवन्ती तथा शरपुंखाकी पत्तियोंका तैयार किया गया लेप भी अग्निबन्ध पीड़ाको दूर करता है। निम्न मन्त्रसे अधिमन्त्रित करके इस लेपका प्रयोग करना चाहिये—

ॐ नमो भगवते ठ ठ छिन्धि छिन्धि ज्वलनं प्रज्वलितं  
नाशय नाशय हुं फट् ॥ (१८४। ८)

हाथमें निर्गुण्टीकी जड़ बाँधनेसे ज्वर बहुत ही शीघ्र दूर हो जाता है। श्वेत गुड्ढाफलको सात खण्ड बनाकर उसको हाथमें बाँध लेनेसे अर्श रोग निश्चित ही विनष्ट हो जाता है। विष्णुकान्ता (अपराजिता) तथा बकरीके मूत्रका

प्रयोग करके घोर और व्याघ्रादि हिंसक जीवोंके प्रहारसे प्राणी अपनी रक्षा कर सकता है। ब्रह्मदण्डोकी जड़ तो सभी कर्मोंमें सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

घृतके साथ सिद्ध त्रिफलाका चूर्ण कुष्ठविनाशक है। पुनर्वा, बिल्व और पिप्पलीके चूर्णसे सिद्ध घृतके द्वारा हिचकी, क्षाम तथा खाँसीको दूर किया जा सकता है। इस घृतका पान स्त्रियोंके लिये गर्भकारक होता है।

दूध और चीके साथ खानरी बीज (केर्वाँच)-को पकाकर घी तथा शर्करामें मिलाकर सेवन करनेसे वीर्य कभी नष्ट नहीं होता।

मधु, घृत तथा दुग्धका पान बलीपलित नामक रोगको दूर करता है।

हे शिव! मधु, घृत, गुड़, केलेका रस और तैबेको एक साथ अग्निमें पकानेपर चाँदी बन जाता है। अब आप सोना बनानेकी विधि सुनें।

पीले धतूरेका पुष्प और सीसा एक पल तथा लाङ्गलिका (करिचारी)-की शाखाको एक साथ मिलाकर अग्निमें पकानेपर सोना बन जाता है।

हे हर! धतूरेके बीजोंसे निकाले गये तेलद्वारा प्रज्वलित दीपकके प्रकाशमें सम्पादित व्यक्ति को देवता भी नहीं देख पाते।

हे शिव! मनुष्यको मदमस्त हाथीके दोनों नेत्रोंमें अपने हाथसे काजल लगाना चाहिये। ऐसा करनेपर वह व्यक्ति युद्धमें विजय प्राप्त करता है और महाबलवान् भी बन जाता है।

हुण्डुभ नामक सर्पके दाँतको मुखमें रखकर मनुष्य

जलके बीच भी पृथ्वीके समान ही किसी अन्य विकल्पका आश्रय लिये बिना रह सकता है।

लीहचूर्ण और मट्ठा पान करनेसे पाण्डुरोगका शमन हो जाता है। तण्डुलीयक (चीलाई) तथा गोखरुकी जड़को दूधमें मिलाकर पान करनेसे कामला एवं मुखरोगका विनाश होता है। चमेली और बेरकी जड़को मट्टेके साथ पीनेसे अजीर्ण रोग दूर होता है।

कुशकी जड़, खानरीमूल, बकुची तथा कांजीका मिश्रित योग दाँतोंके रोगका विनाशक है। इन्द्रवारुणीकी जड़को जलके साथ पीनेसे विषादि-दोष नष्ट होते हैं। हे शिव! चम्पाकी जड़को पान करनेसे भी उक्त दोष दूर हो सकते हैं। कांजीके साथ गुआ (धुँवची)-का चूर्ण मस्तकपर लेप करनेसे सिरका रोग विनष्ट हो जाता है।

बला, अतिबला, मधुघृष्टि, शर्करा तथा मधुका पान करके बंध्या स्त्री गर्भ-धारण करनेमें समर्थ हो जाती है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

श्वेत अपराजिताकी जड़, पिप्पली और सोंठका पिस हुआ लेप सिरमें लगानेसे शूल नष्ट हो जाता है। निर्गुण्डीकी फुन्गीको पीसकर पान करनेसे गण्डमाला नामक रोग दूर हो जाता है।

केतकीके पत्तोंका क्षार गुड़के साथ अथवा मट्टेके साथ तरपुंछाका सेवन करनेसे प्लीहा रोग विनष्ट हो जाता है। बिजौरा नोबूका निर्यास (गोंद), गुड़ और घीके साथ मिलाकर पान करनेसे वात-पित्तजनित शूल दूर होता है। सोंठ, काला नमक तथा होंगका पान हृदयरोगका विनाशक है। (अध्याय १८४)

~~~~~

## गणपतिमन्त्रका औषधिक योग तथा शोथ, अजीर्ण, विषूचिका और पीनस आदि विविध रोगोंके उपचार

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! 'ॐ नं गणपतये नमः' भगवान् गणेशका यह मन्त्र धन और विद्या प्रदान करनेवाला है। इस मन्त्रका एक हजार आठ बार जप करनेके बाद अपनी शिक्षाको बंधनेवाला व्यक्ति वाद-विवादके व्यवहारमें विजय प्राप्त करता है। एक सौ बार इस मन्त्रका जप करनेवाला प्राणी अन्य लोगोंका प्रिय बन जाता है।

काले तिलोंको घृतमें मिलाकर इस मन्त्रसे एक हजार आठ आहुतियाँ देनेसे मात्र तीन दिनमें राजा वशमें हो जाता है। अष्टमी और चतुर्दशी तिथिोंको उपवास रखकर मनुष्य यदि विधिवत् विघ्नराज गणेशका पूजन करे और तिल तथा अक्षतको मिलाकर एक हजार आठ बार उन्हें आहुति प्रदान करे तो वह युद्धमें अपराजित होता है और सभी लोग उसकी सेवा करते हैं। उपर्युक्त मन्त्रका एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार जप करके अपनी शिक्षा बंधनेवाला प्राणी राजकुल तथा वाद-विवादके व्यवहारमें विजय प्राप्त करता है।

भृंगराज, सहदेयी (सहदेई), वचा (वच) और श्वेत अपराजिता नामक औषधियोंके रसका तिलक करके मनुष्य तीनों लोक वशमें कर सकता है।

काकजंभाका मूल और दूधका मिश्रित पान शोथ रोगका विनाशक है।

अश्वत्था, नागबला, गुड़ तथा उड़द मिलाकर खानेवाला पुरुष वैसे ही रूप-सौन्दर्यमें युक्त हो जाता है, जैसे नागमुखकोंका सौन्दर्य होता है।

हे रुद्र! लीहचूर्ण और त्रिफलाचूर्णका मधुके साथ प्रयोग करनेसे परिणाम नामक शूलका विनाश होता है। हे वृषध्वज! होंग, काला नमक और सोंठ—इन औषधियोंके क्वाथका पान सभी प्रकारके शूलोंका अपहारक है। सामुद्रलवणसे युक्त अपामार्गकी जड़का सेवन करनेसे अजीर्ण-शूल नष्ट हो जाता है।

हे रुद्र! बरगदकी जटाओंका अंकुर चावलके जलमें पिसकर मट्टेके साथ पीनेसे अतिसार रोग दूर होता है। अंकोट (अंकोल)-की जड़को आधा कर्ष लेकर चावलके जलमें पीसकर पान करनेसे सभी प्रकारके अतिसार तथा ग्रहणी नामक रोगोंका विनाश होता है। काली मिर्च एक भाग, सोंठ दो भाग तथा कुटजकी छालका चूर्ण चार भाग गुड़में मिलाकर काड़ा बनाकर पीनेसे ग्रहणी नामक रोग दूर होता है। हे शिव! श्वेत अपराजिताकी जड़, हल्दी, सिक्थ, चावल, अपामार्ग (चिचड़ा) और त्रिकटु (काली मिर्च, सोंठ एवं पिप्पली) नामक इन औषधियोंको पीसकर बटी बना सेना चाहिये। यह बटी निस्संदेह विषूचिका नामक रोगका विनाश करती है।

हे भूतेश! त्रिफला, अगरु, शिलाजीत और हरीतकीको समान भागमें लेकर इनके मिश्रित चूर्णको मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सभी प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं।

मदारका दूध एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर, तिलका तेल एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर, मैनसिल, काली मिर्च तथा सिन्दूर एक-एक पल अर्थात् आठ-आठ तोलेका चूर्ण बनाकर तौबेके पात्रमें रखकर उसको धूपमें सुखा ले। स्नुही (धूहड़-सेहूँड़)-का दूध और सेंधा नमक मिलाकर इसका सेवन करे तो शूल रोग दूर हो जाता है।

त्रिकटु (काली मिर्च, सोंठ तथा पिप्पली), त्रिफला, गन्ध (कंज), तिलका तेल, मैनसिल, नीमकी पत्ती, चमेलीका पुष्प, बकरीका दूध, बकरीका मूत्र, संखनाभि और चन्दनको एकमें ही घिसकर बनायी गयी बत्तीसे नेत्रोंमें अञ्जन लगानेसे पटल, काष्ण, पुष्प तथा तिमिर आदि

रोग दूर हो जाते हैं।

मधुसे युक्त बहेड़ेका चूर्ण श्वास रोगका विनाशक होता है। मधु तथा सेंधा नमकसे मिश्रित पिप्पली और त्रिफलाका चूर्ण सभी प्रकारके रोगोंसे उत्पन्न होनेवाले प्वर, श्वास, शोथ तथा पीनसके विकारको दूर करता है।

देवदारु-वृक्षको छालके चूर्णको इक्कीस बार बकरीके मूत्रसे भावना देकर सिद्ध करना चाहिये। इसका अञ्जन करनेसे रतींधी, पटलता और रोमपतन नामक रोग दूर हो जाते हैं।

हे रुद्र! पिप्पली, केतकी, हल्दी, औंवला तथा यषा (यष)-को दूधके साथ पीसकर अञ्जन बनाना चाहिये। इस अञ्जनके प्रयोगसे नेत्रोंके सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं।

हे शिव! काकजंघा तथा सहिजनकी जड़को मुखमें रखने या चबानेसे दाँतोंमें सगे हुए कीड़ोंका निश्चित ही विनाश होता है। (अध्याय १८५)



## प्रमेह, मूत्रनिरोध, शर्करा, गण्डमाला, भगंदर तथा अर्श आदि रोगोंका निदान

श्रीहरिने कहा—हे शिव! मधुके साथ गुड़चीका रस पीनेसे प्रमेह रोग विनष्ट हो जाता है। गोहास्त्रिका (जलपिप्पली)-की जड़को तिल, दही तथा घीके साथ पान करनेसे यह वस्तिभागमें अवरण्ड मूत्रको बाहर करता है। काले नमकके साथ इस जड़का पान करनेसे हिचकी रोग भी दूर हो जाता है। गोरक्ष अर्थात् गोरखमुण्डी तथा कर्कटी (ककड़ी)-की जड़को शीतल जलके साथ पीसकर तीन दिन पीनेसे ही शर्करा नामक रोग नष्ट हो जाता है। प्रीष्मकालमें मालतीकी जड़को भलीभाँति पीसकर शर्करा और बकरीके दूधमें पीनेसे मूत्रनिरोध, शर्करा-विकार और पाण्डु रोग विनष्ट हो जाता है।

ब्रह्मपट्टी अर्थात् ब्राह्मीकी जड़को चावलके पानीमें घिसकर तैयार किया गया लेप असाध्य गण्डमाला तथा गलगण्डक रोगको दूर करता है। हे रुद्र! करवीर (कनेर)-की जड़का लेप तथा सुपायीका लेप भी पुरुषत्वसे सम्बन्धित विकारको नष्ट करता है। अब मैं अन्य औषधिक योगोंको कहता हूँ।

दन्तीमूल, हल्दी और चित्रकके लेपसे भगंदर रोग

विनष्ट होता है। हे उमापते! हे वृषभध्वज! स्नुही (धूहड़-सेहूँड़)-के दूधसे अनेक बार भाषित हल्दीकी चटीका लेप अर्श रोगको दूर करता है। पोषाफल और सेंधा नमकको पीसकर बनाया गया लेप अर्श रोगको नष्ट करनेका श्रेष्ठतम योग है। हे शिव! पलाश और क्षारसे बने क्वाथके द्वारा सोषित घृतपाकमें तिगुना मिला हुआ त्रिकटु (काली मिर्च, सोंठ और पिप्पली)-का चूर्ण अर्श रोगको विनष्ट करता है। बेलके फलको भूनकर खानेसे खूनी अर्श विनष्ट होता है। मक्खनके साथ काला तिल खानेसे भी खूनी अर्श रोग नष्ट होता है।

हे वृषभध्वज! प्रातःकाल यवक्षार-मिश्रित सोंठके चूर्णको समान मात्रामें गुड़ मिलाकर खानेसे वह जठराग्निकी वृद्धि करता है। सोंठके चूर्णको काढ़ा बनाकर पान करनेसे भी जठराग्निकी वृद्धि होती है। हे रुद्र! हरीतकी, सेंधा नमक, पिप्पली—इन औषधियोंके चूर्णको गरम जलके साथ मिलाकर पान करनेसे भूख बढ़ती है तथा दूकरकन्दका रस घृतके साथ पान करनेसे अति शुष्क बढ़ती है। (अध्याय १८६)





## आयुर्वृद्धिकरी औषधिके सेवनकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे शिव! हे वृषभध्वज! हे रुद्र! यदि मनुष्य हस्तिकर्ण पलाशके पत्तोंका चूर्ण करके सौ पलकी मात्रामें इस चूर्णको दूधके साथ मिलाकर लगातार सात दिनोंतक प्रयोग करे तो वह वेदविद्याविशारद, सिंहके समान पराक्रमी, पद्मरागके समान कान्तियुक्त तथा सौ वर्षकी आयुमें भी सोलह वर्षका नवयुवक बन सकता है, किंतु सतत दुग्धपान करना अत्यावश्यक है।

हे शिव! मधु और घृतसे युक्त दूधका सेवन आयुवर्धक होता है। उक्त हस्तिकर्ण पलाशके चूर्णको मधुके साथ लेनेसे प्राणी दस हजार वर्षकी आयु प्राप्त कर सकता है। यह योग मनुष्यको वेदवेदाङ्गका ज्ञाता और प्रमदा-जनोंका प्रिय बनानेमें समर्थ है। इस चूर्णका सेवन दहोंके साथ करनेसे शरीर वज्रके समान शक्तिसम्पन्न हो जाता है। केशरसे युक्त इस चूर्णका प्रयोग करनेसे मनुष्य हजार वर्षकी आयु प्राप्त करता है। यदि मनुष्य इस चूर्णको कांजीके साथ मिलाकर खाता है तो केशोंकी सफेदी और त्वचाकी छुरियोंसे रहित होकर सौ वर्षतक वृद्धावस्थासे रहित दिव्य शरीर प्राप्त करता है।

हे वृषभध्वज! त्रिफला चूर्णके साथ मधुका सेवन नेत्रज्योतिको बढ़ाता है। घीके साथ इस चूर्णको खानेसे अंध व्यक्ति भी देख सकता है। भैंसके दूधमें मिलाकर तैयार किया गया इस चूर्णका लेप प्राणीके श्वेत मालोंको

काला बना देता है। खल्वाटके बाल भी इस लेपके प्रयोगसे निकल आते हैं। इस चूर्णको तेलमें मिलाकर शरीरमें लगानेसे बाल पकनेका प्रभाव तथा त्वचाकी छुरियोंका प्रकोप समाप्त हो जाता है।

इस चूर्णका मात्र उबटन लगानेसे सभी रोग दूर हो जाते हैं। बकरीके दूधमें मिलाकर इस चूर्णका अञ्जन एक मास-पर्यन्त नेत्रोंमें लगानेसे निर्बल दृष्टि सबल हो जाती है।

श्रावणमासमें छिलकेसे रहित पलाशके बीजोंको लेकर उनका चूर्ण मक्खनके साथ आधे कार्षकी मात्रामें खाना चाहिये। भगवान् हरिको नित्य प्रणाम करके इस चूर्णका सेवन करना चाहिये। हे हर! इसके सेवनके पश्चात् जल पीते हुए पुराने साठी चावलका भात पच्य है। इस योगका फलन करनेवाला व्यक्ति वृद्धावस्थासे रहित होकर एक हजार वर्षतक जीवित रह सकता है।

पुष्यनक्षत्रमें भृंगराजकी जड़को लाकर उसका चूर्ण बनाना चाहिये। यदि प्राणी कांजीके साथ उस चूर्णका सेवन करे तो मात्र एक मासमें वह क्लीपलित रोगसे रहित हो जाता है। इसका बराबर प्रयोग करनेसे मनुष्य पौष सौ वर्षतक जीवित रह सकता है और वह हाथीके समान शक्तिसम्पन्न हो जाता है। हे रुद्र! पुष्यनक्षत्रमें ही इस औषधिकी प्रयोग करनेपर प्राणी क्षुतिधर अर्थात् घेद-वेदाङ्गका ज्ञाता बन जाता है। (अध्याय १८७)

## व्रण आदि रोगोंकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! प्रहारसे हुआ घाव और मवादयुक्त फोड़ा घीके प्रयोगसे ठीक हो जाता है। दोनों हाथोंसे अपामार्गकी जड़ मलकर उसके रससे चोटके घावको भरनेपर रक्तस्राव रुक जाता है। हे शंकर! लाङ्गलिका मूल तथा इक्षुदर्भ नामक औषधिकी पीसकर उसके लेपसे शल्य-काँटयुक्त व्रणका मुख संलिप्त करनेपर काँटा निकल जाता है तथा बहुत दिनोंका गड़ा हुआ भी काँटा घावसे बाहर हो जाता है।

नाड़ीके घावमें बालमूल (मोथा)-की जड़को अथवा मेघभृङ्गी (मेढासिंगी)-की जड़ जलमें घिसकर उसका लेप लगानेसे पुराना घाव भी सूख जाता है। भैंसके दहोंमें कोदोका भात मिलाकर खानेसे और होंगकी जड़का चूर्ण

घावमें भरनेसे भी नाड़ीका व्रण सूख जाता है।

ब्राह्मीके फलको जलके साथ पीसकर और रगड़कर लेप करनेसे रक्तदोष शान्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं।

हे शंकर! सहिजनका बीज, अलसी और सफेद सरसोंको अम्लरहित मट्टेमें पीसकर उसका लेप ग्रन्थिक रोगपर लगानेसे वह रोग निश्चित ही नष्ट हो जाता है। श्वेत अपराजितकी जड़ चावलकी धोवनमें पीसकर उसका नस्य लेनेसे भूत भाग जाते हैं।

हे शिव! काली मिर्चके साथ अगस्त्य-पुष्पके रसका नस्य शूल रोगका विनाशक है। सौंफकी केंचुल, होंग, नीमकी पत्ती, खव तथा सफेद सरसों लेकर इनका लेप करनेसे भूत-प्रेतकी आधा दूर हो जाती है। हे शिव! गोरचन, मरिच,

पिप्पली, सेंधा नमक और मधु—इन सभीका अञ्जन बनाकर ग्रह-बाधाका नाशक है। काले वस्त्रको ओढ़नेसे चौथिया आँखमें आँजनेसे प्रेतबाधा दूर हो जाती है। गुग्गुलुकी धूप ज्वर दूर हो जाता है। (अध्याय १८८)

## पटल आदि नेत्ररोग, गुल्म, दन्तकृमि, विविध ज्वर तथा विषदोष-शमनके उपाय

श्रीहरिने कहा—हे नीललोहित! श्वेत अपराजिता-पुष्पके रसको नेत्रोंमें डालनेसे पटल नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हे मुरासुरविमर्दन शिव! गोखरूकी जड़ चबाकर दौलोंमें लगे हुए कीटोंकी व्यथाको दूर किया जा सकता है।

यदि ऋतुकालमें उपवासपूर्वक स्त्री गौदुग्धके साथ मन्दारवृक्षकी जड़को पीसकर पान करती है तो उसके शरीरमें होनेवाला गुल्म और शूलविकार विनष्ट हो जाता है।

हे हर! पलाश अथवा अपामार्गकी जड़ हाथमें बाँधनेपर सभी प्रकारके ज्वरोंका विनाश होता है तथा भूल-प्रेत आदिके द्वारा उत्पन्न होनेवाला कष्ट भी नहीं होता। हे परमेश्वर! वृक्षिकमूल अर्थात् बिछिया-वृक्षकी जड़को बासी जलके साथ पीसकर प्रातःकाल सेवन करनेसे दाहज्वर दूर किया जा सकता है। इसकी जड़को तिखामें बाँधनेसे एकाहिक आदि जो ज्वर हैं, वे भी विनष्ट हो जाते हैं। उस जड़को बासी जलके साथ पीसकर पीनेसे सभी प्रकारका विषदोष विनष्ट हो जाता है।

जो मनुष्य पाट्टा (पाटा) की जड़को पीसकर गोधूतके साथ पान करता है, उसका सभी प्रकारका विषदोष दूर हो जाता है। रक्तवर्णवाले चित्रक वृक्षकी जड़की पीसकर

कानोंमें डालनेसे कामला रोग विनष्ट हो जाता है, इसमें संका नहीं है।

श्वेत कोकिलाक्ष (श्वेत तालमखाना) की जड़को पीसकर बकरीके दूधमें तीन सप्ताहतक पान करनेसे क्षय रोग विनष्ट हो जाता है। पारियल-वृक्षके पुष्पको बकरीके दूधमें मिलाकर पान करनेसे तीनों प्रकारका रक्तवात-विकार नष्ट हो जाता है।

सुदर्शन-वृक्षकी जड़को मालाके मध्य पिरोकर कण्ठमें धारण करनेसे त्राहिक (तिजरीया) आदि ज्वर तथा ग्रह एवं भूतादिक व्याधियाँ विनष्ट हो जाती हैं।

हे रुद्र! श्वेत गुग्गा-वृक्षके पुष्प तथा मूलको लेकर अपने मुखमें रखनेसे नाना प्रकारके विषोंका विनाश हो जाता है। इस औषधिकी जड़को हाथ और कण्ठमें धारण करनेपर ग्रहादिक दोष दूर होता है। हे नीललोहित! कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें स्नानी गयी इस औषधिकी जड़को कटिप्रदेशमें बाँधकर सिंह आदि हिंसक पशुओंके भयको दूर किया जा सकता है।

हे ईश! विष्णुव्रजन्ता (अपराजिता) की जड़की रेशमी सूतमें बाँधकर कानमें धारण करनेसे मगरमच्छादिक जन्तुओंका भय नहीं रहता। (अध्याय १८९)

## गण्डमाला, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, दद्रु, सिध्य, पीनस तथा छर्दि आदि विविध रोगोंका उपचार और सुगन्धित द्रव्योंके निर्माणकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे ईश्वर! गोमूत्रके साथ अपराजिताकी जड़ पीनेसे गण्डमाला रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। इन्द्रवारुणीकी भी जड़ पीनेसे इस रोगका विनाश होता है। जिह्मणी (मंजीठ), एण्ड तथा सूक्तसिम्बी (केवौच) को मिलाकर शीतल जलयुक्त लेप लगानेसे भुजाओंमें होनेवाली व्यथा और गर्दनकी व्यथा दूर हो जाती है।

पैसका मक्खन, अश्वगन्धा, पिप्पली, वचा (वच) और दोनों प्रकारका कूट एकमें मिलाकर बनाया गया लेप लिङ्गश्लेथ तथा स्तनगत दुःखोंका विनाशक है।

कूट और नागबलाके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर सिद्ध

किया गया लेप सुवर्तियोंके बधःस्थलको सुडील, ओजगुणसे सम्पन्न तथा सुन्दर बनाता है।

इन्द्रवारुणीकी जड़ उखाड़कर रोगीका नाम लेकर दूरसे ही उसके प्रति फेंक दिया जाय तो रोगीका प्लीहा रोग दूर हो जाता है।

चावलके धोवनमें श्वेत पुनर्नवाकी जड़ पीसकर पीनेसे निक्षिप्त हो विद्रधि रोग नष्ट हो जाता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। केलेका पत्ता और यवक्षार जलमें सिद्ध करके तैयार किया गया पेय पीनेसे उदरजन्तु समस्त विकार दूर हो जाते हैं। केलेकी जड़ गुड़ और घीमें

मिलाकर, अग्निपर पकाकर खाया जाय तो वह उदरजनित कृमियोंको विनष्ट कर देता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल औषले और नीमकी पतियोंका चूर्ण भक्षण करनेसे कुछ रोग दूर हो जाता है। हरीतकी, विडंग, हल्दी, श्वेत सरसों, सोमलताकी जड़, कंजेकी जड़ और सेंधा नमकको गोमूत्रमें पीसकर एक सिद्ध-योग बनाना चाहिये। ये सभी औषधियाँ कुछ रोगको दूर करनेवाली हैं।

एक भाग त्रिफला, दो भाग हरीतकी और सोमलताके बीजोंको खाना चाहिये। इस पथ्यसे दहू रोग नष्ट हो जाता है। गोमूत्र और नमकसे युक्त खट्टे मट्टेका क्वाथ बनाकर उसको काँसेके पात्रमें घिसकर लेप करनेसे कुछ और दहू दोनोंका विनाश होता है। हल्दी, हरिताल, दुर्वा, गोमूत्र तथा सेंधा नमक मिलाकर तैयार किया गया लेप दहू, पामा और गर नामक रोगको दूर करता है।

हे रुद्र! सोमलताके बीजोंका चूर्ण और मक्खनका मधुके साथ सेवन करना चाहिये। ये औषधियाँ श्वेत कुछ रोगका विनाश करनेवाली हैं। इनके प्रयोगमें मट्टेके साथ चावल आदिका भोजन पथ्य है। हे हर! श्वेत अपाजितकी जड़को उसीके रसके साथ पीसकर किया गया उसका लेप एक मासमें श्वेत कुछको विनष्ट कर देता है।

हे वृषभध्वज! पामा और दुर्वाका नामक कुछका विनाश काली मिर्च और सिन्दूरसे युक्त पीसके मक्खनका लेप लगानेसे होता है।

हे ईश्वर! श्वेत गम्भारी (शतावरी)—की जड़का गोदुग्धके साथ पाक सिद्ध करके उसको खाना चाहिये। यह पाक शुक्लपित्त रोगका विनाशक है। हे रुद्र! मूलीके बीजोंको अपामार्गकी जड़के रसमें मिलाकर लगाये गये लेपसे सिध्य रोग विनष्ट होता है। केलेका क्षार और हल्दीका लेप भी सिध्य रोगका विनाशक है। हे महर्देव! केला और अपामार्गका क्षार एरण्ड तेलमें मिलाकर उस लेपका अभ्यङ्ग (मासिरा) करनेसे तत्काल सिध्य रोग नष्ट हो जाता है।

हे वृषभध्वज! गोमूत्रसे युक्त कृष्णाण्ड (कुम्हड़ा)—के नालका क्षार और जलमें पीसी गयी हल्दीको पीसके

गोबरमें मिलाकर मन्द-मन्द औषपर सिद्ध करना चाहिये, उसका उबटन लगानेसे शरीरका सौन्दर्य बढ़ जाता है। तिल, सरसों, दासहल्दी, हल्दी और कूट नामक जो औषधियाँ हैं, उनका उबटन बनाकर जो पुरुष अपने शरीरमें लगाता है, वह दुर्गन्धसे रहित होकर सुगन्धित हो उठता है। दुर्वा, काकजंघा, अर्जुनके पुष्प, जामुनकी पतियाँ तथा लोध्र-पुष्प—इन सभीको एकमें मिलाकर पीस लेना चाहिये। इसका प्रतिदिन प्रयोग करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है और वह मनोहर हो जाता है। लोध्र-पुष्प तथा जलमें पीसकर तैयार किया गया धतूरेके चूर्णके लेपका उबटन लगानेसे मनुष्यके शरीरमें स्थित ग्रीष्मवाधा दूर हो जाती है। प्रातःकाल गरम दूधकी भाँपसे शरीर-सैक करनेपर घर्मदोष (स्वेदाधिक्य) नष्ट हो जाता है। काकजंघाका उबटन शरीरके लिये सुन्दर अनुलेपन द्रव्य है।

मुलेटी, शर्करा, अड़सका रस और मधुका सेवन करनेसे रक्त-पित्त, कृमिल और पाण्डु रोगका विनाश होता है। अड़सका रस और मधु पीनेसे रक्त-पित्त-विषार दूर हो जाता है।

प्रातःकाल मात्र जल पीकर भयंकर पीनस रोगको दूर करना चाहिये। हे महेश्वर! बहेड़ा, पिप्पली और सेंधा नमकका चूर्ण, काँजीके साथ पान करनेसे मनुष्यका स्वरभेद दूर हो जाता है। इस दोषके होनेपर मैनासिल, बलामूल, बेरकी पत्ती, गुग्गुल तथा अक्विलेका चूर्ण गोदुग्धमें मिलाकर पान करना चाहिये।

हे परमेश्वर! चमेलीकी पत्ती, बेरकी पत्ती और मैनासिल—इनकी बत्ती बनाकर उसे बेरकी अग्निमें सेंककर भूषपान करनेसे कास रोग दूर हो जाता है। त्रिफला और पिप्पलीका चूर्ण मधुके साथ खाना चाहिये। भोजन करनेके पूर्व मधुके साथ प्रयुक्त यह औषधिक योग प्यास और स्वरके दोषको शान्त करता है। बिल्वकी जड़ तथा गुडूचीका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे तीनों प्रकारके छर्दि रोग विनष्ट हो जाते हैं। चावलके भोजनमें दुर्वारसको मिलाकर पीनेसे भी छर्दि रोग दूर हो जाता है। (अध्याय १९०)

## सर्प, बिच्छू तथा अन्य विषैले जीव-जन्तुओंके विषकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे वृषध्वज! पुष्यनक्षत्रमें पुनर्वसुकी श्वेत जड़ लाकर जलके साथ पीनेसे पीनेवालेके आस-पास और घरोंमें सर्प नहीं आ सकते। जो मनुष्य भालूके दौतमें

तार्क्ष्य (गरुड)—की मूर्ति बनाकर धारण करता है, वह सर्वोके लिये जीवनपर्यन्त अदृश्य हो जाता है। हे रुद्र! जो मनुष्य पुष्यनक्षत्रमें सेमरकी जड़को जलमें पीसकर पी

लेता है, उसके ऊपर किया गया विषैले सर्पोंके दाँतोंका प्रहार व्यर्थ हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। पुष्पनक्षत्रमें लाजवन्तीकी जड़ हाथमें बाँधनेसे अथवा उसके लेपको लगाकर भी सर्पोंको पकड़ा जा सकता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। पुष्पनक्षत्रमें लायी गयी सफेद मन्दारकी जड़को शीतल जलमें पीसकर पान करनेसे सर्पदंश तथा करवीर आदिका विष नष्ट हो जाता है। कांजीके साथ महाकालकी जड़ पीसकर उसका लेप दंश-भागपर लगानेसे बौद्ध (गोनस) तथा ब्रुह्म (पनिहा) सर्पोंका विष दूर होता है।

चौलाईके मूलको चावलके धोवनमें पीसकर पीके साथ पान करनेपर सभी प्रकारके विष नष्ट हो जाते हैं। नीली तथा लाजवन्तीकी जड़ पृथक्-पृथक् अथवा संयुक्त-रूपसे चावलके धोवनमें पीसकर पान करनेपर सभी प्रकारके सर्पोंके दंशका विष नष्ट हो जाता है। गुड़, शर्करा तथा दुग्धमिश्रित कृष्माण्डके रसका पान सर्पदंशके विषको दूर कर देता है। कोदोकी जड़ पीसकर पान करनेसे विषकी मूर्च्छा दूर हो जाती है। मुलेठीके चूर्णसे युक्त शर्करा और दूध तीन राततक पीकर चूड़ेके विषको दूर किया जा सकता है। तीन घुल्लू शीतल जल पीनेसे ताम्बूल खानेके कारण जलनयुक्त मुँहसे बहनेवाली लार बंद हो जाती है। शर्करासे युक्त घृतका पान करनेसे मद्यका मद्य नहीं होता।

हे महेश्वर! कुष्मा (काली तुलसी) और अंकोलकी जड़के क्याधको तीन राततक पीनेसे सामान्य अथवा कृत्रिम विषका प्रभाव नष्ट हो जाता है। सेंधा नमकके साथ गरम गोघृतका पान बिच्छूके डंक मारनेसे शरीरमें उत्पन्न विषकी

वेदनाको दूर करता है। हे शिव! कुसुम्भ (कुसुम), कुंकुम, हरिताल, मैनासिल, कंज और मन्दार-वृक्षकी जड़ पीसकर पान करनेसे मनुष्योंमें चढ़ा हुआ सर्प या बिच्छूका विष नष्ट हो जाता है। हे हर! दीपकका तेल लगानेसे सामान्य ततैया आदि कीटोंका विष दूर हो जाता है। इससे कनखजूरेका भी विष नष्ट हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। बिच्छूके डंक लगे हुए स्थानपर सोंठ तथा तगरका लेप लगानेसे विष नष्ट हो जाता है। इसी लेपसे मधुमक्खीके डंकका भी विष दूर किया जा सकता है तथा सोया, सेंधा नमक और घृतका मिश्रित लेप लगानेसे भी वह विष दूर हो जाता है। हे महादेव! शिरीषके बीजोंको गरम दूधमें घिसकर उसका लेप लगानेसे कुत्तेका विष नष्ट हो जाता है। प्रज्वलित अग्नि और उत्पन्न जलसे सेंकनेपर मोदकका विष दूर हो जाता है। हे चन्द्रचूड! धतूरेके रससे मिश्रित दूध, घी और गुड़का पान कुत्तेके विषको नष्ट कर देता है।

बरगद, नीम और शमी वृक्षकी छालके क्याधसे सेंक करनेपर मुख और दाँतकी विष-वेदना नष्ट हो जाती है। देवदारु और गैरिकके चूर्णका लेप करनेसे भी इस विषको शान्त किया जा सकता है। हे हर! नागेश्वर, दारुहल्दी, हल्ली तथा मजीठके मिश्रित लेपसे लूता (मकड़ी)-के काटनेका विष दूर होता है। कंजके बीज, वरुण-वृक्षके पत्ते, तिल और सरसोंका पिसा हुआ लेप भी विषको दूर कर देता है, इसमें संदेह नहीं है।

हे हर! नमक और घृतसे युक्त घृतकुमारीके पत्तेका लेप करनेसे थोड़ेके शरीरकी खुजली दस दिनमें दूर हो जाती है। (अध्याय २९९)

## विविध स्नेह-पाकोंद्वारा रोगोंका उपचार, स्मरण तथा मेधाशक्तिवर्धक ब्राह्मी-

### घृतादिके निर्माणकी विधि

श्रीहरिने कहा—[हे हर!] चित्रक आठ भाग, शूरण (सूरन) सोलह भाग, सोंठ चार भाग, काली मिर्च दो भाग, पिप्पलीमूल तीन भाग, सिङ्ग चार भाग, मुशली आठ भाग, और त्रिफला चार भाग लेकर इनके दुगुने गुड़के साथ मोदक बनाना चाहिये। इसके सेवनसे अजीर्ण, पाण्डु, कामला, अतिसार, मन्दाग्नि और प्लोहा नामक रोगोंको दूर किया जा सकता है।

बिल्व (बेल), अग्रिमन्थ (गनिहारी), श्योनाक (सोना पाड़ा), पाटला (पावर), पारिभद्रक (नीम),

प्रसारिणी (गन्धप्रसारिणी), अश्वगन्धा, बृहती, कण्टकारी, बला, अतिबला, रास्ना (सर्पसुगन्धा), शर्दूषा (गोखरू), पुनर्नवा, एरण्ड, शारिका (अनन्तमूल), पर्णी (शालपर्णी), गुड़घी, कपिकच्युका (केवैच) नामक इन औषधियोंको दस-दस पलकी मात्रामें एकत्र करके शुद्ध जलमें पकाना चाहिये। जब उस जलका चौथाई भाग शेष रह जाय तो उससे तेलको सिद्ध करे। यदि बकरीका दूध अथवा गौका दूध हो तो उसको उस तैलपाकमें चौगुना मिलाकर तैलकी मात्राके समान सत्तावरी और सेंधा नमक भी मिलाये। इस



प्रकार तैलपाकको सिद्ध करनेके पश्चात् उस तेलमें शतपुष्पा (सोया), देवदारु, बला, पर्णी, वचा (वच), अगुरु, कुष्ठ (कूट), जटामांसी, सेंधा नमक और पुनर्नवा एक-एक पल पीसकर मिलाना चाहिये। इस तेलका प्रयोग पीने, नस्य लेने तथा शरीरमें मर्दनके काममें करना चाहिये। इसके प्रयोगसे हृदयगत शूल, पार्श्वशूल, गण्डमांसा, अपस्मार और वातरक्त नामक रोग दूर हो जाते हैं तथा शरीर शोभा-सम्पन्न हो जाता है। हे हर! इस तेलके प्रयोगसे खजरी भी गर्भ-धारण कर सकती है, स्त्रीके विषयमें तो कहना ही क्या? थोड़ा, हाथी और मनुष्योंमें वात-दोष होनेपर इस तेलका प्रयोग करना चाहिये। इतना ही नहीं सभी वात-विकारसे ग्रस्त प्राणिपौकित्तिये इसका प्रयोग लाभप्रद है।

हिंगु (हींग), तुम्बुरु (धनिया) और शुण्ठी (सोंठ)-के द्वारा सरसोंका तेल सिद्ध करना चाहिये। इस तेलको कानमें डालनेसे कर्णशूल शान्त हो जाता है। सूखी मूली तथा सोंठका क्षार, हींग और हल्दीका चूर्ण समभागमें लेकर उसके बीगुने मट्टेके साथ पूर्ववर्णित सरसोंके तेलमें पकाना चाहिये। इस तेलको कानोंमें डालनेसे उनके अंदर उत्पन्न बहरापन, शूल, मखादका शय और कुमिदोष विनष्ट हो जाता है।

सूखी मूली और सोंठका क्षार तथा हींग, हल्दी, सोया, वच, कूट, दारुहल्दी, सहिजन, रसाञ्जन, काला नमक, यवक्षार, समुद्रफेन, सेंधा नमक, ग्रन्थिक, विडंग, नागरमोष, मधु, चार गुना शक्तिभस्म, बिजौरा नीबूका रस और केलेका रस लेकर इन्हींसे सरसोंका तेल सिद्ध करना चाहिये। यह सिद्ध तेल कर्णशूल दूर करनेका अत्युत्तम उपाय है। हे हर! कानमें इसको डालनेसे बहरापन, कर्णनाद, पीबस्ताव तथा कुमिदोष सद्यः विनष्ट हो जाता है। इसका नाम क्षारतैल है। इस तेलसे मुख तथा दाँतोंको गंदगी भी दूर हो जाती है।

चन्दन, कुंकुम, जटामांसी, कर्पूर, चमेलीकी पत्ती, चमेलीका फूल, कंकोल, सुपारी, लींग, अगुरु, कस्तूरी, कुष्ठ, तगर, गोरोचन, प्रियंगु, बला, मेंहदी, सरल, सप्तापत्नी, लाक्षा, आवला और रक्त कमल—इन औषधियोंको एकत्रकर इनसे तेल सिद्ध करना चाहिये। यह पत्तीनेके कारण शरीरमें उत्पन्न होनेवाले मल, दुर्गन्ध तथा खुजली और कुष्ठको दूर करनेवाला श्रेष्ठतम औषध है। हे रुद्र! इस तेलका प्रयोग करनेसे पुरुष अधिक पुरुषत्व-सम्पन्न हो

जाता है और बंध्या स्त्री भी पुत्र प्राप्त कर सकती है।

यदि यवानी (अजवायन), चित्रक, धनिया, त्रिकटु, जीरा, काला नमक, विडंग, पिप्पलीमूल तथा राजिक (राई सरसों) नामक औषधियोंद्वारा आठ प्रस्थ जलसे युक्त एक प्रस्थ घृतका शोधन किया जाय तो यह सिद्ध घृत अश्व गुल्म तथा शोथ रोगोंका विनाश करता है और जठराग्निको उत्पन्न करता है।

कजरी मिर्च, निसोत, कूट, हरिताल, मैनसिल, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, रक्तचन्दन, विशाला (इन्द्रवारुणी), कनेर, मन्दारमुग्ध और गोबरका रस एकत्रकर—इन औषधियोंकी मात्रा एक-एक कर्ष अर्थात् दो-दो तोला हो, किंतु जो औषधियाँ विषैली हैं, उनकी मात्रा आधा पल अपेक्षित है—इन सभी औषधियोंके द्वारा आठ प्रस्थ गोमुखके साथ एक प्रस्थ सरसोंका तेल मिट्टीके पात्र अथवा लौहपात्रमें भरकर मन्द-मन्द आँचपर पकाये। जब यह सिद्ध हो जाय तो इस तेलके अभ्यङ्गसे पाय, विचरिचक, ददु, डिस्पोटक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं और रुग्ण स्थाविर गृध्र एवं कोमल त्वचा आ जाती है। अत्यधिक मात्रामें पहलेसे फैले हुए पुराने श्वेत कुष्ठको भी इस तेलके प्रयोगसे नष्ट किया जा सकता है।

हे शिव! परवलकी पत्ती, कटुकी, मंजीठ, अनन्तमूल, हल्दी, चमेलीकी पत्ती, शमीकी पत्ती, नीमकी पत्ती और मुलेटीके क्वाथसे सिद्ध घृतका लेप करनेसे घ्न पौद्गारहित हो जाता है और उसका बहना भी बंद हो जाता है।

शंखपुष्पी, वचा, सोमलता, ब्राह्मी, काला नमक, हरिताली, गुडूची, जंगली अड़ुसा और बकुची नामक औषधियोंको समानरूपसे एक-एक अश्व (पल)-की मात्रामें एकत्र करके उनसे एक प्रस्थ घृतको यथाविधि सिद्ध करना चाहिये, साथ ही कण्टकारीका रस एक प्रस्थ तथा गोदुग्ध भी एक प्रस्थ मिलाना चाहिये। इस घृतपाकका नाम ब्राह्मघृत है। यह स्मृति और मेधाशक्तिको बढ़ानेवाला है।

अग्निमन्थ (गनियारी), वचा, वासा (अड़ुसा), पिप्पली, मधु तथा सेंधा नमक सात रात सेवन करनेसे मनुष्य किञ्चरके समान मधुर गीत गानेवाला हो जाता है।

समान भागमें गृहीत अपामार्ग, गुडूची, वचा, कूट, शतावरी, शंखपुष्पी, हरिताली और विडंगके चूर्णको समान भाग घृतके साथ सेवन करनेसे मात्र तीन दिनमें यह मनुष्यको एक सौ आठ ग्रन्थोंको कण्टस्थ करनेकी क्षमतावाला बना देता है। जल, दूध या घृतके साथ एक

मासपर्यन्त सेवन की गयी वचा तो मनुष्यको श्रुतिधारक विद्वान् बना देती है। चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके अवसरपर दूधके साथ एक पल सेवन की गयी वचा मनुष्यको उसी समय श्रेष्ठतम प्रज्ञावान् बना देती है।

चिरायता, नीमकी पत्ती, त्रिफला, पित्तपापड़ा, परवल, मोथा और अड़सासे बने हुए क्वाथका पान विस्मोटक ग्रन्थों और रक्तस्तावको विनष्ट कर सकता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

केतकीका फल, शंखभस्म, सेंधा नमक, त्रिकटु (काली मिर्च, सोंठ तथा पिप्पली), वचा, समुद्रफेन, रसाञ्जन, मधु, विडंग और मैनसिल नामक औषधियोंको एकमें मिलाकर बनायी गयी बत्तीका नेत्रोंमें प्रयोग करनेसे काच, तिमिर तथा पटलदोष नष्ट हो जाते हैं।

दो प्रस्थ अर्थात् आठ सेर उड़द लेकर उससे एक द्रोण अर्थात् सोलह सेर जलमें क्वाथ बनाना चाहिये, चौथाई भाग शेष रहनेपर उस क्वाथके द्वारा एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर तेलका पाक करे। तदनन्तर उसमें एक आठक अर्थात् आठ सेर कांजी मिलाकर पिसे हुए पुनर्नका,

गोखरू, सेंधा नमक, त्रिकटु, वचा, काला नमक, देवदारु, मंजोठ और कण्टकारी औषधियोंका चूर्ण मिश्रित करना चाहिये। हे महेश्वर! इस औषधका नस्य लेनेसे और पान करनेसे भयंकर कर्णशूल नष्ट हो जाता है। इसके अभ्यङ्गसे अर्थात् मालिश करनेसे कानोंका बहरापन एवं अन्य सभी प्रकारके शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं।

दो पल सेंधा नमक, पाँच पल सोंठ और चित्रक, पाँच प्रस्थ कांजी तथा एक प्रस्थ तेलको एकमें पकाना चाहिये। जब यह पाक सिद्ध हो जाय तो इसके नस्य, पान एवं अभ्यङ्गसे असूअर (प्रदर), स्वरभंग, प्लीहा और सभी प्रकारके वात रोग विनष्ट हो जाते हैं।

गूलर, बरगद, पाकड़, दोनों प्रकारके जामुन, दोनों प्रकारके अर्जुन, पिप्पली, कदम्ब, पलाश, लोध, तिन्दुक, महुआ, आम, राल, बेर, कमल, नागकेशर, शिरीष और बीजङ्गुतक—इनको एकमें मिलाकर क्वाथ बनाना चाहिये। तदनन्तर उस क्वाथसे तैलपाक सिद्ध करे। इस सिद्ध तेलका लेप करनेसे अत्यन्त पुराने घ्रण नष्ट हो जाते हैं।

(अध्याय १९२)

## बुद्धि-शुद्धकर ओषधि, विविध अभ्यङ्गों एवं उपयोगी चूर्णोंके निर्माणकी विधि, विरेचक द्रव्य तथा औषध-सेवनमें भगवान् विष्णुके स्मरणकी महिमा

श्रीहरिने कहा—(हे हर!) प्याज, जौर, कूट, अश्वत्थ, अजवायन, वचा, त्रिकटु और सेंधा नमकसे निर्मित श्रेष्ठ चूर्णको ब्राह्मीरससे भावित करके घृत तथा मधुके साथ मात्र एक सप्ताह प्रयुक्त करनेपर यह मनुष्यकी बुद्धिको अत्यन्त निर्मल बना देता है।

सरसों, वचा, हींग, करंज, देवदारु, मंजोठ, त्रिफला, सोंठ, शिरीष, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, नीम और त्रिकटुको गोमूत्रमें घिसकर नस्य, आलेपन तथा उबटनके रूपमें प्रयुक्त करना हितकारी होता है। यह अपस्मार, विषोन्माद, शोथ तथा ज्वरका विनाशक है। इसके सेवनसे भूत-प्रेतादि-जन्य तथा राजद्वारीय भय विनष्ट हो जाता है।

नीम, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, सहिजन, सरसोंका तेल, देवदारु, परवल और धनियाको मट्टेमें घिसकर उबटन बना लेना चाहिये। तदनन्तर शरीरमें तेल लगाकर इस उबटनका

प्रयोग करे तो निश्चित ही पाना, कुष्ठ, खुजली ठीक हो जाती है।

सामुद्र लवण, समुद्रफेन, पचधार राजिका (गौरसर्प), नमक, विडंग, कटुकी, लौहचूर्ण, निशोध और सूरन—इन्हें समान भागमें लेकर दही, गोमूत्र तथा दूधके साथ मन्द-मन्द औषध पका करके जलसे पान करना चाहिये। यह चूर्ण अग्नि और बलवर्धक है। पुतना अजीर्ण रोग होनेपर इस चूर्णका सेवन जटामांसी आदिसे युक्त घृतके साथ करना चाहिये। यह इस रोगकी उत्तम औषधि है। यह चूर्ण नाभिशूल, मूत्रशूल, गुल्म और प्लीहाजन्य जो भी शूल है, उन सभी शूलोंको विनष्ट करनेवाला है। यह जठराग्निको उदीप्त कर देता है। परिणाम नामक शूलमें तो यह परम हितकारी है।

हरीतकी, औषला, द्राक्षा, पिप्पली, कण्टकारी,

१-एक सेर चावलकी हौड़ियामें अच्छी तरह पकाकर टंडा करे। उसमें चार किलो पानी डालकर मोटे कपड़ेसे मुख बंदकर जमीनमें दफन करे। सात दिन बाद पानी छानकर निकाल ले, ठेकको छेक दे, उसीको 'करंजी' कहते हैं।

काकडासिंगी, पुनर्नवा और सोंठके चूर्णको खानेसे कास रोग विनष्ट हो जाता है।

समस्त भागमें हरीतकी, अँकला, द्राक्षा, फट्टा, चहेड़ा तथा शर्कराका चूर्ण खानेसे ज्वर रोग दूर हो जाता है। त्रिफला, बेर, द्राक्षा और पिप्पलीका चूर्ण विरेचक होता है। हरीतकी, गरम जल और नमकका सेवन करनेसे भी विरेचन होता है।

श्रीहरि बोलें—हे उमापते! मेरे द्वारा कही गयी ये जितनी भी ओषधियाँ हैं, वे समस्त रोगोंको वैसे ही नष्ट कर देती हैं, जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षको नष्ट कर देता है। भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए ओषधिका सेवन करनेसे रोग नष्ट हो जाता है। उनका ध्यान, पूजन और स्तवन करते हुए ओषधिसेवन करना निश्चित ही लाभदायक होता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। (अध्याय १९३)

### व्याधिहर वैष्णव कवच

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं समस्त व्याधिओंके विनाशक, कल्याणकारी उस वैष्णव कवचको बतलाऊँगा, जिसके द्वारा प्राचीन कालमें दैत्योंको विनष्ट करते हुए भगवान् शिवकी रक्षा हुई थी।

अजन्मा, नित्य, अनाम्य, ईशान, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, जनार्दन, देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुकी प्रणाम करके मैं रक्षाके निमित्त अमोघ अप्रतिम वैष्णव कवचको धारण करता हूँ। जो सभी दुःखोंका निवारण करनेवाला और सर्वस्य है, वह कवच इस प्रकार है<sup>१</sup>—

भगवान् विष्णु मेरी आगेसे रक्षा करें। कृष्ण मेरी पीछेसे रक्षा करें। हरि मेरे सिरकी रक्षा करें। जनार्दन हृदयकी रक्षा करें। मेरे मनकी रक्षा इषीकेरा और जिह्वाकी रक्षा केशव करें। वासुदेव दोनों नेत्रोंकी तथा संकर्षण (बलराम) दोनों

कानोंकी रक्षा करें। प्रद्युम्न मेरे नाककी, अनिरुद्ध शरीरके चर्मभागकी रक्षा करें। भगवान्की वनमाला मेरे कण्ठप्रदेशके नीचे अन्तःकरणतक और उनका श्रीवत्स मेरे अधोभागकी रक्षा करें। दैत्योंका निवारण करनेवाला चक्र मेरे वामपार्श्वकी रक्षा करें। समस्त असुरोंका निवारण करनेवाली गदा मेरे दक्षिण पार्श्वकी रक्षा करें। मेरे उदरभागकी रक्षा मुसल और पुष्टभागकी रक्षा लाङ्गल (हल) करें। मेरे ऊर्ध्वभागकी रक्षा शार्ङ्ग नामक धनुष तथा मेरे दोनों जंघा-प्रदेशोंकी रक्षा नन्दक नामक तलवार करें। मेरे पार्श्वभागकी रक्षा शंख और दोनों पैरोंकी रक्षा पद्म करें। गरुड सदैव मेरे सभी कार्योंके अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये रक्षा करते रहें। भगवान् वराह जलमें, भगवान् वामन विषम परिस्थितिमें, भगवान् नरसिंह वनमें और भगवान् केशव सब ओरसे मेरी

१-विष्णुर्गमयतः पातु कृष्णो रक्षतु पुञ्जतः। हरिर्मे रक्षतु हितो हृदयं च जनार्दनः॥  
मनो मम इषीकेरो जिह्वा रक्षतु केशवः॥ पातु वेत्रे वासुदेवः श्रोत्रे सङ्कर्षणो विपुः॥  
प्रद्युम्नः पातु मे घ्राणमनिरुद्धस्तु चर्मं च। वनमाला गलस्यन्ते श्रीकाकी रक्षतदधः॥  
पार्श्वं रक्षतु मे चक्रं वामं दैत्यनिवारणम्। दक्षिणं तु गदा देवी सर्वोसुरविधारिणी॥  
उदरं मुसलं पातु पुष्टं मे पातु लाङ्गलम्। ऊर्ध्वं रक्षतु मे शार्ङ्गं जङ्घं रक्षतु नन्दकः॥  
पार्श्वी रक्षतु शङ्खश्च पद्मं मे भरणस्तुभी। सर्वकार्पाशैश्चिद्रूपं पातु मम गरुडः सदा॥  
वराहो रक्षतु जले विषमेषु च वामनः। अलम्ब्य नरसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः॥  
हिरण्यगर्भो भगवान् हिरण्यं मे प्रपञ्चतु। घातव्यचार्यस्तु कपिलो धनुस्तान्यं करोतु मे॥  
श्वेतद्वीपनिवासो च श्वेतद्वीपं नमस्तवः। सर्वान् मृतपत्न्यां तवतु मधुकैरभयार्दनः॥  
सदाकर्षतु विष्णुश्च किल्बिषं मम विपद्भ्यः। ईसो मास्वस्त्यस्तु कुर्मः पातु मम सर्वतो दिशम्॥  
त्रिविक्रमस्तु मे देवः सर्वपापानि कुन्ततु। तथा नारायणो देवो बुद्धिं चालयतां मम॥  
शेषो मे निर्मलं ज्ञानं करोत्यज्ञाननाशनम्। वडवापुच्छो नक्षत्रां कल्प्यं शक्तुं मया॥  
पद्मं ददातु परमं सुखं मुनि मम व्रधुः। दातव्यैः प्रकुरुतां सपुत्रपशुबान्धवम्॥  
सर्वान् रीन् वारयतु रामः परशुश्च मम। रक्षोघ्नस्तु दानरधिः पातु निषं महाभुजः॥  
शत्रून् हलेन मे हन्याश्रयो व्यदवनन्दनः। प्रलम्बकेतिपातुरनुत्तमकैमवतनः॥

कृष्णस्य यो बालभावः स मे जानातु प्रपञ्चतु॥

रक्षा करते रहें।

हिरण्यगर्भ भगवान् मुझे हिरण्य अर्थात् स्वर्णकी रक्ति प्रदान करें। सांख्यदर्शनके आचार्य भगवान् कपिल मुनि मेरी शरीरमें स्थित सभी प्रकारके धातुओंमें समानता बनाये रखें। श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भगवान् अजन्मा विष्णु मुझको भी श्वेतद्वीपमें ले चलें। मधुकैटभका मर्दन करनेवाले विष्णु मेरी सभी शत्रुओंका विनाश करें। मेरी शरीरमें विद्यमान समस्त पापोंको खींच-खींचकर सदैव भगवान् विष्णु विनष्ट करते रहें। हंसावतार, मत्स्यावतार तथा कूर्मावतार धारण करनेवाले विष्णु सभी दिशाओंमें मेरी रक्षा करें। भगवान् त्रिविक्रमदेव मेरी समस्त पापोंको काट डालें। भगवान् नारायणदेव मेरी बुद्धिका विकास करें। शेषनारायण मेरी ज्ञानकी निर्मल बनायें तथा अज्ञानका विनाश करें। मैंने जो कुछ भी पाप किया है, उस समस्त पापको भगवान् बड़बामुख हयग्रीव विनष्ट करें।

भगवान् विष्णु मेरी दोनों पैरोंको और सिरको सुख प्रदान करें। भगवान् दत्तात्रेय मुझे पुत्र और बन्धु-बान्धव तथा पशुओंसे सम्पन्न रखें। भगवान् जामदग्न्य—परशुराम अपने परशुसे मेरी सभी शत्रुओंका विनाश करें। छहसौके निहन्ता दशरथसुत आजानुभुज भगवान् ब्रौह्म मेरी नित्य रक्षा करें। यादवनन्दन बलराम अपने हलसे मेरी शत्रुओंका विनाश करें। प्रलम्ब, कैशी, चाणूर, पूतना तथा कंसका संहार करनेवाला जो बालभाय भगवान् कृष्णका है, वही मेरी समस्त मनोरथोंको पूर्ण करे।

हे देव! मैं अन्धकारके समान तमोगुणसे सम्पन्न,

हाथमें पाश धारण करनेवाले यमराजके सदृश काले-पीले वर्णवाले भयंकर पुरुषको देख रहा हूँ, उसके भयसे मैं संश्रस्त हो गया हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष भगवान् अच्युत! मैं आपको शरणमें आया हूँ। आपके इस आश्रयसे मैं धन्य हो उठा हूँ। आपको शरण ग्रहण करनेसे अब मुझे कोई भय नहीं रह गया है, अतः मैं नित्य निर्भय हो गया हूँ।

समस्त सांसारिक उपद्रवोंको विनष्ट करनेवाले भगवान् नारायणदेवका ध्यान करके वैष्णव कवचसे आवद्ध मैं पृथ्वीतलपर विचरण करता हूँ। इसीके प्रभावसे मैं सभी प्राणियोंके लिये अजेय हो गया हूँ। इतना ही नहीं, सर्वदेवमय भी हो गया हूँ। अपरिमित तेजसे सम्पन्न देवाधिदेव भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे मेरा समस्त मनोरथ नित्य सिद्ध होता रहे।

भगवान् वामुदेवके चक्रमें जो अरे लगे हैं, वे यथाशीघ्र मेरी समस्त पापोंका विनाश करें और मेरी हिंसा करनेवाले शत्रुओंका संहार करें।

राजस एवं पिताघातोंसे तथा गहन वन, प्रान्त, विवाद, राजमार्ग, झुठक्रीड़ा, लड़ाई, झगड़ा, नदी पार करनेकी स्थिति, आपत्काल, प्राणोंका संकट-काल, अग्निभय, वीरभय, ग्रहबाधा, विद्युत्-उत्पीडन, सर्पविषका उद्देग, रोग, विघ्न, संकट आनेपर तथा भयविह्वल होनेपर इसका जप हो करना ही चाहिये, किंतु नित्य इसका जप करना विशेष लाभप्रद है। यह भगवान् विष्णुका मन्त्ररूपी कवच परम श्रेष्ठ तथा सभी पापोंका विनाशक है। (अध्याय १९४)

## सर्वकामप्रदा विद्या

श्रीहरिने कहा—हे शिव! अब मैं 'सर्वकामप्रदा विद्या' का वर्णन करता हूँ, उसे सुनें। इसकी उपासना मात्र सात रात करनेसे ही सभी कामनाएँ सफल हो जाती हैं। सर्वकामप्रदा विद्या इस प्रकार है—

हे भगवान् वामुदेव! आपको मैं ध्यान करता हूँ, आपको

नमस्कार है। हे प्रद्युम्न! हे अनिरुद्ध! हे संकर्षण! आपको नमस्कार है। हे परमानन्दस्वरूप! आप मात्र अनुभवजन्य हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप आत्माप्राप्त एवं शान्तमूर्ति हैं तथा दृष्ट-दृष्टिसे परे हैं, आपको मेरा नमस्कार है। यह समस्त चराचर जगत् आपका ही रूप है, आपको बारंबार

अन्धकारतमोघोरं पुरुषं कृष्णविह्वलम् । पश्यामी भयसंक्रमतः पाशहस्तमिवात्मकम् ॥

ततोऽहं पुण्डरीकाक्षमच्युतं करणं गतः । धनोऽहं निर्भयो नित्यं कवच मे भगवान् हरिः ॥

भगवान् नारायणं देवं सर्वोपरबलवान् । वैष्णवं कवचं बद्ध्वा विचरामि महीतले ॥

अप्रधृष्योऽस्मि भूतानां सर्वदेवमयो ह्यहम् । स्मरण्यदेवदेवस्य विष्णोर्गमिततेजसः ॥ (१९४।४—२२)

१-सर्वकामप्रदा विद्यां सप्तरात्रेण तां शृणु । नमस्तुभ्यं भगवते वामुदेवाय शीघ्रिह ॥

प्रद्युम्नायनिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च । ततो विज्ञानवाक्यं परमानन्दमूर्तये ॥



प्रणाम है। हे अनन्तमूर्ति भगवान् हृषीकेश ! आप महत्स्वरूपको नमस्कार है। प्रलयकालमें यह सारा जगत् जिस मूर्तिमें प्रविष्ट होकर स्थित रहता है और पुनः प्रलयकालके पश्चात् सृष्टिके प्रारम्भमें सबसे पहले उत्पन्न भी होता है तथा जो इस मृण्मयी पृथ्वीको धारण करता है, उस ब्रह्मदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। जिस देवको स्पर्श करने और पहचाननेमें न मन-बुद्धि समर्थ हैं, न ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राण समर्थ हैं तथा आकाशके समान जो देव समस्त

चराचर प्राणियोंके अंदर और बाहर विचरण करते हैं, ऐसे व्योमस्वरूप आप (देव)-को मैं नमस्कार करता हूँ। हे पञ्चभूतोंके स्वामी ऐश्वर्यमूर्ति महापुरुष भगवान् वासुदेव ! आपको नमस्कार है। हे परमेश्वर ! आपसे सकल सत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है तथा आपके चरणरविन्दयुगल मानो शील-समूहकणों कमलोंकी धर्माख्यविद्यारूप रेणुत्पल हैं, आपको नमस्कार है। चित्रकेतुने इस विद्याके द्वारा विद्याभरत्वको प्राप्त किया था। (अध्याय १९५)

## विष्णुधर्माख्यविद्या

श्रीहरिने कहा—हे महेश्वर ! जिस 'विष्णुधर्म' नामक विद्याका जप करके देवराज इन्द्रने समस्त शत्रुओंपर विजय प्राप्तकर इन्द्रत्व-पद प्राप्त किया था, उस विद्याको कहता हूँ।

इस विद्याके जपसे पूर्व दोनों पैर, दोनों जन्तु, दोनों जंघा-प्रदेश, उदर, हृदय, वक्षःस्थल, मुख और शिरोभागमें ॐकारादि वर्णोंसे यथाक्रम न्यास करना चाहिये। 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रद्वारा विपरीत-क्रमसे भी न्यास करे। तदनन्तर द्वादशाक्षर-मन्त्र ( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय )-के आदि वर्ण ॐकारसे करन्यास करे। अन्तिम स्वरसे अंगुष्ठ आदि अँगुलियोंकी पर्वसंधियोंमें न्यास करके हृदयमें ॐकारका न्यास करना चाहिये। सम्पूर्ण मन्त्रसे मस्तक-भागमें न्यास करे। मूर्ध्निसे प्रारम्भ करके ध्रुवोंके मध्य-भागमें ॐकार-मन्त्रसे न्यास करके शिखा तथा नेत्रादिमें 'ॐ विष्णवे नमः' इस मन्त्रसे न्यास करना चाहिये। अनन्तर अन्तरात्मामें उन परम शक्तियोंसे सम्पन्न परमात्मा ज्येष्ठारचनका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

मम रक्षां हरिः कुर्यान्मत्स्यमूर्तिर्जलेऽवतु ॥

त्रिविक्रमस्तथाकाशे स्थले रक्षतु वामनः ।

अदव्यां नरसिंहस्तु रामो रक्षतु पर्वते ॥

भूमौ रक्षतु वराहो व्योम्नि नारायणोऽवतु ।

आत्मारामाय शान्ताय निष्कण्ठैर्गृह्ये । त्वद्गुणैश्च सर्वानि तन्मात् त्वर्ध्वं नमो नमः ॥

हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तमूर्ति । यस्मिन्निदं पठेत्तत् त्रिहस्तोऽपि ज्ञापते ॥

मृण्मयी वहसि क्षीणी तस्मै ते ब्रह्मणे नमः । यसं स्मृजति न विदुः मनोबुद्धौन्द्रियासवः ।

अनाधीनस्तर्हि परसि व्योम्नुत्पन्नं नन्दमहम् ॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपते सकलसत्त्वध्विद्गीर्णिकरकमलरेणुत्पत्तिभधर्माख्यविद्या चरणरविन्दयुगल परमेश्वर नमस्ते । अथापि विद्याभरता चित्रकेतुश्च विद्याया ॥ ( १९५ । १-६ )

कर्मव्याख्य कपिलो दत्तो रोगाख्य रक्षतु ॥

हवर्षीतो देवताभ्यः कुमारो मकरध्वजात् ।

नारदोऽन्यार्चनादेवः कुर्मो वै वैश्वते सदा ॥

धन्वन्तरिस्त्रापेक्ष्याख्य नागः क्रोधवशात् किल ।

यज्ञो रोगात् समस्ताख्य व्यासोऽज्ञानाख्य रक्षतु ॥

बुद्धः पाषण्डसंघातात् कल्की रक्षतु कल्मषात् ।

पाषाण्यध्विन्दने विष्णुः प्रातर्नारायणोऽवतु ॥

मधुहा चापराह्णे च सार्य रक्षतु पाधवः ।

हृषीकेशः प्रदोषेऽव्यात् प्रत्यूषेऽव्याजनादेनः ॥

श्रीधरोऽव्यादर्धरात्रे पक्षनाभो विपरीधके ।

चक्रकीर्णोदकीवाणा धन्तु शत्रून् राक्षसान् ॥

जंघः पथं च शत्रुभ्यः शार्ङ्गं वै गरुडस्तथा ।

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्श्वविभूषणः ॥

शेषः सर्वस्वरूपश्च सदा सर्वत्र पातु माम् ।

विदिक्षु दिक्षु च सदा नरसिंहश्च रक्षतु ॥

एतद्धारयमाणश्च यं यं पश्यति चक्षुषा ।

स वशी स्याद्विपाप्मा च रोगमुक्तो दिवं व्रजेत् ॥

( १९६ । ६-१६ )

भगवान् हरि मेरी रक्षा करें। मत्स्यमूर्ति भगवान् जलमें

मेरी रक्षा करें। भगवान् त्रिविक्रम आकाशमें और

भगवान् वामन स्थलमें मेरी रक्षा करें। वन-प्रान्तमें भगवान्

नरसिंह, पर्वतभागमें जानदग्न्य—परशुराम मेरी रक्षा करें। भूमिपर भगवान् वराह, व्योममें भगवान् नारयण मेरी रक्षा करें। कमोंके बन्धनसे भगवान् कपिल तथा रोगोंके प्रकोपसे भगवान् दत्तात्रेय मेरी रक्षा करें। भगवान् हयग्रीव देवताओंसे, कुमार कामदेवसे मेरी रक्षा करें। भगवान् तारद अन्य देवोंकी उपासनासे और भगवान् कूर्मदेव वैश्रतमें सदैव मेरी रक्षा करें। भगवान् धन्वन्तरि अपध्य-सेवनसे, भगवान् शेषनाग क्रोधसे, भगवान् यज्ञदेव समस्त रोग-समुदायसे और भगवान् व्यास अज्ञानसे मेरी रक्षा करें। भगवान् बुद्ध पाण्ड्य-समूहसे एवं भगवान् कलिकदेव पापसे मेरी रक्षा करें। भगवान् विष्णु मध्याह्नकालमें मेरी रक्षा करें। भगवान् नारयण प्रातःकालमें मेरी रक्षा करें। भगवान् मधुसूदन अपराह्नकाल और भगवान् माधव सार्यकालमें मेरी रक्षा करें। भगवान् हृषीकेश प्रदोषकालमें तथा भगवान् जनार्दन प्रातृष्कालमें

मेरी रक्षा करें। भगवान् श्रीधर अर्धरात्रि तथा भगवान् पद्मनाभ निशोधकालमें मेरी रक्षा करें। हे भगवन्! आपका सुदर्शन, कौमोदकी गदा और बाण मेरे शत्रुओं तथा राक्षसादिका संहार करे। आपका शंख, पद्म, शार्ङ्ग धनु तथा बाहन गरुड भी शत्रुओंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् वासुदेवके सैनिकट स्थित अलंकारस्वरूप सभी पार्षद मेरे बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी रक्षा करें। सर्पका रूप धारण करनेवाले भगवान् शेषनारायण सदैव सर्वत्र मेरी रक्षा करें। भगवान् नरसिंह सदैव सभी दिशाओं और विदिशाओंमें मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार जो व्यक्ति इस विष्णुधर्माख्यविद्याको धारण करता है, वह अपने नेत्रोंसे जिस-जिसको देखता है वह उसीके वशमें हो जाता है और सभी पापोंसे मुक्त तथा रोगरहित होकर वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १९६)

## विषहरी गारुडी विद्या तथा भगवान् गरुडके विराट् स्वरूपका वर्णन

धन्वन्तरिने कहा—अब मैं गरुडके द्वारा कही गयी गारुडी विद्याका वर्णन करता हूँ। इस विद्याको सुमित्रने कश्यपमुनिसे कहा था। यह विद्या सभी प्रकारके विषोंका अपहारक है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पौंच तत्त्व हैं। इन पौंचों तत्त्वोंके पृथक्-पृथक् मण्डल होते हैं तथा उन-उन मण्डलोंके अधिष्ठाता ये पृथ्वी आदि देवता ही माने गये हैं। अन्य देवता भी इन मण्डलोंमें स्थित रहते हैं। इनके पृथक्-पृथक् मन्त्र भी हैं। इन मण्डलाधिपति देवताओंके मन्त्रोंका यथाविधि न्यासपूर्वक जप करनेसे अभीष्ट-सिद्धि होती है और विष-बाधा दूर हो जाती है।

साधकको चाहिये कि वह पृथक्-पृथक् पौंचों मण्डलोंके स्वरूप तथा उनके अधिष्ठातृ देवोंका ध्यान करे। मण्डलोंका स्वरूप इस प्रकार है—पृथ्वीमण्डल चौकोर, फैला हुआ, चारों ओर मुखवाला तथा पीले वर्णका कहा गया है तथा यह मण्डल इन्द्रदेवतापरक है। वरुणमण्डल (जलमण्डल) पदाकार तथा अर्धचन्द्रयुक्त है। इन्द्रनीलमणिके समान

कान्तिवाले, सौम्यस्वरूप, स्वस्तिकसे युक्त, त्रिकोण आकारवाले अग्निमण्डलमें ज्वालामालाओंसे समन्वित अग्निका ध्यान करना चाहिये। विभिन्न ओषधियोंको पीसकर तैयार किये गये सुरमेके समान कान्तिवाले कृष्णकार बिन्दुयुक्त वायुमण्डलमें वायुका ध्यान करे। आकाशमण्डलका चिन्तन क्षीरसागरमें उठती हुई लहरोंके समान आकारवाले, शुद्ध स्फटिकके सदृश आभावाले तथा सम्पूर्ण संसारको अपनी अमृतमयी रश्मियोंसे आप्लावित करनेवालेके रूपमें करे।

जो अष्ट महानाग कहे गये हैं, उनमेंसे वासुकि और शंखपाल नामक नाग पृथ्वीमण्डलमें स्थित रहते हैं। कर्कोटक तथा पद्मनाभ नामक दो नागोंका वास वरुणमण्डल (जलमण्डल)-में है। कुलिक और तक्षक नामक नाग अग्निमण्डलमें निवास करते हैं। महापद्म तथा पद्म नामक नाग वायुमण्डलमें रहते हैं। साधकको इन नागोंका ध्यान करके पृथ्वी आदि षड्भूत-तत्त्वोंका न्यास करना चाहिये अंगुष्ठसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त अंगुलियोंमें अनुलोम और

विलोम-रीतिसे न्यास करना चाहिये। अंगुलियोंकी पर्वसंधियोंमें जया तथा विजया नामक दो शक्तियोंका न्यास करना चाहिये।

पुनः अपने शरीरमें शिवषडङ्गन्यास, पञ्चतत्त्वन्यास तथा व्यापक-न्यास करे। देवताके नामके आदिमें 'प्रणव' तथा अन्तमें 'नमः' प्रयुक्त करे, यह विधि स्थापन एवं पूजादिक-मन्त्रके रूपमें बतलायी गयी है। देवताके नामके आद्य अक्षर भी मन्त्ररूप होते हैं। आठों नागोंके जो मन्त्र हैं, वे उनके संनिधानको प्राप्त करानेवाले हैं। पञ्चतत्त्वोंके साथ आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'स्वाहा' लगानेसे मन्त्र बन जाते हैं। ऐसा करनेसे ये मन्त्र साक्षात् गरुडके समान साधकके सभी अभीष्ट कर्मोंको सिद्ध करनेवाले हो जाते हैं।

स्वर-वर्णोंसे करन्यास करके पुनः उन्हींसे शरीरके अन्य अङ्गोंमें भी न्यास करना चाहिये। तदनन्तर आप्तशुद्धिकारक उद्दीपा प्राणशक्तिका चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद साधकको अमृतकी वर्षा करनेवाले यौञ्जका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार आप्यायन करके साधकको अपने मस्तिष्कमें आप्ततत्त्वका चिन्तन करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वर्णके समान कान्तिवाली, समस्त लोकोंमें फैली हुई तथा लोकपालोंसे समन्वित पृथ्वीका दोनों पैरोंमें न्यास करना चाहिये।

बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह भगवती पृथ्वीदेवीका अपने सम्पूर्ण देहमें न्यास करे। इसी प्रकार अपने देहके अङ्गोंमें शेष चार मण्डलों तथा उनमें स्थित देवोंका न्यास करे। इस प्रकार पञ्चभूत-तत्त्वोंका न्यास करके यथाक्रम आठ नागोंका न्यास-ध्यान करना चाहिये।

इसके बाद स्थावर और जंगम प्राणियोंके विष-दोषका विनाश करनेके लिये पक्षिराज गरुडका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—गरुडदेव अपने दोनों पैरों, पंखों तथा चोंचद्वारा पकड़े हुए कृष्णवर्णवाले नागोंसे विभूषित हैं। ग्रह, भूत, पिशाच, डाकिनी, यक्ष, राक्षसका उपद्रव होनेपर

विषधर नागोंसे घिरे हुए भगवान् शिवका अपने शरीरमें न्यास करना चाहिये।

यथाविधि ध्यान-पूजन आदि कृत्योंको करके साधकको सभी कर्मोंमें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये अभीष्ट रूप धारण करनेवाले, मनपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ, सम्पूर्ण संसारको अपने रसमें आप्लावित करनेवाले एवं सृष्टि तथा संहारके कारण, अपने प्रकाशपुञ्जसे उद्दीपा और समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त, दस भुजाओं और चार मुखोंवाले, पिङ्गलवर्णके नेत्रवाले, हाथमें शूल धारण करनेवाले, भयंकर दौतवाले, आप्ततत्त्व उग्र, त्रिनेत्र तथा चन्द्रचूडसे विभूषित और गरुडस्वरूप भैरवका चिन्तन करना चाहिये।

नागोंका विनाश करनेके लिये उन परमतत्त्वने महाभयंकर गरुडका रूप धारण किया है। विराट्-रूप भगवान् गरुडके दोनों पैर प्रातल्लोकमें स्थित हैं और उनके सभी पंख समस्त दिशाओंमें फैले हुए हैं। सातों स्वर्ग उनके यक्षःस्थलपर विद्यमान हैं। ब्रह्माण्ड उनके कण्ठका आश्रय लेकर अर्धस्थित है, पूर्वसे लेकर ईशानपर्यन्त आठों दिशाओंको उनका शिरोभाग समझना चाहिये। अपनी तीनों शक्तियोंसे समन्वित सदाशिव इनके शिखामूलमें स्थित हैं। ये तार्क्ष्य (गरुड) साक्षात् परात्पर शिव और समस्त भुवनोंके नायक हैं। त्रिनेत्रधारी, उग्र स्वरूपवाले, नागोंके विषोंके विनाशक, सबको ग्रास बनानेवाले, भीषण मुखवाले, गरुडमन्त्रके मूर्तरूप, कालाग्निके सदृश देदीप्यमान गरुडदेवका अपने समस्त अभीष्ट कर्मोंकी सिद्धिके लिये चिन्तन करना चाहिये। जो मनुष्य न्यास-ध्यानकी विधि सम्पन्न करके इन देवकी पूजा करता है, उसका सब कुछ सिद्ध हो जाता है तथा वह स्वयं गरुडदेवकी शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। भूत, प्रेत, यक्ष, नाग, गन्धर्व तथा राक्षस आदि तो उसके दर्शनमात्रसे ही भाग जाते हैं। चौधिया आदि ज्वर भी विनष्ट हो जाते हैं। (अध्याय १९७)

## त्रिपुराभैरवी तथा ज्वालामुखी आदि देवियोंके पूजनकी विधि

भैरवने कहा—इसके बाद मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली त्रिपुरादेवीकी पूजा आदिका वर्णन करूँगा। उसे आप सुनें।

देवीका यथाविधि 'ॐ ह्रीं आगच्छ देवि'—इस मन्त्रसे आवाहन करके 'ऐं ह्रीं ह्रीं'—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए रेखा करके 'ॐ ह्रीं क्लेशेदिवी धे नमः'—इस मन्त्रसे उन्हें प्रणाम करे तथा उनकी शक्तियोंके साथ महाप्रेतासनपर विराजमान रहनेवाली देवी त्रिपुराभैरवीका पूजन करे। 'ऐं ह्रीं त्रिपुरायै नमः'—इस मन्त्रसे उन्हें नमस्कार करे। देवीके पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व आदि मुखोंको भी नमस्कार करे। 'ॐ ह्रीं पाशाय नमः', 'ह्रीं अङ्कुशाय नमः', 'ऐं कपालाय नमः' इत्यादि मन्त्रोंसे उनके पाश, अङ्कुश, कपाल आदि आभूषणोंको नमस्कार करे। त्रिपुराभैरवीदेवीकी पूजामें आठ भैरवों तथा उनके साथ मातृकाओंकी भी पूजा करनी चाहिये। असिताङ्गभैरव, रुद्रभैरव, चण्डभैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालभैरव, भीषणभैरव तथा संहारभैरव—ये आठ भैरव हैं। ब्रह्मणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा अपराजिता (दुर्गा)—ये आठ मातृकाएँ हैं। पूजकको चाहिये कि वह 'ॐ कायरूपाय असिताङ्गाय भैरवाय नमो ब्रह्मायै'—इस मन्त्रसे पूर्व दिशामें कामरूप असिताङ्गभैरव और देवी ब्रह्मणीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। उसके बाद 'ॐ स्कन्दाय नमः, रुद्रभैरवाय नमः, माहेश्वर्यै नमः' मन्त्रोंद्वारा दक्षिण दिशामें स्कन्ददेव, रुद्रभैरव और देवी माहेश्वरीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। 'ॐ चण्डाय नमः, कौमार्यै नमः' इन मन्त्रोंसे पश्चिम दिशामें चण्डभैरव तथा देवी कौमारीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। तत्पश्चात् 'ॐ उल्काय नमः, ॐ क्रोधाय नमः, ॐ वैष्णव्यै नमः'—इन मन्त्रोंसे उत्तर दिशामें उल्कादेव, क्रोधभैरव और देवी वैष्णवीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। 'ॐ अधोराय नमः,

ॐ उन्मत्तभैरवाय नमः, ॐ वाराही नमः'—इन मन्त्रोंसे अग्रिकोणमें अधोरदेव, उन्मत्तभैरव और देवी वाराहीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर 'ॐ साराय कपालि भैरवाय नमः, ॐ माहेन्द्रीयै नमः'—इन मन्त्रोंद्वारा नैऋत्यकोणमें समस्त संसारके सारभूत स्वरूप कपालिभैरव और देवी माहेन्द्रीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। उसके बाद साधकको 'ॐ जालन्धराय नमः, ॐ भीषणाय भैरवाय नमः, ॐ चामुण्डायै नमः'—इन मन्त्रोंसे वायुकोणमें जालन्धर, भीषणभैरव और देवी चामुण्डाका आवाहनपूर्वक पूजन करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ बटुकाय नमः, ॐ संहाराय नमः, ॐ चण्डिकायै नमः'—इन मन्त्रोंसे ईशानकोणमें बटुकदेव, संहारभैरव तथा देवी चण्डिकाका आवाहन करके उनको पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद साधकको रतिदेवी, प्रीतिदेवी, कामदेवी और उनके पञ्चबाणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। इस प्रकार सदैव ध्यान, पूजा, जप तथा होम करनेसे देवी सिद्ध हो जाती हैं। निम्नलिखित, त्रिपुराभैरवी और ज्वालामुखी नामक देवियाँ समस्त व्याधियोंको विनाशिका हैं। अब मैं ज्वालामुखीदेवीके पूजनका क्रम कहूँगा। पद्यके मध्य देवी ज्वालामुखीकी पूजा करनी चाहिये तथा पद्यके बाह्य दलोंमें क्रमशः—नित्या, अरुणा, मदनागुरा, महामोहा, प्रकृति, माहेन्द्राणी, कलनाकर्षिणी, भारती, ब्रह्मणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, अपराजिता, विजया, अजिता, मोहिनी, त्वरिता, स्तम्भिनी, जृम्भिणी तथा देवी कालिकाकी पूजा करनी चाहिये। देवी ज्वालामुखीकी यथाविधि पूजा करनेसे विष आदि दोष दूर हो जाते हैं।

भैरवने पुनः कहा—चूडामणि-यन्त्रके द्वारा प्रश्नकर्ताको शुभ एवं अशुभ समयका परिज्ञान हो जाता है।

(अध्याय १९८-१९९)



## वायुजय-निरूपण

भैरवने कहा—हे देवि! अब मैं जय-पराजय तथा विदेश-यात्राके शुभाशुभ मुहूर्तका संकेत देनेवाले 'वायुजय' नामक विद्याका वर्णन करूँगा।

वायु, अग्नि, जल और इन्द्रको मातृशक्ति चतुष्टयके नामसे जाना जाता है। प्रायः प्राणीके शरीरमें वायु अधिकतर वाम और दक्षिणभागकी नाड़ियोंसे प्रवाहित होता है। अग्नि शरीरमें ऊर्ध्वगामी होता है और जल अधोगामी। महेन्द्र तत्त्व शरीरके मध्यभागमें स्थित रहता है, किंतु शुक्लपक्षमें वह वामभाग तथा कृष्णपक्षमें दक्षिण-भागकी नाड़ियोंसे होकर शरीरमें प्रवाहित होता है। प्रत्येक पक्षका प्रारम्भिक तीन-तीन दिन इसका उदयकाल है। अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तृतीया तिथि तक जो वायु नासिकाके वाम छिद्रसे होकर प्रवहमान रहता है और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे लेकर तृतीया तिथिपर्यन्त जो वायु नासिकाके दक्षिण छिद्रसे होकर प्रवहमान रहता है, वह उदयकालका वायु माना जाता है। यदि इस नियमके अनुसार वायुका प्रवाह होता है तो अच्छा होता है, किंतु विपरीत होनेपर पतन होता है। यदि प्राणीके

शरीरमें वायु सूर्यमार्गमें उदित होकर चन्द्रमार्गमें अस्त हो तो गुणोंमें वृद्धि होती है। इसके विपरीत होनेपर शरीरमें विघ्न होता है।

हे वरुणने! दिन और रातमें सोलह संक्रान्तियाँ मानी गयी हैं। आधे-आधे प्रहरके बाद एक-एक संक्रान्तिका परिमाण है। इसी गतिसे शरीरमें प्रवहमान वायुका संक्रमण-काल आता है। जब वायु शरीरके अन्तर्गत आधे प्रहरके बाद ही संक्रान्त होने लगता है, अर्थात् आधे-आधे प्रहरमें वायुका भ्रमण होता है, तो स्वास्थ्यकी हानि अवश्यम्भावी है। भोजन और मैथुनकालमें दाहिने नासापुटसे वायु भ्रमण करे तो हितकर होता है। इस स्थितिमें हाथमें तलवार लेकर थोड़ा युद्धमें यथेच्छ शत्रुओंको जीत सकता है। समस्त कार्योंमें यदि वाम नासापुटसे वायुका भ्रमण हो तो प्रश्नकर्ताका प्रश्न शुभकर तथा श्रेष्ठ माना गया है। वायुके महेन्द्र तथा वरुण (जल-तत्त्व) में प्रवाहित होनेपर कोई भी दोष नहीं होता। दाहिनेसे प्रवाहित होनेपर अनावृष्टिका योग तथा बायेंसे प्रवाहित होनेपर वृष्टिका योग होता है। (अध्याय २००)

## उत्तम तथा अधम अश्वोंके लक्षण, अश्वोंके आगन्तुज और त्रिदोषज रोगोंकी चिकित्सा तथा अश्वशान्ति, गजायुर्वेद, गजचिकित्सा और गजशान्ति

धन्वन्तरिने कहा—अब मैं अश्वायुर्वेद और अश्वोंके शुभ-अशुभ लक्षणोंका वर्णन करता हूँ।

जो अश्व कौएके समान नुकीले मुँहवाला, काली जीभवाला, वृक्षके समान फैले मुँहवाला, गरम जलप्रदेशवाला, दोसे अधिक दन्तपङ्क्तिोंसे युक्त, दाँतरहित, सौंमवाला, दाँतोंके मध्य रिक्त स्थानवाला, एक अण्डकोशसे युक्त, अण्डकोशसे रहित, कंचुकी (वक्षःस्थलपर कंचुकके लक्षणसे समन्वित), दो खुरोंसे सम्पन्न, स्तनयुक्त, बिलौटेके समान पैरोंवाला, व्याघ्रके सदृश रूप एवं वर्णसे समन्वित, कुछ तथा विद्रधि रोगके रोगी पुरुषके समान, बुढ़वाई उत्पन्न होनेवाला, बीना, बिलौटे और बंदरसदृश नेत्रोंवाला हो, वह दोषयुक्त होनेसे त्याज्य है।

उत्तम जातिका घोड़ा तो यह होता है, जो तुरष्क प्रदेश (तुर्किस्तान, सिन्धु या अरब देश) में जन्म लेता है। इसकी ऊँचाई सात हाथ होती है। मध्यम कोटिका घोड़ा पाँच हाथ और तृतीय कोटिका घोड़ा तीन हाथ ऊँचा माना गया है। स्वस्थ घोड़े छोटे-छोटे कानवाले, चितकबो, प्रभावशाली, उत्साहसम्पन्न और दीर्घजीवी होते हैं।

रेवन्त सूर्यदेवके पुत्र हैं। इनकी पूजा, होम तथा 'ब्राह्मण-भोजन' आदिके द्वारा अश्वोंकी रक्षा करनी चाहिये। चोड़-वृक्षका काष्ठ, नीमकी पत्ती, गुग्गुलु, सरसों, घृत, तिल, वचा (वच) और होंगकी पीटली आदिमें रखकर घोड़ेके गलेमें बाँधनेसे घोड़ेका सदैव कल्याण होता है।

घोड़ेके शरीरमें उत्पन्न होनेवाला मुख्य दोष व्रण (घाव

होना) है। यह दो प्रकारका होता है—एक है आगन्तुज व्रणदोष और दूसरा है वात-पित्त आदि त्रिदोषोंसे उत्पन्न व्रणदोष। वातविकारके कारण उत्पन्न व्रणदोष चिरपाक (देरसे पकनेवाला) होता है और श्लेष्मविकारके कारण उत्पन्न व्रणदोष क्षिप्रपाक (शीघ्र पकनेवाला) होता है। पित्तज दोषके कारण उत्पन्न व्रणदोष घोड़ेके कण्ठ-भ्रगमें दाह और रक्तविकारके कारण उत्पन्न व्रणमें मन्द-मन्द वेदना होती है। आगन्तुज अर्थात् बाहरसे चोट, गिरने या आघात आदिसे उत्पन्न व्रणदोषका शोधन शल्य-चिकित्साके द्वारा करना चाहिये। व्रणकी यह चिकित्सा करके उसमें एरण्डमूल, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, सोंठ और लहसुन, मट्टे अथवा कौजीमें पीसकर भर देना चाहिये। तिल, सत्तू, दही, सेंधानमक और नीमकी पत्ती एक साथ पीसकर उस व्रणपर रखनेसे भी घोड़ेको लाभ होता है।

परवल, नीमकी पत्ती, वचा (वच), चित्रक, पिप्पली और अदरकका चूर्ण बनाकर घोड़ेको पिलाना चाहिये। इसके सेवनसे घोड़ेका कुमिदोष, श्लेष्मविकार तथा वायुप्रकोप नष्ट हो जाता है। नीमकी पत्ती, परवल, त्रिफला और खैरका काढ़ा बनाकर यदि घोड़ेको पिलाया जाय तो उसका रक्तस्राव बन्द हो जाता है। घोड़ेमें कुष्ठविकार होनेपर तो उसके उपशमनके लिये इसी काढ़ेको तीन दिन देना चाहिये। व्रणयुक्त कुष्ठरोग होनेपर सरसोंका तैल बहुत ही लाभप्रद है। लहसुन आदिका काढ़ा देनेसे उसके छाने-पीनेके दोष दूर हो जाते हैं। बिजौग नौबूका रस जटामांसीके रसमें मिलाकर नस्य देनेसे तत्काल घोड़ेके वातजनित दोषोंका विनाश होता है।

घोड़ेको प्रथम दिन एक पल औषधीय नस्य देना चाहिये। उसके बाद एक-एक पल प्रतिदिन अधिक बढ़ते हुए अठारह दिनतक उसका उपयोग करना चाहिये। यह मात्रा उत्तम प्रकारके घोड़ेकी है। मध्यम प्रकारके घोड़ोंकी औषधिकी मात्रा चौदह पल तथा अधम जातिके घोड़ोंकी आठ पल होती है। शरत् और ग्रीष्म ऋतुमें घोड़ोंको ऐसे विकारोंसे मुक्त करनेके लिये किसी भी प्रकारकी औषधिका नस्य-प्रयोग करना उचित नहीं है। घोड़ेके वातजन्य रोगमें शर्करा, घृत तथा दुग्धसे युक्त तैल, श्लैष्मिक रोगमें

त्रिकटुसे युक्त कड़ुवा तैल और पित्तविकारमें त्रिफलाचूर्ण-समन्वित जलसे नस्य देना चाहिये। साठी चावल और दुग्ध छाने-पीनेवाला घोड़ा अत्यन्त बलशाली होता है। पके हुए जामुनके समान तथा सोनेके सदृश चमकते हुए वर्णवाला अश्व श्रेष्ठ होता है।

भारवाही घोड़ेको आधे-आधे ग्रहरपर गुग्गुलुका सेवन करना चाहिये। जो घोड़ा बहुत ही जल्दी थक जानेके कारण रुक जाता हो, उसको खीर या दूध पिलाना चाहिये। वातजनित विकार होनेपर घोड़ेको भोजनमें साठी चावलका भात और दूध देना चाहिये। पित्तविकार होनेपर उसको एक कर्ष अर्थात् दो तोला जटामांसीका रस, मधु, मूँगका रस और घृतका मिश्रण देनेसे लाभ होता है। कफ-विकार होनेपर मूँग और कुलथी या कड़ुवा तथा तिक्त भोज्य-पदार्थ देना चाहिये। बधिरता या घ्रासजन्य रोगसे ग्रस्त होनेपर अथवा त्रिदोषजन्य विकारोंके उत्पन्न हो जानेसे दुःखित घोड़ेको गुग्गुलुकी औषधि देनी चाहिये। सभी प्रकारके रोगोंमें घोड़ेको पहले दिन अन्य प्रकारकी घासोंके साथ एक पल दुर्वा घास देना ही अपेक्षित है। उसके बाद इस मात्राको धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। एक दिनमें एक कर्ष अर्थात् दो तोला और अधिकतम पाँच पल दिया जा सकता है। सामान्य स्थितिमें घोड़ेके लिये छाने-पीनेके निमित्त अस्सी पल दुर्वाकी मात्रा श्रेष्ठतम मानी गयी है। उसकी मध्यम मात्रा साठ पल और अधम वालीस पल है।

घोड़ेको व्रण-कुष्ठ तथा छद्म-विकार (लैंगडानेका विकार) होनेपर त्रिफलाके क्वाथमें भोजन मिलाकर देना चाहिये। मन्दाग्नि और शोथ-रोग होनेपर उसको गोमूत्रके साथ भोजन देना चाहिये। वात-पित्तजन्य व्रणविकार अथवा अन्य व्याधि होनेपर गोदुग्ध और घृत मिलाकर घोड़ेको भोजन देना लाभकारी है। दुर्बल घोड़ेको मासी नामक औषधिके साथ भोजन देना पुष्टिकारक होता है। शरत् और ग्रीष्म ऋतुमें घोड़ेको पाँच पल गुडूचीका रस भीमें मिलाकर अथवा दूधमें मिलाकर प्रातःकाल पिलाना चाहिये। यह घोड़ेके रोगोंका विनाश करनेवाली, उनको शक्तिसम्पन्न बनानेवाली और उनके तेजको बढ़ानेवाली है। गुडूची-काल्पके साथ शठावरी और अधगन्धा नामक औषधियोंके

रसकी मात्रा क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधमरूपमें चार पल, तीन पल तथा एक पल निश्चित की गयी है।

यदि घोटोंमें अकस्मात् एक ही प्रकारका रोग उत्पन्न हो जाय और उपचार होनेपर भी घोटोंकी मृत्यु हो जाय तो उसे उपसर्ग (कोई दैवीप्रकोप या महामारी) समझना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये हवन, पूजन, ब्राह्मण-भोजन आदि करना चाहिये। हरीतकी-कल्पके सेवनसे भी उपसर्गकी शान्ति होती है। गोमूत्र, सरसोंके तैल और सेंधानमकसे युक्त हरीतकीकी मात्रा प्रारम्भमें पाँच मानी गयी है। तत्पश्चात् प्रतिदिन उसकी पाँच-पाँच मात्रा बढ़ाते हुए सौतक की जा सकती है। घोटोंके लिये एक सौ हरीतकीकी मात्रा उत्तम है। अस्सी तथा साठ मात्राओंका भी परिमाण है जो मध्यम और अधम मात्राएँ मानी गयी हैं।

**धन्वन्तरिजीने पुनः कहा—**हे सुश्रुत! अब मैं (अश्वपुर्वेदकी भाँति) गजापुर्वेदका वर्णन करने जा रहा हूँ, आप उसे सुनें। अध्वचिकित्सामें बताये गये औषधिक कल्प हाथियोंके लिये भी हितकारी हैं। हाथीके निमित्त

उक्त मात्रा चौगुनी होती है। पूर्ववर्णित औषधियोंके द्वारा भी हाथियोंमें पाये जानेवाले रोगोंको दूर किया जा सकता है। हाथियोंकी उपसर्गजनित व्याधियों (दैवीप्रकोप या महामारी आदि)-के उपशमनके लिये गजशान्तिकर्म करना चाहिये। देवताओं और ब्राह्मणोंकी रत्न आदिके द्वारा पूजा करके उन्हें कपिला गौका दान दे। रक्षा-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित वचा (वच) और सरसोंको मालामें पिरोकर हाथीके दोनों दाँतोंमें बाँधना चाहिये। सूर्य आदि नवग्रहोंके तथा शिव, दुर्गा, लक्ष्मी और विष्णुके पूजन आदिसे हाथीकी रक्षा होती है। देवताकी पूजा करनेके पश्चात् प्राणियोंके लिये अन्नादिकी बलि देकर हाथीको चार घड़ोंके जलसे स्नान कराना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित भोजन हाथीको देना चाहिये। हाथीके पूरे शरीरपर भस्म लगाना चाहिये। त्रिफला, पञ्चकोल (पीपर, पीपठामूल, चव्य, धित्रकमूल, सोंठ), दशमूल, विडङ्ग, हातावरी, गुडूची, नीम, अडूसा और पलाशके चूर्ण अथवा क्राय हाथीके रोगोंकी विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। (अध्याय २०१)

## स्त्रियोंके विविध रोगोंकी चिकित्सा, बालकोंकी रक्षाके उपाय तथा बलवर्धक औषधियाँ

**श्रीहरिने कहा—**हे शिव! पुनर्नवा अथवा अपानार्ग नामक औषधिकी जड़का गुण अद्वितीय है। इसका यथाविधि प्रयोग करनेसे प्रसव-वेदनाका कष्ट दूर हो जाता है। भुईकुम्हड़ाकी जड़ अथवा सट्टी चावलकी पीसकर एक सप्ताहपर्यन्त दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियोंके दूधकी वृद्धि होती है। हे रुद्र! इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण)-की जड़का लेप करनेसे स्त्रियोंके स्तनोंकी पीड़ा विनष्ट हो जाती है। नीली, परवलकी जड़ तथा तिलको जलमें पीसकर घीके साथ तैयार किया गया लेप ज्वालागर्दभ नामक रोगका नाश करता है। पाड़ाकी जड़को चावलके जलके साथ पीनेसे पाप-रोग विनष्ट हो जाता है। ऐसे रोगका विनाश कुछ नामक औषधिके पीनेसे भी सम्भव है। हे शिव! बासी जलमें मधु मिलाकर पीनेसे वह पाप-रोगको दूर कर देता है। गोघृत और लाक्षारसको समभागमें लेकर दूधके साथ उसे पीनेसे प्रदररोग दूर हो जाता है।

हे हर! द्विजपत्नी (ब्रह्मदण्डी), त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली)-का चूर्ण तिलके काढ़ेमें मिलाकर पीनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म रोग दूर हो जाता है। हे महेश! लाल कमलका कन्द, तिल तथा शर्कराका औषधिक योग, स्त्रियोंमें गर्भधारणको क्षमता उत्पन्न कर देता है। शर्कराके साथ इन औषधियोंको पीनेसे स्त्रियोंका गर्भपात रुक जाता है तथा शीतल जलके साथ सेवन करनेसे रक्तस्राव भी बंद हो जाता है। हे रुद्र! शरपोद्वाकी जड़का क्राय और काँजी, होंग तथा सेंधानमक मिलाकर पीनेसे स्त्रियोंकी शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। विजौरा नींबूकी जड़को कटिप्रदेशमें बाँधनेसे भी प्रसव यथाशीघ्र हो जाता है। अचामार्गकी जड़ सिरपर धारण करनेपर स्त्रीको गर्भजनित पीड़ा नहीं होती।

हे हर! जिस बालकके मस्तकपर गोरोचनका तिलक रहता है और जो बालक शर्करा तथा कुछ नामक

औषधिका पान करता है वह विष, भूत, ग्रह तथा व्याधिजनित विकारोंसे दूर रहता है। हे रुद्र! संखनाभि (सुगन्धित द्रव्यविशेष), वच, कुष्ठ और लोहा (लोहेकी ताबीज या कटुला) बच्चेको सदैव धारण कराना चाहिये। इससे उपसर्गजन्य विपदाओंसे बच्चोंकी रक्षा होती है।

मधुके सहित पलाश, औषला और विडङ्गका चूर्ण तथा गोघृतका पान करनेसे प्राणी महामति (कुशाग्रबुद्धिवाला) बन जाता है। हे महादेव! एक मासतक इस औषधिका सेवन करनेसे मनुष्य वृद्धावस्थाजन्य मृत्युके भयसे रहित हो जाता है। हे रुद्र! पलाशबीज, तिल, मधु और

घृत समान भागमें लेकर एक सप्ताहतक सेवन करनेसे वृद्धावस्था दूर हो जाती है। औषलेका चूर्ण, मधु, तेल (तिलका) तथा गोघृतके साथ एक मासपर्यन्त सेवन करनेसे मनुष्य युवा हो उठता है और विद्वान् बन जात है। हे शिव! औषलेका चूर्ण मधु अथवा जलके साथ प्रातःकाल सेवन करनेपर नासिकाकी शक्ति बढ़ जाती है। जो मनुष्य घी और मधुके साथ कुष्ठचूर्णका सेवन करता है, वह सुन्दर गन्धसे समन्वित देहवाला हो जाता है और एक हजार वर्षतक जीवित रहता है।

(अध्याय २०२)

### गौ एवं अश्व चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे शिव। जो गौ अपने बछड़ेसे द्वेष करती है, उसे नमकसे युक्त उसीका दूध पिला देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह अपने बछड़ेसे प्रेम करने लगेगी। कुत्तेकी हड्डीकी पीस और गायके गलेमें बाँधनेसे उनके शरीरमें पड़े हुए कीड़े गिर जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। घुँघुचीकी जड़को छिलानेसे भी गायोंके शरीरमें पड़े हुए कीड़े विनष्ट हो जाते हैं। हे शिव! वरुणपत्तके रसको हाथसे मथकर उसे घावमें भरनेसे उसके अंदर पड़े हुए खर पैरवाले तथा दो पैरवाले कीड़े नष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र! जया नामक औषधिकी घावमें भरनेसे वह सूख जाता है।

हाथीका मूत्र पिलानेसे गाय और बैलोंमें फैलनेवाला उपसर्ग रोग (देवी आपदाजन्य महामारी आदि) नष्ट हो जाता है। मट्टमें मसूर और साठी चाबलको फिसकार पिलानेसे भी लाभ होता है।

गाय और बैसके दूधमें तुलनात्मक दृष्टिसे गायका दूध ही पुरुषके लिये विशेष हितकारी होता है। हे शिव। सरपोंछाके पत्तेको नमकके साथ छिलानेसे थोड़े तथा हाथियोंका बारिस्पोट नामक रोग नष्ट हो जाता है। हे हर। घृतकुमारीके पत्तेका नमकके साथ सेवन करनेसे थोड़े आदिकी खुजली दूर हो जाती है। (अध्याय २०३)

### औषधियोंके पर्यायवाची नाम

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! भगवान् धन्वन्तरिने इस प्रकार महर्षि मुश्रुतको वैद्यकज्ञास्व सुनाया था। अब मैं औषधियोंके पर्यायवाची नाम संक्षिप्त रूपमें आप सभीको सुनाऊँगा।

स्थिरा—विदारोगन्धा, शालपर्णी तथा अंशुमती एक ही औषधिके नाम हैं। लाङ्गुली नामक औषधि ही कलसी, क्रोष्टापुच्छा तथा गुहा नामसे कही जाती है। पुनर्नवाकी वर्षाभू, कठिल्या और करुणा कहा जाता है। उरुवृक, आम तथा वर्द्धमानक—ये एरण्डके नाम हैं। झुषा और नागबलाको एक ही औषधि मानना चाहिये। गौधुर अर्थात् गौखरुको श्वदंष्ट्रा कहा गया है। शतावरी नामक औषधि वरा, भीरु,

पौवरी, इन्दीवरी तथा खरीके नामसे प्रसिद्ध है।

व्याघ्री, कृष्णा, हंसपादी और मधुसूता वृहती नामक औषधिके पर्याय हैं। कण्टकारी या कटेरीकी क्षुद्रा, सिंही तथा निर्दिग्धिका कहा जाता है। वृक्षिका, प्रमृता, काली और विषघ्नी सर्पदन्ता नामक औषधिके नाम हैं। मर्कटी, आतमगुप्ता, आपैयी तथा कपिकच्छुका—ये शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं। मुद्गपर्णी और क्षुद्रसहा मृगके तथा माषपर्णी एवं महासहा उड्डके पर्याय हैं। दण्डयोन्यङ्ग (दण्डिनी)—को त्यजा, परा और महा नामसे स्वीकार किया गया है।

न्यग्रोध और खट बरगदका तथा अंधत्थ और कपिल



पीपलका वाचक है। प्लक्षको गर्दभाण्ड, पकटों तथा कपीतन कहा जाता है। अर्जुन वृक्षका नाम पार्श्व, ककुभ और धन्वी है। नन्दीवृक्षको प्ररोही तथा पुष्टिकारी कहते हैं। वंजुल और वेतस एक ही औषधिके वाचक हैं। भस्मातक तथा अरुष्कर भिलावाको कहा जाता है। लोध सारवक, धृष्ट और तिरीट नामसे अभिहित है तथा बृहत्फला, महाजम्बु और बालफल एक अर्थके वाचक हैं। जलजम्बु नादेयोंका नाम है।

कणा, कृष्णा, उपकुंची, शीण्डो और मागधिका—ये नाम पिप्पलीके हैं। उसके जाननेवाले लोग उस औषधिकी मूलको ग्रन्थिक कहते हैं। उषण नामक औषधिकी भरिच तथा विष्ठा नामक महीषधिकी शुण्डी या सोंठ कहा जाता है। व्योष, कटुत्रय तथा त्र्यूषण इसी औषधिका नाम है। लांगलीको हलिनी और शैयसीको गजपिप्पली कहते हैं। श्रायनीका त्रायमाणा तथा उत्साका नाम सुवहा है।

चित्रकका नाम शिखी है। इसको वड्डि तथा अग्नि नामसे भी कहा जाता है। षट्प्रन्था, ठण्डा, श्वेता और हैमवती—ये नाम वचाके हैं। कुटजको रुद्र, वत्सक तथा गिरिमक्षिका कहा जाता है। उसके बीजोंका नाम कलिङ्ग, इन्द्रयव और अरिष्ट है। मुस्तक और मेघ नाम मोषाके वाचक हैं। कौन्ती नामक औषधि हरेणुका नामसे कही जाती है। एला और बहुला शब्द बड़ी इलायची तथा सुक्ष्मला एवं त्रुटि शब्द छोटी इलायचीके वाचक हैं। भाङ्गीका नाम पया तथा कौञ्जीका नाम बाह्यजपष्टिका है। मूत्रा नामक औषधि मधुरसा और तेजनीका नाम तिक्तावत्सिका है। महानिम्बको बृहन्निम्ब तथा दीप्यकको यवानिका (अजवाइन) कहा जाता है। विडङ्गका नाम क्रिमिशत्रु है। हिंगु अर्थात् हींगको रामठ भी कहते हैं। अजवा जीरेक अर्थात् जीरेका पर्यायवाची शब्द है। उपकुंचिकाको कारवों कहा जाता है। कटुला, तिला तथा कटुरोहिणी—ये तीन कटुकी नामक औषधिके वाचक हैं। तगरका नाम नत और वक्र है। चोच, त्वच तथा वराङ्गक, दारुचोनी नामक औषधि कहलाती है। उदीच्यको वातक (मोथा) तथा हीबेरको अम्बुबालकके नामसे अभिहित किया गया है।

पत्रक और दल नाम तेजपत्ताके हैं। आरकको तस्कर कहा जाता है। हेमाथ नामक औषधिका नाम नाग भी है। इसलिये इसको लोग नागकेशर कहते हैं। असृक् तथा कारमोरबाह्योक्त शब्द कुंकुमके वाचक हैं।

पुर, कुटनट, महिषाक्ष तथा पलङ्कपा शब्द गुग्गुलुके वाचक हैं। कारमोरी और कट्फला श्रीपर्णीको कहा जाता है। ललकी, नजभक्ष्या, पत्री, सुरभी तथा श्रवा नाम गजारी औषधिके हैं। औबलाको धात्री और आमलकी तथा अक्ष एवं विभीतक बहेड़ाको कहा जाता है। पथ्या, अभया, पूतना और इरीतकी शब्द हर्षिके पर्यायवाची हैं। इन तीनों फलोंको एकमें मिलाकर त्रिफल कहा जाता है। करंज या कंजा उदकीर्य तथा दीर्घवृत्तके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यही, यष्टाङ्ग, मधुक और मधुघाटी—ये जैठी मधुके वाचक हैं। धातकी, दासपर्णी, समझा तथा कुंजर धातीफूलके नाम माने गये हैं। सित, मलयज, शीत और गोशोर्पको श्वेतचन्दन कहा जाता है। जो चन्दन रक्तके सदृश लाल होता है उसका नाम रक्तचन्दन है। काकोली नामकी औषधिकी बौरा, वयस्या और अर्कपुष्पिकाके नामसे भी कहा जाता है। मृगी नामक औषधि कर्कटमृगी तथा महाघोषाके नामसे प्रसिद्ध है। मंसलोचनको तुगाक्षीरी, शुधा और वांशीके नामसे भी जाना जाता है। डाक्षका नाम मुद्गीका तथा गोस्तनिका है।

उत्तोर अर्थात् खस नामक औषधिका नाम मृणाल और लामजक है। सारको गोपवल्ली, गोपी और भद्रा कहा जाता है। दन्ती नामक औषधिका नाम कटङ्कुटेरी भी है। हल्दीका दारु, निरा, हरिद्रा, रजनी, पीतिका और रात्रि कहा गया है। वृक्षादनी, छिन्नकहा, नीलवल्ली तथा अमृतरसा नामवाली औषधि ही गुडूची है। वसुकोट, वाशिर और काम्पिल नामक औषधि एक ही हैं। पाषाणभेदक, अरिष्ट, अश्वभिक्त तथा कुट्टभेदक—ये सभी नाम पथरचट्टा या पथरचूनाके वाचक हैं। घण्टकको शुष्कक और सूचकको वचा (वच) नामसे अभिहित किया गया है। पीतशालको सुरस तथा बीजक नामसे कहा जाता है। वज्रवृक्षको महावृक्ष, स्नुहीको सुक् (धूहड़) और सुधाको गुडा माना गया है। तुलसीको सुरसा तथा उपस्था कहा जाता है। लोग इसीको कुठेरक,

अर्जुनक, पर्णी और सौगन्धपर्णी भी कहते हैं। नील नामक औषधि सिन्धुवार है और निर्गुण्डीको सुगन्धिका कहा जाता है। सुगन्धपर्णी नामकी औषधि वासन्ती और कुलजा नामसे जानी जाती है। कालीयक नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं—पोतकाष्ठ तथा कतक। गव्यत्रो नामकी औषधिका नाम खादिर है। कन्दर अर्थात् कतपा उसीका भेद माना गया है। नीलकमलके वाचक इन्दोवर, कुवलप, पद्य तथा नीलोत्पल माने गये हैं। सौगन्धिक, शतदल और अम्ब कमलको कहा जाता है। अजवर्ण, ऊर्ज, वाजिकर्ण तथा अधकर्ण एक ही औषधिके नाम हैं। श्लेष्मान्तक, शेलु और बहुवार एक ही अर्थके वाचक हैं।

सुनन्दक, ककुद्भद्र, छत्राकी तथा छत्र राक्षस नामकी औषधिके वाचक हैं। कबरी, कुम्भक, धूत, भुडिषा और धनकुत् एक ही औषधिके नाम हैं। कृष्णार्जक तथा कराल नामक औषधि कालमान या काममान नामसे प्रसिद्ध हैं। वरियारा नामक औषधिको प्राची, बला और नदीक्रान्त कहा जाता है। काकजंघा नामकी औषधिका पर्यायवाची शब्द वायसी है। मूषिकपर्णी नामक औषधि भ्रमन्ती और आरुपुर्णीके नामसे जानी जाती है। विषमुष्टि, द्रावण और केशमुष्टि—ये तीनों एक ही औषधिके वाचक हैं। किंलिही या किणिहीको कटुकी तथा अन्तकको अम्लवेतस कहा जाता है। अश्रथा और बहुपत्रा एक ही औषधि है इसीको लोग आमलकी भी कहते हैं। अरुणकका नाम पत्रक है। क्षीरीको राजादन नामसे स्वीकार किया गया है। महापत्रका नाम दाहिम है, इसीको करक भी कहा जाता है। मसूरी, विदली, शष्पा तथा कालिन्दी नाम एक ही अर्थके वाचक हैं। कटेरी वृक्षको कण्टका, महाश्यामा और वृक्षपादा कहा जाता है। विद्या, कुन्ती, त्रिभंगी, त्रिपुटी और त्रिवृत्—ये सभी शब्द एक औषधिके वाचक हैं। सपला, यवतिका, चर्मा और चर्मकसा—ये सभी नाम समान औषधिके माने गये हैं। अक्षिपीलुको खंखिनी, सुकुमारी और तिकाक्षी कहा जाता है। अपराजिता नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं गवाक्षी, अमृता, श्रेता, गिरिकर्णो तथा गवादिनी। काम्पिलको रक्ताङ्ग, गुण्डा और रोचनिका कहा जाता है।

हेमक्षीरी या स्वर्णक्षीरी नामकी औषधिको पीता, गौरी तथा कालदुग्धिका नामसे स्वीकार किया गया है। गाङ्गेरुकी, नगबला, विशाला और इन्द्रवारुणी अर्थात् इन्द्रायण एक ही औषधिके वाचक हैं। रसांजन नामक औषधिके पर्याय हैं तक्ष्यं, शैल, नीलवर्ण तथा अंजन। शाल्मली या सेमरवृक्षके निर्वासको मोचरसके नामसे अभिहित किया जाता है। प्रापक्पुष्पीको खरी और अपामार्गको मयूरक कहा गया है। जंगली अदुस्तका नाम है सिंहास्य वृक्षवासाक तथा आटरुष। जीवशाक नामक औषधिको जीवक और कर्बुरको शटी नामसे भी कहा गया है। कटफलका नाम सोमवृक्ष तथा अग्निगन्धाका नाम सुगन्धिका भी है। सौंफको शताङ्ग और शतपुष्पा कहा जाता है। मिसिको मधुरिका माना गया है। पुष्करमूलको पुष्कर तथा पुष्कराङ्गय नामसे भी स्वीकार करना चाहिये। यास नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं भन्वपास, दुप्परा और दुरालभा। वाकुची अर्थात् वकुची, सोमराजी और सोमवल्ली एक ही औषधिके नाम हैं। भैरवइयाको माकैव, केशराज तथा भृंगराज कहा जाता है।

एङ्गज नामक औषधिको आयुर्वेद एवं वनस्पतियोंके विद्वान् चक्रमर्दक या चक्रवद् कहते हैं। काकतुण्डी नामक औषधिके वाचक हैं सुरंगी, तगर, र्नापु, कलनासा और वायसी। महाकालको बेल तथा तण्डुलीयको घनरतन कहा जाता है। इक्ष्वाकुको तिकतुम्बी और तिकालापु कहा जाता है। धामार्गवको कोषातकी तथा यामिनी कहा जाता है। कुतभेद नामक इस कोषातकी औषधिका एक अन्य भेद है। देवताडक नामक वृक्षके पर्याय हैं जीमूतक तथा खुड्गक। गृध्रादना, गृध्रनखी, हिङ्गु और काकादनी शब्द हींगके वाचक माने जाते हैं। करवीर (कनेर)—का पर्यायवाची शब्द है अशारि तथा अशमारक।

सैधानमकको सिन्धु, सैन्धव, सिन्धूत्थ तथा मणिमन्थ कहा जाता है। यवक्षार लवणका नाम है क्षार और यवाग्रज सब्जी या छब्बी मिट्टीका नाम है सजिका एवं सजिकाक्षार काशीशके नाम हैं पुष्पकाशीश, नेत्रभेषज, धातुकाशीश और काशी। यह पुष्प एवं धातुभेदसे दो प्रकारका है। पङ्कपर्पटी

(गुजराती मिट्टी)—को सौराष्ट्री, मृत्तिकाक्षार तथा काशी कहा जाता है। स्वर्णमाक्षिका नामक मिट्टीके पर्याय हैं माक्षिक, ताप्य, ताप्युत्थ और ताप्यसम्भवा। मनःशिला या मैनसिलका नाम है शिला। नेपाली मनःशिलाको कुलटी कहा जाता है। हरितालके लिये आल अथवा मनस्ताल नाम प्रयुक्त होता है। गन्धक, गन्धपाषाण तथा रस पारद या पारा कहलाता है। ताँबेके वाचक हैं ताम्र, औदुम्बर, शुल्ब और म्लेच्छमुख। लोहेको अदिसार, अयस्, लोहक तथा तीक्ष्ण भी कहा जाता है।

मधु शब्दके पर्यायवाची हैं माक्षिक, मधु, खीर और पुष्परस। इसके दो उपभेद हैं—ज्योष्ठी मधु तथा उदको मधु। काँजीको सुवीरक नामसे अभिहित किया गया है। शर्कराको सिता, सितोपला और मत्स्याण्डोंके नामसे कहा जाता है।

त्रिसुगन्धि नामक औषधिका निर्माण दारुचोनी नामक वृक्षकी छाल, इलायची तथा तेजपत्ताको समान मात्रामें मिलानेपर होता है, इसे त्रिजातक कहा जाता है, उसमें नागकेशरका मिश्रण कर देनेपर वह चतुर्जातक कहलाता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और नागरके मिश्रित स्वरूपको पञ्चकोल और कोल कहा जाता है।

प्रियंगुको कंगुका (काकुन) तथा कोद्वय या कोदोको कोरदूषके नामसे जानना चाहिये। त्रिपुटका नाम पुट है और कलापका लङ्गक नाम स्वीकार किया गया है। वेणु अर्थात् बाँसको सतीन तथा वर्तुल भी कहा जाता है।

पिचुक, पित्तल, अक्ष और विडालपदक शब्द तैल-परिमाणमें एक कर्ष (सोलह मास) —के वाचक हैं। सुवर्ण तथा कवलग्रहका बराबर मान है। पलार्थ अर्थात् आधा पल, एक शुक्ति तथा आठ माषक भारमें समान है। पल, बिल्व और मुट्ठीका परिमाण समान होता है। दो पलकी मात्राको प्रसृति अर्थात् एक पसर कहा गया है। अंजलि और कुडवका मान चार पलके बराबर होता है। आठ पलको अष्टमान कहा जाता है, उसे मान भी कहा गया है। चार कुडवका एक प्रस्य (एक सेर) और चार प्रस्यका एक

आदक अर्थात् एक अद्वया होता है। इसीको एक काशपात्र कहा गया है। चार आदकका एक द्रोण होता है। एक सौ पलका एक तुला और बीस पलका एक भाग माना गया है। विद्वानोंने प्रस्य आदिकी मात्रामें प्राप्ता होनेवाले द्रव्योंको मान तो इस प्रकारसे कहा है, किंतु द्रव-पदार्थोंकी मात्राको उसका दुगुना स्वीकार किया गया है।

भद्रदार, देवकाष्ठ तथा दारु देवदारुके वाचक हैं। कुछको आमय और माँसीको नलदंश कहा गया है। शंख नामक औषधिका नाम शुक्तिनख है तथा व्याघ्र नामकी औषधि व्याघ्रनखी या व्याघ्रनख शब्दसे कही गयी है। गुग्गुल नामकी औषधिके वाचक पुर, पलङ्गुष तथा महिषाक्ष शब्द हैं। रस गन्ध-रसका पर्यायवाची है, इसीको चोले भी कहा जाता है। सर्व अर्थात् राल सर्वरसका बोधक है। त्रिचक्रु फलिनी, श्यामा, गौरी और कान्ता—इन नामोंसे अभिहित किया जाता है। करंज या कंजैका नाम नक्तमाल, पूतिक तथा चिराबिल्वक है। शिपु शोभाजन तथा रीनमान नामसे प्रसिद्ध है। इसे सहिजन भी कहा जाता है। सिन्धुवार नामक औषधिके वाचक हैं—जया, जयन्ती, हरणी और निर्गुण्डी। मोरटा नामक औषधि पीलुपर्णी (मूर्वा) है तथा तुण्डीका नाम तुण्डिकेरी है।

मदन-वृक्षको गालव बोधा, धोटा और घोट्टी कहा जाता है। चतुरङ्गुल नामक औषधि सम्पाक तथा व्याधिघातक नामसे भी प्रसिद्ध है। आरग्वधका नाम राजवृक्ष और रैवत है। दन्तीको लोग काकेन्दु, तित्ता, कण्टकी और विकडूत कहते हैं। निम्बको अरिष्ट कहा गया है तथा पटोलका एक नाम कोलक (परवल) है। वयस्थाका नाम विशल्या, छिआ और छिलरुहा है। गुडूचीके पर्यायवाची हैं—वशा, दन्ती तथा अमृता। किराततित्ताका नाम भूनिम्ब और काण्डतित्ता है।

सूतजीने कहा—हे शौनक ! ये सभी नाम वनमें उत्पन्न होनेवाली औषधियोंके हैं। इन्हीं वनस्पतियोंका वर्णन भगवान् श्रीहरिने शिवजीसे किया था। अब मैं कुमार अर्थात् भगवान् स्कन्दके द्वारा कहे गये व्याकरणशास्त्रको बतलाऊँगा, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें। (अध्याय २०४)

## व्याकरण-निरूपण

कुमारने कहा—हे कात्यायन! अब मैं संक्षेपमें व्याकरणके विषयमें बतला रहा हूँ। यह व्याकरणसे सिद्ध शब्दोंके ज्ञानके लिये तथा बालकोंकी व्युत्पत्ति-प्रक्रिया बखानेके लिये है।

सुबन्त और तिङन्त—ये दो प्रकारके पद होते हैं। सुप् प्रत्यय सात विभक्तियोंमें बँटे हैं। सु, औ, जस्—यह प्रथमा विभक्ति है। प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिकार्थमें, सम्बोधन-अर्थमें, लिङ्गादि-बोधक-अर्थमें तथा कर्मके उक्त होनेपर कर्मवाचक-पदसे और कर्ताके उक्त होनेपर कर्तृवाचक-पदसे होती है। धातु और प्रत्ययसे भिन्न अर्थवान् शब्दस्वरूपकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। अम्, औट्, जस्—यह द्वितीया विभक्ति है। द्वितीया विभक्ति कर्म-अर्थमें होती है। अन्तरा, अन्तरेण पदोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। टा, भ्याम्, भिस्—यह तृतीया विभक्ति है। तृतीया विभक्ति करण और कर्ता-अर्थमें होती है। क्रिया (फल)-की सिद्धिमें अत्यन्त उपकारक कारककी करण संज्ञा होती है। क्रियाके प्रधान आश्रयको कर्ता कहते हैं। के, भ्याम्, भ्यस्—यह चतुर्थी विभक्ति है। चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान कारकके अर्थमें होती है। रूप्यर्थक धातुके योगमें तृप्त होनेवालेकी, ण्यन्त ध्रु धातुके प्रयोगमें उत्तमर्णकी एवं दानके उद्देश्यकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। इति, भ्याम्, भ्यस्—यह पञ्चमी विभक्ति है। पञ्चमी विभक्ति अपादान कारकके अर्थमें होती है। जिससे पृथक् हुआ जाता है, जिससे लिया जाता है, जिसके समीपसे लिया जाता है या जो भयका हेतु होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है। इम्, ओस् और आम्—यह षष्ठी विभक्ति है। यह विभक्ति मुख्यरूपसे स्व-स्वामिभाव-सम्बन्धमें होती है। वस्तुतः सम्बन्ध सामान्य षष्ठीका अर्थ है। [ इस सम्बन्धमें 'एकशत षष्ठ्यर्थाः' (षष्ठी विभक्तिके सौ अर्थ होते हैं) यह भाष्य अनुसंधेय है। ] डि, ओस्, सुप्—यह सप्तमी विभक्ति है। सप्तमी विभक्ति अधिकरण-अर्थमें हुआ करती है। आधारकी अधिकरण संज्ञा होती है। आधार औपस्थलेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक-भेदसे तीन प्रकारका होता है। वारणार्थक

धातुके योगमें ईप्सित और अनीप्सितकी भी अपादान संज्ञा होती है। वारणार्थक धातुके प्रयोगमें जो ईप्सित अभीष्ट हो उसकी अपादान संज्ञा होती है तथा अनीप्सित (अनीच्छित)-की कर्म संज्ञा होती है। कर्मप्रवचनीयसंज्ञक परि, अप्, आह् के योगमें तथा इतर, ज्ञते (बिना) अन्य-दिक् (दिशा)-वाचक शब्दका योग होनेपर पञ्चमी विभक्ति होती है। प्रत्ययान्तके एव योगमें द्वितीया विभक्ति होती है कर्मप्रवचनीय-संज्ञक पदोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। लक्षण-अर्थमें, इत्थम्भूत तथा आख्यान-अर्थमें और वीप्सा-अर्थमें प्रति, परि, अनुकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। हीन-अर्थमें अनुको अधिक अर्थमें उष उपसर्गकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। अध्यवाचक-शब्दके कर्ममें और गत्यर्थक धातुके कर्ममें द्वितीया तथा चेष्टा-अर्थमें चतुर्थी विभक्ति होती है। दिवादिगममें पठित मन् धातुके कर्ममें अनादरके तात्पर्यसे अप्राणिवाचक पदमें द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति होती है।

जम्, स्थिति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट्का योग होनेपर तथा तादर्थ्यके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। भावषाची तदर्थसे विहित तुमुप् प्रत्ययान्तसे चतुर्थी होती है।

सह शब्दसे युक्त और विकृत-अङ्गवाचक शब्दमें तृतीया विभक्ति होती है। कालार्थक तथा भावार्थक शब्दोंमें सप्तमी विभक्तिके प्रयोगका विधान है, किंतु षष्ठी विभक्तिका भी प्रयोग इन अर्थोंमें किया जाता है। स्वामी, ईश्वर, अधिपति, साक्षी, दायाद, प्रतिभू और प्रसूत—इन शब्दोंके योगमें षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति होती है। निर्धरण-अर्थमें षष्ठी तथा सप्तमी दोनों विभक्ति होती है। हेतुवाचक शब्दके प्रयोगमें हेतुद्योत्य होनेपर मात्र षष्ठी विभक्ति होती है।

स्मरणार्थक धातुके कर्ममें और प्रतिवत्तार्थक कृ धातुके कर्ममें तथा शेषत्वकी विवक्षामें षष्ठी विभक्ति ही होती है। हिसार्थक ज्ञास् नि पूर्वक और प्र पूर्वक हन् आदि और नाद् क्राह् एवं पिप् धातुओंके कर्ममें शेषत्वकी विवक्षामें षष्ठी होती है तथा कृदन्त पदादिके योगमें कर्तृकर्मवाचक-पदसे षष्ठी होती है। निष्ठाप्रत्ययान्तके योगमें



कर्तृकर्मवाचक-पदसे षष्ठी विभक्ति नहीं होती।

प्रातिपदिक नाम और नामधातु—इन दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। भू आदि धातुओंसे लट् आदि दस लकार होते हैं, जिनके स्थानपर लिङ् प्रत्यय हुआ करते हैं। तिप्, तस्, झि प्रथमपुरुष है। सिप्, धस्, ध मध्यमपुरुष-संज्ञक प्रत्यय हैं और मिप्, वस्, मस् उत्तमपुरुष-संज्ञक प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययोंकी परस्मैपद संज्ञा होती है। आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय त, आताम्, झ की प्रथमपुरुष संज्ञा तथा थास् आध्याम्, ध्वम् की मध्यमपुरुष संज्ञा और इट्, खटिङ्, महिङ् की उत्तमपुरुष संज्ञा होती है। ये परस्मैपद एवं आत्मनेपद प्रत्यय जिच् आदि प्रत्ययोंकी भाँति धातुसे विहित होते हैं।

युष्मद् और अस्मद्से अतिरिक्त क्रियाका कर्ता होनेपर धातुसे प्रथमपुरुष-संज्ञक प्रत्यय होते हैं। कर्ताके रूपमें युष्मद् शब्दका प्रयोग होनेपर मध्यमपुरुष और कर्ताके रूपमें अस्मद् शब्दका प्रयोग होनेपर उत्तमपुरुष होता है। भू आदिकी धातु संज्ञा होती है। सन्, क्पन्, काम्यच् आदि प्रत्यय जिसके अन्तमें हों उनकी भी धातु संज्ञा होती है। लट् लकारका प्रयोग वर्तमान कालके लिये होता

है तथा 'स्म'का योग हो जानेपर वही क्रिया भूतकालिक हो जाती है। लिट् भूतकाल (परोक्ष)-के लिये प्रयोज्य है। अनद्यतन भूतके अर्थमें लङ् लकार होता है। आज्ञा तथा आशीर्वादकी क्रियाके निमित्त लोट् आदि लकारोंका प्रयोग होता है। विधि आदि अर्थमें भी लोट्क प्रयोग हो सकता है। विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न तथा प्रार्थनाके अर्थमें जो लिङ् होता है, उसे विधिलिङ् तथा आशीर्वादके अर्थमें जो लिङ् होता है उसे आतिथिलिङ् कहते हैं। भविष्य (सामान्य)-में लृट् लकार होता है और अनद्यतन भविष्यमें लृट् लकार होता है। हेतुहेतुमद्भावके विषयमें क्रियाकी अनिष्पत्ति गम्यमान हो तो भविष्य और भूत-अर्थोंमें लृङ् लकार होता है। लिङ् के अर्थमें लोट् लकार होता है, किंतु इसका प्रयोग केवल वेदमें होता है।

लकार सकर्मक धातुसे कर्ता या कर्म-अर्थमें तथा अकर्मक धातुसे भाव या कर्ता-अर्थमें होते हैं। कृतसंज्ञक प्रत्यय कर्ता अथवा कर्म अथवा भाव-अर्थमें होते हैं। इस प्रकार तथ्यत् आदि कृत्-संज्ञक प्रत्यय तथा अनीपर, तुच् आदि प्रत्यय होते हैं। (अध्याय २०५)

## व्याकरणसार

सूतजीने कहा—हे विप्रो! अब मैं संहिता आदिसे युक्त सिद्ध शब्दोंकी बतलाने जा रहा हूँ। आप उसे सुन—सागता, योदं, सूतमम्, पितृर्षभ, ल्कात्—इन पदोंमें दीर्घ सन्धि है। लांगलीषा, मनीषा—यहाँ पररूप सन्धि है। इसी प्रकार गंगोदकम् (यहाँ गुण हुआ है।) तवल्कारः (यहाँ गुण), ऋणार्णम्, प्रार्णम्में (वृद्धि), स्रोतार्तः में (दीर्घ), सैन्त्री-सौकरमें (वृद्धि), बध्वासन्, पित्रर्ष, लनुबन्धमें (यन्), नायकः, लवणम्, गावःमें (अपादि), एते (गुच्) त ईश्वरःमें (अप् और यलोप्) (ये शब्द स्वरसन्धिके उदाहरण हैं।) देवी गृहमथो अत्र अ अवेहि पट् इमी (इन्में प्रकृति भाव है।), अस्वाः षडस्य (जश्त्वा), तत्र (अनुनासिक), वाक् (चर्त्वं), षड्दलानि (जश्त्वा), तच्चरेत् (क्षुत्व-चर्त्वं), तक्षुनाति (परसवर्ण), तज्जलम् (क्षुत्व), तच्छमशानकम्

(छत्वं-क्षुत्व), सुगम्रणत्र, पचन्नत्र (नृट् आगम), भवांश्छादयति (अनुस्वार सुट्-क्षुत्व), भवाञ्जनकरः (परसवर्ण), भवांस्तर्ति, (अनुस्वार-सुट्), भवांश्छिजति (परसवर्ण), ताञ्छके (क्षुत्व), भवाञ्जोते (क्षुत्व) भवाण्जीनं त्वन्तरसि त्वङ्गोपि (परसवर्ण) (ये व्यञ्जनसंधिके उदाहरण हैं), सदाचनम् (दीर्घ), कक्षीत् (क्षुत्व) कृष्टकारेण (ष्टुत्व), कर्कुषात् कर्फले (विह्वामूलीण विसर्ग) कश्शेते (क्षुत्व), कष्ण्डः (ष्टुत्व), कस्कः (सत्त्व), क इहात्र क एवाहु—देवा अहुः, भो ब्रज (रत्त्व, यत्त्व, यलोप्), स्वयम्भूर्विष्णुर्व्रजति (रत्त्व) गोष्पतिः (यत्त्व), धूर्पतिः (रत्त्व), कुटीच्छाया (तुक्-क्षुत्व), तथाच्छाया (तुक्-विकल्प)—ये विसर्गसन्धिके उदाहरण हैं।

समास छः प्रकारके होते हैं (द्वन्द्व, द्विगु, तत्पुरुष,

कर्मधारय, बहुव्रीहि, अव्ययीभाव)। स द्विजः = स द्विज (कर्मधारय), त्रिवेद (त्रयाणां वेदानां समाहारः द्विगु) तत्कृतः तदर्थः वृकभीतिः, यद्धनम् ज्ञानदक्षः (इनमें क्रमशः तेन कृतः, तस्मै अर्थः, वृकाद् भीतिः, यस्य धनम्, ज्ञानेदक्षः इस व्युत्पत्तिसे तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी तथा सप्तमी उत्पन्न समास हैं।) तत्त्वज्ञमें बहुव्रीहि तथा अधिमानमें अव्ययीभाव समास है। देवार्चमानवाः में देवश्च ऋषिश्च मानवश्च इस व्युत्पत्तिसे द्वन्द्व समास है।

‘पाण्डव (पाण्डोः अपत्यमिति पाण्डवः इत्यर्थे अण्)’, शैव (शिवो देवताऽस्य इत्यर्थे अण्)’, ब्राह्मणम् (ब्राह्मणः भावः कर्म इत्यर्थे ण्यञ्)’, तथा ब्रह्मता (ब्राह्मणः भावः इत्यर्थे तल्)’, आदि तद्धित प्रत्ययान्त शब्द हैं।

देव, अग्नि, सखि, पति, अंश, क्रोधा (सिंघार), स्वायम्भुव, पितृ, नृ, प्रसस्ता (प्रशंसक), रै (धन), गौ और गौ (चन्द्रमा)—ये अत्यन्त पुँल्लिङ्गके सिद्ध शब्द हैं। अधभुक् (धोड़ेसे युक्त), क्षमभुक् (पृथ्वीका उपभोग करनेवाला राजा), मरुत् (पवन), क्रव्यद्, मृगव्यध (मृगका पीला करनेवाला शिकारी), आत्पन्, राजन् (राजा), यव, धन्या (मार्ग), पूषन् (सूर्य), ब्राह्मन् (ब्राह्मणको मारनेवाला ब्राह्मणाती), हस्तिन् (हल धारण करनेवाला मनुष्य), विट् (जार पुरुष), वेधस् (विधाता), उशनस् (उशना-शुक्राचार्य), अनङ्गवान् (गाड़ी खींचनेवाला बैल), मधुलिट् (शहद चाटनेवाला भीरा) तथा काञ्चतद् (कठफोर पक्षी या बड़ई)—ये हलन् पुँल्लिङ्गके अन्तर्गत आनेवाले सिद्ध शब्द हैं।

वन (जंगल), वारि (जल), अस्थि (हड्डी), वस्तु (सामग्री), जगत् (संसार), साम्, अहः, कर्म, सर्पिष् (धो), वपुष् (शरीर), तेजस् (ऊर्जा)—ये आदिके चार शब्द अजन्त और शेष हल् प्रत्ययान्त नपुंसकलिङ्गके सिद्ध रूप हैं।

जाया (पत्नी), जरा (वृद्धावस्था), नदी, लक्ष्मी, श्री, स्त्री, भूमि, वधू, धू (भीड़), पुनर्धू (पुनर्जन्म), धेनु (गौ), स्वसा (बहन), मातृ (माता) तथा नौ (नौका)—ये अजन्त

स्त्रीलिङ्गमें सिद्ध रूप हैं।

वाक् (वाणी), सक् (माला), दिक् (दिशा), मुद् (मुदा-प्रसन्नता), क्रुध् (क्रोध), युवति, ककुभ्, द्यौ (आकाश), दिव् (स्वर्ग), प्रावृद् (वर्षा), सुमन और उभयिक्—ये हलन् स्त्रीलिङ्ग सिद्ध रूप हैं।

अब मैं आपको गुण, द्रव्य और क्रियाके योगसे बननेवाले स्त्रीलिङ्गके शब्दोंको भी बता रहा हूँ।

शुक्ल (छेत), कोलात्मक (अमृतके समान पेय पदार्थ), शुचि (शुचिप्रता), ग्रामणी (गाँवका अधिकारी), सुधी (विद्वान्), पटु (चतुर), कमलभू (कमलसे उत्पन्न ब्रह्म या पराग), कर्तृ (कर्ता), सुमत (सुन्दर विचारोंवाला पुरुष), सुनु (पुत्र), सत्पा, अभक्ष (न खाने योग्य), दीर्घया, सर्वविधा, उभय (दो), उभौ, एक, अन्या (दूसरी) और अन्यतरा (दूसरेमें प्रमुख)—ये सब गुणप्रधान शब्द हैं। जो स्त्रीलिङ्गमें बनते हैं।

इसके बाद उत्तर (उच्चतर), उत्तम (उच्चतम), नेम, तु (तो), सम (समान), अध (तदनन्तर), सिम (प्रत्येक), उत्तर (अतिरिक्त), पूर्व (प्राचीन), अधः (नीचे), च (और), दक्षिण (दक्षिण दिशा), उत्तर (उत्तर दिशा), अधर (अधम), पर (दूसरे), अन्तर, एतद् (यह), यद्यत् (जो-जो), किं (क्या), अदस् (यह), इदम् (यह), पुष्पत् (तुन), अम्मत् (मैं-हम), तत् (वह), प्रथम (पहला), चरम (अन्तिम), अल्पतया (संक्षेप), अर्ध (आधा), तथा (और), कतिपय (कुछ), द्वौ (दो), धेति (और ऐसा), एवं (इस प्रकार)—ये सभी शब्द सर्वनाम हैं। इनको सर्वोदिगणमें परिगृहीत किया गया है।

नृणांति (सुनता है), जुहोति (हवन करता है), जहाति (परित्याग करता है), दधाति (धारण करता है), दीप्यति (तेजस्वी बन रहा है), स्तूयति (स्तुति करता है), पुत्रीयति (पुत्रके समान व्यवहार करता है), धनीयति (धनवान् बन रहा है), ज्युष्यति, श्रियते (मर रहा है), विचीयति (संग्रहकी इच्छा कर रहा है) तथा निनीयति (ले जानेकी इच्छा कर रहा है)—ये कतिपय तिङन्तके सिद्ध रूप शब्द हैं।

१. शिवादिभ्योऽण् (पा०सू० ४।१।११२)

२. गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मीणि च (पा०सू० ५।१।१२४)

३. तस्य भावस्तत्पत्नी (पा०सू० ५।१।१२९)

'सर्व' शब्दके प्रथमा विभक्तिके बहुवचनमें 'सर्वे', 'पूर्वस्मात्' और सप्तमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मिन्' चतुर्थी विभक्तिके एकवचनमें 'सर्वस्मै', पञ्चमी विभक्तिके एकवचनमें 'सर्वस्मात्', षष्ठी विभक्तिके बहुवचनमें 'सर्वेषाम्' रूप बनता है।

इसी प्रकार विश्व आदि शब्दोंके रूपोंको भी आप जानें। पहले कहे गये 'पूर्व' शब्दके प्रथमा विभक्तिके बहुवचनमें 'पूर्वे, पूर्वाः' पञ्चमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मात्' और सप्तमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मिन्' चतुर्थी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मै', पञ्चमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मात्', षष्ठी विभक्तिके बहुवचनमें 'पूर्वेषाम्' रूप बनता है। इसी प्रकार विश्व आदि शब्दोंके रूपोंको भी आप जानें। पहले कहे गये 'पूर्व' शब्दके प्रथमा विभक्तिके बहुवचनमें 'पूर्वे, पूर्वाः' पञ्चमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मात्' और सप्तमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मिन्' चतुर्थी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मै', पञ्चमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मात्', षष्ठी विभक्तिके बहुवचनमें 'पूर्वेषाम्' रूप बनता है।

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! सुबन्त और तिङन्त पदोंके सिद्धरूपका वर्णन नाममात्र ही किया गया है। कुमारसे इस व्याकरणको सुनकर कात्यायनने इसको विस्तारपूर्वक कहा था। (अध्याय २०६)

## छन्द-विधान

सूतजीने कहा—अब मैं वामुदेव, गुरु, गणपति, हम्भु और सरस्वतीको नमस्कार करके अल्प बुद्धिवालोंके लिये विविध बुद्धिकी प्राप्ति-हेतु मात्रा और वर्णोंके भेदके अनुसार छन्द-विधानको कहता हूँ।

सभी गणोंमें आदि, मध्य और अन्त होता है। इसके अतिरिक्त इनमें गुरु तथा लघु होते हैं। (इन्हीं गुरु तथा लघु वर्णोंसे आठ गणोंकी रचना हुई है, जो यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण और सगण हैं।) लघु (ह्रस्व)-वर्णको ल एवं दीर्घ वर्णको ग कहा गया है। तीन गुरुवर्ण (ऽऽऽ)-को 'मगण', तीन लघुवर्ण (।।।)-को 'नगण', प्रथम गुरु और दो लघु (ऽ।।)-होनेपर 'भगण', आदि लघु और इसके बाद दो गुरु (।ऽऽ) होनेपर 'यगण', दो आगे-पीछे लघु और मध्यवर्ण गुरु (।ऽ।) होनेपर 'जगण', मध्यवर्ण लघु और दोनों ओर दो वर्ण गुरु (ऽ।ऽ) होनेपर 'रगण', अन्तवर्ण गुरु और उसके पूर्वके दो वर्ण लघु (।।ऽ) होनेपर 'सगण' तथा अन्तवर्ण लघु और उसके पूर्व दो वर्ण गुरु (ऽऽ।) होनेपर

'तगण'—इस प्रकार तीन-तीन वर्णका एक-एक गण होता है। आर्या छन्द चतुष्कला है, इसके आदि, अन्त तथा मध्य सभी जगह चार-चार गण रहते हैं। व्यञ्जनान्त, विसर्गान्त, अनुस्वारपुष्क, दीर्घ एवं संयुक्त वर्णका पहला वर्ण गुरु होता है। पदके अन्तमें निम्न वर्ण विकल्पसे गुरु होता है। गुरुवर्ण दीर्घ मात्रावाला होता है। श्लोककी श्रवणकी मधुरता आदिके लिये कभी-कभी गुरुवर्ण भी लघुके रूपमें व्यवहृत होता है। छन्दोंको श्लोक तथा आर्यादिके नामोंसे अभिहित किया जाता है। विच्छेद स्थानको यति (विराम) कहा जाता है। इसका नाम विच्छेदन भी है। निर्दिष्ट स्थानमें यति न होनेपर यतिच्छेद या यतिभङ्ग होता है। श्लोकके चतुर्धातकी पाद कहा जाता है। समान अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पादको युक् कहा जाता है। विषम अर्थात् प्रथम और तृतीय पादको अयुक् कहा जाता है, वृत्त अर्थात् जिसकी अक्षर-संख्या निर्दिष्ट होती है, वे छन्द तीन प्रकारके हैं—समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त। (अध्याय २०७)

## छन्द-विधान ( आर्या आदि वृत्तोंके लक्षण )

सूतजीने कहा—आर्या छन्दका लक्षण इस प्रकार है—आर्या छन्दमें आठ गण होते हैं। इसका विषम गण अर्थात् प्रथम, तृतीय, पञ्चम तथा सप्तम सर्वदा जगण (।ऽ।)-रहित होता है। यदि छन्दे गणमें जगण (।ऽ।) अथवा नगण (।।।) और एक लघु (।) हो तो उस गणके द्वितीय अक्षरमें लघु होनेके कारण सुबन्त या तिङन्त लक्षणवाली 'पद' संज्ञाकी प्रवृत्ति हो सकती है। यदि सातवें गणमें सभी वर्ण ह्रस्व (।।।) हों तो उसके प्रथम अक्षरसे 'पद' संज्ञाकी प्रवृत्ति होती है। यदि आर्याके उत्तरार्द्ध भागमें

पौचवें गणमें सभी वर्ण लघु (।।।) हों तो उसके प्रथम अक्षरसे ही पदका आरम्भ होता है। जिस आर्याके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें तीन-तीन गणोंके बाद पहले पादका विराम होता है, उसको पष्ठा नामकी आर्या कहते हैं। जिस आर्याके पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध या दोनोंमें अथवा तीन गणोंपर पादविराम होता है, उसका नाम विपुला है। इन तीन विशेषताओंके कारण इसके तीन भेद हो जाते हैं, जिनमें—१-आदिविपुला, २-अन्तविपुला और ३-उभयविपुला कहा गया है। जिस आर्या छन्दके द्वितीय तथा चतुर्थ गण गुरु

अक्षरोंके बीचमें होनेके साथ ही जगण अर्थात् मध्य गुरु ( १५१ )-से युक्त हों तो उसे मुखपूर्वादिचपल नामकी आर्या कहते हैं। जिस आर्याके दूसरे उत्तरार्द्धमें चपलका ही लक्षण हो तो उसे सज्जन आर्या कहा जाता है। जहाँ आर्याका 'उत्तरार्द्ध' पूर्वार्द्धके समान ही होता है अर्थात् पूर्वार्द्धकी भाँति ही उसके उत्तरार्द्धमें भी छटा गण मध्य गुरु ( १५१ ) अथवा सर्व लघु ( १११ ) होता है तो उसे गीति की संज्ञासे अभिहित करते हैं। यदि आर्यामें उत्तरार्द्धकी भाँति पूर्वार्द्ध भी हो तो उसको उपगीति आर्या कहा जाता है। आर्यामें जब यही क्रम विपरीत हो जाता है तो वह गीति न होकर उद्गीति छन्द बन जाता है। यदि गीति-जातिवाले छन्दका अन्तिम वर्ण गुरु हो तो वही आर्या गीति नामक छन्द हो जाता है।

यदि विषम (प्रथम और तृतीय) पादमें ६-६, सम (द्वितीय तथा चतुर्थ) पादमें ८-८ मात्राएँ हों और उन सभीका प्रत्येक पाद एक गण, एक लघु तथा एक गुरुसे संयुक्त हो तो वहाँपर वैतालीय छन्द होता है। किंतु इसीके प्रत्येक चरणमें एक-एक गुरु और बढ़ जाय तो उसको औपच्छन्दसिक छन्द माना गया है।

उपर्युक्त वैतालीय छन्दके प्रत्येक चरणके अन्तमें जो गण, लघु तथा गुरुकी व्यवस्था मानी गयी है, यदि उनके स्थानपर भगण ( ५११ ) एवं दो गुरुओं ( ५५ )-को रख दिया जाय तो उसे अष्टातलिका छन्दके नामसे जानना चाहिये। यदि इसी छन्दके प्रत्येक पादमें द्वितीय मात्रा पराक्षित हो तो वह दक्षिणान्तिका छन्द होता है।

वैतालीय विषमपादमें उदीच्य और समपादमें प्राञ्च वृत्तिका प्रयोग होता है। जब समपाद (द्वितीय तथा चतुर्थ चरण)-में पञ्चम मात्राके साथ चतुर्थ मात्रा संयुक्त होती है तो उसे प्राञ्चवृत्ति एवं पादसंयोगके कारण जब प्रथम और तृतीय चरणमें दूसरी मात्रा तीसरी मात्राके साथ सम्मिलित हो तो उसे उदीच्यवृत्ति नामक वैतालीय छन्द कहते हैं। जब दोनों छन्दोंके लक्षण एक ही छन्दमें प्रयुक्त हों अर्थात् उस छन्दके प्रथम तथा तृतीय चरणमें तृतीय मात्राके साथ द्वितीय मात्रा संयुक्त हो जाय और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणमें पञ्चम मात्राके साथ चतुर्थ मात्रा संयुक्त हो जाय तो वह प्रवृत्तक नामक वैतालीय छन्द हो जाता है। जब वैतालीय

छन्दमें प्रथम और तृतीय, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण विषम-पादोंके ही अनुसार हों अर्थात् प्रत्येक पाद चौदह लकारों (मात्राओं)-से युक्त हो और उनमें द्वितीय मात्रा तृतीयसे संलग्न होती हो तो उसे चारुहासिनी वैतालीय छन्द कहते हैं।

वक्त्र जातिके छन्दमें पादके प्रथम वर्णके पश्चात् सगण ( १५ ) और नगण ( १११ )-का प्रयोग नहीं करना चाहिये। इनके अतिरिक्त उनमें अन्य किसी भी गणका प्रयोग हो सकता है, किंतु पादके चतुर्थ अक्षरके बाद भगण ( ५११ ) का प्रयोग उचित है।

जिस वक्त्र जातिके छन्दमें सम (द्वितीय एवं चतुर्थ)-पादके चौथे अक्षरके बाद जगण ( १५१ )-का प्रयोग हो तो वह पञ्चावक्त्र छन्द है, किंतु कुछ लोग इसके विपरीत प्रथम और तृतीय पादमें चौथे अक्षरके बाद जगण ( १५१ )-का प्रयोग करते हैं। जब विषमपादोंमें चतुर्थ वर्णके बाद नगण ( १११ ) हो और समपादोंमें चतुर्थ वर्णके बाद सगण ( १५५ )-का प्रयोग किया जाय तो वह विपुला नामक वक्त्र छन्द है। जब समपादोंमें सातवीं अक्षर लघु ( १ ) होता है अर्थात् चौथे वर्णके बाद जगण ( १५१ ) हो तो उसको विपुलावक्त्र छन्द कहते हैं। आचार्य सैतनका मत है कि विपुलावक्त्रके सम और विषम सभी पादोंमें लघु ( १ ) होना चाहिये। जब प्रथम और तृतीय पादमें चतुर्थ अक्षरके बाद सगण ( १५५ )-को बाधित करके विकल्परूपसे भगण ( ५११ ), सगण ( ५१५ ), नगण ( १११ ) एवं तगण ( ५५१ ) आदि हों तो वहाँ विपुलावक्त्र छन्द होता है।

जिस छन्दके प्रत्येक पादमें सोलह लकार हों तथा पादके अन्तिम अक्षर गुरु हों, उसे मात्रासमक छन्द कहा गया है। इस छन्दमें नवम लकार किसीसे मिला नहीं रहता। जिस मात्रासमकके चारों चरणोंमें पाँचवीं तथा आठवीं मात्रा (लघ्वर) लघु होती है, उसका नाम विश्लोक है। जिस मात्रासमकके चरणमें बारहवीं लकार अपने स्वरूपमें ही स्थित रहता है, किसीसे मिला नहीं, उसका नाम वानवासिक है। जिसके चारों चरणोंमें पाँचवीं, आठवीं तथा नवीं मात्रा (लकार) लघु होती है तो उसे चित्रा कहा जाता है।

उपर्युक्त सममात्रिक, विश्लोक, वानवासिका, चित्रा तथा उपचित्रा नामके छन्दोंमें जिस किसी भी छन्दके एक-एक

१. जहाँ नवीं लकार दसवेंके साथ मिलकर गुरु हो जाता है, वहाँ उपचित्रा नामक छन्द होता है।



चरणको लेकर उससे चार चरणोंवाले अन्य छन्दकी रचना की जाय, उसे पादाकुलक छन्द कहते हैं।

यदि इसी सोलह मात्राओंवाले छन्दके प्रत्येक पादमें लघु मात्राओंका प्रयोग हो और ये किसीसे मिलकर दोष न हो गयी हों तो उसे वृत्तमात्रा छन्द कहते हैं। जब इन्हों छन्दोंके अनुसार पूर्वाङ्ग भागमें लघु-ही-लघु और उत्तराङ्ग भागमें गुरु-ही-गुरु वर्ण या मात्राएँ होती हैं तो उसे ज्योति छन्द कहते हैं। जब इस छन्दके विपरीत पूर्वाङ्ग भागमें सब वर्ण या मात्राएँ गुरु हों और उसके उत्तराङ्ग भागमें सब लघु

हों तो उसे सौम्या छन्द कहा जाता है।

जिस छन्दके पूर्वाङ्गमें अष्टाईस लघु तथा एक गुरु और उत्तराङ्गमें तीस लघु एवं एक गुरु मात्रा हो, उसे शिखा कहते हैं। यदि छन्दमें यही क्रम विपरीत होता है, अर्थात् पूर्वाङ्गमें तीस लघु, एक गुरु और उत्तराङ्गमें अष्टाईस लघु, एक गुरुको मात्रा होती है तो उसे खड्गा कहा जाता है। जिस मात्रासमक छन्दके पूर्वाङ्ग एवं उत्तराङ्गमें क्रमशः सत्ताईस-सत्ताईस लघु मात्राएँ और एक-एक गुरु मात्रा होती है, उसे रुचिरा कहते हैं। (अध्याय २०८)

### छन्द-विधान ( समवृत्तलक्षण )

श्रीसूतजीने कहा—हे विप्रो! एक गुरु (५) तथा दो गुरु (५५)-से पृथक्-पृथक् बने हुए छन्दोंको क्रमशः श्री या उक्था स्त्री या अत्युक्था के नामसे अभिहित किया गया है। एक मात्र मगण (५५५)-से बने हुए छन्दको 'वर्षी', एक रगण (५१५)-से बने हुए छन्दको मध्या और एक नगण (५५५) तथा एक गुरु (५)-से बने हुए छन्दको कन्या कहते हैं। ये प्रतिष्ठा छन्दके भेद हैं। भगण (५११) और दो गुरु (५५)-से युक्त छन्दका नाम यङ्गि है। यह सुप्रतिष्ठाका भेद है। तगण (५५१) एवं यगण (१५५)-से संयुक्त छन्दका नाम तनुषध्या है। नगण (१११) और यगण (१५५)-से बने हुए छन्दको बालसलित कहा जाता है। ये छः वर्णवाले गायत्री छन्दके भेद हैं।

मगण (५५५), सगण (११५) और एक गुरु (५)-से बने हुए छन्दको मदनैष्ठा कहते हैं। विद्वानोंने इसे उष्णिक् का भेद स्वीकार किया है। जिस छन्दके चारों पादमें दो भगण (५११, ५११) और दो गुरु (५५) हों, वह चित्रपदा के नामसे प्रसिद्ध है। जिस छन्दके चारों चरण दो मगण (५५५, ५५५) एवं दो गुरु (५५)-से संयुक्त होते हैं, वह विद्युन्माला नामक छन्द है। जिस छन्दके प्रत्येक पादमें भगण (५११), तगण (५५१), एक लघु (१) और एक गुरु (५) हो, उसे माणवक कहते हैं। जिसके चारों चरणोंमें समान रूपसे मगण (५५५), नगण (१११) तथा दो गुरु (५५) होते हैं, उसे हंसकृत नामक छन्द माना गया है। जिसके चारों चरण एक रगण (५१५), एक जगण (१५१), एक गुरु (५) तथा एक लघु (१)-से संयुक्त

होते हैं, वह सम्पानिका नामका छन्द है और जिसके प्रत्येक चरणमें एक जगण (१५१), एक रगण (५१५), एक लघु (१) तथा एक गुरु (५) होता है, उसका नाम प्रमाणिका है। इन दोनोंसे भिन्न जो छन्द होता है, उसको वितान के नामसे जानना चाहिये। ये सब आठ वर्णोंके चरणवाले अनुष्टुप् छन्दके भेद हैं।

रगण (५१५), नगण (१११) और सगण (११५)-से जिस छन्दका प्रत्येक चरण समन्वित होता है, उसका नाम इल्लमुच्छे है। जो छन्द प्रत्येक पादमें दो नगण (१११, १११) और एक मगण (५५५)-से संयुक्त रहता है, उसे शिशुभृता कहते हैं। ये नौ वर्णोंके चरणवाले बृहती छन्दके भेद हैं। जो अपने चारों चरणोंमें समान रूपसे सगण (११५), भगण (५५५), जगण (१५१) और एक गुरु (५)-से युक्त है, उस छन्दको विशाजिता कहते हैं। प्रत्येक पादमें मगण (५५५), नगण (१११), यगण (१५५) और एक गुरु (५)-से पूर्ण छन्दका नाम षण्ण है। मयूरसारिणी नामक छन्दके चारों चरणोंमें समान रूपसे एक रगण (५१५), एक जगण (१५१), एक रगण (५१५) एवं एक गुरु (५) होता है। रुक्मवती छन्दके प्रत्येक पादमें एक भगण (५११), एक मगण (५५५), एक सगण (११५) और एक गुरु (५)-का विधान है। जिस छन्दके सभी चरणोंमें मगण (५५५), भगण (५११), सगण (११५) और एक गुरु (५) होता है, उसका नाम मत्ता है। जिसके प्रत्येक चरणमें नगण (१११), रगण (५१५), जगण (१५१) तथा एक गुरु (५) है, उसे मनोरमा कहा गया है। ये सभी

दस वर्णोंवाले पङ्क्ति छन्दके भेद हैं।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें दो तगण (५५, ५५), एक जगण (१५१), दो गुरु (५५) होते हैं, उसे इन्द्रवज्रा कहते हैं और जिस छन्दमें क्रमशः एक जगण (१५१), एक तगण (५५), एक जगण (१५१) एवं दो गुरु (५५) हों, उसका नाम उपेन्द्रवज्रा है। जब एक ही छन्दमें ये दोनों इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा छन्द सम्मिलित रहते हैं, तो उसे उपजाति कहा जाता है। इनके अनेक भेद हैं। यथा—

सुमुखी नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें एक नगण (१११), दो जगण (१५१, १५१), एक लघु (१) और एक गुरु (५) होता है। दोषकमें तीन भगण (५११, ५११, ५११) और दो गुरु (५५) होते हैं। शालिनी नामक जो छन्द है उसके सभी चरणोंमें एक मगण (५५५), दो तगण (५५, ५५) एवं दो गुरुओं (५५) की युति होती है। इसके प्रत्येक चरणमें चौथे तथा सातवें अक्षरपर विराम होता है। खातोभी छन्दके प्रत्येक चरणमें दो मगण (५५५, ५५५), एक तगण (५५१) होता है और उसके बाद दो गुरु (५५) होते हैं। इसमें भी चार, सातपर विराम होता है।

जो छन्द प्रत्येक चरणमें मगण (५५५), भगण (५११), नगण (१११), नगण (१११), एक लघु (१) और एक गुरु (५) से युक्त हो, उसे धर्मविलम्बिता नामक छन्द कहा गया है। रघोद्धता छन्द अपने सभी चरणोंमें एक रगण (५१५), नगण (१११), रगण (५१५), एक लघु (१) एवं एक गुरु (५) से संयुक्त होता है। स्वागत के प्रत्येक पादमें एक रगण (५१५), एक नगण (१११), एक भगण (५११) और दो गुरु (५५) होते हैं। वृत्ता नामक छन्दके प्रत्येक पादमें दो नगण (१११, १११), एक सगण (११५) और दो गुरु (५५) सन्निहित होते हैं। समद्विका छन्दमें दो नगण (१११, १११), एक रगण (५१५), एक लघु (१) तथा एक गुरु (५) होता है। जिस छन्दके प्रत्येक चरण रगण (५१५), जगण (१५१), एक लघु (१) तथा एक गुरु (५) से युक्त हों, वह श्येनिका नामक छन्द है। जहाँ सभी चारों चरणोंमें एक जगण (१५१), एक सगण (११५), एक तगण (५५१), दो गुरु (५५) हों तो वहाँ शिखण्डित छन्द होता है। महात्मा पिङ्गलने इन्हें त्रिष्टुप्-छन्दका भेद

कहा है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें एक रगण (५१५), एक नगण (१११), एक भगण (५११), एक सगण (११५) हो, उसका नाम चन्द्रवर्त्म और जिसमें एक जगण (१५१), एक तगण (५५१), एक जगण (१५१), एक रगण (५१५) हो, उसका नाम वंशस्थ छन्द है। जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें दो तगण (५५१, ५५१), एक जगण (१५१) हो, उसे इन्द्रवंशा और जिसमें चार सगण-हो-सगण (११५, ११५, ११५, ११५) होते हैं, उसे तौटक छन्द माना गया है। जिसके प्रत्येक पादमें नगण (१११), दो भगण (५११, ५११) और रगण (५१५) हो, उसका नाम हुतविलम्बित है।

जो छन्द अपने सभी चारों चरणोंमें दो नगण (१११, १११), एक सगण (५५५), एक यगण (१५५) से संयुक्त रहता है, उसका नाम पुट है। इस छन्दमें आठ और चार वर्णों पर यति होती है। दो नगण (१११, १११) और दो रगण (५१५, ५१५) से समन्वित प्रत्येक चरणवाला जो छन्द है, उसका नाम मुदितवदना है। इसमें सात और पाँच वर्णों पर यति होती है। जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (१११), यगण (१५५), नगण (१११), यगण (१५५) हो, उस छन्दको कुसुमविभ्रंश कहते हैं। जगण (१५१), सगण (११५), जगण (१५१), सगण (११५) से युक्त प्रत्येक पादवाले छन्दका नाम जलोद्धतगति है। प्रत्येक पादमें चार रगण (५१५, ५१५, ५१५, ५१५) से युक्त छन्द खग्विणी माना गया है। चार-चार यगणों (१५५, १५५, १५५, १५५) से जिसके सभी चरण संयुक्त हैं, उसको भुजङ्गप्रयात छन्दकी संज्ञा दी गयी है। त्रिष्वद्वता छन्द नगण (१११), भगण (५११), जगण (१५१) और रगण (५१५)—इन चार वर्णों से युक्त होता है।

मणिमाला नामक जो छन्द है, उसके प्रत्येक पादमें तगण (५५१), यगण (१५५), तगण (५५१) तथा यगण (१५५) होता है। जिस छन्दके प्रत्येक पादमें तगण (५५१), भगण (५११), जगण (१५१) और रगण (५१५) हो तो उसका नाम सलिला है। इस छन्दमें छठे वर्ण पर यति होती है। प्रमिताक्षरा वृत्त सगण (११५), जगण (१५१), सगण (११५), सगण (११५) से युक्त होता है। उज्ज्वला

छन्दमें नगण (१११), नगण (१११), भगण (३११) तथा रगण (३१५) होते हैं। जो छन्द मगण (५५५), मगण (५५५), यगण (१५५), यगण (१५५)-से संयुक्त है, उसका नाम वैश्वदेवी है। इसमें पाँच और सात वर्णोंपर यति होती है। जब छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (५५५), भगण (३११), सगण (११५) और मगण (५५५) हो तो उसे जलधरमाला कहते हैं। चन्द्रवर्त्म छन्दसे यहाँतक बारह वर्णवाले जगती छन्दके भेद हैं।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (१११), नगण (१११), तगण (५५१), तगण (५५१) और एक गुरु (५) हो, तो उसका नाम क्षमावृत्त है। इसमें सात और छः वर्णोंपर यति होती है। प्रहर्षिणी नामक छन्द मगण (५५५), नगण (१११), जगण (१५१), रगण (३१५) एवं एक गुरु (५)-से युक्त होता है। इसके प्रत्येक चरणमें तीन और दस वर्णपर यतिका विधान है। जो छन्द जगण (१५१), भगण (३११), सगण (११५), जगण (१५१) और एक गुरु (५)-से सन्निहित होता है, उसको रुचिर कहा गया है। इसमें यति चार तथा नौ वर्णोंपर होती है। मलमयूर नामक छन्दको मगण (५५५), तगण (५५१), यगण (१५५), सगण (११५) और एक गुरु (५)-से युक्त माना गया है। इसके प्रत्येक पादमें चार तथा नौ वर्णोंपर यति होती है।

मधुभाषिणी छन्दके प्रत्येक चरणमें सगण (११५), जगण (१५१), सगण (११५), जगण (१५१) और एक गुरु (५) होता है। सुन्दरिणी नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें सगण (११५), जगण (१५१), सगण (११५) होते ही हैं, किंतु अन्तिम जगणके स्थानपर इसमें मगण (५५५) होता है। अन्तमें एक गुरु (५) रहता है और जो छन्द नगण (१११), नगण (१११), तगण (५५१), तगण (५५१) तथा एक गुरु (५)-से युक्त है, उसका नाम चन्द्रिका है। इसमें सात और छः वर्णोंपर यति होती है। ये तेरह वर्णवाले अतिजगती छन्दके अष्टान्तर भेद हैं।

मगण (५५५), तगण (५५१), नगण (१११), सगण (११५) और दो गुरु (५ ५)-से युक्त छन्दको असम्प्राधा कहते हैं, इसमें पाँच और नौ वर्णोंपर यति होती है। जिस

छन्दमें नगण (१११), नगण (१११), रगण (३१५), सगण (११५), एक लघु (१) और एक गुरु (५) हो, उसे अष्टाजिता छन्द कहा गया है। इसमें सात-सात वर्णोंपर यति होती है। यदि प्रत्येक चरणमें नगण (१११), नगण (१११), भगण (३११), नगण (१११), एक लघु (१) तथा एक गुरु (५) हो, तो उसे प्रहरणकालिका के नामसे जाना जाता है। इसमें भी सात-सात वर्णपर ही यति होती है। वसन्ततिलका छन्दमें सभी चरण क्रमशः तगण (५५१), भगण (३११), दो जगण (१५१, १५१), दो गुरु (५५)-से युक्त होते हैं। इसीको सिंहेव्रत और उद्धर्षिणी भी कहते हैं। जिस छन्दके प्रत्येक पादमें भगण (३११), जगण (१५१), सगण (११५), नगण (१११) तथा दो गुरु (५५) हों उसका नाम इन्दुवदना होता है। जिसका प्रत्येक चरण नगण (१११), रगण (३१५), नगण (१११), रगण (३१५), एक लघु (१) और एक गुरु (५)-से संयुक्त होता है, उसीको सुकेली छन्द कहते हैं। यहाँतक चौदह वर्णोंके चरणवाले सर्करी छन्दके अष्टान्तर भेदोंका वर्णन प्रतिपादित किया गया।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें चौदह लघु (चार नगण फिर दो लघु वर्ण) और अन्तमें एक गुरु हो, वह शक्तिकला छन्द है। इसी छन्दमें जब यति छः और नौ वर्णोंपर हो तो वह खक्क अर्थात् माला नामक छन्द हो जाता है। जब वह यति आठ एवं सात वर्णोंपर हो तो वह धर्षिगुणनिकार नामक छन्द बन जाता है। मालिनी छन्द अपने प्रत्येक चरणमें नगण (१११), नगण (१११), सगण (५५५), यगण (१५५), यगण (१५५)-से सन्निहित होता है। इसमें आठ और सात वर्णोंपर यति होती है। प्रभद्रक नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (१११), जगण (१५१), भगण (३११), जगण (१५१) और रगण (३१५) होता है। इसमें सात और आठ वर्णोंपर यति होती है। एता नामका छन्द सगण (११५), यगण (१५५), नगण (१११), नगण (१११) और यगण (१५५)-से संयुक्त होता है। धिप्रलेखा छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (५५५), रगण (३१५), मगण (५५५), यगण (१५५) तथा यगण (१५५) होता है, यति सात और आठ वर्णोंपर होती है।

संक्षिप्त गुरुहपुराणाङ्क

यहाँतक पंद्रह वर्णोंके चरणवाले अतिशर्करी छन्दके अवान्तर भेदोंका वर्णन बताया गया है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें भगण (५११), रगण (५१५), नगण (१११), नगण (१११), नगण (१११) तथा एक गुरु (५) होता है और जिसमें सात तथा नौ वर्णोंपर यति हो तो उसे वृषभगजजुमित छन्द कहते हैं। जिसके सभी चरणोंमें नगण (१११), जगण (१५१), भगण (५११), जगण (१५१), रगण (५१५) और एक गुरु (५) हो, उसका नाम वाणिनी छन्द है। यति चरचकी समाप्तिपर होती है। मित्रलद्वारा इन दोनों छन्दोंको अष्टि श्रेणीके छन्दके अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

रगण (१५५), मगण (५५५), नगण (१११), सगण (११५), भगण (५११), एक लघु (१) और एक गुरु (५)-से संयुक्त चरणवाले छन्दका नाम तिखरिणी है। इसमें यति छः तथा ग्यारह वर्णोंपर होती है। पुष्पी छन्दके प्रत्येक चरणमें जगण (१५१), सगण (११५), जगण (१५१), सगण (११५), रगण (१५५), एक लघु (१) तथा एक गुरु (५) होता है। इसकी यति आठ और नौ वर्णोंपर होती है। जिस छन्दके चरण भगण (५११), रगण (५१५), नगण (१११), नगण (१११), भगण (५११), एकलघु (१) तथा एक गुरु (५)-से संयुक्त होते हैं और जिनमें दस एवं सात वर्णोंपर यति होती है, उसे वंशपत्रपतित कहा गया है।

हरिणी छन्द नगण (१११), सगण (११५), मगण (५५५), रगण (५१५), सगण (११५), एक लघु (१) और एक गुरु (५)-से संसृष्ट होता है। इसमें यति क्रमशः छः, चार तथा सात वर्णोंपर होती है। मगण (५५५), भगण (५११), नगण (१११), तगण (५५१), तगण (५५१), दो गुरु (५५)-से युक्त चरणोंवाले छन्दको मन्दाक्रान्ता कहते हैं। इसमें चार, छः और सात वर्णोंपर यति होती है। नईटक छन्द नगण (१११), जगण (१५१), भगण (५११), जगण (१५१), जगण (१५१), एक लघु (१) और एक गुरु (५)-से संयुक्त होता है। इसमें यति सात और दस वर्णोंपर होती है। यदि यही यति सात, छः और चार वर्णोंपर हो तो छन्दका नाम कोकिलक हो जाता है। तिखरिणीसे कोकिलकतक इन छन्दोंको सत्रह वर्णोंवाले अष्टाष्टि छन्द-

वर्गमें समझना चाहिये।

जिस छन्दमें मगण (५५५), तगण (५५१), नगण (१११), रगण (१५५), रगण (१५५), रगण (१५५) होता है और पाँच, छः तथा सात वर्णोंपर यति होती है, उसको कुसुमितलता छन्द कहते हैं। इसे अठारह अक्षरोंके चरणवाले भृति छन्दका अवान्तर भेद कहा गया है।

रगण (१५५), मगण (५५५), नगण (१११), सगण (११५), रगण (५१५), रगण (५१५) और एक गुरु (५)-से युक्त छन्दका नाम मेघविस्फूर्जिता है। इसमें छः, छः और सात वर्णोंपर यति होती है। शार्दूलविखीरित नामक जो छन्द है, उसके प्रत्येक चरणमें मगण (५५५), सगण (११५), जगण (१५१), सगण (११५), दो तगण (५५१, ५५१) तथा एक गुरु (५) होता है। इसमें बारह और सात वर्णोंपर यतिका विधान है। ये दोनों उन्नीस वर्णोंके चरणवाले अतिभृति छन्द-वर्गके भेद कहे गये हैं।

इसके बाद बीस वर्णोंके चरणवाले कृति नामवाले छन्दोंका निरूपण किया जा रहा है—

जिसके प्रत्येक चरणमें भगण (५११), रगण (५१५), मगण (५५५), नगण (१११), रगण (१५५), भगण (५११), एक लघु (१), एक गुरु (५) होता है और क्रमशः सात, सात तथा छः वर्णोंपर यति होती है, उसे सुवदना छन्द कहते हैं। जिसके प्रत्येक पादमें रगण (५१५), जगण (१५१), रगण (५१५), जगण (१५१), रगण (५१५), जगण (१५१), एक लघु (१), एक गुरु (५) हो और पादान्तमें यति होती हो, उसे वृत्त छन्द कहते हैं।

जिस छन्दमें मगण (५५५), रगण (५१५), भगण (५११), नगण (१११), रगण (१५५), रगण (१५५), रगण (१५५) हो और प्रत्येक चरणमें सात-सात वर्णोंपर यति होती हो, वह स्वग्धरा छन्द है। प्रत्येक चरणमें इक्कीस वर्णोंवाले इस छन्दको प्रकृति वर्गका छन्द माना गया है।

जिसके सभी पाद क्रमशः भगण (५११), रगण (५१५), नगण (१११), रगण (५१५), नगण (१११), रगण (५१५), नगण (१११) तथा एक गुरु (५)-से संयुक्त हों और उनमें दस तथा बारह वर्णोंपर यति हो, उसे



सुभद्रक छन्द कहते हैं। यह बाईस वर्णोंवाले आकृति छन्दके अन्तर्गत है।

जो नगण ( 111 ), जगण ( 151 ), भगण ( 511 ), जगण ( 151 ), भगण ( 511 ), जगण ( 151 ), भगण ( 511 ), एक लघु ( 1 ) तथा एक गुरु ( 5 )-से युक्त छन्द हो और उसमें ग्यारह तथा बारह वर्णोंपर यति हो, उसका नाम अक्षललित है। इसे अन्य ग्रन्थोंमें अद्वितनया भी कहा गया है। जिस छन्दमें मगण ( 555 ), मगण ( 555 ), तगण ( 551 ), नगण ( 111 ), नगण ( 111 ), नगण ( 111 ), नगण ( 111 ), एक लघु ( 1 ) तथा एक गुरु ( 5 ) होता है और जिसमें आठ, पाँच तथा दस वर्णोंपर यति होती है, उसको मत्ताक्रीड कहा जाता है। ये दोनों छन्द तेईस वर्णोंवाले विकृति छन्द-वर्गके अन्तर्गत हैं।

जिस छन्दका प्रत्येक पाद भगण ( 511 ), तगण ( 551 ), नगण ( 111 ), सगण ( 115 ), भगण ( 511 ), भगण ( 511 ), नगण ( 111 ), सगण ( 155 )-से संयुक्त होता है और उसमें पाँच, सात तथा बारह वर्णोंपर यति होती है, उसको तन्वी छन्द कहते हैं। यह तन्वी छन्द चौबीस वर्णोंके चरणवाले संयुक्ति छन्द-वर्गका अवान्तर भेद है।

क्रीडपदा नामका जो छन्द है, उस छन्दमें भगण ( 511 ), मगण ( 555 ), सगण ( 115 ), भगण ( 511 ) एवं नगण ( 111 ), नगण ( 111 ), नगण ( 111 ), नगण ( 111 ),

एक गुरु ( 5 ) होता है और पाँच-पाँच, आठ तथा सात वर्णोंपर यति होती है। यह पच्चीस वर्णोंवाले अतिकृति छन्दके अन्तर्गत है।

अब छब्बीस वर्णोंवाले उत्कृति वर्गके छन्दको कहा जा रहा है, आप उसे सुनें—

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण ( 555 ), मगण ( 555 ), तगण ( 551 ), नगण ( 111 ), नगण ( 111 ), नाण ( 111 ), राण ( 515 ) तथा सगण ( 115 ) हों और आठ, ग्यारह एवं सात वर्णोंपर यति होती है, उसे भुजङ्गवृत्तिप्रपात कहते हैं। यह छब्बीस वर्णोंवाले उत्कृति छन्द-वर्गका एक भेद है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें एक मगण ( 555 ), छः नगण ( 111, 111, 111, 111, 111, 111 ), एक सगण ( 115 ) और दो गुरु ( 55 ) हों, साथ ही नी, छः-छः तथा पाँच वर्णोंपर यति हो तो उसको अपह्वाय कहते हैं। यह उत्कृति वर्गका ही दूसरा भेद है।

जिसके प्रत्येक चरणमें दो नगण ( 111, 111 ) और सात राण ( 515, 515, 515, 515, 515, 515, 515 ) हों तो उसका नाम चण्डवृत्तिप्रपात छन्द है। उसे दण्डक भी कहा जाता है। यदि इस छन्दमें दो नगणको छोड़कर शेष राण वर्णोंके साथ क्रमशः एक और दो अन्य राण पदोंकी वृद्धि हो तो उसीसे व्याल और जीमूत आदि नामवाले दण्डक छन्द बनते हैं। (अध्याय २०९)

## छन्द-विधान ( अर्द्धसमवृत्त लक्षण )

श्रीमृतजीने कहा—यदि छन्दके विषमपादमें तीन सगण ( 115 ), एक लघु ( 1 ) और एक गुरु ( 5 ) वर्ण— इस प्रकार ग्यारह अक्षर हों एवं समपादमें तीन भगण ( 511 ) और दो गुरु ( 55 ) हों तो उसे उर्ध्वचित्रक कहते हैं। जिस छन्दके विषमपादमें तीन भगण ( 511 ), दो गुरु ( 55 ) हों और उसके समपादमें एक नगण ( 111 ), दो जगण ( 151 ) और एक सगण ( 155 ) हो, उसे कुतुमध्या नामक छन्द माना गया है। जिस छन्दके विषम-पादमें तीन सगण ( 115 ), एक गुरु और समपादमें तीन भगण ( 511 ) एवं दो गुरु ( 55 ) होते हैं, उसका नाम वेगवती है। जिस

छन्दके विषमपादमें एक तगण ( 551 ), एक जगण ( 151 ), एक राण ( 515 ), एक गुरु ( 5 ), हो और समपादमें एक मगण ( 555 ), एक सगण ( 115 ), एक जगण ( 151 ) तथा दो गुरु ( 55 ) हों, वह भद्रविराट् नामक छन्द होता है।

यदि विषमपादमें सगण ( 115 ), जगण ( 151 ), सगण ( 115 ), एक गुरु ( 5 ) तथा समपादमें भगण ( 511 ), राण ( 515 ), नगण ( 111 ) और दो गुरु ( 55 ) हों तो उस छन्दको केतुमती कहा जाता है। जिस छन्दके विषमपादमें दो तगण ( 551, 551 ), एक जगण ( 151 )

१. जिन वर्णोंके प्रत्येक चरणमें सत्ताईस या इससे अधिक वर्ण होते हैं, उसका सामान्य नाम दण्डक है। चण्डवृत्तिप्रपात आदि इसीके भेद हैं।

और दो गुरु (५५) तथा समपादमें जगण (१५१), तगण (५५१), जगण (१५१) एवं दो गुरु (५५) होते हैं, उसको आख्यायिकी कहते हैं। यदि विषमपादमें जगण (१५१), तगण (५५१), जगण (१५१) और दो गुरु (५५) तथा समपादमें दो तगण (५५१, ५५१), एक जगण (१५१) एवं दो गुरु (५५) हों तो उसे विपरीतछानक छन्द कहा जाता है। ऐसा पिङ्गल मुनिका अभिमत है। जब छन्दके विषमपादमें दो नगण (१११, १११), एक

रगण (५१५), एक यगण (१५५) और समपादमें एक नगण (१११) दो जगण (१५१, १५१), एक रगण (५१५) तथा एक गुरु (५) होता है तो उसे पुष्पिताग्रा कहते हैं। यदि विषमपादमें रगण (५१५), जगण (१५१) रगण (५१५), यगण (१५५) हो और समपादमें जगण (१५१), रगण (५१५), जगण (१५१), रगण (५१५) तथा एक गुरु (५) हों तो उस छन्दका नाम बाह्व्यती है। (अध्याय २१०)

### छन्द-विधान (विषमवृत्तलक्षण)

सूतजीने कहा—जिस छन्दके प्रथम पादमें आठ अक्षर, द्वितीय पादमें बारह अक्षर, तृतीय पादमें सोलह अक्षर तथा चतुर्थ पादमें बीस अक्षर होते हैं, वह पदचतुर्मुख्य नामक छन्द है, यह इस छन्दका सामान्य लक्षण है। तात्पर्य यह है कि इस छन्दमें अनुष्टुप् छन्दके प्रथम पादके बाद प्रत्येक पादमें क्रमशः चार-चार अक्षर बढ़ते जाते हैं। इसी छन्दके चारों चरणोंमें जब दो अक्षर गुरु (५५) हों तो उसे आपीङ्ग छन्द कहते हैं। अन्तिम अक्षरोंको छोड़कर शेष अक्षर लघु (१) ही होते हैं। पदचतुर्मुख्य नामक छन्दके प्रथम पादका द्वितीय आदि पादोंके साथ परिवर्तन होनेपर अनेक छन्द बनते हैं, यथा—प्रथम पादमें बारह और द्वितीय पादमें अठारह अक्षर होनेसे जो छन्द बनाता है, वह कालिका (मङ्गरी) कहलाता है। इसमें प्रथम पादके स्थानमें द्वितीय पाद और द्वितीय पादके स्थानमें प्रथम पाद हो जाता है। जब प्रथम पाद (आठ अक्षर) के स्थानमें तृतीय पाद (सोलह अक्षर) और तृतीय पादके स्थानमें प्रथम पाद हो तो लवली नामक छन्द होता है। इसी प्रकार जब प्रथम पाद (आठ अक्षर) के स्थानपर चतुर्थपाद (बीस अक्षर) और चतुर्थपादके स्थानपर प्रथम पाद हो तो उसे अमृतधारा नामक छन्द कहते हैं। यहाँतक पदचतुर्मुख्य छन्दके अवान्तर भेदोंको बतलाया गया है।

जब प्रथम पादमें सगण (११५), जगण (१५१), सगण (११५) और एक लघु (१)—इस प्रकार दस अक्षर होते हैं, द्वितीय पादमें नगण (१११), सगण (११५), जगण (१५१) और एक गुरु (५)—इस प्रकार दस अक्षर होते हैं, तृतीय पादमें भगण (५११), नगण (१११), जगण

(१५१) एक लघु (१) तथा एक गुरु (५)—ये ग्यारह अक्षर होते हैं और चतुर्थ पादमें सगण (११५), जगण (१५१), सगण (११५), जगण (१५१) तथा एक गुरु (५)—इस प्रकार तेरह अक्षर होते हैं तो वह उद्गता नामक छन्द कहलाता है। इसी उद्गता छन्दके तीसरे चरणमें जब रगण (५१५), नगण (१११), यगण (१५५) और एक गुरु (५)—इस प्रकार तेरह अक्षर हों और शेष तीन पाद पूर्ववत् अर्थात् उद्गता छन्दके समान हों हों तो सौरभक नामक छन्द होता है। इसी उद्गता छन्दके तीसरे चरणमें जब दो नगण (१११, १११), दो सगण (११५, ११५) हों तथा शेष तीनों चरण उद्गताके ही समान हों तो ललित नामक छन्द होता है। ये सब उद्गता छन्दके अवान्तर भेद हैं।

जिसके प्रथम पादमें सगण (५५५), सगण (११५), जगण (१५१), भगण (५११) और दो गुरु (५५)—इस प्रकार चौदह अक्षर होते हैं, द्वितीय चरणमें सगण (११५), नगण (१११), जगण (१५१), रगण (५१५) तथा एक गुरु (५)—इस प्रकार तेरह अक्षर होते हैं, तीसरे चरणमें दो नगण (१११, १११) और एक सगण (११५)—इस प्रकार नौ अक्षर होते हैं तथा चौथे चरणमें तीन नगण (१११, १११, १११), एक जगण (१५१) तथा एक यगण (१५५)—इस प्रकार पन्द्रह अक्षर होते हैं तो ऐसा छन्द उपस्थितप्रचुषित नामवाला छन्द कहलाता है। इसी उपस्थितप्रचुषित छन्दके जब तीन चरण वैसे ही हों, केवल तृतीय चरणमें परिवर्तन हो, अर्थात् उसमें दो नगण (१११, १११), एक सगण (११५), पुनः दो नगण

(111, 111) तथा एक सगण (115) — इस प्रकार प्रकार उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दका जब पहला पाद अठारह अक्षर हों तो वह वर्धमान नामक छन्द होता है। वहीं हो और शेष तीन पादोंमें तगण (551), जगण (151), तथा रागण (515) — इस प्रकार नौ अक्षर हों तो ऐसा छन्द शुद्धविगद कहलाता है। ये छन्द उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दके अवान्तर भेदोंमें आते हैं। (अध्याय २११)

### छन्द-विधान (प्रस्तार-निरूपण)

सूतजीने कहा—अब प्रस्तारके<sup>१</sup> विषयमें बतला रहा हूँ। ऊपरके पादमें आदि अक्षर गुरु हो तथा उसके नीचेके पादमें लघु अक्षर हो, वह एकाक्षर प्रस्तार है। उसके बाद इसी क्रमसे वर्णोंकी स्थापना करे अर्थात् पहले गुरु और उसके नीचे लघु अक्षरकी स्थापना करे, यह द्व्यक्षर-प्रस्तार है। प्रस्तारके अनन्तर नष्टका निरूपण इस प्रकार है—नष्ट संख्याको आधा करनेपर जब वह दो भागोंमें बराबर बँट जाय तब एक लघु लिखना चाहिये, यदि आधा करनेपर विषम संख्या प्राप्त हो तो उसमें एक जोड़कर सम बना ले और इस प्रकार पुनः आधा करे। ऐसी अवस्थामें एक गुरु अक्षरकी प्राप्ति होती है, उसे भी अन्यत्र लिख ले। जितने अक्षरवाले छन्दके भेदकी जानना हो, उतने अक्षरोंकी पूर्ति होनेतक पूर्वोक्त प्रणालीसे गुरु-लघुका उल्लेख करता रहे।

अब उद्दिष्टके विषयमें बतलाया जा रहा है—उद्दिष्टकी प्रक्रिया जाननेके लिये छन्दके गुरु-लघु क्रमशः एक पंक्तिमें लिखकर उनके ऊपर क्रमशः एकसे लेकर दूने-दूने अङ्क

रखा जाय अर्थात् प्रथम अक्षरपर एक, द्वितीयपर दो, तृतीयपर तीन—इस क्रमसे संख्या होगी। बिना प्रस्तारके ही वृत्त-संख्या जाननेके उपायको संख्या कहते हैं। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार है—जितने अक्षरके छन्दकी संख्या जाननी हो, उसका आधा भाग निकालनेसे दोकी उपलब्धि होगी। उसे अलग रख ले। विषम संख्यामें एक घटाकर शून्यकी प्राप्ति होगी, उसे दोके नीचे रखकर शून्यके स्थानमें दुगुना करे, इससे प्राप्त हुए अङ्कको ऊपरके अर्धस्थानमें रखे और उतनेसे ही गुणा करे।

एकद्वयादिलगाक्रियाकी सिद्धिके लिये मेरुप्रस्तारको बतलाया जा रहा है। किसी छन्दमें कितने लघु, कितने गुरु तथा एकाक्षरदि छन्दोंके कितने वृत्त होते हैं, इसका ज्ञान मेरुप्रस्तारसे होता है। मेरुप्रस्तारमें नीचेसे ऊपरकी ओर आधा-आधा अंगुल विस्तार कम होता जाता है। छन्दकी संख्याको दूनी करके एक-एक घटा दिया जाय तो उतने ही अंगुलका उसका अध्वा (प्रस्तारदेश) होता है। इस प्रकार छन्दःशास्त्रका सार बतलाया गया। (अध्याय २१२)

### सदाचार एवं शीचाचारका निरूपण

सूतजीने कहा—हे शौनक! श्रीहरिसे सुनकर ब्रह्माजीने व्याससे सब कुछ देनेवाले ब्राह्मणादि वर्णोंके सदाचारको जैसे कहा है, उसी प्रकार मैं कहता हूँ।

श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)—का भली प्रकारसे अध्ययन करके श्रुतिप्रतिपादित कर्मका पालन करना चाहिये। (क्योंकि श्रुति ही सब कर्मोंका मूल है।) यदि (उपलब्ध) श्रुतियोंमें कोई कर्म ज्ञात नहीं हो रहा है तो उसको स्मृतिशास्त्रके अनुसार जानकर करना चाहिये

(क्योंकि स्मृतिशास्त्र भी श्रुतिमूलक होनेके कारण ही कर्मके बोधमें प्रमाण माने जाते हैं) और स्मार्तधर्मके पालनमें असमर्थ होनेपर विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि वह सदाचारका पालन करे। कर्ममार्गका दर्शन करानेके लिये श्रुति तथा स्मृति—ये नेत्रस्वरूप हैं।

श्रुतिमें कहा गया धर्म परम धर्म है। स्मृति और शास्त्रसे प्रतिपादित धर्म अपर धर्म है। इस प्रकार श्रुति, स्मृति और शिष्टाचारसे प्राप्त धर्म—ये तीन प्रकारके सनातनधर्म हैं।

१- किस छन्दके कितने भेद हो सकते हैं, समान्यरूपसे इसका ज्ञान करनेवाली प्रणालीको 'प्रस्तार' कहा जाता है। प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्वयादिलगाक्रिया, संख्या तथा अध्वयोग — ये छः प्रणालियाँ हैं।

सत्य, दान, दया, निर्लोभता, विद्या, यज्ञ, पूजा और इन्द्रियदमन—ये शिष्टाचारके आठ पवित्र लक्षण कहे गये हैं। पूर्व कालमें लोगोंके शरीर और इन्द्रिय सत्वगुणप्रधान एवं तेजोमय होते थे, अतः जिस प्रकार कमलपत्रपर जल नहीं रुकता उसी प्रकारसे उनके शरीर तथा इन्द्रियोंमें पाप नहीं टिक पाते थे।

सत्वगुणके विकासके लिये सनातनधर्म (वर्णाश्रम-धर्म, सदाचार आदि) —के पालनका सर्वाधिक महत्त्व है और इनकी प्रमुखता युगविशेष, स्थानविशेष (भारतवर्ष आदि) —की दृष्टिसे निर्धारित होती है, इसी दृष्टिसे यहाँ इतना निरूपण किया जा रहा है। सत्य, यज्ञ, तप तथा दान—ये धर्मके लक्षण हैं। बिना दिये गये द्रव्यको ग्रहण न करना, दान, अध्ययन, जप, विद्या, धन, तपस्या, पवित्रता, श्रेष्ठ कुलमें जन्म, निरोगता और संसारके बन्धनसे मुक्ति आदिके मूलमें धर्मका आचरण ही प्रधान है। धर्मसे सुख तथा तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है और इस तत्त्वज्ञानसे ही मोक्ष प्राप्त होता है।

शास्त्रोंके अनुसार पालन किये जाने योग्य तथा सनातन कालसे चले आ रहे यज्ञ, अध्ययन और दान—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके सामान्य धर्म हैं। यज्ञ करना, अध्ययन तथा सदाचारवान् विशुद्ध अधिकृत व्यक्तिसे प्रतिग्रह (दान) लेना—ये तीन प्रकारकी वृत्ति (जीविका) मुनियोंने श्रेष्ठ (ब्राह्मण) वर्णके लिये कही है। शस्त्रोपजीवी होना तथा प्राणियोंकी रक्षा करना क्षत्रियवर्णका धर्म है। पशुपालन, कृषिकर्म तथा व्यापार वैश्यवर्णकी वृत्ति कही गयी है। द्विजातिमें भी आनुपूर्वी क्रमसे सेवा करनेका विधान<sup>१</sup> है। शूद्रका तो एकमात्र कर्तव्य है द्विजातिकी सेवा करना।

गुरुके सान्निध्यमें रहना, अग्निकी शुश्रूषा (अग्निहोत्र) करना तथा स्वाध्याय करना—यह ब्राह्मचारीका धर्म है। वह तीनों संध्याओंमें स्नानकर संध्याकालीन व्रतका पालन करे। स्नानकर्मसे निवृत्त होकर भिक्षाचरण करे। तदनन्तर गुरुके प्रति दत्तचित्त रहकर उनकी ही सेवामें आजीवन लगा रहे।

वह नैष्ठिक ब्राह्मचारी कटिप्रदेशमें मूँजकी मेखला, सिरपर जटा, हाथमें दण्ड धारण करे। वह जटाओंको धारण न करके सिरका मुण्डन भी करा सकता है, किंतु उसको गुरुके आश्रयमें तो रहना ही चाहिये।

अग्निहोत्र-धर्मका पालन तथा कहे गये अपने विहित कर्मोंके अनुसार जीविकाका पालन, पर्वकी रात्रिको छोड़कर अन्य रात्रियोंमें धर्मपत्नीके साथ रति, (यथाशास्त्र) देवता, पितर तथा अतिथिगणोंकी विधिबद्ध पूजामें अहर्निश संलग्न रहना और कृतियों एवं स्मृतियोंमें कहे गये धर्मोंके अनुसार अधोपार्जन करना—यह गृहस्थोंका धर्म है।

जटाधारण, अग्निहोत्रका पालन, पृथ्वीपर शयन, मृगधर्मका धारण, वनमें निवास, दूध, मूल, फल तथा नौकारका भक्षण, विधिद्वय कर्मका परित्याग, तीनों संध्याओंमें स्नान, ब्राह्मचर्यका पालन और देवता तथा अतिथिकी पूजा—यह वानप्रस्थीका धर्म है।

सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग, भिक्षासे प्राप्त अन्नका भोजन, वृक्षकी छायामें निवास, अपरिग्रह, अद्रोह, सभी प्राणियोंमें समानभाव, प्रिय तथा अप्रियकी प्राप्तिमें एवं सुख और दुःखमें समान स्थिति, शरीरकी बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धता, वाणीमें संयम, परमात्मका ध्यान, सभी इन्द्रियोंका निग्रह, धारणा तथा ध्यानमें तत्परता और भावशुद्धि—ये सभी परिव्राजक अर्थात् संन्यासीके धर्म कहे गये हैं।

अहिंसा, प्रिय और सत्यवचन, पवित्रता, क्षमा तथा दया सभी आश्रमों और वर्णोंका सामान्य धर्म है।<sup>२</sup> जैसा पूर्वमें कहा गया है उसीके अनुसार शास्त्रविरहित अपने-अपने धर्मोंका पालन करनेवाले सभी लोग परमार्थी अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं।

हे जीवनक। अब मैं प्रातःकाल जागनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक पालन करने योग्य गृहस्थके धर्मका वर्णन करता हूँ। गृहस्थको ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्याग करके धर्म और अर्थका भली प्रकार चिन्तन करना चाहिये तथा

१-इसका आशय यह है—क्षत्रिय ब्राह्मणकी सेवा करे तथा वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रियकी सेवा करे। (वैश्यके द्वारा क्षत्रियकी सेवाकी मर्यादा शास्त्रोंमें निर्धारित है।)

२-अहिंसा स्मृता वाणी सत्यतृपे क्षमा दया। वर्जितां स्तिग्नितां चैव सामान्यो धर्म उच्यते ॥ ( २१३। २२ )



शारीरिक कष्ट, उसकी उत्पत्तिके कारण और वेदोंमें कहे गये तत्त्वार्थका भी विचार करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौचादिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर, स्नान करना चाहिये और निरलस भावसे समाहितचित्त होकर संभ्योपासन करना चाहिये। दन्तधावन एवं स्नानके अनन्तर ही प्रतःकालिक संभ्योपासन करना चाहिये। दिनमें मूत्र और मलका परित्याग उत्तराभिमुख होकर करे। रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर करे। दोनों संभ्याकालमें दिनके समान ही उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। रात्रि और दिनमें छाया अथवा अन्धकारके कारण यदि दिशविशेषका ज्ञान नहीं हो पा रहा है, अथवा कोई ऐसा भय उत्पन्न है, जिसके कारण मरणकी सम्भावना है तो अपनी सुविधाके अनुसार जिस किसी भी दिशामें मुख करके मल-मूत्रका त्याग किया जा सकता है। गोमय, अग्नि, दहकते अंगार, दीमककी बाँबी, जुते हुए खेत, जल, पवित्र स्थान, मार्ग और मार्गमें विद्यमान विधानयोग्य वृक्षकी छायामें न तो मूत्रका परित्याग करना चाहिये और न तो मलविसर्जन ही।

शौचके पश्चात् मिट्टीसे हाथ-पैर आदि साफ करनेके लिये जलके अन्दरसे, देवगृह, बाँबी, बूहेके बिल, दूसरेके उपयोगमें आयी हुई मिट्टीसे अवलित तथा रम्यतान भूमिकी मिट्टी ग्रहण न करे। लघुशुशुका करनेपर लिगमें एक बार, बायें हाथमें दो बार और दोनों हाथोंमें दो बार मिट्टी लगाकर जलसे प्रक्षालन करनेपर ही शुद्धि होती है। मलका परित्याग करनेपर लिगमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार तथा दोनों हाथोंमें सात बार, पैरोंमें पाँच बार और दायें हाथमें दस बार मिट्टीका लेप करके उन्हें जलसे स्वच्छ करे। प्रथम बार उपयोगमें लायी जानेवाली मिट्टीकी मात्रा आधा पसर होनी चाहिये। दूसरे और तीसरे बार जो मिट्टी उपयोगमें आती है उसकी मात्रा आधे पसरकी आधी हो जाती है। जो मनुष्य अस्वस्थताके कारण विद्या और मूत्रका परित्याग बैठकर नहीं कर सकता है, वह अभी बताया गया शास्त्रीय शुद्धिका आधा भागमात्र अपना सकता है। दिनमें विहित शुद्धिका आधा या चौथाई भाग रात्रिमें शुद्धिके लिये धर्मसम्मत है।

यह शुद्धिकी प्रक्रिया स्वस्थ व्यक्तिको लक्ष्य करके कही गयी है। जो व्यक्ति अस्वस्थताके कारण आर्त है, उसको यथासामर्थ्य ही शुद्धिकी प्रक्रिया अपनानी चाहिये। वसा, रुक्, रक्त, मज्जा, लार, विद्या, मूत्र, कानका मैल, कफ, आँसु, आँखका मैल (कोचड़) और पसीना—ये मनुष्यके शरीरके बरह मल हैं। जबतक मनमें शुद्धताकी अवधारणा न हो जाय, जबतक इनके कारण अनुभवमें आनेवाली अशुद्धिके निराकरणमें लगे रहना चाहिये। यद्यपि शुद्धिकी संख्याका जो प्रमाण दिया गया है, वह सुतियों और स्मृतियोंके आदेशानुसार है।

शुद्धि दो प्रकारकी है—एक बाह्य और दूसरी आभ्यन्तरिक। मिट्टी तथा जलसे की जानेवाली शुद्धि बाह्य और भावोंकी शुद्धि ही आभ्यन्तरिक शुद्धि मानी गयी है। शुद्धिका प्रमुख अङ्ग आचमन है, यह तीन बार करना चाहिये। इसके बाद दो बार जलसे मुखका मार्जन, तदनन्तर अंगुष्ठके मूलसे मुखको धोकर तीन बार मुखका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद अंगुष्ठ और तर्जनीसे नासिकाका स्पर्शकर अंगुष्ठ तथा अनामिकासे नेत्र और कानका स्पर्श करना चाहिये। तत्पश्चात् कनिष्ठा और अंगुष्ठके द्वारा नाभिका स्पर्शकर हृदयसे हृदयका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद अपनी सभी अंगुलियोंसे सिर और उनके (अंगुलियोंके) अग्रभागसे दोनों बाहुओंका स्पर्श करना चाहिये।

(अब आचमन तथा अंगोंके स्पर्शका फल बताया जाता है।) तीन बार जलका आचमन करके ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनों वेदोंको प्रसन्न करना चाहिये। पहले दो बार मुखका प्रक्षालन करनेसे अथवा (वेदविद् ब्राह्मण) और आत्रिरस (बृहस्पति)—का मुखमें सन्निधान होता है। मुखभागका स्पर्श करनेपर आकाश, नासिका-भागका स्पर्श करनेपर वायु, नेत्रभागका स्पर्श करनेपर सूर्य, कानोंका स्पर्श करनेपर सभी दिशाओंका स्पर्श समझना चाहिये। मुख तथा नासिका आदिका यथाविधि स्पर्श करनेसे इन अङ्गोंमें यथाक्रम इतिहास, पुराण एवं वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) प्रतिष्ठित होते हैं। नाभिप्रदेशका स्पर्शकर प्राणग्रन्थिका और हृदयभागका

स्पर्शकर ब्रह्माका स्पर्श समझना चाहिये। मूर्धाके स्पर्शसे रुद्र और शिखाके स्पर्शसे ऋषियोंको प्रसन्न किया जाता है। दोनों बाहुओंको स्पर्श करके यम, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथिवी तथा अग्निदेवके सात्रिभ्यका लाभ प्राप्त होता है। अपने दोनों चरणोंमें जलका अभ्युक्षण भगवान् विष्णु और इन्द्र तथा दोनों हाथोंका प्रोक्षण करनेसे भगवान् विष्णुदेवका सान्निध्य प्राप्त होता है।

धार्मिक विधिके अनुसार पृथ्वीका जलसे प्रोक्षण करनेसे वासुकि आदि नाग प्रसन्न होते हैं। धार्मिक विधिके मध्यमें जलका शास्त्रीय उपयोग करते समय उसके बिन्दुओंके गिरनेसे भूतोंके समूह तृप्ति प्राप्तकर प्रसन्न होते हैं। अंगुलियोंके पर्वोंपर अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और पर्वतसमूह निवास करते हैं। द्विजके हाथोंमें जो रेखाएँ होती हैं, उनमें गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ स्थित रहती हैं। हाथके तलभागमें सभी तीर्थोंके साथ सोमका निवास है। इसीलिये हाथको पवित्र माना जाता है।

उपाकाल (सूर्योदयसे पूर्व रात्रिशेष) होनेपर यथाविधि शौच-क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर दन्तधावन (दतुअन) करके स्नान करे। मुखके पर्युषित (बासी) रहनेपर मनुष्य निश्चित ही अपवित्र रहता है। अतः मनुष्यको प्रातःकाल अवश्य ही दन्तधावन करना चाहिये। दन्तधावनके लिये कदम्ब, बिल्व, खैर, कनेर, बरगद, अर्जुन, यूषो, वृहती, याती, कारंज, अर्क, अतिमुक्तक, जामुन, महूआ, अपमार्ग (चिचड़ा—लटजीरा) शिरीष, गुलार, भाग तथा दुधवाले और कैंटीले अन्य वृक्ष प्रशस्त होते हैं। कड़ुवे, तीते तथा कसैले काष्ठके जो वृक्ष हैं, उनको दतुअन धन-धान्य, आरोग्य और सुखसे सम्पन्न करनेवाली होती है। पवित्र स्थानमें मनुष्य ऐसे वृक्षोंको दतुअनको लेकर सबसे पहले उसको जलसे धो डाले। उसको दाँतोंसे चबा-चबाकर मुख साफ करे और अवशिष्ट दतुअनको किसी एकान्त स्थानमें छोड़ दे। तदनन्तर भली प्रकारसे आचमनकर मुखसोधन करे। अमावास्या, पक्षी, नवमी, प्रतिपदा तिथि तथा रविवारके दिन दतुअन नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ये सभी दिन इस

कार्यके लिये निषिद्ध माने गये हैं। दतुअनके न होनेपर तथा निषिद्ध तिथिके आ जानेपर मनुष्यको बारह कुत्ता जलके द्वारा मुखको पवित्र कर लेना चाहिये।

दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारका हित-सम्पादन होनेके कारण प्रातःकालके स्नानकी प्रशंसा की गयी है। जो व्यक्ति शुद्धात्मा है, जो प्रातःकाल स्नान करता है, वह जपादिक समस्त (ऐहिक और पारलौकिक सुख प्रदान करनेवाली) क्रियाओंको सम्पन्न करनेका अधिकारी है। शरीर अत्यन्त मलिन है। उसमें स्थित नवाछिद्रोंसे सदैव मल निकलता ही रहता है। अतः प्रातःकालका स्नान शरीरकी शुद्धिका हेतु, मनको प्रसन्न रखनेवाला तथा रूप और सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला है। यह शोक और दुःखका विनाशक है। अतः मनुष्य प्रातःकाल गङ्गास्नानके समान ही स्नानकी क्रिया सम्पन्न करे। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी हस्त नक्षत्रसे युक्त दशमी तिथिमें दस पापोंको हरण करनेकी सामर्थ्य है। इस पुण्यतिथिमें स्नान करनेसे 'दान न देनेका पाप, विरुद्ध आचरण, हिंसा, परदारोपसेवन, कटु और झूठ भाषण, चुगुलखोरी, असम्बद्ध प्रलाप, परद्रव्यापहरण और मनसे अनिष्टचिन्तन करनेसे होनेवाला पाप—इन पापोंके विनाशके लिये आज मैं गङ्गा-स्नान कर रहा हूँ'—यह संकल्प लेकर मनुष्य प्रातःकाल स्नान करे। वानप्रस्थी तथा गृहस्थको प्रातःकाल संक्षिप्त स्नान करना चाहिये। संन्यासीके लिये दिनकी तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) संध्याओंमें स्नान करना अपेक्षित है। ब्रह्मचारीको सकृत्<sup>१</sup> स्नान करना चाहिये। आचमन करके, तीर्थोंका आवाहन करके, अव्यय भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये।

शस्त्रोंमें तीन करोड़ मन्देह नामक राक्षस माने गये हैं। वे दुरात्मा राक्षस सदैव प्रातःकाल उदित हो रहे सूर्यदेवको छा जानेकी इच्छा करते हैं। अतः (सूर्योदयसे पूर्व) स्नान करके संध्योपासनकर्म नहीं करना सूर्यदेवका ही घातक है। जो लोग यथाविधि स्नानकर यथाधिकार संध्योपासन करते हैं, वे मन्त्रसे पवित्र किये गये अनलरूपी अर्घ्य (जल) से उन मन्देह राक्षसोंको जला देते हैं।

१-सकृत् स्नानका तात्पर्य है—दण्डवत् स्नान। अर्घ्य जैसे दण्ड जलमें डालकर निकाल लिया जाता है, वैसे ही स्नान करना चाहिये। गृहस्थकी तरह सुखपूर्वक स्नान नहीं करना चाहिये। सायं प्रातः अव्यय करण्येय अग्निहोत्र आदिके लिये दोनों समय (सायं-प्रातः) स्नानका विधान ब्रह्मचारिके लिये है। (मनु० २। १७६ कुल्लूक भट्टकी टीका)

दिन और रात्रिका जो संधिकाल हैं, वही संध्याकाल (४५ मिनट) होता है। यह संध्याकाल सूर्योदयसे पूर्व दो घड़ीपर्यन्त रहता है। संध्या-कर्मके सम्पन्न हो जानेपर यथाधिकार स्वयं हवन-कार्य करना चाहिये। स्वयं हवन करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, उतना अन्य किसीके द्वारा करनेसे नहीं होता। ऋत्विक्, पुत्र, गुरु, भाई, भौजा और दामादके द्वारा यह कार्य हो सकता है। क्योंकि उन लोगोंके द्वारा किया गया हवन, स्वयंका ही माना गया है।

गार्हपत्य-अग्निको ब्राह्म, दक्षिणाग्निको शिव और आहवनीय-अग्निको विष्णु तथा कुमार<sup>१</sup>को सत्यस्वरूप कहा जाता है। यथोचित समयपर हवन करके सूर्यमन्त्रका जप करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित होकर सावित्री और प्रणव (ॐकार)-मन्त्रका जप करना चाहिये। प्रणव, सप्त-व्याहृति और त्रिपदा सावित्री मन्त्रका निरन्तर यथासमय नियतरूपसे जप करनेसे संसारमें किसी भी प्रकारका भय नहीं रहता है। जो उपासक प्रातःकाल उठकर नियत गायत्री-मन्त्रका जप करता है, वह कमलपत्रकी भाँति पापसे संलिप्त नहीं होता। (देवी गायत्रीका स्वरूप इस प्रकार है—)

श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा।

अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा॥

( २१३/७० )

अर्थात् गायत्रीदेवी श्वेतवर्णवाली है, कौशेय (रेशमी)-वस्त्र तथा अक्ष (माला) एवं सूत्र (यज्ञसूत्र—यज्ञोपवीत)-से विभूषित होकर सुन्दर पद्मासनपर विराजमान रहती है। इसी रूपमें विधिवत् ध्यान करके 'तेजोसि०'<sup>२</sup> इस यजुर्वेदके मन्त्रसे आवाहनकर गायत्रीदेवीको उपासना करनी चाहिये। प्राचीनकालमें देववर्ग तथा मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेकी इच्छा रखनेवाले ऋषिगण यजुर्वेदके इसी मन्त्रका प्रयोग करते थे। अतः सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान तथा ब्रह्मलोकमें भी निवास करनेवाली देवीका आवाहन करके

गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। तत्पश्चात् नमस्कार करके उनका (गायत्रीदेवीका) विसर्जन करना चाहिये। पूर्वाह्नकालमें देवताओंका पूजन करना चाहिये। भगवान् विष्णुसे बढ़कर अन्य कोई देव नहीं है। अतएव साधकको सदैव उनको पूजा करने चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन देवोंके प्रति पृथक्-भाव (भेदबुद्धि) न रखे।

इस संसारमें आठ मङ्गल हैं—ब्राह्मण, गौ, अग्नि, हिरण्य (सोना), घृत, सूर्य, जल और राजा। सदैव इनका दर्शन एवं पूजन करना चाहिये और यथासम्भव इन्हें अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये। ब्राह्मण पहले वेदका अध्ययन करे, उसके बाद चिन्तन, अभ्यास तथा जप करके उसका दान शिष्योंको दे, अर्थात् अपने शिष्योंको वेदाध्ययन कराये। वेदाभ्यासका यही पाँच प्रकार है।

वेदार्थ, यज्ञकर्मप्रतिपादक शास्त्र और धर्मशास्त्रकी पुस्तकोंका पारिब्रमिक देकर जो लेखनकार्य करता है और उसे योग्य अधिकारीको प्रदान करता है, वह वैदिक (वेदमें उक्त) श्लोकको प्राप्त करता है। जो इतिहास-पुराणके ग्रन्थोंको लिखकर दान देता है, वह ब्रह्म (वेद)-दानसे डोनेवाले पुण्यका दुगुना पुण्य प्राप्त करता है।

दिनके तीसरे भागमें अपने पोष्य वर्गके प्रयोजनको पूर्ण करना चाहिये। माता, पिता, गुरु, भ्राता, प्रजा, दीन, दुःखी, आश्रितजन, अभ्यागत<sup>३</sup>, अतिथि<sup>४</sup> और अग्नि—ये पोष्य वर्ग कहे गये हैं। पोष्य वर्गका भरण-पोषण करना स्वर्गका प्रशस्त साधन है। अतः मनुष्यको पोष्य वर्गका पालन-पोषण प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें उसी व्यक्तिका जीवन श्रेष्ठ है, जो बहुतोंके जीवनका साधक बनता है। अर्थात् बहुतोंका पालन-पोषण करता है। जो मात्र अपने भरण-पोषणमें लगे रहते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मरे हुएके समान हैं; क्योंकि अपना पेटपालन तो कुत्ता भी

१-यहाँ कुमारका अर्थ हवनकर्ता (ब्रह्मचारी)—को समझना चाहिये।

२-तेजोऽसि तेजो मयि धेहि योयमसि योयं मयि धेहि कलमसि कलं मयि धेहोऽजोऽस्योऽजो मयि धेहि मन्वुरसि मनुं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ (तु०बु० १९।९)

३-जो अकस्मात् अपने घर आ जाय वह अभ्यागत है।

४-अतिथि उस सन्तको कहते हैं जो तिथि, पर्व, उत्सव आदिका विवेक नहीं करता है और सदा चलता ही रहता है। यहाँ यमका वचन द्रष्टव्य है—तिथि पर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन मडात्पन्ना। सोऽतिथिः सर्वभूतान् रोषन्भ्रजन्तुं विदुः ॥

करता है।<sup>१</sup>

व्यवहारमें अर्थका महत्त्व है। जैसे नदियोंके मूल पर्वत हैं, वैसे ही समस्त कार्योंका मूल अर्थ है; इसीलिये अर्थको उत्पन्न करना एवं बढ़ाना आवश्यक होता है। अर्थ उसे ही कहते हैं, जो हमारे सभी कार्योंकी सम्पन्नतामें अन्तिमपर्यन्तसे उपयोगी हो। इसी दृष्टिसे सभी रत्नोंकी निधि पृथ्वी, धान्य, पशु, स्त्रियाँ आदि अर्थ माने जाते हैं। इस तरह अर्थका महत्त्व होनेपर भी इसके अर्जनमें संयम आवश्यक है; अतएव विशेषकर ब्राह्मणको अपनी जीविकाके लिये अर्थार्जन करते समय यह ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि आपत्तिकाल नहीं है तो किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करना पड़े अथवा कम-से-कम द्रोह करना पड़े।

धन तीन प्रकारका माना गया है—शुक्ल, शबल (मिश्रित) और कृष्ण। उस धनके सात विभाग हैं। सभी वर्णोंको प्राप्त होनेवाला धन तीन प्रकारका होता है—१-दायभागके अनुसार वंशपरम्परासे यथाधिकार प्राप्त धन, २-प्रेमके कारण किसीके द्वारा दिया गया धन और ३-यथाविधि विवाहित पत्नीके साथ प्राप्त धन। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये तीन प्रकारके विशेष धन हैं—याजन (यज्ञ करानेसे प्राप्त), अध्यापनसे प्राप्त तथा विशुद्ध प्रतिग्रह (सत्पात्रसे लिया गया दान)। क्षत्रिय वर्णका विशेष धन भी तीन प्रकारका कहा गया है—करसे प्राप्त धन उसका पहला धन है, दूसरा धन दण्डद्वारा प्राप्त तथा तीसरा धन वह है जो विजयद्वारा प्राप्त हो। वैश्यका भी तीन प्रकारका विशेष धन है—छेतीसे प्राप्त, गोपालनसे प्राप्त तथा व्यापारसे प्राप्त। शूद्रका विशेष धन एक ही प्रकारका है, जो उपयुक्त वर्णोंकी कृपासे उसको प्राप्त होता है। आपत्तिकालमें ब्राह्मण एवं क्षत्रिय स्वयं व्याजसे, छेतीसे तथा व्यापारसे धन अर्जित कर सकते हैं, आपत्तिकालमें ऐसा करनेपर पाप नहीं होता है।

ऋषियोंके द्वारा जीवनयापनके लिये बहुत-से उपाय बताये गये हैं, उनमें कुसीद (व्याज) सभी वर्णोंके लिये बताये गये विशेष उपायोंकी अपेक्षा अधिक है। अनावृष्टि,

राजभय तथा चूहा आदि जीव-जन्तुओंके उपद्रवोंसे कृषि आदिमें बाधा आ जाती है, किंतु कुसीद-वृत्तिमें यह बाधा नहीं आती। शुक्लपक्ष हो, कृष्णपक्ष हो, रात्रि हो, दिन हो, गर्मी हो, वर्षा अथवा शीत हो—सभी दशाओंमें कुसीदसे होनेवाली धनवृद्धि रुकती नहीं है। अर्थात् सूदपर दिया गया धन बढ़ता ही रहता है। नाना प्रकारके व्यापारिक कार्योंमें संलग्न वर्णिक-जनोंकी जो धनकी अभिवृद्धि दूसरे देशमें जानेसे होती है, वही अभिवृद्धि कुसीद-वृत्ति करनेसे घरमें बैठे-हो-बैठे प्राप्त हो जाती है।

शास्त्रसम्मत विधिसे अर्जित धनके लाभांशसे सभी लोगोंको पितृगण, देवगण तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। ये संतुष्ट होकर धन-अर्जनमें अज्ञानवश हुए दोषको निःसंदेह ज्ञान कर देते हैं। जो वर्णिक व्याजके द्वारा (धनार्जनके लिये) वस्त्र, गौ तथा स्वर्णादि देता है और जो किसान अन्न, पेय पदार्थ, सवारी, शय्या तथा आसन आदि (व्याज-वृत्तिमें) देता है, वह (उपाजित धनका) चौसठवाँ भाग और पशु-स्वर्णादिका १००वाँ भाग राजाको देकर शेष बचे हुए धनके चतुर्थांशसे जी (यव) आदि विभिन्न वस्तुओंका सञ्चय करे। दो-चौथाई अर्थात् आधे धनका उपयोग, अपने भरण-पोषण तथा नित्य-नैमित्तिक कार्योंके लिये होना चाहिये। जो एक-चौथाई धन शेष बचे, उसका उपयोग मूलधनकी वृद्धिमें करना चाहिये।

विद्या, शिल्प, वेतन, सेवा, गोरक्ष, व्यापार, कृषि, वृत्ति<sup>२</sup>, शिक्षा और व्याज—ये दस जीवनयापनके साधन हैं। ब्राह्मणको सत्पात्र व्यक्तिसे दानरूपमें प्राप्त धनसे अपना निर्वाह करना चाहिये। क्षत्रिय वर्ण अपने शस्त्रास्त्रोंसे धनार्जन करे। वैश्य वर्ण न्यायोचित ढंगसे धनसंग्रह कर अपना कार्य पूर्ण करे और शूद्र सेवा-भावसे धन अर्जितकर अपने सभी कार्योंकी सम्पन्न करे। प्रचुर जलराशिसे परिपूर्ण नदी, शाक, मृत्तिका, समिधा, कुरा, पलाश, केला आदिके पत्र, अग्निदेवकी आराधनाके उपकरण और ब्रह्मघोष (स्वाध्याय)—ये ब्राह्मणोंके श्रेष्ठतम धन हैं। यदि अयाचित (स्वतःप्राप्त) धनको ब्राह्मण स्वीकार करे तो दोष नहीं है।

१-माना निरा गुरुधीन प्रजा दीनः समर्पितः ॥

अध्यागतेऽतिथिर्ह्यग्निः पोष्यकालं उदाहृतः। भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥

भरणं पोष्यवर्गस्य तन्माद्यन्नेन कारयेत्। स जीवति धार्मिको बहुभिलोपजीव्यति ॥

जीवन्तो मृतकस्तन्ये पुराणः सौंदर्यम्भरः। स्वकीयोदात्तवृद्धिं कुक्कुरस्यापि विधत्ते ॥ (२१३। ७९-८२)

२-वृत्ति—सहायताके रूपमें प्रतिमास दी जानेवाली धनवृत्ति।



देवताओंने ऐसे धनको अमृतके समान कहा है। अतः बिना याचना किये ही आये धनका परित्याग ब्राह्मणको नहीं करना चाहिये।

गुरुके धनका उद्धार करनेकी इच्छासे देवता और अतिथिकी पूजा करते हुए सभीसे प्रतिग्रह लेना चाहिये, पर उसका उपयोग अपनी तुष्टिके लिये नहीं करना चाहिये। साधुसे अथवा असाधुसे भी केवल उसके कल्याणके लिये प्रतिग्रह लेना चाहिये। यदि प्रतिग्रहहीता ब्राह्मण (आचारहीन) कर्मनिष्ठ है तो अल्प दोष होगा। यदि निर्गुण है तो दोषमें डूब जायगा। इस प्रकार तस्कारवृत्ति (अपने पुण्यको क्षीण करनेवाली वृत्ति) से अपना भरण करनेके बाद उत्तम द्विजको अपनी शुद्धिके लिये प्रार्थित करना चाहिये। दिनके चौथे भागमें मिट्टी, तिल, पुष्प तथा कुशदि सामग्री लाकर प्रकृतिप्रदत्त जलमें स्नान करना चाहिये।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलापकर्षण, मार्जन, आचमन और अक्काहन—ये आठ प्रकारके स्नान बताये गये हैं। बिना स्नान किया पुरुष जप, अग्नि और हवन आदि करनेका अधिकारी नहीं है। प्रातःस्नान पूजा-पाठ आदि धार्मिक कृत्यके लिये करना चाहिये। इसीको नित्य-स्नान कहा गया है। चाण्डाल, ऋष, विष्टा तथा रजस्वला आदिका स्पर्श करनेके पश्चात् जो स्नान किया जाता है, वह नैमित्तिक-स्नान कहलाता है। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार पुष्प आदि नक्षत्रोंमें जो स्नानादिक कृत्य किया जाता है, उसे काम्य-स्नान कहते हैं। निष्काम व्यक्तिको इस प्रकारका स्नान नहीं करना चाहिये। जप-होमादिक कृत्योंकी सम्पन्न करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर अथवा अन्य अनेक पवित्र कृत्य, देवता तथा अतिथि आदिका पूजन करनेकी इच्छासे जो स्नान किया जाता है, उसको क्रियाङ्ग-स्नानके नामसे अभिहित किया गया है। शारीरिक मलको दूर करनेके लिये सरोवर, देवकुण्ड, तीर्थ और नदियोंमें जो स्नान किया जाता है, वह मलापकर्षण-स्नान है। सामान्य जलसे स्नान करनेपर केवल शरीरकी शुद्धि होती है। तीर्थमें स्नान करनेपर विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। मज्जन (स्नान) के लिये विहित मन्त्रोंसे मार्जन करनेसे मनुष्यका पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाता है। नित्य, नैमित्तिक, क्रियाङ्ग तथा मलापकर्षण नामक जो स्नान बताये गये हैं, उन स्नानोंकी तीर्थका अभाव होनेपर उष्ण जल अथवा अन्य किसी प्रकारसे प्राप्त कृत्रिम जलसे सम्पन्न कर लेना चाहिये।

भूमिसे निकलता हुआ जल पवित्र होता है। इस जलकी अपेक्षा पर्वतसे निकलनेवाले झरनेका जल पवित्र होता है। इससे भी बढ़कर पवित्र जल सरोवरका है और उसकी अपेक्षा नदीका जल पवित्र है। नदीके जलकी अपेक्षा भी तीर्थका जल पवित्र है। इन सभी जलोंकी अपेक्षा गङ्गाका जल परम पवित्र है। गङ्गाका श्रेष्ठतम जल तो जीवनपर्यन्त किये गये प्राणीके सभी पापोंका विनाश अतिशीघ्र ही कर देता है। गया तथा कुशक्षेत्र नामक तीर्थोंके जलसे भी बढ़कर पवित्र एवं पुण्यदायक जल गङ्गाजीका है—

भूमिद्वादुद्धतं पुण्यं ततः प्रववणोदकम्॥

ततोऽपि झारसं पुण्यं तस्माद्वादेयमुष्यते।

तीर्थतोऽथ ततः पुण्यं गङ्गां पुण्यं तु सर्वतः॥

गङ्गां प्रथः पुतात्वाशु पापमाभरणान्तिकम्।

गद्यायां च कुशक्षेत्रे यतोऽथ समुपस्थितम्॥

तस्मात्तु गङ्गामपरे जानीयात्तोयमुत्तमम्॥

( २१३। ११५-११९ )

पुत्रवन्म, कतिपय विशिष्ट योग, मकर आदि राशियोंपर सूर्यकी संक्रान्ति तथा चन्द्र और सूर्यग्रहण होनेपर ही रात्रिमें स्नान करना प्रसक्त है। अन्यथा रात्रिमें स्नान नहीं करना चाहिये। प्रतिदिन उषःकालमें, संध्याकालमें और सूर्यका उदय होते ही जो स्नान किया जाता है, वह स्नान प्राजापत्य यज्ञकी भाँति महापरायणका नाश करनेवाला है। बारह वर्षतक प्राजापत्य यज्ञ करनेपर जो फल प्राप्त होता है, वह फल ब्रह्मापूर्वक एक वर्षतक प्रातःकाल स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति सूर्य और चन्द्र नामक श्रेष्ठ ग्रहोंके समान प्रचुर भोगोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, वह माघ तथा फाल्गुन—इन दो मासोंमें नित्य प्रातःकाल स्नान करे। जो ब्रह्माण्ड माघमास आनेपर प्रातःकाल स्नान करके हविर्ध्यान ग्रहण करता है, वह एक ही मासमें अपने महापौर और अतिपापोंका विनाश कर देता है। माता, पिता, भ्राता, मित्र अथवा गुरु आदिको उद्देश्य बनाकर जो प्रातःकाल स्नान करता है, उसे सास्वर्गनिर्दिष्ट पुण्यका द्वादश गुणित अधिक पुण्य प्राप्त होता है। भगवान् विष्णु एकादशी तिथिको आमलक (औँला) के समर्पण एवं दानसे विशेषरूपसे तुष्ट होते हैं। लक्ष्मीकी कामना करनेवाले मनुष्यको सर्वदा आमलकसे स्नान करना चाहिये।

सन्ताप, कीर्ति, अल्पायु, धन, मृत्यु, आरोग्य तथा सभी कामनाओंकी पूर्ति क्रमशः रविवार आदिको तैलका अभ्यङ्ग

करनेसे प्राप्त होती है। अर्थात् रविवारको शरीरमें तैलका अभ्यङ्ग करनेपर सन्ताप, सोमवारको तैल-अभ्यङ्गसे कौर्त, मंगलवारको तैल-अभ्यङ्गसे अल्पायु, बुधवारको तैल-अभ्यङ्गसे धन, बृहस्पतिवारको ऐसा करनेसे मृत्यु, शुक्रवारको तैल-अभ्यङ्गसे आरोग्य और शनिवारको तैल-अभ्यङ्ग करनेपर मनुष्यका सम्पूर्ण अभीष्ट पूर्ण होता है। उपवास करनेवाले व्रतीसे तथा नाईके द्वारा क्षीरकर्म करानेके पश्चात् मनुष्यसे तबतक ही लक्ष्मी प्रसन्न रहती है, जबतक वह तैलका स्पर्श नहीं करता है। अतः तैलस्पर्श करनेके पश्चात् मनुष्यको तत्काल स्नान कर लेना चाहिये। व्रतके दिन तो तैलस्पर्श नहीं ही करना चाहिये।

स्नान करनेके बाद मनुष्यको सद्याविधान पितृगण, देवगण और मनुष्योंका तर्पण करना चाहिये। नाभिपर्यन्त जलमें स्थित होकर एकाग्र मनसे पितरोंका आवाहन करना चाहिये—

आगच्छन्तु मे पितर इषं गृह्णन्वयोऽनुनिम् ॥

हे मेरे पितृगण। आप सब इस तीर्थस्थानपर आकर धिराजमान हों और मेरे द्वारा दी जा रही जलज्जलितको स्वीकार करें।

इस प्रकार आवाहन करके आकाश और दक्षिण दिशामें स्थित पितृगणोंको तीन-तीन जलज्जलित प्रदान करे। यदि जलसे बाहर निकलकर तर्पण करना हो तो तर्पणकी विधि जाननेवाले लोगोंको सूखे और स्वच्छ वस्त्र पहनकर समूल कुशाओंपर तर्पण करना चाहिये। पात्र (बर्तन) में तर्पण नहीं करना चाहिये।

तर्पण-कृत्यमें रक्षोगण प्रतिबन्ध न कर सके, इसके लिये तर्पण आरम्भ करते समय बायें हाथमें जल लेकर नैऋत्य कोणमें उसे छोड़ना चाहिये और जल छोड़ते समय निम्नलिखित मन्त्र बोलना चाहिये—

यदपां कूरमांसानु यदमेध्यं तु किञ्चन ॥

अशानं मलिनं यच्च तत्सर्वमपगच्छन्तु।

(२१३।१३१-१३२)

कूरमांसके कारण, अपवित्रताके कारण, अथवा तर्पणके जलमें अज्ञानवश विद्यमान अशान्तिजनक किसी तत्व या मलिनताके कारण जो कुछ भी प्रतिबन्ध है, वह दूर हो जाय।

अन्तमें तर्पणका संक्षेप (उपसंहार) करते समय तीन जलज्जलित निम्नलिखित मन्त्रोंसे देनी चाहिये—

निषिद्धभक्षणायन्तु पापाद्यच्च प्रतिग्रहात् ॥

दुष्कृतं यच्च मे किञ्चिद्वाङ्मनःकायकर्मभिः।

पुनस्तु मे तदिन्द्रस्तु वरुणः सवृहस्पतिः ॥

सविता च भगश्चैव मुनयः सनकादयः।

आद्यस्तम्बपर्यन्तं जगत् तुष्यत्विति ब्रुवन् ॥

(२१३।१३३-१३५)

निषिद्ध भक्षणसे, जन्मान्तरीय दुष्कर्मोंसे, प्रतिग्रह (दान) लेनेसे और इस जन्ममें शरीर, वाणी एवं कर्मसे जो निषिद्ध आचरण हो गये हैं, उनसे उत्पन्न पापोंके कारण मुझमें जो अपवित्रता है, उसे दूर करके बृहस्पति, इन्द्र तथा वरुण मुझे पवित्र करें। सूर्य, यम (देवताविशेष), सनकादि ऋषि और ब्रह्मसे लेकर स्तम्ब (अति लघु कीट या तृण) समस्त संसार—ये सभी मेरे तर्पणसे तृप्त हों।

इस प्रकार पितृतर्पण करके संपत्ती व्यक्तिको ईर्ष्या, द्वेष आदिसे रहित होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि अभीष्ट देवोंकी पूजा करनी चाहिये। विभिन्न देवतालिङ्गक ब्राह्म, वैष्णव, शैव, सांख्य एवं मैत्रावरुण-मन्त्रोंसे सभी देवताओंको नमस्कारपूर्वक अर्वा करनी चाहिये। तदनन्तर पुनः नमस्कारपूर्वक अर्चित देवोंको पुष्प-पुष्प पुष्पाञ्जलियाँ देनी चाहिये। पुनः सर्वदेवमय भगवान् विष्णु और सूर्यकी पूजा करनेका विधान है। इस पूजामें जो अधिकारी मनुष्य पुरुषसूक्तसे भगवान् विष्णुको पुष्प तथा जल समर्पित करता है, वह सम्पूर्ण चराचर विश्वकी पूजाको सम्पन्न कर लेता है। इन देवोंकी पूजा अन्य तान्त्रिक मन्त्रोंसे भी की जा सकती है। पूजामें सबसे पहले आराध्यदेव जनार्दनको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये और सुगन्धित पदार्थसे उनके विग्रहका क्लिपन करना चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें पुष्पाञ्जलि, धूप, उपहार और फलका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।

जलके मध्य स्नान, जलके द्वारा मार्जन, आचमन, जलमें तीर्थका अभिमन्त्रण तथा अधमर्षण-सूक्तके द्वारा मार्जन नित्य तीन बार करना चाहिये। महात्माओंको स्नानविधिके विषयमें यही अभीष्ट है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको मन्त्रसहित स्नान करना चाहिये। शूद्रवर्णको मीन होकर नमस्कारपूर्वक स्नान करना चाहिये। अध्यापन

ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देवयज्ञ, बलिवैद्यदेव भूतयज्ञ तथा अतिथिका पूजन मनुष्ययज्ञ है। गौओंके गोष्ठमें दस गुना, अग्निशालामें सौ गुना, सिद्धक्षेत्र-तीर्थ तथा देवालयाँमें क्रमशः एक हजार गुना, एक लाख गुना और एक करोड़ गुना फल इन कर्मोंको करनेसे प्राप्त होता है। जब ये ही कर्म भगवान् विष्णुके साक्षिभ्यमें किये जाते हैं तो इनसे अनन्त गुना फलोंको प्राप्ति होती है।

दिनका यथायोग्य पाँच विभाग करके पितृगण, देवगणकी अर्चा और मानवके कार्य करने चाहिये। जो मनुष्य अन्नदान करके सर्वप्रथम ब्राह्मणको भोजन कराकर अपने मित्रजनके साथ स्वयं भोजन करता है, वह देहत्यागके बाद स्वर्गलोकके सुखका अधिकारी बन जाता है।

मनुष्यको सर्वप्रथम मधुर, मध्यभागमें नमकीन और अम्लसे युक्त पदार्थ, उसके बाद कड़ुवा, तीता तथा कसीता भोजन करना चाहिये। भोजनके अनन्तर दुग्धपान करना चाहिये। रातमें शाक तथा कन्दादिक पदार्थोंको अधिक नहीं खाना चाहिये। एक ही प्रकारके रसमें आसक्ति अच्छी नहीं होती है।

ब्राह्मणका अन्न अमृतके समान, क्षत्रियका अन्न दुग्धके समान, वैश्यका अन्न अन्नके समान और शूद्रका अन्न रक्के समान होता है। जो अमावास्याका व्रत एक वर्षतक करता है, उसके यहाँ ऐश्वर्य और लक्ष्मीका (अविचलरूपसे) निवास होता है। द्विजातिके उदरभागमें गार्हपत्याग्नि, पृष्ठभागमें दक्षिणाग्नि, मुखमें आहवनीयाग्नि, पूर्वमें सत्याग्नि और मस्तकमें सर्वाग्निका वास रहता है। जो इन पञ्चाग्नियोंको

जान लेता है उसको आहिताग्नि कहा जाता है। शरीरको जल, चन्द्र तथा विविध प्रकारके अन्नके द्वारा साध्य माना गया है। इस शरीरका उपभोग करनेवाले प्राण अग्नि और सूर्य हैं। ये दोनों पृथक्-पृथक् तीन रूपोंमें भी अवस्थित रहकर एक ही हैं।

(भोजनके समय यह भावना करनी चाहिये कि) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायुतत्त्वसे युक्त इस मेरे स्थूल शरीरकी पुष्टिके लिये प्रयुक्त अन्न शक्ति-सञ्चयके लिये होता है। शरीरमें पहुँचकर जब यह अन्न भूमि, जल, अग्नि और वायुतत्त्वके रूपमें परिणत हो जाता है तो अप्रतिहत—असीम सुखकी अनुभूति होती है।

इसके (भोजनके) बाद मनुष्यको अपने हाथसे मुख आदि स्वच्छकर ताम्बूल अर्थात् पानका भक्षण करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित होकर इतिहासका श्रवण करना चाहिये। इतिहास और पुराणादिकी कथाओंके द्वारा मनुष्यको दिनेके छठे और सातवें भागका समय व्यतीत करना चाहिये। तत्पश्चात् स्नान करके पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके सार्यकालीन संध्योपासन करना चाहिये।

हे ब्राह्मणदेव! मेरे द्वारा कहे गये इस विधानके अनुसार अपने कर्तव्योंका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य इस सदाचारके अध्यायका पाठ करता है अथवा अपने पुरोहित आदिके द्वारा इसका श्रवण करता है, वह निश्चित ही अपनी मृत्युके पश्चात् स्वर्गलोकको जाता है। हे द्विज! इन सभी सदाचार एवं धर्मका पालन करनेवाला अधिकारी मनुष्य केशव (साक्षात् विष्णु) ही माना गया है।

(अध्याय २१३)

## स्नान तथा संक्षेपमें संध्या-तर्पणकी विधि<sup>१</sup>

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं स्नानकी विधि कहता हूँ, क्योंकि सभी क्रियाएँ स्नानमूलक हैं अर्थात् स्नानके बिना कोई भी क्रिया सफल नहीं हो सकती। स्नानार्थी व्यक्तिको स्नानके पूर्व मिट्टी, गोमय, तिल, कुश, सुगन्धित पुष्प—ये सभी द्रव्य एकत्र कर लेना चाहिये। गन्ध आदि स्नानोपयोगी पदार्थोंको जलके समीप स्वच्छ स्थान—

भूमिपर रखना चाहिये।

तदनन्तर विद्वान् व्यक्ति एकत्र किये हुए मिट्टी और गोमयको तीन भागोंमें विभक्त करके मिट्टी और जलके द्वारा दोनों पैर तथा दोनों हाथका प्रक्षालन करे। बायें कंधेपर यज्ञोपवीत रखकर शिखाबन्धनपूर्वक मौन होकर आचमन करे। 'ॐ उके हि राजा'०' इत्यादि मन्त्रोंसे दक्षिणभागमें

१-इस अध्यायमें मन्त्रोंके प्रतीकमात्र दिये गये हैं। विद्वान् विभिन्न मन्त्रसंहिताओंसे मन्त्रोंको जान लें।

२-ॐ उके हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थायमन्त्रेण पाठः। प्रतिपत्ता च वक्तास्तादृशविधिः। नमोऽग्न्यरुणाय भिद्युतोवरुणस्य पाशः।

वहलाय नमः॥ (२१४।६)

जलको स्थापित करे। फिर 'ॐ ये ते शतं०' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करके उस जलका अभिमन्त्रण करे। 'ॐ सुमित्रिया न आप०' इस मन्त्रसे अञ्जलिमें जल लेकर पहले मार्जन करे, फिर शेष जलको बाहर फेंके। तदनन्तर दोनों चरण, जंघा और कटिप्रदेशमें तीन-तीन बार मिट्टी लगाये। इसके पश्चात् दोनों हाथ धोकर आचमन करके जलको नमस्कार करे। इसके बाद 'ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे०' का पाठ करके 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा' इत्यादि महाव्याहृतिमन्त्रसे आचमन और 'ॐ इदं विष्णु०' आदि मन्त्रसे मिट्टीद्वारा अङ्गोंका मार्जन करे। फिर सूर्याभिमुख होकर 'ॐ आपो अस्मान्०' इत्यादि मन्त्रसे जलमें डुबकी लगाये। तदनन्तर शरीरको मल-मलकर स्वच्छ करे और धीरे-धीरे डुबकी लगाते हुए स्नान करे।

इसके बाद 'ॐ सा नस्तोके तनये मा न०' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करके गोमयके द्वारा अङ्गका लेपन करे। फिर 'ॐ इमं मे वरुण०' इत्यादि वारुणमन्त्रसे यथाक्रम अपने मस्तक आदिका अभिषेक करे। पूर्वोक्त मन्त्रोंसे विधिवत् आत्माभिषेक करके जलमें डुबकी लगाकर पुनः आचमन करे। 'ॐ आपो हि ह०', 'ॐ इदं आपो हविष्मती०', 'ॐ देवी तप०', 'ॐ इन्द्रादिव०' तथा 'ॐ इं नो देवी०' इत्यादि पवमानी मन्त्रोंसे समाहित होकर मार्जन करे। 'ॐ हिरण्यवर्णा०', 'ॐ पवमानसूक्तम्०', 'ॐ तारसामा०' तथा 'ॐ शुद्धकथ०' आदि पवित्र करनेवाले मन्त्रों एवं वारुणमन्त्रोंसे यथाशक्ति जलाभिषेक करे।

ओंकार और व्याहृतिसमन्वित गायत्री-मन्त्रका पाठ करते हुए स्नानके आदि और अन्तमें जलाभिषेक करे। जलके मध्यमें रहकर ही मार्जन करनेका विधान है। जलमें डूबकर अघमर्षण-मन्त्रको तीन बार पढ़ना चाहिये। इसके बाद 'ॐ हुषदा०' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करके 'ॐ आयं गीः०' इत्यादि तीन ऋचाओंका पाठ करे। तदनन्तर स्मृतियोंमें निर्दिष्ट स्नानाङ्ग-मन्त्रोंका समाहितचित्तसे पाठ करे अथवा महाव्याहृति और प्रणवसे युक्त गायत्रीका जप करे या प्रणवकी आवृत्ति करे अथवा अव्यय विष्णुका स्मरण करे। जल ही विष्णुका आयतन है। विष्णु ही जलके

अधिपति कहे गये हैं। जलमें विष्णुका स्मरण करे। 'ॐ तद् विष्णोः परमं पदम्०' इत्यादि कहकर बार-बार स्नान करे। यह वैष्णवी गायत्री विष्णुके सर्वाङ्ग-स्मरणमें निमित्त है। 'ॐ इदमापः प्रवहतः०' इत्यादि पवित्र मन्त्रोंसे अपने मलका निवारण करते हुए मार्जन करे और अपनेको निर्मल शरीरवाला बना ले। फिर 'ॐ तद्विष्णोः परमं पदम्०' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे।

यथाविधि स्नानक्रियाको सम्पन्नकर धोये हुए अलङ्घित पवित्र दो वस्त्रोंको पहनकर मिट्टी और जलके द्वारा हाथ तथा पैरका प्रक्षालन करके संध्या एवं तर्पण करना चाहिये। स्नान और भोजनके आरम्भमें आचमनकर पुनः मन्त्रके द्वारा अन्तमें आचमन करना चाहिये। आचमनके बाद तीन बार 'ॐ हुषदादिव०' इत्यादि मन्त्रका पाठकर जलद्वारा मूर्धाभिषेक तथा अघमर्षण करे। पुनः आचमन और मार्जन तथा तीन बार आचमनकर धीरे-धीरे प्राणायाम करे। इसके बाद अञ्जलिमें जल एवं पुष्प धारण करके सूर्यार्घ्य दे और ऊर्ध्वबाहु होकर समाहितचित्त हो सूर्यका निरीक्षण करते हुए 'ॐ उदु त्वं०', 'ॐ चिदं देवानां०', तथा 'ॐ तच्चक्षुर्देवहितं०' एवं 'ॐ हयसः शुचिपद०' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करते हुए सूर्योपस्थापन करे। इस प्रकार सूर्योपस्थापन करके यथाशक्ति गायत्रीका जप करना चाहिये। इसके पश्चात् 'ॐ विष्णु०' अनुष्ठाक, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्पसूक्त, मण्डलब्राह्मण इत्यादि सूर्यके मन्त्रोंका सभी देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यथाशक्ति जप करे अथवा जपकी साङ्गोपाङ्ग पूर्णताके लिये विधिवत् अध्यात्मविद्याका जप करे। तदनन्तर सव्य होकर तीन बार आचमनकर श्री, मैत्रा, धृति, क्षिति, वाक्, चागीश्वरी, पुष्टि, तुष्टि, उमा, अरुन्धती, शची, मातृगन्ध, जय, विजया, सावित्री, शान्ति, स्वाहा, स्वधा, धृति, त्रेह आदिति, ऋषिपत्नियों, ऋषिकन्याओं और अन्य काम्य देवताओंका तर्पण करे। इसके बाद समाहितचित्त होकर सभीकी मङ्गलकामनासे सर्वमङ्गलादेवीकी तुष्ट करे और 'ॐ आब्रह्मसम्बर्पणं जगत् तृप्यत्विति' इस मन्त्रसे तीन अञ्जलि जल देते हुए तर्पण-क्रियाकी सम्पन्नताकी कामना करे। (अध्याय २१४)

१-ॐ ये ते शतं वरुणये सहस्रं यज्ञियाः पाता विक्ता मृकान्तः। तेषिन्तीं अथ सक्थिते विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मस्तः स्वकाः स्वाहा॥ (२१४।७)

२-ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। सुमित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मकंदेति यद्व वषं द्विष्मः॥ (२१४।७)



## तर्पण<sup>१</sup>-विधिका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—इसके बाद तर्पणविधिका वर्णन करता हूँ। इस विधिके अनुसार तर्पण करनेसे देवगण और पितृगण तृप्त होते हैं। सर्वप्रथम 'ॐ मोदास्तृप्यन्ताम्' इत्यादि मन्त्रोंसे एक-एक अङ्गलि जल प्रदान करे। तर्पणके मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ मोदास्तृप्यन्ताम्। ॐ प्रमोदास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ सुमुखास्तृप्यन्ताम्। ॐ दुर्मुखास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ विघ्नास्तृप्यन्ताम्। ॐ विघ्नकर्तास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ सनातनस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ संवत्सरस्साधयस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ देवास्तृप्यन्ताम्। ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवायकस्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्। ॐ नगरास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरीरानुषा यज्ञास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि तृप्यन्ताम्।  
 ॐ भूतग्रामाश्चतुर्विधास्तृप्यन्ताम्। ॐ दक्षस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ प्रचेतास्तृप्यन्ताम्। ॐ मरीचिस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ अत्रिस्तृप्यन्ताम्। ॐ अङ्गिरास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ पुलस्त्यस्तृप्यन्ताम्। ॐ पुनहस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ क्रतुस्तृप्यन्ताम्। ॐ नारदस्तृप्यन्ताम्। ॐ भृगुस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ विश्वामित्रस्तृप्यन्ताम्। ॐ कश्यपस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ जमदग्निस्तृप्यन्ताम्। ॐ वसिष्ठस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ स्वायम्भुवस्तृप्यन्ताम्। ॐ स्वारोचिषस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ तामसस्तृप्यन्ताम्। ॐ रैवतस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ चाक्षुषस्तृप्यन्ताम्। ॐ महातेजास्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ वैवस्वतस्तृप्यन्ताम्। ॐ ध्रुवस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ ध्रुवस्तृप्यन्ताम्। ॐ अनिलस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ प्रभासस्तृप्यन्ताम्।

इसके बाद निवीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीतको मालाके रूपमें गलेमें धारणकर 'ॐ सनकस्तृप्यन्ताम्' इत्यादि निम्न मन्त्रोंसे तर्पण करे—

ॐ सनकस्तृप्यन्ताम्। ॐ सनन्दनस्तृप्यन्ताम्।

ॐ सनातनस्तृप्यन्ताम्। ॐ कपिलस्तृप्यन्ताम्। ॐ आसुरि-  
 स्तृप्यन्ताम्। ॐ यौवुस्तृप्यन्ताम्। ॐ पञ्चशिखस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ मनुष्याणां कण्वबाहस्तृप्यन्ताम्। ॐ अनलस्तृप्यन्ताम्।  
 ॐ सोमस्तृप्यन्ताम्। ॐ यमस्तृप्यन्ताम्। ॐ अर्यमा तृप्यन्ताम्।  
 तदनन्तर प्राचीनावीती होकर अर्थात् दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत धारणकर अधोलिखित मन्त्रोंसे तर्पण करे—

ॐ अग्निष्वाताः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ सोमपाः  
 पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ यमाय  
 नमः। ॐ धर्मराजाय नमः। ॐ मृत्यवे नमः। ॐ अन्तकाय  
 नमः। ॐ वैवस्वताय नमः। ॐ कालाय नमः। ॐ  
 सर्वभूतहायाय नमः। ॐ औदुम्बराय नमः। ॐ दण्डाय नमः।  
 ॐ नीलाय नमः। ॐ परमेष्ठिने नमः। ॐ वृकोदराय नमः।  
 ॐ विश्राय नमः। ॐ विश्वगुणाय नमः। ब्रह्मादिसप्तवर्षर्षेणं  
 जगत्तृप्यन्तु। ॐ पितृभ्यः स्वधा नमः। ॐ पितामहेभ्यः स्वधा  
 नमः। ॐ प्रपितामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ मातृभ्यः स्वधा  
 नमः। ॐ पितामहीभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रपितामहीभ्यः स्वधा  
 नमः। ॐ मातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रमातामहेभ्यः स्वधा  
 नमः। ॐ वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। तृप्यन्तामिति।

अधोलिखित मन्त्रोंका पारायण पितरोंका ध्यान करते हुए करे—

'ॐ उद्गीतामवर०', 'ॐ अग्निसो नः०', 'ॐ आयन्तु  
 नः०', 'ॐ ऊर्ज०', 'ॐ पितृभ्य०', 'ॐ ये चेह०' तत्पश्चात्  
 'ॐ मधुघात०' इसके बाद 'ॐ नमो वः पितरो०' इत्यादि  
 मन्त्रसे ध्यान करते हुए अधोलिखित मन्त्रसे जल दे—

ॐ पितृभ्यः स्वधाधिभ्यः नमः। ॐ पितामहेभ्यः  
 स्वधाधिभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रपितामहेभ्यः स्वधाधिभ्यः  
 स्वधा नमः। ॐ मातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रमातामहेभ्यः  
 स्वधा नमः। ॐ वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। आदि.....।

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।

ते तृप्यन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥

इस मन्त्रका पाठकर वस्त्रनिष्पीडित जलसे अपने कुलमें उत्पन्न पुत्र-हीनजनोंके लिये तर्पण करे।

(अध्याय २१५)

१-इस अध्यायमें तर्पणकी अवश्यकर्तव्यता एवं उसकी दिशाका संकेतनात्र किया गया है। तर्पणक्रम एवं विधिका ज्ञान अपनी शाखाके प्रन्वीसे करना चाहिये। माध्यदिन शाखाके लोगोंको 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' (प्रकाशित गीताप्रेस)-से सरलतम प्रामाणिक तर्पणविधि जान लेनी चाहिये।

## बलिवैश्वदेवनिरूपण

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं वैश्वदेव-बलिविधिक विधान बतलाता हूँ। यह होमका एक प्रारम्भिक उत्तम स्वरूप है। पहले अग्निको जलाकर अग्निका पर्युक्षण करे, तदनन्तर 'ॐ कव्यादमग्नि०' इत्यादि मन्त्रसे अग्निके लिये कुछ हव्यशांका परित्याग करे। इसके बाद 'ॐ पावक वैश्वानर०' मन्त्रको पढ़कर अग्निका आवाहन करे और ॐ प्रज्जपत्ये स्वाहा। ॐ सोमाय स्वाहा। ॐ बृहस्पत्ये स्वाहा। ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा। ॐ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। ॐ छायापृथिवीभ्यां स्वाहा। ॐ इन्द्राय स्वाहा। ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ॐ ब्रह्मणे

स्वाहा। ॐ अर्धभ्यः स्वाहा। ॐ ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा। ॐ गृह्णाय स्वाहा। ॐ देवदेवताभ्यः स्वाहा। ॐ इन्द्राय स्वाहा। ॐ इन्द्रपुरुषेभ्यः स्वाहा। ॐ यमाय स्वाहा। ॐ यमपुरुषाय स्वाहा। ॐ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्यः स्वाहा। ॐ वसुधापितृभ्यः स्वाहा—इन मन्त्रोंसे अग्निमें आहुति दे। तदनन्तर 'ॐ ये भूता प्रचरन्ति०' का पाठ करते हुए बलि और पुष्टि प्रदान करनेको प्रार्थना करे। अन्तमें 'ॐ आचापडालपतितवायसेभ्यो नमः' इस मन्त्रसे भी काक आदिको बलि प्रदान करे। (अध्याय २१६)

## संध्याविधि

श्रीब्रह्माजीने कहा—अब द्विजातियोंके लिये संध्या-विधिका वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम इस मन्त्रसे बाह्य तथा आभ्यन्तर शुद्धि करे—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुद्धिः॥

अर्थात् पवित्र हो या अपवित्र किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारकी शुद्धि हो जाती है।

उपनयन-संस्कारके समय जिस गायत्रीमन्त्रका उपदेस प्राप्त होता है, उसीका जप संध्योपासनमें होता है। उपनयनकालमें गायत्रीमन्त्रका विनियोग इस प्रकार होता है—'ॐ गायत्री छन्दः, विष्णुमित्र ऋषिभिषपात्, समुद्राः कुक्षिः, चन्द्रादित्यौ लोचनी, अग्निर्मुखम्, विष्णुर्हृदयम्, ब्रह्मरुद्रौ शिरः, रुद्रः शिखा उपनयने विनियोगः'।

संध्योपासनके समय गायत्रीमन्त्रके जपसे पहले 'ॐ भूः' से पैरमें, 'ॐ भुवः' से जानुओंमें, 'ॐ स्वः' से हृदयमें, 'ॐ महः' से सिरमें, 'ॐ जन्म' से शिखामें, 'ॐ तपः' से कण्ठमें और 'ॐ सत्यम्' से सत्ताटमें न्यास करना चाहिये। आगेके मन्त्रोंसे हृदय, सिर, शिखा, कवच, अस्त्र आदिमें न्यास करे— ॐ हृदयाय नमः, ॐ भूः

शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखायै वीषद, ॐ स्वः कवचाय हुम्, ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्। इसके बाद ॐ भूः, ॐ भुवः इत्यादि सप्तव्याहृतियोंके साथ गायत्रीके तृतीय पाद 'ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतम् भूर्भुवःस्वरोम्' का जप करते हुए प्राणायाम करे। प्राणायामके बाद 'ॐ सूर्यस्तु०' इस मन्त्रसे प्रातःकालकी, 'ॐ आपः पुनन्तु०' इस मन्त्रसे मध्याह्नकालकी तथा 'ॐ अग्निस्तु०' इस मन्त्रसे सायंकालीन संध्यामें आचमन करे। तत्पश्चात् आवाहनपूर्वक भगवती गायत्रीके प्रातः, मध्याह्न तथा सायं-स्वरूपोंका ध्यान करे। फिर 'ॐ आपो हि ह्य मयोभुवः०' और 'ॐ सुमित्रिया न आपः०' एवं 'ॐ हुषदादिब०' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा जलसे मार्जन करे और 'ॐ ऋतं च सत्यं०' इस मन्त्रसे अघमर्षण करे। तदनन्तर गायत्रीजपसे पूर्व गायत्रीमन्त्रका विनियोग इस प्रकार करे—'ॐ गायत्र्या विष्णुमित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः'। 'ॐ उदु त्वं जातवेदसं०', 'ॐ चित्रं देवानां०', 'ॐ तच्चक्षुः०'—ये सूर्योपस्थानके मन्त्र हैं। गायत्रीका जप करनेके अनन्तर ॐ विश्वतस्तु०, 'ॐ देवागन्तु०' तथा 'ॐ ब्रह्मे शिखरे०' इन मन्त्रोंसे जपसमर्पणपूर्वक गायत्रीदेवीका विसर्जन करे। (अध्याय २१७)

१-ये भूताः प्रचरन्ति दीनाश्च निमिहन्ते भुवनस्य मध्ये। तेभ्यो बलिं पुष्टिं कान्यो दद्यामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु॥ ( २१६।२ )

२-इस अध्यायमें बलिवैश्वदेवकी विधि अन्य शास्त्रके अनुसार है। माध्यन्दिन शास्त्रके लोगोंके लिये 'पारस्करगृह्यसूत्र' के अनुसार संक्षिप्त एवं प्रामाणिक 'बलिवैश्वदेवविधि' गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' में दृष्टव्य है।

३-इस अध्यायमें संध्याकी विधि अत्यन्त संक्षिप्त दी गयी है। अतः संधिधि विस्तारपूर्वक 'संध्योपासनविधि' जाननेके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' पुस्तक देखना चाहिये।

## पार्वणश्राद्धविधि<sup>१</sup>

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यस! अब मैं श्राद्धविधिका वर्णन करता हूँ। इस विधिके अनुसार पितरोंका श्राद्ध करनेसे भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है। श्राद्धकर्ता श्राद्धके एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करनेसे विशेष फल होता है।

सव्य होकर देवताओं (विश्वेदेवों)—को एवं अपसव्य होकर पितरोंको निमन्त्रित (आवाहित) करे। श्राद्धकर्ता 'ॐ स्वागतं भवद्भिः' ( भवद्भिः स्वागतं स्वीक्रियताम् ) आपलोग मेरा स्वागत स्वीकार करें—यह निवेदन विश्वेदेवों एवं पितरोंसे करे। तदनन्तर 'ॐ सुस्वागतम्' इस प्रकार विश्वेदेवों एवं पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मण बोलें। श्राद्धकर्ता 'ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वाहा' कहकर देव-ब्राह्मणोंके चरणोंपर देवतीर्थसे समूल कुशोंके सहित जल प्रदान करे। यह कुश द्विगुणभुग (पितरोंके कार्यके लिये विहित मोटक)—रूपमें नहीं होना चाहिये। इसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रखकर (अपसव्य होकर) पिता, पितामहके नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए 'ॐ एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वाहा' इस मन्त्रसे पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंके चरणोंमें पितृतीर्थसे द्विगुण-भुग कुश (मोटक) एवं पुष्पसहित जल प्रदान करे।

इसी प्रकार मातामह आदिके लिये उद्दिष्ट ब्राह्मणोंके चरणोंमें पादोदक और अर्घ्य समर्पित करे। इसके बाद 'ॐ एतदाधमनीयं स्वाहा' कहकर ब्राह्मणके हाथमें जल एवं 'ॐ एष वोऽर्घ्यः' मन्त्रसे अर्घ्य तथा पुष्प दे। तत्पश्चात् 'ॐ सिद्धमिदमासनम्' से ( सिद्धमिदमासनं गृह्यताम् )—आसन सम्पन्न है, कृपया ग्रहण करें—ऐसा निवेदन करे। 'इह सिद्धमिदमासनम्।' ( यहाँ हम लोगोंके लिये आसन सम्पन्न है ) ऐसा कहकर प्रतिनिधि ब्राह्मण प्रतिबन्धन दे।

इसके बाद 'ॐ भूः', 'ॐ भुवः' इत्यादि सप्तव्याहृतियोंका पाठकर देव-ब्राह्मणको पूर्वमुख और पितृब्राह्मणको उत्तरमुख

बैठाकर निम्नलिखित मन्त्रका तीन बार जप करे—

ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।

नमः स्वधार्य स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ते॥

(२१८।६)

तदनन्तर मास, पक्ष, तिथि, देश तथा पिता, पितामहका नाम एवं गोत्रका उच्चारण कर 'विश्वेदेवपूर्वके श्राद्धं करिष्ये' यह संकल्प करे तथा 'ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' का उच्चारण करे। इसके बाद 'ॐ विश्वेदेवानावाहयिष्ये' से प्रार्थन करके 'ॐ आवाहय' के द्वारा ब्राह्मणकी आज्ञा प्राप्त होनेपर 'ॐ विश्वेदेवाः', 'ॐ ओषधयः०' एवं— आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये अत्र विहिताः श्राद्धे साधधाना भवन्तु ते॥

(२१८।७)

—इत्यादि मन्त्रोंसे श्राद्धकर्ता विश्वेदेवोंका आवाहन करे तथा 'ॐ अग्रहतामुरा रक्षा रक्षि वेदिपदः—' मन्त्रका तीन बार उच्चारणकर यव बिखरे। श्राद्धकर्ता 'ॐ पात्रमहं करिष्ये' इस वाक्यसे अनुज्ञा प्राप्त करे तथा 'ॐ कुरुष्व' इससे ब्राह्मणोंके द्वारा अनुज्ञात होकर अग्रभागसे युक्त दो कुश ग्रहण करे। एक प्रदेश ( लम्बे ) कुशके दो पत्रोंको लेकर 'ॐ पवित्रे स्वी वैष्णव्यौ०' आदि मन्त्रसे दूसरे कुशपत्रके द्वारा उसका छेदन करे। इसके बाद 'ॐ विष्णुर्मनसा पूतेस्व' से उन दो कुशपत्रोंका अभ्युक्षण कर दूसरे कुशपत्रके द्वारा शिवेष्टनपूर्वक उर्ध्वपात्रमें स्थापित करे। तत्पश्चात् 'ॐ नो देवीर्दधिष्ठय०' से उस पात्रमें जल तथा 'ॐ एवोऽसि०' इत्यादि मन्त्रसे जी एवं 'ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षा०' से उसी पात्रमें चन्दन प्रदान करे। फिर 'ॐ या दिव्या आपः पथसा०' इस मन्त्रके पाठके साथ 'ॐ एवोऽर्घ्यं नमः' से ब्राह्मणोंके हाथमें अर्घ्यपात्रसे जल दे।

तदनन्तर श्राद्धकर्ता अर्घ्यपात्रस्थ अवशिष्ट संस्रवजल और पवित्रकको ग्रहणकर (अर्घ्यपात्रमें रखकर) ब्राह्मणके

१-श्राद्ध दो प्रकारका होता है—सप्तात्रकश्राद्ध तथा अष्टात्रकश्राद्ध। सप्तात्रकश्राद्धमें विश्वेदेव एवं पितरोंके रूपमें साक्षात् ब्राह्मणोंको ही आसनपर बिठाकर समस्त श्राद्धविधि सम्पन्न की जाती है। यहाँ इसी सप्तात्रकश्राद्धकी विधिका निदेश किया गया है। ऐसे श्राद्धके लिये पूर्ण सात्विक, जाति, विद्या, तप आदिकी दृष्टिसे उच्च पवित्र एवं उत्कृष्ट ब्राह्मण ही उपदेय है। कलिपुणमें ऐसे ब्राह्मण दुर्लभ हैं। इसीलिये अपात्रक-श्राद्ध ही वर्तमानमें किया जाता है। अपात्रकश्राद्धमें साक्षात् ब्राह्मण आसनपर नहीं बिठाये जाते हैं। विश्वेदेव एवं पितरोंके आसनोपर उनके प्रतिनितिरूपमें कुश (दण्ड-विधान त्रिकुश, पटवेत एवं मोटक) ही रखा जाता है।

२-अँगूठे और तर्जनीको पूरा फैलानेपर बीचकी दूरीको प्रदेश कहते हैं।

दक्षिणपार्श्वमें रखे और अर्घ्यपात्रको ऊर्ध्वमुख कुशके ऊपर स्थापित करके उसमें जल तथा पवित्रक भी (जो ब्राह्मणके दक्षिणपार्श्वमें रखा था) रख दे।

तत्पश्चात् 'ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीप-  
घासोयुग्मयज्ञोपवीतानि नमः' से विश्वेदेवोंको गन्धादि  
प्रदानकर समर्पित गन्ध आदिकी पूर्णताकी कामना 'गन्धादि-  
दानमच्छिद्रमस्तु'—कहकर करे। विश्वेदेवोंके प्रतिनिधि ब्राह्मण  
'ॐ अस्तु' से समर्पित चन्दनादिकी परिपूर्णता स्वीकार  
करे। ऋत्विक् ब्राह्मण 'ॐ अस्तु' से प्रत्युत्तर दे। ब्राह्मणों  
'पितृपितामहप्रपितामहानां मातामहप्रमातामहपुद्गलप्रमातामहानां  
सपत्नीकानां आद्भमहं करिष्ये' ऐसा कहकर पितरोंके ब्राह्मणों  
अनुज्ञा माँगे। ब्राह्मणोंके द्वारा 'कुरुष्व' इस वाक्यसे अनुज्ञात  
होनेपर 'ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च०' मन्त्रका तीन बार जप करे।

तदनन्तर पित्रादि एवं मातामहादिका नाम, गौत्रका  
उल्लेख करते हुए 'इदमासनं स्वधा' पदसे ब्राह्मणोंके  
वामपार्श्वमें आसन दानकर 'ॐ पितॄन् आवाहयिष्ये' से  
ब्राह्मणोंसे अनुज्ञाकी प्रार्थना करे और 'ॐ आवाहय' इस  
वाक्यसे ब्राह्मणोंके द्वारा अनुज्ञात होकर 'ॐ उग्रान्तस्वा०'  
एवं 'ॐ आप्यान्तु नः पितरः०' इत्यादि मन्त्रोंसे पितरोंका  
आवाहन करे। 'ॐ अपहतासुरा रक्षांसि वेदिषद्' मन्त्रसे  
तिलका विकरण करे। पूर्वकी भाँति क्रमसे स्थापित  
अर्घ्यपात्रमें उदक दे तथा 'ॐ तिलोऽसि सोमदेवायो०'  
आदि मन्त्रोंसे तिल-दान करे।

इसके बाद दोनों हाथसे गन्ध, पुष्प प्रदानकर पितृपात्रको  
उठाकर 'ॐ या दिव्या०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करके  
अन्तमें पित्रादिका गौत्र, नामका उल्लेख कर 'एष तेऽर्घ्यः  
स्वधा' से पवित्रीके साथ अर्घ्यपात्रको ग्रहण करनेके बाद  
वामपार्श्वमें कुशके ऊपर 'ॐ पितृभ्यः स्नानमसि' मन्त्रसे  
अधोमुख अर्घ्यपात्रको स्थापित करे, फिर 'ॐ शुभ्रान्तां  
लौकाः पितृसदनाः०' का पाठकर उस अधोमुख पात्रका  
स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद पितृतीर्थसे पित्रादिके आसनपर  
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप वस्त्रयुग्म एवं यज्ञोपवीतादि देकर  
गौत्रनामोच्चारणपूर्वक सपत्नीक पितृ, पितामह एवं प्रपितामहको  
'एतानि गन्धपुष्पधूपदीपघासोयुग्मसोत्तरीययज्ञोपवीतानि  
वः स्वधा' इस वाक्यको पढ़कर पितृतीर्थसे जल छोड़े।  
'गन्धादिदानम् अक्षय्यम् अस्तु' ऐसा ब्राह्मणकी कहनेपर  
'संकल्पसिद्धिरस्तु' इस प्रकार ब्राह्मण कहे। इसी प्रकार

मातामहादिके लिये भी अनुज्ञापनादि कर्म करे। 'ॐ या  
दिव्या०' इस मन्त्रसे भूमिका सम्मार्जन करे। तदनन्तर  
पृथग्विहित अन्न ग्रहणकर सव्य होकर 'ॐ अग्नौ  
करणमहं करिष्ये' द्वारा पितृब्राह्मणकी सेवामें अनुज्ञाकी  
प्रार्थना करे। 'ॐ कुरुष्व' इस वाक्यसे ब्राह्मणके द्वारा  
अनुज्ञात हो, 'ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' मन्त्रसे  
पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मणके हाथमें दो आहुति प्रदान  
करे। अवशिष्ट अन्न पिण्डार्थ स्थापित करके अन्नका  
आधाभाग पित्रादिके पात्रमें और मातामहादिके पात्रमें  
समर्पित करे।

इसके बाद जलपात्र मुद्रादि दक्षिणास्थापनपूर्वक  
भोजनपात्रके ऊपर कुशदान कर अधोमुख दोनों हाथोंके  
द्वारा भोजनपात्र स्पर्श करे। 'ॐ पृथिवी ते पात्रं०' इत्यादि  
मन्त्रपाठपूर्वक इस पात्रको अधिमन्त्रितकर उसपर अन्न  
परोसते हुए 'ॐ इदं विष्णुर्वि चक्रमे०' मन्त्रका पाठ करे।  
'विष्णो हव्यं रक्षस्व' से अन्नके मध्यमें अधोमुख अंगुष्ठसे  
स्पर्श करके 'ॐ अपहतासुरा रक्षांसि वेदिषद्' मन्त्रसे तीन  
बार जी एवं 'ॐ विद्महि सर्व०' से पीली सरसोंका  
विकरण करना चाहिये। तदनन्तर 'धूरिलोचनसंज्ञकेभ्यो  
देवेभ्य एतदन्नं सपृतं सपानीयं सव्यञ्जनं स्वाहा' कहकर  
विश्वेदेवोंको अन्न निवेदन करते हुए उसके ऊपर सजला  
कुशपर रखकर ब्राह्मणों 'ॐ अन्नमिदम् अक्षय्यम् अस्तु'  
ऐसा उच्चारण करे एवं निर्मान्त ब्राह्मण 'ॐ सङ्कल्पसिद्धिरस्तु'  
इस प्रकार कहें।

तत्पश्चात् अपसव्य होकर पित्रादि-पात्रमें व्यञ्जनसहित  
घी मिले हुए अन्नको परोसकर उसके ऊपर भूमि-संतान  
कुशका स्थापन कर दोनों उत्तान हाथोंसे भोजनपात्र स्पर्श  
करते हुए 'ॐ पृथिवी ते पात्रं०' मन्त्रका पाठ करे। 'ॐ इदं  
विष्णुर्वि चक्रमे०' एवं 'ॐ विष्णोः कव्यं रक्षस्व' इन मन्त्रोंसे  
समर्पित अन्नमें अंगुष्ठका स्पर्श करे। 'ॐ अपहतासुरा  
रक्षांसि वेदिषद्' से अन्नके ऊपर तिल फैलाकर पृथ्वीपर  
ज्यों घुटन टिकाकर 'अमुकगौत्रेभ्यः अस्मत् पितृपितामहेभ्यः  
सपत्नीकेभ्यः एतदन्नं सपृतं सपानीयं सव्यञ्जनं प्रतिषिद्धवर्जितं  
स्वधा' इत्यादि वाक्यसे सपत्नीक पिता-पितामहादिको नाम-  
गौत्र-उच्चारणपूर्वक अन्नका निवेदन करे। अन्नका संकल्प  
करके 'ॐ ऊर्जं वहनीरमृतं०' मन्त्रसे दक्षिणमुख होकर  
जलकी धारा प्रदान करे। 'ॐ आद्भमिदमच्छिद्रमस्तु' एवं



ॐ सङ्कल्पसिद्धिरस्तु—इन दोनों मन्त्रोंका पाठकर 'ॐ भूर्भुवः स्वः०'—इस व्याहृति-मन्त्रसे युक्त गायत्रीका उच्चारण कर विसर्जन करे। तदनन्तर 'ॐ मधुवाता०' मन्त्रका पाठकर तीन बार 'मधु' शब्दका उच्चारण करना चाहिये।

इसके साथ 'यथासुखं वाग्यता जुषध्वम्' को पाठकर ब्राह्मणोंके भोजन करते समय भक्तिपूर्वक 'सप्तव्याधा०' इत्यादि पितृस्तोत्रका पाठ करे। इसके बाद 'तृण्यस्व' इस वाक्यका उच्चारण कर दक्षिणाभिमुख अपसम्ब्य होकर 'ॐ अग्निदग्धाक्ष०' मन्त्रको पढ़कर भूमिमें कुशके ऊपर धीके साथ जलपुच्छ अन्नको विकरित करे।

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको मुखप्रक्षालनके लिये जल देकर प्रणवपूर्वक व्याहृतिके साथ गायत्री तथा 'ॐ मधुवाता०' इत्यादि मन्त्रोंका पाठकर मधु शब्दका तीन बार उच्चारण करे। 'ॐ रुचितं भवद्भिः' यह कहकर देव-ब्राह्मणोंसे विनम्रभावपूर्वक भोजनके रुचिपूर्ण (स्वादित) होनेका प्रश्न करे। देव-ब्राह्मणोंके द्वारा 'सुरुचितम्' यह उत्तर देनेपर 'ॐ शेषमश्नम्' यह विनम्रतासे प्रश्न करनेपर ब्राह्मण 'ॐ इष्टैः सह भोजनम्' अर्थात् इष्टजनोंके साथ आप भी भोजन करें—यह प्रत्युत्तर दे। तदनन्तर वामोपवीती (अपसम्ब्य) होकर पित्रादि ब्राह्मणोंसे 'ॐ तृप्ताः स्मः' यह जिज्ञासा को और उनके द्वारा 'ॐ तृप्ताः स्मः' इस वाक्यसे अनुज्ञात होकर भूमिका अभ्युक्षण और चतुष्कोण मण्डल बनाकर उसमें तिल विकरित करे। 'ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकदेवशर्मन् सपत्नीकः एतथै पिण्डासनं स्वधा' ऐसा कहकर पिण्डके लिये आसन दे और रेखाकरण करे। सप्रणव तथा व्याहृतिके साथ गायत्रीमन्त्र और 'ॐ मधुवाता०' आदि मन्त्रका पाठकर तीन बार 'मधु' शब्दका उच्चारण करते हुए धृतयुक्त अन्नसे पिण्डका निर्माण कर 'ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः०' इत्यादि वाक्यसे कुशोंके ऊपर पिता आदिके लिये पिण्ड प्रदान करे। पुनः रेखामध्यमें पहलेके समान पितामहको पिण्डदान तथा व्याहृतिपूर्वक गायत्री और 'मधुवाता०' का तीन बार जप करके पिण्डके समीपमें शेषात्रका विकरण करके 'ॐ लेषधुजः पितरः प्रीयन्ताम्' इस वाक्यसे (पिण्डाधार कुशमें) हाथका मार्जन

करे। प्रक्षालित पिण्डजलसे 'ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः०' इत्यादि वाक्यसे जलझाड़ पिण्डसेचन कर पिण्डपात्रको अधोमुख करके कृताञ्जलिपूर्वक 'ॐ पितरो मादयध्वं०' मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् जलस्पर्श करते हुए वामावर्तसे उत्तरमुख होकर प्राणवायुका तीन बार संयम करके 'ॐ बह्वभ्य ऋतुभ्यो नमः' इस मन्त्रका पाठ करे।

इसके बाद वामावर्तसे दक्षिणमुख होकर भोजनपात्रमें पुष्प तथा 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु०' से अक्षत दे। 'अमी मदन्तः पितरो यथाभागमावृषादिषन्त' इस मन्त्रका पाठ करते हुए वस्त्रको लिथिलकर अञ्जलि बनाकर 'ॐ नमो वः पितरो नमो वः०' इस मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् 'गृहाक्षः पितरो दत्त' इस मन्त्रसे गृहका निरीक्षण करे। 'सदा वः पितरो द्वेषः' इस मन्त्रसे निरीक्षणकर 'एतद्दः पितरो वासः' यह मन्त्र पढ़कर 'अमुकगोत्र पितः एतथै वासः स्वधः' वाक्यसे पिण्डपर सूत्रदान करे।

तदनन्तर बायें हाथसे उदकपात्र ग्रहणकर 'ऊर्जं वहन्ती०' मन्त्रसे पिण्डके ऊपर जलधारा देकर पूर्वमें स्थापित अर्घ्यपात्रके बचे हुए जलसे प्रत्येक पिण्डका सेचन करे। फिर पिण्डावाहनपूर्वक पिण्डोंके ऊपर गन्ध और कुशदानकर 'अक्षत्रमीमदन्त०' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करे। मातामहादिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंको आचमन कराये। 'ॐ सुप्रोक्षितमस्तु' इस वाक्यसे श्राद्धभूमिका भलीभाँति अभ्युक्षणकर 'अर्णं मध्ये स्थिता देवा सर्वमधु०' का उच्चारण करके 'शिव आषः सन्तु' कहकर ब्राह्मणोंके हाथमें जल दे। 'लक्ष्मीर्वसति०' आदिका पाठकर 'ॐ सौमनस्यमस्तु' यह मन्त्र पढ़कर ब्राह्मणोंके हाथमें पुष्प समर्पित करे। इसके बाद 'अक्षतं चास्तु०' इत्यादि मन्त्रका पाठकर 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु' यह कहते हुए यव और तण्डुल भी ब्राह्मणोंके हाथमें दे। तदनन्तर 'अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां सपत्नीकाना-मिदमन्त्रानादिकमक्षय्यमस्तु' इस वाक्यसे पित्रादि ब्राह्मणोंके हाथमें तिल और जलका दान करे। ब्राह्मण 'अस्तु' कहकर प्रत्यिवचन बोलें। इसी क्रममें मातामह आदिको अक्षत आदि दानकर उनसे आशीर्वादकी प्रार्थना करे। तत्पश्चात्

१-सप्तव्याधा दशार्णेषु घृणाः कालजरे लीतौ। यक्षवाकाः शरद्वेदे हंसः सरसि मानसे॥

तेऽभिप्रेताः कुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपात्राः। प्रस्थिता दूतध्वानं पूर्वं क्षिप्रवीर्यद॥ (२१८। २०-२१)

२-अग्निदग्धाक्ष ये जीवा वैऽप्यदग्धाः कुले नमः। भूमीं दत्तेन तृण्यन्तु तृण्यन्तु पराङ्मतिम्॥ (२१८। २२)

'ॐ अघोराः पितरः सन्तु', 'गोत्रं नो वर्द्धतं०', 'दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे।

श्राद्धकर्ता 'सौमनस्यमस्तु' इस वाक्यका उच्चारण करे। ब्राह्मण 'अस्तु' यह कहें। तदनन्तर दिये गये पिण्डोंके स्थानमें अर्घ्यपात्रोंमें पवित्रकोंको छोड़ दे। बादमें कुशनिर्मित पवित्रक लेकर उससे पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंका स्पर्शकर 'ॐ स्वधा वाचपिथ्ये' इस वाक्यसे स्वधावाचनकी आज्ञा प्राप्त करे। ब्राह्मणोंके द्वारा 'ॐ वाच्यताम्' इस वचनसे अनुज्ञात हो श्राद्धकर्ता 'ॐ पितृपितामहेभ्यो यक्षानामशर्मभ्यः सपत्नीकेभ्यः स्वधा उच्यताम्' ऐसा कहें। तदनन्तर ब्राह्मण 'अस्तु स्वधा' का उच्चारण करें।

श्राद्धकर्ता 'अस्तु स्वधा' इस वाक्यसे अनुज्ञात हो 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं०' इस मन्त्रसे पिण्डके ऊपर जलधारा दे। फिर 'ॐ विश्वेदेवा असीम् पद्मे प्रीयन्ताम्' से देव-ब्राह्मणोंके हाथमें यव और जल प्रदान करे। 'ॐ प्रीयन्ताम्' इस वाक्यसे ब्राह्मणद्वारा अनुज्ञात होकर 'ॐ देवताभ्यः०' मन्त्रका तीन बार जप करे।

अधोमुख होकर पिण्डपात्रको हिलाकर आचमनपूर्वक दक्षिणोपवीती (सव्य) होकर पूर्वाभिमुख 'ॐ अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे०' इत्यादि मन्त्रसे देव-ब्राह्मणको दक्षिणा दे। तत्पश्चात् पितृ-ब्राह्मणोंकी सेवामें 'ॐ पिण्डाः सम्पन्नाः' यह निवेदन करनेपर 'ॐ सुसम्पन्नाः' इस प्रकार ब्राह्मणसे अनुज्ञात हो पिण्डके ऊपर श्राद्धकर्ता दुग्धधारा प्रदान करे। फिर पिण्डको हिलाकर पिण्डके समीप रखे अर्घ्यपात्रको सौम्य स्थापित कर दे। इसके बाद 'ॐ वाजे वाजे०' मन्त्रसे पिण्डके अधिष्ठाता पितरोंका विसर्जन करे। 'आमा वाजस्य०' आदि मन्त्रसे देव तथा 'अभिराम्यताम्' से पितृ-ब्राह्मणका विसर्जन करके ब्राह्मणसे अनुज्ञा प्राप्तकर गौ आदिको पिण्ड प्रदान करे। इस प्रकार यहाँ श्राद्धविधि बतलायी गयी। इसका पाठ करनेमात्रसे भी पापका नाश होता है। किसी भी स्थानमें उक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करनेपर पितरोंको अक्षय स्वर्ग एवं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। (अध्याय २१८)

## नित्यश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध एवं एकोद्दिष्टश्राद्धका वर्णन

श्रीब्रह्मजीने कहा—अब मैं नित्यश्राद्धका वर्णन करता हूँ। पूर्वमें जिस तरह श्राद्धविधि कही गयी है, उस विधिके अनुसार ही नित्यश्राद्ध करे। विशेषता यह है कि नित्यश्राद्धमें 'ॐ अमुकगोत्राणामस्मरितपितृपितामहानाम् अमुकशर्मणां सपत्नीकानां श्राद्धं सिद्धात्रेण पुष्पास्वाहं कथिष्ये' ऐसा कहकर श्राद्धका संकल्प करना चाहिये। आसन-दानादि सभी कार्य पूर्ववत् करे। इस श्राद्धमें विश्वेदेव वर्जित हैं।

अब मैं वृद्धिश्राद्धका विधान बतलाता हूँ। वृद्धिश्राद्धमें भी श्राद्धकी ही भाँति प्रायः सभी कार्य करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जो विशेष है, उसे कहता हूँ। पैदा हुए पुत्रके मुखको देखनेके पहले वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये। यह श्राद्ध पूर्वाभिमुख और दक्षिणोपवीती (सव्य) होकर यव,

खैर, कुश, देवतीर्षके द्वारा नमस्कार तथा दक्षिणा आदि उपचारपूर्वक करे।

दक्षिण जानुको ग्रहण कर विश्वेदेवोंका ब्राह्मणोंमें आवाहन करे। आमन्त्रणसे पूर्व ब्राह्मणोंसे अनुज्ञा प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार ब्राह्मणोंसे निवेदन करे—अपने कुलके अमुककी उत्पत्तिके शुभ अवसरपर अपने पितृपक्ष एवं मातृपक्षके पितरोंका श्राद्ध करनेके लिये वसु, सत्य नामके विश्वेदेवोंका आप लोगोंमें आवाहन कर सिद्ध अन्नसे उनका श्राद्ध करना चाहता हूँ। ब्राह्मणोंके द्वारा अपनेमें विश्वेदेवोंके आवाहनकी आज्ञा मिलनेपर उन ब्राह्मणोंमें वसु, सत्य नामके विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहिये। (यहाँ मूल ग्रन्थके अनुसार संस्कृतवाक्योंका ही प्रयोग होना चाहिये।) इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणोंमें पितरोंका

१-इस अध्यायसे पार्वणश्राद्ध करनेकी प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये। श्राद्धकी विधि, सम्पूर्ण मन्त्र एवं क्रमका ज्ञान श्राद्धकी पद्धतियोंसे करना चाहिये।

२-इस श्राद्धको मातृश्राद्ध, आभ्युदयिक तथा गान्दीमुखश्राद्ध भी कहते हैं।

३-जानु जह्नुकी कहते हैं। कार्य जह्नुको मोड़कर और दाहिने जह्नुको ऊपरका बैठनेसे दाहिने जह्नुपर दाहिना हाथ होता है। यहाँ इसी आसनसे तात्पर्य है।

भी आवाहन करना चाहिये। बादमें 'ॐ विश्वेदेवा स आगत०' इत्यादि मन्त्रसे वसु तथा सत्य नामवाले विश्वेदेवोंका आवाहन कर उन्हें आसन तथा गन्धादि दानकर 'अच्छिद्रावधारण' का वाचन करे। इसके बाद प्रपितामही आदिका अनुज्ञापन, आसनदान, गन्धादि-दान और अच्छिद्रावधारण-वाचन करना चाहिये।

इसी प्रकार पितामही, माता और प्रपितामहकी अनुज्ञा ग्रहणकर आसन, आवाहन और गन्धादि-दान तथा अच्छिद्रावधारण करके प्रपितामह एवं वृद्धप्रमातामह आदिकी अनुज्ञा ग्रहण कर आसन, आवाहन एवं गन्धादिका दान करे। तदनन्तर 'ॐ वसुसत्यसंजत्रकेभ्यो०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर इसी प्रकार पितामही और मातामह, प्रमातामहके लिये अन्नसंकल्पनादि क्रिया करना चाहिये।

एकोद्दिष्टश्राद्धमें<sup>१</sup> पूर्वके समान सभी कार्य करना चाहिये। इसमें विशेष यह है कि प्रथम ब्राह्मण-निमन्त्रण, पादप्रक्षालन, आसनदान करके 'अद्य अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्मणः प्रतिसांवत्सरिकमेकोद्दिष्टश्राद्धं सिद्धात्रेण युक्तास्वहं करिष्ये' इस संकल्प-वाक्यसे अनुज्ञाग्रहणपूर्वक आसनदान और गन्धादि तथा पक्वान्न प्रदान करना चाहिये।

इसके बाद रुचिर-स्तवादिका पाठकर तथा यज्ञसूत्र (यज्ञोपवीत) कण्ठमें धारणकर उत्तराभिमुख होकर अतिथिश्राद्ध करे। पितरोंकी तृप्ति जानकर दक्षिणाभिमुख हो यामोपवीती (अपसव्य) होकर कर्मसे उचिष्ट अन्नेके सगीपमें 'अग्निदग्धाष्ट०' इत्यादि मन्त्रसे अन्न विकरण करे। तदनन्तर 'अमुकगोत्र मत्पितः०' से मण्डलरेखाके ऊपर जलधारा दे। अन्य कार्य पूर्वके समान ही समझना चाहिये। (अध्याय २१९)

## सपिण्डीकरणश्राद्धकी विधि

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी! अब मैं सपिण्डीकरण-श्राद्धका वर्णन करता हूँ। मृत्युके सालभर बाद मृत्यु-तिथिपर यह श्राद्ध करना चाहिये। इस श्राद्धको यथासमय विधिवत् करनेसे प्रेतकी पितृलोककी प्राप्ति होती है। सपिण्डीकरणश्राद्ध अपराह्णमें करना चाहिये, सभी अनुष्ठान प्रायः अन्य श्राद्धोंके समान करे। (इसमें जो विशेष है वही कहा जा रहा है।) पितामहादिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंकी निमन्त्रित कर 'ॐ पुनरवोपात्रवसंजत्रकेभ्यो०' से कामपद्यमें आसन रखकर पुरुरवा और माद्व नामके विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहिये। 'पितामहप्रपितामहानां०' इत्यादि वाक्यसे श्राद्धकी पितामह आदिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंसे अनुज्ञा ग्रहणकर तीन पात्र स्थापित करे। उन पात्रोंके ऊपर कुश रखकर दूसरे पात्रसे उन्हें ढक दे और आवाहन करे। इसके बाद अन्य श्राद्धोंके समान अच्छिद्रावधारणतककी क्रिया करके सपत्नीक पिताकी प्रेतपद अन्तमें प्रयुक्तकर ढनका नाम

उच्चारण करे। श्राद्धकी अनुज्ञा ले ले। तदनन्तर देवैषाज्यच्छिद्रावधारण करे। यथाविधान कर्तव्योंकी सम्पन्नकर पितामह, प्रपितामह, वृद्धप्रपितामहके पात्रोंका क्रमसे संचालन और उद्घाटनकर 'ॐ ये सवावाः समनसो०' इत्यादि मन्त्रोंसे पितृपात्रका जल पितामह और प्रपितामहके पात्रमें छोड़े। वृद्धप्रपितामहके पात्रको छोड़कर पितामह, प्रपितामहके पात्रका जल और पवित्र पितृ-पात्रमें निक्षिप्त करे। तदनन्तर पितृ-ब्राह्मणके हाथमें अर्घ्यपात्रस्थ पवित्रक देकर उसमें स्थित पुष्प ब्राह्मणोंके सिर, हाथ और चरणोंमें समर्पित करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणोंके हाथमें जल देकर दोनों हाथोंसे अर्घ्यपात्र ठठाकर 'ॐ या दिव्या०' इत्यादि मन्त्रका पाठकर 'अमुक गोत्र मत्पितामह०' इस वाक्यसे पितृ-पात्रसे कुछ अर्घ्यौदक पितामहके प्रतिनिधि ब्राह्मणके हाथमें प्रदान करे तथा पवित्रकके सहित अवशिष्ट कुछ जल पिण्डसंचयनके लिये रखकर अन्य पात्रसे आच्छदितकर

१-श्राद्धमें समर्पित वस्तुकी पूर्णताका वचन ब्राह्मणोंसे लेना ही 'अच्छिद्रावधारणवचन' है।

२-इस श्राद्धका भी यथोचित क्रम एवं विस्तृत विवरण श्राद्धपद्धतियोंमें देखा चाहिये।

३-पितरोंके उद्देश्यसे की गयी विधिकी पूर्णताकी प्रार्थना ही 'अच्छिद्रावधारण' है।

४-अर्घ्यपात्रके छिद्ररहित होनेका निश्चय करना ही 'देवैषाज्यच्छिद्रावधारण' है।

पितृ-ब्राह्मणके वामपार्श्वमें दक्षिणाग्रकुशके ऊपर 'पितृभ्यः स्थानमसि' यह पढ़कर अधोमुख स्थापित करे।

इसके बाद पितामह-प्रपितामह आदिको गन्धादि देकर 'अग्नीर्करण' करे तथा अवशिष्ट अन्नको प्रपितामह आदिके पात्रमें डाल दे। इसी प्रकार पितामहादिका पात्राभिमन्त्रणपर्यन्त कर्म सम्पन्नकर ब्राह्मणपात्राभिमन्त्रण, अंगुष्ठनिर्वेशन, तिल-विकरणपूर्वक 'अमुक गोत्र०' इत्यादि वाक्य कहकर घृताक्त अन्न आदिका निवेदन करे।

तत्पश्चात् देवादिक्रमसे ब्राह्मणके हाथमें जल प्रदान करे, यही 'अपोशन' विधि है। अतिथिके आनेपर अतिथिश्राद्ध करते हुए इस समय भी विकरणके लिये अन्न प्रदान करना चाहिये। पितामहादि ब्राह्मणसे 'ॐ स्वदितं भवद्भिः' से सुसुप्तिवती जिज्ञासा कर संतुष्टिका आश्वासन प्राप्त करे। 'अमुक गोत्र०' इत्यादि वाक्यसे पिण्डदान और 'पिण्डपात्रमच्छिद्रमस्तु' कहकर सभी कार्योंकी समाप्तिके बाद पिण्डके दो हिस्से कर 'ये समानाः समनसः०' आदि मन्त्रोंका पाठ करे और पितामह, वृद्धप्रपितामह-पिण्डके साथ पिताका पिण्ड मिला दे। पिण्डके ऊपर गन्धादि रखकर पिण्डचालन करना चाहिये। अतिथि और ब्राह्मणसे स्वदितादि (सुसुप्ति)-का प्रश्न करके ब्राह्मणोंको आचमन एवं ताम्बूल प्रदान करे।

तदनन्तर यजमान 'सुप्रेक्षितमस्तु', 'शिवो अग्नः सन्तु'—इन दो मन्त्रोंका उच्चारण करके वृद्धप्रपितामहादि-क्रमसे ब्राह्मणके हाथमें जल प्रदान करे और 'गोत्रस्याहव्यमस्तु'

से पितृ-ब्राह्मणके हाथमें अक्षय्यदान करके 'उपतिष्ठताम्' आदि वाक्यसे सतिल जल देना चाहिये।

तत्पश्चात् 'अघोराः पितरः सन्तु' इस वाक्यका उच्चारण करनेपर ब्राह्मण 'अस्तु' इस वाक्यसे प्रतिवचन प्रदान करें एवं 'स्वधा वाचयिष्ये' इस पदका उच्चारण करनेपर ब्राह्मण 'ॐ वाच्यताम्' इस अनुज्ञा-वाक्यसे प्रत्युत्तर दें। 'पितामहादिभ्यः स्वधा उच्यताम्' इस प्रकार यजमानके कहनेपर 'अस्तु स्वधा' ऐसा ब्राह्मण बोले। फिर 'पितृभ्यः स्वधा उच्यताम्' ऐसा कहकर आज्ञा प्राप्त करे।

तदनन्तर 'ॐ ऊर्जं वहन्ती०' इत्यादि मन्त्रसे दक्षिणाभिमुख होकर जलधारा दे, पुनः 'ॐ विश्वेदेवा अस्मिन् यज्ञे प्रीयन्ताम्' यह मन्त्र पढ़कर देवब्राह्मणके हाथमें यव और जल देकर 'ॐ देवताभ्यः०' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करे। पिण्डपात्रोंको परिचालितकर आचमनपूर्वक पितामहादि-क्रमसे दक्षिणा दे। पितृ-ब्राह्मणसे 'आशिषो मे प्रहीयन्ताम्' इस वचनसे अक्षीर्वादकी प्रार्थना करे। ब्राह्मण 'प्रक्षिप्यताम्' इस वाक्यसे प्रत्युत्तर प्रदान करें। पुनः 'दाताते नोऽग्निवर्धनम्०' आदि मन्त्रका पाठकर अर्घ्यपात्रकी ऊर्ध्वमुख कर 'वाजे वाजे०' इत्यादि मन्त्रसे देवब्राह्मण एवं 'अधिरम्यताम्' इस मन्त्रसे पितृब्राह्मणका विसर्जन करना चाहिये।

हे व्यास! मैंने आपको सपिण्डीकरणश्राद्धका विधान बताया। श्राद्ध, श्राद्धकर्ता और श्राद्धफल—इन तीनोंकी विष्णुरूप जानना चाहिये। (अध्याय २२०)

## धर्मसारका कथन

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे शंकर! अब मैं सभी पापोंका विनाश करनेवाले तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले अतिशय सुक्ष्म धर्मसारको संक्षेपमें कहता हूँ, आप सुनें। शोक शास्त्रीय ज्ञान, धर्म, बल, धैर्य, सुख और उत्साह—इन सबका हरण कर लेता है। अर्थात् शोकके प्रभावसे सभी सात्त्विक वृत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं। इसीलिये सर्वतोभावसे शोकका परित्याग करना चाहिये।

कर्म ही दारा (स्त्री) है, कर्म ही लोक है, कर्म ही

सम्बन्धी है, कर्म ही बान्धव है। (अर्थात् स्त्री, लोक, सम्बन्धी एवं बान्धव आदि कर्मके अनुसार ही मिलते हैं।) कर्म ही सुख-दुःखका मूल कारण है। (अतः उत्तम कर्म करनेके लिये सदा सावधान रहना चाहिये।) दान ही परमधर्म है। दानसे ही पुरुषकी सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। दान ही पुरुषको स्वर्ग और राज्य प्रदान करता है। इसलिये मनुष्यको दान अवश्य करना चाहिये—

दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते।

१-अग्नीर्करण—एक विशेष विधि है। इसमें अगस्त्य होकर जलमें दो अङ्गुलि दी जाती है।

२-सपिण्डीकरणश्राद्धकी विस्तृत विधि ब्राह्मणग्रन्थोंसे जानना चाहिये। यहाँ संक्षिप्तस्वरूपमें वर्णन है।



दानात्स्वर्गश्च राख्यं च दद्याद्दानं ततो नरः ॥

(२२१.४)

विधिपूर्वक प्रशस्त दक्षिणाके साथ दान तथा भयभीत प्राणीकी प्राणरक्षा—ये दोनों समान हैं। यथाविधि तपस्या, ब्रह्मचर्य, विविध यज्ञ एवं स्नानमें जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य भयभीत प्राणीके प्राणीकी रक्षासे प्राप्त होता है। जो लोग धर्मका नाश करते हैं, वे नरकमें जाते हैं।

जो होम, जप, स्नान, देवतार्चन आदि सत्कार्यमें तत्पर रहकर सत्य, क्षमा, दया आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न रहते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं<sup>१</sup>। कोई भी किसीको सुख या दुःख नहीं देता है और न किसीका सुख-दुःख हरण कर सकता है। सभी अपने किये हुए कर्मके अनुसार सुख-दुःखका भोग करते हैं—

न दाता सुखदुःखानां न च हर्तास्ति कश्चन।

भुङ्क्ते स्वकृतान्येव दुःखानि च सुखानि च ॥

(२२१.८)

जो धर्मकी रक्षाके लिये जीवनदान करता है, वह सभी विषम परिस्थितियों (कठिनस्थितियों)—को पार कर जाता है। जिनका चित्त सदा संतुष्ट रहता है, वे फल, मूल, शक्त आदिके द्वारा जीवनधारण करके भी सुखकी अनुभूति करते हैं—

धर्माद्यं जीवितं येषां दुर्गात्पथिततरणि ते।

सन्तुष्टः को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्तितुम् ॥

(२२१.९)

सुखकी लालसामें सभी मनुष्य संकटकी स्थितिमें पड़ते हैं। यह लोभका ही परिणाम है, जो अत्यन्त दुष्कर है।

मनुष्यके चित्तमें लोभ उत्पन्न होनेसे ही क्रोध उत्पन्न होता है। लोभके कारण ही मनुष्य हिंसा आदि गंहित कार्योंमें प्रवृत्त होता है। मोह, माया, अधिमान, मात्सर्य, रग, द्वेष, असत्यभाषण एवं मिथ्याचरण—ये सभी लोभसे उत्पन्न होते हैं। लोभसे ही मनुष्य मोह और मदसे उन्मत्त हो जाता है। (इसलिये लोभका परित्याग करना चाहिये) जो शान्त व्यक्ति लोभका परित्याग करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे रहित होकर परमलोकको प्राप्त करता है<sup>१</sup>।

हे महादेव! देवता, मुनि, नाग, गन्धर्व, गुह्यकगण—ये सभी धार्मिकोंकी पूजा करते हैं, धनाढ्य और कामी व्यक्तिकी अर्चना कोई भी नहीं करता है—

देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुह्यका हर।

धार्मिकं पूजयन्तीह न धनाढ्यं न कामिनम् ॥

(२२१.१३)

अनन्त बल, वीर्य, प्रज्ञा और पौरुषके द्वारा किसी दुर्लभ वस्तुको यदि मनुष्य प्राप्त कर लेता है तो इसके कारण किसीको ईर्ष्यावश शोकाकुल या दुःखी नहीं होना चाहिये।

सभी प्राणियोंके प्रति दयाका भाव रखना, सभी इन्द्रियोंका निग्रह करना और सर्वत्र अनित्यबुद्धि रखना यह प्राणियोंके लिये परम श्रेयस्कर है। मृत्यु सामने वर्तमान है, यह समझकर जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता, उसका जीवन बकरीके गलेमें स्थित स्तनके समान निरर्थक है—

सर्वसत्त्वदयालुत्वं सर्वेन्द्रियनिग्रहः।

सर्वज्ञानित्यबुद्धित्वं श्रेयः परमिदं स्मृतम् ॥

पश्यज्जिवाद्यतो मृत्युं यो धर्मं नाच्छेदतः।

अज्ञानलसतस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥

(२२१.१५-१६)

हे वृषध्वज! इस लोकमें गौदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। जो न्यायोपाजित धनसे प्राप्त गौका दान करते हैं, वे अपने सम्पूर्ण कुलको तार देते हैं।

हे वृषध्वज! अन्न-दानसे श्रेष्ठ और कुछ भी दान नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण बराबर जगत् अन्नके द्वारा ही प्रतिष्ठित है<sup>१</sup>। कन्यादान, वृषोत्सर्ग, जप, तीर्थ, सेवा, वेदाध्ययन, हाथी, घोड़ा, रथ आदिका दान, मणिरत्न और पृथ्वीदान—ये सभी दान अन्नदानके सोलहवें अंशकी भी बराबरी नहीं कर सकते हैं। अन्नसे ही प्राणियोंके प्राण, बल, तेज, वीर्य, भूति और स्मृति—ये सभी प्रतिष्ठित रहते हैं। जो कृप, वापि, तडाग और उपवनका निर्माणकर लोगोंकी संतुष्टिके लिये प्रदान करते हैं, वे अपनी हक्कीस पीढ़ियोंका उद्धारकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं<sup>१</sup>।

साधुओंका दर्शन करना अतिशय पुण्यदायक है। यह

१-ये च होमजपस्नानादेवतार्चनकल्पनाः। सत्पथमादयवुकास्ते नराः स्वर्गगमिनः ॥ (२२१.७)

२-लोभक्रोधः प्रभवति लोभाद् द्वेष्टः प्रवर्तते। लोभान्नोद्वेष्ट माया च यानो माया एव च ॥

रागद्वेषानुत्क्रोधलोभमोहमदीप्तिताः। नरः स ज्ञानः परं लोकं याति पापविनिर्मुक्तः ॥ (२२१.११-१२)

३-न गौदानात्परं दानं किञ्चिदस्तीति मे मतिः। या नैर्न्यायोपाजिता दत्ता कृत्स्नं तारयन्ते कुलम् ॥

नामदानात्परं दानं किञ्चिदस्ति वृषध्वज। अक्षेपं ध्यायेत् सर्वं बराबरमिदं जगत् ॥ (२२१.१८-१९)

४-कृपाशीलतडागादीनामामोक्षेयं कारयेत्। विष्णुलोकं मुमुक्षुः विष्णुलोके गच्छेत् ॥ (२२१.२२)

सभी प्रकारके तीर्थोंसे भी उत्तम है। तीर्थ तो समय आनेपर फल प्रदान करता है, किंतु सज्जनोंका संग उसी क्षण फल प्रदान कर देता है—

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थादपि विशिष्यते।

कालेन तीर्थं फलति सद्यः साधुसमागमः॥

(२२१।२३)

सत्य, दम्, तपस्या, शौच, संतोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, शम, दया और दान—इनको सनातनधर्म माना गया है—

सत्यं दमस्तपः शौचं संतोषश्च क्षमार्जवम्।

ज्ञानं शमो दया दानमेव धर्मः सनातनः॥

(२२१।२४)

(अध्याय २२९)

## प्रायश्चित्तनिरूपण, चान्द्रायणादि विभिन्न व्रतोंके लक्षण तथा पञ्चगव्य-विधान

श्रीब्रह्माजीने कहा—अब मैं नारकोय पापोंको विनष्ट करनेवाले प्रायश्चित्त आदि कर्मोंका वर्णन करूँगा।

मक्खड़ी, जलकण, स्रौं, पृथ्वीपर प्राकृतिकरूपसे एकत्र जल, अग्नि, बिल्ली और नेबला—ये सबैव पवित्र माने गये हैं। जो द्विज प्रमादवश शूद्रद्वारा उच्छिष्ट (जूँट) तथा छूआ हुआ भोजन ग्रहण करता है, वह एक दिन-रात्रिका उपवास करके पञ्चगव्यप्राशनसे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण अन्य किसी ब्राह्मणके द्वारा उच्छिष्ट तथा स्पर्श किया हुआ भोजन करता है तो उसे प्रायश्चित्तके रूपमें स्नान, जप तथा पूरे दिन उपवास करके रात्रिमें भोजन करना चाहिये। मक्खड़ी और केशपुच्छ भोजन करनेपर तत्काल 'वमन-क्रिया' करनेसे शुद्धि हो जाती है। जो मनुष्य किसी भीषण पदार्थको एक हथेलीमें रखकर दूसरे हाथकी एक अंगुली या पूरे हाथसे खाता है और उसके बाद जल नहीं पीता है तो उसे एक दिन और एक रात्रिका उपवास करना चाहिये। एक हथेलीमें रखकर दूसरे हाथसे भोजन कर जल भी पी लिया जाय तो और कठिन प्रायश्चित्त विहित है; क्योंकि ऐसे भोजनमें बिना संकोच पूर्ण संतुष्ट होनेका भाव स्पष्ट है। पीनेसे बचे हुए तथा बाँटें हाथसे ग्रहण किये गये जलका पान करना भट्टिराधानके समान होता है।

चमड़ेके पात्रमें रखा गया जल अपवित्र होता है, उसे नहीं पीना चाहिये। यदि किसी द्विजके घर अज्ञानवश ही कोई अनप्यज निवास कर ले तो उस द्विजको शुद्धिके लिये चान्द्रायण अथवा पराकव्रत करना आवश्यक है। ब्राह्मणके घरमें शूद्रका प्रवेश होनेपर तथा बादमें जानकारी होनेपर

ब्राह्मणको प्राजापत्यव्रत करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो ब्राह्मण धर्ममें शूद्रके प्रविष्ट होनेपर पक्वान्नका भोजन करता है, उसे अर्द्धकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अर्द्धकृच्छ्रव्रतके योग्य जो अशुचि है उसके धर्ममें अन्य कोई ब्राह्मण यदि भोजन करता है तो उसको भी एक चौथाई कृच्छ्रव्रतका पालन करना चाहिये।

जो द्विज भोवी, नट एवं खीस और चमड़ेसे जीविकोपार्जन करनेवालोंके द्वारा अर्जित अन्नका भोजन करता है, उसे चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। चाण्डालके कुर्चे अथवा पात्रमें स्थित जलका पान अज्ञानवश भी जो ब्राह्मण कर लेता है, उसे 'सान्तापनव्रत' करना चाहिये। वैश्यके लिये यह प्रायश्चित्त आधा ही माना गया है। यदि कोई शूद्र उक्त निषिद्ध जलका पान करता है तो उसको तत्सम्बन्धित व्रतका एक चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये। अज्ञानवश ब्राह्मणके घर अनप्यजके प्रवेश हो जानेपर उस ब्राह्मणको तीन कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अनप्यजके घरमें आ जानेमात्रसे उत्पन्न अपवित्रताका निराकरण पराकव्रतके अनुष्ठानसे होता है। अनप्यजके द्वारा उच्छिष्ट भोजन करनेपर द्विज 'चान्द्रायणव्रत' करनेसे शुद्ध हो जाता है। जब कभी प्रमादवश कोई ब्राह्मण चाण्डालद्वारा दिये गये अन्नका भोजन कर लेता है तो उसे चान्द्रायण (ऐन्दव)-व्रत करना चाहिये। ऐसी ही अपवित्रतामें क्षत्रियको छः दिन और वैश्यको दो दिनका सान्तापनव्रत करना चाहिये। यदि प्रमादवश ब्राह्मण और चाण्डाल एक ही वृक्षके नीचे एक साथ फल खा लेते हैं तो वह ब्राह्मण एक दिन-रातके उपवाससे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण

१-इस अध्यायमें जिन व्रतोंकी चर्चा है, संक्षेपमें उनका स्वरूप अध्यायके अन्त्यमें वर्णित है।

२-उच्छिष्टका अर्थ है—सिद्ध अन्नमेंसे निकालकर शूद्रने पहले भोजन कर लिया है, उसके बादका शेष अन्न। यहाँ घृणाका भाव नहीं है। अपवित्रताकी दृष्टिसे यह एक निषेध व्यवस्था है।

भोजनोपरान्त बिना आचमन इत्यादि किये चाण्डालका स्पर्श कर लेता है तो उसे आठ हजार गायत्री अथवा एक सौ 'हुपदाविब०' मन्त्रका जप करना चाहिये। चाण्डाल अथवा क्षपचके द्वारा किये गये विद्या और मूत्रके स्पर्श हो जानेपर ब्राह्मणको तीन रातका उपवास करना चाहिये। द्विजको अन्त्यजकी स्त्रीके साथ गमन करनेपर पराकव्रत करना चाहिये। परस्त्रीके साथ बिना कामनाके गमन करनेपर पराकव्रत करना चाहिये।

जो द्विज मद्यादिसे अशुद्ध पात्रमें रखे हुए जलका पान करता है, वह कृच्छ्रपादव्रत तथा पुनः संस्कारसे शुद्ध होता है। जो ब्राह्मण वज्र (विद्युत्)-पात अथवा अग्नि, वायुके कारण अकस्मात् उत्पन्न उपद्रवसे ग्रस्त होनेके कारण अपना घर छोड़ने तथा अन्नपानादिको लेकर किसी अन्त्यजके धर्म रहनेके लिये विवश होते हैं तो उन्हें तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। मुनि वसिष्ठने तो उक्त निषिद्ध कर्म करनेपर ब्राह्मणके लिये पुनः जातकर्मादि संस्कारोंके द्वारा शुद्ध होनेका विधान बताया है। कोई स्वयं उच्छिष्ट (भोजनके बाद मुख एवं हाथका प्रक्षालन नहीं किया) है, उसके उच्छिष्ट (भोजन करनेके बाद शेष अन्न)-का भक्षण करनेपर अथवा कुत्ते या शूद्रसे मूत्र सिद्ध अन्नका भक्षण करनेपर द्विज एक दिन रात्रिपर्यन्त उपवास तथा पञ्चगव्यप्राशनसे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण किसी वर्षावहिकृत व्यक्तिके द्वारा चू लिया जाता है तो उसे पाँच रात्रियोंका उपवास करना चाहिये। अविच्छिन्नगतिसे गिरनेवाली जलधारा, वायुके झोंकोंसे उड़ायी गयी धूलिके कण, स्त्री, बालक और वृद्ध कभी दूषित नहीं होते। स्त्रियोंका मुख, पक्षियोंके द्वारा गिराया गया फल, प्रसवकालमें बछड़ा तथा हरिणका शिकार करते समय कुत्ता सदैव पवित्र रहता है। जलमें रहनेवाली वस्तु जलमें और स्थलमें पायी जानेवाली वस्तु स्थलमें अपवित्र नहीं होती है। धार्मिक कृत्य करते समय पैरका स्पर्श हो जानेपर द्विज आचमनद्वारा शुद्ध हो जाता है।

जिस कांस्यपात्रमें मदिरा नहीं लगी है, यदि वह अन्य किसी कारणसे अपवित्र हो गया हो तो पवित्र भस्मके द्वारा मँजे जानेपर शुद्ध हो जाता है। मूत्र या मदिराके द्वारा अशुद्ध पात्रको अग्निमें डालकर शुद्ध किया जा सकता है। गौके

द्वारा सूँधे गये, शूद्रके द्वारा छुए गये तथा कौए और कुत्तेके द्वारा जूँटे किये गये कांस्यपात्र दस बार शुद्ध भस्मसे मौजनेपर शुद्ध होते हैं। जो ब्राह्मण शूद्रके पात्रमें भोजन कर लेता है, वह तीन दिनतक उपवास रखकर पञ्चगव्य-पान करनेसे शुद्ध होता है। जो ब्राह्मण उच्छिष्ट पदार्थ या उच्छिष्ट प्राणीका स्पर्श करता है अथवा कुत्ते या शूद्रका स्पर्श करनेसे अपवित्र हो गया हो, वह भी तीन दिनके उपवास और पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध हो जाता है। रजस्वला स्त्रीका स्पर्श करनेपर उपवास करके पञ्चगव्य-पान करनेसे शुद्धि होती है। जलरहित प्रदेश, चोर और हिंसक व्याप्रादि जीवोंसे परिव्याप्त मार्गमें किसी अशुद्ध होनेयोग्य द्रव्यको हाथमें लिये हुए यदि मल, मूत्रका परित्याग किया जाता है तो वह द्रव्य अशुद्ध नहीं होता है। भूमिपर उस द्रव्यको रखकर शौच कर्म करना चाहिये।

काँजी, दही, दूध, मट्ठा, कृसरान्न शूद्रसे भी ग्राह्य है। मधु अन्त्यजसे भी ग्रहण किया जा सकता है। जो ब्राह्मणादि गुड़की बनी हुई, पीठीकी बनी हुई या महुआकी बनी हुई मदिरा पान करते हैं, उन्हें अग्निके समान संतप्त सुराका पान करके शुद्ध होना चाहिये। जो ब्राह्मण और क्षत्रिय मूतकयुक्त घरेके पात्रमें जल अथवा भोजन ग्रहण कर लेते हैं, उन्हें क्रमशः पाँच सौ और एक सौ गायत्री-मन्त्रोंका जप करना चाहिये। (जब घरमें मूतक पड़ जाता है तो उस समय) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः—दस दिन, बारह दिन, पंद्रह दिन तथा एक मासके बाद शुद्ध हो जाते हैं। मुद्गरत राजाओंकी, यज्ञदीक्षितकी तथा परदेशमें गये हुए लोगोंकी मूतक होनेपर तत्काल स्नानसे शुद्धि हो जाती है। एक मासके बालककी मृत्यु होनेपर भी स्नानसे सद्यः शुद्धिका विधान है। अविवाहित कन्या, यज्ञोपवीत-संस्काररहित द्विज, दैत निकल आये हुए बालक तथा तीन वर्षीया कन्याकी मृत्यु होनेपर तीन रात्रियोंका अशीच होता है। जननाशीचमें गर्भस्त्व होनेपर भी तीन रात्रियोंका अशीच माताके लिये माना गया है। प्रसूता स्त्रियाँ एक मासतक अशुद्ध रहती हैं। रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध हो जाती है।

देहमें दुर्भिक्ष एवं किसी आकस्मिक कारणवश विप्लव होनेकी स्थितिमें जन्म अथवा मृत्युका अशीच होनेपर भी देहाहितके लिये दान आदि धर्म यथानियम किये जा सकते

हैं। दीक्षाकालमें, विवाहादिमें, देव-पितृनिमन्त्रणमें, देवताओं तथा ब्राह्मणोंके निमन्त्रित हो जानेपर या पूर्व संकल्पित कार्योंके बीच भी यदि घरके किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जाती है अथवा कोई बच्चा जन्म लेता है तो उस समय अशीच नहीं होता है। द्विज, प्रसूता पत्नीका स्पर्श करनेसे अशीचयुक्त हो जाता है। जहाँ अग्नियोंका आवाहन होता है, जहाँ वेदोंका पठन-पाठन होता है अथवा जहाँ वैश्वदेव, यज्ञ आदि धार्मिक कृत्योंका सम्पादन होता है, वहाँ सूतक-दोष नहीं होता।

अशुद्ध घरमें भोजन करनेपर ब्राह्मण तीन रात्रि उपवासके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी स्त्री रजस्वला हो जाय और परस्पर एक-दूसरेका स्पर्श करे तो ब्राह्मणो तीन रात्रमें, क्षत्रियकी स्त्री दो रात्रमें, वैश्यकी स्त्री एक दिनमें उपवास करनेके पश्चात् शुद्ध होती है। शूद्रकी स्त्री तो सद्यः स्नान करनेके बाद ही शुद्ध हो जाती है।

कुत्ते, सियार और बन्दरकी कुर्छमें गिरा हुआ देखकर उस कूपका जल पीनेसे ब्राह्मण तीन दिन, क्षत्रिय दो दिन तथा वैश्य एक दिनके उपवासके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि कुर्छमें हड्डी, चमड़ा, किसी प्रकारका मल या घृहा आदि गिर जाय तो उसे कुर्छसे बाहर निकाल कर कुर्छका कुछ जल निकाल देना चाहिये तथा पञ्चगव्य डालकर कुर्छको शुद्ध करना चाहिये। यदि तडाग या पुष्करिणी आदिका जल दूषित हो गया हो तो उसमें शुद्ध भस्मादि डाल देना चाहिये और छः घड़ा जल उसमेंसे निकालकर पञ्चगव्य डाल देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह शुद्ध हो जाता है। यदि रजस्वला स्त्रीका रजःस्राव कूपजलके मध्य हो जाता है तो उसमेंसे तीस घड़ा जल निकाल देना चाहिये।

अगम्या स्त्रीका गमन, मद्य तथा गोमांसका भक्षण करके ब्राह्मण चान्द्रायणव्रत, क्षत्रिय प्राजापत्यव्रत, वैश्य सान्तपनव्रत करनेसे और शूद्र पाँच दिन उपवासके बाद शुद्ध हो जाता है, किंतु प्रायश्चित्त करनेके बाद ऐसे सभी व्यक्तियोंके लिये अपेक्षित है कि वे मोदान करें और ब्राह्मणभोजन भी करायें। क्रीड़ा तथा शयनादिके समय नील

लगा हुआ वस्त्र दूषित नहीं होता। (अन्य कार्योंमें तो) नील लगे हुए वस्त्रोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। ऐसे वस्त्रोंको धारण करनेवाले नरकमें जाते हैं।

जो मनुष्य अवरोध उत्पन्न करनेके लिये पशुके दो पैरोंमें बन्धन लगानेका पाप करता है और उस पशुकी मृत्यु जलाशयके समीप, वनमें अथवा घरमें जलनेसे या कण्ठमें रस्सी बाँधने, घण्टी, घुँघरू आदि आभूषणोंके पहननेसे हो जाती है तो उस मनुष्यको कृच्छ्रपादव्रत करना चाहिये।

रायके शरीरकी हड्डी तोड़नेपर, सींग तोड़नेपर, चमड़ा भेदन करनेपर तथा पूँछ काटनेपर लगे हुए पापका प्रायश्चित्त आधे मासतक 'यावक पान' करनेसे होता है। हाथी, घोड़े और शस्त्र आदिसे गौकी ऐसी क्षति होनेपर कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। यदि अनजानमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मल, मूत्र, मूँदिरासे संसृष्ट पदार्थका भोजन कर लें तो उन्हें पुनः 'द्विजातीय संस्कार' करना चाहिये। पुनः द्विजातीय संस्कारके समय केशमुण्डन, मेखलाधारण, दण्डग्रहण और भिक्षाचरणादिकी आवश्यकता नहीं है।

अनप्यजके पात्रमें रखा हुआ कच्चा मांस, घृत, मधु तथा यथासमय उत्पन्न स्निग्ध पदार्थ तैल आदि उसके पात्रसे निकाले जानेके बाद शुद्ध हो जाते हैं।

क्रमशः प्रथम दिन एकैकव्रत, दूसरे दिन नक्तव्रत, तीसरे दिन अथाचितव्रत करते हुए जो उपवास किया जाता है, वह पादकृच्छ्रव्रत है। कृच्छ्रार्थका द्विगुण प्राजापत्यव्रत कहा जाता है। यह सभी पापोंका विनाशक है। सात उपवास करनेसे कृच्छ्रव्रत पूर्ण होता है। इसीको महासान्तपनव्रतके नामसे स्वीकार किया गया है। तीन दिन गरम जलमात्र, उसके बाद तीन दिन गरम दूधमात्र और उसके बाद तीन दिन गरम घृतमात्र पान करते हुए जो व्रत किया जाता है, वह तप्तकृच्छ्रव्रत है। यह समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाला है। बारह दिनोंतक जलमात्र ग्रहण कर उपवास करनेसे एक पराकव्रत सम्पन्न होता है। यह व्रत सभी पापोंका विनाशक है। जिस व्रतमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिको एक प्रासमात्र भोजन करके क्रमशः पूर्णिमापर्यन्त



प्रत्येक तिथिको एक-एक घास भोजनकी वृद्धि की जाती है और उसके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे प्रतिदिन अमावास्या तिथितक एक-एक घास भोजनकी मात्रा कम की जाती है, उसे चान्द्रायणव्रत कहते हैं।

सोनेके समान वर्णवाली गायका दूध, श्वेतवर्णवाली गायका गोबर, ताम्रवर्णवाली गायका मूत्र, नीलवर्णवाली गायका घृत तथा कृष्णवर्णवाली गायकी दही प्रशस्त है।

इन चारोंके साथ कुशोदक मिलाकर जो पदार्थ तैयार किया जाता है, उसको पञ्चगव्य कहते हैं। इस मिश्रणमें गोमूत्रकी मात्रा आठ माशा, गोबरकी मात्रा चार माशा, दूधकी मात्रा बारह माशा, दहीकी मात्रा दस माशा और घृतकी मात्रा पाँच माशा कही गयी है। इस विधिसे तैयार किया गया पञ्चगव्य सभी मलोंका विनाशक होता है।

(अध्याय २२२)

—

## भगवान् विष्णुकी महिमा, चतुष्पाद-धर्मनिरूपण, पुराणों तथा उपपुराणों और अठारह विद्याओंका परिगणन, चारों युगोंके धर्मोंका कथन एवं कलियुगमें नामसंकीर्तनका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मुनियोंद्वारा भक्तिपूर्वक आचरण किये गये उन धर्मोंको मैंने कहा, जिनसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। सूर्यादि देवोंकी पूजा, पित्रुतर्पण, होम तथा संभ्रावन्दनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धि प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु स्वयं भक्तोंको प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् विष्णु धर्मस्वरूप ही हैं। पूजा, तर्पण, हवन, संभ्रा, ध्यान, धारणा आदि जो भी सत्कर्म हैं, वे सब हरि ही हैं।

सूतजीने कहा—हे शौनक! मैं चारों युगोंके धर्मोंका वर्णन करता हूँ, आप सुनिए।

चार हजार युगोंका एक कल्प होता है, इसको ब्रह्मका एक दिन माना गया है। कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलि—ये चार युग होते हैं। कृतयुगमें सत्य, दान, तप तथा दया—इन चार पादोंसे धर्म अवस्थित रहता है। धर्मका संरक्षण करनेवाले हरि ही हैं। इस रहस्यको जानकर जो लोग संतुष्ट रहते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। सत्ययुग (कृतयुग)—में मनुष्य चार हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। सत्ययुगके अन्तमें धर्मपतनकी दृष्टिसे क्षत्रिय उत्कर्षकी स्थितिमें रहते हैं। सूर्योंकी अपेक्षा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य धर्मपालनमें उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सर्वाधिक बलशाली एवं शूर भगवान् विष्णु ही राक्षसोंका विनाश करते हैं।

त्रेतायुगमें धर्म सत्य, दान और दया—इन तीन पादोंपर ही अवस्थित रह जाता है। इस कालके मनुष्य यज्ञपरायण होते हैं। सम्पूर्ण संसार क्षत्रियोंसे सुरक्षित रहता है। रक्तवर्णके भगवान् हरि मनुष्योंद्वारा इस युगमें पूजित होते

हैं। मनुष्योंकी आयु एक हजार वर्षकी होती है। इस युगमें विष्णु भीमरथ कहलाते हैं और क्षत्रियोंके द्वारा राक्षसोंका संहार होता है।

द्वापरमें धर्मकी मूर्ति दो पादोंपर अवस्थित रहती है। इस युगमें अच्युत भगवान् विष्णु पीतवर्ण धारण करते हैं। लोगोंकी आयु चार सौ वर्षकी होती है। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णसे उत्पन्न प्रजासे पृथिवी व्याप्त रहती है। इस युगके लोगोंकी अल्प बुद्धिको देखकर वेदव्यासका रूप धारण कर भगवान् विष्णुने एक ही रूपमें विद्यमान वेदको चार भागोंमें विभक्त किया और अपने समस्त शिष्योंको उन चारों वेदोंका अध्ययन कराया। भगवान् वेदव्यासने ऋग्वेदकी शिक्षा 'पैत' नामक शिष्यको, सामवेदकी शिक्षा 'जैमिनि' नामक शिष्यको, अथर्ववेदकी शिक्षा 'सुमन्तु' नामक शिष्यको और यजुर्वेदकी शिक्षा 'महामुनि' वैशम्पायन नामक शिष्यको प्रदान की तथा वेदाङ्गों और पुराणोंका अध्ययन सूतजीको कराया। इन पुराणोंके एकमात्र वेद्य हरि ही हैं। ये अठारह पुराणोंके रूपमें विभक्त हैं।

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये पुराणके पाँच लक्षण हैं। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्यत्, नारदीय, स्कन्द, लिङ्ग, वराह, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, कूर्म, मत्स्य, गरुड, वायु तथा ब्रह्माण्ड नामक अठारह पुराण प्रसिद्ध हैं। मुनियोंने अनेक उपपुराणोंकी भी बात बतायी है। उनमें सबसे पहला उपपुराण सनत्कुमारके द्वारा कथित है। भगवान् नरसिंहके द्वारा उपदिष्ट एक दूसरा उपपुराण है, जो नरसिंहपुराणके नामसे प्रसिद्ध है। तीसरा

उपपुराण स्कन्द है, इसको भगवान् शिवके पुत्र कुमार कार्तिकेयजीने कहा है। चौथा उपपुराण शिवधर्म (शिवधर्मोत्तर) नामक है, जिसे भगवान् नन्दोत्तरने कहा है। महर्षि दुर्वासाद्वारा प्रोक्त आश्वय (अद्भुत) पुराण तथा देवर्षि नारदजीद्वारा कथित नारद उपपुराण है। इसी प्रकार कपिल, वामन तथा उशनस् उपपुराण महर्षि कपिल, वामन तथा उशनसद्वारा उपदिष्ट हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, पराशर, मारीच तथा भार्गव नामक उपपुराण भी हैं। पुराण, धर्मशास्त्र, चारों वेद, शिक्षा कल्पादि, छः वेदान्त, न्याय, मीमांसा, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, गन्धर्वशास्त्र तथा धनुर्वेदशास्त्र—ये अठारह विद्याएँ हैं—

पुराणं धर्मशास्त्रं च वेदास्तत्त्वानि यमुने।

न्यायः शौनक मीमांसा आयुर्वेदार्थशास्त्रकम्।

(२२३।२२)

द्वापरयुगके अन्तमें भगवान् श्रीहरि, पृथ्वीके भारका हरण करते हैं।

कलियुगमें धर्म एक पादपर अवस्थित रह जाता है। भगवान् अष्टम कृष्णवर्षके होते हैं। उस कालमें लोग दुराचारी और निर्दय होने लगते हैं। मनुष्योंमें सत्य, रज तथा तम—ये तीनों गुण दिखायी देते हैं। कालकी प्रेरणासे ये सभी गुण मनमें उत्पन्न होते हैं और परिवर्तित होते रहते हैं।

हे शौनक! जब प्रवृद्ध सत्यगुणसे मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ व्याप्त हो जाती हैं और लोगोंकी अनुरक्ति ज्ञानार्जन तथा तपश्चरणमें बढ़ जाती है तब सत्ययुग जानना चाहिये। जब मनुष्योंकी आसक्ति काम्यकर्म और यशमें होती है, उस समय रजोगुणकी प्रवृद्धिसे त्रेतायुग जानना चाहिये और तमोगुणकी प्रचलताके साथ रजोगुणकी वृद्धिके कारण जब लोगोंमें लोभ, असंतोष, मान, दम्भ और मत्सरके भाव प्रचल होते हैं और काम्य कर्मोंमें आसक्ति बढ़ जाती है तब द्वापरयुग समझना चाहिये। जब सदा असत्य बोलने, आलस्य, नींद और हिंसा आदि साधनोंमें ही प्रवृत्ति हो जाती है, शोक, मोह, भय और दौनताका भाव जब बढ़

जाता है, तब तमोगुणकी सर्वाधिक प्रबल मानना चाहिये। यही काल कलियुग है।

इसी प्रकार जब लोग कामी हो जाते हैं, सदैव कटुवाणी बोलते हैं, जनपद चोर, डाकुओंसे भर जाते हैं, वेद पाखण्डियोंसे दूषित हो जाते हैं, राजा प्रजाओंका सर्वस्व हरण करते हैं, लोग मैथुन और पेट पालनके कर्मसे स्वतः पराजित होने लगते हैं, ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रतका परित्याग करके अशुचि हो जाते हैं, कुटुम्बी अर्थात् गृहस्थ भिक्षाटन करने लगते हैं, तपस्वी गाँवोंमें रहना प्रारम्भ कर देते हैं, संन्यासी अर्थलोभमें फँस जाते हैं, लोग लघु शरीर होनेपर भी अत्यधिक भोजन करते हैं और जो चोर हैं, उन्हें साधुके रूपमें लोग स्वीकार करने लगते हैं, तब कलियुग ही मानना चाहिये।

इस कलिकालमें भूत्पण्य अपने स्वामीका तिरस्कार करते हैं, तपस्वी अपने व्रतोंका परित्याग कर देते हैं, शूद्र प्रतिग्रह लेने लगते हैं, वैश्य ब्राह्मणोंकी सेवाकी उपेक्षा कर स्वयं व्रत-परायण हो जाते हैं, धार्मिक भाव कम होनेसे सभी लोग बेचैन रहते हैं, संतानें धार्मिक शिक्षाका अभाव होनेसे पितापुत्रके समान बन जाती हैं, अन्यायसे अर्जित भोजनके द्वारा अग्निदेवकी आहुति, देवताओंकी नैवेद्य तथा द्वारपर आये हुए अतिथि देवकी पूजा होती है, तब कलियुग समझना चाहिये।

हे शौनक! कलियुगके आ जानेपर लोग अपने पितरोंकी जलतक नहीं देंगे। सभी प्राणी स्त्रीके वशमें हो जायेंगे। सबके कर्म शूद्रवत् होंगे। इस कलिकालमें स्त्रियाँ अत्यधिक संतानोत्पत्ति करनेवाली और दुर्बल भाग्यवाली होंगी तथा बड़ोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन उनका स्वभाव होगा। ऐसा स्वभाव हो जानेपर यदि उनकी निन्दा की जायगी तो वे उसके प्रति गम्भीर न होकर उपेक्षाभाव अपनायेंगी। वे इस उपेक्षाभावको अपना सिर खुजलाकर व्यक्त करेंगी।

कलियुगके मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करेंगे। उन सभीका विश्वास पाखण्डमें बढ़ जायगा। हे ब्राह्मण!

१-प्रभुत्व यदा सर्वं मनो बुद्धोन्द्रियणि च । तदा कृतपुरां विष्णुं कल्पे तपसि यदिति ॥

यदा कर्मसु काम्येषु शक्तिर्यतसि देहिनाम् । तदा जेदा रजोभूतिरिति जानीहि शौनक ॥

यदा लोभस्त्यसतोषी मानो दम्भश्च मत्सरः । कर्मणां चपि काम्यानां द्वारं तदजसतम् ॥

यदा सदानृतं तदा निदा हिंसादिस्तथनम् । शोकमोहौ भये दैव्यं स कलिकल्पसि स्मृतः ॥ (२२३।२४-२७)

यह कलिकाल दोषोंसे भरा हुआ है, किंतु इस दोषपूर्ण युगमें एक महान् गुण भी है। वह गुण है भगवान् श्रीकृष्णका संकीर्तन। उनका संकीर्तन करनेसे ही मनुष्य संसारके महाबन्धन अर्थात् आवागमनके जालसे मुक्त हो जाता है। हे शौनक! कृतयुगमें प्राणीको जो फल भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे प्राप्त होता है, त्रेतायुगमें जो फल उनका जप करनेसे प्राप्त होता है और द्वापरयुगमें जो फल उन विष्णुदेवकी सेवा करनेसे प्राप्त होता है, वही फल कलिकालमें भगवान्‌के गुण, लीला और नाम-संकीर्तनसे

ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये नित्य ही भगवान् श्रीहरिको ध्यान, पूजन और संकीर्तन करना चाहिये—

कलेर्दोषनिधेर्विप्रा अस्ति ह्येको महागुणः ॥  
कीर्तनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्यजेत् ॥  
कृते यद्‌ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां जपतः फलम् ॥  
द्रुपदे परिचर्यायां काली तद्‌हरिर्कीर्तनात् ॥  
तस्माद्‌ध्येयो हरिनित्यं मेवः पुण्यक्ष शौनक ॥

(२२३।३५—३७)

(अध्याय २२३)

## नैमित्तिक तथा प्राकृतिक प्रलय और भगवान् विष्णुसे पुनः सृष्टिका प्रादुर्भाव

सूतजीने कहा—चार हजार युगोंके बीतनेपर ब्रह्माका नैमित्तिक प्रलयकाल आता है। कल्पके अन्तमें सौ वर्षतक अनावृष्टि होती है। आकाशमण्डलमें प्रचण्ड रूपसे संतप करनेवाले भयंकर सात सूर्य उदित हो जाते हैं। वे अपनी प्रखर रश्मियोंसे सम्पूर्ण जलराशिका पानकर तीनों लोकोंको सुखा देते हैं।

भगवान् विष्णु रुद्रस्वरूप धारण करके भूलोक, भुवलोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक तथा पाताललोककी समस्त चराचर सृष्टिको जला देते हैं। भगवान् विष्णु तीनों लोकोंको जलानेके बाद संवर्तक नामके मेघोंकी सृष्टि करते हैं। नाना प्रकारके महामेघ सौ वर्षतक बरसते हैं। विष्णुरूपमें स्थित वायु आप्तत तेजगतिसे सौ वर्षतक चलती है। उस जलवृष्टिसे समुद्रके समान उच्छाल तरंगोंवाले संसारके इस प्रलयकालमें स्थावर-जंगमके नष्ट होनेपर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णु अनन्तशय्यापर शयन करते हैं। एक हजार वर्षतक सोनेके पक्षात् जब वे जागते हैं तो पुनः उन्हींके द्वारा इस जगत्की सृष्टि होती है।

हे शौनक! इसके बाद मैं प्राकृतिक प्रलयका वर्णन

करता हूँ, उसको आप सुनें। ब्रह्माके एक सौ वर्ष बीत जानेपर भगवान् हरि अपने योगबलसे समस्त सृष्टिको अपनेमें लीन करके ब्रह्माको धारण कर लेते हैं। इस कालमें जो प्राणी ब्रह्मलोकमें स्थित रहते हैं, वे भी भगवान् विष्णुमें लीन हो जाते हैं।

हे ब्राह्मणब्रह्म! उस कालमें अनावृष्टि करनेवाले सूर्योंसे सम्पन्न मेघ थे। मेघोंके लगातार सौ वर्षतक बरसते रहनेसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलसे भर उठता है। अंदर प्रविष्ट हुई उस जलराशिसे ब्रह्माण्ड फट जाता है। ब्रह्माकी आयु पूर्ण होती ही सब कुछ जलमें ही लय हो जाता है। संसारमें कुछ भी शेष नहीं रहता। संसारको आधार प्रदान करनेवाली यह पृथ्वी भी उस जलराशिमें डूब जाती है। उस समय जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें और आकाश भूतादि महत्तत्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है और वह महत्तत्त्व प्रकृतिमें तथा प्रकृति अव्यक्त परमपुरुषमें लीन हो जाती है। वे हरि (अव्यक्त पुरुष) सौ वर्षतक सोते हैं। तदनन्तर (ब्रह्माका) दिन आनेपर अव्यक्तादि क्रमसे पुनः व्यक्तिभूत चराचर जगत्की सृष्टि करते हैं। (अध्याय २२४)

## कर्मविपाकका कथन

सूतजीने कहा—जगत्सृष्टि और प्रलय आदिकी चक्रगतिकी जानेनेवाले जो विद्वान् हैं, वे यदि आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीन सांसारिक तत्त्वोंको जानकर ज्ञान और वैराग्यका मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तो आत्यन्तिक लय (मोक्ष)—को प्राप्त करते हैं। अब मैं उस

संसारचक्रका वर्णन करूँगा, जिसको जाने बिना पुरुषार्थी परमात्मामें लीन नहीं होते।

प्राणके उत्क्रमण कालमें इस शरीरका परित्याग करके मनुष्य दूसरे सूक्ष्म शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। इस मृत्युलोकसे मृत्युके पक्षात् जीवको यमराजके दूत, बारह

दिनकी अवधिमें यमलोकको ले जाते हैं। वहाँपर उस में हुए व्यक्तिके बन्धु-बान्धव जो उसके लिये तिलोदक और पिण्डदान देते हैं, वही सब यमलोकके मार्गमें वह खाता-पीता है। पापकर्म करनेके कारण वह नरकलोकमें जाता है और पुण्यकर्म करनेके कारण स्वर्ग। अपने उन पाप-पुण्योंके प्रभावसे नरक तथा स्वर्गमें गया हुआ प्राणी पुनः नरक और स्वर्गसे लौटकर स्वियोंके गर्भमें आता है। वहाँ विनष्ट न होकर वह दो बीजोंके आकारको धारण कर लेता है। उसके बाद वह कलल फिर बुदबुदाकार बन जाता है। तत्पश्चात् उस बुदबुदाकार रक्तसे मांसपेशीका निर्माण होता है। मांसपेशीसे मांस अण्डाकार बन जाता है। वह एक पल (परिमाण-विशेष)-के समान होता है। उसी अण्डेसे अंकुर बनता है। उस अंकुरसे अंगुली, नेत्र, नाक, मुख और कान आदि अङ्ग-उपाङ्ग पैदा होते हैं। उसके बाद उस विकसित अंकुरमें उत्पादक-शक्तिका सञ्चार होने लगता है। जिससे हाथ-पैरकी अंगुलियोंमें नाख आदि निकल आते हैं। शरीरमें त्वचा और रोम तथा बाल निकलने लगते हैं। इस प्रकार गर्भमें विकसित होता हुआ यह जीव नौ मासतक अर्धमुख स्थित रहकर दसवें मासमें जन्म लेता है। तदनन्तर संसारकी अत्यन्त मोहित करनेवाली भगवन् विष्णुकी वैष्णवी माया उसे आबुल कर लेती है। यह जीव बाल्यावस्था, कौमार्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है। इसके बाद यह पुनः मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह जीव इस संसारचक्रमें घटीयन्त्रके समान धूमता रहता है।

जीव नरकभोग करनेके पश्चात् पापयोनिमें जन्म लेता है। पतितसे प्रतिग्रह स्वीकार करनेके कारण विद्वान् भी अधोयोनिमें जन्म ग्रहण करता है। याचक नरकभोग करनेके बाद कृमियोनिको प्राप्त होता है। गुरुकी पत्नी अथवा गुरुके धनकी मनसे भी कामना करनेवाला व्यक्ति कुत्ता होता है। मित्रका अपमान करनेवाला गधेकी योनिमें जन्म लेता है। माता-पिताको कष्ट पहुँचानेवाले प्राणीको कछुएकी योनिमें जाना पड़ता है। जो मनुष्य अपने स्वामीका विश्वसनीय बन कर उसको छलकर जीवनत्याग

करता है; वह मृत्युके बाद व्यामोहमें फँसे हुए वानरकी योनिमें जाता है।

धरोहरूपमें अपने पास रखे हुए पराये धनका अपहरण करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है। नरकसे निकलनेके पश्चात् वह कृमियोनिमें जन्म लेता है। नरकसे मुक्त होनेपर उस ईर्ष्यालु मनुष्यको राक्षसयोनिमें जाना पड़ता है। जो मनुष्य विश्वासघाती होता है, वह मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है। यव और धान्यादि अनाजोंकी चोरी करनेवाले व्यक्ति मरनेके पश्चात् चूहेकी योनिमें जन्म लेते हैं। दूसरेकी स्त्रीका अपहरण करनेवाला मनुष्य खूँखार भेड़ियेकी योनिमें जाता है। जो मनुष्य अपने भाईकी स्त्रीके साथ सहवास करता है, वह कोकिलयोनिमें जन्म लेता है। गृह आदिकी स्त्रियोंके साथ सहवास करनेपर मनुष्य सूअर-योनिको प्राप्त होता है।

यज्ञ, दान तथा विवाह आदिमें विघ्न डालनेवाले मनुष्यको कुमियोनि प्राप्त होती है। देवता, पितर और ब्राह्मणोंको बिना भोजन आदि दिये जो मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है, वह नरकको जाता है। वहाँसे मुक्त होकर वह पारो काकयोनिको प्राप्त करता है। बड़े भाईका अपमान करनेसे मनुष्यको जौड़ (पक्षिविशेष)-योनिकी प्राप्ति होती है। यदि मृदु ब्राह्मण-स्त्रीके साथ रमण करता है तो वह कृमियोनिमें जन्म लेता है। उस ब्राह्मणीसे यदि वह संतानोत्पत्ति करता है तो वह लकड़ीमें लगनेवाले घुन नामक कृमिकी योनिको प्राप्त होता है। कुतघ्न व्यक्ति कुम्भि, कीट, पतङ्ग तथा बिच्छूकी योनियोंमें भ्रमण करता है। जो मनुष्य सत्त्वहीन पुरुषको मारता है, वह दूसरे जन्ममें गध होता है। स्त्री और बच्चेका वध करनेवालेको कुमियोनि प्राप्त होती है। भोजनकी चोरी करनेवाला मकड़ीकी योनिमें जाता है। अन्नकी चोरी करनेवाला बिल्लीकी योनि तथा तिलकी चोरी करनेवाला चूहेकी योनिमें जन्म लेता है। शोकी चोरी करनेवाला मनुष्य नेवला और मद्गुर (मत्स्यविशेष)-के मांसकी चोरी करनेवाला काकयोनिमें जाता है। मधुकी चोरी करनेपर मनुष्य दंशकयोनि तथा अपूप (पुआ)-की चोरी करनेपर चींटीकी



योनिमें जन्म लेता है। जलका अपहरण करनेपर पापी व्यक्ति काकयोनिमें उत्पन्न होता है। लकड़ीकी चोरी करनेपर मनुष्य हारीत (हारित नामक पक्षी) अथवा कबूतरकी योनिमें जन्म लेता है। जो प्राणी स्वर्ण-पात्रकी चोरी करता है, उसको कृमियोनिमें जन्म लेना पड़ता है। कपाससे बने वस्त्रोंकी चोरी करनेपर क्रौञ्च पक्षी, अग्निकी चोरी करनेपर बगुला, अंगराग अर्थात् रजकद्रव्य (शरीर-संस्कारकद्रव्य) और शाक-पातकी चोरी करनेपर मनुष्य मयूर होता है। लाल रंगकी वस्तुकी चोरी करनेसे मनुष्य जीवक (पक्षिविशेष), अच्छी गन्धवाली वस्तुओंकी चोरी करनेसे सुखन्दर तथा खरगोशकी चोरी करनेसे वह खरगोशयोनिमें प्राप्त होता है। कलाकी चोरी करनेपर मनुष्य नर्पुंसक, लकड़ीकी चोरी करनेपर घास-फूसमें रहनेवाला कीट, फूलकी चोरी करनेपर दरिद्र तथा यावक (जीका सत्तू, धान, लाख आदि) चुरानेपर पंगु होता है।

शाक-पातकी चोरी करनेपर हारीत और जलकी चोरी करनेपर घातक पक्षी होता है। जो मनुष्य किसीके घरका अपहरण करता है, वह मृत्युके पश्चात् महाभयानक रौरव आदि नरकलोकोंमें जाकर कष्ट भोगता है। तृण, गुल्म, लता, वल्लरी और वृक्षोंकी छाल चुरानेवाला व्यक्ति वृक्ष-योनिमें प्राप्त होता है। यही स्थिति गौ, सुवर्ण आदिकी

चोरी करनेवाले मनुष्योंकी भी है। विद्याकी चोरी करनेवाला मनुष्य विभिन्न प्रकारके नरकलोकोंका भोग करनेके पश्चात् रूँगीकी योनिमें जन्म लेता है। समिधारीत अग्निमें अहुति देनेवाला मन्दाग्नि-रोगसे ग्रस्त होता है।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरेकी मर्यादाकी नष्ट करना, निष्ठुरता, अत्यन्त घृणित व्यवहारमें अभिरुचि, परस्त्रीके साथ सहवास करना, पराये धनका अपहरण करना, अपवित्र रहना, देवोंकी निन्दा तथा मर्यादाके बन्धनको तोड़कर अशिष्ट व्यवहार करना, कृपणता करना तथा मनुष्योंका हनन करना—नरकभोग करके जन्म लिये हुए मनुष्योंके ये लक्षण हैं—ऐसा सभीको जान लेना चाहिये।

प्राणिचर्याके प्रति दया, सद्भावपूर्ण वार्तालाप, परलोकके लिये सात्विक अनुष्ठान, सत्कार्योंका निष्पादन, सत्यधर्मका पालन, दूसरेका हितचिन्तन, मुक्तिकी साधना, वेदोंमें प्रामाण्यबुद्धि, गुरु, देवर्षि और सिद्धर्षियोंकी सेवा, साधुजनोंद्वारा बताये गये नियमोंका पालन, सत्क्रियाओंका अनुष्ठान तथा प्राणिचर्याके साथ मैत्रीभाव—ये स्वर्गसे आवे हुए मनुष्योंके लक्षण हैं। जो मनुष्य योगशास्त्रद्वारा बताये गये, नियमादिक अष्टाङ्गयोगके साधनसे सद्-ज्ञानको प्राप्त करता है, वह आत्यन्तिक फल अर्थात् मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

(अध्याय २२५)

## अष्टाङ्गयोग एवं एकाक्षर ब्रह्मका स्वरूप तथा प्रणवजपका माहात्म्य

सूतजीने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ। अब मैं समस्त अङ्गोंसहित महायोगका वर्णन करूँगा। यह महायोग मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेका श्रेष्ठतम साधन है। भक्तिपूर्वक इस महायोगकी विधिका पट्ट करनेमात्रसे मनुष्यके सभी पापोंका विनाश हो जाता है, इसे अब आप सुनै।

महामति भगवान् दत्तात्रेयने राजा अत्तरकसे कहा था कि हे राजन्! ममता ही दुःखका मूल है और ममताका परित्याग ही दुःखसे निवृत्तिका उपाय है। अहंकार अज्ञानरूपी महातरुका अंकुर है। ममता उसका तना है। घर और क्षेत्र आदि उसकी शाखाएँ हैं। पत्नी उसका फल्लव है तथा धन-धान्य महान् पत्र हैं और पाप ही उसका अत्यन्त दुर्गम मूल है। इस प्रकार पापमूलक अपातरमणीय

सुख-ज्ञानिके लिये यह अज्ञानरूपी महातरु पैदा हुआ है। जो लोग ज्ञानरूपी कुल्हाड़ीसे अज्ञानरूप महावृक्षको काट गिराते हैं, वे ही परमब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। तदनन्तर ब्रह्मरसको प्राप्तकर उसका भलीभाँति निष्कण्टक पान करके प्राज्ञ पुरुष नित्य-सुख एवं परम ज्ञानको प्राप्त करते हैं।

समस्त दुःख-प्रपञ्च एवं इन्द्रियाँ भी उसी (परब्रह्म) में लीन हो जाती हैं। हे राजन्! वहाँपर न तो 'तुम' रहते हो और न 'मैं' ही रहता हूँ, न शब्दादि तन्मात्राएँ रहती हैं और न अन्तःकरण ही रहता है। हे राजेन्द्र! हम दोनोंके बीच कौन-सा तत्त्व प्रधान है? वास्तवमें हम दोनों निःसार हैं।

हे राजन्! जीव और आत्मा में ऐक्य होनेपर भी पृथक्-भावका बोध होता है। यह पृथक्-भावका बोध ज्ञान (स्वरूपज्ञान) के तिरोधानसे होता है। यद्यपि ज्ञानका तिरोधान योगी (ब्रह्माभिन्न जीव) में नहीं होना चाहिये, पर भेदबुद्धि एवं भेदबुद्धिमूलक समस्त प्रपञ्च सम्बन्ध अनुभवमें आ रहा है; अतः इसकी उपपत्तिके लिये यह मानना पड़ता है कि ज्ञानका तिरोधान अनादिकालसे चला आ रहा है। यह ज्ञानका तिरोधान अज्ञानमूलक है। इसीलिये अज्ञानको ज्ञाननाशकी दशा कहा जाता है। यह ज्ञाननाशकी दशा ज्ञानके वियोगकी दशा है और यह ज्ञानका वियोग ही जीवात्मा एवं आत्मा (ब्रह्म) का पृथक्-भाव है तथा इस पृथक्-भावके ज्ञानका नाश जीव एवं आत्मा (ब्रह्म) के ऐक्यज्ञानसे ही होता है। यह ऐक्यज्ञान (ऐक्यका प्रत्यक्षात्मक अनुभव) ही मुक्ति है। अनैक्यका अनुभव तो प्राकृतगुणों (मायिक विस्तार) के कारण होता है।

प्राणीका जिसमें निवास होता है, वह घर है। जिसके द्वारा उसके जीवनकी रक्षा होती है, वह भोग्य पदार्थ है। जो मुक्तिका हेतु है, वह ज्ञान है और जो बन्धनका हेतु है, वह अज्ञान है। हे राजन्! प्राणिमयिक पुण्य और पापका विनाश उसके द्वारा किये जानेवाले (सुख-दुःखात्मक) भोगोंसे होता है और अवश्यकरणीय जो कर्तव्य हैं, उनको न करनेसे पुण्यका क्षय हो जाता है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। शौच दो प्रकारका बताया गया है—बाह्यशौच और अन्तःशौच। संतोष, तपस्या, शान्ति, नारायणका पूजन और इन्द्रियदमन—ये योगिके साधन हैं। आसनके पद्म आदि भेद हैं।

शरीरके अन्तर्गत प्रकाशित होनेवाली वायुपर त्रिजप प्राप्त करना 'प्राणायाम' है। प्रत्येक प्राणायाम पूरक, कुम्भक और रेचकके भेदसे तीन प्रकारका होता है। यही तीन प्राणायाम जब दस मात्राओंका होता है तो इसे लघु प्राणायाम तथा इससे दुगुनी मात्राका मध्यम प्राणायाम और तीन गुनी मात्राओंका उत्तम प्राणायाम कहा गया है। जिस प्राणायाममें योगिजन जप और ध्यानसे युक्त होते हैं, उसे 'सगर्भ' प्राणायाम और उसके अतिरिक्त प्राणायाम (अर्थात्

जप तथा ध्यानसे रहित होनेपर) 'अगर्भ' नामक प्राणायाम कहलाता है। प्रथम प्राणायामसे योगी स्वप्नपर जय प्राप्त करता है, द्वितीय प्राणायामसे योगी कम्पपर और तृतीय प्राणायामसे विषाकपर जय प्राप्त करता है। इस प्रकार इन तीनों दोषोंको योगी प्राणायामसे जीत लेता है।

योगीको आसन लगाकर 'प्रणव' में चित्त एकाग्र करके ध्यान और जप करना चाहिये। इस स्थितिमें वह अपनी दोनों एड़ियोंसे लिंग और अण्डकोशोंको दबाकर एकाग्र मनसे स्थित रहे। जो योगमार्गसे भलीभाँति परिचित है, उसे अपनी रजोवृत्तिसे तमोवृत्तिको तथा सत्ववृत्तिसे रजोवृत्तिको निरुद्ध करके निरुद्धल-भावसे प्रणवका जप करते हुए ध्यान करना चाहिये। इन्द्रियों, प्राण और मन आदिको उनके विषयोंसे निगृहीत करना चाहिये। इस तरह एक साथ ही प्रत्यहार (विषयोंसे इन्द्रियोंको हटाकर अन्तर्मुख करना) का उपक्रम करना चाहिये।

विधिबन्धु अष्टारह बार किया गया जो प्राणायाम है, उसे योगमें 'धारणा' के नामसे स्वीकार किया जाता है। योगिके तत्त्वको जाननेवाले योगिजन ऐसी धारणाको दो आवृत्तिको ही योग कहते हैं। योगियोंकी पहली धारणा नाड़ीमें, दूसरी हृदयमें, तीसरी वक्षःस्थलमें, चौथी उदरमें, पाँचवीं कण्ठमें, छठी मुखमें, सातवीं नासाग्रपर, आठवीं नेत्रमें, नवीं दोनों भीतोंके मध्य और दसवीं मूर्धास्थानमें होती है। इस प्रकार योगमें इस धारणाको दस प्रकारका माना गया है। इन दसों धारणाओंमें सफलता प्राप्त करके योगी अधररूपता (ब्रह्मत्व) को प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार अग्निमें छोड़ी गयी अग्नि एकाकार हो जाती है, उसी प्रकार परमात्माके ध्यानमें लगायी गयी आत्मा वदाकार हो जाती है। ऐसी स्थितिमें योगीको ब्रह्मस्वरूप महापुण्यदायक 'ॐ' इस महामन्त्रका जप करना चाहिये। इस प्रणव-महामन्त्रमें 'अकार, उकार और मकार'—ये तीन अक्षर हैं। इन तीन अक्षरोंके अतिरिक्त इस महामन्त्रमें सत्व, रजस् तथा तमस्—इन तीन मात्राओंका योग भी है जो क्रमशः सात्त्विक तथा राजसिक और तामसिक मनोवृत्तिका परिचायक है। ॐकारमें जो चतुर्थ आद्य अर्धमात्रा स्थित है, वह निर्गुण है तथा केवल योगियोंद्वारा ही जानने योग्य

है। गान्धारस्वर (ग)-के आश्रित रहनेवाली इस अर्धमात्राको गान्धारी नामसे जानना चाहिये। यह अक्षर परम ब्रह्म ॐकारके नामसे योगमार्गमें स्वीकृत है। अतः इस महामन्त्रका जप और ध्यान करते हुए अपनी मुक्तिके लिये इस प्रकार अपनेमें ब्रह्मभावनाका निश्चय करना चाहिये—

‘मैं स्थूलदेहसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं जल-मरणसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं इस पृथ्वीके सभी मलोंसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं वायु और आकाशसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं सूक्ष्मदेहसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं समस्त स्थान या अस्थानसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं गन्धतन्मात्रासे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं श्रोत्रेन्द्रिय और त्वचा नामक इन्द्रियसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं जिह्वा तथा घ्राणेन्द्रियसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं घ्राण तथा अपान वायुसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं ज्ञान और उदान वायुसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं अज्ञानसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं सरोर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित तुरीयावस्थामें विद्यमान परमपदस्वरूप, ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं नित्य-शुद्ध-बुद्ध, मुक्त, आनन्दमय, अद्वैत, ज्ञानस्वरूप, ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ।’

सूतजीने कहा—हे शौनक! इस प्रकार मैंने मुक्ति

देनेवाले अष्टाङ्गयोगका वर्णन कर दिया है। जो लोग मायापाशसे आवद्ध हैं, वे सभी नित्य-नैमित्तिक ही कार्य करते हैं और उसीमें अन्ततक लगे रहते हैं। इस कारण उन्हें परमात्माका ऐक्य प्राप्त नहीं होता, वे पुनः इस संसारमें जन्म लेते हैं। जो अज्ञानसे मोहित हैं, वे ज्ञानयोग प्राप्त करके अज्ञानसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद वह जीवन्मुक्त योगी न कभी मरता है, न दुःखी होता है; न रोगी होता है और न संसारके किसी बन्धनसे आवद्ध होता है। न वह पापोंसे युक्त होता है, न तो उसे नरकायातनाका ही दुःख भोगना पड़ता है और न वह गर्भवासमें दुःखी ही होता है। वह स्वयं अव्यय नारायणस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारकी अनन्य भक्तिसे वह योगी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नारायणको प्राप्त कर लेता है।

ध्यान, पूजा, जप, स्तोत्र, व्रत, यज्ञ और दानके निष्कर्षोंका पालन करनेसे मनुष्यके चित्तकी शुद्धि होती है। चित्तशुद्धिसे ज्ञान प्राप्त होता है। प्रणवादि मन्त्रोंका जप करके द्विजोंने मुक्ति प्राप्त की है। इन्द्रने भी इन्द्रासन प्राप्त किया। इंद्र गन्धर्वों और अप्सराओंने उच्च पद प्राप्त किया। देवताओंने देवत्व और मुनिोंने मुनित्व प्राप्त किया। गन्धर्वोंने गन्धर्वत्व तथा राजाओंने राजत्वको प्राप्त किया। (अध्याय २२६)

## भगवद्भक्तिनिरूपण तथा भक्तोंकी महिमा

सूतजीने कहा—अब मैं विष्णुभक्तिका वर्णन करूँगा, जिससे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान् विष्णु भक्तिसे जितना संतुष्ट होते हैं, उतना अन्य किसी साधनसे नहीं। भगवान् हरिका निरन्तर स्मरण करना मनुष्योंके लिये महान् श्रेयका मूल है। यह पुण्योंकी उत्पत्तिका साधन है और जीवनका मधुर फल है—

तथा कर्मोदिके कीर्तनम् तन्मय होकर जो लोग प्रसन्नताके औसू बहाते हैं और रोमाञ्चित होकर गद्गद हो उठते हैं, वे ही उनके भक्त हैं—

ते भक्ता सोऽकृताद्यस्य नामकमादिकीर्तने॥

मुञ्चन्त्यभूणि संहर्याद्ये प्रहृष्टतनूतहाः॥

(२२७।१-४)

अतः हम सभीको जगत्सृष्टा देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके दिव्य उपदेशोंका अनुसरण करना चाहिये। वे ही वैष्णव हैं, जो वेद-शास्त्रोंके अनुसार अवश्यकरणीय नित्य-कर्मोंका पालन करते हुए श्रीविष्णुके प्रति अति स्निग्ध रहते हैं तथा भक्तिप्रवणताके कारण अद्वैतभावसे स्वयंको पृथक्कर जिन नामोंका स्मरण स्वयं भगवान् भी करते हैं,

इसलिये विद्वानोंने विष्णुकी सेवाको भक्तिका बहुत बड़ा साधन कहा है। भगवान् त्रिलोकनाथ विष्णुके नाम

(२२७।१-२)

यथा भक्त्या हरिस्तुष्येत् तथा नायेन केनचित्॥

यहतः श्रेयसो मूलं प्रसवः पुण्यसंततेः॥

जीवितस्य फलं स्वादु नियतं स्मरणं हरेः॥

उन मङ्गलमय नामोंका श्रवण-कीर्तन करनेके साथ स्वामि-सेवकभावसे सदा भगवान् श्रीविष्णुको प्रणाम किया करते हैं। वे ही महाभागवत हैं, जो श्रीविष्णुके भक्तजनोंके प्रति वात्सल्यभाव रखते हैं तथा श्रीविष्णुके पूजन एवं उनकी आज्ञाका अनुसरण करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुकी मङ्गलमयी कथाओंके श्रवणमें ही अतिशय प्रीतिपूर्वक सदा लीन रहते हैं तथा अपने नेत्र आदि समस्त अङ्गोंकी समस्त चैष्टाएँ भगवान्की सेवाके लिये ही समर्पित किये रहते हैं। संक्षेपमें यह समझना चाहिये कि जो लोग पूर्ण समर्पणभावसे श्रीविष्णुकी भक्तिमें ही अपने मनको निरन्तर एकाग्र रखते हैं, वे ही परम भागवत हैं। इन परम महाभागवत लोगोंका मुख्य लक्षण यह है कि ये लोग ब्राह्मणोंमें ही श्रीविष्णुका सदा निवास मानकर उनकी सेवामें सदा लगे रहते हैं। ये लोग अपने समस्त साधनोंको भी श्रीविष्णुके चरणोंमें ही समर्पित किये रहते हैं। श्रीविष्णुकी सेवाके लिये ही सांसारिक संगोंसे दूर रहते हैं। श्रीविष्णुको ही अपना एकमात्र आश्रय मानकर उन्हींकी अध्यात्म सदा तत्पर रहते हैं।<sup>१</sup>

वैष्णव या महाभागवत जिस श्रीविष्णुभक्तिको अपना सर्वस्व मानते हैं, वह (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य तथा सख्य-भेदसे) आठ प्रकारकी होती है। इसमें म्लेच्छ व्यक्ति भी अधिकारी माना गया है। इस संसारमें तो वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है, वही मुनि है, वही ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और वही मोक्षको प्राप्त करता है, जो भगवान् हरिकी भक्तिमें तन्मय रहता है। जो भगवद्भक्त है, उसीको दान देना चाहिये, उसीसे दान लेना चाहिये, उसीकी हरिकी भाँति पूजा करनी चाहिये। भगवद्भक्त द्विजोत्तमका स्मरण कर, उनके साथ भाषण कर, उनका पूजन कर हम अपनेको पवित्र कर लेते हैं। यदि कोई भगवद्भक्त चाण्डालजातिका है तो वह भी अपनी पवित्र भक्तिकी महिमासे हम सबको पवित्र कर देता है।<sup>२</sup>

‘हे नाथ! आप मुझपर दया करें, मैं आपकी शरणमें

हूँ’ ऐसा जो प्राणी कहता है, उसको भगवान् हरि सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देते हैं, किसीसे भी उसको भय नहीं होता, यह भगवान्की प्रतिज्ञा है—

दयां कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत्।

अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरेः॥

(२२७।१२)

मन्त्रका जप करनेवाले हजार जपकर्ताओंकी अपेक्षा सभी वेदान्तदर्शनों, शास्त्रोंमें पारंगत विद्वान् श्रेष्ठ है। सर्ववेदान्तनिष्णात करोड़ों विद्वानोंकी अपेक्षा विष्णुभक्त श्रेष्ठ है। जो लोग भगवान् विष्णुमें ऐकान्तिक भक्ति रखते हैं, वे ससारी श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त करनेमें सफल हो जाते हैं। श्रीविष्णुभक्तिको ही परम पुरुषार्थ माननेवाले एकान्ती भक्त हैं। इनका चित सर्वात्मना भागवत होता है। ऐसे परम भागवत श्रीविष्णुके ही समान हो जाते हैं, किंबहुना, श्रीविष्णु ऐसे परम भागवत भक्तोंके परायण (सर्वथा अधिपन्) रहते हैं। ये परम भागवत भक्त देवदेव श्रीविष्णुके परम प्रिय लोगोंसे भी अधिक सुप्रिय होते हैं। इनकी भक्ति अव्यभिचारिणी (नितान्त सुदृढ़) होती है। इसीलिये कठिन-से-कठिन आपत्कालमें भी यह भक्ति सुस्थिर रहती है। ये परम भागवत भक्त सदा यही प्रार्थना करते रहते हैं—‘प्रभो! विष्णो! विषयोंमें जो अधिकाधिक स्थिर प्रीति होती है, वही आपका स्मरण करते हुए मुझमें सदा अविचल-भावसे बनी रहे।’ यह विशेष रूपमें ध्यातव्य है कि प्रभु श्रीविष्णुकी ही भक्ति करनी चाहिये। यदि कोई अन्य किसीके प्रति दृढ़ भक्त है, सर्वेश्वर प्रभुका भक्त नहीं है तो वेदादि समस्त शास्त्रोंके अर्थका पारङ्गत होनेपर भी वह वास्तवमें पुरुषार्थ ही है। जिसने वेद या अन्य शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है, जो यज्ञादिक पुण्यकर्मोंको अपने जीवनमें सम्पन्न करनेसे वञ्चित रह गया है, वह भी यदि भगवान् विष्णुमें भक्ति रखता है तो (समझना चाहिये कि) उसने सब कुछ कर लिया है। जो लोग याज्ञिक हैं, अश्वमेध, राजसूयादिक मुख्य यज्ञोंको करनेवाले हैं और

१- प्रणामपूर्वक भक्त्या यो वदेद्वैष्णो हि सः। भक्तजनवात्सल्यं पूज्यं कपुमोदनम्॥

तत्कथाश्रवणे प्रीतिरुनेजद्रविक्रियाः। येन सर्वात्मना विष्णौ भक्त्या भाजो निवेष्टितः॥

विद्वेभ्यश्च कृतात्मत्वान्महाभागवतो हि सः। विशेषकरणं नित्यं तदर्थं सद्गुणवर्धनम्।

स्वयमभ्यर्चनं यैव यो विष्णुं चोपजीवति॥ (२२७।६-८)

२- भक्तिरष्टविधा द्रोष्टुं यस्मिन् म्लेच्छोऽपि शक्नोति। स विद्वेभ्यो मुनिः श्रीमान् स शक्ति परमं गतिम्॥

तस्मै देयं ततो ब्राह्मं स च पूज्यो यथा हरिः। स्मृतः सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तमः।

पुनरिति भगवद्भक्त्याण्डालोऽपि पदुच्छया॥ (२२७।९-१०)



वेदोंके पारंगत हैं, वे मुनिसत्तम (मुनिश्रेष्ठ) भी उस परम गतिको प्राप्त नहीं कर पाते, जिस परमगतिको विष्णुभक्त अपनी भक्तिसे प्राप्त कर लेते हैं। इस संसारमें जो मनुष्य निर्दयी हैं, दुष्टात्मा हैं तथा दुराचारमें लगे रहते हैं, वे भी यदि भगवान् विष्णु नारायणकी भक्तिमें संलग्न हों तो उन्हें परम गतिकी प्राप्ति होती है। जब मनुष्यकी भक्ति भगवान् जनार्दनके प्रति अवल और दृढ़ हो जाती है, तब उसके लिये स्वर्गका सुख कितना महत्त्व रखता है! वह भक्ति ही उसके लिये मुक्ति है। हे सौनक! इस संसारके दुर्गम कर्मपार्श्वमें भ्रमण करते हुए मनुष्योंके लिये भक्ति ही एकमात्र अवलम्ब है, जिसके करनेसे जनार्दन संतुष्ट होते हैं। जो मनुष्य देवाधिदेव विष्णुके दिव्य गुणोंको नहीं सुनता, वह बहरा है और सभी धर्मोंसे बहिष्कृत है। हरिनाम-संकीर्तनसे जिस व्यक्तिका शरीर रोमाञ्चित नहीं हुआ, उसका वह शरीर मृतकके समान है। हे द्विजश्रेष्ठ! जिसके अन्तःकरणमें विष्णुभक्ति विद्यमान रहती है, उसे यथाशीघ्र ही इस संसारके आवागमन-चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जिन मनुष्योंका मन हरिभक्तिमें रमा हुआ है, उनके सभी पापोंका विनाश सब प्रकारसे निश्चित है।

हाथमें पाश लेकर खड़े हुए अपने दूतको देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं कि हे दूत! तুম उन लोगोंको छोड़ देना जो मधुसूदन विष्णुके भक्त हैं। मैं तो अन्य दुराचारी और पापियोंका स्वामी हूँ, वैष्णवोंके स्वामी स्वयं हरि हैं। श्रीविष्णुने स्वयं कहा है कि यदि दुराचारी व्यक्ति भी मुझमें अनन्य भक्ति रखता है तो वह साधु ही है; क्योंकि उसने भक्तिका निश्चय कर लिया है कि श्रीविष्णुकी भक्तिके समान अन्य कुछ भी नहीं है। निश्चयपूर्वक भगवान्की भक्तिमें अनन्य भावसे लगा हुआ व्यक्ति तुरंत धर्मात्मा हो जाता है और उसको शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है। हे द्विजश्रेष्ठ! आप ऐसा निश्चित ही जान लें कि विष्णुभक्तका कभी विनाश नहीं होता। समस्त संसारके मूल कारण भगवान् हरिमें जिस मनुष्यकी भक्ति स्थिर रहती है, उसके लिये धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गका कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि परम सुखरूप मुक्ति ही उसके हाथमें सदा रहती है। यह जो हरिकी त्रिगुणात्मिका दैवी माया है, उसको वे लोग पार करते हैं जो हरिकी शरणमें जाते हैं। जिनकी बुद्धिमें भगवान् हरि निवास करते हैं, उनके लिये यज्ञाराधन आदिसे क्या लाभ? भक्तिसे ही सं०ग०पु०अ०१२—

नारायणकी आराधना होती है। भक्तिके अतिरिक्त उनकी आराधनाके लिये अन्य कोई साधन नहीं है। विभिन्न प्रकारके दान देनेसे, भलीभाँति पुष्प-समर्पणसे अथवा अनेक प्रकारके दिव्य अनुलेपनसे भी परमात्मा जनार्दन विष्णु उतना संतुष्ट नहीं होते जितना भक्तिसे।

इस संसाररूपी विषवृक्षके अमृतके समान दो फल हैं—पहला फल है—भगवान् केशवकी भक्ति और दूसरा फल है, उनके भक्तोंका सत्संग—

संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।

कदाचित्केशवे भक्तिस्तद्वैकैर्वा समागमः॥

(२२७।३२)

सनातन पुरुष श्रीविष्णु एकमात्र भक्तिसे सुलभ हैं और यह भक्ति अनायास पत्र, पुष्प, फल अथवा जलका श्रद्धाके साथ श्रीविष्णुके चरणोंमें समर्पणमात्रसे प्राप्य है। ऐसी स्थितिमें अतिकष्टसाध्य मुक्तिके लिये क्यों प्रयत्न किया जाय?

‘हमारे कुलमें एक विष्णुभक्तने जन्म लिया है, यह हमारा इस संसार-सागरसे उद्धार करेगा।’ यह सोचकर पितामह ताल टोकते हैं और पितामह ताली बजा-बजाकर नृत्य करते हैं। अज्ञानी और पापात्मा शिशुपाल तथा सुयोधन आदि भी सुरश्रेष्ठ भगवान्की निन्दा-अपमानके व्याजसे, भगवान्का स्मरणमात्र करके निष्पाप हो गये और मुक्तिको प्राप्त कर लिये। ऐसी स्थितिमें भगवान्में परमभक्ति रखनेवालोंके मुक्तिलाभमें कौन-सा संशय है? वह तो निःसंदेह प्राप्त होगी ही—

अज्ञानिनः सुरवरे सर्वधिक्रियन्तो

पत्न्यापित्रेऽपि शिशुपालसुयोधनाद्याः।

मुक्तिं यतः स्मरणमात्रविभूतपापाः

कः संशयः परमभक्तिमतां जनानाम्॥

(२२७।३५)

ध्यानयोगसे रहित होकर भी जो लोग श्रीविष्णुकी शरणमें आ जाते हैं, वे मृत्युका अतिक्रमण करके परम वैष्णवगतिको प्राप्त हो जाते हैं।

हे माधव! इस संसारमें प्राप्त होनेवाले सैकड़ों कष्टोंसे व्याधित और शरीरमें विद्यमान अनेक इन्द्रिय-छिद्ररूप अश्वोंके साथ विषयवासनाओंमें भटकते हुए इस मेरे मनरूपी घोड़ेको आप रोक लें और अपने चरणरूपी खूँटमें सुदृढ़ भक्तिरूपी बन्धनसे बाँध दें, जिससे यह मेरा मन

आपके चरणकमलका परित्याग कर अन्यत्र न जा सके—

भयोद्भवकलेशशतैर्हतस्तथा

परिभ्रमन्निन्द्रियान्धकैर्हृदयैः ।

नियम्यतां माधव मे मनोदुष्ट-

स्वददृशिशङ्खौ दृढभक्तिबन्धने॥<sup>१</sup>

(२२७।३७)

विष्णु ही परमब्रह्म हैं, वे ही तीन भिन्न रूपोंमें वेद-शास्त्रादिके प्रतिपाद्य हैं। इस तथ्यको उनकी मायासे मोहितजन नहीं जानते और जो लोग इस मायासे परे रहते हैं तथा श्रीविष्णुमें अपनी अचल भक्ति रखते हैं, उन्हें यह भेद नहीं दिखायी देता। उनके लिये तो सब विष्णुमय ही होता है। (अध्याय २२७)

## नामसंकीर्तनकी महिमा

सूतजीने कहा—मुक्तिके कारणभूत, अनादि, अनन्त, अज, नित्य, अव्यय और अक्षय भगवान् विष्णुको जो मनुष्य नमन करता है, वह समस्त संसारके लिये नमस्कारके योग्य हो जाता है। मैं आनन्दस्वरूप, अद्वैत, विज्ञानमय, सर्वव्यापक एवं सभीके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान् विष्णुको भक्तिभावसे भरे हुए एकाग्र-मनसे सदा प्रणाम करता हूँ। जो ईश्वर अन्तःकरणमें विराजमान रहकर सभीके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं, उन सर्वज्ञाधी परमेश्वर विष्णुको मेरा नमन है।

शरीरमें शक्ति रहते हुए जो मनुष्य भगवान् चक्रपाणि विष्णुको प्रणाम नहीं करता, उससे इस संसारके अति तुच्छ तृण भी उद्भिन्न रहते हैं। जलसे परिपूर्ण नूतन-रश्मयत्त मेघों-जैसी सुन्दर कान्तिवाले, लोकनाथ, परमपुरुष तथा अप्रमेय भगवान् कृष्णकी भाव-विभोर होकर दृढ़ भक्तिके साथ मात्र एक बार किया गया प्रणाम श्रवण (चाण्डाल)-को भी तत्काल उत्तम गति देनेमें सक्षम है। जो व्यक्ति पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करते हुए भगवान् हरिको पूजा करता है, उसको वह गति प्राप्त होती है, जो सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे भी सम्भव नहीं है। जंगल एवं समुद्रकी भाँति दुर्गम संसारमें दीदते हुए पुरुषोंको कृष्णके लिये उनके द्वारा किया गया एक ही प्रणाम उन्हें मुक्ति

प्रदान करके तार देगा। बैठा हो, शयन कर रहा हो अथवा जहाँ कहीं भी रह रहा हो—हर स्थितिमें कल्याणकामी पुरुषको 'नमो नारायणाय' मन्त्रका स्मरण करना चाहिये। 'नारायण' यह शब्द सुलभ है और चागिन्द्रिय मनुष्यके वक्षमें है, फिर भी मूर्ख मनुष्य नरकमें गिरता है, इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा। यदि कोई बार मुखोंसे पुक्त हो जाय अथवा उसके करोड़ों मुख हो जायें, चाहे कोई विशुद्ध चित्तवाला मनुष्य हो, फिर भी वह देवब्रह्म भगवान् विष्णुके गुणोंसे सम्बन्धित दस हजारवें भागका भी वर्णन नहीं कर सकता। मधुसूदन (श्रीविष्णु)-की स्तुति करनेवाले व्यास आदि मुनि अपनी बुद्धिकी क्षीणताके कारण श्रीविष्णुके गुण-वर्णनसे विरत होते हैं न कि श्रीविष्णुके गुणोंकी इपताके कारण। सिंहसे डरकर मृग जैसे तत्काल भाग जाते हैं वैसे ही श्रीविष्णुके नामोंका कीर्तन करनेसे अशक्त व्यक्तिके भी सभी पातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं और निष्पाप होनेके कारण वह व्यक्ति अपने पूरे परिवारके साथ मोक्षके लिये संनद्ध हो जाता है।

स्वप्नमें भी भगवान् नारायणका नाम लेनेवाला मनुष्य अपनी अक्षय पापतासिको विनाश कर देता है। यदि कोई मनुष्य प्रबोध-दशमें परात्पर विष्णुका नाम लेता है तो फिर उसके विषयमें कहना ही क्या? 'हे कृष्ण! हे अच्युत! हे

१. यह श्लोक प्राचीन आप्तपरम्परायें इस प्रकार प्रसिद्ध हैं—

भयोद्भवकलेशशतहाततः परिभ्रमन्निन्द्रियकपयन्तरो। निगृह्यतां माधव मे मनोदहस्वददृशिशङ्खौ दृढभक्तिबन्धनेः॥

इसका अर्थ है—'हे माधव! मेरा मनलगी अन्ध संसारमें उल्टन कलेशलगी सैकड़ों कोढ़ोंसे आहत होकर ऐन्द्रिय (इन्द्रियसम्बन्धी) अनेक कापस (कुत्सित मार्गों)-में भटक रहा है। कृपया आप अपने भक्तिजन दृढ़ बन्धनोंसे अपने चरणलगी शङ्खोंमें इसे बाँधकर निगृहीत कर लें।'

[काशीके प्रसिद्ध परम आस्तिक ग्रीड विद्वान् श्रीरामचन्द्रजी त्रिपाठी (महाहयजी) इसी रूपमें इस श्लोकका प्रतिदिन प्रातः पाठ करते थे और कहा करते थे कि यह गरुडपुराणका श्लोक है। विशेषकर वर्तमान कलिकालमें इस श्लोकका पाठ भगवान्की भक्ति प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह तथ्य महाशयजीके शिष्य स्व० श्री पं० कालचन्द दीक्षितजीसे ज्ञात हुआ है।]

अनन्त! हे वासुदेव! आपको नमस्कार है।' ऐसा कहकर जो भक्तिभावसे श्रीविष्णुको प्रणाम करते हैं, वे यमपुरी नहीं जाते। अग्निके प्रज्वलित होनेपर अथवा सूर्यके उदित हो जानेपर जैसे अन्धकार विनष्ट हो जाता है, वैसे ही हरिका नामसंकीर्तन करनेसे प्राणियोंके पाप-समूहका विनाश हो जाता है। नामसंकीर्तनसे जिस नित्य सर्वोत्तम अक्षय सुखका अनुभव होता है, उसके सम्मुख अनित्य क्षयशील स्वर्गसुख सर्वथा नगण्य है। जिनका चित्त श्रीकृष्णचिन्तनमें ही प्रतिक्षण रम रहा है, उनके लिये श्रीकृष्णधामतक पहुँचनेके लंबे मार्गमें श्रीकृष्णनामसंकीर्तन सर्वोत्तम पाथेय (अनुपम अवलम्ब) है। संसाररूपी सर्पके दंशसे व्याप्त विश्वके भयंकर उपद्रवको शान्त करनेके लिये एकमात्र औषध 'श्रीकृष्ण' नाम है। इस वैष्णव मन्त्रका जप करके मनुष्य संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है—

पाथेयं पुण्डरीकाक्ष नामसंकीर्तनं हरेः।

संसारसर्पसंदष्टविषघेष्टैकधेयजम् ॥

(२२८।१७)

कृतयुगमें भगवान् हरिका ध्यान करते हुए, त्रैतायुगमें इन्हीं भगवान् हरिके मन्त्रोंका जप करते हुए, द्वारमें इन्हींकी पूजा करते हुए, जो फल प्राणियोंको प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें मनुष्य इन्हीं भगवान् 'केशव' के

स्मरणमात्रसे प्राप्त कर लेता है—

ध्यायन् कृते जपन् मन्त्रैस्वेतायां द्वारेऽर्चयन्।  
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संसृत्य केशवम्॥

(२२८।१८)

जिस व्यक्तिकी जिह्वाके अग्रभागमें 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान होते हैं, वह इस संसारसागरको पार कर विष्णु-पदको प्राप्त करनेमें सफल हो जाता है—

जिह्वाये वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।  
संसारसागरं तीर्त्वा स गच्छेद्भूषणं पदम्॥

(२२८।१९)

ज्ञानपूर्वक किये गये हजारों पापोंसे परिशुद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिके लिये भगवान्का नाम परम कल्याणकारी है। भगवान् नारायणके स्तवन और गुणानुवादसे भरो हुई कथाओंके श्रवणमें निमग्न रहनेवाला व्यक्ति स्वप्नमें भी इस संसारको नहीं देखता—

विज्ञातदुष्कृतिसहस्रसमाप्तोऽपि

श्रेयः परं तु परिशुद्धिमभीप्समानः।

स्वप्नान्तरे न हि पुनश्च भवं स पश्ये-

श्रावणस्तुतिकथापरमो

मनुष्यः॥

(२२८।२०)

(अध्याय २२८)

## विष्णुपूजामें श्रद्धा-भक्तिकी महिमा

सूतजीने पुनः कहा—हे शौनक! समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् हरिकी आराधना ही सार है। पुरुषसूक्तके द्वारा जो मनुष्य पुष्प और जल आदि उस परात्पर देवको समर्पित करता है, वह सम्पूर्ण चराचर जगत्की पूजा कर लेता है। जो विष्णुकी पूजा नहीं करते, उन्हें ब्रह्मपाती समझना चाहिये। जिन भगवान्से समस्त प्राणियोंको उत्पत्ति हुई है और यह समस्त चराचर जगत् जिनसे व्याप्त है, उन विष्णुका जो ध्यान नहीं करता, वह विष्णुका कृमि होता है। नरकलोकमें होनेवाले कष्टोंसे संतप्त हो रहे पापी जीवसे यमराज स्वयं पूछते हैं कि क्या तुमने कष्टविनाशक भगवान् विष्णुदेवका पूजन नहीं किया था? द्रव्योंका अभाव होनेपर मात्र जलसे ही पूजा करनेपर जो देव प्रसन्न होकर स्वयं

अपने ही लोकको दे देते हैं, क्या तुमने उनकी पूजा नहीं की थी?

ब्रह्मपूर्वक की गयी पूजासे संतुष्ट भगवान् हृषीकेश मनुष्यका जो उपकार करते हैं, वह न माता करती है, न पिता करता है और न तो उसका भाई ही करता है। वर्णाश्रम-धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्यके द्वारा यदि भगवान् विष्णुकी पूजा होती है तो वे (श्रीविष्णु) उस पूजासे संतुष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है, जो उनको संतुष्ट कर सके। न तो वे प्राणियोंके द्वारा दिये गये विभिन्न प्रकारके दानसे उतना संतुष्ट होते हैं, न तो पुष्पोपहार और भौतिक सुगन्धित पदार्थोंके अनुलोपनसे उतना संतुष्ट होते

है, जितना भक्तिसे। सम्पत्ति, ऐश्वर्य, माहात्म्य, पुत्र-हरिका ऐक्य श्रीहरिकी आराधनासे ही प्राप्त होता है; पौत्रादिक संतान तथा अन्यान्य कर्मसम्पादनसे भी क्योंकि श्रीहरिकी आराधना ही ऐक्यभावका मूल है। भगवान् हरि संतुष्ट नहीं होते। विमुक्तजनोंके लिये भी (अध्याय २२९)

## विष्णुभक्तिका माहात्म्य

सूतजीने कहा—सभी शस्त्रोंका अवलोकन करके तथा पुनः-पुनः विचार करके यह एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको सदैव भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये—

आलोक्य सर्वशतस्वाणि विचार्य च पुनः पुनः ।  
इदमेकं सुनिश्चयं ध्येयो नारायणः सदा ॥

( २३०।१ )

जो व्यक्ति एकनिष्ठ होकर नित्य उस नारायणका ध्यान करता है, उसके लिये नाना प्रकारके दान, विभिन्न तीर्थोंका परिभ्रमण, तपस्या और यज्ञोंका सम्पादन करनेसे क्या प्रयोजन? अर्थात् श्रीमन्नारायणका ध्यान सर्वोत्कृष्ट है।

छियासठ हजार तीर्थ भगवान् नारायणके प्रणामकी सोलाहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते। समस्त प्रायश्चित्त और जितने भी तप-कर्म हैं, इन सभीमें भगवान् कृष्णका स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा समझना चाहिये। जिस पुरुषकी अनुरक्ति सदैव पापकर्ममें रहती है, उसके लिये एकमात्र श्रेष्ठतम प्रायश्चित्त भगवान् हरिका स्मरण है।

जो प्राणी एक मुहूर्तभर भी निरालस्य होकर नारायणका ध्यान कर लेता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है, फिर नारायणमें अनन्य-परायण भक्तके विषयमें क्या कहा जाय—

मुहूर्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमनन्तरितः ।  
सोऽपि स्वर्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः ॥

( २३०।६ )

जो मनुष्य योगपरायण है अथवा योगसिद्ध है, उसकी चित्तवृत्ति जागते, स्वप्न देखते तथा सुषुप्तावस्थामें भगवान् अच्युतके ही आश्रित होती है। उठते, गिरते, रोते, बैठते, खाते, जागते भगवान् गोविन्द माधव विष्णुका स्मरण करना चाहिये।

अपने-अपने कर्ममें संलग्न रहते हुए भगवान् जनार्दन हरिमें ही चित्तको अनुरक्त रखना चाहिये, ऐसा शास्त्रका कथन है। अन्य बहुत-सी बातोंको कहनेसे क्या लाभ—  
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः कुर्याच्चित्तं जनार्दने।

एषा शास्त्रानुसरोतिः किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥

( २३०।९ )

ध्यान ही परम धर्म है, ध्यान ही परम तप है, ध्यान ही परम शुद्धि है, अतः मनुष्यको (भगवद्) ध्यानपरायण होना चाहिये। विष्णुके ध्यानसे बढ़कर अन्य कोई ध्यान नहीं है, उपवाससे बढ़कर अन्य कोई तपस्या नहीं है, अतः भगवान् वासुदेवके ध्यानको ही अपना प्रधान कर्म मानना चाहिये। इस लोक और परलोकमें प्राणीके लिये जो कुछ दुर्लभ है, जो अपने मनसे भी सोच नहीं जा सकता, वह सब बिना मँग ही ध्यानमात्र करनेसे मधुसूदन प्रदान कर देते हैं।

यज्ञ आदि उत्तम कर्म करते समय प्रमादवश स्थलनसे जो न्यूनता होती है, वह विष्णुके स्मरणमात्रसे सम्पूर्णतामें परिवर्तित हो जाती है, ऐसा श्रुतिवचन है—

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रध्यवेताध्वरेषु यत् ।

स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

( २३०।१३ )

पापकर्म करनेवालोंकी शुद्धिका ध्यानके समान अन्य कोई साधन नहीं है। यह ध्यान पुनर्जन्म देनेवाले कारणीको भस्म करनेवाली योगाग्नि है। समाधि (ध्यानयोग) से सम्पन्न योगी योगाग्निसे तत्काल अपने समस्त कर्मोंको नष्ट करके इसी जन्ममें मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वायुके सहयोगसे कैचें उठनेवाली ज्वालासे युक्त अग्नि जैसे अपने आश्रय कक्ष (कमरे) को जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही योगी (ध्यानयोगी) के चित्तमें स्थित श्रीविष्णु योगीके समस्त पापोंको भस्म कर देते हैं। जैसे अग्निके संयोगसे सोना मलरहित हो जाता है, वैसे ही मनुष्योंका मल भगवान् वासुदेवके सोनिध्मसे विनष्ट हो जाता है।

हजारों बार गङ्गास्नान तथा करोड़ों बार पुष्कर नामक तीर्थमें स्नान करनेसे जो पाप नष्ट होता है, वह हरिका मात्र स्मरण करनेसे नष्ट हो जाता है। हजारों प्राणायाम करनेसे जो पाप नष्ट होता है, वही पाप क्षणमात्र भगवान् हरिका ध्यान करनेसे निश्चित ही नष्ट हो जाता है। जिस मनुष्यके



हृदयमें भगवान् केशव विराजमान हैं, उसके मानसपर उन दुष्ट उच्छ्रियों तथा पाखण्डका प्रभाव नहीं पड़ता, जो कलिके प्रभावसे प्रवृत्त हैं। जिस समय हरिका स्मरण किया जाता है, वही तिथि, वही दिन, वही रात्रि, वही योग, वही चन्द्रबल और वही लग्न सर्वश्रेष्ठ है। जिस मुहूर्त या क्षणमें वासुदेवका चिन्तन नहीं होता, वह मुहूर्त या क्षण हानिका समय है। वह अत्यन्त व्यर्थ है। वह किसी भी प्रकारके लाभसे रहित होनेके कारण मूर्खता एवं मूकता (गूँगपन)-का समय है।

जिसके हृदयमें भगवान् गोविन्द विद्यमान हैं, उसके लिये कलियुग भी सत्ययुग ही है। इसके विपरीत जिसके हृदयमें अच्युत भगवान् गोविन्दका वास नहीं है, उसके लिये तो सत्ययुग भी कलियुग ही है। जिसका चित्त आगे और पीछे, खलते तथा झूठते, सदैव भगवान् गोविन्दमें रमा हुआ है, वह व्यक्ति सदा ही कृतकृत्य है—

कलौ कृतयुगं तस्य कलिस्तस्य कृते युगे।  
हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युतः॥  
यस्याग्रतस्तथा पुष्टे गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा।  
गोविन्दे नियतं चेतः कृतकृत्यः सदैव सः॥

( २३०।२३-२४ )

हे मैत्रेय! जप, होम एवं पूजा आदिके द्वारा जिसका मन वासुदेव श्रीकृष्णको आराधनामें अनुरक्त है, उसके लिये इन्द्र आदिका पद विष्णुके समान है।

जिन्होंने श्रीकेशवके चरणोंमें अपने मनको अर्पित कर दिया है, वे गृहस्थाश्रमका परित्याग बिना किये ही, कठिन तपश्चर्या बिना किये ही पौरुषी (पुरुषोत्तम परब्रह्मको शक्ति) मायाके जालको काट डालते हैं।

गोविन्द दामोदरका हृदयमें वास रहनेपर मनुष्य क्रोधियेके प्रति क्षमा, मूर्खोंके प्रति दया और धर्ममें संलग्न प्राणिपक्षोंके प्रति प्रसन्नता प्रकट करते हैं—

क्षमां कुर्वन्ति क्रुद्धेषु दयां मूर्खेषु मानवाः।  
मुदं च धर्मशीलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते॥

( २३०।२० )

स्नान-दान आदि कर्मोंमें तथा विशेष रूपसे सभी प्रकारके दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त करते समय भगवान् नारायणका

ध्यान करना चाहिये।

जिनके हृदयमें नीलकमलके समान सुन्दर श्यामवर्ण भगवान् हरि विराजमान रहते हैं, उन्हींको वास्तविक लाभ और जय प्राप्त होते हैं। उनका पराभव कैसे हो सकता है—

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः।  
येषामिन्दीवरण्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥

( २३०।२९ )

हरिमें समापित चित्तवाले कोई-मकोड़े, पक्षी आदि जीव-जन्तुओंकी भी ऊर्ध्व (उत्तम) गति होती है। फिर ज्ञानसम्पन्न मनुष्योंकी गतिके विषयमें कहना ही क्या—  
कीटपक्षिगणानां च हरी संन्यस्तचेतसाम्।  
ऊर्ध्वा ह्येव गतिश्चास्ति किं पुनर्ज्ञानिणां नृणाम्॥

( २३०।३० )

भगवान् वासुदेवरूपी वृक्षकी छाया न तो अधिक लोतल होती है और न अधिक तापकारक होती है। नरकके द्वारका समन करनेवाली (नरकमें जानेसे रोकनेवाली) इस छायाका सेवन क्यों नहीं किया जाय—

वासुदेवतहच्छाया नातिशीतातितापदा।  
नरकद्वारमयी सा किमर्थं न सेव्यते॥

( २३०।३१ )

हे मित्र! भगवान् मधुसूदनको अपने हृदयमें अहर्निश प्रतिष्ठित रखनेवाले प्राणीका विनाश करनेमें न तो महाक्रोधी दुर्वासका शाप समर्थ है और न तो देवराज इन्द्रका शासन ही समर्थ है—

न च दुर्वाससः शापो राज्यं चापि शचीपतेः।  
इन्नुं समर्थं हि सखे इत्कृते मधुसूदने॥

( २३०।३२ )

बोलते हुए, सकते हुए अथवा इच्छानुसार अन्य कार्य करते हुए भी यदि भगवद्विषयक चिन्तन निरन्तर बना रहे तो धारणा (ध्वेयपर चित्तकी स्थिरता)-को सिद्ध हुआ मानना चाहिये—

यदस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।  
नाप्यति यदा चिन्ता सिद्धां मन्येत धारणाम्॥

( २३०।३३ )

सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान रहनेवाले, कमलासनपर सुशोभित, केयूर<sup>१</sup>, मकरकृतकुण्डल और मुकुटसे अलंकृत, दिव्य हारसे युक्त, मनोहारिणी सुन्दर स्वर्णिम आभासे युक्त शरीरवाले, शंख-चक्रधारो भगवान् विष्णुका सदैव ध्यान करना चाहिये—

ध्येयः सदा भक्तिसमपङ्कजमध्यवर्ती

नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी

हारी हिरण्यवक्त्रपुष्पतटाङ्गचक्रः ॥

(२३०।३४)

इस संसारमें भगवान्‌के ध्यानके समान अन्य कोई पवित्र कार्य नहीं है। श्रीविष्णुके ध्यानमें ही सदा निरत रहनेवाला मनुष्य चाण्डालका भी अब खाते हुए इस संसारके पापसे संलिप्त नहीं होता, क्योंकि ऐसा मनुष्य अपने स्वत्वको भगवान्‌में लीन कर देनेसे भगवन्मय हो जाता है, अतएव उसकी भेददृष्टि पूरी तरह निर्मूल हो जाती है।

प्राणीका चित्त सदा सांसारिक विषयवामनाओंके भोगमें जिस प्रकार अनुरक्त रहता है, यदि उसी प्रकार नारायणमें ही अनुरक्त हो तो इस संसारके बन्धनसे क्यों नहीं विमुक्त हो सकता—

सदा चित्तं समासाक्तं जनोर्विषयगोचरे ।

यदि नारायणोऽध्येयं को न मुच्येत बन्धनात् ॥

(२३०।३५)

सूतजीने फिर कहा—हे शौनक! सर्वदा जिसके चित्तमें भगवान् विष्णुकी भक्ति विद्यमान रहती है, वह प्रतिक्षण श्रीविष्णुको ही नमन करता रहता है। इस स्थितिमें वह हरिकृपासे अपनेको पापके समुद्रमें तार लेता है।

वही ज्ञान है जिस ज्ञानका विषय गोविन्द ही, वही कथा है जिस कथामें केशवकी लीला हो, वही कर्म है जो प्रभुके निमित्त किया जाय; अन्य बहुत-सी बातोंको कहनेसे क्या लाभ? जो जिज्ञा हरिकी स्तुति करती है वही जिज्ञा है, जो चित्त श्रीहरिकी समर्पित है वही चित्त है तथा भगवान्‌की पूजा

करनेमें जो हाथ लगे हुए हैं वे ही वास्तविक हाथ हैं—

तन्म्यानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः ।

तत्कर्म यत् तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥

सा जिज्ञा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत् तदर्पितम् ।

तावेव केवली प्रलाभ्यी यी तत्पूजाकरी करी ॥

(२३०।३६-३९)

मस्तकका फल है भगवान्‌को नतमस्तक होकर प्रणाम करना, हाथका फल है भगवान्‌की पूजा करना, मनका फल है उनके गुण और कर्मका चिन्तन करना तथा प्राणीका फल है गोविन्दके गुणोंका कीर्तन करना—

प्रणाममीशस्य शिरःफलं धिदु-

स्तदर्शनं पाणिफलं दिवीकसः ।

मनःफलं तद्गुणकर्मचिन्तनं

वक्षसु गोविन्दगुणस्तुतिः फलम् ॥

(२३०।४०)

मनुष्यके पापकर्मोंको जो राशि सुमेरु और मन्दराचलके समान विस्तृत हो गयी हो, वह सम्पूर्ण पापराशि भी भगवान् केशवका स्मरणमात्र करनेसे ही विनष्ट हो जाती है—

मेरुपन्दरमाग्रीऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ।

केशवस्मरणादेव तस्य सर्वं विनश्यति ॥

(२३०।४१)

श्रीविष्णुपरायण भक्त अनासक्त-भावसे यदि अपने सभी कर्मोंको श्रीविष्णुके चरणोंमें समर्पित करता है तो उसके कर्म साधु हों या असाधु बन्धनकारक नहीं होते। हे प्रभो! सुर, असुर, मनुष्य, तिर्यक्, स्थावर आदि भेदोंमें विभक्त तृणसे लेकर ब्रह्माण्डतक समस्त जगत् आपकी ही मयासे मोहित है।

जिनमें मन लगा देनेसे प्राणी नरकमें नहीं जाता और जिनके चिन्तन-सुखको तुलनामें स्वर्गकी प्राप्ति विषयके समान है तथा ब्रह्मलोककी कामना भी अत्यल्प होनेके कारण किसी भी प्रकार मनमें प्रवेश नहीं पाती, जो अव्यय भगवान् जड़ बुद्धिवाले मनुष्योंके चित्तमें स्थित होकर उन्हें मुक्ति प्रदान कर देते हैं, उन अमृतका कीर्तन करनेपर यदि उनमें प्राणीका चित्त हो जाता है तो इसमें आश्चर्यकी क्या

चात है?'

दुःख-सागरको पार करनेके लिये यज्ञ, जप, स्नान और विष्णुका ध्यान तथा पूजन करना चाहिये।

राष्ट्रका आश्रय राजा, बालकका आश्रय पिता और समस्त प्राणियोंका आश्रय धर्म है; किंतु सभीके आश्रय श्रीहरि ही हैं—

राष्ट्रस्य शरणं राजा पितरो बालकस्य च।

धर्मश्च सर्वमर्त्यानां सर्वस्य शरणं हरिः॥

(२३०।४४)

हे मुनिवर! जो लोग जगत्के कारणस्वरूप सनातन भगवान् वामुदेवकी नमन करते हैं, उनसे अधिक श्रेष्ठ पुण्यवान् कोई तीर्थ नहीं है। निरालस्य होकर योगिन्दका ध्यान करते हुए उन्हींकी समर्पित स्वाध्याय आदि कर्म करना चाहिये। भगवद्भक्त व्यक्ति चाहे शूद्र हो अथवा निषाद हो या चाण्डाल हो, उसे द्विजातिपणके समान ही माननेवाला व्यक्ति नरकमें नहीं जाता। जैसे धनप्राप्तिकी अभिलाषासे धनवान् व्यक्तिकी सदैव सम्मानपूर्वक स्तुति की जाती है, वैसे ही जगत्त्रया श्रीविष्णुकी स्तुति-पूजा आदि की जाय तो कर्म नहीं इस संसारके बन्धनसे मुक्ति

हो सकती है?

जिस प्रकार वनमें लगी हुई अग्नि गीले ईंधनको जलाकर राख कर देती है, उसी प्रकार योगियोंके हृदयमें स्थित भगवान् विष्णु उनके समस्त पापोंको विनष्ट कर देते हैं। जैसे चारों ओरसे लगी हुई अग्निकी ज्वालाओं घिरे हुए पर्वतका आश्रय मृग आदि पशु एवं पक्षी नहीं लेते, वैसे ही सभी पाप योगाभ्यासमें लगे हुए मनुष्यका आश्रय नहीं ग्रहण करते। उन विष्णुके प्रति जिसका विश्वास जितना अधिक दृढ़ होता है, उसको उतनी ही अधिक सिद्धि प्राप्त होती है।

भगवान् कृष्णके ऐसे प्रभावका आकलन कर शत्रुभावसे उन योगिन्दका स्मरण करता हुआ दमघोषका पुत्र शिशुपाल भगवान्में लीन हो गया। यदि कोई मनुष्य भक्तिभावसे विष्णुपरायण है, तो उसके विषयमें क्या कहना? उसकी मुक्ति तो पहलेसे ही सुनिश्चित हो जाती है—

विद्वेषादपि योगिन्द दमघोषात्मजः स्मरन्।

शिशुपालो गतस्तत्त्वं किं पुनस्तत्परायणः॥

(२३०।४४)

(अध्याय २३०)

## नृसिंहस्तोत्र तथा उसकी महिमा

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं भगवान् त्रिवेन्द्राद कहि गयी नारसिंहस्तुति (नृसिंहस्तोत्र)—का वर्णन करूँगा।

प्राचीन कालकी बात है, एक बार सभी मातृगणोंने भगवान् शंकरसे कहा कि हे भगवान्! हम सब आपकी कृपासे देव, असुर और मनुष्य आदि जो इस संसारमें प्राणी हैं, उन सबको छायेंगे। हम सभीको आप इसके लिये आज्ञा प्रदान करें।

शंकरजीने कहा—हे मातृकाओ! आप सबके द्वारा संसारकी समस्त प्रजाकी रक्षा होनी चाहिये। इसलिये इस महाभयंकर पापसे आप लोग अपने-अपने मनको मोक्ष वापस कर लें।

भगवान् शंकरके द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी मातृकाएँ उनके वचनका अनादर करते हुए त्रिभुवनके समस्त चराचर

प्राणियोंको खानेके लिये जुट गयीं। मातृकाओंके द्वारा त्रैलोक्यका पक्षण करते देखकर भगवान् शिवने नृसिंहरूप उन श्रीविष्णुदेवका इस रूपमें ध्यान किया—जो आदि-अन्तसे रहित एवं समस्त चराचर जगत्के कारण है, विद्युत्के समान लपलपाती हुई जिनकी जिह्वा है, जिनके बड़े-बड़े महाभयंकर दाँत हैं, जिनकी प्रीति देदीप्यमान कैसरसे सुशोभित है, जो रत्नजटित अङ्गद एवं मुकुटसे सुशोभित हैं। जिनका शिरोभाग सोनेके समकन दिखायी देनेवाली जठरोंसे युक्त है, जिनके कटिप्रदेशमें सोनेकी करधनी है, जो नीलकमलके समान श्यामवर्णके हैं, जो रत्नखचित पायल धारण किये हुए हैं। जिनके तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड व्याप्त है। जिनका शरीर आवर्तकार रोमसमूहसे युक्त है और जो देव श्रेष्ठतम पुष्पोंसे गूँधी गयी एक विशाल मालाकी धारण किये हुए हैं। इस तरह भगवान् रुद्रने

१-यस्मिन् न्यस्तमस्ति यस्मि नरकं स्वर्गाणि चिन्तयन्ति विन्ते यत्र न क्व विद्वन् कथयन्ति ब्रह्मैवमि सोकोऽत्यन्तः।)

मुक्तिं वेतसि संस्थितो जडधियां पुंसं ददात्यथवा; किं चित्रं यदयं प्रपद्यति तत्तत्त्वं तत्राच्युते कोर्जिते॥ (२३०।४४)

२-सिंहकी प्रीतिके उपरी भागके केशसमूहको 'केशर' कहते हैं।

भक्तिपूर्वक जिस रूपमें नारायणका ध्यान किया था, उसी रूपमें ध्यान करनेमात्रसे नृसिंहदेव श्रीविष्णुने उन्हें अपना दर्शन दिया। यह रूप देवताओंके द्वारा भी दुर्लभित्य था।

शिवने देवेश नृसिंहको प्रणाम करके उन्हें तृप्त किया और वे इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे। शंकरजीने कहा—

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नृसिंहवपुर्धर।

दैत्येश्वरेन्द्रसंहारिन्खशुक्तिविराजित ॥

नखमण्डलसंभ्रमेमपिङ्गलविग्रह ।

नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो।

कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष सूर्यकोटिसमप्रभ ॥

सहस्रवयसंवास सहस्रेन्द्रपराक्रम।

सहस्रधनदम्पतीत सहस्रचरणतामक ॥

सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशुहरिकण।

सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रवज्रसंस्तुत ॥

सहस्रतर्जसज सहस्राक्षविरक्षण।

सहस्रजन्ममधन सहस्रबन्धवोधन ॥

सहस्रबाधुवेगाक्ष सहस्राङ्गकृपाकर।

(२३१।१२-१६५)

हे समस्त संसारके स्वामी। हे नृसिंहकपधारिन्। हे दैत्यराज हिरण्यकशिपुके बधःस्थलको विदीर्ण करनेवाले। शुक्तिर्योके समान चमकीले नाखूनोंसे सुशोभित देव। आपको नमस्कार है। हे नखमण्डलकी कान्तिसे मिश्रित सुवर्णके समान दैदीप्यमान शरीरवाले। हे जगद्गुरु। हे शोभासम्पन्न भगवान् पद्मनाभ। प्रलय कालीन मेघके सदृश गर्जना करनेवाले, करोड़ों सूर्यके समान प्रभासम्पन्न देव। आपको नमन है। दुष्ट पापियोंको हजारों यमराजके समान भयभीत करनेवाले। हजारों इन्द्रकी शक्ति अपनेमें संनिहित रखनेवाले। हजारों कुबेरके सदृश धनसम्पन्न। हजारों चरणसे युक्त हे देव। आपको नमस्कार है। हजारों चन्द्रके समान शीतल कान्तिवाले। हजारों सूर्यके सदृश पराक्रमशाली। हजारों रुद्रकी भाँति तेजस्वी। हजारों ब्रह्मसे स्तुत्य हे देव। आपको मेरा नमन है। हजारों रुद्र देवताओंके द्वारा मन्त्ररूपमें जप करने योग्य महामहिम। इन्द्रके हजारों नेत्रोंसे देखे जानेवाले। हजारों जन्मके पाप-पुण्योंका मन्थन करनेवाले। संसारके हजारों जीवोंका बन्धन काटकर उन्हें मुक्त करनेवाले। हजारों वायुदेवोंके समान वेगवान् और हजारों मूर्ख प्राणियोंपर कृपा करनेवाले हे दयानिधान। आपको मेरा

नमस्कार है।

इस प्रकार नृसिंहरूपधारी देवदेवेश्वर भगवान् हरिकी स्तुति करके दिनप्रतापूर्वक शिवने पुनः उनसे कहा—

हे देवदेवेश्वर। अन्धकासुरका विनाश करनेके लिये जिन मातृकाओंकी सृष्टि मैंने की थी, वे तो मेरे हृदयकी अवहेलना करके संसारकी विविध प्रजाओंका भक्षण कर रही हैं। मातृकाओंकी सृष्टि करके तो अब स्वर्ग में इनका संहार करनेमें असमर्थ हूँ। पहले इनकी सृष्टि की, अब कैसे इनका विनाश करें? यह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।

रुद्रके ऐसा कहनेपर नृसिंहरूपधारी भगवान् हरिने उसी समय अपनी त्रिहृदयके अग्रभागसे हजारों दैवियोंको उत्पन्न करके उन्हींके द्वारा देवता, असुर और मनुष्य आदिका संहार करनेवाली कुट्ट मातृकाओंका विनाश कर संसारका कल्याण किया। तदनन्तर वे हरि अन्तर्धान हो गये।

जो मनुष्य नियमपूर्वक इस नारसिंहस्तोत्रका जितेन्द्रिय होकर पाठ करता है, निश्चित ही भगवान् हरि उसके समस्त मनोरथको वैसे ही पूर्ण करते हैं जैसे उन्होंने शिवके मनोरथको पूर्ण किया था।

मध्याह्नकालीन प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्वी नेत्रोंवाले, श्वेत वर्णके कमलमें स्थित, प्रज्वलित अग्निके सदृश भयंकर, अनादि, मध्य और अन्तमें रहित पुराणपुरुष, परात्पर, जगत्तत्पर भगवान् नृसिंहका ध्यान करना चाहिये—

ध्यायेन्नुसिंहं

तरुणाकनेत्रं

सिताम्बुजात् ज्वलितग्निरवकमम्।

अनादिमध्यान्तमग्नं

पुराणं

परात्परं जगत्तं विधानम्॥

(२३१।२३)

जो मनुष्य इस स्तोत्रका निरन्तर जप करता है, उसके दुःखसमूहको श्रीनृसिंह उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जिस प्रकार अंशुमाती सूर्य कुहरेकी राशिको अपने सामनेसे हटा देते हैं। जब साधक कल्याणकारी मातृवर्गसे युक्त नृसिंहदेवकी मूर्तिका निर्माण करके उनकी पूजा करता है, तब वह सदैव उन परात्परदेवके समीपमें ही रहता है। त्रिपुरारि शिवने भी तो उन्हीं देवदेवेश्वर नृसिंहमूर्ति भगवान् हरिकी पूजा की थी। उन्हीं देवको प्रसन्न करके श्रीशिवजीने वर प्राप्त किया और मातृकाओंसे संसारकी रक्षा की। (अध्याय २३१)



## कुलामृतस्तोत्र

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं उस कुलामृत नामक स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिसका वर्णन देवर्षि नारदके पूछनेपर शिवने किया था। उसे आप सुनें।

नारदजीने कहा—हे त्रिपुरान्तक भगवन्! जो दुर्मतिपूर्ण मनुष्य संसारमें काम-क्रोध और शुभाशुभ द्वन्द्वोंसे तथा शब्दादि विषयोंसे बँधकर सदासे पीड़ित हो रहे हैं, उनकी जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागरसे जिस उपायद्वारा क्षणमात्रमें विमुक्ति हो जाय, उसको हम आपसे सुनना चाहते हैं।

इसपर भगवान् शंकर बोले—हे ऋषिदेव! भव-बन्धनको नष्ट करनेवाले और दुःखका विनाश करनेवाले परम गोपनीय रहस्यको मैं कहता हूँ, सुनो—तिनकेसे लेकर ब्रह्मातक चार प्रकारकी चराचर सृष्टि इस जगत्में जिन प्रभुकी मायासे अज्ञानके बशीभूत होकर सदैव सोती रहती है, उन विष्णुकी कृपासे यदि कोई जग जाता है तो वही संसारसे पार होता है। यह संसार देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुस्तर है। भोग और ऐश्वर्यके मदमें उन्मत्त तथा तत्वज्ञानसे पराङ्मुख, स्त्री, पुत्र और कुटुम्बियोंके व्यामोहमें भ्रमित होकर सभी प्राणी नाना प्रकारके दुःख झेलते हैं। इस व्यामोहमें कैसे हुए सभी जीवोंकी वैसी ही गति होती है, वैसी गति समुद्रमें स्नान करनेके लिये आये हुए बूढ़ जंगली हाथियोंकी होती है। जो मनुष्य हरिकीर्तन करनेके समय अपने मुखको बंद रखता है अर्थात् हरिकीर्तनसे पराङ्मुख रहता है, वह कोशमें स्थित कीड़ेके समान होता है। उसकी मुक्ति तो करोड़ों जन्म लेनेपर भी सम्भव नहीं है। अतः हे नारद! प्रसन्न-चित्त होकर सदैव देवदेवेश

अव्यय भगवान् विष्णुकी प्रसन्नतापूर्वक सम्यक् आराधना करनी चाहिये।

जो विश्वरूप, अनादि, अनन्त, अजन्मा तथा हृदयस्थ, अविचल, सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है। शरीररहित, विधाता, सर्वज्ञानसम्पन्न, मनके रमणके अनन्य आश्रय, अचल, सर्वत्र व्याप्त भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मुक्त हो जाता है। निर्विकल्प (निर्विशेष), निराभास, निष्प्रपञ्च तथा निर्दोष, वासुदेव, परम गुरु भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। सर्वात्मक एवं प्राणिमात्रके ज्ञानके एकमात्र प्रतिनिधि, शुभ, एकाक्षर (एक अक्षर 'अ' मात्रसे बोध्य) विष्णुका ध्यान करनेसे मुक्ति हो जाती है। वाक्यातीत (किसी भी वाक्यसे अवर्णनीय), तीनों कालोंको जाननेवाले, लोकसाक्षी, विश्वेश्वर तथा सभीसे श्रेष्ठ विष्णुका सदा ध्यान करनेसे मुक्ति हो जाती है। ब्रह्मा आदि देव, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण एवं योगियोंके द्वारा सदा सेवित श्रीविष्णुका ध्यान करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। संसार-बन्धनसे मुक्ति चाहनेवाले सभी लोगोंको वरद श्रीविष्णुकी इसी प्रकार सदा स्तुति करनी चाहिये। यदि कोई भी संसार-बन्धनसे मुक्ति चाहता है तो उसे सम्पादितचित्त होकर अनन्त, अव्यय, देवाधिदेव, अनन्त ब्रह्माण्डमें सर्वोच्च देवके रूपमें सुप्रतिष्ठित, समस्त जगत्के नियन्ता, अज श्रीविष्णुका सदा ध्यान करना चाहिये।

सूतजीने कहा—प्राचीन कालमें देवर्षि नारदके द्वारा पूछनेपर वृषभध्वज शिवने नारदसे श्रीविष्णुका जैसा वर्णन

१-यस्तु विश्वमाध्यात्ममन्त्रायनि संस्थितम्। सर्वज्ञमघातं विष्णुं सदा ध्यायेत् स मुच्यते॥

देवं गर्भोचितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते। असीरं विधातारं सर्वज्ञानमनोरतिम्॥

अचलं सर्वगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

निर्विकल्पं निराभासं निष्प्रपञ्चं निरामयम्। वासुदेवं गुरुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

सर्वात्मकं च वै वाक्यातीतं त्रिकालज्ञं लोकसाक्षिणम्। शुभमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

वाक्यातीतं त्रिकालज्ञं विश्वेशं लोकसाक्षिणम्। सर्वस्मादुत्तमं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभिः सिद्धचारुभिः योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

संसारबन्धान्मुक्तिमिच्छैल्लोको ह्यशेषतः। मनुष्यैव वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

संसारबन्धान्तां कोऽपि मुक्तिमिच्छन् सम्यहितः। अनन्तमव्ययं देवं विष्णुं विश्वप्रतिष्ठितम्॥

विश्वेश्वरमज्ञं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

किया था वैसे मैंने आपसे कर दिया है। हे तात! निस्तर उन अक्षय, निष्कल, सनातन, अव्यय, ब्रह्मस्वरूप विष्णुका ध्यान करते हुए आप निश्चित ही उनके शश्वत पदको प्राप्त करेंगे। हजारों अभ्यर्थी और सैकड़ों बाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, वह एकाग्रचित्त होकर विष्णुका क्षणमात्र ध्यान करनेसे प्राप्त होनेवाले फलके सोलहवें भागकी भी समानता करनेमें समर्थ नहीं है।

भगवान् शिवसे विष्णुके इस माहात्म्यको सुनकर सिद्ध देवर्षि नारदने उनकी सम्पत्क आराधना करते हुए परम पदको प्राप्त किया। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक नित्य इस स्तुतिका पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्ममें किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं। महादेवके द्वारा कही गयी यह स्तुति बड़ी दिव्य है। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक इस स्तुतिका नित्य पाठ करता है, वह अमृतत्व अर्थात् परम वैष्णव पदको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २३२)

### मृत्युवृत्कस्तोत्र<sup>१</sup>

सुतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं मार्कण्डेयमुनिके द्वारा कहे गये स्तोत्रको बतलाता हूँ जो इस प्रकार है—

दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किञ्चो मृत्युः करिष्यति ॥  
शङ्खचक्रधारी देवं व्यक्तस्वपिणमव्ययम् ।  
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किञ्चो मृत्युः करिष्यति ॥  
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम् ।  
पादध्वं च प्रपन्नोऽस्मि किञ्चो मृत्युः करिष्यति ॥  
पुरुषं पुष्करक्षेत्रबीजं पुण्यं जगत्पतिम् ।  
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किञ्चो मृत्युः करिष्यति ॥  
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।  
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किञ्चो मृत्युः करिष्यति ॥  
भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोगिनिमोनिजम् ।  
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किञ्चो मृत्युः करिष्यति ॥  
इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः ।  
अपयातस्ततो मृत्युविष्णुदूतैः प्रपीडितः ॥  
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता ।  
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥

(२३३/१-८)

मैं भगवान् दामोदरको शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं शंखचक्रधारी, व्यक्त, अव्यय, अधोक्षजकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं वराह, वामन, विष्णु, नृसिंह,

जनार्दन, माधवके शरणागत हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं पुराणपुरुष, पुष्करक्षेत्रके (मूलतत्त्व) बीजभूत, (मूल पुरुष) महापुण्य, जगत्पति, लोकनाथकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं सहस्र शिरवाले, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, महायोगेश्वरकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैंने प्राणियोंमें 'आत्मा' स्वरूपसे विद्यमान रहनेवाले, महात्मा, यज्ञयोगी, अयोनिज, विश्वरूप भगवान्की शरण ग्रहण कर ली है, अब मृत्यु मेरा क्या करेगी? इस प्रकार उन महात्मा मार्कण्डेयमुनिके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर विष्णु-दूतोंसे संव्रत मृत्यु भग्न जाती है। इस स्तोत्रका पाठकर खुदमान् श्रीमार्कण्डेयने मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली। पुण्डरीकाक्ष श्रीनृसिंह महाविष्णुके प्रसन्न होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

यह मृत्युवृत्कस्तोत्र महापुण्यशाली है, मृत्युका विनाश करनेवाला और मङ्गलदायक है। मार्कण्डेयमुनिका कल्याण करनेके लिये भगवान् विष्णुने स्वयं इस स्तोत्रको कहा था। जो मनुष्य नित्य तीनों कालोंमें पवित्रतासे भक्तिपूर्वक इस स्तुतिका नियमपूर्वक पाठ करता है, वह विष्णुभक्त अकालमृत्युसे द्रष्ट नहीं होता। जो योगी अपने हृदयकमलमें पुराणपुरुष, सनातन, अप्रमेय तथा सूर्यसे भी अत्यधिक तेजस्वी नारायणका ध्यान करता है, वह मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २३३)

## अच्युतस्तोत्र

सूतजीने कहा—हे शौनक ! अब मैं अच्युतस्तोत्रका वर्णन करूँगा जो प्राणियोंको सब कुछ प्रदान करनेवाला है । देवर्षि नारदके पृष्ठनेपर ब्रह्माजीने उस सर्वश्रेष्ठ स्तोत्रका जैसा वर्णन किया था, वैसा ही आप मुझसे सुनें ।

नारदजीने पूछा—हे ब्रह्मन् ! प्रतिदिन पूजाके समय जिस प्रकार अक्षय, अव्यय, वर प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी स्तुति मुझे करनी चाहिये, वह बतानेकी कृपा करें । वे सभी प्राणी धन्य हैं, उन सबका जन्म लेना सफल है, वे ही सब प्रकारका सुख प्राप्त करनेवाले हैं, इन्हीं सबजनोंका जीवन सार्थक है, जो भगवान् अच्युत विष्णुकी सदैव स्तुति करते हैं ।

ब्रह्माजीने कहा—हे मुने ! मैं भगवान् वासुदेवका वह स्तोत्र जो प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला है और जिस स्तोत्रके द्वारा पूजाकालमें सम्यक् स्तुति किये जानेपर भगवान् नारायण प्रसन्न होते हैं, उसे आपको सुनाता हूँ, सुनें । वह स्तोत्र इस प्रकार है—

ॐ नमो [ भगवते ] वासुदेवाय नमः सर्वाङ्गहारिणे ।

नमो विशुद्धदेहाय नमो ज्ञानस्वरूपिणे ॥

नमः सर्वसुरेशाय नमः श्रीकलधारिणे ।

नमश्चमामिहस्ताय नमः पङ्कजमालिने ॥

नमो विश्वप्रतिष्ठाय नमः पीताम्बराय च ।

नमो नृसिंहरूपाय वैकुण्ठाय नमो नमः ॥

नमः पङ्कजनाभाय नमः क्षीरोदशायिने ।

नमः सहस्रशीर्षाय नमो नागाङ्गशायिने ॥

नमः परशुहस्ताय नमः क्षत्रान्तकारिणे ।

नमः सत्त्वप्रतिज्ञाय ह्यजिताय नमो नमः ॥

नमस्त्रैलोक्यनाथाय नमश्चक्रधराय च ।

नमः शिवाय सूक्ष्माय पुराणाय नमो नमः ॥

नमो वामनरूपाय बलिराम्यापहारिणे ।

नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर ।

नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक ॥

नमस्ते परमादृत नमस्ते पुरुषोत्तम ।

नमस्ते विश्वकृदेव नमस्ते विश्वभावन ॥

नमस्ते स्ताद् विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण ।

नमस्ते प्रभुदैत्यश्च नमस्ते रावणान्तक ॥

नमस्ते कंसकेशिश्च नमस्ते कैटभार्दन ।

नमस्ते शतपथाश्च नमस्ते गरुडध्वज ॥

नमस्ते कालनेमिश्च नमस्ते गरुडासन ।

नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते बुधिनन्दन ॥

नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्तेऽदितिनन्दन ।

नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय ॥

जय गोपबन्धुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय ।

जय गोवर्धनाधार जय गोकुलवर्धन ॥

जय रावणवीरज जय चाणूरनाशन ।

जय बुध्निकुलोद्योत जय कालीयमर्दन ॥

जय सत्य जगत्साक्षिन् जय सर्वार्थसाधक ।

जय वेदान्तविद्वेष्ट जय सर्वद माधव ॥

जय सर्वाङ्गघ्नश्च जय सर्वग माधव ।

जय सूक्ष्म चिदानन्द जय चित्तनिरञ्जन ॥

जयस्तेऽस्तु विराटम्ब जय शान्त सनातन ।

जय नाथ जगत्पुत्र ( पुण्य ) जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥

त्वं गुरुस्त्वं हरे शिष्यस्त्वं दीक्षामञ्जयण्डलम् ।

त्वं न्यासमुद्रासमपास्त्वं च पुष्पादिसाधनम् ॥

त्वमाधारस्त्वं ह्यनन्तस्त्वं कूर्मस्त्वं धराभुजम् ।

धर्मज्ञानादपस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तयः ॥

त्वं प्रभो छलभूषणस्त्वं पुनः स खरान्तकः ।

त्वं ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥

त्वं नृसिंहः परानन्दो बराहस्त्वं धराधरः ।

त्वं सुपर्णतथा चक्रं त्वं गदा शङ्ख एव च ॥

त्वं श्रीः प्रभो त्वं पुष्टिस्त्वं त्वं माता देव शाश्वती ।

श्रीवत्सः कौस्तुभस्त्वं हि शार्ङ्गं त्वं च तथेधुभिः ॥

त्वं खड्गचर्मणा सार्धं त्वं दिव्यास्तास्तथा प्रभो ।

त्वं वेधास्त्वं विधाता च त्वं यमस्त्वं हुताशनः ॥

त्वं धनेशस्त्वपीशानस्त्वधिन्द्रस्त्वमपाम्पतिः ।

त्वं रक्षोऽधिपतिः साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकरः ॥

आदित्या यस्यो रुद्रा अश्विनी त्वं मरुद्गणाः ।

त्वं दैत्या दानवा नागास्त्वं यक्षा राक्षसाः खगाः ॥

गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः पितरस्त्वं महाभारः ।  
 भूतानि विषयस्त्वं हि त्वमप्यकेन्द्रिपाणि च ॥  
 मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञस्त्वं इदीश्वरः ।  
 त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः समित्कुशः ॥  
 त्वं वेदी त्वं होरी दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशनः ।  
 त्वं पत्नी त्वं पुरोडाशस्त्वं शाला खुक् च त्वं खुवः ॥  
 प्रावाणः सकलं त्वं हि सदस्यस्त्वं सदक्षिणः ।  
 त्वं शूर्पादिस्त्वं च ब्रह्मा मुसलोऽलूखले ध्रुवम् ॥  
 त्वं होता यजमानस्त्वं त्वं धार्यं यजुषाजकः ।  
 त्वमध्वर्युस्त्वमुद्राता त्वं यज्ञः पुरुषोत्तमः ॥  
 दिक्पातालमहि व्योम द्यौस्त्वं नक्षत्रकारकः ।  
 देवतिर्यङ्मनुष्येषु जगदेतच्चराचरम् ॥  
 यत्किञ्चिद् दृश्यते देव ब्रह्माण्डमखिलं जगत् ।  
 तव रूपमिदं सर्वं सृष्टयर्थं सम्प्रकाशितम् ॥  
 पाद्यघने परे ब्रह्म देवैरपि दुरासदम् ।  
 कस्यां जानाति विमलं योगमप्यमतीन्द्रियम् ॥  
 अक्षयं पुरुषं नित्यमव्यक्तमजमव्ययम् ।  
 प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ॥  
 सर्वज्ञं निर्गुणं शुद्धमानन्दमजरं परम् ।  
 बोधरूपं ध्रुवं शान्तं पूर्णमद्वैतमहम् ॥  
 अवतारेषु या मूर्तिर्विदूरे देव दृश्यते ।  
 परं भावमजानन्तस्त्वा भजन्ति दिवीकसः ॥  
 कथं त्वामीदृशं सूक्ष्मं शक्नोमि पुरुषोत्तम ।  
 आराधयितुमीशानं मनोऽगम्यमगोचरम् ॥  
 इह यन्मण्डले पाथ पूज्यते विधिबद्धं क्रमैः ।  
 पुष्पधूपादिभिर्यत्र तत्र सर्वा विभूतयः ॥  
 सङ्कर्षणादिभेदेन तव यत्पूजितं मया ।  
 क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं यत्कृतं न कृतं मया ॥  
 न शक्नोमि विभो सम्यक् कर्तुं पूजां यद्योदिताम् ।  
 यत्कृतं जपहोमादि असाध्यं पुरुषोत्तम ॥  
 विनिष्पादयितुं भक्त्या अतस्त्वां क्षमयाम्यहम् ।  
 दिवा रात्रौ च सन्ध्यायां सर्वावस्थासु चेष्टतः ॥  
 अचला तु होरी भक्तिस्तवाहृदिषुगले मम ।  
 शरीरं न (ज) तवा प्रीतिर्न च धर्मादिकेषु च ॥

यथा त्वयि जगन्नाथ प्रीतिरात्यन्तिकी मम ।  
 किं तेन न कृतं कर्म स्वर्गमोक्षादिसाधनम् ॥  
 यस्य विष्णो दृढा भक्तिः सर्वकामफलप्रदे ।  
 पूजां कर्तुं तथा स्तोत्रं कः शक्नोति तवाच्युत ॥  
 स्तुतं च पूजितं मेऽद्य तत् क्षमस्व नमोऽस्तु ते ।

(२३४।५—४९ १/२)

मैं उन भगवान् वामुदेवको नमस्कार करता हूँ, जो सभी प्राणोंको हरण करनेवाले हैं। मैं विशुद्ध देहवाले, ज्ञानस्वरूप, सभी देवताओंके स्वामी, श्रीवत्सधारी<sup>१</sup>, डाल और तलवार धारण करनेवाले, कमलकी माला धारण करनेवाले, जगत्में प्रतिष्ठित, पीताम्बरसे अलंकृत, नृसिंहरूप और वैकुण्ठमूर्ति श्रीविष्णुको बारम्बार नमन करता हूँ।

मेरा उन देवको प्रणाम है, जिनकी नाभिमें कमल है, जो क्षीरसागरमें स्नान करनेवाले हैं, जिनके हजारों सिर हैं, जो शेषशाय्यापर शयन कर रहे हैं, जिनके हाथमें परशु है, जो क्षत्रियोंके गर्वका अन्त करनेवाले हैं, जो सत्यप्रतिज्ञ हैं, जो अजित हैं, जो त्रिभुवनके एकमात्र स्वामी और चक्रधारी हैं, उन कल्पानामूर्ति, सूक्ष्मस्वरूप और पुराणपुरुषको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। दैत्यराज बलिके राज्यको दानमें ग्रहण करनेके लिये भगवान् वामन तथा पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये यज्ञघराहका अवतार ग्रहण करनेवाले गोविन्द श्रीहरीको मेरा बार-बार प्रणाम है।

हे परमानन्दस्वरूप! हे ज्ञान देनेवाले परम अक्षर ज्ञानस्वरूप! देव! परमाद्वैत! पुरुषोत्तम! विश्वकर्ता! विश्वभावन! विश्वनाथ! विश्वके कारणभूत! मधुदैत्यविनाशक! रावणहन्ता! कंस तथा केतकीको मारनेवाले! कैटभ दैत्यको मारनेवाले! आपकी नमस्कार है। हे पद्मलोचन! हे गरुडध्वज! कालनेमिके हन्ता! गरुडासन! देवकीपुत्र! वृष्णिनन्दन! रुक्मिणीकान्त! अदितिनन्दन! गोकुलवासी! हे गुरुकुलप्रिय आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।

हे गोपवपु श्रीकृष्ण, गोपीजनप्रिय, गोवर्धनधारी! हे गोकुलवर्धन! आपकी जय हो। हे दैत्यराज रावणके संहारक! चाणूरदैत्य-विनाशक, वृष्णिवंशके प्रकाशक! कालीयमर्दन! सत्यस्वरूप! संसारके साक्षी! सर्वार्थसाधक।



हे वेदान्तविदोंके वेद्य! सब कुछ देनेवाले! माधव! सबके आश्रय! अव्यक्त, सर्वत्र व्याप्त! लक्ष्मीकान्त (माधव), सूक्ष्म, विद्वानन्द! चित्त निरञ्जन, निरालम्ब! हे शान्त! हे सनातन! हे नाथ! हे जगत्पूज्य भगवान् विष्णु! आपकी जय हो, जय हो, जय हो! आपको मेरा नमस्कार है।

हे हरे! आप ही गुरु हैं, आप ही शिष्य हैं। आप ही दीक्षामें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र तथा मण्डल हैं। आप ही न्यास, मुद्रा और दीक्षा हैं। आप ही पूजामें प्रयुक्त होनेवाले पुष्पादिक साधन हैं। आप ही आधारशक्ति, अनन्त, कूर्म, पृथिवी, पद्म, धर्म, ज्ञान, वेदी और पूजामण्डलकी शक्तिपोंके स्वरूप हैं।

हे प्रभो! आप ही छलका भेदन करनेवाले हैं। आप ही खर-दूषणका संहार करनेवाले राम हैं। आप ही ब्रह्मर्षि, देव, विष्णु, सत्यपराक्रम, नृसिंह, परानन्द, धराको धारण करनेवाले महावराह हैं।

हे प्रभो! आप ही सुपर्ण, शंख, चक्र, गदा हैं। हे देव! आप ही लक्ष्मी, पुष्टि, शाश्वती माला, ब्रीहत्स, कौस्तुभ, शार्ङ्ग<sup>१</sup> तथा तूणीर (तरकस)-रूप हैं।

हे प्रभो! ढाल और छद्मसे युक्त आप इन्द्रादिक दिक्पाल देवता हैं। आप ही विधाता और आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही यम, अग्नि, कुबेर, ईशान, इन्द्र, चरुण, राक्षसोंके स्वामी, साध्य, वायु, चन्द्र, सूर्य, वसु, रुद्रगण, अधिनीकुमार तथा मरुदण हैं। आप ही दैत्य, दानव, नाग, यक्ष, राक्षस, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, पितृजन तथा देवगण हैं। आप ही पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत, शब्दादि विषयस्वरूप और अव्यक्त इन्द्रिय हैं। आप ही मन, बुद्धि एवं अहंकारतत्त्व हैं। आप ही क्षेत्रज्ञ तथा हृदयेश्वर हैं। आपकी जय हो, आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

हे हरे! आप ही यज्ञ, वषट्कार, अङ्गिकार (प्रणव), समिधा और कुश हैं। आप ही यज्ञवेदी, यज्ञीय दीक्षा, यज्ञपूष, अग्नि, यजमानपत्नी, पुरोडाश, यज्ञशाला, सुक्, सुव तथा सोमरस निकालनेके लिये प्रयुक्त पाषाणविशेष हैं। आप सब कुछ हैं। आप ही यज्ञकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणायुक्त सदस्य और आप ही यज्ञके सम्पादनके लिये उपयोगी शूर्पादिक उपकरण, ब्रह्मा (विशेष श्रुतिवक्), मूसल तथा ओखली हैं। आप ही निश्चितरूपमें होता,

यजमान, धान्य, पशु, याजक, अध्वर्यु, उद्गाता, यज्ञ और आप ही पुरुषोत्तम यज्ञभगवान् हैं। आपको मेरा नमस्कार है।

हे देव! आप ही दिश, पाताल, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग एवं नक्षत्रोंके जन्मदाता हैं। आप ही देव, तिर्यक् तथा मनुष्य आदि हैं। यह चराचर जगत् भी आप ही हैं। यह अखिल ब्रह्माण्ड और जगत् आपका ही स्वरूप है। इन सबको सृष्टिके लिये आपने स्वतः प्रकट किया है। हे परमब्रह्म! यह आपका स्वरूप उन देवताओंके भी ज्ञानसे परे है। इस संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो निष्कलुष, योगगम्य, इन्द्रियातीत, अक्षय, पुराणपुरुष, नित्य, अव्यक्त, अजन्मा, अव्यय, प्रलय और उत्पत्तिसे रहित, सर्वव्यापक, ईश्वर, सर्वज्ञ, निर्गुण, शुद्ध, परमानन्द, अजर, बोधरूप अटल, शान्त, पूर्ण, अद्वैत तथा अक्षर ब्रह्म आपको जान सकता है। हे देव! अवतारोंमें आपके जिस स्वरूपका दर्शन होता है, उसके परम भावको बिना जाने हुए ही देवता लोग आपका भजन करते हैं। ये भी आपके मूलस्वरूपके दर्शनसे खिन्न रह जाते हैं। हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आपका मनसे भी अगम्य जो अगोचर सूक्ष्मस्वरूप है, उसकी आराधना करनेमें क्या मैं समर्थ हो सकता हूँ?

हे नाथ! यहाँपर इस पूजामण्डलमें यथाविधि पुष्प-धूप आदिके द्वारा संस्कारण आदि नामधेयोंसे आपकी ही मैंने पूजा की है, ये सभी विभूतियाँ आपकी ही हैं। मैंने आपकी इस पूजामें जो कुछ किया है और जो कुछ नहीं किया है, वह सब आप क्षमा करें। हे विभो! यद्योक्त रूपसे मैं आपकी सम्यक् पूजा नहीं कर सकता। जो मैंने जप-होमादि किया है, भक्तिपूर्वक उस कार्यका निष्पादन करना मेरे लिये असाध्य है। इसलिये मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। हे प्रभो! दिन, रात और संध्यामें तथा सभी अवस्थाओंमें मेरी चेष्टा-निष्ठा आपकी सेवाके अनुरूप रहे। हे हरे! आपके चरणयुगलमें मेरी एकनिष्ठ अचल भक्ति हो। हे नाथ! मेरी वैसी प्रीति अपने शरीरसे है, वैसी धर्मादि कार्योंमें नहीं। इसलिये हे जगन्नाथ! आप ऐसी कृपा करें कि आपमें मेरी आत्यन्तिकी प्रीति हो जाय। सभी फल देनेवाले भगवान् विष्णुकी जिसने दृढ़ भक्ति कर ली, उसने स्वर्ग और मोक्ष आदिके साधन किन कर्मोंकी नहीं किया है? हे अच्युत! आपके पूजन और स्तुति करनेमें कौन

१. 'शार्ङ्ग' नामका धनुष धारण करनेवाला।

समर्थ है? आज मैंने यथासामर्थ्य आपकी जो पूजा और स्तुति की है, उसकी अपूर्णताके लिये मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरा आपको प्रणाम है।

हे मुने! मैंने भली प्रकृतिसे आपको यह चक्रधर (अच्युत)-स्तोत्र सुना दिया है। यदि आप परम वैष्णव पदकी इच्छा करते हैं तो परत्पर विष्णुकी भक्तिपूर्वक यह स्तुति करें।

पूजाके समय जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा जगद्गुरु भगवान् विष्णुकी स्तुति करता है, वह शीघ्र ही संसारके बन्धनको काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हे मुने! अन्य जो कोई भी पवित्र होकर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन तीनों संध्योंमें श्रीविष्णुदेवका इस स्तोत्रके अनुसार भजन करता है, वह अपने समस्त अभीष्टोंकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे पुत्र चाहनेवाला व्यक्ति पुत्र प्राप्त करता है, सांसारिक बन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवाला उससे मुक्त हो जाता है। इस स्तोत्रके पाठसे रोगी रोगसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है, निर्धन व्यक्ति धनवान् बन जाता है और विद्यायी विद्या, भाग्य तथा कीर्ति प्राप्त करता है। जातिस्मरण (पूर्वजन्मके वृत्तान्तकी स्मृति) तथा और जो कुछ चित्तमें इच्छा रखता है, भक्त उसे प्राप्त कर लेता है।

वह प्राणी धन्य है, सब कुछ जाननेवाला है, बुद्धिमान् है, साधु है, सभी सात्वतोंका कर्ता है, सत्पत्नी है, पवित्र है और दाता है, जो भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करता है। इस संसारमें वे प्राणी सम्भाषण करने योग्य नहीं हैं और समस्त धर्मोंसे बहिष्कृत हैं, जिनका कोई भी सात्त्विक भगवान् हरिके उद्देश्यसे सम्पर्क नहीं होता। वह व्यक्ति दुष्टका है, उसका मन और वचन शुद्ध नहीं है, जिसकी सब कुछ प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुमें अचल भक्ति नहीं है।

मनुष्य सब सुख प्रदान करनेवाले भगवान् हरिकी विधिवत् पूजा कर जो कुछ भी कामना करता है उसे प्राप्त कर लेता है। श्रद्धापूर्वक आराधना करनेपर पुरुषोत्तम भगवान् सब कुछ प्रदान करते हैं। समस्त मुनि जिन देवका चिन्तन करते हैं, वे ही शुद्ध ब्रह्म परमब्रह्म हैं। जो सभीके हृदयमें विराजमान रहते हैं, जो सब कुछ जानते हैं और जो सभी कृत्योंके साक्षी हैं, जो भय-मरण-विहीन हैं, नित्य-आनन्दस्वरूप हैं, ऐसे अज, अमृत, ईश वासुदेवकी मैं नमस्कार करता हूँ। मैं समस्त संसारके स्वामी, सुप्रसन्न,

शाश्वत, अति विमल, विशुद्ध, निर्गुण, आत्मस्वरूप और समस्त सुखोंके मूल भगवान् नारायणकी भावपुण्यसे पूजा करता हूँ। मेरे हृदयकमलमें सर्वसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहें—

सकलमुनिभिराद्यद्विन्द्यते यो हि शुद्धो  
निखिलहृदि निविष्टो वेति यः सर्वसाक्षी।  
तमजममृतमीशं वासुदेवं नतोऽस्मि  
भदमराविहीनं नित्यमानन्दरूपम्॥  
निखिलभुवननाथं ज्ञाक्षतं सुप्रसन्नं  
त्वतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुण्यैः।  
सुखपुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं  
विशतु हृदयपथे सर्वसाक्षी विदात्मा॥

(२३४।६०-६१)

इस प्रकार मैंने आदि-अन्तसे रहित, परत्पर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुके महा प्रभावका वर्णन किया। इसीलिये मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह भलीभाँति परमेश्वरका चिन्तन करे। इस संसारमें कौन ऐसा योगी है जो उन बोधगम्य पुरुषपुरुष, सूर्यके समान तेजस्वी, विमल, विशुद्धात्मा, वेद, अद्वितीय विष्णुका चिन्तन करके उनमें लटककर नहीं हो जाता? जो मनुष्य इस स्तुतिके सदैव पाठ करता है, वह श्रीविष्णुके सम्मान ही प्रशान्तचित्त तथा पापसे रहित हो जाता है। जो व्यक्ति अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थको कामना करता है अथवा सम्पूर्ण सौख्य चाहता है, वह सब कुछ छोड़कर सर्वश्रेष्ठ पुरुषपुरुष, वरण करने योग्य विष्णुकी शरणमें जाता है, इसीलिये उसका प्रभाव सर्वत्र फैल जाता है और वह विष्णुलोकको चला जाता है।

जो प्राणी विष्णु, सबके स्वामी, विश्वको धारण करनेवाले, विशुद्धात्मा, समस्त संसारके विनाशके हेतु, विमल, भगवान् वासुदेवकी शरणमें अनासक्त-भावसे जाता है, वह मोक्षपदको प्राप्त करता है—

विष्णुं प्रभुं विश्वधरं विशुद्ध-  
मलोक्षसंसारविनाशहेतुम् ।  
यो वासुदेवं विमलं प्रपन्नः  
स मोक्षमाप्नोति विमुक्तसङ्गः॥

(२३४।६६)

(अध्याय २३४)

## ब्रह्मज्ञाननिरूपण तथा षडङ्गयोग

सूतजीने कहा—[हे शौनक!] अब मैं वेदान्त और सांख्यसिद्धान्तके अनुसार ब्रह्मज्ञानका वर्णन करता हूँ।

‘मैं ही ज्योतिर्मय परब्रह्मस्वरूप विष्णु हूँ’—ऐसा चिन्तन करते हुए ‘सूर्य, हृदयाकाश और वह्निमें एक ही ज्योति तीन रूपमें स्थित है’, ऐसा निश्चय करना चाहिये। जैसे गायोंके शरीरमें घृत रहनेपर भी घृत गायको बल प्रदान नहीं करता, परंतु उसी घृतको निकालकर विधिके अनुसार गायोंके निमित्त प्रयोग करनेपर वह घृत महाबलप्रद हो जाता है, वैसे ही विष्णु सभी जीवोंके शरीरमें विद्यमान रहनेपर भी बिना आराधनाके कल्याणकारी नहीं हो सकते। जो योगरूप वृक्षपर चढ़नेके इच्छुक हैं, उनके लिये कर्मज्ञान आवश्यक है, किंतु जो योगरूपी वृक्षपर आरुढ़ हो चुके हैं, उनके लिये त्याग (वैराग्य) एवं ज्ञान ही महत्वपूर्ण हो जाता है। जो शब्दादि विषयोंको जाननेकी इच्छा करता है, उसमें राग-द्वेषादि प्रादुर्भूत हो जाते हैं, इसी कारण मनुष्य लोभ-मोह तथा क्रोधके प्रतीभूत होकर पापबन्धन करता है।

जिसके हाथ, उपस्थ<sup>१</sup>, उदर और वाक्—ये चार सुसंयत रहते हैं, वही बुद्धिमानोंके द्वारा विप्र कहा जाता है। जो दूसरेके द्रव्यको ग्रहण नहीं करते, हिंसा नहीं करते, जुएमें अनुरक्त नहीं रहते, वास्तवमें उन्हींके दोनों हाथ सुसंयत रहते हैं। जो दूसरेकी स्त्रीके प्रति कामका भाव नहीं रखता, उसीकी उपस्थेन्द्रिय सुसंयत है। जो लोभरहित होकर परिमित भोजन करते हैं, उन्हींके उदरको संयत कहा जाता है। जो हित-परिमित और सत्य वाक् बोलता है, उसीकी वाणी संयत कही जाती है।

जिसके हाथ आदि संयत रहते हैं, उसके लिये तपस्या या यज्ञादिका कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात् तपस्या, यज्ञ आदि तभी सफल होते हैं, जब हाथ, उपस्थ, उदर एवं वाक् संयत हों।

मन, बुद्धि और इन्द्रियोंका आत्मनिक ऐक्य अर्थात् सदा ध्येयतत्त्वमें लगा रहना, ध्यान कहलाता है। वह ध्यान दो प्रकारका होता है—सर्वोच्च<sup>२</sup> तथा निर्बीज<sup>३</sup>।

चिन्तनकी मूल आधार—शक्ति ‘बुद्धि’ भीहोंके मध्यमें

रहती है। इसे यदि जीव विषयोंमें लगाये रहता है तो यही जाग्रत्-अवस्था होती है। जब जीवकी इन्द्रियाँ शान्त हों, केवल मन चञ्चल हो और इसी कारण बाहरी एवं भीतरी विषयोंको केवल स्वप्नमें जीव देखता रहे तो यही स्वप्नावस्था है। जब मन हृदयमें स्थित हो तथा तमोगुणसे मोहित होनेके कारण कुछ भी स्मरण न कर सके, तब सुषुप्ति-अवस्था समझनी चाहिये।

जो जितेन्द्रिय होता है उसको जाग्रत्-अवस्थामें तन्द्रा, मोह और भ्रम नहीं उत्पन्न होते। वह शब्दार्थादि विषयोंमें आसक्त नहीं होता।

ज्ञानी इन्द्रियों और मनको विषयोंमें खींचकर बुद्धिके द्वारा अहंकारको एवं प्रकृतिके द्वारा बुद्धिको संयत कर और चित्-शक्तिके द्वारा प्रकृतिको भी संयत कर केवल आत्मरूपमें अवस्थित रहता है। इस स्थितिमें ज्ञानी मनसे स्वप्नकाष्ठ आत्मा (परमात्मा) को देख सकता है। आत्मा स्वप्नकाष्ठ है, ज्ञेय है, ज्ञाता है और ज्ञानाधिकरण है। विदूष अमृत शुद्ध विशिष्य सर्वव्यापी शिवप्रद आत्माको जानकर मनुष्य तुरीय<sup>४</sup>-अवस्थामें आ जाता है, इसमें संशय नहीं है।

जीवका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। यह मुक्ति जीवको तभी प्राप्त होती है, जब वह पुर्यष्टक एवं त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका परित्याग कर देता है। यह पुर्यष्टक एक ‘कमल’ के रूपमें माना गया है। संसारवस्थामें जीव इसी कमलरूपी पुर्यष्टक की कर्णिकामें स्थित रहता है। तीनों गुणों (सत्त्व, रज एवं तम)—की साम्यावस्थारूप प्रकृति ही पुर्यष्टकरूपी कमलकी कर्णिका है। इस पुर्यष्टकरूप कमलके आठ पत्र (दल) हैं। ये हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्व, रज तथा तम। इस प्रतीकात्मक वर्णनका निष्कर्ष यह है कि जीवको मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रकृतिसे स्वयंको अलग करना अनिवार्य है इसके हेतु शब्द आदि विषयोंके प्रति अनासक्त होना होगा।

प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान—ये छः योगके साधन हैं।

इन्द्रियसंयमसे पापक्षय और पापक्षयसे देवप्रीति सुलभ होती है। देवप्रीति मुक्ति एवं मुक्तिसाधनकी ओर उन्मुख

१-पुत्रेन्द्रिय। २-अविद्या आदि क्लेशों की बीज है। इनका अनुभव होते रहनेपर सर्वोच्च ध्यान कहा जाता है। ३-कौनसे रूप जीवका अनुभव न हो तो निर्बीज ध्यान कहा जाता है। ४-पारम शान्त, शिवस्वरूप अद्वैतावस्था।

होनेके लिये भी प्रथम एवं अनिवार्य साधन है। योगका मुख्यतम साधन है प्राणायाम। यह दो प्रकारका है—गर्भ और अगर्भ। जप एवं ध्यानयुक्त जो प्राणायाम है, वही गर्भ प्राणायाम है और इससे अतिरिक्त होनेपर अगर्भ प्राणायाम कहा जाता है। जो प्राणायाम छतीस मात्रासे युक्त रहता है वही श्रेष्ठ है, जो बीबीस मात्रासे युक्त रहता है वह मध्यम है और जो प्राणायाम बारह<sup>१</sup> मात्रासे युक्त रहता है वह निम्न है। सदा ॐकारका जप कर प्राणायाम करे। ॐकार परब्रह्मका वाचक है। इस ब्रह्मवाचक ॐकारका परिज्ञान होनेपर वाच्य ब्रह्म प्रसन्न हो जाता है।

'ॐ नमो विष्णवे'—इस षडक्ष और द्वादशक्ष गायत्रीका जप करना चाहिये। सभी इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति सांसारिक विषयोंकी ओर रहती है। मनके द्वारा इन प्रवृत्तियोंकी निवृत्तिको ही प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियोंको अपने विषयोंसे समाहरण कर मनको बुद्धिके साथ प्रत्याहारमें स्थित रखते हुए बारह बार प्राणायाम करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयतक ब्रह्ममें मनको निविष्ट करना ही द्वादशधारणात्मक ध्यान है—ऐसा ब्रह्मने कहा है। नियतरूपसे ब्रह्माकारवृत्तिमें जो संतुष्टिका अनुभव होता है, उसीको समाधि कहा जाता है। ध्यान करते-करते यदि मन चञ्चल नहीं होता है, सदा ध्यानमें ही प्रवृत्ति रहती है अर्थात् अभीष्ट प्राप्ति तक ध्यानमें निवृत्ति नहीं होती तो इसीका नाम धारणा है। मन यदि ध्येयतत्त्वमें ही आसक्त रहता है अर्थात् ध्येयतत्त्वका ही चिन्तन सदा होत रहता है, अन्य किसी भी पदार्थका ध्यान नहीं होता तो इसीको ध्यान कहा जाता है।

ध्यानपरायण मुनिगण, ध्येय पदार्थका चिन्तन करते-करते जब मन उसी ध्येयमें निश्चल हो जाता है, तो इसे ही परम ध्यान कहते हैं। ध्यान करते-करते जब सर्वत्र ध्येयपदार्थ ही दिखायी देने लगे, ध्याता भी ध्येयमय प्रतीत हो और किसी प्रकारका द्वैतज्ञान नहीं रहे तो इस अवस्थाको समाधि कहा जाता है। जिसका मन संकल्परहित होकर इन्द्रियोंके विषयचिन्तनसे विरत हो जाता है तथा ब्रह्ममें लीन हो जाता है, वही समाधिमें स्थित कहा जाता है। जिस योगीका मन आत्मामें अवस्थित परमात्माका ध्यान करते-करते तन्मय हो जाता है, वह योगी समाधिस्य कहा

जाता है। चित्तकी अस्थिरता, भ्रान्ति, दौर्मेनस्य और प्रमाद—ये सभी योगियोंके दोष कहे गये हैं, ये योगमें विघ्नकारक हैं।

मनके स्थिर होनेके लिये प्रथम ध्येयके स्थूलस्वरूपका चिन्तन करे, इसके बाद मनके निश्चल होनेपर तेजःस्वरूप परमात्माके अनुरक्त होकर स्थिर हो जाना चाहिये। जगत्में परमात्माके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, वह परमात्मा ही विश्वरूप है—इस प्रकारका निश्चय कर परमात्मासे अतिरिक्त सभी पदार्थोंको असत् मानकर उनका परित्याग कर देना चाहिये। हृदय-पद्ममें स्थित ॐकाररूपी व्यापक परमब्रह्मका ध्यान करना चाहिये। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञसे रहित तीन मात्रासे युक्त ॐकारका जप करना चाहिये। प्रथम अपने हृदयमें ॐकारस्वरूप प्रधान पुरुषका ध्यान करे। इसके बाद उसके ऊपर कृष्णवर्ण, रक्तवर्ण तथा श्वेतवर्णवाले तमोगुण, रजोगुण और सात्वगुणके तीन मण्डलोंका ध्यान कर उनमें जीवात्मा पुरुषका ध्यान करे। मण्डलके ऊपर ऐश्वर्य आदि आठ गुणोंसे युक्त अष्टदल कमलकी भावना की जाती है।

इस कमलकी कर्णिका ज्ञान है, केसर विज्ञान है, नाल वैराग्य है एवं इसका क्रन्द वीष्णव धर्म है। मुक्तिसाधक व्यक्ति इस हृत्पद्मकी कर्णिकामें स्थित प्रणवरूप ब्रह्मका ध्यान, चेतन निश्चल तथा व्यापक रूपमें करे। इस ॐकारस्वरूप ब्रह्मका ध्यान करते-करते यदि कोई प्राणोंका परित्याग कर देता है तो वह ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करता है। योगी देहगत पदार्थके मध्यमें हरिको बैठकर भक्तिभावसे उनका ध्यान करे। कुछ लोग ध्यान-रूपी चक्षुसे—आत्मासे आत्मा (परमात्मा)—को देखते हैं। सांख्यदर्शन-वेतालरो प्रकृति-पुरुषके विवेकसे तथा योगवेत्ता योगके प्रभावसे आत्मदर्शन करते हैं। आत्मा ज्ञानरूप है। वास्तवमें ज्ञानका ही माहात्म्य है। ज्ञान ही ब्रह्मका प्रकाशक है और ज्ञान ही भवबन्धनको काटनेवाला है। इसीलिये ध्यान-साधनमें एकचित्ता ही प्रधान योग है। यही योग योगियोंको मुक्ति प्रदान करता है, इसमें संशय नहीं है। यह एकचित्ताका योग आत्मदर्शनमें ही पर्यवसित है।

जो इन्द्रियादिको जीत कर ज्ञानसे प्रदीप्त हो जाता है, परमात्मामें अवस्थित इसी योगीको मुक्त कहा जाता है। आसन, स्थान आदिकी विधियाँ योगकी साधक नहीं होतीं,



प्रत्युत ये तो योगसिद्धिमें विलम्ब करनेवाली हैं। ये सब विधियाँ साधनके विस्तार मात्र हैं। शिशुपालने स्मरणाभ्यासके प्रभावसे सिद्धि-लाभ किया था। योगाभ्यास करनेवाले योगीजन आत्मासे आत्माको देखते हैं। योगीजन सभी प्राणिजोंमें करुणाभाव, विषयोंके प्रति विद्वेष एवं शिश्न और उदरकी परायणताका परित्याग करते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं। जब योगी मनुष्य इन्द्रियोंसे इन्द्रियोंके विषयका अनुभव नहीं करता, तब काष्ठकी भाँति सुख, दुःखके अनुभवसे अतीत होकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

मेधावी साधक सभी प्रकारके वर्णभेद, सभी प्रकारके ऐश्वर्यभेद एवं सभी अशुभ तथा पापोंको ध्यानाग्निके द्वारा

भस्मसात् कर परमगतिको प्राप्त करता है। जैसे काष्ठसे काष्ठमें परिवर्ण करनेसे अग्निका दर्शन होता है, वैसे ही ध्यानसे परमात्मस्वरूप हरिकृष्ण दर्शन किया जा सकता है। जब ब्रह्म और परमात्मस्वरूप हरिकृष्ण दर्शन किया जाता है, जब ब्रह्म और आत्माके एकत्वका ज्ञान होता है तभी योगका उत्कृष्ट ज्ञान चाहिये। किसी भी बाह्य उपायसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती, मुक्तिकी प्राप्ति आभ्यन्तरिक यम-नियम आदि उपायोंके द्वारा ही होती है। सांख्यज्ञान, योगाभ्यास और वेदान्तादिके कथनसे जो आत्माका प्रत्यक्ष होता है, उसे मुक्ति कहा जाता है। मुक्ति होनेपर अनात्ममय आत्माका और असत्-पदार्थमें सत्-तत्त्वका दर्शन होता है। (अध्याय २३५)

## आत्मज्ञाननिरूपण

श्रीभगवान् बोले—हे नारद! अब मैं आत्मज्ञानका तात्त्विक वर्णन करूँगा, सुनिये।

अद्वैत तत्त्व ही सांख्य है और उसमें एकचित्तता ही योग है। जो अद्वैत तत्त्व-योगसे सम्पन्न हैं, वे भवबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अद्वैत तत्त्वका ज्ञान होनेपर अतीत, वर्तमान और भविष्यके सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। ज्ञानी व्यक्ति सदैवचाररूपी कुल्हाड़ीके द्वारा संसाररूपी वृक्षको काटकर ज्ञान-वैराग्यरूपी तीर्थके द्वारा वैष्णव पद प्राप्त करता है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—यह तीन प्रकारकी अवस्था ही माया है जो संसारका मूल है। यह माया जबतक रहती है, तबतक संसार ही मत्पर्यमें अवगत होता है। वास्तवमें साक्षर अद्वैत तत्त्वमें ही सब कुछ प्रविष्ट है। अद्वैत तत्त्व ही परब्रह्म है। यह परब्रह्म नाम-रूप तथा क्रियासे रहित है। यह ब्रह्म ही इस जगत्की सृष्टि कर स्वयं उसीमें प्रविष्ट हो जाता है।

‘मैं मायावीत चित्पुरुषको जानता हूँ और मैं भी आत्मस्वरूप हूँ।’ इस प्रकारका ज्ञान ही मुक्तिका मार्ग है। मोक्ष-लाभके लिये इससे अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है।<sup>१</sup> श्रवण, मनन और ध्यान—ये सभी ज्ञानके साधन हैं। यज्ञ, दान, तपस्या, वेदाध्ययन और तीर्थसेवामात्रसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है। मुक्ति किसी मतसे दान-ध्यानसे तथा किसीके मतसे पूजादि कर्मोंसे होती है। ‘कर्म

करो’ और ‘कर्मका त्याग करो’—ये दोनों वचन वेदमें मिलते हैं। निष्कामभावसे यज्ञादि कर्म मुक्तिके लिये होते हैं, क्योंकि निष्कामभावसे अनुष्ठित यज्ञादि अन्तःकरणकी शुद्धिके साधन हैं। ज्ञान प्राप्त होनेपर एक ही जन्ममें मुक्ति प्राप्त हो जाती है। द्वैत (भेद)-भाव रखनेपर तो मुक्ति सम्भव ही नहीं है। कुयोगी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। किसी कारण योगभट्ट होनेपर योगियोंके कुलमें उत्पत्ति हो सकती है। ऐसी स्थितिमें मुक्ति सम्भव है।

कर्मोंसे भवबन्धन और ज्ञान होनेसे जीवकी संसारसे मुक्ति हो जाती है, इसलिये आत्मज्ञानका आश्रय करना चाहिये। जो आत्मज्ञानसे भिन्न ज्ञान हैं, उनको भी अज्ञान कहा जाता है। जब हृदयमें स्थित सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब जीव जीवनकालमें ही अमरत्वकी प्राप्ति कर लेता है, इसमें संशय नहीं है—

यदा सर्वं विमुच्यते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।

तदाऽमृतत्वमाप्नोति जीवश्चेव न संशयः॥

(२३६।१२)

व्यापक होनेसे ब्रह्म कैसे जाता है, कौन जाता है और कहाँ जाता है? ऐसे प्रश्नोंके लिये कोई अवसर ही नहीं है। अनन्त होनेके कारण उसका कोई देश नहीं है; अतः किसी भी रूपमें उसकी गति नहीं हो सकती। परब्रह्म अद्वय है, अतः उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। वह

ज्ञानस्वरूप है, अतः उसमें जड़ता कैसे हो सकती है? वस्तुतः ब्रह्म आकाशके समान है, इसलिये उसकी गति, अगति और स्थिति आदिका विचार कैसे हो सकता है? जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था मायाके द्वारा कल्पित हैं अर्थात् मिथ्या है।

वस्तुमात्रका सार ब्रह्म ही है। तेजोरूप ब्रह्मको एक अखण्ड परम पुण्यरूप समझना चाहिये। जैसे अपनी आत्मा सबको प्रिय है, वैसे ही ब्रह्म सबको प्रिय है क्योंकि आत्मा ही ब्रह्म है। हे महामुने! सभी तत्त्वज्ञानको सर्वोच्च मानते हैं, इसलिये चित्तका आलम्बन बोधस्वरूप आत्मा ही है। यह आत्मविज्ञान है। यह पूर्ण है। जाबत है। जागते, सोते तथा सुषुप्तावस्थामें प्राप्त होनेवाला सुख पूर्ण सुखरूप ब्रह्मका ही एक क्षुद्र अंश समझना चाहिये। जैसे एक मृन्मय वस्तुका (ज्ञान होनेपर) समस्त मृन्मय पदार्थ ज्ञान लिया जाता है,

सर्वत्र व्याप्त राक्षस तत्त्व ज्ञानस्वरूप ब्रह्म यदि सदा सर्वत्र सभीके हृदयमें विद्यमान नहीं है तो विस्मृत अर्थका स्मरण नहीं होना चाहिये पर होता है। ऐसी स्थितिमें यह स्मरण किसको होता है, निश्चित ही चेतन तत्त्वको ही होता है। इसे ही आत्मा, ब्रह्म, परमात्मा आदिके रूपमें स्वीकार किया गया है। चेतनतत्त्वकी सत्ता—अनु, अस्तरौ अथवा परम व्यापक तत्त्व—किसी भी रूपमें स्वीकार किया जाय, पर स्वीकार करना ही है; अन्यथा प्राणीको सुख-दुःखका अनुभव नहीं हो सकेगा। चेतनतत्त्व प्राणिमात्रके हृदयमें साक्षीरूपसे सदा विद्यमान है, इसीलिये यह उसकी प्रत्येक चेष्टाको जानता रहता है और इस जानकारीका फल यह है कि प्राणीके शुभाशुभ कर्मका फल यथासमय मिलता रहता है। यह ब्रह्मतत्त्व सत्य, ज्ञान एवं आनन्दरूप है तथा अनन्त है। सत्य ज्ञानसे पृथक् नहीं होता, अनन्ततासे पृथक् आनन्द नहीं है। वास्तवमें प्रत्येक जीव सत्य, आनन्द एवं ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही है। स्वर्गको ब्रह्मरूपमें जानकर जीव अपने वास्तविक स्वरूप सर्वज्ञताको प्राप्त कर लेता है। जैसे एक हेममणि (पारस)—से अनन्त लौहराशि हेममय हो जाती है, उसी प्रकार ईश (ब्रह्म)—का ज्ञान होनेपर ज्ञानीके द्वारा सकल विश्व ज्ञान लिया जाता है, जैसे अन्धकारदोषके कारण रस्सी अपने सत्यस्वरूपमें नहीं दिखायी देती, वैसे ही व्यामोहसे ग्रस्त जीवको आत्माका दर्शन नहीं होता। जिस

प्रकार प्रत्यक्ष होनेपर भी द्रव्य दृष्टि-दोषके कारण सही नहीं दिखायी देता है, अर्थात् वह कुरूप प्रतीत होता है। उसी प्रकार आकाशको सरूपताके कारण वह आत्मतत्त्व असत्य एवं पृथक् प्रतीत होता है। जैसे रज्जुमें सर्पका और सौषर्मे रजतका आभास होता है और मृगमरीचिकामें जलका आभास होता है, उसी प्रकार विष्णुमें जगत्की प्रतीति होती है।

जैसे कोई द्विज ग्रहणित होनेके कारण 'मैं शुद्र हूँ' ऐसा मानता है और ग्रह-बाधा नष्ट होनेके पश्चात् वही व्यक्ति पुनः ध्यान करता हुआ अपनेको ब्राह्मण मानता है, वैसे ही मायासे आच्छन्न जीव यह 'मैं ही हूँ' ऐसा स्वीकार करता है। मायारूपी अज्ञानके समाप्त हो जानेपर पुनः वह अपने स्वरूपमें 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा मान लेता है। जैसे ग्रहके नाश हो जानेपर उसको माननेवाला प्राणी उसे क्रूर ग्रहके रूपमें देखता है, वैसे ही अपने स्वरूपका दर्शन होनेपर मायाके अभावमें उसकी मायिक पदार्थोंसे विरक्ति हो जाती है।

जैसे संसार-चक्र अनादि है, वैसे ही उसके मूल भगवान्की माया भी अनादि है। इस मायाके सत् और असत् दो रूप हैं। व्यवहार-कालमें यह सत् और परमार्थतः असत् है। मायाके कारण ही अज परमात्मा भी अपनी मायाके अवेशसे जगत्के रूपमें परिणत होता है। मायाकी इच्छासे ही पति-पत्नी आदिके रूपमें यह सम्पूर्ण जगत् कल्पित है। अट्टाईस तत्त्वोंका यह त्रिगुणात्मक जगत् और धौरसी लाख योनियोंके नर और नारियोंकी आकृति मायाके द्वारा ही रचित है। त्रिगुणात्मक अट्टाईस तत्त्वोंके रूपमें मायाके द्वारा ही खण्डशः विश्वकी सृष्टि होती है। वस्तुतः नाम, रूप और क्रिया आदि जगत्की सत्ता मध्यमें ही है अदि और अन्तमें नहीं। इसलिये व्यवहार-कालमें सत्य प्रतीत होनेपर भी परमार्थतः यह मिथ्या है। जिस प्रकार स्वप्नावस्थामें रथ आदिकी सत्ता प्रतीत होती है, किंतु वहाँ उनका अस्तित्व रहता नहीं है। उसी प्रकार जाग्रत् अवस्थामें भी ये समृद्धिपूर्ण उस प्राणीके पास नहीं रहतीं। परमार्थतः जैसे जाग्रत्-अवस्था और स्वप्न-अवस्थाके पदार्थोंका भावाभाव प्रतीत होता है, वैसे ही मायिक पदार्थ भी व्यवहार और परमार्थमें सत्-असत् हैं। स्वप्न तथा जागृतिकी स्थितिमें ऐसा ही इस परम ब्रह्मका अस्तित्व है, किंतु सुषुप्तावस्थामें प्राणीका चित्त निश्चल होता है। सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियोंके साथ मन उस आत्माके साथ

एकाकारकी स्थितिमें रहता है। अतः उस समय सत्-असत्का कुछ भी ज्ञान प्राणीको नहीं होता। इसी निष्पेक्षाको अवल और अद्वैत पद कहते हैं। ऐसा ही उस ब्रह्मका स्वरूप है।

मायाका अस्तित्व अविचारके कारण हो सिद्ध होता है। किंतु विचार करनेपर यह अस्तित्वहीन है। यह ब्रह्मके समान निरन्तर विद्यमान रहती है, ऐसा नहीं है। यह तो मात्र कल्पना है। इस प्रकार उस असत् मायाका अस्तित्वसम्बन्धके कारण सत्यत्व सिद्ध होता है। जो सत्य होता है उसीका अस्तित्व माना जाता है और अस्तित्वके कारण ही पदार्थकी

सत्यता स्वीकार की जाती है।

हे नारद! मैं अनन्त हूँ। मेरा ज्ञान भी अनन्त है। मैं अपनेमें पूर्ण हूँ। आत्माके द्वारा अनुभूत अन्तःसुख मैं हो हूँ। सात्विक, राजस और तामस गुणसे सम्बन्धित भावोंसे मैं नित्य परे रहता हूँ। मेरी उत्पत्ति अशुद्धतासे नहीं हुई है। मैं शुद्ध हूँ। मैं तो अमृतस्वरूप हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं प्राणियोंके हृदयमें प्रज्वलित वह ज्योति हूँ, जो दीपकके समान उनके अज्ञानरूपी अन्धकारको विनष्ट करती रहती है। यह आत्मज्ञानकी स्थिति है।

(अध्याय २३६)

~~~~~

### गीतासार

श्रीभगवान्ने कहा—[हे नारद!] अब मैं गीताका सारतत्त्व कहूँगा, जिसे मैंने पूर्वमें अर्जुनको सुनाया था। अष्टाङ्गयोगयुक्त और वेदान्तपरब्रह्म मनुष्योंके लिये आत्म-कल्याण सम्भव है। आत्म-कल्याण हो परम कल्याण है, उस आत्मज्ञानसे उत्कृष्ट और कुछ भी लाभ नहीं है। आत्मा देहरहित, रूप आदिसे होन, इन्द्रियोंसे अतीत है। मैं आत्मा हूँ, संसारादि सम्बन्धके कारण मुझे किसी प्रकारका दुःख नहीं है। धूमरहित प्रज्वलित अग्निरिक्ता जैसे प्रकाश प्राप्त करती है, वैसे ही आत्मा स्वयं इतीत रहता है। जैसे आकाशमें विद्युत्-अग्निका प्रकाश होता है, वैसे ही हृदयमें आत्माके द्वारा आत्मा प्रकाशित होता है। श्रोत्र आदि इन्द्रियोंको किसी प्रकारका ज्ञान नहीं है। वे स्वयंको भी नहीं जान सकते हैं, परंतु सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, क्षेत्रज्ञ आत्मा ही इन्द्रियोंका दर्शन करता है। जब आत्मा उज्ज्वल प्रदीपके समान हृदयपटलपर प्रकाशित होता है, तब पुरुषोंका पापकर्म नष्ट हो जाता है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

~~~~~

### गीतासार

श्रीभगवान्ने पुनः कहा—हे अर्जुन! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि—यह अष्टाङ्गयोग मुक्तिके लिये कहा गया है। शरीर, मन और वाणीको सदा सभी प्राणियोंको हिंसासे निवृत्त रखना चाहिये; क्योंकि अहिंसा ही परम धर्म है और उसीसे परम सुख मिलता है—

जैसे दर्पणमें दृष्टि डालनेपर अपने द्वारा अपनेको देख सकते हैं, वैसे ही आत्मामें दृष्टि करनेपर इन्द्रियोंको, इन्द्रियोंके विषयोंको तथा पञ्चमहाभूतोंका दर्शन किया जा सकता है। मन, बुद्धि, अहंकार और अव्यक्त पुरुष—इन सभीके ज्ञानके द्वारा संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाना चाहिये। सभी इन्द्रियोंका मनमें अभिविवेक कर उस मनको अहंकारमें स्थापित करना चाहिये। उस अहंकारको बुद्धिमें, बुद्धिको प्रकृतिमें, प्रकृतिको पुरुषमें एवं पुरुषको परब्रह्ममें विलीन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे ही 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकारकी ज्ञान-ज्योतिका प्रकाश होता है। इससे वह पुरुष मुक्त हो जाता है। नौ द्वारोंसे मुक्त, तीनों गुणोंके आश्रय तथा आकाश आदि पञ्चभूततत्त्वक और आत्मासे अधिष्ठित इस शरीरको जो ज्ञानी व्यक्ति जान लेता है, वही श्रेष्ठ है और वही ब्रह्मन्तर्दशी है। सौ अश्वमेध या हजारों वाजपेय यज्ञ इस ज्ञानपत्रके सोलहवें अंशके फलको भी प्रदान नहीं कर सकते। (अध्याय २३७)

~~~~~

कर्मणा मयसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा॥

हिंसाविरामको धर्मो हहिंसा परम सुखम्।

(२३८। २-३)

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिये। कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये, प्रिय-मिथ्या वचन भी नहीं बोलना चाहिये, यही सनातनधर्म है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेव धर्मः सनातनः ॥

(२३८।४)

चोरीसे या बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है। इसके विपरीत आचरण करना अर्थात् कभी भी चोरी न करना अस्तेय है। स्तेय-कार्य (चोरी) कभी भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि अस्तेय (चोरी न करना) ही धर्मका साधन है—

यच्च द्रव्यापहरणं जीर्णद्वयं बलेन वा ।

स्तेयं तस्यानाचरणमस्तेयं धर्मसाधनम् ॥

(२३८।५)

सदा और सभी अवस्थामें कर्म, मन और बाणीके द्वारा मैथुनका परित्याग करना चाहिये। इसीको ब्रह्मचर्य कहा जाता है। आपत्तिकालमें भी इच्छापूर्वक द्रव्यका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। प्रयत्नपूर्वक परिग्रहका परित्याग करना चाहिये। शीघ्र दो प्रकारके हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। मृत्तिका और जल आदिके द्वारा बाह्य एवं भाव-शुद्धिके द्वारा आभ्यन्तर शीघ्र होता है। यदुच्छ्रालाभ अर्थात् अनायास-प्राप्तिसे संतुष्ट होना ही संतोष है। यह संतोष ही सभी प्रकारके सुखका साधन है। मन और इन्द्रियोंको जो एकाग्रता है, वही परम तप है। कृष्ण और चान्दायन

आदि व्रतोंके द्वारा देहका शोषण भी तपस्या है। पुरुषोंकी सत्त्वशुद्धिके लिये जो वेदान्त, शतसूत्रीयका पाठ और 'अ'कार आदिका जप है, पण्डितजन उसे स्वाध्याय कहते हैं।

कर्म, मन और बाणीसे हरिकी स्तुति, नाम-स्मरण पूजादि कार्य और हरिके प्रति अनिच्छला भक्तिको ही ईश्वरका चिन्तन कहा जाता है। स्वस्तिकासन, पद्मासन और अर्धासन आदि आसन कहे गये हैं। अपने शरीरगत वायुका नाम प्राण है। उस वायुके निरोधको प्राणायाम कहा जाता है। हे पाण्डव! इन्द्रियों असद्विषयोंमें विचरण करती हैं। उनको विषयोंसे निवारित करना चाहिये। साधुगण इस प्रकारके इन्द्रिय-निरोधको प्राणहार कहते हैं। मूर्त और अमूर्त ब्रह्म-चिन्तनको ध्यान कहा जाता है। योगारम्भके समय मूर्तिमान् और अमूर्तरूपमें हरिका ध्यान करना चाहिये।

तेजोमण्डलके मध्यमें संख चक्र, गदा तथा पद्मधारी चतुर्भुज—कौस्तुभचिह्नसे विभूषित, वनमाली, वायुस्वरूप जो ब्रह्म अधिष्ठित है 'मैं वही हूँ'। इस प्रकार मनको लय करके श्रीहरिको धारण करना ही धारणा है। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' और 'ब्रह्म ही मैं हूँ' इस प्रकार देशालम्बन-रहित अहं और ब्रह्म पदार्थका तादात्म्य रूप ही समाधि है।

(अध्याय २३८)



## ब्रह्मगीतासार

ब्रह्माजीने कहा—[हे नारद!] अब मैं ब्रह्मगीतासारका वर्णन करूँगा, जिसे जानकर संसारसे मुक्ति हो जाती है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस वाक्यार्थका ज्ञान होनेसे मनुष्योंको मोक्षकी प्राप्ति होती है। मैं और ब्रह्म—इन दो पदोंके अर्थका ज्ञान होनेपर वाक्यका ज्ञान होता है। विद्वानोंने इन पदोंके अर्थको वाच्य तथा लक्ष्य-रूपमें दो प्रकारका स्वीकार किया है। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थसे मिला-जुला वाक्यार्थ ही शुद्ध वाक्यार्थ है। वेदोंके द्वारा अहं शब्दसे एक प्राणपिण्डात्मक और दूसरा प्रत्यग्-रूप आत्मा गृहीत होता है। अव्ययानन्द चैतन्य परोक्षज्ञानके सहित है और प्राण-पिण्डात्मक चैतन्य उसका दूसरा पक्ष है। अहं पदको लक्षणासे आत्माका अल्पज्ञत्वादि दीपरहित शुद्ध आत्मा अर्थ होता है।

जो प्राणपिण्डात्मक अर्थ है वह उसका दूसरा भाग है। इसमें परोक्ष अर्थात् लक्ष्यार्थको देखनेके पश्चात् जैसे उस

अर्थकी स्थिति आती है, वैसे ही लक्ष्यार्थको देखनेके पश्चात् उस अर्थकी स्थिति अती है। वैसे ही ब्रह्म पदसे प्राणपिण्डात्मक अर्थकी प्रतीति होती है। निष्ठा तथा परोक्षता आदि अर्थ-प्रतीतिके जो गुण हैं, उनका परित्याग करके ऐसा अर्थ किया जाता है। अद्वयानन्द चैतन्य इस अर्थकी प्राप्ति तो लक्ष्यार्थ ब्रह्मपदसे ही हो जाती है। अद्वयानन्द चैतन्यकी लक्ष्यार्थ रूपमें देखकर 'मैं ब्रह्म हूँ'—इन दोनों पदार्थोंकी सिद्धि 'ब्रह्म मैं हूँ' और 'मैं ब्रह्म हूँ'—इन दो स्थितियोंमें होती है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस वाक्यसे स्वानुभूतिका फलार्थ प्राणीको प्राप्त होता है। ऐक्यज्ञान तो निश्चित ही वेदान्तसे होता है। उससे यह अर्थ परे है। ज्ञानसे अज्ञानकी जो निवृत्ति होती है, उस निवृत्तिके बाद प्राणीके चित्तकी लक्ष्यसे जो ऐक्यकी स्थिति उत्पन्न होती है, वही मुक्ति है।

(अध्याय २३९)





## ब्रह्मगीता सार

श्रीभगवान् ने कहा—[हे पाण्डव !] यह सिद्ध है कि परमात्मा है । उसी परमात्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है, जो इस जगत्-प्रपञ्चकी जन्मदात्री है । तदनन्तर स्रष्टृ तत्त्व उत्पन्न हुए । वाक्, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान नामक पाँच प्रकारकी वायु है । मन और बुद्धिरूप अन्तःकरण है । मन संदेही होता है और बुद्धि निश्चयात्मिका होती है । इसका स्वरूप सूक्ष्म होता है । आत्माके रूपमें भगवान् हिरण्यगर्भ अन्तःकरणमें विद्यमान रहते हैं, वही जीवात्मा है । इस प्रकार प्रपञ्चसे परे उस महाप्राण परमात्माके द्वारा पञ्चमहाभूतोंसे बने शरीरकी उत्पत्ति होती है । उन्हीं पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंसे ब्रह्माण्ड अर्थात् इस जगत्की सृष्टि हुई थी ।

पैर आदिसे युक्त शरीर स्थूल शरीर है, यह तो संसारमें प्रसिद्ध ही है । उसके बाद उनमें पञ्चभूत तत्त्व और उनके कार्योंकी जो स्थिति है, वह स्थूल शरीरसे पूर्वका शरीर है । किन्तु उसके शरीरसे जो कुछ उत्पन्न होता है, उसको स्थूल ही कहा जाता है । विद्वान् इस प्रकार परमात्मासे स्थित शरीरको तीन प्रकार मानते हैं । स्वतत्त्वके भेदकी बतातेवाले भेदवाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' के अनुसार उन दोनों पूर्वस्थूल और स्थूल शरीरमें वह ब्रह्म ही प्रविष्ट रहता है । जलमें सूर्यकी छाया और बेरके समान उस समय उसकी आकृति होती है, जीवस्वरूप वह ब्रह्म उसमें प्रणादि इन शरीरिक तत्त्वोंको धारण करता है । जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थामें किये जानेवाले कार्योंका जो साक्षी है, वही जीव माना गया है ।

जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थाओंसे परे वह ब्रह्म अपने निर्गुण स्वभावमें ही रहता है । उस क्रियाशून्य शरीरके साथ रहने एवं न रहनेकी स्थितिमें भी वह नित्य शुद्ध स्वभाववाला ही है । उसमें कोई विकृति नहीं आती ।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिकी जो तीन अवस्थाएँ हैं, इन अवस्थाओंके कारण वह परमात्मा ही तीन प्रकारका मान लिया जाता है । वह अन्तःकरणमें स्थित रहता है और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिकी स्थितिमें इन्द्रियोंकी क्रियाशीलताको देखता हुआ वह विकारयुक्त हो जाता है ।

हे अर्जुन ! अब मैं फलयुक्त क्रिया और कारककी जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति-अवस्थाका वर्णन करता हूँ, उसको सुनें । इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध—इन तन्मात्राओंका जब मनुष्यको सत्य-रूपमें ज्ञान होता है, तब उसकी मनुष्यकी जाग्रत अवस्था कहते हैं । उसकी विषयासक्त प्राणीके अन्तःकरणमें जागते हुए संस्कारोंका विश्वास भी कहा जा सकता है । स्वप्न एवं सुषुप्तिकी स्थिति तब होती है, जब विषयापेक्षित कार्यमें लगाये जानेवाले साधनकी चिन्तामें बुद्धि एकाग्र हो जाती है । कारण-अवस्थामें ब्रह्मकी स्थिति है । अतः कालके वशमें होनेके कारण वह जीवात्मा बनकर स्वरूप शरीर स्थित रहता है ।

यम-नियमादि अष्टाङ्ग मार्गको यथाक्रम पार करते हुए जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थामें विद्यमान वह जीव साक्षी-रूपमें सब कुछ देखता है । अतः मनुष्यकी समाधि आरम्भ करनेके पूर्व ही उस परम लक्ष्यकी अवधारणा अपने चित्तमें बना लेनी चाहिये ।

इसके बाद मुमुक्षुके अन्तःकरणमें कैवल्य अर्थात् उस परमात्माके साक्षात्कारकी अवस्था आ जाती है । अतः मोक्षार्थीको उस स्थितिमें पाञ्चभौतिक शरीरके अंदर कैसे हुए क्षेत्रज्ञ जीवात्माके विषयमें विचारकर उसकी शरीरसे पृथक् समझना चाहिये, क्योंकि आत्मतत्त्वको शरीरसे अतिरिक्त न माननेपर ब्रह्मतत्त्वसे साक्षात्कार करनेमें अनेक बाधाएँ होती हैं, अतः उन बाधाओंको दूर करना अपेक्षित है, जो सांसारिक विषय-वासनाओंके क्षेत्रसे उत्पन्न हैं । उस स्थितिमें तो समस्त क्षेत्रको ही शून्य कर देना आवश्यक होता है । यह पाञ्चभौतिक शरीर घट आदिके समान है, जैसे घटके अंदर

आकाश है, उस समय वह घटाकाश कहा जाता है। किंतु उस भ्रमको दूर कर दिया जाय तो अपने उस समय रूपमें वह दिखायी देता है। वैसे ही स्थिति जीवात्माकी है। अतः पाञ्चभौतिक शरीरसे उस मोक्षकी साधनामें जीवात्माको पृथक् समझना चाहिये। जिसमें वह आबद्ध है, उस क्षेत्रको ही भली प्रकारसे शेष करना अनिवार्य है। जिस प्रकार घट मिट्टीसे पृथक् नहीं है, उसमें समवाय सम्बन्ध होता है। उसी प्रकार कुम्भकारके द्वारा प्रयुक्त चक्र, खीर आदिके कालोंसे भी वह पृथक् नहीं है, किंतु पञ्चीकृत इन भौतिक तत्वोंकी उत्पत्ति अपञ्चीकृत महाभूत परमात्मासे हुई है। अतः कारण अन्तमें वही परमात्मा ही सिद्ध होगा, जो निर्गुण-निराकार अद्वय पञ्चीकृत देहतत्त्वसे परे है। कार्य तो कारणसे पृथक् होता नहीं है। इसलिये कार्य-कारण-सम्बन्धके द्वारा वह बात सिद्ध हो जायगी, जो मुमुक्षुके लिये अपेक्षित है। विद्वज्जन इसी क्रिया-व्यतिरेकके द्वारा सूक्ष्म शरीरकी अवधारणकी बातको पुष्ट करते हैं।

अपञ्चीकृत महाभूतोंसे सूक्ष्मशरीर पृथक् नहीं है। जैसे आधार पृथ्वीके बिना नहीं होता है, वैसे ही वह पृथ्वी उसके आधारके बिना नहीं रहती है। यह आधार तो तेज अर्थात् अग्नि है, जो वायुके बिना रहता है। यह वायु आकाशके बिना, आकाश उस सत्-मायाच्छिन्न ब्रह्मके बिना और वह मायाहित शुद्ध ब्रह्म आकाशके बिना नहीं रहता

है। ध्यानकी ऐसी अवस्थामें पहुँचनेपर ही प्राणीके हृदयमें वह शुद्ध भाव आता है, जो जाग्रत् और स्वप्न आदिकी स्थितिमें उद्भूत नहीं होता, जो प्राप्त हुए आत्मज्ञानके अनुरूप जीवत्वके प्रभावसे मुक्त होता है।

ब्रह्मको नित्य शुद्ध, बुद्ध, सत्य तथा अद्वैत कहा जाता है। वह तत्त्व दो शिष्ट पदोंके बीच स्थित है। उसको ब्रह्मवाचक शब्द 'अ'कार कहते हैं। इसमें उकार और अकार दो स्वर एवं मकार एक अनुनासिक व्यञ्जनवर्ण है। इनसे बना हुआ वह पद सामान्य नहीं, अपितु महामन्य है, जो अद्वितीय है। 'ब्रह्म मैं हूँ' या 'मैं ब्रह्म हूँ'—ये दोनों वाक्य मनमें ज्ञान और अज्ञान दोनोंको बढ़ानेवाले हैं।

यह आत्मतत्त्व परमज्योतिःस्वरूप है। यह चिदानन्द है। यह सत्य ज्ञान और अनन्त है। यही तत्त्वमसि है। ऐसा खेदोंका भी कथन है। 'मैं ब्रह्म हूँ।' सांसारिक विषयोंसे जो परे रहता है वही मैं निर्लिप्त देव हूँ। जो सर्वत्रगामी परमात्मा है वही मैं हूँ। जो आदित्यस्वरूप देवदेवेश हैं वही मैं हूँ। अरे, मैं तो वही अनादि देवदेवेश्वर परब्रह्म ही हूँ, जिसके आदि और अन्तका ज्ञान किसीकी भी नहीं है। यही गीताका सार है। इसीका वर्णन मैंने अर्जुनसे किया था। इसको सुनकर मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो सकता है अर्थात् उसको जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

(अध्याय २४०)

## गरुडपुराणका माहात्म्य

भगवान् हरिने कहा—हे रुद्र! मैंने 'गरुडपुराण' का वह सारभाग आपको सुना दिया, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यह विद्या, यश, मौन्य, लक्ष्मी, विजय और आरोग्यादिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान जाता है और अन्तमें उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मैंने मुक्तिप्रदायक ऐसे महापुराणको भगवान् विष्णुसे सुना था।

व्यासजीने कहा—सूतजी! भगवान् विष्णुसे इस महापुण्यदायक गरुडपुराणको सुनकर ब्रह्माजीने दक्षप्रजापति,

नारद तथा हम सभीको सुनाया और स्वयं उस परात्पर ब्रह्मका ध्यान करते हुए ये वैष्णव पदको प्राप्त हुए। मैंने भी तुम्हें और तुमने जीवनकादिको इस सर्वश्रेष्ठ पुराणको सुनाया, जिसे सुनकर सर्वज्ञ बना व्यक्ति अपने अभीष्टको प्राप्त करके अन्तमें ब्रह्मपदका लाभ लेता है। भगवान् विष्णुने गरुडको सारतमभाग सुनाया था, इसलिये यह गरुडके लिये कथित सारतत्त्व 'गरुडमहापुराण'के नामसे प्रसिद्ध हो गया। यह महासारतत्त्व है। यह प्राणीको धर्म, काम, धन और मोक्षादि सभी फलोंको देनेवाला है।

सूतजीने कहा—हे शौनक! आपको मैंने उस श्रेष्ठतम

गरुडमहापुराणको सुना दिया है, जिस शुभ पुराणको भगवान् व्यासने ब्रह्मासे सुनकर बहुत समय पहले मुझको सुनाया था। व्यासरूप भगवान् हरिने प्रारम्भमें जो मात्र एक वेद था, उसे चार भागोंमें विभाजित किया और अष्टादश महापुराणोंकी रचना की। उन पुराणोंको महाराज शुकदेवजीने मुझे सुनाया। हे शौनक! आपके पूछनेपर इस श्रेष्ठ गरुड-पुराणको मैंने मुनियोंके सहित आपको सुनाया।

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणका पाठ करता है, सुनता है अथवा सुनाता है, इसको लिखता है, लिखाता है, ग्रन्थके ही रूपमें इसे अपने पास रखता है तो वह यदि धर्माधी है तो उसे धर्मको प्राप्ति होती है, यदि वह अर्थका अभिलाषी है तो अर्थ प्राप्त करता है। यदि वह कामी है तो उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और यदि वह मोक्ष प्राप्त करनेका इच्छुक है तो उसे मोक्ष प्राप्त होता है। मनुष्य जिस-जिस वस्तुको कामना करता है, वह सब इस गरुडमहापुराणको सुननेसे प्राप्त हो जाता है।



जो मनुष्य इस महापुराणका पाठ करता है, वह अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस पुराणके एक श्लोकका एक चरण भी पढ़कर मनुष्य पापरहित हो जाता है। जिस व्यक्तिके घरमें यह महापुराण रहता है, उसको इसी जन्ममें सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जिस मनुष्यके हाथमें यह गरुडमहापुराण विद्यमान है, उसके हाथमें ही नीतिषोंका कोश है। जो प्राणी इस पुराणका पाठ करता है या इसको सुनता है वह भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त कर लेता है।

इस महापुराणको पढ़ने एवं सुननेसे मनुष्यके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो जाती है। इस महापुराणका पाठ करके या इसे सुन करके पुत्रार्थी पुत्र, कामार्थी काम, विद्याार्थी विद्या, विजिगीषु विजय प्राप्त कर लेता है तथा ब्रह्महत्यादिसे युक्त पापीका पाप नष्ट हो जाता है, वन्या स्त्री पुत्र, वन्या सज्जन पति, क्षेमार्थी क्षेम तथा भोग चाहनेवाला भोग प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार मङ्गलकी कामनासे प्रेरित व्यक्ति अपना मङ्गल, गुणोंका इच्छुक व्यक्ति उत्तम गुण, काव्य करनेका अभिलाषी मनुष्य कवित्वशक्ति, सारतत्व चाहनेवाला सार, ज्ञानार्थी ज्ञान प्राप्त करता है।

पक्षिश्रेष्ठ गरुडके द्वारा कहा गया यह गरुडमहापुराण धन्य है। यह सबका कल्याण करनेवाला है। जो मनुष्य इस महापुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकालमृत्यु नहीं होती। इसके मात्र आधे श्लोकका पाठ करनेसे निश्चित ही दुष्ट शत्रुका क्षय होता है। नैमिषारण्यमें ऋषियोंके द्वारा आयोजित यज्ञमें सुतजी महाराजसे इस महापुराणको सुन करके स्वयं शौनक मुनिने उन्हीं गरुडध्वज भगवान् विष्णुकी कृपासे मुक्तिका स्तुति प्राप्त किया था।

(अध्याय २४१)

[ गरुडपुराणान्तर्गत आचारकाण्ड समाप्त ]



## धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

**वैकुण्ठलोकका वर्णन, मरणकालमें और मरणके अनन्तर जीवके कल्याणके लिये विहित विभिन्न कर्तव्योंके बारेमें गरुडजीके द्वारा किये गये प्रश्न, प्रेतकल्पका उपक्रम**

श्रीगणेशजीको नमस्कार है। 'ॐ'कारसे युक्त भगवान् वासुदेव हरिको प्रणाम है।

नारायणं नमस्कृत्य नरं शैव नरोत्तमम्।

देवीं सरस्वतीं शैव ततो जयमुदीरयेत्॥

भगवान् श्रीनारायण, नरोत्तम नर एवं भगवती सारस्वती देवीको नमस्कार करके पुराणका वाचन करना चाहिये। जिन भगवान्का धर्म ही मूल है, वेद जिनका स्कन्ध है, पुराणस्वी शिष्यसे जो समृद्ध है, यज्ञ जिनके पुत्र हैं, मोक्ष जिनका फल है—ऐसे भगवान् मधुसूदनरूपी कल्पवृक्षकी जय हो।

देवक्षेत्र नैमिषारण्यमें श्रीनारायण के शिष्य मुनिपंथि सुखपूर्वक विराजमान श्रीसूतजी महाराजसे कहा—

हे श्रीसूतजी! आप श्रीवेदव्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं। अतः आप हम सभीके संदेहका निवारण करें। कुछ लोगोंका कहना है कि जिस प्रकार कोई जीव तिनकेसे तिनकेका सहारा लेकर आगे बढ़ती है, उसी प्रकार शरीरधारी जीव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका आश्रय ग्रहण करता है। दूसरे विद्वानोंका कहना है कि प्राणी मृत्युके पश्चात् यमराजकी यातनाओंका भोग करता है, तदनन्तर उसको दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है—इन दोनोंमें क्या सत्य है? यह हमें बतानेकी कृपा करें।

सूतजीने कहा—हे महाभाग! आप लोगोंने अच्छा प्रश्न किया है। आप लोगोंको संदेह हो यह असम्भव है। आप लोगोंने तो लोकहितसे प्रेरित होकर ही ऐसा प्रश्न

किया है। हे विप्रगणो! मैं आप सबके हृदयमें अवस्थित उस संदेहको भगवान् श्रीकृष्ण और गरुडके बीच हुए संवादके द्वारा दूर करूँगा। सर्वप्रथम मैं उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ, जिनका आश्रय लेकर मनुष्य इस भवसागरको एक क्षुद्र नदीकी भाँति अनापास ही पार कर जाते हैं।

हे मुनियो! एक बार विनतापुत्र गरुडके हृदयमें इस ब्रह्माण्डके सभी लोकोंकी देखनेकी इच्छा हुई। अतः हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्होंने सभी लोकोंका भ्रमण किया। पाताल, पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोकका भ्रमण करते हुए वे पृथ्वीलोकके दुःखसे आपन्न दुःखित एवं अज्ञानतपित होकर पुनः वैकुण्ठ लोक वापस आ गये।

वैकुण्ठ लोकमें न रजोगुणकी प्रवृत्ति है, न तमोगुणकी ही प्रवृत्ति है, [मायुलोकके समान] रजोगुण तथा तमोगुणसे मिश्रित सत्त्वगुणकी भी प्रवृत्ति वहाँ नहीं है। वहाँ केवल शुद्ध सत्त्वगुण ही अवस्थित रहता है। वहाँ माया भी नहीं है, वहाँ किसीका विनाश नहीं होता। वहाँ राग-द्वेष आदि षड्विकार भी नहीं हैं। वहाँ देव और असुर-वर्गद्वारा पूजित श्यामवर्णकी सुन्दर कान्तिसे सुशोभित राजीवलोचन भगवान् विष्णुके पार्षद विराजमान रहते हैं, जिनके शरीर पीतवसन और मनोहारी आभूषणोंसे विभूषित हैं और मणियुक्त स्वर्णके अलङ्करणोंसे सुशोभित हैं। भगवान्के वे सभी पार्षद चार-चार भुजाओंसे युक्त हैं। उनके कानोंमें कुण्डल और सिरपर मुकुट है। उनका वक्षःस्थल सुन्दर पुष्पोंकी



मालासे सुशोभित है। मनको मोहित करनेवाली अप्सराओंसे युक्त, महात्माओंके चमकते हुए विमानोंकी पंक्तिकी कान्तिसे वे सभी सदा भास्वरित होते रहते हैं। वहाँ नाना प्रकारके वैभवोंसे समन्वित लक्ष्मी प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिके चरणोंकी पूजा करती रहती हैं।

गरुडजीने वहाँ देखा कि श्रीहरि झूलेपर विराजमान हैं। सखियोंद्वारा स्तुत्य लक्ष्मीजी झूलेमें स्थित भगवान्की स्तुति कर रही हैं। अपने लाल-लाल बड़े-बड़े नेत्रोंसे युक्त प्रसन्नमुख देवोंके अधिपति, श्रीपति, जगत्पति और यज्ञपति भगवान् श्रीहरि अपने नन्द, सुनन्द आदि प्रधान पार्वदोंको देख रहे थे। उनके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और यक्षःस्थल श्रीसे सुशोभित था। वे पीताम्बरसे विभूषित थे। उनकी चार भुजाएँ थीं। प्रसन्नमुद्रामें हँसता हुआ उनका मुख था। बहुमूल्य आसनपर विराजमान वे हरि उस समय अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे आवृत थे। प्रकृति, पुरुष, महत्, अहंकार, पञ्चकर्मैन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, मन, पञ्चमहाभूत तथा पंचतन्मात्राओंसे निर्मित शरीरवाले अपने ही स्वरूपमें रमण करते हुए उन भगवान् हरिका दर्शन करनेसे विनतासुत गरुडका अन्तःकरण आनन्दविभोर हो उठा। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। उनके नेत्रोंसे प्रेमाक्षुओंकी धारा बहने लगी। आनन्दभग्न होकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया। प्रणाम करते हुए अपने वाहन गरुडजी देखकर भगवान् विष्णुने कहा—हे पक्षिन्। आपने इतने दिनोंमें इस जगद्की किस भूमिका परिभ्रमण किया है?

गरुडने कहा—भगवन्! आपको कृपासे मैंने समस्त त्रिलोकीका परिभ्रमण किया है। उनमें स्थित जगत्के सभी स्थावर और जड़म प्राणियोंको भी देखा। हे प्रभो! यमलोकको छोड़कर पृथ्वीलोकसे सप्तलोकतक सब कुछ मेरे द्वारा देखा जा चुका है। सभी लोकोंकी अपेक्षा भूलोक प्राणियोंसे अधिक परिपूर्ण है। सभी योनियोंमें मानवयोनि ही भोग और मोक्षका शुभ आश्रय है। अतः सृष्टियोंके लिये ऐसा लोक न तो अभी तक बना है और न भविष्यमें बनेगा। देवता लोग भी इस लोकको प्रशंसामें गीत गाते हुए कहते हैं—'जो लोग पवित्र भारतकी भूमिमें जन्म लेकर निवास करते हैं, वे धन्य हैं। देवता लोग भी स्वर्ग एवं

अपवर्गरूप फलकी प्राप्तिके लिये पुनः भारतभूमिमें मनुष्यरूपमें जन्म लेते हैं'—

गार्ग्यनि देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पृथगाः सुरत्वात्॥ (१।२५)

हे प्रभो! आप यह बतानेकी कृपा करें कि मृत्युको प्राप्त हुआ प्रेत किस कारण पृथ्वीपर डाल दिया जाता है?



उसके मुखमें पञ्जरल क्यों डाला जाता है? मेरे हुए प्राणीके लोभे लोग कुश किसलिये बिछा देते हैं? उसके दोनों पैर दक्षिण दिशाकी ओर क्यों कर दिये जाते हैं? मरनेके समय मनुष्यके आगे पुत्र-पौत्रादि क्यों खड़े रहते हैं? हे केशव। मृत्युके समय विविध वस्तुओंका दान एवं गोदान किसलिये दिया जाता है? बन्धु-बान्धव, मित्र और शत्रु आदि सभी मिलकर क्यों क्षमा-याचना करते हैं? किससे प्रेरित होकर लोग मृत्युकालमें तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, नमक, सर्पधान्य, भूमि और गौका दान देते हैं? प्राणी कैसे मरता है और मरनेके बाद कहाँ जाता है? उस समय वह आतिवाहिक शरीर (निराधार-रूपमें आत्माको वहन करनेवाले शरीर)—को कैसे प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र और पौत्र उसे कन्धेपर क्यों ले जाते हैं? शवमें घृतका लेप क्यों किया जाता है? उस समय एक आहुति देनेकी परम्परा कहाँसे चलती है? शवको भूमिस्पर्श किसलिये करवाया जाता है? सखियाँ उस मेरे हुए व्यक्तिके लिये क्यों विलाप करती हैं? शवके उत्तर दिशामें 'यमसूक्त'का पाठ क्यों

१-सोना, चाँदी, मोती, लाजवाले (लाजवर्द) तथा मूँक—ये पौष पञ्चाल कहलाते हैं।

२-जौ, धान, तिल, कौगनी, मूँक, चना तथा सब्जी—ये सप्तधान्य कहालाते हैं।

किया जाता है? भरे हुए व्यक्तिको पीनेके लिये जल एक ही वस्त्र धारण करके क्यों दिया जाता है? उस समय सूर्य-बिम्ब-निरीक्षण, पत्थरपर स्थापित यव, सरसों, दूदा और नीमकी पतियोंका स्पर्श करनेका विधान क्यों है? उस समय स्त्री एवं पुरुष दोनों नीचे-ऊपर एक ही वस्त्र क्यों धारण करते हैं? शवका दाह-संस्कार करनेके पश्चात् उस व्यक्तिको अपने परिजनोंके साथ बैठकर भोजनादि क्यों नहीं करना चाहिये? भरे हुए व्यक्तिके पुत्र दस दिनके पूर्व किसलिये पिण्डोंका दान देते हैं? चबूतरे (बेदी)-पर पके हुए मिट्टीके पात्रमें दूध क्यों रखा जाता है? रस्तीसे बीधे हुए तीन काष्ठ (तिगौंदिया)-के ऊपर रात्रिमें गौधके चौराहेपर एकान्तमें वर्षर्षपर्वन्त प्रतिदिन दीपक क्यों दिया जाता है? शवका दाह-संस्कार तथा अन्य सौगोंके साथ जल-तर्पणकी क्रिया क्यों की जाती है? हे भगवन्! मृत्युके बाद प्राणी आतिवाहिक शरीरमें चला जाता है, उसके लिये नी पिण्ड देने चाहिये, इसका क्या प्रयोजन है? किस विधानसे पितरोंको पिण्ड प्रदान करना चाहिये और उस पिण्डकी स्वीकार करनेके लिये उनका आवाइन कैसे किया जाय?

हे देव! यदि ये सभी कार्य मरनेके तुरन्त बाद सम्पन्न हो जाते हैं तो फिर बादमें पिण्डदान क्यों किया जाता है? पूर्व किये गये पिण्डदानके बाद पुनः पिण्डदान या अन्य क्रियाओंको करनेकी क्या आवश्यकता है? दाह-संस्कारके बाद अस्थि-संचयन और घट फोड़नेका विधान क्यों है? दूसरे दिन और चौथे दिन साग्निक द्विजके स्नानका विधान क्यों है? दसवें दिन सभी परिजनोंके साथ शुद्धिके लिये स्नान क्यों किया जाता है? दसवें दिन तेल एवं ठबटनका प्रयोग क्यों किया जाता है? उस तेल और ठबटनका प्रयोग भी एक विशाल जलाशयके तटपर होना अपेक्षित है, इसका क्या कारण है? दसवें दिन पिण्डदान क्यों करना चाहिये? एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग आदिके सहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? पात्र, पादुका, छत्र, वस्त्र तथा अंगूठी आदि वस्तुओंका दान क्यों दिया जाता है? तेरहवें दिन पददान क्यों दिया जाता है। वर्षर्षपर्वन्त सोलह ब्राह्मण क्यों किये जाते हैं तथा तीन सौ साठ

सान्निदक घट क्यों दिये जाते हैं। प्रेततृप्तिके लिये प्रतिदिन अन्नसे भरे हुए एक घटका दान क्यों करना चाहिये।

हे ब्रम्हो! मनुष्य अनित्य है और समय आनेपर ही वह मरता है, किंतु मैं उस छिद्रको नहीं देख पाता हूँ, जिससे जीव निकल जाता है? प्राणीके शरीरमें स्थित किस छिद्रसे पृथ्वी, जल, मनु, तेज, वायु और आकाश निकल जाते हैं? हे जनार्दन! इसी शरीरमें स्थित जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच वायु हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं। श्रोत्र, मोह, शृष्णा, काम और अहंकाररूपी जो पाँच चोर शरीरमें छिपे रहते हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं।

हे माधव! प्राणी अपने जीवनकालमें पुण्य अथवा पाप जो कुछ भी कर्म करता है, वाना प्रकारके दान देता है, वे सब शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं। वर्षके समाप्त हो जानेपर भी भरे हुए प्राणीके लिये सपिण्डोत्तरण क्यों होता है? उस प्रेतकृत्यमें (सपिण्डन) प्रेतपिण्डका मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये, इसे आप बतानेकी कृपा करें।

हे हरे! मृच्छासे अथवा पतनसे जिनकी मृत्यु होती है, उनके लिये क्या होना चाहिये। जो पतित मनुष्य जलाये गये अथवा नहीं जलाये गये तथा इस पृथ्वीपर जो अन्य प्राणी हैं, उनके मरनेपर अन्तमें क्या होना चाहिये। जो मनुष्य पापी, दुराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद वे किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मघाती, ब्रह्महत्याया, स्वर्णादिको चोरी करनेवाला, मित्रादिके साथ विश्वासघात करनेवाला है, उस महापातकीका क्या होता है? हे माधव! जो शूद्र कपिला गौका दूध पीता है अथवा प्रणव महामन्त्रका जप करता है या ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करता है तो मृत्युके बाद उसकी क्या गति होती है? हे संसारके स्वामी! जब कोई शूद्र किसी ब्राह्मणीको पत्नी बना लेता है तो उस पापीसे मैं भी डरता हूँ। आप बतायें कि उस पापीकी क्या दस्ता होती है? साथ ही उस पापकर्मके फलको बतानेकी भी कृपा करें।

हे विश्वामित्र! आप मेरी दूसरी बातपर भी ध्यान दें। मैं कौतूहलवश वेगपूर्वक लोगोंको देखता हुआ सम्पूर्ण जगत्में जा चुका हूँ, उसमें रहनेवाले लोगोंको मैंने देखा

है कि वे सभी दुःखमें ही डूब रहे हैं। उनके अत्यन्त कष्टोंको देखकर मेरा अन्तःकरण पीड़ासे भर गया है। स्वर्गमें दैत्योंकी शत्रुतासे भय है। पृथ्वीलोकमें मृत्यु और रोगादिके तथा अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे लोग दुःखित हैं। पाताललोकमें रहनेवाले प्राणियोंको मेरे भयसे दुःख बना रहता है<sup>१</sup>। हे ईश्वर! आपके इस वैष्णव पद (वैकुण्ठ)-के अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकमें ऐसी निर्भयता नहीं दिखायी देती। कालके वशीभूत इस जगत्की स्थिति स्वयंकी मायाके समान असत्य है। उसमें भी इस भारतवर्षमें रहनेवाले लोग बहुत-से दुःखोंको भोग रहे हैं। मैंने वहीं देखा है कि उस देशके मनुष्य राग-द्वेष तथा मोह आदिमें आकण्ठ डूबे हुए हैं। उस देशमें कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेढ़ी दृष्टिकाले हैं, कुछ दुष्ट वाणीवाले हैं, कुछ लूले हैं, कुछ लंगड़े हैं, कुछ काने हैं, कुछ बहरे हैं, कुछ गूंगे हैं, कुछ कोढ़ी हैं, कुछ लोमश (अधिक रोमवाले) हैं, कुछ नाना रोगसे घिरे हैं और कुछ आकाश-कुसुमकी तरह नितान्त मिथ्या अभिमानसे घुरे हैं। उनके विचित्र दोषोंको देखकर तथा उनकी मृत्युको देखकर मेरे मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी

है कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षमें यह कैसी विचित्रता है? ऋषियोंसे मैंने पहले ही इस विषयमें सामान्यतः यह सुन रखा है कि जिसको विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होती हैं, उसको दुर्गति होती है। फिर भी हे प्रभो! इसकी विशेष जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा हूँ।

हे उपेन्द्र! मनुष्यकी मृत्युके समय उसके कल्याणके लिये क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये। मृत्यु और श्मशान-भूमिके पहुँचनेके बीच कौन-सी विधि अपेक्षित है। चित्तमें शवको जलानेकी क्या विधि है? तत्काल अथवा विलम्बसे उस जीवको कैसे दूसरी देह प्राप्त होती है, यमलोक (संयमनी नगरी)-को जानेवालेके लिये वर्षपर्यन्त कौन-सी क्रियाएँ करनी चाहिये। दुर्बुद्धि अर्थात् दुराचारी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसका प्रायश्चित्त क्या है? पञ्चक आदिमें मृत्यु होनेपर पञ्चकशान्तिके लिये क्या करना चाहिये। हे देव! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप मेरे इस सम्पूर्ण धर्मको विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। मैंने आपसे यह सब लोकमङ्गलकी कामनासे पूछा है, मुझे बतानेकी कृपा करें। (अध्याय १)

## मरणासन्न व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म, मृत्युसे पूर्वकी स्थिति तथा कर्मविपाकका वर्णन

श्रीकृष्णने कहा—हे भद्र! आपने मनुष्योंके हितमें बहुत ही अच्छी बात पूछी है। सावधान होकर इस सपस्त और्ध्वदैहिक क्रियाको भलीभाँति सुनें।

हे गरुड! जो सम्यक् रूपसे भेदरहित है, जिसका वर्णन श्रुतियों और स्मृतियोंमें हुआ है, जिसको इन्द्रादि देवता, योगीजन और योगमार्गका चिन्तन करनेवाले विद्वान् नहीं देख सके हैं, जो गुह्यातिगुह्य है, ऐसे उस प्रधान तत्त्वको जिसे मैंने अभी तक किसी अन्यसे नहीं कहा है, तुम मेरे भक्त हो, इसलिये मैं तुम्हें बतला रहा हूँ।

हे वैनतेय! इस संसारमें पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं है, उसकी स्वर्ग प्राप्ति नहीं होता है। अतः शास्त्रानुसार यथायोग्य उपायसे पुत्र उत्पन्न करना ही चाहिये। यदि

मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता है तो पुत्र नरकसे उसका उद्धार कर देता है। पुत्र और पौत्रको मेरे हुए प्राणीको कन्या देना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना चाहिये। शवके नीचे पृथ्वीपर तिलके सहित कुश बिछानेसे शवकी आधारभूत भूमि उस ऋतुमती नारीके समान हो जाती है, जो प्रसवकी योग्यता रखती है। मृतकके मुखमें पञ्चरत्न डालना बीजवपनके समान है, जिससे आगे जीवकी शुभगति का निश्चय होता है। जैसे पुष्प (ऋतुकालमें स्त्रियोंका रजोदर्शन) न होनेपर गर्भधारण सम्भव नहीं है, वैसे ही शवभूमि भी तिल-कुश आदिके बिना जीवकी शुभ योनिमें कारण नहीं बन पाती। इसीलिये श्रद्धापूर्वक तिल, कुश, पञ्चरत्न आदिका यथाविधान विनियोग आवश्यक है।

गोबरसे भूमिको सबसे पहले लीपना चाहिये, तदनन्तर उसके ऊपर तिल और कुश बिछाना चाहिये। उसके बाद आतुर व्यक्तिको भूमिपर कुशासनके ऊपर सुला देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह प्राणी अपने समस्त पापोंको जला कर पापमुक्त हो जाता है। शवके नीचे बिछाये गये कुशसमूह निश्चित हो मृत्युप्रस्त प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। जहाँ पृथ्वीपर मल-मूत्रादिका लेप (सम्बन्ध) नहीं है वहाँ वह सदा पवित्र है और वहाँ (मल-मूत्रादिका) लेप (सम्बन्ध) है, वहाँ (मल-मूत्रादिका) अपसारण करके गोमयसे लेप करनेपर वह शुद्ध होती है। गोबरसे बिना लिपी हुई भूमिपर सुलाये गये मरणासन व्यक्तिके यक्ष, पिशाच एवं राक्षस-कांटिके कुरकमी दुष्ट लोग प्रविष्ट हो जाते हैं। मरणासनकी मुक्तिके लिये उसे जलसे बनाये गये मण्डलवासी भूमिपर ही सुलाना चाहिये, क्योंकि नित्य-होम, श्राद्ध, पादप्रक्षालन, ब्राह्मणोंकी अर्चा एवं भूमिका मण्डलीकरण मुक्तिके हेतु माने गये हैं। बिना लिपी-पुती मण्डलहीन भूमिपर मरणासन व्यक्तिको नहीं सुलाना चाहिये। भूमिपर बनाये गये ऐसे मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अतः मण्डलका निर्माण अवश्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राण-त्याग करनेपर वह चाहे बालक हो, चाहे बृद्ध हो और चाहे जवान हो, उसकी अन्य योनि नहीं प्राप्त होती है। हे तात्पर्य! उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। उस प्रकारकी वायुभूत जीवात्माके लिये न तो श्राद्धका विधान है और न तो जलतर्पणकी क्रिया ही बतायी गयी है।

हे गरुड! तिल में पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं। अतः तिल बहुत ही पवित्र है। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। तिल श्वेत, कृष्ण और गोमूत्रवर्णके

समान होते हैं। 'वे मेरे शरीरके द्वारा किये गये समस्त पापोंको नष्ट करें।' ऐसी भावना करनी चाहिये। एक ही तिलका दान स्वर्णके बत्तीस सेर तिलके दानके समान है। तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता है। कुश में शरीरके रोमोंसे उत्पन्न हुए हैं और तिलक उत्पत्ति में पसीनेसे हुई है। इसीलिये देवताओंकी तृप्तिके लिये मुख्यरूपसे कुशकी और पितरोंकी तृप्तिके लिये तिलकी आवश्यकता होती है। देवताओं और पितरोंकी तृप्ति विश्वके लिये उपजीव्य (रक्षक) होनेके कारण विश्वकी तृप्तिमें हेतु है। अतः अपसव्य आदि श्राद्धकी जो विधियाँ बतायी गयी हैं, उन्हीं विधियोंके अनुसार मनुष्यको ब्रह्मा, देवदेवेश्वर तथा पितृजनोंको संतुष्ट करना चाहिये। अपसव्य आदि होकर [तिलका उपयोग करनेसे] ब्रह्मा, पिता और देवेश्वर तृप्त होते हैं। अपसव्य होकर कर्म करनेसे पितरोंकी संतृप्ति होती है।

कुलके मूलभागमें ब्रह्मा, मध्यभागमें विष्णु तथा अग्रभागमें शिवको जानना चाहिये; ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गये हैं। हे पक्षिराज! ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी—ये बार-बार समर्पित होनेपर भी पर्युषित नहीं माने जाते, कभी निर्माल्य अर्थात् बासी नहीं होते। इनका पूजामें कारम्भार प्रयोग किया जा सकता है। हे खगेन्द्र! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु तथा एकादशीव्रत—ये पाँचों संसारसागरमें डूबते हुए लोगोंको नौकाके समान पार कराते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! विष्णु, एकादशीव्रत, गौता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ—ये छः इस असार-संसारमें लोगोंकी मुक्ति प्रदान करनेके साधन हैं, यह षट्पदी कहलाती है—

दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवो जनार्दनः॥

दर्भांशे शंकरं विद्यात् त्रयो देवाः कुशे स्मृताः॥

विद्या मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वरः॥

१-यहाँ मण्डलका तात्पर्य है—जलसे प्रोक्षणके बाद जलसे गोलाकार रेखा बना देना और चौक आदि पूरना।

२-मम स्नेहसमुद्भूतास्तिलास्तत्तात्पर्यं पवित्रकाः। अमुना दानया दैव्या विदुर्बन्धि तिलैस्तथा॥

तिलः केतारिस्तथा कृष्णास्तिला गोमूत्रमोनिषः। दहन्तु ते मे पावनि शरीरेण कृतानि वै॥

एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणकिलैः समः। तर्पणे दानाङ्गोऽपि दत्तो भवति वासवः॥

दर्भा रोमसमुद्भूतास्तिलाः स्वदेवेषु कान्यथा। देवता दानयाम्पूजाः श्राद्धेन पित्रस्तथा॥

प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं वायुपुत्रजीवनात्। अपसव्यादिशो ब्रह्मा पितरौ देवदेवताः॥

तेन ते पितरस्तृप्ता अपसव्ये कृते मतिः। (२।१६-२१)



नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः ।  
तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग ॥  
पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धी मज्जतां नृणाम् ।  
विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः ॥  
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी ।

(२।२१-२५)

जैसे तिलकी पवित्रता अतुलनीय होती है, उसी प्रकार कुश और तुलसी भी अत्यन्त पवित्र होते हैं। ये दोनों पदार्थ मरणासन्न व्यक्तिको दुर्गतिसे उबार लेते हैं। दोनों हाथोंसे कुश उखाड़ना चाहिये और उसे पृथ्वीपर रखकर जलसे प्रोक्षित करना चाहिये तथा मृत्युकालमें मरणासन्नके दोनों हाथोंमें रखना चाहिये। जिसके हाथोंमें कुशार्थ हैं और जो कुशसे परिवेष्टित कर दिया जाता है, वह मन्त्रहीन होनेपर (उसकी समन्वय क्रियाएँ न हो पायी हों, तब) भी विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस असार संसारसागरमें भूमिको गोबरसे लोपकर उसपर मृत मनुष्यको सुलानेसे और कुशासनपर स्थित करनेसे तथा विस्तृत अग्निमें दाह करनेसे उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है।

लवण और उसका रस दिव्य (उत्तम लोकका प्रापक) है, वह प्राणियोंकी समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाला है। लवणके बिना अन्न-रस उत्कट अर्थात् न अभिव्यक्त होते हैं और न सुखादु होते हैं। इसीलिये लवण-रस पितरोंको प्रिय होता है और स्वर्गको प्रदान करनेवाला है। यह लवण-रस भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इस बातको जाननेवाले योगीजन, लवणके साथ दान करनेको कहते हैं। इस पृथ्वीपर यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री तथा शूद्र वर्णके आतुर व्यक्तिके प्राण न निकलते हों तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिये लवणका दान देना चाहिये।

हे पक्षीन्द्र! अब मृत्युके स्वरूपको विस्तारपूर्वक सुनें। मृत्यु ही काल है, उसका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। मृत्युकष्टके प्रभावसे प्राणी अपने किये कर्मोंको एकदम भूल जाता है। हे गरुड! जिस प्रकार वायु मेघमण्डलोंको

इधर-उधर खींचता है, उसी प्रकार प्राणी कालके वशमें रहता है। सात्विक, राजस और तामस—ये सभी भाव कालके वशमें हैं। प्राणियोंमें ये कालके अनुसार अपने-अपने प्रभावका विस्तार करते हैं। हे सर्पहन्ता गरुड! सूर्य, चन्द्र, शिव, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, औषधि, आठों वसु, नदी, सागर और भाव-अभाव—ये सभी कालके अनुसार यथासमय उद्भूत होते हैं, बढ़ते हैं, घटते हैं और मृत्युके उपस्थित होनेपर कालके प्रभावसे विनष्ट हो जाते हैं।

हे पक्षिन्! जब मृत्यु आ जाती है तो उसके कुछ समय पूर्व दैवयोगसे कोई रोग प्राणीके शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। इन्द्रियों विकल हो जाती हैं और बल, ओज तथा वेग क्षिप्त हो जाता है। हे खग! प्राणियोंको करोड़ों बिम्बुओंके एक साथ काटनेका जो अनुभव होता है, उससे मृत्युजनित पीड़ाका अनुमान करना चाहिये। उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जड़ता आ जाती है। तदनन्तर यमदूत उसके समीप आकर खड़े हो जाते हैं और उसके प्राणोंको बलात् अपनी ओर खींचना शुरू कर देते हैं। उस समय प्राण कण्ठमें आ जाते हैं। मृत्युके पूर्व मृतकका रूप भीभस् हो उठता है। वह फेन उगलने लगता है। उसका मुँह लारसे भर जाता है। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनेवाला वह अद्भुत-परिमाणका पुरुष हाहाकार करता हुआ तथा अपने घरको देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा यमलोक ले जाया जाता है।

मृत्युके समय शरीरमें प्रवाहित वायु प्रकुपित होकर तीव्र गतिको प्राप्त करता है और उसीकी शक्तिसे अग्नितात्व भी प्रकुपित हो उठता है। बिना ईंधनके प्रदीप्त ऊष्मा प्राणीके मर्मस्थानोंका भेदन करने लगती है, जिसके कारण प्राणीको अत्यन्त कष्टकी अनुभूति होती है। परंतु भक्तजनों एवं भोगमें अनासक्त जनोंकी अधोगतिका निरोध करनेवाला उदान नामक वायु ऊर्ध्वगतिवाला हो जाता है।

जो लोग झूठ नहीं बोलते, जो प्रीतिका भेदन नहीं करते, आस्तिक और ब्रह्मवान् हैं, उन्हें सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त होती है। जो काम, ईर्ष्या और द्वेषके कारण स्वधर्मका

परित्याग न करे, सदाचारी और सौम्य हो, वे सब निश्चित ही सुखपूर्वक मरते हैं।

जो लोग मोह और अज्ञानका उपदेश देते हैं, वे मृत्युके समय महान्धकारमें फँस जाते हैं। जो झूठी गवाही देनेवाले, असत्यभाषी, विश्वासघाती और वेदनिन्दक हैं, वे मूर्खारूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। उनको ले जानेके लिये लाठी एवं मुद्रसे युक्त दुर्गन्धसे भरपूर एवं भयभीत करनेवाले दुरात्मा यमदूत आते हैं। ऐसी भयंकर परिस्थिति



देखकर प्राणीके शरीरमें भयवश कम्पन होने लगता है। उस समय वह अपनी रक्षाके लिये अन्धव्रत माता-पिता और पुत्रको यादकर करुण-क्रन्दन करता है। उस क्षण प्रवास करनेपर भी ऐसे जीवके कण्ठसे एक शब्द भी स्पष्ट नहीं निकलता। भयवश प्राणीकी आँखें नचने लगती हैं। उसकी सँस बंद जाती है और मुँह सूखने लगता है। उसके बाद वेदनासे आविष्ट होकर वह अपने शरीरका परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबके लिये अस्मृश्य एवं घृणायोग्य हो जाता है।

हे गरुड! इस प्रकार मैंने यथाप्रसंग मृत्युका स्वरूप सुना दिया। अब आपके उस दूसरे प्रश्नका उत्तर जो बहुत ही विचित्र है, उसे सुना रहा हूँ। हे पक्षिराज! पूर्वजन्ममें किये गये भौतिक-भौतिक भोगोंका भोगता हुआ प्राणी यहाँ भ्रमण करता रहता है। देव, असुर और यक्ष आदि योनियाँ भी प्राणीके लिये सुखप्रदायिनी हैं। मनुष्य, पशु-

पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दुःखदायिनी हैं। हे खगेश्वर! प्राणीको कर्मका फल तारतम्यसे इन योनियोंमें प्राप्त होता है। अब मैं इसी प्रसंगमें आपसे कर्मविपाकका वर्णन भी करूँगा।

हे गरुड! प्राणी अपने सत्कर्म एवं दुष्कर्मके फलोंकी विविधताका अनुभव करनेके लिये इस संसारमें जन्म लेता है। जो महापातकी ब्रह्महत्यादि महापातकजन्य अत्यन्त कष्टकारी शैरवादि नरकलोकोंका भोग भोगकर कर्मक्षयके बाद पुनः इस पृथ्वीपर जिन लक्षणोंसे युक्त होकर जन्म लेते हैं, उन लक्षणोंको आप मुझसे सुनें।

हे खगेन्द्र! ज्ञाहणकी हत्या करनेवाले महापातकीको मृग, अश्व, सूकर और ऊँटकी योनि प्राप्त होती है। स्वर्णकी चोरी करनेवाला कुम्भि, कौट और पतंग-योनिमें जाता है, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवालेका जन्म क्रमशः—तृण, लता और गुल्म-योनिमें होता है। ब्रह्मघाती क्षयरोगका रोगी, मद्यपी विकृतदन्त, स्वर्णचोर कुनखी और गुरुपत्नीगामी कर्मरोगी होता है। जो मनुष्य जिस प्रकारके महापातकीयोंका साथ करता है, उसे भी उसी प्रकारका रोग होता है। प्राणी एक वर्षपर्यन्त पतित व्यक्तिका साथ करनेसे स्वयं पतित हो जाता है। परस्पर वार्तालाप करने तथा स्पर्श, निःशवास, सहयान, सहभोज, सहआसन, याजन, अभ्यापन तथा योनि-सम्बन्धसे मनुष्योंके शरीरमें पाप संक्रमित हो जाते हैं। दूसरेकी स्त्रीके साथ सहवास करने और ज्ञाहणका धन चुरानेसे मनुष्यको दूसरे जन्ममें अरण्य तथा निर्जन देशमें रहनेवाले ब्रह्मराक्षसकी योनि प्राप्त होती है। रत्नकी चोरी करनेवाला निकृष्ट योनिमें जन्म लेता है। जो मनुष्य वृद्धके पत्नीकी और गन्धकी चोरी करता है, उसे छद्मुदरकी योनिमें जाना पड़ता है। धान्यकी चोरी करनेवाला चुड़ा, यान चुरानेवाला ऊँट तथा फलकी चोरी करनेवाला बंदरकी योनिमें जाता है। बिना मन्त्रोच्चारके भोजन करनेपर कीआ, धरका सामान चुरानेवाला गिद्ध, मधुकी चोरी करनेपर मधुमक्खी, फलकी चोरी करनेपर गिद्ध, गायकी चोरी करनेपर गोह और अग्निकी चोरी करनेपर बगुलेकी योनि प्राप्त होती है। स्त्रियोंका वस्त्र चुरानेपर श्वेत कुष्ठ और रसका अपहरण करनेपर भोजन आदिमें अरुचि हो जाती



किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

है। काँसेकी चोरी करनेवाला हंस, दूसरेके धनका हरण करनेवाला अपस्मार रोगसे ग्रस्त होता है तथा गुरुहन्ता क्रूरकर्मा बौना और धर्मपत्नीका परित्याग करनेवाला शब्दवेधी होता है। देवता और ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला, दूसरेका मांस खानेवाला पाण्डुरोगी होता है। भक्ष्य और अभक्ष्यका विचार न रखनेवाला आगले जन्ममें गण्डमाला नामक महारोगसे पीड़ित होता है। जो दूसरेकी धरोहरका अपहरण करता है, वह काना होता है। जो स्त्रीके बलपर इस संसारमें जीवन-यापन करता है, वह दूसरे जन्ममें लँगड़ा होता है। जो मनुष्य पतिपरायणा अपनी पत्नीका परित्याग करता है, वह दूसरे जन्ममें दुर्भाग्यशाली होता है। अकेला मिष्टान्न खानेवाला वातगुल्मका रोगी होता है। कोई व्यक्ति यदि किसी ब्राह्मणपत्नीके साथ सहवास करे तो भ्रूण, शय्याका हरण करनेवाला दरिद्र, वस्त्रका हरण करनेवाला पतंग होता है। मात्सर्य-दोषसे युक्त होनेपर प्राणी जन्मान्ध, दीपक चुरानेवाला कपाली होता है। मित्रको हत्या करनेवाला उल्लू होता है। पिता आदि श्रेष्ठ जनोंकी निन्दा करनेसे प्राणी क्षयका रोगी होता है। असत्यवादी हकला कर बोलनेवाला और झूठी गवाही देनेवाला जलोदर-रोगसे पीड़ित रहता है।

विवाहमें विघ्न पैदा करनेवाला पापी मच्छरकी योनिमें जाता है। यदि कदाचित् उसे पुनः मनुष्यकी योनि प्राप्त भी होती है तो उसका ओठ कटा होता है। जो मनुष्य चतुष्पथपर मल-मूत्रका परित्याग करता है, वह वृषल (अपशुद्र) होता है। कन्याको दूषित करनेवाले प्राणीको मूत्रकृच्छ्र और नपुंसकताका विकार होता है। जो वेद वेचनेका अधर्म करता है, वह व्याघ्र होता है। अथान्यका यज्ञ करानेवालेको सुअरकी योनि प्राप्त होती है। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाला व्यक्ति बिलौटा और बनोंको जलानेवाला खद्योत (जुगनु) होता है। बासी एवं निषिद्ध भोजन करनेवालेको कुमि तथा मात्सर्य-दोषसे युक्त प्राणीको भ्रमरकी योनि मिलती है। घर आदिमें आग लगानेवाला कोढ़ी और अदत्तका अंदाज करनेसे मनुष्य मेल होता है। गायोंकी चोरी करनेपर सर्प तथा अन्नकी चोरी करनेपर प्राणीको अजीर्ण रोग होता है। जलकी चोरी करनेपर मछली, दूधकी चोरी करनेसे बलाकिका और

ब्राह्मणको दानमें बासी भोजन देनेसे कुबड़ेकी योनि प्राप्त होती है। हे पशुन्! जो मनुष्य फल चुराता है, उसकी संतति मर जाती है। बिना किसीको दिये अकेले भोजन करनेवाला व्यक्ति दूसरे जन्ममें संतानहीन होता है। संन्यासाश्रमका परित्याग करनेवाला (आरुद्रपति) पिशाच होता है। जलकी चोरी करनेसे चातक और पुस्तककी चोरी करनेसे प्राणी जन्मान्ध होता है। ब्राह्मणोंको देनेकी प्रतिज्ञा करके जो नहीं देते हैं, उन्हें सियारकी योनि प्राप्त होती है। झूठी निन्दा करनेवाले लोगोंको कछुएकी योनिमें जाना पड़ता है। फल बेचनेवाला दूसरे जन्ममें भग्नहीन होता है। जो ब्राह्मण शुद्रकन्यासे विवाह कर लेता है, वह भेड़ियेकी योनि प्राप्त करता है। अग्निको पैरसे स्पर्श करनेपर प्राणी बिलौटा और जीवोंका मांस खानेपर रोगी होता है। जो मनुष्य जलके स्रोतको विनष्ट करते हैं, वे मछली होते हैं। जो लोग भगवान् हरिकी कथा और साधुजनोंकी प्रशंसा नहीं सुनते, उन मनुष्योंको कर्णमूल रोग होता है। जो व्यक्ति परायेके मुँहमें स्थित अन्नका अपहरण करता है, वह मन्दबुद्धि होता है।

जो देवपूजनमें प्रयुक्त होनेवाले पात्रादिक उपकरणोंका अपहाराक है, उसे गण्डमाला-रोग होता है। दम्भके वशीभूत होकर जो प्राणी धर्माचरण करता है, उसको गजचर्मका रोग होता है। विश्वासपाती मनुष्यके शरीरमें शिरोऽर्ति-रोग होता है। शिवके धन और निर्मात्यका सेवन करनेवाला व्यक्ति शिवनपीड़ासे ग्रसित रहता है। स्त्रियों कापकी भागिनी होती है और उन्हें इन्हीं जन्तुओंकी भार्या होना पड़ता है। उक्त कर्मोंके कुफलसे प्राप्त नरकका भोग करनेके बाद मनुष्य इन्हीं सब योनियोंमें प्रविष्ट होता है, ऐसा निश्चय समझना चाहिये।

हे खगपते! जिस प्रकार इस संसारमें नाना भौतिके द्रव्य विद्यमान हैं, उसी प्रकार प्राणियोंकी विभिन्न जातियाँ भी हैं। वे सभी अपने-अपने विभिन्न कर्मोंके प्रतिफल-रूपमें सुख-दुःख एवं नाश योनियोंका भोग करते हैं। तात्पर्य यही है कि प्राणीको शुभ कर्म करनेसे शुभ फलकी प्राप्ति और अशुभ कर्म करनेसे अशुभ फलकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय २)

~~~~~



## नरकोंका स्वरूप, नरकोंमें प्राप्त होनेवाली विविध यातनाएँ तथा नरकमें गिरानेवाले कर्म एवं जीवकी शुभाशुभ गति

श्रीसूतजीने कहा—पूछे गये अपने प्रश्नोंका सम्बन्ध उत्तर सुनकर पक्षिराज गरुड अतिशय आह्लादित हो भगवान् विष्णुसे नरकोंके स्वरूपको जाननेकी इच्छा प्रकट की।

गरुडने कहा—हे उपेन्द्र! आप मुझे उन नरकोंका स्वरूप और भेद बतायें, जिनमें जाकर पापीजन अत्यधिक दुःख भोगते हैं।

श्रीभगवान्ने कहा—हे अरुणके छोटे भाई गरुड! नरक तो हजारोंकी संख्यामें हैं। सभीकी विस्तृत रूपमें बताना सम्भव नहीं है। अतः मैं मुख्य-मुख्य नरकोंको बता रहा हूँ।

हे पक्षिराज! तुम मुझसे यह जान लो कि 'रौरव' नामक नरक अन्य सभीकी अपेक्षा प्रधान है। झूटी गवाहों देनेवाला और झूठ बोलनेवाला व्यक्ति रौरव नरकमें जाता है। इसका विस्तार दो हजार योजन है। जाँघभरकी गहराईमें वहाँ दुस्तर गड्ढा है। दहकते हुए अंगारोंसे भरा हुआ वह



गड्ढा पृथ्वीके समान बराबर (समतल भूमि-जैसा) दीखता है। तीव्र अग्निसे वहाँकी भूमि भी तपता-झर-जैसी है। उसमें यमके दूत पापियोंको डाल देते हैं। उस जलती हुई अग्निसे संतप्त होकर पापी उसीमें इधर-उधर भागता है। उसके पैरमें छाले पड़ जाते हैं, जो फूटकर बहने लगते हैं। रात-दिन वह पापी वहाँ पैर उठा-उठाकर चलता है। इस प्रकार वह जब हजार योजन उस नरकका विस्तार पार कर लेता है, तब उसे पापकी शुद्धिके लिये उसी प्रकारके दूसरे नरकमें भेजा जाता है।

सं० ग० पु० अ० १३—

हे पक्षिन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें रौरव नामक प्रथम नरककी बात बता दी। अब तुम 'महारौरव' नामक नरककी बात सुनो। यह नरक पाँच हजार योजनमें फैला हुआ है। वहाँकी भूमि तबिके समान वर्णवाली है। उसके नीचे अग्नि जलती रहती है। वह भूमि विद्युत्-प्रभाके समान कान्तिमान् है। देखनेमें वह पापीजनोंको महाभयंकर प्रतीत होती है। यमदूत पापी व्यक्तिके हाथ-पैर बाँधकर उसे उसीमें लुढ़का देते हैं और वह लुढ़कता हुआ उसमें चलाता है। मार्गमें कीआ,



बगुला, भेड़िया, डलूक, मच्छर और बिच्छू आदि जीव-जन्तु क्रोधातुर होकर उसे खानेके लिये तत्पर रहते हैं। वह उस जलती हुई भूमि एवं भयंकर जीव-जन्तुओंके आक्रमणसे इतना संतप्त हो जाता है कि उसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो जाती है। वह घबड़ाकर चिल्लाने लगता है तथा बार-बार उस कष्टसे बेचैन हो उठता है। उसको वहाँ कहींपर भी शान्ति नहीं प्राप्त होती है। इस प्रकार उस नरकलोकके कष्टको भोगते हुए पापीके जब हजारों वर्ष बीत जाते हैं, तब वहाँ जाकर मुक्ति प्राप्त होती है।

इसके बाद जो नरक है उसका नाम 'अतिशीत' है। वह स्वभावतः अत्यन्त शीतल है। महारौरव नरकके समान ही उसका भी विस्तार बहुत लंबा है। वह गहन अन्धकारसे व्याप्त रहता है। असह्य कष्ट देनेवाले यमदूतोंके द्वारा पापीजन लाकर वहाँ बाँध दिये जाते हैं। अतः वे एक दूसरेका आलिंगन करके वहाँकी भयंकर ठंडकसे बचनेका

प्रयास करते हैं। उनके दाँतोंमें कटकटाइट होने लगती है। हे पक्षिराज! उनका शरीर वहाँकी उस टंडकसे काँपने लगता है। वहाँ भूख-प्यास बहुत अधिक लगती है। इसके अतिरिक्त भी अनेक कष्टोंका सामना उन्हें वहाँ करना पड़ता है। वहाँ हिमखण्डका वहन करनेवाली वायु चलती है, जो शरीरकी हड्डियोंको तोड़ देती है। वहाँकि



प्राणी भूखसे त्रस्त होकर मज्जा, रक्त और गल रही हड्डियोंको खाते हैं। परस्पर भेंट होनेपर वे सभी पापी एक-दूसरेका आलिंगन कर भ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार उस तमसावृत्त नरकमें मनुष्योंको बहुत-से कष्ट झेलने पड़ते हैं।

हे पक्षिश्रेष्ठ! जो व्यक्ति अन्यान्य असंख्य पाप करता है, वह इस नरकके अतिरिक्त 'निकुन्तन' नामसे प्रसिद्ध



दूसरे नरकमें जाता है। हे खगेन्द्र! वहाँ अनवरत कुम्भकारके चक्रके समान चक्र चलते रहते हैं, जिनके ऊपर पापीजनोंको खड़ा करके यमके अनुचरोंके द्वारा अँगुलियों स्थित कालसूत्रसे उनके शरीरकी पैरसे लेकर शिरोभागतक छेदा जाता है। फिर भी उनका प्राणान्त नहीं होता। इसमें शरीरके सैकड़ों भाग टूट-टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और पुनः इकट्ठे हो जाते हैं। इस प्रकार यमदूत पापकर्मियोंको वहाँ हजारों वर्षतक चक्कर लगावाते रहते हैं। जब सभी पापोंका विनाश हो जाता है, तब कहीं जाकर उन्हें उस नरकसे मुक्ति प्राप्त होती है।

'अप्रतिष्ठ' नामका एक अन्य नरक है। वहाँ जानेवाले प्राणी असंख्य दुःखका भोग भोगते हैं। वहाँ पापकर्मियोंके दुःखके हेतुभूत चक्र और रहट लगे रहते हैं। जबतक हजारों वर्ष पूरे नहीं हो जाते, तबतक वह रुकता नहीं। जो लोग उस चक्रपर बाँधे जाते हैं, वे जलके घटकी भाँति



उसपर घूमते रहते हैं। पुनः रक्तका यमन करते हुए उनकी आँतें मुखकी ओरसे बाहर आ जाती हैं और नेत्र आँतोंमें घुस जाते हैं। प्राणियोंको वहाँ जो दुःख प्राप्त होते हैं, वे बड़े ही कष्टकारी हैं।

हे गरुड! अब 'असिपत्रवन' नामक दूसरे नरकके विषयमें सुनो। यह नरक एक हजार योजनमें फैला हुआ है। इसकी सम्पूर्ण भूमि अग्निसे व्याप्त होनेके कारण अहर्निश जलती रहती है। इस भयंकर नरकमें सात-सात सूर्य अपनी सहस्र-सहस्र रश्मियोंके साथ सदैव तपते रहते हैं, जिनके संतापसे वहाँकि पापी हर क्षण जलते ही रहते हैं। इसी नरकके मध्य एक

चौथाई भागमें 'शीतस्निग्धपत्र' नामका वन है। हे पक्षिब्रह्म! उसमें वृक्षोंसे टूटकर गिरे फल और पत्तोंके ढेर लगे रहते हैं। मांसाहारी बलवान् कुत्ते उसमें विचरण करते रहते हैं। वे बड़े-बड़े मुखवाले, बड़े-बड़े दाँतोंवाले तथा व्याघ्रकी तरह महाबलवान् हैं। अत्यन्त शीत एवं छायासे व्याप्त उस नरकको देखकर भूख-प्याससे पीड़ित प्राणी दुःखी होकर करुण क्रन्दन करते हुए वहाँ



जाते हैं। तापसे तपती हुई पृथ्वीकी अग्निसे पापियोंके दोनों पैर जल जाते हैं, अत्यन्त शीतल वायु बहने लगती है, जिसके कारण उन पापियोंके ऊपर तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाले पत्ते गिरते हैं। जलते हुए अग्नि-समूहसे युक्त भूमिमें पापीजन छिन्न-भिन्न होकर गिरते हैं। उसी समय वहकि रहनेवाले कुत्तोंका आक्रमण भी उन पापियोंपर होने लगता है। शीघ्र ही वे कुत्ते रोते हुए उन पापियोंके शरीरके मांसको खण्ड-खण्ड करके खा जाते हैं।

हे तात! असिपत्रवन नामक नरकके विषयको मैंने बता दिया। अब तुम महाभयानक 'तप्तकुम्भ' नामवाले नरकका वर्णन मुझसे सुनो—इस नरकमें चारों ओर फैले हुए अत्यन्त गरम-गरम घड़े हैं। उनके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित रहती है, वे उबलते हुए तेल और लौहके चूर्णसे भरे रहते हैं। पापियोंको ले

जाकर उन्हींमें औंधे मुख डाल दिया जाता है। गलती हुई मञ्जारूपी जलसे युक्त उसीमें फूटते हुए अङ्गुलीवाले पापी काढ़ाके समान बना दिये जाते हैं। तदनन्तर



भयंकर यमदूत नुकीले हथियारोंसे उन पापियोंकी खोपड़ी, औंछी तथा हड्डियोंको छेद-छेदकर नष्ट करते हैं। गिड़ बड़ी तेजीसे वहाँ आकर उनपर झपट्टा मारते हैं। उन उबलते हुए पापियोंको अपनी चौंचसे खींचते हैं और फिर उसीमें छोड़ देते हैं। उसके बाद यमदूत उन पापियोंके सिर, स्नायु, इषीभूत मांस, त्वचा आदिकी जल्दी-जल्दी करछूलसे उसी तेलमें घूमते हुए उन महापापियोंको काढ़ा बना डालते हैं।

हे पक्षिन्! यह तप्तकुम्भ—जैसा है, उस बातको विस्तारपूर्वक मैंने तुम्हें बता दिया। सबसे पहले नरकको रौरव और दूसरे उसके बादवालेको महारौरव नरक कहा जाता है। तीसरे नरकका नाम अतिशीत एवं चौधेका नाम निकृन्तन है। पाँचवाँ नरक अप्रतिष्ठ, छठा असिपत्रवन एवं सातवाँ तप्तकुम्भ है। इस प्रकार ये सात प्रधान नरक हैं। अन्य भी बहुत-से नरक सुने जाते हैं, जिनमें पापी अपने कर्मोंके अनुसार जाते हैं। यथा—रोध, सूकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाज्वाल, सखल, विमोहन, कृमि, कृमिभक्ष, तालाभक्ष, विषह्वन, अधःशिर, पूषवह, रुधिरान्ध, विह्वज, वैतरणी, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, संदश, अभोजन, तमसू, कालसूत्र, लौहतापी, अभिष्ट, अप्रतिष्ठ तथा अवीचि आदि।



सन्दंश, तप्तसुवि, वीतराणी, अन्धकृ, प्राणरोध और वडकण्टक-शास्वाली नरक



—ये सभी नरक यमके राज्यमें स्थित हैं। पापीजन पृथक्-पृथक् रूपसे उनमें जाकर गिरते हैं। रौरव आदि सभी नरकोंकी अवस्थिति इस पृथ्वीलोकसे नीचे मानी गयी है। जो मनुष्य गीकी हत्या, भूषहत्या और आग लगानेका दुष्कर्म करता है, वह 'रोध' नामक नरकमें गिरता है। जो ब्रह्मघाती, मद्यपी तथा सोनेकी चोरी करता है, वह 'सूकर' नामके नरकमें गिरता है। अश्रिय और वैश्यको हत्या करनेवाला 'ताल' नामक नरकमें जाता है।

जो मनुष्य ब्रह्महत्या एवं गुरुपत्नी तथा बहनके साथ सहवास करनेकी दुष्टेष्टा करता है, वह 'तप्तकुम्भ' नामक नरकमें जाता है। जो असत्य-सम्भाषण करनेवाले राजपुरुष हैं, उनको भी उक्त नरककी ही प्राप्ति होती है। जो प्राणी निषिद्ध पदार्थोंका विक्रेता, मदिराका व्यापारी है तथा स्वामिभक्त सेवकका परित्याग करता है, वह 'तप्तलीह' नामक नरकको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति कन्या या पुत्रवधूके साथ सहवास करनेवाला है, जो वेद-विक्रेता और वेदानन्दक है, वह अन्तमें 'महान्वात' नामक नरकका वासी होता है। जो गुरुका अपमान करता है, शब्दस्वाप्तसे उनपर प्रहार करता है तथा अगम्या स्त्रीके साथ मैथुन करता है, वह 'शबल' नामक नरकमें जाता है।

शौर्य-प्रदर्शनमें जो वीर मर्यादाका परित्याग करता है, वह 'विमोहन' नामक नरकमें गिरता है। जो दूसरेका अश्लिष्ट करता है, उसे 'कृमिभक्ष' नामक नरककी प्राप्ति होती है। देवता और ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाला प्राणी 'सालाभक्ष' नरकमें जाता है। जो परायी धरोहरका अपहर्ता है तथा जो बाग-बागीचीमें आग लगाता है, उसे 'विचञ्जन' नामक नरककी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य असत्-पत्रसे दान लेता है तथा असत् प्रतिग्रह लेनेवाला, अयाज्यायाजक और जो नक्षत्रसे जीविकोपार्जन करता है, वह मनुष्य 'अधःशिर' नरकमें जाता है। जो मदिरा, मांस आदि पदार्थोंका विक्रेता है, वह 'पूयवह' नामक घोर नरकमें गिरता है। जो कुक्कुट, बिल्ली, सुअर, पक्षी, मृग, भेड़को बाँधता है, वह भी उसी प्रकारके नरकमें जाता है। जो गृहदाही है, जो विषदाता है, जो कुण्डाशी है, जो सोमविक्रेता है, जो मद्यपी है, जो मांसभोजी है तथा जो पशुहन्ता है, वह व्यक्ति 'रुधिरान्ध'

नामक नरकमें जाता है, ऐसा विद्वानोंका अभिमत है। एक ही पक्षमें बैठे हुए किसी प्राणीको धोखा देकर जो लोग विष खिला देते हैं, उन सभीको 'विहभुज' नामक घोर नरक प्राप्त होता है। मधु निकालनेवाला मनुष्य 'वैतरणी' और क्रोधी 'मूत्रसंहक' नामक नरकमें जाता है। अपवित्र और क्रोधी व्यक्ति 'असिपत्रवन' नामक नरकमें जाता है। मृगोंका शिकार करनेवाला व्याध 'अग्निज्वाल' नामक नरकमें जाता है, जहाँ उसके शरीरको नोच-नोचकर कौवे खाते हैं।

पशुकर्ममें दोषित होनेपर जो व्रतका पालन नहीं करता, उसे उस पापसे 'संदंश' नरकमें जाना पड़ता है। यदि स्वप्नमें भी संन्यासी या ब्रह्मचारी स्खलित हो जाते हैं तो वे 'अधोजन' नामक नरकमें जाते हैं। जो लोग क्रोध और हर्षसे भरकर वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध कर्म करते हैं, उन सबको नरकलोककी प्राप्ति होती है।

सबसे ऊपर भयंकर गर्मीसे संतप्त रौरव नामक नरक है। उसके नीचे अत्यन्त दुःखदायी महारौरव है। उस नरकसे नीचे शीतल और उस नरकके बाद नीचे 'तामस' नरक माना गया है। इसी प्रकार बताये गये क्रमसे अन्य नरक भी नीचे ही हैं।

इन नरकलोकोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों नरक हैं, जिनमें पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता है, विदीर्ण होता है, चूर्ण किया जाता है, गीला होता है, क्वाथ बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे प्रताड़ित किया जाता है—ऐसे नरकोंमें एक दिन सौ वर्षके समान होता है। सभी नरकोंसे भोग भोगनेके बाद पापी तिर्यक्-योनिमें जाता है। तत्पश्चात् उसको कृमि, कीट, पतंग स्थावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती है। तदनन्तर मनुष्य जंगली हाथी आदिकी योनियोंमें जाकर गीकी योनिमें पहुँचता है। हे गरुड! गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर मृग, शरभ और चमरी—ये छः योनियाँ एक खुरवाली होती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी हैं, जिनमें जीवात्माको कष्ट भोगना पड़ता है। उन सभी योनियोंको पाकर प्राणी मनुष्य-योनिमें आता है और कुबड़ा, कुत्तित्त, वामन, चाण्डाल और पुल्कश आदि नर-

योनिधर्मोंमें जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित जीव बार-बार गर्भमें जाते हैं और मृत्युको प्राप्त होता है। उन सभी पापोंके समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय आदिको आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण, देव और इन्द्रावके पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड! यमद्वारा निर्दिष्ट योनिमें पुण्यगति प्राप्त करनेमें जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे सुन्दर-सुन्दर गीत गाते, वाद्य बजाते और नृत्यादि करते हुए प्रसन्नचित्त गन्धर्वोंके साथ, अच्छे-से-अच्छे हार, नूपुर आदि नाना प्रकारके आभूषणोंसे युक्त, चन्दन आदिकी दिव्य सुगन्ध



और पुष्पोंके हारसे सुवासित एवं अलंकृत चमचमाते हुए विमानमें स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्य-समाप्तिके पश्चात् जब वे वहाँसे पुनः पृथ्वीपर आते हैं तो राजा अथवा महारत्नाओंके घरमें जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं। समस्त भोगोंको प्राप्त करके पुनः स्वर्गको प्राप्त करते हैं अन्यथा पहलेके समान आरोहिणी-योनिमें जन्म लेकर दुःख भोगते हैं।

मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीका मरना तो निश्चित है। पापियोंका जीव अधोमार्गसे निकलता है। तदनन्तर

पृथ्वीतत्त्वमें पृथ्वी, जलतत्त्वमें जल, तेजतत्त्वमें तेज, वायुतत्त्वमें वायु, आकाशतत्त्वमें आकाश तथा सर्वव्यापी मन चन्द्रमें जाकर विलीन हो जाता है। हे गरुड! शरीरमें काम, क्रोध एवं पछेन्द्रियाँ हैं। इन सभीको शरीरमें रहनेवाले चोरकी संज्ञा दी गयी है। काम, क्रोध और अहंकार नामक विकार भी उसीमें रहनेवाले चोर हैं। उन सभीका नापक मन है। इस शरीरका संहार करनेवाला काल है, जो पाप और पुण्यसे जुड़ा रहता है। जिस प्रकार घरके जल जानेपर व्यक्ति अन्य घरकी शरण लेता है, उसी प्रकार पछेन्द्रियोंसे युक्त जीव इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंके साथ शरीरका परित्याग कर नये शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। शरीरमें रक्त-मज्जादि सात धातुओंसे युक्त यह पादकौशिक शरीर है। सभी प्राण, अपान आदि पञ्च वायु, मल-मूत्र, व्याधियाँ, पित्त, श्लेष्म, मज्जा, मांस, मेदा, अस्त्रि, शुक्र और स्नायु-ये सभी शरीरके साथ ही अग्निमें जलकर भस्म हो जाते हैं।

हे ताक्ष्ण! प्राणियोंके विनाशको मैंने तुम्हें बता दिया। अब उनके इस शरीरका जन्म पुनः कैसे होता है, उसकी मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

यह शरीर नसोंसे आबद्ध, श्रोत्रादिक इन्द्रियोंसे युक्त और नवद्वारोंसे समन्वित है। यह सांसारिक विषय-वासनाओंके प्रभावसे व्याप्त, काम-क्रोधादि विकारसे समन्वित, राग-द्वेषसे परिपूर्ण तथा तृष्णा नामक भयंकर चोरसे युक्त है। यह लोभरूपी जालमें फँसा हुआ और मोहरूपी वस्त्रसे ढका हुआ है। यह मायासे धलीभौति आबद्ध एवं लोभसे अधिष्ठित पुरके समान है। सभी प्राणियोंका शरीर इनसे व्याप्त है। जो लोग अपनी आत्माको नहीं जानते हैं, वे पशुओंके समान हैं।

हे गरुड! यौघसी लाख योनियाँ हैं और उद्भिज्ज (पृथ्वीमें अंकुरित होनेवाली वनस्पतियाँ), स्वेदज (पसीनेसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डज (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-में यह सम्पूर्ण सृष्टि विभक्त है। (अध्याय ३)

आसन्नमृत्यु-व्यक्तिके निमित्त किये जानेवाले प्रायश्चित्त, दस दान आदि विविध कर्म, मृत्युके बाद किये जानेवाले कर्म, षट्पिण्डदान, दाह-संस्कारसे पूर्व किये जानेवाले कर्म, दाह-संस्कारके बाद अस्थिसंचयनादि कर्म तथा गृहप्रवेशके समयके कर्म, दुर्मृत्युकी गति, नारायण-बलिका विधान, पुत्तलदाहविधि तथा पञ्चक मृत्युके कृत्य

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जानमें या अनजानमें मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोंकी शुद्धिके लिये उन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो विद्वान् है वह पहले पवित्र करनेवाले भस्म आदि दस स्नान करे और पापोंके प्रायश्चित्तके रूपमें शास्त्रोक्त कृच्छ्रादि व्रत अथवा तपस्सिद्धिभूत गोदानादि क्रिया करे। यदि मनुष्य उनमें अधमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा ही सही, यदि आधा भी न हो तो उसका ही आधा सही और नहीं तो उस आधेका भी आधा उसे कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। तत्पश्चात् यथासाधर्म्य दस प्रकारके दान देनेका विधान है, उसको सुनो।

गो, भूमि, तिल, हिरण्य, घृत, वस्त्र, धान्य, मुद्ग, रजत और लवण—ये दस दान हैं—

गोभूमितिलहिरण्यघृतवासोधान्यमुद्गास्ताथा ।

रजतं लवणं चैव दानानि दश वै विदुः॥

(४।४)

यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं, वे अत्यन्त दुर्गन्धदायक मवादादि तथा रक्तादिसे परिष्कृत हैं। अतः उस मार्गमें स्थित वैतरणी नदीको पार करनेके लिये वैतरणी गौका दान करना चाहिये। जो गौ सर्वाङ्गमें काली हो, जिसके स्तन भी काले हों, उसे वैतरणी गौ माना गया है।

तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि और गौ—ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामें एकसे बढ़कर एक हैं। इन आठ दानोंको महादान कहा जाता है। इनका दान उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये—

तिला लोहे हिरण्यं च कर्पासं लवणं तथा ।

सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥

एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये।

(४।७-८)

अब पददानका वर्णन सुनो। छत्र, जूता, वस्त्र, अंगूठी, कमण्डलु, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ—ये आठ प्रकारके पद हैं—

छत्रोपासहस्रवाणि मुद्रिका च कमण्डलुः ।

आसनं धावनं भोज्यं पदं चाष्टविधं स्मृतम्॥

(४।९)

तिलपात्र, घृतपात्र, सप्पा, उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो, वह सब देना चाहिये। अध, रघ, भैस, भोजन, वस्त्रका दान ब्राह्मणोंको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये।

हे पक्षिराज! इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायश्चित्त कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है, वैतरणी गौ एवं महादान कर चुका है, तिलसे भरा पूर्ण पात्र, घोसे भरा हुआ पात्र, शय्यादान और विधिवत् पददान करता है तो वह नरकरूपी गर्भमें नहीं जाता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता—

प्रायश्चित्तं कृतं येन दश दानान्यपि क्षितीं॥

दानं गोवैतरण्याह दानान्यष्टौ तथापि वा ।

तिलपात्रं सर्पिःपात्रं शय्यादानं तथैव च॥

पददानं च विधिवन्तासौ निरयमर्भगः।

(४।१२-१४)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण दान करनेकी इच्छा रखते हैं, क्योंकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है, इस पृथ्वीपर मरणासन्न प्राणीके प्राण जब न निकल रहे हों तो उस समय लवण-रसका दान उसके हाथसे दिलवाना चाहिये; क्योंकि यह दान उसके लिये

स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ दान देता है, परलोकमें वह सब उसे प्राप्त होता है। यहाँ उसके आगे रखा हुआ मिलता है। हे पशु! जिसने यथाविधि अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, वही पुरुष है। वही अपने पापोंको भस्मसात् करके स्वर्गलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है।

हे खगराज! गौका दूध अमृत है। इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त करता है। पहले कहे गये तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर प्राणी गन्धर्वलोकमें निवास करता है। समलोकका मार्ग अत्यधिक भीषण तापसे युक्त है, अतः छत्रदान करना चाहिये। छत्रदान करनेसे मार्गमें सुख प्रदान करनेवाली छाया प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस जन्ममें पादुकाओंका दान देता है, वह 'असिपत्रवन'के मार्गको घोंड़ेपर सवार होकर सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमें सुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सुखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दूत महाक्रोधी और महाभयंकर हैं। काले एवं पीले वर्णवाले उन दूतोंको देखनेमात्रसे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषणादिका दान करनेसे ये यमदूत प्राणीको कष्ट नहीं देते हैं। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोंका विनाश कर देता है। मनुष्य धृतपात्रका दान करनेसे रुद्रलोक प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनोंसे युक्त शय्याका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें नाना प्रकारकी अप्सराओंसे युक्त विमानमें चढ़कर साठ हजार वर्षतक अमरावतीमें झीझ करके इन्द्रलोकके बाद गिरकर पुनः इस पृथ्वीलोकमें आकर राजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोंसे सजे-धजे, दोररहित जवान घोड़ेका दान ब्राह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश! दानमें दिये गये इस घोड़ेके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गके लोकोंका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त चार

घोड़ोंवाले रथका दान देकरके राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति सुपात्र ब्राह्मणको दुग्धवती, नवीन मेघके समान वर्णवाली, सुन्दर जघन-प्रदेशसे युक्त और मनमोहक तिलकसे समन्वित भैंसका दान देता है तो वह परलोकमें जाकर अभ्युदयको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तालपत्रसे बने हुए पंखेका दान करनेसे मनुष्यको परलोकगमनके मार्गमें वायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र-दान करनेसे व्यक्ति परलोकमें शोभासम्पन्न शरीर और उसके लोकके वैभवसे सम्पन्न हो जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोंसे युक्त घरका दान देता है, उसके वंशका कभी विनाश नहीं होता है और वह स्वर्ग स्वर्गका सुख प्राप्त करता है। हे खगेन्द्र! इन बताये गये सभी प्रकारके दानोंमें प्राणीकी ब्रह्मा तथा अब्रह्मासे आयी हुई दानकी अधिकता और कमीके कारण उसके फलमें ब्रह्मता और लघुता आती है।

इस लोकमें जिस व्यक्तिने जल एवं रसका दान किया है, वह आपद्कालमें आह्लादका अनुभव करता है। जिस मनुष्यने ब्रह्मापूर्वक इस संसारमें अन्न-दान दिया है, वह परलोकमें अन्न-भक्षणके बिना भी वही तृप्ति प्राप्त करता है, जो उत्तमोत्तम अन्नके भक्षणसे प्राप्त होती है। मृत्युके संनिघट आ जानेपर यदि मनुष्य यथाविधि संन्यासाश्रमको ग्रहण कर लेता है तो वह पुनः इस संसारमें नहीं आता, अपितु उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

यदि मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किसी पवित्र तीर्थमें ले जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थमें हो जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है तथा यदि प्राणी मार्गके बीच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता है। हे, साध ही उसको तीर्थतक ले जानेवाले लोग पग-पग-पग यज्ञ करनेके समान फल प्राप्त करते हैं—

आसन्नमरणो मार्यक्षेत्रीर्थं प्रतिनीयते।  
तीर्थप्राप्ती भवेत्युक्तिप्रियते यदि मार्गगः।  
पदे पदे क्रतुसमं भवेत्तस्य न संशयः॥

(४।३८)

हे द्विज! मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष्य



विधिवत् उपवास करता है, वह भी मृत्युके पश्चात् पुनः इस संसारमें नहीं लौटता है।

हे खगेश! मृत्युके संनिवृत्त होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यके क्या कर्तव्य है? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मरा हुआ जानकर उसके पुत्रादिक परिजनोंको चाहिये कि वे सभी शवको शुद्ध जलसे स्नान कराकर नवीन वस्त्रसे आच्छादित करें। तदनन्तर उसके शरीरमें चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंका अनुलेप भी करें। उसके बाद जहाँ मृत्यु हुई है, उसी स्थानपर एकोटि ब्राह्मणोंका आवाहन चाहिये। दाहकर्मके पूर्व शवको दाहके योग्य बनानेके लिये ऊपर बताये गये कर्म अनिवार्य हैं। इस एकोटि ब्राह्मणोंमें आसन तथा प्रोक्षण क्रिया होनी चाहिये, किंतु आवाहन, अर्चन, पात्रालम्भन और अवगाहन—ये चार क्रियाएँ नहीं करनी चाहिये। उस समय पिण्डदान अनिवार्य है, अन्नदानका संकल्प भी हो सकता है। रेखाकरण, प्रत्यवनेजन नहीं होता और दिये गये पदार्थके अक्षय्यकी कामना करनी चाहिये। अक्षय्योदक दान देना चाहिये। स्वधावाचन, आसीर्वाह और तिलक—ये तीन नहीं होने चाहिये। उद्दमसे परिपूर्ण घट और लोहेकी दक्षिणा ब्राह्मणकी प्रदान करनेका विधान है। तत्पश्चात् पिण्ड हिलाना चाहिये। किंतु उस समय आच्छादन, विसर्जन तथा स्वस्तिवाचन—ये तीन वर्जित हैं। हे खगेश! मरणस्थान, द्वार, चत्वर, विश्रामस्थान, काष्ठ-चयन और अस्थि-संचयन—ये छः पिण्डदानके स्थान हैं।

प्राणीकी मृत्यु जिस स्थानपर होती है, वहाँपर दिये जानेवाले पिण्डका नाम 'शव' है, उससे भूमिदेवताकी तुष्टि होती है। द्वारपर जो पिण्ड दिया जाता है उसे 'पान्थ' नामक पिण्ड कहते हैं। इस कर्मको करनेसे वास्तुदेवताको प्रसन्नता होती है। चत्वर अर्थात् चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डका दान करनेपर भूतादिक, गगनचारी देवतागण प्रसन्न होते हैं। शवके विश्राम भूमिमें 'भूत-संज्ञक' पिण्डका दान करनेसे दसों दिशाओंको संतुष्टि प्राप्त होती है। चितामें 'साधक' नामका और अस्थि-संचयनमें 'प्रेत-

संज्ञक' पिण्ड दिया जाता है।

शवपात्रके समय पुत्रादिक परिजन तिल, कुश, घृत और ईंधन लेकर 'यमगाथा' अथवा वेदके 'यमसूक्त'का पाठ करते हुए श्मशानभूमिकी ओर जाते हैं। प्रतिदिन गौ, अश्व, पुरुष और बैल आदि चराचर प्राणियोंको अपने ओर खींचते हुए यम संतुष्ट नहीं होते हैं, जिस प्रकार कि मद्य पीनेवाला संतुष्ट नहीं होता।

'३५ अपेक्षेति०' इस यमसूक्तका अथवा 'यमगाथा' का पाठ शवपात्रके मार्गमें करना चाहिये। सभी बन्धु-बान्धवोंको दक्षिण दिशामें स्थित श्मशानकी वनभूमिमें शवको ले जाना चाहिये। हे पशुन्! पूर्वोक्त विधिसे मार्गमें दो ब्राह्मणोंका आवाहन चाहिये। उसके बाद श्मशानभूमिमें पहुँचकर भीरसे शवको पृथ्वीपर उतारते हुए दक्षिण दिशाकी ओर सिर स्थापित कर चित्ताभूमिमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार ब्राह्मणोंका आवाहन चाहिये। शव-दाहकी क्रियाके लिये पुत्रादिक परिजनोंको स्वयं तृण, काष्ठ, तिल और घृत आदि ले जाना चाहिये। शूद्रोंके द्वारा श्मशानमें पहुँचायी गयी वस्तुओंसे वहाँ किया गया सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाता है। वहाँपर सभी कार्य अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। हे पशुन्! शस्त्रसम्मत विधिके अनुसार एक वेदीका निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतवस्त्र अर्थात् कफनको दो भागोंमें फाड़ कर उसके आधे भागसे उस शवको ढक दे और दूसरे भागको श्मशानमें निवास करनेवाले प्राणीके लिये भूमिपर ही छोड़ दे। उसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार मरे हुए व्यक्तिके हाथमें पिण्डदान करे। तदनन्तर शवके सम्पूर्ण शरीरमें घृतका लेप करना चाहिये।

हे खगेश! प्राणीकी मृत्यु और दाह-संस्कारके बीच पिण्डदानकी जो विधि है, अब उसे सुनो।

पहले बताये गये मृतस्थान, द्वार, चौराहे, विश्रामस्थान तथा काष्ठसंचयनस्थानमें प्रदत्त पाँच पिण्डोंका दान करनेसे शवमें की आहुति (अग्निदाह)—की योग्यता आ जाती है, अथवा किसी प्रकारके प्रतिबन्धके कारण उपर्युक्त पिण्ड नहीं दिये गये तो शव राक्षसोंके भक्षण योग्य हो जाता है। अतः स्वच्छ भूमिपर बनी हुई वेदीको भलीभाँति मार्जन,

१-यहाँ एकोटिका तात्पर्य मरणस्थानपर यथाविधान एक पिण्डके दानसे है।

२-अहरहनीयमानो गमयं पुरुषं वृषम्। वैवस्वतो न हृष्येत सुरया शिव्य दुर्मतिः॥ (२।५३) इसीका नाम यमगाथा है।

३-यजु० अ० ३५ 'यमसूक्त' कहलाता है।

उपलेपनके द्वारा शुद्ध कर उसके ऊपर यथाविधि अग्नि को स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर पुष्प-अक्षत आदिसे क्रव्याद नामवाले अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके दाह करे। दाहकार्यमें चाण्डालके घरकी अग्नि, चिताकी अग्नि और पापीके घरकी अग्निका प्रयोग नहीं करना चाहिये और निम्नलिखित मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं भूतकृजगद्योनिस्त्वं लोकपरिपालकः॥

उपसंहार तस्मात्त्वमेनं स्वर्गं नयामृतम्।

(४।६४-६५)

‘हे देव। आप भूतकृ हैं। हे देव। आप इस संसारके योनिस्वरूप और सभीके पालनहार हैं। इसलिये आप इस शवका अपनेमें उपसंहार करके अमृतस्वरूप स्वर्गमें ले जाइये’।

इस प्रकार क्रव्याद देवकी विधिवत् पूजा कर शवको चिताकी अग्निमें जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शवके शरीरका आधा भाग उस अग्निमें जल जाय तो उस समय क्रिया करनेवाले व्यक्तिको निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वद्वयं जायतां पुनः॥

‘असौ स्वर्गाय लोकाय स्याद्’॥

(४।६६-६७)

अर्थात् हे देव। आप इसीसे उत्पन्न हुए हैं। यह शरीर पुनः आपसे उत्पन्न हो। अमुक नामवाला यह प्राणी स्वर्गलोकको प्राप्त करे—ऐसा कहकर तिलमिश्रित आज्ञाहुति चितामें जल रहे शवके ऊपर छोड़े। उसके बाद भागविह्वल होकर उस आत्मीयजनके लिये रोना चाहिये। इस कृत्यको करनेसे उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाह-क्रिया करनेके पश्चात् अस्थि-संचयन क्रिया करनी चाहिये। हे खगराज! दाहकी पीड़ाकी शान्तिके लिये प्रेत-पिण्ड भी प्रदान करे। तत्पश्चात् वहाँपर गये हुए सभी लोग चिताकी प्रदक्षिणा कर कनिष्ठादि क्रमसे सूख जपते हुए स्नानके लिये जलाशय आदिपर जायें। वहाँ पहुँचकर अपने वस्त्रोंका प्रक्षालनकर पुनः उन्हें ही पहनकर मृत व्यक्तिका ध्यान करते हुए उसे जल-दान देनेकी प्रतिज्ञा करें और मृत व्यक्तिके प्रेतरूपमें जल-दान देनेकी आज्ञा दी है—ऐसी

भावना करते हुए पुनः जलमें मौन धारणपूर्वक प्रवेश करें और यथाधिकार एक वस्त्र होकर अपनी शिखा खोलकर तथा अपसव्य होकर स्नान करें। यह स्नान दक्षिणाभिमुख होकर ‘अपनः शोशुंचदधम्’ इस वेदमन्त्रका उच्चारण करते हुए करना चाहिये। उस समय स्नान करनेवाले लोगोंका जलका आलोढन नहीं करना चाहिये। तत्पश्चात् किनारे आ करके अपनी शिखाको बाँध ले और सीधे कुशको दक्षिणाग्र करके दोनों हाथोंमें रखकर अञ्जलिसे तिलयुक्त जल लेकर पितृतीर्थसे दक्षिण दिशामें एक बार, तीन बार अथवा दस बार भूमिपर या पत्थरपर जल-दान करे। इस समय तिलाञ्जलि देनेवाले परिजनोंको कहना चाहिये कि ‘हे अमुक गोत्रमें उत्पन्न अमुक नामवाले प्रेत। तुम मेरे द्वारा दिये जा रहे इस तिलोदकसे संतृप्त हो। मैं तुम्हें तिलाञ्जलि दे रहा हूँ, अतः इसको ग्रहण करनेके लिये तुम यहाँपर उपस्थित होओ’।

हे कश्यपपुत्र गरुड। तत्पश्चात् जलसे निकलकर वस्त्र पहनकर स्नान-वस्त्रको एक बार निचोड़कर पवित्र भूमिपर बैठ जायें। शवदाह तथा तिलाञ्जलि देकर मनुष्यको अश्रुपात नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस समय रोते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा जीख और मुँहसे गिराये आँसू एवं कफको मरा हुआ व्यक्ति पिबल होकर पान करता है। अतः रोना नहीं चाहिये, अपितु यथाशक्ति क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर कोई पुराणज्ञ संसारकी अनित्यताको कटता हुआ मृतकके परिजनोंको इस प्रकारका उपदेश देकर शोकनिवारण करनेका प्रयत्न करे—‘मनुष्यका यह शरीर केलेके वृक्षके समान बड़ा ही सरहोण एवं जलके बुदबुदेके समान क्षणभंगुर है। इसमें जो सारतत्त्वको खोजता है, वह महामूर्ख है। यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायुत्व—इन पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ यह शरीर पुनः अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार उन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें जाकर विस्तीर्ण हो जाता है तो उसके लिये रोना क्या? जब पृथ्वी, समुद्र तथा देवलोक विनष्ट हो जाते हैं तो फेनके समान प्रसिद्ध यह मर्त्यलोक नष्ट नहीं होगा?’ इस उपदेशको सुनकर वे सभी परिवारके सदस्य अपने घरको जायें। पहलेसे घरके

द्वारपर रखी हुई नीमकी पत्तियोंको चबाकर आचमन करें। तदनन्तर अग्नि, जल, गोबर, श्वेत सरसों, दुर्वा, प्रवाल, वृषभ तथा अन्य माङ्गलिक वस्तुओंका हाथसे स्पर्श करके पैरसे पत्थरका भी स्पर्श करें और धीरे-धीरे घरमें प्रवेश करें।

जो व्यक्ति विद्वान् है, वह अपने अग्निहोत्री परिजनकी मृत्यु होनेपर उसका दाह-संस्कार श्रौतकी अग्निके द्वारा ही यथाविधि करे। दो वर्षसे कम आयुवाले छोटे बालककी मृत्यु होनेपर उसको श्मशानभूमिमें गङ्गा खोदकर मिट्टीसे ढक देना चाहिये। उसके लिये उदक-क्रियाका विधान नहीं है। जो स्त्री पतिव्रता है, यदि वह मरे हुए पतिका अनुगमन करना चाहती है तो धर्मविहित नियमोंके अनुसार पतिको प्रणाम करके चितामें प्रवेश करे। जो स्त्री जीवनके व्यामोहसे चितापर चढ़कर पुनः बाहर आ जाती है, उसे 'प्राजापत्यव्रत' करना चाहिये।

मनुष्यके शरीरमें साढ़े तीन करोड़ रोंवे होते हैं, जो स्त्री पतिका अनुगमन करती है, उतने कालतक वह स्वर्गमें वास करती है। जिस प्रकार सर्पको पकड़नेवाला सर्परा बिलसे सर्पको बलशत बाहर निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिका अनुगमन करनेवाली सती नारी अपने पतिका उद्धार कर उसके साथ स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करती है। अतएव उसका सम्मान करती हैं तथा वह पतिव्रता नारी तबतक पतिके साथ सुखोपभोग करती है, जबतक चौदह इन्द्रोंकी अवधि पूर्ण नहीं हो जाती है। यदि पति ब्रह्महत्याया, कृतघ्न या मित्रघाती हो, फिर भी सधवा स्त्री मृत्यु होनेपर पतिके साथ सती होकर उसे पवित्र कर देती है। पतिके मर जानेपर जो स्त्री उसीके साथ अग्निमें अपने शरीरको भेंट कर देती है, वह अरुन्धतीके समान आचरण करती हुई स्वर्गलोकमें जाकर सम्मान प्राप्त करती है।

पतिकी मृत्यु होनेपर जबतक स्त्री अपनेको चिताकी भेंट नहीं चढ़ा देती है, तबतक वह स्त्रीके शरीरसे किसी प्रकार मुक्त नहीं हो सकती है। जो स्त्री अपने पतिके साथ सती हो जाती है, वह पितृकुल, मातृकुल और पतिकुल—इन तीनों कुलोंको पवित्र कर देती है। जो स्त्री पतिके दुःखमें दुःखी, सुखमें सुखी, विदेशगमनमें मलिनवस्त्रा, कृशकाय तथा मृत्यु होनेपर चितामें उसीके साथ जलकर

मृत्युका संवरण करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता मानना चाहिये। पतिव्रतधर्मका पालन करनेवाली स्त्री पतिकी मृत्यु हो जानेपर पृथक् चितामें समारूढ होकर परलोक-गमनके योग्य नहीं होती। शत्रियादि सभी सवर्णा स्त्रियोंको अपने पतिके साथ ही चितामें आरोहणकर परलोकसुख प्राप्त करना चाहिये। ब्राह्मणवर्णकी स्त्रीसे लेकर चाण्डालवर्णकी स्त्रीके लिये पतिके साथ चितामें जलकर सती होनेका विधान एक समान ही है। पतिकी मृत्युके समय जो स्त्रियाँ गर्भमें रहित हैं और जिनके छोटे-छोटे बच्चे नहीं हैं, उन सभीको सतीधर्मका पालन करना चाहिये।

हे पश्चिन्! मनुष्यके दाह-संस्कारकी जो विधि है, उसको सामान्य रूपसे मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

इसपर गरुडने कहा—हे संसारके स्वामिन्! यदि प्रवासकालमें पतिकी मृत्यु हो जाती है और उसकी अस्थिर्य भी स्त्रीको नहीं प्राप्त होती है तो उसका दाह किस प्रकारसे करना चाहिये, यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! यदि प्रवासी पतिकी अस्थिर्य नहीं प्राप्त होती है तो मैं उसकी भी सदातिका विधान तुम्हें सुनाता हूँ। उस परम गोपनीय तत्त्वको तुम सुनो। जो प्राणी भूखसे पीड़ित होनेके कारण मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो व्याघ्रादि हिंसक प्राणियोंके द्वारा मारे जाते हैं, जिनकी मृत्यु गलेमें फाँसीका फन्दा लगानेसे हो जाती है, शरीरकी क्षीणताके कारण जिनकी मृत्यु होती है, जो हाथोंके द्वारा मारे जाते हैं, जो विष, अग्नि, बिल और ब्राह्मण-तापसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, जिनकी मृत्यु हैजासे होती है, जो आत्मघाती हैं, जो गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किये गये बन्धन अथवा जलमें डूबनेसे मर जाते हैं, उनकी स्थितिको तुम सुनो।

जो सर्प, व्याघ्र, भृंगधारी पशु, उपसर्ग (चेचक), पत्थर, जल, ब्राह्मण, जंगली हिंसक पशु, वृक्षपात और विद्युत्पातसे और लोहेसे, पर्वतपरसे गिरनेसे अथवा दीवालके गिरनेसे, पहाड़के खड़े कगारसे, खाट या मध्य कक्षमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, ऋतुमती, चाण्डाली, शूद्रा तथा धोषिन आदि त्याग्य स्त्रियोंका संसर्ग, शारीरिक स्पर्श या

अधरोंका पान करते हुए जो लोग मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो शस्त्राघातसे मरते हैं, विषैले कुत्तेके मुखका स्पर्श करनेसे जिनकी मृत्यु हो जाती है, विधि-विहीन रूपमें जो मृत्यु हो जाती है, उसको दुर्मरण समझना चाहिये। उसी पापसे नरकोंको भोगकर वे पुनः प्रेतत्वको प्राप्त होते हैं। ऐसे व्यक्तिका दाह, उदकक्रिया और मरणनिमित्तक अन्य कृत्य तथा और्ध्वदैहिक कर्म नहीं करना चाहिये। इस प्रकारसे अपमृत्यु होनेपर पिण्डदानका कर्म भी वर्जित है। यदि प्रमादवश कोई पिण्डदान करता है तो वह उसे प्राप्त नहीं होता और अन्तरिक्षमें विनष्ट हो जाता है। अतः लोकगर्हासे डरकर उसके शुभेच्छु पुत्र-पौत्र और सगेजो जनोंको मृतकके लिये 'नारायणबलि' करना चाहिये। ऐसा करनेपर ही उन्हें शुचिता प्राप्त होती है अन्यथा नहीं; यह सम्राजका ध्वज है।

नारायणबलि किये जानेपर और्ध्वदैहिक कर्मकी योग्यता आ जाती है। अपमृत्यु होनेपर ऐसे प्राणीका शुद्धिकरण इसी कर्म (नारायणबलि)-से सम्भव है अन्यथा नहीं।

नारायणबलि सम्यक् रूपसे तीर्थमें करना चाहिये। ब्राह्मणोंके द्वारा भगवान् कृष्णके समक्ष नारायणबलि करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। पुराण, वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सबसे पहले तर्पण करें। सभी प्रकारकी औषधियोंको और अक्षतकी जलमें मिलाकर 'पुरुषसूक्त' या 'वैष्णवसूक्त' का उच्चारण करते हुए विष्णुके उद्देश्यसे सम्पन्न करना चाहिये। उसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर प्रेत और विष्णुका इस प्रकार स्मरण करें—

अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥

अक्षयः पुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदो भव।

(४।११८-११९)

'हे देव। आप अनादि, अजर और अमर हैं। हे देव। आप शंख, चक्र एवं गदासे सुशोभित विष्णु हैं। आप कभी न विनष्ट होनेवाले परमात्मा हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! आप इस प्रेतको मोक्ष प्रदान करनेकी कृपा करें।'।

वीतराग, विमत्सर, जितेन्द्रिय, शुचिष्मान् और धर्मतत्पर होकर वहीपर भक्तिपूर्वक एकादश श्राद्ध करें। उसके बाद वह सावधानमनसे विधिवत् जल, अक्षत, यव, गेहूँ और कैननीका दान दे। उस समय शुभ हविष्यान्न, सुन्दर बनी हुई सोनेकी अंगूठी, छत्र और पगड़ीका दान देना चाहिये। इन वस्तुओंके अतिरिक्त दूध-मधुसे समन्वित सभी प्रकारके अन्न देना चाहिये। यस्त्र और पादुका समन्वित आठ प्रकारका पददान सुपात्रोंको समभावसे दिया जाना चाहिये। पिण्डदान करनेके बाद मन्त्रोच्चारसहित गन्ध, पुष्प और अक्षतसे पूजा करे, तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको सम्मानसहित दान दे। शंख, खड्ग अथवा ताम्रपात्रमें पृथक्-पृथक् तर्पण करना चाहिये। उसके बाद ध्यान-धारणासे संयुक्त होकर दोनों घुटनोंके बल पृथ्वीपर अवस्थित होकर मन्त्रोच्चारपूर्वक उद्दिष्ट देवोंके लिये पृथक्-पृथक् अर्घ्य प्रदान करे। पश्चात्तसे युक्त पृथक्-पृथक् पाँच कुम्भोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और प्रेत—इन पाँचोंको स्थापित करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यस्त्र, यज्ञोपवीत, मृग और पददान पृथक्-पृथक् स्थापित करे। यथाविधि उन देवोंके लिये पाँच श्राद्ध करना चाहिये। शंख या ताम्रपात्र न मिलनेपर मृन्मयपात्रमें सर्वाधिसे युक्त तिलोदक लेकर प्रत्येक पिण्डपर पृथक्-पृथक् जलधारा देनी चाहिये। तिलसे पूर्ण ताम्रपात्र दक्षिणा और स्वर्णसे युक्त तथा पददान मुख्य ब्राह्मणोंको देना चाहिये। यमके निमित्त दक्षिणासहित तिल और लोहेका दान देना चाहिये। विष्णुदेवके लिये यथाशक्ति विधिपूर्वक बलि प्रदान करनेपर मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्धार हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

जो व्यक्ति सर्पदंष्टसे मर जाता है, उसके विषयमें विशेष बात मुझसे सुनो—

एक भार सोनेकी नागप्रतिमा बनवाकर गौके सहित विधिवत् उसका दान ब्राह्मणको कर देना चाहिये। ऐसा करके पुत्र अपने पिताके श्रमसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सर्पबलि देकर मनुष्य सर्पदोषके पापसे दूर हो जाता

१-अकस्मात् किसी ऐसी स्थितिमें मरण हो रहा है जब मरणसन्न व्यक्तिके लिये शास्त्रोक्त विधियाँ सम्पन्न नहीं हो पाती हैं, तब ऐसा मरण विधि-विहीन मरण माना जाता है।



है। हे गरुड! उसके बाद सर्वोपधिसे समन्वित पुतलका निर्माण करना चाहिये। पुतलके निर्माणमें पलाश और वृन्तोंका विभाग सुनो—

काले भृगका चर्म बिछाकर उसके ऊपर कुत्तसे निर्मित एक पुरुषकी आकृति बनानी चाहिये। तीन सौ साठ वृन्तोंसे मनुष्यकी अस्थियोंका निर्माण होता है। उन वृन्तोंका विन्यास इन अङ्गोंमें पृथक्-पृथक् रूपसे करना चाहिये। चालीस वृन्त शिरोभाग, दस वृन्त शीर्ष, बीस वृन्त वक्षःस्थल, बीस वृन्त उदर, सौ वृन्त दोनों बाहु, बीस वृन्त कटि, सौ वृन्त दोनों उरुभाग, तीस वृन्त दोनों जंघा प्रदेश, चार वृन्त शिश्न, छः वृन्त दोनों अण्डकोश और दस वृन्त पैरकी अंगुली भागमें स्थापित करनेका विधान है। इसके बाद शिरोभागमें नारियल, तालु प्रदेशमें लौकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वामें कदलीफल, आँतोंके स्थानमें कमलफल, नासिका भागमें बालू, तस्राँके स्थानमें मिट्टी, हरिताल और मनःशिल, खोपके स्थानपर पारद, पुरोष्के स्थानपर पीतल, शरीरमें मनःशिल, संधिभागोंमें तिलका पाक, मांसके स्थानपर पिसा हुआ घब, रक्तके स्थानपर मधु, केशराशिके स्थानपर जटाजूट, त्वचाके स्थानपर मुगधर्म, दोनों कानके स्थानपर तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानपर गुञ्जाफल, नासिका भागमें शतपत्र, नाभिमण्डलमें कमल, दोनों अण्डकोशोंके स्थानपर बैंगन, लिङ्गभागमें बड़िया सुन्दर गाजर, नाभिमें घी, कौपीनके स्थानपर त्रपु अर्घात् लाह, स्तनोंमें मोती, ललाटपर कुकुमका लेप, कर्पूर एवं अणु धूप, सुगन्धित मालाका अलंकरण, पहननेके लिये हृदयमें रट्टसूत्रका विन्यास करना चाहिये। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋद्धि एवं वृद्धि, दोनों नेत्रोंमें कीड़ी, दाँतोंमें अनारके बीज, अँगुलियोंके स्थानमें चम्पाके पुष्प और नेत्रोंके कोण भागमें सिन्दूर भरकर ताम्बूल आदि शोभादायक अन्य पदार्थ भी भेंट करना चाहिये।

इस प्रकार सर्वोपधियुक्त उस प्रेतकी विधिपूर्वक पूजा कर यदि मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो तो उसके अङ्गोंमें यथाक्रम यज्ञ-पात्र स्थापित करें। तदनन्तर 'स्विद्यः पुनन्तु मे शिरः' तथा 'इमं मे वरुणो न च' इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित

शालग्रामशिलायुक्त जलसे उक्त प्रेतकी पवित्र करके भगवान् विष्णुको उद्देश्य कर सुशीला, दूध देनेवाली गौका दान देना चाहिये। तत्पश्चात् तिल, लीह, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी तथा गौ, जो एक-से-एक बढ़कर पवित्र बतये गये हैं, उनका भी दान करना चाहिये। उसके बाद तिल-पात्र तथा पददान भी करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतकी मुक्तिके लिये वैष्णव श्राद्ध करें। उसके बाद श्राद्धकर्ता हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य सम्पन्न करे।

उक्त विधिसे बनाये गये पुतलका विधिपूर्वक दाह करना चाहिये। तत्पश्चात् उसकी शुद्धिके लिये पुत्रादि संस्कर्ता प्रायश्चित्त करें। जिसमें तीन, छः, बारह तथा पंद्रह कृच्छ्रव्रत करनेका विधान है। प्रायश्चित्त कर्ममें असमर्थ होनेपर गाय, सुवर्णादिका दान अथवा तत्प्रतिनिधिभूत द्रव्यका दान करना चाहिये। विद्वान्को इस प्रकार अपनी शुद्धि करनी चाहिये। अशुद्ध दाताके द्वारा अशुद्धको उद्देश्य करके जो कुछ श्राद्ध तथा दानादिक किया जाता है, वह सब कुछ अन्तरिक्षमें ही विनष्ट हो जाता है। अतः विधिपूर्वक शुद्ध होकर मनुष्यको दाहादिक और्ध्वदैहिक कर्म करना चाहिये।

हे गरुड! जो प्राणी बिना प्रायश्चित्त किये ही दाहादिक कर्म ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक करता है, वह वहन, अग्निदान, जलदान, स्नान, स्पर्श, रज्जुछेदन तथा अनुपात करके तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है। जो शवको ले जाता है अथवा दाह-संस्कार करता है, वह कटोदक-क्रिया करके कृच्छ्रसान्तपनव्रत करे। छोटे दोषको दूर करनेके लिये छोटा और बड़े दोषको दूर करनेके लिये बड़ा प्रायश्चित्त करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे प्रभो! कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र तथा सान्तपन—ये जो तीन प्रायश्चित्त व्रत आपने बताये हैं; इन तीनोंके लक्षणोंको भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल, तीन दिन अयाचित हविष्यान्नका आहार और तीन दिनका उपवास क्रमशः जिस व्रतमें किया जाता है, वह 'कृच्छ्रव्रत' कहलाता है।

जिस व्रतमें क्रमशः एक दिन गरम दूध, दूसरे दिन गरम घी तथा तीसरे दिन गरम जल पानकर चौथे दिन एक रात्रिका उपवास किया जाता है, उसका नाम 'तप्तकृच्छ्र' व्रत है<sup>१</sup>। जब गोमूत्र, गोमय, गोदधि, गोदुग्ध और कुशोदक—इन पाँच पदार्थोंको क्रमशः एक-एक दिन पान करके पुनः कृच्छ्रव्रतका उपवास किया जाता है तो उसको 'सान्तापनव्रत' कहा जाता है<sup>२</sup>।

हे पक्षिन्! पापी व्यक्तिके मरनेपर कौन-सी क्रिया करनी चाहिये, यह मैंने तुम्हें बता दिया है। पुत्तलदाहमें (पुत्तलके हृदयपर रखा) जलता हुआ दीपक जब बुझ जाय तो उस समय उसकी मृत्यु समझनी चाहिये। तदनन्तर अग्निदाह करे और तीन दिनका सूतक करे। दशाह और गर्तपिण्ड करना चाहिये। इस विधिके सम्यक् पालन करनेसे प्रेत मुक्ति प्राप्त करता है। यदि किसीके मरणका धर्म होनेसे उसकी प्रतिकृतिका दाह-संस्कार हो जाय और वह मनुष्य उसके बाद आ जाय तो उसे ले जाकर भूतकुण्डमें स्नान कराना चाहिये। तदनन्तर जातकर्मादि संस्कार पुनः किये जायें। ऐसे पुरुषको अपनी विवाहिता पत्नीसे विधिवत् पुनर्विवाह कर लेना चाहिये। हे खग। यदि विदेशमें गये किसी व्यक्तिको पंद्रह अथवा बारह वर्ष बीत गये हों और उसका इस अवधिमें बीच कोई समाचार नहीं प्राप्त होता है तो उसकी प्रतिकृति बनाकर उसका दाह-संस्कार कर डालना चाहिये।

हे गरुड! राजसूता और सूतिका स्त्रीके मरनेपर कौन-सा विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, अब उसको तुम सुनो—सूतिका स्त्रीकी मृत्यु होनेपर याज्ञिकजन कुम्भमें जल और पञ्चगव्य लाकर पुण्यजनित मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके उससे स्पर्शको शुद्ध करे। उसके बाद सौ शूण्वतसे विधिपूर्वक शवको स्नान कराके पुनः उसको पञ्चगव्यसे स्नान कराये। फिर कपड़ेसे बनायी गयी आकृतिके साथ

यथाविधि जला देना चाहिये।

पञ्चककालमें मृत्यु होनेपर दाह-संस्कारकी विधि क्या है? उसको मैं कहता हूँ, तुम सुनो—

हे खगेश! मासके प्रारम्भमें धनिष्ठा नक्षत्रके अर्धभागसे लेकर रेवती नक्षत्रतक पञ्चककाल होता है। इसको सदैव दोषपूर्ण एवं अशुभ मानना चाहिये। इस कालमें मरे हुए व्यक्तिका दाह-संस्कार करना उचित नहीं है। यह काल सभी प्राणियोंमें दुःख उत्पन्न करनेवाला है। ऐसे दिनोंमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जलतक नहीं देना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे सर्वदा अशुभ होता है। अतः पञ्चककालके समाप्त होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने चाहिये अन्यथा पुत्र और सगीत्रके लिये कष्ट ही होता है। इन नक्षत्रोंमें मृतकका दाह-संस्कार करनेपर धर्म किसी-न-किसी प्रकारकी हानि होती है।

हे गरुड! इन नक्षत्रोंके मध्यमें मनुष्योंका दाह-संस्कार आहुति प्रदान करके विधिपूर्वक किया जा सकता है। सुयोग्य ब्राह्मणोंको वैदिक मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक उसका संस्कार करना चाहिये। अतः शयस्थानके समीपमें कुशसे चार पुत्तलक बनाकर नक्षत्र मन्त्रोंसे उनको अभिमन्त्रित करके रख दे। तदनन्तर उन्हीं पुत्तलकोंके साथ मृतकका दाह-संस्कार करे। अशीचके समाप्त हो जानेपर मृतकके पुत्रोंद्वारा शान्ति एवं पीष्टिक कर्म भी होना चाहिये।

जो मनुष्य इन पञ्चक नक्षत्रोंमें मर जाता है, उसकी सद्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। अतएव मृतकके पुत्रोंको उसके कल्याणहेतु तिल, गौ, सुवर्ण और धौका दान देना चाहिये। समस्त विघ्नोंका विनाश करनेके लिये ब्राह्मणोंको भोजन, षादुका, छत्र, सुवर्णमुद्रा तथा वस्त्र देना चाहिये। यह दान मृतकके समस्त पापोंका विनाशक है और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये, इससे समस्त पापोंका विनाश होता है। (अध्याय ४)

१-तप्तकृच्छ्रव्रतम्—पापैकं प्रपद्यं पितृन्। एकरात्रोपवासञ्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः॥ (४।१६४)

२-गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। जप्यता परेऽह्निपुण्यसेकृच्छ्रं सान्तापनं धर्मम्॥ (४।१६५)

आशौचमें विहित कृत्य, आशौचकी अवधि, दशगात्रविधि, प्रथमषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशीका विधान, नौ श्राद्धोंका स्वरूप, वार्षिक कृत्य, जीवका यममार्गनिदान, मार्गमें पड़नेवाले षोडश नगरोंमें जीवकी यातनाका स्वरूप, यमपुरीमें पापात्माओं और पुण्यात्माओंको घोर तथा सौम्यरूपमें यमराजके दर्शन

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! इस प्रकार मृत पुरुषका दाह-संस्कार करके स्नान और तिलोदक कर्म कर स्विर्वा आगे-आगे तथा पुरुष उनके पीछे-पीछे घर आयें। द्वारपर पहुँचकर वे सभी मृत व्यक्तिका नाम लेकर रोते हुए नौमकी पतिपोंका प्राशन कर पाथरके ऊपर खड़े होकर आचमन करें। तदनन्तर सभी पुत्र-पौत्र आदि तथा सगोत्री परिजन धरमें जाकर जो दस रात्रियोंका अशौच-कर्म है, उसको पूरा करें। इस कालमें उन सभीको बाहरसे खरीदकर भोजन करना चाहिये। रात्रिमें वे अलग-अलग आसनपर सोयें। क्षार तथा नमकसे रहित भोजन किया जाय। वे सभी तीन दिनतक शोकमें डूबे रहें। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके अर्मासभोजी होकर पुण्यीपर ही सोयें। उन सभीके बीच परस्पर शरीरका स्पर्श न हो। वे इस अशौचकालके अन्तकालमें दान एवं अध्ययन-कर्मसे दूर रहें। दुःखसे मलिन, उत्साहहीन, अधोमुख-कातर एवं भोग-विलाससे दूर होकर वे अङ्गमर्दन और सिर धोना भी छोड़ दें। इस अशौचकी अवधिमें मिट्टीके बने पात्र या पहलुओंमें भोजन करना चाहिये। एक या तीन दिनतक उपवास करे।

गरुडने कहा—हे प्रभो! अशौचियोंके अशौचके विषयमें आपने कह दिया, पर वह अशौच कितने सम्यक्तक रहेगा? उसके लक्षण क्या हैं? उससे संलिप्त लोगोंको उस कालमें कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिये? इन सभी बातोंको भी आप बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेत्। यह अशौच तो विधिसम्मत समय और क्रिया आदिके द्वारा शीघ्र ही समाप्त करनेके योग्य होता है, क्योंकि प्राणी इस कालमें पिण्डदान, अध्ययन और अन्य प्रकारके दान-पुण्यादिक सत्कर्मोंसे दूर हो जाता है। सपिण्डियोंमें मरणाशौच दस दिनका माना जाता है। जो लोग भलीभाँति शुद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा

रखते हैं, उनके लिये पुत्रादिके जन्म लेनेपर भी इसी प्रकार अशौच होता है। समानोदकोंके जननाशौचमें तीन रात्रिमें शुद्धि होती है। जो मृतकको जल देनेवाले हैं, वे मरणाशौचमें भी तीन दिनोंके पश्चात् शुद्ध हो जाते हैं। दौति निकलनेतक मरणाशौच होनेपर वह सद्यः समाप्त हो जाता है। यदि चूडाकरण-संस्कार हो जानेके बाद बालककी मृत्यु हो जाती है तो एक रात्रिका अशौच होता है। उपनयन (जनेऊ)-संस्कार होनेके पूर्वतक तीन दिन और उसके बाद दस दिनका अशौच होता है—

आ दन्तजननात्सद्य आ बौलाघ्रेशिकी स्मृता।

त्रिरात्रमाद्रतादेशादृशरात्रमतः

परम्॥

(५।१२)

हे पशुन्। तुम्हें मैंने अशौच बता दिया। अब मैं संक्षेपमें प्रसंगप्राप्त अशौचके विषयमें तुम्हें बताता हूँ। हे काश्यप! सूत्रसे बँधे हुए तीन काष्ठोंकी तिगोड़ियाको रात्रिमें आकाशके नीचे स्थापित करके चौराहेपर खड़ा कर दे और 'अत्र स्वाहि०' एवं 'पिषात्र०' इस मन्त्रोच्चारणके साथ उसके ऊपर मिट्टीके पात्रमें जल और दूध रख दे। संस्कर्ता अपने सगोत्रियोंके साथ पहले, तीसरे, सातवें अथवा नवें दिन अन्व्य-संचयन करे। जो सगोत्री हैं, वे मृतकके ऊर्ध्वभागकी अन्व्यियोंका ही स्पर्श कर सकते हैं। समानोदकी भी सभी क्रियाओंके योग्य हैं। प्रेतको पिण्डदान बाहर ही करे। इस क्रियाको करनेके लिये सबसे पहले स्नान करके संयतमना होकर उत्तर दिशामें चरुका निर्माण कर असंस्कृत प्राचीके लिये धूमिपर तथा संस्कार-सम्पन्नके लिये कुशपर नौ दिनोंमें नौ पिण्ड देना चाहिये। उसके बाद दसवें दिन दसवौं पिण्डदान करे। तदनन्तर चाहे सगोत्री हो अथवा असगोत्री, चाहे स्त्री हो या पुरुष वह रात्रि बीतनेके पश्चात् पवित्र हो जाता है। पहले दिन जो पिण्डदानकी क्रिया

करता है, उसे ही दसवें दिनतक प्रेतकी अन्य समस्त क्रियाएँ करनी चाहिये। चाहे चावल हो, चाहे सत्तू हो, चाहे शाक हो, पहले दिन जिससे पिण्डदान करे, उससे ही दस दिनतक पिण्डदान करना चाहिये।

हे गण्ड! जबतक यह प्रेतजन्य अशीव रहता है तबतक प्रेतको प्रतिदिन एक-एक अञ्जलि बढ़ाते हुए जल-दान देनेका विधान है अथवा जिस दिन यह देना हो उस दिनकी संख्याके अनुसार वर्धमानक्रमसे उतनी अञ्जलि जल-दान करे। इस प्रकार दसवें दिन पचपन अञ्जलि पूर्ण करे। यदि अशीव दो दिन बढ़ जाता है तो पुनः उसी क्रमके अनुसार सौ अञ्जलि जल और देना चाहिये। यदि यह अशीव तीन दिनका ही है तो दस अञ्जलि ही जल देना चाहिये। हे पश्चिन्! इस जलदानका क्रम यह है कि अशीवके पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। हे गण्ड! जब शताञ्जलि जल-दानकी क्रिया सम्पन्न की जाती है तो उस विधानके अनुसार पहले दिन तीस, दूसरे दिन चालीस तथा तीसरे दिन तीस अञ्जलि जल दिया जाता है।

इस प्रकार दोनों पक्षोंमें जलाञ्जलिपौकी संख्याका निर्धारण करना चाहिये। इन सभी पितृक्रियाओंको सम्पन्न करनेका मुख्य अधिकारी पुत्र ही होता है। इस प्रेतश्राद्धमें दूध या जलसे पिण्डका सेचन तथा पुष्प-धूपदिक पदार्थसे पिण्डका पूजन बिना मन्त्रीच्चार किये ही करना चाहिये। दसवें दिन केश, श्मश्रु, नख और वस्त्रका परिष्कार करके गाँवके बाहर स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण जल, क्षत्रिय वाहन, वैश्य प्रतोद (चाबुक) अथवा रस्मि तथा शूद्र छद्दीका स्पर्श करके पवित्र होता है। मृतसे अल्प वयवाले सपिण्डोंको मुण्डन करना चाहिये।<sup>१</sup>

छः और दस इस प्रकार सोलह पिण्डदान करके षोडशी कर्म सम्पन्न करनेका विधान है। यह मलिनषोडशी मृत दिनसे दस दिनमें पूर्ण होती है। हे पश्चिन्नेत्र! पुत्रादि दस दिनोंतक जो पिण्डदान करते हैं, वे प्रतिदिन चार भागोंमें विभाजित हो जाते हैं। उसमें प्रथम दो भागसे

आतिथ्याहिक शरीर, तीसरे भागसे यमदूत और चौथे भागसे वह मृतक स्वयं तृप्त होता है।

नौ दिन और रात्रिमें वह शरीर अपने अंगोंसे युक्त हो जाता है। प्रथम पिण्डदानसे प्रेतके शिरोभागका निर्माण होता है। दूसरे पिण्डदानसे उसके कान-नेत्र और नाककी सृष्टि होती है। तीसरे पिण्डदानसे क्रमशः—कण्ठ, स्कन्ध, बाहु एवं वक्षःस्थल, चौथे पिण्डदानसे नाभि, लिंग और गुदाभाग तथा पाँचवें पिण्डदानसे जानु, जंघा और पैर बनते हैं। इसी प्रकार छठे पिण्डदानसे सभी मर्मस्थल, सातवें पिण्डदानसे नाड़ोंसमूह, आठवें पिण्डदानसे दाँत और लोम तथा नव्वें पिण्डदानसे वीर्य एवं दसवें पिण्डदानसे उस शरीरमें पूर्णता, तृप्ति और भूख-प्यासका उदय होता है—

अहोरात्रैस्तु नवविदेहो विध्वंसिमाप्नुयात्।  
शिरस्त्राद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते तथा॥  
द्वितीयेन तु कर्णाक्षिवासिकं तु समासतः।  
गर्तासभुजवक्षस्तु तृतीयेन तथा क्रमात्॥  
चतुर्थेन च पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदं तथा।  
जानुबंधं तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा॥  
सर्वमर्माणि बह्वेन सप्तमेन तु नाडयः।  
दन्तलोमान्द्रष्टमेन वीर्यं नवमेन च॥  
दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्रिपर्ययः।

(५।३३-३४)

हे वैनतेय! अब मैं मध्यमषोडशी विधिका वर्णन करता हूँ। उसको सुनो।

विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्वत एकादश श्राद्ध तथा पाँच देवश्राद्ध इस प्रकार षोडश श्राद्ध किये जाते हैं। इन्हींका नाम मध्यमषोडशी है। यदि प्रेतकल्याणके निमित्त 'नारायणवलि' की जाय तो उसको एकादशहके दिन करना चाहिये और उसी दिन वहींपर वृषोत्सर्ग भी करना चाहिये। जिस जीवका ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग नहीं होता, सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती है। वृषोत्सर्ग बिना किये ही जो पिण्डदान किया जाता है, वह पूर्णतया निष्फल होता है। उससे प्रेतका कोई

१-अन्यकर्मदीपक पृष्ठ ४० की टिप्पणीके अनुसार मृत व्यक्तिसे अकम्प्यमें जो लोग कनिष्ठ हैं, उन्हें मुण्डन करना चाहिये—यह कुछ लोगोंका मत है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि जितने लोग मरणके दुःखका अनुभव करनेवाले हैं, उन सभीको मुण्डन करना चाहिये। इन दोनों मतोंको अपनी-अपनी परम्पराके अनुसार स्वीकार किया जा सकता है।



उपकार नहीं होता।<sup>१</sup> इस पृथ्वीपर वृषोत्सर्गके बिना कोई अन्य उपाय नहीं है, जो प्रेतका कल्पान करनेमें समर्थ हो। अतः पुत्र, पत्नी, दौहित्र (नाती), पिता अथवा पुत्रीको स्वजनकी मृत्युके पश्चात् निश्चित ही वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चार बछियोंसे युक्त, विधानपूर्वक अलंकृत वृष, जिसके निमित्त छोड़ा जाता है उसको प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशाहके दिन यथाविधान सौँड़ उत्सर्ग करनेके लिये उपलब्ध नहीं है तो विद्वान् ब्राह्मण कुश या चावलके चूर्णसे सौँड़का निर्माण करके उसका उत्सर्ग कर सकता है। यदि बादमें भी वृषोत्सर्गके समय किसी प्रकार सौँड़ नहीं मिल रहा है तो मिट्टी या कुशसे ही सौँड़का निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमें प्राणियों जो भी पदार्थ ग्रहण रहा हो उसका भी दान इसी एकादशाह श्राद्धके दिन करना उचित है। इसी दिन मरे हुए स्वजनकी उद्देश्य बनाकर ताप्या, गौ आदिका दान भी करना चाहिये। इतना ही नहीं उस प्रेतकी धुधा-शान्तिके लिये बहुतसे ब्राह्मणोंकी भोजन भी करना चाहिये।

हे धनराजपुत्र गृहह। अब मैं तृतीय षोडशी (उत्तम-षोडशी)-श्राद्धका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो।

प्रत्येक बारह मासके बारह पिण्ड, ऊनमासिक (आद्य) त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक एवं ऊनाब्दिक—इन्हें मतभेदसे तृतीय अथवा उत्तमषोडशी भी कहा जाता है।

बारहवें दिन, तीन पक्षमें, छः महोत्सवोंमें अथवा वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण करना चाहिये। जिस मृतकके निमित्त

इन षोडश श्राद्धोंको सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया जाता है, उस प्रेतके लिये अन्य सौ श्राद्ध करनेपर भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। हे खगेश! मृतक व्यक्तिके एकादशाह अथवा द्वादशाह तिथिमें आद्यश्राद्ध करनेका विधान माना गया है। प्रतिमासका श्राद्ध मासके आद्यतिथिमें मृत-तिथिपर होना चाहिये। ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्दिक)—मास, छठे मास और वर्षमें एक, दो अथवा तीन दिन कम रहनेपर करना चाहिये<sup>२</sup>। सपिण्डीकरण वर्ष पूर्ण होनेके बाद अथवा छः महोत्सव बाद करना चाहिये अथवा आभ्युदयिक (विवाहादि मङ्गल-कार्य अनिवार्य रूपसे उपस्थित होनेपर) कार्य आनेपर तीन पक्ष अथवा बारह दिनोंके बाद करना चाहिये। मनुष्योंके कुलधर्म असेख्य हैं, उनकी आयु भी क्षरणशील है और शरीर अस्थिर है। अतः बारहवें दिन सपिण्डीकरण करना उत्तम है।

हे पक्षिराज! सपिण्डीकरण श्राद्धोंके सम्पादकीय विधि भी मुझसे सुनो।

हे काश्यप! एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार यह कार्य करना चाहिये<sup>३</sup>। तिल, गन्ध और जलसे परिपूर्ण चार पात्रोंकी व्यवस्था करके एक पात्र प्रेतके निमित्त और शेष तीन पात्र पितृगणोंके लिये निश्चित करना चाहिये। तदनन्तर उन तीन पात्रोंमें प्रेतपात्रके जलका सेचन करे। चार पिण्ड बनाये और प्रेत-पिण्डका उन तीन पिण्डोंमें भेलन कर दे। तबसे वह प्रेत पितरके रूपमें हो जाता है। हे खगेश्वर! उस प्रेतमें

१-एकादशाहं प्रेतस्य यस्मैल्लुज्येत नो वृषः। प्रेतस्य सुनिर्वातं तस्य दक्षैः श्राद्धसौमिपि॥

अकृत्वा यद्वृषोत्सर्गं कृतं तैः पिण्डपातनम्। पिण्डानां सकलं विद्यात्प्रयोजनं न तद्वैतम्॥ (५।४०-४२)

२-(क) एकाद्दिविदैनैकं त्रिपादोत्तम एव वा। श्राद्धान्पुनश्चिद्विदोपि कुर्वीदेष्वज्यैकम्॥

नन्दायां भार्यादिने चतुर्दश्या त्रिपुष्करे। ऊनश्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनधन्यम्॥ (पाण्य)

द्विपुष्करे च नन्दायां सिन्धेयान्यां धृषीदिने। चतुर्दश्यां च नो ज्ञानि कृत्स्नान् त्रिपुष्करे॥

एक, दो, तीन अथवा दस दिन कम रहनेपर, नन्दा तिथिकी, तुङ्गवाराकी, चतुर्दशी तिथि, त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग, अम्बकात्या तिथि, कृत्तिका, रोहिणी तथा मृगशिरा तिथियोंमें ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक, ऊनाब्दिक) नहीं करना चाहिये।

(ख) 'सपिण्डीकरणं चैव' इस वाक्यसे तृतीय षोडशीके अन्तर्गत सपिण्डीमें किये जानेवाले प्रेतश्राद्धकी गणना करनेपर 'शतार्द्धेन तु मेलयेत्' इस वाक्यसे विरोध होता है। सपिण्डीकरणमें किये जानेवाले प्रेतश्राद्धकी तृतीय षोडशीके अन्तर्गत कात्यायनने माना है। इसका 'शतार्द्धेन तु मेलयेत्'से विरोध है।

श्राद्धकल्पलतामें तथा आचार्य गोधिल, लीलाविधौतिनसिके मतमें सपिण्डीय श्राद्ध तृतीय षोडशीके पादर है।

(ग) 'द्वादशप्रतिमास्यानि' इस पदसे प्रथम षडसिकका बोध हो जानेके कारण आद्य पदके अर्थमें ऊनमासिक उपलक्षण है। इसी प्रकार 'षाण्मासिक' पदका ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक अर्थमें लाक्षणिक प्रयोग है।

३-सपिण्डीकरणके अन्तर्गत किये जानेवाले केवल प्रेतश्राद्धके उद्देश्यसे एकोद्दिष्ट विधिका उल्लेख है। इस श्राद्धके अन्तर्गत किया जानेवाला प्रेतके पिता आदिका श्राद्ध सदैव पार्वण-विधिसे किया जाना चाहिये।

पितृत्वभावके आ जानेके बाद उस प्रेत तथा अन्य उसके पितृ-पितामह आदि पितरोंका समस्त श्राद्धकृत्य श्राद्धकी सामान्य विधिके अनुसार ही करना चाहिये। मृत पतिके साथ एक ही चित्तार्थ प्रवेश और एक ही दिन दोनोंकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डीकरण नहीं होता है। उसके पतिके सपिण्डीकरण श्राद्धसे ही स्त्रीका सपिण्डीकरण श्राद्ध सम्पन्न हो जाता है। हे खगेश! पतिके मरनेके बाद स्त्रीकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डन पतिके साथ होगा और सहमृत्युकी दशार्थ दोनोंके श्राद्धके लिये एक पाक, एक समय तथा एक कर्ता होगा। किंतु श्राद्ध पति-पत्नीका पृथक्-पृथक् ही किया जाना चाहिये। यदि स्त्री पतिके साथ चित्तार्थ सती न होकर अन्य किसी दिन सती होती है तो उस स्त्रीकी मृत तिथिके आनेपर उसके लिये पृथक् रूपसे पिण्डदान करना चाहिये।

हे गुरुद्वय! सहमृत्युकी दशार्थ प्रत्येक वर्ष नवश्राद्ध एक साथ करना चाहिये। जिस मृतकाका वार्षिक श्राद्धसे पूर्व सपिण्डीकरण हो जाता है, उसके लिये भी वर्षभर मासिक श्राद्ध और जलकुम्भ दान करना चाहिये<sup>१</sup>। भनका बैठवारा हो जानेपर भी नव श्राद्ध, सपिण्डन श्राद्ध और षोडश श्राद्ध करनेका अधिकार एक ही व्यक्तिको है।

हे कश्यपपुत्र! अब मैं तुम्हें नवश्राद्ध करनेका काल बताऊँगा। उसको सुनो।

हे पशुन्! मृत्युके दिन मृतस्थानपर पहला श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद दूसरा श्राद्ध मार्गमें उस स्थानपर करना चाहिये जहाँपर शव रखा गया था। तदनन्तर तीसरा श्राद्ध अस्थिसंचयनके स्थानपर होता है। इसके बाद पाँचवें, सातवें, आठवें, नवें, दसवें और ग्यारहवें दिन श्राद्ध होता है। इसलिये इन्हें नवश्राद्ध कहा जाता है। ये नव श्राद्ध तृतीया षोडशी कहे जाते हैं। इनको एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार ही करना चाहिये। पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें और ग्यारहवें दिन होनेवाले श्राद्धोंको नवश्राद्ध कहा जाता है। दिनकी संख्या छः ही है पर छः दिनमें ही नव श्राद्ध हो जाते हैं। इस विषयमें ऋषियोंने बीच मतभेद हैं, इसी कारण मैंने उनको भी तुम्हें बता दिया।

श्राद्धोंका जो योग रुद्धिगत रूपसे है, वही मुझे भी अभीष्ट है। किसीको नव शब्दका यौगिक अर्थ अभीष्ट है। आषा और द्वितीय श्राद्धमें एक ही पवित्रक देना चाहिये। जब ब्राह्मण भोजन कर चुके हों तो उसके बाद प्रेतको पिण्डदान देना उचित होता है<sup>२</sup>। वहाँपर यजमान और ब्राह्मणके बीच प्रश्नोत्तर भी होना चाहिये। जिसमें यजमान ब्राह्मणसे यह प्रश्न करे कि आप मेरी सेवासे प्रसन्न हैं? उसका उत्तर ब्राह्मण दे कि हाँ हम आपपर प्रसन्न हैं। आपके उस मृत स्वजनको अक्षय लोककी प्राप्ति हो।

हे पशिराज! अब तुम मुझसे एकोद्दिष्ट श्राद्धके विषयमें भी सुनो। जिसको वर्षपर्यन्त करना चाहिये।

सपिण्डीकरणके बादमें किये जानेवाले षोडश श्राद्धोंका सम्पादन एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार ही होना चाहिये, किंतु वर्षभर-श्राद्धमें उक्त नियमका प्रयोग नहीं होता है। जिस प्रकारसे प्रत्येक वर्षमें होनेवाला प्रत्यक्ष श्राद्ध<sup>३</sup> होता है, उसी प्रकार उन षोडश श्राद्धोंको भी करना चाहिये। एकादशाह और द्वादशाहमें जो श्राद्ध किया जाता है उन दिनोंमें स्वयं प्रेत भी भोजन करता है। अतः स्त्री और पुरुषके लिये जो पिण्डदान इन दिनोंमें दिया जाय उसको अमुक प्रेतके निमित्त दिया जा रहा है, ऐसा कहकर पिण्डदान देना चाहिये। सपिण्डीकरण श्राद्ध होनेके पश्चात् प्रेत शब्दका प्रयोग नहीं होता है। एक वर्षतक धरके बाहर प्रतिदिन दीपक जलाना चाहिये। अन्न, दीप, जल, वस्त्र और अन्य जो कुछ भी वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं, वे सभी सपिण्डीकरणतक प्रेत शब्दके सम्बोधनसे संकल्पित होनेपर ही प्रेतको तृप्ति प्रदान करती हैं।

हे वैनतेय! संक्षिप्त रूपमें मैंने वार्षिक कृत्य कह दिया। अब तुम विवस्वान् पुत्र यमराजके घर जिस प्रकार जीवका गमन होता है, उसका वर्णन सुनो।

हे अरुणानुज! त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवें दिन श्राद्धकृत्य एवं गुरुपुराणके श्रवणके अनन्तर वह जीव, तुम्हारे द्वारा पकड़े गये सर्पके समान यमदूतोंके द्वारा पकड़ लिया जाता है और पकड़े गये बन्दरके समान अकेला ही उस यमलोकके मार्गमें चलता जाता है। उसके बाद सायुके द्वारा

१-यस्य संस्तसरादवर्षात् सपिण्डीकरणं भवेत्। मासिकजलकुम्भश्च देयं तस्मात्पि कस्मिन् ॥ (५) ६४)

२-यह प्रायः सपिण्डीकरणकी विधि है।

३-वार्षिक तिथिपर होनेवाला श्राद्ध।

अप्रसारित वह जीव दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है, दूसरे शरीरमें जानेके पूर्वका जो शरीर है वह पिण्डज (दिये गये पिण्डोंसे निर्मित) है। दूसरी योनियोंका शरीर तो पितृसम्भव (माता-पिताके रज-बीर्यसे उत्पन्न होनेवाला) होता है। इन शरीरोंके प्रमाण, वय, अवस्था एवं संस्थान (आकृतिविशेष) आदि श्राद्ध करनेवालेकी ब्रह्मा एवं देह प्राप्त करनेवालेके कर्मानुसार होते हैं। प्रमाणतः यम और यमलोकके बीच छियासी हजार योजनका अन्तराल है। वह जीव प्रतिदिन अधिक-से-अधिक दो सौ सैतालिस योजन और अथा कोसका मार्ग तय करता है। इस प्रकार उस जीवको यात्रा तीन सौ अड़तालीस दिनोंमें पूरी होती है। इस यमलोककी यात्रामें जीवको यमदूत खींचते हुए ले जाते हैं। जो प्राणी अपने जीवनभर पापमें अनुरक्त थे, उनको इस मार्गमें जो कष्ट भोगना पड़ता है, उसको विस्तारपूर्वक सुनो—

मृत्युके तेरहवें दिन वह पापी यमदूतोंके कठोर पाशोंमें बांध लिया जाता है। हाथमें अंकुश लिये हुए क्रोधावेशमें तनी हुई भीड़ोंसे युक्त दण्डप्रहार करते हुए यमदूत उसको खींचते हुए दक्षिण दिशामें स्थित अपने लोकको ले जाते हैं। यह मार्ग कुश, कौटो, बौजियों, कीलों और कठोर पत्थरोंसे परिव्याप्त रहता है। कहीं-कहीं उस मार्गमें अग्नि



जलती रहती है और कहीं-कहीं सैकड़ों दरारोंसे दुर्गम भूमि होती है। प्रचंड सूर्यकी गर्मी और मच्छरोंसे परिव्याप्त उस मार्गमें प्राणी सियारोंके समान चीभत्स चौत्कार करते हुए यमदूतोंके द्वारा खींचे जाते हैं। यमलोकके दारुण मार्गमें

पापी जाता है और शरीरके जलनेके कारण अत्यन्त क्षीणताको प्राप्त होता है। अपने कर्मानुसार विभिन्न जंतुओंके द्वारा अङ्गोंके खाये जाने, भेदन एवं छेदन किये जानेके कारण जीव अत्यधिक दारुण दुःख प्राप्त करता है।

हे ताक्ष्य! जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरको प्राप्त करके यमलोकमें नाना प्रकारका कष्ट भोगता है। यमलोकके इस मार्गमें सोलह पुर पड़ते हैं। उनके विषयमें भी सुनो—याम्य, सौरिपुर, वनेन्द्रभवन, गन्धर्वपुर, शैलागम, क्रींच, कुरपुर, विधिवभवन, बड़ापद, दुःखद, नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्र, पयोवर्षण, शीताब्ध और बहुभीति—ये सोलह पुर हैं, भयंकर होनेसे ये दुर्दर्शन हैं। याम्यपुरके मार्गमें प्रविष्ट होकर जीव 'हे पुत्र! हे पुत्र! मेरी रक्षा करो' ऐसा करुणक्रन्दन करता हुआ अपने द्वारा किये गये पापोंका स्मरण करता है और अठारहवें दिन वह यमराजके उस नगरमें पहुँच जाता है। वहाँ पुण्यभद्रा नामक नदी प्रवाहित होती है। वहाँ देखनेमें आसना सुन्दर वटवृक्ष हैं जहाँपर जीव विश्राम करना चाहता है, किन्तु यमदूत उनको वहाँ विश्राम नहीं करने देते। उसके पुरोंके द्वारा स्नेहपूर्वक अथवा अन्य किसीके द्वारा कृपापूर्वक पृथ्वीपर जो मासिक पिण्डदान दिया जाता है, उसीको वह वहाँपर खाता है।

तदनन्तर वहाँसे उसकी यात्रा सौरिपुरके लिये होती है। चलता हुआ वह मार्गमें यमदूतोंके द्वारा मुद्गरोंसे पीटा जाता है। उस दुःखसे अत्यधिक पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

जलाशयो वैव कृतो मया तदा  
मनुष्यतुल्यं पशुपक्षितुल्यं।  
गोतुप्तिहेतोर्न च गोचरः कृतः  
शरीरं हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥

(५।१००)

उस जन्ममें मनुष्य और पशु-पक्षियोंकी संतुष्टिके लिये मैंने जलाशय नहीं खुदवाया। गौओंकी क्षुधा-शान्तिके लिये गोचरभूमिका दान भी मैंने नहीं दिया। अतः हे शरीर! जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अब तुम अपना निस्तर करो।

उस सौरिपुरमें कामरूपधारी इच्छानुसार विविधशील एवं गतिशील राजा राज्य करता है। उसका दर्शनभाव करनेसे जीव भयसे काँप उठता है और अपने अनिष्टको संकासे ग्रस्त होकर त्रिपक्षमें पुत्रादिक स्वजनोंके द्वारा पृथ्वीपर दिये गये

जलयुक्त पिण्डको खाकर आगे बढ़ता है। वहाँसे वह आगे बढ़ता हुआ मार्गमें यमदूतोंके खड्गप्रहारसे अत्यन्त पीड़ित होकर इस प्रकार प्रलाप करता है—

न नित्यदानं न गवाहिकं कृतं

पुस्तं च दत्तं न हि वेदशास्त्रयोः।

पुराणदृष्टो न हि सेवितोऽध्वा

शरीरं हे निस्तारयत् त्वया कृतम्॥

(५।१०३)

हे शरीर! मैंने जलादिका सदा दान नहीं दिया है, न तो नियमसे प्रतिदिन गायके लिये अपेक्षित गोघ्रास आदि कृत्य किया है और न तो वेदशास्त्रकी पुस्तकका ही दान किया है। पुराणमें देखे हुए मार्ग (तीर्थयात्रा आदि) का मैंने सेवन नहीं किया है, इसलिये जैसा तुमने किया है, उसीमें अपना निस्तार करो।

इसके बाद जीव 'नगैन्दनगर'में जाता है। वहाँपर वह अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दूसरे महीनेमें दिये गये अन्नको खाकर आगेकी ओर प्रस्थान करता है। चलते हुए उसके ऊपर यमदूतोंद्वारा कृपाणकी मुठियोंसे प्रहार किये जानेपर वह इस प्रकार प्रलाप करता है—

पराधीनमभूत् सर्वं यम मूर्च्छाशितोमणेः॥

महता पुण्ययोगेन मानुष्यं लब्धवानहम्।

(५।१०५-१०६)

बहुत बड़े पुण्योंको करनेके पश्चात् मुझे मनुष्य-योगि प्राप्त हुई थी, किन्तु मुझे मूर्च्छाभिराजका सब कुछ पराधीन हो गया अर्थात् मनुष्ययोगि प्राप्त करके भी मैं कुछ सत्कर्म न कर सका।

इस प्रकार विलाप करता हुआ जीव तीसरे मासके पूरा होते ही गन्धर्वनगरमें पहुँच जाता है। तदनन्तर समर्पित किये गये तृतीय मासिक पिण्डको वहाँ खाकर वह पुनः आगेकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदूत उसको कृपाणके अप्रभागसे मारते हैं, जिससे आहत होकर वह पुनः इस प्रकार विलाप करता है—

मया न दत्तं न हुतं हुताग्ने

तपो न तप्तं हिमशीतलवद्धरे।

न सेवितं गार्गमहो महाजलं

शरीरं हे निस्तारयत् त्वया कृतम्॥

(५।१०८)

मैंने कोई दान नहीं दिया, अग्निमें आहुति नहीं डाली और न तो हिमालयकी गुफामें जाकर तप ही किया है। ओरे! मैं तो इतना नीच हूँ कि गङ्गाके परम पवित्र जलका भी सेवन नहीं किया, इसलिये हे शरीर! जैसा तुमने कर्म किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो।

हे पशुन्! चौथे मासमें जीव शैलागमपुर पहुँच जाता है। वहाँ उसके ऊपर निरन्तर पत्थरोंकी वर्षा होती है। पुत्रके द्वारा दिये गये चतुर्थ मासिक श्राद्धको प्राप्तकर वह जीव सरकते हुए चलता है किन्तु पत्थरोंके प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित होकर वह गिर पड़ता है और रोते हुए यह कहता है—

न ज्ञानमार्गो न च योगमार्गो

न कर्ममार्गो न च भक्तिमार्गः।

न साधुसङ्गात् किमपि श्रुतं मया

शरीरं हे निस्तारयत् त्वया कृतम्॥

(५।१११)

मैंने न तो ज्ञानमार्गका सेवन किया न योगमार्गका, न कर्ममार्ग और न ही भक्तिमार्गको अपनाया और न साधु सन्तोंका साथ करके उनसे कुछ हितैषी बातें ही सुनी हैं। अतः हे शरीर! तब जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो। मृत्युके पौषमें मासमें कुछ कम दिनोंमें वह 'क्रौंचपुर' पहुँच जाता है, उस समय पुत्रादिके द्वारा दिये गये ऊनषाण्मासिक श्राद्धके पिण्ड और जलका सेवन करके वहाँ एक घड़ी विश्राम करता है।

हे कश्यपपुत्र! इसके बाद छठे मासमें जीव 'क्रूरपुर'की ओर चल देता है। मार्गमें वह पृथ्वीपर दिये गये पञ्चम मासिक पिण्डको खाकर जलपान करता है। तत्पश्चात् वह क्रूरपुरकी ओर फिर बढ़ता है, किन्तु यमदूत मार्गमें उसको पट्टिदृशों (अस्त्रविशेष) द्वारा मारते हैं, जिससे वह गिर पड़ता है और इस प्रकार विलाप करता है—

हा मातर्हा पितर्भातः

सुता हा हा मम स्त्रियः॥

मुष्माभिर्नोपदिष्टोऽहम्-

वस्त्रा प्राप्य ईदृशीम्।

(५।११३-११४)

हे मेरी माता-पिता और भाई-बन्धु! हे मेरी पुत्र! हे मेरी स्त्रियो! आप लोगोंने मुझे कोई ऐसा उपदेश नहीं दिया,



जिससे मैं उन दुष्कृत्योंसे बच सकता, जिनके कारण मेरी इस प्रकारकी अवस्था हो गयी।

इस प्रकारका विलाप करते हुए उस जीवसे यमदूत कहते हैं—अरे मूर्ख! तेरी कहाँ माता है, कहाँ पिता है, कहाँ स्त्री है, कहाँ पुत्र है और कहाँ मित्र है? तू अकेला ही चलते हुए इस मार्गमें अपने द्वारा किये गये दुष्कृत्योंके फलका उपभोग कर। हे मूर्ख! तू जान ले इस मार्गमें चलनेवाले लोगोंको दूसरेकी शक्तिका आश्रय करना व्यर्थ है। परलोकमें जानेके लिये पराये आश्रयकी आवश्यकता नहीं होती है। वहाँ (स्वकर्मोद्भूत) पुण्य ही साथ देता है। तुम्हारा तो उसी मार्गसे गमन निश्चित है, जिस मार्गमें किसी क्रय-विक्रयके द्वारा भी अपेक्षित सुख-सम्पन्नता संग्रह नहीं किया जा सकता।

इसके बाद वह जीव 'विचित्रनगर'के लिये चल देता है। रास्तेमें यमदूत उसको शूलके प्रहारसे आहत कर देते हैं, जिसके कारण वह दुःखित होकर इस प्रकारका विलाप करता है—

कुत्र यामि न हि मामि जीवितं हा मृतस्य मरणं पुनर्न वै।

(५।११९)

हाय! मैं कहाँ चल रहा हूँ, मैं तो निश्चित ही अब जीवित नहीं रहना चाहता, फिर भी जीवित हूँ। मेरे हुए प्राणीकी मृत्यु पुनः नहीं होती।

इस प्रकारका विलाप करता हुआ वह जीव यातना-शरीरको धारण करके 'विचित्रनगर'में जाता है। वहाँपर विचित्र नामका राजा राज्य करता है। वहाँपर वह पाण्डासिक पिण्डसे अपनी क्षुधाको शान्त कर आगे आनेवाले नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदूत भालेसे प्रहार करते हैं, जिससे संजस्त होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

माता भ्राता पिता पुत्रः कोऽपि मे वर्तते न वा।

यो मामुद्धरते पापं पतन्तं दुःखसागरे॥

(५।१२२)

मेरे माता-पिता, भाई, पुत्र कोई है अथवा नहीं है, जो इस दुःखके सागरमें गिरे हुए मुझे पापीका उद्धार कर सके।

ऐसा विलाप करता हुआ वह जीव मार्गमें चलता रहता है। उसी मार्गमें 'वैतरणी' नामकी एक नदी पड़ती है, जो सी योजन चौड़ी है और रक्त तथा पीबसे भरी हुई है। जैसे

ही मृतक उस नदीके तटपर पहुँचता है, वैसे ही वहाँपर नाववाले—मल्लाह आदि उसको देखकर यह कहते हैं कि यदि तुमने वैतरणी गौका दान दिया है तो इस नावपर सवार हो जाओ और सुखपूर्वक इस नदीको पार कर लो। जिसने वैतरणी नामक गौका दान दिया है, वही सुखपूर्वक इस नदीको पार कर सकता है। जिस व्यक्तिने वैतरणी गौका दान नहीं दिया है, उसको नाविक हाथ पकड़कर धसीटते हुए ले जाते हैं। तेज और नुकीली चाँचसे कौआ, बगुला तथा उलूक नामक पक्षी अपने प्रहारसे उसे अत्यन्त व्यथित करते हैं। हे पक्षिन्! अन्त समय आनेपर मनुष्योंके लिये वैतरणीका दान ही हितकारी है। यदि प्राणी अपने जीवनकालमें वैतरणी नामक गौका दान देता है तो वह गौ समस्त पापोंको विनष्ट कर देती है और उसको यमलोक न ले जाकर विष्णुलोकको पहुँचा देती है।

सप्तवीं मास आ जानेपर मृतक 'ब्रह्मपद' नामक पुरमें आ जाता है। वहाँपर सप्तमासिक सोदक पिण्डका सेवन करके आगे बढ़ते हुए परिषदके आघातसे पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

न दत्तं न दत्तं तर्पं न स्नानं न कृतं हितम्।

यादृशं चरितं कर्म मुञ्चामन् भुङ्क्ष्व तादृशम्॥

(५।१२९)

हे शरीर! मैंने दान, आहुति, तप, तीर्थस्नान तथा प्ररोपकार आदि सत्कृत्य जीवनपर्यन्त नहीं किया है। हे मूर्ख! अब जैसा तुमने कर्म किया है, वैसा ही भोग करो।

हे तक्ष्म! इसके बाद वह जीव आठवें मासमें 'दुःखदपुर' पहुँचता है। वहाँ स्वजनोंके द्वारा दिये गये अष्टमासिक पिण्ड और जलका सेवन करके 'नानाक्रन्द' नामक पुरकी ओर प्रस्थान कर देता है। मार्गमें चलते हुए मुसलाघातसे पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

क्व जायाच्छतुर्लोक्यदुष्टदुर्धर्चनैर्मय॥

भोजनं भल्लभल्लीभिर्मुसलैश्च क्व मारणम्।

(५।१३१-१३२)

हाय! कहाँ चंचल नेत्रोंवाली पत्नीके चापलूसी भरे वचनोंके द्वारा किये गये मनोविनोदोंके बीच मेरा भोजन होता था और कहाँ भाला-बाँछियों तथा मुसलोंके द्वारा मुझे मारा जा रहा है।

इस प्रकार विलाप करता हुआ वह जीव नवें मासमें 'नानाक्रन्दपुर' पहुँच जाता है। तदनन्तर नवें मासमें पुच्छरा दिए गये पिण्डका भोजन करके वह नाना प्रकारका विलाप करता है। तत्पश्चात् यमदूत दसवें मासमें उसको 'सुतप्तभवन' ले जाते हैं। मार्गमें वे उसको हलसे मारते-पीटते हैं, जिससे आहत होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

क्व सूनूपेशलकरैः पादसंवाहनं मम॥

क्व दूतवन्नप्रतिमकर्ममपदकर्षणम्॥

(५।१३४-१३५)

हाय! कहीं पुत्रोंके कोमल-कोमल हाथोंसे मेरे पैर दाबे जाते थे और कहीं आज इन यमदूतोंके वज्रसदृश कठोर हाथोंसे पैर पकड़कर मुझे निर्दयतापूर्वक घसीटा जा रहा है!

दसवें मासमें वहाँपर पिण्ड और जलका उपभोग करके वह (जीव) पुनः आगेकी ओर सरकने लगता है। प्यारहवाँ मास पूर्ण होते ही वह 'रीद्रपुर' पहुँच जाता है। मार्गमें यमदूत जैसे ही उसकी पीठपर प्रहार करते हैं, वह चिल्लाते हुए इस प्रकार विलाप करता है—

क्वाहं सतूलीशयने परिचरन् शरणं क्षणे।

भद्रहस्तप्रहृषट्कृष्णपृष्ठः क्व वा पुनः॥

(५।१३७)

कहीं मैं रुईसे बने हुए अत्यन्त कोमल गद्देपर लेटकर प्रतिक्षण करवटें बदलता था और कहीं आज यमदूतोंके हाथोंसे निर्दयतापूर्वक मारी जा रही लाठियोंके प्रहारसे कटी पीठसे करवट बदल रहा हूँ।

हे टिंज! इसके पश्चात् वह जीव पुच्छोंपर दिये गये जलसहित पिण्डको खाकर 'पयोवर्षण' नामक नगरकी ओर प्रस्थान करता है। रास्तेमें यमदूत कुल्हाड़ीसे उसके सिरपर प्रहार करते हैं। हताहत होकर वह इस प्रकारका विलाप करता है—

क्व भृत्यकोमलकरैर्गन्धतेलावसेचनम्॥

क्व कीनाशानुगैः क्रोधात्कुठारैः शिरसि व्यथा।

(५।१३९-१४०)

हाय! कहीं भृत्योंके कोमल-कोमल हाथोंसे मेरे सिरपर सुवासित तेलकी मालिश होती थी और कहीं आज क्रोधसे परिपूर्ण यमदूतोंके हाथोंसे मेरे इस सिरपर कुल्हाड़ियोंका प्रहार हो रहा है!

इस पयोवर्षण नामक नगरमें वह मृतक कृन्नाब्दिक श्राद्धका दुःखपूर्वक उपभोग करता है। तदनन्तर वर्ष

बीतते ही वह 'हीताक्ष' नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें बढ़ते हुए उस मृतककी जिह्वाको यमदूत छुरीसे काट डालते हैं, जिससे दुःखित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

प्रियालापैः क्व च रसमधुरत्वस्य वर्णनम्।

उक्तमात्रेऽस्मिपत्रादिजिह्वाच्छेदः क्व घेव हि॥

(५।१४२)

अरे! कहीं परस्पर प्रिय वार्तालापोंके द्वारा इस जिह्वाके रसमाधुर्यकी प्रशंसा की जाती थी, कहीं आज मुँह खोलनेमात्रपर ही तलवारके समान तीक्ष्ण छुरी आदिके द्वारा मेरी उसी जिह्वाको काट दिया जा रहा है!

तदनन्तर उसी नगरमें वह मृतक वार्षिक पिण्डोदक तथा श्राद्धमें दिये गये अन्य पदार्थोंका सेवन कर आगेकी ओर बढ़ता है। पिण्डज शरीरमें प्रविष्ट होकर वह 'बहुभीति' नामक नगरमें जाता है। वह मार्गमें अपने पापका प्रकाशन और स्वर्गकी निन्दा करता है। यमपुरीके इस मार्गमें सबी भी इसी-इसी प्रकारका विलाप करती है।

इसके बाद वह मृतक अत्यन्त निकट ही स्थित यमपुरीमें जाता है। वह याम्यलोक चौकालीस योजनमें



विस्तृत है। उसमें श्रवण नामक तेरह प्रतीहार हैं। उन प्रतीहारोंको श्रवणकर्म करनेसे प्रसन्नता होती है। अन्यथा वे क्रुद्ध होते हैं। ऐसे लोकमें पहुँचनेके पश्चात् प्राणी मृत्युकाल तथा अन्तक आदिके मध्यमें स्थित क्रोधसे लाल-लाल नेत्रोंवाले काले पहाड़के समान भयंकर आकृतिसे

युक्त यमराजको देखता है। विशाल द्यौतोंसे उनका मुखमण्डल बड़ा ही भयानक लगता है। उनकी भू-भंगिमाएँ तनी रहती हैं, जिससे उनकी आकृति भयानक प्रतीत होती है। अत्यन्त विकृत मुखाकृतियोंसे युक्त सैकड़ों व्याधियाँ उनको चारों ओरसे घेरे रहती हैं। उनके एक हाथमें दण्ड और दूसरे हाथमें धैरव-पाश रहता है।

यमलोकमें पहुँचा हुआ जीव यमके द्वारा बतायी गयी शुभाशुभ गतिको प्राप्त करता है। जैसा मैंने तुमसे पहले कहा है, उसी प्रकारकी पापात्मक गति सभी जीवको प्राप्त होती है। जो लोग छत्र, पादुका और घरका दान देते हैं, जो लोग पुण्यकर्म करते हैं, वे वहाँपर पहुँचकर सौम्य स्वरूपवाले, कानोंमें कुण्डल और सिरपर मुकुट धारण

किये हुए शोभासम्पन्न यमराजका दर्शन करते हैं।

चूँकि वहाँ जीवको बहुत भूख लगती है, इसलिये एकादशाह, द्वादशाह, षण्मास तथा वार्षिक तिथिपर बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। हे खगश्रेष्ठ! जो व्यक्ति पुत्र, स्त्री तथा अन्य सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा कहे गये उनके स्वार्थको ही जीवनपर्यन्त सिद्ध करता है और अपने परलोकको बनानेके लिये पुण्यकर्म नहीं करता, वही अन्तमें कष्ट प्राप्त करता है।

हे गरुड! मृत्युके पश्चात् संयमनीपुरको जानेवाले प्राणीकी जो गति होती है और वर्षपर्यन्त जो कृत्य किये जाते हैं, उसको मैंने कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ५)

\*\*\*

## वृषोत्सर्गकी महिमामें राजा वीरवाहनकी कथा, देवर्षि नारदके पूर्वजन्मके इतिहासवर्णनमें सत्संगति और भगवद्भक्तिका माहात्म्य, वृषोत्सर्गके प्रभावसे राजा वीरवाहनको पुण्यलोककी प्राप्ति

गरुडने कहा—हे प्रभो! जो तीर्थ-सेवन और दानमें निरन्तर लगा है तथा अन्य साधनोंसे भी सम्पन्न है, उसे भी वृषोत्सर्ग किये बिना परलोकमें सद्गति नहीं प्राप्त होती। इसलिये मनुष्यको वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये। ऐसा मैंने आपसे सुन लिया। इस वृषोत्सर्गका फल क्या है? प्राचीन समयमें इस यज्ञको किसने किया? इसमें किस प्रकारका वृष होना चाहिये? विशेष रूपसे इस कार्यको किस समय करना चाहिये और इसको करनेकी कौन-सी विधि बतायी गयी है? यह सब बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! मैं उस महापुण्यशाली इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका वर्णन ब्रह्मके पुत्र महर्षि वसिष्ठने राजा वीरवाहनसे किया था।

प्राचीन समयकी बात है, विराधनगरमें वीरवाहन नामक एक धर्मात्मा, सत्यवादी, दानशैल और विप्रोंको संतुष्ट करनेवाले राजा रहते थे। किसी समय वे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। कुछ पृच्छनेकी जिज्ञासासे वे वसिष्ठमुनिके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ आसन ग्रहण कर विनम्रतासे झुके हुए राजाने ऋषियोंकी संसदमें मुनिको नमस्कार करके पूछा।

राजाने कहा—हे मुने! मैंने यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक

अनेक धार्मिक कृत्य किये हैं, फिर भी यमराजके कठोर शासनको सुनकर मैं हृदयमें बहुत ही भयभीत हूँ। हे कुपानिधान! महाभाग! ऋषिपर! मुझे यम, यमदूत और देखनेमें अतिशय भयंकर लगनेवाले नरकलोकोंको न देखना पड़े, ऐसा कोई उपाय बतानेकी कृपा करें।

वसिष्ठने कहा—हे राजन्! शास्त्रवेत्ता अनेक प्रकारके धर्मोक्त वर्णन करते हैं, किंतु कर्ममार्गसे विमोहित जन सूक्ष्मतया उनको नहीं जानते। दान, तीर्थ, तपस्या, यज्ञ, संन्यास तथा पितृक्रिया आदि सभी धर्म हैं, उन धर्मोंमें भी वृषोत्सर्गका विशेष महत्त्व है। मनुष्यको बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये। यदि उनमेंसे एक भी पुत्र गया-तीर्थमें जाय, अश्वमेधयज्ञ करे अथवा नील वृषभ यथाविधि छोड़े तो जाने-अनजाने किये गये ब्रह्महत्या आदि पाप भी विनष्ट हो जाते हैं। यह शुद्धि नील वर्णके वृषभका उत्सर्ग अथवा समुद्रमें स्नान करनेसे भी हो सकती है। हे राजेन्द्र! जिसके एकादशाहमें वृषोत्सर्ग नहीं होता, उसका प्रेतत्व स्थिर ही रहता है। मात्र श्राद्ध करनेसे क्या लाभ होगा? जिस-किसी भीति नगर अथवा तीर्थमें वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये।

हे खगेश! वृष-यज्ञके द्वारा प्रेतत्वसे मुक्ति प्राप्त होती

है, अन्य साधनोंसे नहीं। जो वृषभ शुभ लक्षणोंसे समन्वित युवा तथा कृष्ण गल-कम्बलवाला हो और सदैव जो गायोंके झुंडमें घूमनेवाला हो, उस वृषभको विधि-विधानसे चार अथवा दो या एक बछियाके साथ पहले उसका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर माङ्गलिक द्रव्यों एवं मन्त्रोंके साथ उन सबका उत्सर्ग किया जाय। 'इंहरतीति०' इन छः मन्त्रोंसे अग्निदेवको आहुति देनी चाहिये। कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमा, संक्रान्ति, अन्य पुण्यकाल, व्यतिरात तथा तीर्थमें और पिताको क्षयतिथि वृषोत्सर्गके लिये विशेष रूपसे प्रशस्त मानी जाती है। 'जो वृषभ लाल वर्णका हो और उसका मुँह-पूँछ पाण्डु (श्वेत-पीतमिश्रित) हो, खुर और सींगोंका वर्ण पीत हो, वह नीलवृषभ कहा जाता है—

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः॥

पीतः खुरविषाणेभु स नीलो वृष इच्छते।

(१।१९-२०)

जो वृषभ श्वेत वर्णका होता है वह ब्राह्मण है, जो लोहित वर्णका है वह क्षत्रिय है, जो पीत वर्णका है वह वैश्य है और जो कृष्ण वर्णका है वह शूद्र है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णको अपने वर्णके अनुसार वृषोत्सर्ग करना चाहिये अथवा रक्तवर्णका ही वृषभ सबके लिये कल्याणप्रद है।

पिता, पितामह तथा प्रपितामह पुत्रके उत्पन्न होनेपर यही आशा करते हैं कि यह मेरे लिये वृषोत्सर्ग करेगा। वृषोत्सर्गके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्ददायकः॥

अष्टमूर्तैरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।

गङ्गायमुनयोः पेयमन्तर्वेदि तृणं खर॥

धर्मराजस्य पुरतो वाच्यं मे सुकृतं वृष।

(१।२३-२५)

हे धर्म! आप इस वृषभरूपमें संसारको आनन्द प्रदान करनेवाले देव हैं। आप ही अष्टमूर्ति शिवके अधिष्ठान हैं। अतः मुझे शान्ति प्रदान करें। आप गङ्गा-यमुनाका जल पियें। अन्तर्बेदीमें घास चरें और हे वृष! धर्मराजके सामने मेरे पुण्यकर्मकी चर्चा करें।

इस प्रकारका निवेदन करते हुए संस्कारोंको चाहिये कि

वृषभके दाहिने कन्धेपर त्रिशूल और बायें ऊरुभागमें चक्रका चिह्न अंकित करके गन्ध, पुष्प तथा अक्षत आदिसे बछियाके सहित उस वृषभकी पूजा करके विधिवत् बन्धनमुक्त कर दें।

वसिष्ठजीने कहा—हे राजन्! आप भी विधिवत् वृषोत्सर्ग करें, अन्यथा सभी साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी आपको सद्गति नहीं प्राप्त हो सकती है। राजन्! पहले त्रेतायुगमें विदेहनगरमें धर्मवत्स नामका एक ब्राह्मण था, जो अपने वर्णानुसार कर्ममें अहर्निश निरत, विद्वान्, विष्णुभक्त, अत्यन्त तेजस्वी और यथास्ताभसे संतुष्ट रहता था। एक बार पितृपर्वके आनेपर वह कुछ लेनेके लिये वनमें गया। वहाँ इधर-उधर घूमता हुआ वह कुश और पलाशके पत्तोंको एकत्र करने लगा। एकाएक वहाँपर देखनेमें अत्यन्त सुन्दर चार पुरुष आये और उस ब्राह्मणको पकड़कर आकाशमार्गसे लेकर चले गये। वे चारों पुरुष उस दीन, व्यथित ब्राह्मणको पकड़कर बहुत-से वृक्षांशुवाले घनघोर वन, पर्वतोंके दुर्गोंकी पार कराते हुए एक वनसे दूसरे वनके मध्य ले गये। हे राजन्! वहाँपर उस ब्राह्मणने एक बहुत बड़ा नगर देखा। वह नगर मुख्यद्वारसे समन्वित तथा अनेक प्रासादोंसे सुशोभित हो रहा था। चबूतरा, बाजार, खरीदी-बेची जानेवाली वस्तुओं और नर-नारीसे युक्त उस नगरमें तुरहिणोंकी ध्वनि हो रही थी। वीणा और गगाड़े बज रहे थे। वहाँ कुछ भूखसे पीड़ित, दीन-हीन, पुरुषार्थसे रहित लोगोंको भी उसने देखा। उसके बाद अत्यन्त मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्रोंकी पहने हुए लोग दिखायी पड़े। आगे इष्ट-पुष्ट स्वर्णाभूषणसे अलंकृत सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए कुछ ऐसे लोग थे, जो देवताओंके समान शोभासम्पन्न थे; जिनको देखकर वह विस्मयाभिभूत हो उठा। वह सोचने लगा कि क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? अथवा यह कोई माया है? या मेरे मनका यह विभ्रम है? वह ब्राह्मण इस प्रकारकी शंका कर ही रहा था कि वे चारों पुरुष उसको लेकर राजाके पास गये। स्वर्णजटित उस राजप्रासादके बीच स्थित राजाको वह ब्राह्मण एकटक देखता ही रह गया। वहाँपर एक महादिव्य सिंहासन था, जहाँ छत्र और चक्र डुलाये जा रहे थे। उसके ऊपर



स्वर्णनिर्मित मुकुट धारण किया हुआ महान् शोभा-सम्पन्न राजा बैठा हुआ था। वन्दोजन उसका गुणगान कर रहे थे।

राजा उस ब्राह्मणको देखकर खड़ा हो गया और उसने मधुपर्क तथा आसनादि प्रदान कर उनकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर वह राजा उन विप्रदेवसे इस प्रकार कहने लगा—हे प्रभो! आज आप जैसे धर्मपरायण विष्णुभक्तका दर्शन हुआ है, इससे मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा यह कुल भी पवित्र हो उठा। तदनन्तर राजाने उस ब्राह्मणको प्रणाम किया और बहुत प्रकारसे उनको संतुष्ट करके अपने दूतोंसे कहा—हे दूत! ये ब्राह्मणदेव जहाँसे आये हुए हैं, पुनः तुम सब इन्हें वहीं ले जाकर पहुँचा आओ। ऐसा सुनकर उन ब्राह्मणबेदने राजासे पूछा—

हे राजन्! यह कौन-सा देश है? यहाँपर ये उत्तम, मध्यम और अधम चरित्रवाले लोग कहाँसे आये हुए हैं? आप किस पुण्यके प्रभावसे यहाँ इन सबके बीच प्रधान पदपर विराजमान हैं? मुझको यहाँ किसलिये लाया गया और फिर क्यों वापस भेजा जा रहा है? यह सब स्वयंके समान मुझे अनोखा दिखायी दे रहा है?

इसपर राजाने कहा—हे विप्रदेव! अपने धर्मका पालन करते हुए जो मनुष्य सदैव भगवान् हरिकी भक्तिमें अनुरक्त और इन्द्रियोंके विषयसे परे रहता है, वह मेरे लिये निश्चित ही पूज्य है। नित्य जो प्राणी तीर्थोंकी यात्रा करनेमें ही लगा रहता है, जो वृषोत्सर्गके माहात्म्यको भलीभाँति जानता है और जो सत्य एवं दान-धर्मका पालक है, वह व्यक्ति देवताओंके लिये भी प्रणम्य है। हे परंतप! हे पूजार्ह! आपका दर्शन हम सभी प्राप्त कर सकें, इसलिये आपको यहाँ लाया गया था। हे देव! आप मुझपर प्रसन्न हों और मुझे इस साहसके लिये क्षमा करें। मैं स्वयं अपने सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। इस वृत्तान्तका वर्णन मेरा यह विपश्चित् नामवाला मन्त्री करेगा। राजाका वह मन्त्री सब वेदोंकी जाननेवाला विद्वान् व्यक्ति था। अतः अपने स्वामीकी हार्दिक इच्छाको जानकर वह कहने लगा—

हे विप्र! यह राजा पूर्वजन्ममें द्विज और देवताओंसे सुशोभित विराधनगरमें विशम्भर नामका एक वैश्य था। ऐसा मैंने सुना है। वैश्य-वृत्तिसे जीवनयापन करते हुए वह अपने परिवारका पालन करता था। नित्य गायोंकी सेवा तथा ब्राह्मणोंकी पूजा भी करता था। सत्याग्रको दान, अतिथिसेवा

तथा अग्निहोत्र करना उसका नित्य धर्म था। सत्यमेधा नामकी पत्नीके साथ उसने विधिवत् गृहस्थाश्रमका संचालन किया। उसने स्मार्त कर्मके अनुष्ठानसे सभी लोकों तथा श्रौत कर्मोंसे देवताओंको जीत लिया था।

किसी समय जब वह वैश्य अपने भाइयोंके साथ बहुत-से तीर्थोंकी यात्रा कर अपने घर लौट रहा था, तब मार्गमें ही उसे लोमश ऋषिका दर्शन हो गया। उसने महर्षिके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। हाथ जोड़कर विनम्रवदनत खड़े उस वैश्यसे करुणाके सागर महर्षि लोमशने पूछा—

हे भद्रपुरुष! ब्राह्मणों और अपने भाई-बन्धुओंके साथ आप कहाँसे आ रहे हैं? धर्मप्राण! आपको देखकर मेरा मन आई हो उठा है।

इसपर विशम्भर वैश्यने उत्तर दिया—मुनिवर! यह शरीर नश्वर है। मृत्यु प्राणीके सामने ही खड़ी रहती है—ऐसा जानकर अपनी धर्मपरायणा पत्नीके साथ मैं तीर्थयात्रामें गया था। तीर्थोंका विधिवत् दर्शन एवं प्रचुर धन-दान कर मैं अपने घरकी ओर वापस आ रहा था कि सीभाग्यवश आपका दर्शन हो गया।

लोमशने कहा—इस भारतवर्षकी पावन भूमिमें बहुत-से तीर्थ हैं। आपने जिन तीर्थोंकी यात्रा की है, उनका वर्णन मुझसे करें।

वैश्यने कहा—हे ऋषिवर! जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती नामक पवित्रतम नदियाँ एक साथ मिलकर प्रवाहित होती हैं, जहाँ ब्रह्मा तथा देवराज इन्द्रने दशाश्वमेध-यज्ञ किया था उस तीर्थराज प्रयाग; जहाँ करुणानिधान देवदेवेश्वर शिव प्राणियोंके कानमें 'तारकमन्त्र' का उपदेश देते हैं उस मोक्षदायिनी काशी; पुलहाश्रम, फल्गुतीर्थ, गण्डकी, चक्रतीर्थ, नैमिशारण्य, शिवतीर्थ, अनन्तक, गोप्रतारक, नागेश्वर, विन्दुसरोवर, मोक्षदायक राजीवलोचन भगवान् रामसे सुशोभित अयोध्या; अग्नितीर्थ, वायुतीर्थ, कुबेरीतीर्थ, कुमारतीर्थ, सूकरक्षेत्र, भगवान् कृष्णसे अलंकृत मथुरा; पुष्कर, सत्यतीर्थ, ज्वालातीर्थ, दिनेश्वरतीर्थ, इन्द्रतीर्थ, पश्चिमवाहिनी सरस्वती तथा कुरुक्षेत्र जाकर मैंने दर्शन किया। उसके बाद मैं ताप्ती, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, मलय, कृष्णवेणी, गोदावरी, दण्डकवन, ताम्रचूड़, सदोदक और छावाभूमिश्वर तीर्थको देखकर पर्वतराज श्रीशैल पहुँचा। तदनन्तर महत्तेजस्वी भगवान् हरि स्वयं जहाँ श्रीरङ्ग नामसे

निवास करते हैं, जहाँ महिषासुरमर्दिनी दुर्गा वेंकटी नामसे पुकारी जाती हैं, उस वेंकटाचलकी यात्रा मेरे द्वारा की गयी। तत्पश्चात् चन्द्रतीर्थ, भद्रवट, कावेरी, कुटिलाचल, अवटोदा, ताम्रपर्णी, त्रिकूट, कोल्लकगिरि, वसिष्ठतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, महोदधि, हृषीकेश, विराज, विशाल और नीलाद्रि (जगन्नाथपुरी), भीमकूट, श्वेतगिरि, रुद्रतीर्थ तथा जहाँ तपस्या करके पार्वतीने भगवान् शिवका पतिरूपमें वरण किया था, उस उमावन तीर्थकी मैंने यात्रा की। साथ ही वरुणतीर्थ, सूर्यतीर्थ, हंसतीर्थ तथा महोदधि तीर्थकी यात्रा हुई, जहाँ स्नान करके काकोला (पहाड़ी कौआ) भी राजहंस बन जाता है, जहाँ स्नान मात्र करके एक राक्षसने देवत्व पद प्राप्त कर लिया था। इसके बाद विश्वरूप, चन्दितीर्थ रत्नेश तथा कुहकाचल तीर्थ गया जहाँ नरनारायणका दर्शन करके मनुष्य करोड़ों पापसे मुक्त हो जाता है। सरस्वती, दुष्यन्ती और नर्मदा नामक मनुष्योंके लिये कल्याणकारिणी नदियोंकी मैंने यात्रा की। भगवान् नीलकण्ठ, महाकाल, अमरकण्ठक, चन्द्रभगा, वेत्रवती, वीरभद्र, गणेश्वर, गोकर्ण, किल्बिषीर्थ, कर्मकुण्ड और सतारक तीर्थोंमें जाकर आपकी कृपासे मैं अन्य तीर्थोंमें भी गया जहाँ मात्र स्नान करके मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

हे मुने! साधुजनोंकी जो कृपा है, वह प्राणियोंमें कल्याणकारिणी बुद्धिको जन्म देती है। एक ओर तो सभी तीर्थ हैं और दूसरी ओर करुणापूर्ण साधुजन प्राणियोंके कल्याणका उनपर कृपा करनेका उत धारण कर वे इतस्ततः परिभ्रमण करते रहते हैं—

उत्पद्यते शुभा बुद्धिः साधूनां यदनुग्रहः।

एकतः सर्वतीर्थानि करुणाः साधवोऽन्यतः॥

अनुग्रहाय भूतानां चरन्ति चरितव्रताः।

( ६। ७३-७८ )

हे प्रभो! आप सभी वर्णोंके गुरु हैं तथा विद्या एवं वयमें श्रेष्ठ हैं। अतः मैं आपसे उस आधिभौतिक स्वरूपके विषयमें पूछ रहा हूँ, जो चरितन कालसे चला आ रहा है। मैं क्या करूँ? किससे पूछूँ? मेरा मन अत्यन्त चञ्चल हो उठा है। यह ब्रह्मके विषयमें तो निस्पृह रहता है, पर विषयोंमें अति लालापित है। यह रंघमात्र भी उस अज्ञानरूपी अन्धकारका विछोह सहन नहीं कर सकता है। हे विप्रदेव! कर्मोंका जो श्रेष्ठतम क्षेत्र है, वह अनेक

प्रकारके भावोंसे व्यामोहित है। ज्ञानसम्पन्न व्यक्तिके पास जिस प्रकारसे शान्ति आ जाती है, विवेकवान् श्रेष्ठ मनुष्य जिस प्रकार अन्तर्बाह्य दोनों स्थितियोंमें शुद्धताको प्राप्त कर लेता है वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

ऋषिने कहा—हे वैश्यवर्य! यह मन अत्यन्त बलवान् है। यह नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है। तथापि जैसे पोलवान मतवाले हाथीको भी बशमें कर लेता है वैसे ही सत्संगतिसे, आलस्यरहित होकर साधन करके, तीव्र भक्तियोगसे तथा सद्भिचारके द्वारा अपने मनको बशमें कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें तुम्हें विश्वास हो जाय, इसलिये मैं एक इतिहास बता रहा हूँ, जो नारदके पूर्वजन्मके जीवनवृत्तसे जुड़ा हुआ है, जिसको स्वयं उन्होंने ही मुझसे कहा था।

नारदजीने मुझसे कहा—हे मुने! मैं प्राचीनकालमें किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणका दासीपुत्र था। यहाँपर मुझे महान् पुण्यात्माओंकी सत्संगति प्राप्त करनेका सुअवसर भी मिला। एक बार वर्षाकालमें भाग्यवश मेरे घर साधुजन ठहरे हुए थे। मेरे द्वारा विनम्रतापूर्वक बराबर की गयी सेवासे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन लोगोंने मुझे उपदेश दिया था, जिसके प्रभावसे मेरी बुद्धि निर्मल और हितैषिणी बन गयी, जिससे अब मैं अपनेमें ही सबकी विष्णुमय देखता हूँ।

मुनियोंने नारदजीसे कहा—हे वत्स! तुम सुनो। हम सब तुम्हारे हितमें कह रहे हैं, जिसकी स्वीकार कर तदनुसार जीवनयापन करनेवाला प्राणी इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख प्राप्त करता है। इस संसारमें अनेक प्रकारके देवता, पक्षी तथा मनुष्यादिकी योनियाँ हैं, जो कर्मपातमें बँधी हुई हैं। वे सदैव पृथक्-पृथक् रूपसे कर्मफलोंका भोग करते हुए सत्त्वगुणसे देवत्व, रजोगुणसे मनुष्यत्व और तमोगुणसे तिर्यक् योनि प्राप्त करते हैं। वासनामें आबद्ध बुद्धिहीन प्राणी माताके गर्भसे बार-बार जन्म लेकर मृत्युका वरण करता है। इस प्रकार उन असंख्य योनियोंमें जाकर वह कभी दैवयोगसे ही मनुष्यकी दुर्लभ योनिको प्राप्त कर, महात्माओंकी कृपासे भगवान् हरिको जानकर तथा अपार भवसागरकी रोगरूपी ग्राह और मोहरूपी पाशसे युक्त समझकर मुक्त हो जाता है। इस भवसागरको पार करनेके इच्छुक प्राणीके लिये राम-नाम-स्मरणके अतिरिक्त अन्य कोई साधन हमें दिखायी नहीं देता है। जैसे दहीका मन्थन करनेसे नवनीत और काष्ठका

मन्थन करनेसे अग्नि प्राप्त होती है, वैसे ही आत्ममन्थन कर उस परमात्माको जो प्राणी जान लेता है, वह सुखी हो जाता है।

यह आत्मा नित्य, अव्यय, सत्य, सर्वगामी, सभी प्राणियोंमें अवस्थित और महान् है। यह अप्रमेय है। यह स्वयंमें ज्योतिस्वरूप एवं मनसे भी अग्राह्य है। यह वह तत्त्व है, जो सच्चिदानन्दरूप है और सभी प्राणियोंके हृदयमें विराजमान रहता है। भावोंके विनष्ट हो जानेपर भी कभी विनष्ट नहीं होता है। जिस प्रकार आकाश सभी प्राणियोंमें, तेज जलमें तथा वायु सभी पार्थिव पदार्थोंमें स्थित है, उसी प्रकार आत्मा सर्वत्र व्याप्त और निर्लेप है। भलोंपर कृपादृष्टि रखनेवाले भगवान् हरि साधुओंकी रक्षा करनेके लिये अवतरित होते हैं। यद्यपि वे निर्गुण हैं, फिर भी अज्ञानियोंको गुणवान् प्रतीत होते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकारकी ज्ञानवती बुद्धिसे अपने हृदयमें उस परमात्माका धिन्तन करता है, उसके भक्तियोगसे संतुष्ट होकर वे अजन्मा पुरुष परमात्मा उसको अपना दर्शन देते हैं। तत्पश्चात् वह भक्त कृतार्थ हो जाता है और सर्वत्र सर्वत्र निष्कामभावसे बना रहता है। अतः बन्धनयुक्त इस शरीरमें अहंकारका परित्याग करके स्वप्नप्राय संसारमें ममता और आसक्तिसे रहित होकर संचरण करे। स्वप्नमें शैथं कहीं स्थिर रहता है? इन्द्रजालमें कहीं सत्यता होती है? शरत्कालके मेघमें कहीं नित्यता रहती है? वैसे ही शरीरमें सत्यता कहीं रहती है? यह दृश्यमान समस्त चराचर जगत् अविद्या-कर्मजनित है। ऐसा जानकर तुम्हें आचारवान् योगी बनना चाहिये। उससे तुम सिद्धि प्राप्त कर सकते हो।

इस प्रकारका उपदेश देकर वे सभी दीन-हीन प्राणियोंपर वात्सल्य-भाव रखनेवाले साधु वहाँसे चले गये। तदनन्तर मैं (नारद) उनके द्वारा बताये गये मार्गसे उसी प्रकारका आचरण प्रतिदिन करता रहा। कुछ ही समयके पश्चात् मैंने अपने अन्तःकरणमें यह एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा कि शरत्कालीन चन्द्रमाके समान निर्मल, प्रतिष्ठान आनन्द प्रदान करनेवाला अद्भुत प्रकाशपुञ्ज प्रज्वलित हो रहा है। वह महातेज मुझे प्रचुर सुखसे सौचकर (अपने प्रति) अधिक स्मृदायुक्त बनाकर आकाशमें विद्युत्की भाँति अन्तर्हित हो गया। भक्तिपूर्वक मैं उस अनोखे ज्योतिपुञ्जका ध्यान करता हुआ समय आनेपर अपना शरीर छोड़कर विष्णुलोक चला गया।

हे ब्रह्मन्! उन्हीं प्रभुकी इच्छासे पुनः मेरा जन्म ब्रह्मासे हुआ। उन भगवान्की कृपासे ही मैं आज अनासक्त रहकर तीनों लोकोंमें बार-बार चौपा बजाते और गीत गाते हुए भूमता रहता हूँ।

अपना ऐसा अनुभव बताकर मुनि नारद मेरे पास मनोनुकूल दिशामें चले गये। उनकी उस बातसे मुझको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और बहुत संतोष भी मिला।

अतः सत्संगति तथा भगवद्भक्तिसे तुम्हारा विशुद्ध, निर्मल और शान्त स्वभाववाला मन सुखी हो जायगा। हे धर्मज्ञ! साधुसंगति होनेपर अनेक जन्मोंमें किया गया पाप शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे शरत्कालके आनेपर बरसात सम्पन्न हो जाती है—

अतस्ते साधुसङ्गत्या भक्त्या च परमात्मनः॥  
विशुद्धं निर्मलं ज्ञानं मनो विवृतिमेध्वति।  
अनेकजन्मजितं पातकं साधुसङ्गमे॥  
क्षिप्रं नाशति धर्मज्ञ जलानां शरदो यथा।

(६।१११-११३)

वैश्यने कहा—हे ऋषिराज। आपके इस वाक्यामृत-रसपानसे मेरी अन्तःकरणकी शान्ति मिल गयी। आज आपके इस दर्शनसे मेरी समस्त तीर्थयात्राका फल प्रकट हो उठा है।

यह सुनकर लोमशजीने कहा—हे राजेन्द्र! धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गके फलकी इच्छा करनेवाले तुम्हारे हितमें यह मानता हूँ कि वृषोत्सर्गके बिना जो बहुत-से सत्कर्म तुमने किये हैं, वे सब ओसकर्णोंके रूपमें पृथ्वीपर गिरे हुए जलके समान कुछ भी कल्याण करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते हैं। इस पृथ्वीतलपर वृषोत्सर्गके सदृश हितकारी कोई साधन नहीं है। इस श्रेष्ठकर्मको करनेवाले लोग अनायास पुण्यत्पाओंकी सद्गति प्राप्त कर लेते हैं। वृषोत्सर्ग-कर्म जिसने किया है वह व्यक्ति और जो अधमेधयज्ञका कर्ता है, मेरी दृष्टिमें दोनों समान हैं। वे दोनों दिव्य शरीर प्राप्त करके इन्द्रदेवका सान्निध्य ग्रहण करते हैं। अतः तुम पुष्करतीर्थमें जाकर वृषोत्सर्ग-कर्मको सम्पन्न करो। हे साधु! उसके बाद ही तुम अपने घर जाओ, जिससे कि इस तीर्थ-यात्राका समस्त कृत्य भलीभाँति पूर्ण हो जाय।

विपश्चित्ने कहा—इसके बाद वह वैश्य यज्ञको पूर्ण करनेवाले वराहरूपी भगवान् जहाँ विद्यमान हैं, उस श्रेष्ठ पुष्करतीर्थमें गया और उसने कार्तिक पूर्णिमाके दिन ऋषिश्रेष्ठने

संक्षिप्त गण्डपुराणाङ्क

जैसा कहा था, उस वृषोत्सर्ग-कर्मको विधिवत् सम्पन्न किया। इसके बाद लोमश ऋषिकी संगतिसे वह बहुत-से तीर्थोंमें गया। अधिक पुण्य नील (वृष)-विवाहसे उसको प्राप्त हुआ था। श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर दिव्य विषयोंको भोगनेके बाद उसका वीरसेनके राजकुलमें जन्म हुआ। इस जन्ममें उसको वीरपञ्चानन नामकी ख्याति प्राप्त हुई। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ त्रयका एक अद्वितीय साधक था। वृषोत्सर्ग करते समय वहाँ जो नौकर-चाकर उपस्थित थे, वे भी गायकी पूँछके तर्पणके छींटोंका स्पर्श करके दिव्य रूप हो गये। जो दूरसे ही इस कार्यको देख रहे थे, वे लोग हट-पुट हो गये और उनका स्वरूप कान्तिसे चमक उठा। इसके अतिरिक्त जो लोग इस सत्कर्मके भू-भागसे बहुत दूर थे, वे मलिन दिखायी दे रहे थे। वृषोत्सर्ग न देखते हुए जो लोग उसकी निन्दा करनेवाले थे, वे अभाग, दीन-हीन और व्यवहार आदिमें कथ, कृश और वस्त्रविहीन हो गये। हे द्विज! मैंने भगवान् पराक्षरसे पूर्वजन्मसे सम्बद्ध इस राजाका अद्भुत और धार्मिक जो वृत्तान्त सुना था, उसका वर्णन आपसे कर दिया। इसलिये आप मेरे ऊपर कृपा करके अब अपने घर लौट जायें। मन्त्रीके ऐसे वाक्योंको सुनकर वे ब्राह्मण अत्यधिक आश्चर्यचकित हो उठे। तदनन्तर राजसेवकोंके द्वारा उन्हें घरपर पहुँचा दिया गया।

वसिष्ठने कहा—हे राजन्! सभी कर्मोंमें वृषोत्सर्ग-कर्म श्रेष्ठतम है। अतः आप यदि यमराजसे भयभीत हैं तो यथाविधि वृषोत्सर्ग-कर्म ही करें।

हे राजश्रेष्ठ! वृषोत्सर्गके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा साधन नहीं है जो मनुष्यको स्वर्ग-प्राप्तिकी सिद्धि प्रदान कर सके—

वृषोत्सर्गसमं किञ्चित् साधनं न दिवः परम्।

(६।१३०)

आपको मैंने धर्मका रहस्य बता दिया है। यदि पति-पुत्रसे युक्त नारी पतिके आगे मर जाती है तो उसके निमित्त वृषोत्सर्ग नहीं करना चाहिये, अपितु दूध देनेवाली गायका दान देना चाहिये।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! महर्षि वसिष्ठके उक्त वचनोंको सुनकर राजा वीरवाहनने मधुरामें जाकर विधिवत्

वृषोत्सर्गका अनुष्ठान किया। तदनन्तर अपने घर पहुँचकर उसने अपनेको कृतार्थ माना। समय आनेपर जब उसकी मृत्यु हुई तब यमराजके दूत उसको लेकर कालपुरीकी ओर चले, किंतु उस नगरको पार करके मार्गमें जब वह अधिक दूर निकल गया तो उसने दूतोंसे पूछा कि ब्राह्मदेवका नगर कहाँ है? तब दूतोंने उसको बताया कि जहाँ पापी लोग पापमुद्रिके लिये यमदूतोंके द्वारा नरकमें डकेले जाते हैं, जहाँ धर्मधर्मकी विवेचना करनेवाले धर्मराज विराजमान रहते हैं, वहाँ वह ब्राह्मदेवपुर है। आप-जैसे पुण्यात्माओंके द्वारा वह नहीं देखा जाता है। उसी समय देव-गन्धर्वोंके सहित दिव्य रूपवाले धर्मराजने उस राजाके समक्ष अपनेको प्रकट किया। अपने सामने उपस्थित धर्मराजकी देखकर राजाने बड़े ही आदरके साथ हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर उसने अनेक प्रकारसे गुण-कीर्तन करते हुए उन्हें संतुष्ट किया। धर्मराजने भी राजाकी प्रशंसा करके यही कहा—हे दूतों! तुम सब, इन्हें उस देवलोकमें ले जाओ, जहाँ प्रचुर भोगके साधन सुलभ हैं। राजा वीरवाहनने उस आदेशको सुनकर सामने ही स्थित धर्मराजसे पूछा—हे देव! मैं यह नहीं जानता हूँ कि आप मुझे किस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक ले जा रहे हैं।

धर्मराजने कहा—हे राजन्! तुमने दान-यज्ञादि अनेक पुण्यकार्योंको विधिवत् सम्पन्न किया है। वसिष्ठकी आज्ञा मान करके तुमने मधुरामें वृषोत्सर्ग भी किया है।

हे नरेश! यदि मनुष्य थोड़े भी धर्मका सम्यक् रूपसे पालन करता है तो वह ब्राह्मण और देवताओंकी कृपासे अधिकाधिक हो जाता है—

धर्मः स्वल्पेऽपि नृपते यदि सम्यगुपासितः।

द्विजदेवप्रसादेन स याति बहुविस्तरम्॥

(६।१४२)

ऐसा कहकर यमुनाके भ्राता उसी क्षण अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वीरवाहन स्वर्गमें जाकर देवताओंके साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! मैंने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञका माहात्म्य विस्तारपूर्वक तुम्हें सुना दिया है। प्राणियोंके पापकर्मको समाप्त करनेवाले इस आख्यानको सुननेवाला व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है। (अध्याय ६)



## संतप्तक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथा, सत्संगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतों तथा ब्राह्मणका उद्धार

गरुडने कहा—हे प्रभो! आपने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञसे प्राप्त होनेवाले फलसे सम्बन्धित जो आख्यान कहा, उसको मैंने सुन लिया है। अब आप पुनः किसी अन्य कथाका वर्णन करें, जिसमें आपकी अद्भुत महिमा निहित हो।

**श्रीकृष्णने कहा—**हे गरुड! अब मैं संतप्तक नामक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथाको बतलाता हूँ।

हे पक्षिन्! पूर्वकालमें संतप्तक नामक एक ब्राह्मण था। जिसने तपस्याके बलपर अपनेको पापरहित कर लिया था। यह संसार असार है, ऐसा जानकर वह वनोंमें वैखानस मुनियोंके द्वारा आचरित वृत्तिका पालन करते हुए अरण्यमें ही विचरण करता था। किसी समय उस ब्राह्मणने तीर्थ-यात्राको लक्ष्य बनाकर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। संसारके प्रति इन्द्रियों स्वतः आकृष्ट हो जाती हैं, इस कारणसे उसने अपनी बाह्य चित्तवृत्तियोंको भी रोक लिया था, किंतु पूर्व संस्कारोंके प्रभावसे वह मार्ग भूल गया और चले-चलते मध्याह्नकाल हो गया, स्नानके लिये जलकी अभिलाषासे वह चारों ओर देखने लगा। उसे उस समय सैकड़ों गुल्म-लता और बाँसके वृक्षोंसे घिरा हुआ, वृक्षोंकी शाखाओंसे व्याप्त, घनघोर एक वन दिखायी पड़ा। वहाँ ताल, तमाल, प्रियाल, कटहल, श्रीपणी, शाल, शाखोट (सिहोरका वृक्ष), चन्दन, तिन्दुक, राल, अर्जुन, आमड़ा, लसोड़ा, बहेड़ा, नीम, इमली, बैर और कनेल तथा अन्य बहुत-से वृक्षोंकी सघनताके कारण पक्षियोंके लिये भी मार्ग नहीं दीखता था। फिर मनुष्योंके लिये उस वनमें कहाँ मार्ग मिल सकता था? वह वन तो सिंह, व्याघ्र, तरसु (एक छोटी जातिका बाघ), नीलगाय, रीछ, महिष, हाथी, कृष्णपृग, नाग और बंदर तथा अन्यान्य प्रकारके हिंसक जीव-जन्तु, राक्षस एवं पिशाचोंसे परिव्याप्त था।

संतप्तक उस प्रकारके घनघोर भयावह वनको देखकर भयाक्रान्त हो उठा। भयभीत वह अब किस दिशामें जाय, इसका निर्णय नहीं कर सका। फिर जो होगा, देखा जायगा—यह सोचकर वह वहाँसे पुनः चल पड़ा। झोंगुठोंकी झंकार तथा उल्लुओंकी धूतकार ध्वनियोंपर कान लगाये वह पाँच ही डग चला था कि सामने बरादके वृक्षमें बैठा एक शव लटका हुआ उसे दिखायी दिया, जिसे पाँच

महाभयंकर प्रेत खा रहे थे। हे खगेश! उन प्रेतोंके शरीरमें मात्र सिराओंसे युक्त हड्डी और चमड़ा ही शेष था। उनका पेट पीठमें धँसा हुआ था। नेत्ररूपी कुओंमें गिरनेके भयसे नासिकाने उनका साथ छोड़ दिया था। वसासे भरे हुए ताजे शवके मस्तिष्क-भागका स्वाद लेकर जो नित्य अपना महोत्सव मनाते थे और हड्डीकी गौंटोंको तोड़नेमें लगे हुए जिनके बड़े-बड़े दाँत किटकटिते थे, ऐसे प्रेतोंको देखकर घबड़ाये हुए हृदयवाला वह ब्राह्मण वहीं टिठक गया। उस निर्जन वनमें आ रहे ब्राह्मणको उन प्रेतोंने देख लिया था। अतः 'मैं उसके पास पहले जाऊँगा, मैं उसके पास पहले जाऊँगा'—इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धामें वे सभी प्रेत दौड़ पड़े। उनमेंसे दो प्रेतोंने इस ब्राह्मणके दोनों हाथ पकड़ लिये, दो प्रेतोंने दोनों पैर पकड़ लिये। एक प्रेत शेष बचा था, उसने इसका सिर पकड़ लिया। तदनन्तर वे सभी कहने लगे कि 'मैं इसे डकाऊँगा, मैं इसे खाऊँगा।' ऐसा कहते हुए वे पाँचों प्रेत ब्राह्मणको खींचने लगे। फिर उसे साथ लेकर वे सहसा आकाशमें चले गये। किंतु उस बरगदपर शवका अभी कितना मांस शेष है और कितना नहीं, इस बातको भी वे सोच रहे थे। उसी समय उन लोगोंने देखा कि दाँतोंके द्वारा नीचे जानेके कारण वह शव तो अभी फटी हुई अंतिमसे मुक्त है। इसलिये वे आकाशसे नीचे उतर आये और शवको अपने पैरोंसे बाँधकर पुनः आकाशमें ही उड़ गये।

आकाशमें ले जाये जा रहे उस प्रेतरूपमें स्वयंको ही समझकर वह भयान्त ब्राह्मण पूर्ण मनसे मेरी शरणमें आ गया। देवाधिदेव, विन्मय, सुदर्शनचक्रधारो मुझ हरिको प्रणाम कर वह इस प्रकार स्तुति करने लगा—

जिन भगवान्ने अपने चक्रके प्रहारसे ग्राहके मुखको विदीर्णकर उसके दुःखको नाष्ट किया था, जो ग्राहके मुखमें फँसे हुए गजराजको मुक्त करानेवाले हैं, वे श्रीहरि मेरे कर्मपाशको काटकर मुझे मुक्त करें। मगधनरेश जरासन्धने निर्दोष राजाओंको बंदी बनाकर कारागारमें डाल दिया था, जिन मुरारि श्रीकृष्णने राजसूययज्ञके लिये पाण्डुपुत्र भीमसेनके द्वारा उस दुष्टको मल्लयुद्धमें मरवाकर राजाओंको मुक्त किया था। वे इस समय मेरे कर्मपाशको

काटकर मेरा दुःख दूर करें।

हे गरुड! उस समय दत्तचित्त होकर जब वह मेरी स्तुतिमें लग गया तो उसे सुनते ही मैं भी उठ खड़ा हुआ और सहसा वहाँ जा पहुँचा, जहाँ प्रेत उसको लेकर जा रहे थे। उन लोगोंके द्वारा ले जाते हुए उस ब्राह्मणको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। कुछ कालतक बिना पृष्ठे मैं भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। मेरी संनिधिप्राप्तसे उस ब्राह्मणको पालकीमें सोये हुए राजाके समान सुख प्राप्त हुआ। इसके बाद मैंने मार्गमें सुमेरु पर्वतपर जा रहे मणिभद्र नामक यक्षराजको देखा। मैंने नेत्रोंके संकेतसे उन्हें अपने पास बुलाया और कहा—हे यक्षराज! तुम इस समय इन प्रेतोंको विनष्ट करनेके लिये प्रतिद्वन्द्वी योद्धा बन जाओ। युद्धमें इन्हें मारकर इस शवको अपने अधिकारमें करो।

ऐसा सुनते ही उस मणिभद्रने प्रेतोंको दुःख पहुँचानेवाले प्रेतरूपको धारण कर लिया। दोनों भुजाओंको फैलाकर ओठोंकी जीभसे चाटते हुए और अपनी लम्बी-लम्बी निःश्वासाँसे उन प्रेतोंको दहलाते हुए वह मणिभद्र उनके सम्मुख जाकर इट गया। उसने दोको अपनी दोनों भुजाओंसे, दोको दोनों पैरोंसे और एकको सिरसे पकड़ लिया। उसके बाद अपने शक्तिशाली मुक्केसे उन प्रेतोंपर ऐसा प्रहार किया कि वे सभी विवर्णमुख हो गये। वे उस ब्राह्मण तथा शवको एक हाथ और एक पैरसे पकड़कर युद्ध करने लगे। उन लोगोंने अपने नख-क्ष्यपद, तल एवं दौंतीसे उसपर प्रहार किये, पर मणिभद्रने उनके प्रहारको विफल कर उनसे शवको ले लिया। उस यक्षके द्वारा शवको छीन लिये जानेपर पारियात्र पर्वतपर उस ब्राह्मणको छोड़कर वे सभी प्रेत अल्पन्त उत्साहसे भरे हुए पुनः प्रेतरूप मणिभद्रकी ओर दौड़ पड़े। क्षणमात्रमें ही उन लोगोंने वायुके समान द्रुतगामी मणिभद्रको घेर लिया, किंतु वह अदृश्य हो गया। ऐसी स्थिति देखकर हताश होकर वे प्रेत उस ब्राह्मणके पास जा पहुँचे। उस पर्वतपर पहुँचकर उन लोगोंने ब्राह्मणको व्योँ-ही मारना प्रारम्भ किया, त्यों-ही मेरी उपस्थिति और ब्राह्मणके प्रभावसे तत्काल उनमें पूर्वजन्मकी स्मृति जाग्रत् हो उठी। इसके बाद ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करके उन प्रेतोंने ब्राह्मणश्रेष्ठसे कहा—हे विप्रदेव! आप हमें क्षमा करें। उनके दीन वचनोंको सुनकर ब्राह्मणने

पूछा—आप लोग कौन हैं? यह क्या कोई माया है? अथवा यह मैं स्वप्न देख रहा हूँ या यह मेरे चित्तका विभ्रम है।



प्रेतोंने कहा—हम सब प्रेत हैं और पूर्वजन्मके दुष्कर्मोंके प्रभावसे इस योनिको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतो! तुम्हारे क्या नाम हैं? तुम सब क्या करते हो? तुम्हें कैसे इस दशाकी प्राप्ति हुई? पड़ले मेरे प्रति तुम लोगोंका व्यवहार कैसे अभिनयी था और इस समय कैसे विनयी हो गया है।

प्रेतोंने कहा—हे द्विजराज! आप यथाक्रम अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनें। हे योगिराज! हम आपके दर्शनसे निष्पाप हो गये हैं। हमारे नाम क्रमशः पर्युषित, सूचीमुख, शीघ्रग, रोधक और लेखक हैं।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतो! पूर्वकर्मसे उत्पन्न प्रेतोंका नाम कैसे निर्वर्णक हो सकता है? तुम सब अपने इन विचित्र नामोंके विषयमें विस्तारसे मुझे बताओ।

श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर पृथक्-पृथक् रूपसे प्रेतोंने कहा—

पर्युषितने कहा—किसी समय मैंने श्राद्धके सुअवसरपर ब्राह्मणको निमन्त्रित किया था, वह युद्ध ब्राह्मण मेरे घर विलम्बसे पहुँचा। बिना श्राद्ध किये ही भूखके कारण मैंने उस पाकको खा लिया। कुछ पर्युषित (बासी) अन्न लाकर मैंने उस ब्राह्मणको दे दिया। मरनेपर मुझे उसी पापके कारण इस दुष्टयोनिकी प्राप्ति हुई। मैंने ब्राह्मणको जो बासी भोजन दिया था, उसीसे मेरा नाम पर्युषित हो गया।

**सूचीमुखने कहा—**किसी समय कोई ब्राह्मणी तीर्थस्नानके लिये भद्रवट तीर्थमें गयी। उसके साथ उसका पाँच वर्षीय पुत्र भी था, जिसके सहारे वह जीवित थी। मैं उस समय क्षत्रिय था। मैं उसके मार्गका अवरोधक बन गया और निर्जन वनमें मैंने राहजनी की। हे विप्र! उस लड़केके सिरपर मुष्टि-प्रहार कर मैंने दोनोंके वस्त्र और राहमें खाने योग्य सामान छीन लिया। वह लड़का प्याससे व्याकुल हो उठा था। अतः वह माताके पास स्थित जल लेकर पीने लगा। उस पात्रमें उतना ही जल था। मैंने उसको डीटकर जल पीनेसे रोक दिया और स्वयं उस पात्रका सारा जल पी गया। भयसंश्रुत, प्याससे व्याकुल उस बालककी वहाँपर मृत्यु हो गयी। पुत्रशोकसे व्यथित उसकी माँने भी कुर्रमें कूदकर अपना प्राण त्याग दिया। इसी पापसे मुझको यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है।

पर्वताकार शरीर होनेपर भी इस समय मैं सुईकी नौकके समान मुखवाला हूँ। यद्यपि खाने योग्य पदार्थ मैं प्राप्त कर लेता हूँ, फिर भी यह मेरा सुईके छिद्रके समान मुख उसको खानेमें असमर्थ है। मैंने क्षुधाग्निसे जलते हुए ब्राह्मणीके बालकका मुँह बंद किया था, उसी पापसे मेरी मुँहका छिद्र भी सुईकी नौकके समान हो गया है। इसी कारण मैं आज सूचीमुख नामसे प्रसिद्ध हूँ।

**श्रीधमने कहा—**हे विप्रवर! मैं पहले एक धनवान् वैश्य था। उस जन्ममें अपने मित्रके साथ व्यापार करनेके लिये मैं एक दूसरे देशमें जा पहुँचा। मेरे मित्रके पास बहुत धन था। अतः उस धनके प्रति मेरे मनमें लोभ आ गया। अदृष्टके विपरीत होनेसे वहाँ मेरा मूल धन सम्पन्न हो चुका था। हम दोनोंने वहाँसे निकलकर मार्गमें स्थित नदीकी नावसे पार करना प्रारम्भ किया। उस समय आकाशमें सूर्य लाल हो गया था। राहकी थकानसे व्याकुल मेरा वह मित्र मेरी गोदमें अपना सिर रखकर सो गया। उस समय लोभवश मेरी बुद्धि अत्यन्त क्रूर हो उठी। अतः सूर्यस्त हो जानेपर गोदमें सोये हुए अपने मित्रको मैंने जल-प्रवाहमें फेंक दिया। मेरे द्वारा नावमें किये गये उस कृत्यको अन्य लोग भी न जान सके। उस व्यक्तिके पास जो कुछ बहुमूल्य हीरे-जवाहरात, मोती तथा सोनेकी वस्तुएँ थीं, वह सब लेकर मैं शीघ्र ही उस देशसे अपने घर लौट आया। घरमें वह सब सामान रखकर मैंने उस मित्रकी पत्नीके पास

जाकर कहा कि मार्गमें डाकुओंने मेरे उस मित्रको मारकर सब सामान छोन लिया और मैं भाग आया हूँ। मैंने उससे फिर कहा कि हे पुत्रवती नारी! तुम रोना नहीं। शोकसे व्यथित उस स्त्रीने तत्काल घरके बन्धु-बान्धवोंकी ममताका परित्याग कर अपने प्राणोंकी भेंट अग्निको यथाविधि चढ़ दिया। उसके बाद निष्कण्टक स्थिति देखकर मैं प्रसन्नचित्त अपने घर चला आया। घर आकर जबतक मेरा जीवन रहा, तबतक उस धनका मैंने उपभोग किया। मित्रको नदीके जल-प्रवाहमें फेंककर मैं शीघ्र ही अपने घर लौट आया था, उसी पापके कारण मुझे प्रेतयोनि मिली और मेरा नाम शीघ्र हो गया।

**रोधकने कहा—**हे मुनीश्वर! मैं पूर्व-जन्ममें शूद्र जातिका था। राजभवनसे मुझे जीवन-यापनके लिये उपहारमें बहुत बड़े-बड़े सौ गाँवोंका अधिकार प्राप्त था। मेरे परिवारमें बड़े माता-पिता थे और एक छोटा सगा भाई था। लोभवश मैंने शीघ्र ही अपने उस भाईको अलग कर दिया जिसके कारण अन्न-वस्त्रसे रहित उस भाईको अत्यधिक दुःख भोगना पड़ा। उसके दुःखको देखकर मेरे माता-पिता लुक-छिपकर कुछ-न-कुछ उसको दे देते थे। जब मैंने भाईको माता-पिताके द्वारा दी जा रही उस सहायताकी बात विवक्षित पुरुषोंसे सुनी तो एक सूने घरमें माता-पिताको जँधोरसे रूढ़ कर दिया। कुछ दिनोंके बाद दुःखी उन दोनोंने विष पीकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली। हे द्विज! माता-पितासे रहित होकर मेरा भाई भी इधर-उधर भटकने लगा। ग्राम तथा नगरमें भटकता हुआ एक दिन वह भी भूखसे पीड़ित होकर मर गया। हे ब्राह्मण! मरनेके बाद उसी पापके कारण मुझे यह प्रेतयोनि मिली। माता-पिताकी मैंने बंदी बनाया था, इसी कारण मेरा नाम रोधक पड़ा।

**लेखकने कहा—**हे विप्रदेव! मैं पूर्वजन्ममें उज्जैन नगरका ब्राह्मण था। वहाँके राजाने मेरी नियुक्ति देवालयमें पुजारीके पदपर की थी। उस मन्दिरमें विभिन्न नामवाली बहुत-सी मूर्तियाँ थीं। स्वर्णनिर्मित उन प्रतिमाओंके अङ्गोंमें बहुत-सा रत्न भी लगा हुआ था। उनकी पूजा करते हुए मेरी बुद्धि पापासक हो गयी। अतः मैंने एक तेज धारवाले लोहेसे उन मूर्तियोंके नेत्रादिके रत्नोंको निकाल लिया। क्षत-विक्षत और रज्जूरहित नेत्रोंको देखकर राजा प्रव्यलित अग्निके समान क्रोधसे तमतमा उठा। उसके बाद राजाने

यह प्रतिज्ञा की कि चोर चाहे श्रेष्ठ ब्राह्मण ही क्यों न हो यदि उसने मूर्तियोंसे रत्न और सोना चुराया होगा तो ज्ञात होनेपर निश्चित ही मेरे द्वारा मारा जायगा। वह सब सुनकर मैंने रात्रिमें तलवार उठायी और राजाके घरमें जाकर उसका पशुकी तरह वध कर दिया। तदनन्तर चुरायी गयी मणियों तथा सोनेको लेकर मैं रात्रिमें ही अन्यत्र जाने लगा, किंतु मार्गमें स्थित घनघोर जंगलमें एक व्याघ्रने मुझे मार डाला। मैंने लोहेसे प्रतिमा-छेदन एवं काटनेका जो कार्य किया था, उस पापसे आज मैं लेखक नामका प्रेत हूँ। नरकभोग करनेके पश्चात् मुझे यही प्रेत-योनि प्राप्त हुई।

**ब्राह्मणने कहा—**हे प्रेतगणो! आप लोगोंने अपनी जैसी दशाएँ बतायी हैं, वैसे ही आप सबके नाम भी हैं। वर्तमान समयमें तुम लोगोंका आचरण और आहार क्या है? उसको भी मुझे बताओ।

**प्रेतोंने कहा—**हे द्विजराज! जहाँपर वेदमार्गका अनुसरण होता है, जहाँ लज्जा, धर्म, दम, क्षमा, धृति और ज्ञान—ये सब रहते हैं, वहाँ हम सब वास नहीं करते। जिसके घरमें श्राद्ध तथा तर्पणका कार्य नहीं किया जाता, उसके शरीरसे मांस और रक्त बल्गात् अपहृत करके हम उसे पीड़ा पहुँचाते हैं। मांस खाना और रक्त पीना यही हमारा आचरण है। हे निष्पाप! सभी लोगोंके द्वारा निन्दनीय हमारे अवहारको सुनें। कुछ तो आपने देख लिया है और जो आपकी मालूम नहीं है, उसको हम बता रहे हैं। हे विप्र! वषट्, विश्वा, कीचड, कफ, मूत्र और आँसुओंके साथ निकलनेवाला मल, हमारा

भक्ष्य और पान है। इसके आगे न पूछें, क्योंकि अपने आहारको बताते हुए हमें बहुत लज्जा आ रही है। हे स्वामिन्! हम सब अज्ञानी, तामसी, मन्दबुद्धि और भयसे भागनेवाले हैं। हे विप्र! हममें पूर्वजन्मकी स्मृति एकाएक आ गयी है। अपने विनय या अविनयके संदर्भमें हम कुछ नहीं जानते हैं।

**श्रीकृष्णने कहा—**हे गरुड! प्रेतोंके ऐसा कहने एवं ब्राह्मणके सुननेके समय मैंने उन्हें दर्शन दिया। हृदयमें निवास करनेवाले अन्तर्यामी पुरुषके स्वरूपको सामने देखकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और स्तुतियोंसे मुझे संतुष्ट किया। आश्चर्यसे उत्फुल्ल नेत्रवाले उन प्रेतोंने तपस्या की। हे खगराज! प्रेमाधिक्य होनेसे उनकी वाणी रुक गयी। उस समय उनके मुखसे कुछ भी नहीं निकल पा रहा था। स्थूलित वाणीमें वह ब्राह्मण कहने लगा—

हे प्रभो! आप कृपा करके रजोगुणके कारण धीर चित्तवाले और तमोगुणसे मूढ़ चित्तवाले प्राणियोंका उद्धार करते हैं। आपको नमस्कार है।

ब्राह्मणने जैसे ही यह कहा, उसी समय मेरी इच्छासे अत्यन्त तेजस्वी, श्रेष्ठ आकाशचारी गन्धर्व एवं अप्सराओंसे युक्त छः विमान वहाँ आ पहुँचे। उन विमानोंकी प्रभासे वह पर्वत चतुर्दिक् आलोकित हो गया। उन पौँचोंके साथ वह ब्राह्मण विमानपर चढ़कर मेरे लोकको चला गया। (अध्याय ७)

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

## और्ध्वदैहिक क्रियाके अधिकारी तथा जीवित-श्राद्धकी संक्षिप्त विधि

**गरुडने कहा—**हे स्वामिन्! इस सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कार्यको सम्पन्न करनेका अधिकारी कौन है? यह क्रिया कितने प्रकारकी है? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा—**हे खगेश! [जो मनुष्य मर जाता है, उसका और्ध्वदैहिक कार्य] पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भाईकी संतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते हैं। इन सभीके अभावमें समानोदक संतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनों कुलों (मातृकुल एवं पितृकुल) के पुरुष समाप्त हो गये हों तो स्त्रियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। यदि मनुष्यने इच्छापूर्वक अपने

सभी सगे-सम्बन्धियोंसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है तो उसका और्ध्वदैहिक कार्य राजाको कराना चाहिये।

यह क्रिया तीन प्रकारकी है, जिनको पूर्व, मध्यम एवं उत्तर क्रियाओंकी संज्ञा दी गयी है। हे पक्षिन्! इस क्रियाको प्रतिसंवत्सर एकोद्दिष्ट-विधानसे करना अपेक्षित है। इस श्राद्ध-क्रियाके फलको तुम मुझसे सुनो।

ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसु, मरुद्गण, विष्णुदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, मातृगण और इनके अतिरिक्त जो भी प्राणी इस संसारमें उत्पन्न हैं, उन सभीको श्राद्धपूर्वक किये जा रहे श्राद्धसे



मनुष्य प्रसन्न कर सकता है। ऐसे श्राद्धसे तो सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हो उठता है। जो लोग अपने सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा किये गये श्राद्धसे संतुष्ट हो जाते हैं, वे श्राद्धकर्ताको पुत्र, स्त्री और धन आदिके द्वारा तृप्त करते हैं। हे गरुड! इस प्रकार मैंने संक्षेपमें अधिकार और क्रिया-भेदका निरूपण किया।

**गरुडने कहा—**हे देवश्रेष्ठ! यदि पहले कहे गये अधिकारियोंमेंसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

**श्रीकृष्णने कहा—**जब अधिकारी व्यक्ति न हो और न तो किसीके अधिकारका निश्चय हो हो रहा हो तो वैसी स्थितिमें मनुष्यको स्वयं अपने जीवनकालमें ही जीवित-श्राद्ध कर लेना चाहिये। उपवासपूर्वक स्नान करके भगवान् कृष्णके प्रति आसक्त हृदय होकर मनुष्य एकाग्र मनसे उस कर्ता, भोक्ता, सर्वेश्वर विष्णुकी पूजा करे। उसके बाद वह अपने पितृगणोंके लिये तिल एवं दक्षिणके सहित तीन जलधेनु 'ॐ पितृभ्यः स्वधा' कहकर निवेदित करे और धेनुदान करते समय 'ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः' तथा 'ॐ सोमाय त्वा पितृभ्यो स्वधा नमः' ऐसा स्मरण करता हुआ वह दक्षिणाभिमुख होकर दक्षिणासहित तीसरी जलधेनु देते समय विलेपकपसे 'यमायाङ्गिरसे स्वधा नमः' यह स्मरण करता रहे। भगवान् विष्णुके यजन एवं जलधेनुदानके मध्य ही ब्राह्मणोंका आवाहन करके उन्हें भोजन कराना चाहिये। वह पहली जलधेनु उत्तर दिशामें तथा दूसरी जलधेनु दक्षिण दिशामें रखे और उन दोनों धेनुओंके मध्यमें तीसरी धेनु रखकर आवाहन आदि श्राद्धसम्बन्धी कार्य करे। इस आवाहनादि क्रियाके पूर्वमें सर्वप्रथम आवाहनपूर्वक विधेदेवोंके प्रतिनिधिभूत ब्राह्मणोंकी भलीभाँति पूजा कर वह यह कहे—

यसुभ्यस्त्वामहं विप्र रुद्रेभ्यस्त्वामहं ततः।

सूर्येभ्यस्त्वामहं विप्र भोजयामीति तान्वदेत्॥

(८।१०)

तदनन्तर आवाहनादिक जो-शेष कार्य हैं, उन्हें पितृ-शेष कार्योकी तरह सम्पादित करे। उसके बाद वह वसुके

उद्देश्यसे ब्राह्मणको एक सुशील धेनुका दान दे। तत्पश्चात् आप्नेय कोणमें रुद्रदेव तथा दक्षिण दिशामें सूर्यदेवके निमित्त स्थित ब्राह्मणोंको भी एक-एक गाय देनी चाहिये तथा विधेदेवोंके लिये तिलपूर्ण पात्रका निवेदन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको अक्षयोदक दान करना चाहिये एवं ब्राह्मण 'ॐ स्वास्ति' इस प्रतिवचनसे श्राद्धकृत्यको सम्पूर्णताका आशीर्वाद दे। इसके बाद अष्टाक्षर-मन्त्रसे भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए उनका विसर्जन करे।

इसके पश्चात् स्वस्थाचित होकर कुलदेवी, ईशानी, शिव तथा भगवान् नारायणका स्मरण करे। तदनन्तर चतुर्दशी तिथिको सुगमतासे उपलब्ध होनेवाली श्रेष्ठ नदीके तटपर जाय। वहाँ खम्ब तथा लौहखण्डोंका दान करे एवं 'ॐ जितं ते' इस मन्त्रका जप करता हुआ स्वयं दक्षिणाभिमुख होकर अग्निको प्रज्वलित करे। तदनन्तर वह पचास कुशोंसे ब्राह्मीप्रतिकृति (पुस्तक) बना करके उसका दाह करे। इसके बाद श्मशानमें विहित होम करके अन्तमें पूर्णाहुतिकी क्रिया सम्पन्न करे। तत्पश्चात् विरगिन भूमि, यम तथा रुद्रदेवका स्मरण करे। हवन करनेके बाद प्रधान स्थानपर एक देवीका आवाहन करना चाहिये। उसके बाद वह अग्निमें मूर्गमिश्रित चरु पकाये। तदनन्तर तिल-तण्डुल-मिश्रित दूसरी चरु पकाये।

'ॐ पुष्टिष्वै नमस्तुभ्यं०'—इस मन्त्रसे प्रथम चरु निवेदित करे। 'ॐ यमाय नमः०' इस मन्त्रसे यमको द्वितीय चरु निवेदित करे। 'ॐ नमस्तुभ्य रुद्राय श्मशानपतये नमः'—इस मन्त्रसे श्मशानपति रुद्रको निवेदित करे। उसके बाद श्राद्धकर्ता सात नामवाले यमराजके लिये निम्न मन्त्रोंसे सात जलाजलिपौ छोड़े—'ॐ यमाय स्वधा तस्मै नमः', 'ॐ धर्मराजाय स्वधा तस्मै नमः', 'ॐ मृत्यवे स्वधा तस्मै नमः', 'ॐ अन्तकाय स्वधा तस्मै नमः', 'ॐ वैवस्वताय स्वधा तस्मै नमः', 'ॐ कालाय स्वधा तस्मै नमः' और 'ॐ सर्वप्राणहराय स्वधा तस्मै नमः'।

इसके बाद श्राद्धकर्ता तुम सब अमुक-अमुक गोत्रसे सम्बन्धित हो, 'यह तिलोदक तुम्हारे लिये होवे'। ऐसा कहते हुए अर्घ्य-पुष्पसे युक्त दस पिण्ड-दान दे। उसके

१. दावके लिये कृत्रिम धेनुका विधान है। इसे गोदानप्रसंगमें ब्रह्मपुराण आदिमें जलधेनुदानविधिमें अन्तर्गत देखना चाहिये।

बाद उन्हें धूप, दीप, बलि, गन्ध तथा अक्षय जल प्रदान करे। उक्त दस पिण्डोंका दान देनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके सुन्दर सुभग मुखका ध्यान करना चाहिये।

इस कृत्यको करनेके बाद आशीर्वाचके अन्तमें प्रतिमास मासिक श्राद्ध और सपिण्डोकरण करना चाहिये। श्राद्ध

चाहे अपने लिये हो या दूसरेके लिये यही नियम है। शक्ति, आरोग्य, धन और आयु—ये चारों अस्थिर होते हैं, अतः ऐसा जानकर जोवित-श्राद्ध करना चाहिये।

मैंने इस जोवित-श्राद्धके विषयमें तुम्हें सब कुछ बत दिया है। (अध्याय ८)

~~~~~

## राजा बभ्रुवाहनकी कथा, राजाद्वारा प्रेतके निमित्त की गयी और्ध्वदैहिकक्रिया एवं वृषोत्सर्गसे प्रेतका उद्धार

गठइने कहा—हे निष्पाप देव! आपने यह कहा कि जब मनुष्यकी और्ध्वदैहिक क्रियाको करनेवाला कोई न हो तो उस आद्य क्रियाको राजा सम्पन्न कर सकता है। प्राचीनकालमें क्या किसी राजाने किसी ऐसे व्यक्तिकी और्ध्वदैहिक आदि क्रिया सम्पन्न की थी?

श्रीकृष्णने कहा—हे सुपर्ण! तुम सुनो! जिस राजाने इस क्रियाको किया था, मैं उसके विषयमें कहूँगा। कृतयुगमें वंग देशमें बभ्रुवाहन नामका एक राजा था। हे पक्षीन्द्र! वह समुद्रसे चारों ओर घिरी हुई अपनी पृथ्वीकी धर्मानुसार भलीभाँति रक्षा करता था। उसने अपने जीवनकालमें इस सम्पूर्ण पृथ्वीका विधिवत् भोग किया। उसके शासनकालमें कोई भी पापी नहीं था। प्रजाओंकी न तो चोरीका भय था और न तो दुष्टजनोंके द्वारा किये गये उपद्रवोंका आतंक था। उसके राज्यकालमें किसी भी प्रकारके रोगका भी भय नहीं था। सभी अपने-अपने धर्ममें अनुरक्त थे। वह राजा तेजमें सूर्यकी भाँति, अशुक्ला (शान्ति)—मैं पर्वतके समान और सहिष्णुतामें पृथ्वीके समुद्र था। किसी समय उस राजाने एक सौ घुड़सवार सैनिकोंको साथ लेकर मृगयाके लिये एक घने वनकी ओर प्रस्थान किया। उस समय योद्धाओंके सिंहनाद, शङ्ख तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनिसँ मिलकर निकले किलकिलाहटभरे शब्दोंसे वातावरण गूँज रहा था। वहाँ स्थान-स्थानपर चारों ओर उस राजाकी स्तुति हो रही थी। चलते-चलते उस राजाको नन्दनवनके समान एक वन दिखायी पड़ा। वह वन बिल्व, मंदार, खदिर, कैथ तथा बाँसके वृक्षोंसे परिब्याप्त था। ऊँचे, नीचे पर्वतोंसे चारों ओर घिरा हुआ था। जलरहित तथा निर्जन उस वनका

विस्तार कई योजनका था। मृग, सिंह तथा अन्य महाभयंकर हिंसक जीव-जन्तु उसमें भरे हुए थे। अपने सेवक एवं सैनिकोंके साथ नाना प्रकारके मृगोंको मारते हुए उस नरशार्ङ्गलने खेल-हँ-खेलमें उस वनकी विभूषण कर दिया।

इसके बाद राजाने किसी एक मृगके कुक्षिभागमें बाणका प्रहार किया। आहत होकर भी वह मृग बड़ी तेजीसे दौड़ पड़ा। राजाने भी उस मृगका पीछा किया। अकेला अत्यधिक दूरों तक करनेके कारण थका हुआ भूख-प्याससे पीड़ित वह राजा उस वनको पार कर एक दूसरे घनघोर वनमें जा पहुँचा। अत्यन्त प्याससे क्षुब्ध होकर वह उस वनमें इधर-उधर जल खोजने लगा। हँस और सारस पक्षियोंके शब्दसे सूचित किये गये पूरचक्र नामक सरोवरपर जा कर उसने अश्वके साथ वहाँ स्थान किया। तदनन्तर उस सरोवरके ताल एवं नीले कमलोंके परागसे सुगन्धित शीतल जलको पीकर वह जलसे बाहर आया। मार्गमें अत्यधिक वातनेके कारण थके हुए राजाने उसी सरोवरके किनारे एक छपादार वटवृक्षको देखकर उसमें अपने थोड़ेको बाँध दिया। तत्पश्चात् आस्तरणकी बिछाकर तथा डालकी तक्रिया लगाकर क्षणभरमें ही शीतल मन्द वायुके मुखकी अनुभूति करता हुआ वह सो गया।

राजाके सोते ही वहाँ सौ प्रेतोंके साथ घूमता हुआ प्रेतवाहन नामक एक प्रेत आ पहुँचा। उसके शरीरमें मात्र अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष थीं। वह खाने-पीनेको खोजता हुआ धीरे नहीं धारण कर पा रहा था। आहत पाकर राजाकी नोंद खुल गयी। पहले कभी न देखे गये उस दृश्यको देखकर राजाने शीघ्र ही अपने धनुषपर बाण चढ़ा

लिया। अपने सामने राजाको देखकर वह प्रेत भी स्थाणुके सदृश खड़ा रहा। उसको अवस्थित देखकर राजाके मनमें कौतूहल हो उठ। उन्होंने प्रेतसे पूछा कि तुम कौन हो? यहाँ कहाँसे आये हो? तुम्हें यह विकृत शरीर कैसे प्राप्त हुआ है?

प्रेतने कहा—हे महाबाहो! आपके इस संयोगसे मैंने अपना प्रेतभाव त्याग दिया है। मुझे अब परमगति प्राप्त हो गयी है। मेरे समान धन्य अन्य कोई नहीं है।

बभ्रुवाहनने कहा—यह वन सर्वत्र अत्यन्त भयानक है। इसमें मैं यह क्या देख रहा हूँ? हे पिशाच। यहाँ यह वन भी औंधीके झोंकोसे घस्त है। यहाँ पतंग, मशक, मधुमक्खी, कबन्ध, शिरी, मत्स्य, कच्छप, गिरगिट, बिच्छु, धमर, सर्प, अधोमुखी हथार्य चलती हैं, बिजलीकी अग जलती है, वायुके झोंकोंसे इधर-उधर तिनके हिल-डुल रहे हैं। यहाँ नाना प्रकारके जीव-जन्तु, हाथी तथा टिट्ठियोंके बहुत प्रकारके शब्द सुनायी पड़ रहे हैं, किंतु कहींपर भी कोई दिखायी नहीं दे रहा है। यह सब विकृत स्थिति देखकर मेरा हृदय काँप रहा है।

प्रेतने कहा—राजन्! जिन प्राणियोंका अग्नि-संस्कार, श्राद्ध, तर्पण, घटपिण्ड, दशगन्ध, मृपिण्डोकरण नहीं हुआ है, जो विश्वासघाती, मद्यपी और स्वर्णचोर रहे हैं, जो लोग अपमृत्युसे मरे हैं, जो ईर्ष्या करनेवाले हैं, जो अपने पापोंका प्रायश्चित्त नहीं करते हैं, जो गुरु आदिकी पत्नीके साथ गमन करते हैं, वे सभी प्राणी अपने कर्मोंके कारण भटकते हुए प्रेतरूपमें यहाँपर निवास करते हैं। इनको खान-पान बड़ा दुर्लभ है। ये अत्यधिक पीड़ित रहते हैं। हे राजन्! कृपया आप इनका और्ध्वदैहिक संस्कार करें। जिनके माता-पिता, पुत्र और भाई-बन्धु नहीं हैं, उनका और्ध्वदैहिक संस्कार राजाको स्वयं करना चाहिये। राजा इससे अपने पारलौकिक शुभ कर्मको भी सम्पन्न कर सकता है और वह सभी दुःखोंसे विमुक्त हो जाता है। इस कर्मसे सम्बन्धित होकर राजा अपनी दुर्गति दूर कर सकता है। इस संसारमें कौन किसका भाई है, कौन किसका पुत्र है और कौन किसकी स्त्री है, सभी स्वार्थके वशीभूत हैं। उनमें मनुष्यको विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह अपने कर्मोंका स्वयं ही

भोग करता है। धन घरमें छूट जाता है, भाई-बन्धु श्मशानमें छूट जाते हैं, शरीर काष्ठको सीप दिया जाता है। जीवके साथ पाप-पुण्य ही जाता है—

गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशाने यैव बान्धवाः॥

शरीरं काष्ठमादत्ते पापं पुण्यं सह व्रजेत्।

(९।३६-३७)

अतः राजन्! अपने कल्याणकी इच्छासे आप इस नश्वर शरीरसे अविलम्ब प्रेतोंका और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न करें।

राजाने कहा—हे प्रेतराज! कृशकाय भयंकर नेत्रवाले तुम प्रेतके समान दिखायी देते हो। तुम प्रसन्न होकर अपना जैसा वृत्तान्त हो, वैसा सब कुछ मुझसे कहो। इस प्रकार पूछे जानेपर प्रेतने अपना सारा वृत्तान्त राजासे कहा।

प्रेतने कहा—हे नृपक्षेह! मैं प्रारम्भसे लेकर आजतकका सम्पूर्ण वृत्तान्त आपसे कह रहा हूँ। हे राजन्! सभी सम्पदाओंको सुखपूर्वक वहन करनेवाला, विभिन्न जनपदोंमें उत्पन्न नाना प्रकारके राजोंसे परिष्याप्त, अनेकानेक पुण्योंसे सुशोभित वनज्ञानवाला तथा विभिन्न पुण्यजनोंसे आवृत विदिता नामक एक नगर था। सदैव देवाराधनमें अनुरक्त रहता हुआ मैं उसी नगरमें निवास करता था। मैं वैश्यजातिमें उत्पन्न हुआ था, उस जन्ममें सुदेव मेरा नाम था। मेरे द्वारा दिये गये 'हव्य'से देवता और 'कव्य'से पितृगण संतुष्ट रहते थे। मैंने नाना प्रकारके दान देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया था। मेरा आहार-विहार सुनिश्चित था। दान-दान, अनाथ और विशिष्ट सत्पात्रोंको मैंने अनेक प्रकारसे सहायता पहुँचायी थी; किंतु दैवयोगसे यह सब निष्फल हो गया। मेरे न तो कोई संतान हुई, न कोई सगे बन्धु-बान्धव हैं और न वैसा कोई मित्र ही है, जो मेरा और्ध्वदैहिक कर्म कर सके। हे श्रेष्ठ राजन्! उसीसे मेरा यह प्रेतत्व स्थिर हो गया है।

हे भूपते! एकादशाह, त्रिपाक्षिक, षाण्मासिक, वार्षिक तथा जो मासिक श्राद्ध होते हैं, इन सभी श्राद्धोंकी कुल संख्या सोलह है। जिस मृतकके लिये इन श्राद्धोंका अनुष्ठान नहीं किया जाता है, उसका प्रेतत्व अन्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी स्थिर हो रहता है। हे महाराज! ऐसा जानकर

आप मुझे इस प्रेतत्वसे मुक्ति प्रदान करायें। इस संसारमें राजा सभी वर्णोंका बन्धु कहा गया है। इसलिये आप मेरा निस्तार करें। हे राजेन्द्र! मैं आपको यह मणिरत्न दे रहा हूँ। जिस प्रकार मेरा कल्याण हो, मुझपर कृपा करके आप वैसा ही कार्य करें। मेरे निष्ठुर सपिण्डों और सगोत्रियोंने मेरे लिये वृषोत्सर्ग नहीं किया है, उसीसे मैं इस प्रेतयोनिमें प्राप्त हुआ हूँ। भूख-प्याससे आक्रान्त मैं खाने-पीनेके लिये कुछ नहीं पा रहा हूँ। उसीसे मेरे शरीरमें यह विकृति आ गयी है। शरीर कुश हो गया है। इसमें मसितक नहीं रह गया है। भूख-प्याससे उत्पन्न इस महान् दुःखको मैं बार-बार भोग रहा हूँ। वृषोत्सर्ग न करनेके कारण यह कष्टकारी प्रेतत्व मुझे प्राप्त हुआ है। हे राजन्! हे दयामिन्धो! इसीलिये मैं प्रेतत्वनिवृत्तिके निमित्त आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। आप मेरा कल्याण करें।

राजाने कहा—हे प्रेत! मेरे कुलका कोई प्रेत हुआ है, यह मनुष्य कैसे जान सकता है। प्राणी इस प्रेतत्वसे कैसे मुक्त हो सकता है? यह सब तुम मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे राजन्! लिङ्ग (चिह्नविशेष) और पीड़ाके कारण प्रेतयोनिका अनुमान लगाना चाहिये। इस पृथ्वीपर प्रेतद्वारा उत्पन्न की गयी जो पीड़ाएँ हैं, उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ। जब स्त्रियोंका श्रतुकाल विष्फल हो जाता है, वंशवृद्धि नहीं होती है। अल्पयुमें ही किसी परिजनकी मृत्यु हो जाती है तो उसे प्रेतोत्पन्न पीड़ा माननी चाहिये। अकस्मान् जब जीविका छिन जाती है, लोगोंके बीच अपनी प्रतिष्ठा विनष्ट हो जाती है, एकाएक घर जलकर नष्ट हो जाता है तो उसे प्रेतजन्य पीड़ा ही मानें। जब अपने घरमें नित्य कलह हो, मिथ्यापवाद हो, राजयक्ष्मा आदि रोग उत्पन्न हो जायें तो उसे प्रेतोद्भूत पीड़ा समझे। जब अपने प्राचीन अनिन्दित व्यापार-मार्गमें प्रफल करनेपर भी मनुष्यको सफलता नहीं मिलती है, उसमें लाभ नहीं होता है, अपितु हानि ही उठानी पड़ती है तो उस पीड़ाको भी प्रेतजन्य ही मानें। जब अच्छी वर्षा होनेपर भी कृषि विनष्ट हो जाती है, व्यापारमें प्राणियोंकी जीविका भी चली जाती है, अपनी स्त्री अनुकूल नहीं रह जाती है

तो उस पीड़ाको भी प्रेतसमुद्भूत माननी चाहिये। हे राजन्! इसी प्रकारकी अन्य पीड़ाओंसे आप प्रेतत्वका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

हे राजेन्द्र! जब मनुष्य वृषोत्सर्ग करता है, तब जाकर वह प्रेतत्वसे मुक्त होता है। आपका इस कार्यमें अधिकार है, इसलिये कृपया आप मेरे उद्देश्यसे वृषोत्सर्ग करें। आप इस मणिरत्नको ग्रहण करें। इसीके धनसे मेरे लिये वृषोत्सर्ग करें। यह कार्य कार्तिककी पूर्णिमा अथवा आश्विनमासके मध्यकालमें करना चाहिये। हे राजन्! मेरा यह संस्कार रेवती नक्षत्रसे पुनः तिथिमें भी हो सकता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निर्गन्धित करके विधिवत् अग्निस्थापन तथा वेद-मन्त्रोंके द्वारा यथाविधान होम करें। बहुत-से ब्राह्मणोंको बुलाकर इस रत्नसे प्राप्त हुए धनके द्वारा उन्हें भोजन करायें। ऐसा करनेसे मुझे मुक्ति प्राप्त हो सकेगी।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! इसके बाद राजाने उस प्रेतसे 'ऐसा ही होगा', यह कहकर मणि ले ली। जो व्यक्ति धन ले लेता है, वह भी उस दाताकी क्रिया करनेका अधिकारी हो जाता है। प्रेतविषयक इस प्रकारकी वार्ता उन दोनोंके मध्य जिस समय चल रही थी, उसी समय देखते-ही-देखते वहाँ घण्टा और भेरियोंकी ध्वनि करती हुई राजाकी चतुरंगिणी सेना आ गयी। उस सेनाके आते ही प्रेत अदृश्य हो गया। उसके बाद उस वनसे निकलकर राजा अपने नगर चला आया। तदनन्तर उसने कार्तिक-मासकी पूर्णिमा तिथि आनेपर उस प्राप्त हुई मणिके धनसे प्रेतत्वनिवृत्तिके लिये विधिवत् वृषोत्सर्ग किया। हे गरुड! उस संस्कारके पूर्ण होते ही वह प्रेत भी तत्काल सुवर्ण देहसे सुशोभित हो उठा और उसने राजाको प्रणाम किया। कृपया उस राजाकी प्रशंसा करते हुए प्रेतने कहा—हे देव! यह सब आपको महिमा है। इस प्रकार राजाके द्वारा किये गये उपकारके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए वह स्वर्गलोकको चला गया। जिस प्रकार राजाके द्वारा किये गये संस्कारसे वह प्रेत अपने प्रेतत्वसे मुक्त हुआ था, वह सब वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ९)



## श्राद्धानका पितरोंके पास पहुँचना, दृष्टान्तरूपमें देवी सीताद्वारा भोजन करते हुए ब्राह्मणके शरीरमें महाराज दशरथ आदिका दर्शन करना, मृत्युके अनन्तर दूसरे शरीरकी प्राप्ति, सत्कर्मकी महिमा तथा पिण्डदानसे शरीरका निर्माण

गरुडने कहा—हे प्रभो! सपिण्डीकरण और वार्षिक श्राद्ध करनेके पश्चात् मृत व्यक्ति स्वकर्मानुसार देवत्व, मनुष्यत्व अथवा पक्षित्वको प्राप्त करता है। फिर भिन्न-भिन्न आहारवाले उन लोगोंके लिये किये गये श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन और होमसे उन्हें कैसे संतुष्ट होती है? अपने शुभाशुभ कर्मोंके द्वारा प्राप्त हुई प्रेतयोनिमें स्थित वह प्राणी अपने सम्बन्धियोंसे प्राप्त उस भोज्य पदार्थका उपभोग कैसे करता है? श्राद्धकी आवश्यकता तो मैंने अमावास्यादि तिथियोंमें सुनी है। [यह बतलानेकी कृपा करें।]

श्रीभगवान्ने कहा—हे पक्षिराज! श्राद्ध प्रेतजनोंको जिस प्रकारसे तुष्टि प्रदान करता है, उसे सुनो। मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता हो जाता है तो श्राद्धान् अमृत होकर उसे प्राप्त होता है तथा वही अन्न गन्धर्व-योनिमें भोगरूपसे और पशुयोनिमें तृणरूपमें प्राप्त होता है। वही श्राद्धान् नागयोनिमें वायुरूपसे, पक्षीकी योनिमें फलरूपसे और राक्षसयोनिमें आमिष बन जाता है। वही श्राद्धान् दानव-योनिके लिये मांस, प्रेतके लिये रक्त, मनुष्यके लिये अन्न-धानादि तथा बाल्यावस्थामें भोगरस हो जाता है।

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! इस लोकमें मनुष्योंके द्वारा दिये गये हव्य-कव्य पदार्थ पितृलोकमें कैसे जाते हैं? उनको प्राप्त करनेवाला कौन है? यदि श्राद्ध मरे हुए प्राणियोंके लिये भी तुष्टि प्रदान करनेवाला है तो बुझे हुए दीपकका तेल भी उसकी लौको बढ़ा सकता है। मरे हुए पुरुष अपने कर्मानुसार गति प्राप्त करते हैं तो अपने पुत्रके द्वारा दिये गये पुण्य कर्मोंके फल वे कैसे प्राप्त कर सकेंगे?

श्रीभगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य! प्रत्यक्षकी अपेक्षा श्रुतिका प्रमाण बलवान् होता है। श्रुतिसे प्राप्त हुए ज्ञानका स्वरूप अमृतादिके समान होता है। श्राद्धमें उच्चरित

पितरोंके नाम तथा गोत्र हव्य-कव्यके प्रापक हैं। भक्तिपूर्वक पढ़े गये मन्त्र श्राद्धके प्रापक होते हैं। हे सुपर्ण! ये अचेतन मन्त्र कैसे उस श्राद्धको प्राप्त करा सकते हैं, इस विषयमें तुम्हें संशय नहीं रखना चाहिये। अस्तु, इसे समझनेके लिये मैं तुम्हें दूसरा प्रापक बता रहा हूँ। अग्निष्वात्त आदि पितृगण उन पितरोंके राजपदपर नियुक्त हैं। समय आनेपर विधिवत् प्रतिपादित अन्न, अभोष्ट पितृपात्रमें पहुँच जाता है। जहाँ वह जीव रहता है, वहाँ ये अग्निष्वात्त आदि पितृदेव ही अन्न लेकर जाते हैं। नाम-गोत्र और मन्त्र ही उस दान दिये गये अन्नको ले जाते हैं। शतशः योनियोंमें जो जीव जिस योनिमें स्थित रहता है उस योनिमें उसे नाम-गोत्रके उच्चारणसे तुष्टि प्राप्त होती है। संस्कार करनेवाले व्यक्तिके द्वारा कुशाच्छादित पृथ्वीपर दाहिने कन्धेपर यज्ञोपवीत करके दिये गये तीन पिण्ड उने पितरोंको संतुष्टि प्रदान करते हैं।

पितर जिस योनिमें, जिस आहारवाले होते हैं, उन्हें श्राद्धके द्वारा वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है। गायोंका घुँड लितर-बितर हो जानेपर भी बछड़ा अपनी माताको जैसे पहचान लेता है, वैसे ही वह जीव जहाँ जिस योनिमें रहता है, वहाँ पितरोंके निमित्त ब्राह्मणको कराया गया श्राद्धान् स्वयं उसके पास पहुँच जाता है—

यदाहारा भवन्त्येते पितरो यत्र योनिषु।

तासु तासु तदाहाराः श्राद्धान्नेनोपतिष्ठति॥

यथा योषु प्रप्लवामु वत्से विन्दति मातरम्।

तद्धानं नयते विप्रो जन्तुर्यज्ञावतिष्ठते॥

(१०।१९-२०)

पितृगण सदैव विश्वेदेवोंके साथ श्राद्धान् ग्रहण करते हैं। ये ही विश्वेदेव श्राद्धका अन्न ग्रहण कर पितरोंको संतुष्ट करते हैं। वसु, रुद्र, देवता, पितर तथा श्राद्धदेवता श्राद्धोंमें

१-देवो यदपि जातेऽयं मनुष्यः कर्मयोगतः॥

तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुयाति यः। गन्धर्वं भोगरूपेण पशुत्वं च तृणं भवेत्॥

श्राद्धं हि वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति। फलं पक्षिणो पक्षिण्ये राक्षसेषु तथामिमम्॥

दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे तर्षिर् तथा। मनुष्यत्वेऽप्यन्नादि कल्पे भोगरसो भवेत्॥ (१०।४-७)

संतुष्ट होकर श्राद्ध करनेवालोंके पितरोंको प्रसन्न करते हैं। जैसे गर्भिणी स्त्री दोहद (गर्भावस्थामें विशेष भोजनको अभिलाषा) -के द्वारा स्वयंको और अपने गर्भस्थ जोवको भी आहार पहुँचाकर प्रसन्न करती है, वैसे ही देवता श्राद्धके द्वारा स्वयं संतुष्ट होते हैं और पितरोंको भी संतुष्ट करते हैं—  
आत्मानं गुर्विणी गर्भमपि प्रीणाति वै यथा।  
दोहदेन तथा देवाः श्राद्धैः स्वांश्च पितॄन् नृणाम्॥

(१०।२३)

'श्राद्धका समय आ गया है'—ऐसा जानकर पितरोंको प्रसन्नता होती है। वे परस्पर ऐसा विचार करके उस श्राद्धमें मनके समान तीव्रगतिसे आ पहुँचते हैं। अन्तरिक्षगामी वे पितृगण उस श्राद्धमें ब्राह्मणोंके साथ ही भोजन करते हैं। वे वायुरूपमें वहाँ आते हैं और भोजन करके परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। हे पशुन्! श्राद्धके पूर्व जिन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया जाता है, पितृगण उन्हींके शरीरमें प्रविष्ट होकर वहाँ भोजन करते हैं और उसके बाद वे पुनः वहाँसे अपने लोकको चले जाते हैं—

निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग।

प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यानि स्वपालयम्॥

(१०।२४)

यदि श्राद्धकर्ता श्राद्धमें एक ही ब्राह्मणको निमन्त्रित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, वामपार्श्वमें पितामह, दक्षिणपार्श्वमें प्रपितामह और पूरुषभागमें पिण्डभक्षक पितर रहता है। श्राद्धकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। हे काश्यप! नरक भोगनेवाले भूख-प्याससे पीड़ित पितृजन अपने पूर्वजन्मके किये गये पापका पश्चात्ताप करते हुए अपने पुत्र-पौत्रोंसे मधुमिश्रित पायसकी अभिलाषा करते हैं। अतः विधिपूर्वक पायसके द्वारा उन पितृगणोंको संतुष्ट करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! उस लोकसे आकर इस पृथ्वीपर श्राद्धमें भोजन करते हुए पितरोंको किसीने देखा भी है?

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुत्मन्! सुनो—देवी सीताका उदाहरण है। जिस प्रकार सीताने पुष्करतीर्थमें अपने समुर आदि तीन पितरोंको श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट हुआ देखा था, उसको मैं कह रहा हूँ।

हे गरुड! पिताकी आज्ञा प्राप्त करके जब श्रीराम वन चले गये तो उसके बाद सीताके साथ श्रीरामने पुष्कर-तीर्थकी यात्रा की। तीर्थमें पहुँचकर उन्होंने श्राद्ध करना प्रारम्भ किया। जानकीने एक पके हुए फलको सिद्ध करके रामके सामने उपस्थित किया। श्राद्धकर्ममें दीक्षित प्रियतम रामकी आज्ञासे स्वयं दीक्षित होकर सीताने उस धर्मका सम्पत्क पालन किया। उस समय सूर्य आकाशमण्डलके मध्य पहुँच गये और कुतुपमुहूर्त (दिनका आठवाँ मुहूर्त) आ गया था। श्रीरामने जिन ऋषियोंको निमन्त्रित किया था, वे सभी वहाँपर आ गये थे। आये हुए उन ऋषियोंकी देखकर विदेहराजकी पुत्री जानकी रामकी आज्ञासे अन्न परोसनेके लिये वहाँ आयी; किन्तु ब्राह्मणोंके बीच जाकर वे तुरंत वहाँसे दूर चली गयीं और लताओंके मध्य छिपकर बैठ गयीं। सीता एकान्तमें छिप गयी हैं, इस बातको जानकर



श्रीरामने यह विचार किया कि ब्राह्मणोंको बिना भोजन कराये साध्वी सीता लज्जाके कारण कहीं चली गयी होगी, पहले मैं इन ब्राह्मणोंको भोजन करा लूँ फिर उनका अन्वेषण करूँगा। ऐसा विचारकर श्रीरामने स्वयं उन ब्राह्मणोंको भोजन कराया। भोजनके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर श्रीरामने अपनी प्रियतमा सीतासे कहा कि ब्राह्मणोंको देखकर तुम लताओंकी ओटमें क्यों छिप गयी? हे तन्वद्गी! तुम इसका समस्त कारण अविलम्ब मुझे बताओ। श्रीरामके ऐसा कहनेपर सीता मुँहको नीचे कर सामने खड़ी हो गयीं और अपने नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई रामसे बोली—

सीताजीने कहा—हे नाथ! मैंने यहाँ जिस प्रकारका आश्चर्य देखा उसे आप सुनें। हे राघव! इस ब्राह्मणमें उपस्थित ब्राह्मणके अग्रभागमें मैंने आपके पिताका दर्शन किया, जो सभी आभूषणोंसे सुशोभित थे। उसी प्रकारके अन्य दो महापुरुष भी उस समय मुझे दिखायी पड़े। आपके पिताको देखकर मैं बिना बताये एकान्तमें चली आयी थी। हे प्रभो! वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए मैं कैसे राजा (दशरथ) के सम्मुख जा सकती थी। हे शत्रुघ्नके वीरोंका विनाश करनेवाले प्राणनाथ! मैं आपसे यह सत्य ही कह रही हूँ, अपने हाथसे राजाको मैं वह भोजन कैसे दे सकती थी, जिसके दासोंके भी दास कभी भी वैसा भोजन नहीं करते रहे? तृणपात्रमें उस अन्नको रखकर मैं कैसे उन्हें ले जाकर देती? मैं तो बही हूँ जो पहले सभी प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित रहती थी और राजा मुझे वैसी स्थितिमें देख चुके थे। आज वही मैं कैसे राजाके सामने जा पाती? हे रघुनन्दन! उसीसे मनमें आर्षा हुई लज्जाके कारण मैं वापस हो गयी।

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुड! अपनी पत्नीके ऐसे वचनोंको सुनकर श्रीरामका मन विस्मित हो उठा। यह तो आश्चर्य है; ऐसा कहकर वे अपने स्थानपर चले आये। सीताने जिस प्रकार अपने पितरोंका दर्शन किया था, उसी प्रकार तुम्हें मैंने सुना दिया। अब मैं संक्षेपमें ब्राह्मणका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनी—

पितृगण अमावास्याके दिन वायुरूपमें घरके दरवाजेपर उपस्थित रहते हैं और अपने स्वजनोंसे ब्राह्मणकी अभिलाषा करते हैं। जबतक सूर्यास्त नहीं हो जाता, तबतक वे वहीं भूख-प्याससे व्याकुल होकर खड़े रहते हैं। सूर्यास्त हो जानेके पश्चात् वे निराश होकर दुःखित मनसे अपने वंशजोंकी निन्दा करते हैं और लम्बी-लम्बी सोंस खींचते हुए अपने-अपने लोकोंको बले जाते हैं। अतः प्रत्यत्पूर्वक अमावास्याके दिन ब्राह्मण अवश्य करना चाहिये। यदि पितृजनोंके पुत्र तथा बन्धु-बान्धव उनका ब्राह्मण करते हैं और गया-तीर्थमें जाकर इस कार्यमें प्रवृत्त होते हैं तो वे उन्हीं पितरोंके साथ ब्रह्मलोकमें निवास करनेका अधिकार प्राप्त करते हैं। उन्हें भूख-प्यास कभी नहीं लगती। इसीलिये विद्वान्को प्रत्यत्पूर्वक यथाविधि शाक-पातसे भी अपने पितरोंके लिये ब्राह्मण अवश्य करना चाहिये। समयानुसार

ब्राह्मण करनेसे कुलमें कोई दुःखी नहीं रहता। पितरोंकी पूजा करके मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, श्री, पशु, सुख और धन-धान्य प्राप्त करता है। देवकार्यसे भी पितृकार्यका विशेष महत्त्व है। देवताओंसे पहले पितरोंको प्रसन्न करना अधिक कल्याणकारी है—

कुर्वीत समये ब्राह्मं कुले कश्चिन्न सीदति।

आयुः पुत्रान् वशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्॥

यान् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्।

देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते॥

देवताभ्यः पितॄणां हि पूर्वमाप्यायनं शुभम्।

(१०।५७—५९)

जो लोग अपने पितृगण, देवगण, ब्राह्मण तथा अग्निकी पूजा करते हैं, वे सभी प्राणियोंकी अन्तरात्मामें समाधिप्रेमरी हो पूजा करते हैं। शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक ब्राह्मण करके मनुष्य ब्रह्मपर्यन्त समस्त चराचर जगत्को प्रसन्न करता है।

हे आकाशचारिन् गरुड! मनुष्योंके द्वारा ब्राह्मणमें पृथ्वीपर जो अन्न बिखेर जाता है, उससे जो पितर पिशाच-योनिमें उत्पन्न हुए हैं, वे संतुष्ट होते हैं। ब्राह्मणमें स्नान करनेसे भीगे हुए बस्त्रोंद्वारा जो जल पृथ्वीपर गिरता है, उससे वृक्षयोनिमें प्राप्त हुए पितरोंकी संतुष्टि होती है। उस समय जो गन्ध तथा जल भूमिपर गिरता है, उससे देवत्व-योनिमें प्राप्त पितरोंकी सुख प्राप्त होता है। जो पितर अपने कुलसे बहिष्कृत हैं, क्रियाके योग्य नहीं हैं, संस्कारहीन और विपन्न हैं, वे सभी ब्राह्मणमें विकिरण और मार्जनके जलका भक्षण करते हैं। ब्राह्मणमें भोजन करके ब्राह्मणोंके द्वारा आचमन एवं जलपान करनेके लिये जो जल ग्रहण किया जाता है, उस जलसे उन पितरोंकी संतुष्टि प्राप्त होती है। जिन्हें पिशाच, कृमि और कीटकी योनि मिली है तथा जिन पितरोंकी मनुष्य-योनि प्राप्त हुई है, वे सभी पृथ्वीपर ब्राह्मणमें दिये गये पिण्डोंमें प्रयुक्त अन्नकी अभिलाषा करते हैं, उसीसे उन्हें संतुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्योंके द्वारा विधिपूर्वक ब्राह्मण किये जानेपर जो शुद्ध या अशुद्ध अन्न तथा जल फेंका जाता है, उससे जिन्होंने अन्य जातिमें जाकर जन्म लिया है, उनकी तृप्ति होती है। जो मनुष्य अन्यायपूर्वक अर्जित किये गये पदार्थोंसे ब्राह्मण करते हैं, उस ब्राह्मणसे नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करनेवाले

चाण्डाल पितरोंकी तृप्ति होती है।

हे पक्षिन्! इस संसारमें ब्राह्मणके निमित्त जो कुछ भी अन्न, धन आदिका दान अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दिया जाता है, वह सब पितरोंको प्राप्त होता है। अन्न, जल और शाक-फल आदिके द्वारा यथासामर्थ्य जो श्राद्ध किया जाता है, वह सब पितरोंकी तृप्तिका हेतु है। तुमने इस विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। तुम अब जो यह पूछ रहे हो कि मृत्युके बाद प्राणीको तत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है? अथवा विलम्बसे उसको दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है? वह मैं तुम्हें संक्षेपमें बता रहा हूँ।

हे गुरुह! प्राणी मृत्युके पश्चात् दूसरे शरीरमें तुरंत भी प्रविष्ट हो सकता है और विलम्बसे भी। मनुष्य जिस कारण दूसरे शरीरको प्राप्त करता है, उस वैशिष्ट्यको तुम मुझसे सुनो। शरीरके अंदर जो धूमरहित ज्योतिके सदृश प्रधान पुरुष जीवात्मा विद्यमान रहता है, वह मृत्युके बाद तुरंत ही वायवीय शरीर धारण कर लेता है। जिस प्रकार एक तुणका आश्रय लेकर स्थित जोंक दूसरे तुणका आश्रय लेनेके बाद पहलेवाले तुणके आश्रयसे अपने पैरको आगे बढ़ाता है, उसी प्रकार शरीरी पूर्व-शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जाता है। उस समय भोगके लिये वायवीय शरीर सामने ही उपस्थित रहता है। मरनेवाले शरीरके अंदर विषय ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ उसके निक्षेप (निष्कर्षण) हो जानेपर वायुके साथ चली जाती हैं। वह जिस शरीरको प्राप्त करता है उसको भी छोड़ देता है। जैसे स्त्रीके शरीरमें स्थित गर्भ उसके अन्तर्दिक कौशसे शक्ति ग्रहण करता है और समय आनेपर उसे छोड़कर वह बाहर आ जाता है, वैसे ही जीव अपना अधिकार लेकर दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। उस एक शरीरमें प्रविष्ट होते हुए प्राणीके कालक्रम, भोजन या गुण-संक्रमणकी जो स्थिति है उसे मूर्ख नहीं, अपितु ज्ञानी व्यक्ति ही देखते हैं।

विद्वान् लोग इसको आतिवाहिक वायवीय शरीर कहते हैं। हे सुपर्ण! भूत-प्रेत और पिशाचोंका शरीर तथा मनुष्योंका पिण्डज शरीर भी ऐसा ही होता है।

हे पक्षीन्द्र! पुत्रादिके द्वारा जो दशगात्रके पिण्डदान दिये जाते हैं, उस पिण्डज शरीरसे वायवीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डज देहका साथ नहीं होता है तो वायुज शरीर कष्ट भोगता है। प्राणीके इस शरीरमें जैसे कौमार्य, यौवन और बुढ़ापेकी अवस्थाएँ आती हैं, वैसे ही दूसरे

शरीरके प्राप्त होनेपर भी तुम्हें समझना चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंका परित्याग कर नये वस्त्रोंको धारण कर लेता है, उसी प्रकार शरीरी पुराने शरीरका परित्याग कर नये शरीरको धारण करता है। इस शरीरको न शस्त्र छेद सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल आई कर सकता है और न वायु सुखा सकती है—

देहिषोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिः पक्षीन्देव्यवधारय॥

वासोमि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीरानि विहाय जीर्णा-

न्यानि संयाति नवानि देही॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं जलेदघनस्थापे न शोषयति मारुतः॥

(१०।८३-८५)

जीव तत्काल वायवीय शरीरमें प्रवेश कर लेता है, यह तो मैंने तुम्हें बता दिया; अब जीवात्माको विलम्बसे जैसे दूसरा शरीर प्राप्त होता है, उसको तुम मुझसे सुनो।

हे गुरुह! कोई-कोई जीवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे प्राप्त करता है; क्योंकि मृत्युके बाद वह स्वकर्मानुसार यमलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँ नरक भोगता है। वहाँकी यातनाओंको झेलनेके पश्चात् उसे पशु-पक्षी आदिकी योगि प्राप्त होती है। मनुष्य जिस शरीरको ग्रहण करता है, उसी शरीरमें मोहवश उसकी ममता हो जाती है। शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगकर मनुष्य इससे मुक्त भी हो जाता है।

गुरुहने कहा—हे दयानिधे! बहुत-से पापोंको करनेके बाद भी इस संसारकी पार करके प्राणी आपको कैसे प्राप्त कर सकता है? उसे आप मुझे बतायें। हे लक्ष्मीरमण! जिस प्रकार मनुष्यका संसर्ग पुनः दुःखसे न हो उस उपायको बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्ममें रत रहकर संसिद्धि प्राप्त कर लेता है। अपने कर्ममें अनुरक्त रहकर वह उस सिद्धिको जिस प्रकार प्राप्त करता है, उसको तुम मुझसे सुनो—

स्वे स्वे कर्मण्यधिरतः संसिद्धिं लभन्ते नरः।

स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तृच्छृणु॥

(१०।१२)



हे कश्यपनन्दन! सत्कर्मसे जिसने अपने कानुष्यको नष्ट कर दिया है, वह व्यक्ति वासुदेवके निरन्तर चिन्तनसे विमुक्त हुई बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थिर रहता है, जो शब्दादि विषयोंका परित्याग कर राग-द्वेषको छोड़कर विरक्त, सेवी और यथाप्राप्त भोजनसे संतुष्ट रहता है, जिसका मन-वाणी-शरीर संयमित है, जो वैराग्य धारणकर नित्य ध्यान-योगमें तत्पर रहता है, जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह—इन षड्विकारोंका परित्याग करके निर्भय होकर शान्त हो जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्योंके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता—

कर्मविधृष्टकानुष्यो वासुदेवानुचिन्तया।  
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च॥  
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।  
विरक्तसेवी लब्धवाशी यतवाक्कायमानसः॥  
ध्यानयोगपरो निर्व्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।  
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥  
विमुच्य निर्भयः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।  
अतः परं नृणां कृत्यं नास्ति कश्यपनन्दन॥

(१०।१३-१६)

(अध्याय १०)

## जीवकी ऊर्ध्वगति एवं अधोगतिका वर्णन

गुरुजीने कहा—हे देवसेन! मनुष्ययोनि कैसे प्राप्त होती है? मनुष्य कैसे मृत्युको प्राप्त होता है? शरीरका आश्रय लेकर जीवन मरता है? उसकी इन्द्रियों कहाँसे कहाँ चली जाती हैं? मनुष्य कैसे अमृत्यु हो जाता है? यहाँ किये हुए कर्मको कहाँ और कैसे भोगता है और कहाँ कैसे जाता है? यमलोक और विष्णुलोकको मनुष्य कैसे जाता है? हे प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे विनतानन्दन! परायी स्त्री और ब्राह्मणके धनका अपहरण करके प्राणी अरण्य एवं निर्जन स्थानमें रहनेवाले ब्रह्मराक्षसकी योनिको प्राप्त करता है। रत्नोंकी चोरी करनेवाला मनुष्य नीच जातिके घर उत्पन्न होता है। मृत्युके समय उसकी जो-जो इच्छाएँ होती हैं, उन्हींके वशीभूत हो वह उन-उन योनियोंमें जाकर जन्म लेता है। इस जीवात्माका छेदन शस्त्र नहीं कर सकता, अग्नि इसको जलानेमें समर्थ नहीं है, जल इसे आई नहीं

कर सकता और वायुके द्वारा इसका शोषण सम्भव नहीं है।

हे पक्षिन्! मुख, नेत्र, नासिका, कान, गुदा और मूत्रमली—ये सभी छिद्र अण्डजादिक जीवोंके शरीरमें विद्यमान रहते हैं। नाभिसे मूर्धापर्यन्त शरीरमें आठ छिद्र हैं। जो सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्मा हैं, उनके प्राण शरीरके ऊर्ध्व छिद्रोंसे निकलकर परलोक जाते हैं। मृत्युके दिनसे लेकर एक वर्षतक जैसी विधि पहले बतायी गयी है, उसीके अनुसार सभी और्ध्वदैहिक श्रद्धादि संस्कार निर्धन होनेपर भी यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक करने चाहिये। जीव जिस शरीरमें वास करता है उसी शरीरमें वह अपने शुभशुभ कर्मफलका भोग करता है। हे पक्षिराज! मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये दोषोंको वह भोगता है। जो [अनासक्तभावसे] सत्कर्ममें रत रहता है, वह मृत्युके बाद सुखी रहता है और सांसारिकताके मायाजालमें नहीं फँसता। जो विकर्ममें निरत रहता है वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता है। (अध्याय ११)

## चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्यजन्मकी श्रेष्ठता, मनुष्यमात्रका एकमात्र कर्तव्य—धर्माचरण

श्रीकृष्णजीने कहा—हे तार्क्ष्य! मनुष्योंके हित एवं प्रेतत्वकी विमुक्तिके लिये जीवित प्राणीके कर्म-विधानका निर्णय मैंने तुम्हें सुना दिया। इस संसारमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। उनका विभाजन चार प्रकारके जीवोंमें हुआ है।

उन्हें अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज कहा जाता है। इक्कीस लाख योनियाँ अण्डज मानी गयी हैं। इसी प्रकार क्रमशः स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज योनियोंके विषयमें भी कहा गया है। मनुष्यादि योनियाँ जरायुज कही

जाती हैं। इन सभी प्राणियोंमें मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। पाँच इन्द्रियोंसे युक्त वह योनि प्राणीको बड़े ही पुण्यसे प्राप्त होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं। रजक, चमार, नट, बंसखोर, मलुआरा, मेद तथा भिल्ल—ये सात अन्त्यज जातियाँ मानी गयी हैं। स्लेच्छ और तुम्बु जातिके भेदसे अनेक प्रकारकी जातियाँ हो जाती हैं। जीवोंके हजारों भेद हैं। आहार, मैथुन, निद्रा, भय और क्रोध—ये कर्म सभी प्राणियोंमें पाये जाते हैं, किंतु किवंच सभीमें परम दुर्लभ है। एक पाद, दो पाद आदिके भेदसे शारीरिक संरचनामें भी अनेक भेद प्राप्त होते हैं।

जिस देशमें कृष्णसार नामक मृग रहता है, वह धर्मदेश कहलाता है। सब प्रकारसे ब्रह्मा आदि देवता यहीं निवास करते हैं। पञ्चमहाभूतोंमें प्राणी, प्राणियोंमें बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोंमें मनुष्य और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है। स्वर्ग और मोक्षके साधनभूत मनुष्ययोनिको प्राप्त करके जो प्राणी इन दोनोंमेंसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता, निश्चित ही उसने अपनेको ठग दिया। सीका मांसिक एक हजार और एक हजारवाला व्यक्ति लाखकी पूर्तिमें लगा रहता है। जो लक्षाधिपति है वह राज्यकी इच्छा करता है। जो राजा है वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें रखना चाहता है। जो चक्रवर्ती नरेश है वह देवायकी इच्छा करता है। देवाय-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अभिलाषा देवराज इन्द्रके पदके लिये होती है और देवराज होनेपर वह ऊर्ध्वगतिकी कामना करता है; फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती। तृष्णासे पराजित व्यक्ति नरकमें जाता है। जो लोग तृष्णासे मुक्त हैं, उन्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।<sup>१</sup>

इस संसारमें जो प्राणी आत्माके अधीन है, वह निश्चित ही सुखी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय हैं, इनकी अधीनतामें रहनेवाला निश्चित ही दुःखी रहता है। मृग, हाथी, पतंग, भ्रमर और मीन—ये पाँचों क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, रस—ये एक-एक विषयके सेवनसे मारे जाते हैं; फिर जो प्रमादी मनुष्य पाँचों इन्द्रियोंसे इन पाँचों विषयोंका सेवन करता है, वह इनके

द्वारा कैसे नहीं मारा जायगा? मनुष्य बाल्यावस्थामें अपने पिता-माताके अधीन होता है। युवावस्था आनेपर वह स्त्रीका हो जाता है और अन्त समय आनेपर पुत्र-पौत्रके व्यामोहमें फँस जाता है। वह मूर्ख कभी किसी अवस्थामें आत्माके अधीन नहीं रहता। लीह और काष्ठके बने हुए पाशसे बँधा हुआ व्यक्ति मुक्त हो जाता है, किंतु पुत्र तथा स्त्री आदिके मोहपाशमें बँधा हुआ प्राणी कभी मुक्त नहीं हो पाता।

पाप एक मनुष्य करता है, किंतु उसके फलका उपभोग बहुत-से लोग करते हैं। भोक्ता तो अलग हो जाते हैं पर कर्ता दोषका भागी होता है। चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो और चाहे युवा हो, कोई भी मृत्युपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। कोई अधिक सुखी हो अथवा अधिक दुःखी हो, वह बारम्बार आता-जाता है। मृत प्राणी सबके देखते-देखते सब कुछ छोड़कर चला जाता है। इस मर्त्यलोकमें प्राणी अकेला ही पैदा होता है, अकेले ही मरता है और अकेले ही पाप-पुण्यका भोग करता है। 'बन्धु-बान्धव मरे हुए स्वजनके शरीरकी पृथ्वीपर लकड़ी और मिट्टीके ढेलेकी भीत फेंककर पराङ्मुख हो जाते हैं; धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभवं परमें ही खूट जाता है। मित्र एवं बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं। शरीरको अग्नि ले लेती है। पाप-पुण्य ही उस जीवात्माके साथ जाते हैं।'

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोहसमं क्षिती ॥

बान्धवा विमुक्ता यानि धर्मस्तमनुगच्छति ॥

गृहेष्वर्था निवर्तते श्मशानान्मित्रबान्धवाः ॥

शरीरं वह्निरादत्तं सुकृतं दुष्कृतं व्रजेत् ॥

शरीरं वह्निना दग्धं पुण्यं पापं सह स्थितम् ॥

(१२।२४—२५)

'मनुष्यने जो भी शुभ या पाप-कर्म किया है, वह सर्वत्र उसीको भोगता है। हे पक्षिराज! सूर्यास्ततक जिसने याचकोंको अपना धन नहीं दे दिया तो न जाने प्रातः होनेपर उसका वह धन किसका हो जायगा? पूर्वजन्मके पुण्यसे

१-इच्छति शक्ते सहस्रं सहस्रौ लक्षमोदते कर्तुम् । लक्षाधिपती राज्यं राज्यानि सकला धरां सम्भुम् ॥

चक्रधरोऽपि सुखं सुरभावे सकलसुरपतिर्भविष्य ॥ सुरपतिरुर्ध्वगतित्वं लब्ध्वा न निवर्तते तृष्णा ॥

तृष्णाया चाधिभूतस्तु नरकं प्रतिपद्यते । तृष्णानुत्तान्तु वै केचित् स्वर्गवासं सन्तिन ते ॥ (१२।१३—१५)

जो थोड़ा या बहुत धन प्राप्त हुआ है, उसे यदि परोपकारके कार्यमें नहीं लगाया या श्रेष्ठ द्विजोंको दानमें नहीं दिया तो उसका वह धन यह रटता रहता है कि कौन मेरा भर्ता होगा? ऐसा विचार कर धर्मके कार्यमें अपना धन लगाना चाहिये। मनुष्य ब्रह्मापूत शुद्ध मनसे दिये गये धनके द्वारा धर्मको धारण करता है। ब्रह्मारहित धर्म इस लोक तथा परलोकमें फलीभूत नहीं होता। धर्मसे ही अर्थ और कामकी भी प्राप्ति होती है। धर्म ही मोक्षका प्रदायक है। अतः मनुष्यको धर्मका सम्पक् आचरण करना चाहिये। धर्मकी सिद्धि ब्रह्मासे होती है, प्रभु धनराशिसे नहीं। अकिञ्चन अर्थात् धन-वैभवसे रहित ब्रह्मवान् मुनियोंको स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। ब्रह्मारहित होकर किया गया होम, दान तथा तप असत् कहा जाता है। हे पशुन्! उसका फल न तो इस लोकमें मिलता है और न परलोकमें ही मिलता है\*—

शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः।

यदनस्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमधिनाम्॥  
न जाने तस्य तद्वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति।  
राट्तीति धनं तस्य को ये भर्ता भविष्यति॥  
न दत्तं द्विजमुख्येभ्यः परोपकृतये तथा।  
पूर्वजन्मकृतात् पुण्याद्यलब्धं बहु चाल्पकम्॥  
तदीदृशं परित्याप्य धर्माद्ये दीयते धनम्।  
धनेन धार्यते धर्मः ब्रह्मापूतेन चेतसा॥  
ब्रह्माविरहितो धर्मो नेहामुत्र च तत्फलम्।  
धर्माच्च जायते ह्यर्धो धर्मात् कामोऽपि जायते॥  
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाधरेत्।  
ब्रह्मणा साध्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः॥  
अकिञ्चना हि मुनयः ब्रह्मायनो दिवं गताः।  
अब्रह्मणा हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।  
असदित्युच्यते पशुन् प्रेत्य चेह न तत्फलम्॥

(१२।२७—३३)

(अध्याय १२)

## वृषोत्सर्ग तथा सत्कर्मकी महिमा

श्रीगरुडजीने कहा—हे देवेश। इस भूलोकमें किस कर्मको करनेसे प्राणियोंको प्रेतपोनिकी प्राप्ति नहीं होती? उसे आप मुझे बतायें।

श्रीकृष्णजीने कहा—अब मैं संक्षेपमें श्यावसे लेकर आगे की जानेवाली और्ध्वदैहिक क्रियाको कह रहा हूँ, जिसे मोक्ष चाहनेवाले लोगोंको अपने ही हाथोंसे करना चाहिये। स्त्री और विशेषरूपसे पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर उनके प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये वृषोत्सर्ग करना चाहिये। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये वृषोत्सर्गके अतिरिक्त इस पृथ्वीपर अन्य कोई साधन नहीं है। जो मनुष्य जीवित रहते हुए वृषोत्सर्ग करता है अथवा मृत्युके पश्चात् भी जिसकी यह क्रिया सम्पन्न हो जाती है उसे दान, यज्ञ एवं व्रत किये बिना भी प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती।

गरुडने कहा—हे देवश्रेष्ठ मधुसूदन! जीवित रहते हुए अथवा मृत्युके पश्चात् भी किस कालमें यह वृषोत्सर्ग-

क्रिया होनी चाहिये? आप इस बातको मुझे बतायें। सोलह ब्राह्मणोंको करनेसे जन्तमें क्या फल प्राप्त हो सकता है?

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! यदि वृषोत्सर्ग किये बिना ही पिण्डदान दिया जाता है तो उसका श्रेष्ठ दाताको नहीं प्राप्त होता। प्रत्युत वह क्रिया प्रेतके लिये निष्फल हो जाती है। जिसके एकादशाहमें वृषोत्सर्ग नहीं होता, सौ ब्राह्म करनेपर भी उसका प्रेतत्व सुस्थिर रहता है।<sup>१</sup>

गरुडने कहा—हे प्रभो! सर्पदंशसे मरे हुए लोगोंकी अग्निदाहादि क्रिया नहीं की जाती है। यदि जलमें, सौंवाले पशु अथवा सस्त्रादिके प्रहारसे कोई मर जाता है, तो इस प्रकार असत् मृत्युको प्राप्त हुए लोगोंकी शुद्धि कैसे हो? हे देव! आप मेरे इस संशयको दूर करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! उक्त प्रकारसे अपमृत्युको प्राप्त हुआ ब्राह्मण छः मास, क्षत्रिय द्वादश मास, वैश्य डेढ़ मास एवं शूद्र एक मासमें शुद्ध हो जाता है। यदि तीर्थमें सभी प्रकारका दान देकर कोई ब्रह्मचारी मर जाता है तो

वह शुद्ध होकर ऐहिक दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। वृषोत्सर्ग आदि करके यति-धर्मका आचरण करना चाहिये। यदि संन्यास-धर्मका पालन करते हुए किसी प्राणीको मृत्यु हो जाती है तो वह शाश्वत ब्राह्मपदको प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति शिष्टाचाररहित धर्मविरुद्ध कर्म करता है, वह भी वृषोत्सर्ग आदिकी क्रिया करके यमराजके शासनमें नहीं जाता। पुत्र, सहोदर भाई, पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगेजो अथवा सम्पत्ति लेनेवाला उत्तराधिकारी कोई भी हो, उसको मरे हुए स्वजनके लिये वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये। पुत्रके अभावमें पत्नी, दौहित्र (नाती) और दुहिता (पुत्री) भी इस कर्मको कर सकती है। पुत्रोंके रहनेपर वृषोत्सर्ग अन्यसे नहीं कराना चाहिये।

**गुरुडने कहा—**हे सुरेश्वर! जाहे स्त्री हो अथवा पुरुष जिसके पुत्र नहीं है, उसका संस्कार किस प्रकारसे किया जाय? हे देव! इस विषयमें उत्पन्न हुई मेरी संकाको आप भली प्रकारसे दूर करें।

**श्रीकृष्णने कहा—**पुत्रहीन व्यक्तिको गति नहीं है, उसके लिये स्वर्गका सुख नहीं है। अतः ऐसे मनुष्यको सदुपायसे पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहिये। पुरुष स्वयं जो कुछ भी दान देते हैं, परलोकमें वे सभी उसके सामने ही उपस्थित रहते हैं। अपने हाथोंसे जो नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं विविध व्यञ्जन खानेके लिये दिये जाते हैं, वे सभी मृत्युके पश्चात् अक्षय फल प्रदान करते हैं। जो गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोजन और पद-दान अपने हाथसे दिये

जाते हैं, वे सभी दान जिस-जिस योनिमें जहाँ-जहाँ दानकर्ता जाते हैं, वहाँ-वहाँ उपस्थित रहते हैं<sup>१</sup>।

जबतक प्राणीका शरीर स्वस्थ रहता है, तबतक धर्मका सम्पत्क पालन करना चाहिये। अस्वस्थ होनेपर दूसरोंके प्रेरणासे भी वह कुछ नहीं कर पाता है। यदि अपने जीवनकालमें व्यक्ति और्ध्वदैहिक कर्म नहीं कर लेता अथवा मरनेके बाद अधिकारी पुत्र-पौत्रादिकोंके द्वारा भी यह कर्म नहीं होता है तो वह वायुरूपमें भूख-प्याससे पीड़ित रात-दिन भटकता रहता है। वह कुम्भि, कीट अथवा पतित होकर बार-बार जन्म लेता है और मर जाता है। वह कभी अस्तु मार्गसे गर्भमें प्रविष्ट होता है एवं जन्म लेते ही तत्काल विनष्ट हो जाता है।

जबतक यह शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जबतक इससे बुझाया दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति किसी भी प्रकारसे क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयु नष्ट नहीं हुई है, तबतक अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये; क्योंकि घरमें महाभयंकर आगके लग जानेपर कुआँ छोड़नेके उद्योगसे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है—

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमर्जं यावज्जरा दूरतो

यावच्चन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रपन्नो महान्

संदीप्तो भवने तु कृपयन्ने प्राप्नुयामः कीदृशः॥

(१३।२५)

(अध्याय १३)

## और्ध्वदैहिक क्रिया, गोदान एवं वृषोत्सर्गका माहात्म्य

**गुरुडने कहा—**हे विभी! मृत्युको प्राप्त कर रहे दुःखित व्यक्तिके द्वारा जो दान दिया जाता है, उसका क्या फल है? स्वस्थ अवस्थामें और विधिहीन जो दान दिया जाता है, उसका क्या फल है?

**श्रीकृष्णने कहा—**हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वस्थ चित्तवाले मनुष्यके द्वारा दानमें दी गयी एक गौ, रोगी पुरुषके द्वारा दानमें दी गयी

एक सौ गाय, मर रहे प्राणीके द्वारा दानमें धनको छोड़कर दी गयी हजार गाय तथा व्यक्तिके मर जानेपर विधिवत् पुत्र-पौत्रादिके द्वारा दानमें दी गयी एक लाख गायोंके बराबर होती है। तीर्थ एवं पात्रके समायोगसे यथाविधि एक ही गोदान कर दिया जाय तो वह अकेली गौ दाताको एक लाख गोदानका पुण्य प्रदान करती है।

१-व्यञ्जनानि विचित्रानि भक्ष्यभोज्यानि यानि च। स्वहस्तेन प्रदत्तानि देहान्ते चाक्षयं फलम्॥

गोभूदिरप्यन्तासांसि भोजनानि पदानि च। यत्र यत्र जसेज्जन्तुस्तत्रतरोपतिवति॥ (१३।२०-२१)





हे खगराज ! सत्पात्रको दिया गया दान दिन-दिन बढ़ता है। दाताके दिये हुए दानको यदि ज्ञानी ग्रहण करता है तो उसे पाप नहीं लगता। धिप और शैतानका अपहरण करनेवाले मन्त्र और अग्नि क्या दोषभाजन होते हैं? अतः प्रतिदिन सत्पात्रको विशेष उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये दान देना चाहिये। अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिको अपात्रको कुछ भी नहीं देना चाहिये। यदि कदाचित् अपात्रके लिये गौका दान दिया जाता है तो वह दाताको नरकमें ले जाता है और अपात्र ग्रहीताको इन्कीस पौड़ियोंके सहित नरकमें डकेल देता है।

हे खगेश ! जिस प्रकारसे अपने हाथसे भूमिमें निवेश किया गया धन मनुष्यके आवश्यकतानुसार वह जब चाहे काममें आ सकता है, उसी प्रकार अपने हाथसे किया गया दान भी देहान्तरमें प्राप्त होता है। निर्धन होनेके बाद भी अपुत्र व्यक्तिको मोक्षकी कामनासे अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया अवश्य कर लेनी चाहिये। थोड़े धनसे भी अपने हाथसे की गयी अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया उसी प्रकारसे अक्षय फल देनेवाली होती है, जिस प्रकार अग्निमें डाली हुई आभ्याहुति। दान लेनेके योग्य व्यक्तिको हो शय्या, कन्या एवं गौका दान देना चाहिये और यह भी ध्यान रखना चाहिये कि दो शय्याएँ एकको न दो जायँ, दो कन्याएँ एकको न दो जायँ तथा दो गायें भी एकको न दो जायँ। इसका आशय यह है कि भलीभाँति गोपालनमें समर्थ,

गोपालनके प्रति आस्थावान् तथा दान लेने योग्य प्रतिग्रहीताको ही गोदान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी विशेषरूपमें ज्ञातव्य है कि दो दान लेने योग्य व्यक्तियोंको भी एक गौ कदापि न दी जाय; क्योंकि यदि वह किसीके हाथ बेचो जाती है अथवा उसका किन्हीं दो या दोस अधिक लोगोंके बीच विभाजन होता है तो ऐसा करनेवाले मनुष्यको सात पौड़ियोंके सहित वह दान जला देता है। अतः इस नष्ट जीवनमें समस्त और्ध्वदैहिक कर्म स्वयं सम्पन्न कर लेना चाहिये। पाथेयके रूपमें दिये गये दानादिको प्राप्त करके प्राणी उस महाप्रयाणके मार्गमें सुखपूर्वक जाता है, अन्यथा पाथेयरहित जीवात्मा अनेक प्रकारका कष्ट झेलता है। ऐसा जानकर मनुष्य विधिवत् वृषोत्सर्ग करे। जो पुत्रहीन वृषोत्सर्ग किये बिना ही मर जाता है, उसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती है। अतः पुत्रविहीन मनुष्य इस धर्मका पालन विधिवत् करे। ऐसा करनेसे यमके उस महापद्ममें वह सुखपूर्वक गमन करता है। अग्निहोत्र, विभिन्न प्रकारके यज्ञ और दानादिसे प्राणीको वह सद्गति नहीं प्राप्त होती है, जो गति वृषोत्सर्गसे प्राप्त होती है। समस्त यज्ञोंमें वृषोत्सर्ग यज्ञ श्रेष्ठतम है, इसलिये प्रयास करके मनुष्यको भलीभाँति वृषोत्सर्ग सम्पन्न करना चाहिये।

मरुद्गने कहा—हे गोविन्द ! आप मुझे क्षाहाह और और्ध्वदैहिक क्रियाके विषयमें उपदेश दें कि इस क्रियाको किस काल, किस तिथि और किस प्रकारकी विधिसे सम्पन्न करना चाहिये। इसको करके मनुष्य क्या फल प्राप्त करता है, इसे भी आप मुझे बतायें। हे गोविन्द ! आपकी कृपासे जो प्राणी मुक्त हो जाता है।

श्रीकृष्णने कहा—हे पशुन् ! कार्तिक आदि मासमें सूर्यके दक्षिणायन हो जानेपर शुक्लपक्षकी द्वादशी आदि शुभ तिथियोंमें, शुभ लग्न और मूहूर्तमें तथा पवित्र देशमें सम्बहिर्वाचित होकर विभिन्न, शुभलक्षणोंसे युक्त सत्पात्र ब्राह्मणको बुलाकर जप, होम तथा दानसे अपने शरीरका सर्वप्रथम शोधन करे। उसके बाद वह अभिजित् नक्षत्रमें ग्रहों और देवताओंकी विधिवत् पूजा करके विभिन्न वैदिक मन्त्रोंसे यथाशक्ति अग्निमें आहुति प्रदान करे। हे खगेश्वर ! तदनन्तर ग्रहस्थापन-कार्य करके मातृका-पूजनका कार्य

करना चाहिये। तत्पश्चात् वह वसुधातु हवन सम्पन्न करे। अग्नि-स्थापन करके पूर्णाहुति का कार्य करे। इसके बाद शालग्रामको स्थापित कर वैष्णव श्राद्ध करे। वस्त्रभूषणोंसे वृषको सुसज्जित करके उसकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पहले चार बछियोंको सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित करे। वस्त्र और अलंकारसे विभूषित कर उन्हें उस यज्ञमें वृषके साथ स्थान दे। उसके बाद उनको प्रदक्षिणा एवं होम करके अन्तमें विसर्जन करे। तत्पश्चात् उत्तराभिमुख होकर इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

धर्मं त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा॥

ततोत्सर्गप्रभावात्मा मुद्रास्व भवार्णवात्।

(१४। २९-३०)

‘हे धर्म! पुराकालमें ब्रह्मने आपको वृषके रूपमें निर्मित किया है। आपके उत्सर्गके प्रभावसे मेरा भवसागरसे उद्धार हो।’

इसके बाद पवित्र करनेवाले शुभ मन्त्रोंसे विधिपूर्वक वृषको अभिषेक करके ‘तैव ब्रौडन्ति०’ इस मन्त्रसे वृषोत्सर्ग करे। पुनः रुद्र नामक कुम्भके जलसे उस नील वृषका अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद उस नील वृषके नाभिभागमें घटको स्पर्श कराके वह जल अपने सिरपर भी डालना चाहिये। हे पक्षिराज! तदनन्तर अन्नश्राद्ध कर द्विजोत्तमको दान देना चाहिये। इन कार्योंको करके जलाशयपर पहुँचे और वहाँ जलाशयित क्रिया करे। मनुष्यको अपने जीवनमें जो वस्तु प्रिय हो, उसका यथाशक्ति वहाँपर दान करना चाहिये। वृषोत्सर्ग करनेपर न्यूनता पूरी हो जाती है। मृत व्यक्ति इससे भलीभाँति तृप्त होकर यमलोकके कठिन मार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है, इसमें संदेह नहीं है। सदैव दानादिकी क्रियाओंमें अनुरक्त मनुष्य यमलोकका दर्शनतक नहीं करते हैं। जबतक प्राणीका एकादशाह श्राद्ध नहीं किया जाता है, जबतक अपने द्वारा दिया गया दान अथवा दूसरेके हाथसे दिया गया दान न इस लोकमें प्राप्त होता है और न परलोकमें ही।

हे गरुड! ब्रह्माभावपूर्ण प्राणीको क्रमशः षेरह, सात, पाँच तथा तीन पद-दान करना चाहिये। अतः दाता पहले यथाक्रम सात एवं पाँच तिलपात्रोंका दान करे। वह ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें एक गौका दान भी दे। तत्पश्चात् ‘वृषं हि शं नो देवी०’ इस वेदमन्त्रसे यथाविधि

चार बछियोंके साथ वृषका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर उसके शरीरमें बायीं ओर चक्र और दाहिनी ओर त्रिशूलका चिह्न अंकित करके और जिसको वृषदान किया गया है, उसको उसका मूल्य देकर विसर्जन कर दे।

बुद्धिमान् व्यक्तिको एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार क्रमशः प्रयत्नपूर्वक एकादशाह तथा द्वादशाह श्राद्ध करना चाहिये। सर्पिण्डीकरणके पहले सोडश श्राद्ध सम्पन्न करे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें पद-दान दे। उसके बाद ताम्रपात्रमें कार्पास (सूती) वस्त्रपर भगवान् विष्णुकी मूर्तिको स्थापित करे और वस्त्रसे आच्छादित करके शुभ फलसे अर्घ्य समर्पित करे। तत्पश्चात् ईश्वरके पैदोंसे नीकाका निर्माण करके रेशमी सूत्रसे उसको लपेट दिया जाय। वैतरणीके निमित्त कांस्यपात्रमें धृत रखकर नीकारोहणकी क्रिया हो और भगवान् गरुडभ्वजकी पूजा करे। सामर्थ्यके अनुसार किया गया दान अनन्त फलोंको देनेवाला है। भगवान् जगद्गुरु इस संसार-सागरमें डूब रहे शोक-संतापसे दुःखित तथा धर्मरूपी नीकासे रहित जनोंके उद्धारक हैं।

हे तात्स्यं! तिल, लौह, सुवर्ण, कार्पास वस्त्र, लवण, सतभान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढ़कर पवित्र माने गये हैं। श्राद्धमें तिलसे परिपूर्ण पात्रोंका दान देकर शय्यादान देना चाहिये। दान-अन्नाद्य एवं विशिष्टजनोंको सामर्थ्यानुसार दक्षिणा भी प्रदान करे। पुत्रहीन अथवा पुत्रवान् जो भी इसे करता है, उसको वही सिद्धि प्राप्त होती है, जो एक ब्रह्मचारीको प्राप्त होती है। मनुष्य इस पृथ्वीपर जबतक जीवित रहता है, जबतक उसे नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। जो कोई जीवित-श्राद्ध करता है, तीर्थयात्रा, व्रत एवं सांवत्सरिक श्राद्धादि धर्मकार्य करता है, उसका अक्षय फल उसे प्राप्त होता है। देवता, गुरु और माता-पिताके निमित्त पुरुषको प्रयत्नपूर्वक दान करना चाहिये। वह दान प्रतिदिन अभिवृद्धिको प्राप्त होता है।

इस यज्ञमें जिसके द्वारा प्रचुर धन दानमें दिया जाता है, वह सब अक्षय होता है, जिस प्रकार इस संसारमें संन्यासी और ब्रह्मचारी अत्यधिक पूज्य हैं, उसी प्रकार वृषोत्सर्गादि कर्मोंको करनेवाले सभी पुण्यात्मा भी इस संसारमें पूजे जाते हैं। उन पुण्यात्माओंको मैं, चतुर्मुख ब्रह्मा और शिव सदैव धरदान देते हैं। वे सभी परम लोककी गति प्राप्त करते हैं। मेरा यह वचन सत्य है।

छोड़ा गया वृषभ जिस जलशय्यमें जलपान करता है अथवा सींगसे जिस भूमिको नित्य खोद-खोदकर प्रसन्न होता है, उससे पितरोंके लिये अन्न और पेय पदार्थ अत्यधिक मात्रामें उत्पन्न होता है।

पूर्णिमा अथवा अम्बावास्या तिथिमें तिलसे परिपूर्ण पात्रोंका दान देना चाहिये। हजार संक्रान्तियों और सैकड़ों सूर्यग्रहणके पवोंपर दान देकर जो पुण्य अर्जित होता है, वह मात्र नील वृषको छोड़कर ही मनुष्य प्राप्त कर सकता है\*। ब्राह्मणोंको बछिया, पद-दान तथा शिव-भक्तोंको तिलसे पूर्ण पात्रोंका दान देना चाहिये। उस समय उमा-महेश्वरको भी परिधानसे अलंकृत कर दान करना चाहिये। आत्मी (तोसी) पुण्यके

सदृश कान्तिवाले पीताम्बरधारी भगवान् अच्युतकी प्रतिमाको वस्त्राच्छादित कर प्रदान करना चाहिये। जो लोग भगवान् गोविन्दको नमन करते हैं, उनके लिये भय नहीं रहता है। प्रेतत्वसे मोक्ष चाहनेवाले जो प्राणी इस सत्कर्मको करेंगे, वे ब्रह्म लोकोको प्राप्त करेंगे। मेरा यह कथन सत्य ही है।

हे गरुड! मैंने तुमसे जो सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रिया कही है, इसे सुनकर मनुष्य अपने समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है।

इस प्रकारका अनुपम माहात्म्य सुनकर गरुड अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उन्होंने मनुष्योंके हितमें पुनः भगवान् केशवसे पूछा। (अध्याय १४)

**मरनेके समय तथा मृत्युके अनन्तर किये जानेवाले कर्म, पापात्माओंको रौद्ररूपमें तथा पुण्यात्माओंको सौम्यरूपमें यम-दर्शन, यमदूतोंद्वारा दी जानेवाली यातनाका स्वरूप, शवके निमित्त प्रदत्त छः पिण्डोंका प्रयोजन, शवदाहकी विधि, संक्षेपमें दशाहसे त्रयोदशाहतकके कृत्य, यममार्गमें पड़नेवाले सोलह पुर तथा प्रेतका विलाप**

गरुडने कहा—हे भगवन्! जीवात्माके प्रयाण-कालसे लेकर यमलोकके मार्गविस्तारतकका वर्णन एवं माहात्म्य मुझे सुनायें।

श्रीभगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य! मैं यथाक्रम यममार्गका और जीवात्माके गमनमार्गमें पड़नेवाले सोलह पुरोंका वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो।

हे गरुड! प्रमाणतः यमलोक और मृत्युलोकके मध्य छियासी हजार योजनकी दूरी है। हे खगेश! इस संसारमें पूर्वार्जित सुकृत और दुष्कृत कर्मोंका फल भोग कर अपने कर्मके अनुसार ही किसी व्याधिका जन्म होता है और अपने द्वारा किये गये कर्मोंके आधारपर निमित्तमात्र बनकर कोई व्याधि उत्पन्न होती है। जिसकी जिस निमित्तसे मृत्यु निश्चित है, वह निमित्त किये गये कर्मोंके अनुसार उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है।

जीवात्मा कर्मभोगके कारण जब अपने वर्तमान शरीरका परित्याग करता है, तब भूमिको गोबरसे लीपकर उसके ऊपर तिल और कुशासन बिछाकर उसीपर उसे लिटा दे। तदनन्तर उस प्राणीके मुखमें सुवर्ण डाले और उसके

समीप तुलसीका वृक्ष एवं शालग्रामकी शिलाको भी लाकर रखे। तत्पश्चात् यथाविधान विभिन्न सूक्तोंका पाठ करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु मुक्तिदायक होती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके शरीरगत विभिन्न स्थानोंमें सोनेकी शलाकाओंको रखनेका विधान है, जिसके अनुसार क्रमशः एक शलाका मुख, एक-एक शलाका नाकके दोनों छिद्र, दो-दो शलाकाएँ नेत्र और कान, एक शलाका लिङ्ग तथा एक शलाका उसके ब्रह्माण्डमें रखनी चाहिये। उसके दोनों हाथ एवं कण्ठभागमें तुलसी रखें। उसके शवकी दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके कुंकुम और अक्षतसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसको पुष्पोंकी मालासे विभूषित करके उसे बन्धु-बान्धवों तथा पुत्र, पुरवासियोंके साथ अन्य द्वारासे ले जाय। उस समय अपने बान्धवोंके साथ पुत्रको मरे हुए पिताके शवकी कन्धेपर रखकर स्वयं ले जाना चाहिये।

स्मरान देहमें पहुँचकर पुत्र, पुर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख वहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण कराये, जो पहलेसे जली न हो। उस चितामें चन्दन, तुलसी और पलाश

आदिकी लकड़ीका प्रयोग करना चाहिये।

जब मरणासन व्यक्तिकी इन्द्रियोंका समूह व्याकुल हो उठता है, चेतन शरीर जब जड़भूत हो जाता है, उस समय प्राण शरीरको छोड़कर यमराजके दूतोंके साथ चल देते हैं। उस समय मृतकको दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है, जिसके द्वारा वह समस्त संसारको देखता है। जब मृतकके प्राण कण्ठमें आकर अटक जाते हैं, उस कालमें उस आतुर व्यक्तिका रूप बड़ा बीभत्स और कठोर हो जाता है। कोई घरता हुआ प्राणी मुखसे फेन उगलता है, किसीका मुख लाला (लार)-से भर जाता है। उस समय जो प्राणी दुरात्मा होते हैं, उन्हें यमदूत अपने पाशबन्धनोंसे जकड़कर मारते हैं। जो सुकृती हैं, उनकी स्वर्गिके पार्यद अपने लोकको सुखपूर्वक ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गमें पापियोंको दुःख डेलते हुए जाना पड़ता है।

यमराज अपने लोकमें शङ्ख, चक्र तथा गदा आदिसे विभूषित षट्पुंज रूप धारण कर पुण्यकर्म करनेवाले साधु पुरुषोंके साथ निखल आचरण करते हैं। वे सभी पापियोंको सनिकट भुलाकर उन्हें अपने दण्डसे तर्जित देते हैं। वह यमराज प्रलयकालीन मेघके समान गर्जन करनेवाला है। अज्ञानगिरिके सद्गुरु उसका कृष्णवर्ण है। वह एक बहुत बड़े भैसेपर सवार रहता है। अत्यन्त साहस करके ही लोग उसकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। वह विदुषके तेजके समान विद्यमान है। उसके शरीरका विस्तार तीन योजन है। वह महाक्रोधी एवं अत्यन्त भयंकर है। भीमकाय दुराकृति यमराज अपने हाथमें लोहेका दण्ड और पाश धारण करता है। उसके मुख तथा नेत्रोंको देखनेसे ही पापियोंके मनमें भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोंको दिखायी पड़ता है, तब हाहाकार करता हुआ अंगुष्ठमात्रका मृत पुरुष अपने शरकी ओर देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राणीसे मुक्त शरीर चेष्टाहीन हो जाता है। उसको देखनेसे मनमें घृणा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरंत अस्पृश्य एवं दुर्गन्धयुक्त और सभी प्रकारसे निन्दित हो जाता है। यह शरीर अन्तमें कीट, विष्रस्य या राक्षसों परिवर्तित हो जाता है। हे ताक्ष्य! क्षणभरमें विध्वंस होनेवाले इस शरीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत् शरीरसे

होनेवाले वित्तका दान, आदरपूर्वक वाणी, कीर्ति, धर्म, आयु और परोपकार यही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदूत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए डाँटकर यह कहते हैं कि हे दुष्टात्मन्! तू शीघ्र चल। तुझे यमराजके घर जाना है। शीघ्र ही हम सब तुझे 'कुम्भीषाक' नामक नरकमें ले चलेंगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और बन्धु-बान्धवोंका रुदन सुनकर कैचे स्वरमें हा-हा करके विलाप करता हुआ वह मृतक यमदूतोंके द्वारा यमलोक पहुँचाया जाता है।

हे गरुड! एकादशाहके दिन उचित स्थानपर श्राद्ध करना चाहिये। प्राणोत्क्रमणसे लेकर क्रमशः छः पिण्डदान करने चाहिये। उन पिण्डोंका दान यथाक्रम मृतस्थान, द्वार, पत्थर (चीराहा), विश्राम-स्थल, काष्ठचयन (चिता) और अस्त्रचयनके स्थानपर करना चाहिये। हे पक्षिन्! इन छः पिण्डोंकी परिकल्पनाका कारण तुम सुनो।

हे ताक्ष्य! जिस स्थानमें मनुष्य मरता है, उस स्थानपर मृतकके नामसे 'शव' नामका पिण्ड दिया जाता है। उस पिण्डदानको देनेसे गृहके वास्तुदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और उससे भूमि तथा भूमिके अधिष्ठाता देवता प्रसन्न होते हैं। द्वारपर जो दूसरा पिण्डदान दिया जाता है, उसका नाम 'पान्थ' है। उसे देनेसे द्वारस्थ गृहदेवता प्रसन्न होते हैं। चीराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डदान होता है। इस पिण्डदानको देनेसे भूत आदि देवयोनियाँ बाधा नहीं करतीं। विश्राम-स्थलपर होनेवाला पिण्डदान 'भूत' संज्ञक है। इसको देनेसे पिताश्व, राक्षस और यक्ष आदि जो अन्य दिग्वासी योनियाँ हैं, वे जलसे जाने योग्य उस मृतक शरीरको अयोग्य नहीं बनातीं। हे खगेश्वर! चिता-स्थलपर पिण्डदान देनेसे प्रेतत्वकी उत्पत्ति होती है। एक मतमें चितापर दिये जानेवाले पिण्डदानका नाम साधक है और प्रेतकल्पके विद्वानोंने इस श्राद्धको प्रेतके नामसे अभिहित किया है। चितामें पिण्डदानके बाद ही 'प्रेत' नामसे पिण्डदान देना चाहिये। इस प्रकार इन पाँचों पिण्डोंसे शव आहुतिके योग्य होता है अन्यथा पूर्वोक्त उपघातक होते हैं।

प्राणोत्क्रमणके स्थानपर पहला पिण्डदान देना चाहिये। उसके बाद दूसरा पिण्डदान आधे मार्गमें और तीसरा चितापर देना चाहिये। पहले पिण्डमें विधाता, दूसरेमें



गरुडध्वज तथा तीसरेमें यमदूत—इस प्रकारका प्रयोग कहा गया है। तीसरा पिण्डदान देते ही मृत व्यक्ति शरीरके दोषोंसे मुक्त हो जाता है।

इसके बाद चिता प्रज्वलित करनेके लिये वेदिका निर्माण करके उसका उल्लेखन, उद्धरण और अभ्युक्षण आदि करके विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन करके पुष्प और अक्षतसे क्रव्याद नामके अग्निदेवकी पूजा करके यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं भूतकृजगद्योने त्वं लोकपरिपालकः॥

उपसंहारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं पथः।

(१५।४४-४५)

‘हे क्रव्याद अग्निदेव! आप महाभूततत्वोंसे बने हुए इस जगत्के कारण, पालनहार एवं संहारक हैं। अतः इस मृत व्यक्तिको आप स्वर्ग पहुँचायें।’

इस प्रकार क्रव्याद नामक अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके शवको जलानेका कार्य करें। मृतकका आधा शरीर जल जानेपर मृतकी आहुति देनी चाहिये। ‘लोमभ्यः स्वाहा०’ इस मन्त्रसे यथाविधि होम करना चाहिये। चितापर उस प्रेतको रखकर आज्याहुति देनी चाहिये। यम, अन्तक, मृत्यु, ब्रह्मा, जातवेदसूके नामसे आहुति देकर एक आहुति प्रेतके मुखपर दे। सबसे पहले अग्निको ऊपरकी ओर प्रज्वलित करें। तदनन्तर चिताके पूर्वभागको उसी अग्निसे जलाये। इस प्रकार चिताको जलाकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित तिलमिश्रित आज्याहुति पुनः प्रदान करें—

अस्मान् त्वमधिजातोऽसि स्वदयं जायतां पुनः।

असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलितपावकः॥

(१५।४६)

‘हे अग्निदेव! आप इससे उत्पन्न हुए हैं। पुनः आपसे यह उत्पन्न हुआ है। इस मृतककी स्वर्गकामनाके लिये आपके निमित्त यह स्वाहा है।’

इस प्रकार तिलमिश्रित समन्त्रक आज्याहुति देकर पुत्रको दाह करना चाहिये। उस समय उसे तेज रुदन करना चाहिये। ऐसा करनेसे मृतकको सुख प्राप्त होता है। दाह-संस्कारके पश्चात् यहीपर अस्थि-संचयन करना चाहिये। उसके बाद प्रेतके दाहजन्य क्लेशकी शान्तिके लिये

पिण्डदान दे।

दाह-संस्कारके पश्चात् मृत व्यक्तिके पुत्रोंको यस्त्रके सहित स्नान करना चाहिये। तदनन्तर नामगोत्रोच्चार करते हुए वे तिलाञ्जलि दें। उसके बाद गाँव या जनपदके सभी लोग ताली बजा-बजाकर विष्णु-नाम-संकीर्तन और मृतकके गुणोंकी खर्चा करें। सभी लोग उस मृत व्यक्तिके घर आकर द्वारके दक्षिण भागमें गोमय और श्वेत सरसोंको रखें। अपने मनमें वरुणदेवका ध्यान कर नीमकी पत्तियोंका भक्षण तथा घीका प्राशन करके वे सभी अपने-अपने घर जायें।

हे खगेधर! कुछ लोग चितास्थानको दूधसे सींचते हैं। मृतकको जलाञ्जलि देते हुए अशुपात नहीं करना चाहिये। बन्धु-बान्धवोंके जो उस समय रोते हुए मुँहसे कफ और नेत्रोंसे आँसू गिराया जाता है, उसको ही वह प्रेत शिवश होकर खाता है। अतः उन सभीको उस समय रोना नहीं चाहिये, अपनी शक्तिके अनुसार क्रिया करनी चाहिये।

हे ऋध्वं! सूर्यके अस्त हो जानेके बाद घरके बाहर अथवा कहीं एकान्तमें चौगहेपर दाह-क्रियाके दिनसे लेकर तीन दिनतक मिट्टीके पात्रमें दूध और जल देना चाहिये; क्योंकि मरनेके बाद जो मूढ़-हृदय जीवात्मा है, वह पुनः उस शरीरको प्राप्त करनेकी इच्छासे यमदूतोंके पीछे-पीछे स्मरान, वीरहा तथा घराका दर्शन करता हुआ यमलोकको जाता है। प्रतिदिन दशाहतक प्रेतके लिये पिण्डदान और जलाञ्जलि देनी चाहिये। जघातक दशाह-संस्कार न हो जाय, तबतक एक जलाञ्जलि प्रतिदिन अधिक बढ़ाना अनिवार्य है। यह और्ध्वदैहिक संस्कार पुत्रके द्वारा अपेक्षित है। उसके अभावमें पत्नीको करना चाहिये। पत्नीके न होनेपर शिष्य, उसके न होनेपर सहोदर भाई कर सकता है। स्मरान अथवा अन्य किसी तीर्थमें मृतकके लिये जल और पिण्डदान देना चाहिये। पहले दिन शाक-मूल और फल, भत या सत्तू आदियेंसे जिस-किसीद्वारा पिण्डदान दिया जाय, उसीके द्वारा बादके दिनोंमें भी पिण्डदान देना चाहिये।

हे खगेत! दस दिनोंतक प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रगण पिण्डदान देते हैं। दिये गये पिण्डका प्रतिदिन चार भाग हो जाता है, उसके दो भागसे मृतकका शरीर बनता है, तीसरा भाग यमदूत से लेते हैं और चौथा भाग मृतकको खानेके लिये मिलता है। नौ दिन रातमें प्रेत पुनः शरीरयुक्त हो जाता

है। शरीर बन जानेपर दसवें पिण्डसे प्राणीको अत्यधिक भूख लगती है।

दस दिनके पिण्डमें विधि, मन्त्र, स्वधा, आवाहन और आशीर्वादका प्रयोग नहीं होता है, केवल नाम तथा गोत्रोच्चारपूर्वक पिण्डदान दिया जाता है। हे पशुन्! मृतकका दाह-संस्कार हो जानेके पश्चात् पुनः शरीर उत्पन्न होता है। पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, उससे मूर्धा, दूसरे दिनके पिण्डदानसे शीर्षा और दोनों स्कन्ध, तीसरे दिनके पिण्डदानसे हृदय, चौथे दिनके पिण्डदानसे पृष्ठ, पाँचवें दिनके पिण्डदानसे नाभि, छठे दिनके पिण्डदानसे कटिप्रदेश, सातवें दिनके पिण्डदानसे गुह्यभाग, आठवें दिनके पिण्डदानसे ऊरु, नौवें दिनके पिण्डदानसे तालु-पैर और दसवें दिनके पिण्डदानसे क्षुधाकी उत्पत्ति होती है। जीवात्मा शरीर प्राप्त करनेके पश्चात् भूखसे पीड़ित हो करके घरके दरवाजेपर रहता है। दसवें दिन जो पिण्डदान होता है, उसको मृतकके प्रिय भोज्य-पदार्थसे बना करके देना चाहिये, क्योंकि शरीर-निर्माण हो जानेपर मृतकको अत्यधिक भूख लग जाती है, प्रिय भोज्य-पदार्थके अतिरिक्त अन्य किसी अन्नादिक पदार्थोंसे बने हुए पिण्डका दान देनेसे उसकी भूख दूर नहीं होती है।

एकादशाह और द्वादशाहके दिन प्रेत भोजन करता है। मरे हुए स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये प्रेत शब्दका उच्चारण करना चाहिये। उन दिनों दीप, अन्न, जल, वस्त्र जो कुछ भी दिया जाता है, उसको प्रेत शब्दके द्वारा देना चाहिये, क्योंकि वह मृतकके लिये आनन्ददायक होता है<sup>१</sup>।

त्रयोदशाहको पिण्डज शरीर धारण करके भूख-प्याससे पीड़ित वह प्रेत यमदूतोंके द्वारा महापथपर लाया जाता है। जो प्रेत पापी होते हैं, उनका मार्ग शीत, तप, शंकुके आकारका चुभनेवाला, मॉस खानेवाले जन्तु तथा अग्निसे परिव्याप्त रहता है। जो सुकृती हैं उनका मार्ग सब प्रकारसे सौम्य है, उनको उस मार्गमें कोई कष्ट नहीं होता

है। असिपञ्चनसे व्याप्त उस मार्गमें इतने दुःख हैं कि क्षुधा-प्याससे पीड़ित उस प्रेतको नित्य यमदूत अत्यधिक संत्रास देते हैं। प्रतिदिन वह प्रेत दो सौ सैतालिस योजन चलता है। यमदूतोंके पाशसे बँधा, हा-हा करके विलाप करता हुआ वह प्रेत अपने घरको छोड़कर दिन और रात चलकर यमलोक पहुँचता है। उस महापथमें पड़नेवाले प्रसिद्ध पुरोंके सुधाशुभ भोग प्राप्त करते हुए वह यमलोकको जाता है। इस मार्गमें क्रमशः—याम्यपुर, सौरपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वनगर, सैतागम, जौहपुर, कूरपुर, विचित्रभवन, बह्मपद, दुःखद, नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्रनगर, पयोवर्षण, सौताम्य और बहुधर्म-भीतिभवन नामक प्रसिद्ध पुर हैं।

त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवेंके दिन यमदूत प्रेतको उस मार्गपर उसी प्रकारसे पकड़कर ले जाते हैं, जिस प्रकार मनुष्य बंदरको पकड़कर ले जाता है। उस प्रकारसे बँधा हुआ वह प्रेत चलते हुए नित्य 'हा पुत्र, हा पुत्र'का करुण विलाप करता है। वह कहता है कि मैंने किस प्रकारका कर्म किया है जो ऐसा कष्ट में भोग रहा हूँ। वह यह भी कहते हुए चलता है कि यह मनुष्य-योनि कैसे प्राप्त होती है। मैंने इसको ज्यर्धमें गैरा दिया है। प्राणी इस मनुष्य-योनिको बहुत बड़े पुण्यसे प्राप्त करता है। उसको पाकर मैंने पापकोंको स्थाजित धन दानमें नहीं दिया। आज वह भी पराधीन हो गया है। ऐसा कहकर वह गद्गद हो उठता है<sup>२</sup>। जब यमदूत उसको अत्यधिक पीड़ित करते हैं तो वह बार-बार अपने पूर्व-शरीरजन्य कर्मोंका स्मरण करता हुआ इस प्रकार कहता है—

सुख-दुःखका दाता कोई दूसरा नहीं है। जो लोग सुख-दुःखका दाता दूसरोंको समझते हैं, वे कुबुद्धि ही हैं। जीवात्मा सदैव पहले किये गये कर्मका भोग करता है। हे देही! तुमने जो कुछ किया है, उसमें निस्तार करो<sup>३</sup>। मैंने न दान दिया है, न अग्निमें आहुति डाली है, न हिमालय पर्वतको गुफामें जाकर तपस्या ही की है और न तो गङ्गाके

१-पार्वणादि ब्राह्मणोंमें निर्दिष्ट पिण्डदानविधि।

२-दोषमन्नं जलं वस्त्रं यत्किंचिद्विदुस्तु टीकते। प्रेतहृदयेन तद्वर्धं मृतम्यानन्ददायकम्॥ (१५।७५)

३-मनुष्यं संप्रत्ये कस्मादिति ह्ये प्रमथति। महता पुण्ययोगेन मनुष्यं जन्म संप्रत्ये॥

न तत् प्राप्य प्रदत्तं हि यावत्केभ्यः स्वकं धनम्। पराधीनं तदभ्यर्चयति ह्ये (टीक) सहायः॥ (१५।८६-८७)

४-सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता एते ददतीति कुबुद्धिरेव।

पुरा कृतं कर्म सदैव पुण्यते देहिन् अविनिस्तार यत् त्वया कृतम्॥ (१५।८९)

परम पवित्र जलका ही सेवन किया है। हे जीव! तुमने जो कुछ भी किया है, उसीका फल भोग करो। हे देही! पहले तुमने नित्य न दान दिया है, न गोदान किया है, न आह्निक कृत्य किया है, न तो वेदका दान किया, न शास्त्रको देखा और न शास्त्रबोधित मार्गका सेवन किया, इसलिए हे जीव! जैसा तुमने किया है, अब उसीमें अपना निस्तार करो। हे देही! तुमने जलरहित देशमें मनुष्य और पशु-पक्षियोंके लिये जलाशयका निर्माण नहीं करवाया है, न गायोंकी शुधा-शान्तिके लिये गोधर-भूमि ही छोड़ी है। हे देही! जो कुछ किया है, अब उसका फल भोग करो।<sup>१</sup>

हे पक्षिन्! पुरुष प्रेतके द्वारा कहे गये उक्त वचनोंको

### यममार्गके सोलह पुरोंका वर्णन

श्रीभगवान्ने कहा—हे खगेश! इस प्रकार करुण-जानन्दन और विलाप करते हुए अत्यधिक दुःखित प्रेतको सत्रह दिनतक अकेले वायुमार्गमें ही यमदूतोंके द्वारा निर्दयतापूर्वक खींचा जाता है। अट्टारहवीं दिन-रात पूर्ण होनेपर पहले वह 'याम्यपुर' पहुँचता है। उस रमणीक नगरमें प्रेतोंके महान् गण रहते हैं। वहाँ पुष्पभद्रा नदी तथा देखनेमें सुन्दर लगनेवाला एक वटवृक्ष है। यमदूत वहाँ पहुँचकर उस प्रेतको विश्राम करनेका समय देते हैं। वहाँ प्रेत दुःखित होकर अपनी स्त्री और पुत्रादि सगे-सम्बन्धीयोंसे प्राप्त होनेवाले सुखका स्मरण करता है। मार्गमें पड़नेवाले परिश्रमसे थका एवं भूख-प्याससे व्याकुल वह प्रेत वहाँ करुण विलाप करता है। उस समय वह धन, स्त्री, पुत्र, घर, सुख, नौकर और मित्रके विषयमें तथा अन्य सभीके विषयमें सोचता है। उस नगरमें भूख-प्याससे पीड़ित उस प्रेतको देखकर यमदूत कहते हैं।

यमदूतोंने कहा—'हे प्रेत! कहीं धन है, कहीं पुत्र है, कहीं स्त्री है, कहीं घर है और कहीं तू इस प्रकारका दुःख झेल रहा है। चिरकालतक अब तू अपने कर्मोंमें अंकित पापोंका भोग कर और इस महापथपर चल। हे परलोकके पथिक! तुम जानते हो कि राहगीरोंका बल पायेयके वशमें

मैंने सुनाया। अब स्त्रीका शरीर लेकर देही पूर्व किये हुए कर्मोंके सम्बन्धमें जैसा कहता है, उसे सावधान होकर सुनो—'हे देहिन्! मैंने पतिके साथ रहकर उन्हें सुख नहीं दिया है। उनके मरनेपर मैं उनके साथ चितामें भी नहीं प्रविष्ट हुई हूँ और न तो उनके मर जानेपर उस वैधव्य-व्रतका ही पालन किया है, अतएव जो कुछ नहीं किया है उसका फलभोग मैं कर रही हूँ। मैंने मासोपवास अथवा चान्द्रायणव्रतके नियमोंसे इस शरीरका शोधन भी नहीं किया है। हे जीव! स्त्रीका शरीर बहुत-से दुःखोंका पात्र है, पहले किये गये बुरे कर्मोंके अनुसार मैंने इसे प्राप्त किया और इसे भी व्यर्थ ही गँवा दिया। (अध्याय १५)

है। निश्चित ही तुझे उस मार्गसे चलना होगा, जहाँ कुछ क्रय-विक्रय करना भी सम्भव नहीं है।'

हे पश्चिमाज! यमदूतोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेके बाद वह यमदूतोंके द्वारा मुद्गरोंसे मारा जाता है। तत्पश्चात् स्नेहवश अथवा कृपा करके भूलोकमें पुनर्कि हाथोंसे दिये गये मासिक पिण्डको वह खाता है। उसके बाद वहाँसे वह 'सौरपुर' के लिये चल देता है। उस नगरमें कालरूपधारी जंगम नामका राजा है। उसको देखकर प्रेत भयभीत हो उठता है और विश्राम करना चाहता है। त्रैपाक्षिक ब्राह्मण दिये गये अन्न और जलका वह उसी नगरमें उपभोग करके दिन और रात चलकर सुन्दर बसे हुए 'नगन्द्राधवन' नामक नगरको ओर जाता है। उस महापथपर चलते हुए महाभयंकर वन देखकर वह करुण विलाप करता है। वहाँके कहींसे दुःखित होकर वह बार-बार रोता है। दो मास भित्तानेके पश्चात् वह उस नगरमें पहुँचता है। यहाँ वह अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दिये गये अन्न और जलको खाता-पीता है। उसके बाद यमदूत पार्श्वमें बाँधकर उसे दुःख देते हुए पुनः आगेकी ओर ले जाते हैं। तीसरे मासमें वह 'गन्धर्वनगर' पहुँच जाता है। तीसरे मासमें दिये गये ब्राह्मण-पिण्डका यहाँ भक्षण करके चौथे मासमें वह 'शीलागम'

१-यया न दत्तं न हुतं हुताग्ने तपो न तर्पं क्षिप्रसीमहो । न मेधितं गंगमहो महाजलं देहिन् क्वचिन्निस्तार यत् त्वया कृतम् ।  
न नित्यदानं न गवाहिकं कृतं न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम् । पुत्रं न दूतं न च सेवितोऽप्या देहिन् क्वचिन्निस्तार यत् त्वया कृतम् ।  
जलाशयो वैव कृतो हि निजले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिवेकः । जेदन्तिहेतोर्यं कृतं हि गोचरं देहिन् क्वचिन्निस्तार यत् त्वया कृतम् ।

नामक नगर पहुँचता है। यहाँ प्रेतके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा होती है। वहाँ वह चौथे मासमें दिये गये श्राद्ध-पिण्डकी खाकर संतुष्ट होता है। इसके बाद प्रेत पाँचवें मासमें 'क्रीडपुर' जाता है। उस पुरमें पुत्रोंके द्वारा दिये गये पाँचवें मासके श्राद्धके पिण्डको खाता है। तदनन्तर छठे मासमें प्रेत 'कूरपुर' नामक नगरकी यात्रा करता है। उस पुरमें छठे मासमें पुत्रोंद्वारा दिये गये श्राद्ध-पिण्डकी खाकर उसकी संतुष्टि होती है; किंतु आधे मुहूर्तभर विश्राम करनेके बाद उसका हृदय पुनः दुःखसे कौपने लगता है। यमदूतोंसे तर्जित होकर वह प्रेत उस पुरकी लौधकर 'विचित्रभवन'की ओर प्रस्थान करता है जहाँका राजा विचित्र है। यमराजका छोटा भाई सीरि ही वहाँके राज्यपर शासन करता है।

हे पक्षिराज! पाँच मास और पंद्रह दिनपर ऊनवाष्पासिक श्राद्ध होता है। अतः यमदूतोंके द्वारा संव्रस्त वह प्रेत उसी 'विचित्रभवन'में ऊनवाष्पासिक श्राद्ध-पिण्डका उपभोग करता है। मार्गमें बार-बार उसकी भूख पीड़ा पहुँचाती है। अतः यमदूतोंके द्वारा रोके जानेपर भी वह उस मार्गमें विलाप करता है कि क्या कोई पुत्र या बान्धव है? जो मेरे मरनेपर शोक-सागरमें गिरती हुए मुझे सुखी नहीं कर रहा है? इसी समय वहाँपर उसके सामने हजारों मल्लाह आते हैं और कहते हैं कि 'सौ योजन विस्तृत मवाद और रक्तसे पूर्ण नाना प्रकारकी मछलियोंसे व्याप्त, नाना पक्षिणोंसे आवृत महावैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छा करनेवाले तुम्हें हम लोग सुखपूर्वक तारेंगे। किंतु हे पक्षिक! यदि उस मर्त्यलोकमें तुम्हारे द्वारा गोदान दिया गया है तो उस नावसे तुम पार जाओ।' मनुष्योंका अन्त समय होनेपर वैतरणी-गोदान ही हितकारी होता है। अतः शरीर स्वस्थ रहनेपर वैतरणी-व्रत करना चाहिये और वैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छासे विद्वान् ब्राह्मणको गोदान करना चाहिये। वह पापीके समस्त पापोंको विनष्ट करके उसे विष्णुलोक ले जाता है। जिसने वैतरणी-दान नहीं किया है, वह प्रेत उसी नदीमें जाकर डूबने लगता है। डूबते हुए स्वयं अपनी निन्दा करता हुआ कहता है कि 'मैंने पापेय-हेतु ब्राह्मणकी कुछ भी दान नहीं दिया है। न मैंने दान किया है, न तो मैंने अग्निमें आहुति दी है, न भगवन्नामका वप ही किया है, न तीर्थमें जाकर स्नान ही किया है और न भगवान्की

स्तुति ही की है। हे मूर्ख! जैसा कर्म तुमने किया है, अब वैसा ही भोग कर।' ऐसा कहनेके बाद यमदूतोंसे हृदयमें मारा जाता हुआ वह प्रेत उसी समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और वैतरणीके दूसरे तटपर दिये गये चाण्मासिक श्राद्धके घटादिक दान एवं पिण्डका भोजन करके आगेकी ओर बढ़ता है। अतः हे तार्क्ष्य! चाण्मासिक श्राद्धपर सत्पात्र ब्राह्मणको विशेषरूपसे भोजन कराना चाहिये।

हे गरुड! इसके बाद वह प्रेत एक दिन-रातमें दो सौ सैतालीस योजनकी गतिसे चलता है। सातवीं मास आनेपर वह 'बद्धापद' नामक पुरमें पहुँचता है। सप्तम मासिक श्राद्धमें जो कुछ दान दिया गया है, उसको खाकर आठवें मासकी समाप्तिपर उसकी यात्रा 'दुःखदपुर' तथा 'नाताक्रन्दनपुर'की ओर होती है। अत्यन्त दारुण क्रन्दन करते हुए नाताक्रन्दनगणोंकी देखकर वह प्रेत स्वयं शून्यहृदय एवं दुःखित होकर बहुत जोर-जोरसे रोने लगता है। वहाँ आठवें मासके श्राद्धकी खाकर वह सुखी होता है। नगरकी छोड़कर वह 'ततपुर' चला जाता है। 'सुताभवन'में पहुँचकर प्रेत नवें मासके श्राद्धमें पुत्रके द्वारा किये गये पिण्डदान एवं कराये गये ब्राह्मण-भोजनको खाता है। दसवें मासमें वह 'रीदनगर' जाता है। वहाँ वह दसवें मासके श्राद्धका भोजन करके आगे स्थित 'पयोवर्षण' नामक पुरके लिये चल देता है। वहाँ पहुँचकर वह ग्यारहवें मासके श्राद्धका भोजन करता है। वहाँ मेघोंकी ऐसी जलवर्षा होती है, जिससे प्रेतको बहुत ही कष्ट होता है। तदनन्तर आगेकी ओर बढ़ता हुआ वह प्रेत अत्यन्त कड़कती हुई धूप और प्याससे व्यथित हो उठता है। बारहवें मासमें पुत्रने श्राद्धमें जो कुछ दान दिया है, उसका ही वह दुःखित प्रेत वहाँपर भोग करता है। इसके बाद वर्ष-समाप्तिके कुछ दिन शेष रहनेपर अथवा ग्यारह मास पंद्रह दिन बीत जानेपर वह 'शीताढ्यपुर' जाता है, जहाँ प्राणियोंकी अत्यन्त कष्ट देनेवाली ठंडक पड़ती है। वहाँकी ठंडीसे व्यथित, भूखसे व्याकुल वह प्रेत इस आशापरी दृष्टिसे दसों दिशाओंको देखने लगता है कि 'क्या मेरा कोई बन्धु-बान्धव है जो मेरे इस दुःखको दूर कर दे?' उस समय यमदूत उस प्रेतसे यह कहते हैं कि 'तेरा पुण्य कैसा कहीं है, जो इस कष्टमें सहायता कर सके।' उनके उस वचनकी सुनकर वह प्रेत 'हाय देव!' ऐसा कहता



है। निश्चित ही पूर्वजन्ममें किया गया पुण्य दैव है। उसको 'मैंने संचित नहीं किया है', ऐसा मन-ही-मन अनेक प्रकारसे विचार करके वह प्रेत पुनः धैर्यका सहारा लेता है।

इसके बाद वहाँसे चौवालीस योजन परिधेयमें फैला हुआ गन्धर्व और अप्सराओंसे परिब्याप्त अत्यन्त मनोरम 'बहुधर्मभीतिपुर' पड़ता है, जहाँ चौरासी लाख मूर्त एवं अमूर्त प्राणी निवास करते हैं। इस पुरमें तेरह प्रतीहार हैं। जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं और श्रवण कहलाते हैं। वे प्राणियोंके शुभाशुभकर्मका बार-बार विचार करके उसका वर्णन करते हैं। मनुष्य जो कहते और करते हैं, उन सभी

बातोंको ये ही ब्रह्माजीके पुत्र श्रवणदेव चित्रगुप्त तथा यमराजसे बताते हैं। वे दूरसे ही सब कुछ सुनने और देखनेमें समर्थ हैं। इस प्रकारकी चेष्टावाले एवं स्वर्गलोक और भूलोक तथा पातालमें संचरण करनेवाले वे श्रवण आत हैं। उनकी समान उनकी पृथक्-पृथक् श्रवणों नामक तट पहिचों हैं। उनकी भी शक्ति वैसी ही है, जैसी उनके पतिव्योंकी है। वे मर्त्यलोकके अधिकारोंके रूपमें हैं। इत, दान, स्तुतिसे जो उनकी पूजा करता है, उसके लिये वे सौम्य और सुखद मृत्यु देनेवाले हो जाते हैं।

(अध्याय १६)

## समस्त शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी ब्रह्माके पुत्र श्रवणदेवोंका स्वरूप

श्रीगुरुदेवने कहा—हे देव! यह एक संदेह मेरे हृदयको बाधित कर रहा है कि श्रवण किसके पुत्र हैं, यमलोकमें वे किस प्रकारसे रहते हैं? हे प्रभो! किस शक्तिके प्रभावसे वे मानव-कर्मको जान लेते हैं? वे कैसे किसी बातको सुन लेते हैं? उनको यह ज्ञान किससे प्राप्त हुआ है? हे देवेश्वर! उन्हें भोजन कहाँसे प्राप्त होता है? आप प्रसन्न होकर मेरे इस समस्त संदेहको नष्ट करें। पक्षिराज गरुडके इस कथनको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—

श्रीकृष्णने कहा—हे तक्षक! सभी प्राणियोंको सुख देनेवाले मेरे इस वचनको तुम सुनो। श्रवणसे सम्बन्धित उन समस्त बातोंको तुम्हें मैं बताऊँगा। प्राचीनकालमें जब समस्त स्रष्टावर-जंगमात्मक सृष्टि एकाकार हो गयी थी और मैं समस्त सृष्टिको आत्मलीन करके क्षीरसागरमें सो रहा था। उस समय मेरे नाभिकमलपर स्थित ब्रह्माने बहुत वर्षोंतक तपस्या की। उन्होंने एकाकार उस सृष्टिको चार प्रकारके प्राणियोंमें विभक्त किया। तदनन्तर ब्रह्मासे ही बनी सृष्टिके पालनका भार विष्णुने स्वीकार किया। तत्पश्चात् ब्रह्माके द्वारा संहारमूर्ति रुद्रका निर्माण हुआ। उसके बाद समस्त बराबर जगत्में प्रवाहित होनेवाले वायु, अत्यन्त तेजस्वी सूर्य तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराजकी सृष्टि हुई।

इन सभीकी रचना करके ब्रह्मा पुनः तपस्यामें निगमन हो गये। विष्णुके नाभिपद्मजमें तपस्या करते हुए उनको बहुत वर्ष बीत गये। वहाँपर लोकसृष्टिमें लगे हुए ब्रह्माने कहा कि जिन लोगोंकी उत्पत्ति पहले हुई है, उन सभीको

अपनी योग्यताके अनुसार कर्ममें लग जाना चाहिये। अतः रुद्र, विष्णु तथा धर्म पृथ्वीके शासन-कार्यमें लग गये, किन्तु उन लोगोंने कहा कि हम सभी लोगोंको लोक-व्यवहारका कुछ भी ज्ञान नहीं है। इस सम्बन्धमें आप ही कुछ बतायें। इस विषयमें धिन्धित होकर सभी देवताओंने उस समय परस्पर विचार-विमर्श किया। तत्पश्चात् देवताओंने हाथमें पत्र-पुष्प लेकर ब्रह्म-मन्त्रका ध्यान किया। उसके बाद देवताओंकी प्रेरणासे ब्रह्माने अत्यन्त तेजस्वी एवं बड़े-बड़े नेत्रोंवाले तथा अत्यन्त तेजस्वी जारह पुत्रोंको जन्म दिया। इस संसारमें जो कोई जैसा भी शुभ या अशुभ बोलता है, उसे वे अत्यन्त शीघ्र ब्रह्माके कानोंतक पहुँचाते हैं। हे पशुन्! दूरसे ही सुनने एवं दूरसे ही देख लेनेका विशेष ज्ञान उन्हें प्राप्त है। चूँकि वे सब कुछ सुन लेते हैं, उसीके कारण उन्हें 'श्रवण' कहा गया है। वे आकाशमें रहकर प्राणियोंकी जो भी चेष्टा होती है, उसको जानकर धर्मराजके सामने मृत्युकालके अवसरपर कहते हैं। उनके द्वारा प्राणियोंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंकी विवेचना उस समय धर्मराजसे की जाती है। हे वनतेय! संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार मार्ग हैं। जो उत्तम प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गसे चलते हैं। जो अर्थ अर्थात् धन-धान्यका दान करनेवाले प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जो प्राणी अभिलषित याचककी इच्छाको संतुष्ट करनेवाले हैं, वे अधोपर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणी मोक्षको आकाङ्क्षा रखते हैं, वे हंसयुक्त विमानसे परलोकको जाते हैं। इनके अतिरिक्त प्राणी जो

धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयसे हीन है, वह पैदल ही काँटों तथा पत्थरोंके बीचसे कष्ट झेलता हुआ 'असिपत्रवन' में जाता है।

हे पक्षिराज! इस मनुष्यलोकमें जो कोई भी पक्वान्, वर्धनी और जलपात्रके द्वारा मेरे सहित इन श्रवण देवोंकी पूजा करता है, उसको मैं वह प्रदान करता हूँ, जिसकी प्राप्ति देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। भक्तिपूर्वक शुभ एवं पवित्र ग्यारह ब्राह्मण तथा बारहवें सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराकर मेरी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। ऐस

मनुष्य सभी देवताओंसे पूजित होकर सुख प्राप्त करता है। उनको पूजासे मैं और चित्रगुप्तके सहित धर्मराज प्रसन्न होते हैं। उन्हींकी संतुष्टिसे धर्मपरायण लोग मेरे विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं।

हे खगेधर! जो प्राणी इन श्रवण देवोंके माहात्म्य, उत्पत्ति और शुभ चेष्टाओंको सुनता है, वह पापसे संतप्त नहीं होता है। वह इस लोकमें सुख भोगकर स्वर्गमें महात्त्वपूर्व स्थान प्राप्त करता है। (अध्याय १७)

## विविध दानादि कर्मोंका फल प्रेतको प्राप्त होना, पददानका माहात्म्य, जीवको अवान्तर-देहकी प्राप्ति का क्रम

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिन्! इन श्रवण देवोंके वचनोंकी सुनकर चित्रगुप्त पुनः धनभर स्वयं ध्यान करके मनुष्य जो कुछ भी दिन-रात पाप-पुण्य करते हैं, उन्हें धर्मराजसे निवेदन करते हैं।

हे ताक्ष्य! मनुष्य वाणी, शरीर और मनसे जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, उन सबका वह भोग करता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रेतमार्गका निर्णय सुना दिया। मृत्युके पश्चात् प्रेत कहाँ रुकते हैं, उन सभी स्थानोंका भी वर्णन तुमसे कर दिया। जो मनुष्य यह सब समझकर अन्नदान तथा दीपदान करता है, वह उस महामार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है।

जो दीपदान करते हैं, वे कुतोंसे परिव्याप्त लक्ष्यहीन मार्गमें पूर्ण प्रकाशके साथ गमन करते हैं। कार्तिकमासमें

कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिकी रात्रिमें किया गया दीपदान प्राणियोंके लिये सुखकारी होता है।

अब मैं संक्षेपमें तुम्हें प्राणियोंके यम-मार्गके निस्तारका उपाय बताऊँगा।

हे गरुड! धृषीत्सर्गके पुण्यसे मनुष्य पितृलोकको जाता है, एकादशहमें पिण्डदानसे देहशुद्धि होती है। जलसे परिपूर्ण घड़ेका दान करनेसे यमदूत संतुष्ट होते हैं। उस दिन शय्यादान करनेसे मनुष्य विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकको जाता है। विशेषतः द्वादशहके दिन सभी प्रकारका दान देना चाहिये और तेरह पददानके लिये विहित श्रेष्ठ वस्तुओंको द्वादशहके दिन अथवा जो जोषित रहते हुए अपने कल्याणके निमित्त दान देता है, वह उसीके सहारे महामार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है।

हे खगराज! उस यममार्गमें सर्वत्र एक-जैसा ही व्यवहार होता है। उत्तम, मध्यम और अधमरूपमें किसी भी प्रकारका वर्गीकरण वहाँ वर्जित है। जिसका भाग्य जैसा होता है, उसको उस मार्गमें वैसा ही भोग प्राप्त होता है। प्राणी स्वयं अपने लिये स्वस्थचित्तसे श्रद्धापूर्वक जो कुछ दान देता है, उसको वहाँपर प्राप्त करता है। मरनेपर जो बन्धु-बान्धवोंके द्वारा उसके लिये दिया जाता है, उसका आश्रय ले करके वह सुखी होता है।

गरुडने कहा—हे देवेश! तेरह पददान किसलिये करना चाहिये? यह दान किसे देना चाहिये? यह सब यथोचित रूपसे मुझे बतायें।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पक्षिराज! छत्र, पादुका, वस्त्र,



मुद्रिका, कमण्डलु, आसन और भोजनपात्र—ये सात प्रकारके पद माने गये हैं। पूर्ववर्णित महापथमें जो महाभयंकर 'रीद्र' नामक आतप (धूप) है, उसके द्वारा मनुष्य जलता है। छत्रका दान देनेसे प्रेतको तृप्ति देनेवाली शीतल छाया प्राप्त होती है। पादुका दान देनेसे मृतप्राणी अश्वारूढ़ होकर घोर असिपत्रवनको निश्चित ही पार कर जाते हैं। मृतप्राणीके उद्देश्यसे ब्राह्मणको आसन और भोजन देकर स्वागत करनेपर प्रेत महापथमें धीरे-धीरे चलता हुआ उस दान दिये गये अन्नको सुखपूर्वक ग्रहण करता है। कमण्डलुका दान देनेसे प्राणी उस यमलोकके महापथमें फैले हुए बहुत धूपवाले, वयुरहित और जलहीन मार्गमें निश्चित ही यथेच्छ जल एवं वायु प्राप्तकर सुखपूर्वक गमन करता है। मृतकके उद्देश्यसे जो व्यक्ति जलपूर्ण कमण्डलुका दान करता है, उसको निश्चित ही हजार पीसलोंके दानका फल प्राप्त होता है।

उदारतापूर्वक वस्त्रका दान देनेसे प्रेतात्माको महाक्रोधी काले और पीले वर्णवाले अल्पन्त भयंकर यमदूत कष्ट नहीं देते हैं। मुद्रिका दान देनेसे उस महापथमें अस्र-शस्त्रसे युक्त दीड़ते हुए यमदूत दिखायी नहीं देते हैं। पात्र, आसन, कच्चा अन्न, भोजन, मृत तथा यज्ञोपवीतके दानसे पददानकी पूर्णता होती है। यममार्गमें जाता हुआ भूख-प्याससे व्याकुल एवं थका हुआ प्रेत भैंसके दूधका दान करनेसे निश्चित ही सुखका अनुभव करता है।

गरुडने कहा—हे विभो! मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान अपने घरमें किया जाता है, वह प्रेततक किसके द्वारा पहुँचाया जाता है?

श्रीभगवान्ने कहा—हे पशुन्! सर्वप्रथम वरुण दानको ग्रहण करते हैं, उसके बाद वे उस दानको मीर हाथमें दे देते हैं। मैं सूर्यदेवके हाथोंमें सौंप देता हूँ और सूर्यदेवसे वह प्रेत उस दानको लेकर सुखका अनुभव करता है।

बुरे कर्मके प्रभावसे वंशका विनाश हो जाता है और उस कुलके सभी प्राणियोंको नरकमें तबतक रहना पड़ता है, जबतक पापका क्षय नहीं हो जाता है।

इन नरकोंकी संख्या बहुत है। पर इनमेंसे इक्कीस नरक मुख्यरूपसे उल्लेख्य हैं—तामिस, सौहसंकु, महारीरव, शाल्मली, रीरव, कुड्वल, कालसूत्र, भूतिमृत्तिका, संघात,

लोहतोद, सविध, सम्प्रतापन, महानरक, कालोल, सजीवन, महापथ, अवीचि, अन्धतामिस्र, कुम्भीपाक, असिपत्रवन और पतन नामवाले हैं। घोर यातना भोगते हुए जिनके बहुत-से वर्ष बीत जाते हैं और यदि संतति नहीं है तो वे यमके दूत बन जाते हैं। यमके द्वारा भेजे गये वे दूत मरे हुए मनुष्यों लिये प्रतिदिन बन्धु-बान्धवोंसे दानस्वरूप प्राप्त अन्न और जलपत्र सेवन करते हैं। मार्गके मध्यमें जब वे भूख-प्याससे व्याकुल हो जाते हैं तो मरे हुए प्राणीका हिस्सा ही लूटकर खा-पी जाते हैं। मांसके अन्तमें जो भोजन और पिण्डदान देते हैं, जब उसको प्राप्ति उन्हें हो जाती है तो वे सभी उसको खाकर संतुष्ट हो जाते हैं। इसीसे उन्हें प्रतिदिन सर्वभर तृप्ति मिलती है।

इस प्रकार किये गये पुण्यके प्रभावसे प्रेत 'सौरिपुर' की यात्रा करता है। तदनन्तर एक वर्ष बीतनेपर वह प्रेत, यमराजके भवनके संनिकट स्थित 'बहुभौतिकर' नामक नगरमें पहुँचकर दशाग्रके पिण्डसे निर्मित हस्तमात्र परिमाणके शरीरको छोड़ देता है। जिस प्रकार हमको देखकर परदुष्टमका तेज उनके शरीरसे निकलकर हममें प्रविष्ट हो गया था, उसी प्रकार कर्मज शरीरका आश्रय लेकर वह पूर्व शरीरका परित्याग कर देता है, अजुहमात्र परिमाणवाला वायुरूप वह शरीर समीपस्वरूप बढ़कर अश्रय लेता है। जिस प्रकार मनुष्य चलते हुए एक पैर भूमिपर रखकर दूसरे पैरको आगे बढ़ानेके लिये उठाता है, जैसे तृणजलीका (तृण जोंक) एक पाँवपर स्थिर होकर दूसरे पाँवको आगे बढ़ाती है, वैसे ही जीव भी कर्मानुसार एक देहसे दूसरी देहको धारण करता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रका परित्याग कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका त्याग करके नये शरीरको धारण करता है—

अर्जसिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।

यथा तृणजलीकेव देही कर्मानुगोऽवशः॥

वासंसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संघाति नवानि देही॥

(१८।४१-४२)

(अध्याय १८)

## जीवका यमपुरीमें प्रवेश, वहाँ शुभाशुभ कर्मोंका फलभोग, कर्मानुसार अन्य देहकी प्राप्ति, मनुष्य-जन्म पाकर धर्माचरण ही मुख्य कर्तव्य

श्रीभगवान्ने कहा—वायुरूप होकर भूखसे पीड़ित, कर्मजन्म शरीरका आश्रय लेकर जीव यमके साथ चित्रगुप्तपुरको ओर जाता है। चित्रगुप्तपुर बीस योजन विस्तृत है। वहाँ रहनेवाले कार्यस्थ सभी प्राणियोंके पाप-पुण्यका भली प्रकारसे सर्वेक्षण करते हैं। महादान करनेपर वहाँ गया हुआ व्यक्ति सुखका भोग करता है। बीबीस योजन विस्तृत वैवस्वतपुर है। लौह, लवण, कपस और तिलसे पूर्ण पात्रका दान करनेपर इस दानके फलस्वरूप यमपुरमें निवास करनेवाले दाताके पितर लोग संतुष्ट होते हैं। वहाँपर धर्मध्वज नामका प्रतीहार सदैव द्वारपर अवस्थित रहता है। सप्तधान्यका दान देनेसे धर्मध्वज प्रसन्न हो जाता है। वहाँ जाकर प्रतीहार प्रेतके शुभाशुभका वर्णन करता है। धर्मराजका जो प्रशस्त एवं सुन्दर स्वरूप है, उस स्वरूपका दर्शन



सज्जन और सुकृतियोंको प्राप्त होता है। जो दुष्टचारी जन हैं, वे अत्यन्त भयंकर यमके स्वरूपको देखकर भयभीत होकर हाहाकार करते हैं।

जिन मनुष्योंने दान किया है, उनके लिये वहाँपर कहीं भी भय नहीं है। आये हुए सुकृती जनको देखकर यमराज अपने आसनका इसलिये परित्याग कर देते हैं कि यह

सुकृती मेरे इस मण्डलका भेदन करके ब्रह्मलोकको जायगा।<sup>१</sup> दानसे धर्म सुलभ हो जाता है और यममार्ग सुखावह हो जाता है। इस यमलोकका मार्ग अत्यन्त विशाल है, इसकी दुर्गमताके कारण इसका अनुगमन कोई नहीं करना चाहता। हे वत्स! बिना दान-पुण्य किये प्राणीका धर्मराजके भवनमें पहुँचना सम्भव नहीं है। उस रौद्र मार्गमें महाभयंकर यमके सेवक रहते हैं। एक-एक पुरके आगे एक-एक हजार सेवकोंकी उपस्थिति रहती है। यातना देनेवाले यमदूत प्राणीको प्राप्त करके पकाते हैं। वहाँपर यमदूत उसको एक मासतक रखते हैं। उस मासके बीतते ही वह एक बीबाई जैव रह जाता है।

हे कश्यपपुत्र! जिन लोगोंने और्ध्वदैहिक क्रियामें विहित दानोंको नहीं किया है, वे लोग बहुत कष्ट झेलते हुए उस मार्गमें चालते हैं। अतः प्राणीको यथाशक्ति दान देना चाहिये। दान न देनेपर प्राणी पशुके समान यमदूतोंके द्वारा पकड़े बीधकर ले जाया जाता है। मनुष्य जैसा-जैसा कर्म करता है, उसी प्रकारकी योनिमें उसको जाना पड़ता है। जैसा ही उन योनियोंमें भोग भोगता हुआ वह सभी प्रकारके लोकोंमें विचरण करता है। जब मनुष्य-योनि प्राप्त होती है, तब भी लौकिक सुखोंको अनित्य जानकर प्राणीको धर्माचरण करना चाहिये।

कृमि, भस्म अथवा विष्टा ही शरीरकी परिणति है। जो मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी धर्माचरण नहीं करता, वह हाथमें दीपक रखता हुआ भी महाभयंकर अन्धकूपमें गिरता है। मनुष्य-जन्म प्राणीको बहुत बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। जो जीव इस योनिकी पाकर धर्मका आचरण करता है, उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। धर्मको व्यर्थ माननेवाला प्राणी दुःखपूर्वक जन्म-मरण प्राप्त करता है। हे पक्षिन्! सैकड़ों बार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेनेके बाद प्राणीको मनुष्य-योनि प्राप्त होती है, उसमें भी द्विज होना अत्यन्त दुर्लभ है। जो व्यक्ति

१-कायस्थ नामकी एक देवयोनि कियोप है।

२-प्राप्तं सुकृतिर्न दृष्टा स्थापयत्यति सूर्यः। एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥ (१९।९)



टिज होकर धर्मका पालन करता है और विभिन्न धर्मकी ही कृपासे अमरत्व हस्तगत कर लेता है।<sup>१</sup>  
 द्रवोंका आदर एवं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करता है, वह उस

(अध्याय १९)

## प्रेतवाधाका स्वरूप तथा मुक्तिके उपाय

श्रीगरुडने कहा—हे प्रभो! प्रेतयोनिमें जो कोई भी प्राणी जाते हैं, वे कहाँ वास करते हैं? प्रेतलोकोसे निकलकर वे कैसे और किस स्थानमें चले जाते हैं? चौरासी लाख योनियोंसे परिब्याप्त, यम तथा हजारों भूतोंसे रक्षित होनेपर भी प्राणी नरकोसे निकलकर कैसे इस संसारमें विचरण करते हैं? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! जहाँ प्रेतगण निवास करते हैं, उसको तुम सुनो। छलसे पराये धन और परायी स्त्रीका अपहरण तथा होहंसे मनुष्य निराधर योनिको प्राप्त होते हैं। जो लोग अपने पुत्रके दितचिन्तनमें ही अनुरक्त रहते हैं तथा सभी प्रकारका पाप करते हैं। वे शरीररहित होकर भूख-प्यासकी अथाह पीड़ाको सहन करते हुए यत्र-तत्र भटकते रहते हैं। वे प्रेत चोरके समान उस महापक्षके लिये पितृभागमें दिये गये जलका अपहरण करते हैं। तदनन्तर पुनः अपने घरमें आकर वे मित्रके रूपमें प्रविष्ट हो जाते हैं और वर्षोंपर रहते हुए स्वयं रोग-शोक आदिकी पीड़ासे ग्रसित होकर सब कुछ देखते रहते हैं। वे एक दिनका अन्तराल देकर आनेवाले प्यारका रूप धारण करके अपने सम्बन्धियोंको पीड़ा पहुँचाते हैं अथवा तिजोरिया प्यार बनकर और शीत-वातादिसे उन्हें कष्ट देते हैं। उच्छिष्ट अर्थात् जूटे अपवित्र स्थानोंमें निवास करते हुए उन प्रेतोंके द्वारा सदैव अभिलक्षित प्राणियोंको कष्ट देनेके लिये शिरोवेदना, विधूचिका तथा नाना प्रकारके अन्य बहुत-से रोगोंका रूप धारण कर लिया जाता है। इस प्रकार वे

दुष्कर्मों प्रेत नाना दोषोंमें प्रवृत्त होते हैं।

गरुडने कहा—हे प्रभो! वे प्रेत किस रूपसे किसका क्या करते हैं? किस विधिसे उनकी जानकारी प्राप्त की जा सकती है? क्योंकि वे न कुछ कहते हैं, न बोलते हैं? हे हृषीकेश! यदि आप मेरा कल्याण चाहते हों तो मेरे मनके इस व्यामोहको दूर कर दें। इस कलिकालमें प्रायः बहुत-से लोग प्रेतयोनिको ही प्राप्त होते हैं।

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! प्रेत होकर प्राणी अपने ही कुलको पीड़ित करता है, वह दूसरे कुलके व्यक्तिको तो कोई आपराधिक छिद्र प्राप्त होनेपर ही पीड़ा देता है। जीते हुए तो वह प्रेमीकी तरह दिखायी देता है, किंतु मृत्यु होनेपर वही दुष्ट बन जाता है। जो भगवान् श्रीरुद्रके मन्त्रका जप करता है, धर्ममें अनुरक्त रहता है, दैवता और अतिथिकी पूजा करता है, सत्य तथा प्रिय बोलनेवाला है, उसको प्रेत पीड़ा नहीं दे पाते हैं। जो व्यक्ति सभी प्रकारकी धार्मिक क्रियाओंसे परिभ्रष्ट हो गया है, नास्तिक है, धर्मकी निन्दा करनेवाला है और सदैव असत्य बोलता है, उसीको प्रेत कष्ट पहुँचाते हैं<sup>१</sup>। हे ताक्ष्य! कलिकालमें अपवित्र क्रियाओंको करनेवाला प्राणी प्रेतयोनिको प्राप्त होता है। हे काश्यप! इस संसारमें उत्पन्न एक ही माता-पितासे पैदा हुए बहुतसी संतानोंमें एक सुखका उपभोग करता है, एक पाप कर्ममें अनुरक्त रहता है, एक संतानवान् होता है, एक प्रेतसे पीड़ित रहता है और एक पुत्र धनधान्यसे सम्पन्न रहता है, एकका पुत्र मर जाता है, एकके मात्र पुत्रियाँ ही

१-यथा यथा कृतं कर्म तत् तत् योनिं व्रजेन्नरः । ततोऽपि च भुङ्क्षन्ति विषोदं सर्वलोकजः ॥

अशक्तं परिज्ञाय सर्वलोकोत्तरं सुखम् । यदा भवति मानुष्यं तदा धर्मं समाकरोत् ॥

कृमयो भस्म विष्टा वा देशान् प्रकृतिः सदा । अन्यकूपे महारौद्रे रोषहस्तः पलेषु वै ॥

महापुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते । यस्मिन् प्राप्य चोद्धर्मं स गच्छेत् परमां गतिम् ॥

अपि जान्न् वृथा धर्मं दुःखम्वच्छति पति च ॥

जज्ञांशतेन लभते किल मानुष्यं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजलक्ष्म् ।

यस्तत्र पालयति लालयति त्रस्तानि तस्मिन्मृतं भवति इत्यन्तं प्रसिद्धम् ॥ (१९।१६-२२)

२-रद्रजापी धर्मरतो दैवकतिथिपूजकः । सत्यवक्त्रं प्रियवादी च न प्रेतैः स हि पीड्यते ॥

सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको धर्मनिन्दकः । असत्यवादनिरतो नरः प्रेतैः स पीड्यते ॥ (२०।१६-१७)

होती हैं। प्रेतदोषके कारण बन्धु-बान्धवोंके साथ विरोध होता है। प्रेतयोनिके प्रभावसे मनुष्यको संतान नहीं होती है। यदि संतान उत्पन्न भी होती है तो वह मर जाती है। प्रेतबाधाके कारण तो व्यक्ति पशुहीन और धनहीन हो जाता है। उसके कुप्रभावसे उसकी प्रकृतिमें परिवर्तन आ जाता है, वह अपने बन्धु-बान्धवोंसे शत्रुता रखने लगता है। अचानक प्राणीको जो दुःख प्राप्त होता है, वह प्रेतबाधाके कारण होता है। नास्तिकता, जीवन-वृत्तिकी समाप्ति, अत्यन्त लोभ तथा प्रतिदिन होनेवाले कलह—यह प्रेतसे पैदा होनेवाली पीड़ा है। जो पुरुष माता-पिताकी हत्या करता है, जो देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, उसे हत्याका दोष लगता है। यह पीड़ा प्रेतसे पैदा होती है। नित्य-कर्मसे दूर, जप-होमसे रहित और परापे धनका अपहरण करनेवाला मनुष्य दुःखी रहता है, इन दुःखोंका कारण भी प्रेतबाधा ही है। अच्छी वर्षा होनेपर भी कृषिको नाश होता है, व्यवहार नष्ट हो जाता है, सम्पत्तिमें कलह उत्पन्न होता है, ये सभी कष्ट प्रेतबाधासे ही होते हैं। हे पक्षिराज! पार्श्वमें चलते हुए पथिकको जो बर्षादरमें पीड़ा होती है, उसको भी तुम्हें प्रेतबाधा समझना चाहिये। यह बात मैं सत्य ही कह रहा हूँ।

प्राणी जो नीच जातिसे सम्बन्ध रखता है, हीन कर्म करता है और अधर्ममें नित्य अनुरक्त रहता है, वह प्रेतसे उत्पन्न पीड़ा है। व्यसनसे द्रव्यका नाश हो जाता है, प्राप्तव्यका विनाश हो जाता है। चोर, अग्नि और राजासे जो हानि होती है, यह प्रेतसम्भूत पीड़ा है। शरीरमें महाभयंकर रोगकी उत्पत्ति, बालकोंकी पीड़ा तथा पत्नीका पीड़ित होना—ये सब प्रेतबाधाजनित हैं। वेद, स्मृति-पुराण एवं धर्मशास्त्रके नियमोंका पालन करनेवाले परिवारमें जन्म होनेपर भी धर्मके प्रति प्राणीके अन्तःकरणमें प्रेमका न होना प्रेतजनित बाधा ही है। जो मनुष्य प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे देवता, तीर्थ और ब्राह्मणकी निन्दा करता है, वह भी प्रेतोत्पन्न पीड़ा है। अपनी जीविकाका अपहरण, प्रतिष्ठा तथा वंशका विनाश भी प्रेतबाधाके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे सम्भव नहीं है। स्त्रियोंका गर्भ विनष्ट हो जाता है, जिनमें रजोदर्शन नहीं होता और बालकोंकी मृत्यु हो जाती है, वहाँ

प्रेतजन्य बाधा ही समझनी चाहिये। जो मनुष्य शुद्ध भावसे सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं करता है, वह भी प्रेतबाधा है। तीर्थमें जाकर दूसरेमें आसक्त हुआ प्राणी जब अपने सत्कर्मका परित्याग कर दे तथा धर्मकार्यमें स्वाजित धनका उपयोग न करे तो उसको भी प्रेतजन्य पीड़ा ही समझना चाहिये। भोजन करनेके समय कोपयुक्त पति-पत्नीके बीच कलह, दूसरोंसे शत्रुता रखनेवाली बुद्धि—यह सब प्रेत-सम्भूत पीड़ा है। जहाँ पुष्प और फल नहीं दिखायी देते तथा पत्नीका विरह होता है। वहाँ भी प्रेतोत्पन्न पीड़ा है।

जिन लोगोंमें सदैव उच्चाटनके अत्यधिक चिह्न दिखायी देते हैं, अपने क्षेत्रमें उसका तेज निष्फल हो जाता है तो उसे प्रेतजनित बाधा ही माननी चाहिये। जो व्यक्ति सगोत्रोंका विनाशक है, जो अपने ही पुत्रको शत्रुके समान मार डालता है, जिसके अन्तःकरणमें प्रेम और सुखकी अनुभूतियोंका अभाव रहता है, वह दोष उस प्राणीमें प्रेतबाधाके कारण होता है। पिताके आदेशकी अवहेलना, अपनी पत्नीके साथ रहकर भी सुखोपभोग न कर पाना, व्यग्रता और क्रूर बुद्धि भी प्रेतजन्य बाधाके कारण होती है।

हे तार्क्ष्य! निबिद्ध कर्म, दुष्ट-संसर्ग तथा वृषोत्सर्गके न होने और अविधिपूर्वक की गयी और्ध्वदैहिक क्रियासे प्रेत होता है। अकालमृत्यु या दाह-संस्कारसे वञ्चित होनेपर प्रेतयोनि प्राप्त होती है, जिससे प्राणीको दुःख झेलना पड़ता है। हे पक्षिराज! ऐसा जानकर मनुष्य प्रेत-मुक्तिका सम्पत्ति आचरण करे। जो व्यक्ति प्रेत योनियोंको नहीं मानता है, वह स्वयं प्रेतयोनिकी प्राप्त होता है। जिसके वंशमें प्रेत-दोष रहता है, उसके लिये इस संसारमें सुख नहीं है। प्रेतबाधा होनेपर मनुष्यकी मति, प्रीति, रति, लक्ष्मी और बुद्धि—इन पाँचोंका विनाश होता है। तीसरी या पाँचवीं पीढ़ीमें प्रेतबाधाग्रस्त कुलका विनाश हो जाता है। ऐसे वंशका प्राणी जन्म-जन्मान्तर दरिद्र, निर्धन और पापकर्ममें अनुरक्त रहता है। विकृत मुख तथा नेत्रवाले, क्रूर स्वभाववाले, अपने गोत्र, पुत्र-पुत्री, पिता, भाई, भोजाई अथवा बहूको नहीं माननेवाले लोग भी विधिवश प्रेत-शरीर धारण कर सद्गतिसे रहित हो 'बड़ा कष्ट है', यह चित्ताते हुए अपने पापको स्मरण करते हैं। (अध्याय २०)

## प्रेतबाधाजन्य दीखनेवाले स्वप्न, उनके निराकरणके उपाय तथा नारायणबलि का विधान

**श्रीगरुडने कहा—**हे भगवन्! प्रेत किस प्रकारसे मुक्त होते हैं? जिनकी मुक्ति होनेपर मनुष्योंको प्रेतजन्य पीड़ा पुनः नहीं होती। हे देव! जिन लक्षणोंसे युक्त बाधाको आपने प्रेतजन्य कहा है, उनकी मुक्ति कब सम्भव है और क्या किया जाय कि प्राणीको प्रेतत्वकी प्राप्ति न हो सके? प्रेतत्व कितने वर्षोंका होता है? चिरकालसे प्रेतयोनिमें भोग रहा प्राणी उससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है? यह सब आप बतलानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा—**हे गरुड! प्रेत जिस प्रकार प्रेतयोनिसे मुक्त होते हैं, उसे मैं बतला रहा हूँ। जब मनुष्य यह जान ले कि प्रेत मुझको कष्ट दे रहा है तो ज्योतिर्विदोंसे इस विषयमें निवेदन करे। प्रेतग्रस्त प्राणीको बड़े ही अद्भुत स्वप्न दिखायी देते हैं। जब तीर्थ-स्नानकी बुद्धि होती है, चित्त धर्मपरायण हो जाता है और धार्मिक कृत्योंको करनेकी मनुष्यकी प्रवृत्ति होती है तब प्रेतबाधा उपस्थित होती है एवं उन पुण्य कार्योंको नष्ट करनेके लिये चित्त-भंग कर देती है। कल्याणकारी कार्योंमें पग-पगपर बहुत-से विघ्न होते हैं। प्रेत बार-बार अकल्याणकारी मार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये प्रेरणा देते हैं। शुभकर्मोंमें प्रवृत्तिका उच्चाटन और क्रूरता—यह सब प्रेतके द्वारा किया जाता है। जब व्यक्ति समस्त विघ्नोंको विधिवत् दूर करके मुक्ति प्राप्त करनेके लिये सम्यक् उपाय करता है तो उसका वह कर्म हितकारी होता है और उसके प्रभावसे शाश्वत प्रेतनिवृत्ति हो जाती है।

हे पक्षिन्! दान देना अत्यन्त श्रेयस्कर है, दान देनेसे प्रेत मुक्त हो जाता है। जिसके उद्देश्यसे दान दिया जाता है, उसको तथा स्वयंको वह दान तृप्ता करता है। हे तार्क्ष्य! यह सत्य है कि जो दान देता है वही उसका उपभोग करता है। दानदाता दानसे अपना कल्याण करता है और ऐसा करनेसे प्रेतको भी चिरकालिक संतुष्टि प्राप्त होती है। संतुष्ट

हुए वे प्रेत सदैव अपने बन्धु-बान्धवोंका कल्याण चाहते हैं। यदि विजातीय दुष्ट प्रेत उसके वंशको पीड़ित करते हैं तो संतुष्ट हुए सगोत्री प्रेत अनुग्रहपूर्वक उन्हें रोक देते हैं। उसके बाद समय आनेपर अपने पुत्रसे प्राप्त हुए पिण्डादिक दानके फलसे वे मुक्त हो जाते हैं। हे पक्षिराज! यथोचित दानादिके फलसे संतुष्ट प्रेत बन्धु-बान्धवोंको धन्य-धान्यसे समृद्धि प्रदान करते हैं।

जो व्यक्ति स्वप्नमें प्रेत-दर्शन, भाषण, चेष्टा और पीड़ा आदिकी देखकर भी ब्रह्मादिद्वारा उनकी मुक्तिका उपाय नहीं करता, वह प्रेतोंके द्वारा दिये गये शापसे संलित होता है। ऐसा व्यक्ति जन्म-जन्मान्तरतक निःसन्तान, पशुहीन, दरिद्र, रोगी, जौषिकाके साधनसे रहित और निम्नकुलमें उत्पन्न होता है। ऐसा वे प्रेत कहते हैं और पुनः यमलोक जाकर पापकर्मोंका भोगद्वारा नाश हो जानेके अनन्तर अपने समयसे प्रेतत्वकी मुक्ति हो जाती है।

**गरुडने कहा—**हे देवेश्वर! यदि किसी प्रेतका नाम और गोत्र न ज्ञात हो सके, उसके विषयमें विश्वास न हो रहा हो, कुछ ज्योतिषी पीड़ाको प्रेतजन्य कहते हों, कभी भी मनुष्यको प्रेत स्वप्नमें न दिखायी दे, उसकी कोई चेष्टा न होती हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये? उस उपायको मुझे बतायें।

**श्रीभगवान्ने कहा—**हे खगराज! पृथ्वीके देवता ब्राह्मण जो कुछ भी कहते हैं, उस वचनको हृदयसे सत्य समझकर भक्ति-भावपूर्वक पितृभक्तिनिष्ठ हो पुरश्चरणपूर्वक नारायण-बलि करके जप, होम तथा दानसे देह-शोधन करना चाहिये। उससे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। यदि वह प्राणी भूत, प्रेत, पिशाच अथवा अन्य किसीसे पीड़ित होता है तो उसको अपने पितरोंके लिये नारायण-बलि करनी चाहिये। ऐसा कर वह सभी प्रकारकी पीड़ाओंसे मुक्त हो जाता है। यह मेरा सत्य वचन है। अतः सभी

१-स भवेत् तेन मुक्तस्तु दत्तं श्रेयस्करं परम् । स्वयं तृप्त्यति भीः पक्षिन् सत्योद्देश्येन दीपते ॥

शृणु सत्यमिदं तार्क्ष्यं यददाति धुनक्ति सः । आत्मानं श्रेयसा मुञ्चन्तु शिशुर्नृपि चिरं वनेत् ॥

ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति निजबन्धुषु सर्वदा । अज्ञातवस्तु ये दुष्टाः सोढयन्ति स्ववंशजान् ॥

विचारयन्ति तृप्तास्तु जायमानानुकम्पयाः । पक्षान् ते मुक्तिमयान्ति काले प्राप्ते स्वपुत्रतः ॥ (२१।१२-१५)

प्रयत्नोंसे पितृभक्तिपरायण होना चाहिये।

नवें या दसवें वर्ष अपने पितरोंके निमित्त प्राणीको दस हजार गायत्री-मन्त्रोंका जप करके दशांश होम करना चाहिये। नारायण-बलि करके वृषोत्सर्गादि क्रियाएँ करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके उपद्रवोंसे रहित हो जाता है, समस्त सुखोंका उपभोग करता है तथा उत्तम लोकको प्राप्त करता है और उसे जाति-प्राधान्य प्राप्त होता है। इस संसारमें माता-पिताके समान श्रेष्ठ अन्य कोई देवता नहीं है। अतः सदैव सम्यक् प्रकारसे अपने माता-पिताकी पूजा करनी चाहिये। हितकर बातोंका उपदेश होनेसे पिता प्रत्यक्ष देवता है। संसारमें जो अन्य देवता हैं वे शरीरधारी नहीं हैं—

पितृमातृसमं लोके नास्त्यन्यैवतं परम् ।  
तस्मात् सर्वप्रधानेन पूजयेत् पित्रो सदा ॥  
हितानामुपदेशं हि प्रत्यक्षंैवतं पितः ।  
अन्यथा देवता लोके न देहप्रभवो हि साः ॥

(२१।३८-२९)

प्राणियोंका शरीर ही स्वयं एवं मोक्षका एकमात्र साधन है। ऐसा शरीर जिसके द्वारा प्राप्त हुआ है, उससे बढ़कर पुण्य कौन है ?

हे पशु! ऐसा विचार करके मनुष्य जो-जो दान देता है उसका उपभोग वह स्वयं करता है, ऐसा वेदविद विद्वानोंका कथन है। पुन्यामका जो नरक है उससे पिताकी रक्षा पुत्र करता है। उसी कारणसे इस लोक और परलोकमें उसे पुत्र कहा जाता है—

पुन्यामनरकाद्यस्मात् पितरं प्रायते सुतः ।  
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्त इह चापि परत्र च ॥

(२१।३२)

हे खगराज! किसीके माता-पिताकी अकालमृत्यु हो जाय तो उसे प्रत, तीर्थ, वैवाहिक माङ्गलिक कार्य संवत्सरपर्यन्त नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य प्रेत-लक्षण बतानेवाले इस स्वप्नाभ्यासका अध्ययन अथवा श्रवण करता है, वह प्रेतका एक चिह्न नहीं देखता है। (अध्याय २१)

## प्रेतयोनि दिलानेवाले निन्दित कर्म, पञ्चप्रेतोपाख्यान तथा प्रेतत्वप्राप्ति न करानेवाले श्रेष्ठ कर्म

श्रीगरुडने कहा—हे प्रभो! प्रेतोंकी उत्पत्ति कैसे होती है ? वे कैसे चलते हैं ? उनका कैसा रूप और कैसा भोजन होता है ? वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं और उनका कहाँ निवास होता है ? हे प्रसन्नचित्त देवेश! कृपा कर मेरे इन प्रश्नोंका समाधान करो।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पशिराज! सुनो। जो पूर्वजन्मसंचित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममें अनुरक्त रहते हैं, वे मृत्युके पश्चात् प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं। जो मनुष्य बावलो, कूप, जलाशय, उद्यान, देवालय, प्याऊ, घर, आग्रादिक फलदार वृक्ष, रसोईघर, पितृ-पितामहके धर्मको बेच देता है, वह पापका भागी होता है। ऐसा व्यक्ति मरनेके बाद प्रलयकालतक प्रेतयोनिमें रहता है। जो लोग लोभवश गोचारणकी भूमि, ग्रामकी सीमा, जलाशय,

उपवन और गुफाभागको जात लेते हैं, वे प्रेत होते हैं। पापियोंकी मृत्यु चण्डाल, जल, सर्पदंश, ब्राह्मण-शाप, विषुत्-निपात, अग्नि, दन्त-प्रहार तथा पशुके आक्रमणसे होती है। जो लोग फौसी लगानेसे, विषहारा और शस्त्रसे मरते हैं, जो आत्मघाती हैं, जिनकी विषुचिका (हैजा) आदि रोगोंसे मृत्यु होती है, जो क्षयादिक महारोग, पापजन्य रोग और चोर-डकैतोंके द्वारा मारे जाते हैं, जिनका मरनेपर संस्कार नहीं हुआ है, विहित आचारसे रहित, वृषोत्सर्गादिसे रहित और मासिक पिण्डदान जिनका लुप्त हो गया है, जिस मरे हुए प्राणीके लिये तृण, काष्ठ, हविष्य तथा अग्नि सूद लाता है, पर्वतों अथवा दीवालके ढहनेसे जिनकी मृत्यु हो जाती है, निन्दित दोषोंसे जिनकी मृत्यु होती है, जिनकी मृत्यु भूमिमें नहीं होती, जिनकी मृत्यु अन्तरिक्षमें होती है,

१-पापकर्मता ये वै पूर्वकर्मवस्तुनाः । जानते ते मृतः प्रेतत्वान्मुच्यन्ते कथम्यम् ॥

वापीकूपतडागैश्च आरामं सुमन्दिरम् । प्रयं सद्यः सुखैश्च तथा भोजनशान्तिकः ॥

पितृपितामहं धर्मं विक्रीणाति स पापभङ्गः । मृतः प्रेतत्वान्नीति यावदाभूतसम्यक् ॥

गोचरं ग्रामसीमां च तडागप्रामाद्वयम् । कर्षयन्ति च ये लोभात् प्रेतसो वै भवन्ति हि ॥ (२२।३-६)



जो भगवान् विष्णुका स्मरण न करते हुए मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु सूतक और श्वादि निकृष्ट योनियोंके संसर्गमें होती है, वे प्रेतयोनिमें जाते हैं।<sup>१</sup> इसी प्रकारके अन्य कारणोंसे जो प्राणी दुर्मृत्युको प्राप्त होते हैं उनको प्रेतयोनिमें मरुस्थल प्रदेशमें भटकना पड़ता है।

हे ताक्ष्य! जो व्यक्ति निर्दोष माता, बहन, पत्नी, पुत्रवधू तथा कन्याका परित्याग करता है, वह निश्चित ही प्रेत होता है। जो भ्रातृद्रोही, ब्रह्मघाती, गोहन्ता, मद्यपे, गुरुभक्तोंके साथ सहवास करनेवाला, स्वर्ण और रेशमका चोर है, वह प्रेतत्वको प्राप्त होता है। धर्ममें रखी हुई धरोहरका अपहारक, मित्रद्रोही, परस्त्रीरत, विश्वासघाती एवं क्रूर व्यक्ति अवश्य प्रेतयोनिमें जन्म लेता है। जो वंशपरम्परागत धर्मपथका परित्याग करके दूसरे धर्मको स्वीकार करनेवाला है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन है, वह भी निस्सन्देह प्रेत ही होता है।<sup>१</sup>

हे सुव्रत! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जो पितामह भीष्म और युधिष्ठिरके संवादमें कहा गया था। मैं उसीको कहता हूँ, उसे सुन करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है।

**युधिष्ठिरने कहा—**हे पितामह! प्राणी किस कर्मफलसे प्रेत होता है? उसकी कैसे और किस उपायसे मुक्ति होती है? इस बातको आप मुझे बतानेकी कृपा करें, जिसको सुन करके मैं पुनः भ्रमित न हो सकूँ।

**भीष्मने कहा—**हे वरस! मनुष्यको जैसे प्रेतयोनि प्राप्त होती है, वह जैसे उस योनिसे मुक्त होता है, जैसे वह दुस्तर घोर नरकमें जाता है, नरकमें जाकर दुःख झेल रहे प्राणियोंको जिसका नाम, गुण, कीर्तन और श्रवण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है, वह सब मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

हे पुत्र! ऐसा सुना जाता है कि प्राचीनकालमें एक

ख्यतिलम्ब संततक नामक सुव्रत तपस्वी ब्राह्मण वनमें रहता था। दद्यावान्, योगयुक्त, स्वाध्यायरत, अग्निहोत्री उस द्विजवंशका समय सदैव यज्ञादिक धार्मिक कृत्योंमें बीतता था। परलोकका भय उसे बहुत था, अतः ब्रह्मचर्य, सत्य, शौचका पालन करते हुए और निर्मलचित्त होकर वह तपस्यामें संलग्न रहता था। ब्रह्मापूर्वक गुरुके उपदेश, अतिथि-पूजन तथा आत्मतत्त्वके चिन्तनमें अनुरक्त वह तपस्वी सांसारिक द्रव्योंसे रहित था। इस संसारको जीतनेकी इच्छासे योगाभ्यासमें सदैव अपनेको वह समर्पित रखता था। इस प्रकारका आचरण करते हुए उस जितेन्द्रिय मुमुक्षु ब्राह्मणको वनमें ही बहुत-से वर्ष बीत गये। एक दिन तपस्वी संततकके मनमें तीर्थाटनकी इच्छा उत्पन्न हुई। उसने मनमें यह संकल्प किया कि अब मैं तीर्थोंके पवित्र जलसे इस शरीरको पवित्र बनाऊँगा, अनन्तर वह स्नान तथा जप-नमस्कारादि कृत्योंको सम्पन्न कर सूर्योदय होनेपर वह तीर्थ-यात्रापर निकल पड़ा।

चलते-चलते वह महातपस्वी ब्राह्मण मार्ग भूल गया। भ्रान्त मार्गमें चलते हुए उसे अत्यन्त भयानक पाँच प्रेत दिखायी पड़े। उस निर्जन वनमें विकृत शरीरवाले भयंकर प्रेतोंकी देखकर ब्राह्मणका हृदय कुछ भयभीत हो उठा। अतः वहाँपर छड़े होकर वह विस्फारित नेत्रोंसे उसी ओर देखता रहा। तत्पश्चात् ब्राह्मणने अपने भयको दूरकर धैर्यका सहारा लिया और मधुर भाषामें पूछा—‘हे विकृत मुखवालो! तुम सब कौन हो? कैसा पापकर्म तुम लोगोंने किया है, जिसके फलस्वरूप तुम्हें यह विकृति प्राप्त हुई है? तुम सब कहाँ जानेका निश्चय कर रहे हो?’

**प्रेतराजने कहा—**हे द्विजवंश! हम सभीने अपने-अपने कर्मके कारण प्रेतयोनिको प्राप्त किया है। परद्रोहमें रत होनेके कारण हम पाप और मृत्युके वशमें हुए। नित्य

१-असंस्कृतश्रौतानां वै विहितकारणजितः ॥

पुण्यसागादिलुपायः लुप्तवासिकपिण्डकाः । यस्मान्मति शूद्रोऽग्निं तुल्यकृद्ब्रवीति सः ॥  
पाप्मात् पर्वतानां च भित्तिपातेन ये मृताः । रजस्वरसदिदोषैश्च न च भूमी मृताश्च ये ॥  
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवञ्जिताः । मृत्युकेः श्वादिमर्त्यैः प्रेतभ्यां इह शिता ॥ (२२।९-१२)  
२-मादां भगिनीं भार्यां मृग्यां दुहितरं तथा । अदुहदोषां तपस्वी स प्रेतो जायते ध्रुवम् ॥  
भ्रातृभुव्वह्राहा गोघ्नः सुरापी गुरुतत्पराः । हेमश्रीमहरम्याश्च स वै प्रेतोऽप्यनुयात् ॥  
न्यासापहता मित्रधुक् परदारतस्तथा । विश्वासघाती क्रूरस्तु स प्रेतो जायते ध्रुवम् ॥  
कुलमार्गाश्च संतप्य परधर्मरत्नप्रदा । पित्राभूतकिरीटस्य स प्रेतो जायते ध्रुवम् ॥ (२२।१३-१७)

भूख-प्याससे पीड़ित रहकर यह प्रेत-जीवन बिता रहे हैं। हम लोगोंकी चाणी उसी पापसे विनष्ट हुई है, शरीर कान्तिहीन हो गया है, हम संज्ञाहीन और विकृत चित्तवाले हो गये हैं। हे तात! हमें दिशाओं तथा विदिशाओंका कोई ज्ञान नहीं है। पाप-कर्मसे पिशाच बने हुए हम मूढ़ प्राणी कहाँ जा रहे हैं, इसका भी ज्ञान हमें नहीं है। हम लोगोंके न माता हैं और न पिता हैं। अपने कर्मोंके फलस्वरूप, अत्यन्त दुःखदायी यह प्रेतयोनि हम सभीको प्राप्त हुई है। हे ब्रह्मन्! आपके दर्शनसे हम लोग अत्यधिक प्रसन्न हैं। आप मुहूर्तभर रुकें। आपसे हम अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त प्रारम्भसे कहेंगे। उनमेंसे एक प्रेतने कहा—

हे विप्रदेव! मेरा नाम पर्युषित है, यह दूसरा सूचीमुख है, तीसरा शीघ्रग, चौथा रोधक और पाँचवाँ लेखक है।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेत! प्राणीको कर्मफलानुसार प्रेतयोनि मिलती है यह तो ठीक बात है, पर अपने जो नाम तुम बताते हो, उसके प्राप्त होनेका क्या कारण है?

प्रेतराजने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने सदैव सुस्वादु भोजन किया और ब्राह्मणकी बासी अन्न दिया है, इस कारण मेरा नाम पर्युषित (बासी) है। भूखे ब्राह्मणकी याचनाको सुनकर यह शीघ्र हो वहाँसे हट जाता था, इसलिये यह शीघ्रग नामका प्रेत हुआ। अन्नादिकी आकांक्षासे इसने बहुत-से ब्राह्मणोंको पीड़ित किया था, इस कारण यह सूचीमुख नामक प्रेत हो गया। इसने पोष्यवर्ग एवं ब्राह्मणोंको दिये बिना अकेले ही मिष्ठान्न खाया था, इसलिये इसको रोधक कहा गया है। यह कुछ मँगनेपर मीन धारण करके पृथ्वी कुरेदने लगता था, अतः उस कर्मफलके अनुसार यह लेखक कहलाया।

हे ब्राह्मण! कर्मभावसे ही प्रेतत्व और इस प्रकारके नामकी प्राप्ति हुई है। यह लेखक मेषमुख, रोधक पर्वतकात मुखवाला, शीघ्रग पशुकी तरह मुखवाला और सूचक सुईके समान मुखवाला है, इसके घेड़ंगे रूपको देखें। हे नाथ! हम अत्यन्त दुःखित हैं। मायावी रूप बनाकर हम लोग पृथ्वीपर विचरण करते हैं। हम सभी अपने ही कर्मसे विकृत आकारवाले, लम्बे ओठवाले, विकृत मुखवाले और बृहद् शरीरवाले तथा भयावह हो गये हैं। हे विप्र! यह सब मैंने आपसे प्रेतत्वका कारण बता दिया है। आपके दर्शनसे हम

सभीमें ज्ञान उत्पन्न हो गया है, आपको जिस बातको सुननेकी अभिलषि हो, वह आप पूछें, उसे मैं आपको बतानेके लिये तैयार हूँ।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतराज! पृथ्वीपर जो भी जीव जीते हैं, वे सब आहारसे ही जीवित रहते हैं। यथार्थरूपसे तुम लोगोंके भी आहारको सुननेकी मेरी इच्छा है।

प्रेतोंने कहा—हे द्विजराज! यदि आपकी व्रद्धा हमारे आहारको जाननेकी है तो सावधान हो करके आप सुनें।

हम सभीका आहार समस्त प्राणियोंके लिये निन्दनीय है, जिसको सुनकर आप बार-बार निन्दा करेंगे। प्राणियोंके शरीरसे निकले हुए कफ, मूत्र और पुरीषादि मल एवं अन्य प्रकारसे ठीकष्ट भोजन प्रेतोंका आहार है। जो घर अपवित्र रहते हैं, जिनकी घरेलू सामग्रियाँ इधर-उधर बिखरी रहती हैं, जिन घरोंमें प्रसूतादिके कारण मलिनता बनी रहती है, वहाँपर प्रेत भोजन करते हैं। जिस घरमें सत्य, शीघ्र और संयम नहीं होता, पतित एवं दम्बुजनोंका साथ है, उसी घरमें प्रेत भोजन करते हैं। जो घर भूतादिक बलि, देवमन्त्रोच्चार, अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा व्रतपालनसे हीन है, प्रेत उसमें ही भोजन करते हैं। जो घर लज्जा एवं मर्षादासे रहित है, जिसका स्वामी स्त्रीसे जीत लिया गया है, जहाँ माता-पिता और गुरुजनोंकी पूजा नहीं होती है, प्रेत वहाँ ही भोजन करते हैं। जिस घरमें नित्य लोभ, क्रोध, निद्रा, शोक, भय, मद, आलस्य तथा कलह—ये सब दुरुगुण विद्यमान रहते हैं, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं। हे दृढव्रत तपोनिधि विप्रदेव! हम सब इस प्रेतभावसे दुःखित हैं, जिससे प्रेतयोनि प्राप्त न हो वह हमें बतायें। प्राणीकी नित्य मृत्यु हो वह अच्छा है पर उसे कभी भी प्रेतयोनि न प्राप्त हो।

ब्राह्मणने कहा—नित्य उपवास रखकर कृच्छ्र एवं चान्द्रायणव्रतमें लगा हुआ तथा अनेक प्रकारसे अन्य व्रतोंसे पवित्र मनुष्य प्रेत नहीं होता है। जो व्यक्ति जागरणसहित एकादशव्रत करता है और अन्य सत्कर्मोंसे अपनेको पवित्र रखता है, वह प्रेत नहीं होता है। जो प्राणी अश्वमेधादिक यज्ञोंको सम्पन्न करके नाना प्रकारके दान देता है तथा क्रीडा, उद्यान, चापी एवं जलाशयका निर्माता है, ब्राह्मणकी कन्याओंका यथाशक्ति विवाह कराता है, विद्यादान और

अशरणको शरण देनेवाला है, वह प्रेत नहीं होता है।<sup>१</sup>

खाये हुए शुद्धान्नके जठरस्थित रहते हुए जिसकी मृत्यु हो जाती है या जो दुर्मृत्युसे मरता है, वह प्रेत होता है। जो अयाग्यका याजक तथा मद्यपीका साय करके मदिरा पीनेवाली स्त्रीका संसर्ग करता है और अज्ञानवश भी मांस खाता है, वह प्रेत होता है। जो देवता, ब्राह्मण और गुरुके धनका अपहारक है, जो धन लेकर अपनी कन्या देता है, वह प्रेत होता है। जो माता, भगिनी, स्त्री, पुत्रवधू तथा पुत्रीका बिना कोई दोष देखे परित्याग कर देता है, उसे भी प्रेत होना पड़ता है। जो विश्वासपर रखी हुई परायी धरोहरका अपहर्ता है, मित्रद्रोही है, सदैव परायी स्त्रीमें अनुरक्त रहता है, विश्वासघाती और कपटी है, वह प्रेतयोनिमें जाता है, जो प्राणी भ्रातृद्रोही, ब्रह्महन्ता, गोहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीगणधो, इनका संसर्ग और वंशपरम्पराका परित्याग करके सदा झूठ बोलता रहता है, स्वर्णकी चोरी तथा भूमिका अपहरण करता है, वह प्रेत होता है।<sup>२</sup>

भीष्मने कहा—हे युधिष्ठिर! इस प्रकार ब्राह्मण संतापक ऐसा कह ही रहा था कि आकाशमें दुन्दुभि मजने लगी। देवीने उस ब्राह्मणके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। प्रेतोंके लिये वहाँ पाँच देवविमान आ गये। विधिवत् उस ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर वे सभी प्रेत दिव्य विमानोंमें



बैठकर स्वर्ग चले गये। इस प्रकार ब्राह्मणके द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं उसके साथ सम्भाषण एवं पुण्य-संकीर्तनके प्रभावसे उन सभी प्रेतोंका पाप विनष्ट हो गया और उन्हें परम पदकी प्राप्ति हुई।

सूतजीने कहा—इस आख्यानको सुनकर गरुडजी पोपल-पत्रोंके समान काँप उठे। उन्होंने पुनः मनुष्योंके कल्याणके लिये श्रीभगवान् विष्णुसे पूछा।

(अध्याय २२)

## प्रेतबाधाजन्य विविध स्वप्न तथा उसका प्रायश्चित्तविधान

श्रीगरुडने कहा—हे देवेश! पिशाचयोनिमें रहनेवाले प्रेत क्या-क्या करते हैं? वे क्या कहते हैं? उसे आप कहिये।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पशिराज! उनका जैसा स्वरूप

है, जो उनकी पहचान है और जिस प्रकार वे स्वप्न दिखाते हैं, वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूँ। भूख-प्याससे दुःखित वे अपने घरमें प्रवेश करते हैं। उसी वायुरूपी देहमें प्रविष्ट होकर अपने वंशजोंको अपना पिछ दिखाते हैं। प्रेत अपने

- १-उपवासपरो नित्यं कृष्णचान्दापनी रतः। इतिष्ठ विविधैः पूजे न प्रेतो जायते नरः॥  
एकादश्यां जतं कुर्वज्जागरेण समन्वितम्। अपरीः सुकृतेः पूजे न प्रेतो जायते नरः॥  
इहा वै वाधमेधादीन् दद्याद् दानाणि यो नरः। अरामोदानाभ्यामपिः प्रपन्नक्षीय कारकः॥  
कुमारीं ब्राह्मणानां तु विवाहयति शक्तिनः। पिण्णदोऽभयदक्षेण न प्रेतो जायते नरः॥ (२२।६४-६७)
- २-देवद्रव्यं च ब्रह्मसर्वं गुरुद्रव्यं तथैव च। कन्यां ददाति मुन्येन स प्रेतो जायते नरः॥  
मातरं भगिनीं भ्रातृं स्नुषां दुहितरं तथा। अष्टदोषास्तथाऽपि स प्रेतो जायते नरः॥  
न्यासापहर्ता मित्रभुक्परादारतः सदा। विश्वासघाती कूटस्य स प्रेतो जायते नरः॥  
भ्रातृधुर्ब्रह्महा गोघ्नः सुरगणे गुरुतल्पगः। कुलनाशं परित्यज्य हनूषीकी सदा रतः।  
हर्ता हेम्वक्ष भूमेक्ष स प्रेतो जायते नरः॥

(२२।७१-७४)

पुत्र, अपनी स्त्री तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके पास जाता है और अश्व, हाथी, बैल अथवा मनुष्यका विकृत रूप धारण करके वह स्वप्नमें दिखायी देता है। जो व्यक्ति सोकर उठनेपर अपनेको शय्यापर विपरीत स्थितिमें देखता है, वह अवस्थिति प्रेतयोनिके कारण हुई है, ऐसा मानना चाहिये। यदि स्वप्नमें अपने-आपको जंजीरमें बँधा हुआ देखे और मरा हुआ पूर्वज निन्दनीय वेषमें दिखायी दे, खाते हुए व्यक्तिका अन्न लेकर भाग जाय और प्याससे पीड़ित वह अपना या परायेका जलपान कर ले तो उसे पिशाचयोनिमें गया हुआ मानें।

यदि स्वप्नमें वह बैलकी सवारी करता है, बौलकें साथ कहाँ जाता है, डरकर आकाश या भूखसे व्याकुल होकर तीर्थमें चला जाता है, अपनी बाणीसे गौ, बैल, पक्षी और घोड़ेकी भाषामें बोलता है, उसे हाथी, देव, भूत, प्रेत तथा निशाचरके चिह्न दिखायी देते हैं तो उसे पिशाच योनि प्राप्त हुआ ही मानें।

हे पक्षीन्द्र! प्राणीको स्वप्नमें प्रेतयोनिसे सम्बन्धित बहुत-से चिह्न दिखायी देते हैं। जो स्वप्नमें अपनी जीवित स्त्री, अपने जीवित भाई, पुत्र या पुत्रीको मरा हुआ देखे तो उसे प्रेतदोष समझना चाहिये। प्रेतदोषसे ही व्यक्ति स्वप्नमें भूख-प्याससे व्यथित होकर दूसरेसे याचना करता है तथा तीर्थमें जाकर पिण्डदान करता है। यदि स्वप्नमें घरसे निकलते हुए पुत्र, पिता, भ्राता, पति तथा पशु दिखायी दे तो ऐसा प्रेतदोषसे दिखायी देता है।

हे द्विजराज! स्वप्नमें ऐसे चिह्न दिखायी देनेपर प्रायश्चित्त करनेका विधान बताया गया है। घर या तीर्थमें स्नान करके मनुष्य बेलके वृक्षमें जल-तर्पण करे तथा वेदपाठगत ब्राह्मणको सम्पत् पूजा करके उन्हें काले धान्यका दान दे, तदनन्तर यक्षशक्ति हवन करके गुरुद्वयपुराणका पाठ करे। जो मनुष्य ब्रह्मापूर्वक प्रेतचिह्न बतानेवाले इस अध्यायका पाठ करता है अथवा सुनता है, उसका प्रेतदोष स्वतः ही नष्ट हो जाता है। (अध्याय २३)

## अल्पमृत्युके कारण तथा बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका निरूपण

श्रीगुरुद्वयने कहा—हे प्रभो! वेदका यह कथन है कि अकालमें किसीकी मृत्यु नहीं होती है तो फिर राजा या श्रोत्रिय ब्राह्मण किस कारणसे अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं। ब्रह्माने जैसा पहले कहा था, वह असत्य दिखायी देता है। हे भगवन्! वेदोंमें यह कहा गया है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णवाली द्विजातिपत्नी, शूद्र और स्लेच्छ रहते हैं, किस कारणसे कलिकालमें ये शतायु नहीं देखे जाते। बालक, धनवान्, निर्धन, सुकुमार, मूर्ख, ब्राह्मण, अन्य वर्णवाले, तपस्वी, योगी, महाज्ञानी, सर्वज्ञानरत, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा, अद्वितीय पराक्रमी—जो कोई भी हो इस वसुधातलपर अवश्य मृत्युको प्राप्त करते हैं। इनके गर्भमें आनेके साथ ही इनके पीछे मृत्यु लगी रहती है। इसका क्या कारण है?

श्रीभगवान्ने कहा—हे महाज्ञानी गुरुद्वय! तुम्हें साधुवाद है। तुम परे प्रिय भक्त हो। अतः प्राणीकी मृत्युसे सम्बन्धित गोपनीय बातको सुने।

हे पक्षिराज कश्यपपुत्र महातेजस्वी गुरुद्वय! विधातृद्वय

निर्धित की गयी मृत्यु प्राणीके पास आती है और शीघ्र ही उसे लेकर यहाँसे चली जाती है। प्राचीनकालसे ही वेदका यह कथन है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है, किंतु जो व्यक्ति निन्दित कर्म करता है वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है, जो वेदोंका ज्ञान न होनेके कारण वंशपरम्पराके सदाचारका पालन नहीं करता है, जो आलस्यवश कर्मका परित्याग कर देता है, जो सदैव त्याग्य कर्मको सम्मान देता है, जो जिस-किसीके घरमें भोजन कर लेता है और जो परस्त्रीमें अनुरक्त रहता है, इसी प्रकारके अन्य महादोषोंसे मनुष्यकी आयु क्षीण हो जाती है। ब्रह्माहीन, अपवित्र, नास्तिक, मङ्गलका परित्याग करनेवाले, परदोही, असत्यवादी ब्राह्मणकी मृत्यु अकालमें ही यमलोक ले जाती है। प्रजाकी रक्षा न करनेवाला, धर्माचरणसे हीन, क्रूर, व्यसनी, मूर्ख, वेदानुशासनसे पृथक् और प्रजापीडक शत्रियको यमका शासन प्राप्त होता है। ऐसे दोषी ब्राह्मण एवं शत्रिय मृत्युके वशीभूत हो जाते हैं और यम-यातनाको प्राप्त करते हैं। जो अपने कर्मोंका परित्याग तथा जितने मुख्य आचरण हैं,



उनका परित्याग करता है और दूसरेके कर्ममें निरत रहता है वह निश्चित ही यमलोक जाता है।<sup>१</sup> जो शूद्र द्विज-सेवाके बिना अन्य कर्म करता है, वह यमलोक जाता है। तदनन्तर वह उत्तम-मध्यम या अधम कोटिवाले यमलोकमें पहुँचकर दुःख भोगता है।

जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन नहीं होता है, मनुष्योंका वह दिन व्यर्थ ही जाता है—

स्नानं दानं जपो होमो स्वाध्यायो देवतार्चनम् ॥

यस्मिन् दिने न सेष्यन्ते स ऋषा दिवसो नृणाम् ।

(२४।१७-१८)

रसोद्भूत यह शरीर अनित्य, अध्रुव तथा आधारहीन है।

हे पक्षीन्द्र! अब मैं अन्न और जलसे बने हुए इस शरीरके गुणोंका वर्णन करता हूँ।

प्रातःकाल संस्कृत (सुपाणित) अन्न निश्चित हो सार्यकाल नष्ट हो जाता है, अतः उस अन्नके रससे पृष्ठ शरीरमें निक्षेपता कैसे आ सकती है? हे गरुड! अपने प्राकृत कर्मोंके अनुसार शरीर तो मिल चुका है, इस तरह यथायोग्य शरीर-निर्माणरूप आधा कार्य तो हो चुका है, पर आगे दुष्कर्मोंसे बचनेके लिये एवं अपनी मूलशक्तिके लिये परम औषधका सेवन करना चाहिये। क्या यह शरीर अन्नदाता पिता या जन्म देनेवाली माताका है अथवा उन दोनोंका है? यह राजाका है या बलवान्का है, अग्नि अथवा कुत्तेका है? कौटानु, शिष्टा अथवा भस्मके रूपमें परिणत होनेवाले इस शरीरके लिये श्रेष्ठतम यज्ञ कौन हो सकता है? पाप-विनाशके निमित्त प्राणीको उत्कृष्ट यत्न करना चाहिये। जीवने अनेक बार इस संसारमें जन्म ग्रहणकर मनु-

षाणी और शरीरके द्वारा पापकर्म किया है। मनुष्य-जन्म मिलनेपर प्राणीको पूर्व सभी जन्मोंके पापोंका स्मरण करके उसके द्वारा उन्हें विनष्ट करनेका प्रयास करना चाहिये। कर्मके अनुसार प्राप्त होनेवाले गर्भवासके महान् कष्टके देखकर भी जो मनुष्य पुनः गर्भवासमें आता है अर्थात् मानवयोनिमें ही उससे मुक्तिका प्रयास नहीं करता, वह पातकी अण्डजादि योनियोंमें जहाँ-जहाँ जाता है, वही अधिर्व्य-व्याधिर्व्य, क्लेश और वृद्धावस्थाजनित रूप परिवर्तन होते रहते हैं।<sup>१</sup>

हे द्विजोत्तम (पक्षिश्रेष्ठ)! गर्भवाससे निकला हुआ प्राणी अज्ञानस्पर्शी अन्धकारसे आच्छन्न हो जाता है। बाल्यावस्थामें रहनेके कारण वह सदसत्का कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है। यौवनान्धकारसे वह अन्धा हो जाता है। इस बातको जो देखता है वह मुक्तिका भागी होता है। प्राणी चाहे बालक हो चाहे युवा हो अथवा वृद्ध हो, वह जन्म लेनेके बाद मृत्युको अवश्य प्राप्त होता है। धनी-निर्धन, सुकुमार, कुसूप, मूर्ख, विद्वान्, ब्राह्मण या अन्य वर्णवाले जनोंकी भी वही निश्चिती होती है। मनुष्य चाहे तपस्वी, योगी, परमज्ञानी, दानी, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा, अतुलनीय पराक्रमी कोई भी हो मृत्युसे नहीं बच सकता है। बिना मनुष्यदेहको प्राप्त किये सुख-दुःखका अनुभव नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति प्राकृत कर्मके फलमें बँधकर मृत्युको प्राप्त करता है। गर्भसे लेकर पँच वर्षतक मनुष्यके ऊपर पापका अल्प प्रभाव पड़ता है, किंतु उसके बाद वह यथायोग्य पापके न्यूनाधिक प्रभावका भागी होता है। इस प्रकार प्राणीको बार-बार इस संसारमें आना-जाना पड़ता है। इस पृथ्वीपर मरा हुआ

१-विधातुर्विहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति । ततो तस्यैव पक्षेन्द काव्येण महामृत्युः ॥

मानुषः शतजीवीति पुरा वेदेन भाषितम् । विकर्मणः प्रभावेण तेषां यत्पि विनश्यति ॥

वेदान्त्यसन्नेनैव कुलधरा न सेवते । अलसमलसकर्मणो त्वाणो निषिद्धैः प्रहाराः सदा ॥

यत्र तत्र गृहेऽश्नन्ति परधेजस्तथा । एतैर्नैर्मादोर्नैर्जीवते चाबुधः शयः ॥

अश्रद्धानमस्तुर्ध्वं नास्तिकं त्यक्तमङ्गलम् । परादीहानुत्कर्षं ब्राह्मणं यत् (स) मन्दिरम् ॥

अरक्षितं राजानं नित्यं धर्मविक्रान्तिम् । कुरं व्यसनं मूर्खं वेदवादबहिष्कृतम् ॥ (२४।१९-२४)

२-पराप्रातः संस्कृतं सर्वं नृवमर्त्यं विनश्यति ॥ तदीयससन्मृष्टकाले का का निक्षेपता ॥ (२४।२१-२०)

३-कर्तव्यः परमो यज्ञः पातकस्य विनाशने । अनेकभयसम्भूतं पातकं तु त्रिधा कृतम् ॥

यदा प्राप्नोति मानुष्यं तदा सर्वं तपत्यपि । सर्वजन्तानि संमृत्य विनाशो कृतचेतनः ॥

अवेक्ष्य गर्भवासांश्च कर्मजा मह्यस्तथा । भानुषोदाकासी चेतसा भवति पातकी ॥

अण्डजादिषु भूलेषु यत्र यत्र प्रसर्पति । आधयो व्यधयः क्लेशा जराकृष्टविपर्ययः ॥ (२४।२३-२६)

मनुष्य दानादि सत्कर्मोंके प्रभावसे पुनः जन्म लेकर अधिक दिनोंतक जीवित रहता है।<sup>१</sup>

**सूतजीने कहा—**भगवान् कृष्णके ऐसे वचनको सुनकर गुरुद्वयोंने यह कहा—

**गुरुद्वेने कहा—**हे प्रभो! बालकको मृत्यु हो जानेपर पिण्डदानादि क्रियाओंको कैसे करना चाहिये? यदि विपन्नावस्थामें कैसे हुए भूषणकी मृत्यु गर्भमें ही हो जाती है अथवा बूढ़ाकरणके बीच शिशु मर जाता है तो कैसे, किसके द्वारा दान दिया जाना चाहिये? मृत्युके बाद कौन-सी विधि है?

गुरुद्वेके ऐसे वाक्यको सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—  
हे गुरुद्व! यदि स्त्रीका गर्भपात हो जाय अथवा गर्भपात ही जाय तो जितने मासका गर्भ होता है, उतने दिनका अशीघ्र मानना चाहिये। आत्मकल्याणको इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको उसके लिये कुछ भी नहीं करना चाहिये। यदि जन्मसे लेकर बूढ़ाकरण-संस्कारके बीच बालककी मृत्यु हो जाती है तो उसके निमित्त यथाशक्ति बालकोंको दूधका भोजन देना चाहिये। यदि बूढ़ाकरण संस्कार होनेके बाद पाँच वर्षतक बालककी मृत्यु होती है तो शरीरदाहका विधान है, उसके लिये दूध देना चाहिये और बालकोंको भोजन कराना चाहिये। पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर अपनी जातिके लिये विहित सम्पत्त और्ध्वदैहिक क्रियाओंको सम्पन्न करना अपेक्षित है। ऐसे मृत बालकके कल्याणार्थ जलपूर्ण कुम्भ तथा खीरका दान करना चाहिये; क्योंकि उसका ऋणानुबन्ध हो जाता है।

हे पक्षीन्द्र! जन्म लेनेवालेकी मृत्यु और मृत्युको प्राप्त हुए प्राणीका जन्म निश्चित है। अतः पुनः शरीरका जन्म न

हो इसके लिये व्यक्तिको जीवनकालमें जो कुछ अच्छा लगता था, उसीका दान करना चाहिये। ऐसा न करनेपर उस प्राणीका जन्म निर्धनकुलमें होता है। वह स्वल्पायु और निर्धन होकर प्रेम तथा भक्तिसे दूर रहता है। उसे पुनर्जन्म प्राप्त होता है, अतः मृत शिशुके लिये यथेष्टित दान आवश्यक है। ऐसा होनेपर ब्राह्मण-बालकोंको मिष्टान्न-भोजन अवश्य देना चाहिये। पुराणमें इससे सम्बन्धित जिस गाथाका गान हुआ है सब प्रकारसे वह मुझे सत्य प्रतीत होती है। गाथा इस प्रकार है—

भोज्ये भोजनशक्तिः रतिशक्तिर्वरस्त्रियः ॥

विभवे दानशक्तिः शाल्पस्य तपसः फलम् ।

दानाद्भोगानवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात् ।

सुभाषणान्मृते वस्तु स विद्वान्धर्मवित्तयः ॥

अदत्तदानाच्च

भवेद्वरिद्रो

दरिद्रभावाच्च

करोति पापम् ।

पापप्रभाषान्नरकं

प्राप्ति

पुनर्दरिद्रः

पुनरेव

पापी ॥

( २४।४४—४५ )

भोज्य वस्तु एवं भोजनशक्ति, रतिशक्ति रहनेपर श्रेष्ठ स्त्रीकी प्राप्ति तथा धन-वैभव एवं दानशक्ति—ये तीनों अल्प तपस्याका फल नहीं हैं ऐसा साध-साध होना बड़ा ही दुर्लभ है। दान देनेसे प्राणीको भोगोंकी प्राप्ति होती है। तीर्थसेवनसे सुख मिलता है और सुभाषण करता हुआ जो मरता है, वह विद्वान् धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ है। दान न देनेपर प्राणी दरिद्र होता है, दरिद्र होनेपर पाप करता है, पापके प्रभावसे नरकमें जाता है, तदनन्तर बार-बार वह दरिद्र एवं पापी बनता जाता है। (अध्याय २४)

१-गर्भपातदिनिर्मुक्तस्त्वज्ञानतिमिरावृतः । न जानति खगैश्च बालपातं स्याद्विदः ॥

यौवने तिमिरावृतः यः पर्यति स मुक्तिभङ्गः । अष्टावन्मृत्युजानोति पातो वा स्थविरो युक्तः ॥

सधनो निर्धनश्चैव सुकुम्भरः कुत्राप्यप्यु । अविद्वान्भवे विद्वान् ब्राह्मणमिवचरो जनः ॥

तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नरः । महादयस्तः क्षीयन् धर्मकृत्यनुत्पन्नजन्मः ।

पित्वा मनुष्यदेहं तु सुखं दुःखं न विन्दति ॥

प्राकृतैः कर्मपाशैस्तु मृत्युमानोति मानवः । आधातान्पञ्च वर्षाणि स्वस्वपापैर्विपच्यते ॥

पञ्चवर्षाधिको भूया महाकर्मविपच्यते । योनिं पूर्यते यस्मिन्मृतोऽप्यासीति ज्ञेयं च ॥

मृते दानप्रभावेन जीवन्मर्त्येक्षं भुवि । ( २४।२७—३३ )

## बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका स्वरूप, सत्पुत्रकी महिमा तथा औरस और क्षेत्रज आदि पुत्रोंद्वारा अन्त्येष्टि करनेका फल

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! इसके बाद अब मैं पुरुष-स्त्रीका निर्णय कहूँगा। बालक जीवित हो अथवा मृत्युको प्राप्त हो गया हो, पाँच वर्षसे अधिक अवस्था हो जानेपर उसमें पुरुषत्व प्रतिष्ठित हो जाता है। वह अपनी समस्त इन्द्रियोंकी जान लेता है और रूप तथा कुरूपके विपर्ययको जाननेकी क्षमता भी उसमें आ जाती है। पूर्वजन्माजित कर्मफलसे प्राणियोंका वध और बन्धन होता है। पाप ही सभी लोगोंको नष्ट करता है।

हे पक्षिराज! गर्भके नष्ट होनेपर कोई और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं है। शिशुकी मृत्यु होनेपर दुग्धका दान देना चाहिये, शैशवके बादकी अवस्थामें बालककी मृत्यु होनेपर पायस तथा खीरका दान देना चाहिये। कुमारकी अवस्थामें मृत्यु होनेपर एकादशाह, द्वादशाह, वृषोत्सर्ग तथा महादानको छोड़कर अन्य सभी और्ध्वदैहिक कृत्य करनेका आदेश किया गया है। मरे हुए कुमार और बालकोंके निमित्त भोजन-वस्त्र तथा वेहन देना चाहिये। बाल, वृद्ध अथवा तरुणके मरनेपर घट-बन्धन करना चाहिये।

हे खगश्रेष्ठ! दो माह कम दो वर्षतकके बालककी मृत्यु होनेपर उसकी पृथ्वीमें गङ्गा खोदकर गाड़ देना चाहिये, इससे अधिक आयुवाले मृत बालकके लिये द्वादह-संस्कारका ही विधान उत्तम है। सभी शास्त्रोंमें जन्मसे लेकर दौत निकलनेतककी अवस्थावाले बच्चेको शिशु, चूड़ाकरण-संस्कारतककी अवस्थावालेको बालक और उपनयन-संस्कारतककी आयुवालेको कुमार कहा गया है।

हे गरुड! उपनयन-संस्कारका विधान न होनेके कारण शूद्रादिका अन्तिम संस्कार कैसे होना चाहिये? यह संशय है। गर्भाधानसे नौ मासतकके कालको छोड़कर सोलह मासतकके बच्चेको शिशु, सत्ताईस मासतकके अवस्थाप्राप्त बच्चेको बालक, पाँच वर्षकी आयुवालेको कुमार, नौ वर्ष-वालेको पीगण्ड, सोलह वर्षवालेको किशोर और उसके बादका जीवन-काल है। पाँच वर्षकी अल्पायुमें मृत कुमार

चाहे उसका व्रतबन्ध हुआ हो अथवा न हुआ हो, वह पूर्वकथित विधानके अनुसार दशपिण्ड-कृत्यको कामना करता है। स्वल्प कर्म, स्वल्प प्रसंग, स्वल्प विषयबन्धन, स्वल्प शरीर तथा स्वल्प वस्त्रके कारण प्राणी स्वल्प क्रियाकी इच्छा करता है।<sup>१</sup> जीव जबतक वृद्धिकी ओर बढ़ रहा हो, जबतक वह सांसारिक विषय-वासनाओंसे घिरा हो, तबतक उसे अपने उस मृत परिजनको वे सभी भोज्य पदार्थ और आवश्यक वस्तुएँ देनी चाहिये, जो उसके लिये उपजीव्य<sup>२</sup> और इच्छित थीं।

हे खगेश! चाहे बालक हो या वृद्ध हो अथवा युवा हो सभी प्राणी घटकी इच्छा करते हैं। सर्वव्रगात्मी देही जीवात्मा सदैव सुख-दुःखका अनुभव करता है। जिस प्रकार सौंप अपनी पुरानी केंचुलका परिष्ठाग कर देता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका परिष्ठाग कर अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला होकर तथा यायुभूत हो भूखसे पीड़ित हो जाता है। अतः बालककी भी मृत्यु होनेपर निश्चित ही दान देना चाहिये। जन्मसे लेकर पाँच वर्ष-तककी अवधिमें मरा हुआ प्राणी दानमें दिये गये असंस्कृत<sup>३</sup> भोजनका उपभोग करता है। यदि पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु हो जाती है तो वृषोत्सर्ग और सपिण्डीकरणको छोड़कर द्वादशाहके अनेपर षोडश श्राद्ध करने चाहिये। उस दिन यथाक्रम पायस (खीर)-से बने पिण्डका दान देना चाहिये। यह पिण्डदान गुड़से भी किया जा सकता है। उसी दिन सान्नादक कुम्भ और पददान देना चाहिये। ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति महादानादि भी करने चाहिये। पक्षिश्रेष्ठ! दीप-दानादि जो कुछ शेष कर्म हैं उन्हें पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले कुमारकी मृत्यु होनेपर करना चाहिये।

हे पक्षिराज! व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) होनेसे पहले जिसका मरण हुआ है उसकी संतुष्टिके लिये पूर्वोक्त कर्म करना चाहिये। यदि मनुष्यके द्वारा सारी क्रिया नहीं की

१-जिस व्यक्तिका मरण हुआ है वह अपनी अवस्थाके अनुसार एवं अपने कर्मोंके अनुसार जिस मात्रामें, जिस रूपमें अन्न, वस्त्र आदिसे तृप्त होता रहा है उसी मात्रामें उसी रूपमें उसकी और्ध्वदैहिक क्रियामें अन्न, वस्त्र आदि देना चाहिये।

२-पुष्टि एवं तुष्टिके लिये उपयोगी।

३-मन्त्र आदिके बिना दिया हुआ अन्न।

जाती है तो वह जीव पिशाच हो जाता है। व्रतबन्धके पूर्व मृत बालकके लिये पूर्वोक्त सब कर्म करना चाहिये। उसके बाद 'स्वाहा' शब्दसे समन्वित मन्त्रके द्वारा षोडश एकोटि श्राद्ध करे। अश्वि<sup>१</sup> कुशसे श्वेत तिलके द्वारा अपसव्य होकर समस्त क्रिया करनेसे पितृगण परम गतिको प्राप्त करते हैं और दीर्घायु होकर पुनः अपने ही कुलमें जन्म लेते हैं।

सभी प्रकारके सुखोंको प्रदान करनेवाला पुत्र माता-पिताके प्रेमका अभिवर्धक होता है। जैसे एक आकाश, एक चन्द्र और एक आदित्य आश्रय-भेदसे पृथक्-पृथक् चटादिमें दिखायी देते हैं, वैसे ही पिताका आत्मा सभी पुत्रोंमें सदैव विचरण करता रहता है। जिसको जो प्रकृति शुक्र-शोणित-संगमके पूर्व होती है, वही पुत्रोंमें अन्तर संग्रहित हो जाती है। वैसे ही वे अपने जीवनमें कर्म करते हैं। किसीका पुत्र पिताका रूप लेकर उत्पन्न होता है, पिताकी अपेक्षा कोई अत्यधिक रूपवान्, गुणवान् तथा दानपरायण होता है। इस संसारमें कोई भी प्राणी एक-समान न हुआ है और न होगा। अन्धोंसे अन्धा, मूर्खोंसे मूर्ख, बहिरेसे बहिरा तथा विद्वान्से विद्वान् जन्म नहीं लेता है। इस सृष्टिमें कहीं भी अनुरूपता दिखायी नहीं देती।

**गुरुद्वये कथा—**औरस और क्षेत्रज आदि दस प्रकारके पुत्र माने गये हैं। जो संगृहीत (कहींसे प्राप्त) तथा दासीसे उत्पन्न हुआ है, उससे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? मृत्युके वशमें गये हुए प्राणीको उस पुत्रसे कौन-सी गति प्राप्त होती है? जिस व्यक्तिके न पुत्री है और न पुत्र है, न दीहित्र (सड़कीका पुत्र-पती) है, उसका श्राद्ध किसके द्वारा किस विधिसे होना चाहिये?

**श्रीभगवान्ने कहा—**हे गुरुद्वय! पुत्रके सुखको देख करके मनुष्य पितृश्रणसे मुक्त होता है। पौत्रको देखनेसे मनुष्यको तीनों श्रणसे मुक्ति मिल जाती है। पुत्र-पौत्र तथा प्रपौत्रोंके होनेसे व्यक्तिको आनन्द्य लोक और स्वर्गकी प्राप्ति होती है।<sup>२</sup> जो क्षेत्रज पुत्र हैं, वे पिताको मात्र लौकिक सुख प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं। औरस पुत्रको विधिवत्

पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। अन्य पुत्र एकोटि श्राद्ध करते हैं, पार्वण नहीं। ब्राह्म-विवाहके नियमोंसे विवाहिता स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र पिताको स्वर्ग ले जाता है। संगृहीत पुत्र प्राणीको अशोणितमें ले जाता है। यदि वह सांवत्सरिक श्राद्ध करता है तो उससे पिताको नरककी प्राप्ति होता है। अन्नदानके अतिरिक्त वह सब प्रकारका दान अपने पालक पिताके लिये कर सकता है। संगृहीत पुत्रको एकोटि श्राद्ध ही करना चाहिये पार्वण नहीं। माता-पिताके लिये वार्षिक श्राद्ध करके वह पापसे लिप्त नहीं होता। यदि वह एकोटि श्राद्धका परित्याग करके पार्वण श्राद्ध करता है तो अपनेको और पितरोंको यमलोक पहुँचाता है। जो संगृहीत पुत्र और दासीसे उत्पन्न हुए पुत्रादि हैं, उन्हें तीर्थमें जाकर पितृश्राद्ध करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये।

यदि संगृहीत पुत्र 'पाक-श्राद्ध' करता है तो उसके श्राद्धको वैसे ही वृथा समझना चाहिये, जैसे शूद्रान्त्रसे द्विजत्व नष्ट हो जाता है। वह श्राद्ध परलोकमें गये हुए पिता-पितामहादि पितरोंको प्रसन्न नहीं कर पाता। हे पक्षिश्रेष्ठ! ऐसा जानकर व्यक्तिको हीन जातिमें उत्पन्न हुए पुत्रोंका परित्याग<sup>३</sup> कर देना चाहिये। [यदि अपरिणीत] ब्राह्मणोंके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा पुत्र उत्पन्न किया जाता है तो वह चाण्डालसे भी नीच होता है। जो पुत्र संन्यासीसे जन्म लेता है या शूद्रमें ब्राह्मणोंके गर्भमें उत्पन्न होता है तो ऐसे पुत्रोंको तुम चाण्डाल ही समझो। जो सगोत्रा कन्यासे जन्म ग्रहण करता है, वह भी चाण्डाल ही होता है। हे खगेश्वर! यथाविधान विवाहिता स्त्रीसे पुत्र पैदा करके व्यक्ति स्वर्ग जाता है। ऐसे सदाचारी पुत्रोंके आचरणसे मनुष्यको सुखकी प्राप्ति निश्चित है। जो दुराचारी पुत्र है वह अपने क्रूरिस्त आचरणसे पिताको नरकमें ले जाता है। हीन जातिसे उत्पन्न हुआ सदाचारी पुत्र अपने माता-पिताको सुख प्रदान करता है।<sup>४</sup> जो मनुष्य कलिकालके पापसे निर्मुक्त है, सिद्ध जनोंसे पूजित है, देवलोककी अप्सराओंके

१-पवित्रक या मोटक आदिके बिना चन्दावे ही कुतका उपयोग अश्वि कुश है।

२-मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुखतो पैतृकादृणात्॥

पौत्रस्य दर्शनाजन्तुपुत्र्यते च श्रणत्रयात्॥ लोकानन्दं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रैः॥ (२५। ३३-३४)

३-अन्न पकाकर उसके द्वारा किया गया श्राद्ध पाक-श्राद्ध है।

४-ऐसे पुत्रोंसे यथासम्भव अपना धार्मिक कृत्य नहीं करवाना चाहिये।

५-इसका तात्पर्य सदाचारीको महिमासे है।



द्वारा सम्मानमें डुलाये जा रहे खैर और पहनायी गयी मालासे बन्धु-बान्धवों, पुत्र-पौत्रों और प्रपौत्रोंका उद्धार कर देता है। सुशोभित है, वह अकेले ही सौ पितरों तथा नरकमें गये हुए (अध्याय २५)

## सपिण्डीकरण श्राद्धका महत्त्व, प्रतिवर्ष विहित मासिक श्राद्ध आदिकी अनिवार्यता, पति-पत्नीके सह-मरण आदिकी विशेष परिस्थितिमें पाक एवं पिण्डदान आदिकी विभिन्न व्यवस्थाका निरूपण तथा बभ्रुवाहनकी कथा

गुरुडने कहा—हे देवव्रद्ध! हे प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा करके यह बतायें कि मेरे हुए प्राणियोंका सपिण्डीकर्म किस समय करना चाहिये? सपिण्डीकर्म होनेपर प्रेत कैसी गति प्राप्त करता है और जिस प्रेतका सपिण्डीकर्म नहीं होता, उसकी कैसी गति होती है? स्त्री और पुरुषका किसके साथ सपिण्डीकर्म होना चाहिये। हे भुरेखर। स्त्री और पुरुष एक साथ सपिण्डीकर्मके भागीदार बनकर कैसे उत्तम गति प्राप्त कर सकते हैं? पतिके जीवित रहते हुए स्त्रियोंका सपिण्डीकरण कैसे हो सकता है? वे किस प्रकार पतिलोक या स्वर्गको जाती हैं? अन्यदोहण हो जानेपर स्त्रियोंका श्राद्ध कैसे होता है? उनका वृषोत्सर्ग किस प्रकारसे किया जाय? हे स्वामिन्। सपिण्डीकरण हो जानेपर मृतकके लिये धट-दान कैसे हो? हे हरे! आप संसारके कल्याणार्थ इसे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पशुन्। जिस प्रकार सपिण्डीकरण होता है, वैसा ही मैं तुम्हें सुनाऊँगा। हे खगराज। जब मनुष्य मरनेके बाद एक वर्षकी महापथ-यात्रा करता है तो पुत्र-पौत्रादिके द्वारा सपिण्डीकरण हो जानेपर वह पितृलोकमें चला जाता है। इसलिये पुत्रको पिताका सपिण्डीकरण करना चाहिये। वर्षके पूर्ण हो जानेपर पिण्डप्रवेशन अर्थात् सपिण्डीकरण करना चाहिये। हे पशियोंके सिंह। वर्षके अन्तमें निश्चित रूपसे प्रेत-पिण्डका मेलन होता है। पितृपिण्डोंके साथ प्रेत-पिण्डका सम्मिलन हो जानेपर वह प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह प्रेत नामका परित्याग करके पितृगण हो जाता है। अपने गोत्र या सापिण्ड्यमें जितने लोगोंको अतीथ शस्त्रानुसार होता है उनके यहाँ यदि विवाह या कोई शुभ

कार्य होना है तो तीसरे पक्ष या छः मासमें भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है।

हे खगेखर। गृहस्थके घरमें यदि किसीका मरण हुआ हो तो विवाह आदि शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। जबतक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता है तबतक भिक्षुक उस घरकी भिक्षाको स्वीकार नहीं करता है। अपने गोत्रमें अतीथ तबतक रहता है, जबतक पिण्डका मेलन नहीं हो जाता है। पिण्डमेलन होनेपर 'प्रेत' शब्द निवृत्त हो जाता है। कुल-धर्म अनन्त हैं, पुरुषकी आयु क्षयशील है और शरीर नाशवान् है, इस कारण बारहवाँ दिन ही सपिण्डीकरण-कर्मके लिये प्रशस्त समय होता है। मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो अथवा न रहा हो, उसका सपिण्डीकरण द्वादशाहकी ही कर देना चाहिये। उत्पन्नहो जायियोंने बारहवें दिन, तीसरे पक्षमें, छठे मासमें अथवा वर्ष पूर्ण होनेपर सपिण्डीकरणका विधान किया है।

पुत्रवान्का सपिण्डीकरणके बाद कभी भी एकोद्विंश नहीं करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पश्चात् जहाँ-जहाँ श्राद्ध किया जाय, पुत्रवान्का एकोद्विंश कभी न किया जाय। यहाँ-यहाँ तीन-तीन श्राद्ध (पार्वण श्राद्ध) करने आवश्यक हैं, अन्यथा कर्ता पितृपातक कहलाता है। अशक्त होनेपर भी पार्वण श्राद्ध करना चाहिये।<sup>१</sup> ऐसा मुनियोंने कहा है। यदि दिन और मास न ज्ञात हो तो उनका पार्वण श्राद्ध ही करना उचित है। पितरोंके साथ वह पिता इस लोकमें पुत्रके द्वारा दिये गये दानका फल तबतक नहीं प्राप्त करता, जबतक उसके शरीरकी उत्पत्ति पुनः [दशगात्रके पिण्डसे] नहीं हो जाती। ऐसी स्थितिमें पुत्रद्वारा किये गये इन्हीं सोलह श्राद्धोंसे प्रेत दमपाशके बन्धनसे मुक्त होता है। पुत्ररहित

१-(क) यहाँपर उनमासिक आदि तथा सांकेतिक [मृत्यु-विधि आदि] श्राद्ध एकोद्विंश श्राद्धके स्थानपर पार्वण श्राद्धकी विधि कल्याणनके मतसे लिखी गयी है। जो कुछ प्रदेशोंमें भी प्रचलित है। परंतु सामान्यतः ऊपरीसक, सांकेतिकआदि श्राद्धोंमें तीनके मत्तनुसार एकोद्विंश-विधिसे ही श्राद्ध किया जाता है।

(ख) सपिण्डीकरण कृत्वा गयां गत्वा च धर्मवित्। एकोद्विंशं न कुर्वीत सागिनोऽग्निमानसि ॥ (दिव्यौदासप्रकाश)

पुरुषका सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये।<sup>१</sup> पतिके जीवित रहनेपर स्त्रीका भी सपिण्डन नहीं होना चाहिये।

जिस कन्याका विवाह ब्राह्मदि-विवाह-विधिसे हुआ है, उसकी पिण्डोदक-क्रियाएँ पतिके गोत्रसे करनी चाहिये। आसुरदि-विधिसे जिसका विवाह हुआ है, उसकी पिण्डोदक-क्रिया पिताके गोत्रसे करनी चाहिये। पिताका सपिण्डीकरण सदैव पुत्र करे। यदि पुत्र नहीं है तो स्वयं उसकी पत्नी उस क्रियाका निर्वाह करे। उसके भी न रहनेपर सहोदर भाई, भाईका पुत्र अथवा शिष्य सपिण्डीकरण कर सकता है। सपिण्डीकरण करके वह नान्दीमुख श्राद्ध करे। हे खग! पुत्र न रहनेपर ज्येष्ठ भाईका सपिण्डीकरण कनिष्ठ भाई करे। उसके अभावमें भतीजा या पत्नी उस कर्मको सम्पन्न करे। मनुने कहा है कि—यदि सहोदर भाइयोंमेंसे एक भी भाई पुत्रवान् हो जाय तो उसी पुत्रसे अन्य सभी भाई पुत्रवान् हो जाते हैं।<sup>२</sup> यदि सभी भाई पुत्रहीन हैं तो उनका सपिण्डीकरण उनकी पत्नीको करना चाहिये अथवा वह पत्नी स्वयं न करके ऋत्विज्से या पुरोहितसे कराये।

बूढ़ाकरण एवं उपनयन-संस्कारसे संस्कृत पुत्र पिताके श्राद्धको करे। जिस पुत्रका उपनयन-संस्कार नहीं हुआ है केवल बूढ़ाकरण-संस्कार हुआ है वह त्राट्में स्वधाका उच्चारण तो कर सकता है पर वेदमन्त्रका उच्चारण नहीं कर सकता। स्त्रीका सपिण्डीकरण उसके पति, ससुर तथा परशुरुरके साथ करना चाहिये। स्त्री-जातिका यह कर्म भतीजा तथा सहोदर छोटा भाई भी कर सकता है। संवत्सरपूर्ण होनेके पहले अथवा वर्षके पूर्ण होनेपर दूसरे वर्षके संधिकालमें जिन प्रेतोंका सपिण्डीकरण होता है, उनकी क्रिया पृथक् नहीं की जाती। हे वत्स! सपिण्डीकरण

हो जानेके पश्चात् पृथक् क्रिया करना निन्दनीय माना गया है। जो व्यक्ति अपने पिताको पृथक् पिण्डदान देता है, वह पितृहन्ता होता है। सपिण्डीकरणके बाद पृथक् श्राद्ध उचित नहीं है। यदि कोई पृथक् पिण्डदान करता है तो वह पुनः सपिण्डीकरण करे। जो मनुष्य सपिण्डीकरण करके एकोदित श्राद्ध करता है, वह स्वयंको तथा प्रेतको यमराजके अधीन कर देता है।

हे पशुन्! वर्षपर्यन्त प्रेतसे सम्बन्धित जो भी क्रिया की जाय उसके नाम और गोत्रके सहित विद्वान् व्यक्ति करे। सपिण्डीकरण कर देनेपर भोजन और घटादिका दान, पददान तथा अन्य जो दान हैं उन्हें एकको (मृत व्यक्तिको) ही उद्देश्य करके देना चाहिये। वर्षभरके लिये अन्न और जलपूर्ण घटादिकी संख्याका निर्धारण करके ब्राह्मणको प्रदान करे। पिण्डदान देनेके पश्चात् यथाशक्ति वर्षभरके लिये उपयोगी समस्त सामग्री दानमें दे। ऐसा होनेपर मृत व्यक्ति दिव्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपूर्वक यमलोक चला जाता है।<sup>३</sup>

पिताके जीवित रहनेके कारण मृत पुत्रका पिताके साथ सपिण्डीकरण नहीं हो सकता अर्थात् उसका सपिण्डीकरण पिण्डपह आदिके साथ होगा ऐसे ही पतिके जीवित होनेपर स्त्रियोंका सपिण्डीकरण उसकी श्वशू आदिके साथ होगा।<sup>४</sup> पतिकी मृत्यु हो जानेके बाद चौथे दिन जो पतिव्रता स्त्री अपने शरीरको अग्निमें समर्पित कर देती है, उसका बृधोत्सर्गादि कर्म पतिकी क्रियाके ही दिन करना चाहिये। पुत्रिका पुत्रोत्पत्तिके पूर्व पतिके गोत्रवाली होती है। पुत्रोत्पत्तिके बाद वह पुनः पिताके गोत्रमें आ जाती है। पुत्रिका उस कन्याको कहते हैं, जिस कन्याका पिता

१-उपसृक्त श्लोकोंमें 'अपुत्रस्य' यह शब्द 'पुत्रोत्पत्ति' की विधिकी दृष्टिसे ही प्रयोजित है। इसका तात्पर्य अपुत्रवान् पुरुषके सपिण्डन-निषेधमें नहीं है। अन्यथा—

पुत्राभावे स्वयं कुर्वुः स्वभर्तृणामन्यथाकम् । सपिण्डीकरणं तत्र ततः कार्यमन्यथा ॥ ( ब्राह्मसंहिता पृष्ठ २४३ )

'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् पत्याभावे सहोदरः।' ( २६/१३ )

'सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्वीत् सपिण्डनम्।' ( २६/२७ )

—इन शब्दोंका विरोध हो जायगा। अतः यथाविधि योग्य पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

२-भ्रातृणामेकजातानामेकश्रेष्ठः पुत्रवान् भवेत् । सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिको मयुरवर्णी ॥ ( २६/२६ )

३-अने पानीयसहित संख्या कुत्वादिदकस्य च । दत्तव्यं ब्राह्मणे पश्चिज्जलपूर्णघटद्विकम् ॥

पिण्डदाने तस्य सकला वर्षवृत्तिः स्वर्गादितः । दिव्यदेहो विमानस्यः सुखं पति ययातयम् ॥ ( २६/३५-३६ )

४-पिताके जीवित रहनेपर पुत्रके मर जानेसे पुत्रका सपिण्डीकरण पिताके साथ न करके पितामहके साथ करनेका विधान है। इसी प्रकार पतिके जीवित रहनेपर मृत पत्नीका पतिके साथ सपिण्डीकरण न करके उसके श्वशू, परश्वशू और बृद्ध परश्वशू (सास, परसास, बृद्धपरसास) के

विवाहके समय जामातासे यह तय कर लेता है कि इस कन्यासे जो पुत्र पैदा होगा वह मेरा पुत्र होगा। यदि स्त्री अपने पतिके साथ अग्निमें आरोहण करती है तो उसको उसके पतिके साथ समस्त और्ध्वदैहिक क्रिया करने चाहिये, किंतु क्षय-तिथिमें पुत्रको उसका श्राद्ध पृथक्-पृथक् करना चाहिये। यदि पति-पत्नी पुत्ररहित हैं और वे दोनों एक ही दिन मर जाते हैं तथा उनका दाह-संस्कार एक ही चितापर होता है तो उन दोनोंके श्राद्धोंको पृथक्-पृथक् करना चाहिये, किंतु पत्नीका सपिण्डीकरण पतिके साथ ही होगा। यदि पतिके साथ पत्नीका पिण्डदान पृथक्-पृथक् होता है तो उस पिण्डदानसे वह दम्पति आपत्ति नहीं होता, यह मेरा सत्य वचन है। यदि पति-पत्नी दोनोंका एक ही चितापर दाह संस्कार होता है तो उन दोनोंके लिये पाक एक ही साथ बनाया जाय, किंतु पिण्डदान पृथक्-पृथक् होना चाहिये। एकादशहकी वृषोत्सर्ग, षोडश प्रेतश्राद्ध, घटादि-दान, पददान और जो महादान हैं उन्हें पति-पत्नीका वर्षपर्यन्त पृथक्-पृथक् ही करना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रेतको चिरकालीन संतुष्टि प्राप्त होती है।

एक गोत्रसे सम्बन्धित एक साथ मरे हुए स्त्री अथवा पुरुषसे सम्बद्ध-कृत्यमें आहुतिकी वेदी एक ही होनी चाहिये। किंतु होम पृथक्-पृथक् होना चाहिये। पति एवं पत्नीका एक साथ मरण होनेपर उनका एकादशहका श्राद्ध एवं उनके निमित्त पिण्डदान, भोजन आदि पृथक्-पृथक् होगा, पर पाककी व्यवस्था एक ही होगी—यह विधान केवल पति-पत्नीके एक साथ मरणमें ही है अन्य किसीके मरणमें ऐसा विधान गृहीत है। पुत्र माता-पिताके लिये एक ही पाकसे यथाविधान श्राद्ध करता है। विकिरान्नदान एक और पिण्डदान पृथक्-पृथक् करने चाहिये। इसी विधिका पालन तीर्थ, पितृपक्ष अथवा चन्द्र और सूर्य-ग्रहणके अवसरमें भी होना चाहिये।

जब स्त्री अपने मृत पतिके साथ अग्निमें जलती है तो

अग्नि उसके शरीरको अवश्य जला देती है, किंतु आत्माको कष्ट नहीं दे पाती है, जिस प्रकार अग्निमें प्रज्वलित धातुओंका मात्र मल ही जलता है, उसी प्रकार अमृतके समान अग्निमें प्रविष्ट हुई नारीका शरीर दग्ध होत है। पुरुष मुट्ठ होकर दिव्य देहधारी हो जाता है, जिसके कारण वह खोलते हुए तेल, दहकते हुए लौह तथा अग्निसे कदापि नहीं जलता, इसी प्रकार पतिके साथ चितामें जली हुई स्त्रीको कभी जला हुआ नहीं मानना चाहिये; क्योंकि उसकी अन्तरात्मा मरे हुए पतिकी अन्तरात्मासे मिलकर एक हो जाती है।

यदि स्त्री पतिका साथ छोड़ करके अन्यत्र अपने श्रावोंका परित्याग करती है तो वह पतिलोकमें तबतक नहीं पहुँच पाती, जबतक प्रलय नहीं हो जाता। धन-दौलतसे युक्त माता-पिताको छोड़कर जो स्त्री अपने मरे हुए पतिके अनुगमन करती है, वह चिरकालाक सुखोपभोग करती है। वह पतिसंयुक्ता नारी उस स्वर्गमें साढ़े तीन करोड़ दिव्य वर्षोत्तक नक्षत्रोंके साथ स्वर्गमें रहकर अन्तमें महती प्रीति प्राप्त करके ऐश्वर्यसम्पन्न कुलमें उत्पन्न होती है।

धर्मपूर्वक विवाहित जो स्त्री यदि पति-संगति नहीं करती है, तो जन्म-जन्मान्तरतक दुःखी, दुःशीला और अप्रियवादिनी होती है। जो स्त्री अपने पतिको छोड़कर परपुरुषकी अनुगमिनी हो जाती है, वह अन्य जन्मोंमें चमगादड़, छिपकली, गौहनी अथवा द्विमुखी सर्पिणी होती है। अतः स्त्रीको मन-बानी और कर्म—इन सभीके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अपने मृत या जीवित पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिके जीवित रहते हुए अथवा उसके मरनेपर जो स्त्री व्यभिचार करती है, वह अनेक जन्मोंतक वैधव्य जीवन प्राप्त करती है और दुर्भाग्य उसका साथ नहीं छोड़ता। देवता और पितरोंको श्रद्धापूर्वक जो कुछ दिया जाता है, उसका समग्र फल उसे पतिकी पूजा करनेसे ही

साथ सपिण्डीकरण करना चाहिये। इसके समर्थनमें वे वाक्य द्रष्टव्य हैं—

अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम् । श्राद्धादिभिः सहैकाल्यः सपिण्डीकरणं धत्वेत् ॥ (पैटीगमि)

अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम् । श्रद्धाज्जदिभिः साधयेत् धर्मेण युज्यते ॥ (व्यास)

प्राप्त हो जाता है, इसलिये स्त्रीको पतिकी ही पूजा करने चाहिये।

हे पक्षिश्रेष्ठ! पातिव्रत्यधर्मरूप सत्कर्मका पालन करनेपर स्त्री चिरकालतक पतिलोकमें निवास करती है। जबतक सूर्य और चन्द्र विद्यमान हैं, तबतक वह स्वर्गमें देवबुल्य बनी रहती है। उसके बाद दोषायु प्राप्त करके इस लोकमें वैभवशाली कुलमें जन्म लेती है तथा कभी भी पति-वियोगका दुःख नहीं झेलती।

हे खगराज! मैंने यह सब तुम्हें बता दिया। अब मृत प्राणीको सुख प्रदान करनेवाले विशेष कर्मको बताऊँगा। मृत्युके बाद द्वादशाहके दिन यथाविधि सपिण्डनादि समस्त कार्य करके वर्षपर्यन्त प्रतिदिन जलपूर्ण घट और अन्नका दान एवं मासिक श्राद्ध करना चाहिये। हे पक्षिन्! प्रेतकार्यको छोड़कर अन्य किये हुए कार्यकी आवृत्ति नहीं होनी चाहिये<sup>१</sup>। यदि कोई मनुष्य अन्य कर्म करता है तो पूर्वका किया गया कर्म विनष्ट हो जाता है। मृतकके द्वादशाहके दिन विहित कृत्य वर्षपर्यन्त पुनः करने चाहिये, इससे प्रेत अध्वसुख प्राप्त करता है। प्रतिमास जलसे परिपूर्ण सान्नीदक घटका दान करना चाहिये। हे तार्क्ष्य! वृद्धिश्राद्धके कारण जो पुत्र अपने पिताका सपिण्डीकरण श्राद्ध कर देता है तो भी उसे प्रत्येक मासमें एक पिण्ड, अन्न और जलसे पूर्ण कुम्भका दान करना चाहिये।

तार्क्ष्यने कहा—हे विभी! आपने जिन प्रेतोंका वर्णन किया है, वे इस धरतीपर कैसे निवास करते हैं; उनके रूप किस प्रकारके होते हैं, वे कौन-कौन-से कर्म-फलोंके द्वारा महाप्रेत और पिशाच बन जाते हैं और किस शुभ दानसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है? हे मधुसूदन! समस्त जगत्के कल्याणार्थं मुझको यह सब बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! तुमने मानव-कल्याणके लिये बहुत अच्छी बात पूछी। प्रेतका लक्षण मैं कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर सुनो। यह अत्यन्त गुप्त है। जिस-किसीके सामने इसको नहीं कहना चाहिये। तुम मेरे भक्त हो, इसलिये मैं तुम्हारे सामने इसे कह रहा हूँ।

हे पुत्र गरुड! पुराने समयमें बधुवाहन नामका एक राजा था, जो महोदय (कान्यकुब्ज) नामक सुन्दर नगरमें रहता था। वह धर्मेन्द्र, महापराक्रमी, यज्ञपरायण, दानशील, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणहितकारी, साधुसम्मत, सुशील, सदाचारी तथा दया-दक्षिण्यादि सद्गुणोंसे संयुक्त था। वह महाबली राजा सदैव अपनी प्रजाका पालन पुत्रवत् करता तथा शत्रिय-धर्मका सम्यक् पालन करते हुए सदैव अपराधियोंको दण्डित किया। कभी विशाल भुजाओंवाले उस राजाने अपनी सेनाके सहित शिकार करनेके लिये नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए सैकड़ों सिंहोंसे परिव्याप्त, विभिन्न प्रकारके पक्षियोंके कलरवसे निरादित एक घनघोर वनमें प्रवेश किया। वनके बीचमें जाकर राजाने दूरसे ही एक मृगको देखा और उसके ऊपर अपने बाणको छोड़ दिया। उसके द्वारा छोड़े गये उस कठिन बाणसे वह मृग अत्यन्त आहत हो उठा और शरीरमें बिंधे हुए उस बाणके सहित वह मृग वहाँसे भागकर वनमें लुप्त हो गया, किन्तु उसकी काँखसे वह रहे रहके चिह्नोंसे राजाने उसका पीछा किया। इस प्रकार उसके पीछे-पीछे वह राजा दूसरे वनमें जा पहुँचा।

भूख और प्याससे उसका कण्ठ सूख रहा था तथा परिश्रम करनेके कारण अत्यन्त थकानका अनुभव करता हुआ वह मुँछित-सा हो गया था; उसको वहाँ एक जलाशय दिखायी दिया। जलाशय देखकर धोड़ेके सहित उसने वहाँ स्नान किया और कमलपत्रासे सुवासित शीतल

१-उत्तम घोटशी आदि जो प्रेतोद्देश्यक कर्म हैं सपिण्डनके बाद भी इनकी पुनरावृत्ति त्रैमासिक आदि श्राद्धके द्वारा वर्षपर्यन्त करना चाहिये। परंतु पित्र्योके उद्देश्यसे किये गये कर्मकी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये—

द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं सावतसपिण्डनम् । पुनः कुर्वाणस्तथा पितृ घटार्चनं त्रैमासिकम् ॥

कुमार्य कर्णं नास्ति प्रेतकर्माहते खगः । यः करोति नः कश्चित्कुतर्प्यं विरस्यति ॥

मृतस्यैव पुनः कुर्वातेतौऽध्वम्यमवाप्नुयात् । प्रतिमासं घटा देवा मोदन्त जलपूरिताः ॥

अर्वाच्य वृद्धेः करणाव्य तार्क्ष्यं सपिण्डनं यः कुरुते हि पुत्रः । तथैव मासं प्रतिपिण्डनमेककर्मनं च कुम्भं सजले च दद्यात् ॥ (२६।६४-६७)



जलका पान किया। तत्पश्चात् उस जलसे निकलकर राजा बभ्रुवाहन विशाल वटवृक्षकी मनमोहक शीतल छायाके नीचे बैठ गया, जो भक्षियोंके कलरवसे निरादित तथा उस समूचे वनकी पताकाके रूपमें अवस्थित था। इसके बाद उस राजाने वहाँपर भूख-प्याससे व्याकुल इन्द्रियोंवाले एक प्रेतको देखा, जिसके सिरकी केसरशि ऊपरकी ओर खड़ी थी। उसका शरीर मलिन, कुष्ठा (रूक्ष), मांसरहित और देखनेमें महाभयंकर लगता था। मात्र शरीरमें शेष स्नायु-तन्त्रिकाओंसे जुड़ी हुई हड्डियोंवाला वह अपने पैरोंसे इधर-उधर दीड़ रहा था और अन्य बहुत-से प्रेत उसको चारों ओरसे घेरे हुए थे।

हे ताक्ष्य! उस विकृत प्रेतको देखकर बभ्रुवाहन विस्मित हो गया और उस प्रेतको भी महाभयंकर वनमें आये हुए राजाको देखकर कम आश्चर्य नहीं हुआ। प्रसन्नचित्त होकर प्रेतने उस राजाके पास जाकर कहा—

प्रेतने कहा—हे महाबाहो! आज आपके दर्शनका यह संयोग प्राप्त कर मैंने प्रेतभावकी त्याग कर परम गति प्राप्त कर ली है। मुझसे बढ़कर धन्य कोई नहीं है।

राजाने कहा—हे प्रेत! तुम मुझे कृष्णवर्णवाले भयंकर प्रेतके समान दिखायी दे रहे हो। तुम्हें इस प्रकारका स्वरूप जैसे प्राप्त हुआ है वैसे मुझे बताओ।

राजाके ऐसा कहनेपर उस प्रेतने अपने सम्पूर्ण जीवनवृत्तको इस प्रकार कहा—

प्रेतने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मैं अपने सम्पूर्ण जीवन-वृत्तका विवरण आपको आदिसे सुना रहा हूँ, मेरे इस प्रेतत्वका कारण सुन करके आप दया अवश्य करेंगे। हे राजन्! नाना रत्नोंसे युक्त तथा अनेक जनपदोंमें व्याप्त समस्त सम्पदाओंसे भरा हुआ, विभिन्न पुण्योंसे प्रख्यात अनेकानेक वृक्षोंसे आच्छादित विदिरा नामका एक नगर है। मैं वहाँपर निरन्तर देवपूजामें अनुरक्त रहकर निवास करता था। उस जन्ममें मेरी जाति वैश्यकी थी और नाम मेरा सुदेव था। मैं उस जन्ममें हव्यसे देवताओंको, कव्यसे पितरोंको तथा नाना प्रकारके दानसे ब्राह्मणोंको सदैव संतुष्ट किया करता था। मेरे द्वारा दीन-हीन, अनाथ और विजिष्ट जनोंकी अनेक प्रकारसे सहायता की गयी थी, किंतु दुर्भाग्यवश वह सब कुछ मेरा निष्फल हो गया। मेरे वे पुण्य जिस प्रकारसे विफल हुए, मैं आपको वह सुनाता हूँ।

हे तात! पूर्वजन्ममें न मेरे कोई संतान हुई, न कोई ऐसा बन्धु-बान्धव या मित्र ही रहा जो मेरी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करता। हे नृपोत्तम! उसीके कारण मुझे यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है। हे राजन्! एकादशाह, त्रिपक्ष, चाण्मासिक, सांवत्सरिक, प्रतिमासिक और इसी प्रकारके अन्य जो षोडश श्राद्ध हैं, वे जिस प्रेतके लिये सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उस प्रेतकी प्रेतयोनि बादमें स्थिरताको प्राप्त कर लेती है, भले ही बादमें क्यों न उसके लिये सैकड़ों श्राद्ध किये जायें। हे महाराज! ऐसा जानकर आप मेरा इस प्रेतयोनिसे उद्धार करें। राजाको सभी वर्षोंका बन्धु कहा जाता है। मैं आपको एक मणिरत्न दे रहा हूँ। हे राजेन्द्र! इस रत्नसे मुझे उबार लें। हे नृपश्रेष्ठ! हे महाबाहो! यदि आपको मेरे ऊपर कृपा है तो जिस प्रकारसे मुझे शुभ गति प्राप्त हो मेरे लिये वही उपाय करें और आप अपना भी समस्त प्रकारसे और्ध्वदैहिक कार्य करें।

राजाने कहा—हे प्रेत! और्ध्वदैहिक कर्म करनेपर भी प्राणी कैसे प्रेत हो जाते हैं? किन कर्मोंको करनेसे उन्हें पितापुत्र होना पड़ता है? तुम उसे भी बताओ।

प्रेतने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! जो लोग देवद्रव्य, ब्राह्मण-द्रव्य और स्त्री एवं बालकोंके संघित धनका अपहरण करते हैं, वे प्रेतयोनि प्राप्त करते हैं। जिनके द्वारा तपस्विनी, सगोत्र एवं अगम्या स्त्रीका भोग किया जाता है, जो कमलपुष्पोंकी चोरी करते हैं, वे महाप्रेत होते हैं। हे राजन्! जो हीरा-मृग-सोना और वस्त्रके अपहर्ता हैं, जो युद्धमें पीट दिखाते हैं, जो कृतघ्न, नास्तिक, क्रूर तथा दुःसाहसी हैं, जो प्रज्वल्य नहीं करते, किंतु बहुत बड़े-बड़े दान देनेमें अनुरक्त रहते हैं, जो अपने स्वामीसे घैर करते हैं, जो मित्र और ब्राह्मणदोही हैं, जो तीर्थमें जाकर पापकर्म करते हैं, वे प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं। हे महाराज! इस प्रकार इन सभी प्राणियोंका जन्म प्रेतयोनिमें होता है।

राजाने कहा—हे प्रेतराज! इस प्रेतत्वसे तुम्हें और तुम्हारे साथियोंकी कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? मैं किस प्रकारसे अपना और्ध्वदैहिक कर्म कर सकता हूँ? वह कार्य किस विधानसे सम्भव है? यह सब कुछ मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे राजेन्द्र! संक्षेपमें नारायणबलिकी विधि सुनें। मैंने सुना है कि सद्ग्रन्थोंका श्रवण, विष्णुका पूजन तथा सच्चनोंका साथ प्रेतयोनिको विनष्ट करनेमें समर्थ

होता है। अतः मैं आपको प्रेतत्वभावको नष्ट करनेवाली विष्णुपूजाका विधान बताऊँगा।

हे राजन्! दो सुवर्ण<sup>१</sup> ले करके उससे भगवान् नारायणकी सभी आभूषणोंसे विभूषित प्रतिमाका निर्माण करवाना चाहिये। मूर्तिको दो पीले वस्त्रोंमें आच्छादित करके चन्दन तथा अगुरुसे सुवासित करे। तदनन्तर नाना तीर्थोंसे लाये गये पवित्र जलके द्वारा सर्वांगि स्नान कराकर तथा अधिवासितकर पूर्वमें भगवान् श्रीधर, दक्षिणमें भगवान् मधुसूदन, पश्चिममें भगवान् वामन, उत्तरमें भगवान् गदाधर, मध्यभागमें पितामह ब्रह्मा और भगवान् महेश्वरकी विधिवत् पूजा गन्ध-पुष्पादिले पृथक्-पृथक् रूपमें की जाय। तत्पश्चात् उस देवमण्डलकी प्रदक्षिणा करके अग्निमें देवताओंकी संतुष्टिके लिये आहुति दे। घृत, दही और दूधसे विधेदेहोंकी संतुष्ट करे। उसके बाद यजमान फिरसे स्नान करके विनम्रतापूर्वक एकाग्रचित्तसे भगवान् नारायणके सामने विधिवत् अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करे। किन्तुभावसे क्रोध एवं लोभरहित होकर कार्य आरम्भ करना चाहिये। इस अवसरपर सभी ब्राह्म और वृषोत्सर्ग करने चाहिये। तरह ब्राह्मणोंकी वस्त्र, छत्र, मुक्तामणिजटित अँगूठी, पात्र, आसन और भोजन देकर संतुष्ट करे। उसके बाद प्रेतकल्याणके लिये अन्न और जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। सम्प्रादान करके घटदान भी प्रेतके उद्देश्यसे करे। तदनन्तर 'नारायण' नाम ही सत्य है—ऐसा कहकर सम्पुटमें स्थित भगवान् नारायणकी पूजा करे। ऐसा विधिवत् करनेपर निश्चित ही प्राणीको शुभ फल प्राप्त होता है।

राजाने कहा—हे प्रेत! प्रेतघट कैसा होना चाहिये, उसको प्रदान करनेका क्या विधान है? सभी प्राणिपोंपर कृपा करनेके लिये तुम प्रेतके लिये मुक्तिदायक घटके विषयमें मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे महाराज! आपने बड़ा अच्छा प्रश्न

किया है। जिस दानसे प्रेतत्व प्राप्त नहीं होता, उसे मैं कहता हूँ, सुने।

प्रेतघट नामका दान समस्त अमङ्गलोंका विनाशक है। दुर्गतिको क्षय करनेवाला यह प्रेतघटका दान सभी लोकोंमें दुर्लभ है। संतत स्वर्णनय घट बनवाकर उसे घृत और दूधसे परिपूर्ण करके लोकपालोंसहित ब्रह्मा, शिव और केशवको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ब्राह्मणोंका दानमें दे। अन्य सैकड़ों दान देनेसे क्या लाभ? इसके मध्यभागमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा पूर्वोक्त सभी दिशाओंमें और कण्ठभागमें यथाक्रम लोकपालोंकी विधिवत् पुष्प, धूप एवं चन्दनादिले पूजा करके उसे दूध और घीसे पूर्ण स्वर्णनय घट दानमें देना चाहिये। यह सभी दानोंसे बढ़कर दान है। इस दानसे सभी महापातकोंका विनाश हो जाता है। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये ब्रह्मापूर्वक यह दान अवश्य करना चाहिये।

श्रीभगवान्ने कहा—हे वैनतेय! उस प्रेतके साथ इस प्रकारका वार्तालाप राजाका चला ही रहा था कि उसी समय उनके पदचिह्नोंका अनुगमन करती हुई हाथी, घोड़े तथा रथसे परिष्यात उनकी सेना वहाँ आ पहुँची। सेनाके वहाँ आ जानेपर प्रेतने राजाको एक महामणि देकर प्रणाम किया और अपने प्रेतत्व-विमुक्तिकी प्रार्थना करके अदृश्य हो गया। उस वनसे निकलकर राजा भी अपने नगरको चला गया। हे पक्षिन्! नगरमें पहुँचकर राजाने उस प्रेतके द्वारा कही गयी सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रियाको विधि-विधानसे सम्पन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धन-विमुक्त होकर स्वर्ग चला गया।

हे गरुड! पुत्रके द्वारा दिये गये श्राद्धसे पिताकी सद्गति प्राप्त होती है, इसमें आश्चर्य क्या है? जो मनुष्य इस पुण्यदायक इतिहासको सुनता है और जो सुनाता है, वह पापाचारसे मुक्त होनेपर भी प्रेतत्व-योनिको प्राप्त नहीं होता है।

(अध्याय २६-२७)

## प्रेतत्वमुक्तिके उपाय

गरुडजीने कहा—हे मधुसूदन! जिस दान या सत्कर्मसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है, उसे बतानेकी कृपा करे। इसके ज्ञानसे लोगोंका बड़ा कल्याण होगा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! सुनो! मैं तुम्हें समस्त अमङ्गलोंको विनष्ट करनेवाले दानको बता रहा हूँ। शुद्ध स्वर्णका घट बनाकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा लोकपालोंसहित

उसकी पूजाकर दुग्ध और घृतसे परिपूर्ण उस घटको सुपात्र ब्राह्मणको दानमें देनेसे प्रेतत्वसे मुक्ति मिल जाती है।

हे गरुड! पुत्रहीन व्यक्तिको सद्गति नहीं होती, अतः यथाविधान पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। मृत व्यक्तिको गोबरसे लौपी गयी मण्डलाकार भूमिमें स्थापित करना चाहिये। भूमि गोबरसे लौपनेपर पवित्र हो जाती है तथा मण्डलका निर्माण करनेसे उस स्थानपर देवताओंका वास हो जाता है। ऐसे ही मृत व्यक्तिके नीचे तिल और कुश बिछानेसे जीवको उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है, साथ ही मृत व्यक्तिके मुँहमें पञ्चरत्न डालनेसे जीवको शुभ गति मिलती है।

हे तार्क्ष्य! तिल मेरे प्रसोनेसे उत्पन्न है, इसलिये वे सदा पवित्र हैं—'मम स्वेदममुदभूतास्तिलास्तार्क्ष्यं पवित्रकाः।' (२९।२५)। इसी प्रकार कुशकी उत्पत्ति मेरे रोमसे हुई है 'दर्भा मल्लोमसम्भूताः' (२९।१७)। कुशपुत्र भूमि अपने ऊपर विद्यमान मृत जीवको निःसंदेह स्वर्ग पहुँचा देती है। कुशमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीनों देव

प्रतिष्ठित रहते हैं—'त्रयो देवाः कुशे स्थिताः।' हे पक्षिराज! ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि तथा तुलसी—ये बार-बार प्रयोगमें लाये जानेपर भी पर्युषित (बासी) नहीं होते—

विद्या मन्वाः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर।

नैते निर्माल्यतां याति क्रियमाणाः पुनः पुनः ॥

(२९।२९)

इसी तरह विष्णु, एकादशीव्रत, भगवद्गीता, तुलसी, ब्राह्मण तथा गौ—ये छः इस संसारसागरसे मुक्ति दिलानेवाले हैं,—

विष्णुरेकादशीगीतातुलसीविप्रधेनवः ।

अपारे दुर्यसंसारं घटपटीं मुक्तिदायिनी ॥

(२९।२४)

इसीलिये हे गरुड! तिल, कुश और तुलसी—ये आतुर व्यक्तिकी दुर्गतिकी रोककर उसे सद्गति दिलाते हैं। आतुर-कालमें दानकी भी विशेष महिमा है। भगवान् विष्णुकी देहसे लवणका प्रादुर्भाव हुआ है अतः आतुर-कालमें लवण-दान करनेसे भी जीवकी दुर्गति नहीं होती। (अध्याय २८-२९)

## दानधर्मकी महिमा, आतुरकालके दानका वैशिष्ट्य, वैतरणी गोदानकी महिमा

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! देवताओंके लिये परम गोपनीय दानोंमें उत्तम और सभी दानोंमें श्रेष्ठ दानकी सुनो—

हे गरुड! रुईका दान सभी दानोंमें उत्तम तथा महान् है। उसका दान मनुष्यको अवश्य करना चाहिये, उसके दानसे भूः, भुवः, स्वः अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग—ये तीनों लोक प्रसन्न हो उठते हैं। इस कार्यसे ब्रह्मा आदि सभी देवोंको प्रसन्नता होती है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये इस महादानको करना चाहिये। ऐसे महादानका दाता धिरकालतक रुद्रलोकमें रहता है, तदनन्तर इस लोकमें जन्म लेकर रूपसम्पन्न, सौभाग्यशाली, वाक्चतुर, लक्ष्मीवान् और अप्रतिहत-पराक्रमी राजा होता है। अपने सुकृतोंसे यमलोकको जीतकर वह स्वर्गलोकमें जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको गौ, तिल, भूमि तथा स्वर्णका दान देता है, उसके जन्म-जन्मार्जित सभी पाप उसी क्षण विनष्ट हो

जाते हैं। तिल और गौका दान महादान है, इसमें महापापोंको नाश करनेकी शक्ति होती है। ये दोनों दान केवल विप्रको देने चाहिये, अन्य वर्णोंकी नहीं। दानके रूपमें संकल्पित तिल, गौ तथा पृथ्वी आदि द्रव्य, अपने पोष्य-वर्ग एवं ब्राह्मणेतर्ग वर्णको न दे। पोष्यवर्ग और स्त्री-जातिकी असंकल्पित वस्तु दानमें देनी चाहिये। रुग्णावस्थामें अथवा मूर्ख एवं चन्द्रग्रहणके अवसरपर दिये गये दान विशेष महत्त्व रखते हैं। रोगीके लिये जो दान दिया जाता है, वह उसके लिये तत्काल यथोचित फल देनेवाला होता है। यदि रोगी दान देनेके बाद रोगमुक्त होकर पुनः जीवन प्राप्त कर लेता है तो उसके निमित्त दिया गया दान निश्चित ही उसे प्राप्त होता है। विकलेन्द्रियकी विकलाङ्गताको नष्ट करनेके लिये जो दान दिया जाता है वह दान भी अवश्य ही यथायोग्य फलदायक होता है। जिस दानका पुत्र

१-२८वें तथा २९वें अध्यायका विषय प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें पूर्णरूपसे आ गया है, इसलिये इसे यहाँ संक्षिप्त रूपमें दिया गया है। पूर्ण विवरण प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें देखना चाहिये।

अनुमोदन करता है, उस दानका फल अनन्त होता है। अतः उसके सगे-सम्बन्धी अथवा पुत्रको तबतक दान देना चाहिये, जबतक उसका आतुर सम्बन्धी या पिता जीवित हो; क्योंकि अतिवाहिक प्रेत उसका भोग करता है।

अस्वस्थ-अवस्थामें—आतुरकालमें देहपत हो जानेपर पृथ्वीपर पड़े रहनेकी स्थितिमें दिया गया दान अतिवाहिक शरीरके लिये प्रीतिकारक होता है। लँगड़े, अंधे, काने और अर्धनिर्मोहित नेत्रवाले रोगीके लिये तिलके ऊपर कुश बिछाकर उसके ऊपर आतुरको लिटाकर दिया गया दान उत्तम और अक्षय होता है।

तिल, लौह, स्वर्ण, हई, नमक, सप्तधान्य, भूमि तथा गौ—ये एकसे बढ़कर एक पवित्र माने गये हैं। लौह-दानसे यमराज और तिल-दानसे धर्मराज संतुष्ट होते हैं। नमकका दान करनेपर प्राणीको यमराजसे भय नहीं रह जाता। हईका दान देनेपर भूतयोनिसे भय नहीं रहता। दानमें दी गयी गायें मनुष्यको त्रिविध पापोंसे निर्मुक्त करती हैं। स्वर्ण-दानसे दाताको स्वर्गका सुख प्राप्त होता है। भूमि-दानसे दाता राजा होता है। स्वर्ण और भूमि—इन दोनोंका दान देनेसे प्राणीको नरकमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती। यमलोकमें जितने भी यमराजके दूत हैं, वे सभी उसी यमके समान ही महाभयंकर हैं। सप्तधान्यका दान देनेसे वे प्रसन्न होकर दानदाताओंके लिये वरदाता बन जाते हैं।

हे गुरुड! भगवान् विष्णुका स्मरणमात्र करनेसे प्राणीको परम गति प्राप्त होती है। मनुष्य जो गति प्राप्त करता है, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। पिताकी आज्ञासे जो पुत्र दान देता है, उसको सभी प्रशंसा करते हैं। भूमिपर सुलाये गये मरणासन्न पिताके उद्देश्यसे जो पुत्र सभी प्रकारका दान देता है, वह पुत्र कुलनन्दन है। उसके द्वारा दिया गया दान गया-तीर्थमें किये गये श्राद्धसे भी बढ़कर है। वह पुत्र अपने कुलको आनन्दित करनेवाला होता है। जिस समय अपने लोकको छोड़कर बेचैन पिताकी परलोक-यात्राका काल समीप हो, उस समय पुत्रोंको प्रयत्नपूर्वक दान देना चाहिये; क्योंकि वे ही दान पिताको पार करते हैं। पुत्रकी पिताकी अन्त्येष्टि-क्रिया अवश्य सम्पन्न करनी चाहिये। इतन करनेमात्रसे अन्य सभी बहुविध दानोंका फल प्राप्त हो जाता है; क्योंकि अश्वमेध-जैसा महायज्ञ भी इस पुण्यके सोलहवें अंशकी क्षमता नहीं रखता। पृथ्वीपर पड़े हुए आतुर पितासे जो धर्मात्मा पुत्र दान दिलाता है, उसकी पूज

देवता भी करते हैं।

लौहका दान करनेवाला दाता महाभयानक आकृतिवाले यमराजके निकट न तो जाता है और न तो नारकीय लोकको ही प्राप्त करता है। पापियोंको भयभीत करनेके लिये यमराजके हाथोंमें कुटार, मूसल, दण्ड, खड्ग और छुरिका रहती है; इसलिये प्राणीको चाहिये कि वह ब्राह्मणको लौह-दान दे। यह दान यमराजके आयुधोंकी संतुष्टिके लिये कहा गया है। गर्भस्थ प्राणी, शिशु, युवा और वृद्ध—ये जो भी हैं, इन दानोंसे अपने समस्त पापोंको जला देते हैं। श्याम एवं शबल वर्णके घण्ट तथा मर्क और गूलरके सद्गुण मांसल, हाथमें छूरी धारण करनेवाले, काले-चितकबरे यमके दूत लौह-दानसे प्रसन्न होते हैं। यदि पुत्र-पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री और मित्र अपने रोगोंके लिये दान नहीं देते तो वे ब्रह्महन्ताके समान ही पापी हैं।

हे पथीन्द्र! भूमिपर स्थित प्राणीकी मृत्यु हो जानेपर उसकी क्या गति होती है, इसे सुनो! अतिवाहिक शरीरवाला प्रेत वर्ष समाप्त होनेके पश्चात् पुनः पुण्यका लाभ प्राप्त करता है। इस संसारमें तीन अग्नि, तीन लोक, तीन वेद, तीन देवता, तीन काल, तीन संधियाँ, तीन वर्ण तथा तीन शक्तियाँ मानी गयी हैं। मनुष्यके शरीरमें पैसे ऊपर कटिप्रान्ततक ब्रह्मा निवास करते हैं। नाभिसे लेकर छाया-भागतक हरिका वास रहता है और उसके ऊपर मुखसे लेकर मस्तकतक व्यक्त तथा अव्यक्त-स्वरूपवाले महादेव शिवका निवास है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इनका शरीरमें तीन भागोंमें अवस्थान है।

मैं ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्जके शरीरोंमें प्राणरूपसे स्थित रहता हूँ। धर्म-अधर्म, सुख-दुःख तथा कृत-अकृतमें बुद्धिकी मैं ही प्रेरित करता हूँ। मैं ही स्वयं प्राणीकी बुद्धिमें बैठकर पूर्व-कर्मके अनुसार उसको फल प्रदान करता हूँ। प्राणियोंकी मैं ही कर्ममें प्रेरित करता हूँ। उसीके अनुसार प्राणी निश्चित ही स्वर्ग, नरक और मोक्ष प्राप्त करता है। स्वर्ग अथवा नरकमें गये हुए प्राणीकी तृप्ति श्राद्धके द्वारा होती है, इसलिये विद्वान् व्यक्तिको तीनों प्रकारका श्राद्ध करना चाहिये। मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—ये दस नाम सदैव मनोपियोंके लिये स्मरण करने योग्य हैं। इनका स्मरण करनेसे स्वर्गमें गये हुए प्राणी सुखका भोग करते



हैं और स्वर्गसे पुनः इस लोकमें आनेपर सुख और धन-धान्यसे पूर्ण होकर दया-दाक्षिण्य आदि सद्गुणोंसे भरे रहते हैं, वे पुत्र-पौत्रसे युक्त और धनद्वय होकर सौ वर्षतक जीते हैं। रोगग्रस्त होनेपर मनुष्यके लिये दान देना चाहिये और भगवान् विष्णुकी पूजा करनी या करानी चाहिये। उस समय उसे अष्टाक्षर अथवा द्वादशाक्षर-महामन्त्रका जप करना चाहिये।

श्वेत पुष्पसे, घीमें पकाये गये नैवेद्यसे, गन्ध-धूपसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये तथा बुलियों और स्मृतिधर्मों अभिवर्णित स्तुतिधर्मोंसे भगवान् विष्णुकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—‘विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं, विष्णु ही अपने स्वजन और आन्धव हैं। जहाँपर मैं विष्णुको नहीं देखता हूँ, वहाँ निवास करनेसे मुझे क्या लाभ? विष्णु जलमें हैं, विष्णु स्थलमें हैं, विष्णु पर्वतकी चोटीपर हैं और विष्णु चारों ओरसे मालारूपमें घिरे हुई ज्वालामालासे व्याप्त स्थानमें अवस्थित हैं। यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है—’

विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनवान्धवः।

यत्र विष्णुं न पश्यामि तत्र वासेन किं मम॥

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतपस्तके।

ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥

(३०।४१-४२)

ब्राह्मण, जल, पृथ्वी आदि जितने भी पदार्थ हैं, उन्हें अपना ही स्वरूप समझना चाहिये। इसलिये हे खगेश! किसी भी स्थानपर मनुष्य पूर्वजन्माहित पाप-पुण्यके

अनुसार जिस कर्मको करता है, उसका फलदाता मैं ही हूँ। मैं ही प्राणीको बुद्धिकी धर्ममें नियुक्त करता हूँ और मुक्ति मैं ही देता हूँ।

हे लक्ष्म्य! अन्त-समय आनेपर मनुष्योंका हित करनेवाली वैतरणी नदी मानी गयी है। उसीके जलसे अपने पाप-समूहको धोकर प्राणी विष्णुलोकको जाता है। बाल्यावस्थाका जो पाप है, कुमारवस्थामें जो पाप हुआ है, यौवनावस्थाका जो पाप है और जन्म-जन्मान्तरमें समस्त अवस्थाओंके बीच भी जो पाप किया गया है, रात्रि-प्रातः, मध्याह्न-अपरह्ण तथा दोनों मध्याह्नके मध्य मन्, वाणी और कर्मसे जो पाप हुआ है, उन सभी पापोंके समूहसे प्राणी अपना उद्धार अन्तिम क्षणमें सर्वकामनाओंको सिद्ध करनेवाली एक भी श्रेष्ठतमा कपित्थ गौका दान दे करके कर सकता है। [गौदान करते समय परमात्मासे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—परमात्मन्!] ‘गर्बे हो मेरे आगे रहें, गर्बे हो मेरे पीछे और पार्श्वभागमें रहें, गर्बे हो मेरे हृदयमें निवास करें, मैं गापीके बीचमें ही रहूँ। जो सभी प्राणियोंकी लक्ष्मीस्वरूपा हैं, जो देवताओंमें प्रतिष्ठित हैं, वे गौरूपिणी देवी मेरे सभी पापोंको विनष्ट करें—’

गौको यमाग्रतः सन्तु पृष्ठतः पार्श्वतस्तथा।

गौको मे हृदये सन्तु गौको मध्ये वसाम्यहम्॥

या सक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता।

धेनुकपेण सा देवी मम पापं ध्वषीहत्॥

(३०।५२-५३)

(अध्याय ३०)

## और्ध्वदैहिक क्रियामें विहित पद आदि विविध दानोंका फल तथा जीवको प्राप्त देहके स्वरूपका वर्णन

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! जो मनुष्य पापाचारमें लगे हुए हैं, वे यमलोकको जाते हैं। यदि मुझको साक्षी बनाकर मनुष्यके द्वारा दान दिया जाता है, तो वह अनन्त फलदायी होता है। भूमिदान देनेवाला प्राणी दानमें दो गवों भूमिके रजकणोंकी जितनी संख्या होती है, उतने वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। जो जूतेका दान देते हैं, पोर यममार्गमें वे थोड़ेपर सवार होकर चलते हैं। छत्रदान करनेसे प्रेत यमलोकमें कहींपर भी धूपसे नहीं जलते, वे सुखपूर्वक अपने पथमें चलते चले जाते हैं। जिसके उद्देश्यसे

मनुष्य जो अन्न-दान देता है, उससे वह संतुष्ट हो जाता है। यमलोकके महापथमें एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ धनघोर अन्धकार है, वहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता, किंतु दीपदान देनेसे मनुष्य उस मार्गमें प्रकाशसे युक्त प्राणीके समान जाते हैं। आश्विन, कार्तिक तथा माघमास, मृत-तिथि और चतुर्दशी तिथिमें दिया गया दान सुखकारक होता है। जबतक वर्ष न पूरा हो जाय, तबतक प्रतिदिन प्रेतको ऊबड़-खाबड़ मार्गमें सुखपूर्वक गमन करनेकी इच्छासे स्त्रियोंको दीपदान करना चाहिये। जो मनुष्य दीपदान करता

है, वह स्वयं प्रकाशमय होकर संसारका पुण्य हो जाता है। वह शुद्धात्मा अपने कुलमें द्योतित होता है और प्रकाशस्वरूपको प्राप्त करता है।

हे खगेश! देवालयमें पूर्वाभिमुख, ब्राह्मणके लिये उत्तराभिमुख तथा प्रेतके निमित्त दक्षिणाभिमुख होकर सुस्थिर दीपकका दान जलसे संकल्पपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें जो सभी प्रकारके उपहारोंमें युक्त तेरह पददान मृत व्यक्तिके लिये तथा जीवित दशमें अपने लिये करता है, वह महान् कष्टोंसे मुक्त होकर महापथको यात्रा करता है। आसन, पात्र और भोजन जो ब्राह्मणको देता है, वह उसीके पुण्यसे सुखपूर्वक खाता-पीता हुआ महापथको पार करता है। कमण्डलुका दान देनेसे प्यस्त प्रेत जल प्राप्त करता है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये एकादशहोके पात्र, वस्त्र, पुष्प तथा अँगूठीका दान देना चाहिये। इसी प्रकार प्रेतका शुभेच्छु बनकर जो पुत्र यथाशक्ति तेरह पदोंका दान करता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। भोजन, तिल, जलपूर्ण तेरह घट, अँगूठी तथा उत्तरीय एवं अधोवस्त्रका जो दान देता है, उस दानके पुण्यसे प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है।

जो अन्न, नीका अथवा हाथीका दान ब्राह्मणको देता है वह उसी देय वस्तुकी महिमाके अनुसार उन-उन सुखोंको प्राप्त करता है। जो मनुष्य भैरवका दान देता है, वह नाना प्रकारके लोकोंमें विचरण करता है। यमदूतोंके हर्षवर्धनके लिये ताम्बूल और पुष्पका दान देना चाहिये, इससे संतुष्ट होकर वे दूत उस प्रेतको कष्ट नहीं देते।

प्राणीको यथाशक्ति गी, भूमि, तिल तथा स्वर्णका दान अवश्य करना चाहिये, ऐसा मनीषियोंने कहा है। जो व्यक्ति मृत प्राणीके लिये जलसे परिपूर्ण मिट्टीका पात्र दान करता है, उसे हजार जलपूर्ण पात्रके दानका फल प्राप्त होता है। यमराजके दूत महाक्रोधी, महाभयंकर आकृतिकाले, काले तथा पीले वर्णके हैं; वे वस्त्र-दान किये जानेपर मृत प्राणीको यमलोकमें कष्ट नहीं देते। तृण और कमसे पौड़ित होकर महापथमें आगे बढ़ता हुआ प्रेत अन्न और जलसे पूर्ण घटका दान देनेसे निश्चित ही सुखी हो जाता है। दक्षिणा, अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र तथा विष्णुकी स्वर्ण-प्रतिमासे युक्त शय्याका दान भी ब्राह्मणको देना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रेतयोनिका परित्यागकर प्राणी स्वर्गमें देवताओंके साथ

प्रसन्नतापूर्वक निवास करता है।

हे तार्क्ष्य! यह अन्येषेष्टि-कर्ममें होनेवाला दान मैंने तुमसे कहा। मृत प्राणी अन्य शरीरमें कैसे प्रवेश करता है, अब मैं उसको कहूँगा।

‘हे परंतप! मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीकी मृत्यु निश्चित है, इसलिये अपने-अपने धर्मके अनुसार मृत व्यक्तिका श्राद्धादिक कृत्य करना चाहिये। हे खगेश्वर! मरे हुए प्राणियोंके मुखमण्डलसे पहले जीवात्मा वायुका सूक्ष्म रूप धारण करके निकल जाता है। लोगोंके नेत्र आदि नौ द्वार, रोम तथा तालुरन्ध्रसे भी जीवात्मा बाहर हो जाता है; किंतु जो प्राणी है उनका जीवात्मा अपान-मार्गसे शरीर छोड़ता है’—

जातस्य मृत्युलोकं वै प्राणिनो मरणं ध्रुवम्।

मृतिः कुर्यात् स्वधर्मेण घाम्यतश्च परंतप॥

पूर्वकाले मृतानां च प्राणिनां च खगेश्वर।

सूक्ष्मे भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छत्यप्यमण्डलान्॥

नवद्वारे रोमभिश्च जनानां तालुरन्ध्रके।

पाणिष्ठनायधानेन जीवो निष्कृतमति ध्रुवम्॥

(३१।२५—२७)

प्राणवायुके निकल जानेपर शरीर पृथ्वीपर वैसे ही गिर पड़ता है, जैसे वायुके धपेड़ोंसे अहत होकर निराधार वृक्ष भूमिपर गिर पड़ता है। मृत्युके बाद शरीरमें स्थित पृथ्वीतत्त्व पृथ्वीमें, जलतत्त्व जलमें, तेजस्तत्त्व तेजमें, वायुतत्त्व वायुमें, आकाशतत्त्व आकाशमें तथा सर्वव्यापी अक्षततत्त्व शिवमें लीन हो जाता है।

हे तार्क्ष्य! काम-क्रोध तथा पञ्चेन्द्रियोंका समूह शरीरमें चोरके समान स्थित कहा गया है। देहमें काम-क्रोध तथा अहंकारसहित मन भी रहता है, वही सबका नायक है। पुण्य-पापसे संयुक्त होकर काल उसका संहारक बन जाता है। संसारमें भोगके लिये योग्य शरीरका निर्माण अपने कर्मके अनुसार होता है। मनुष्य अपने सत्कर्म और दुष्कर्मसे दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है। जिस प्रकार पुराने घरके जल जानेपर गृही नये घरमें जाकर शरण लेता है, उसी प्रकार यह जीव भी विषयोंके साथ पञ्चेन्द्रियोंसे युक्त नौ द्वारकाले एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें आश्रय ग्रहण करता है। शरीरमें विद्यमान धातुएँ मातृ-पितृसे ही प्राप्त हैं, इन्हींसे निर्मित यह शरीर

घाट्कौशिक' कहलाता है। हे गरुड! शरीरमें सभी प्रकारके वायु रहते हैं, मूत्र-पुरीष तथा उन्हींके योगसे उत्पन्न अन्यान्य व्याधियाँ रहती हैं। अस्मिन्, शुक्र तथा स्नायु शरीरके साथ ही जल जाते हैं।

हे पक्षिन्! सभी प्राणियोंके शरीरका विनाशक्रम यही है, इसे मैंने कह दिया। प्राणियोंका शरीर कैसा होता है, उसको अब मैं फिरसे कह रहा हूँ।

हे गरुड! पुरुषका शरीर छोटी-बड़ी नसोंसे बँधा हुआ एक स्तम्भ है, जिसको नीचेसे पैररूपी दो अन्य स्तम्भ धारण किये हैं। पञ्चेंद्रियोंसहित उसमें नौ द्वार हैं।

संसारिक विषयोंसे मुक्त एवं काम-क्रोधसे बेचैन जीव इसी शरीरमें रहता है। राग-द्वेषसे व्याप्त यह शरीर तृष्णका दुस्तर दुर्ग है। जन्म प्रवर्णके लोभोंसे भरे हुए जीवका यह शरीर पुर है। यही स्थिति सभी शरीरोंकी है। इसी शरीरमें सभी देवता और चौदहों लोक स्थित हैं। जो लोग अपनेको नहीं पहचानते, वे पशुके समान माने गये हैं।

हे पक्षिराज! इस प्रकार ऊपर बताया गया क्रियासे निर्मित शरीरका वर्णन मैंने किया। सृष्टिमें चौरासी लाख योनियाँ बतायी गयी हैं, जो उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—इन चार मुख्य भागोंमें विभक्त हैं। (अध्याय ३१)

## शुक्र-शोणितके संयोगसे जीवका प्रादुर्भाव, गर्भमें जीवका स्वरूप तथा उसकी वृद्धिका क्रम, शरीरके निर्माणमें पञ्चतत्त्वादिका अवदान, घाट्कौशिक शरीर, गर्भसे जीवके बाहर निकलनेपर विष्णुमायाद्वारा मोहित होना, आतुर व्यक्तिके लिये क्रियमाण कर्म तथा उनका फल, पिण्ड और ब्रह्माण्डकी समान स्थिति

साक्ष्यने कहा—हे प्रभो! उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, तथा जरायुज—ये चार प्रकारके प्राणी किस प्रकार उत्पन्न होते हैं? त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा और अस्मिन्में जीव कैसे आता है? दो पैर, दो हाथ, गुच्छभाग, जिह्वा, केश, नाख, शिर, संधिमार्ग तथा नाना प्रकारकी बहुत-सी रेखाओंकी उत्पत्ति कैसे होती है? काम, क्रोध, भय, लज्जा, हर्ष, सुख और दुःखका भाव मनमें कैसे आता है? इस शरीरका चित्रण, छिद्रण और विभिन्न प्रकारकी नसोंसे कहेन कैसे हुआ है? हे इषीकेश! इस अस्मर भवसागरमें शारीरिक रचनाको मैं इन्द्रजाल ही मानता हूँ। हे स्वामिन्! नाना दुःखोंसे भरे हुए इस अस्मर सागररूप संसारका कर्ता कौन है?

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! कोशके निर्माणकी परम गोपनीय प्रक्रियाको मैं कहता हूँ, इसके जाननेमात्रसे व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है। हे वैनतेय! संसारके प्रति दया करते हुए तुमने जीवके कारण-तत्त्वपर अच्छा प्रश्न किया है। एकाग्रचित्त होकर तुम उसे सुनो।

स्त्रियाँ ऋतुकालमें चार दिन त्याग्य होती हैं, क्योंकि प्राचीन कालमें ब्रह्मने वृत्रासुरके मारे जानेपर लगी हुई

ब्रह्महत्याको इन्द्रके शरीरसे निकालकर एक चौथाई भाग स्त्रियोंकी दे दिया था, उसीके कारण स्त्रियाँ ऋतुकालके आरम्भमें चार दिन अपवित्र मानी जाती हैं और उस समयतक इनका मुख नहीं देखना चाहिये, जबतक वह पाप उनके शरीरमें विद्यमान रहता है। स्त्रीको ऋतुकालके पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मपातिनी, तीसरे दिन रजकी मानना चाहिये। चौथे दिन वह शुद्ध होती है। एक सप्ताहमें वह देवता और पितरोंके पूजनयोग्य हो जाती है। प्रथम सप्ताहके बीच जो गर्भ स्त्रीमें रक जाता है, उसकी उत्पत्ति मलित्पुत्रसे माननी चाहिये। वीर्यस्थापनके समय माता-पिताके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, वैसे ही गर्भका जन्म होगा, इसमें संदेह नहीं है।

दुग्ध तिथिवाली रात्रियोंमें सहवास करनेसे पुत्र और अदुग्ध रात्रियोंमें सहवास करनेसे कन्याका जन्म होता है। अतः ऋतुकालके पहले सप्ताहको छोड़कर दूसरे सप्ताहकी दुग्ध तिथियोंमें सहवासमें प्रवृत्त होना चाहिये। सामान्यतः स्त्रियोंका ऋतुकाल सोलह रात्रियोंका होता है। यदि चौदहवीं रात्रिमें गर्भाधानकी क्रिया होती है तो उस गर्भसे गुणवान्, भाग्यवान्, धनवान् तथा धर्मनिष्ठ पुत्रका जन्म होता है। हे



पक्षिराज! वह रात्रि सामान्य लोगोंको प्राप्त होना सम्भव नहीं है। प्रायः स्त्रीमें गर्भोत्पत्ति आठवीं रात्रियोंके मध्यमें ही हो जाती है। ऋतुकालके पाँचवें दिन स्त्रियोंको कटु, क्षार, तीक्ष्ण और उष्ण भोजनका परित्याग करके मधुर भोजन करना चाहिये; क्योंकि उनकी कोख औषधिपात्र है और पुरुषका बीज अमृततुल्य है। उसमें (स्त्रीरूप औषधिपात्रमें) बीज वपन करके मनुष्य सम्पन्न फल प्राप्त कर सकता है, इसलिये उसको क्रोधादिकी ज्वालासे बचाकर मधुर भोजन तथा मृदु स्वभावकी शीतलतासे अभिसिंचित करना चाहिये। पुरुषको चाहिये कि वह पहले ताम्बूल और पुष्पोंकी माला तथा चन्दनसे सुवासित होकर स्वच्छ एवं सुन्दर वस्त्र धारण करे। तदनन्तर शुद्ध मनसे स्त्रीकी शय्यापर शयन करनेके लिये जाय। वीर्य-वपनके समय उसके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, उसी स्वभाववाली संतान जन्म लेगी। प्रारम्भमें शुक्र और रक्तके संयोगसे जीव पिण्डरूपमें अस्तित्वको प्राप्त करता है और गर्भमें वह उसी प्रकार बढ़ता है, जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमाकी अभिवृद्धि होती है।

शुक्रमें चैतन्य बीजरूपसे स्थित रहता है। जब काम चित्त तथा शुक्र ऐक्यभावको प्राप्त हों, उस समय स्त्रीके गर्भाशयमें जीव एक निश्चित रूप धारण करनेकी पूर्वावस्थामें आता है। रक्ताधिक्य होनेपर कन्या और शुक्राधिक्य होनेपर पुत्र होता है। जब रक्त तथा शुक्र समान होते हैं तो गर्भमें स्थित संतान नपुंसक होती है। शुक्र तथा शोणित पहले दिन और रातमें कलल, पाँचवें दिन बुदबुद तथा चौदहवें दिन मांस-रूपमें हो जाता है। उसके बाद वह धनीभूत मांस गर्भमें रहता हुआ क्रमशः बीसवें दिनतक पिण्डरूपमें बढ़ता है। तदनन्तर पच्चीसवें दिन उसमें शक्ति और पुष्टताका संचार होने लगता है। एक मास पूरा होते ही वह पञ्चतत्त्वोंसे युक्त हो जाता है। तत्पश्चात् उस गर्भस्थ जीवके शरीरपर दूसरे मासमें त्वचा और मेदा, तीसरे मासमें मज्जा तथा अस्थि, चौथे मासमें केश एवं अँगुली, पाँचवें मासमें कान, नाक तथा वक्षःस्थलका निर्माण होता है। उसके बाद छठे मासमें कण्ठ, रन्ध्र और उदर, सातवें मासमें गुहादि भाग तथा आठवें मासमें वह सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पूर्ण हो जाता है। आठवें मासमें ही वह जीव माताके गर्भमें बार-

बार चलने लगता है और नवें मासमें उस गर्भस्थ शिशुका ओजगुण परिपक्व हो जाता है। उसके बाद गर्भवासका काल बीतनेपर वह गर्भस्थ शिशु गर्भसे निकलना चाहता है। वह चाहे कन्या हो, चाहे पुत्र, चाहे नपुंसक हो, फिर उसका जन्म होता है।

इस प्रकार जन्म, पुष्टि तथा संहार—इन तीनोंकी शक्तिसे युक्त षट्कोशोंके भीतर विद्यमान पाँच इन्द्रिय, दस नाड़ी, दस प्राण और दस गुणसे समन्वित शरीरको जो जान लेता है, वही योगी है। जीवका पाञ्चभौतिक शरीर मज्जा, अस्थि, शुक्र, मांस, रोम तथा रक्त—इन छः कोशोंसे निर्मित पिण्ड एक है। नवें या दसवें मासमें इसका पाञ्चभौतिक स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। प्रसवकालीन वायुसे आकुष्ट, तात्कालिक पीड़ासे बेचैन, माताकी सुषुम्णा नाड़ीके द्वारा दी जा रही शक्तिसे पुष्ट वह जीव गर्भसे निकलनेका यत्नशील प्रयास करता है। पुष्पी, जल, हवि, भोक्ता, वायु तथा आकाश—इन छः भूतोंसे पीड़ित होता हुआ जीव स्नायु-तन्विकाओंसे आषट्क रहता है। इन्हींको विद्वानोंने मूलभूत तत्व कहा है, ये शरीरमें फैली हुई सात नाड़ियोंके बीचमें रहते हैं। त्वचा, अस्थि, नाड़ी, रोम और मांस—ये पाँच पृथ्वीतत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं।

हे कारयप! इसी प्रकार तार, मूत्र, शुक्र, मज्जा तथा रक्त—ये पाँच जलतत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। हे ताप्य! क्षुधा, तृष्ण, निद्रा, आलस्य एवं काम—ये पाँच तेजस्तत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। ऐसे ही राग, द्वेष, लज्जा, भय और मोह—ये पाँच वायुतत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। आकुञ्चन, धावन, लंघन, प्रसारण तथा निरोध—ये भी पाँच वायुतत्त्वके कारण-शरीरमें ही पाये जाते हैं। हे गुरुड! शब्द, चिन्ता, गाम्भीर्य, श्रवण और सत्यसंक्रम (सत्य और असत्यका विवेक)—ये पाँच आकाशतत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं, ऐसा तुम्हें जानना चाहिये।

श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा तथा नाक—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जबकि हाथ, पैर, गुदा, वाणी और गुह्य—ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, गर्जजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहू तथा शंखिनी—ये दस नाड़ियाँ मानी गयी हैं। यही प्रधान दस नाड़ियाँ पिण्ड (शरीर)—के मध्य स्थित



रहती है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय नामके दस वायु प्राणियोंके शरीरमें विद्यमान रहते हैं। केवल खाया गया अन्न ही देहधारियोंके शरीरको पुष्ट करता है और इस खाये गये अन्नको प्राणवायु ही शरीरमें तथा उसकी सभी संधियोंमें पहुँचाता है। भोजनके रूपमें ग्रहण किया गया अन्न वायुके द्वारा दो रूपोंमें विभक्त किया जाता है। इसके अनन्तर यह प्राणवायु ही गुदाभागमें प्रविष्ट होकर अन्न और जलको पृथक्-पृथक् कर देता है तथा यही प्राणवायु अग्निके ऊपर जलको एवं जलके ऊपर अन्नको पहुँचाकर स्वयं अग्निके नीचे रहते हुए अग्निको धीरे-धीरे उद्दीप्त करता है। तत्पश्चात् वायुसे उद्दीप्त किया हुआ अग्नि अन्तर्गत रसभागको अलग और शुष्कभागको अलग कर देता है। यही शुष्कभाग बारह प्रकारके मल्लोके रूपमें शरीरसे बाहर आता है। शरीरमें विद्यमान कान, नेत्र, श्रोत्र, त्विष्ट, दंत, नाभि, गुदा तथा नख—ये सब मलके अवशेष हैं। ऐसे ही विष्ट, मूत्र, शुक्र एवं शोणित—रूपसे ये मल अनन्त प्रकारके हैं।

हे विनतासुत! मनुष्यके शरीरमें सामान्यतः सन्धि तीन करोड़ रोम और बत्तीस दंत होते हैं। मिरमें कालोंकी संख्या सात लाख तथा नख बीस हैं। हे तार्क्ष्य! पुराने लोगोंने सामान्य रूपसे शरीरमें एक हजार पल मांस, सौ पल रक्त, दस पल मेदा, दस पल त्वचा, बारह पल मज्जा, तीन पल महारक्त, दो कुडव (अन्नकी एक माप जो बारह मुट्ठीके बराबर होती है) शुक्र तथा एक कुडव संतानोत्पत्तिके लिये उपयोगी स्त्रीके विद्यमान शोणित (रज)—को माना है। इसी प्रकार मानव-शरीरमें छः प्रकारके कफ, छः प्रकारकी विष्ट, छः प्रकारके मूत्र और तीन सौ साठसे अधिक अस्थियाँ होती हैं। इस प्रकार पिण्ड (शरीर)—के विषयमें बताया गया। इसे ही शरीरका वैभव कहते हैं। इन सबके अतिरिक्त शरीरमें कुछ नहीं है।

कर्मानुसार ही मनुष्यको सुख-दुःख, भय तथा कल्याण प्राप्त होता है। कर्मका अनुष्ठान शरीरके द्वारा ही सम्भव होनेसे शरीरका महत्त्व है। इस शरीरके द्वारा ही जीव उत्तम-से-उत्तम अथवा अधम-से-अधम गति प्राप्त करता है। इसलिये शरीरकी उत्पत्तिकी प्रक्रिया यहाँ बताया जा रही है—वायु जीवको गर्भसे बाहर करता है। उस समय

उसके दोनों पैर ऊपर और मुख नीचेकी ओर रहता है। ऐसा जीव पहले तो यथाक्रम मँकि गर्भमें रहकर ही धीरे-धीरे बढ़ता है। माताके द्वारा ग्रहण किये गये अन्न, फल, दूध, प्लूत और जलके आहारसे उस जीवके शरीरकी हड्डियाँ पुष्ट होती हैं तथा वह जीवित रहता है। उस जीवके नाभिप्रान्तसे शक्तिवर्धनी नाड़ी जुड़ी रहती है, जिसको आप्यायनी कहा जाता है। उसका सम्बन्ध स्त्रियोंके अँत-छिद्रसे होता है। उनके द्वारा खाया-पिया गया पदार्थ गर्भमें स्थित प्राणीके पेटमें आप्यायनी नाड़ीके द्वारा पहुँचता है। मँकि द्वारा भुक्त पदार्थोंसे पुष्ट देहवाला होकर वह जीव प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी वृद्धिक्रममें संसारकी पूर्वानुभूत अनेक विषयोंकी स्मृतियाँ उसे होती हैं और इन्हीं स्मृतियोंके कारण दुःखित वह प्राणी खिन्न हो जाता है तथा अनेक प्रकारकी पीड़ाका अनुभव कर इधर-उधर गतिमान होता है एवं 'गर्भसे निकल करके मैं पुनः ऐसा कुछ नहीं करूँगा जिससे मुझे पुनः गर्भकी प्राप्ति हो'—यह सोचकर जीव अपने उन सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरण करता है, जिनमें उसको सांसारिक, देवयोनियों और मृत्युलोककी काना योनियोंके सुख-दुःखका अनुभव प्राप्त हुआ था। उसके बाद समकालानुसार वह प्राणी अधोमुख होकर नवें या दसवें मासमें गर्भसे बाहर आता है।

प्राजापत्य वायुके प्रभावसे गर्भ छोड़कर बाहर निकलता हुआ वह जीव दुःखी होता है। उस समय दुःखसे पीड़ित वह प्राणी विलाप करता हुआ बाहर निकलता है। उदरसे बाहर होते हुए उस जीवकी असाध्य कष्ट देनेवाली मूर्च्छा आ जाती है, किन्तु कुछ ही क्षणमें वह जीव पुनः चेतनामें आ जाता है। वायुके स्पर्शसे उसको सुखानुभूति होती है। तत्पश्चात् संसारको मोहित करनेवाली विष्णुकी माया उसके ऊपर अपना प्रभाव जमा लेती है। उस मायाशक्तिके विमोहित जीवात्माका पूर्व ज्ञान नष्ट हो जाता है। ज्ञान नष्ट होनेके बाद वह जीव बालभावको प्राप्त करता है। तदनन्तर उसे कौमार्य, यौवन और वृद्धावस्था भी प्राप्त होती है। उसके बाद मनुष्य पुनः उसी प्रकार मरता है और जन्म लेता है। इस संसार-चक्रमें वह बड़ा बनानेवाले चक्रयन्त्रके समान घूमता रहता है। प्राणी कभी स्वर्ग प्राप्त करता है और कभी नरकमें जाता है।

स्वर्ग तथा नरक मनुष्यको अपने कर्मानुसार हो प्राप्त होते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वर्ग और नरकमें कर्मफलका भोग करके प्राणी कभी थोड़ेसे शेष पाप-पुण्यका भोग करनेके लिये पृथ्वीपर आ जाता है। जो स्वर्गमें निवास करते हैं, उन लोगोंको यह दिखायी देता है कि नरकलोकोंमें प्राणियोंको बहुत दुःख है। यहाँपर यमराजके दूतोंसे प्रताड़ित वे नरकवासी कभी प्रसन्न नहीं होते हैं, उन्हें तो दुःख-ही-दुःख झेलना पड़ता है। जबसे मनुष्य विमानमें चढ़कर ऊपरकी ओर प्रस्थान करता है तभीसे उसके मनमें यह भाव स्थान बना लेता है कि पुण्यके समस्त होनेपर मैं स्वर्गसे लौंचे आ जाऊँगा। इसलिये स्वर्गमें भी बहुत दुःख है। नरकवासियोंको देख करके जीवको महान् दुःख होता है; क्योंकि मेरी भी इसी प्रकारकी गति होगी—इस चिन्तासे वह रात-दिन मुक्त ही नहीं होता है। गर्भवासमें प्राणीको योनिजन्य बहुत कष्ट होते हैं। योनिसे पैदा होते समय उसे महान् दुःख होता है। उत्पन्न होनेके बाद बाल्यमें भी उसे दुःख है और वृद्धावस्थामें भी दुःख है। काम, क्रोध तथा ईर्ष्याका सम्बन्ध होनेसे युवावस्थामें भी उसके लिये असहनीय दुःख है। दुःस्वप्न, वृद्धावस्थामें तथा मरणके समय भी उत्कट दुःख उसे होता है। यमदूतोंके द्वारा खींचकर नरकमें भी ले जाये जा रहे जीवको अधोगति प्राप्त होती है। उसके बाद फिर जीवका गर्भमें जन्म होता है और मृत्यु होती है। ऐसे संसार-चक्रमें प्राणी कुम्भकारके चक्रके समान घूमते रहते हैं। पूर्वजन्ममें किये गये पुण्य-पापसे बंधे जीव बार-बार इसी संसारके आवागमनका दुःख भोगते हैं।

हे पक्षिन्! सैकड़ों प्रकारके दुःखसे व्याप्त इस संसारक्षेत्रमें रजमात्र भी सुख नहीं है। हे विनतासुत! इसलिये मनुष्योंकी मुक्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। जीवकी जैसी स्थिति गर्भमें होती है, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब मैं पूर्वक्रमसे पूछे गये प्रश्नका ही उत्तर दूँ या इसी अन्तर्गतमें कुछ अन्य प्रश्न करनेकी तुम्हारी इच्छा है?

गरुडने कहा—हे देवेश! पूछे गये प्रश्नोंमेंसे दो महत्वपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर तो मुझे प्राप्त हो गये हैं, अब मुझे तीसरे प्रश्नका उत्तर प्रदान करनेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिन्! मरणासन्न प्राणीके लिये क्या करना चाहिये? यह तुमने प्रश्न किया है? उसका

उत्तर सुनो! मैं संक्षेपमें उसे कह रहा हूँ।

मृत्युको संनिकट जानकर मनुष्यको सबसे पहले गोमूत्र, गोमय, तीर्थोदक और कुशोदकसे स्नान कराये। तदनन्तर स्वच्छ एवं पवित्र वस्त्र पहना दे और गोमयसे लिपी हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुशोंका एवं तिलका आस्तरण करके सुत्ता दे। सुत्ताते समय उस मरणासन्न प्राणीके सिरको पूर्व अथवा उत्तरकी ओर करके उसके मुखमें सोनेका टुकड़ा डाले। हे खगेश! उसीके संनिकट भगवान् शालग्रामकी मूर्ति और तुलसीका वृक्ष लाकर रख दे। तत्पश्चात् वहाँपर घीका एक दीपक जलाये और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस मन्त्रका जप करे? पूजा-दान तथा नाम-स्मरण आदिमें मन्त्रसे 'ॐ'का योग करे। पुण्य-धृतिसे भली प्रकार इषीकेश विष्णुदेवकी पूजा करे। तदनन्तर विनम्रभावसे स्तुति-पाठ करते हुए उनका ध्यान करे। उसके बाद ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देकर, भगवान् विष्णुके चरणोंको हृदयमें स्थान देते हुए पुत्र, मित्र, स्त्री, खेती-बारी तथा धन-धान्यादिके प्रति अपनी ममताका परित्याग कर दे। उस समय जीवकी बहुत ही कष्ट होता है। उसके निवारणके लिये पुत्रादि सभी परिजनोंको मरणासन्न प्राणीके कल्याण-हेतु कैचे स्वर्गमें 'पुरुषसूक्त'का पाठ करना चाहिये।

हे गरुड! मृत्युके आ जानेपर जो कर्म करना चाहिये, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब इस समस्त कर्मका फल क्या है? उसको मैं संक्षेपमें कहता हूँ, तुम सुनो।

हे पक्षिराज! स्नान करनेसे प्राणीकी स्वच्छता प्राप्त होती है। उससे शरीरकी अपवित्रता दूर होती है। उसके बाद भगवान् विष्णुका स्मरण होता है और उनका स्मरण सभी प्रकारके उत्तम फल प्रदान करता है। कुश और कपास आहुर प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। तिल तथा कुश जलमें डालकर मरणासन्न व्यक्तिकी कराया गया स्नान यज्ञमें किये गये अवधूध-स्नानके समान होता है। ऐसे ही गोमयसे लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसपर तिल, कुश आदि डालकर यदि मरणासन्न व्यक्तिकी सुलाया जाय तो विष्णु आदि देव प्रसन्न होते हैं; क्योंकि ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी और अग्निदेव मण्डलमें रहते हैं। इसीलिये मरणासन्न व्यक्तिकी जिस भूमिपर शयन कराना

हैं, वहाँपर मण्डलका निर्माण करना चाहिये। हे खगोल! पूर्व अथवा उत्तरकी ओर यदि मरणासन्न व्यक्तिका सिर कर दिया जाय, यदि उसके पाप कम हों तो इतनेमात्रसे उसे उत्तम लोक प्राप्त हो सकते हैं। आतुर व्यक्तिके मुखमें पञ्चरत्न डालनेपर उसमें ज्ञानका उदय होता है। हे पशुन्! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु और एकादशीव्रत—ये चार संसार-सागरमें डूबते हुए मनुष्योंके लिये नौकाके समान हैं।<sup>१</sup> विष्णु, एकादशी, गोता, तुलसी, ब्राह्मण एवं गौ—यह षट्पदी इस असार और जटिल संसारमें प्राणीको भक्ति प्रदान करती है। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस प्रकार भगवान् विष्णुके मन्त्रका जप करता हुआ मनुष्य निस्संदेह उन्हींका सायुष्य प्राप्त करता है। पूजा करनेसे भी मेरे (भगवान् विष्णु) लोककी प्राप्ति होती है, मेरी पूजा करनेवाला साक्षात् स्वर्गलोकको जाता है। हे काश्यप! 'पुरुषसूक्त'के पाठसे अपने परिजनोंके व्यामोहमें फँसता हुआ प्राणी बन्धनसे मुक्त हो जाता है। परलोक-प्राप्तिके जितने साधन बताये गये हैं, उनमें त्रिन साधनोंकी अधिकता होगी, उन्हींका फल मनुष्यको अधिकधिक प्राप्त होगा। यथाशक्ति ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देना चाहिये ऐसा करनेसे वह सदैव प्रसन्न रहता है।

हे साधो! स्नानादि करनेपर मनुष्यको प्राप्त होनेवाले समस्त फलोंका विवरण यही है, इसको मैंने कह दिया। अब इस ब्रह्माण्डमें जो गुण विद्यमान हैं, उन्हें तुम सुनो। वे सब तुम्हारे शरीरमें भी हैं। पाताल, पर्वत, लोक, द्वीप, सागर, सूर्यादि सभी ग्रह तुम्हारे शरीरमें ही स्थित हैं। यथा—पैरके नीचे तललोक, पैरके ऊपर वितललोक, दोनों जानुओंमें सुतललोक और सक्थि-प्रदेशमें महातल नामक लोक समझने चाहिये। वैसे ही ऊरु-भागमें तलातललोक तथा गुह्य-स्थानमें रसातललोक स्थित हैं। ऐसे ही प्राणीके कटिप्रदेशमें पाताललोककी स्थिति समझे। नाभिके मध्यमें भूर्लोक, उसके ऊपर भुवर्लोक, हृदयमें स्वर्गलोक, कण्ठप्रदेशमें महर्लोक, मुखमें जनलोक, मस्तकमें तपोलोक एवं महाशिरसमें सत्यलोक है। इस प्रकार मनुष्यके इसी शरीरमें चौदह

भुवन विद्यमान हैं।

शरीरके त्रिकोणमें मेरु, अधःकोणमें मन्दर, दक्षिणमें कैलास, कामभागमें हिमालय, ऊर्ध्वभागमें निषध, दक्षिणमें गन्धमादन और कामरुखामें मलय—इन सात कुल पर्वतोंके स्थिति है। इस देहके अस्त्रिभागमें जम्बूद्वीप, मज्जामें शाक-द्वीप, मांसमें कुरुद्वीप, शिराओंमें क्रौञ्चद्वीप, त्वचामें सात्वलिद्वीप, रोम-समूहमें प्लक्षद्वीप और तखोंमें पुष्कर नामका द्वीप है। उसके बाद शरीरमें सागरीका स्थान है। जैसे मूत्रमें क्षारोदसागर, शरीरके क्षारतत्वमें क्षीरसागर, स्लेष्मामें सुणोदधिसागर, मज्जामें घृतसागर, रसमें रसोदधिसागर, रक्तमें दधिसागर, काकुमें लटकते हुए मांसलभागमें स्वादूदक-सागर तथा शुक्रमें गर्भोदकसागर है। नादचक्रमें सूर्य, बिन्दुचक्रमें चन्द्रमा, नेत्रमें मंगल, हृदयमें बुध, विष्णुस्थानमें गुरु, शुक्रमें शुक्र, नाभिस्थानमें शनि, मुखमें राहु और पायुमें केतुको माना गया है। इस प्रकार शरीरमें ग्रहमण्डलकी स्थिति है।

मनुष्यका आपादमस्तक—सम्पूर्ण शरीर इसी सृष्टिके रूपमें विभक्त है। जो लोग इस संसारमें उत्पन्न होते हैं, वे मृत्युकी निश्चित ही प्राप्त होते हैं। भूख, प्यास, क्रोध, दाह, भूषा, विषमूके ठंक तथा सर्पके दंशसे उत्पन्न कष्ट सब इसी शरीरमें हैं। समयके पूरा हो जानेपर सभी प्राणिपौंछ विनाश निश्चित है। यमलोकमें गये हुए जीवके आगे-आगे वही लोग दौड़ते हैं, जो पापी हैं, अधम हैं और दया-धर्मसे दूर हैं। यमदूत उनके बाल पकड़कर घसीटते हुए अत्यन्त संतप्त महस्वत् तथा दहकते हुए अंगारोंके बीचसे से जाते हैं। अत्यन्त दुःखसे कातर इन पापियोंको यमलोककी एक झोपड़ीमें तब तक रहना पड़ता है, जबतक पुनर्जन्म नहीं होता है।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार जीव कर्मानुसार जन्म लेता है और मृत्युकी प्राप्त होता है। इस संसारमें जो उत्पन्न हुए हैं, वे अवश्य ही मरेंगे—इसमें संदेह नहीं है।<sup>२</sup> आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँचों गर्भमें प्राणीके रहनेके समय ही निश्चित हो जाते हैं।—

१-पञ्चरत्ने मुखे मुके जीवे ज्ञानं प्ररोहति । तुलसी ब्राह्मण गवो विष्णुरेकादशी खगः॥

पञ्चप्रवहणान्येव भवाञ्चैव मज्जतां नृणाम् । विष्णुरेकादशी गौत तुलसी विप्रधेनवः॥

असौ दुर्गसंसारं षट्पदी भक्तिदक्षिणी । नमो भगवते वासुदेवायेति जपेन्नरः॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥

पङ्कतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्वप्नैव देहिनाः।

(३२।१२५-१२६)

जीव कर्मसे ही जन्म लेता है और विनष्ट होता है। सुख-दुःख, भय एवं कल्याण कर्मसे ही प्राप्त होते हैं। नीचेकी ओर मुख तथा ऊपरकी ओर पैर किये हुए प्राणीको गर्भसे वायु ही खींचकर बाहर लाता है। जन्म लेते ही उस देहधारीको सद्यः विष्णुकी माया सम्मोहित कर

लेती है। अपने द्वारा किये गये पाप-पुण्यसे सम्बन्धित योनिमें जीवको जन्म प्राप्त होता है।

हे खगेश्वर! उत्तम प्रकृतिवाला व्यक्ति अपने सुकृतसे अच्छे भोग भोगता है, उसका जन्म भी सत्कुलमें होता है। किन्तु जैसे-जैसे उसके द्वारा दुष्कृत होता है, वैसे-ही-वैसे उसका जन्म भी नीच कुलमें होने लगता है। वह उसी दुष्कर्मसे दरिद्र, रोगी, मूर्ख और अन्यान्य दुःखोंका पात्र बन जाता है। (अध्याय ३२)

## यमलोक, यममार्ग, यमराजके भवन तथा चित्रगुप्तके भवनका वर्णन, यमदूतोंद्वारा पापियोंको पीड़ित करना

गरुडने कहा—हे तात! आपने अपने इस पुरको जीवकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण लक्षण बता दिया, किन्तु सपरम्पर—इन तीनों लोकोंके बीच यमलोकका कितना परिमाण है? उसका विस्तार मुझे बतायें। उसके मार्गकी कितनी दूरी है? हे देव! किन पापोंके करनेसे अथवा किस शुभ कर्मके प्रभावसे मानवजाति वहाँ जाती है? विशेष रूपसे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान्ने कहा—हे परिराज! प्रमाणतः यमलोकका विस्तार छियासी हजार योजन है। मनुष्यलोकके बीचसे ही उस लोकका मार्ग है, जो धीकनीसे दहकाये गये तौबिके समान प्रज्वलित और दुर्गम महापथ है। पापी तथा मूर्ख व्यक्ति वहाँ जाते हैं। अत्यन्त तेज, देखनेमें महाभयंकर लगनेवाले अनेक प्रकारके काँट उस महापथमें हैं। उन्हीं काँटोंसे परिव्याप्त, कैची-नीची, अग्निके समान दहकती हुई उस महापथकी भूमि है। वहाँ वृक्षोंकी कोई छाया भी नहीं है, जहाँपर ऐसा मनुष्य ठक करके विश्राम कर सके। उस मार्गमें अज्ञादिकी भी व्यवस्था नहीं है, जिसके द्वारा प्राणी अपने प्राणोंकी रक्षा कर सके। वहाँ जल भी नहीं दिखायी देता है, जिससे उसकी प्यास बुझ जाती हो। भूख-प्याससे पीड़ित वह पापी उसी महापथमें चलता है। अत्यन्त दुर्गम उस यममार्गमें वह टंडकसे काँपने लगता है। जिसका जितना और जिस प्रकारका पाप है, उसका उतना वैसा ही मार्ग है। अत्यन्त दीन-हीन-कृपण और मूर्ख तथा दुःखसे व्याप्त प्राणी उसी मार्गको पार करते हैं। आत्मकृत दोषोंसे

याम्बार संतप्त कुछ लोग वहाँकि असह्य कष्टसे व्यथित होकर करुण सोत्कार करते हैं, कुछ लोग वहाँकी कुण्ठयम्बाके प्रति विद्रोह कर देते हैं।

हे खगेश! उस कठोर मार्गको ऐसा ही जानना चाहिये। जो लोग इस संसारके प्रति किसी प्रकारकी तृष्णा नहीं रखते हैं, वे उस मार्गपर सुखपूर्वक जाते हैं। पृथ्वीपर मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंका दान देता है, वे सभी वस्तुएँ यमलोक तथा उस महापथमें उसके सामने उपस्थित रहती हैं। जिस पापीको ब्राह्म और जलज्जाल नहीं प्राप्त होती है, वे पाप-कर्म करनेवाले क्षुद्र प्राणी वायु बनकर भटक करे हैं। हे सुव्रत! मैंने इस प्रकारके उस रौद्र पथको तुम्हें बता दिया है। अब मैं पुनः यममार्गकी स्थिति बताऊँगा।

दक्षिण और नैऋत दिशाके मध्यमें क्षिवस्वापुत्र यमराजकी पुरी है। वह सम्पूर्ण नगर वज्रमय तथा दिव्य है। देवता और अमुर भी उसका भेदन नहीं कर सकते हैं। वह चौकोर है, उसमें चार द्वार तथा सात चहारदीवारी एवं तीरण हैं। यमराज स्वयं अपने दूतोंके साथ उसीमें निवास करते हैं। प्रमाणतः उसका विस्तार एक हजार योजन है। सभी प्रकारके रत्नोंसे परिव्याप्त, चमकती हुई बिजली तथा सूर्यके तेजस्वी स्वरूपके समान वह पुरी दिव्य है। उस पुरीमें धर्मराजका जो भवन है, वह स्वर्णके समान कान्तिमान् है। उसका विस्तार पाँच सौ योजन कैचा है। हजार खंभोंवाले उस भवनको वैदूर्य मणियोंसे सुसज्जित किया गया है। उसके जलमार्ग अर्थात् गवाक्ष मुक्तामणियोंसे बने हैं।



सैकड़ों पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। घण्टोंकी सैकड़ों ध्वनियाँ उस भवनमें होती रहती हैं। उसमें सैकड़ों, तोरनद्वार बनाये गये हैं। इसी प्रकारसे वह भवन अन्यान्य आभूषणोंसे विभूषित रहता है।

वहाँ दस योजनमें विस्तृत नीले मेघके समान शोभा-सम्पन्न, सम एवं शुभ आसनपर भगवान् धर्मराज स्थित रहते हैं। ये धर्मज्ञ, धर्मशेखर, धर्मयुक्त और कल्याणकारी हैं। ये ही पापियोंको भय देनेवाले तथा धार्मिकोंको सुख देनेवाले हैं। यहाँपर शीतल मन्द वायु बहती रहती है, अनेक प्रकारके उत्सव और व्याख्यान होते रहते हैं, सदैव शंख आदि माङ्गलिक वाद्योंकी ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। उन्हींके बीच धर्मराजका सम्पूर्ण समय बीतता है।

उस पुरके मध्यभागमें प्रवेश करनेपर चित्रगुप्तका भवन पड़ता है, जिसका विस्तार पचास योजन है। उसकी ऊँचाई दस योजन है। वह लोहेकी परिखाके द्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ एक महादिग्ध भवन है। इसमें आने-जानेके लिये सैकड़ों गलियाँ हैं और सैकड़ों पताकाओंसे यह सुशोभित रहता है। सैकड़ों दीपक इस भवनमें प्रज्वलित रहते हैं। बंदीजनोंके द्वारा गाये-बजाये गीत और वाद्य-यन्त्रोंकी ध्वनियोंसे यह भवन गुञ्जायमान रहता है। चित्रगुप्तके इस भवनको सुन्दरतम चित्रोंसे सजाया गया है। इस भवनमें मुक्तमणियोंसे निर्मित, परम विस्मयकारी एक दिग्ध आसन है, जिसके ऊपर बैठकर चित्रगुप्त मनुष्यों अथवा अन्य प्राणियोंकी आयु-गणना करते हैं। किसीके पुण्य और पापके प्रति कभी उनमें मोह नहीं होता है। जिसने जबतक

जो कुछ अर्जित किया है, वे उसको जानते हैं; वे अठारह दोषोंसे रहित जीवद्वारा किये गये कर्मको लिखते हैं।

चित्रगुप्तके भवनसे पूर्व ज्वरका बहुत बड़ा भवन है। उनके भवनसे दक्षिण शूल और लतविस्फोटकके भवन हैं। पश्चिममें कालपाश, अजीर्ण तथा अरुचिके भवन हैं। मध्य पीठके उत्तरमें विष्विका, ईशानकोणमें शिरोऽर्त्ति, आग्नेयकोणमें मूकता, नैऋत्यकोणमें अतिसार, वायव्यकोणमें दाहसंज्ञक रोगका घर है। चित्रगुप्त इन सभीसे नित्य परिवृत्त रहते हैं।

हे तार्क्ष्य! कोई भी प्राणी जो कुछ कर्म करता है, वह सब कुछ चित्रगुप्त लिखते हैं। धर्मराजके भवनके द्वारपर रात-दिन दूतगण उपस्थित रहते हैं। यमदूतोंके महापाशसे बँधे पापी और नीच व्यक्ति मुद्रोंमें मार खाते हैं। वहाँ नाना प्रकारके पूर्वकृत पापकर्मोंसे युक्त मनुष्योंको विभिन्न धारदार अस्र-हस्त्रों तथा अनेक यन्त्रोंसे मारा जाता है। पापियोंकी दहकते हुए अंगारोंके द्वारा घेर दिया जाता है। पूर्वकर्मोंके अनुसार लौह-पिण्डके समान वे उसीमें दग्ध किये जाते हैं। अन्य बहुत-से पापियोंको पृथ्वीपर पटक करके कुल्हाड़ेसे उन्हें काटा जाता है। पूर्वकर्मके फलानुसार वे धिल्लाते हुए दिखायी देते हैं। कुछ पापियोंको गुड़पाक और कुछको तैलपाकमें डालकर पकाया जाता है। इस प्रकार उन यमदूतोंसे पापियोंकी अत्यधिक कष्ट भोगना पड़ता है। अन्य पापी उन अत्यन्त निर्दयी दूतोंसे बार-बार क्षमादानकी प्रार्थना करते हैं; पर यमदूत उनकी एक नहीं सुनते हैं।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार पापियोंके लिये कर्मानुसार बहुत-से नरक कहे गये हैं। (अध्याय ३३)

## इष्टापूर्तकर्मकी महिमा तथा और्ध्वदैहिक कृत्य, दस पिण्डदानसे आतिवाहिक शरीरके निर्माणकी प्रक्रिया, एकादशाहादि श्राद्धका विधान, शय्यादानकी महिमा एवं सपिण्डीकरण-श्राद्धका स्वरूप

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! शास्त्रके अनुसार धर्म और अधर्मका जो लक्षण किया गया है, उसको तूम् सुनो। प्राणियोंके आगे-आगे उनका सत्कर्म और दुष्कर्म दीड़ता है। विद्वानोंने कृत (सत्य)-युगमें तप, त्रेतायुगमें

ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और दान तथा कलियुगमें एकमात्र दानकी प्रशंसा की है। मनोषियोंने उत्तम प्रकृतिवाले गृहस्थजनोंके लिये इस धर्मको स्वीकार किया है कि वे यथाशक्ति इष्टापूर्तकर्म करें, उसके करनेसे उन्हें पातक नहीं

होता। जो मनुष्य वृक्षारोपण करता है, गुफा, कुआँ और जलाशय खुदवाता है, उसको यममार्गमें चलते समय अत्यधिक सुखकी प्राप्ति होती है। जो लोग टंडकसे पीड़ित ब्राह्मणको तापनेके लिये अग्नि प्रदान करते हैं, वे सभी कामनाओंको पूर्ण करके अतिशौतल यमलोकके मार्गमें अग्नि तापते हुए सुखपूर्वक जाते हैं। जिस मनुष्यने पृथ्वीका दान दिया है, उसने मानो स्वर्ण, मणि-मुक्तादि बहुमूल्य रत्न, वस्त्र और आभूषणादिका सम्पूर्ण दान दे दिया। इस पृथ्वीपर मानव जो कुछ दानमें देते हैं, वे सब दिये गये पदार्थ यमलोकके महापथमें उनके समीप उपस्थित रहते हैं। पुत्र विधिपूर्वक अपने मृत पिताके लिये नाना प्रकारके जिन सुन्दर भोज्य-पदार्थोंका दान देता है, वे सभी पिताको प्राप्त होते हैं।

आत्मा (शरीर) ही पुत्रके रूपमें प्रकट होता है। वह पुत्र यमलोकमें पिताका रक्षक है। घोर नरकमें पिताका उद्धार वही करता है, इसलिये उसको पुत्र कहा जाता है। अतः पुत्रको पिताके लिये आजीवन श्रद्धा करना चाहिये, तभी वह अतिवाहात्मक प्रेतरूप पिता, पुत्रद्वारा दानमें दिये गये पदार्थोंके भोगोंसे सुख प्राप्त करता है। दग्ध हुए प्रेतके निमित्त परिजनोंके द्वारा जो जलाञ्जलि दी जाती है, उससे प्रसन्न होकर वह प्रेत यमलोकमें जाता है। प्रेतकी संतुष्टिके लिये तीन दिनतक रात्रिमें एक बीराहेपर रस्सी बाँधकर तीन लकड़ियोंके द्वारा बनायी गयी त्रिगोदिकाके ऊपर कच्ची मिट्टीके पात्रमें दूध भरकर रखना चाहिये। हे पशुन्! वायुभूत वह प्रेत मृत्युके दिनसे लेकर तीन दिनतक आकाशमें स्थित उस दूधका पान करता है। दाहसे चौथे दिन अस्थि-संचयका कार्य करना चाहिये<sup>१</sup>।

उसके बाद जलाञ्जलि प्रदान करे, किंतु इन जलाञ्जलियोंको पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न तथा उनकी संधिकालोंमें न दे, बल्कि दिनके प्रथम प्रहरके बीच जानेपर दे। नदीमें पुत्रके द्वारा जलाञ्जलि दिये जानेके पश्चात् सभी सगोत्री, हितैषी और बन्धु-बान्धव-स्वजातियों तथा परजातियोंके साथ जलदान करें। किसी भी कारण शीघ्रतावश मुख्य अधिकारी पुत्रके जलाञ्जलि देनेके पूर्व ही जलाञ्जलि नहीं देनी चाहिये। जब स्त्रियाँ श्मशानभूमिसे वापस हो जायँ तभी लौकाचार किया जाय।

शुद्धकी मृत्यु हो जानेपर जो ब्राह्मण उसकी चिताके लिये लकड़ी लेकर जाता है अथवा उसके पीछे-पीछे चलता है, वह तीन रात्रियोंतक अस्मृद्ध रहता है। तीन रात्रियोंके पश्चात् समुद्रमें मिलनेवाली गङ्गा आदि पवित्र नदीके तटपर पहुँचकर वह स्नान करे। तदनन्तर सौ प्राणायाम करके गोघ्रातक प्रशस्न करे, तब उसकी शुद्धि होती है। शुद्ध सभी वर्णोंके सर्वोका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है, वैश्य तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य)-के सर्वोका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है, क्षत्रिय दो वर्णों (ब्राह्मण और क्षत्रिय)-के सर्वोका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है और ब्राह्मण केवल अपने ही वर्णके शवका अनुगमन कर उसे जलाञ्जलि दे सकता है।<sup>२</sup> हे काश्यप! जलाञ्जलि देनेके पश्चात् दन्तधावन करना चाहिये। सभी सगोत्री नौ दिनोंतक दन्तधावनका परित्याग कर देते हैं तथा पद्माविधान नौ दिनतक जलाञ्जलि देनेके लिये जलाशयपर जाते हैं। विद्वानोंका कहना है कि जो भी मनुष्य जिस स्थान, मार्ग अथवा घरमें मृत्युको प्राप्त करता है, उसको वहाँसे श्मशानभूमिके अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं ले जाना

१-अस्थि-संचयनके विषयमें संवत्-वर्षनके अनुसार—

(क) प्रथमेऽङ्गि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसङ्कलनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ।

(ख) अपरेद्युस्तृतीये वा दाहानन्तरमेव वा।

प्रथम दिन, तृतीय, सप्तम अथवा नवम दिन या दाहके पश्चात् ही पिताको जलसे स्नान करके अपने गोत्रवालोंके साथ अस्थि-संचयन करना चाहिये।

२-इसका तात्पर्य यह है कि इस व्यवस्थाके अनुसार शवका अनुगमन करनेमें किसी विशेष प्रकारकी अनुमति एवं उसकी शुद्धिके लिये किसी विशेष प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं होती। किसी तरहके आचारात्ममें अथवा लोकसंग्रहकी दृष्टिसे या अन्य किसी सहायकके अनुपलब्ध होनेपर जिस किसी भी जातिके शवकी अन्त्येष्टिके लिये पद्माविधान सहयोग सबकी ही करना चाहिये और ऐसा करनेपर शास्त्रीय व्यवस्थाके अनुसार अनुमतिाके विराकरणके लिये पद्माविधान प्रायश्चित्त भी कर लेना चाहिये।

चाहिये। दाह-संस्कारके पश्चात् स्त्रियोंको आगे-आगे चलना चाहिये। उनके पीछे-पीछे अन्य व्यक्तियोंके समूहको चलना चाहिये। वहाँसे आनेके बाद उन सभीको एक पत्थरके ऊपर बैठकर आचमन करना चाहिये। तत्पश्चात् वे पूर्णपात्रमें रखी गयी यव, सरसों और दूर्वाका दर्शन करें, नीमकी पत्तियोंका प्रसादन करें तथा तेल लगाकर स्नान करें। सगोत्रियोंमें जिनके यहाँ मृत्यु हुई है, उनका भोजन नहीं करना चाहिये। अपने घरका अन्न नहीं खाना चाहिये और न ही खिलाना चाहिये। भोजन करनेमें मृत्पात्रका प्रयोग करना चाहिये एवं उस उच्छिष्ट पात्रको ऊपर मुख करके ही एकान्त स्थानमें रख देना चाहिये। मृतकके गुणोंका कीर्तन करे, 'यमगाथा' का पाठ करे और पूर्व जन्ममें संचित शुभाशुभका चिन्तन करे।

वह मृत प्राणी वायुरूप धारण करके इधर-उधर भटकता है और वायुरूप होनेसे ऊपरकी ओर जाता है। वह प्राण हुए शरीरके द्वारा ही अपने पुण्य और पापके फलोंका भोग करता है। दशाह-कर्म करनेसे मृत मनुष्यके लिये शरीरका निर्माण होता है। नवक एवं चौदस ब्राह्मण करनेसे जीव उस शरीरमें प्रवेश करता है। भूमिपर तिल और कुशका निक्षेप करनेपर वह कुटी धातुमयी हो जाती है। मरणासन्न प्राणीके मुखमें पञ्चरज ढाल देनेसे जीव ऊपरकी ओर चल देता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो जीवको शरीर नहीं मिल पाता अर्थात् वह इधर-उधर भटकता रहता है। इसलिये आदरपूर्वक भूमिपर तिल और दुर्भको बिछाना चाहिये।

जीव जहाँ-कहाँ भी पशु या स्थावरयोनिमें जन्म लेता है, जहाँ वह रहता है, वहीँपर उसके उद्वेगसे दी गयी ब्राह्मीय वस्तु पहुँच जाती है। जिस प्रकार धनुर्धारीके द्वारा लक्ष्यवेधके लिये छोड़ा गया बाण उसी लक्ष्यको प्राप्त करता है, जो उसको अभीष्ट है; उसी प्रकार जिसके निमित्त ब्राह्मण किया जाता है, वह उसीके पास पहुँच जाता है। जब-तक मृतकके सूक्ष्म शरीरका निर्माण नहीं होता है, तबतक किये गये ब्राह्मणसे उसकी संतृप्ति नहीं होती है। भूख-प्याससे व्यथित होकर वायुमण्डलमें इधर-उधर चक्कर

काटता हुआ वह जीवात्मा, दशाहके ब्राह्मणसे संतृप्त होता है। जिस मृतकका पिण्डदान नहीं हुआ है, वह आकाशमें भटकता ही रहता है। वह क्रमशः—तीन दिन जल, तीन दिन अग्नि, तीन दिन आकाश और एक दिन (अपने प्रिय जन्मके ममतावश) अपने घरमें निवास करता है। अग्निमें शरीरके भस्म हो जानेपर प्रेतात्माको जलसे ही तृप्त करना चाहिये। इसके बाद जलसे ही उसकी तेल-स्नानकी क्रिया पूर्ण करे तथा घरमें पूजा और कुशर अन्नसे ब्राह्मण करे। मृत्युके पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें अथवा ग्यारहवें दिन जो ब्राह्मण होता है, उसको नवक ब्राह्मण कहा जाता है। गृहद्वार, इमरान, तीर्थ या देवालय अथवा जहाँ-कहीं भी प्रथम पिण्डदान दिया जाता है, वहीँपर अन्य सभी पिण्डदान करने चाहिये। एकादशाहके दिन जिस ब्राह्मण करनेका विधान है, उसको सामान्य ब्राह्मण कहा गया है। ब्राह्मणादि चारों वर्णोंकी शरीर-शुद्धिके लिये स्नान ही एकमात्र साधन है। एकादशाह-संस्कारके पूर्ण हो जानेके पश्चात् पुनः स्नान करके शुद्ध होना चाहिये। अनन्तर शय्यादान करना चाहिये, क्योंकि शय्यादानसे प्रेतको मुक्ति मिलती है। यदि प्रेतका कोई सगोत्री न हो तो उसके अन्येष्वेष्टि कार्यको किसी औरको करना चाहिये अथवा उसकी भाख्य करे या किसी ऐसे पुरुषको करना चाहिये, जो मृत व्यक्तिसे तुष्ट अर्थात् उसके सद्व्यवहारसे उपकृत हो। पहले दिन विधिपूर्वक ब्राह्मयोग्य जिस अन्नदिसे पिण्डदान दिया जाता है, उसी अन्नदिसे सभी ब्राह्मण करने चाहिये।<sup>१</sup> दशाह-ब्राह्मणका कर्म मन्त्रोंका प्रयोग बिना किये ही नाम-गोत्रोच्चारसे हो जाता है। जिन वस्त्रोंको धारण करके संस्कृता ब्राह्मकर्म करता है, अशीचका दिन बीतनेके बाद उन्हें त्याग करके ही घरमें प्रविष्ट होना चाहिये। पहले दिन जो और्ध्वदैहिक कर्म आरम्भ करे, उसीको दस दिनतक समस्त ब्राह्मकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। वह क्रिया करनेवाला चाहे सगोत्री हो या दूसरे गोत्रसे सम्बन्धित हो, स्त्री हो अथवा पुरुष हो।

जिस प्रकार गर्भमें स्थित प्राणीके शरीरका पूर्ण विकास दस मासमें होता है, उसी प्रकार दस दिनतक दिये गये

पिण्डदानसे जीवके उस शरीरकी संरचना होती है। जिस शरीरसे उसे यमलोक आदिकी यात्रा करनी है। जबतक घरमें इसका असीच होता है, तबतक पिण्डोदक-क्रिया करनी चाहिये। यह विधि ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये मानी गयी है। पुत्रके अभावमें जिनके लिये असीच तीन शतोंका ही माना जाता है, वे पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन पिण्डदान करें। प्रेतके लिये पृथक्-पृथक् मिट्टीके पात्रमें दूध तथा जल और चौथे दिन उसे एकोदश-श्राद्ध करना चाहिये।

हे अण्डज! पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, उससे जीवकी मूर्द्धाका निर्माण होता है। दूसरे दिनके पिण्डदानसे आँख, कान और नाककी रचना होती है। तीसरे दिनके पिण्डदानद्वारा दोनों गण्डस्थल, मुख तथा ग्रीवाभाग बनकर तैयार होता है। उसी प्रकार चौथे दिन उसके हृदय, कुक्षिप्रदेश एवं उदरभाग, पाँचवें दिन कटिप्रदेश, पीठ और गुदाका आविर्भाव होता है। तत्पश्चात् छठे दिन उसके दोनों ऊरु, सातवें दिन गुल्फ, आठवें दिन जंघा, नौवें दिन पैर तथा दसवें दिन पिण्डदान देनेसे प्रबल शुभाकी उत्पत्ति होती है। एकादशाहमें जो पिण्डदान होता है, उसको पायस आदि मधुर अन्नसहित प्रदान करें। निम्नलिखित ब्राह्मणके दोनों पैर धोकर तथा उन्हें अर्घ्य, धूप, दीपादिसे पूजकर और सिद्धाल, कुशर, अपूप एवं दूध आदिसे परिपूर्ण भोजन कराकर संतुष्ट किया जाय। द्वादश मासिक श्राद्ध तथा ऊनमासिक, त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्धिक—ये सोडस श्राद्ध कहे जाते हैं। (ग्यारहवें दिन इन श्राद्धोंको करनेकी विधि है।) प्राणीकी जो मृत्यु-तिथि हो, उसी तिथिपर प्रतिमास श्राद्ध करना चाहिये। प्रथम मासिक श्राद्ध मृताहके दिन न करके एकादशाहके दिन करना चाहिये। जिस तिथिको मनुष्य मरता है, वही तिथि (अन्य) मासिक श्राद्धके लिये प्रवृत्त होती है। ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्धिक तथा त्रिपाक्षिक—इन श्राद्धोंके लिये मृत्यु-तिथिका विचार नहीं करना चाहिये। उदाहरणार्थ—पूणिमा तिथिमें जो व्यक्ति

मरता है, उसके लिये अगली चतुर्थी तिथिको ऊनमासिक श्राद्ध करना चाहिये। जिसको मृत्यु चतुर्थी तिथिको होती है, उसके लिये ऊनमासिक श्राद्ध नवमीको होना चाहिये और जो मनुष्य नवमी तिथिको मरता है, उसके लिये चतुर्दशी ऊनमासिक श्राद्धकी तिथि है। अतः अन्येष्टि-कर्मकुशल विद्वान्को यह जान लेना चाहिये कि ये सभी तिथियाँ यथाविहित मृत्यु-तिथिके अनुसार रिकी हो होंगी।

एकादशाहको जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नवक है। इस दिन चौराहेपर प्रेतके निमित्त भोजन रख करके श्राद्धकर्ता पुनः स्नान करे। एकादशाहसे वर्षपर्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन सातोंदक घटका दान करना चाहिये। मानव-शरीरमें जो अस्थियोंका एक समूह विद्यमान है, जिसमें उनकी कुल संख्या तीन सौ साठ है। जलपूर्ण घटका दान देनेसे उन अस्थियोंको पुष्टि मिलती है। इसलिये जो घट-दान दिया जाता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। जंगल या किसी विषम परिस्थितिमें जीवकी मृत्यु जिस दिन होती है, उस दिनसे घरमें सूतक होता है और उसीके अनुसार दशाहादि क्रियाएँ करनी चाहिये, दाह-संस्कार जब कभी भी हो।

तिलपात्र, अन्नदिक भोग्यपदार्थ, गन्ध, धूपादि एवं पूजन-सामग्रीका जो दान है, उसको एकादशाहमें देना चाहिये। उससे ब्राह्मणकी शुद्धि होती है। मृत्यु और जन्ममें घरमें होनेवाले सूतकसे क्रमशः—क्षत्रिय बारहवें दिन, वैश्य पंद्रहवें दिन तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। मृत्युके तीन मास होनेपर त्रिरात्र, छः मास होनेपर पक्षिणी, संवत्सर पूर्ण होनेसे पूर्व अहोरात्र तथा संवत्सर पूर्ण होनेपर जलदानकी क्रिया करनेसे शुद्धि होती है। इसीके अनुसार सभी वर्णोंकी शुद्धि होती है। कलियुगमें सूतककी समाप्ति दशाहमें ही है। एकादशाहसे लेकर सांवत्सरिक आदि सभी श्राद्धोंके अवसरपर विधेदेवोंकी पूजा करके अन्य पिण्डदान करना चाहिये। जैसे सूर्यकी किरणें अपने तेजसे सभी तारागणोंको ढक देती हैं, उसी



प्रकार प्रेतत्वपर इन क्रियाओंका आच्छादन होनेसे भविष्यमें पुनः प्रेतत्व नहीं मिलता है। अतः सपिण्डनके अनन्तर कहीं 'प्रेत' शब्द प्रयोग नहीं होता।

श्रेष्ठ ब्राह्मण सर्वदा शय्यादानकी प्रशंसा करते हैं। यह जीवन अनित्य है, उसे मृत्युके बाद कौन प्रदान करेगा? जबतक यह जीवन है, तबतक अपने बन्धु-बान्धव हैं और अपने पिता हैं। मृत्यु हो जानेपर यह मर गया है, ऐसा जान करके क्षणभरमें ही वे अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। इसलिये आत्मा ही अपना बन्धु है, ऐसा बारम्बार विचार करके जीते हुए ही अपने हितके कार्य कर लेना चाहिये। इस संसारमें मरे हुए प्राणीका कौन पुत्र है, जो बिस्तरके सहित शय्याका दान ब्राह्मणको दे सकता है? ऐसा सब कुछ जानते हुए मनुष्यको अपने जीवनकालमें ही अपने हाथोंसे शय्यादानादि सभी दान कर देना चाहिये। अतः अच्छी एवं मजबूत लकड़ीकी सुन्दर शय्या बनवा करके उसे हाथीके दाँत तथा सोनेकी पट्टियोंसे अलंकृत करके उस शय्याके ऊपर लक्ष्मीके सहित विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करे। उसके बाद उसी शय्याके संनिकट घीसे परिपूर्ण कलश रखे। हे गरुड! वह कलश अपने सुखके लिये ही होता है। विद्वानोंने तो उसको निद्राकलश कहा है। ताम्बूल, केसर, कुंकुम, कपूर, अगुरु, चन्दन, दीपक, पादुका, छत्र, चामर, आसन, पात्र तथा यथाशक्ति सप्तधान्य उसी शय्याके बगलमें स्थापित करे। इन वस्तुओंके अतिरिक्त शयन करनेवालेके लिये जो अन्य उपयोगी वस्तु हो, उसको भी वहाँ रखे। सोने-चाँदी या अन्य धातुसे बनी झारी, करक (करवा), दर्पण और पञ्चरंगी चाँदनीसे उस शय्याकी संपुष्ट करके उसे ब्राह्मणको दान दे दे।

कल्याणके लिये यजमान स्वर्गमें सुख प्रदान करनेवाली शय्याकी विधिवत् रचना करके सपत्नीक द्विज-दम्पतिकी पूजा करके उसका दान करे। कर्णफूल, कण्ठहार, अंगूठी, भुजबंद तथा चित्रकादि आपूषण एवं गीसे युक्त घरेलू उपकरणोंसे परिपूर्ण घर उसको दानमें दे। तदनन्तर पञ्चरत्न, फल और अक्षतसे समन्वित अर्घ्य उस ब्राह्मणको देकर यह प्रार्थना करनी चाहिये—

यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरकन्यया।  
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥

(३४।८२)

जिस प्रकार समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीसे भगवान् विष्णुकी शय्या शून्य नहीं होती है, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरमें मेरी शय्या भी शून्य न हो।

इस प्रकार ब्राह्मणको उस निर्मल शय्याका दान देकर क्षमापन करके उसे विदा करे। यही प्रेतशय्याकी विधि एकदशाह-संस्कारमें बतायी गयी है।

हे गरुड! अपने बान्धवकी मृत्यु होनेपर उनके निमित्त बन्धुजन धर्मोर्ध जो दान देते हैं, उसके विषयमें विशेष बात मैं कह रहा हूँ, उसको तुम सुने।

हे पक्षिराज! अपने घरमें पहलेसे जो कुछ उपयुक्त वस्तु हो, उस मृतकके शरीरसे सम्बन्धित जो वस्त्र, पात्र और वाहन हो, जो कुछ उसकी अभीष्ट रहा हो, वह सब एकत्र करे। शय्याके ऊपर भगवान् विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करके विद्वान् व्यक्ति उनकी पूजा करे और जैसा पहले कहा गया है, उसीके अनुसार ब्राह्मणको उस मृतशय्याका दान कर दे।

शय्यादानके प्रभावसे प्राणीको प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण सुख, इन्द्र और यमराजके घरमें विद्यमान रहता है। इसके प्रभावसे महाधर्मकर मुखवाले यमदूत उसको पीड़ित नहीं करते हैं। वह मनुष्य यमलोकमें कहीं धूप और ठंडकसे कह नहीं पाता है। शय्यादानके प्रभावसे प्रेत बन्धनमुक्त हो जाता है। इस दानसे पापी व्यक्ति भी स्वर्गलोक चला जाता है। जो प्राणी पापसे रहित है, वह अप्सराओंसे सेवित विमानपर चढ़कर प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें रहता है। जो नारी अपने पतिके लिये नवक, घोड़ा और संवत्सरिक श्राद्ध तथा शय्यादान करती है, उसको अनन्त फल प्राप्त होता है। मृत पतिका उपकार करनेके लिये जो स्त्री जीवित रहती है, उसके साथ मरती नहीं तो वह सती जीवित रहते हुए भी अपने पतिका उद्धार कर सकती है। स्त्रीको अपने मृत पतिके लिये दधि, अन्न, शयन, अञ्जन, कुंकुम, वस्त्राभूषण तथा शय्यादि सभी प्रकारके दान देना चाहिये। स्त्रियोंके लिये इस लोकमें जो कुछ वस्तुएँ उपकारक हों, जो कुछ

शरीरपर प्रयोग किये जाने योग्य वस्त्राभूषण और भोग्य वस्तुएँ हों, उन सभीको मिला करके प्रेतकी प्रतिमा बनाकर उन्हें यथास्थानपर नियोजित करके लोकपाल, इन्द्रादि देवगण, सूर्यादिक ग्रह, गौरी तथा गणेशकी पूजा करे। उसके बाद श्वेत वस्त्र धारण करके पुष्पाञ्जलि सहित ब्राह्मणके समक्ष इस मन्त्रका उच्चारण करे—

प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकारोद्युता ।

सर्वत्रसमायुक्ता तव विद्व निवेदिता ॥

आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्रः सुरगणैः सह ।

तस्माच्छय्याप्रदानेन सैष आत्मा प्रसीदतु ॥

(३४/९६-१०)

हे विप्रदेव! प्रेतकी यह प्रतिमा सभी उपकरणों और समस्त रत्नोंसे युक्त है। मैं आपको इसे प्रदान करता हूँ। आत्मा ही शिव है। यही शिवा और गौरी है। यही सभी देवताओंके साथ इन्द्र है। अतः इस शय्यादानसे यह आत्मा प्रसन्न हो।

इसके बाद उस शय्याको परिवारवाले आचार्य ब्राह्मणको प्रदान करे। ब्राह्मण उसको ग्रहण करनेके बाद 'कोऽष्टाक्ष०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् उस ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे और उन्हें यहाँसे बिदा करे।

हे पक्षिन्! इस विधिसे एक शय्याका एक ही ब्राह्मणको दान देना चाहिये। एक गौ, एक गृह, एक शय्या और एक स्त्रीका दान बहुतोंके लिये नहीं होता है। विभाजित करके दिये गये ये दान दातृकी पापकी कोरिमें गिरा देते हैं।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार बतायी गयी विधिके अनुसार जो प्राणी शय्यादिका दान करे तो उसे जो फल प्राप्त होता है, उसको तुम सुनो। इस दानसे दाता सी दिव्य वर्षाटक स्वर्गलोकमें निवास करता है। व्यतीपात वीग, कार्तिक पूर्णिमा, मकर तथा कर्ककी संक्रान्तिमें, सूर्य-चन्द्रग्रहणमें, द्वारका, प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, अर्बुद (आबू) पर्वत, गङ्गा, यमुना तथा सिन्धु नदी और सागरके संगम-तटपर जो दान दिया जाता है, यह उससे भी बड़ा दान है। इस शय्यादानके सोलहवें अंशको भी ये सभी दान प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वह प्राणी जहाँ जन्म लेता है, वहीं उस

पुण्यका फल भोगता है। स्वर्गमें रहने योग्य पुण्यके क्षय होनेके बाद वह सुन्दर स्वरूप धारण करके पृथ्वीपर पुनः जन्म लेता है। वह महाधनी, धर्मज्ञ तथा सर्वशस्त्रोंका निष्णात पण्डित होता है और मृत्यु होनेके बाद वह नरश्रेष्ठ पुनः वैकुण्ठलोक चला जाता है। अद्भुत है! अप्सराओंसे चारों ओर घिरा हुआ वह प्राणी दिव्य विमानपर चढ़कर स्वर्गमें अपने पितरोंके साथ हव्य-कव्य ग्रहण करते हुए प्रसन्न रहता है।

हे तार्क्ष्य! यदि पितर प्रेतत्वको प्राप्त हैं तो सपिण्डीकरणके बिना अष्टका, अमावास्या, मघा नक्षत्र तथा पितृपक्षमें किये गये जो-जो श्राद्ध हैं, वे पितरोंको नहीं प्राप्त होते हैं। सपिण्डीकरणका कार्य वर्ष पूरा हो जानेपर करना चाहिये। इसमें संशय नहीं है। शय्यकी शुद्धिके लिये आद्य श्राद्ध करके षोडशीका सम्पादन करे। तदनन्तर पितृपक्षकी (पितरोंकी पक्षमें प्रवेशके लिये) शुद्धिके लिये पचासवें प्रेतपिण्डका अन्य पिण्डोंके साथ मेलन करे। शुद्धि श्राद्धकी सम्पादना होनेपर एक वर्षके पहले ही (छः अथवा तीन माह या डेढ़ माहमें एवं चाहवें दिन सपिण्डीकरण श्राद्ध कर देना चाहिये। शूद्रका श्राद्ध स्वेच्छापूर्वक हो सकता है। अग्निहोत्री ब्राह्मणकी मृत्यु होनेपर द्वादशाहकी सपिण्दन-कर्म होना चाहिये। जबतक वह कर्म नहीं किया जाता है, जबतक वह मृत अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रेतयोनिमें ही रहता है। अतः अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मणकी द्वादसाहमें ही सपिण्डीकरणकी क्रिया कर देनी चाहिये। गङ्गा आदि महानदियोंमें अस्थि-क्षेपण, गयातीर्थ-श्राद्ध, पितृपक्षमें होनेवाले श्राद्ध सपिण्डीकरणके बिना वर्षके मध्यमें नहीं करना चाहिये। यदि बहुत-सी सपत्नियाँ हों और उनमेंसे एक भी स्त्री पुत्रवती हो जाय तो उसी एक पुत्रसे ही वे सभी पुत्रवती होती हैं।

असपिण्ड अग्निहोत्री पुत्रकी पितृयज्ञ नहीं करना चाहिये। यदि वह ऐसा आचरण करता है तो फापी होगा और उसे पितृहत्याका भी पाप लगेगा। पतिकी मृत्यु होनेपर जो स्त्री अपने प्राणोंका परित्याग कर देती है तो पतिके साथ ही उसका भी सपिण्डीकरण कर देना चाहिये। पिताकी अनुचित रूपसे लायी गयी विवाहिता वैश्यवर्ण अथवा क्षत्रिया जो भी पत्नियाँ हों, उनका सपिण्डन कोई भी पुत्र

कर सकता है। जब प्रमादवश ब्राह्मण किसी शूद्र कन्यासे ही विवाह कर लेता है तो मरनेके बाद उसके लिये एकोद्दिष्ट-श्राद्ध बताया गया है और सपिण्डीकरण-श्राद्ध उसीके साथ करना चाहिये। अन्य चारों वर्गोंसे ब्राह्मणके चाहे दसों पुत्र हों, किंतु उन्हें अपनी-अपनी मर्क सपिण्डीकरणकी क्रियामें निपुक्त होना चाहिये। अन्वष्टका पौष, माघ और फाल्गुनमासके कृष्णपक्षकी नवमी तिथि (जो साग्नियोंका मातृक श्राद्ध होता है) को होनेवाला तथा वृद्धिहेतुक श्राद्ध एवं सपिण्दन-श्राद्धमें पितासे पृथक् माताका पिण्ड प्रदान करना चाहिये।<sup>१</sup> हे तार्क्ष्य! पितामहीके साथ माता और पितामहके साथ पिताका सपिण्दन अपेक्षित है, ऐसा मेरा अभिमत है। यदि स्त्री पुत्रहीन हो मर जाती है तो उसका सपिण्दन पति करे। धर्मतः पतिको अपनी माता, पितामही एवं प्रपितामही—इन तीनोंके साथ अपनी पत्नीका सपिण्दन करना चाहिये।

हे गरुड! यदि स्त्रियोंके पुत्र तथा पति दोनों नहीं हैं तो वृद्धिकालके आनेपर स्त्रीका भाई अथवा छत्रभागका गृहीता या देवर उसका सपिण्दन करें। यदि पति एवं पुत्ररहित स्त्रियोंके न तो कोई सगोत्री हो और न देवर हो तो उस समय अन्य व्यक्ति उसके भाइयोंके साथ उसका एकोद्दिष्ट विधानसे श्राद्ध कर सकता है। यदि भूलवश अथवा विघ्नके कारण सपिण्दन-क्रिया किसीकी नहीं हो सकी है तो उसके पुत्र या बन्धु-बान्धवको चाहिये कि वे नवक श्राद्ध, षोडश श्राद्ध तथा आर्चिक श्राद्ध करें।

जिसका दाह नहीं हुआ है, उसके लिये श्राद्ध नहीं करना चाहिये। दर्भका पुतल बनाकर अग्निमें उसे जलाकर ही श्राद्ध करना चाहिये। पुत्रके द्वारा पिताका सपिण्डीकरण किया जा सकता है, किंतु पुत्रमें पिताका पिण्डमेलन नहीं किया जा सकता। प्रेमाधिक्यके कारण भी पिताको पुत्रमें सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये। जब बहुत-से पुत्र हों, तब भी ज्येष्ठ पुत्र ही उस क्रियाको सम्पन्न करे। नवक, सपिण्दन तथा षोडशादि अन्य सभी श्राद्धोंको करनेका अधिकारी वही एक है। धनका बँटवारा न होनेपर भी एक ही पुत्रको पिताके समस्त और्ध्वदेहिक कृत्य करना चाहिये।

मुनिपौने भी इस बातको कहा है कि पिताकी अन्त्येष्टि एक ही पुत्र करता है। यदि पुत्रोंमें परस्पर बँटवारा हो गया है तो उन सभी पुत्रोंको पृथक्-पृथक् सांवत्सरादिक क्रिया करनी चाहिये। स्वयं प्रत्येक पुत्रको अपने पिताका श्राद्ध करना चाहिये। जिनके निमित्त ये षोडश प्रेतश्राद्ध सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उनका अन्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी पितात्वं स्थिर रहता है।

हे खगेश्वर! पुत्रहीनका सपिण्डीकरण उसके भाई, भतीजे, सपिण्ड अथवा शिष्यको करना चाहिये। सभी पुत्रहीन पुरुषोंका सपिण्दन पत्नी करे अथवा श्रविषज् या पुरोहितसे उस कार्यको सम्पन्न कराये। पिताकी मृत्यु हो जानेपर वर्षके मध्य जब सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हों तो पुत्रोंको पार्वणश्राद्ध, नान्दीश्राद्ध नहीं करना चाहिये। माता-पिता और आचार्यकी मृत्यु होनेपर वर्षके मध्यमें तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध तथा अन्य पैतृक श्राद्ध नहीं करना चाहिये। पितृपक्ष, राजच्छाया योग, मन्वादि और युगादि तिथियोंमें सपिण्डीकरणके बिना पिताको पिण्डदान नहीं देना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि वर्षके मध्यमें भी यज्ञपुरुष तथा देवतादिके लिये जो देय है, उसका दान देना चाहिये। पितरोंको भी अर्घ्य और पिण्डसे रहित जो कुछ देय है, वह सब दिया जा सकता है। वही विधि कही गयी है।

देवोंके लिये पितर देवता हैं, पितरोंके पितर ऋषि हैं, ऋषियोंके पितर देवता हैं, इस कारण पिता सर्वश्रेष्ठ है। पितर, देवतागण और मनुष्योंके यज्ञनाथ भगवान् विभु हैं। यज्ञनाथको जो कुछ दिया जाता है, वह समस्त शरीरधारियोंको दिया हुआ माना जाता है। पिताके मरनेपर वर्षके मध्य जो पुत्र अन्य श्राद्ध करता है, निस्संदेह सात जन्मोंमें किये गये अपने धर्मसे होन हो जाता है। पिण्डोदक क्रियादिसे रहित प्राणी प्रेत हो जाते हैं, वे इसी रूपमें भूख-प्याससे अत्यन्त पीड़ित होकर वायुके साथ चक्कर काटते हैं। यदि पिता प्रेतत्वयोगिमें पहुँच जाता है तो पुत्रके द्वारा की गयी समस्त पैतृकी क्रिया नष्ट हो जाती है। यदि माताकी मृत्यु हो जाती है तो पितृकार्य नष्ट नहीं होता है।

यदि माताको मृत्यु हो जाय, पिता और पितामही हुए मनुष्योंका पिण्डमेलन अर्थात् सपिण्डीकरण नहीं होता अर्थात् दादी जीवित रहती है तो माताका सपिण्डन है, उनके लिये पुत्रोंके द्वारा अनेक प्रकारसे दिया गया प्रपितामहीके साथ ही करना चाहिये। हे गरुड! मेरे इस इन्तकार, उपहार, श्राद्ध तथा जलाञ्जलि उन्हें प्राप्त नहीं होती वचनको सुनो। यह सर्वथा सत्य है। इस पृथ्वीपर जिन मो है। (अध्याय ३४)

~~~~~

**सपिण्डीकरण-श्राद्धमें प्रेतपिण्डके मेलनका विधान, पितरोंकी प्रसन्नताका फल, पञ्चक-मरण तथा शान्तिविधान, पुत्तलिकादाह, प्रेतश्राद्धमें त्याग्य अठारह पदार्थ, मलिनघोडशी, मध्यमघोडशी तथा उत्तमघोडशी श्राद्ध, शवयात्रा-विधान**

ताक्ष्यने कहा—हे जनार्दन! अब मुझे दूसरा संदेह उत्पन्न हो गया है। यदि किसी भी पुरुषको माताका देहावसान हो गया है, किंतु उसकी पितामही, प्रपितामही, वृद्धप्रपितामही जीवित है और यदि पिता भी जीवित हो, मातामह, प्रमातामह एवं वृद्धप्रमातामह भी जीवित हों तो उस माताका सपिण्डन किसके साथ किया जाएगा? हे प्रभो! इसको अतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पशुन्! पूर्वमें कहे गये सपिण्डीकरणविधानको मैं पुनः कह रहा हूँ। यदि माताके उपर्युक्त सभी सम्बन्धी जीवित हैं तो माताके पिण्डका सम्मेलन उमा, लक्ष्मी तथा सावित्रीके साथ कर देना चाहिये। इस संसारमें तीन पुरुष पिण्डका भोग करनेवाले हैं, तीन पुरुष त्याजक हैं, तीन पुरुष पिण्डानुलेप और दसवें पुरुष पेंकिसंनिध होता है। पिता तथा माताके कुलमें इन्हीं पुरुषोंकी प्रसिद्धि होती है। यजमान अपनेसे पूर्व दस पुरुषों एवं अपनेसे बादके दस पुरुषोंका उद्धार कर सकता है। पहले जो तीन पुरुष अताये गये हैं अर्थात् पिता, पितामह तथा प्रपितामह—ये सपिण्डीकरण करनेपर सपिण्ड माने गये हैं। जो प्रपितामहके पूर्व वृद्धप्रपितामह और उनसे दो पूर्व पुरुष हैं, उन्हें त्याजक रूपमें स्वीकार करना चाहिये। इस अन्तिम त्याजक पुरुषके बाद जो पुरुष होता है, वह प्रथम लेपक होता है, उसके पूर्वमें जो अन्य दो पुरुष होते हैं, उन्हें भी उसी लेपककी कोटिमें समझना चाहिये। इस कोटिके तीसरे पुरुषके पूर्व जो पुरुष होता है, वह पेंकिसंनिध है। इस प्रकार दस पूर्व पुरुषोंके बाद स्वयं यजमान एक पुरुष है। भविष्यमें जो यथाक्रम दस पुरुष होते हैं, उन सभीको

मिलाकर पितरोंकी संख्या इक्कीस होती है।

इस संसारमें विधिपूर्वक जो मनुष्य उक्त श्रेष्ठतम श्राद्ध करता है, उसमें कर्त्तकी ओरसे कोई संदेहकी स्थिति नहीं रह जाती है तो उसका जो फल होता है, उसे भी तुम सुनो।

हे खगेज! पिता प्रसन्न होकर पुत्रोंको संतान प्रदान करता है, जिससे उनको वंश-परम्परा अधिष्ठातृ होती है। श्राद्धकर्त्ताका प्रपितामह प्रसन्न हो करके स्वर्णदाता हो जाता है। वृद्धप्रपितामह प्रसन्न होकर श्राद्धकर्त्ताको विपुल अन्नादि प्रदान करते हैं। श्राद्धके जो ये फल हैं, ये ही पितरोंके तपस्वसे भी प्राप्त होते हैं। हे पशुन्! इस मर्त्यलोकमें जिस पुरुषकी संतान-परम्परा नष्ट हो जाती है, वह मृत्युके बाद उसी प्रकार नरकलोकमें वास करता है, जिस प्रकार कीचड़में कैसा हुआ हाथी होता है। (नरक-भोग प्राप्त करनेके बाद) वह प्राणी वृक्ष अथवा सरीसृप-योनियें जन्म लेता है। वह उस नरकसे बिना संतानके निश्चित ही मुक्त नहीं होता है। अतः संतानविहीन मेरे हुए प्राणीके लिये आचार्य, शिष्य अथवा दूरके सगोत्री (अबान्धव)—को उसके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक 'नारायणबलि' कर देनी चाहिये। उस कृत्यसे पापविमुक्त होकर वह विशुद्धात्मा निश्चित ही नरकसे छुटकारा पा जाता है और स्वर्गमें जाकर वास करता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

धन्यासे लेकर रेवतीपर्यन्त जो चौच नक्षत्र हैं, ये सभी सदैव अशुभ होते हैं। उन नक्षत्रोंमें ब्राह्मण आदि समस्त जातियोंका दाह-संस्कार या बलिकर्म नहीं करना चाहिये। इन नक्षत्रोंमें मृत प्राणीके लिये जल भी प्रदान करना उचित नहीं है, ऐसा करनेसे वह अशुभ हो जाता है। दुःखार्त

१- 'विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो कथ्यः'— इस कालिकसे 'ड' शब्दका लोप हो जानेसे मूलमें पितामही पदको 'प्रपितामही' समझना चाहिये।



(मृत) स्वजन हों तो भी इस कालमें लोक (शव)-यात्रा नहीं करनी चाहिये। स्वजनको पञ्चककी शान्तिके बाद हो मृतका सब संस्कार करना चाहिये, अन्यथा पुत्र और सगोत्रियोंको उस अशुभ पञ्चकके कुप्रभावसे दुःख हो झेलना पड़ता है। जो मनुष्य इन नक्षत्रोंमें मृत्यु प्राप्त करता है, उसके घरमें हानि होती है।

इस पञ्चककी अवधिमें जो प्राणी मर जाता है, उसका दाह-संस्कार तत्सम्बन्धित नक्षत्रके मन्त्रसे आहुति प्रदान करके नक्षत्रके मध्यकालमें भी किया जा सकता है। सद्यः की गयी आहुति पुण्यदायिनी होती है; तीर्थमें किया गया दाह उत्तम होता है। ब्राह्मणोंको नियमपूर्वक यह कार्य मन्त्रसहित विधिपूर्वक करना चाहिये। वे यथाविधि अभिमन्त्रित कुशकी चार पुतलिकाओंको बना करके शवके समीपमें रख दें। उसके बाद उन पुतलिकाओंके सहित उस शवका दाह-संस्कार करें। तदनन्तर मृतकके समाप्त होनेपर पुत्रको शान्तिकर्म भी करना चाहिये।

जो मनुष्य इन धनिष्ठादि पौष नक्षत्रोंमें मरता है, उसको उत्तम गति नहीं प्राप्त होती है। अतएव उसके उद्देश्यसे तिल, गौ, सुवर्ण और पुतका दान विप्रोंको देना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके उपद्रवोंका विनाश हो जाता है। अशौचके समाप्त होनेपर मृत प्राणी अपने सत्पुत्रोंसे सद्गति प्राप्त करता है। जो पात्र, पादुका, छत्र, स्वर्ण मुद्रा, वस्त्र तथा दक्षिणा ब्राह्मणको दी जाती है, वह सभी पापोंको दूर करनेवाली है। पञ्चकमें भरे हुए बाल, युवा और वृद्ध प्राणियोंका और्ध्वदेहिक संस्कार प्रायश्चित्तपूर्वक जो मनुष्य नहीं करता है, उसके लिये नाना प्रकारका विघ्न जन्म लेता है।

प्रेतब्राह्मणमें अठारह वस्तुएँ त्याग्य होती हैं। यथा—आशीर्वाद, द्विगुण कुरु (मोटक), प्रणवका उच्चारण, एकसे अधिक पिण्डदान, अग्नीकरण, उच्छिष्ट ब्राह्म,

वैश्वदेवार्चन, विकिरण, स्वधाका उच्चारण और पितृशब्दोच्चार नहीं करना चाहिये। इस ब्राह्मणमें 'अनु' शब्दका प्रयोग, आवाहन तथा उत्सुख वर्जित है। आसीमान्तर्गमन, विसर्जन, प्रदक्षिण, तिल-होम और पूर्णाहुति तथा बलिवैश्वदेव भी नहीं करना चाहिये। यदि कर्ता ऐसा करता है तो उस अधोगति प्राप्त होती है।

प्रथम षोडशोको मलिन-ब्राह्मणके नामसे अभिहित किया जाता है। यथा—मृत्युस्थान, द्वार, अर्धमार्ग, धितामें (श्मशानवास) प्राणियों एवं पटोसियोंके उद्देश्यसे) शवके हाथमें तथा छटा ब्राह्मण अग्नि-संघ-कालमें होता है। उसके बाद दस पिण्ड-ब्राह्मण जो प्रतिदिन एक-एक करके दस दिन किये जाते हैं, वे भी मलिन-ब्राह्मणको कोटिमें आते हैं। इस प्रकार इन्हें प्रथम षोडश ब्राह्मण कहा गया है। हे तादर्थ्य! अन्य मध्यम या द्वितीय षोडशोको भी तुम मुझसे सुनो।

इन षोडश ब्राह्मणोंकी क्रियामें सबसे पहले विधिवत् एकदश ब्राह्मण करना चाहिये। उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और तत्पुरुषके नामसे पौष ब्राह्मण हों, ऐसा तत्त्वचिन्तकोंने कहा है। हे खगेश! इन षोडश ब्राह्मणोंके बाद प्रतिमास एक ब्राह्मणके अनुसार बारह ब्राह्मण, ग्यारहवें मासमें ऊनाधिक ब्राह्मण, त्रिषाधिक ब्राह्मण, ऊनमासिक और ऊनषण्मासिक ब्राह्मण करनेका विधान है। शव-शोधनके लिये अष्ट ब्राह्मण करके तथा अन्य त्रिषोडश ब्राह्मण करके पितृपूर्विकको त्रिषुष्टिके लिये पचासवें ब्राह्मणसे मिलाना चाहिये। जिसका पचासवाँ ब्राह्मण नहीं किया गया है, वह पितृपूर्विकमें मिलने योग्य नहीं है। उक्त त्रिषोडश अर्थात् अष्टादश ब्राह्मणोंसे मृत प्राणीके प्रेतत्वका विनाश होता है। उनचास ब्राह्मण हो जानेपर पंडिसंनिधि (पितृगणोंका सामीप्य) प्राचीको मिल जाता है। पचासवें ब्राह्मणसे पितृके साथ संधि-मेलन करना चाहिये।

अब शव-विधि बतायी जाती है। शव-यात्रा प्रारम्भ

१-किन्हीं आचार्योंके मंत्रमें मृत व्यक्तिके अन्तर उनके अनुयायियोंको 'ये च त्वामनुचक्षन्ति तेभ्यः०'—ऐसा उच्चारण करके पिण्डसेवापि पिण्डके समीपमें दिया जाता है, वह प्रेत-ब्राह्मणमें नहीं करना चाहिये।

२-ब्राह्मणमें ब्राह्मण-भोजन करनेके अन्तर ब्राह्मणके पीले-पीले गीबकी मोमाटक जाकर उनकी प्रदक्षिणा करके उनका विसर्जन किया जाता है। यह आसीमान्तर्गमन प्रेत-ब्राह्मणमें नहीं करना चाहिये।

३-अष्टादशीय वस्तुनि प्रेतब्राह्मण विवर्जयेत् । अक्षिणे द्विगुणम् एभ्यं प्रणयान् नैकापिण्डकम् ॥  
अग्नीकरणमुच्छिष्टं ब्राह्मं वै वैश्वदेविकम् । विकिरं च स्वधाकारं पितृशब्दं न बोधोत् ॥  
अनुशब्दं न कुर्वीत नावाहनमधीत्युक्तम् । आसीमान्तं न कुर्वीत प्रदक्षिणाविसर्जयम् ॥  
न कुर्वीत् तिलहोमं च दिनः पूर्णाहुतिं तथा । न कुर्वीद्वैश्वदेवं नैकाहं मन्त्रात्प्रायोगिकम् ॥ (३५।२९-३२)

करनेके पूर्व बनायी गयी पालकीमें शवके हाथ-पैर बाँध देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो वह पिशाच-योनियोंके हाथ पहुँच जाता है। शवको अकेला नहीं छोड़ना चाहिये। यदि उसको अकेला छोड़ दिया जाता है तो दुष्ट योनियोंके स्पर्शसे उसकी दुर्गति होती है। शवके मध्य शव विद्यमान है—ऐसा सुननेके बाद इच्छानुसार यदि भोजन कर लिया जाता है तो उस अन्न और जलको क्रमशः मांस तथा रक्त समझना चाहिये।

शवके बीच शवके रहनेपर ताम्बूल-सेवन, दन्तधावन, भोजन, स्त्री-सहवास तथा पिण्डदान त्याग्य हैं। स्नान, दान, जप, होम, तर्पण और देवपूजनका कार्य करना भी व्यर्थ ही हो जाता है।

हे पक्षिराज! बन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धियोंके लिये मृतकालमें ऐसा ही उपर्युक्त व्यवहार अपेक्षित है। इस धर्मके त्यागनेसे प्रेत पाप-संलिप्त हो जाता है।

(अध्याय ३५)

## तीर्थमरण एवं अनशनव्रतका माहात्म्य, आतुरावस्थाके दानका फल, धनकी एकमात्र गति दान तथा दानकी महिमा

**तार्क्ष्यने कहा—**हे प्रभो! अनशनव्रतका पुण्य किस कारणसे मनुष्यको अक्षय गति प्रदान करनेमें समर्थ है? यदि प्राणी अपने घरको छोड़कर तीर्थमें जाकर मरता है अथवा तीर्थमें न पहुँचकर मार्गमें या घरमें ही मर जाता है अथवा कुटीघर अर्थात् संन्यास-आश्रमके धर्मको स्वीकार करके प्राण छोड़ देता है तो उसे कौन-सी गति प्राप्त हो सकती है? जो व्यक्ति तीर्थ अथवा घरमें भी रहकर संन्यासीका जीवन व्यतीत करता है, उसकी मृत्यु हुई हो या न हुई हो तो पुत्रको क्या करना चाहिये? हे देव! यदि प्राणीका तत्सम्बन्धी नियम-पालनमें उसके वित्तकी एकाग्रता भंग हो जाती है तो ऐसी परिस्थितिमें उसकी सिद्धि कैसे सम्भव है? यदि उस नियमको पूरा किया जाय अथवा नहीं भी किया जाय तो ऐसी दशामें उस व्यक्तिकी सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?

**श्रीकृष्णने कहा—**हे गुरु! यदि जो कोई भी प्राणी अनशनव्रत करके मृत्युका व्रण करता है तो वह मानव-शरीर छोड़कर मेरे समान हो जाता है। निराहारव्रत करते हुए वह जितने दिन जीवित रहेगा, उतने दिन उसके लिये समग्र श्रेष्ठ दक्षिणासहित सम्पन्न किये गये पक्षिके समान हैं। यदि मनुष्य संन्यास-धर्मको स्वीकार करके तीर्थ अथवा घरमें अपने प्राणीका परित्याग करता है तो उस अर्वाधिमं वह प्रतिदिन पूर्वोक्त पुण्यका दुगुण फल प्राप्त करता है। शरीरमें महाभयंकर रोगके हो जानेपर अनशनव्रत करके जो मृत्युको प्राप्त करता है, पुनर्जन्म होनेपर उसके शरीरमें

रोगकी उत्पत्ति नहीं होती है। वह देवतुल्य सुशोभित होता है। जो मनुष्य रुग्णावस्थामें संन्यास ग्रहण कर लेता है, वह इस दुःखमय अपार संसार-सागरकी भूमिपर पुनः जन्म नहीं लेता है। प्रतिदिन यथाशक्ति ब्रह्माण्डको भोजन, तिल-पात्र और दीपकका दान एवं देवपूजनका कर्म करना चाहिये। इस प्रकारका आचरण जो व्यक्ति करता है, उसके छोटे-बड़े सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। वह मृत्युके बाद सभी महर्षियोंके द्वारा प्राप्त की जानेवाली मुक्तिका संवरण करता है। अतः यह अनशनव्रत मनुष्योंको वैकुण्ठपद प्रदान करनेवाला है। इसलिये प्राणी स्वस्थ हो या न हो, उसे इस मोक्षदायक व्रतका पालन अवश्य करना चाहिये।

जो मनुष्य पुत्र और धन-दौलतका परित्याग करके तीर्थयात्रामें चल देता है, उसके लिये ब्रह्मादि देवगण तुष्टि-पुष्टिदायक बन जाते हैं। जो व्यक्ति तीर्थके सामने उपस्थित होकर अनशनव्रत करता है, वह यदि उसी मध्यावधिमं मृत्युकी भी प्राप्त कर ले तो उसका वास सप्तर्षिमण्डलके बीच निश्चित है। यदि अनशनव्रत करके प्राणी अपने घरमें भी मर जाता है तो वह अपने कुलोंको छोड़कर अकेले स्वर्गलोकमें जाकर विचरण करता है। यदि मनुष्य अन्न और जलका त्याग करके विष्णुके चरणोदकका पान करता है तो वह इस पृथ्वीपर पुनर्जन्म नहीं लेता है। अपने प्रयत्नसे तीर्थमें गये हुए उस प्राणीकी रक्षा वनदेवता करते हैं। विशेष बात यह है कि यमदूत और यमलोककी यातनाएँ उसके

१-मृत्युका विहाय होनेपर तीन या चार दिन अन्न-जलका सर्वथा परित्याग अनशन है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि यह अनशन आत्महायक न होकर व्रत है।

सैनिकटक नहीं आ पाती हैं। जो व्यक्ति पापोंसे दूर रहता हुआ तीर्थवास करता है, यदि वह वहाँपर मृत्युको प्राप्त करे और उसका शवदाह हो तो वह उस तीर्थके फलका भागीदार होता है। सदैव तीर्थसेवन करनेपर भी प्राणी यदि किसी दूसरे स्थानपर मरता है तो वह श्रेष्ठ कुल और उत्तम देशमें जन्म लेकर एक विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मण होता है। हे ताक्ष्य! यदि निराहारव्रत करके भी मनुष्य पुनः जन्मिष्ठ रहता है तो ब्राह्मणोंको बुलाकर जो कुछ उसके पास हो वह सर्वस्व उन्हें दानमें दे दे। ब्राह्मणोंको आज्ञा लेकर वह बान्द्रायणव्रतका पालन करे, सदा सत्य बोले और धर्मका ही आचरण करे।

मृत्युके उद्देश्यसे तीर्थमें जाकर कोई भी मनुष्य पुनः अपने घर वापस आ जाता है तो वह ब्राह्मणोंकी आज्ञा प्राप्त करके प्रायश्चित्त करे। स्वर्ण, गौ, भूमि, हाथी और घोड़ेका दान करके जो मनुष्य मृत्युकालमें तीर्थमें पहुँच जाय, वह भाग्यवान् है। मरण-कालके सैनिकट होनेपर घरसे तीर्थके लिये प्रस्थान करनेवाले व्यक्तिको पग-पगपर गोदानका फल प्राप्त होता है, यदि उससे हिंसा न हो। घरमें जो पाप किया गया है, वह तीर्थ-स्नानसे शुद्ध हो जाता है। परंतु यदि प्राणी तीर्थमें पाप करता है तो वह ब्रह्मलेपके समान हो जाता है<sup>१</sup>। जबतक सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आकाशमें विद्यमान रहते हैं, तबतक वह निस्संदेह कह झेलता है। वहाँपर दिये गये दानोंका फल प्राप्त नहीं होता है। आतुरावस्थामें निर्धन प्राणियोंको विशेष रूपसे गौ, तिल, स्वर्ण तथा सप्तधान्यका दान करना चाहिये।

दान देनेवाले पुरुषको देखकर सभी स्वर्णवासी देवता, ऋषि तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराज प्रसन्न होते हैं। जबतक अपने द्वारा अर्जित धन है, तबतक ब्राह्मणको उसका दान देना चाहिये; क्योंकि मरनेपर वह सब पराधीन ही हो जायगा<sup>२</sup>। वैसी स्थितिमें दयालान् बन करके भला कौन दान

देगा? मृत पिताके पारलौकिक सुखके उद्देश्यसे जो पुत्र ब्राह्मणको दान देता है, उससे वह पुत्र-पौत्र और प्रपौत्रोंके साथ धनवान् हो जाता है। पिताके निमित्त दिया गया दान सौ गुना, माताके लिये हजार गुना, बहनके लिये दस हजार गुना, सहोदर भाईके लिये किया गया दान असंख्य गुना पुण्य प्रदान करनेवाला होता है। यदि लोभ, प्रमाद अथवा व्यामोहसे प्रसित होकर लोग अपने मृतकोंके लिये दान नहीं देते हैं तो सभी मरे हुए प्राणी यह सोचते हैं कि मेरे परिवारके संगे सम्बन्धी कंजूस और पापी हैं। अल्पना कष्टसे अर्जित और स्वभावतः चञ्चल धनकी गति मात्र एक ही है और वह है दान। उसको दूसरी गति तो विपत्ति ही है<sup>३</sup>।

यह मेरा पुत्र है, ऐसा समझकर पुत्रसे प्रेम करनेवाले अपने पतिको देख करके किस प्रकार दुराचारीणी स्त्री उसका उपहास करती है, उसी प्रकार मृत्यु शरीरके रक्षक और पृथ्वी धनके रक्षकका उपहास करती है। हे ताक्ष्य! जो मनुष्य उदार, धर्मगिष्ठ तथा सौम्य स्वभावसे युक्त है, वह अपार धन प्राप्त करके भी अपनेको तथा धनको तिलके समान लुब्ध मानता है। ऐसे उदात्त चरित्रवाले श्रेष्ठ पुरुषको अधोपद्रव नहीं होता है, उसको किसी प्रकारका मोहजाल अपने चक्करमें नहीं जकड़ पाता है। मृत्युकालमें यमदूतोंके द्वारा उत्पन्न किया गया किसी प्रकारका भय उसके सामने टिकनेमें समर्थ नहीं होता है।

हे काश्यप! धर्मकी रक्षा या किसीके उद्देश्यसे जलमें डूब करके प्राणीत्वार्ग करनेसे सात हजार वर्ष, अग्निमें कूटकर आत्मदाह करनेपर ग्यारह हजार वर्ष, वायुके वेगमें जीवनलोला समाप्त करनेपर सोलह हजार वर्ष, युद्धभूमिमें वीरगति प्राप्त करनेपर साठ हजार वर्ष तथा गौरक्षार्थ मरण होनेपर अस्सी हजार वर्षतक स्वर्गकी प्राप्ति होती है, किंतु निराहारव्रतका पालन करते हुए प्राणोंका परित्याग करनेपर व्यक्तिकी अधचगतिका स्थाप होता है<sup>४</sup>। (अध्याय ३६)

१-गृहात् प्रवर्तितस्तीर्थं मरणे समुच्यते । परं परं तु लोचनं यदि हिंसा न जायते ॥

गृहे तु यत् कृतं पापं तीर्थस्नानेन शुध्यति । कुस्ते तत्र पापं चेद्ब्रह्मलेपसमं हि तत् ॥ (३६।२४-२५)

२-आत्मायात् धनं वायत् तावद् विप्रं समर्पयेत् । पराधीनं मृते सर्वं कृपया कः प्रदास्यति ॥ (३६।२९)

३-पितुः शतगुणं दत्तं सहस्रं मातुस्तनूते । पतिन्या शतगृहसं मोदये दत्तमध्वयम् ॥

यदि लोभान् यच्छानि प्रमादोहलोउपै वा । मृतः शोचानि ते सर्वे कदाचः पतिर्नस्त्विति ॥

अतिकलेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च । गतिरैकैव पितृस्य दातृन्या विपत्तयः ॥ (३६।३१-३३)

४-समाः सहस्रानि च सात वै जले दतीकम्पनी पवने च चोदत । महाहवे चरितलोचिणोऽहो अन्धशके काश्यप याक्षया गतिः ॥ (३६।३७)

## और्ध्वदैहिककर्ममें उदकुम्भदानका माहात्म्य

ताक्षर्यने कहा—हे जनार्दन! जिस प्रकारसे जलपूर्ण कुम्भका दान करना चाहिये, उसका वर्णन करें। यह कार्य किस विधिसे करना चाहिये? इसके लक्षण कैसे हैं? इसकी पूर्ति कैसे होती है? इसकी किसे देना चाहिये? प्रेतांको संतुष्टि प्रदान करनेमें समर्थ इन कुम्भोंका दान किस कालमें उचित है? यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जलपूर्ण कुम्भदानके विषयमें पुनः मैं तुम्हें भली प्रकारसे बता रहा हूँ। हे महापशु! अन्न और जलसे परिपूर्ण कुम्भोंका दान प्रेतके उद्देश्यसे देना चाहिये। यह दान विशेषरूपसे प्रेतके लिये मुक्तिदायक है।



बारहवें दिन, छठे मास, त्रिपक्ष और वार्षिक ऋद्धके दिन विशेषरूपसे जीवको यममार्गमें सुख प्रदान करनेके लिये उदकुम्भ देना चाहिये। गोबरसे भलीभाँति लीपकर स्वच्छ बनायी गयी भूमिपर प्रतिदिन तिल या पक्वान्नासे युक्त जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। उसी स्थानपर प्रेतके

निर्मित स्वेच्छासे उस पात्रका दान भी दे देना चाहिये। उससे प्रसन्न होकर प्रेत यमदूतोंके साथ चला जाता है।

प्रेतके द्वादशाह-संस्कारके अवसरपर जलपूरित कुम्भोंका दान विशेष महत्त्व रखता है। यजमान उस दिन बारह जल-भरे घटोंका संकल्प करके दान करे। उसी दिन वह पक्वान्न और फलसे परिपूर्ण एक बर्तनी (विशेष प्रकारका जलपात्र) भगवान् विष्णुके लिये संकल्प करके सुयोग्य एवं सच्चरित्र ब्राह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर वह एक बर्तनी, पक्वान्न तथा फल वर्षराजको समर्पित करे। उससे संतुष्ट होकर धर्मराज उस प्रेतको मोक्ष प्रदान करते हैं। उसी समय एक बर्तनी चित्रगुहके लिये दानमें देना चाहिये। उसके पुण्यसे प्रेत वहाँ पहुँचकर सुखी रहता है।

अपने मृत पिताके कल्याणार्थ उद्दद और जलसे पूर्ण सोलह घटोंका दान दे। उसका विधान यह है कि उल्लानि ऋद्धसे लेकर षोडश ऋद्धतकके लिये सोलह ब्राह्मणोंको एक-एक घट दानमें दिया जाय। एकादशाहसे लेकर वर्षपर्यन्त प्रतिदिन नियमपूर्वक पक्वान्न एवं जलसे पूर्ण एक घटका दान देय है। हे खगेश्वर! यह बात तो उचित है कि जलपूर्ण पात्र और पक्वान्नपूरित बड़े घटोंका दान नित्य दिया जाय, किन्तु वहीँपर एक बर्तनी (करल) ऐसी होनी चाहिये जिसके ऊपर बौस-निर्मित पात्रमें मिष्टान्न रखकर पितृका आवाहन करके कुंकुम, अगुरु आदि सुगन्धित पदार्थोंसे उनका पूजन करे। तत्पश्चात् वस्त्राच्छादन करके विधिवत् संकल्पपूर्वक वैदिक धर्माचरणसे परिपूर्ण कुलीन ब्राह्मणको नित्य ऐसे एक-एक घट दान दे। यह दान विद्या और सदाचारसे युक्त ब्राह्मणको ही देना चाहिये। कभी मूर्खको यह दान न दे, क्योंकि वेदसम्मत आचार-विचारवाला ब्राह्मण यजमान और स्वयंका भी उद्धार करनेमें समर्थ है। (अध्याय ३७) [ शेष पृ० ४७४ से ]



ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदज्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



# फरवरी

विखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं त्वत्किमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः ।  
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपथे सर्वसाक्षी विदास्या ॥

वर्ष  
७४

गोरखपुर, सीर फाल्गुन, वि० सं० २०५६, श्रीकृष्ण-सं० ५२२५, फरवरी २०००ई०

संख्या  
२

पूर्ण संख्या ८७९

## धर्मराजको बारम्बार नमस्कार है

धर्मराज नमस्तेऽस्तु यमराज नमोऽस्तु ते ।  
दक्षिणाशाप ते नुभ्यं नमो महिषवाहन ॥  
चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं विचित्राय नमो नमः ।  
नरकार्तिप्रशान्त्यर्थं कामान् यच्छ ममेक्षितान् ॥

हे धर्मराज ! आपको नमस्कार है । यमराज ! आपको नमस्कार है । हे दक्षिण दिशाके स्वामी ! आपको नमस्कार है । हे महिषवाहन देवता ! आपको नमस्कार है । हे चित्रगुप्त ! आपको नमस्कार है । नरककी पीड़ा शान्त करनेके लिये 'विचित्र' नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है । आप मेरी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण करें ।

## धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

[ विशेषाङ्क पृ० ४७२ से आगे ]

**तीर्थमरणकी महिमा, अन्त समयमें भगवन्नामकी महिमा, शालग्रामशिला तथा तुलसीकी सन्निधिमें मरणका फल, मुक्तिदायक तथा स्वर्गदायक प्रशस्त कर्म, इष्टापूर्तकर्म तथा अनाथ प्रेतके संस्कारका माहात्म्य**

साक्षर्यने कहा—हे प्रभो! दान एवं तीर्थ करनेवालेको स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। अब आज इसका ज्ञान मुझे करावे। हे स्वामिन्! किस दान और तीर्थ-सेवनासे मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है? किस दान एवं तीर्थके पुण्यसे प्राणी विद्वत्सत्त्वक स्वर्गमें रह सकता है? क्या करनेसे वह स्वर्गलोक एवं सत्पलोकसे तेजोलोकमें जाता है। किस पापसे मनुष्य नाना प्रकारके नरकोंमें दुबता रहता है। हे भक्तोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् जनार्दन! आप मुझको यह भी बतानेकी कृपा करें कि कहाँपर मृत्यु होनेसे प्राणीको स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त होता है, जिससे कि पुनर्जन्म नहीं होता।

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! भारतवर्षमें मानवयोनि तरह जातियोंमें विभक्त है। यदि उसको प्राप्त करके मनुष्य अपने अन्तिम जीवनका उत्सर्ग तीर्थमें करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काशी, अवन्तिका और द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। प्राणीके कण्ठगत हो जानेपर 'मै सन्यासी हो गया'—ऐसा जो कह दे तो मरनेपर विष्णुलोक प्राप्त करता है। पुनः पृथ्वीपर उसका जन्म नहीं होता।

जो मनुष्य मृत्युके समय एक बार 'हरि' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह माने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गया है। जो मनुष्य प्रतिदिन 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण'—यह कहकर घेरा स्मरण करता है, उसको मैं नरकसे उसी प्रकार निकाल देता हूँ जिस प्रकार जलका भेदन कर कमल ऊपर निकल जाता है। जहाँपर शालग्राम शिला है या जहाँपर द्वारवती शिला है किंवा जहाँपर इन दोनों शिलाखण्डोंका संगम है, वहाँ प्राणीको मुक्ति निस्संदेह ही प्राप्त होती है। समस्त पाप एवं दोषोंका विनाश करनेवाली शालग्राम शिला जहाँ विद्यमान है, वहाँ उसके सान्निध्यमें मृत्यु होनेसे जीवको निस्संदेह मोक्ष मिलता है—

मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते क्षितौ।

सकृदुच्चरितं येन हरितित्यक्षरद्वयम्॥

वदः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।  
कृष्ण कृष्णोति कृष्णोति यो मां स्मरति नित्यशः॥  
जलं धित्वा यथा पथं नरकादुद्गराम्यहम्।  
शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला॥  
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः।  
शालग्रामशिला यत्र पापदोषह्यावहा॥  
तत्तन्निधानमरणामुक्तिर्जनतोः सुनिश्चिता।

(३८।७-११)

हे श्रग! तुलसीका वृक्ष लगाने, पालन करने, सींचने, ध्यान-स्मरण और गुणगान करनेसे मनुष्योंके पूर्व जन्माजित पाप जलकर विनष्ट हो जाते हैं—

रोषणात् पालनात् सेकाद्भयानस्पर्शानकीर्तनान्।

तुलसी दहते पापं नृणां जन्माजितं श्रग॥

(३८।११)

राग-द्वेषरूपी मलको दूर करनेमें समर्थ, ज्ञानरूपी जलाशयके सत्पररूपी जलसे मुक्त मानसतीर्थमें जिस मनुष्यने स्नान कर लिया है, वह कभी पापोंसे संलिप्त नहीं होता। देवता कभी काष्ठ और पत्थरकी शिलामें नहीं रहते, वे तो प्राणीके भावमें विराजमान रहते हैं। इसलिये सद्भावसे मुक्त भक्तिका सम्यक् आचरण करना चाहिये—

ज्ञानहृदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।

यः स्नातो धानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः॥

न काष्ठं विद्यते देवो न शिलायां कदाचन।

भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावं समाधरेत्॥

(३८।१२-१३)

मधुआरे प्रतिदिन प्रातःकाल जाकर नर्मदा नदी (पुण्य तीर्थ)—का दर्शन करते हैं; किंतु वे शिवलोक नहीं पहुँच पाते हैं; क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति बलवान् होती है। मनुष्योंके चित्तमें जैसा विश्वास होता है, वैसा ही उन्हें अपने कर्मोंका फल प्राप्त होता है। वैसे ही उनकी परलोक-गति होती है।

ब्राह्मण, गौ, स्त्री और बालककी हत्या रोकनेके लिये

जो व्यक्ति अपने प्राणोंका बलिदान करनेमें तत्पर रहता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है—

ब्राह्मणार्थे गवार्थे च स्त्रीणां बालवधेषु च।

प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

(३८।१६)

जो निराहार व्रतके द्वारा मृत्यु प्राप्त करता है, उसे भी मुक्ति प्राप्त होती है। वह सभी बन्धनोंसे निर्मुक्त हो जाता है। ब्राह्मणोंको दान देनेसे मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर सकता है।

हे गुरु! सभी प्राणियोंके लिये जैसे मोक्षमार्ग हैं, वैसे ही स्वर्गके मार्ग भी हैं। यथा—गोशालामें, देश-विध्वंस होनेपर, युद्धभूमि एवं तीर्थस्थलमें मृत्यु श्रेयस्कर है। प्राणी वहाँ अपने शरीरका परि त्याग करके चिरकालतक स्वर्गवासका लाभ ले सकता है। पण्डितको जीवन और मरण इन दो तत्त्वोंपर ही ध्यान देना चाहिये। अतः ये दान तथा भोगसे जीवन धारण करें और युद्धभूमि एवं तीर्थमें मृत्युको प्राप्त करें। जो मनुष्य हरिक्षेत्र, कुम्भक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, प्रभास, श्रीरैल, अर्बुद (आबू पर्वत), त्रिपुष्कर तथा शिवशंकरमें मरता है, वह अत्यन्त ब्रह्माका एक दिन पूरा नहीं हो जाता, तबतक स्वर्गमें रहता है। उसके बाद वह पुनः पृथ्वीपर आ जाता है। जो व्यक्ति सन्ध्यादि ब्राह्मणको एक वर्षतक जीवन-निर्वाहके लिये अन्न-वस्त्रादिका दान देता है, वह सम्पूर्ण कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें निवास करता है।

जो अपनी कन्याका विवाह वेदपारंगत ब्राह्मणके साथ करता है, वह अपने कुल-परिवारके सहित इन्द्रलोकमें निवास करता है। महादानोंको देकर भी मनुष्य ऐसा ही फल प्राप्त करता है। वापी, कुप, जलाशय, उद्यान एवं देवालियोंका जीर्णोद्धार करनेवाला पूर्व कर्ताकी भाँति फल प्राप्त करता है अथवा जीर्णोद्धारसे कर्ताका पुण्य दुगुण हो जाता है। जो मनुष्य विद्वान् ब्राह्मणके परिवारको शीत, वायु और धूपसे रक्षा करनेके लिये घास, फूस और पत्तोंसे बनी झोपड़ीका दान देता है, वह साढ़े तीन करोड़ वर्षतक स्वर्गमें निवास करता है।

जो सवर्णा सत्री स्त्री अपने मृत पतिका अनुगमन करे, वह मृत्युके बाद शरीरमें रोमोंकी जितनी संख्या है, उतने वर्षोंतक स्वर्गका भोग करती है। पुत्र-पौत्रादिका परि त्याग करके जो अपने पतिका अनुगमन करती है, वे दोनों पति-

पत्नी दिव्य स्त्रियोंसे अलंकृत होकर स्वर्गका सुख-वैभव प्राप्त करते हैं। सदैव पतिसे द्रोह रखनेवाली स्त्री अनेक प्रकारके पापोंको करके भी जब मरे हुए उस पतिका अनुगमन चितापर चढ़कर करती है तो उन सभी पापोंको भी क्षलती है। यदि किसी सन्ध्यादि नारीका पति महापापोंका आचरण करता हुआ दुष्कर्मी बन जाता है तो वह स्त्री अपने सदाचरणसे उसके सभी पापोंको विनष्ट कर देती है।

जो व्यक्ति नियमपूर्वक प्रतिदिन मात्र एक ग्रास भोजनका दान करता है, वह चार चामरसे युक्त दिव्य विमानपर चढ़कर स्वर्गलोक जाता है। जिस मनुष्यके द्वारा आजीवन पाप-कर्म किया गया है, वह ब्राह्मणको एक वर्षके लिये जीवन-निर्वाहकी वृत्ति देकर उस पापको विनष्ट कर देता है। विप्र-कन्याका विवाह करानेवाला व्यक्ति भूत, भविष्य और वर्तमानके तीनों जन्मके अर्जित पापोंको नष्ट कर देता है।

दस कूपके समान एक बाबली होती है। दस बाबलीके समान सरोवर होता है और दस सरोवरके समान पुण्य-स्थल। वह प्रघ (पैसरा) होती है। जो वापी जलरहित बन एवं देशमें बनबायी जाती है और जो दान निर्धन ब्राह्मणकी दिया जाता है तथा प्राणियोंपर जो दया की जाती है, उसके पुण्यसे कर्ता स्वर्गलोकका नायक बन जाता है।

इसी प्रकार अन्य बहुत-से सुकृत हैं, जिनको करके मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है। वह उन सभी पुण्योंके फलको ग्रहण करके परम प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है।

व्यर्थके कार्योंको छोड़कर निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये। इस पृथ्वीपर दान, दम और दया—ये ही तीन सार हैं। दरिद्र, सज्जन ब्राह्मणको दान, निर्जन प्रदेशमें स्थित शिवलिङ्गका पूजन और अनाथ प्रेतका संस्कार—करोड़ों यज्ञका फल प्रदान करता है—

कल्पु कार्यं परित्यज्य सततं धर्मवान् भवेत्।

दानं दमो दया चेति सारमेतत् त्रयं भुवि॥

दानं साधोर्दरिद्रस्य शून्यलिङ्गस्य पूजनम्।

अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलप्रदः॥

(३८।३९-४०)

(अध्याय ३८)

## आशौचकी व्यवस्था

ताक्ष्यने कहा—हे प्रभो! चित्तमें शुचित्व और अशुचित्वके विवेकके लिये और जनहितार्थ आप मुझपर दया करके सूतक-विधिका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पशुन्द! मृत्यु तथा जन्म होनेपर चार प्रकारका सूतक होता है, सामान्यतः जो चारों वर्णोंके द्वारा संश्लेषित दूर करनेके योग्य है। जननाशौच और मरणाशौच होनेपर दस दिनोंतक इस कुलका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस कालमें दान, प्रतिग्रह, होम और स्वाध्याय बंद हो जाता है। देश, काल, आत्मशक्ति, द्रव्य, द्रव्यप्रयोजन, औचित्य तथा व्यक्तों के जान करके ही अशौच-कर्मके विहित नियमोंका पालन करना चाहिये।

गुफा और अग्निमें प्रवेश तथा देशान्तरमें जाकर घरे हुए परिजनोंका अशौच तत्काल वस्त्रसहित स्नान करनेसे समाप्त हो जाता है। जो प्राणी गर्भस्थ या गर्भसे निकलते ही मर जाते हैं, उनका अग्निदाह, अशौच एवं तिलोदक संस्कार नहीं होता है। शिल्पी, विश्वकर्मा, वैद्य, दाम्नी, दाम, राजा और श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी सद्यः शुद्धि बतायी गयी है। याज्ञिक (उत्तरपरायण), मन्वन्त, अग्निहोत्री तथा राजा सदैव शुद्ध होते हैं। इन्हें अशौच नहीं होता है। राजागण जिसकी इच्छा करते हैं, वह भी पवित्र ही रहता है।

हे द्विज! ब्रह्मका जन्म होनेपर सापिण्डों और सगोत्रियोंको एक-जैसा अशौच नहीं होता। दस दिनोंके बाद माता शुद्ध हो जाती है और पिता तत्काल स्नान करके ही स्पर्शादिके लिये पवित्र हो जाता है। मनुने कहा है कि विवाहोत्सव तथा यज्ञके आयोजनमें यदि जन्म या मृत्युका सूतक हो जाता है तो पूर्व मानस संकल्पित धन और पूर्वनिर्मित खाद्यसामग्रीका उपयोग करनेमें दोष नहीं है। सभी वर्णोंके लिये अशौच समानरूपसे माननीय है। माता-पिताको जो सूतक होता है, उसमें माताके लिये तो सूतक होता है और पिता स्नान करके तुरंत शुद्ध हो जाता है। दस दिनोंके लिये प्रवृत्त जननाशौच और मरणाशौचके अन्तर्गत यदि पुनः

जन्म-मरण हो जाता है, तो पूर्वप्रवृत्त अशौचको तीन भागोंमें विभक्त करके यदि पुनर्जन्म-मरण दो भागोंके अन्तर्गत हुआ है तो पूर्व अशौचकी निवृत्तिके दिनसे उत्तराशौचकी भी निवृत्ति हो जायगी। किन्तु यदि पूर्वप्रवृत्त अशौचके तीसरे भागमें पुनराशौच प्रवृत्त हुआ है तो उत्तराशौचमें प्रवृत्तिके समाप्तिपर ही यदि सूतक दशाहके बीच पुनः किसी सगोत्रिक मरण या जन्म होता है तो इस अशौचकी जबतक शुद्धि नहीं होती तबतक अशौच रहता है।<sup>१</sup>

अधिरथने कहा है कि मनमें दान देनेकी भावना उत्पन्न हो जानेपर समय जैसा भी हो दान-दुःखी ब्राह्मणको विनम्रतापूर्वक दान देना चाहिये, उसमें दोष नहीं होता है।

अशौच होनेपर मनुष्य पहले मिट्टीके पात्रसे तिलमिश्रित जलका स्नानकर शरीरपर मिट्टीका लेप करे, तत्पश्चात् स्वच्छ जलसे पुनः स्नान करके शुद्ध हो।

अशौचके बाद दान सभासदको देना चाहिये। सुवर्ण, गी और वृषका दान ब्राह्मणको देना चाहिये। ब्राह्मणको अपेक्षा क्षत्रिय दुग्धुना, वैश्य तिगुना तथा शूद्र चौगुना धन ब्राह्मणको दान दे। गृह्यसूत्रके संस्कारसे रहित होनेपर सातवें अथवा आठवें वर्षमें मृत्यु हो जाय तो जितने वर्षका वह मूलक व्यक्ति था उतने दिनका अशौच मानना चाहिये। ब्राह्मण और स्त्रीकी रक्षाके लिये जो अपने प्राणोंका परित्याग करते हैं तथा जो लोग गोशाला तथा रणभूमिमें प्राणोंका परित्याग करते हैं, उनका अशौच एक रात्रिका होता है। जो नरश्रेष्ठ अनाथ प्रेतका संस्कार करते हैं, उन ब्राह्मणोंका किसी शुभ कर्ममें कुछ भी अशुभ नहीं होता है। ब्राह्मणके सहयोगसे अन्य वर्णवाले जो इस कर्मको सम्पन्न करते हैं, उनका भी कुछ अशुभ नहीं होता है। स्नान करनेसे उनकी सद्यः शुद्धि हो जाती है।

अशौचसे विधिवत् शुद्ध होकर जब शूद्र जलके मध्य स्नान कर रहे हों तभी ब्राह्मणको उन्हें देखना चाहिये।

(अध्याय ३९)





## दुर्मृत्यु होनेपर सद्गतिलाभके लिये नारायण-बलिका विधान

तार्क्ष्यने कहा—भगवन्! किन्हीं ब्राह्मणोंकी अपमृत्यु होती है, उनका पारलौकिक मार्ग कैसा है? उन्हें वहाँ कैसा स्थान प्राप्त होता है? उनकी कौन-सी गति होती है? उनके लिये क्या उचित है और क्या विधान है? हे मधुसूदन! मैं उन सभी बातोंको सुनना चाहता हूँ। कृपया आप उनका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जो ब्राह्मण विकृत मृत्युके कारण प्रेत हो गये हैं, उनके मार्ग, पारलौकिक गति, स्थान और प्रेतकर्म-विधानको मैं कह रहा हूँ। यह परम गोपनीय है, इसे तुम सुनो। जो ब्राह्मण खाई, नदी, नाला लौधते हुए और सर्प आदिके काटनेसे मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु गला दबाने तथा जलमें डुबानेसे होती है, जो दुर्बल ब्राह्मण हाथीकी सूँड़के प्रहारसे, विषशयसे, क्षीण होकर, अग्निदाह, सूँड़-प्रहार तथा विषपिचका (हैजा) रोगसे मरते हैं, जिनके द्वारा आत्महत्या कर ली जाती है, जो गिरकर, फाँसी लगाकर और जलमें डूबकर मर जाते हैं, उनकी स्थितिको तुम सुनो।

जो ब्राह्मण म्लेच्छादि प्रातिपत्तियोंद्वारा मारे जाते हैं, वे घोर नरक प्राप्त करते हैं। जो कुत्ता, सिंघरादिके स्पृश, दाह-संस्काररहित, कीटाणुओंसे परिष्यात, वर्णाश्रम-धर्मसे दूर और महारोगोंसे पीड़ित होकर मरते हैं, दोषसिद्ध, व्यङ्ग्यपूर्ण बात, पापियोंके द्वारा प्रदत्त अन्नका सेवन करते हैं, चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, विद्युत्-निपात, अग्नि, दन्तधारी पशु तथा वृक्षादि पतनके कारण जिनकी अपमृत्यु होती है, जो रजस्वला, प्रसवा, शूरा और धोकिनके सहवाससे दोषयुक्त हो गये हैं, वे सभी उस पापसे नरक-भोग करके प्रेतयोनि प्राप्त करते हैं। परिजनोंको उनका दाह-संस्कार, अशौच-निवृत्ति एवं जलक्रियाका कर्म नहीं करना चाहिये। हे तार्क्ष्य! ऐसे पापियोंका नारायणबलिके बिना मृत्युका आद्य कर्म, और्ध्वदेहिक कर्म भी नहीं करना चाहिये।

हे पक्षिराज! सभी प्राणिपौका कल्याण करनेके लिये पाप और भयको दूर करनेवाली उस नारायणबलिके विधानको सुनो। छः मासकी अवधिमें ब्राह्मण, तीन मासमें क्षत्रिय, डेढ़ मासमें वैश्य तथा शूद्रकी तत्काल दाह (पुतलिका-दाह)-क्रिया करनी चाहिये। गङ्गा, यमुना, नर्मिष, पुष्कर, जलपूर्ण तालाब, स्वच्छ जलयुक्त गम्भीर जलाशय, बावली, कुप, गोशाला, घर या मन्दिरमें भगवान् विष्णुके सामने ब्राह्मण

इस नारायणबलिको सम्पन्न कराये। पौराणिक और वैदिक मन्त्रोंसे प्रेतका तर्पण किया जाय। इसके बाद यजमान सभी औषधियोंसे युक्त जल तथा अक्षत लेकर विष्णुका भी तर्पण पुस्तकसूक्त अथवा अन्य वैष्णवमन्त्रोंसे करके दक्षिणाभिमुख होकर प्रेतका विष्णुरूपमें इस मन्त्रसे ध्यान करे—

अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥

अव्ययः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत्।

(४०।१५-१८)

अनादि, अनन्त, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले अव्ययदेव पुण्डरीकाक्ष भगवान् प्रेतको मोक्ष प्रदान करें।

तर्पण समाप्त हो जानेके पश्चात् रागमुक्त, ईर्ष्या-द्वेष-रहित, जितेन्द्रिय, पवित्र, धर्मपरायण, दानधर्ममें संलग्न, सन्तुष्टि, एकग्रचित्त होकर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके तथा बाणीपर संयम रखते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ यजमान शूद्र हो। उसके बाद भक्तिपूर्वक वहाँ एकादश ब्राह्मणोंको बुलाकर, धान, यव, साटी धान, गेहूँ, कंगनी (टीमुर), शुभ हविष्यान्न, मुद्गा, छत्र, पगड़ी, वस्त्र, सभी प्रकारके धान्य, दूध तथा मधुक दान ब्राह्मणोंको दे। वस्त्र और चादुकासे युक्त आठ प्रकारके पददान बिना पंक्तिभेद किये (समानरूपसे) सभी ब्राह्मणोंको इस अवसरपर देना चाहिये।

पृथ्वीपर पिण्डदान हो जानेके पश्चात् शङ्खपात्र तथा ताम्रपात्रमें पृथक्-पृथक् गन्ध-अक्षत-पुष्पयुक्त तर्पण करे। ध्यान-धारणासे एकग्र मन हो, घुटनोंके बल पृथ्वीपर टिक करके, वेद-शास्त्रोंके अनुसार सभी ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। एकादश ब्राह्मणोंसे पृथक्-पृथक् अर्घ्य देना चाहिये। उस समय 'आषोदेवीर्मधुमती०' इत्यादि मन्त्रसे पहले पिण्डपर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। उसके बाद 'उषस्याम गृहीतोऽग्नि०' इस मन्त्रसे दूसरे, 'येनापावक चक्षुषा०' मन्त्रसे तीसरे, 'ये देवासः०' मन्त्रसे चौथे, 'समुद्रं गच्छ०' मन्त्रसे पाँचवें, 'अग्निर्न्योति०' मन्त्रसे छठे, 'हिरण्यगर्भ०' मन्त्रसे सातवें, 'यमाय०' मन्त्रसे आठवें, 'यज्ञाय०' मन्त्रसे नवें, 'या फलिनी०' मन्त्रसे दसवें तथा 'भद्रं कर्णेभिः०' मन्त्रसे ग्यारहवें पिण्डपर अर्घ्य प्रदान करके उनका विसर्जन करे।

एकादशदेवतय ब्राह्मणोंके दसवें दिन ब्राह्मण आरम्भ करे। उस दिन चारों वेदके ज्ञाता, विद्याशील और

सदगुण-सम्पन्न, वर्षाश्रम-धर्मपालक, शैलवान्, श्रेष्ठ, अकिञ्चल अङ्गोवाले प्रशस्त और कभी त्याग्य न होनेयोग्य उत्तम पाँच ब्राह्मणोंका आवाहन करे। तदनन्तर सुवर्णसे विष्णु, ताम्रसे रुद्र, चाँदीसे ब्रह्मा, लोहेसे यम, सोसा अथवा कुशसे प्रेतकी प्रतिमा बनवा करके 'सञ्जोदेवी०' इस मन्त्रसे विष्णुदेवको पश्चिम दिशामें, 'अन्न आयाहि०' मन्त्रसे रुद्रको उत्तर दिशामें, 'अग्निमीळे' मन्त्रसे ब्रह्माको पूर्व दिशामें, 'इष्टेवोर्जैवा०' मन्त्रसे यमको दक्षिण दिशामें तथा मध्यमें मण्डल बनाकर कुशमय नर स्थापित करना चाहिये।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और प्रेत—इन पाँचोंके लिये पञ्चरत्नमुक्त कुम्भ अलग-अलग रखे। इन सभी देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् रूपसे वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा मुद्रा प्रदान करे एवं पृथक्-पृथक् ततन्मन्त्रोंसे उनका जप करे। उसके बाद यथाविधि देवोंके निमित्त पाँच ब्राह्मण करने चाहिये। तत्पश्चात् शङ्ख अथवा ताम्रपात्र या इनके अभावमें मिट्टीके पात्रमें सर्वाधि समान्वित तिलोदक लेकर पृथक्-पृथक् पीतपत्र प्रदान करे। हे खगैश्वर! असन्, पादुका, छत्र, अंगूठी, कमण्डलु, पात्र, भोजन-पदार्थ और वस्त्र—ये अष्ट पद देने गये हैं, इनके साथ ही स्वर्ण तथा दक्षिणसे बुद्ध एक तिलपूर्ण ताम्रपात्र विधिपूर्वक मुख ब्राह्मणको दान देना चाहिये। ऋग्वेद-पारंगत ब्राह्मणको हरी-भरी फसलसे बुद्ध भूमि, यजुर्वेद-विष्णुत ब्राह्मणको दूध देनेवाली गाय, त्रिपदे उद्देश्यसे सामवेदका गान करनेवाले ब्राह्मणको स्वर्ण, यमके उद्देश्यसे तिल, लौह और दक्षिणा देनी चाहिये।

सर्वाधिसे समन्वित कुशद्वारा निर्मित पुष्पकूटित पुस्तकका निर्माण करके कृष्णाजिनको बिछाकर उसे स्थापित करे और पलाशका विभाग करके तीन सौ साठ वृन्तोंमें पुस्तककी हड्डियोंका निर्माण करे। यथा—शिरोभागमें चालीस वृन्त, ग्रीवामें दस, वक्षःस्थलमें बीस, उदरमें बीस, दोनों भुजाओंमें सौ, कटिप्रदेशमें बीस, दोनों ऊरुओंमें सौ, दोनों जंघाओंमें तीस, शिशन-स्थानमें चार, दोनों अण्डकोशोंमें छः और पैरकी अंगुलियोंमें दस वृन्तोंसे उस कल्पित प्रेतपुरुषकी अस्थियोंका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके शिरोभागपर नारियल, तालुप्रदेशमें लौकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वाभागमें केला, आँतोंके स्थानपर कमलनाल, प्राणभागमें जल, वसाके स्थानपर मेदक नामक अर्क, मूत्रके स्थानपर गोमूत्र, घातुओंके स्थानमें गन्धक, हरिताल एवं मनःशिला तथा वीर्यस्थानमें

पारद, पुरीष (मल)—के स्थानमें पीतल, सम्पूर्ण शरीरमें मनःशिला, संधिभागोंमें तिलकी पीठी, मांसभागमें यवका आटा, मधु और मोम, केशराशिके स्थानमें बरगदकी बरोह, त्वक्भागमें मृगचर्म, दोनों कर्णप्रदेशमें तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानमें गुंजाफल, नासिकाभागमें कमलपत्र, नाभिप्रदेशमें कमलपुष्प, दोनों अण्डकोशोंके स्थानमें वंगन, लिंगभागमें सुन्दर गाजर एवं नाभिमें घी भरे। कौपीनके स्थानपर त्रपु, दोनों स्तनोंमें मुठाफल, सिरमें कुंकुमका लेप, कर्पूर, अगुरु, धूप तथा सुगन्धित पुष्प-मालाओंका अलंकरण, परिधानके स्थानपर पट्टसूत्र और हृदयभागमें रजत-पत्र रखे। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनों सिद्धियोंको संकल्पित करके यजमान दोनों नेत्रोंमें एक-एक कौट्टी भरे। तदनन्तर नेत्रोंके कोणभागमें सिन्दूर भरकर उसको ताम्बूलादि विभिन्न उपहारोंसे सुशोभित करे।

इस प्रकार नाना वस्तुओंसे निर्मित और अलंकृत उस प्रेतकी सर्वाधि प्रदान करके जैसा कहा गया है, उसीके अनुसार उसको पूजा करनी चाहिये। जो प्रेत अग्निहोत्र करनेवाला हो, उसको यथाविधि यज्ञपात्र भी देना आवश्यक है। उसके बाद 'शिरोगे श्री०' तथा 'पुनन्तु वरुण०'—इन मन्त्रोंसे अधिमन्त्रित जलके द्वारा शालग्राम शिलाको धोकर यजमान उसीसे प्रेतका पवित्रोत्तरण करे। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये एक दूध देनेवाली सुशील गौका दान किया जाय। तिल, लौह, स्वर्ण, रुई, नमक, सप्तधान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढ़कर पुष्पदायक होते हैं। अतः गोदान करनेके बाद यजमान तिलपात्र-दान और पद-दान एवं महादान दे। उसके बाद सभी अलंकारोंसे विभूषित वैतरणी धेनुका दान करे।

प्रेतकी मुक्तिके लिये इस अवसरपर आत्मवान्को भगवान् विष्णुके निर्मित ब्राह्मण करना चाहिये। तत्पश्चात् हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य करे। अतएव 'ॐ विष्णुरिति०'—इस मन्त्रसे अधिमन्त्रित उस प्रकल्पित प्रेत-पुतलेकी मृत्यु मानकर उसका दाह-संस्कार करे। तदनन्तर तीन दिन सूतक माने। दशाह कर्म करनेवाला यजमान इस बीच प्रेतमुक्तिके लिये पिण्डदान और सभी वार्षिक क्रियाओंको सम्पन्न करता है तो प्रेत अपनी मुक्तिका अधिकार प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ४०)

## वृषोत्सर्गकी संक्षिप्त विधि

श्रीविष्णुने कहा—हे खगेश्वर! कार्तिक आदि महीनोंकी पूर्णमासी तिथिको पड़नेवाले शुभ दिनपर विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करना चाहिये। नान्दीमुख श्राद्ध करके वत्सतरीके साथ वृषका विवाह और वृषके खुरके पास श्राद्ध करनेके पश्चात् उन दोनोंका उत्सर्ग करे।

वापी और कूपके निर्माणोत्सर्गके समय गोशालामें विधिवत् संस्कारके अनन्तर अग्निको स्थापना करनी चाहिये। विवाह-विधिके समान ब्रह्मा-वरण करना चाहिये। यज्ञोपवासोंकी क्रमिक स्थापना, पायस-खीरका पाक, उपयमन कुशादिका क्रमशः स्थापन करे। यज्ञोपवासोंका सिंचन करनेके बाद होम करना चाहिये। प्रथम दो आहुति आपार और उसके बाद दो आज्य-भाग संज्ञक आहुतियाँ हैं। अतः 'प्रथमेऽहुरिति०' मन्त्रसे यजमानको छः आहुतियाँ देने चाहिये।

आधार और आज्य-भाग संज्ञक चार आहुतियोंके अनन्तर अङ्गदेवता, अग्नि, रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, शिव, भव, महादेव, ईशान और यमको आहुति दे। तत्पश्चात् 'पूषाण०' इस मन्त्रसे एक पिष्टक होम, चरु तथा पायस दोनोंसे

स्विष्टकृत् होम करे। तदनन्तर प्रथम व्याहृति होम, प्रायश्चित्त होम, प्रजापति होम, संसव (अवशिष्ट जल) प्राशन करे। इसके बाद प्रणोतका परिमोक्षण करे। पवित्र-प्रतिपत्ति (परित्याग) करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे। यज्ञ रुद्रसूक्तका पाठ करनेसे प्रेतको मोक्षकी प्राप्ति होती है।

एक रंगके वृष और एक वत्सतरीको स्नान कराकर सभी अलंकारोंसे विभूषित करके उन दोनोंको प्रतिष्ठापित करनेसे प्रेतको मोक्ष प्राप्त होता है। इस कर्मके बाद वृषभकी पूँछसे गिरे हुए जलके द्वारा मन्त्रपूर्वक तर्पण-कार्य करना चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणोंको भोजनसे संतुष्ट करके दक्षिणासे संतुष्ट करे।

तदनन्तर यथाविधि एकोदश श्राद्ध करनेका विधान है। उसे करके प्रेतके उद्धार-हेतु ब्राह्मणको जल और अन्नका दान दिया जाता है। उसके बाद द्वादशश्राद्ध श्राद्ध और मासिक श्राद्ध पृथक्-पृथक् करने चाहिये।

इस विधिकी सम्पत्क पालन करनेवाला प्रेतको उस योनिसँ मुक्त कर देता है। (अध्याय ४१)

~~~~~

## भूमि तथा गोचर्म भूमि आदि दानोंका माहात्म्य और ब्रह्मस्वहरणका दोष

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! जिस प्रकार एक वत्स हजार गायोंके बीच स्थित अपनी माताको प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार पूर्वजन्ममें किया गया कर्म अपने कर्ताका अनुगमन करता है—

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।

तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

(४२।१)

भूमिदान करनेवाले प्राणीका अभिनन्दन सूर्य-चन्द्र, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और भगवान् त्रिशूलधारी शिव करते हैं। इस संसारमें भूमिके समान दान नहीं है। भूमिके समान दूसरी निधि नहीं है। सत्यके समान धर्म नहीं है और

असत्यके समान पातक नहीं है—

नास्ति भूमिद्वयं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः।

नास्ति सत्यसमो धर्मो नावृतात्पातकं परम्॥

(४२।२)

अग्निका प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी वैष्णवी कहलाती है तथा गाय सूर्यकी पुत्री है। अतः जो व्यक्ति स्वर्ण, गी एवं पृथ्वीका दान देता है, उसने मानो त्रैलोक्यका दान कर दिया। गी, पृथ्वी और विद्या इन तीनोंकी अतिदान कहा गया है। जप-पूजन तथा होम करके दिये गये ये तीनों दान नरकसे उद्धार करते हैं। बहुत-से पाप तथा क्रूर कर्म करके भी मनुष्य गोचर्म भूमिका दान करनेसे शुद्ध हो जाता है।

१-काव्य और नैमित्तिक दो प्रकारका वृषोत्सर्ग होता है। काव्यमें गणेशपूजन, नान्दीकाष्ठ आदि करके ही वृषोत्सर्ग किया जाता है। मरणाशौचके ग्यारहवें दिन किया जानेवाला वृषोत्सर्ग नैमित्तिक वृषोत्सर्ग है। इसमें नान्दीकाष्ठ नहीं किया जाता।

२-जीष्याहुरितिदानविंशति गायः पृथ्वी सरस्वती। नरकदुःखरन्ध्रे जन्तुजन्तोपशः॥ (४२।५)

३-गायं ततं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्यनितम्। तत्क्षेत्रं दत्तं भूमि गोचर्मैरर्चितम्॥ (पराशरस्मृति १२।४३)

अर्थात् जितने स्थानपर एक हजार गीर और दस बिल स्वतन्त्ररूपसे घुस-फिर सकते हैं, उतना भूमिभाग गोचर्म कहलाता है।

इस दानमें दी हुई वस्तुको लोभवश हरण करनेवालेको हरण करनेसे रोकना चाहिये। जो उसका परिरक्षण नहीं करता है, वह घोर नरकमें जाता है।

प्राण भले ही कण्ठमें आ जायें तो भी निषिद्ध कर्म नहीं करना चाहिये, कर्तव्य कर्म ही करना चाहिये ऐसा धर्माचार्योंने कहा है। किसीकी आजीविकाको नष्ट करनेपर हजार गौओंके बंधके समान पाप लगता है तथा किसी जीविकारहितको आजीविका प्रदान करनेपर लक्ष धेनुके दानका फल प्राप्त होता है। गौ-हत्यासे आदिसे एक गायको छुड़ा लेना श्रेष्ठ है, उसकी तुलनामें सौ गौ-दान करना श्रेष्ठ नहीं है। सौ गौ-दान करना गौ-हत्यासे एक गायको बचा लेनेकी समता नहीं कर सकता।<sup>१</sup> जो व्यक्ति स्वयं दान देकर स्वयं ही उसमें बाधक बन जाता है, वह प्रलयकालतक नरकका भोग करता है।

जीविकारहित निर्धन ब्राह्मणकी रक्षा करनेपर वैसा पुण्य मनुष्यको प्राप्त होता है, वैसा पुण्य विधिवत् दक्षिणासहित अश्वमेध-यज्ञ करनेपर भी सम्भव नहीं है। दुर्बल, वृद्ध ब्राह्मणकी रक्षा करनेमें जो पुण्य है, वह वेदाध्ययन और प्रचुर दक्षिणासे युक्त यज्ञ करनेपर नहीं है। बलात् अपहरण किये गये ब्राह्मणोंके धनसे पाले-पोसे तथा समृद्ध बनाये गये वाहन और सैन्य शक्तिर्हीन युद्धकालमें वैसे ही नष्ट हो जाती हैं जैसे बालूके द्वारा बनाये गये पुल विनाश हो जाते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा दी हुई

भूमिका अपहरण करता है, वह साठ हजार वर्षतक विष्टामें कृमि होकर जन्म लेता है। प्रेमसे जो ब्राह्मणका धन खाता है, वह अपने कुलकी सात पीढ़ीको भस्म कर देता है। उसी ब्राह्मणका उपयोग यदि चोरी करके किया जाय तो जबतक चन्द्रमा और तारागणोंकी स्थिति रहती है, तबतक उसकी कुल-परम्परा भस्म हो जाती है। पुरुष कदाचित् लोहें और पत्थरके चूर्णको खाकर पचा सके, किंतु तीनों लोकमें कौन ऐसा व्यक्ति है जो ब्राह्मणके धनको पचानेमें समर्थ हो सकेगा?

देव-इन्द्रका विनाश करनेसे, ब्राह्मणके धनका हरण करनेसे और उसकी मर्यादाका उल्लंघन करनेसे प्राणिपौके कुल निर्मूल हो जाते हैं। यदि ब्राह्मण विद्यासे विवर्जित है तो आचार्यत्वादिके लिये खरण करनेके सन्दर्भमें उसका परित्याग करना ब्राह्मणव्रतिक्रमण नहीं है। जलती हुई आगको छोड़कर राखमें हवन नहीं किया जाता है।

संक्रान्तिकालमें जो दान और हव्य-कव्य दिये जाते हैं, वह सब सात कल्पोंतक बार-बार सूर्य दानदाताको प्रदान करता है। प्रतिग्रह, अध्यापन और यज्ञ करवानेके कार्योंमें विद्वान् प्रतिग्रहको ही अपना अभीष्टतम कहते हैं। प्रतिग्रहसे जप-होम और कर्म शुद्ध होते हैं, याजन-कर्मको वेद पवित्र नहीं करते। निरन्तर जप एवं होम करनेवाला तथा इसके द्वारा बन्धने गये भोजनको न करनेवाला ब्राह्मण रत्नोंसे परित्याग पृथ्वीका प्रतिग्रह करके भी प्रतिग्रहके दोषसे निर्लिप्त रहता है।<sup>२</sup> (अध्याय ४२)

~~~~~

## शुद्धि-विधान

श्रीविष्णुने कहा—जो जल, अग्नि तथा अन्य किसी बन्धनके भयसे धर्मपथसे विचलित हो गये हैं और जो संन्यास-धर्मका परित्याग करके पतित हो चुके हैं, वे गौ और वृषभका दान देकर दो चान्द्रायणव्रतसे शुद्धि प्राप्त करते हैं। बारह वर्षसे कम और चार वर्षसे अधिक आयुके बालकके पापका प्रायश्चित्त माता-पिता अथवा अन्य बान्धवको करना चाहिये। चार वर्षसे कम आयुवाले बालकका न कोई अपराध है और न कोई पाप। उसके लिये न तो राजदण्ड

है और न कोई प्रायश्चित्तका विधान ही है।

यदि रजोदर्शन होनेपर स्त्री रोगग्रस्त हो जाय तो वह चौधे दिन वस्त्रादिका परित्याग करके स्नानसे शुद्ध हो सकती है। आतुरकालमें जननाशीचप्रयुक्त स्नान होनेपर कोई जो रुग्ण न हो ऐसा व्यक्ति दस बार स्नान करके प्रत्येक स्नानके बाद यदि उस आतुर व्यक्तिका स्पर्श करता जाय तो वह आतुर शुद्ध हो जाता है। (अध्याय ४३)

~~~~~

१-वर्मेकाप्यवृद्धा न तु दत्तं नर्मां शतम्। एकां ह्येतां शतं दत्त्वा न त्वेन सन्नात भवेत्॥ (४२।१०)

२-सदा जापी सदा होमी परपाकविर्वर्जितः। रत्नपूर्णाब्धिं महौ प्रतिगुह्यते तिष्ठते॥ (४२।२२)



## दुर्मृत्यु तथा अकालमृत्युपर किये जानेवाले श्राद्धादि कर्म और सर्पदंशसे मृत्युपर विहित क्रिया-विधान

श्रीविष्णुने कहा—हे तक्षक! जिनकी मृत्यु स्वेच्छासे आत्मघातके द्वारा होती है, जो सींग और दाँतवाले पशु, सरकनेवाले जीव, बाण्डालादि विना जलीय पुरुष, अल्पजल-विषादि अहितकर पेय पदार्थ, आघात-प्रतिघात, जल-अग्निघात और बाधु तथा निराहारादिके द्वारा जिनकी मृत्यु होती है, उन्हें पापकर्म करनेवाला कहा गया है।<sup>१</sup> जो पाखण्डी, वर्णाश्रमधर्मसे रहित, महापातकी तथा व्यभिचारियों मित्रियों और आरुद्रपतित (संन्यासब्रह्ममें जाकर धर्मित होनेवाले) हैं, उनका दाहसंस्कार, नव ब्राह्मण एवं सपिण्डन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण मीलन बलात् गये हैं, उनको भी ऐसे पापियोंके लिये न करे। यदि अग्निहोत्र करनेवाला ब्राह्मण ऐसा पापकर्म करता है तो घरवाले मरनेपर उसकी जो जीविकावृत्ति है, उसको जलमें फेंक दें और उसके घरकी अग्निको चौराहेपर ले जाकर जल दें तथा उसके पाशोंको अग्निमें जला दें।

हे काश्यप! पूर्वोक्त पापियोंकी मृत्युका एक वर्ष पूर्व हो जाय तो दशरत्न परिकरोंकी सूक्तपद्धती एकदशी विधिको गन्ध-अक्षत-पुष्पदिसमें विष्णु और यमकी पूजा करके कुशोंके ऊपर मधुपुष्प और पुतमिश्रित दस पिण्ड देना चाहिये।

मौन होकर तिलके सहित विष्णु और यमका ध्यान करते हुए दक्षिणाभिमुख होकर पूर्वोक्त दस पिण्ड प्रदान करे। उन पिण्डोंको उठाकर और एकमें मिलाकर तीर्थके जलमें डालते हुए मृतकके नाम और गोत्रका उच्चारण करना चाहिये।

इसके बाद पुष्प, चन्दन, भूप, तोष, केवट तथा भक्ष-भोग्य पदार्थोंसे विष्णु और यमकी पुनः पूजा करे। उस दिन उपवास रहकर कुल, विद्या, तप और शीतसे सम्पन्न यथासामर्थ्य नौ अथवा पौँच साधु ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उसके दूसरे दिन मध्याह्न कालमें पूर्वदिनके समान पुनः विष्णु एवं यमकी पूजा करके उत्तराभिमुख उन ब्राह्मणोंको

आसनपर बैठावे। उसके बाद यज्ञोपवीती काटी आवाहन, अर्घ्य तथा दानादिमें विष्णु और यमसे समन्वित प्रेतके नामका कीर्तन करे तथा प्रेत, यम और विष्णुका स्मरण करते हुए ब्राह्मण सम्पन्न करे। उस अवसरपर पिण्डदानके लिये अन्य देवोंका भी आवाहन करना चाहिये। उसके बाद उन्हें क्रमशः दस अथवा पौँच पुष्प-पुष्प पिण्ड दे। यथा—पहला पिण्ड विष्णुदेव, दूसरा पिण्ड ब्रह्मा, तीसरा पिण्ड शिव, चौथा पिण्ड भूवर्माहित शिव और पौँचवाँ पिण्ड प्रेतके लिये देय है। प्रेतके नाम एवं गोत्रका स्मरण तथा विष्णु शब्दका उच्चारण करना चाहिये। पिण्डदान होनेके बाद सिर झुकाकर नमस्कार करते हुए पौँचवें पिण्डको कुशोंपर स्थापित करे। तदनन्तर यथाशक्ति गौ-भूमि और पिण्डदानादिके द्वारा उस प्रेतका स्मरण करते हुए कुल तथा तिलसे युक्त उन ब्राह्मणोंके कुशपुष्प हाथोंमें तिल-दान दे।

इसके बाद ब्राह्मणोंको अन्न, ताम्बूल और दक्षिणा देकर वेदमय ब्राह्मणकी स्पर्शदानसे पूजा करे। यह दान नाम-गोत्रका स्मरण करते हुए 'विष्णु प्रसन्न हो', ऐसा कहकर देना चाहिये।

तदनन्तर ब्राह्मणोंका अनुगमन करके यजमान दक्षिणाभिमुख होकर प्रेतके नाम-गोत्रका कीर्तन करते हुए 'श्रीश्वेऽस्तु' ऐसा कहकर भूमिपर जल गिरा दे। तत्पश्चात् मित्र एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ ब्राह्मणके अवशिष्ट भोजनको संयत वाक् होकर ग्रहण करे।

तदनन्तर प्रतिवर्ष सांवासर ब्राह्मण एकोष्टि विधानसे करना चाहिये। इस प्रकारकी क्रिया करनेसे पापीजन स्वर्ग वाले जायेंगे। इसके बाद वे सपिण्डीकरण आदिकी क्रियाओंकी कारयेपर उसे प्राप्त करते हैं।

यदि प्रमादवश किसी मनुष्यकी जल आदिमें डूबकर अपमृत्यु हो जाती है तो उसके पुत्र या सगे-सम्बन्धीको यथाविधि सभी और्ध्वदैहिक कर्म करने आवश्यक हैं।

१-स्वेच्छया तक्षकं वररथं भृङ्गिर्दंष्ट्रिमरीच्यैः। बाण्डालमालम्ब्यैश्च विषादौष्ण्यद्वैतमयाः।

जलअग्निघातवादीश्च निराहारार्द्रविषातः। वैषम्येण भवेन्मृत्युः प्रोक्तः। धर्मशास्त्रः ॥ (४८१-२)

प्रमादवशः अथवा इच्छापूर्वक भी प्राणोंको सर्पके सामने कदापि नहीं जाना चाहिये। (ऐसी स्थितिमें सर्प-दंशसे मृत्यु होनेपर) प्रतिमास दोनों पक्षोंकी पञ्चमी तिथिको नागदेवताकी पूजा करे। भूमिपर शालिचूर्णसे नागदेवकी आकृति बनावे। श्वेत पुष्प, सुगंध, धूप, दीप और सफेद अक्षतसे उसको पूजा करके कच्चा पीसा हुआ अन्न तथा दूध अर्पित करे। उसके बाद उठकर द्रव्य और वस्त्र छोड़ते हुए 'नागराज प्रसन्न हो'—ऐसा कहे।

उस दिन श्राद्ध सम्पन्न करनेके पश्चात् मधुर अन्नका

भोजन करे। यथाशक्ति वह उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणको सुवर्णकी बनी हुई नाग-प्रतिमाका दान दे। तदनन्तर उसे गौका दान देकर पुनः 'नागराज प्रीयताम्'—हे नागराज! आप अब मेरे ऊपर प्रसन्न हों—ऐसा कहे। इसके बाद सामर्थ्यानुसार पूर्ववत् उन कर्मोंको भी निर्देशानुसार करे।

जो मनुष्य अपनी वैदिक शाखाकी विधिके द्वारा ऐसे कर्मको यथावत् करता है, वह उन अपमृत्यु-प्राप्त प्राणियोंको प्रेतत्वसे विमुक्त करके स्वर्गलोकको ले जाता है।

(अध्याय ४४)

## पार्वण आदि श्राद्धोंके अधिकारी; एकसे अधिककी मृत्युपर पिण्डदान आदिकी व्यवस्था; मृत्युतिथि-मासके अज्ञात होनेपर तथा प्रवासकालमें मृत्यु होनेपर श्राद्ध आदिकी व्यवस्था; नित्य एवं दैव तथा वृद्धि आदि श्राद्धोंकी कर्तव्यताका प्रतिपादन

श्रीविष्णुने कहा—हे खगंधर! अब मैं प्रतिवर्ष होनेवाले पार्वण श्राद्धका वर्णन तुमसे कर रहा हूँ। मृत व्यक्तिके औरस और क्षेत्रज पुत्रकी प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। औरस एवं क्षेत्रज पुत्रोंके अतिरिक्त अन्यको एकोष्टि-विधिसे श्राद्ध करना चाहिये, पार्वण श्राद्ध नहीं।

अग्निहोत्र न करनेवाले मृत ब्राह्मणके क्षेत्रज तथा औरस दोनों पुत्र यदि अग्निहोत्री नहीं हैं तो उन्हें एकोष्टि श्राद्ध नहीं करना चाहिये। प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। यदि पुत्र अथवा पितामेंसे कोई एक सांनििक हो तो प्रतिवर्ष क्षेत्रज और औरसको पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। किंतु कुछ लोगोंका कहना है कि पुत्र अग्निहोत्री हों या न हों, पितृगण भी अग्निहोत्री रहे हों या न रहे हों, फिर भी एकोष्टि श्राद्ध पुत्रोंको अपने पिताकी मृत्यु-तिथिपर करना चाहिये। जिसकी मृत्यु दर्शकाल अथवा प्रेतपक्षमें होती है, उसके सभी पुत्र प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करें।

एकोष्टि श्राद्ध पुत्रहीन पुरुष और स्त्रीका भी हो सकता है। एकोष्टि यज्ञकर्ममें समूल कुशका प्रयोग करना चाहिये। बाहरसे कटे हुए अथवा एक बार काटे गये कुश ही श्राद्धमें वृद्धिदायक होते हैं। यदि किये जानेवाले पार्वण श्राद्धके बीच अशीच हो जाता है तो यज्ञमान उस अशीचके समाप्त होनेके बाद श्राद्ध करे। एकोष्टि श्राद्धका काल आ जानेपर यदि किसी प्रकारका विघ्न आ जाता है तो दूसरे मास उसी

तिथिपर वही एकोष्टि श्राद्ध किया जा सकता है। शूद्र तथा उसकी पत्नी और उसके पुत्रका श्राद्ध मीन अर्थात् मन्त्रोच्चार-रहित होना चाहिये। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—इन तीनों द्विजातियोंकी कन्या और यज्ञोपवीत-संस्कारसे हीन ब्राह्मणका भी श्राद्ध तूष्णी (मीन) होकर ही करना धर्म-विहित है। एक ही समयमें एक ही घरके बहुत-से लोगोंकी अथवा दो व्यक्तियोंकी मृत्यु हो गयी हो तो उनके श्राद्धका एक साथ और श्राद्ध पृथक्-पृथक् करना चाहिये। साथमें भरनेपर विधि इस प्रकार है—पहले पूर्वमृतको, तदनन्तर द्वितीय और तृतीयकी क्रमशः पिण्डदान करना चाहिये।

जो आलस्यग्रहित होकर इस विधानके अनुसार अपने माता-पिताका प्रत्येक वर्ष श्राद्ध करता है, वह उनका उद्धार करके स्वर्ग भी परम गतिको प्राप्त करता है। यदि किसी प्राचीकी मृत्यु और प्रस्थान-कालका दिन स्मरण नहीं है, किंतु वह मास ज्ञात है तो उसी मासकी अमावास्या-तिथिमें उस मृतककी मृत्यु-तिथि माननी चाहिये। यदि किसीकी मृत्युका मास ज्ञात नहीं है, किंतु दिनकी जानकारी है तो मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा माघमासमें उसी दिन उसका श्राद्ध किया जा सकता है। जब अपने सम्बन्धीकी मृत्युका दिन एवं मास दोनों अज्ञात हों तो श्राद्ध-कर्मके लिये यात्राके दिन और मास ग्रहण करने चाहिये। जब मृतकके

प्रस्थानका भी दिन और मास न ज्ञात हो तो जिस दिन एवं मासमें मृत्युकी बात सुनी गयी हो, उसे ही श्राद्धके लिये उपयुक्त मान ले। बिना प्रवासके भी मृत्यु होनेपर दिन तथा मास दोनों विस्मृत हो गया हो तो पूर्ववत् मृत-तिथिका निर्णय करना चाहिये।

यदि कोई गृहस्थ प्रवासमें है और उसके प्रवासके ही दिनोंमें उसके घरमें किसीकी मृत्यु हुई हो तथा मृत्युके बाद अशौचके दिन बीत चुके हों और अशौचके अनन्तर जो एकादशाह-द्वादशाह आदि श्राद्ध विहित हैं वे चल रहे हों, इसी बीच प्रवासमें रहनेवाला वह गृहस्थ घर आ जाता हो और आनेके बाद ही मृत्युकी जानकारी उसे मिलती हो तो केवल वह गृहस्थ ही अशौचसे ग्रस्त होगा और तत्काल यथाशास्त्र अपनी अशौचकी निवृत्तिके लिये अपेक्षित विधि अपनायेगा। उसके द्रव्यादिपर अशौच नहीं होगा। उसके घर आनेमात्रसे उसकी अशुचितताका प्रभाव श्राद्धके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंपर नहीं पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि यदि श्राद्धका मुख्य अधिकारी सुदूर देशमें है और उसके घर आकर यथाधिकार श्राद्ध करनेकी सम्भावना नहीं बनती है, ऐसी स्थितिमें अन्य अधिकारी पुत्रादिद्वारा यदि श्राद्धकर्म प्रारम्भ कर दिया गया है तो उसे भी श्राद्धप्रक्रिया पूर्ण करनी चाहिये। दत्त और भोक्ता दोनोंकी जननाशौच अथवा मरणाशौच ज्ञात न हो तो उन दोनोंमें किसीको भी दोष नहीं लगता। जननाशौच और मरणाशौचका ज्ञान भोक्ताको हो जाय और दत्तको न हो तो उस समय भोक्ताको ही पाप लगता है, उसमें वह दत्त दोषी नहीं होगा।

जिस मृत व्यक्तिकी तिथि ज्ञात नहीं है, उसकी मृत-तिथिका निर्धारण पूर्वोक्त प्रकारसे करके जो श्राद्धदि करता है, वह मृत व्यक्तिको तार देता है।

~~~~~

### सत्कर्मकी महिमा तथा कर्मविपाकका फल

ताक्षर्यने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मनुष्योंकी स्वर्ग और नाना प्रकारके भोग तथा सुख एवं रूप, वस्तु-बुद्धि एवं पराक्रम पुण्यके प्रभावसे प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त प्रकारके लौकिक एवं पारलौकिक भोग पुण्यवान् व्यक्तियोंको उनके पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं—ये वेदवाक्य सर्वथा सत्य हैं।

जिस प्रकार धर्मकी ही विजय होती है, अधर्मकी

नित्य-श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी सभी पितरोंके साथ भक्तिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य तथा गन्धादिके द्वारा पूजा करके पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको यथाविधि भोजन करना चाहिये। अन्वाहन, स्वधाकर, पिण्डदान, अनीकरण, ब्रह्मचर्यादि नियम और विश्वेदेवकृत्य—ये कर्म नित्य-श्राद्धमें त्याग्य हैं। इस श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम निवेदन करते हुए बिदा करे।

विश्वेदेव आदिके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंकी नित्य-श्राद्धकी भौति जो भोजन कराया जाता है, वह 'देवश्राद्ध' कहा जाता है।

यदि अग्रिम दिन कोई शुभ कार्य—विवाह अथवा यज्ञोपवीत आदि करने हैं तो उसके पूर्व-दिन मातृश्राद्ध और पितृश्राद्ध एवं मातामहश्राद्ध (श्राद्धत्रय) करने चाहिये। इन तीनों श्राद्धोंके लिये अपेक्षित विश्वेदेव-कार्य एक ही बार करना चाहिये। अर्थात् तीनों श्राद्धोंके लिये तीन बार विश्वेदेव कार्य नहीं करने चाहिये। पहले मातृपितामही तथा प्रपितामहोंके लिये, तदनन्तर पितृपितामह और प्रपितामहके लिये, तत्पश्चात् मातामहादिके लिये क्रमशः आसनादिके दानकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। यदि मातृश्राद्धमें ब्राह्मणोंका अभाव हो तो केवल परिवारमें उत्पन्न हुई पति-पुत्रसे सम्पन्न सौभाग्यवती आठ साध्वी स्त्रियोंको ही निमन्त्रित किया जा सकता है।

इष्ट और आपूर्त-कृत्योंमें आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। उत्पत्त आदिकी शान्तिके लिये नित्य-श्राद्धके समान नैमित्तिक श्राद्ध करनेका विधान है।

हे ताक्षर्य! वैसे मैंने कहा है, उसी प्रकारसे नित्यश्राद्ध, देवश्राद्ध, बुद्धिश्राद्ध, काम्यश्राद्ध, तथा नैमित्तिक श्राद्ध—इन पाँचों श्राद्धोंको करता हुआ मनुष्य अपने समस्त अभीष्टोंको प्राप्त करता है। इस तरह मैंने सब बता दिया, अब तुम मुझसे और क्या पूछ रहे हो? (अध्याय ४५)

~~~~~

नहीं। सत्यकी ही विजय होती है, असत्यकी नहीं। श्रमाकी ही विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही विजय प्राप्त करते हैं असुर नहीं—

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति चासत्यम्।

श्रमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः॥

(४६।३)

—उसी प्रकार मैंने सत्य-रूपसे यह जाना है कि सुकृतसे ही कल्याण होता है। जिसका पुण्य जितना उत्कृष्टतम है, वह मनुष्य भी उतना ही श्रेष्ठतम है। जिस प्रकार पापी जन्म लेते हैं, जिस कर्मफलके अनुसार जीव जिस भोगका भागी होता है, वह जिन-जिन योनियोंको जिस रूपमें प्राप्त करता है, जैसा उसका रूप होता है वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। हे देव! संक्षेपमें आप मेरी इस इच्छित बातको बतानेकी कृपा करें।

**श्रीकृष्णने कहा—**हे कश्यपपुत्र गरुड! शुभाशुभ फलोंके भोगके अनन्तर जिन लक्षणोंसे युक्त होकर मनुष्य इस लोकमें उत्पन्न होते हैं, उनको तुम मुझसे सुनो।

हे पक्षिश्रेष्ठ! इस लोकमें आत्मज्ञानियोंका शासक गुरु है। दुरात्माओंका शासक राजा है और गुरुरूपसे पाप करनेवाले प्राणियोंका शासक सूर्य-पुत्र यम है—

गुरुत्वात्पिता शास्ता राजा शास्य दुरात्मनाम् ।

इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥

(५८।८)

अपने पापोंका प्रायश्चित्त न किये जानेपर उन्हें अनेक प्रकारके नरक प्राप्त होते हैं। वहाँकी यातनाओंसे विमुक्त होकर प्राणी मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं। मानवयोनियोंमें जन्म लेकर वे अपने पूर्व-पापोंके जिन चिह्नोंसे युक्त रहते हैं, मैं उन लक्षणोंको तुम्हें बताऊँगा।

सभी पापी यमराजके घर पहुँचकर नाना प्रकारके कष्ट सहन करते हैं। जब उन यातनाओंसे उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है तो उनके पापोंका भागी शरीरपर चिह्नान्न होता है। उन्हीं चिह्नोंसे संयुक्त होकर वे पुनः इस पृथ्वीलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। यथा—असत्यवादी हकलाकर बोलनेवाला, गायके विषयमें झूठ बोलनेवाला गूँठ, ब्रह्महन्ता कोढ़ी, मद्यपी काले रंगके दाँतोंवाला, स्वर्णचोर कुत्तित एवं विकृत नखाँवाला और गुरुपूजोगामी चर्मरोगी होता है तथा पापियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला निम्नयोनियोंमें जन्म लेता है और दान न देनेवाला दरिद्र, अत्याच्यका यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण ग्रामसूकर, बहुताँका यज्ञ करनेवाला गध और अमन्त्रक भोजन करनेवाला कौआ होता है।

बिना परीक्षण किये हुए भोजनको ग्रहण करनेवाले निर्जन वनमें व्याघ्र होते हैं। अन्य प्राणियोंको बहुत तर्जना देनेवाले पापी बिलार, कक्षको जलानेवाला जुगुनु, पात्रको

विष्टा न देनेवाला बैल, ब्राह्मणको बासी अन्न देनेवाला कुत्ता, दूसरेसे ईर्ष्या और पुस्तककी चोरी करनेवाला जाल्पन्ध और जन्मान्ध होता है।

फलोंकी चोरी करनेसे मनुष्यके संतानको मृत्यु हो जाती है, इसमें संदेह नहीं है। वह मरनेके बाद बंदरका योनियोंमें जाता है। तदनन्तर उसीके समान मुख प्राप्त कर पुनः मानवयोनियोंमें उत्पन्न होता है और गण्डमालाके रोगसे ग्रस्त रहता है। जो बिना दिये स्वयं खा लेता है, वह संतानहीन होता है। वस्त्रकी चोरी करनेवाला गोह, विष देनेवाला वायुभक्षी सर्प, संन्यास-मार्गका परित्याग करके पुनः अपने पूर्व आश्रममें प्रविष्ट हो जानेवाला मरुस्थलका पिशाच होता है। जलापहर्ता पापीको चातक, धान्यके अपहरणकर्ताको मूषक और युवावस्थाको न प्राप्त हुई कन्याका संसर्ग करनेवालेको सर्पकी योनि प्राप्त होती है।

गुरुपत्नीग्रामी विक्षित ही गिरगिट होता है। जो व्यक्ति जलप्रपातके स्थानको तोड़कर नष्ट करता है, वह मत्स्य होता है। न बंधने योग्य वस्तुको जो खरीदता है, वह बगुला तथा गिद्ध होता है। अयोग्य व्यक्ति भेड़िया और खरीदी या रही वस्तुमें छल करनेवाला डलूककी योनि प्राप्त करता है। जो मृतकके एकादशार्हमें भोजन करनेवाला होता है तथा प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंको धन नहीं देता, वह सिंगार होता है। रानोंके साथ सम्भोग करके मनुष्य दंष्ट्री होता है। चोरी करनेवाला ग्रामसूकर, फलविक्रेता श्यामलता होता है। वृषत्योके साथ गमन करनेवाला वृष होता है। जो पुरुष पत्नीसे अग्निका स्पर्श करता है वह बिलौटा, दूसरेका मांस भक्षण करनेवाला रोगी, रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाला नपुंसक, सुगन्धित वस्तुओंकी चोरी करनेवाला दुर्गन्धदायक प्राणी होता है। दूसरेका धोड़ा या बहुत जिस-किसी भी प्रकारसे जो कुछ भी मनुष्य अपहरण करता है, वह उस पापसे विक्षित ही तिर्यक् योनियोंमें जाता है।

हे खगेन्द्र! ऐसे तो पहलेवाले चिह्न हैं ही, किंतु इनके अतिरिक्त भी अन्य बहुत-से चिह्न हैं, जो अपने-अपने कर्मानुसार प्राणियोंके शरीरमें व्याप्त रहते हैं। ऐसा पापी क्रमशः नाना प्रकारके नरकोंका भोग करके अवशिष्ट कर्मफलके अनुसार इन पूर्वकथित योनियोंमें जन्म लेता है। हे कश्यप! उसके बाद मृत्यु होनेपर जबतक शुभ और अशुभ कर्म समाप्त नहीं हो जाते हैं, तबतक सभी योनियोंमें



सैकड़ों बार उसका जन्म होता है; इसमें संदेह नहीं है। जब स्त्री तथा पुरुषके संयोगसे गर्भमें शुक्र और शोणित जाता है तो उसीमें पञ्चभूतोंसे समन्वित होकर यह पाञ्च-भौतिक शरीर जन्म लेता है। तदनन्तर उसमें इन्द्रियाँ, मन, प्राण, ज्ञान, आयु, सुख, धैर्य, धारण, प्रेरण, दुःख, मिथ्याहंकार, यत्न, आकृति, वर्ण, राग-द्वेष और उत्पत्ति-विनाश—ये सब उस अनादि आत्माको सादि मानकर पाञ्चभौतिक शरीरके साथ उत्पन्न होते हैं। उसी समयसे वह पाञ्चभौतिक शरीर पूर्वकर्मोंसे आवृद्ध होकर गर्भमें बढने लगता है।

हे तार्क्ष्य! मैंने जैसा तुमसे पहले कहा है, वैसा ही

जीवका लक्षण है। बार प्रकारके प्राणिसमूहमें इसी प्रकारके परिवर्तनका चक्र घूमता रहता है। उसीमें शरीरधारियोंका उद्भव और विनाश होता है। यथाविहित अपने धर्मका पालन करनेसे प्राणियोंको ऊर्ध्वगति तथा अधर्मकी ओर बढ़नेसे अधोगति प्राप्त होती है। अतः सभी वर्षोंकी सद्गति अपने धर्मपर चलनेसे ही होती है। हे वैवतेय! देव और मानवयोनिमें जो दान तथा भोगादिकी क्रियाएँ दिखायी देती हैं, वे सब कर्मजन्य फल हैं। घोर अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा अर्जित जो अशुभ पापकाष्ठ हैं, उनसे नरक प्राप्त होता है तथा वहाँसे जीवका उद्धार नहीं होता है। (अध्याय ४६)

~~~~~

**यममार्गमें स्थित वैतरणी नदीका वर्णन, पापकर्मोंसे घोर वैतरणीमें निवास, वैतरणीसे पार होनेके लिये वैतरणी धेनुदान, भगवान् विष्णु, गङ्गा तथा ब्राह्मणकी महिमा**

गरुडने कहा—हे देवदेवेश! महाप्रभो! अब आप परम कृपा करके दान, दानके माहात्म्य और वैतरणीके प्रमाणका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! यमलोकके मार्गमें जो वैतरणी नामकी महानदी है, वह अगाध, दुस्तर और देखनेमात्रसे पापियोंको महाभयभीत करनेवाली है। वह पीब और रक्तरूपी जलसे परिपूर्ण है। मांसके बीजइसे परिव्याप्त एवं तटपर आये हुए पापियोंकी देखकर उन्हें नाना प्रकारसे भयाक्रान्त करनेवाले स्वरूपको धारण कर लेती है। पात्रके मध्यमें घोंकी भाँति वैतरणीका जल तुरंत खीलने लगता है। उसका जल कीटाणुओं एवं बड़के समान सूँडवाले जीवोंसे व्याप्त है। मूस, पाँड़ियाल, वज्रदन्त तथा अन्यान्य हिंसक एवं मांसभक्षक जलचरोंसे वह महानदी भरी हुई है। प्रलयके अन्तमें जैसे बारहों सूर्य उदित होकर विनाशलीला करते हैं, वैसे ही वे वहाँपर भी सदैव तपते रहते हैं, जिससे उस महातापमें वे पापी किल्लाते हुए कष्टन विलाप करते हैं। उनके मुखसे बार-बार हा प्रातः, हा तात, यही शब्द निकलता है। वे जीव उस महाभयंकर भूपर्पटी इधर-उधर भागते हैं, उस दुर्गन्धपूर्ण जलमें डूबकी लगते हैं और अपनी आत्मग्लानिसे व्यथित होते हैं। वह महानदी चारों प्रकारके प्राणियोंसे भरी हुई दिखायी देती है। पृथ्वीपर जिन लोगोंने गोदान किया है, उस दानके प्रभावसे वे उसे पार कर जाते हैं अन्यथा जिनके द्वारा यह दान नहीं हुआ

है, वे उसीमें डूबते रहते हैं।

जो मूढ़ मेरी, आचार्य, गुरु, माता-पिता एवं अन्य वृद्धजनोंकी अवमानना करते हैं, मरनेके बाद उनका वास उसी महानदीमें होता है। जो मूढ़ अपनी विवाहिता पतिव्रता, सुशीलता और धर्मपरायणा पत्नीका परित्याग करते हैं, उनका सदैवके लिये उसी महापिनीनी नदीके जलमें वास होता है। विश्वासमें आये हुए स्वामी, मित्र, तपस्वी, स्त्री, बालक एवं वृद्धका वध करके जो पापी उस महानदीमें गिरते हैं, वे उसके बीचमें जाकर करुण विलाप करते हुए अत्यन्त कष्ट भोगते हैं। शान्त तथा भूखे ब्राह्मणकी विघ्न पहुँचानेके लिये जो उसके पास जाता है, वहाँ प्रलयपर्यन्त कुम्भ उसका भक्षण करते हैं। जो ब्राह्मणकी प्रतिज्ञा करके प्रतिज्ञात वस्तु नहीं देता है अथवा बुलकर जो 'नहीं है'—ऐसा कहता है, उसका वहाँ वैतरणीमें वास होता है। आग लगानेवाला, विष देनेवाला, सूटी गव्हाही देनेवाला, मद्य पीनेवाला, यज्ञका विध्वंस करनेवाला, राजपत्नीके साथ गमन करनेवाला, चुगलखोरी करनेवाला, कष्टमें विघ्न करनेवाला, स्वयं दी हुई वस्तुका अपहरण करनेवाला, खेत (मेड़) और सेतुको तोड़नेवाला, दूसरेकी पत्नीको प्रधर्षित करनेवाला, रस-विक्रेता तथा वृक्षलैपित ब्राह्मण, प्यासी गायोंकी बाकलोंको तोड़नेवाला, कन्वाके साथ व्यभिचार करनेवाला, दान देकर पक्षाताप करनेवाला, कफिलाका दूध पीनेवाला शूद्र तथा मांसभोजी

ब्राह्मण—ये निरन्तर उस वैतरणी नदीमें वास करते हैं। कृपण, नास्तिक और क्षुद्र प्राणी उसमें निवास करते हैं। निरन्तर असहनशील तथा क्रोध करनेवाला, अपनी बातको ही प्रमाण माननेवाला, दूसरेकी बातको खण्डित करनेवाला नित्य वैतरणीमें निवास करता है। अहंकारी, पापी तथा अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाला, कृतघ्न, गर्भपात करनेवाला वैतरणीमें निवास करता है। कदाचित् भाग्ययोगसे यदि उस नदीको पार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाय तो तारनेका उपाय सुनो।

मकर और कर्कशकी संक्रान्तिका पुण्यकाल, व्यतीपात योग, दिनोदय, सूर्य, चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, अमावास्या अथवा अन्य पुण्यकालके आनेपर श्रेष्ठतम दान दिया जाता है। मनमें दान देनेकी वृद्धा जब कभी उत्पन्न हो जाय, वही दानका काल है; क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर है।

शरीर अनित्य है और धन भी सदा रहनेवाला नहीं है। मृत्यु सदा समीप है, इसलिये धर्म-संग्रह करना चाहिये—

अवित्यागि शरीराणि विभक्त्यै नैव श्राद्धतः॥

नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

(४७।२४-२५)

काली अथवा लाल रंगकी शुभ लक्ष्मीवाली वैतरणी गायको सोनेकी साँग, चाँदीके सूर, कोस्यपात्रकी दोहनीसे युक्त दो काले रंगके वस्त्रोंसे आच्छादित करके सप्तधान्य-समन्वित करके ब्राह्मणको निवेदित करे। कपाससे बने हुए श्रोणावलीके शिखरपर ताम्रपात्रमें लौहदण्ड लेकर बैठी हुई स्वर्णनिर्मित यमकी प्रतिमा स्थापित करे। मुद्गद बन्धनोंसे बाँधकर इक्षुदण्डोंकी एक नौका तैयार करे। उसीसे सूर्यसे उत्पन्न गौको सम्बद्ध कर दे। इसके बाद छत्र, पादुका, अंगूठी और वस्त्रादिसे पूज्य श्रेष्ठ ब्राह्मणको संतुष्ट करके जल तथा कुशके सहित इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए वह वैतरणी गौ उसे दानमें समर्पित करे—

यमद्वारे महाधारे भुत्वा वैतरणीं पदाम्॥

तर्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पार्श्वतः॥

गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महौसुर॥

सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः॥

(४७।३०-३२)

‘हे द्विजश्रेष्ठ! महाभयंकर वैतरणी नदीको सुनकर मैं उसको पार करनेकी अभिलाषासे आपको यह वैतरणी दान दे रहा हूँ। हे विप्रदेव! गौरों मेरे आगे रहें, गौरों मेरे बगलमें रहें, गौरों मेरे हृदयमें रहें और मैं उन गायोंके बीचमें रहूँ हे विष्णुरूप! द्विजवरिष्ठ! भूदेव! मेरा उद्धार करो। मैं दक्षिणासहित यह वैतरणी गौ आपको दे रहा हूँ। आप मेरा प्रणम स्वीकार करें।

इसके बाद सबके स्वामी धर्मराजकी प्रतिमा और वैतरणी नामवाली उस गौकी प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणको दान दे। उस समय वह ब्राह्मणको आगे कर उस वैतरणी गौकी पूँछ हाथमें लेकर यह कहे—

धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये॥

उत्तारणाथ देवेशि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते।

(४७।३४-३५)

‘हे गौ! उस महानदीसे मुझे पार उतारनेके लिये आप महाभयकारी यमराजके द्वारपर मेरी प्रतीक्षा करें। हे वैतरणी! देवेशि! आपको मेरा नमस्कार है।’

ऐसा कहकर उस गौको ब्राह्मणके हाथमें देकर उनके पीछे-पीछे उनके घरतक पहुँचाने जाय। हे वैनतेय! ऐसा करनेपर वह नदी दाताके लिये सरलतासे पार करनेके योग्य बन जाती है। जो व्यक्ति इस पृथ्वीपर गौका दान देता है, वह अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध कर लेता है।

सुकर्मके प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है। स्वस्थ जीवनमें गौदान देनेसे हजार गुना एवं रोगग्रस्त जीवनमें सौ गुना लाभ निश्चित है। मेरे हुए प्राणीके कल्याणार्थ जितना दान दिया जाता है, उतना ही उसका पुण्य है। अतः मनुष्यको अपने हाथसे ही दान देना चाहिये। मृत्यु होनेके बाद कौन किसके लिये दान देगा? दान-धर्मसे रहित कृपणतापूर्वक जीवन जीनेसे क्या लाभ? इस नष्ट शरीरसे स्थिर कर्म करना चाहिये। प्राण अतिथिकी तरह अवश्य छोड़कर चले जायँगे।

हे पक्षिराज! इस प्रकार प्राणिजगत्के समस्त दुःखका वर्णन मैंने तुमसे कर दिया है। इसके साथ यह भी बता दिया है कि प्रेतके मोक्ष एवं लोकमङ्गलके लिये उसके और्ध्वदेहिक कर्मको करना चाहिये।

सूतजीने कहा—हे विप्रगज! परम तेजस्वी भगवान् विष्णुके द्वारा दिये गये ऐसे प्रेत-चरितसे सम्बन्धित

उपदेशको सुनकर गरुडको अत्यन्त संतुष्टि प्राप्त हुई।

हे ऋषियो! जीव-जन्तुओंके जन्मादिका यही सब विधान है। यहाँ जन्म, मरण, प्रेतत्व तथा और्ध्वदैहिक कृत्यका नियम है। मैंने सब प्रकारसे उनके मोक्ष आदि कारणका वर्णन कर दिया है।

‘जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणिनोंकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मकी जीत होती है, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। क्षमाकी विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं, असुर नहीं। विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन बान्धव हैं; जिनकी बुद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है, उनकी दुर्गति नहीं होती है। भगवान् विष्णु मङ्गलस्वरूप हैं, गरुडध्वज मङ्गल हैं, भगवान् पुण्डरीकाक्ष मङ्गल हैं एवं हरि मङ्गलके ही आशयतन हैं। हरि ही गङ्गा और ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण तथा गङ्गा उन विष्णुके मूर्तरूप हैं। अतः गङ्गा, हरि एवं ब्राह्मण ही इस त्रिलोकके सार हैं।’—

मया प्रोक्तं वै ते मुखैः निदानं जीव सर्वशः ।

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।

येषामिन्दीवरज्ज्यायो हृदयस्यो जनार्दनः ॥

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नासत्यम् ।

क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुराः ॥

विष्णुर्धाता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः ।

येषामेव स्थिरा बुद्धिर्न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥

मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः ।

मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः ॥

हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः ।

भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेतज्जगत्त्रयम् ॥

(४७।४५-४९)

इस प्रकार सूतजी महाराजके मुखसे निकली हुई, सभी शस्त्रोंके मूल तत्त्वोंसे सुशोभित भगवान् विष्णुकी वाणी-रूपी अमृतका पान करके समस्त ऋषियोंकी बहुत संतुष्टि प्राप्त हुई। वे सभी परस्पर उन सर्वार्थद्रष्टा सूतजीकी प्रशंसा करने लगे। शौनक आदि मुनि भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। ‘प्राणी चाहें अपवित्र हो या पवित्र हो, सभी अवस्थाओंमें रहते हुए भी जो पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतरसे पवित्र हो जाता है।’—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वोऽवस्थां गतोऽपि वा ।

यः स्मृत्युण्डरीकाक्षं स ब्राह्मणध्वजः शुचिः ॥

(४७।५२)

(अध्याय ४७)

~~~~~

## दुःखी गर्भस्थ जीवका विविध प्रकारका चिन्तन करना, यमयातनाग्रस्त जीवका सदा सुकृत करनेका उपदेश देना

ताक्षर्यने कहा—हे प्रभो! इस मर्त्यलोकमें अपने पुण्यकी संख्याके अनुसार सभी जातियोंमें जो मनुष्य निवास करते हैं, वे अपना काल आ जानेपर मृत्युको प्राप्त करते हैं—ऐसा लोकमें कहते हैं, इसके विषयमें आप मुझे बतायें। विधाताके द्वारा बनाये गये उस मार्गमें स्थित वे प्राणी अत्यन्त कठिन मार्गसे होकर गुजरते हैं। किस पुण्यसे वे प्रसन्नतापूर्वक जाते हैं और किससे वे वहीं रहते हैं और कुल, बल तथा आयुका लाभ प्राप्त करते हैं।

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! यह सुनकर, जिनके द्वारा इस पृथ्वीका निर्माण हुआ है, जिन्होंने समस्त बराबर जगत्की सृष्टि की है और समर्थ यमको अपने विहित कार्यमें नियोजित किया है, उन महाप्रभुने मनुष्यके शरीर, कर्म, भय और रूपका स्मरण करके गरुडसे इस प्रकार

कहा—

भगवान्ने कहा—हे गरुड! यम-मार्गमें गमन करनेवाले जीवात्माओंका ऐहिक शरीर नहीं, अपितु धर्म, अर्थ, काम तथा धिरकालीन मोक्ष प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवाला अंगुष्ठमात्र परिमाणमें स्थित दूसरा शरीर होता है। वह उसी रूपमें अपने पाप-पुण्यके अनुसार लोक एवं निवासगृह प्राप्त करता है। हे द्विज! उस यातना-शरीरमें स्थित होकर यम-पाशसे बँधा हुआ वह जीव पुनः-पुनः रोदन करता है—अत्यन्त पवित्र देशमें द्विजका शरीर प्राप्त करके भी मैंने न भगवान् विष्णुकी पूजा की, न पितरों एवं देवताओंको तृप्त किया, न मैंने याग, दान आदि किया और न योग्य पुत्रदि संतति हो। मुझ यम-मार्गगामीका कोई बन्धु नहीं है। मुझे पुनः द्विजका शरीर प्राप्त हो इस इच्छासे कोई पुण्य

कार्य भी नहीं किया है। अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके वेद और पुराणको संहिताओंका भी अध्ययन मैंने नहीं किया है। इस प्रकार रुदन करते हुए देहोसे यमदूत कहते हैं कि हे देहिन्! हाथमें आये हुए ब्राह्मणशरीर, पवित्र देश आदि रूपी अनमोल रत्न भी तुमने खो दिये। हे देहिन्! तुम उसीके अनुसार अपना निर्वाह करो, जैसा कि तुमने किया है।'

मनुष्य क्षत्रियवर्णशका हो अथवा वैश्यवर्णशका हो, वह शूद्र हो या नीचवर्णका हो, किन्तु यदि वह देवता, ब्राह्मण, बालक, स्त्री, वृद्ध, दीन और तपस्वियोंका हन्ता है अथवा इन्हें उपद्रवग्रस्त देखकर (इनके संरक्षणसे) पराङ्मुख हो जाता है तो उसके सभी इष्टदेव उससे विमुख हो जाते हैं। पितृगण उसके द्वारा दिये गये तिलोदकका पान नहीं करते हैं और अग्निदेव उसके द्वारा दिये गये हाथ्यको भी नहीं स्वीकार करते हैं। हे पशून्दा! संग्रामके उपस्थित होनेपर शस्त्र लेकर जो क्षत्रिय शत्रु-सेनाके समक्ष द्वेष और भयवश नहीं जाता है तथा बादमें मारा जाता है तो उसका शात्रवत् मानो व्यर्थ ही हो गया।

जो युद्धमें वीरगति प्राप्त करता है। उसने मानी चन्द एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान दे दिया, श्रेष्ठ तीर्थोंमें जाकर सदा ज्ञान कर लिया, गयातीर्थमें पहुँचकर सदा पितरोंको पिण्डदान दे दिया। जो क्षत्रिय अपने कर्तव्योंका पालन बिना किये हुए शरीरको छोड़ता है, वह सदा चिन्ता करता रहता है कि समरभूमिमें मारे गये स्वामीके लिये, बलात् अपहृत गौके लिये, स्त्री-बालककी हत्या रोकनेके लिये तथा मार्गमें लूटे जानेवाले साधियोंके लिये अपने प्राणोंका परित्याग मैंने नहीं किया। यमपाशमें आवद्ध वैश्य अपने किये हुए कर्मोंके विषयमें सोचता है कि मैंने किसी प्रकारका पुण्य-संचय नहीं किया, कुटुम्बके लिये मोहान्ध होकर क्रय-विक्रयमें मैंने सत्यका भी प्रयोग नहीं किया। ऐसे ही शूद्रका शरीर प्राप्त करनेवाला भी अपने कर्तव्यसे विमुख रहते हुए यदि शरीर त्याग करता है तो यह भी यह चिन्ता करता है कि मैंने ब्राह्मणोंको न तो यशस्कर दान दिया है और न उनको पूजा की है। मेरे द्वारा इस पृथ्वीपर जलाशयका निर्माण नहीं करवाया गया है। मैंने किसी संस्कारहीन ब्राह्मणश्रेष्ठका संस्कार करनेमें योगदान भी नहीं किया है। शास्त्रविहित अपने कर्मोंका

परित्याग करके मदान्ध होकर मैं जीवित रहा। श्रेष्ठ तीर्थमें जाकर अपने शरीरका परित्याग भी नहीं किया। मैंने धर्माज्जन भी नहीं किया है। कभी सद्गति प्राप्त करनेके लिये मैंने देवताओंकी पूजा भी नहीं की है।

समस्त लोकोंमें पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल—ये तीन लोक सारभूत हैं। सभी द्वीपोंमें जम्बूद्वीप, समस्त देशोंमें देवदेश अर्थात् भारतवर्ष और सभी जीवोंमें मनुष्य ही सार है। इस जगत्के सभी वर्णोंमें ब्राह्मणादि चार वर्ण तथा उन वर्णोंमें भी धर्मान्ध व्यक्ति श्रेष्ठ हैं। इस लोकयात्राके मार्गमें स्थित जीवात्मा धर्मसे सभी प्रकारका सुख और ज्ञान प्राप्त करता है। हे पशून्दा! गर्भस्थ जीवको अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान रहता है, वह यहाँ स्मरण करता है कि आयुके समाप्त होनेपर शरीरका परित्याग करके अब मैं मलादिमें रहनेवाले छोटे-छोटे कृमि या कीटाणुओंकी एक विशेष योनिमें स्थित हूँ, मैं सरककर चलनेवाले सर्पादिकी योनिमें पहुँचा, मच्छर हो गया था, चार पैरोंवाला अथवा चार पाद नामक पशु बन गया था अथवा जंगली सूकरकी योनिमें प्रविष्ट था। इस प्रकार गर्भमें रहते हुए उस जीवात्माको पूर्ण ज्ञान रहता है, किन्तु उत्पन्न होते ही वह तत्काल उसे भूल जाता है। गर्भमें पहुँचकर जो जीवात्मा चिन्तन करता है, शरीरभारी वैश्व ही जन्म लेकर बालक, युवा और वृद्ध होता है। यदि गर्भमें सोची गयी बात सांसारिक व्यामोहके कारण विस्मृत हो जाती है तो पुनः मृत्युकालमें उसको याद आ जाती है। यदि शरीरके नष्ट होनेपर वह हृदयमें ही रह गयी है तो पुनः गर्भमें जानेपर उसका स्मरण होना निश्चित है। उसे याद आता है कि मैं दूसरेको छलनेका विचार करता रहा। मैंने शरीरकी रक्षाके लिये धर्मका परित्याग करके द्यूत, छल-कपट और चोरवृत्तिक आश्रय लिया।

अत्यन्त कष्टसे मैंने स्वयं लक्ष्मीको एकत्र किया था, किन्तु अधिर्लाभित धनका उपभोग मैं नहीं कर सका। अग्निदेव, अतिथि और बन्धु-बान्धवोंको स्वादिष्ट अन्न, फल, गौरस तथा ताम्बूल दे करके मैं उन्हें संतुष्ट करनेमें असफल रहा। चन्द्रग्रहण हो या मेष-मकर राशियोंपर सूर्यके प्रवेशका पुण्यकाल हो, ऐसे अवसरपर भी श्रेष्ठ तीर्थोंका सेवन मैंने नहीं किया। इसलिये हे देहिन्! तुम मल-मूत्रसे भी हुए अपने इस कोशको परिष्कृत करनेमें लगे रहे। अतः तुम्हारा उद्धार कहाँ हो सकता है? इस पृथ्वीपर



स्थित त्रिविक्रम भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका दर्शन मैंने नहीं किया, उन्हें प्रणाम नहीं किया और न तो उनको पूजा की है। प्रभासक्षेत्रमें विराजमान भगवान् सोमनाथकी भक्तिपूर्वक पूजा एवं वन्दना भी मेरे द्वारा नहीं हुई है। जब ऐसी चिन्ता मृत प्राणी करता है, तब यमदूत उससे कहते हैं कि हे देहधारिन्! जैसा तुमने किया है, उसके अनुसार अपना निस्तार करो। हे देहिन्! पृथ्वीके श्रेष्ठतम तीर्थोंकी संनिधिमें जाकर उनमें स्नानकर तुम्हारे द्वारा विद्वानों, ब्राह्मणों एवं गुरुजनोंके हाथमें कुछ नहीं दिया गया, अतः जैसा तुमने किया है, वैसा भोगो। हे जीव! तुमने चन्दन और नैवेद्यदि पञ्चोपचारसे और चन्दनादियुक्त बलि प्रदान करके मातृकापूजा नहीं की, न तो तुम्हारे द्वारा विष्णु, शिव, गणेश, चण्डी अथवा सूर्यदेव ही पूजे गये हैं। अतः तुमने जो कर्म किया है, उसीमें अपना निवाह करो। हे देहिन्! तुम्हें तो देवास प्राप्त करने योग्य मानवयोनिकी प्राप्ति हुई थी, किन्तु (लौकिक आसक्तिमें) मोहवश यह सब सम्पन्न हो गया। विमूढबुद्धि तुमने अपनी गतिको नहीं देखा, इसलिये जो तुमने किया है, अब उसीमें निस्तार करो।

हे पक्षिन्! धर्म, अर्थ तथा यशको प्रदान करनेवाले, ऐसे पूर्वोक्त परलोकपथके पथिक जीवोंके पञ्चात्ताप-वाक्यका विचार करके इस मनुष्यलोकमें जो धर्माचरण करते हुए पुण्य देशमें निवास करते हैं, वे इसी मनुष्यलोकमें जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

ऊपर किये हुए वर्णनके अनुसार क्लृप्त करते हुए प्रेतको यमदूत अपने कालस्वरूप मुद्रासे बहुत मारते हैं। वह 'हा दैव! हा दैव!' यह स्मरण करता हुआ अपनेको कोसते हुए कहता है कि तुमने अपनी कमायीसे जो धन अर्जित किया था, उसमेंसे किसीको दान नहीं दिया। पृथ्वीपर रहते हुए तुमने भूमिदान, गोदान, जलदान, वस्त्रदान, फलदान, ताम्बूलदान अथवा गन्धदान भी नहीं किया तो अब भला क्या सोच रहे हो? तुम्हारे पिता और पितामह मर गये, जिसने तुमको अपने गर्भमें धारण किया वह तुम्हारी माता भी मर गयी, तुम्हारे सभी बन्धु भी नहीं रहे, ऐसा तुमने देखा है। तुम्हारा पाञ्चभौतिक शरीर अग्निमें जलकर भस्म हो गया। तुम्हारे द्वारा एकत्र किया गया

सम्पूर्ण धन-धान्य पुत्रोंने हस्तगत कर लिया। जो कुछ तुम्हारा सुभाषित है और जो कुछ तुमने धर्मसंचय किया है, वह तुम्हारे साथ है। इस पृथ्वीपर जन्म लेनेवाला राजा हो अथवा संन्यासी या कोई श्रेष्ठतम ब्राह्मण हो, वह मरनेके बाद पुनः आया हुआ नहीं दिखायी देता है। जो भी इस धरातलपर उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। हे पक्षीन्द्र! दुर्लभ सहित धर्मराजके पार्यद जब प्रेतसे इस प्रकारसे कहते हैं तो दुःखी वह प्रेत उन गर्णोंकी महान् आश्चर्यपूर्ण बातकी सुनकर मनुष्यकी वाणीमें कहने लगता है—

जब दानके प्रभावसे व्यक्ति विमानपर आरुढ़ होता है, उस समय धर्म उसका पिता है, दया उसकी माता है, मधुर एवं अर्थहम्भोर्वयुक्त वाणी उसकी पत्नी है और सुन्दर तीर्थमें किया गया स्नान उसका हितैषी बन्धु है। जब मनुष्य अपने हाथसे सुकृत करके उसको भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर देता है, तब उसके लिये स्वर्ग किंकरकी भीति हो जाता है। जो प्राणी धर्मान्ध है वह अत्यन्त सुख-सुविधाओंको प्राप्त करता है और जो पापी है वह नाना दुःखोंका भोग करता है। जो धर्मशील, मान-सम्मान तथा क्रोधकी जीतनेवाला विद्या-विनयसे युक्त, दूसरेको कष्ट न देनेवाला, अपनी पत्नीमें संतुष्ट और परायी स्त्रीसे दूर रहनेवाला है, वह पृथ्वीपर हमारे लिये चन्दनीय है। जो मिश्रावदाता, अग्निहोत्री, वेदान्ती, हजराँ चान्द्रायणव्रत करनेवाला, मासपर्यन्त उपवास रखनेमें समर्थ पुरुष तथा पतिव्रता नारी है—ये छः इस जीवलोकमें मेरे लिये चन्दनीय हैं। इस प्रकारका सम्यक् आचरण करते हुए जो मनुष्य वापी, कूप और जलसे पूर्ण तालाब बनवाता है, जो प्याऊ, जलकुण्ड, धर्मशाला तथा देवमन्दिरका निर्माण कराता है, वह उत्तम धर्म करनेवाला है। वेदज्ञ ब्राह्मणको दिया गया वर्षासन, कन्याका विवाह, ऋणी ब्राह्मणकी ऋणमुक्ति, सुगमतासे बोधी-जोती जानेवाली भूमिका दान तथा प्याससे दुःखी प्राणियोंके लिये उसीके अनुकूल कूप, बड़ागादिका निर्माण ये ही सब सुकृत हैं।

सूक्ष्म भावसे जो प्राणी इस सुकृतसारूप अध्यायको सुनता और पढ़ता भी है वह कुलीन है। वह धर्मनिष्ठ व्यक्ति मृत्युके बाद निश्चित ही उस अनन्त ब्रह्माण्डके एकमात्र आश्रय नारायणको प्राप्त करता है। (अध्याय ४८)

भगवान् विष्णुद्वारा गरुडको दिये गये महत्त्वपूर्ण उपदेश, मनुष्ययोनिप्राप्तिकी दुर्लभताका वर्णन, मनुष्य-शरीर प्राप्तकर आत्मकल्याणके लिये सचेष्ट रहना, संसारकी दुःखरूपता तथा अनित्यता और ईश्वरकी नित्यताका वर्णन, कालके द्वारा सभीके विनाशका प्रतिपादन, सत्संग और विवेकज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति, तत्त्वज्ञानरूपी मोक्षप्राप्तिके उपाय, गरुडपुराणकी वक्तृ-श्रोतृपरम्परा तथा गरुडपुराणका माहात्म्य

गरुडने कहा—हे दयाके सागर! अज्ञानके कारण ही जीवको उत्पत्ति इस संसारमें होती है, इस बातको मैंने सुन लिया। अब मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हूँ। हे देवदेवेश! शरणागतवात्सल! प्रभो! सभी प्रकारके दुःखोंसे मलिन बनाये गये इस दुस्तर असार संसारमें नाना प्रकारके शरीरोंमें प्रविष्ट जीवोंकी अनन्त राशिपूर्ण है। वे इसी संसारमें जन्म लेते हैं और इसीमें मर जाती हैं, किंतु उनका अन्त नहीं होता है। वे सदैव दुःखसे व्याकुल ही रहती हैं। यहाँ कहीं कोई भी सुखी नहीं है। हे मोक्षदाता स्वामिन्! वे किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं? उसको आप मुझे बतावेंगी कृपा करी।

श्रीभगवान्ने कहा—हे तर्ध्व! जो तुम मुझसे पूछ रहे हो, जिसको सुनने मात्रसे ही मनुष्य इस संसारके अघातमयके चक्रसे मुक्त हो जाता है, उसे मैं कह रहा हूँ: तुम सुने। हे खगेश! इस जगत्से परे परब्रह्मस्वरूप, निरवयव, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश, निर्मल, अद्वय-तात्त्व, स्वयंप्रकाश, आदि-अन्तसे रहित, विकारशून्य, परात्पर, निर्गुण और सच्चिदानन्द शिव हैं, उसीके अंश ये जीव हैं। जो अनादि अविद्यासे वैसे ही आच्छादित हैं, जैसे अग्निमें उसके अंश विस्फुल्लितज्ञ स्थित हैं। अनादि कर्मोंके प्रभावसे प्राप्त शरीरादि नाना उपाधियोंमें होनेके कारण परस्पर भिन्न-भिन्न हो गये हैं, सुख-दुःख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापोंका उनके ऊपर नियन्त्रण है। उसी कर्मके अनुसार उन्हें जति, देह, आयु तथा भोगकी प्राप्ति होती है। सूक्ष्म या लिङ्ग शरीरके बने रहनेतक पुनः-पुनः जन्म-मरणकी परम्परा चलती रहती है।

स्थावर, कृमि, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक, देवता और मुमुक्षु यथाक्रम चार प्रकारके शरीरोंको धारण करके हजारों बार उनका परित्याग करते हैं। यदि पुण्य कर्मके प्रभावसे उनमेंसे किसीको मानवयोनि मिल जाय तो उसे ज्ञानी बनकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। चौगुनी लाख योनियोंमें

स्थित जीवात्माओंको बिना मानवयोनि मिले तत्त्वज्ञानका लाभ नहीं मिल सकता है। इस मृत्युलोकमें हजार ही नहीं, करोड़ों बार जन्म लेनेपर भी जीवको वादाचित् ही संचित पुण्यके प्रभावसे मानव-योनि मिलती है। यह मानवयोनि मोक्षकी सीढ़ीके समान है। इस दुर्लभ योनिको प्राप्त कर जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं करता है, उससे बढ़कर पापी इस जगत्में दूसरा कौन हो सकता है—

सौधानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।

यस्तारयति नात्मानं तस्मात् पापतरोऽत्र कः॥

(४९।१५)

अन्य योनियोंसे भिन्न सुन्दर-सुन्दर इन्द्रियोंवाले इस जन्मका लाभ लेकर जो मनुष्य आत्महितका ज्ञान नहीं रखता है, वह ब्रह्मपाती है। किसीका भी पुरुषार्थ शरीरके बिना सम्भव नहीं है। अतः शरीररूपी धनकी रक्षा करते हुए पुण्य कर्म करना चाहिये। आत्मा सभीका पात्र है, इसलिये उसकी रक्षामें मनुष्य सर्वदा संलग्न रहे। जो व्यक्ति आजीवन उस आत्माकी रक्षामें प्रयत्नशील रहता है, वह जीवित रहते हुए ही अपना कल्याण देखता है। मनुष्यको ग्राम, क्षेत्र, धन, घर, सुभातुभ कर्म और शरीर बार-बार नहीं प्राप्त होता है। विद्वान् लोग सदैव शरीरकी रक्षाके उपायमें लगे रहते हैं। कुहाड़ि महाभयंकर रोगोंसे ग्रस्त होनेपर भी मनुष्य उस शरीरको छोड़ना नहीं चाहता है। शरीरकी रक्षा धर्मके लिये, धर्मकी रक्षा ज्ञानके लिये और ज्ञानकी रक्षा ध्यानयोगके लिये तथा ध्यानयोगकी रक्षा तत्काल मुक्तिप्राप्तिके लिये होती है। यदि आत्मा ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है तो अन्य दूसरा कौन ऐसा हितकारी होगा जो आत्माको सुख प्रदान करेगा।

यहाँ इसी लोकमें नरकरूपी व्याधिकी चिकित्सा नहीं की गयी तो औषधिबिहीन देश (परलोक-) में जाकर रोगी उससे भुक्तिका क्या उपाय करेगा? बुढ़ापा तो बाधिनके समान है। जिस प्रकारसे फूटे हुए घड़ेका जल धीरे-धीरे

बह जाता है, उसी प्रकार आयु भी क्षीण होती रहती है। शरीरमें विद्यमान रोग शत्रुके सदृश कष्ट देते हैं, इसलिये कल्याण इसीमें है कि इन सभीसे मुक्ति प्राप्त करनेका सत्प्रयास किया जाय। जबतक शरीरमें किसी प्रकारका दुःख नहीं होता है, जबतक विपत्तियाँ सामने नहीं आती हैं और जबतक शरीरकी इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़ती हैं, तबतक ही आत्मकल्याणका प्रयास हो सकता है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्यक् प्रयत्न किया जा सकता है। कोशान्तरमें अगल लग जानेपर मुख कुआँ खोदता है, ऐसे प्रयत्नसे क्या लाभ—

इहेष नरकव्याधेऽक्षितस्तो न करोति यः।

गत्वा निरीषधं देशं व्याधिस्यः किं करिष्यति॥

व्याधीवासे जरा चायुर्वाति भिन्नपटाम्बुक्।

निजनि रिपुवदोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत्॥

यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नापानि चापदः।

यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत्॥

यावत् तिष्ठति देहोऽयं तावत् तत्त्वं समभ्यसेत्।

संदीप्तकोशध्वने कृपं खनति दुर्बलिः॥

(४९।२०—२६)

मनुष्य नाग प्रकारके सांसारिक कार्योंमें व्यस्त रहनेसे (बीतते हुए) समयको नहीं जान पाता है। वह दुःख-सुख तथा आत्महितको भी नहीं जानता है। पैदा होनेवालोंको, रोगियोंको, मरनेवालेको, आपत्तिग्रस्तको और दुःखी लोगोंको देखकर भी मनुष्य मोहरूपी मदिराको पीकर (जन्म-मरणदि दुःखसे युक्त संसारसे) नहीं डरता। सम्पदार्थ स्वप्नके समान हैं, जीवन पुष्पके सदृश है, आयु चान्दल विजलीके तुल्य नष्टप्राय है, ऐसा जानकर भी किसको धैर्य हो सकता है? सी वर्षका जीवन अल्पत्व है। वह भी निद्रा तथा आलस्यमें आधा चला जाता है। तदनन्तर व्याध्यावस्था, रोग, वृद्धावस्था एवं अन्यान्य दुःखोंमें व्यतीत हो गया और जो थोड़ा बचा वह भी निष्फल हो जाता है—

कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्बधैः।

सुखं दुःखं जपो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः॥

जातान्तरात् न मृतान्पदं ध्यान् दृष्ट्वा च दुःखितान्।

लोको मोहसुरा पीत्वा न विभेति कदाचन॥

सम्पदः स्वप्नसंकाशा जीवनं कुसुमोपमम्।

तडिच्छपलमायुष्यं काम्य म्याज्ज्ञानतो धृतिः॥

शतं जीवितमल्पत्वं विद्रालस्यैस्तदर्थकम्।

व्याधिरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम्॥

(४९।२०—३०)

जिस कार्यको तुरंत आरम्भ कर देना चाहिये, उसके संदर्भमें जो उद्योगहीन होकर बैठा है, जहाँ जागते रहना चाहिये, वहाँ जो सोता रहे तथा भयके स्थानपर जो आशस्त होकर रहता है—ऐसा वह कौन मनुष्य है, जो मारा नहीं जाता? जलके फैलनेके समान इस शरीरको आक्रमण करके जीव स्थित है, यहाँ जिन प्रिय वस्तुओंके साथ संनिवास है, वे अनित्य हैं। अतः जीव कैसे निर्भय होकर नितान्त अनित्य, शरीर, भोग और पुत्र-कलत्रादिके साथ रहता है। जो अहितमें हित, अनिहितमें निहित और अनर्थमें अर्थको विशेष रूपसे जाननेवाला है, वह व्यक्ति अपने मुख्य प्रयोजनको नहीं जानता। जो देखते हुए भी गिर जाता है, जो सुनते हुए भी सद-ज्ञानको नहीं प्राप्त कर पाता है, जो सद्गुरुओंको पढ़ते हुए भी उसे नहीं समझ पाता है, वह देहमायसे विमोहित है—

प्राश्न्ये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।

विश्रुतश्च भयस्थाने हा नरः को न हन्यते॥

तोषकेनसम्ये देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते।

अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः॥

अहिते हितसंज्ञः म्यादधुवे ध्रुवसंज्ञकः।

अनर्थे चाधीविज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः॥

पश्यन्पि प्रसृजन्ति भृशवन्पि न बुध्यति।

पठन्पि न जानति देवमायाविमोहितः॥

(४९।३१—३४)

कालके इस गहरे महासागरमें यह सम्पूर्ण जगत् डूबता-उतरता रहता है। मृत्यु, रोग और बुढ़ापरूपी ग्राहोंसे जकड़े जानेपर भी किसी व्यक्तिको ज्ञान नहीं हो पाता है। मनुष्यके लिये प्रतिक्षण भय है, समय बीत रहा है, किंतु वह उसी प्रकार दिखायी नहीं देता है, जैसे जलमें पड़ा हुआ कच्चा घड़ा गलता हुआ दिखायी नहीं देता। कदाचित् वायुको बाँधकर रखा जा सकता है, आकाशका खण्डन हो सकता है, तरंगोंको किसी सूत्रादिमें पिरोया जा सकता है, किंतु आयुमें विश्वास नहीं किया जा सकता है। जिसके (प्रलयान्तिके) प्रभावसे पृथ्वी दहकती है, सुमेरु पर्वत वितीर्ण हो जाता है तथा सागरका जल सूख जाता है। फिर

इस शरीरके सम्बन्धमें तो बात ही क्या? पुत्र मेरा है, स्त्री मेरी है, धन मेरा है, बन्धु-बान्धव मेरे हैं। इस प्रकार 'मे, मैं' चिल्लाते हुए बकरेकी भाँति कालरूपी भेड़िया बलान् मनुष्यको मार डालता है—

तन्निमज्जज्जगदिदं गम्भीरं कालसागरे।  
मृत्युरोगजराग्रहेन कश्चिदपि बुध्यते॥  
प्रतिक्षणभयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते।  
आमकुम्भ इवाध्मःस्थो विशाणो न विभाव्यते॥  
युन्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्।  
प्रधनञ्च तरंगाणामास्था नायुधि युन्यते॥  
पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते।  
शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च जा कथा॥  
अपत्यं ये कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च ये।  
जल्पन्तमिह मर्त्यान् हन्ति कालवृको बलात्॥

(४९।४५—४९)

यह मैंने किया है, यह मुझे करना है, यह किया गया है या नहीं किया गया है—इस प्रकारकी भावनासे बुरा मनुष्यको मृत्यु अपने वशमें कर लेती है। कल किये जानेवाले कार्यको आज ही कर लेना चाहिये। जो दोपहरके बाद करना है, उसको दोपहरसे पहले ही कर लेना चाहिये, क्योंकि कार्य हो गया है अथवा नहीं हुआ है, इसकी मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। वृद्धावस्था पथ-प्रदर्शक है, अत्यन्त भयंकर रोग सैनिक है, मृत्यु शत्रु है, ऐसी विषम परिस्थितिमें कैसा हुआ मनुष्य अपने रक्षक भगवान् विष्णुको क्यों नहीं देखता है। तृष्णारूपी सूईसे छिद्रित, विषयरूपी घृतमें डूबे, राग-द्वेषरूपी अग्निकी औंछमें पकाये गये मानवको मृत्यु खा लेती है। बालक, युवा, वृद्ध और गर्भमें स्थित सभी प्राणियोंको मृत्यु अपनेमें समाहित कर लेती है, ऐसा है यह जगत्। यह जीव अपने शरीरको भी छोड़कर यमलोक चला जाता है तो भला स्त्री, माता-पिता और पुत्रदिका जो सम्बन्ध है, वह किस कारणसे प्रेरित होकर बनाया गया है। संसार दुःखका मूल है, वह किसका होकर रहा है अर्थात् इसकी ओर जिसका मन अधिक रम गया है, वही दुःखित है। जिसने इस सांसारिक व्यामोहका परित्याग कर दिया है, वह सुखी है। उसके अतिरिक्त कहींपर भी अन्य कोई दूसरा सुखी नहीं है—

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृतकृतम्।

एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वराम्॥

इः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वार्हे चापराहिकम्।  
न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं चाप्यद्य याऽकृतम्॥  
जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम्।  
अधिहितो मृत्युशत्रुं ज्ञातारं किं न पश्यति॥  
तृष्णामूर्खविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा।  
रागद्वेषानले पक्वं मृत्युशनाति मानवम्॥  
बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि।  
सर्वानाविशते मृत्युरेवमभूतमिदं जगत्॥  
स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्।  
स्त्रीमातृपुत्रपुत्रादिसम्बन्धः केन हेतुना॥  
दुःखमूलं हि संसारः स घस्यास्ति स दुःखितः।  
तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित्॥

(४९।४०—४९)

यह जगत् सभी दुःखोंका जनक, समस्त आपदाओंका घर तथा सब प्रकारके पापोंका आश्रय है। अतः क्षणभरमें ही मनुष्यको इसका त्याग कर देना चाहिये। लीह और बड़हके जलमें कैसा हुआ पुरुष मुक्त हो सकता है; किंतु पुत्र एवं स्त्रीके मोहजालमें कैसा हुआ वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। मनुष्य मनको प्रिय लगनेवाले जितने पदार्थोंमें अपना सम्बन्ध स्थापित करता जाता है, उतनी शोककी कीलें उसके हृदयमें चुभती जाती हैं। विषयका आहार करनेवाले देहस्थित तथा सभी प्रकारके अशेष सामर्थ्यसे खंडित कर देनेवाले जिन इन्द्रियरूपी चोरोंके द्वारा लोक विनष्ट हो रहे हैं। हाय, यह बड़े कहकी बात है। जैसे मांसके लोभमें कैसी हुई मछली बंसीके कटिको नहीं देखती है, वैसे ही सुखके लालचमें कैसा हुआ शरीरी यमको बाधाको नहीं देखता है—

प्रभवं सर्वदुःखानामात्मन्यं सकलापदाम्।

आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् क्षणात्॥

लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते।

पुत्रदारुमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन॥

यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रिधान्।

तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्खवः॥

वञ्छिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः।

हा हन् विषयाहरिर्देहस्थेन्द्रियतत्कारीः॥

मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशंकुं न पश्यति।

सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति॥

(४९।४०—४९)



हे खगेश! अपने हित-अहितको न जानते हुए जो नित्य कुपथगामी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना है, वे मनुष्य नारकीय प्राणी हैं। निद्रा, भय, मैथुन तथा आहारकी अभिलाषा सभी प्राणियोंमें समान रूपसे रहती है; उनमें ज्ञानीको मनुष्य और अज्ञानीको पशु माना गया है। मूर्ख व्यक्ति प्रातःकालमें मल-मूत्र, दोपहरमें भूख-प्यास तथा रातमें मैथुन और निद्रासे पीड़ित रहते हैं। बड़े दुःखकी बात है कि अज्ञानसे मोहित होकर सभी प्राणी अपने शरीर, धन एवं स्त्री आदिमें अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। अतः व्यक्तिको उनकी ओर बड़ी हुई अपनी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति छोड़ी न जा रही हो तो महापुरुषोंके साथ उस आसक्तिको जोड़ देना चाहिये, क्योंकि आसक्ति-रूपी व्याधिको औषधि सज्जन पुरुष ही हैं—

हिताहितं न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः ।

कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग ॥

निद्राभीमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां सत्त्वाः ।

ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः ॥

प्रभाते मलमूत्राभ्यां क्षुत्तृष्णया घट्टयन् रक्षी ।

रात्रौ मदननिद्राभ्यां खाद्यन्ते मूढमानवाः ॥

स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः ।

जायन्ते च भिद्यन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिताः ॥

तस्मात् सङ्गः सदा त्याज्यः स चेत् त्याज्यं न शक्नोते ।

महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम् ॥

(४९।५२-५९)

सत्संग और विवेक—ये दो प्राणीके मलरहित, स्वस्थ दो नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वह मनुष्य अन्ध है। वह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा? अर्थात् वह अवश्य ही कुमार्गगामी होगा—

सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं कथनद्वयम् ।

यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः ॥

(४९।५७)

अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मको माननेवाले सभी मानव दूसरेके धर्मको नहीं जानते हैं, किंतु वे दम्भके शरीरभूत हो जायें तो अपना ही नाश करते हैं। व्रतचर्यादिमें लगे हुए प्रयासरत कुछ लोगोंसे क्या बनेगा? क्योंकि अज्ञानसे स्वयं अपने आत्मतत्त्वको ढके हुए लोग प्रचारक बनकर देश-देशान्तरमें विचरण करते हैं। नाममात्रसे स्वयं संशुष्ट

कर्मकाण्डमें लगे हुए मनुष्य तथा मन्त्रोच्चार एवं होमादिसे युक्त याज्ञिक यज्ञविस्तारके द्वारा भ्रमित हैं। मेरी मायासे विमोहित मूढ़ लोग शरीरको सुखा देनेवाले एकभक्त तथा उपवासादि नियमोंसे अपने पुण्यरूप अदृष्टकी कामना करते हैं।

शरीरकी ताड़ना मात्रसे अज्ञानीजन क्या मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं? क्या घामोको पीटनेसे महाविषधारी सर्प मर सकता है? यह कदापि सम्भव नहीं है। जटाओंके भार और मृगचर्मसे युक्त वेष धारण करनेवाले दाम्भिक ज्ञानियोंकी भीति इस संसारमें भ्रमण करते हैं और लोगोंको भ्रमित करते हैं। लौकिक सुखमें आसक्त 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' ऐसा कहनेवाले, कर्म तथा ब्रह्म—इन दोनोंसे भट्ट, दम्भी एवं ढोंगी व्यक्तिका अन्त्यजके समान परित्याग कर देना चाहिये। घरको बनके समान मानकर निर्वस्त्र और लज्जारहित जो साधु गधे अन्य पशुओंकी भीति इस जगत्में घूमते रहते हैं, क्या वे विरक्त होते हैं? कदापि नहीं। यदि मिट्टी, भस्म तथा धूलका लेप करनेसे मनुष्य मुक्त हो सकता है तो क्या मिट्टी और भस्ममें ही नित्य रहनेवाला कुत्ता मुक्त नहीं हो जायगा? वनवासी तापसजन घास, फूस, पत्ता तथा जलका ही सेवन करते हैं, क्या इन्हींके समान वनमें रहनेवाले सिंघार, चूहे और मृगादि जीवजन्तु तपस्वी हो सकते हैं? जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त गङ्गा आदि पवित्रतम नदियोंमें रहनेवाले मेढक या मछली आदि प्रमुख जलचर प्राणी योगी हो सकते हैं? क्यूँत, शिलाहार और वातक पक्षी कभी भी पृथ्वीका जल नहीं पीते हैं, क्या उनका छत्ती होना सम्भव है। अतः ये नित्यादिक कर्म, लोकपञ्चनके कारक हैं। हे खगेश! मोक्षका कारण तो साक्षात् तत्त्वज्ञान है।

हे खगेश! बहुदर्शनरूपी महाकूपमें पशुके समान गिर हुए मनुष्य पाशसे निषण्णित पशुकी भीति परमार्थको नहीं जानते। वेद-शास्त्रादिके महासमुद्रमें इधर-उधरसे अनुमान लगानेवाले इस षड्दर्शनरूपी तरंगसे ग्रस्त होकर कुतर्की बन जाते हैं। जो वेद-आगम और पुराणका ज्ञाता परमार्थको नहीं जानता है, उस कपटीका सब कथन कौवेका काँव-काँव ही है। यह ज्ञान है, यह जाननेके योग्य है, ऐसी चिन्तासे भलीभीति बेचैन तथा परमार्थतत्त्वसे दूर प्राणी दिन-रात शास्त्रका अध्ययन करता है। वाक्य ही छन्द है और उस छन्दसे गुम्फित काव्योंमें अलंकार सुशोभित होता है। इस चिन्तासे दुःखित मूर्ख व्यक्ति अत्यधिक व्याकुल हो

जाता है। उस परमतत्वका अन्य ही अर्थ है; किंतु लोग उसका दूसरा अर्थ लगाकर दुःखित होते हैं। शास्त्रोंका सद्भाव कुछ और ही है; किंतु वे उसकी व्याख्या उससे भिन्न ही करते हैं। उपदेशादिसे रहित कुछ अहंकारी व्यक्ति उन्मनीभावकी बात कहते हैं, किंतु स्वयं उसका अनुभव नहीं करते हैं। वे वेद-शास्त्रोंको पढ़ते हैं और परस्पर उसको जाननेका प्रयास करते हैं; किंतु जैसे कलछी पाकका रसास्वाद नहीं कर पाती है, वैसे ही वे परमतत्वको नहीं जान पाते हैं। सिर पुष्पोंकी बोता है, परंतु उसकी सुगन्धका अनुभव नासिका ही करती है। बहुत-से लोग वेद-शास्त्र पढ़ते हैं; किंतु उनके भावको समझनेवाला दुर्लभ है। अपने ही भीतर विद्यमान उस परमतत्वको न पहचान कर मूर्ख प्राणी शास्त्रोंमें वैसे ही व्याकुल रहता है, जैसे कछारमें आपे हुए बकरी या भेड़के बच्चेकी एक गोप कुएँमें खोजता है। सांसारिक मोहको विनष्ट करनेमें शब्दज्ञान समर्थ नहीं है; क्योंकि दीपककी चालीसे कभी अन्धकारको दूर नहीं किया जा सकता है। बुद्धिरहित व्यक्तिका पढ़ना वैसे ही है, जैसे अन्धके हाथमें दर्पण हो। अतः प्रतापान् पुरुषांश्च द्वारा अर्थात् शास्त्र तत्त्वज्ञानका लक्षण है। यह ज्ञान है, यह जाननेके योग्य है, ऐसे विचारोंमें कैसा हुआ मनुष्य सब कुछ जाननेकी इच्छा करता है, किंतु हजार दिव्य वर्षोंतक पढ़नेपर भी वह शास्त्रोंका अन्त नहीं समझ पाता है। शास्त्र तो अनेक हैं, किंतु आपु बहुत ही कम हैं और उसमें भी करोड़ों विघ्न-बाधाएँ हैं। इसलिये जलमें मिले हुए क्षीरको जैसे हंस ग्रहण कर लेता, है वैसे ही उनके सार-तत्वको ग्रहण करना चाहिये—

अनेकानि च शास्त्राणि स्वस्यापुविण्कोटयः।

तस्मात् सारं विज्ञानीषात् क्षीरं हंस इवाभ्यसि॥

(४९.८४)

हे ताक्ष्य! वेद-शास्त्रोंका अभ्यास करके जो बुद्धिमान् व्यक्ति उस परमतत्वका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसको उन सभीका परित्याग उसी प्रकार करना चाहिये, जिस प्रकार एक धान्यार्थी पुरुष धान ग्रहण कर लेता है और पुआलको फेंक देता है। जैसे अमृतके पानसे संतुष्ट प्राणीका भोजनसे कोई सरोकार नहीं रह जाता है, वैसे ही तत्वको जाननेवाले विद्वान्का शास्त्रसे कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है। हे विनतात्मज! वेदाध्ययनसे मुक्ति सम्भव नहीं है और न तो शास्त्रोंकी पढ़नेसे वह प्राप्त हो सकती है, वह कैवल्य ज्ञानसे

ही सुलभ है, किसी अन्य साधनसे नहीं। आश्रम उस मोक्षका कारण नहीं हो सकता है। दर्शन भी उसकी प्राप्ति के कारण नहीं है। वैसे ही सभी कर्मोंको उसका कारण नहीं मानना चाहिये। उसका कारण ज्ञान है। मुक्ति देनेवाली गुरुकी एक वाणी है। अन्य सभी विद्याएँ विडम्बने करनेवाली हैं। हजार शास्त्रोंका भार सिरपर होनेपर भी प्राणीको तो संजीवन देनेवाला वह परमतत्व अकेला ही है। सभी प्रकारकी क्रियाओंसे रहित वह अद्वैत शिवतत्व कहा गया है। उसको गुरुके मुखसे प्राप्त करना चाहिये। वह करोड़ों आश्रम-शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे मिलनेवाला नहीं है।

ज्ञान दो प्रकारका कहा जाता है। एक है शास्त्रकथित ज्ञान और दूसरा है विवेकसे प्राप्त हुआ ज्ञान। इसमें शब्द ही ब्रह्म है, ऐसा आश्रम-शास्त्र कहते हैं। वह परमतत्व ही ब्रह्म है, ऐसा विवेक जो जन कहते हैं। कुछ लोग अद्वैतको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं और कुछ लोग द्वैतको चाहते हैं; किंतु वे सभी यह नहीं जानते हैं कि वह परमतत्व सम्भाव्यवाला है। वह द्वैताद्वैतसे रहित है।

बन्धन और मोक्षके लिये इस संसारमें दो ही पद हैं। एक पद है 'यह मेरा है' और दूसरा पद है 'यह मेरा नहीं है'। 'यह मेरा है' इस ज्ञानसे वह बंध जाता है और 'यह मेरा नहीं है' इस ज्ञानसे वह मुक्त हो जाता है—

द्वे पदे बन्धनोद्धारं न मयेति मयेति च।

मयेति बध्यते जन्तुर्न मयेति प्रमुच्यते॥

(४९.९३)

जो कर्म इस जीवात्माको बन्धनमें नहीं ले जाता है, वही सत्कर्म है। जो प्राणीको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थवती है, वही विद्या है। इसके अतिरिक्त दूसरा कर्म तो परिश्रम करनेके लिये होता है और दूसरी विद्या कलानैपुण्यको प्रदर्शित करनेके लिये होती है। जबतक प्राणियोंको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जबतक उनमें सांसारिक वासना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियोंमें बल्लस्ता रहती है, जबतक उन्हें परमतत्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है—

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा।

आप्यासायाचरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥

यावत् कर्माणि दीप्यन्ते यावत् संसारवासना।

यावद्विन्द्रियाद्याधत्वं तावत् तत्त्वकथा कुतः॥

(४९.९४-९५)

जबतक व्यक्तिमें शरीरका अभिमान है, जबतक उसमें ममता है, जबतक उस प्राणीमें प्रयत्नकी क्षमता रहती है, जबतक उसमें संकल्प तथा कल्पना करनेकी शक्ति है, जबतक उसके मनमें स्थिरता नहीं है, जबतक वह शास्त्र-चिन्तन नहीं करता है एवं जबतक उसपर गुरुकी दया नहीं होती है, तबतक उसको परमतत्त्व-कथा कहाँसे प्राप्त हो सकती है?

‘तभीतक ही तप, व्रत, तीर्थ, जप तथा होमादिक कृत्य एवं वेद-शास्त्र तथा आगमकी कथा है, जबतक व्यक्ति उस परमार्थ-तत्त्वको नहीं जान जाता है। हे तार्क्ष्य! यदि व्यक्ति अपना मोक्ष चाहता हो तो वह सभी अवस्थाओंमें प्रयत्नपूर्वक सदैव तत्त्वनिष्ठ होकर रहे। दैहिक, दैविक और भीतिक—इन तीनों तार्क्ष्यसे संतप्त प्राणीको धर्म और ज्ञान जिसका पुण्य है, स्वर्ग तथा मोक्ष जिसका फल है, ऐसे मोक्षरूपी वृक्षकी छायाका आश्रय करना चाहिये। अतः श्रीगुरुदेवके मुखसे प्राप्त ज्ञानके द्वारा आत्मतत्त्वको जानना चाहिये। ऐसा करनेसे जीव इस दुर्धर्म संसारके बन्धनसे सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है।—

तावत् तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनानि च ।  
वेदशास्त्रागमकथा यावत् तत्त्वं न विन्दति ॥  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थाम् सर्वदा ।  
तत्त्वनिष्ठो भवेत् तार्क्ष्यं यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः ॥  
धर्मज्ञानप्रमूढस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च ।  
तापत्रयादिसंततशुद्ध्या मोक्षतरोः श्रयेत् ॥  
तस्मान्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात् ।  
सुखेन मुच्यते जन्तुर्धर्मसंसारबन्धनात् ॥

(४९।१८—१०१)

हे गरुड़! उस तत्त्वज्ञका अन्तिम कृत्य मुनी, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोक्ष प्राप्त होता है, अब मैं उसे कहूँगा।

अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर असंगरूपी शस्त्रसे देहादिकी आसक्तिको काट दे। घरसे सन्ध्यासी बनकर निकला धीरे-धीरे पवित्र तीर्थमें जाकर उसके जलमें स्नान करे। तदनन्तर वहाँपर एकान्त देशमें किसी स्वच्छ एवं शुद्ध भूमिमें विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकाग्रचित्त होकर गायत्री आदि मन्त्रोंके द्वारा उस परम शुद्ध ब्रह्माक्षरका ध्यान करे। ब्रह्मके बीजमन्त्रको बिना भुलाये वह अपनी धासको रोककर मनको वशमें करे।

मनरूपी बोड़केको बुद्धिरूपी सारथीद्वारा सांसारिक विषयोंसे उसका नियन्त्रण करे। अन्य कर्मोंसे मनको रोककर बुद्धिके द्वारा शुभकर्ममें मनको लगाये।

मैं ब्रह्म हूँ। मैं परम धाम हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। परमपद मैं हूँ। इस प्रकारकी समीक्षा करके आत्माको निष्कल आत्मामें प्रविष्ट करना चाहिये। ‘जो मनुष्य ‘ॐ’ इस एकाक्षर ब्रह्मका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परमपद प्राप्त करता है।—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्वजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

(४९।१०८)

जहाँ ज्ञान-वैराग्यसे रहित अहंकारी प्राणी नहीं जाते हैं वहाँ सुधीजन जाते हैं। उनके विषयमें अब तुम्हें बताना है—

ज्ञान-मोक्षसे रहित, आसक्ति-दोषसे परे, नित्य अध्यात्म-चिन्तनमें दत्तचित्त, सांसारिक समस्त कामनाओंसे रहित और सुख-दुःख नामक द्वन्द्वसे मुक्त जो ज्ञानी पुरुष हैं, वे ही उस अव्ययपदको प्राप्त करते हैं—

निर्वाणमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनिष्ठा विनिवृत्तकामाः ।  
द्वन्द्वविमुक्ताः सुखदुःखमज्ञैर्गच्छन्त्यमृताः पदमव्ययं तत् ॥

(४९।११०)

‘जो व्यक्ति ज्ञानरूपी द्वन्द्वमें राग-द्वेष नामवाले मलकी दूर करनेवाले सत्पुरुषी जलसे भरे हुए मानसतीर्थमें स्नान करता है, उसीको मोक्ष प्राप्त होता है।—

ज्ञानद्वन्द्वं सत्यजले रागद्वेषमलापहे ।

यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥

(४९।१११)

‘श्रीह वैराग्यमें स्थित होकर अनन्यभावसे जो मनुष्य मेरा भजन करता है, वह पूर्ण दृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।—

श्रीद्वैवाग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक् ।

पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥

(४९।११२)

‘घर छोड़कर मरनेकी अभिलाषासे जो तीर्थमें निवास करता है और मुक्ति-क्षेत्रमें मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका तथा द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्षप्रदा हैं।—

त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्नरणोत्सुकः ।

मुक्तिक्षेत्रेषु श्रियते स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।

पुरी द्वारवती त्रेयाः सपैता मोक्षदायिकाः ॥

(४९।११३-११४)

हे ताक्ष्य! ज्ञान-वैराग्यसे युक्त यह सनातन मोक्ष-धर्म ऐसा ही है। इसको तुम्हें सुना भी दिया है। दूसरा प्राणी भी ज्ञान-वैराग्यपूर्वक इसको सुनकर मोक्ष प्राप्त करता है।

‘तत्त्वज्ञ मोक्ष प्राप्त करते हैं, धर्मान्ध स्वर्ग जाते हैं। पापी नरकमें जाते हैं। पक्षी आदि इसी संसारमें अन्य योनियोंमें प्रविष्ट होकर धूमते रहते हैं’—

मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गंति नराः ।

पापिनो दुर्गतिं याति संसर्तन्ति छायादयः ॥

(४९।११६)

सूतजीने कहा—हे महर्षियो! अपने प्रसक्तों उत्तरके रूपमें भगवान्के मुखसे इस प्रकार सिद्धान्तको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा—प्रभो! आपके इन आह्लादकारी वचनोंसे मेरा बहुत बड़ा संदेह दूर हो गया। ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् विष्णुसे जानेकी आज्ञा ली और वे कश्यपजीके आश्रममें चले गये।

हे बाह्यणो! जिस प्रकार प्राणी मृत्युके बाद तत्काल दूसरी योनियोंमें चला जाता है अथवा जैसे वह विलम्बसे देहान्तरको प्राप्त करता है, इन दोनों बातोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है। हे तत! जैसा मैंने भगवान्से सुना है, वैसा ही मैंने आपको सुना दिया है। लक्ष्मीपति भगवान् नारायणके इन वाक्योंको सुनकर मरीचपुत्र कश्यप भी बहुत प्रसन्न हुए। छद्मसे इस महापुराणको सुनकर मैंने आप लोगोंको भी वही सुनाया है। इससे आप सभीका संदेह भी दूर हो गया। गरुडके द्वारा कहा गया यह महापुराण बड़ा ही विविध है।

इस महापुराणको गरुडने हरिसे प्राप्त किया था। उसके बाद गरुडसे भृगुको प्राप्त हुआ। तदनन्तर भृगुसे वसिष्ठ, वसिष्ठसे वामदेव, वामदेवसे पराशरमुनि, पराशरमुनिसे व्यास और व्याससे मैंने इसे सुना है। हे ऋषियो! मेरे द्वारा अब आप सबको परम गोपनीय यह वैष्णव पुराण सुनाया गया है। जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जो इसको पढ़े, वह इस लोक और परलोक सभीमें सुख प्राप्त करता है। संयमनी पुरीमें जाते हुए प्रेतको जो दुःख प्राप्त होता है, उसका जैसा निरूपण इस महापुराणमें किया गया है। इसे सुननेसे जो पुण्य होता है, उसके कारण वह प्रेत मुक्त हो

जाता है। इस महापुराणमें कहे गये कर्म-विपाकादिको सुननेसे मनुष्यको यहींपर वैराग्य प्राप्त हो जाता है। अतः जिस प्रकारसे हो सके प्राणीको इसे अवश्य सुनना चाहिये।

हे जितेन्द्रिय ऋषियो! आप लोग मुनीश भगवान् श्रीकृष्णका भजन करें, जिनके मुखसे निकली हुई सुधास्सरकी धाराके मात्र एक वर्णरूपी सोकरको श्रुतिपूरकरूपी चित्तलूत पीकर परमात्मके साथ ऐक्य प्राप्त हो जाता है।

व्यासजीने कहा—इस प्रकार सूतके मुखसे निकली हुई समस्त शास्त्रोंके अर्थसे सुशोभित भगवान् विष्णुकी वाणीका अमृत पान करके ऋषिगण परम संतुष्ट हुए। परस्पर उन लोगोंके बीच सर्वादृशों सूतजी महाराजकी प्रशंसा होने लगी। शौनक आदि ऋषियोंको भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सूतजीके द्वारा कही गयी पक्षिराज गरुडके संदेहोंको विनष्ट करनेवाली भगवान् विष्णुकी वाणीको सुनकर जितेन्द्रिय मुनिराज शौनकने मन-ही-मन अपनेको धन्य माना। उस समय अपनी उदार वाणीसे उन मुनियोंने सूतजीको बार-बार धन्य हैं, आप धन्य हैं—कहकर धन्यवाद दिया। तदनन्तर यज्ञ सम्पन्न होनेपर उन्हें विदाई दी।

‘यज्ञ गुरुद्वयपुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी शायकों विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये’—

पुराणं गुरुद्वयं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।

भुज्यतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि ॥

(४९।१३२)

इस महापुराणको सुननेके बाद वाचकको शय्यादि सभी प्रकारके विधिवत् दान देनेका विधान है अन्यथा कथा सुननेका लाभ उन्हें नहीं प्राप्त होता। श्रोताको सर्वप्रथम इस महापुराणकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद वस्त्र, अलंकार, गी तथा दक्षिणा आदिसे वाचकको ससम्मान पूजा करनी चाहिये। अधिक पुण्य-लाभके लिये अधिकाधिक अन्नदान, स्वर्णदान और भूमिदानसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। ‘जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो, जैसे ही उसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयंकर चालाकोंको छोड़कर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है’—

यज्ञेदं भुज्यामस्यौ यश्चापि परिकीर्तयेत् ।

विहाय यातनं घोरं धृतपापो दिवं गच्छेत् ॥

(४९।१३६)

॥ धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प सम्पूर्ण ॥



ब्रह्मकाण्ड<sup>१</sup>

भगवान् श्रीहरिकी महिमा तथा उनके सर्वेश्वरत्वका प्रतिपादन, श्रीहरिकी श्रीमद्भागवत, विष्णु तथा गरुड—ये तीन पुराण विशेष प्रिय हैं,  
इनका निरूपण तथा गरुडपुराणका माहात्म्य

प्राचीन समयकी बात है जगत्के नेत्रस्वरूप उन परमब्रह्म श्रीहरिका स्तवन करते हुए सभी शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ शौनक आदि ब्रह्मवादी ऋषिगण वैमिष नामक महारुण्य-क्षेत्रमें उत्तम तपस्यामें संलग्न थे। वे सभी जितेन्द्रिय, धृष्ट-प्यसको जीत लेनेवाले, सत्यपरायण तथा संत थे। वे विशिष्ट भक्तिके साथ समस्त संसारकी ज्ञान प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी निरन्तर पूजा करते थे। वहाँ कोई यज्ञोंके द्वारा यज्ञपतिकी, कोई ज्ञानके द्वारा ज्ञानात्मक परमब्रह्मकी और कुछ ऋषिगण परम भक्तिके द्वारा नारायणकी पूतामें लगे रहते थे।

एक बारकी बात है धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्तिका उपाय जाननेकी इच्छासे वे महाभाग एक स्थानपर एकत्र हुए। ऊर्ध्वरिक्त वे मुनिगण संख्यामें छब्बीस हजार थे एवं उनके शिष्य-प्रशिष्योंकी संख्या तो बहुत अधिक थी। संसारपर अनुग्रह करनेवाले, वीतराग एवं मात्सर्यरहित वे महत्तेजस्वी मुनि आपसमें विचार करने लगे कि इस संसारमें दुःखित प्राणिमोंकी भगवान् हरिके प्रति अचल भक्ति कैसे हो सकेगी? और कैसे आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि हो सकेगी? उन ऋषियोंकी इस जिज्ञासाको जानकर महामुनि शौनकने हाथ जोड़ते हुए बड़े ही विनयपूर्वक उनसे कहा—

शौनकजीने कहा—हे ऋषियो! पौराणिकोंमें उत्तम सूतजी महाराज इस समय पवित्र सिद्धाश्रममें विराजमान हैं। वे भगवान् वेदव्यासजीके शिष्य हैं और यतियोंके ईश्वर हैं। वे आपकी जिज्ञासाविषयक सभी बातोंको जानते हैं।

इसलिये उन्हींके पास चलकर हमलोग पूछें। शौनक मुनिके ऐसा कहनेपर वे सभी उस पुण्य सिद्धाश्रममें गये। वैमिशारण्यवासी उन ऋषियोंने सुखपूर्वक आसनपर बैठे हुए सूतजीसे पूछा—

ऋषियोंने कहा—हे सुकृत! किस उपायके द्वारा भगवान् विष्णुकी प्रसन्न किया जा सकता है? और कैसे इनकी पूजा करनी चाहिये? इसे आप बतायें साथ ही यह भी बतलानेकी कृपा करें कि मुक्तिका साधनभूत तत्त्व क्या है?

इसपर सूतजी महाराजने कहा—हे ऋषिगणो! भगवान् विष्णु, देवी लक्ष्मी, वायु, सरस्वती, शेषनाग, गुरुश्रेष्ठ कृष्णदेवायन व्यासजीको नमस्कार कर मैं अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन करता हूँ, आप लोग उन श्रेष्ठ तत्त्वस्वरूप भगवान् हरिके विषयमें सुनें।

ऋषियो! नारायणके समान न कोई है, न हुआ है और न भविष्यमें ही कोई होगा।<sup>२</sup> इस सत्यवाक्यके द्वारा आप सभीके प्रयोजनको सिद्ध कर रहा हूँ।

शौनकजीने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वप्रथम भगवान् विष्णुकी क्यौं नमस्कार करना चाहिये? हे विद्वन्! हे सुकृत! यह आप बतानेकी कृपा करें।

सूतजी बोले—हे शौनक! सभी वेदोंके द्वारा एकमात्र वेद—ज्ञानने योग्य वे हरि ही हैं, वेदादि शास्त्रों तथा इतिहास एवं पुराणोंमें उन्हींकी महिमा गायी गयी है, इसलिये वे विष्णु सर्वप्रथम वन्दनीय हैं, वे विष्णु ही सबमें ज्ञानरूपसे प्रकाशित हैं। इसलिये हरि प्रणामके योग्य हैं। वे सधोमें प्रधान हैं और सबसे बढ़कर हैं, इसलिये भी वे हरि सर्वप्रथम नमस्कार करने योग्य हैं।

१-गरुडपुराणके कई संस्करणोंमें 'पूर्व' और 'उत्तर' केवल दो ही खण्ड दिये गये हैं। 'ब्रह्मकाण्ड' बेंकटेश्वर प्रेसद्वारा प्रकाशित संस्करणमें ही उपलब्ध है। इसका संक्षिप्त सारांश यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

२-नास्ति नाशयणसमं न भूतं न भविष्यति। (१।१८)

भगवान् विष्णुके समान न कोई देवता है और न वायुके समान कोई गुरु। विष्णुपदीके समान कोई लोथं नहीं है और विष्णुभक्तके समान कोई भक्त नहीं है।

कलियुगमें सभी पुराणोंमें तीन पुराण भगवान् हरिको प्रिय और मुख्य हैं। उनमें भी कलिकालमें मनुष्योंका कल्याण करनेवाला श्रीमद्भागवत महापुराण मुख्य पुराण है। इसमें जिनसे सर्वप्रथम सृष्टि हुई है उन ब्रह्मरिका प्रतिपादन हुआ है, इसीलिये यह भागवत पुराण श्रेष्ठ माना गया है। इस पुराणमें भगवान् विष्णुसे ही ब्रह्मा और महेश आदिकों सृष्टि बतायी गयी है, हे विप्र। इसी प्रकार इसमें अनेक प्रकारके अर्थोंका तथा तत्त्वज्ञानका निरूपण हुआ है, इन्हीं सब विशेषताओंके कारण यह भागवत श्रेष्ठतम पुराण माना गया है। इसी प्रकार विष्णुपुराण तथा गरुडपुराणको श्रेष्ठ कहा गया है। कलियुगमें ये तीन पुराण मनुष्यके लिये प्रधान बताये गये हैं। उनमें भी गरुडपुराणकी विशेषता कुछ अधिक ही है।

यह गरुडपुराण तीन अंशोंमें विभक्त है। इसके प्रथम अंशको कर्मकाण्ड, द्वितीय अंशको धर्मकाण्ड और तृतीय

अंशको ब्रह्मकाण्ड कहा जाता है। उन तीनों काण्डोंमें भी अन्तिम यह ब्रह्मकाण्ड श्रेष्ठ है।

हे विप्रो! इस तृतीयांश अर्थात् ब्रह्मकाण्डके श्रवणसे जो पुण्य होता है उसे भागवत-श्रवणके समान पुण्य फलवात्स्य कहा गया है। इतना ही नहीं इस ब्रह्मकाण्डके श्रवणसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है। इसमें संदेह नहीं है। हे विप्रगणो! इसके पाठ करनेका जो फल कहा गया है वह केवल श्रवण करनेसे भी मिल जाता है। भगवान् हरिने ही व्यासरूपमें अवतरित होकर भागवत, विष्णु, गरुड आदि पुराणोंकी रचना की है। विष्णु-धर्मका प्रतिपादन करनेमें गरुडपुराणके समान कोई भी पुराण नहीं है।<sup>१</sup> जैसे देवोंमें जनार्दन श्रेष्ठ हैं, आयुधोंमें सुदर्शन श्रेष्ठ है, यज्ञोंमें अध्वरेध श्रेष्ठ है, नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं, जलजोंमें कमल श्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणोंमें यह गरुडपुराण हरिके तत्त्वनिरूपणमें मुख्य कहा गया है। गरुडपुराणमें हरि ही प्रतिपाद हैं, इसलिये हरि ही नमस्कार करने योग्य हैं और हरि ही शरण्य हैं तथा वे हरि ही सब प्रकारसे सेवा करने योग्य हैं।<sup>२</sup> (अध्याय १)

## गरुडजीको कृष्णद्वारा भगवान् विष्णुकी महिमा बताना तथा प्रलयकालके अन्तमें योगनिद्रामें शयन कर रहे उन भगवान् विष्णुको सृष्टि-हेतु अनेक प्रकारकी स्तुति करते हुए जगाना

सूतजीने पुनः कहा—हे शौनकजी! एक बार गरुडजीने भगवान् विष्णु (कृष्ण)-से किस प्रकार उन्होंने सृष्टिकी रचना की इस विषयमें प्रश्न किया था, तब उन्होंने कहा था कि हे सुव्रत! इस सृष्टिके मूल कारण अव्यय विष्णु हैं और वे व्यापक तत्त्व हैं, वे सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। पूर्ण होनेके कारण वे ही अवतार ग्रहण करते हैं, अनेक रूपोंवाले इस दृश्य जगत्को वे एक रूप बनाकर प्रलयकालमें अपनेमें लीन करके शयन करते हैं। उनके गुण, रूप, अवयव तथा वैभवादि ऐश्वर्योंमें भेदरूप दिखायी पड़नेपर भी अभेदरूपमें उनका दर्शन करना चाहिये; क्योंकि भेदरूपमें दर्शन करनेपर शीघ्र ही अन्यकारके गर्तमें फँस जाते हैं।

जिस समय प्रलयकालीन समुद्रमें व्यापक भगवान्

सभी जीवोंको अपने उदरमें प्रविष्ट कराकर शयन करते हैं, ब्रह्मा तथा इन्द्र, मरुत् आदि देवोंको, मुक्तोंको तथा मुक्तिके लिये सचेष्ट जनोंको भी वे अपनेमें अवस्थित करके कल्पापर्यन्त स्थित होते हैं, उस समय सर्ववेदात्मिका लक्ष्मी भक्तिसे समन्वित हो भगवान्की स्तुति करती हैं। उस समय विष्णु और लक्ष्मीको छोड़कर कुछ भी नहीं रहता। पर्यङ्गरूपमें वे ही देवी हो जाती हैं एवं व्यासरूपसे लक्ष्मीके रूपमें भी विराजमान रहती हैं; वे देवी उस समय बहुत रूपोंमें सुशीलित होती हैं।

हे शौनक! गरुडको पुनः उन परम देवकी महिमाको बतते हुए श्रीकृष्णने कहा—हे विष्णो! आप सभीमें उत्कृष्ट हैं, सभी देवोंमें उत्तम होनेके कारण आप उत्कृष्ट हैं,

१-गरुडेन सर्वं नास्ति विष्णुधर्मप्रदर्शने ॥ (१।७१)

२-गरुडाख्यपुराणे तु प्रतिपाद्यो हरिः स्मृतः। अतो हरिर्नमस्कार्यो गण्यो योग्यो हरिः स्मृतः ॥ (१।७४)

आपके समान अथवा आपसे अधिक बड़ा और कोई नहीं है। आप ही एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हैं। आपमें ही ब्रह्म शब्दका मुख्य प्रयोग है। अन्य ब्रह्म, रुद्रादिमें अमुख्य है। अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण होनेके कारण आप हरिको ही ब्रह्म कहा जाता है। गुण आदिकी पूर्णताके अभावसे अन्यको ब्रह्म नहीं कहा जा सकता। गुण और कालसे देशका आनन्द होता है, किंतु देश-कालमें गुण या कार्यसे आनन्द नहीं होता। हे विष्णो! आपमें गुणोंको अनन्तता है। आपको न मैं जानता हूँ न ब्रह्मा तथा रुद्रादि देव ही जानते हैं। इन्द्र, अग्नि, यम आदि देव आपके गुणोंको जाननेमें असमर्थ हैं। देवर्षि नारद आदि ऋषि, गन्धर्व आदि कोई भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते; फिर सामान्य लोगोंकी तो बात ही क्या है? आपसे ही देवोंकी सृष्टि हुई है। आपकी ही शक्तसे ब्रह्मा आदि सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं। ब्राह्मणोंके द्वारा वेदादिके जितने अक्षरोंका पाठ होता है, वे सभी आप हरिके नाम ही हैं, आपको वे अति प्रिय हैं। भरे स्वामी भी आप हरि ही हैं, सभीके एकमात्र स्वामी आप ही हैं। वेदोंमें आपकी स्तुतिको गान किया गया है, ऐसा जानकर जो वेदोंका पाठ करता है वह द्विजोंमें उत्तम है। उसे वेदपाठी कहा गया है, इससे विचरीत भाव रखनेवाला वेदवादी कहलाता है।

श्रीकृष्णजीने गरुडजीको विष्णुवत्सव बतलाते हुए पुनः कहा—हे महात्मन्! संसारमें अज्ञानी जीवद्वारा सैकड़ों-करोड़ों महान्-से-महान् अपराध बनते रहते हैं, पर वे हरि बड़े ही दयालु हैं, कृपालु हैं, उनका तीन बार नाममात्र लेनेसे ही वे उन्हें क्षमा कर देते हैं—

महापराधाः सन्ति त्वोके महात्मन्

सहस्रशः शतशः कोटिशतम्।

हरिश्च तान् क्षमते सर्वदेव

नामत्रयस्मरणाद्देव कृपालुः॥

(२।६०)

कल्पान्तमें शयन कर रहे उन विष्णुको इस प्रकार स्तुति करते हुए जगाया गया—

वेदोंके द्वारा जानने योग्य यज्ञस्वरूप हे गोविन्द! आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जायें और जगत्की रक्षा करें।

हे केशव! अब आप अपनी योगनिद्राका परित्याग कर उठें। हे आनन्दस्वरूप! आप सृष्टि और प्रलय करनेमें समर्थ हैं।

हे प्रभो! ब्रह्माको प्रदुर्भूत कर आप उन्हें सृष्टि करनेके लिये प्रेरित करें और रुद्रको सृष्टिके संहारके लिये प्रेरित



करें। हे इंद्र! हे भूतारे! कल्पादिका अन्त करनेके लिये आप उठें। हे महात्मन्! जो दुःखस्वरूप अन्धकार व्याप्त है उसे दूर करें। हे देव! भक्तोंको दुःखी देखकर आप भी दुःखी हो जाते हैं।

हे नारयण! हे वासुदेव! हे कृष्ण! हे अच्युत! तथा हे माधव! अब आप उठें, हे वैकुण्ठ! हे दयामूर्ति! हे लक्ष्मीपते! आपको बार-बार नमस्कार है।

हे सरस्वतीके ईश! हे रुद्रेश! हे अम्बिकेश! हे चन्द्रेश! हे शचीपते! आप ब्राह्मणों तथा गौओंके स्वामी हैं, आपका नाम सास्त्रप्रिय है। हे ऋग्वेद और यजुर्वेदके प्रिय! हे निदानमूर्ति! हे साम तथा अथर्वप्रिय! हे भूतारे! आप पुराणमूर्ति हैं और स्तुतिर्षी आपको प्रिय हैं, इसलिये आप स्तुतिप्रिय कहलाते हैं। हे विचित्रमूर्ति! आप कमला (लक्ष्मी)-के पति हैं, आप शीघ्र ही उठें, इस योगनिद्राका परित्याग कर संसारमें व्याप्त अन्धकारको दूरकर जगत्की रक्षा करें।

—इस प्रकार स्तुति करनेपर अजन्मा विष्णु योगनिद्राका परित्याग कर शीघ्र ही जाग गये। (अध्याय २)

## नारायणसे सृष्टिका प्रादुर्भाव तथा तत्त्वाभिमानि देवोंका प्राकट्य

श्रीकृष्णने कहा—हे विनतसुत गरुड! योगनिद्रासे जागनेपर भगवान् विष्णुकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई। यद्यपि इच्छाशक्ति उनमें सदा हो विद्यमान रहती है फिर भी उस समय उन्होंने उसी इच्छाशक्तिसे लौकिक स्वरूप धारण किया और अपने उस रूपके द्वारा प्रलयकालीन अन्धकारको नष्ट किया।

महाविष्णुके सभी अवतार पूर्ण कहे गये हैं। उनका परस्वरूप भी पूर्ण है और पूर्णसे ही पूर्ण उत्पन्न हुआ। विष्णुका परत्व और अपरत्व व्यक्तित्वावसे है। देश और कालके सामर्थ्यसे परत्व और अपरत्व नहीं है। उनका पूर्ण रूप है, उस पूर्णसे पूर्णका ही विस्तार होता है और अन्तमें उस रूपको ग्रहण करके पुनः पूर्ण हो बच जाता है। पृथ्वीके भारका रक्षण आदि जो कार्य है वह उनका लौकिक व्यवहार है। अपनी गुणमयी मायामें भगवान् अपनी शक्तिका आधान करते हैं। वे वीर्यस्वरूपी भगवान् वामुदेव सभी देश तथा सभी कालमें सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। इसी कारण वे पुरुष ईश्वर कहलाते हैं।

हे विनतापुत्र! अपनी मायामें प्रभु हरि स्वयं वीर्यका आधान करते हैं। वीर्यस्वरूप ही भगवान् वामुदेव हैं और सभी कालोंमें सभी अर्थोंसे युक्त हैं।

इनके अचिन्त्यवीर्य और चिन्त्यवीर्यके भेदसे दो रूप हैं, एक स्वीरूप है और दूसरा पुरुषरूप। हे खगेन्द्र! दोनों स्वरूप वीर्यवान् हैं; इनमें अभेदका चिन्तन करना चाहिये।

देवी लक्ष्मी परमात्मासे कभी विपुक्त नहीं हैं, वे नित्य उनकी सेवामें अनुरक्त रहती हैं। नारायण नामसे प्रसिद्ध हरि यद्यपि पूर्ण स्वतन्त्र हैं किन्तु लक्ष्मीके बिना वे अकेले कैसे रह सकते हैं। मुकुन्द हरिके चरणारविन्दमें परम आदरसे सुश्रृषा करती हुई वे लक्ष्मी सदा विराजमान रहती हैं। हरिके बिना देवी श्री भी किसी देश और कालमें पृथक् नहीं हैं। मायामें वे वीर्यवान् परमात्मा अपनी शक्तिका आधान करते हैं। पुरुष नामक विभु उन हरिने तीनों गुणोंकी सृष्टि की है।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—जिस प्रकार भगवान् हरिने प्रकृतिके तीन गुणोंकी सृष्टि की, उसी प्रकारसे लक्ष्मीने भी तीन रूप धारण किये, जिनका नाम है—श्री, भू और दुर्गा। इनमेंसे सत्त्वाभिमानि रूपको श्रीदेवी, रजोगुणाभिमानि

रूपको भूदेवी और तमोऽभिमानि रूपको दुर्गादेवी कहा गया है। तीनों रूपोंमें अन्तर नहीं जानना चाहिये। हे खगेश्वर! गुणोंके सम्बन्धसे ही दुर्गा आदि तीन रूप हैं इनमें अन्तर नहीं है। इनमें जो अन्तर मानते हैं, वे परम अन्धतमस् नरकमें जाते हैं। साक्षात् परमात्मा पुरुष हरिने भी तीन रूप धारण किये, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे गये हैं।

लोकोंकी वृद्धि (पालन) करनेके लिये स्वयं साक्षात् हरि सत्त्वगुणसे विष्णु नामवाले कहलाये। सृष्टि करनेके लिये साक्षात् हरिने रजोगुणके आधिक्यसे ब्रह्मामें प्रवेश किया और संहार करनेके लिये वे हरि तमोगुणसे सम्पन्न होकर रुद्रमें प्रविष्ट हुए। वे अव्यय हरि त्रिगुणमें प्रविष्ट होकर जब सृष्टि-कार्योन्मुख होते हैं तो उनमें शोभ उत्पन्न होता है, फलस्वरूप तीनों गुणोंसे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव होता है। पुनः उस महान्से ब्रह्मा और वायुका प्राकट्य हुआ। यह महत्तत्त्व रजःप्रधान है। इस सृष्टिको गुणवैषम्य नामक सृष्टि जानना चाहिये।

इस प्रकारके विशिष्ट महत्तत्त्वमें लक्ष्मीके साथ स्वयं हरि प्रविष्ट हुए। हे महाभाग! उसके बाद उन्होंने उस महत्तत्त्वको शुद्ध्य किया। शोभके फलस्वरूप उससे ज्ञान-द्रव्य-क्रियात्मक अहम् तत्त्व उत्पन्न हुआ।

इस अहंतत्त्वसे तत्त्वाभिमानि देव शेष उत्पन्न हुए तथा गरुड और हर उत्पन्न हुए। हे खग! इस अहंतत्त्वमें साक्षात् हरि प्रविष्ट हुए। लक्ष्मीके साथ भगवान् हरिने स्वयं उस अहंतत्त्वको संशुद्ध्य किया। वैकारिक, तामस और तैजस-भेदसे अहम् तीन प्रकारका है, उस अहम्के निषामक रुद्र भी तीन प्रकारके हुए। वैकारिक अहम्में स्थित रुद्र वैकारिक कहे गये हैं। तामसमें स्थित रुद्र तामस कहे गये और तैजसमें स्थित रुद्र लोकमें तैजस कहे गये। तैजस अहंतत्त्वमें लक्ष्मीके साथ स्वयं हरिने प्रविष्ट होकर उसे संशुद्ध्य किया। इससे वह दस प्रकारका हुआ जो श्रोत्र, चक्षु, स्पर्श, रसना और घ्राण तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—इन कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियोंके रूपमें दस प्रकारका कहा जाता है। वैकारिक अहंतत्त्वमें प्रविष्ट होकर हरिने उसे संशुद्ध्य किया। महत्तत्त्वसे एकादश इन्द्रियोंके एकादश अभिमानों देवता प्रकट हुए। प्रथम मनके अभिमानि



इन्द्र और कामदेव उत्पन्न हुए। अनन्तर अन्य इन्द्रियोंके अभिमानी देवोंका प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार अष्ट वसु आदिका भी प्राकट्य हुआ। द्रोण, प्राण, ध्रुव आदि ये आठ वसु देवता हैं।

रुद्रोंकी संख्या दस जाननी चाहिये। मूल रुद्र भव कहे जाते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! रैवन्तेय, भोम, वामदेव, वृषाकपि, अज, समपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप तथा महान्—ये दस रुद्र कहे गये हैं। हे पक्षीन्द्र! अब आदित्योंको सुनें—उरुक्रम, शक्र, विवस्वान्, वरुण, पर्जन्य, अतिवाह, सविता, अर्यमा, धाता, पूषा, त्वष्टा तथा भग—ये बारह आदित्य हैं। प्रभव और अतिवह आदि उनचास मरुद्गण कहे गये हैं। हे खगेश्वर! विश्वेदेव दस हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

### देवताओं द्वारा नारायणकी स्तुति

भीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! अपने-अपने तत्त्वमें स्थित उन-उन तत्त्वोंके अभिमानी देवताओंने नारायण हरिकी अनेक प्रकारसे पृथक्-पृथक् स्तुति की।

सर्वप्रथम श्री (देवी लक्ष्मी)—ने स्तुति प्रारम्भ की, उस समय उन्होंने मनमें सोचा कि प्रभुके तो एक-एक करके अनन्त गुण हैं। उन गुणोंकी स्तुति करनेमें मेरी कहाँ शक्ति है। ऐसा विचार कर वे देवी लक्ष्मीसे अवतर होकर इस प्रकार कहने लगीं—

श्रीने कहा—हे नाथ! मैं आपके चरणारविन्दोंपर नतमस्तक हूँ। आपके चरणोंके अलावा अन्य मैं कुछ भी नहीं जानती। हे देवदेव। हे ईश्वर! आपमें अनन्त गुण विद्यमान हैं। हे दामोदर। हे योगेन्द्र। आप अपने शरीरमें स्थान देकर मेरी रक्षा करें। स्तुति करनेके लिये मेरे लिये आपसे अधिक और कोई प्रिय नहीं है।

ब्रह्माजीने कहा—हे लक्ष्मीपते! हे जगदाधारस्वरूप विश्वमूर्ति! कहाँ आप ज्ञानके महासागर और कहाँ मैं अज्ञानी! आपमें असोम शक्ति है। मैं अल्पज्ञ हूँ और मेरी शक्ति भी अल्प है। हे प्रभो! हे मुरारे! आप सदैव मुझको अहंकार और ममताके भावसे दूर ही रखें। हे रमेश! मेरी इन्द्रियाँ सदा असन्मार्गपर प्रवृत्त होती हैं। वे सदा आपके चरणकमलमें अनुरक्त रहें, ऐसी कृपा करें। आपकी स्तुति करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इसलिये आप प्रसन्न हों। स्तुतिके अनन्तर विधाता ब्रह्मा हाथ जोड़े उनके सामने खड़े

पुरुषवा, आर्द्रव, धुरि, लोचन, क्रतु, दक्ष, सत्य, वसु, काम तथा काल।

इन्द्रियोंके अभिमानी देवोंके समान ही स्पर्श, रूप, रस आदि तत्त्वोंके अभिमानी अपान, व्यान, उदान आदि वायुदेवोंको उत्पत्ति हुई। ऐसे ही ज्यवनको महर्षि भृगु और उतथ्यको बृहस्पतिका पुत्र कहा गया है। रैवत, चाक्षुष, स्वरोचिष, उत्तम, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, दक्षसावर्णि तथा धर्मसावर्णि इत्यादि मनु कहे गये हैं। ऐसे ही पितरोंके सात गण भी प्रादुर्भूत हुए और इनसे वरुण आदिकी पत्नीरूपमें गङ्गादिका आधिर्भाव हुआ। इस प्रकार परमात्मा ब्रह्मरूपसे सभी देवोंका प्रादुर्भाव हुआ और वे नारायण लक्ष्मीके साथ उनमें प्रविष्ट हुए। (अध्याय ३-५)

हो गये।

देवदेव ब्रह्माजीके बाद वायुदेव भगवान् नारायणके प्रेमसे विह्वल हो हाथ जोड़ते हुए गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे—

वायुने कहा—हे प्रभो! सभी देवगण आपके सेवक हैं और आपके चरणारविन्दोंका सन्निध्य परम दुर्लभ है। हे रमेश। हे नाथ। लोकमें जो आपकी भक्तिसे विमुख हैं, जो पापकर्म करनेवाले हैं तथा जो अत्यन्त दुःखी हैं ऐसे प्राणिनोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपका अवतरण होता है। हे वायुदेव। आप अपने अवतारोंके द्वारा गौ, ब्राह्मण और देवताओं आदिके क्षेम तथा कल्याणके लिये नाना प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं, आपके अवतारका अन्य दूसरा प्रयोजन नहीं है। हे पुण्यश्रेष्ठ! आपके जो चरितामृत हैं उनका गुणानुवाद करनेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता, इसलिये हे मुकुन्द। एक अविचल भक्तिवाले भक्तके समान मुझे भक्ति प्रदान करें ताकि मेरा मन आपके पादारविन्दमें लगा रहे।

हे प्रभो! मेरी निद्रा आपकी वन्दनारूप बन जाय, मेरा सम्पूर्ण अचरण आपकी प्रदक्षिणा हो जाय और मेरा व्यवहार आपकी स्तुति बन जाय, ऐसा समझकर मैं आपके चरणोंमें स्वयंको समर्पित करता हूँ। हे देव! जितने पदार्थ हैं उन्हें देखकर 'यह हरिकी ही प्रतिमा है' ऐसा मानकर हे देवदेव! मैं उसमें स्थित हरि-रूप समझकर आपका

भजन करूँ ऐसी आप कृपा करें। आप हरिके प्रसन्न होनेपर लोकमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ रह जाती है अर्थात् उसे सब प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार स्तुति कर महात्मा वायुदेव हरिके आगे हाथ जोड़कर स्थित हो गये।

**सरस्वतीने कहा—**हे मुरारे! हे हरे! हे भगवन्! कौन ऐसा रसज्ञ है जो अपनी स्तुति अथवा कीर्तनसे संतुष्ट हो पायेगा अर्थात् कोई नहीं, किसीमें ऐसी बुद्धि नहीं है जो आपकी स्तुति—प्रशंसा कर सके। हे देवदेव! आपके गुणानुवादका कीर्तन ज्यों ही कानमें पहुँचता है वैसे ही वह सांसारिक देहानुरक्तिको नष्ट कर देता है, इतना ही नहीं वरन् जो घर, भार्या, पुत्र, पशु, धन-सम्पत्तिका व्यामोह, आसक्ति रहती है वह भी दूर हो जाती है।

हे अनन्तदेव! वेदोंसे प्रतिपादित जो आपका स्वरूप है उसे लक्ष्मी भी नहीं जानती, चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं, वायुदेव भी नहीं जानते हैं, फिर मुझमें यह शक्ति कहाँ है कि मैं आपकी स्तुति कर सकूँ। इसलिये हे हरे! आप मेरी रक्षा करें।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति कर देवी सरस्वती चुप हो गयीं। तदनन्तर भारतीने हरिकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।

**भारतीने कहा—**हे ब्रह्मा! हे लक्ष्मीश! हे हरे! हे मुरारे! जो आपके गुणोंमें नित्य ब्रह्मा रहता है, वह उन गुणोंका गान करते हुए सांसारिक असत् विषयोंमें प्रवृत्त अपनी बुद्धिमें संसारके प्रति विराग उत्पन्न कर लेता है और उसकी आपमें दृढ़ भक्ति हो जाती है और इस भक्तिके बलपर हे देवदेव! आपकी प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है। हरिके प्रसन्न हो जानेसे भगवान्‌का भक्तके लिये प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है, इसलिये हे प्रभो! आपके गुणोंके कीर्तनमें मेरी रति बनी रहे, जब ऐसी अनुरक्ति पुरुषमें हो जाती है तो वह प्रीति समस्त सांसारिक दुःखोंको काट डालती है और परमानन्दस्वरूप फलकी प्राप्ति करा देता है। हरिके गुणोंकी जो स्तुति नहीं करते उन्हें पाप लगता है और उनका पुण्य भी क्षीण हो जाता है।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति कर भारती मौन हो गयीं। उसके बाद शेषने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए केशवसे इस प्रकार कहा—

**शेषने कहा—**हे वायुदेव! मैं आपके चरणोंकी प्रभावको नहीं जानता। इसे न रुद्र जानते हैं और न गुरुड ही जानते हैं, मैं तो बहुत ही न्यून हूँ। अतः शरण देकर मेरी रक्षा करें।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति करके शेष मौन हो गये। उसके बाद पथिराज गुरुडने स्तुति करना आरम्भ किया।

**गुरुडने कहा—**हे प्रभो! आपके चरणोंकी स्तुति मैं क्या कर सकता हूँ। मेरा मन तो आपके चरणकमलमें ही समर्पित है। मैं तो पक्षियोंनिमें उत्पन्न हूँ। इस मुखसे आपकी स्तुति कैसे सम्भव है? आपके अनन्त गुणोंकी प्रशंसा करनेकी शक्ति भला मुझमें कहाँ है?

इस प्रकार विनयपूर्वक स्तुति कर गुरुड मौन हो गये। इसके बाद रुद्र स्तुति करने लगे।

**रुद्रने कहा—**हे भूमन्! हे भगवन्! आपकी जैसी स्तुति होने चाहिये वह मैं नहीं जानता। आपके कल्याणकारी चरणोंके मूलमें मेरी भक्ति बनी रहे। ईश! अपनेमें स्थान देकर मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर रुद्रदेव शान्त हो गये। हे पक्षिश्रेष्ठ! तदनन्तर चारुणी, सीपणी तथा पार्वती आदि देवियोंने भी उन हरिकी बड़े ही भावभक्तिसे स्तुति कर उनकी शरण ग्रहण की।

**अक्रिष्णने पुनः कहा—**हे खगेश्वर! अनन्तर इन्द्रने उनकी स्तुति करते हुए कहा—

हे देवदेव! आपके स्वरूपको हृदयमें जानते हुए भी जो मूढ़ स्तवनेके लिये उत्सुक होता है, हे चक्रपाणि! बिना जाने भी तुम्हारी स्तुति करना यह आपका अनादर ही है; क्योंकि आपके यथार्थ स्वरूपको, गुणोंको वाणीके द्वारा व्यक्त करना सम्भव नहीं है, फिर भी आपकी स्तुति करनेमें आपके नामका उच्चारण होगा; अतः यह पुण्य फल तो देनेवाला ही होगा। ऐसा समझकर आपकी स्तुति की ही जाती है। हे प्रभो! जब रुद्रादि देव भी आपकी स्तुति करनेकी शक्ति नहीं रखते तो मुझमें ऐसी सामर्थ्य कहाँ? इस प्रकार देवाधिदेव हरिकी स्तुति कर नतमस्तक हो अंजलि बौधकर इन्द्र मौन हो गये।

देवी शचीने स्तुति करते हुए कहा—हे देव! वज्र, अंकुश, ध्वज तथा कमलसे विह्वित आपके चरणकमलोंका मैं सदा चिन्तन करती हूँ। हे ईश! आपके चरणरजका मैं सदा स्मरण करती हूँ। हे कृपालु! हे भक्तवत्सल! आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार शची देवी स्तुतिकर चुप हो गयीं। इसके बाद रतिने स्तुति करना आरम्भ किया।

**रतिने कहा—**हे नर-रूप धारण करनेवाले हरे! आपने अपने सेवकोंपर अनुकम्पा करनेके लिये यह अवतार

धारण किया है, मैं आपके उस मुखारविन्दका सदा चिन्तन करती हूँ। हे देव! जो कुञ्चित केशराशिसे सुशोभित है तथा ब्रह्म, रुद्र, लक्ष्मी आदिद्वारा स्तुत्य है, मैं आपके उस श्रीनिकेतन मुखकमलका ध्यान करती हूँ, आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार अतिशय आदरके साथ रति स्तुति कर भगवान्‌के समीप हो स्थित हो गयीं। रतिके बाद दक्षने स्तुति आरम्भ की।

**दक्षने कहा—**भगवान्‌का चरणोदकरूप जो तीर्थ है, उसका मैं सदा चिन्तन करता हूँ। वह चरणजल ब्रह्मके द्वारा भलीभाँति सेवित है। ब्रह्म आदि सभी देवोंके द्वारा वन्दनीय है। वही पवित्रतम चरणोदक गङ्गाके रूपमें नदियोंमें श्रेष्ठ तीर्थ हुआ, जिस पवित्र पदरजमिश्रित गङ्गाको अपने जटाकलपमें धारण करनेसे अशिव भी शिव हो गये। हे कश्यपे! हे विष्णो! ऐसे कृपावतार आपकी स्तुति करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। हे निदानमूर्ते! आप सभी प्रकारसे मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर दक्ष चुप हो गये। इसके बाद बृहस्पतिने स्तुति करना आरम्भ किया।

**बृहस्पतिने कहा—**हे ईश! मैं आपके मुखकमलका सदा चिन्तन करता हूँ, आप मुझे सांसारिक विषयोंसे विरक्त करें। स्त्री, पुत्र, मित्र तथा पशु आदि ये सभी नाशवान् हैं, इनके प्रति मेरी जो आसक्ति है उसे आप ख़त्म कर दें। हे देव! इस संसारचक्रमें भ्रमण करते हुए मैंने यह अनुभव किया है कि 'यह संसार दुःखमें परिण्यत है।' इसीसे मुक्ति पानेके लिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे देवाधिदेव! मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर बृहस्पति मौन हो गये। तदनन्तर अनिरुद्धने स्तुति करना आरम्भ किया।

**अनिरुद्धने कहा—**हे हरे! आपकी रसमयी कथाके आस्वादका परित्याग करके जो स्त्रियोंके विज्ञा आदिसे परिपूर्ण शरीर-रसके आनन्दमें निमग्न रहता है, वह मन्दबुद्धि सूकरके समान है। हे मुगधे! मज्जा, अस्थि, पित्त, कफ, रक्त तथा मलसे परिण्यत और चर्म आदिसे आवेष्टित स्त्री-मुखमें आसक्त व्यक्तिका पतन हो होता है। हे विभो! मुझ-ऐसे पापमतिके लिये आपकी मायाका ही बल है। इस अत्यन्त मात्र दुःखरूप तथा लेशमात्र सुखसे भी रहित संसार-चक्रमें भ्रमण करता हुआ मैं मल-निःसारण करनेवाले नौ छिद्रोंसे युक्त इस शरीरमें आसक्त होता हुआ अत्यन्त मूढबुद्धि हूँ। हे देव! आपके सत्कथामृतको छोड़कर मैं

घरमें रहते हुए परिवारके पालनमें अनुरक्त तथा दान आदि शुभ कर्मोंसे विरक्त हो गया हूँ। हे देव! आपको नमस्कार है। आप मेरे इस संसार-मलको दूर करें और दिव्य कथामृतके पानकी शक्ति दें। मैं आपके सद्गुणोंका स्तवन करनेमें समर्थ नहीं हूँ।

हे खगेश्वर! अनिरुद्ध इस प्रकार स्तुति करके चुप हो गये। इसके बाद स्वायम्भुव मनुने स्तुतिका उपक्रम किया—

**स्वायम्भुव मनुने कहा—**हे देव! आपकी स्तुति करनेके लिये प्रयत्नशीलमात्र होनेसे गर्भका दुःख नहीं होता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। हे प्रभो! आपकी इसी कृपासे मैंने परम पूज्यपदको प्राप्त किया है।

**तदनन्तर स्तुति करते हुए वरुणने कहा—**हे प्रभो! आपकी इच्छासे रचित देहरूपी घरमें, पुत्रमें, स्त्रीमें, धनमें, इष्यमें 'यह मेरा है' और 'मैं इसका हूँ' इस अल्पबुद्धिके कारण मूर्खजन संसाररूपी दुःखमें निमग्न हो जाते हैं, इसलिये मेरी ऐसी कुबुद्धिका विनाश कर आप अपने चरणोंकी दासता मुझे प्रदान करें। इस प्रकार स्तुति कर वरुण हाथ जोड़कर वहीं स्थित हो गये। इसके बाद देवर्षि नारदने हरिकी स्तुति की।

**नारदने कहा—**हे विष्णो! मेरे लिये आपके नामके जपन तथा कीर्तनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वादुयुक्त तत्त्व नहीं है इसलिये आप मुझे पवित्र करें। मेरी जिह्वाके अग्रभागमें आपका नाम सदा विद्यमान रहे। जिसकी जिह्वामें हरिनाम नहीं है वह मनुष्यरूपमें गदहा ही है। हे देव! मैं आपके स्वरूपको नहीं जानता, मुझपर आप कृपा करें। इस प्रकार नारद स्तुति कर देवाधिदेवके सामने स्थित हो गये। अनन्तर महात्मा भृगु स्तुति करने लगे।

**भृगुने कहा—**गरुड-जैसे आसनपर आसीन होनेवाले हे देव! आपके लिये कौन-सा आसन शेष रह जाता है। कौस्तुभ-जैसा आभूषण धारण करनेवाले आपके लिये और कौन-सा भूषण रह जाता है। लक्ष्मी जिनकी पत्नी हों उनकी और क्या प्राप्तव्य रह जाता है। हे वागीश! आप वाणीके ईश हैं फिर आपके विषयमें क्या कहना? इस प्रकार भगवान् हरिकी स्तुति कर भृगु मौन हो गये। इसके बाद अग्निने पुरुषोत्तमकी स्तुति की।

**अग्निने कहा—**जिसके तेजसे मैं तेजस्वी और आन्यसिक्त हव्यका वहन करता हूँ। जिसके तेजसे मैं उदरमें

प्रकटि होकर पूर्णशक्तिसम्पन्न हो अन्नका परिष्कार करता हूँ इसलिये मैं आपके सद्गुणोंको कैसे जान सकता हूँ?

**प्रसूतिने कहा—**जिसके नामके अर्थका विचार करनेमें भी मुनिगण मोहमग्न हो जाते हैं और सदा जिससे देवगण भी भयभीत रहते हैं, मान्धाता, ध्रुव, नारद, भृगु, वैवस्वत आदि जिसकी प्रेमसे स्तुति करते हैं ऐसे हितचिन्तक आप विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

हे खगेश्वर! प्रसूतिने इस प्रकार स्तुति कर मौन धारण कर लिया। तदनन्तर ब्रह्मनन्दन वसिष्ठने विनयसे अवगत होकर स्तुति करना प्रारम्भ किया।

**वसिष्ठने कहा—**विधाता पुरुषको नमस्कार है, असा-स्वरूपको नष्ट करनेवाले देवको पुनः-पुनः नमस्कार है। हे नाथ! मैं आपके चरणकमलोंमें सदा नतमस्तक हूँ। हे भगवन्! हे वासुदेव! मेरी सदा रक्षा करें। इस प्रकार स्तुति करके वसिष्ठ मौन हो गये। इसके बाद ब्रह्मके पुत्र महर्षि मरीचि तथा अत्रिने अतिशय भक्तिके साथ स्तुति करते हुए नारायणको प्रसन्न किया।

तदनन्तर स्तवज करते हुए महर्षि अंगिराने कहा— हे नाथ! मैं आपके अनन्त-बाहु, अनन्त-चक्षु और अनन्त मस्तकसम्पन्न विराट् स्वरूपको देखनेमें असमर्थ हूँ। आपका यह स्वरूप हजारों-हजार मुकुटोंसे अलंकृत है। अतिशय मूल्यवान् अनेक अलंकारोंसे सुसोभित ऐसे अनन्तपार-स्वरूपकी स्तुति करनेमें भी मैं असमर्थ हूँ।

हे खगेश्वर! इस प्रकार अंगिराने स्तुति कर मौन धारण किया। इसके बाद पुलस्त्य स्तुति करनेके लिये उद्यत हुए।

**पुलस्त्यने कहा—**हे भगवन्! आप अपने उपासकोंके लिये जैसा मङ्गलकारी स्वरूप धारण करते हैं, उसी भुवनमङ्गल स्वरूपका दर्शन मुझे भी करावें। ऐसे रूपवाले आपकी नमस्कार है। आप नरकसे रक्षा करनेवाले हैं। हे देव! मैं आपके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे भगवन्! मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर पुलस्त्यजी मौन हो गये। इसके अनन्तर पुलह स्तुति करने लगे।

**पुलहने कहा—**हे भगवन्! महापुरुषोंका कथन है कि निष्काम तथा रूपरहित भगवान्को समर्पित स्नान, उत्तम वस्त्र, दूध, फल, पुष्प, भोज्य पदार्थ तथा आराधन आदि सब व्यर्थ ही है तो फिर ऐसे निष्काम आपको ये सब अर्पित

न करके मैं निष्काम बुद्धिसे आपको प्रणाम समर्पित करता हूँ। हे वैकुण्ठनाथ! आपके स्तवनकी शक्ति मुझमें नहीं है।

इस प्रकार स्तुति कर पुलह मौन हो गये। उसके बाद ऋतु स्तुति करने लगे।

**ऋतुने कहा—**हे भगवन्! प्राणोंके निकलते समय आपके नाम ही संसारजन्य दुःखके विनाशक हैं। जो अनेक जन्मोंके पापको सहसा विनष्ट कर निर्मल मुक्ति प्रदान करते हैं, मैं उन नामशक्तिकी शरणमें हूँ।

हे विष्णो! जो आपकी भक्ति करनेमें असमर्थ हैं और केवल आपका नाममात्र लेते हैं, वे भी मुक्तिको प्राप्त करते हैं फिर जो भक्तिपूर्वक आपका स्मरण करते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या!

ये भक्त्या कियेला विष्णो नाममात्रैकजल्पकाः।

तेऽपि मुक्तिं प्रदान्वाशु किमुत ध्यायिनः सदा॥

(७।५४)

इस प्रकार स्तुति करके ऋतु भी मौन हो गये तब वैवस्वत मनुने स्तुतिसे नारायणकी प्रसन्न किया।

**विश्वामित्रने स्तुति करते हुए कहा—**हे भगवन्! मैंने आपके चरणकमलोंका न तो ध्यान किया और न नित्य संभोषासना ही की। ज्ञानरूपी द्वारके किवाड़को खोलनेमें दश धर्मका उपायन भी मैंने नहीं किया। अन्तःकरणमें व्याप्त मलके विनाश करनेमें अत्यन्त कुशल आपकी कृपा भी मैंने कानोंसे नहीं सुनी इसलिये हे देव! मुझ अनाथकी आप सदा रक्षा करें—

न ध्याते चरणाम्बुजे भगवतो संध्यापि नानुष्ठिता

ज्ञानद्वारकपाटपाटनपदुर्ध्वोऽपि नोपाजितः।

अन्तर्ध्यातमलाभिधातकरणे पट्ची भुता ते कथा

ये देव श्रवणेन चाहि भगवन् मामत्रितुल्यं सदा॥

(७।७१)

—इस प्रकार स्तुति कर महामुनि विश्वामित्र हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

हे खगेश्वर! ऋतुके बाद मित्रने जगत्के कारण नारायणकी स्तुति करना आरम्भ किया।

**मित्रने कहा—**संसारके बन्धनको विनष्ट करनेवाले हे देव! आप प्राणियोंको संसारसे मुक्ति दिलानेवाले हैं तथा कल्याणके निधान हैं, मैं अज्ञानी हूँ, आपके चरणारविन्दोंको मैं प्रणाम करता हूँ। आप भगवान् वासुदेव ही अपने



विषयमें जानते हैं। आपके यथार्थ स्वरूपको न मैं जानता हूँ न अग्नि तथा न ब्रह्मा-विष्णु-महेश—ये तीनों देवता, न मुनीन्द्र ही जानते हैं; परम भागवत भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते तो अन्यकी बात ही क्या है? हे परात्पर स्वामी! आप मेरी नित्य रक्षा करें।

हे खग! इस प्रकार हरिको स्तुति कर मित्र मौन हो गये, उसके बाद ताराने स्तुति करना प्रारम्भ किया।

**ताराने कहा—**हे विष्णो! अनन्य-भावसे जो आपके प्रति हृद भक्ति करते हैं, आपके लिये जो सभी कर्मोंको त्याग देते हैं और अपने स्वयंको तथा बान्धवोंका परित्याग कर देते हैं, आपकी कथाको सुनकर जो दूसरेको सुनाते हैं और कहते हैं, इस प्रकारके ये साधुगण सर्वश्रेष्ठ प्रति अवसक्तिसे रहित हो जाते हैं। हे प्रभो! जैसे आप उन साधुगणों—भक्तोंकी रक्षा करते हैं वैसे ही मेरी भी सदा रक्षा करें।

**निर्वाहतिने कहा—**योगपूर्वक आपके प्रति समर्पित जन भक्तिसे परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। भक्त ब्रह्मभावसे की गयी सेवासे, सांसारिक विषयोंकी अनासक्ति और धितका

निग्रह करनेसे विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं, इसलिये हे प्रभो! दयापूर्वक उनके समान मेरी भी रक्षा करें।

तदनन्तर भगवान्‌के शार्वद वायुपुत्र महाभाग विष्वक्सेनेने हरिकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।

**विष्वक्सेनेने कहा—**पूर्णनन्दस्वरूप भगवान्‌ कृष्ण यदि सदा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, यदि मेरी अपरोक्ष साधनरूपा पाप भक्ति है और गुप्ते लेकर ब्रह्मण्डके साधुओंके प्रति यदि मेरी विष्कपट भक्ति है साथ ही तुलसी आदिके प्रति यदि मेरी प्रीति है और इनका सदा मुझे स्मरण है तो निश्चित ही मुझे आपका आशीर्वाद प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार स्तुति कर महाभाग विष्वक्सेनेन चुप हो गये।

हे पशिराज! इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवों तथा लक्ष्मी आदि देवियोंने भगवान्‌ हरिकी पृथक्-पृथक् स्तुति की और वे अंजलि बंधकर मौन हो उनके सामने स्थित हो गये।

भगवान्‌ने उन सभीमें प्रविष्ट होकर उन्हें अपने शरीरमें आश्रय प्रदान किया। (अध्याय ६-९)

## नारायणसे प्राकृत तथा वैकृत सृष्टिका विस्तार

**गरुडजीने कहा—**हे प्रभो! देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये गये भगवान्‌ विष्णु उन्हें आश्रय देकर स्वयं उन्होंने किस प्रकार प्राणिष्ट हुए और किस प्रकार सृष्टि हुई? हे कृपालो! आप इसे भलीभाँति बतायें।

**श्रीकृष्णने कहा—**वे भगवान्‌ महाप्रभु उन सम्बन्धरहित तत्त्वोंमें प्रविष्ट हुए, इससे उनमें शोभ उत्पन्न हुआ। सबसे पहले भगवान्‌ने हिरण्यमात्मक ब्रह्माण्डकी सृष्टि की, जो पचास कोटियोजनमें चारों ओर विस्तृत था। उसके ऊपर अवस्थित अत्यन्त सूक्ष्म भाग उठने ही विस्तारमें फैला था, जितनेमें उस हिरण्यमय अण्डका विस्तार था। उसके भी ऊपर पचास कोटि भूतल था। वह सात आवरणोंमें चारों ओर परिधिद्वारा घिरा हुआ था। पहले आवरणका नाम कचन्ध है। दूसरा आवरण अग्निदेवका है, तीसरा आवरण महात्मा हरका है, चौथा आवरण आकाशका है, पाँचवाँ आवरण अहंकारका है, छठा आवरण महत्तत्त्वमयक है और सातवाँ आवरण त्रिगुणात्मक है। इसके अनन्तर अव्याकृत आकाश है; इसके विस्तारकी कोई सोचा नहीं है। इसी मण्डलके मध्यमें अव्यय हरि विराजमान रहते हैं।

आठवाँ आवरण आकाशका है। उसके मध्यमें विरजा नदी है। इसकी परिधि पाँच योजन विस्तीर्ण है। यह अतिशय पुण्यवती नदी है। विरजा नदीमें भलीभाँति स्नान करके लिंग-देहका भी परित्याग कर हरिके मोक्षपदकी प्राप्ति होती है। श्राव्य कर्मोंका क्षय हो जानेपर ही विरजा नदीमें स्नान करना सम्भव होता है।

हे खगेश्वर! प्रलयमें भी इस विरजा नदीका लय नहीं होता, उसे लक्ष्मीस्वरूपा समझें; क्योंकि वह प्राणियोंके लिंगशरीरका नाश करनेवाली है। विरजा नदीके बाद व्याकृत आकाश है जो निःसीम है, उसकी अभिमानिनी देवता लक्ष्मी हैं। सृष्टिके समय उस ब्रह्माण्डके अभिमानी देवता ब्रह्मा थे, जो विराट् नामसे कहे गये। इस प्रकार ब्रह्माण्ड आदिका सर्जन कर अव्ययात्मा भगवान्‌ हरि उन-उन तत्त्वअभिमानिनी देवताओंके साथ उस ब्रह्माण्डके ऊपर-नीचे—सर्वत्र व्याप्त होकर नित्य स्थित रहते हैं। हे पशिराज! यह प्राकृत सृष्टि है, अव्यक्त आदिसे लेकर पृथ्वीतकके जो भी तत्त्व इस अण्डरूप जगत्‌में व्याप्तरूपसे उत्पन्न हुए हैं, वे सभी प्राकृत सृष्टि कहे जाते हैं और ब्रह्माण्ड तथा

ब्रह्माण्डान्तर्धर्ती सृष्टि वैकृत सृष्टि कही जाती है।

हे अण्डज! जिन्हें पुरुष कहा गया है वे हरि तो साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम ही हैं। उन विष्णुने उस हिरण्मय अण्डके मध्य विद्यमान जलराशिमें एक हजार वर्षतक शयन किया था। उस समय लक्ष्मी ही जलरूपमें थी, शय्यारूपमें विद्या थी, तरंगरूपमें वायु थे और तम ही निद्रारूपमें था। इसके अतिरिक्त वहाँ और कोई नहीं था। उसी उदकके मध्यमें नारायण योगनिद्रामें स्थित थे। हे पक्षिश्रेष्ठ! उस समय लक्ष्मीने उस जलगर्भमें शयन कर रहे हरिकी स्तुति की। हरिकी प्रकृति उस समय लक्ष्मी तथा धरा (भूदेवी)—इन दो रूपोंको धारण कर लेती है और शेष वेदका रूप धारण करके उसके मध्य सोये हरिकी स्तुति करते हैं। स्तुतिसे प्रसन्न हुए नित्य प्रबुद्ध वे महाविष्णु निद्राका परित्याग कर प्रबुद्ध हो उठे। उस समय उनकी नाभिसे सम्पूर्ण जगत्का आश्रयभूत हिरण्मय पद्म प्रादुर्भूत हुआ। इसे प्राकृत सृष्टिके रूपमें समझना चाहिये। उस सृष्टिकी अभिमानिनी देवता भूदेवी थी। वह पद्म असंख्य सूर्योंके समान प्रकाशवाला कहा गया है। चिदानन्दमय विष्णु उससे भिन्न हैं, उस पद्मको भगवान्‌के किरीट आदि आभूषणोंके समान समझना चाहिये।

हरिके किरीट आदि भी दो प्रकारके हैं—एक स्वरूपभूत तथा दूसरे स्वरूपभिन्न। उस पद्मसे सभी लोकोंके विधायक ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई। उस हिरण्मय पद्मसे वतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। किसने मेरी सृष्टि की है, वह प्रभु कौन है? ऐसी जिज्ञासावश ब्रह्मा उस पद्मके नालमें प्रविष्ट हो गये। किंतु अज्ञानवश जब वे नारायणके विषयमें कुछ जान न सके तब उस समय उन्हें 'तप', 'तप' इस प्रकार वे दो शब्द सुनायी दिये। उन शब्दोंके अभिप्रायको ठीक-ठीक समझते हुए विष्णुमें एकमात्र निष्ठ रखनेवाले ब्रह्माने हरिकी प्रीति प्राप्त करनेकी इच्छासे दिव्य हजार वर्षतक तपस्या की। हे खगेन्द्र! तपस्यासे प्रसन्न होकर हरि भक्त-वेष्ट ब्रह्मको

दिव्य कर प्रदान करनेके लिये प्रकट हो गये। भगवान् वतुर्भुजधारी थे, कमलके समान उनके नेत्र थे, वक्षःस्थल श्रौणससे सुशोभित था तथा गला कौस्तुभमणिकी मालासे अलंकृत था, वे आत्यन्त प्रसन्न मुद्रामें थे, उनके नेत्र करुणासे आँई थे। ऐसे उन नारायणका ब्रह्मको दर्शन हुआ।

भक्तोंके वक्षमें रहनेवाले, आत्यन्त दयालु परब्रह्मस्वरूप नारायणको अपने समक्ष देखकर ब्रह्माने बड़ी ही ब्रह्म-भक्तिके उनकी पूजा की और उनके पादतीर्थको मस्तकपर धारण किया। तदनन्तर भक्तिमानोंमें श्रेष्ठ तथा महाभागवतोंमें प्रधान ब्रह्माने उन हरिकी अनेक प्रकारसे स्तुति की और उनके सामने वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति किये जानेपर दयाके सागर भगवान् मधुसूदन मेघके समान गम्भीर वाषोंमें बोले—हे ब्रह्मन्! मेरी प्रसादसे इन देवताओंकी वैसी ही सृष्टि आप करें, जिस प्रकार पूर्वकालमें आपके द्वारा हुई थी। यद्यपि इस सृष्टि-कार्यसे आपका कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी मेरी प्रसन्नताके लिये आप ऐसा करें। हरिके ऐसा कहनेपर ब्रह्माने उन हरिकी स्तुति करके उनकी प्रसन्नताके लिये मनमें सृष्टि करनेका निर्णय लिया तब महत्तत्वात्मक ब्रह्माने सर्वप्रथम जीवके अभिमानी देवता वायुदेवकी सृष्टि की। हे गरुड! वे ही प्रथम सृष्टिके पुरुषात्मा हैं। तदनन्तर ब्रह्माने अपने दाहिने हाथसे ब्रह्माणी तथा भारती नामक दो देवियोंकी सृष्टि की। बायें हाथसे सत्यके पुत्र महत्तत्वात्मक अनलको उत्पन्न किया। ब्रह्माके दाहिने हाथसे ही अहंकारात्मक हरकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार गरुड, शेष, वायु, गायत्री, वारुणी, सौपर्णी, चन्द्र, इन्द्र, कामदेव, इन्द्रियोंके अभिमानी देवताओं, मनु-शतरूपा, दक्ष, नारदादि ऋषियों, कश्यप, अदितिदेवी, वसिष्ठ आदि ब्रह्मजानी ऋषियों, कुक्षेर, विष्वक्सेन तथा पर्जन्य आदि देवसृष्टिका उनसे प्रादुर्भाव हुआ। हे खगेन्द्र! मेरी कृपासे ही ब्रह्मा इस सृष्टि-कार्यमें समर्थ हो सके। (अध्याय १०—१३)

## नारायणकी पूर्णताका वर्णन तथा पदार्थोंके सारासारका निर्णय

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! जो मूलस्वरूप पूर्ण गुणसम्पन्न सर्वथा स्वतन्त्र, पुरातन पूर्ण शरीरवाले अण्डस्वरूप भगवान् अनन्त हैं उनके समान कोई भी नहीं है। उनके चरण आदि सभी अङ्ग अपनेमें पूर्ण हैं। उनके एक-एक

रोममें उतना ही बल है जितना उनका समग्र बल है। इस प्रकार वे सब प्रकारसे पूर्ण हैं। अतः वे ही सबके कर्ता हैं, वे ही सबके हर्ता हैं और वे ही इस सृष्टिके सार अंशके भोक्ता भी हैं।

हे पक्षीन्द्र! वे हरि सारहीन अथवा असार-अंशका भोग नहीं करते, समस्त द्रव्य पदार्थोंके सारभागको ही ग्रहण करते हैं। वे नित्य भक्तोंके प्रति दयालु और भक्तोंके हितचिन्तक हैं। भक्तोंद्वारा निवेदित भक्ष्य-भोग्य आदि पदार्थों तथा उपचारोंके सारभागको वे बड़े ही आदरके साथ ग्रहण करते हैं। समयद्वारा दूषित एवं भावदुष्ट पदार्थोंको नारायण ग्रहण नहीं करते; द्राक्षा आदि जो फल उन्हें समर्पित किये जाते हैं, वे भी काल आदिके प्रभावसे दोषयुक्त हो जाते हैं इसलिये हे पक्षिश्रेष्ठ! अब अग्रे द्रव्योंके सारासारके विषयमें सुनें—

जामुन आदिके फल अतिशय पकनेके बाद चार दिनमें सारहीन हो जाते हैं। एक मासके बाद कटहल असार हो जाता है। छः मासके बाद खजूर तिक्त पदार्थके समान हो जाता है। पवित्र नारिकेल फोड़नेके बाद एक दिन-रातके अनन्तर असार हो जाता है। सूखे नारिकेल और खजूरमें यह दोष नहीं आता।

हे पक्षिराज! एक वर्षके बाद सुपाड़ी, एक पाड़ी (२४ मिनट)-के बाद ताम्बूल, तीन घंटेके बाद पके हुए अन्न और सूप आदि असार हो जाते हैं। तीन पक्षके बाद ठेलमें पकाया पदार्थ और बारह घंटेके बाद घोंमें पकाया हुआ पदार्थ असार हो जाता है। नौ घंटेके बाद शक निःसार हो जाता है। जम्बीरी बीज, भृंगधेर, अथिल, कपूर तथा आम एक वर्षके बाद निःसार हो जाते हैं। परंतु हे द्विज! तुलसी

सदा सारयुत ही रहती है, एकादशीके दिन गीली हो या सूखी हो अथवा जलके साथ हो वह सदा सारवान् ही बनी रहती है—

तुलसी सर्वदा सारा एकादश्यामपि द्विज।  
आर्द्रा चाप्यथवा शुष्का सार्द्रा सारयती स्मृता॥  
(१४।२९)

सारयुत तुलसीको ग्रहण करना चाहिये। एकादशीके दिन अन्न निःसार हो जाता है। हे खगेश्वर! एकादशीके दिन मनुष्योंके लिये हरिका तीर्थ (चरणामृत) सार होता है। हे गरुड! आषाढ़ मासमें शक, भाद्रपद मासमें दही, आश्विन मासमें दूध निःसार हो जाता है, इसी प्रकार हरिके नामोच्चारसे विहीन मुख और हरिको नैवेद्यके रूपमें अर्पित किये बिना बना हुआ समस्त भोजन निःसार हो जाता है—

हरिनाम विहीनं तु मुखं निःसारमुच्यते।  
हरिविषेष्टहीनस्तु पाको निःसार उच्यते॥  
(१४।३०)

तीन दिनमें अलसीका पुष्प, एक प्रहरमें मल्लिका, आधे पहरके बाद चमेली सारहीन हो जाती है। तीन वर्षतक केसर, दस वर्षतक कस्तूरी तथा एक वर्षतक कपूर सारवान् कहा गया है, परंतु चन्दनको सदा सारवान् ही कहा गया है—

ससारंभितिसम्योक्तं चन्दनं सर्वदा स्मृतम्॥  
(१४।३१)  
(अध्याय १४)

## परमात्मा हरि तथा देवी महालक्ष्मीके विभिन्न अवतारोंका वर्णन

हे पक्षिश्रेष्ठ! हरि पूर्णानन्दस्वरूप हैं। उनके समान किसी भी देश अथवा कालमें कोई नहीं है। उन्होंने हरिने लोककल्याणके लिये सम्पूर्ण सद्गुणोंके सागरके रूपमें अवतार ग्रहण किया। वे ही विष्णु समस्त अवतारोंके बीजभूत हैं, वे ही वासुदेव कहलाते हैं, वे वासुदेव ही संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने विष्णुने स्थूल देहसे ब्रह्मादि देवोंकी सृष्टि की। उन्होंने विष्णुने सनत्कुमार आदिके रूपमें शरीर धारण किया और तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा इन्द्रियनिग्रहकी शिक्षा दी। उन्होंने ही पृथ्वीके तथा दैत्यराज हिरण्याक्षके उद्धार हेतु एवं भूमिकी स्थापना और सप्तर्षीकी रक्षाके लिये बराहका अवतार धारण किया। पञ्चरात्रकी शिक्षा देनेके लिये भी उन्होंने

स्वरूप धारण किया। बदरिकाश्रममें उन्होंने ही नारायण नामसे अवतार लिया। वे ही हरि कपिल मुनिके रूपमें अवतरित हुए और उन्होंने ही कालकवलित चौबीस तत्त्वोंवाले सांख्यशास्त्रका आसुरिके लिये उपदेश किया। वे ही नारायण अत्रिपत्नी देवी अनसूयासे दत्तात्रेयके रूपमें प्रकट हुए और उन्होंने ही राजा अलकंको आन्वीक्षिकी नामक तर्कविद्याका उपदेश दिया। वे ही सच्चिदानन्द हरि सूर्यके वंशमें आकृतिके गर्भसे प्रादुर्भूत हुए और उन्होंने ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें देवोंके साथ प्रजाका पालन किया। वे ही विष्णु अर्जुनपुत्रो मेरुदेवीके गर्भसे नाभिके पुत्र-रूपमें उरुक्रम नामसे अवतरित हुए। उन हरिने ही देवता तथा असुरोंद्वारा समुद्रके मन्थनके समय मन्दराचल पर्वतको

अपनी पीठपर धारण करनेके लिये कूर्मरूप धारण किया। पुनः वे ही हरि हरितमणि के समान द्युतिवाले महात्मा धन्वन्तरिके रूपमें हाथमें अमृतकलश धारण किये हुए अपष्यजनित दोषोंको दूर करनेके लिये अवतरित हुए। विष्णुने ही दितिपुत्र असुरोंको मोहित करनेके लिये मोहिनीका रूप धारण किया तथा पुनः नृसिंहरूपसे अवतरित होकर उन्होंने ही हिरण्यकशिपुको अपने ऊरुओंपर रखकर नखाँसे विदीर्ण कर डाला। अनन्तर अदिति और कश्यपसे वामनरूपमें अवतरित हुए। बलिसे अधिगृहीत सम्पूर्ण त्रैलोक्यके राज्यको पुनः इन्द्रको प्रदान करनेकी इच्छासे तथा बलिकी दानशीलताका विस्तार करनेके लिये उन्होंने यह रूप धारण किया। पुनः वे जमदग्नि के पुत्र परशुरामके रूपमें विख्यात हुए और उन्होंने ब्रह्मदेवी शत्रियोंसे इस पृथ्वीको विहीन कर दिया। तदनन्तर उन हरिने ही सूर्यवंशमें रघुकुलमें देवी कौसल्यासे श्रीरामके रूपमें अवतार धारण किया। समुद्रमन्थन तथा रावण आदिके वध आदि कार्य उन्होंने ही किये। तदनन्तर द्वारमें उन विष्णुने ही व्यासरूपमें अवतरित होकर वेदसंहिताको चार भागोंमें विभक्त कर अपने पैर, सुमनु आदि शिष्योंको ऋगादि वेदोंको पढ़ाया। वे पराशरके द्वारा सत्यवतीमें प्रादुर्भूत हुए थे। तदनन्तर वे ही हरि वसुदेवके पुत्र-रूपमें देवकीसे कृष्णरूपमें अवतरित हुए। उन्होंने ही कंस आदिका वध किया और पाण्डवोंकी रक्षा की। तदनन्तर कलियुगकी प्रवृत्ति होनेपर वे ही असुरोंको मोहित करनेके लिये कीकट देशमें बुद्ध नामसे प्रादुर्भूत हुए। इसके बाद कलियुगकी मध्यसंधिमें वे हरि विष्णुगुप्त (विष्णुवत्स) के घर दस्युप्राय राजाओंका वध करनेके लिये कल्कि नामसे

अवतीर्ण होंगे।

इस प्रकार संकर्षण आदि ये सभी अवतार हरिके हुए। हरिके असंख्य अवतार हैं, उन्हें स्वयं नारायण ही जानते हैं। इन सभी अवतारोंमें बलकी दृष्टिसे, रूपकी दृष्टिसे और गुणकी दृष्टिसे किसी भी प्रकारका भेद नहीं किया जा सकता। अनन्त नाम-रूपवाले विष्णु अनन्त गुणोंसे सम्पन्न हैं।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! जिस प्रकार हरिके अनन्त नाम-रूपात्मक अवतार हैं, उसी प्रकार हरिप्रिया भी विभिन्न अवतारोंके रूपमें प्रकट हुई हैं। वे लक्ष्मी ज्ञानस्वरूपा हैं। वे एकमात्र हरिके चरणोंका आश्रय ग्रहण कर नित्य उनके साथ रहती हैं। वे ही पुरुषकी पत्नी और प्रकृतिकी अभिमानिनी देवी हैं। जब ब्रह्माण्डके सृजनकी इच्छा हरिने की थी, उस समय गुणोंकी सृष्टि करनेके लिये ये प्रकृति नामसे प्रादुर्भूत हुई थीं। तामुदेवकी पत्नी भाषा, संकर्षणकी पत्नी जया, अनिरुद्धकी पत्नी शान्ता तथा प्रद्युम्नकी पत्नी कृतिके रूपमें इन्हींका अवतार हुआ। विष्णुकी पत्नी सत्त्वाभिमानिनी श्रीदेवी, तमोगुणकी अभिमानिनी देवी दुर्गा और रजोगुणकी अभिमानिनी कालपत्नी देवी भूदेवी तथा भगवान् वेदकी अभिमानिनी देवी अन्नपूर्णा आदि सब इन्हीं देवीके अवतार हैं। साथ ही यज्ञपत्नी दक्षिणा, विदेहराजपुत्री सीता तथा रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रूपोंमें भगवती लक्ष्मीका ही प्राकट्य हुआ है। इस प्रकार पृथक्-पृथक् देवी लक्ष्मीके अनन्त अवतार हुए हैं। ऐसे ही पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदी भी तत्त्वों आदि देवियोंके रूपमें उत्पन्न हुई थीं।

(अध्याय १५—१७)

## भगवान् शेष तथा भगवान् रुद्रके विविध अवतार

श्रीकृष्णने कहा—भगवान् शेष अनन्त शक्तिसम्पन्न हैं। इनका आविर्भाव भगवान् हरि तथा रमादेवीके शयनके लिये हुआ है। योगनिद्रामें लक्ष्मीके साथ भगवान् नारायण शेषशय्यापर ही शयन करते हैं। 'मैं सर्वदा हरिका दास बना रहूँ और सदा उनकी पूजा करता रहूँ। मैं प्रायेक जन्मोंमें हरिको नमस्कार करता रहूँ' इस इच्छासे गरुड़ने हरिके शयनस्थानके समीपमें आश्रय प्राप्त किया। निम्नलिखित

पुत्र काल नामक गरुड़का भगवान्के वाहनके रूपमें प्रादुर्भाव हुआ।

शेष भगवान् नारायणके भक्त हैं। उनमें विष्णु, वायु तथा अनन्त—इन तीन देवोंका अंश सदा विद्यमान रहता है। हे खग! दशरथके पुत्रके रूपमें देवी सुमित्राके अंशसे जिन लक्ष्मणने जन्म लिया, वे शेषके ही अंश हैं, इसलिये शेषावतार कहे जाते हैं। भगवान् श्रीराम तथा देवी सीताकी



सेवा करनेके लिये उनका पृथ्वीपर अवतार हुआ। वे ही शेष वसुदेवके पुत्रके रूपमें देवी रोहिणीसे बलभद्र नामसे अवतरित हुए। गरुडजीका पृथ्वीपर कोई अवतार नहीं हुआ, इसमें भगवान्की आज्ञा ही है। भगवान् रुद्रने भी

अनेक रूप धारण किये हैं, वामदेव, ईशान, अधोर तथा सद्योजात आदि इनके कई अवतार हैं। इसी प्रकार आवेशावतार दुर्वासा तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आदि भी रुद्रके ही अंशावतार हैं। (अध्याय १८)

## श्रीकृष्णपत्नी देवी नीला ( नाग्नजिती )-की कथा

**श्रीकृष्णने कहा**—हे पक्षिराज! कृष्णपत्नी नाग्नजिती पूर्वजन्ममें पितरोंमें श्रेष्ठ कव्यवाहकी पुत्री थी। वह कन्या पतिरूपमें भगवान् कृष्णका अनन्यचिन्तन किया करती थी। जब वह विवाहके योग्य हुई तो पिताने उसके विवाहके लिये बहुत प्रयत्न किया, किंतु उस कन्याने कृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यको वरण न करनेका अपना निश्चय बलाया, तब पिताने उससे कहा—किसी दूसरेकी पतिरूपमें क्यों नहीं ग्रहण कर लेती हो? तब उसने अपने पितासे कहा—‘हे तात! सर्वगुणसम्पन्न हरिके अतिरिक्त मेरा और कोई पति नहीं हो सकता। हे तात! मुझे ऐसा लगता है कि इस जन्ममें मुझे सौभाग्यकी प्राप्ति है ही नहीं; क्योंकि मेरे तो एकमात्र भतीं वे भगवान् हरि ही हैं और कोई नहीं। यद्यपि इस संसारमें सभी स्त्रियाँ सदा सौभाग्यवती मानी जाती हैं किंतु उन्हें विधवा हो समझना चाहिये; क्योंकि अनादि, नित्य, सम्पूर्ण संसारके एकमात्र सारस्वरूप, परम सुन्दर, मोक्षदाता तथा सभी इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाले भगवान्की जो पतिरूपमें नहीं मानती हैं, वे सदैव विधवाके समान ही हैं। जिन स्त्रियोंके पति विष्णुभक्त हैं, उन स्त्रियोंका जन्म सफल है। अनेक जन्मोंमें संचित किये गये पुण्योंसे ही विष्णुभक्त पति प्राप्त होता है। कलियुगमें विष्णुभक्त दुर्लभ हैं, हरिभक्ति तो सदा ही दुर्लभ रही है। कलियुगमें हरिकी कथा दुर्लभ है। हरिके भक्तोंकी सत्संगति और भी दुर्लभ है। कलियुगमें शेषाचलपर विराजमान रहनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन दुर्लभ है। विष्णुपदी कालिन्दी नदीके तटपर विराजमान रहनेवाले भगवान् रंगनाथका दर्शन करना बड़ा ही दुर्लभ है। काशीक्षेत्रमें जाकर भगवान् वरदराजकी सेवा करना और दर्शन प्राप्त करना भी सुलभ नहीं है। रामसेतुका दर्शन सरल नहीं है। श्रेष्ठ जनोंने कहा है कि भीमा नदीके तटपर रहनेवाले विष्णुका दर्शन प्राप्त करना सुलभ नहीं है और न तो रेवा नदीके तटपर स्थित विष्णुका एवं गयाक्षेत्रमें

विष्णुपादका दर्शन ही सुलभ है। मृत्युलोकमें रहनेवाले लोगोंके लिये बदरीवनमें भगवान् विष्णुका दर्शन पाना भी सुलभ नहीं है। श्रीलक्ष्मीनारायणकी निवासभूमि शेषाचलपर रहनेवाले तपस्वी भी दुर्लभ हैं। प्रयाग नामक तीर्थमें नित्य निवास करनेवाले भगवान् माधवका दर्शन करना मनुष्योंके लिये सरल नहीं है। इसीलिये हे तात! कृष्णसे अतिरिक्त किसी दूसरेकी पतिरूपमें वरण करनेकी मेरी इच्छा नहीं है।’ अपने पितासे ऐसा कहकर वह कुमारी शेषाचल पर्वतकी ओर चली गयी।

कपिल नामक महातीर्थमें पहुँचकर उसने वहाँ विराजमान भगवान् श्रीनिवासका दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया। तीन दिनतक सम्पू् रूपसे उनकी सेवा करके वह पापविनाशन नामक तीर्थमें चली गयी। विवाहकी इच्छासे उस तीर्थमें स्नान करके उस तीर्थके उत्तर दिशामें दो कोसके विस्तारमें फैले हुए गुणवरूपी एकान्त स्थानमें जाकर भगवान् नारायणके ध्यानमें-तपश्चर्यामें स्थित हो गयी और उसने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की।

उस कुमारीने स्तुति करते हुए कहा—‘हे देव! आप ही मेरे माता, पिता, पति, सखा, पुत्र, गुरु, श्रेष्ठ स्वजन, मित्र और प्राणवल्लभ हैं। हे प्रभो! ये सभी सांसारिक पिता आदि स्वजन तो निमित्तमात्रसे अपने बने हैं, पर आप तो बिना निमित्त ही सदासे मेरे सब कुछ हैं। इसीलिये हे मुरारे! मैं आपको ही भायाँ होना चाहती हूँ इसी कारण मैंने यह कीर्माव्यक्त धारण किया है। हे श्रीनिवास! आपको मेरा नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्न हों।

उसकी परार्थिकसे प्रसन्न हो करुणासागर भगवान् श्रीनिवासने प्रकट होकर कहा—‘हे कुमारिके! हे सुभगे! कृष्णावतारमें मैं तुम्हारा पति होऊँगा।’ ऐसा वर देकर भगवान् वहाँपर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर कव्यवाहकी पुत्री वह कुमारी भी यौगिक रीतिसे वहीं अपना शरीर छोड़कर कुम्भकके घरमें नीला नामसे उत्पन्न हुई। हे

पक्षिराज! दितसे उत्पन्न दैत्योंको मार करके मैंने नीला नामको लक्ष्मीको प्राप्त किया। तत्पश्चात् नग्नचित् नामक राजाके घरमें उस कुमारीने जन्म लिया। नग्नचित् ही पूर्वमें कव्यवाह थे और उनकी पुत्री कुमारी भी नीला नामसे

विख्यात हुई थी। उसके स्वयंवरमें मैंने देवताओं और मनुष्योंके द्वारा न जीते जाने योग्य सात दुर्दान्त ब्रह्मोंके साथ अनेक राजाओंको जीतकर बंदी बनायी गयी नीलाको भार्यारूपमें प्राप्त किया। (अध्याय १९)

## भद्रा तथा मित्रविन्दाद्वारा श्रीकृष्णकी भार्या बननेकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! पूर्वजन्ममें विष्णुपत्नीने ही नलकी पुत्रीके रूपमें भद्रा नामसे शरीर धारण किया था। जो परम विष्णुभक्त थी, वह सभी प्रकारके भद्र गुणोंसे सम्पन्न थी, इसी कारण उसका भद्रा यह नाम पड़ा था। वह कन्या भगवान् कृष्णकी पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये नित्य उन्हें प्रणाम निवेदन और उनकी प्रदक्षिणा किया करती थी। कन्याभावमें स्थित अपनी भद्रा नामक पुत्रीको वैसी कठिन तपस्या देखकर पिता नलने कहा कि 'हे नन्दिनी! पुत्री! भद्रे! किसलिये तुम अपने शरीरको कष्ट दे रही हो ऐसा करनेसे तुम्हें कौन-सा फल मिल जायगा, उसे मुझे बताओ।'

भद्रा बोली—हे तात! आप मेरे पिता हैं, भक्त में आपको क्या बता सकती हूँ। भगवान्की नमस्कार आदि क्रियाओंके फलको बतानेमें कौन समर्थ हो सकता है? फिर भी आप सुनें—'हे तात! करुणानिधान भगवान् विष्णु ही सदा मेरे स्वामी रहे हैं। मैं हरिके दासोंकी भी दासी हूँ।' हे विष्णो! मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। मेरी रक्षा करें, ऐसा कहती हुई भद्राने दण्डवत्-रूपमें भूमिपर गिरकर अपने स्वामी नारायणको प्रणाम किया। पुनः भद्रा कहने लगी। हे तात! भगवान् विष्णुकी नित्य-निरन्तर प्रणाम करना चाहिये। जिस प्रकार वन्दन करनेसे वे देव प्रसन्न होते हैं, उस प्रकार वे पूजन करनेसे प्रसन्न नहीं होते। हे तात! नामस्मरण अथवा प्रणाम-निवेदन तथा वन्दन करनेसे जिस प्रकारसे पापसे मुक्ति हो जाती है, उस प्रकारसे अन्य साधनोंसे नहीं होती।

हे तात! भगवान् विष्णुको प्रणाम निवेदन किये बिना जो लोग शरीरका पोषण करते हैं, उनका वह शरीर-पोषण व्यर्थ ही है। ऐसे लोगोंको नरकमें महान् दुःख भोगना

पड़ता है। जो देवसेष्ठ भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा नहीं करता उसे यमराज अत्यन्त त्रास देते हैं। जिनकी जिह्वा 'हरि', 'कृष्ण' इस प्रकारसे भगवान्के मङ्गलमय नामोंका निरन्तर कीर्तन नहीं करती है, ज्ञानीजनोंद्वारा उस जिह्वाकी व्यर्थ ही कहा गया है।

हे तात! काशीमें निवास करने अथवा प्रयागमें मरनेसे क्या लाभ! अथवा युद्धमें वीरगति प्राप्त करनेसे अथवा यज्ञादिका अनुष्ठान करनेसे क्या लाभ है। समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे अथवा शास्त्रके अध्ययनसे किस प्रयोजनकी सिद्धि हो सकती है? जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर हरिनाम नहीं है, जिनके शरीरसे भगवान् विष्णुको नमन नहीं किया गया है, जिनके पैरोंने भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा नहीं की है, ऐसे लोगोंका सब कुछ करना व्यर्थ ही है? ऐसा महान् लोगोंका कहना है। अतः हे तात! भगवान् विष्णुको नमन करना और उन्हें निरन्तर स्मरण रखना ही प्राणीका वास्तविक कार्य है। निश्चित ही यह मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, किन्तु दुर्लभ होनेपर भी वैसे ही नष्ट है, जैसे जलमें स्थित बुलबुला होता है। हे तात! इस नष्ट शरीरका कोई भरोसा नहीं है, अतः जो समय प्राप्त है उसमें भगवान्की नमस्कार, वन्दन आदि करते रहना चाहिये। हे पिताजी! आप भी ऐसा ही करें।

हे पक्षिराज! पुत्रीके ऐसे निर्मल वचनोंको सुनकर ब्रह्मासमन्वित हो पिता नलने भगवान् विष्णुकी नमस्कार किया और यथाशक्ति उनको प्रदक्षिणा की। तदनन्तर पुनः वह भद्रा भगवान्की प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्हींके ध्यानमें निमग्न हो गयी, इसीमें उसका नष्ट शरीर भी कथं शान्त हो गया, इसका उसे भान ही नहीं रहा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिसेष्ठ! पुनः मेरे पिता वसुदेवकी

१. काशीनिवासमें कि प्रदीपन कि या प्रयोग करने तात ॥

कि या रणाय मरणेन मौख्यं कि या मन्त्रैः समनुष्ठितेन । सम्पत्तीर्षोष्ठयनेन कि किमधीतशास्त्रेण सुतीक्ष्णबुद्ध्या ॥  
येषां जिह्वारे हरिनामैव नास्ति येषां गतैर्नमनं नापि विष्णोः । येषां दुर्ध्वं नास्ति हरेः प्रदक्षिणं तेषां सर्वं व्यर्थमाहुर्महन्तः ॥

बहिनके उदरसे कैकेयी इस नामसे उस भद्रा नामवाली कन्याने जन्म लिया। भद्र गुणोंसे युक्त होनेके कारण वह उस जन्ममें भी भद्रा नामसे ही प्रसिद्ध हुई और उसे मैंने प्राप्त किया।

**श्रीकृष्णने गरुडसे पुनः कहा—**हे गरुड! जिस प्रकार मिश्रविन्दाका विवाह हुआ, अब मैं उसे बताता हूँ। मिश्रविन्दा हरिकी सदैव प्रिय रही है। पूर्वजन्ममें हरिकी मिश्ररूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली वह देवी सदा उनके विषयमें चिन्तन करती रहती थी कि किस उपायसे भगवान् विष्णुको प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि उन्हें प्राप्त करनेके बहुत-से उपाय हैं, पर श्रेष्ठतम उपाय कौन हो सकता है वह ऐसा विचार करने लगी। उसने निश्चय किया कि सभी साधनोंमें श्रेष्ठ साधन है 'सात्विक पुराणोंमें वर्णित भगवान्की कथाओंका श्रवण करना'। जो व्यक्ति भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण नहीं करता उसका जन्म लेना व्यर्थ है जिसने भगवान् विष्णुके गुणानुवादका कीर्तन करनेवाले भागवत पुराणको नहीं सुना, उसका जीवन व्यर्थ है, इसलिये सदा हरिकथाका श्रवण करना चाहिये।

हे तात! जहाँ भगवान् विष्णुसे सम्बन्धित कथाकथी महानदी प्रवाहित नहीं होती तथा जहाँ नारायणके चरणाम्बुजोंका आश्रय नहीं है और जहाँ मुखसे भगवान् विष्णुका नामस्मरण नहीं होता, वहाँ किसी प्रकारसे क्षणम्बात्र भी नहीं रहना चाहिये। 'जिस गाँवमें भागवतशास्त्रकी चर्चा नहीं होती और न जहाँ भागवतके रसको जाननेवाले हो होते हैं, साथ ही जिस घरमें भगवान् विष्णुके द्वारा कही गयी गीताके अर्थोंका निष्कर्ष जाननेवाले नहीं हैं अथवा जिस ग्राममें भगवान्की सहस्रनामावली (विष्णुसहस्रनाम)-की चर्चा नहीं होती अथवा जहाँ उन दोनों (गीता और विष्णुसहस्रनाम)-के रसोंका ज्ञान रखनेवाले नहीं हैं' वहाँ क्षणमात्र भी किसी प्रकारसे नहीं रहना चाहिये अथवा मनुष्यके जीवनमें जिस दिन भगवान् विष्णुकी दिव्य

कथाका श्रवण नहीं होता है, उस दिन उस प्राणीकी आयु व्यर्थ हो जाती है—

यस्मिन् ग्रामे भागवतं न शास्त्रं न वर्तते भागवता रसज्ञाः ।  
यस्मिन् गृहे नास्ति गीतार्घ्यसागो यस्मिन् ग्रामे नामसहस्रकं वा ॥  
तयो रसज्ञा यत्र न सन्ति तत्र न संवसेत् क्षणमात्रं कथंचित् ।  
यस्मिन् दिने दिव्यकथा च विष्णोर्न नास्ति जनोस्तस्य चायुर्वृधेयः ॥

(२०।२९-३०)

रसपारखी विद्वान् स्वर्णादिसे निर्मित आभूषणोंसे विभूषित कानोंको सुन्दर नहीं कहते, भगवान् विष्णुकी मङ्गलमयी कथाओंसे पुरित कानोंको ही सुन्दर बताते हैं। इस कारणसे जो लोग सर्वदा भागवतके अर्पतत्वका श्रवण करते हैं और चिरन्तर उसका आचन करते हैं, उन्हींका जन्म सफल है, ऐसा श्रेष्ठ जनोंका कहना है। संसारमें हरि सर्वत्र व्याप्त हैं, वे ही निच हैं, अन्तर्धामी हैं ऐसा समझते हुए जिनके द्वारा सदा भलीभाँति प्रभुका चिन्तन किया जाता है, उनके योगशेषका वहन वे विष्णु स्वयं ही करते हैं ऐसे भक्तोंका [कभी] अशुभ नहीं होता है।

भगवान् हरि शुभ-अशुभ फल कर्मानुसार ही देते हैं, इसलिये धनप्राप्तिके लिये कोई यत्न नहीं करना चाहिये। प्रयत्न तो हरितत्वकी प्राप्तिके लिये ही करना उचित है।

इसी कारण हे तात! मैं भी सदैव भगवान्की सत्कथाओंका श्रवण किया करती हूँ। पूर्वजन्ममें मैंने भगवान्की कथाका श्रवण किया था और फिर शरीरका परित्यागकर आपकी पुत्रोंके रूपमें पृथ्वीपर मैंने जन्म लिया है।

**श्रीकृष्ण बोले—**हे पक्षिन्! उस मिश्रविन्दाने पृथ्वीपर रहनेके लिये वसुदेवकी बहिनके उदरमें सुमित्रा नामसे जन्म लिया। भागवतकथाके श्रवणसे ही वह भगवान् विष्णुकी मित्रके रूपमें प्राप्त कर सकी है। इसी कारण उसका मिश्रविन्दा यह नाम पड़ा है। हे खगराज! स्वयंवरमें अनेक राजाओंके मध्य भामिनी उस मिश्रविन्दाने भौं गलेमें जयमाला डाल दी और मैं समस्त राजाओंको परास्त कर मिश्रविन्दाको साथ लेकर अपनी पुरी आ गया। (अध्याय २०)

## सूर्यपुत्री कालिन्दीकी कथा

**श्रीकृष्णने कहा—**हे खगेश्वर! अब मैं कालिन्दीकी उत्पत्तिके विषयमें बता रहा हूँ, आप सुनें—विवस्वान् नामके सूर्यकी कालिन्दी नामवाली एक पुत्री उत्पन्न हुई।

हे पक्षिराज! उस कालिन्दीकी यमुना तथा यमानुजाके नामसे भी कहा गया है। भगवान् कृष्णकी पत्नी बननेकी इच्छासे उसने विशिष्ट तप किया था। पूर्वजन्ममें अर्जित

पापोंका अनुताप अर्थात् उनका क्षमन करना तप है। हे पक्षिराज! अब आप अनुतापके विषयमें सुनें—पूर्वजन्ममें जिसने भगवान् मुकुन्दके दिव्य मन्त्रोंका जप नहीं किया, हरिनामामृतका स्मरण नहीं किया, भगवान्के पादारविन्दोंकी वन्दना नहीं की, हरिके नैवेद्यको ग्रहण नहीं किया, सुन्दर गन्धसे युक्त पुष्पोंको मुरारिको अर्पित नहीं किया, भगवान्की भक्ति नहीं की, ऐसा सोच-सोचकर मनमें जो पक्षात्ताप होता है, दुःख होता है वह कहने लगता है—हे मुकुन्द! मैं इस पुत्र-मित्र-कलत्रादिसे युक्त संसारमें अत्यन्त संतप्त हो रहा हूँ, हे भगवन्! कब मैं आपके मुखारविन्दका दर्शन करूँगा, मुझसे आपकी सेवा-पूजा नहीं हुई है, मेरा उद्धार कैसे होगा? हे हरे! मैं महान् पापी हूँ कब मुझे आपके दर्शन होंगे! हे प्रभो! मैंने अनन्त जन्मोंमें सांसारिक सम्बन्धोंके द्वारा अणुमात्र भी सुख नहीं प्राप्त किया और न तो मैं आपकी सेवा ही कर सका हूँ और न आपके भक्तजनोंकी संगति ही कर सका हूँ, हे मुरारे! मेरा शरीर कष्टसे जल रहा है। ऐसा अर्गताक मैं अब आप मुकुन्दकी शरण छोड़कर और किसकी शरणमें जाऊँ? हे भगवन्! मुझपर दया कर मेरी रक्षा करें।'

**श्रीकृष्णने पुनः कहा—**हे पक्षिराज! इस प्रकारका पक्षात्ताप करना ही अनुताप है। इसका नाम तप भी है। हे पक्षिराज! सूर्यपुत्री उस कालिन्दीने भी इसी प्रकारका अनुताप करते हुए यमुनाके तटपर तपस्या की और श्रीहरिके ध्यानमें वह निमग्न हो गयी।

तत्पश्चात् हे पक्षिराज! एक दिन मैं अर्जुनके साथ यमुनाके तटपर गया। तप करती हुई उसको वहाँ देखकर



मैंने अपने मित्र अर्जुनसे कहा कि हे पार्थ! आप शीघ्र ही उस कन्याके समीपमें जाकर पूछें कि 'वह किस कारणसे तप कर रही है?' मेरे ऐसा कहनेपर अर्जुनने वैसा ही किया और कालिन्दीका सभ्य वृत्तान्त भी बता दिया। तत्पश्चात् मैंने शुभ मुहूर्त आनेपर सम्यक् रीतिसे वहाँ जाकर उस कालिन्दीका पाणिग्रहण किया। हे पक्षिवेध! मुझ पूर्वाजन्मकी किस सुखकी अभिलाषा है? फिर भी उसपर अनुग्रह करनेकी दृष्टिसे ही मैंने उस कालिन्दीका पाणिग्रहण किया है। (अध्याय २१)

## लक्ष्मणाद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी कथा

**श्रीकृष्णने कहा—**हे पक्षिराज! जो ये लक्ष्मणा हैं, पूर्व-सृष्टिमें वेदोंके पारंगत अग्निदेवकी पुत्री थीं। सभी प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न होनेके कारण सुलक्ष्मणा इस नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई। जिस प्रकार लक्ष्मी सभी लक्षणोंसे पूर्ण हैं, जैसे भगवान् विष्णु सभी लक्षणोंसे परिपूर्ण हैं, उसी प्रकार लक्ष्मणा भी सभी गुणोंसे पूर्ण हैं। यह सुलक्ष्मणा श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये नित्य विविध उपचारोंसे उनकी पूजा किया करती थी, एक बार उसने अपने पिताजीसे कहा—हे तत! वे हरि सर्वत्र व्याप्त हैं, सबमें स्थित हैं और सर्वान्तर्यामी हैं। दान आदि जो भी शुभ कर्म किया जाता है उन्हींको उद्देश्य करके

करना चाहिये। उनकी संतुष्टिके लिये उन्हें भक्तिपूर्वक विविध उपचारोंको समर्पित करना चाहिये। भक्तिपूर्वक समर्पित किये गये अन्न-पानादि पदार्थोंको वे मुकुन्द निश्चित ही ग्रहण करते हैं।

गृहस्थको चाहिये कि वह सर्वप्रथम भोग्य पदार्थोंका समर्पण भगवान् हरिके लिये अवश्य करे। जो गृहस्थ ऐसा करता है वह गृहस्थ धन्य है। अन्यथा उसका जीवन व्यर्थ है। माधव नामसे अभिहित वे भगवान् हरि इस प्रकारसे हमारे द्वारा समर्पित अन्नादिको ग्रहण करते हैं। ऐसा सम्झकर उन्हें पदार्थ अर्पित करना चाहिये। इस प्रकारसे दिये गये अन्नादिक नैवेद्यसे भगवान् विष्णु अत्यन्त संतुष्ट



होते हैं। इसके विपरीत भावसे दिये गये पदार्थको वे ग्रहण नहीं करते, उनके लिये वह सब व्यर्थ ही है। हे सुपर्ण! वासुदेव हरि हमारे घरमें नित्य निवास करते हुए प्रसन्न रहते हैं। ऐसा समझकर अपने घरको देवालय मानकर सर्वदा अलंकृत रखना चाहिये। हे तात! अनन्तरूपी ऐसे वे हरि अनन्त रूपोंसे सबमें स्थित रहते हैं।

**श्रीकृष्णने कहा—**हे पक्षिराज! अपने पितासे इस प्रकार कहकर वह उन भगवान्‌को पतिरूपमें वरण करनेके

लिये अनन्त-मनसे उनकी सपर्यामें लग गयी और की जा रही मेरी इस सेवासे भगवान् हरि ही मेरे पति हों ऐसा चिन्तन करती हुई उस लक्ष्मणने अपने शरीरका परित्याग कर दिया और पुनः मद्देतले राजाको पुत्रीके रूपमें जन्म लिया। हे पक्षिश्रेष्ठ! तदनन्तर उस लक्ष्मणके स्वयंवरमें लक्ष्यका भेद करके मैंने ही वहाँ उपस्थित राजाओंका मान-मर्दन कर उसका पाणिग्रहण किया और अपनी पुरीमें आकर उस देवीके साथ मैं निवास करने लगा। (अध्याय २२)

## सोमपुत्री जाम्बवतीकी कथा

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—**हे पक्षिश्रेष्ठ गरुड! इस सृष्टिसे पूर्व-सृष्टिकी बात है। जाम्बवती श्रीसोमकी पुत्री थी। श्रीसोम श्रीविष्णुकी सेवामें लगे रहते थे। उनकी पुत्री जाम्बवती भी पिताका अनुसरण करती थी। वह नित्य पुराण सुनती, प्रतिक्षण भगवान्‌का स्मरण करती, उनके चरणोंकी वन्दना करती और उनकी सेवामें लगी रहती। धीरे-धीरे जाम्बवतीके अन्तःकरणमें संसारकी नश्वरता घर करती चली गयी। वह समझ गयी कि सुख-दुःख मायाके खेल हैं। इनसे ऊपर उठकर वह भावप्रेममें आनन्द-विभोर रहने लगी। उसकी वाणीसे भगवान्‌के नाम और गुणका कथन होता रहता। अखिं प्रभुकी प्रतीक्षामें रहती, कल उनकी मोटी बातें सुननेके लिये उत्सुक रहते, हाथ अर्चनाके सम्भारमें लगे रहते और पैर उनकी प्रदक्षिणामें व्यस्त रहते। हृदयमें एक ही कामना रह गयी थी कि मैं भगवान्‌के चरणोंकी दासी कैसे बन जाऊँ। वह सारा कार्य भगवान्‌के लिये करती थी और सम्पन्न होनेपर उन्हें भगवान्‌की ही समर्पित कर देती थी। ब्राह्मणों और संतोंकी पूजामें उसे रस मिलता था।

एक दिन श्रीसोमने तीर्थयात्राका विचार किया। इस समाचारसे जाम्बवती फूली न समायी। वह पहलेसे ही उन स्थलोंकी देखना चाहती थी, जहाँ भगवान्‌ने अपनी लीलाएँ की हैं और जहाँ वे अदृश्य-रूपसे आज भी विराजते हैं। भगवान् श्रीनिवासमें जाम्बवतीका यधुर भाव था। सेवकजलपर अथ प्रियतमके दर्शन हो जायँ, इस आशासे उसका रोम-रोम खिल उठा। पिताका भी भगवान्‌में पूरा लगाव था। दोनोंकी उत्सुकता अनिर्वचनीय थी। साज प्रारम्भ हो गयी। पिता-पुत्रीके पग बिना बढ़ाये बड़ रहे थे। धीरे-धीरे कपिल नामक तीर्थ आ गया। सद्गुरु जैगीषव्यकी आज्ञासे पिताने मुण्डन कराया, स्नान किया और तीर्थ-आद किया। फिर विविध प्रकारके दान दिये। इसके बाद सद्गुप्ते वैष्णवद्विक

महात्मा सुनाया। इससे उन यात्रियोंके मनमें बड़ाका आतिरेक हो गया। वे लोग बहुत प्रेमसे इस पवित्र पर्वतपर चढ़ने लगे।

सद्गुरु जैगीषव्य नारद, प्रह्लाद, पराशर, पुण्डरीक आदि महाभागवतोंकी कथा सुनाते रहे। नामके रसका आस्वादन करते हुए लोग चल रहे थे। सब पूछा जय तो वे चल नहीं रहे थे, अपितु आनन्द-वापीमें दूब-उतरा रहे थे और तरंगें स्वयं उन्हें आगे पहुँचाती जाती थीं। जाम्बवती तो मानो आनन्द-वह्निधर्ममें उतराती चली जा रही थी।

चढ़ते-चढ़ते एक मनोरम तीर्थ आया। जाम्बवतीने पूछा—'गुरुदेव! यह कौन-सा तीर्थ है? वह कौन भाग्यशाली है, जिसपर भगवान्‌ने यहाँ अनुग्रह किया है।' इस प्रश्नसे जैगीषव्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटा! इस तीर्थका नाम नारसिंह तीर्थ है। भक्ताराज प्रह्लाद प्रेमवश भगवान् श्रीनिवासके दर्शनके लिये यहाँ पधारे थे। उनके साथ दैत्योंके कुमार भी थे। वे यहाँ भगवान्‌के दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो गये थे। उन्होंने प्रह्लादसे कहा था—'मित्र! जब त्रिसिंह-रूप भगवान् श्रीनिवास कण-कणमें व्याप्त हैं, तब इस जलमें क्यों नहीं दिखायी देते? कृपाकर उनके दर्शन करा दीजिये!'

भक्ताराज प्रह्लादने अपने भावलेपमी मित्रोंको बहुत आदर दिया। इसके बाद उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'वे सबको दर्शन दे दें।' भगवान्‌ने संतराजकी प्रार्थना स्वीकार की। दैत्यकुमार दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गये और भगवान् 'इस जलमें स्नान करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी'—ऐसा वरदान देकर प्रह्लाद तथा दैत्यकुमारोंके साथ सदाके लिये इस तीर्थमें बस गये। उनका यह वास आज भी वैसे ही है और आगे भी वैसे ही रहेगा। मध्याह्नके बाद आज भी चारों ओर जय-जयके शब्द सुनायी पड़ते हैं।

इस इतिहासकी सुनकर सबको रोमाञ्च हो आया।

सभीको भगवान् श्रीनिवासे दर्शन दिया। जाम्बवतीके मधुर भावके अनुरूप भगवान्ने हजारों कामदेवके समान अपना कमनीय रूप दिखाया। देखते ही जाम्बवतीका प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो गया, रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे प्रेमके अक्षुब्ध लगे। किसी प्रकार टूटे-फूटे शब्दोंमें जाम्बवतीने कहा—‘नाथ! श्रीचरणोंमें रख लो।’

अबतक भगवान्ने अपने सौन्दर्य-सुधाका ही पान कराया था, अब उन्होंने अपने वचन-सुधाका पान करते हुए कहा—‘जाम्बवति! मैं तुम्हें वैकुण्ठेश-मन्त्र बताता हूँ। तुम यहीं रहकर इसका जप करो।’ जाम्बवतीको लगा कि उसके कानोंमें अमृत डहल दिया गया हो। वह आनन्दसे बेसुध होने लगी। उसे न अपना पता था, न परायेका। जन्मकी साधिन लाज कहाँ चली गयी, इसका भी उसे पता न था। आनन्दवेशमें वह नाचने लगी। जाम्बवतीके उस नृत्यसे सारा ब्रह्माण्ड रस-विभोर हो उठा। स्वर्गसे अप्सराएँ उतर आयीं और जाम्बवतीके अगल-भागलमें नाचने लगीं। देवताओंने दुंदुभी बजायी और आकाशसे पुष्पकी वृष्टि की।

इसी प्रकार भगवान्के प्रेममें आह्लादित होते हुए जाम्बवतीकी तीर्थयात्रा चलती रही। गुरु जैगोषधने भगवान् वैकुण्ठेशका साहाय्य उसे सुनाया। स्वामिपुष्करिणी तीर्थ, जहाँ श्रीनिवास सदा विराजमान रहते हैं—का इतिहास बतलाया। जिसे सुनकर वह आनन्दसे भर गयी, श्रीनिवासके प्रति उसका अनुराग बढ़ता ही गया। गुरुद्वारा बताये गये वैकुण्ठारिके सभी तीर्थोंका जाम्बवतीने बड़े ही भावसे सेवन किया। अन्तमें वह ऋषितीर्थ पहुँची। सप्तर्षियोंसे सेवित उस पुण्य-पवित्र ऋषितीर्थमें उसका मन रम गया, वह वहीं रुक गयी। दीर्घ समयतक उसने वहीं तपका अनुष्ठान किया।

हे पक्षिराज! वह कन्या-जाम्बवती मौर कुमावतार-भरण करनेतक वहाँ तपस्यामें अनुरक्त रही। उसका शरीर अत्यन्त पवित्र हो चुका था। अन्तमें उसने मुझे पतिरूपमें प्राप्त करनेको अभिलाषासे योगधारणाद्वारा अपने उस शरीरका परित्याग कर दिया और वह भक्तयज जाम्बवतीके घरमें पुनः उत्पन्न हुई। वहाँ उसका नाम भी जाम्बवती ही पड़ा। भक्तिपरवर्ण जाम्बवती पितृके घरमें धीरे-धीरे बढ़ने लगी, पूर्व-जन्मके सम्पन्न ही इस जन्ममें भी वह एकमात्र हरिनिष्ठ थी। उसके पिता जाम्बवान् भी महान् भक्त थे। उन्होंने अपनी पुत्री जाम्बवतीको पत्नीरूपमें

मुझे समर्पित कर अपनेको धन्य माना।



जाम्बवतीने भगवान् श्रीकृष्णको सदाके लिये अपना पति बना लिया। उसकी भक्ति सफल हो गयी। विश्वके नाथने विश्वके साथ जाम्बवतीसे विवाह किया। सब ओर आनन्द-हो-आनन्द छा गया।

जाम्बवतीके विवाहकी पवित्र कथा बताकर श्रीकृष्णने पक्षिराज गरुडको उन कृपालु भगवान् श्रीनिवासकी भक्तिका विस्तारसे साहाय्य बतलाया और कहा कि हे गरुडजी! भगवान्को कभी भूलना नहीं चाहिये, निरन्तर उनके हरि आदि मङ्गलमग्न नामोंका उच्चारण करते रहना चाहिये—

हरि हरि प्रवदेत् सर्वदैव । (२९।१४)

कल्याणकामी मनुष्यको चाहिये कि वह अपने शास्त्रविहित कर्मोंको करते हुए प्रत्येक समय वासुदेव हरिका स्मरण करता रहे—

पुतिर्षदा क्रियते कर्मणां च  
सम्यक् स्मरेद्वासुदेवं हरिं च॥

(२९।१८)

ऐसा करनेसे नारायण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, इसलिये हे गरुडजी! भगवान् हरिको प्रिय लगनेवाले कार्योंमें ही सदा व्यक्तिको अनुराग रखना चाहिये—

हरिप्रीतिकरे धर्मे प्रीतिपुक्तो भवेत् सदा॥

(२९।२०)

(अध्याय २३-२९)

॥ गरुडपुराणान्तर्गत ब्रह्मकाण्ड सम्पूर्ण ॥

॥ गरुडपुराण सम्पूर्ण ॥

## गरुडपुराण—सिंहावलोकन

[ विशेषाङ्क पृष्ठ-संख्या १६ से आगे ]

### मृत्युका स्वरूप

हे पक्षीन्द्र! अब मृत्युके स्वरूपको सुनो। मृत्यु ही काल है। मृत्युका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। मृत्यु आनेके कुछ समय-पूर्व प्रायः प्राणीके शरीरमें कोई रोग उत्पन्न हो जाता है, इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं, प्राणीको एक साथ करोड़ों बिचबुओंके काटनेका अनुभव हो तो उससे मृत्युजनित पीड़ाका अनुमान करना चाहिये। उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जड़ता आ जाती है। तदनन्तर समीप आकर खड़े यमदूत उसके प्राणीको बलात् अपनी ओर खींचना शुरू कर देते हैं। उस समय प्राण कण्ठमें आ जाते हैं। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनेवाला वह अद्भुत-परिमाणका पुरुष अपने घरको देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा परलोक ले जाया जाता है।

परंतु भक्तजनों एवं भोगमें अनासक्त जनोंकी अयोग्यिका निरोध करनेवाला वायु ऊर्ध्वगतिवाला हो जाता है। जो लोग झूठ नहीं बोलते हैं, जो प्रीतिका भेदन नहीं करते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, जो काम, ईर्ष्या और द्वेषके कारण स्वधर्मका परित्याग नहीं करते, सदाचारी और सौम्य होते हैं, वे सब निश्चित ही सुखपूर्वक मरते हैं।

जो झूठी गवाही करनेवाले, असत्यभाषी, विश्वासघाती और वेदनिन्दक हैं, वे मूर्च्छारूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। उनको ले जानेके लिये साठी एवं मुद्गरसे युक्त, दुर्गन्धसे भरपूर एवं भयभीत करनेवाले दुरात्मा यमदूत आते हैं। उसके बाद वह प्राणी वेदनासे संतप्त होकर अपने शरीरका परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबके लिये अस्पृश्य एवं घृणायोग्य हो जाता है। हे गरुड! मैंने यथाप्रसंग मृत्युका स्वरूप सुना दिया।

भगवान् गरुडसे कहते हैं कि पूर्वजन्ममें किये गये विचित्र प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ प्राणी इस जगत्में विभिन्न योनियोंमें भ्रमण करता है। देव, असुर और यक्ष आदि योनियाँ प्राणीके लिये सुखप्रदायिनी हैं। मनुष्य, पशु-

पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दुःखदायिनी हैं। इन योनियोंमें कर्मफलके तारतम्यसे प्राणीका जन्म होता है। इसी प्रसंगमें भगवान्ने कर्मविपाकका वर्णन करते हुए प्राणीके विभिन्न पापोंके परिणामस्वरूप जिन-जिन योनियोंमें जन्म होता है, उसका विस्तृत वर्णन किया है।

### नरकोंका वर्णन

गरुडके विज्ञप्ता करनेपर भगवान्ने मुख्य-मुख्य नरकोंका वर्णन किया, जिसमें 'रीरव' नामक नरकको प्रधान बताया। झूठी गवाही देनेवाला और झूठ बोलनेवाला व्यक्ति रीरव नरकमें जाता है। इसके साथ ही महारीरव, अतिशीत, निकृन्तान्, अप्रतिष्ठ, असिपत्रवन, तप्तकुम्भ आदि प्रधान नरकोंका भी वर्णन किया। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से नरकोंका वर्णन किया।

ये सभी नरक घमके राज्यमें स्थित हैं। जो मनुष्य गौकी हत्या, घूणहत्या और आग लगानेका दुष्कर्म करता है, वह 'रीध' नामक नरकमें गिरता है। जो ब्रह्मघाती, मद्यपी तथा सोनेकी चोरी करनेवाला है, वह 'सूकर' नामके नरकमें गिरता है। क्षत्रिय और वैश्यकी हत्या करनेवाला 'हाल' नामक नरकमें जाता है।

इन नरकोंके लोकोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों नरक हैं। जिनमें पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता है, बिदीर्ण होता है, चूर्ण किया जाता है, गोला होता है, क्वाथ बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे प्रताड़ित किया जाता है। ऐसे नरकोंमें एक दिन सौ वर्षके समान होता है। इन सभी नरकोंमें भोग भोगनेके बाद पापी तिर्यक्-योनियोंमें जाता है। तत्पश्चात् उसे कृमि, कीट, पतंग, स्यावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती है। तदनन्तर मनुष्य जंगली हाथी आदिकी योनियोंमें जाकर गौकी योनियोंमें पहुँचता है। गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर-मृग, शरभ और चमरो—ये छः योनियाँ एक खुरवाली होती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी हैं, जिनमें जीवात्माको कष्ट भोगना पड़ता है। उन सभी योनियोंको पारकर प्राणी मनुष्य-योनियोंमें आता है और कुबड़ा,

कुत्सित, वामन, चाण्डाल तथा पुलकस आदि नर-योनिमें जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित होकर जीव बार-बार गर्भमें जाते हैं और मृत्युको प्राप्त करते हैं। उन सभी पापोंके समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको शुद्ध, वैश्य तथा क्षत्रिय आदिकी आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण, देव और इन्द्रत्वके पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड! यमद्वारा निर्दिष्ट योनिमें पुण्य गति प्राप्त करनेमें जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे दिव्य देह धारण करके विमानमें आरोहण कर स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्यकी समाप्तिके पश्चात् जब वे वहाँसे पुनः पृथ्वीपर आते हैं तो वे राजा अथवा महारत्नाओंके घरमें जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं तथा समस्त भोगोंको प्राप्त करके पुनः स्वर्गको प्राप्त करते हैं, अन्यथा पहलेके समान आरोहिणी-योनिमें जन्म लेकर दुःख भोगते हैं।

चौरासी लाख योनिवाँ हैं। उद्भिन्ज (पृथ्वीमें अंकुरित होनेवाली वनस्पतियाँ), स्वेदज (पसीनेसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डज (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-में यह सम्पूर्ण सृष्टि विभक्त है।

**मृत्युके पूर्व तथा बादमें किये जानेवाले कर्म**  
श्रीकृष्ण कहते हैं—हे गरुड! जन्ममें या अनजानमें मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोंसे शुद्धिके लिये उन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिये। शास्त्रोंमें दशविध स्नान तथा कुच्छ आदि चान्द्रायण व्रत अथवा गोदान आदिकी प्रक्रिया प्रायश्चित्तरूपमें बतायी गयी है। यदि मनुष्य उनमें अक्षमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा या चौथाई कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। तत्पश्चात् दस महादान—गौ, भूमि, तिल, हिरण्य (स्वर्ण), धुव, वस्त्र, धान्य, गुड़, रजत और लवण—इनका दान करना चाहिये। यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं, वे अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मवाद आदि तथा रक्त आदिसे परिव्याप्त हैं। अतः उस मार्गमें स्थित वैतरणी नदीको पार करनेके लिये वैतरणी-गौका दान करना चाहिये। जो गौ सर्वाङ्गमें काली हो, जिसके स्तन भी काले हों उसे वैतरणी-गौ माना गया है।

तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि

और गौ—ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामें एक-से-एक बढ़कर हैं। इन आठ दानोंको महादान कहा जाता है। इनका दान उत्तम प्रकृतिकाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये—

तिला लीहं हिरण्यं च कर्पासं लवणं तथा।

सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एवैकं पावनं स्मृतम्॥

एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये।

(२।४।७-८)

अब पददानका वर्णन सुनो। छत्र, जूता, वस्त्र, अंगूठी, कमण्डलु, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ—ये आठ प्रकारके पद हैं—

छत्रोपासकवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः।

आसनं भाजनं भोज्यं पदं चाहविधं स्मृतम्॥

(२।४।९)

तिलपात्र, घृतपात्र, शय्या, उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो, वह सब देना चाहिये। अब, रथ, पैर, भोजन, वस्त्रका दान ब्राह्मणोंको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देने चाहिये।

हे पक्षिराज! इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायश्चित्त कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है, वैतरणी-गौ एवं अष्टदान कर चुका है, जो तिलसे पूर्ण पात्र, घीसे भरा हुआ पात्र, शय्यादान और विधिवत् पददान करता है वह नरकरूपी गर्भमें नहीं आता है। अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता—

प्रायश्चित्तं कृतं येन दश दानान्यपि क्षिती॥

दानं गोवैतरणवाद्य दानान्यष्टौ तथापि वा।

तिलपात्रं सर्पिःपात्रं शय्यादानं तथैव च॥

पददानं च विधिवन्नासी निरयगर्भगः।

(२।४।१२-१४)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण-दान करनेकी इच्छा रखते हैं; क्योंकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इस पृथ्वीपर मरणासन प्राणीके प्राण जब न निकल रहे हों तो उस समय लवण-रसका दान उसके हाथसे दिलवाना चाहिये; क्योंकि यह दान उसके लिये स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ दान देता है परलोकमें वह सब उसे प्राप्त होता है, यहाँ उसके आगे रखा हुआ मिलता है। हे पक्षिन्! जिसने यथाविधि



अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, वही पुरुष है। वही अपने पापोंको भस्मसात् करके स्वर्गलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है।

हे खगराज! गौका दूध अमृत है। इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त करता है। उपर्युक्त तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर प्राणी गन्धर्वलोकमें निवास करता है। यमलोकका मार्ग अत्यधिक भीषण तापसे युक्त है, अतः छत्रदान करना चाहिये। छत्रदान करनेसे मार्गमें सुख प्रदान करनेवाली छाया प्राप्ता होती है। जो मनुष्य इस जन्ममें पादुकाओंका दान देता है, वह 'अमिषप्रबन्ध' के मार्गको छोड़कर सफ़ा होकर सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमें सुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सुखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दूत महाक्रोधी और महाभयंकर हैं। काले एवं पीले वर्णवाले उन दूतोंको देखनेमात्रसे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषण आदिका दान करनेसे वे यमदूत प्राणीको कष्ट नहीं देते। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोंका विनाश कर देता है। मनुष्य घृतपात्रका दान करनेसे रुद्रलोकको प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनोंमें युक्त सव्यका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें नाना प्रकारकी अप्सराओंसे युक्त विमानमें चढ़कर साठ हजार वर्षतक अमरावतीमें ब्रीह्या करके इन्द्रलोकके भोग भोगनेके बाद पुनः वहाँसे गिरकर इस पृथ्वीलोकमें आकर राजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोंसे सजे-धजे, दोषरहित जवान घोड़ेका दान ब्राह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश! दानमें दिये गये इस घोड़ेके शरीरमें जितने रोयें होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गके लोकोंका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त चार घोड़ोंवाले रथका दान दे करके राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति सुपात्र ब्राह्मणको दुग्धवती, नवीन मेघके समान वर्णवाली, सुन्दर जघन-प्रदेशसे युक्त और मनमोहक तिलकसे समन्वित

भैरवका दान देता है तो वह परलोकमें आकर अभ्युदयको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तालपत्रसे बने हुए पंखेका दान करनेसे मनुष्यको परलोकगमनके मार्गमें वायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र-दान करनेसे व्यक्ति परलोकमें शोभासम्पन्न-शरीर और उस लोकके वैभवसे सम्पन्न हो जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोंसे युक्त घरका दान देता है, उसके वंशका कभी विनाश नहीं होता, वह स्वयं स्वर्गका सुख प्राप्त करता है। हे खगेश! इन बताये गये सभी प्रकारके दानोंमें प्राणीको श्रद्धा तथा अश्रद्धासे आयी हुई दानकी अधिकता और कमीके कारण उसके फलमें श्रेष्ठता और लघुता आती है।

यदि मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किसी पवित्र तीर्थमें ले जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थमें हो जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है और यदि प्राणी मार्गके बीच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता ही है, साथ ही उसको तीर्थतक ले जानेवाले लोग पग-पगपर यज्ञ करनेके समान फल प्राप्त करते हैं—

आसन्नमरणो मर्त्यश्चेत् तीर्थं प्रतिनीयते।

तीर्थप्राप्ती भवेन्मुक्तिर्निश्चिते यदि मार्गगः।

पदे पदे क्रतुसमं भवेत् तस्य न संशयः॥

(२।४।३८)

हे द्विज! मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष्य विधिबद्ध उपवास करता है, वह भी मृत्युके पश्चात् पुनः इस संसारमें नहीं लौटता।

हे खगेश! मृत्युके निकट होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यके क्या कर्तव्य है? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मर हुआ जान करके उसके पुत्रादि परिजनोंको चाहिये कि वे सभी स्नान करके शवको सुष्ठु जलसे स्नान करके नवीन वस्त्रसे आच्छादित करें। तदनन्तर उसके शरीरमें चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंका अनुलेप भी करें।

दाह-संस्कारके अन्तर्गत छः पिण्ड देनेकी विधि है। पहला पिण्ड मृत्यु-स्थानपर, दूसरा द्वारपर, तीसरा चौराहेपर,

चौथा विश्रामस्थान, पाँचवाँ काष्ठचयन (चिता) और छठा अस्थि-संचयनके समय—ये छः पिण्डदानके स्थान हैं। सभी बन्धु-बान्धवोंको श्मशानभूमिमें शवको ले जाना चाहिये तथा वहाँ शवको दक्षिण दिशाकी ओर सिर करके स्थापित करना चाहिये। दाहकी क्रियाके लिये पुत्रादि परिजनोंको स्वयं तृण, काष्ठ, तिल और मृत् आदि ले जाना चाहिये। शूद्रोंके द्वारा श्मशानमें पहुँचायी गयी वस्तुओंसे वहाँ किया गया सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाता है। यहाँपर सभी कर्म अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। शवदाहके पूर्व पाँच पिण्डदान करनेसे शवमें आहुति (अग्निदाह)—की योग्यता आ जाती है। किसी कारणवश उपर्युक्त पिण्ड नहीं दिये जानेपर शव राक्षसोंके भक्षण-योग्य हो जाता है। दाहकार्यमें घण्टालके घरकी अग्नि, धिताकी अग्नि और पापीके घरकी अग्निका प्रयोग नहीं करना चाहिये। स्वच्छ भूमिपर अग्नि स्थापित कर ब्रह्मदेवकी विधिवत् पूजा करके शवको धितामें जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शवके शरीरका आधा भाग धितामें जल जाय तो उस समय कर्ता तिलमिश्रित मृत्की आहुति धितामें जल रहे शवके ऊपर छोड़े। उसके बाद भावविह्वल होकर उस आत्मीय जनके लिये रोना चाहिये। इस कृत्यको करनेसे उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाहक्रिया करनेके पश्चात् अस्थि-संचयन क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर किसी जलाशयपर जाकर सभी परिजनोंको सवैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये तथा दक्षिणाभिमुख होकर मृत प्राणीके लिये तिलयुक्त जलाञ्जलि देनी चाहिये।

शवदाह तथा तिलाञ्जलिके बाद मनुष्यको अनुपात नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस समय रोते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा आँख और मुँहसे गिराये हुए आँसू और कफका मृतकको पान करना पड़ता है। इसके बाद जीवनकी क्षणभंगुरताकी चर्चा करते हुए घरकी ओर प्रस्थान करे। जिसमें स्त्रियाँ आगे-आगे तथा पुरुष उनके पीछे-पीछे चलें। घरके द्वारपर पहुँचनेपर नीमकी पत्तियोंको दौतसे काटकर आचमन करे, बादमें घरमें प्रवेश करे।

पुत्र-पौत्रादि तथा सगोत्री परिवन दस रात्रियोंका अशौच मनावें। इस अशौच-कालमें ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। पृथ्वीपर ही सोये। अपना आसन अलग

रखना चाहिये तथा किसीको स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस कालमें दान, अध्ययन एवं भोग-विलास आदि कर्मोंसे दूर रहना चाहिये। अङ्गमर्दन और सिर धोना भी छोड़ देवे। अशौचको अवधिमें मिट्टीके बने पात्र या पत्तलमें भोजन करना चाहिये। इसके बाद दशगात्रके अन्तर्गत दस पिण्डदान आदिकी प्रक्रिया बतायी गयी है। दाह-संस्कारके समयके छः पिण्ड तथा दशगात्रके दस पिण्डको मलिनषोडशी कहा गया है, जो मृत-दिनसे दस दिनमें पूर्ण होती है। दशगात्रकी प्रक्रियामें यह बताया गया है कि नौ दिनमें मृत व्यक्तिका शरीर अपने अङ्गोंसे युक्त हो जाता है। दसवें पिण्डदानसे उस शरीरमें पूर्णता, तृप्ति और भूख-प्यासका उदय होता है।

इसके बाद पतिके मरनेपर स्त्रीके कर्तव्यकी बात बतायी गयी है, जिसमें धितापर पतिका अनुगमन करनेपर सतीधर्मको सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। पतिकी मृत्युके समय जो स्त्रियाँ गर्भरहित हैं और जिनके छोटे बच्चे नहीं हैं, उनको सतीधर्मका फलन करना चाहिये।

### अपमृत्युका निवारण

यदि कोई प्राणी भूखसे पीड़ित होकर मर जाता है, हिंसक प्राणियोंके द्वारा मारा जाता है, गलेमें पर्वसीका फंदा लगातेसे जिसकी मृत्यु हो जाती है, जो विष तथा अग्नि आदिसे मृत्युको प्राप्त होता है, जो आत्मघाती है, जो गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किये गये बन्धन अथवा जलमें डूबनेसे मर जाते हैं, जो सर्प तथा जंगली हिंसक पशु, वृक्षपात, विद्युत्पात, लोहेसे, पर्वतपरसे गिरनेसे, दीवारके गिरनेसे, खाट या मध्य कक्षमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो जस्वाघातसे, विषैले कुत्तेके मुखको स्पर्श करनेसे तथा सास्त्रविधिसे रहित जो मृत्यु हो जाती है, उसे दुर्भरण समझना चाहिये। इस स्थितिमें नारायणबलि किये जानेपर ही औषधदैहिक कर्मकी योग्यता आती है। अपमृत्यु होनेपर ऐसे प्राणीका शुद्धीकरण इसी नारायणबलिसे सम्भव है, अन्यथा नहीं। नारायणबलि एकादशहके दिन करना चाहिये। नारायणबलिकी विधिका यहाँ संक्षेपमें वर्णन किया गया है। नारायणबलिका वर्णन करते हुए कहा गया है कि नारायणबलिसे मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्धार हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

प्रवासमें मृत्यु होनेपर या सर्पदंश आदिसे मृत्यु होनेपर

पुतल-दाहकी विधिका निरूपण किया गया है। इसके अनन्तर रजस्वला और सूतिका स्त्रीके मरनेपर कौन-सा विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, यह भी बताया गया है।

### पञ्चकर्म में मृत्यु-प्राप्तके कृत्य

पञ्चकर्म में मृत्यु होनेपर दाह-संस्कारकी विधि भगवान्‌के द्वारा गरुडजीको बताया गयी है।

मासके प्रारम्भमें धनिष्ठा नक्षत्रके अर्ध-भागसे लेकर रेवती नक्षत्रतकका समय पञ्चककाल कहलाता है। इसको सदैव दोषपूर्ण और अशुभ माना गया है। इसमें मरे हुए व्यक्तिका दाह-संस्कार करना उचित नहीं है। यह काल सभी प्राणियोंमें दुःख उत्पन्न करनेवाला है। पञ्चककालके समाप्त होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने चाहिये, अन्यथा पुत्र एवं पारिवारिक जनैकिकी लिये यह कष्टप्रद होता है। इन नक्षत्रोंमें मृतकका दाह-संस्कार करनेपर धर्म किसी-न-किसी प्रकारकी हानि होती है। पञ्चकमें दाह-संस्कार करना हो तो कुशके मानवाकार धार पुतले बनकर नक्षत्रमन्त्रोंसे उनको अभिमन्त्रित करके शवपर रख दे। तदनन्तर उन्हीं पुतलोंके साथ मृतकका दाह-संस्कार करना चाहिये। अशौचके समाप्त हो जानेपर मृतकके पुत्रोंद्वारा पञ्चक-शान्ति भी करानी चाहिये। मृतकके पुत्रोंकी प्राणीके कल्याण-हेतु तिल, गौ, स्वर्ण और धीका दान देना चाहिये। समस्त विघ्नोंका विनाश करनेके लिये ब्राह्मणोंकी भोजन, पादुका, छत्र, स्वर्णमुद्रा और वस्त्र देना चाहिये। यह दान मृतकके समस्त पापोंका विनाशक है।

मलिनषोडशीके बाद मध्यमषोडशीकी विधिका वर्णन किया गया है। विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्यन्त एकादश श्राद्ध तथा पौच देवश्राद्ध—इस प्रकार षोडश श्राद्ध किये जाते हैं। इन्हींका नाम मध्यमषोडशी है। यह कृत्य एकादशहको किया जाता है। इसी दिन वहीँपर वृषोत्सर्ग भी करना चाहिये। जिस जीवका म्पारहवें दिन वृषोत्सर्ग नहीं होता है, सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती। अतः स्वजनकी मृत्युके पश्चात् निश्चित ही वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चार बलिघोंसे युक्त विधानपूर्वक अलंकृत वृष जिसके निमित्त छोड़ा जाता है, उसको प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशहके दिन यथाविधान सांड उत्सर्ग करनेके लिये उपलब्ध नहीं है तो

विष्टान् ब्राह्मणको कुश या चावलके चूर्णसे ही सांडका निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमें प्राणोंको जो भी पदार्थ प्रिय रहा हो उसका भी दान इसी एकादशह श्राद्धके दिन करना उचित है। इसी दिन मरे हुए स्वजनको उद्देश्य बनाकर शय्य, गौ आदिका दान भी करना चाहिये। इतना ही नहीं, उस प्रेतकी क्षुधा-शान्तिके लिये बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये।

इसके बाद भगवान्‌ तृतीयषोडशी (उत्तमषोडशी) श्राद्धका वर्णन करते हैं। प्रत्येक बारह मासके बारह पिण्ड, 'उत्तमसिक (अष्ट), त्रिपाक्षिक, 'उत्तपाण्मासिक एवं 'ऊनाब्दिक—इन्हें मत्तभेदसे तृतीय अथवा उत्तमषोडशी कहा जाता है।

गरुडके पृष्ठनेपर भगवान्‌ने कहा—हे खगराज! जब मनुष्य मरनेके बाद एक वर्षकी महापथकी यात्रा करता है तो वह पुत्र-पौत्रादिके द्वारा सपिण्डीकरण हो जानेपर पितृलोकमें चला जाता है। इसलिये पुत्रको पिताका सपिण्डीकरण अवश्य करना चाहिये। वर्षके अन्तमें पितृ-पिण्डीके साथ प्रेत-पिण्डका सम्मिलन हो जानेके बाद वह प्रेत परम गतिकी प्राप्त करता है।

गृहस्थ पिताकी मृत्यु होनेपर यदि सपिण्डीकरण श्राद्ध नहीं हुआ है तो किसीका विवाह-संस्कार नहीं हो सकता। जबतक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता तबतक भिक्षुक उस घरकी भिक्षा स्वीकार नहीं करता। अपने गोश्रममें अशौच तबतक रहता है जबतक पिण्डका मेलन नहीं हो जाता। पिण्डमेलन होनेपर 'प्रेत' शब्द निवृत्त हो जाता है। कुलधर्म अनन्त हैं, पुरुषकी आयु नहप्राय है और शरीर नाशवान्‌ है। इस कारण द्वादशाह ही इस कर्मके लिये प्रशस्त समय माना गया है। अतः क्रिया करनेवाले पुत्रको द्वादशाहको ही सपिण्डीकरण कर देना चाहिये। तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने सपिण्डीकरणके लिये द्वादशाह, त्रिपक्ष, छठा मास अथवा वार्षिक विधिकी कहा है। सपिण्डीकरणके पूर्व उत्तमषोडशी होनी आवश्यक है; क्योंकि बारहवें दिन ही प्रायः सपिण्डीकरण करना लोकमें प्रसिद्ध है, इसलिये उत्तमषोडशी श्राद्ध एकादशह या द्वादशाहकी कर देना चाहिये। सपिण्डीकरण करनेके बाद भी बारह महीनेतक षोडश श्राद्ध एकोद्दिष्ट-विधिसे नियमानुसार करना चाहिये।

हे खगराज! मृतकका दाह-संस्कार हो जानेके पश्चात्

दशगत्रके पिण्डदानसे पुनः शरीर उत्पन्न होता है। दसवें पिण्डसे शरीर बन जानेपर प्राणीको अत्यधिक भूख लगती है। एकादशाह तथा द्वादशाह—इन दो दिनोंमें प्रेत भोजन करता है। इन दोनों दिन जो कुछ भी प्राणीके निमित्त दिया जाता है, उसे 'प्रेत' शब्दके द्वारा दिया जाना चाहिये; क्योंकि वह मृतकके लिये आनन्ददायक होता है। सपिण्डीकरण कर देनेके बाद जो भी दान किया जाय वह नाम-गोत्रका उच्चारण करके पितृ-निमित्त करना चाहिये। भोजन तथा घटादिका दान, पददान, शय्यादान एवं अन्य जो भी दान हैं, उन्हें मृत प्राणीके निमित्त एकको ही उद्देश्य करके देना चाहिये। पिण्डदानके पश्चात् यथाशक्ति उपयोगी समस्त सामग्री दानमें दे। ऐसा होनेपर वह दिव्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपूर्वक यमलोकको चला जाता है।

प्रेतके द्वादशाह-संस्कारके अवसरपर जलपूरित कुम्भोंका दान विशेष महत्व रखता है। यजमान उस दिन जलसे भरे बारह घटोंका संकल्प करके दान करे। उसी दिन वह पक्षात्र और फलसे परिपूर्ण एक वर्धनी (विशेष प्रकारका जलपात्र) भगवान् विष्णुके लिये संकल्प करके सुयोग्य एवं सच्चरित्र ब्राह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर वह एक वर्धनी, पक्षात्र तथा फल धर्मराजको समर्पित करे। उससे संतुष्ट होकर धर्मराज उस प्रेतको मोक्ष प्रदान करते हैं। उसी समय एक वर्धनी चित्रगुप्तके लिये दानमें देना चाहिये। उसके पुण्यसे प्रेत वहाँ पहुँचकर सुखी रहता है।

दानमें एक शय्या एक ही ब्राह्मणको देना चाहिये। एक गी, एक गृह, एक शय्या और एक स्त्रीका दान बहुतोंके लिये नहीं होता। विभाजित करके दिये गये ये दान दातृको पापकी कोटिमें गिरा देते हैं। आत्मा ही पुत्रका नाम है। वही पुत्र यमलोकमें पिताका रक्षक है। चोर नरकसे वही पिताका उद्धार करता है। इसलिये उसे पुत्र कहा जाता है। अतः पुत्रको पिताके लिये आजीवन श्राद्ध करना चाहिये, तभी वह आतिवाहिक प्रेतरूप पिता पुत्रद्वारा दिये गये उन भोगोंका सुख प्राप्त करता है।

शय्यादानकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—यह जीवन

अनित्य है। जबतक यह जीवन है तभीतक अपने बन्धु-बान्धव हैं। मृत्यु हो जानेपर 'यह मर गया है' ऐसा जानकर क्षणभरमें ही अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। 'आत्मा ही अपना बन्धु है।' ऐसा बारम्बार विचारकर अपने जीते ही हितका कार्य कर लेना चाहिये।

इसके अनन्तर गुरुद्वेने प्रेतोंके सम्बन्धमें इस प्रकार विज्ञासा की—'भगवन्! प्रेतके अनेक रूप किस प्रकार होते हैं? वे कौन-कौनसे कर्मके द्वारा महाप्रेत और पिशाच बन जाते हैं? और किस शुभ दानसे प्राणीको प्रेतयोनि छूट जाता है?' इन सभका उत्तर देते हुए भगवान्ने कहा—जो पूर्वजन्मसंघित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममें अनुरक्त रहते हैं, वे मृत्युके पश्चात् प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं तथा जो वंशपरम्परागत धर्मपथका परिपालन करके दूसरे धर्मको स्वीकार करता है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन है वह भी निःसंदेह प्रेत ही होता है। इसके साथ और भी कई कारण विस्तारसे बताये गये हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास<sup>१</sup> जो पितामह भीष्म और युधिष्ठिरके संवादमें कहा गया था। प्रेतके लक्षण बताते हुए बभ्रुवाहन नामके एक राजाकी कथा सुनायी। इस राजाकी किसी प्रेतका साक्षत्कार हुआ तथा उससे वार्तालाप भी हुआ। राजासे प्रेतने बताया कि मृत्युपरान्त उसके और्ध्वदैहिक संस्कार तथा श्राद्ध आदि कर्म न होनेके कारण उसे प्रेतयोनि प्राप्त हुई। उसने इस योनिसे मुक्त करानेके लिये राजासे प्रार्थना की। राजाके पूछनेपर उस प्रेतने प्रेतयोनि मिलनेके कारण तथा इस योनिसे मुक्तिका उपाय भी बताया। नगरमें पहुँचकर राजाने उस प्रेतके द्वारा कही गयी सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रियाको विधि-विधानसे सम्पन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धनविमुक्त होकर स्वर्गको चला गया।<sup>२</sup>

जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरको प्राप्त करके यमलोकमें नाना प्रकारके कष्ट भोगता है। यमलोकके मार्गमें सोलह पुर पड़ते हैं, जिसका विस्तृत वर्णन भगवान् श्रीहरिने किया है।<sup>३</sup> संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार मार्ग हैं। जो उचित प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गसे

१-पृष्ठ-संख्या ४३७ पर देखिये।

२-स्थानाभावके कारण यह कथा पूरी नहीं दी गयी। विस्तृत कथा पृष्ठ-संख्या ४१० में देखनी चाहिये।

३-यह कथा पृष्ठ-संख्या ४२७ पर देखनी चाहिये।



चलते हैं। जो अर्थ अर्थात् धन-धान्यका दान करनेवाले प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जो प्राणी अभिलषित याचककी इच्छाको संतुष्ट करनेवाले हैं, वे कन्धोंपर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणी मोक्षकी आकांक्षा रखते हैं, वे हंसयुक्त विमानसे परलोकको जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो प्राणी धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयसे हीन हैं, वह पैदल ही काँटों तथा पत्थरोंके बीचसे कष्ट झेलता हुआ असिपत्रवनमें जाता है।

इसके पश्चात् श्रीकृष्णने एक पुण्यशाली इतिहासका वर्णन किया, जो महर्षि वसिष्ठने राजा वीरबाहनसे कहा था। इसके अन्तर्गत महर्षि वसिष्ठने धर्मवत्स नामक एक ब्राह्मणकी कथा सुनायी तथा उसके पूर्वजन्मका एक शिक्षाप्रद कथानक भी प्रस्तुत किया।<sup>१</sup> जिसमें लोमश ऋषि और वैश्यका संवाद है। ऋषिने कहा—हे वैश्यवर! यह मन अत्यन्त बलवान् है और नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है, तथापि जिस प्रकार पीलवान मतवाले हाथीको भी वनमें कर लेते हैं वैसे ही सत्संगतिसे, आलस्यरहित होकर साधन करनेसे, तीव्र भक्तियोगसे तथा सद्बिचारके द्वारा अपने मनको बशमें कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें जरूरके पूर्वजन्मके जीवनवृत्तसे जुड़ी हुई कथा भी ऋषिने सुनयी।<sup>२</sup> जिसका आशय यह था कि सत्संगति तथा भगवद्भक्तिके विशुद्ध निर्मल और शान्त स्वभाववाला मन सुखी हो जाता है। साधुसंगति होनेपर अनेक जन्मोंमें किया हुआ पाप शोध हो उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जिस प्रकार सत्कालके आनेपर वर्षा समाप्त हो जाती है।

तदनन्तर श्रीकृष्णने संतप्तक नामक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथा सुनायी, जिसमें सत्संगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतों तथा ब्राह्मणका उद्धार हो गया।

### श्राद्ध करनेके अधिकारी

गरुडके पूछनेपर और्ध्वदैहिक क्रियाके अधिकारीका वर्णन भगवान्ने प्रस्तुत किया। मृत प्राणीका और्ध्वदैहिक कार्य पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भाईकी संतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते हैं। इन सभीके अभावमें समानोदक संतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनों कुलों (मातृकुल-पितृकुल)-के पुरुष समाप्त हो गये

हों तो स्त्रियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। जो लोग अपने सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा दिये गये श्राद्धसे संतुष्ट हो जाते हैं, वे श्राद्धकर्ताको पुत्र, स्त्री और धन आदिके द्वारा तृप्त करते हैं।

### जीवित-श्राद्धका विधान

गरुडके यह पूछनेपर कि हे देव! यदि उपर्युक्त अधिकारियोंमेंसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

भगवान्ने कहा—यदि कोई अधिकारी व्यक्ति न हो तो ऐसी स्थितिमें मनुष्यको स्वयं अपने जीवनकालमें ही जीवित-श्राद्ध करना चाहिये। जीवित-श्राद्धकी विधि पृष्ठ ४०८ में प्रस्तुत की गयी है। गरुडके जिज्ञासा करनेपर भगवान्ने कहा—श्राद्धके द्वारा प्रेतकी जिस प्रकार तृप्ति होती है उसे सुनो—

मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता ही जाता है तो श्राद्धान् अमृत होकर उसे प्राप्त हो जाता है। वही अन्न गन्धर्वयोनिमें भोगरूपसे, पशुयोनिमें तृणके रूपमें प्राप्त होता है। वही श्राद्धान् नागयोनिमें वायुरूपसे, पक्षी होनेपर फलरूपसे और राक्षसयोनिमें आमिषरूपसे बन जाता है। वही श्राद्धान् दानवकी योनिके लिये मांस, प्रेतके लिये रक्त, मनुष्यके लिये अन्न-पानादि, बाल-योनिके लिये भोगरस हो जाता है। पितर जिन योनियोंमें जिस आहारवाले होते हैं, श्राद्धके द्वारा उन्हें वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है।

यदि श्राद्धकर्ता श्राद्धमें एक ही ब्राह्मण आमन्त्रित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, कामपार्श्वमें पितामह, दक्षिणपार्श्वमें प्रपितामह और पूरुषभागमें पिण्डभक्षक पितर रहते हैं। श्राद्धकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। नरक भोगनेवाले भूख-प्याससे पीड़ित पितृजन अपने पूर्वजन्ममें किये गये पापका पश्चात्ताप करते हुए अपने पुत्र-पौत्रोंसे मधुमिश्रित पायसकी अभिलाषा करते हैं; अतः विधिपूर्वक पायसके द्वारा उन पितृजनोंकी तृप्त करना चाहिये।

गरुडके इस प्रश्नके उत्तरमें कि 'मृत्युके बाद प्राणीको तत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है अथवा विलम्बसे

१-यह कथा पृष्ठ-संख्या ३९९ पर देखनी चाहिये।

२-यह कथा पृष्ठ-संख्या ४०२ पर देखनी चाहिये।

उसको दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है?’

**भगवान् ने कहा—**हे गुरुङ! मृत्युके पश्चात् तुरंत और विलम्ब दोनों प्रकारसे दूसरे शरीरमें प्राणी प्रविष्ट होता है।

शरीरके अंदर जो ज्योतिःस्वरूप जीवात्मा विद्यमान रहता है, वह मृत्युके बाद तुरंत ही वायवीय शरीर धारण कर लेता है। भूत-प्रेत और पिशाचोंका शरीर ऐसा ही कहा गया है। पुनर्जन्मके द्वारा दशगात्रके जो पिण्डदान दिये जाते हैं उससे पिण्डज शरीर बनता है। इस पिण्डज शरीरसे वायवीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डज शरीरका साथ नहीं होता है तो वायुज शरीर कष्ट भोगता है।

कोई-कोई जीवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे प्राप्त करता है; क्योंकि मृत्युके बाद स्वकर्मानुसार वह समलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँकि नरक भोगता है। वहाँकी यातनाओंकी झेलनेके पश्चात् उसे पशु-पक्षी, तिर्यक्, कीट-पतंग आदिकी योनि प्राप्त होती है। प्राणी जिस शरीरकी ग्रहण करता है उसी शरीरमें मोहवश ममता हो जाती है। शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगकर वह मुक्त हो जाता है।

गुरुङके यह पूछनेपर कि बहुत-से पापोंको करनेपर भी इस संसारको पारकर प्राणी आपकी कैसे प्राप्त कर सकता है?

**भगवान् ने कहा—**हे पक्षिराज! मनुष्य अपने-अपने कर्ममें रत रहकर संसिद्धि प्राप्त कर लेता है। सत्कर्मसे जिसने अपने कालुष्यको नष्ट कर दिया है वह व्यक्ति जामुदेवके निराला चिन्तनसे विशुद्ध हुई बुद्धिमें युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थिर रहता है। जो शब्दादि विषयोंका परित्याग कर तथा राग-द्वेषको छोड़कर विरक्तसेवी और यथाप्राप्त भोजनसे संतुष्ट रहता है, जिसका मन, वाणी, शरीर संयमित है, जो वैराग्य धारण करके नित्य ध्यान-योगमें तत्पर रहता है, जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह—इन षड्विकारोंका परित्याग करके निर्भय होकर ज्ञान ही जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्योंके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता।

नाभिसे मूर्धापर्यन्त शरीरमें आठ छिद्र हैं। जो सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्मा हैं उनके प्राण शरीरमें ऊर्ध्व छिद्रोंसे निकलकर परलोक जाते हैं। जो अनासक्त भावसे सत्कर्ममें रत रहता है वह मृत्युके बाद सुखी रहता है और सांसारिकताके मायाजालमें नहीं फँसता है। जो विकर्ममें

निरत रहता है, वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता है।

इस संसारमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। इन सभीमें मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। पाँच (ज्ञान) इन्द्रियोंसे युक्त यह योनि प्राणीको बड़े ही पुण्यसे प्राप्त होती है। स्वर्ग और मोक्षके साधनभूत मनुष्ययोनिको प्राप्त करके जो प्राणी उन दोनोंमेंसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता है निश्चित ही उसने अपनेको ठग लिया। सीका मालिक एक हजारकी कामना करता है, एक हजारवाला लाखकी, लक्षाधिपति राज्यकी इच्छा करता है, जो राजा है वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें रखना चाहता है, चक्रवर्ती नरेश देवत्वकी इच्छा करता है, देवत्व-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अभिलाषा देवराज इन्द्रके पदकी होती है, देवराज होनेपर वह ऊर्ध्वगतिकी कामना करता है, फिर भी उसकी तृष्णा ज्ञान नहीं होती। तृष्णासे पराजित व्यक्ति नरकमें जाता है। जो लोग तृष्णासे मुक्त हैं, उन्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

इस संसारमें जो प्राणी आत्माधीन है वह निश्चित ही सुखी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये जो पाँच विषय हैं, इनकी अधीनतामें रहनेवाला निश्चित ही दुःखी रहता है। लीह और काष्ठमें बने पाशसे बँधा व्यक्ति मुक्त हो जाता है किंतु स्त्री, पुत्र-धन आदिके मोहपाशमें बँधा प्राणी कभी मुक्त नहीं हो पाता।

पाप एक मनुष्य करता है किंतु उसके फलका उपभोग बहुत-से लोग करते हैं। भोक्ता तो अलग हो जाता है, पर कर्ता दोषका भागी होता है। सबके देखते-देखते मृत प्राणी सबको छोड़कर चला जाता है। इस मर्त्यलोकमें प्राणी अकेला ही जन्यता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही पाप-पुण्यका भोग करता है। बन्धु-बान्धव मरे हुए स्वर्गके शरीरको पृथ्वीपर लकड़ी और मिट्टीके ढेलैकी भाँति छोड़कर पराङ्मुख हो जाते हैं। धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभव घरमें ही छूट जाता है, मित्र एवं बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं, शरीरको अग्नि ले लेता है, पाप-पुण्य ही उस जीवात्माके साथ जाते हैं। मनुष्यने जो भी शुभ या अशुभकर्म किया है, वह सर्वत्र उसीको भोगता है।

मनुष्य स्वयं जो कुछ भी सत्कर्म करते हैं अथवा दान देते हैं, परलोकमें वे सभी उसके सामने उपस्थित रहते हैं। दानमें जो गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोजन और पददान अपने

हाथसे दिये जाते हैं, वे सभी जिस-जिस योनिमें व्यक्ति जाता है, वहाँ वे दान भी उपस्थित रहते हैं। जबतक प्राणीका शरीर स्वस्थ रहे, तबतक धर्मका सम्यक् पालन करना चाहिये। अस्वस्थ होनेपर दूसरोंकी प्रेरणासे भी वह कुछ नहीं कर पाता। यदि अपने जीवनकालमें व्यक्ति और्ध्वदैहिक कर्म नहीं कर लेता है, अथवा मरनेके बाद अधिकारी पुत्र-पौत्रादिके द्वारा भी वह किया नहीं होती है तो वह वायुरूपमें भूख-प्याससे पीड़ित हो रात-दिन भटकता रहता है। वह कुमि, कीट अथवा पतंगा होकर बार-बार जन्म लेता है और मर जाता है। वह कभी असत्-मार्गमें गर्भमें प्रविष्ट होता है एवं जन्म लेते ही तत्काल विनष्ट हो जाता है।

वैतरणी नदीका वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं कि यमलोकके मार्गमें वैतरणी नामकी महानदी है, यह अगाध दुस्तर और देखनेमात्रसे पापियोंको महाभयभीत करनेवाली है। पृथ्वीपर जिन लोगोंने गौदान किया है, उस दानके प्रभावसे वे उसे पार कर जाते हैं, अन्यथा जिनके द्वारा यह दान नहीं हुआ है, वे उसीमें डूबते रहते हैं। अहंकारवान्, पापी, अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाला, कृतघ्न, गर्भपात करनेवाला तथा अन्य बहुत-से पापोंके कारण जीव वैतरणीमें निवास करता है। कदाचित् भाग्ययोगसे उस नदीको पार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाय तो उससे तरनेका उपाय सुनो—

मकर और कर्ककी संक्रान्तिका पुण्यकाल, व्यतीपात योग, दिनोदय, सूर्य-चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, अमवास्या अथवा अन्य पुण्यकालके आनेपर इससे तरनेके लिये श्रेष्ठतम दान दिया जाता है, यों तो मनमें दान देनेकी ब्रद्धा जब कभी उत्पन्न हो जाय, वही दानका काल है; क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर है।

शरीर अनित्य है और धन भी सदा रहनेवाला नहीं है। मृत्यु सदा समीप है, इसलिये धर्म-संग्रह करना चाहिये।

अनित्यानि शरीराणि विभक्त्यै नैव शाश्वतः॥

नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

(२।४०।२४-२५)

जबतक यह शरीर स्वस्थ और निरोग है, जबतक इस शरीरसे बुढ़ापा दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति किसी भी प्रकारसे क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयु नष्ट नहीं हुई

है, तबतक अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये; क्योंकि घरमें महाभयंकर आगके लग जानेपर कुआँ खोदनेके उद्देश्यसे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है?—

पातक्यस्य शरीरं हि तावद्धर्मं समाचरेत्।

अस्वस्थः प्रेरितश्चान्येन किञ्चित् कर्तुमर्हति॥

(२।१३।२२)

भारतवर्षमें मानवयोनि प्राप्त करके मनुष्य अपने जीवनका उत्सर्ग तीर्थमें करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काशी, अवन्ती और द्वारका—ये सात पुरिषी मोक्ष देनेवाली हैं।

जो मनुष्य मृत्युके समय दो अक्षर 'हरि'का एक बार उच्चारण कर लेता है, वह मरनेपर भानो मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गया है।

राग-द्वेषरूपी मलको दूर करनेमें समर्थ, ज्ञानरूपी जलाशयके सात्पररूपी जलसे युक्त मानसतीर्थमें जिस मनुष्यने स्नान कर लिया है, वह कभी पापोंसे लिप्त नहीं होता। देवता कभी काह और पत्थरकी शिलामें नहीं रहता वह तो प्राणीके भावमें विराजमान रहता है। इसलिये सद्भावसे युक्त भक्तिका सम्यक् आचरण करना चाहिये—

न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां कदाचन।

भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावं समाचरेत्॥

(२।३८।१३)

पण्डितको जीवन और मरण—इन दोकी ही शिक्षा लेनी चाहिये। अतः दान और भोगसे जीवन धारण करे और बुद्धभूमि एवं तीर्थमें मृत्युको प्राप्त करे। इस पृथ्वीपर दान, दम और दया—यही तीन सत्-तत्त्व हैं। दरिद्र तथा सन्धन ब्राह्मणको दान, निर्जन प्रदेशमें स्थित शिवलिंगका पूजन और अनाथ प्राणीका संस्कार करोड़ों यज्ञका फल प्रदान करता है—

दानं साधोदरिद्रस्य शून्यलिङ्गस्य पूजनम्।

अनाथप्रेतसंस्कारः कीटिचक्रफलप्रदः॥

यथाविहित अपने धर्मका पालन करनेसे प्राणियोंको ऊर्ध्वगति तथा अधर्मको ओर बढ़नेसे अधोगति प्राप्त होती है। अतः सभी वर्णोंकी सद्गति अपने धर्मपर चलनेसे ही

होती है। देव और मानवयोनिमें जो दान तथा भोगादिकी क्रियाएँ दिखायी देती हैं, वे सब कर्मजन्य फल हैं। योः अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा अर्जित जो अनुभूत पापाचार हैं उनसे नरक प्राप्त होता है तथा वहाँसे जीवका उद्धार नहीं होता। सुकर्मके प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है।

जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्याम वर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणियोंकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मकी जीत होती है, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। क्षमाकी विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं असुर नहीं। विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन-बान्धव हैं। जिनकी बुद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है उनकी दुर्गति नहीं होती। भगवान् पुण्डरीकाक्ष मङ्गल करते हैं।

### मोक्षप्राप्तिका उपाय

अन्तमें गरुडजी भगवान्से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात पूछते हुए कहते हैं—हे दयास्वर! अज्ञानके कारण ही जीवकी उत्पत्ति इस संसारमें होती है, इस बातको मैंने सुन लिया। अब मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हूँ। इस दुस्तर असार-संसारमें नाना प्रकारके शरीरोंमें प्रविष्ट जीवोंकी अनन्त श्रेणियाँ हैं, वे इसी संसारमें जन्म लेते हैं और इसीमें मर जाती हैं, किन्तु उनका अन्त नहीं होता। वे सदैव दुःखमें व्याकुल रहती हैं। यहाँ कहीं कोई भी सुखी नहीं है। वे किस उपायसे सुखी हों, इसे आप बतानेकी कृपा करें। श्रीभगवान् इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—अनेक जन्मोंमें कर्मोंके अनुसार प्राणीको जातीय देह, आयु तथा भुक्ति प्राप्त होती है और सुख-दुःख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापोंका उनके ऊपर नियन्त्रण रहता है तथा पुनः-पुनः जन्म-मरणकी प्रथा चलती रहती है।

इस मृत्युलोकमें हजार ही नहीं करोड़ों बार जन्म लेनेपर भी जीवकी कदाचित् ही संचित पुण्यके प्रभावसे मानव-योनि मिलती है। यह मानव-योनि मोक्षकी सीढ़ी है। चौरासी लाख योनियोंमें स्थित जीवात्माओंको बिना मानव-योनि मिले तत्त्वका ज्ञान नहीं हो सकता। अतः इस दुर्लभ योनिको प्राप्त करके जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं कर

लेता, उससे बढ़कर मूढ़ इस जगत्में दूसरा कौन हो सकता है? कोई भी कर्म शरीरके बिना सम्भव नहीं है, अतः शरीररूपी धनकी रक्षा करते हुए पुण्यकर्म करना चाहिये। शरीरकी रक्षा धर्मके लिये, धर्मकी रक्षा ज्ञानके लिये और ज्ञानकी रक्षा ध्यानयोगके लिये तथा ध्यानयोगकी रक्षा तत्काल मुक्ति-प्राप्तिके लिये होती है। यदि स्वयं ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर नहीं कर सकते हैं तो अन्य कोई दूसरा कौन हितकारी होगा जो आत्माको सुख प्रदान करेगा? जैसे फूटे हुए घड़ेका जल धीरे-धीरे बह जाता है, उसी प्रकार आयु भी क्षीण होती है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है तबतक ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्पत् प्रयत्न किया जा सकता है। सौ वर्षका जीवन आयुष्य है। इसमें भी आधा निद्रा तथा आलस्यमें चला जाता है। इसके साथ ही कितना ही समय बाल्यावस्था, रणावस्था, युद्धावस्था एवं अन्यान्य दुःखोंमें व्यतीत हो जाता है, इसके बाद जो छोड़ा बच जाता वह भी निष्फल हो जाता है। अपने हित-अहितको न जानते हुए जो नित्य कुपभोगी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना है वे मनुष्य नारकीय प्राणी हैं। अज्ञानसे मोहित होकर प्राणी अपने शरीर, धन एवं स्त्री आदिमें अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। अतः व्यक्तिको उनकी बड़ी हुई अपनी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति न छोड़ी जा रही हो तो महापुरुषोंके साथ उस आसक्तिको जोड़ देना चाहिये, क्योंकि आसक्तिरूपी व्याधिकी औषधि सज्जन पुरुष ही हैं।

सत्संग और विवेक—ये दो प्राणीके मलरहित स्वस्थ दो नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। वह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा अर्थात् वह अवश्य ही कुमार्गगामी होगा। जो व्यक्ति दम्भके वशीभूत हो जाता है, वह अपना ही नाश करता है। जटाओंका भार और मृगचर्मसे युक्त साधुका वेश धारण करनेवाले दाम्भिक ज्ञानियोंकी भाँति इस संसारमें भ्रमण करते हैं और लोगोंको भ्रमित करते हैं। लौकिक सुखमें आसक्त 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' ऐसा कहनेवाले, कर्म तथा ब्रह्म दोनोंसे भ्रष्ट, दम्भी और ढोंगी व्यक्तिका अन्त्यजके समान परित्याग कर देना चाहिये।

बन्धन और मोक्षके लिये इस संसारमें दो ही पद हैं—



एक पद है 'यह मेरा नहीं है।' और दूसरा पद है 'यह मेरा है।' 'यह मेरा है' इस ज्ञानसे वह बंध जाता है, और 'यह मेरा नहीं है' इस ज्ञानसे वह मुक्त हो जाता है—

द्वे पक्षे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।

ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते॥

(२।४९।१३)

जो कर्म जीवात्माको बन्धनमें नहीं ले जाता वही सत्कर्म है। जो विद्या प्राणीको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थ है, वही विद्या है। जबतक प्राणिपक्षीको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जबतक उनमें सांसारिक कामना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियोंमें चञ्चलता रहती है, तबतक उन्हें परम तत्त्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है? जबतक व्यक्तिमें शरीरका अभिमान है, जबतक उसमें ममता है, जबतक उस प्राणीमें प्रयत्नको क्षमता रहती है, जबतक उसमें संकल्प तथा कल्पना करनेकी शक्ति है, जबतक उसके मनमें स्थिरता नहीं है, जबतक वह सास्रचिन्तन नहीं करता है तथा उसपर मुख्यी दया नहीं होती है तबतक उसको परमतत्त्व कहाँसे प्राप्त हो सकता है?

श्रीभगवान् कहते हैं—हे गरुड! उस तत्त्वज्ञका अन्तिम कृत्य सुनो, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोक्ष प्राप्त होता है। अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर संयमरूपी राक्षसे देहादिकी आसक्तिको काट दे। अनासक्त भावसे शीरवान् पुरुष पवित्र तीर्थमें जाकर उसके जलमें स्नान करे, तदनन्तर वहाँपर एकान्त देशमें किसी स्वच्छ एवं शुद्ध भूमिमें विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकाग्रचित्त होकर गायत्री आदि मन्त्रोंके द्वारा उस शुद्ध परम ब्रह्माक्षरका ध्यान करे। ब्रह्मके बीजमन्त्रको बिना भुलाये वह अपने स्वासको रोककर मनकी वशमें करे तथा अन्य कर्मोंसे मनको रोककर बुद्धिके द्वारा शुभकर्ममें लगाये।

'मैं ब्रह्म हूँ' 'मैं परम धाम हूँ' 'मैं ही ब्रह्म हूँ' 'परम पद मैं हूँ' इस प्रकारकी समीक्षा करके निष्कल आत्मामें मनको प्रविष्ट करना चाहिये। जो मनुष्य 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परम पदको प्राप्त करता है।

मान-मोहसे रहित, आसक्तिदोषसे परे, नित्य अध्यात्म-

चिन्तनमें दलचित्त, सांसारिक समस्त कामनाओंसे रहित और सुख-दुःख नामके द्वन्द्वसे मुक्त ज्ञानी पुरुष ही उस अव्यय पदको प्राप्त करते हैं।

ग्रौह वैराग्यमें स्थित हो करके अनन्य भावसे जो व्यक्ति मेग भजन करता है, वह पूर्णदृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।

घर छोड़कर मरनेकी अभिलाषासे जो तीर्थमें निवास करता है और मुक्तिक्षेत्रमें मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है।

हे साध्वं! ज्ञान तथा वैराग्यसे युक्त यह सन्तान मोक्षधर्म ऐसा ही है, उसको तुम्हें सुना भी दिया है।

तत्त्वज्ञ मोक्ष प्राप्त करते हैं। धर्मेन्द्र स्वर्ग जाते हैं, पापी नरकमें जाते हैं। पक्षी आदि इस संसारमें अन्य योनिवर्गमें प्रविष्ट होकर घूमते रहते हैं—

मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाःस्वर्गंति नराः।

पापिनो दुर्गंतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥

(२।४९।१४)

अपने प्रश्नोंके उत्तरके रूपमें भगवान्के मुखसे इस प्रकार सिद्धान्तको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! आपके इन आश्वासनोंकी वचनोंसे मेरा बहुत बड़ा संदेह दूर हो गया।' ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् विष्णुसे आज्ञा ली और वे काश्यपजीके आश्रममें चले गये।

यह गरुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये—

पुराणं गरुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।

भृषवतां कामनापूर्ं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥

(२।४९।१५)

जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो जैसे ही इसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयंकर यातनाओंको तोड़कर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है—

यक्षेदं भृशुयान्मृत्यो यश्चापि परिकीर्तयेत्।

विहाय यातनां धीरां धृतपापो दिवं व्रजेत्॥

(२।४९।१६)

—राधेश्याम खेमका

## नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें 'संक्षिप्त गुरुडपुराणाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। पिछले कई वर्षोंसे कुछ महानुभावोंका यह विशेष आग्रह था कि 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें 'गुरुडमहापुराण' का प्रकाशन किया जाय। हम चाहते हुए भी अबतक यह कार्य नहीं कर सके थे। इस वर्ष यह सम्भव हो सका।

अठारह महापुराणोंके अन्तर्गत गुरुडमहापुराणका अपना एक विशेष महत्व है। इसके द्वारा असार-संसारकी क्षणभङ्गुरता तथा अविष्यताका दिग्दर्शन तो होता ही है; इसके साथ ही इसमें परलोकका वर्णन तथा संसारके आवागमनसे मुक्त होनेकी विधि भी वर्णित है। चतुर्वर्गचिन्तन, चौरमित्रोदय, हेमाद्रि, विधानपारिजात आदि सभी प्राचीन निबन्ध-ग्रन्थोंमें अनुष्ठान, व्रत, दान एवं श्राद्ध आदिके प्रकारणमें मूल श्लोकोंका संदर्भ भी प्रायः गुरुडपुराणका ही मिलता है। इन सब कारणोंसे इस ग्रन्थकी वैभवा एवं महत्व विशेषरूपसे परिलक्षित होनेपर भी सामान्य जन इसके विषय-वस्तुसे अनभिज्ञ-जैसे ही हैं। अतः स्वाभाविक रूपसे यह प्रेरणा हुई कि गुरुडमहापुराणकी कथा-वस्तुको जनता-जवादनकी दृष्टिमें लानेके लिये इस बार इसी महापुराणका अनुवाद 'विशेषाङ्क' के रूपमें प्रस्तुत किया जाय। इस प्रेरणाके अनुसार ही यह निर्वय्य कार्यरूपमें परिणत हुआ।

वास्तवमें गुरुडमहापुराण एक पवित्र वैष्णव ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् विष्णु हैं। यह महापुराण अधिकतम तीन खण्डोंमें विभक्त है—पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड), उत्तरखण्ड (धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प) और ब्रह्मकाण्ड। अधिकतर संस्करणोंमें केवल दो ही खण्ड (पूर्व और उत्तर) दिये गये हैं। जबकि खेमराज श्रीकृष्णदासद्वारा प्रकाशित पुस्तकमें इन दोनों काण्डोंके अतिरिक्त ब्रह्मकाण्ड भी दिया गया है। पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड)—में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार एवं निष्काम कर्मकी महिमा तथा यज्ञ, दान, तप, दीर्घसेवन, देवपूजन, श्राद्ध, तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभ कर्मोंमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये अनेक लौकिक एवं पारलौकिक पुण्यप्रद फलादिका वर्णन किया गया है। इनके

अतिरिक्त इसमें व्याकरण, छन्द, स्वर, ज्योतिष, आयुर्वेद, रत्नसार, नीतिसार आदि अन्यान्य उपयोगी विविध विषयोंका बचाऊम समावेश हुआ है।

गुरुडमहापुराणमें मुख्य रूपसे उत्तरखण्डमें प्रेतकल्पका विवेचन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसमें मृत्युका स्वरूप, मरणासन्न व्यक्तिकी अवस्था और उसके कल्याणके लिये अन्तिम समयमें किये जानेवाले कृत्यों तथा विविध प्रकारके दानोंका निरूपण हुआ है। मृत्युके बाद और्ध्वदैहिक संस्कार, पिण्डदान, श्राद्ध, सपिण्डीकरण, कर्मविपाक, पापोंके प्रायश्चित्तका विधान आदि वर्णित है। इसमें नरकोंका तथा स्वर्ग एवं वैकुण्ठ आदि लोकोंके वर्णनके साथ ही पुरुषार्थचतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त करनेके विविध साधनोंका निरूपण भी हुआ है। इसके अतिरिक्त जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये आत्मज्ञानका प्रतिपादन भी किया गया है।

वास्तवमें गुरुडमहापुराणकी समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यह है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये। यह लक्ष्यप्राप्ति कर्मयोग और ज्ञान अथवा भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विषद व्याख्या इस महापुराणमें हुई है। यह पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए साधकोंके लिये उनके ग्रहण करने योग्य विभिन्न अनुभूत सत्य भागोंके विघ्नोंका तथा विघ्नोंसे छूटनेके उपायोंका बड़ा ही सुन्दर निरूपण करता है। मनुष्य इस लोकसे जानेके बाद अपने पारलौकिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्ध एवं शान्तिप्रद बना सकता है तथा उसकी मृत्युके बाद उस प्राणीके उद्धारके लिये पुत्र-पौत्रादिक—पारिवारिक जनैके कर्तव्यका विषद वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है। यह महत्त्वपूर्ण प्रकरण अन्य किसी पुराण या ग्रन्थमें हमें उपलब्ध नहीं होता।

इस गुरुडमहापुराणके ब्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ तथा अन्तःकरणकी परिशुद्धि और भगवान्में

रति एवं विषयोंसे विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्योंको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्य निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा भी मिलती है। साथ ही, जो जिज्ञासु शास्त्र-मर्यादाके अनुसार अपना जीवनयापन करना चाहते हैं, उन्हें इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन तथा सुन्दर एवं पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त पुत्र-पौत्रादि—पारिवारिक जनोंकी पारमार्थिक आवश्यकता और उनके कर्तव्यबोधका परिज्ञान भी इसमें कराया गया है। इस प्रकार यह महापुराण जिज्ञासु जनोंके लिये अत्यधिक उपदेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदय और कल्याणमें पूर्णतया सहायक है।

चूँकि इस पुराणमें विविध विषयोंका सम्यक् ज्ञान है। अतः पाठकोंकी सुविधाके लिये गरुडमहापुराणके भाष्यकार सार-संक्षेप इस 'विशेषाङ्क'के प्रारम्भमें 'सिंहलोकन'-के रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे गरुडमहापुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय पाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगे; यद्यपि जिज्ञासु जनोंको यह 'विशेषाङ्क' अष्टोत्तश पूरा पढ़ना चाहिये। यदि पूरा न पढ़ सकें तो कम-से-कम उत्तरखण्ड (धर्मखण्ड—प्रेतकल्प) तो अवश्य पढ़ना चाहिये, जिससे उन्हें परलोक-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो सके।

सामान्यतः संसारके लोगोंमें यह जिज्ञासा होती स्वभाविक है कि मृत्युके बाद प्राणी कहाँ जाता है और उसकी क्या गति होती है? संसारमें सुख-दुःखका वैषम्य भी दिखायी पड़ता है। परलोकमें स्वर्ग और नरककी बात भी हम लोग सुनते हैं। इन सब प्रश्नोंका उत्तर इस गरुडमहापुराणमें सविस्तार प्रतिपादित हुआ है।

यद्यपि 'विशेषाङ्क'के प्रकाशनमें कभी-कभी कुछ असुविधाएँ भी आती हैं, परंतु इस बार गरुडपुराणके प्रकाशनमें विशेष कठिनाइयोंकी अनुभूति हुई। संयोगवत् इस महापुराणका कोई अनुवाद अथवा टीका उपलब्ध न होनेके कारण मूलरूपसे सम्पूर्ण ग्रन्थका अनुवाद करना पड़ा। उपलब्ध मूल ग्रन्थोंमें भी पाठभेद और अशुद्धियोंके बाहुल्यसे बीच-बीचमें कुछ भ्रमकी स्थिति बन जाती थी। अपने शास्त्रोंमें स्पष्ट निर्देश है—'पितरो वाक्यमिच्छन्ति

भावमिच्छन्ति देवताः'—पितृगण शुद्ध वाक्य और शुद्ध प्रक्रियाकी अपेक्षा रखते हैं और देवगण शुद्ध वाक्य और प्रक्रियामें त्रुटि होनेपर भी मनुष्यके आन्तरिक शुद्ध भावोंसे भी संतुष्ट हो जाते हैं। गरुडपुराणका मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म आदि प्रक्रिया-प्रधान होनेके कारण इसके अनुवाद करनेमें विशेष सावधानी बरतनी पड़ी। प्रायः यह प्रयास किया गया कि ग्रन्थके मूल भाष्योंको सुरक्षित रखते हुए यथासाध्य ब्रह्मकी प्रचलित और व्यावहारिक प्रक्रियाओंका सामञ्जस्य बना रहे, जिससे सर्वसाधारणको व्यावहारिक प्रक्रियामें असुविधाका अनुभव न हो, फिर भी कदाचित् द्विविधाकी स्थितिमें मूल श्लोकोंके भावोंको ही प्राथमिकता दी गयी है। भाष्योंके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। इसके साथ ही कुछ महत्वपूर्ण मूल श्लोकोंका भी समायोजन किया गया है।

प्रायः यह प्रयास किया गया है कि इस 'विशेषाङ्क'में गरुडपुराणके सभी श्लोकोंका अनुवाद समायोजित कर दिया जाय, परंतु अपने पुराणमें कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जो सर्वसाधारणके समझकी क्षमताके बाहर हैं, जिनके अवलोकनसे सामान्य जनोंके मस्तिष्कमें संशय-विपर्ययकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसे कुछ स्थलोंके अनुवादकी संक्षिप्त करना ही हितकर समझा गया। प्रारम्भमें यह विचार था कि गरुडपुराणके मूल श्लोक भी अनुवादके साथ प्रस्तुत किये जायें, परंतु एक वर्षमें प्रकाशन सम्भव न होनेके कारण सर्वसाधारणके उपयोगकी दृष्टिसे केवल भाषानुवादमें इसे प्रकाशित किया गया है। भगवदिच्छा हुई तो आगे पुस्तकरूपमें मूलके साथ पुनः इसके प्रकाशनका प्रयास किया जा सकता है।

आजकल विशेषरूपसे प्रचलित 'गरुडपुराण सारोद्धार' नामका एक ग्रन्थ उपलब्ध होता है, जो सोलह अध्यायोंमें है तथा इसीको प्रायः ब्रह्म आदि पितृ-कार्योंमें सुनाया जाता है और इसे ही सामान्य लोग गरुडपुराणके रूपमें जानते हैं, परंतु वास्तवमें यह ग्रन्थ मूल गरुडपुराणसे भिन्न है। कुछ समय-पूर्व राजस्थानके विद्वान् पं० नवनिधि शर्माके द्वारा किया गया यह संकलन है। इसमें शंकराचार्यके त्रिवेकचूडामणि, भगवद्गीता, नीतिशतक, वैराग्यशतक एवं अन्य पुराणोंके

साथ गरुडपुराणके श्लोकोंका संग्रह है। कुछ लोगोंमें यह भ्रान्त धारणा बनी है कि गरुडपुराणको घरमें नहीं रखना चाहिये। केवल श्राद्ध आदि प्रेत-कार्योंमें ही इसकी कथा सुनते हैं। यह धारणा अत्यन्त भ्रामक और अन्धविश्वाससे युक्त है; कारण, इस महापुराणमें ही यह बात लिखी है कि 'जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो जैसे ही इसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयंकर यातनाओंको छोड़कर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है।' यह गरुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये—

पुराणं गरुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।

शृण्वतां कामनापूर्ते श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥

(२।४९।१३२)

अतः आस्तिक जनोंको इस प्रकारकी भ्रामक शंका कदापि नहीं रखनी चाहिये।

इस पुराणके अनुवादका संशोधन, परिवर्धन आदि कार्योंको प्रयागराजके श्रीहरिराम संस्कृत महाविद्यालयके पूर्व प्राचार्य आदरणीय पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्रीने पूर्ण मनोयोगसे सम्पन्न किया। यह कार्य भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम भावसे इनके द्वारा सम्पन्न हुआ। इसके साथ ही अग्रिहोत्री पं० श्रीजोधनरामजी शास्त्री, संस्कृत विश्वविद्यालयके प्राध्यापक पं० श्रीमुधाकरजी दीक्षित, आदरणीय पं० श्रीविश्वनाथजी शास्त्री दातार तथा पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री आदि महानुभावोंने भी इस कार्यमें कृपापूर्वक पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मैं इन महानुभावोंके घरणोंमें प्रणति निवेदन करता हूँ। गरुडमहापुराणके प्रकाशनके लिये 'सर्व भारतीय कविराज न्यास'—के अध्यक्ष महाराज कान्हिराज डॉ० श्रीविभूति-नारायण सिंहजीने हमें प्रेरणा प्रदान की तथा अपने न्यासद्वारा संशोधित आचारकाण्डका मूल पाठ भी उपलब्ध कराया। हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। 'कल्याण'—सम्पादकीय विभागके पं० श्रीजानकीनाथजी शर्माके सहयोगके प्रति भी हम आभारी हैं। इस 'विशेषाङ्क' के सम्पादन, प्रूफ-

संशोधन, चित्रनिर्माण तथा मुद्रण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहायता मिली वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते। अनुवादकी आवृत्ति, प्रूफ-संशोधन तथा सम्पादनके कार्योंमें सम्पादकीय विभागके भौरे सहयोगी विद्वानोंने तथा अन्य सभी लोगोंने मनोयोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है। फिर भी अनुवाद, संशोधन, छपाई आदिमें कोई भूल हो तो इसके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। अतः हम इसके लिये अपने पाठक-पाठिकाओंसे क्षमा-प्राप्ति हैं।

आस्तिक जन इस गरुडपुराणको पढ़कर लाभ उठावें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्य परमात्मप्रभुको प्राप्त करें, यही प्रार्थना है। मानव-जीवनका लक्ष्य है आत्मोद्धार करना। इस लक्ष्यकी सिद्धि इस पुराणमें वर्णित आचारके श्रद्धापूर्वक सेवनासे प्राप्त हो सकती है। गरुडपुराणके समस्त कथानक एवं उपदेशोंका सार यही है कि हमें आसक्तिका त्यागकर कर्तव्यकर्माँको करते हुए वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र विश्वशक्त परमात्माकी शरण ग्रहण करना चाहिये। इस लक्ष्यकी प्राप्ति कर्म, ज्ञान और भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विस्तृत व्याख्या भी इस पुराणमें वर्णित हुई है। इसके साथ ही अपने पिताजनोंको परलोकमें सद्गति प्राप्त करानेके लिये पुत्र-पौत्रादिके कर्तव्यका भी निरूपण हुआ है। यदि इस 'विशेषाङ्क' के अध्ययनसे हमारे देशवासियोंको मनुष्य जीवनके वास्तविक ध्येयकी हृदयङ्गम करने तथा उसकी ओर बढ़नेमें कुछ भी सहायता मिली तो यह भगवान्की बड़ी कृपा होगी, श्रम सार्थक होगा और हम इसे अपना सौभाग्य मानेंगे।

सर्वं भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागधवेत्॥

—राधेश्याम खेमका

सम्पादक